०८०३३८

080338

122

* * * * * * * * * *

वार्षिक

६) रु.

मार्गशीर्ष २००६

दिसम्बर १९४९

080338

645

2 11/200

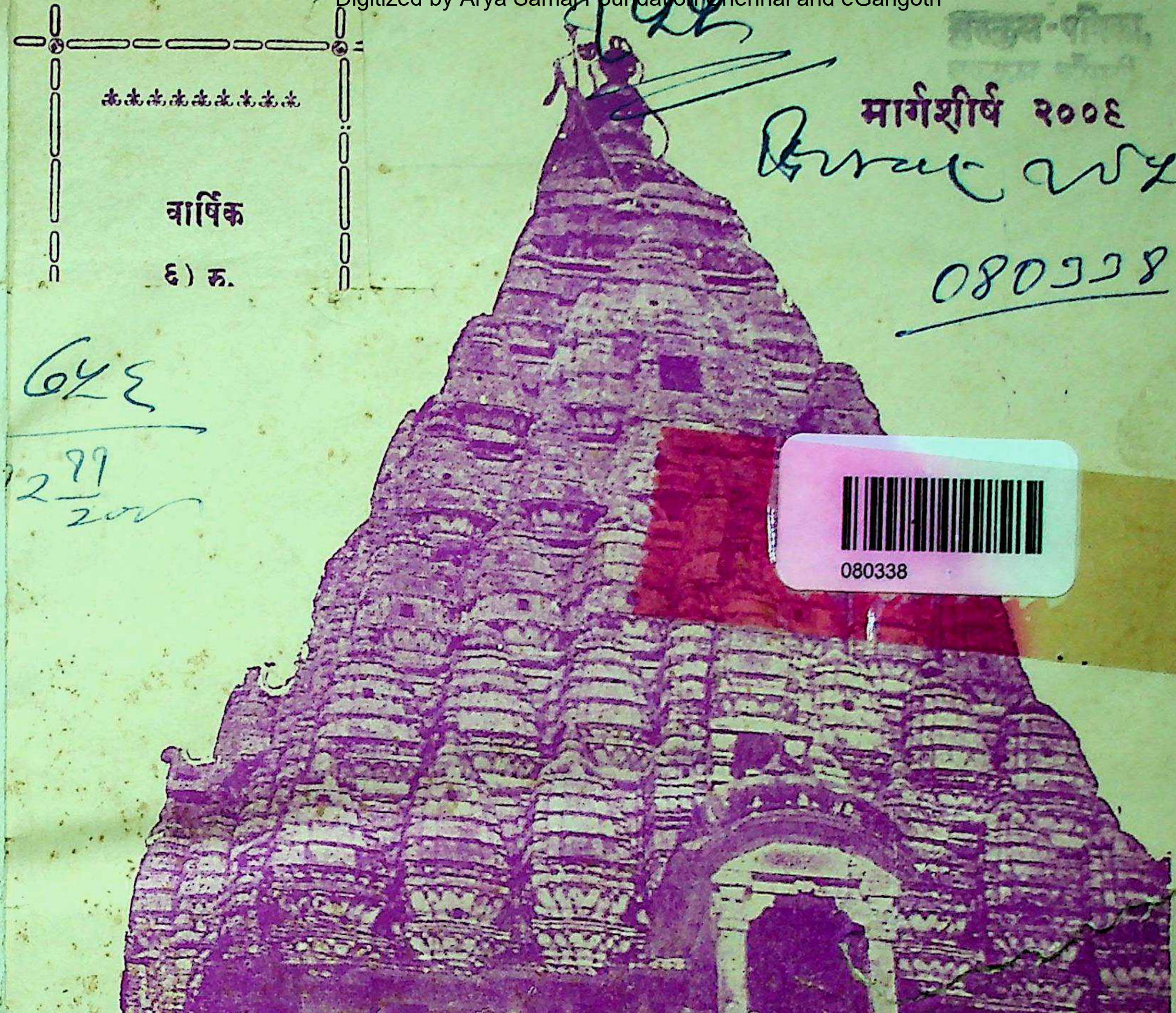

080338

संचालक संपादक सूर्यनारायण व्यास

मध्य-भारत में सबसे बड़ा साबुन का कार

कैलाश सोप फैक्टरी आगर रो

नहाने के साबुन से शरीर साफ, स्वच्छ रहता है। किसी प्रकार की खुजलाहट या झुंझलाहट नहीं आती। नींद बेफिक्र आती है। हर तरह का आनन्द मिलता है।

कपड़ों की स्वच्छता
कैलाश सोप
कैलाश सोप ही सर्वोत्तम है
कैलाश सोप
KAILASH BAR
KAILASH SOAP
मालिक: दि विनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड — उज्जैन
निर्माता: दि कैलाश सोप फैक्टरी आगर रोड — उज्जैन

धोने का साबुन टिकाऊ, सस्ता और कपड़ों की मजबूती को कायम रखने वाला है घिसता कम है, अधिक टिकता है। परिश्रम कम लगता है।

[१] (ग्वालियर व इन्दौर को छोड़कर) मध्य-भारत के प्रमुख विक्रेता--

मेसर्स अनंत उपयोगी वस्तु भंडार, सती दरवाजा उज्जैन

[२] ग्वालियर के एजेन्ट—

मेसर्स कृष्णमोहन चन्द्रमोहन, सराफा बाजार लश्कर

वार्षिक
६) रु.

एक अंक
॥=)

विक्रम

विषयानुक्रमणिका

		पृ. सं.
१ व्यास-उवाच	सम्पादकीय	१-१६
२ एक भारतीय आत्मा	श्री कमलाकांत पाठक...	१७-२०
३ नर्मदा घाटी में प्राग् ऐतिहासिक स्थलों की खोज...	श्री प्रो० एच० डी० सांकलिया	२१-२२
४ लोक कवि चन्द्रसखी के समय संबंधी विचारणा...	श्री अगरचन्द नाहटा	२३-२५
५ शांति, धर्म, संस्कार और सत्-शिक्षा	श्री श्यामनारायण व्यास	२६-२८
६ वरदान	श्री 'परदेशी'	२९-३१
७ पुस्तक-परिचय-परामर्श		३२-३६
८ महाकवि 'निराला' का अभिनन्दन !	श्री 'करुणेश'	

पत्र व्यवहार का पता— } "विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

मध्य-भारत, राजस्थान व मध्य-प्रदेश की जनता का अपना साप्ताहिक

लोकमत

प्रबंध सम्पादक—लखपतराय बंसल

प्रत्येक सोमवार को इन्दौर से प्रकाशित होता है।

स्थायी ग्राहकों को हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान 'मुक्त' की मासिक पुस्तिका मुफ्त मिलेगी।

'लोकमत' कार्यालय, इन्दौर.

मध्य-भारत का एक मात्र प्रिय—

'कुमार'

इन्दौर से प्रकाशित होने वाला मध्य-भारत के कुमारों का मासिक विनोदी सामग्री से सज-धज कर होली पर अपना अंक निकाल रहा है, चौबेजी की चुभती चुटकियां पढ़ने के लिए अवश्य, शीघ्र ग्राहक बनें।

कुमार कार्यालय, इन्दौर

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति ।।-) आने]

-सुमित्रा-

[वार्षिक मूल्य ६) रुपया

संचालक-श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर
तथा
संपादक-श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों-स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों-को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**— देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।
२. **डायरी के पन्ने**—हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।
३. **सबसे प्यारी कृतियां**— पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।
४. **पत्रांजलि**— देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ-हस्ताक्षर के साथ।
५. **विश्व-भारती**—संसार के महान कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर
६. **भारत-भारती**— देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ-आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं-इस शीर्षक से पाइये।
७. **हमें यह कहना है!**—संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित-वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

मध्य-भारत के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ६ खंड २] मार्गशीर्ष सं० २००९ वि०, दिसम्बर सन् १९५२ [अंक २ पूर्ण सं० ६८

व्यास उवाच

कृत-काल-गणना पर नवीन-प्रकाश !

मालवे के प्राचीन-शिलालेखों आदि में 'कृत' सम्वत् का उल्लेख प्राप्त होता है। इस 'कृत' शब्द को लेकर बड़े-बड़े इतिहासज्ञों में एक बड़ी उलझन बनी हुई है। कुछ लोग 'कृत' शब्द का अर्थ 'किया हुआ' लेते हैं, और डॉ. अल्तेकर प्रभृति पण्डित 'कृत' व्यक्ति मानते हैं, किन्तु वह 'कृत' कौन था, यह बतलाने में असमर्थं हैं। कुछ विद्वानों की यह धारणा है जो एक प्रकार से सुसंगत भी है कि 'कृत' कृत्तिका नक्षत्र का सूचक है, और मालव का वर्षारम्भ कार्तिक मास से किया जाता है, इसलिए 'कृत' शब्द का प्रयोग संवत् सम्बन्धित बना हुआ है। यह जो भी हो, हमें हालही में इस प्रश्न का एक स्वाभाविक उत्तर प्राप्त हुआ है, और उसे हम सुसंगत समझने को विवश हो गए हैं। यह तो स्पष्ट है कि 'कृत' शब्द का प्रयोग मालव के संवत् के साथ-साथ सम्बन्धित बना हुआ है। 'कृत' के पश्चात् मालव और उसके नंतर विक्रम शब्द संवत् से जुड़ा हुआ मिलता है। 'कृत' की पुरातनता निःसंदिग्ध है। सूर्य-सिद्धांतकार 'मय' ने भी 'अल्पावशिष्टेतु कृते' कह कर 'कृत' संवत् के अल्पावशिष्ट रहते हुए इस सिद्धांत-ग्रन्थ की रचना की है और वह मालव में ही रह कर की है। फलतः कृत-मालव-गणों का ही काल निर्देशक है, यह कृत जो भी हो मालवगण या मालव का ही होना चाहिए, अन्य नहीं। इसी संवत् के साथ 'कृतेषु—मालवगण स्थितिवशात्' शब्द का प्रयोग हुआ है। मालवगणों की स्थिति से लेकर कृत का सम्बन्ध जुड़ता है।

यह तो सभी जानते हैं कि मालव में माहिष्मती के शासक हैहय थे। पुराणों में प्रथित है कि सूर्यवंशी इक्ष्वाकु कुल प्रसूत राजा शर्याति के वंश में वीतहृव्य राजा हुआ है। उसीके वंश में वत्स नामक पुत्र हुआ था, जो वीतहृव्य

के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। हैहय उसी वीतहव्य का पुत्र था और इसी के शौर्य और शासन के कारण हैहय-वंश माहिष्मती में सुप्रसिद्ध हुआ है। सारा वीतहोत्रवंश ही हैहय के नाम से प्रख्यात् बना था। हैहयों में 'कृत वीर्य' और उसका पुत्र कार्तवीर्य-अर्जुन सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अनेक संघर्ष किए, अनेक प्रदेशों पर अधिकार कर उनके जनपदों को मालव में मिला लिया है। यह ठेठ अथर्ववेद के पंचम-सूक्त से लेकर पुराण--महाभारत आदि में विस्तार-पूर्वक वर्णित हैं, ये मल्व--मालव नाम से ज्ञापित हुए हैं। आज भी कार्तिवीर्य और कृतवीर्य का नाम, उनका शौर्य और आतंक एक मंत्र-शक्ति के रूप में प्रचलित बना हुआ है। इनकी समस्त-शाखा प्रशाखाओं में गण-प्रधान शासन रहा है। यूनानियों ने भी अपने इतिहासों में इनकी गण-प्रधानता स्वीकार की है, और स्पष्ट है कि ये मल्व नाम से वैदिक-काल में प्रख्यात् बने। पुराणों में इन्हें ही मालव कहा गया है, इसलिए स्पष्ट है कि इन्हीं हैहय-वंशी—'कृतवीर्य' अथवा 'कार्तिवीर्य' के नाम से गणों ने जिस काल-गणना को मान्यता दी होगी वह कृत-काल के नाम से ज्ञापित हुई होगी। यह कृत-गणना युग (कृतयुग) माध्यम की नहीं है, यह मालवगण से सम्बन्धित है, जो अनेक कृत--उल्लेख वाले शिलाखण्डों से प्रमाणित है। वह 'गण' ये ही मालव के हैहय-वंशी—कृतवीर्य या कार्तवीर्य हो सकते हैं, और इनसे यह संगति भी लग जाती है। 'कृत' से ही आगे मालव-गण शब्द रह गया है जो अन्य पश्चात्वर्ति शिलालेखों में अंकित है और उसके बाद विक्रम के प्रचुर-प्रभाव के कारण काल-गणना में उसका नाम संयुक्त कर दिया गया होगा। जिन मालवगणों की परम्परा अथर्ववेद, महाभारत, रामायण एवं पुराणों में विस्तृत है, यह 'कृत' उसी परम्परा की एक कड़ी है, जिसे भ्रमवश अँग्रेजी इतिहासज्ञों के उलझा देने से हमने ठीक तरह समझने की कोशिश नहीं की है। हम समझते हैं कि इस हैहय-वंश के कृतवीर्य अथवा कार्तवीर्य की मल्व-मालवगण परम्परा से कृत-संवत् की संगति का इतिहासज्ञ अनुशीलन करें तो अवश्य ही यह कृत-सम्वत् का सन्देह निरसन हो जाएगा। हमें पुराण और महाभारत को इतिहास के साथ अध्ययन करना होगा तब हमारी अनेक भ्रांतियाँ विदेशी लेखकों द्वारा फैलाई गई दूर हो जाएगी। वीतिहव्य, हैहय, तालजंघों को महाभारत के अनेक स्थानों पर 'गण' के रूप में माना गया है। और मल्व एवं मालव कह कर स्पष्ट स्वीकार किया गया है। इस विषय पर हमने दो अंक प्रथम विक्रम में भी प्रकाश डाला है, और सम्मेलन-पत्रिका में भी विस्तारपूर्वक चर्चा की है। इस अध्ययन से हम तो इस सहज निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह 'कृत-सम्वत्' इसी हैहय-परम्परा के 'कृतवीर्य'—अथवा कार्तवीर्य से सम्बन्धित है, मालवगण का ही वह सम्वत् है। सम्भवतः इन्हीं के कारण कार्तिक से वर्षारम्भ भी माना गया होगा, इसके कारण भी मिलते हैं, यह हम आगे स्वतन्त्र-रूप से प्रकट करेंगे।

वस्तुतः मालवगण नया संगठन नहीं था। पर्याप्त पुरातन एवं पर्याप्त विस्तृत रहा है। महाभारत से पूर्व ही उनका अस्तित्व था। महाभारत में कीचक और सत्यवान् की माताओं को मालवी कहा गया है। नकुल की दिग्विजयी यात्रा में भी शिबि, त्रिगर्त, अम्बष्ट, मालव आदि गणों का सहयोग सूचित है। महाभारत-युद्ध में भी क्षुद्रक मालव सौवीर मिलकर लड़े हैं, और परशुराम से भी मालवों ने समर किया है। इससे स्पष्ट है कि ये महाभारत से पूर्व संगठित, सशक्त और व्यवस्थित, विकसित रहे हैं। पाणिनी ने गणों के नियमों में मालवगण के नियम ही बतलाए हैं। (४४५ से ४५६) उनका एक नियम यह बतलाया है कि जो सदस्य क्षत्रिय या ब्राह्मण न होंगे, वे 'मालव्य' कहलायँगे, और क्षत्रिय 'मालव', सम्मिलित रूप से सभी जाति के व्यक्ति 'मालवाः' लगाएँगे।

मालवगण की प्राचीनता का प्रमाण यह भी स्पष्ट है कि जब सिकन्दर से मालव-प्रतिनिधि की बातें हुई, तब उन्होंने कहा था—

हमारी स्वाधीनता दक्ष के समय से अक्षुण्ण चली आती है (एरियन भा ६ अ. १४) और इसीका समर्थन अथर्ववेद के ५ काण्ड–४ अनुवाक् से होता है।

हैहय के सहस्रार्जुन ने ही कर्कोटक नागों को हरा कर मालवगणों की सीमा जयपुर तक बढ़ा दी थी। अर्थात् कृतवीर्य सहस्रार्जुन मालवगणों के प्रमुख थे। इस दृष्टि से

जिन शिलालेखों में 'कृत' का उल्लेख है, उनके साथ मालव—मालवगण शब्द प्रयुक्त है। जैसे—

(१) कृतयोर्द्वयो वर्ष शतयोर्द्वयशीतयो सं. २८२

(२) कृतेहि—-२८४ सं।

(३) श्री मालवगणाम्नाते प्रशस्तेकृत संज्ञिते ४६१ सं.

(५) कृतेषु चतुर्षुवर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालव पूर्वायां ४८१ सं.

आदि उल्लेखों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह 'कृत' मालवगण परम्परा से ही है। और सम्भवतः मालव गण प्रमुख कृतवीर्य से इसका सम्बन्ध हो।

आबू के मरु प्रदेशीय होने का एक मौलिक-तथ्य!

मत्स्यपुराण (अ. ४३) में कहा गया है कि सहस्त्रार्जुन ने कर्कोटक-नाग को पराजित कर मालव गणों की सीमा जयपुर राज्य तक बढ़ा दी थी। यह तो स्पष्ट है कि यह हैहयवंशी सहस्त्रार्जुन मालवे की माहिष्मति का था, स्पष्ट है कि कृतवीर्य और सहस्त्रार्जुन मालव-गणों के ही प्रमुख थे, परशुराम के आक्रमण के कारण ये गण राजपूताने तक विस्तृत हो गये थे, आगे भी पुष्यमित्र–संघ बन जाने पर पश्चिमी राजपूताना के पहाड़ी-भाग इनके प्रभाव क्षेत्र में आगए थे। मालवगणों के क्षेत्र में आरावलि का आजाना यौद्धिक-महत्व की दृष्टि से आवश्यक उपयोगी बन गया था। यह भी स्पष्ट है कि हैहयों ने आबू पर अधिकार कर लिया था, हैहयों और नागों का सम्बन्ध नया नहीं है। कर्कोटक नगर के नागों पर माहिष्मती का अधिकार भी था। यह सम्बन्ध वैदिक और महाभारत–रामायण काल में जब मालव-'मल्व' कहे जाते थे तभी से है। इसके अनेक उल्लेख उपलब्ध है। यह भी स्पष्ट है कि अर्बुद (आबू) नागों का एक प्रधान उपनिवेश था, जो किसी वसिष्ठ की संरक्षकता में वैदिक युग के आरंभ में निवेशित किया गया था, ब्रह्म की संतान का यह उपनिवेश संभवतः मरुओं को दबाने के लिए ही स्थापित किया गया था। नाग देव-वर्ग की ही एक उपजाति माने गए हैं। ज्ञात होता है कि इन नागों को कुछ काल बाद मरुओं ने आत्म-सात कर लिया था, ये परस्पर मिल कर रहने लग गए थे।

एष नाग मनुष्येषु
माहिष्मत्यां महाद्युतिः
कर्कोटक सुतं जित्वा
पुर्यांतत्र्यवेशयत् (मत्स्य अ. ४३)

सहिनाग सहस्त्रेण माहिष्मत्यां नराधिपः।
कर्कोटक सभांजित्वापुरीं तत्रन्यवेशयत्। २६
(ब्रह्माण्ड. पा॰ ३ अ. ६९)

अनेक जगह उल्लेख है कि कार्तवीर्य अर्जुन ने कर्कोटक नाग को उत्तर में (आबू-एवं संपूर्ण-नाग-भोग-भाग) वश कर लिया था।

परन्तु नाग और मरुओं में पारस्परिक सांस्कृतिक-आदान प्रदान, एवं रक्तज-सम्बन्ध के कारण साम्य-स्थापित हो गया था।

इससे यही सिद्ध होता है कि अत्यंत पुरातन काल में भी आबू आदि प्रदेश मरुओं (मारवाड निवासियों का) ही रहा है। स्व. डॉ. जायसवालजी ने भी नाग, और मालवों की एक ही सभ्यता का होना स्वीकार किया है। (अंधकार युगीन भारत ६४३ प्र ११४।५) आबू में वसिष्ठ की गौ का हरण भी पृथ्वी का अपहरण है, और उसी को लेकर संघर्ष हुआ है, जिन वीरों के साथ भार्गवों का यह संघर्ष हुआ है। उन्हीं वीरों के साथ (कौशिक, या गाधि राजाओं ने वसिष्ठ की गो-भूमि पर हाथ डाला था,) वसिष्ठ की सहायता करके यश सम्पादित किया था। सम्भवतः इसी कारण वसिष्ठ ने इन वीरों को परमार या पर-मरु कह कर संबोधित किया है। यही प्रमर-प्रमार परमार शब्द-ज्ञापित वीरों की आबू से उत्पत्ति का रहस्य होना चाहिए। अर्बुद के परमार वसिष्ठ की कृपा प्राप्त कर चुके थे, यह तो पुराणों से स्पष्ट प्रतीत होता है। यह भार्गव-वसिष्ठ संघर्ष ठेठ अथर्ववेद से लेकर पुराणों तक प्रचलित है, आबू की वसिष्ठ सम्बन्धी गो-पृथ्वी, और प्रमर की जन कथा को आधुनिक मान लेना साहस की बात होगी, और वह आबू चाहे मालव जन-पद रहा हो, या मरु के अधिकार में, किन्तु वह गुर्जर के प्रदेश से कदापि सम्बन्धित नहीं है, न उसका भाग ही है। मारवाड़ में आज जो गूजर और गुर्जर-गौड आदि का विस्तार है। वह गुर्जर-संघ से संबंधित है जो मालवगण-

क्षुद्रकगण से सम्बन्धित रहा है, और 'गण-शत परिवृत्ते' के रूप में जिसका उल्लेख पुष्यमित्र-संघ में भी आया है। इसके सिवा इस प्रदेश का कुछ भाग ही ६ ठीं शती से लेकर १२ वीं शती तक गुर्जर रहा है। जिसका अलबेरुनी, हुएनसंग, एवं राजशेखर न वर्णन किया है, सम्भवतः यह 'गुर्जर-संघ' के फल स्वरूप ही उनके व्यापक क्षेत्र-विस्तार एवं अधिकार-वश हो। यह सत्य है कि आबू के वसिष्ठ की गौ (भूमि), और अमरोत्पत्ति को केवल आधुनिक, या-पौराणिक-कल्पना मान लेने की आवश्यता नहीं। यह ठेठ वैदिक काल से सम्बन्धित पुरातन संघर्ष घटना है, इसी दृष्टि से इसका अनुशीलन-अध्ययन होना चाहिए।

देश का यह महत्वपूर्ण सम्मेलन—सप्ताह !

वर्षांत के दिसंबर का अंतिम सप्ताह हमारे यहां सम्मेलन सप्ताह बन गया है, इस बार भी इस समय देश के विभिन्न भागों में अनेक सभा—सम्मेलन हो गए, किन्तु जिनका महत्व माना जाना चाहिए वे कतिपय ही हैं। उनमें से दिल्ली की,—वह गांधी-गोष्ठी है। जिसमें देश-विदेश के अनेक जाने-माने हुए विद्वान्—विचारकों ने गाँधी-विचार-धारा पर चर्चा की है, और अन्तर-राष्ट्रीय-शांति के लिए गांधी-विचारधारा का वर्चस्व स्वीकार किया है। अवश्य ही हमारे देश में गांधीजी उत्पन्न हुए, उनकी विचार-धारा अजस्र प्रवाहित हुई और उसने हमारी दीर्घकालीन आकांक्षाओं को तृप्त भी किया, परन्तु उनके इहलोक लीला संवरण करते ही हमने उसे जैसे भुला दिया। तथापि आज विदेशों का अशांत वातावरण, पारस्परिक अविश्वास और सर्वनाशकारी-आयोजनों में वही गांधी-विचारधारा को सम्बल अनुभव किया जा रहा है। यह हमारी सांस्कृतिक-विजय का प्रतीक अवश्य है, किन्तु हम आत्मरूप से अपरिचित बन रहे हैं। 'गांधी गोष्ठी' जहां विश्व-व्यापी प्रभाव प्रतिष्ठित करने का पथ-प्रशस्त करती प्रतीत हो रही है, वहां हम उसके उद्गम-स्थान में ही अंधकार में भटकते जा रहे हैं।

हैदराबाद अधिवेशन !

दूसरा महत्वपूर्ण अधिवेशन हैदराबाद में कांग्रेस का हो गया। अनेक आशंकाओं, संघर्ष, विवादों के समक्ष रहते हुए भी वह सफलता से सम्पन्न हुआ। इस सफलता का श्रेय निःसन्देह नेहरूजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व को है ! जिन्होंने भाषावार-प्रांत के प्रश्न को प्रगतिशील न बनने दिया और उसके प्रवाह को अवरुद्ध बनाया, अन्यथा अनेक प्रांतों के पुनर्निर्माण में उलझनों का असमय अवसर प्रस्तुत हो जाता, और देश को नवीन-अशांति में पड़ कर अपनी प्रगति में रोक लगाना पड़ता। पंचवर्षीय-योजना की स्वीकृति भी एक सफलता है। पण्डितजी का ही प्रभाव था कि स्वामी रामानन्द के स्वागत-भाषण में सूचित हैदराबाद के अंग-भंग को—दक्षिण के आर्थिक-संतुलन की दृष्टि से तत्काल रोक लिया। आंध्र की उलझन भी विवाद का विषय बन जाने को थी, किन्तु वह आगे न बढ़ सकी। अवश्य ही भाषिक-प्रदेश-निर्माण की समस्या को टाल दिए जाने के कारण महाराष्ट्र में असन्तोष आरम्भ हो गया है, वहां प्रतिक्रिया होना संभव है। जबकि एक आंध्र के कारण मद्रास के होने वाले अंग-भंग पर राजाजी जैसे अनुभवी—विचारशील भी मनोवेदना अनुभव कर रहे हैं, उनकी अवस्था अनिश्चित बन गई है।

राजाजी की मनोवेदना !

हालही में विद्युत-अधिकार रखने वालों की एक परिषद् में उन्होंने कहा कि—"निश्चय मान लेना कि तुम अकेले पड़ जाने वाले हो, देश की स्थिति आज ऐसी बन रही है।...अनिश्चितता के इन दिनों में कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार का वचन नहीं दे सकता। पंचवर्षीय-योजना भी लोकतंत्र के अधिकार को भंग करने वाली हो सकती है? आज की सरकार को किसी भी क्षण नष्ट किया जा सकता है, या हटने को कहा जा सकता है। ऐसी हालत में सरकार अपनी नीति की सफलता के सम्बन्ध में कैसे विश्वास दिला सकती है। देश जब विभक्त होने को आतुर है, इसकी अखण्डितता टूटना ही चाहती है, तब हम सब अनिश्चितता के काल में ही जी रहे हैं। [illegible] सरकार का जहां तक सम्बन्ध है, हम उसका अंग

विच्छेद कर रहे हैं, हम संयुक्त कुटुम्ब के क्रोधाविष्ट सहोदरों की तरह सम्पत्ति और जिम्मेदारियों की गिनती लगा कर उसके टुकड़े करने पर तुले हुए हैं। पितामहों और दादा-दादियों सभी को भुला रहे हैं। क्रोध में भरे हुए बन्धुगण एक दूसरे के साथ झगड़ रहे हैं, अपनी-अपनी मिलकत के भाग बना रहे हैं। आंध्र-राज्य कौनसी नीति स्वीकार करेगा और मद्रास कौनसी, यह कोई नहीं कह सकता।" राजाजी की यह मनोवेदना भाषावार-प्रांत-निर्माण करने के उत्सुक-जनों को सही समझ लेना चाहिए, और अपना भावी अंधकारमय बनाने के पूर्व सचेत बन जाना चाहिए। राजाजी के विचारों को देखते हुए कांग्रेस और नेहरूजी ने अन्य प्रदेशों को खण्डित होने से तत्काल रोक कर बहुत सूझबूझ से काम लिया है। कांग्रेस में सरकार की विदेश-नीति की भी सराहना की गई। श्री नेहरूजी का भाषण इस समय बहुत महत्वपूर्ण और व्यापक दृष्टिकोण से विवेचनापूर्ण था। उन्होंने जम्मू-काश्मीर की समस्या की उलझन में वहां की प्रजापरिषद् के सत्याग्रह—बनाम हठाग्रह की भी चर्चा की, किन्तु दबे शब्दों में काश्मीर के असंतोष में किंचित् सत्य का आभास भी प्रकट किया। अवश्य ही काश्मीर में असंतोष उत्पन्न करना, असामयिक एवं अहितकर अवश्य है, किन्तु वहां जिस अल्पमत का आंदोलन लाठी—गोली से खेल रहा है, वह शेख सा. से संतोष की अपेक्षा का अधिकार चाहता है, वह उपेक्षणीय नहीं है।

नवसारी में गुर्जर-गिरा का गौरव !

उधर सूरत में गुर्जर-गिरा का साहित्य-सम्मेलन हो गया। उसके प्रधान प्रख्यात गुर्जर-साक्षर हरसिद्ध भाई दिवेटिया थे। यह केवल साहित्य-सम्मेलन ही नहीं, साहित्य के सर्वांगीण-विवेचन का समारोह ही था। विद्वान् प्रमुख का भाषण तात्विक चिन्तन से लेकर व्यवहारिक विषयों तक व्यापक था। अवश्य ही यह सम्मेलन साहित्य-सीमा तक ही परिमित माना जाता यदि वह महा गुजरात की सीमा-समस्या को स्पर्श न करता। किन्तु साहित्य के साथ जहां सांस्कृतिक समस्याएँ खड़ी होती हैं, वहां महा गुजरात उपेक्षणीय नहीं बन सकता था। फिर ऐसे वातावरण में जब महाराष्ट्र जैसा पड़ोसी प्रदेश सजग बन प्रांत विस्तार की चर्चा कर रहा हो, गुजरात का मौन रहना सम्भव न था। भाषा का सम्बन्ध प्रदेश और सीमा से स्वाभाविक ही है। डांग और आबू आज गुजरात के लिए उलझन बने हुए हैं। डांग का आग्रह तो समझ में आ सकता है, पर आबू पर आँखें लगाना राजस्थान से मनोवैज्ञानिक रण-निमंत्रण ही है। हिन्दी अपनाने का संकेत करते हुए गुर्जर-लिपि को शिरोरेखा युक्त बना देने में भी सहयोग भावना व्यक्त की है। 'हिन्दी शाही' के आधीन होने में उन्हें आपत्ति रहती है। सब मिलाकर श्री. दिवेटियाजी का भाषण विचार और मनन की सामग्री प्रस्तुत करने वाला सुन्दर भाषण है।

और पत्रकार परिषद् !

इसी आयोजन के अंतर्गत पत्रकार-परिषद् भी हुई, उसमें श्री. शैलेत जैसे निर्भीक और अग्रणी पत्रकार उसके प्रधान थे। उन्होंने भारतीय-पत्रकारिता के १७२ वर्षों का इतिवृत्त बतलाते हुए पत्रकारों की जो परिभाषा की है, वह उद्धृत करने योग्य है।

"अखबार प्रजा-मत की पाठशाला हैं, प्रजा की बोलती जीभ हैं, निर्बल का बल है, निराधार का आधार है, शासन की लगाम है, राज्य और प्रजा के बीच एक सम्बंध-कारक कड़ी है, जनहित के पहरुआ हैं, राजनीति के तूफान में राष्ट्र की नौका के लिए मार्गसूचक दीप हैं, जनभावना के एक्सरे हैं, प्रजत्व की मीनार के कलश हैं, जनता के सुदर्शन हैं, जनता की शक्ति हैं, शासन का आधार हैं, मातृभूमि की कीर्ति हैं, मुकुट हैं और लोकशाही के आभूषण हैं।" इस कथनानुसार "पत्रकार का अर्थ है अन्याय से लड़ने वाला योद्धा और पत्रकारिता के आभूषण हैं—स्वतंत्रता, निडरता, संयम, विचार गाम्भीर्य।"

सम्मेलन के अन्तर्गत पुरातत्व-विभाग भी था, उसमें श्री भट्टजी ने गुजराती गुजरात आदि की बड़ी विस्तृत और विवेचनपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की। एक प्रकार से उन्होंने शब्दों का महागुजरात ही बना डाला था। कला और विज्ञान-परिषदें, प्रदर्शन भी सुन्दर रहे। भाषा, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व, विज्ञान प्रदर्शन आदि से यह सम्मेलन सर्वांग सम्पन्न हो गया।

ग्वालियर में इतिहास परिषद्—

भारतीय इतिहास परिषद का पन्द्रहवां अधिवेशन इस बार मध्यभारत की राजधानी ग्वालियर में डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी की अध्यक्षता में हुआ। इसमें देश के लगभग २०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मध्यभारत के श्री. राजप्रमुख ने अपने उद्घाटन भाषण में राज्य की भौगोलिक स्थिति के साथ ही वहां की ऐतिहासिक परम्परा का भी उल्लेख किया। उज्जयिनी, विदिशा एवं माहिष्मति के सांस्कृतिक केन्द्र जहां हो उसकी ऐतिहासिक प्राचीनता पर किसी को संदेह नहीं हो सकता। वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता समस्त विश्व के लिए एक आदर्श है और इसलिए बौद्धिक भावनाओं राजनीतिक धार्मिक और भौगोलिक व्यवस्थाओं से जागरूक रहकर देशवासी एकता के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। हमारी सभ्यता की अद्वितीयता, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विशेषतायें ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण में नवीनता लाती है। यदि कालांतर में यह एकता नष्ट न हुई होती तो गुलामी, गन्दगी और गरीबी की यातनायें हमें सहनी भी नहीं पड़ती। विविधता में एकता रख कर यदि आज भी शोषण, निर्धनता, बेकारी, सामाजिक अन्याय आदि को मिटाने के लिए इतिहास के पृष्ठों से बोध-पाठ लिया जाय तो राष्ट्रीयता का विकास हो सकता है और वह स्वतन्त्रता समानता में परिलक्षित भी हो सकती है।

डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने इतिहास कांग्रेस में अध्यक्ष की हैसियत से भाषण करते हुए उचित ही कहा है कि स्वाधीनता से पूर्ण लाभ उठा कर भारत अपनी विशिष्ट सम्पत्ति को सुरक्षित रखते हुए और समुन्नत करते हुए मानव इतिहास के क्रम को बदल कर उसे निश्चय ही अधिक उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाना चाहता है। भारतीय सभ्यता की व्याख्या करते हुए उन्होंने इसकी राष्ट्रीयता पर भी बल दिया। भारतवर्ष का राजनीतिक आदर्श ही जब आध्यात्मिक राज्य रहा हो, तब उसमें संकीर्णता ठहर ही नहीं सकती। सत् और सत्यका सर्वोच्च स्तर ही आध्यात्मिकता है, जो सार्वभौमिक होने के नाते मनुष्य मात्र के प्रति सद्भाव रखती है। हमारी राष्ट्रीयता धर्म की समानता द्वारा पोषित है और राष्ट्रीयता भी इसी की प्रतीक है। मूलभूत सदाचार के सिद्धान्तों से युक्त मर्यादापूर्ण राम-राज्य की हम कल्पना करते आरहे हैं, जो सम्पूर्ण मानवता के लिए ग्राह्य है। विश्व शांति एवं मानवीय बन्धुत्व के जो संदेश प्रसारित हो रहे हैं। वे निश्चय ही वेद एवं उपनिषद के युग से हमारे सूत्रों में स्पष्ट हैं।

भारत मानवता का ही क्रीड़ास्थल नहीं है वरन् वह संस्कृति का भी जन्मस्थान है। मूल रूप में पहले-पहल तराईयों और नदियों के कछारों में ही आबादी बसी और उसने पारिवारिक से आगे सामाजिक सम्बन्धों को स्थिर किया। कृषि के साथ जिस मानव सभ्यता का उदय होता है, वह भी यहीं अंकुरित, पुष्पित और फलित हुई। सिन्ध की तराई में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की जो सभ्यतायें पाई गई, वे अत्यन्त प्राचीन हैं। पंजाब राजस्थान आदि में जो संस्कृति फली-फूली वह निश्चय ही विचार की उच्चता में जीवन को गतिवान रखती हुई जमीन से उसका नाता जोड़ती थी। ऋग्वेद को ही, जैसा कि भारतीय विचारधारा का प्रेरक एवं जनक माना जाता है, यह श्रेय है कि उसने प्रजा-तंत्रात्मक शासन पद्धति का शुभारम्भ किया। इसीलिए हम अनादिकाल से केन्द्रीयकरण की अपेक्षा विकेन्द्रीकरण को उचित मानते आए हैं। अनेक विद्वानों ने गेहूं के पुष्ट बीजों तथा जावा में सिवालिक सदृश्य जीवों के विकास से यह सिद्ध कर दिखाया है कि बृहत्तर भारत के पंजाब तथा अन्य क्षेत्रों में मनुष्य में जब देवत्व की प्रतिष्ठा की गई, तब साम ज्ञान ऋचा के साथ सामूहिक राजनीतिक-जागृति एवं चेतना का विकास हुआ। इसीका प्रतिनिधित्व हमें ग्राम गणतंत्रों में भी मिलता है। देश में आज ग्रामोद्धार के लिए जो बल दिया जा रहा है, वह इसीलिए है।

इतिहास-क्षेत्र की त्रुटियों के सम्बंध में अनेक विद्वानों ने जो कुछ संकेत किया है, उसका यही आशय है कि अबभी ऐतिहासिक दृष्टिकोण में गौरवानुकूल नवीनता अपनायी जाय, जिससे कला और पुरातत्व दोनों की सहायता से इस विषय में अनुसंधान किया जा सके। प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक-युगों का जब अध्ययन-अनुशीलन किया जाता है, तब यह बात ध्यान में रखनी होगी कि विदेशियों ने इसमें बहुत कुछ असत्य कथन किया है। और गलतफहमी

से मिथ्या का आश्रय लेते हुए हमारे गौरव के प्रतिकूल मंतव्य प्रकट किए हैं। यदि भारतीय-इतिहास कांग्रेस के सद्प्रयत्नों से परम्परागत और क्रमबद्ध इतिहास का संशोधित स्वरूप निर्मित हो जाए तो उससे आप ही आप भारतीय-इतिहास में नवीन-दृष्टिकोण अपनाने में सहायता मिलेगी। निःसंदेह इसके लिए आत्मीयता और गौरव-गरिमा भी आवश्यक है।

ललित-कला प्रदर्शन

ग्वालियर में आयोजित तृतीय अ. भा. कलापरिषद् का उद्घाटन भी डॉ० मुकर्जी ने किया, उन्होंने कहा—

'भारतीय कला ने धर्म की बड़ी सेवा की है। धर्म का तात्पर्य अगम, अगोचर तथा अनन्त की उपासना है तथा कला ने इस निराकार को साकार रूप प्रदान किया है।" आपने आगे कहा कि कोई भी साँस्कृतिक आंदोलन उसके उद्देश्य के आधार पर किया जाना चाहिए। "भारत के सामाजिक जीवन का मूल मंत्र साधारण-जीवन यापन तथा उच्च विचार रखना था। इसलिए कला का अभ्युदय भारत में देरी से हुआ। जब भारत में कला आयी तो उसका कारण सर्व-साधारण के धर्म का सरल रूप प्रदर्शित करना था। भारतीय कला केवल बाह्य प्रदर्शन मात्र नहीं वरन् इसका संबंध आत्मा से है।"

प्रदर्शनी में अजमेर, अहमदाबाद, बम्बई देहरादून, कलकत्ता, शांतिनिकेतन, धार, देवास, इंदौर तथा रशियन-राजदूत की ओर से भेजे गये चित्रों का प्रदर्शन किया था जिसमें लगभग ३०० पेंटिंग चित्र थे।

मुद्रा परिषद—

इसी प्रसंग पर भारतीय मुद्रा-परिषद का अधिवेशन बम्बई के पुरातत्वाध्यक्ष श्री० ज्ञानीजी की प्रमुखता में सम्पन्न हुआ।

आपने मुद्रा सम्बन्धी विज्ञान को एक शताब्दी पूर्व का बतलाते हुए मुद्रा शास्त्रियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की विभिन्न प्रकार के तौल, बाट एवं ढाले हुए सिक्कों के विषय में हमारे ज्ञान को व्यापक बनाने की प्रेरणा की। श्री० ज्ञानीजी ने म. भा पुरातत्व विभाग के उपसंचालक श्री डॉ० त्रिवेदी के द्वारा [illegible] में [illegible] एवं द्र की मुद्राओं के विषय में संकेत करते हुए बतलाया कि इनका इतिहास में कहीं पता नहीं चलता। इनसे यह जानना आवश्यक है कि इन मुद्राओं का किन राजवंशों से क्या सम्बंध है? आदि। इस प्रकार यह इतिहास परिषद् अनेक भाषणों-चर्चाओं के साथ सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई।

मध्य-भारतीय हिंदी सा० सम्मेलन

ग्वालियर में दूसरा महत्वपूर्ण आयोजन म. भा. हि. सा. सम्मेलन का सुप्रसिद्ध साहित्यिक कवि और पत्रकार श्री० बालकृष्ण शर्मा नवीनजी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। श्री नवीनजी ने अपने भाषण में इसे 'प्रारंभिक' कहा है। म. भा. के निर्माण हो जाने के बाद अवश्य ही यह 'प्रारंभिक' बन जाता है, अन्यथा सर्व प्रथम मऊ में यह सम्मेलन ४१ में बहुत सफलता से हुआ था, और उसे व्यापक प्रतिनिधित्व भी सारे प्रदेश से प्राप्त हुआ था, उसके पश्चात द्वितीय अधिवेशन महाराज विक्रमसिंह देवास (१) के नरेश की अध्यक्षता में हुआ था, और कुछ काल बाद स्व. रामनाथ शर्मा के प्रयत्न से बागली में तीसरा अधिवेशन भी हुआ था, और उसका कार्य ठप्प पड़ गया था, यों यह ग्वालियर का अधिवेशन ४ र्थ हो जाता है। म. भा. निर्माण के पूर्व भी चाहे शासकीय विभिन्नताओं के कारण प्रांत एक सूत्र में आज की तरह ग्रथित नहीं हुआ था, परन्तु साहित्यिकों ने अपने को किसी सीमा में नहीं सिमटाया था, वे उस समय भी म. भा. को सामूहिक-एकता के सूत्र में ग्रथित किए हुए थे, जिस तरह आज बनाए हुए हैं। इसलिए यदि इस सम्मेलन को उसी मालिका में मिलाये रखा होता तो आपत्ति का कारण नहीं था, और एक सुसंगठित

किंतु सुषुप्त-संस्था की परम्परा को ही पुनरुज्जीवित किया जाता, अस्तु।

अध्यक्ष नवीनजी के नेतृत्व में, और प्रांत के साहित्यिकों के सहयोग से यह नवोदित-संस्था समुन्नत बने हमारी यही कामना रहेगी। विद्वान प्रमुख महोदय ने इस अवसर पर साहित्य और कला की उपासना को समयानुसार वैयक्तिक प्रधानता से उठ कर, सामुहिक उपचार के स्वरूप धारण करने की प्रेरणा की। सभा संस्थाओं की वर्तमान विडम्बना को लक्ष्य करते हुए उन्होंने कहा है—एक बात से मैं आपको सचेत कर देना चाहता हूं। हमारे देश की संस्थाओं में जन-तांत्रिकता और विधान-विडम्बना का रोग लग गया है। उससे आप बचने की चेष्टा करें, अन्यथा आप साहित्य सम्मेलन नहीं एक अखाड़ा बन जायेंगे। मुझे विश्वास है आप इस सम्मेलन को एक जीवित जाग्रत, कर्मठ संस्था बनाना चाहते हैं। अतः यह मेरा धर्म है कि मैं आपको जनतांत्रिकता और वैधानिकता के उन टीलों से सावधान करदूं जो संस्थाओं की कब्र बन गए हैं और बन जाने वाले हैं।

जनपदीय भाषाओं की रक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए आगे कहा—"मैं यह निवेदन भी कर दूं कि हमारे इस सम्मेलन को जनपदीय भाषाओं के साहित्य और जनपदीय संस्कृति के उत्थान और रक्षण का कार्य भी करना है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे इस मध्य-भारतीय भू-भाग में मुख्यतः चार जनपदीय भाषायें संस्कृतियां विद्यमान हैं। उत्तरी मध्यभारत में ब्रज और बुंदेलखंडी भाषाएं प्रचलित हैं और मालव प्रदेश में मालवी तथा उससे संलग्न नेमाड़ी भाषाओं का प्रसार है। अतः इस सम्मेलन को इन जनपदीय भाषाओं का कार्य भी अपने हाथ में लेना होगा।"

आपने पूछा--"प्रगतिशीलता के नाम पर जहां स्थापनाओं का नग्न नृत्य अपने रागद्वेषादि मनोविकारों का अचल प्रदर्शन हो रहा है, वहां साहित्य का वास्तविक मूल्यांकन कैसे हो सकता है? मूल मानदण्ड ही जहां विकृत अस्थिर एवं डगमग हो वहां उसकी कसौटी पर किसी कवि या साहित्यिक कृति का मूल्यांकन कैसे किया जाए।

प्रगतिशीलता में प्रतिगामिता !

मार्क्स, फ्रेडरिक ऐंगल्स तथा लेनिन आदि के विचारों की व्याख्या करते हुए श्री नवीन बोले--"जिस प्रकार की आलोचना-वृत्ति हिन्दी में चल रही है उससे हिन्दी में इन लोगों की मनचाही प्रगतिशीलता का आविर्भाव नहीं होगा। प्रगतिवादी बन्धुओं की प्रगतिशीलता वास्तव में प्रतिगामिता है। इस प्रकार के जड़वाद को हिन्दी-संसार नहीं अपनायेगा।

जो धारणाएं, जो सैद्धांतिक मान्यताएं मार्क्स, ऐंगल्स और लेनिन की हैं उनके अनुसार तो यही निष्कर्ष निकलेगा, जो महामानव लेनिन ने निकाला है। परन्तु जो बात विचारणीय है वह यह है कि क्या उनकी वे मान्यताएं ऐतिहासिक रूप से सत्य हैं? भारतीय-साहित्य की ओर दृष्टिपात कीजिए और देखिए कि क्या मार्क्स--ऐंगल्स--लेनिन की बात ठीक है? उनका यह कथन है कि श्रेणी-में साहित्य-कला तथा अन्य कलाएं श्रेणी-हितों को प्रतिबिम्बित करती है। क्या भारतीय दर्शन-साहित्य, उपनिषद् साहित्य आदि काव्य-साहित्य पर घटित होता है? भारतीय दर्शनों का साहित्य किस श्रेणी के हित को दरसाता है? क्या ब्राह्मण श्रेणी के? कदापि नहीं। ईस, केन कठ आदि उपनिषद् ग्रन्थों का साहित्य किस श्रेणी के हित का प्रतिबिम्ब या समर्थक है? रामायण क्या क्षत्रिय-श्रेणी के हितों का उन्नायक ग्रन्थ है? जिसका मस्तिष्क यथास्थान है वह तुरन्त देख लेगा कि मार्क्स, ऐंगल्स, लेनिन का वह पक्षावलम्बी सिद्धांत भारतीय-साहित्य की इन धाराओं पर लागू नहीं होता।"

'नवीन' जी ने साहित्य के उद्देश्य-निर्धारण के साथ संस्कृति का भी सुन्दर विवेचन किया। आपने कहा कि रासायनिक निर्मित संस्कृति, जैसे युद्ध-कला के रूप में प्रकट संस्कृति, मानवता के लिए संकट रूप सिद्ध हो रही है। तब, संस्कृति क्या है? वस्तुतः संस्कृति गांधी है, संस्कृति विनोबा है, संस्कृति तुलसी सूर, ज्ञानदेव, समर्थ तुकाराम हैं, संस्कृति अणुव्रत-प्रचारक जैनमुनि आचार्य तुलसी हैं। संस्कृति रमण महर्षि हैं। संस्कृति है आत्मविजय, संस्कृति है राग-वशीकरण, संस्कृति है भावउदात्तीकरण। जो साहित्य, मानव को इस ओर ले जाए, वही

सत्-साहित्य है। श्री 'नवीन' ने साहित्य और संस्कृति के इस सुन्दर विवेचन के साथ बीच-बीच में हास्य का पुट दे जनता को जिस प्रकार हँसाया और सरसता कायम रख उसे मन्त्रमुग्ध रखा, वह उन्हीं की कला थी और साहित्य और संस्कृति के उनके विवेचन की राजर्षि टण्डनजी ने भी सम्मेलन के अंतिम दिन के अपने भाषण में सराहना की।

साहित्य-सृजन के लिए आवश्यक गुण !

श्री नवीन ने कहा—"किसी भी साहित्य-स्रष्टा की कृतियां, यदि वे मानव को ऊँची उठाने वाली हैं, तो अमर होंगी। साहित्य-सृजन करने वालों में किन-किन गुणों का होना आवश्यक है? इस प्रश्न का उत्तर किंचित् कठिन है। भिन्न-भिन्न रूप से विचार करने वाले जन इसका उत्तर भिन्न-भिन्न रूप से देंगे। मेरे मत में साहित्य-स्रष्टा के लिए इन गुणों का प्राप्त करना नितांत आवश्यक है—१. स्वाध्याय, २. कल्पना शक्ति, ३. शब्द सामर्थ्य. ४. मानव-स्वभाव का अध्ययन, ५. यथातथ्य ग्राह, ६. कला सौष्ठव, ७. स्थिति सृजन शक्ति, ८. जीवन-चित्रण सामर्थ्य, ९. समाधि सामर्थ्य।

स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !

श्री० मदनलाल जोशी शास्त्री "साहित्य-रत्न"

स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !
नव रसाल मृदु मधुर मंजरी, अमिय धार बरसाती,
पिकी पूर्ण पीयूष पान कर, नित नव तव गुण गाती।
स्मित सुमनों का रस ले लेकर, हुआ गुंजरित मधुप समाज!
स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !
सुखद मलय के मन्द पवन की शीतल गन्ध सुहाती,
तृषित चातकी पी पी पी कर प्रिय को पास बुलाती।
उधर पपीहा लेकर कर में प्राण साधनारत है आज!
स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !
नील गगन का निर्मल चन्दा, और चाँदनी भाती,
कोमल कांत कुरंगी मोहक मृग के पीछे जाती।
मधुर बीन की स्वर लहरी में, झूम रहा है रसिक समाज,
स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !
प्रणय-कुंज में मन-मयूर हो मन्त्र-मुग्ध इठलाता,
पीली सरसों के खेतों में श्याम शस्य लहराता।
पँचरङ्गी-पट-परिवेष्टित हो, आए सुखद सजाकर साज
स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !
मन-वीणा के तारों की झङ्कार हुई मनहारी,
स्नेह सिन्धु में डूब रहा जग, तन मन कर बलिहारी।
गुन-गुन कर नव-गीत निराले, करता है स्वागत तव नीरज
स्वागत हे प्रियवर ऋतुराज !

भारत और भारतीय-साहित्य का आत्म्यैक्य !

"भारत की जो आत्मा है वही भारतीय-साहित्य की आत्मा है। आर्थिक व सामाजिक विषमता, खाने-पीने विषयक अनेकता, राजनैतिक एकाधिपत्य का अभाव आदि के रहते हुए भी हमारा यह भारतवर्ष सदा से प्राग् ऐतिहासिक काल से एक राष्ट्र रहा है। इस सिद्धांत के अंदर में अधिक कहना व्यर्थ है। इस बात को अभी इतिहास-पंडित एवं सांस्कृतिक-धारा में अवगाहन करने वाले विद्वान् स्वीकार कर चुके हैं। अब देखना यह है कि वह, क्या [illegible] है, वह कौनसा तत्व है जो इस विभिन्न वेश-प्रदेश वाले राष्ट्र में एक राष्ट्रीयता का द्योतक है।"

इस प्रकार श्री० नवीनजी का सारा भाषण साहित्य और तत्व-विवेचन से पूर्ण है। किन्तु श्री० नवीनजी से मुझे यह आशा करना चाहिए थी कि वे अ. भा. हि. साहित्य के संगठन, कार्य विस्तार, आर्थिक-व्यवस्था आदि की दृष्टि से हमारी स्थिति और समस्याओं को सामने रख कुछ बतलाएँगे, पर वे प्रगतिवाद के खंडन-मंडन में उलझ कर ही रह गए। अ. भा. के लिए यह प्रगतिवाद की व्याख्या-विवेचना कुछ महत्वहीन प्रतीत होती थी। आखिर तो

यह था कि वे अपने जन्म और क्रीड़ास्थल के साहित्य-साधकों की समस्याओं को समझने सुलझाने की सूचना देते, साहित्यिक-प्रगति के लिए पथ-प्रदर्शन करते, प्रेरणा देते। पर सम्भवतः उनकी 'अपलक' की भूमिका को लेकर जो अन्यत्र विवाद उठ खड़ा हुआ है, उसका प्रभाव ही सम्मेलन के इस सारे भाषण पर अधिक पड़ गया है। यही कारण है वे स्थानीय प्रांतीय-समस्याओं को उपेक्षित कर उसी में प्रवाहित हो गए। अवश्य ही सम्मेलन के स्वागत प्रमुख और सम्मेलनान्तर्गत साहित्य-परिषद् के स्वागत प्रमुख के भाषणों में नवीनता है, उपयोगी सुझाव हैं, कार्य-दिशा की ओर इंगित भी है। श्री० मिलिन्दजी का भाषण हमें अधिक ठोस और सूझ से भरा हुआ लगा। सम्मेलन में राष्ट्रकवि का आगमन अवश्य महत्वपूर्ण हो गया। कवि सम्मेलन भी कविवर श्री दिनकरजी की प्रधानता में सफल सम्पन्न हुआ। मा. श्री. टण्डनजी ने इस समारोह के समय आकर इस साहित्यिक-आयोजन को अनुप्राणित ही कर दिया। जो भी हो ग्वालियर का यह साहित्य-समारोह यशस्वी बन गया। दीर्घकाल के पश्चात् सम्मेलन का यह नव-जागरण साहित्यिकों को प्रेरक, प्रगतिप्रद, प्रोत्साहक बने यही कामना है।

और लखनऊ की विज्ञान-परिषद्!

दूसरी जनवरी को लखनऊ में विज्ञान-परिषद् का अधिवेशन हो गया। इसमें लगभग देश-विदेश के १६०० प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे, और प्रधानमन्त्री नेहरूजी ने इसका उद्घाटन किया। इस समय स्व० बीरबल साहनी की स्मृति में मृत-वनौषधि विज्ञान-शाला का भी उदघाटन किया गया। यह वनौषधियाँ हजारों–लाखों–करोड़ों वर्षों की कही जाती हैं, जिनसे हमारी किसी पीढ़ी का कोई रिश्ता नहीं। उसको देख कर पण्डितजी ने कहा था कि —'एक ऐसा संग्रहालय भी बनाया जाए जो जीवित मानवों के लिए भी हो'। इसी विज्ञान-शाला को देखकर उत्तर-प्रदेश के गवर्नर मा० मुंशीजी ने जो विचार व्यक्त किए हैं, वे बड़े महत्व और तथ्य प्रदर्शित करते हैं। मा. मुंशीजी ने कहा है–

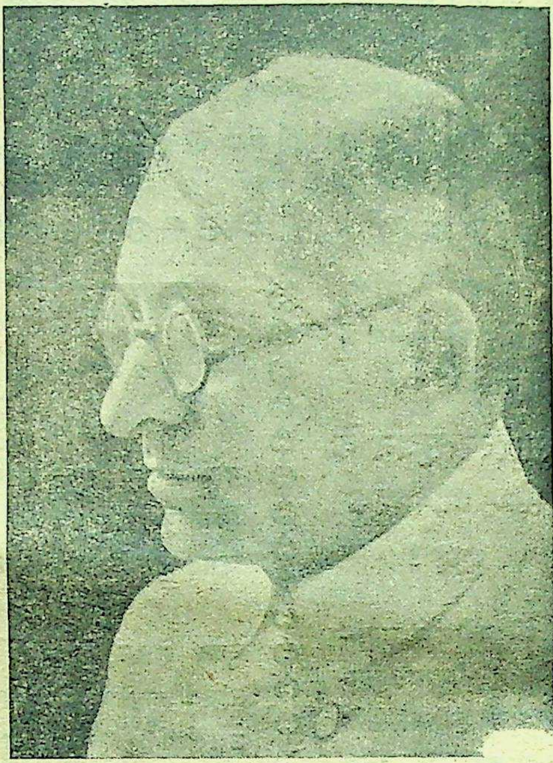

श्री के० एम० मुन्शी

"जब मैंने इस प्रभावशाली संस्था को अपने सामने देखो तो शायद पहली बार मुझे भास हुआ कि यह संस्था किस प्रकार अपनी अलग दुनिया में निवास करती है—भारतीय जीवन के वायुमण्डल से बिना कोई सरोकार रखे, ठीक उस तरह की दुनिया में जिसका निर्माण ऋषि विश्वामित्र ने विशेष-रूप से राजा त्रिशंकु के लिए किया था। और तब राजा त्रिशंकु अधर में लटक रहा था—देवताओं ने उसे स्वर्ग में नहीं आने दिया और विश्वामित्र उसे पृथ्वी पर लौटने से रोके रहे।

"इस वैज्ञानिक-संसार का वायु-मण्डल पश्चिमी है, पूर्णतः विदेशी-आयुर्वेद, गणित और रसायन-शास्त्र के उस संसार से बिलकुल भिन्न जिसका विकास हमने भारत के गौरवशाली अतीत में किया था। यह संसार बिलकुल एक अजनबी की तरह चलता फिरता है जैसे कि कोई भारतीय टोप लगाए और फ्राक-कोट पहने खादी के कपड़ों वाली भीड़ के बीच दिखाई दे। इसका जन्म पश्चिम में एक असहिष्णु गिरजे (ईसाइत) के धार्मिक और आध्यात्मिक अधिकारों के विरुद्ध बगावत के रूप में हुआ। स्वभावतः उसके अन्दर उन सब चीजों के विरुद्ध एक कट्टर असहिष्णुता घर कर गई जिनका गिरजा हामी था।

और जब वह (वैज्ञानिक संसार) यहां आया तो अपने साथ उन सब मनोवृत्तियों को भी लेता आया जो उसके साथ जन्म से चिपटी हुई थीं।

भारतीय विज्ञान की पूर्णता !

"भारत में प्राचीन-काल में विज्ञान अपने जन्म से ही सम्पूर्ण ज्ञान का एक अभिन्न अंग रहा है--सौरमण्डल के एक ग्रह की भाँति जो निकटस्थ मानसिक एवं आध्यात्मिक कक्षाओं में घूमता रहता है। विज्ञान तब मनुष्य की उच्चतर लक्ष्य की ओर प्रगति का अंग था उसका ध्येय पूर्ण सत्य की खोज था; जीवन, मन और आत्मा उसके अभिन्न और अन्योन्याश्रित तत्त्व मात्र थे। स्वभावतः नम्रता की भावना में उसका विकास हुआ और उसने तर्क-बुद्धि की मर्यादाओं को स्वीकार किया।

"पश्चिमी विज्ञान, जैसाकि मैंने बताया, विद्रोह की सन्तान है, इसलिए उसका दृष्टिकोण एकांगी रहा। भौतिक अस्तित्व ही उसका एकमात्र कार्यक्षेत्र रहा। उसके लिए प्रकृति अन्धशक्तियों की क्रीड़ा थी। ईश्वर के लिए जो केवल आंतरिक अनुभूति का विषय है और बाह्यज्ञान से उसे नहीं पहचाना जा सकता, उसकी कार्य-योजना में कोई स्थान नहीं।"

यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक-दृष्टिकोण में असहिष्णु-भावना विद्यमान है। मुंशीजी के शब्दों में--'यदि विज्ञान खुला दीमाग होता तो वह देखता जैसाकि ऋषियों और कवियों ने देखा है कि व्यक्तित्व में आत्मा का समावेश होता है, व्यक्तित्व का जन्म मन से होता है, और जीवन में मनका समावेश होता है एवं पदार्थ में जीवन का, अतः आत्मा सब में निवास करती है। केवल भेद इतना ही है कि विभिन्न स्तरों पर उसका स्वरूप भिन्न हो जाता है।'

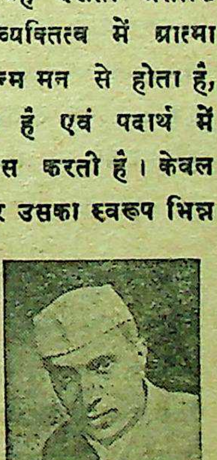

विज्ञान-परिषद् में पण्डित नेहरूजी ने 'वैज्ञानिक सम-स्वभाव' की व्याख्या तो की है, पर उन्होंने यह नहीं बतलाया कि उसकी मूल-प्रेरणा किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है। पण्डितजी के लिए यह सरल भी नहीं, क्योंकि उनका चेतन मस्तिष्क--जो बाहरी पश्चिमीवाद से भरा हुआ है,—विज्ञान की सराहना करता है, किन्तु उनकी आत्मा उसमें कुछ कमी अनुभव करती है, और सम्भवतः इस द्विविधा को वे समझते भी हैं। वस्तुतः यह सम-स्वभाव बिना मानवीय-मूल्यों के विकास किए किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है? और मानवीय-मूल्यों को बिना आध्यात्मिक-शक्ति के योग से कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मुंशीजी से पण्डितजी ने स्वीकार किया है कि--'वे गांधीवाद की व्याख्या तर्क या दर्शन से नहीं कर सकते' वे केवल गांधीजी के भावनात्मक-रूप से ही प्रभावित हैं।

मुंशीजी ने इस पर पण्डितजी के स्वरूप का संक्षेप में जो चित्रण किया है वह बहुत यथार्थ है--वे कहते हैं--

"यहीं तो हमारे पण्डितजी आश्चार्य-पूति बन जाते हैं--पश्चिमी हवाओं से बजने वाली भारतीय वंशी। उनका मानसिक-दृष्टिकोण बाहर की दुनिया को लुभाता है और उनकी अर्ध-चेतन प्रेरणाएँ भारतीय प्रेरणाओं के अनुकूल हैं। वह हमारे देश के सर्वाधिक सुसंस्कृत व्यक्तियों में हैं। लेकिन अजीब बात है कि सांस्कृतिक-उत्थान की बातों से उन्हें नफरत है। वह आत्मा की बात करते हुए कतराते हैं। वस्तुतः वह अपने को अपमानित समझेंगे यदि उन्हें कोई 'आध्यात्मिक व्यक्ति' कहे। लेकिन फिरभी उनका जीवन, उनका दृष्टिकोण और आदर्शवाद सब आध्यात्मिक-पुट लिए हुए हैं। उनका जीवन एक समर्पित जीवन है। उन्होंने उसे उच्च आकांक्षाओं के प्रति समर्पण कर दिया है। वह सच्चे अर्थों में एक कर्मयोगी हैं। "सब कुछ भगवान के लिए--" यही भावना तो है, चाहे उसे जिस नाम से पुकारो। लेकिन वह ऐसी भाषा का कदाचित् ही उपयोग करें।

"किन्तु हिमालय का समीर भी बहने लगा है। कम से कम पण्डितजी के हाल के भाषणों से जो उन्होंने सांची और गांधी-गोष्ठी में दिए, उनसे तो यही संकेत मिलता है। कदाचित् उसके फलस्वरूप और भी मधुर तान छिड़ जाए। ऐसा होने पर उनकी न केवल प्रशंसा और आदर होगा बलिक उसकी गूंज से भारत के अनमिनत हृदयों से वैसी ही तान प्रतिध्वनित हो उठेगी।"

हम भी प्रा० मुंशीजी के स्वर में स्वर मिला कर यही कामना करती है।

जब तक आध्यात्मिक-शक्ति का विकास न हो, तब तक समर्पित जीवन के लिए संचालिका शक्ति प्राप्त नहीं हो पाती। उच्चध्येय की प्राप्ति के लिए उस शक्ति का विकास आवश्यक है। तभी समस्त प्रयत्नों में सुसंस्कृत-भावना प्रविष्ट होती है, वही भावना वास्तविक-परिणाम प्रकट कर सकती है, किंतु इसलिए जिस श्रद्धा की आवश्यकता है वह तो विज्ञान ने विनष्ट कर दी है। मुंशीजी ने विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को लक्ष्य करते हुए कहा है आजकल के हमारे अध्यापकों में बहुत कम आस्था है, और इस आस्था को दूसरों में भरने की कला तो और भी कम हो जाती है। वे उन लोगों की सन्तान हैं जिन्हें आस्था थी। लेकिन पिछले तीस वर्षों में उन्होंने एक जीर्ण बुद्धिवाद के नास्तिक सन्देह ही विरासत में पाए हैं। यही वैज्ञानिकी सफलता है। उन्होंने भौतिक एवं सामाजिक विज्ञानों को मानवीय प्रगति का अंतिम उद्देश्य मान लिया। प्राचीन काव्य और साहित्य की उपेक्षा की गई, धार्मिक विश्वासों की खिल्ली उड़ाई गई और धार्मिक साहित्य के अध्ययन को अहम्मन्यता-पूर्वक परला झाड़कर अलग कर दिया। स्वभावतः आधुनिक अनुसंधान को क्रमशः कवियों और ऋषियों की दृष्टि से वंचित कर दिया गया। इसके फलस्वरूप सच्ची शिक्षा का आधार बिलकुल ही उलट-पुलट गया है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकसित करने का लक्ष्य बिलकुल भुला दिया गया।"

नवीन नृत्य-नाटक-एकादमी !

भारत सरकार ने जिन साहित्य-संगीत और कला सम्बन्धी तीन 'एकादमी' के प्रारंभ करने का संकल्प किया है, हाल ही में उन संकल्पित संस्थाओं में से एक कला-एकादमी ' का आरंभ किया है, हम सरकार के इस शुभारंभ के लिए बधाई देते हैं, साहित्य राष्ट्र का जीवन है, संगीत-और कला उसके प्राण, अब तक कोई सरकार इस दिशा में सजग न बने, इनकी उन्नति में उपेक्षा करती रहे, उसकी सभ्य उपलब्धियां जीवन-और प्राण हीन रह जाती हैं। यह संतोष की बात है कि सरकार इस ओर ध्यान देने जा रही है, परंतु इस संस्था का उद्घाटन करते हुए जैसा कि हमारे राष्ट्रपति ने संकेत किया है, यह आवश्यक है कि कला को सरकारी नियंत्रण से प्रभावित नहीं होने दिया जाएगा। सरकार या साहूकार के अंकुश में रह कर 'कला' कला नहीं रह जाती, उसे तो स्वतंत्र रह कर ही विकसित होना चाहिए, लाल रंग के चक्कर में चढ़ कर जिस प्रकार रूसी-कला लेनिन-स्तालिन तक 'लिमिटेड' बन गई, उसी तरह 'लाल फीते' में से उसे बचाना होगा, सरकार ने उसके संचालन के लिए आर्थिक भार भी स्वीकार किया है, पर वह कला के लिए 'भार' न बन जाए, इसकी सावधानी मनस्वी कलाकारों को रखना है, राष्ट्रपति ने यह चेतावनी भी दी है कि कला की विभिन्न शैलियों को विनष्ट कर, या परिवर्तन कर एकता का प्रयास न किया जाय, उनकी विभिन्नता में भी एकता साध्य हो सकती है, परिवर्तन से तो उनकी स्वतंत्रता, अस्तित्व और विकास ही अवरुद्ध हो जाएगा। हां, कला के नाम पर अश्लीलता, या उच्छृंखलता को पोषण न मिले, अन्यथा आज चलचित्रों की कला ने समाज में जिस विकृति को पोषित-प्रचारित किया है वह कितना हानिकारक हो गया है, यह आज बतलाने की आवश्यकता नहीं।

अध्यक्ष-पद से मौलाना आजाद ने कला-और संस्कृति की चर्चा करते हुए संगीत, नाटक, नृत्य के इतिहास विकास आदि का संकेत किया, और भारतीय-संस्कृति की संग्रहशील परम्परा की चर्चा भी की। मौलाना ने उक्त एकादमी को स्वतन्त्र-संस्था की तरह काम करने की सुविधा देने का आश्वासन दिया। कला-एकादमी के उद्देश्य इस प्रकार हैं--

(१) भारतीय नृत्य, नाटक और संगीत सम्बन्धी गवेषणा के कार्य को बढ़ाना और इसके लिए एक पुस्तकालय और एक अजायबघर की स्थापना करना। (२) नृत्य, नाटक और संगीत की प्रणालियों को सुदृढ़ बनाने के विचार से प्रादेशिक-स्तर पर विचार विनिमय को प्रोत्साहन देना। (३) जहां आवश्यक हो वहां नाट्य-केन्द्र स्थापित करना। (४) नाट्य-कला के विभिन्न अंगों की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहन देना। (५) भारतीय नृत्य, नाटक और संगीत सम्बन्धी साहित्य का प्रका-

दान करना। (६) विभिन्न-प्रदेशों में लोक-नृत्य और लोक-संगीत के विकास को प्रोत्साहन देना। (७) नृत्य, नाटक और संगीत सम्बन्धी अखिल-भारतीय उत्सव आरम्भ करना और प्रादेशिक उत्सवों को प्रोत्साहन देना। (८) नृत्य नाटक और संगीत को प्रोत्साहन देने के लिए अखिल-भारतीय पर्व मनाए जायेंगे। (९) नृत्य, नाटक और संगीत के उच्चकोटि के कलाकारों को पुरस्कार और सम्मान देकर मान्यता प्रदान करना तथा (१०) नृत्य, नाटक और संगीत के क्षेत्र में अन्य देशों से सांस्कृतिक-विनिमयों को प्रोत्साहन देना।

यदि इस नव एकादमी ने उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वतंत्रतापूर्वक प्रगति की, और विकास सुलभ किया तो हमें विश्वास है कला के क्षेत्र में हमारा राष्ट्र अवश्य अपनी महत्वपूर्ण प्रगति साध्य कर सकेगा। सरकारी सहयोग प्राप्त करके भी कलाकार अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखते हुए इस संस्था के लक्ष्य का आदर्श प्राप्त कर सके तो कला का भविष्य उज्वल बन सकता है।

संस्था का नाम 'एकादमी' रखा गया है। इस यूनानी शब्द के बहु-प्रचारित और विदेशों में ग्रहीत हो जाने के कारण बड़े मोल-तोल के बाद और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा को मान्य करते हुए भी अपने जामे को पहना कर संस्था से जुड़ा दिया है। एक यूनानी शब्द से मौलाना का मोह होना स्वाभाविक है। किसी 'परिषद्' से प्रेम करने के लिए पन्द्रह साल की अवधि भी तो पड़ी हुई है!

उज्जैन में यह नृशंस हत्या!

उस दिन उज्जैन के मध्यवर्ती बाजार में ठीक चहल-पहल के समय (तीन और चार के बीच) श्री नन्दकिशोरजी आचार्य एडवोकेट की आसन्न-प्रसवा युवती-पत्नी और दो बालिकाओं की जिस निर्दयता—पाशविकता और क्रूर अमानुषिकता के साथ हत्या करदी गई उससे सारे नगर में रोष—भय और असुरक्षा की भावना फैल गई है। इस हत्या के पीछे कौनसी मनोवृत्ति और कौनसे कारण काम कर रहे थे, यह अभी बतलाना कठिन है। किन्तु एक युवती और दो कोमल बालिकाओं की जिस प्रकार निर्मम हत्या की गई उससे सभी के हृदय हिल गए हैं। हत्याओं के कारण चाहे जो हों--स्वार्थपरक या वैयक्तिक, किन्तु ऐसे क्रूर-कर्म के लिए प्रोत्साहित होने में शासन की शिथिलता और असफलता ही हम प्रधान मानते हैं। प्रभावहीन शासन की सारी मशीनरियां शिथिल हो जाती हैं, निष्क्रिय बन जाती हैं। पुलिस—प्रमुख अधिकारी और न्याय-विभाग में उसी शिथिलता की प्रतिक्रिया हो रही है। आज गुण्डों--बदमाशों--अनैतिक अपराधियों पर शासन का कोई आतंक नहीं रह पाया है। स्वाधीनता के बाद जनतंत्र का लाभ जितना इन तत्वों ने उठाया है, उतना शायद ही और ने उठाया हो। वैयक्तिक स्वाधीनता जिस तरह इन अवांछित-तत्वों के लिए वरदान हुई उतनी ही सभ्य समुदायों के लिए निष्क्रियता का कारण बन गई है। समाज के सभी धन्धों में गुण्डागिरी पोषित हो गई है, इसका फायदा भी उन्हीं को मिला है। जिस शासन या समाज में शिथिलता बढ़ गई हो, वहां अनैतिकता और उच्छृंखलता का सिर उठाना स्वाभाविक हो जाता है। अनुभवहीन शासकों के हाथों में सूत्र चले जाने के कारण, अनावश्यक और परस्पर विरोधी नियमों के कारण जन-सहयोग की निरन्तर दुहाई देते रहने से वास्तविकता के विरुद्ध जिस भ्रांत-भावना ने जन्म लिया उसने आतंक को आक्रमित कर लिया। पुलिस की स्थिति कठिन हो गई, जनता शासन और उनके अस्तित्व में खींचातानी होने लगी। पुलिस को 'सेवक' बनने की सीख ने--उसके आतंक को अवरुद्ध कर दिया। गुण्डों को आतिथ्य या स्वागत करके भ्रातृ-भावना से दुरस्त नहीं किया जा सकता, न उसके 'कर्म' को स्वीकार करवाया जा सकता है। यदि उसे दण्ड का अधिकारी बनाया जाता है तो पुलिस के अत्याचार की शिकायत पत्रों से लेकर प्रधान तक पहुंचती है। कोई न कोई पार्टी-दल उसकी सहायता के लिए सन्नद्ध बन जाता है, और शासन शिथिल बन जाता है। जब इस दशा से अधिकारी अकर्मण्य बनता है तो भी पत्रों में, प्रचारों में उसकी आलोचना की जाती है। वह दोनों ओर से दब कर समय के अनुसार अपनी सर्विस चलाने को सयत्न बन जाता है और परिणाम यही होता है कि गुण्डाई बढ़े। हम उन अधिकारियों की वकालत यहां नहीं कर रहे हैं, जो अपनी ईमानदारी को छोड़, इस शासकीय-शिथिलता का लाभ ले, कर्तव्य से च्युत बन स्वार्थ साधने में सन्नद्ध हैं, पर हम उस दशा को दूषित

कर रहे हैं जिस कारण यह गुण्डा-तत्व पनप रहा है, और शासन की शिथिलता से समाज में अपना आतंक बढ़ा रहा है पुलिस या अधिकारी तो ठीक, सारा शासन ही आज गुण्डों से प्रभावित हो जर्जर बन रहा है। आज सारे समाज की दृष्टि से शासन की शिथिलता, प्रभावहीनता, कटु-आलोचना का विषय बन रही है। समाज के गुण्डातत्व को छोड़ सभी को अपनी सुरक्षा की आशंका है, अविश्वास है। जब तक यह भावना, यह शिथिलता, यह दुष्प्रभाव जड़ से न हटाया जायगा शासन की सफलता संदिग्ध है। स्वाधीनता के उच्च तत्वों को जानकर उसकी उत्तमता को स्वीकार करने वाले समझदारों का वर्ग थोड़ा है, किन्तु उसका अनुचित लाभ लेकर अराजकता को पोषित करने वालों का समूह बहुत विस्तृत है। इस समूह के द्वारा उछृंखलता पनप रही है और वह उछृंखलता परिस्थितियों के साथ अत्याचार को प्रोत्साहित कर रही है। शासन अपनी जोड़-तोड़ और कुर्सियों की खींचतान में व्यस्त रह कर अनुभवहीनता के कारण बराबर अपना प्रभाव खोता जा रहा है, शासन की शिथिलता को अनजाने ही वेग से बढ़ावा दे रहा है। उज्जैन की हत्या ही नहीं, अन्य अनेक हत्याएँ, लूट-खसोट, डाकेजनी, ब्लेक–बाजारी, भ्रष्टाचारी आदि इसीके परिणाम हैं। शासन इसके लिए समय पर ही तत्पर नहीं हुआ तो एकदिन यह अराजकता को आमंत्रित कर लेगा, इसमें आश्चर्य का कारण नहीं।

उज्जैन की दिन-धौले बीच बाजार में हुई हत्या प्रकम्पित कर देने वाली हो गई है। सारे नगर में उसकी तीव्र प्रतिक्रिया है, उसकी हर घर चर्चा है। अवश्य ही उस वीर-युवती की प्रशंसा की जा रही है, जो प्राणों पर आ जाने पर अपनी शक्ति-भर उन नर-पशुओं से जूझती रही, और बलि देने को बाध्य बन गई। सभी हृदय रखने वालों को यह पीड़ा टीस उठा रही है कि किस क्रूरता से दो कोमल-कलियों को राक्षसों ने निर्दयतापूर्वक कुचल डाला! सभी समझदार नागरिकों की सहसा सहानुभूति उस परिवार से है जिस पर यह कहर टूट पड़ा। फिरभी यह पीड़ा व्यक्ति से ऊपर उठ कर सारे नगर की बन गई है, सारा नगर व्यथित है, आतंकित है और शासन की शिथिलता पर विषण्ण भी!

मालव लोक साहित्य-परिषद् और व्यर्थ भ्रम-भावना!

मध्य-भारत साहित्य-समिति की मुख-पत्रिका—'वीणा' के नवम्बर वाले अंक में 'मालवी कवि-सम्मेलन और जनपद आंदोलन' नामक सम्पादकीय-टिप्पणी लिखी है, उसे पढ़कर हमें दुःख हुआ। मालव लोक साहित्य-परिषद् के कार्य और मालवी कवि सम्मेलन के आयोजन को भ्रांत, अस्पष्ट और न जाने क्या २ समझ एक नई भ्रांति उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। लोक-साहित्य परिषद् के उद्देश्य बहुत स्पष्ट हैं, उसका अपना दायरा है। वह न तो वर्तमान विकृत-राजनीति से प्रेरित है, न उसका भाषावार-प्रांत बनाने से ही सम्बन्ध है। वह विशुद्ध मालवी लोक-गीत, साहित्य कला और मालवी-भाषा की चेतना एवं उसके द्वारा संस्कृति––साहित्य की दिशा में प्रयत्नशील है। उसे सजग बनाने, अनुराग जाग्रत करने के लिए ही कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उसे अभिनव मानकर उसकी सफलता से कुछ क्षेत्रों में सन्देह ने जन्म लिया है, किन्तु वह सर्वथा निरर्थक है। श्री० अग्रवालजी तथा राहुलजी की किसी योजना से परिषद् न तो सम्बन्धित है,—न अनुप्राणित ही। मालवी भाषा का अपना स्वतन्त्र और पुरातन इतिहास है। हजारों वर्षों स 'आवन्ती' का अस्तित्व रहा है, और उसका अपना साहित्य भी, किन्तु उसका स्रोत इधर उपेक्षा से सूखता जा रहा है, उसका इतिहास अज्ञात हो चला है। अवश्य ही उसमें प्राण अवशेष हैं, संस्कार सुलभ हैं। उसी की खोज और अध्ययन की भावना से परिषद् का जन्म हुआ है, और यही उसका कार्य-क्षेत्र है। परन्तु आज किसी योजना या कार्यों के आरम्भ में कोई न कोई राजनैतिक-उद्देश्य या नेतृत्व की गन्ध ली जाती है। किन्तु हमें विश्वास है परिषद् उन भ्रांतियों से सर्वथा दूर रह कर अपने कार्य से यह प्रमाणित कर देगी कि वह विवादों से असम्बद्ध है। भ्रम, अस्पष्टता और असंगति को उसमें कहीं स्थान नहीं है। 'असंगति'यों की 'योजना' को परिषद् ने कोई आधार बनाया ही नहीं है, न 'पुनरुत्थानवादी स्वर' ही परिषद् के प्राण में प्रविष्ट हो सकता है। उज्जैन को राजधानी बनाने की जिस समस्त सुचिन्तकों की सूचना

को राहुलजी ने उच्चारित किया है, उसको चाहे इन्दौर के 'हठाग्रह' ने न माना हो, प्रचार पार्टी-प्रपंच के बल पर उपेक्षित किया हो, पर वह अतीत के इतिहास के स्पष्ट साक्ष्य से स्वयं प्रमाणित है। उज्जैन की महत्ता को अस्वीकार कर देने से असंस्कृत-मन को भले ही क्षणिक-शांति मिल जाती हो, पर गणतन्त्रों की परम्परा को प्रतिष्ठित करने वाले मालव और अवन्ती को उपेक्षित करके उन्होंने पुनरावर्तनशील इतिहास के प्रति अपराध ही किया है। सांस्कृतिक परम्परा की प्रतिष्ठा को ठुकरा दिया है, यह सत्य है। तथापि उस 'राहुल-सूचना' का लोक साहित्य-परिषद् की विचार और कार्यधारा से किंचित् भी सम्बन्ध नहीं रहा है—न है। फिर 'मूल प्रसंग' 'जनपदीय योजना' से सहमति--असहमति का सवाल ही व्यर्थ हो जाता है। विक्रम आरम्भ ही से समस्त देश की राजधानी उज्जैन बनाने की चर्चा करता आया है। उसने ऐतिहासिक, साँस्कृतिक, सुरक्षा, जलवायु, भौगोलिक आदि सभी दृष्टियों से तर्क प्रस्तुत किए हैं और जब मध्यभारत की राजधानी का प्रश्न प्रस्तुत हुआ—तबभी 'जनपद' के लिए नहीं, समस्त प्रदेश के लिए--उसका महत्व व्यापक-दृष्टि से बतलाया है, इसी सिलसिले में राहुलजी के मत को भी उद्धृत किया गया है, और यही कारण है कि राहुलजी के दूसरे (जनपदीय) विचारों का कोई समर्थन नहीं किया गया, किन्तु उनके विचारों को उद्धृत कर देने से ही भ्रम की सम्भावना समझ ली जाती है तो आश्चर्य होता है। फिरभी राहुल के उद्धरण से परिषद् को जुडाना तो सर्वथा निरर्थक है। 'मालव जनपद की मांग' के लिए ही उसकी साहित्य--संस्कृति की जागृति की जाना अपेक्षित है? यह तर्क ही विचित्र है। पं० नेहरूजी ने हालही में हैदराबाद के अधिवेशन में और नवीनजी ने म० भा० सा० सम्मेलन के प्रधान-पद से प्रादेशिक-भाषाओं के उन्नयन पोषण, जागरण की आवश्यकता प्रकट की है, क्या यह भी 'जनपद की मांग' के लिए ही कही जा सकती है? 'किसी बोली को भाषा में परिवर्तित किया जा सकता है?' इस प्रश्न का उत्तर तो संविधान द्वारा स्वीकृत सिंधी और काश्मीरी से मिल जाता है, जो विभिन्न लिपियों में लिखी जाने पर भी--अपनी उनकी भाषा के होने न पर भी--भारत-सरकार ने स्वयं उन्हें पृथक्-भाषा मान कर स्वीकृत किया है। यह प्रश्न भारत-सरकार से पूछा जाए तो उत्तम होगा। परिषद् ने अब तक यह आग्रह नहीं किया है, न विचार ही है। पर मालवी को जागृत करने, लोकप्रियता बढ़ाने और उसके प्रति उपेक्षा को हटाने का ही प्रयास किया है। अपनी बोली, उसके गीत, कथा, साहित्य आदि में उसके संस्कार आदि के बीज प्रच्छन्न रहते हैं, उन्हें विनष्ट नहीं होने देना चाहिए, इसीलिए प्रादेशिक भाषा–बोली आदि का विकास आवश्यक है। परिषद इसी लक्ष्य को रख कर यत्नशील बनी है। इसमें यदि कोई भ्रम भावना रखे, असंगतियां ढूंढे और अस्पष्टता अनुभव करें तो यह अपनी-अपनी समझ का ही दोष कहा जा सकता है।

कवि सम्मेलन अवश्य ही एक मौलिक और अभिनव प्रयास था, और उसकी सफलता से मालवी को करवट लेते देखा जा रहा है, प्रेरणा मिली है, यह चमत्कार अवश्य हुआ है। परन्तु पहिले दिन ही मालवी-कवियों की पर्याप्त संख्या और उनके रचना कौशल से यही प्रकट हो रहा था कि मालवी सजग है, विकासशील है। केवल उसे सुसंगठित और व्यवस्थित हो जाने की आवश्यकता है, पर इससे भ्रांत होने, चौंकने का किसी को कोई कारण नहीं है। 'वीणा' यह स्वीकार करती है कि 'लोक साहित्य' के माध्यम से लोक-जीवन का अध्ययन हो, और खूब हो साथही 'वैयक्तिक प्रयासों का मूल्य' भी 'नगण्य' मानती है, तब परिषद् के प्रयासों से उसे सामूहिक स्वरूप देने में भ्रमित बनने की तो कोई आवश्यकता नहीं, न कल्पित योजना--भावनाओं के साथ जुड़ाने की ही आवश्यकता है। लोक-साहित्य-परिषद् को किसी निरपेक्षता, सापेक्षता, वर्ग, वर्गमुक्तता या राजनीति या दल के दल-दल से भ्रमित होने का कारण नहीं है। वह मालव लोक-साहित्य, कला, संस्कृति, इतिहास, भाषा–भेद आदि के अध्ययन अध्यवसाय विकास की दिशा में ही संयत्न है। यही उसका क्षेत्र है, और आशा है उसका कार्य स्वयं ही यथा समय इन सन्देहों की दीवार को दूर कर प्रकाश में प्रस्तुत होता जाएगा। हम परिषद् को भी आग्रह करेंगे कि वे विवादों में न पड़ें, भ्रम से भयभीत न बनें, असंगतियों के आरोपों

से उत्तेजित न हों। वे साहित्य सेवा की भावना से कार्य करते रहें। वीणा के माध्यम से सुनाई देने वाले किसी स्वर से सन्देह करने का कारण नहीं, और न किसी वाणी के बाण से विद्ध ही होने की आवश्यकता है।

भगतसिंह-स्मारक ग्रंथ—

स्मृति-ग्रन्थों, अभिनन्दनों की परम्परा में निःसन्देह भगतसिंह स्मारक-ग्रन्थ सर्वथा मौलिक और ऐतिहासिक-कार्य ही होगा। जिसका आयोजन मौलिक-मति श्री० कन्हैयालालजी प्रभाकर ने किया है। स्वतन्त्रता को जिन वीरों ने सुलभ बनाया, उनकी पवित्र-स्मृति हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है। श्री० प्रभाकरजी का हम अभिनन्दन करते हैं जिन्होंने यह सत्कार्य योजित किया है।

भगतसिंह शहीदों की परम्परा में महाराणा प्रताप की तरह विभूति बन गए हैं। सारे भारत की आत्मा को प्रकम्पित कर देने वाली शक्ति की तरह वह प्रकट हुए थे। जिन दिनों उनका केस चल रहा था, जेल में से उनकी अनूदित आयरिश वीर—'डेन ब्रीन' की कथा हमें प्राप्त हुई थी और उसे प्रचारित कर हमने उन्हीं दिनों प्रच्छन्न-रूप से प्रकाशित किया था। उनको जेल से छुड़वा लेने के प्रयत्न में गड़ोदिया डकैती केस के पुरोधा श्री० स्व० विश्वम्भर उन दिनों हमारे पास ही ६ मास तक एकांत-वासी बने रहे हैं। जिन्हें पकड़ने के लिए सरकार ने लम्बे पुरस्कार की घोषणा की थी। म० भा० के कलाकार श्री० मु. स. भांड ने एक कलापूर्ण चित्र अंकित किया था, जिसमें अज्ञात हाथों द्वारा राष्ट्रयज्ञ की वेदी पर भगतसिंह बलि दिए जा रहे, बतलाए गए थे। उस चित्र का क्यॉलेंडर बनवाकर हमने प्रचारित किया था, और उसकी आय भगतसिंह-केस में स्वयं लाहौर कांग्रेस के अवसर अर्पित की थी। आगे चलकर यह कैलेंडर जप्त हुआ, और तत्कालीन ग्वालियर राज्य ने कलाकार भांड की सर्विस छीन ली थी। सहसा यह घटना इस समय भी हमारी आंखों के सामने घूम जाती है। जब इन बन्धुओं को फांसी के तख्ते पर लटका दिया, पांच रोज तक केवल पानी पर हमने अनशन किया था, यह उस वीर की शक्ति और व्यापक प्रभाव का प्रमाण है, जिसने देश के न जाने कितनों के हृदय को हिला डाला था। श्री. प्रभाकरजी हमारी उन्हीं आराध्य विभूतियों की स्मृति-पूजा का विधान कर रहे हैं, तब हमारी आत्मा उन स्वतन्त्र-भारत निर्माताओं की याद में सादर अभिवादन प्रस्तुत करती है। और प्रभाकर-प्रमुख-स्मारक सम्पादक-समिति का आंतरिक अभिनन्दन भी!

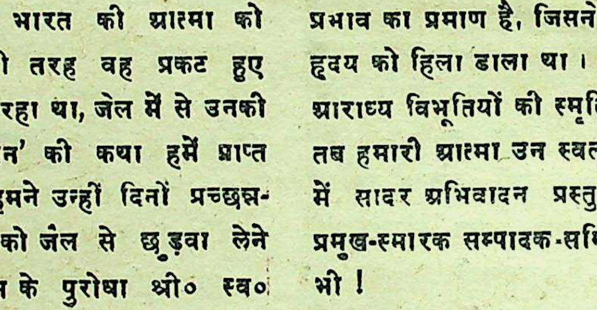

काव्य-समीक्षा

★ एक भारतीय आत्मा ★

श्री कमलाकान्त पाठक

पं. माखनलाल चतुर्वेदीजी का आधुनिक हिन्दी-काव्य के विकास में अपने ढंग का, किन्तु महत्वपूर्ण और वैशिष्ट्य-युक्त योग रहा है। भावुकता उनके काव्य-शरीर का रक्त-प्रवाह है और भावातिरेकयुक्त कल्पना-चित्र उसके शृंगार। रचना कालक्रम के अनुसार मैथिलीशरणजी उनसे ज्येष्ठ हैं और समस्त छायावादी उनसे कनिष्ठ। ज्येष्ठ और कनिष्ठ का काव्य-प्रकाशन प्रायः नियमित-रूप से होता रहा है, पर मध्यम श्री० नवीन की भाँति कवि ही अधिक रहे—राजनीतिक वातावरण में पले और बढ़े तथा साहित्यिक मनस्थितियों को उच्छ्वसित करते रहे—न उनका काव्य ही यथा-क्रम पुस्तक-रूप में सामने आया, न वे काव्य-चर्चा के प्रधान विषय ही बने। यह दोष यदि समय, स्थान और समाज का है तो कवि का भी। चतुर्वेदीजी की काव्य-प्रवृत्तियों का तो हमें यथावसर परिचय प्राप्त होता रहा पर उनका काव्य समग्र-रूप में आज तक अप्रकाशित ही रहा। इसका यह परिणाम हुआ कि हम अपने युग के एक प्रतिनिधि काव्य-निर्माता के न काव्य-गुणों की ही परीक्षा कर पाए, न उसका उचित मूल्यांकन ही।

श्री पं० माखनलाल चतुर्वेदी

'दादा' के काव्य को 'दाद' ही दी गई, उसकी आकृति-प्रकृति या रूप-गुण या सौन्दर्य की विवेचना नहीं हुई। उनके काव्य के माहात्म्य की चर्चा तो आए दिन होती रही, पर मूल पाठ का अध्ययन-अनुशीलन अथवा समीक्षा जहाँ की तहाँ मुँह मोड़े बैठी रही। चतुर्वेदीजी का काव्य कवि-गोष्ठियों में सीमित हो गया। आधुनिक होकर भी आधुनिक प्रसाधनों का वे डरते-डरते ही उपयोग करते रहे। पत्रकार होते हुए भी उन्हें या उनके काव्य-प्रेमियों को समुचित प्रकाशन-व्यवस्था से अलगाव ही रहा। यह दुर्भाग्य है---साहित्य के अध्येताओं का और कवि का। एकबार उनका समस्त-काव्य रचना काल क्रम के अनुसार प्रकाशित हो ही जाना चाहिए। कवि अपनी सामान्य रचनाएँ सम्भवतः उपस्थित न करना चाहेगा, पर वे हिन्दी के और कवि के काव्य-विकास के अध्येताओं के लिए महत्वपूर्ण सामग्री हैं, यह विस्मरण नहीं किया जा सकता।

चतुर्वेदीजी के सम्पूर्ण काव्य का प्रकाशित हो जाना इसलिए ही आवश्यक नहीं है कि उसकी समग्र रूप में समीक्षा होनी चाहिए वरन् इसलिए भी कि उससे आधुनिक काव्य के विकास को भलीभाँति समझा जा सके। चतुर्वेदीजी का ऐतिहासिक महत्व भी है। सम्भवतः हमें द्विवेदीयुग, छायावाद युग और उत्तर छायावाद युग में सर्जित उनकी काव्य-सम्पदा की परीक्षा के द्वारा आधुनिक काव्य की अनेक स्थितियों को स्पष्ट करने में सरलता जायगी। उनके काव्य की ऐतिहासिक संदर्भ में विवेचना की जानी चाहिए। छायावादी शब्द-शिल्प, रचना-प्रक्रिया, काव्य-रूप, अभिव्यक्ति-भंगिमा आदि के निर्माण में उनका क्या योग रहा है, इसे अनुमान के आधार पर ही कब तक सिद्ध किया जा सकेगा? इसी प्रकार राष्ट्र-भावना का विकास-क्रम भी चतुर्वेदीजी की दो-चार रचनाओं के आधार पर कब तक समझने का उद्योग होता रहेगा? हमारा निवेदन है कि चतुर्वेदीजी के सम्पूर्ण काव्य का प्रकाशन तथा परीक्षण आवश्यक है। सम्बन्धित व्यक्ति इस ओर ध्यान दें और अवश्य ध्यान दें।

मैं अपनी समीक्षा आधुनिक हिन्दी-काव्य में गुप्तजी के पश्चात् चतुर्वेदीजी के काव्य-विवेचन को स्थान न दे सका। इसका यह कारण कभी नहीं था कि उनका काव्य वैशिष्टय-पूर्ण नहीं है अथवा उसे प्रथम श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता। भारतेन्दु-युग अथवा द्विवेदी-युग के किसी भी कवि की काव्य-सृष्टि से चतुर्वेदीजी की भाव-प्रगल्भ प्रगीतियों की यदि तुलना की जाय तो वे परिमाण में या युग-प्रभाव अथवा ख्याति की दृष्टि से महान चाहे न देख पड़ें, परन्तु विशुद्ध काव्य-प्रकर्ष और भावुक-वृत्ति के सहज काव्याभिनिवेश की दृष्टि से उन्हें असाधारण और श्रेष्ठ कहना पड़ेगा। पंतजी की सौन्दर्य-कल्पना-शक्ति का हिन्दी में जितना सन्मान है, चतुर्वेदीजी की भावातिरेकमयी सूझों का भी महत्व उससे कम नहीं है। अन्य कवि युग-प्रवंतक हैं या विशिष्ट काव्य धारा या काव्य-मत के प्रतिनिधि हैं, पर चतुर्वेदीजी कवियों के कवि हैं; भाव-प्रगल्भ और कल्पनाशील गीतों के गायक ही नहीं, कवियों के मार्ग-दर्शक भी हैं। उनका कवि-व्यक्तित्व प्रेरणा-प्रद और काव्य-प्रभाव संक्रामक है। हिन्दी में उनके अनुवर्ती कवियों का एक समूह ही कार्य करता रहा है, पर वह काव्याभिव्यंजना की उनकी चमत्कृत वक्रता की सफल अनुकृति न कर सका। अतएव उनकी काव्य-शैली का विकास-शील समर्थ अनुकरण भी सम्भव न हुआ। उनके अनुवर्ति कवियों का स्वतंत्र विकास भी देख पड़ा। अवश्य ही जिस स्वदेश-प्रेममयी राष्ट्रीयता का उन्होंने स्वर-संधान किया, वह परवर्ती काव्य में शत-शत रूपों में प्रकट हुई। वह 'विप्लव गायन', 'हुंकार' और 'भैरवी' बनी। अधिकांश राष्ट्रवादी कवियों के विकास पथ पर उनके प्रेरक प्रभाव की छाया भी पड़ी। किन्तु राष्ट्रीयता के परवर्ती क्रांतिवादी, निराशावादी, विप्लववादी, मानवतावादी, समाजवादी, या अतीत-प्रेमी स्वरूपों को उन्होंने नहीं अपनाया। गांधीवादी होकर भी गुप्तजी की तरह वे मानवादर्शवादी नहीं हुए, उन्हें नवजागरण और स्वदेश-प्रेम ही ग्राह्य हुआ।

द्विवेदी-युग में ही जिनके काव्य में छायावादी काव्याभिव्यंजना का सौन्दर्य सुस्पष्ट होने लगा, वे चतुर्वेदीजी प्रसादजी के पूर्ववर्ती कवि के रूप में छायावादी काव्य का प्रवर्तन कार्य करते हुए 'साहित्य देवता' की अर्चना में संलग्न हुए। सन् '१५ के लगभग प्रसादजी ने जैसी काव्य रचना की है, उसकी यदि चतुर्वेदीजी की सन् '१२-'१३ की कविताओं से तुलना की जाए तो 'हिम किरीटिनी' के कवि की काव्यगत नवीनता विशेष समृद्ध और नव-नवोन्मेष शील दीख पड़ती है। चतुर्वेदीजी की भावाभिव्यंजना इतनी वक्रतापूर्ण, प्रतीकात्मक और प्रगीतिमयी है कि द्विवेदी-युग के भीतर विकसित होने वाली कोई काव्य-शक्ति उनकी समानता न कर सकी। उनका काव्योन्मेष इतना अभिनव है कि आज भी उनके प्रगीतों की असाधारणता विशिष्ट वस्तु बनी हुई है। उन्होंने निःसन्देह अपने काव्य-युग से बहुत कुछ ग्रहण किया, पर उनका कवि-कर्म इस कारण कहीं सामान्य नहीं हुआ। वह काव्याभरण ही बना रहा।

उनका काव्य सूक्तिमय कहा जाता है और भावातिरेक को इसका कारण बताया जाता है। वस्तुतः जिस आयास साध्य अलंकृति के कारण महादेवीजी के काव्य में सप्राणता का ह्रास और कला-वैभव का विकास हुआ, उसी प्रकार अभिव्यंजना वैचित्र्य पर सुकोमल आत्म-विवृति का आवरण डालने की चेष्टा के फलस्वरूप चतुर्वेदीजी के काव्य में सूझों के तंतु साधों के पदों को उलझाते रहे।

छायावादी काव्य में जीवन का वह स्पन्दन नहीं था, जो राष्ट्र भावना को आत्मानुभूति बना सकता। चतुर्वेदीजी ने बाह्य-जीवन से प्रेरणा तो ग्रहण की, पर अपनी भावुक-वृत्ति से उसे छायावादी सौन्दर्यानुभूति के समकक्ष रख दिया। उन्होंने सामयिक राजनीतिक-प्रेरणा से काव्य-पथ को ऐसा शुद्ध किया कि तत्कालीन जीवन भी केवल भाव सत्य के रूप में स्वीकृत हो सका। छायावादी-काव्य पर जीवन से असंपृक्त होकर वैयक्तिक सौन्दर्यानुभूति मात्र रह जाने का जो आरोप किया जाता है, उसका स्वयं छायावादियों की व्यापक जीवनानुभूति से खण्डन तो हो ही जाता है, परन्तु चतुर्वेदीजी की प्राणोदयकारिणी लोकनिष्ठा भी विस्मृत न की जानी चाहिए।

छायावादी अभिव्यंजना और राष्ट्रीय काव्य-प्रक्रिया में पर्याप्त पार्थक्य है पर चतुर्वेदीजी के काव्य में दोनों का समीपवर्ती और अविभाज्य सम्बन्ध स्थापित हुआ है। उन्हें प्रतिनिधि छायावादी कवि नहीं कहा जा सकता, पर

उनकी काव्य-प्रकृति में तथा छायावादी काव्य-संस्कृति में विलक्षण साम्य है। वे भिन्न प्रवृत्तियों के कवि होते हुए भी छायावादी काव्य-परिच्छद का स्वतंत्र, वैशिष्टच पूर्ण अभिनव सुप्रयोग करते रहे हैं। उनकी काव्य-भावना भी छायावादियों की मनः प्रक्रिया से अद्भुत समानता रखती है।

मुझे यह पढ़ कर आश्चर्य हुआ कि "आत्मानुभूतिमयी कविता वे (चतुर्वेदीजी) राष्ट्रीय भाव-भूमि में जब लिखते हैं तो वह रहस्यमयी हो उठती है"। चतुर्वेदीजी भावुक भक्त (आधुनिक) हैं, परन्तु वे हिम-किरीटिनी के ही उपासक हैं। प्रेमगीतों में उन्होंने लौकिक आलम्बन भी रक्खा है, परन्तु उनकी शृंगार वर्णना स्नेह का सद्भाव ही ग्रहण किए रही; वह प्रसादजी की भाँति जिज्ञासाशील भी नहीं हुई। चतुर्वेदीजी ने यत्र-तत्र अपनी वैष्णवोपासना का संकेत भी किया है। उनकी काव्य-भावना को अप्रत्यक्ष आलम्बन खोजने की आवश्यकता नहीं हुई। वह अपरोक्ष जगत् से ही सम्बन्ध बनाए रही। यह तो उनकी अभिव्यंजना शैली की विशेषता ही है, जो रहस्य का भ्रम उत्पन्न करने में सक्षम रही। प्रसादजी ने इस पद्धति को और निखार दिया।

चतुर्वेदीजी हिन्दी के प्रमुख स्वदेश-प्रेमी कवि हैं। उनका मातृ-भूमि प्रेम उपासना की कोटि में परिगणित होता है। वे स्वयं स्वातंत्र्य-संग्राम के सत्याग्रही योद्धा हैं और उनकी वाणी उत्साह का ओज भी वहन करती है, परन्तु उपदेशात्मकता उनसे कोसों दूर है; उसे तो गुप्तजी ने अपने काव्योद्यान में अभय दान दिया है। एक भारतीय-आत्मा भावुक प्रेमी और कल्पनाशील कवि के रूप में दीख पड़ते हैं। वे द्विवेदी-युग की स्वच्छन्द-प्रवृत्तियों के उन्नायक कवि हैं। देश-प्रेम, भक्ति-भाव और प्रेमार्चन की त्रिवेणी उनके काव्य में प्रायः सर्वत्र उपस्थित हुई है। प्रेमी, भक्त और योद्धा का सम्मिलित रूप उनके कवि-व्यक्तित्व का त्रिकोण है। उनका काव्य-स्रोत राजनीति की चट्टानों को फोड़ता हुआ बह निकला है। राजनीति ने कवि की भावुकता को आक्रांत नहीं किया। उससे टकरा कर कवि की संवेदना प्रखर हुई, तितर-बितर नहीं। वचन-विदग्ध कल्पनाशीलता के कारण भावातिरेक के इस कवि का काव्य सांकेतिक, सूक्तिमय और रमणीय प्रतीत होता है। इसी कारण वह दुरूह किंवा अस्पष्ट भी हो जाता है, किन्तु भाव-चित्रण की सूक्ष्म-कला भी अपना सौन्दर्य अनावरित करती है। निस्सन्देह निरालाजी या प्रसादजी की तरह हमारा कवि न शब्द-शोधन करता है न शब्द-संगीत की पहचान ही रखता है, न सूक्ष्म शब्द-चित्रों को नियोजित ही करता है। उसका कवि-कर्म अपने भिन्नत्व के कारण भी आकर्षक है।

नवीन काव्य शैली के प्रवर्तकों में चतुर्वेदीजी की परिगणना होती है। उनकी 'तर्जेबयाँ' की प्रशंसा भी की जाती है, जिसकी प्रकृत्ति विशुद्ध हिन्दी की है, परन्तु जो अपने गुणों के कारण उर्दू काव्याभिव्यंजना का भ्रम उत्पन्न करती है। उनकी पदावली छायावादियों की तरह परिष्कृत और तत्समप्रधान नहीं है; वह व्यावहारिक और मर्म-स्पर्शी है। वे काव्य भावना, काव्य-रूप और काव्याभिव्यंजना तीनों क्षेत्रों में नवीनता प्रदर्शित करते हुए हिन्दी में आए थे। उनकी काव्य-भावना जीवन के सूक्ष्म स्पन्दनों से प्रेरणा ग्रहण करती थी। वह सामयिक जीवन की संकीर्णता और प्रयोजनीयता से परिबद्ध नहीं हुई। यह उनकी विशेषता है कि वे सक्रिय राजनीति में भाग लेते हुए भी तत्कालीन प्रेरणाओं और प्रभावों से ऊपर उठकर विशुद्ध काव्यात्मक प्रगीतियों की सृष्टि कर सके।

हिन्दी की नवीन प्रगीत शैली के प्रवर्तन में उनका महत्वपूर्ण योग रहा है। उनकी भावातिशयता प्रगीत काव्य-रूप के अनुकूल थी ही। उन्होंने इस काव्य-रूप का परिष्कार भी किया। वे मुक्त-छंद की प्रगीतियों में भावाभिव्यंजना भी करने लगे। प्रगीत-शैली के प्रवर्तक के रूप में नवीनजी उनके सहकर्मी रहे हैं। किन्तु दोनों स्वदेश-प्रेमी कवियों में पर्याप्त काव्य पार्थक्य है। चतुर्वेदीजी की अपेक्षा नवीनजी का शब्द-शिल्प अधिक अटपटा और पद-विन्यास अधिक संगीतात्मक है। उनकी परुषवृत्ति का चतुर्वेदीजी के काव्य में प्रायः अभाव है। उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता को क्रमशः क्रांतिवाद और मानववाद में विकसित कर लिया है। उनके काव्य में सुपुष्ट दार्शनिकता का भी समावेश रहता है। अवश्य ही वे चतुर्वेदीजी की तरह भावुक अन्तर्वृत्ति के कवि हैं।

चतुर्वेदीजी का जीवन-दर्शन राष्ट्रीयता और प्रेमोपासना इन दो शब्दों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। वे मातृभूमि के उपासक, स्वतंत्रता के सिपाही, उपास्य के अनन्य प्रेमी और अन्याय के विरोधी रहे हैं। उनके काव्य में युग-दर्शन भी है, पर वह प्रगीतात्मकता के कारण अप्रधान ही रहा है। गांधीजी की व्यापक राष्ट्रीयता को उन्होंने वैष्णवोपासना का अभिन्न तत्व बना कर ग्रहण किया है। उन्होंने प्रेम-व्यंजना भी की है, परंतु वह स्थूल वर्णन के स्तर पर नहीं आई, क्योंकि उपासना की भावभूमि को वे छोड़ न सके। संक्षेप में, चतुर्वेदीजी की काव्य-रचना प्रगीतात्मक, वक्रतापूर्ण, वैदग्ध्यमयी और जीवनाशा से स्पन्दित है। उनकी राष्ट्रीयता विलक्षण है और उक्ति-वैचित्र्य असाधारण। वे भावुकता की अतिशयता के कवि हैं।

चतुर्वेदीजी का काव्य परिमाण में स्वल्प है और उसका प्रकाशन भी अव्यवस्थित है। अतएव उनके काव्य-विकास का अध्ययन प्रस्तुत करना दुष्कर कार्य है। यद्यपि उनके 'हिम किरीटिनी', 'हिम-तरंगिनी' और 'माता' काव्य-संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं, परन्तु इन तीनों में काव्य-विकास सम्बन्धी कोई व्यवस्था नहीं रक्खी गई। इन संग्रहों में आरम्भिक कृतियों के साथ प्रौढ़तम रचनाएं स्थान पा गई हैं तथा पूर्ववर्ती रचनाओं में पर्याप्त परिष्कार भी हुआ है। ये संग्रह भी गत दशक में ही प्रकाशित हुए हैं। इस अव्यवस्थित प्रकाशन के कारण व्यवस्थित काव्याध्ययन में बाधा होना अस्वाभाविक नहीं है। चतुर्वेदीजी के काव्य का सम्यक् विवेचन तथा उनके ऐतिहासिक-महत्व का स्पष्ट निर्देश भी इसी कारण हमारे यहां नहीं हो रहा है। परन्तु उनके असामान्य काव्य-शिल्प तथा प्रेरक कवि-व्यक्तित्व की हमारे यहाँ पर्याप्त ख्याति भी है। चिर-रुग्ण कवि की रचना-शक्ति निःसन्देह मौलिकतापूर्ण है, परन्तु वह सीमित भी है। कवि श्री दिनकर ने चतुर्वेदीजी के काव्य की व्याख्या इस प्रकार की है—

> "रेशम के डोरे नहीं, तूल के तार नहीं,
> तुमने तो सब कुछ बुना साँस के धागों से;
> बेंतों की रेखाएँ रंगों में बोल उठीं,
> गुलबदन किरण फूटी कड़ियों के रागों से!"

मैं समझता हूं यह उक्ति औचित्यपूर्ण है।

(पृष्ठ २२ का शेष)

उद्देश्य एवं लक्ष्य—

हमारा लक्ष्य भूमि की खुदाई एवं पर्यवेक्षण द्वारा विभिन्न संस्कृतियों की रूपरेखा तथा ऐतिहासिक कालों का निर्धारण कर सर्वप्रथम इन संस्कृतियों का क्रम निर्धारित करना है। सम्भव है सौभाग्य से, हम संस्कृतियों के इस क्रम अथवा उसके किसी अंश को पुराणों की सहायता से निर्धारित किए गए क्रम के अनुरूप ही निश्चित कर सकें। साथही, महेश्वर में माहिष्मती नाम के किसी लेख की प्राप्ति यह सिद्ध करने में सहायक हो सकती है कि वर्तमान महेश्वर ही चक्रवर्ती सम्राट् कार्तवीर्य की प्रसिद्ध प्राचीन राजनगरी माहिष्मती है।

संयुक्त-प्रयत्न

इस लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए, डेक्कन कालेज रिसर्च इन्स्टीटच्यूट ने पूना विश्वविद्यालय तथा बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के तत्वावधान में एक दल का संगठन किया है। इस दल का बम्बई विश्वविद्यालय तथा सर् पुरषोत्तमदास ठाकुरदास तथा सर् चुन्नीलाल वी. मेहता जैसे सज्जनों का सहयोग भी प्राप्त हुआ है। मध्यभारत-शासन की अनुमति एवं उसके पुरातत्व-विभाग के सहयोग से इस दल ने महेश्वर तथा नर्मदा टोली में उत्खनन एवं नर्मदा घाटी के पर्यवेक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

080338

नर्मदा घाटी में प्राग् ऐतिहासिक स्थलों की खोज

श्री प्रो० एच. डा. सांकलिया

भारतीय पुरातत्व की समस्याएँ

भारतीय पुरातत्व की मुख्य समस्या पूर्व, आद्य एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालों में शृंखला स्थापित करना है। एक दृष्टिकोण से सिकन्दर महान्, सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा बुद्ध से पूर्व का समय आद्य ऐतिहासिक माना गया है। कारण यह है कि, यद्यपि इस काल के राजाओं, नगरों, गाँवों एवं जनता का वर्णन पुराण तथा वैदिक-साहित्य में मिलता है, फिरभी इस काल का कोई भी अभिलेख अथवा अन्य पदार्थ नहीं मिलते हैं। अस्तुः यह ज्ञात नहीं है कि इस लम्बे दीर्घकाल में किस प्रकार मानव एवं उसकी संस्कृति का विकास हुआ तथा उसका सिन्धु नदी की सभ्यता से जिसका परिचय हमको मोहनजोदड़ो, हरप्पा तथा पंजाब में हुए उत्खनन से मिलता है, क्या सम्बन्ध है। इस बात का पता केवल पुरातत्व सम्बन्धी खोज से ही चल सकता है। भारत के प्राचीन-स्थलों का भी पता इसी उपाय से चल सका है जैसे तक्षशिला, पाटलीपुत्र, नालन्दा, कोल्हापुर, नासिक, चन्दावली तथा विदेशों में ईरान, ईराक, पेलेस्टाइन, मिश्र, टर्की, ग्रीस जिनमें से कुछ तो ५००० से ७००० वर्ष तक प्राचीन हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार की खोज की जावे जिससे पूर्व, आद्य एवं प्राचीन समन्वय स्थापित हो सके ? स्वाभाविकतः ऐसे स्थलों पर अथवा क्षेत्रों में जहाँ पर कि प्राचीनता के अवशेषों के चिन्ह पाए जाते हैं।

नर्मदा घाटी—उसका महत्व

पुरातत्व—

भारत में नर्मदा की घाटी ऐसे ही क्षेत्रों में से है। यह प्राचीनतम नदियों में से एक है एवं गंगा तथा सिन्धु नदी से भी अधिक प्राचीन है। इसके किनारों पर विभिन्न प्राचीन-कालों के अनेक प्रकार के अवशेष पाए गए हैं जिनमें सबसे प्राचीनकाल पाषाण-काल हैं जो कि ३,००,००० वर्ष पूर्व का समय है। नर्मदा की ऊपर की घाटी में नरसिंहपुर और होशंगाबाद तथा नीचे की घाटी में राजपीपला के समीप पत्थर की बनी हुई कुल्हाड़ियां मिली हैं जिससे यह विदित होता है कि इस अतीत काल का मानव असभ्य था तथा केवल शिकारी का ही जीवन बिताता था।

सरिता के किनारों के अनेक स्थलों पर तथा उससे कुछ दूरी पर पत्थर के बने हुए छोटे औजार, जिन्हें माइकोलिथ्स कहते हैं, पाए जाते हैं। इनमें से कितने ही औजार हमारे लोहे के बने हुए चाकुओं के ब्लेड—पल—के समान पतले, सुन्दर और सीधे हैं। इसके अतिरिक्त सुन्दर चित्रित चीनी की मिट्टी के बर्तन भी पाए जाते हैं। इनके ऊपर जो चित्र हैं वे लाल, हल्की भूरी पृष्ठभूमि पर काले रंग से बनाए गए हैं और वे सिन्ध, ब्लूचिस्तान तथा अन्यत्र पाए जाने वाले इस प्रकार के चित्रों से मिलते जुलते हैं। अतएव कुछ विद्वानों का यह विचार है कि नर्मदा के अनेक स्थल सिन्धु घाटी के समान या उससे भी अधिक प्राचीन हैं।

महेश्वर—

इसके अतिरिक्त, महेश्वर के दोनों ओर मिट्टी के टीलों पर आदि ऐतिहासिक काल के मिट्टी के बर्तन यत्र-तत्र पाए जाते हैं। इनमें से उत्तरीय काली पालिश वाले बर्तन, रोमन अथवा नकली रोमन, लाल रंग के सुन्दर चीनी मिट्टी के बर्तन, काले और लाल पालिश किए हुए कटोरे जिस प्रकार के आंध्र अथवा सातवाहन में मिलते हैं, विशाल पत्थरों के स्तम्भ जैसे दक्षिण एवं दक्षिण-भारत में हैं, बर्तनों के टूटे हुए टुकड़े जिन पर प्रारम्भिक ब्राह्मी के अक्षर खुदे हुए हैं तथा टाइल एवं चक्की के पत्थर उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार नर्मदा घाटी में हमें आदि ऐतिहासिक-काल के, उससे भी पूर्व के समय के तथा मनुष्य के अस्तित्व के सबसे प्राचीन-काल के चिन्ह मिलते हैं। लेकिन अब तक इन विभिन्न-कालों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा इनका पुराण वंशों से सम्बन्ध वैज्ञानिक-ढंग से स्थापित नहीं किया जा सका है।

पुराण—

पुराणों के अनुसार नर्मदा नदी गंगा नदी की भांति केवल पवित्र नहीं है अपितु उसके किनारों पर आर्यों के

प्राचीन राज्य बढ़े और फले, फूले। इनमें सबसे प्रसिद्ध राज्य वंश हैहयराजवंश था जिसमें अनेकों प्रसिद्ध राजा जैसे हैहया, कार्तवीर्य, अर्जुन, तालजंघ आदि हुए हैं। इन राजाओं ने युद्ध करके एक समय काशी और अयोध्या पर विजय प्राप्त की थी, परन्तु अन्त में प्रसिद्ध नरेश सगर ने इनका विध्वंस कर दिया।

इस प्रकार नर्मदा पर ऐसे अनेकों स्थल हैं जिनका सम्बन्ध कार्तवीर्य, सहस्रार्जुन—और उसके कुटुम्ब से रहा है।

माहिष्मती—

इनमें सबसे प्रसिद्ध राजधानी नगरी माहिष्मती है। ऐसा कहा जाता है कि इसको सबसे पहले राजा मुचकुंद ने बनवाया, जिसने इनके चारों ओर खाइयां भी खुदवाई। पुराण, महाभारत तथा कालिदास के अनुसार यहां पर अग्निदेव का निवास स्थल था जो इस नगरी की शत्रुओं से रक्षा करते थे। ईसा के पूर्व छठी शताब्दि और उसके उपरांत यह नगरी हैहय अथवा कलचूरियों की राजधानी रही है जो कि उस समय नर्मदा की घाटी गुजरात और दक्षिण के हिस्से पर राज्य करते थे। गत एक शताब्दि से अनेक विद्वानों ने इस नगरी की ऐतिहासिक प्राचीनता के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न किए हैं। बहुतों ने इस नगरी को आज के मांधाता और आंडला कस्बों से जो कि नर्मदा के किनारे हैं सम्बन्धित माना है तथा कुछ ने आज के महेश्वर से जो कि निमाड़ जिले में नर्मदा के दाहिने किनारे पर एक छोटा-सा कस्बा है। इस बात से कि महेश्वर में ज्वालेश्वर का एक प्राचीन मंदिर है तथा महाभारत में इस बात का उल्लेख मिलता है कि भगवान् शिव ने इसी स्थान से असुरों के तीन नगरों—त्रिपुर-के विध्वंस की योजना बनाई थी तथा नदी के दाएँ तट पर लगभग आधा मील तक बडे-बडे टीले दृष्टिगोचर होते हैं, अनेक विद्वानों का अभिमत है कि वर्तमान महेश्वर ही प्राचीन माहिष्मती नगरी है।

भूगोल—

यद्यपि नर्मदा का, भूतत्व, पुरातत्व, पौराणिक तथा ऐतिहासिक-दृष्टि से अत्यधिक महत्व है, तथापि उसका भौगोलिक महत्व भी कम नहीं है। पुराणों एवं प्रारम्भिक साहित्य में इसका विशिष्ट विवरण मिलता है। नर्मदा पित्रों की एक मानसी कन्या-मस्तिष्क से उत्पन्न पुत्री है। इसे मैनाक पर्वत की पुत्री भी कहा गया है। इसे पुरुकुत्स की पत्नी तथा त्रसदस्यु की जननी भी कहा गया है। सत्य कुछ भी हो, क्योंकि यह वर्णन हमें काल्पनिक प्रतीत होता है, परन्तु यह सही है कि प्रारम्भिक काल से नर्मदा नदी उत्तर-उत्तरापथ तथा दक्षिण-दक्षिणापथ को विभाजक रेखा मानी जाती रही है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि नर्मदा नदी उन सदा प्रवाहित होने वाली नदियों में से है जो बिना नौका के पार नहीं की जा सकती। अतः यह उत्तर एवं दक्षिण के राज्यों के मध्य एक अवरोध के रूप में सदा मानी गई होगी। परन्तु यातायात की उन्नति के साथ नर्मदा नदी पर घाट बाँधे गए एवं पुल निर्माण किए गए जिससे दोनों ओर के महत्वपूर्ण स्थान व्यापारिक तथा अन्य दृष्टियों से सम्बद्ध किए जा सकें। जिस प्रकार कि वर्तमान में आगरा बाम्बे रोड महेश्वर से कुछ ही मील पर गुजरती है। उसी प्रकार ऐतिहासिक-काल में, गोदावरी पर बसे पैठन से प्रारम्भ होने वाला राजमार्ग माहिष्मती से होता हुआ उज्जैन जाता था तथा वहाँ से वह गंगा नदी पर बसे कौसाम्बी से जा मिलता था।

अतः महेश्वर अथवा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में हमें ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति की आशा है जो दक्षिण अथवा दक्षिण भारत तथा मध्यभारत अथवा मुख्यतः प्राचीन मध्यदेश के बीच व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बंधों पर प्रकाश डालेंगी। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है नर्मदा घाटी में पत्थर के औजार तथा चीनी मिट्टी के चित्रित पात्र प्राप्त हुए हैं जो कुछ अंशों में गोदावरी घाटी में पाए गए उन पात्रों से मिलते-जुलते हैं जिन्हें हमने केवल दो साल पूर्व खोजा था।

अनार्य जातियां—

नर्मदा के निचले एवं ऊपरी भाग में अबभी भील तथा वन्य जातियाँ निवास करती हैं अतः यह एक ऐसा भौगोलिक-खण्ड है जहाँ ऐतिहासिक, पौराणिक, प्राग् ऐतिहासिक, वैदिक तथा अनार्य कालों की संस्कृतियां मिल गई हैं।

(शेष पृष्ठ २० पर)

लोककवि चन्द्रसखी के समय संबंधी विचारणा

श्री अगरचन्द नाहटा

कृष्ण भक्त चंद्रसखी राजस्थान का सुप्रसिद्ध लोक-भजनकार है। मीरा के बाद इसी के भजनों का राजस्थान में सबसे अधिक प्रचार है। बल्कि औरतों में तो मीरा से भी इसके भजन अधिक प्रिय हैं। इनके भजनों की हस्तलिखित प्राचीन प्रति तो उपलब्ध नहीं हुई, पर यत्र-तत्र इनके भजन लोक-मुख से गाए जाते—सुने जाते हैं। मालवा में भी इनके भजनों का प्रचार है और कई लोग इन्हें मालवी मानते हैं। वैसे तो यह लोकप्रिय कवि होने से निकटवर्ती प्रांत और समस्त देश में प्रचार रहा है और इसीलिए इनकी भाषा में कहीं हिंदी का प्रभाव अधिक और कहीं राजस्थानी का नजर आता है, पर मालवी प्रभाव नहीं प्रतीत होता। इसलिए मैं तो इन्हें राजस्थानी ही मानता हूँ। इनके पद बड़े सुंदर हैं—भक्ति मिश्रित उलहना देने की इनकी एक विशेषता है। लोकमुख में अधिक प्रचलित होने से पाठ भेद भी अधिक मिलता है। इनके पदों के संग्रह का प्रयत्न गत कुछ वर्षों से हो रहा है, पर जो संग्रह निकले हैं वे अभी बहुत अपूर्ण हैं। मेरी जानकारी में श्रीयुत् रघुनाथप्रसाद सिंहानिया ने संवत् १९९० में राजस्थान रिसर्च-सोसाइटी कलकत्ता द्वारा 'मारवाड़ी भजन सागर' नामक एक बृहत् ग्रंथ प्रकाशित किया, उसी में सर्वप्रथम चंद्रसखी के भजन प्रकाशित हुए। इस ग्रंथ के पृष्ठ ३८० से ४०१ में पदांक ५५३ से ६०७ में चंद्रसखी के ५४ पद प्रकाशित हुए हैं। इसके पश्चात् स्वामी नरोत्तमदासजी द्वारा संग्रहीत ५४ पदों का एक संग्रह ठाकुर रामसिंहजी द्वारा संपादित होकर नवयुग ग्रंथ कुटीर से प्रकाशित हुआ था। संयोगवश इसमें भी पदों की संख्या ५४ ही है। दोनों ग्रंथों के प्रकाशित पदों का मिलान करने पर १३ पद तो कुछ पाठांतर के साथ दोनों में एक ही मिले। अवशिष्ट ४१ पद 'मारवाड़ी भजन सागर' से इसमें भिन्न हैं। इसी राजस्थान-भारती के वर्ष ३ अंक १ में श्रीयुत मनोहरशर्मा का एक सुंदर लेख 'राजस्थान का एक लोकप्रिय संगीतकार चंद्रसखी' शीर्षक प्रकाशित हुआ है। इसमें भी कई पूर्वोक्त दोनों संग्रहों से भिन्न पद हैं। हालही में श्री० मुरलीधरजी व्यास से एक सुन्दर पद मुझे प्राप्त हुआ था जो सार्थ 'जैन जगत्' में प्रकाशित किया जा चुका है। इस प्रकार प्रकाशित चंद्रसखी के भजनों की संख्या सौ से ऊपर पहुँच जाती है। श्रीमती पद्मावती शबनम का गत वर्ष एक पत्र मिला था, जिसमें उन्होंने चंद्रसखी के भजनों का संग्रह करने में सहायता मांगी थी। उन्हें ठाकुर साहब द्वारा सम्पादित प्रति भेजदी गई। पीछे से कलकत्ते में उनसे मिलने पर विदित हुआ कि उन्होंने और भी कुछ संग्रह किया है, जिसके प्रकाशन की अपेक्षा है। अभी तक जो तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं वे एक दूसरे पर आश्रित न होकर मौलिक प्रयत्न रूप में हैं। मौखिक रूप से सुनकर अलग-अलग संग्रह किए गए हैं। ठाकुर साहब की संपादित पुस्तक को पहिला भाग बताया गया है। स्वामीजी से पूछने पर विदित हुआ कि अभी उनके पास अप्रकाशित चंद्रसखी के भजन और भी हैं। मेरी धारणा है कि राजस्थान और मालवा में इनके भजनों का संग्रह ठीक तरह किया जाय तो २००—२५० तक संख्या पहुँच जायगी। ऐसे एक सुंदर संग्रह की बड़ी आवश्यकता है।

चंद्रसखी के भजन जितने प्रिय हैं, उनके जीवन-संबन्धी जानकारी उतनी ही तिमिरावृत है। लोकप्रिय अधिकांश कवियों के संबंध में ऐसा ही होता है। यदि किसी के संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त होती है तो दंतकथाओं के रूप में होने से वास्तविक निर्णय करना बड़ा कठिन हो जाता है। चंद्रसखी को कई तो पुरुष होना मानते हैं और कई स्त्री। अभी तक यह भी पता नहीं लग सका कि वे क्या थे, कौन थे, कहाँ थे और कब हुए? पांच सात ग्रंथों को टटोला तो मिश्र-बंधु विनोद और राजस्थानी भाषा और साहित्य में केवल इनके समय संबंधी निर्देश मिले। जीवनी का परिचय कुछ भी न मिला। ठाकुरसाहब सम्पादित पद-संग्रहों में कुछ भी निर्देश नहीं है। मारवाड़ी भजन-सागर में मिश्रबंधु-विनोद का ही उल्लेख कर दिया गया है। मिश्रबंधु-विनोद के देखने पर उसके प्रथम एवं तृतीय भाग में 'चंद्रसखी' नामक दो कवियों का उल्लेख मिलता है, जिसमें पहले

वाले को ब्रजवासी राधावल्लभीय सम्प्रदाय के अनुयायी बतलाते हुए कविताकाल १६३८ और इनके 'राग सागरोद्भव' में प्रकाशित होने का उल्लेख है। (भाग १ पृ. ३७०) दूसरे चंद्रसखी को जयपुर वासी बतलाया है। ग्रंथ नाम 'स्फुट पद' और कविता-काल १६०० के पूर्व बतलाते हुए 'सम्भव है कि ये १६३८ वाली चंद्रसखी हों' निर्देश किया गया है। श्रीयुत् मोतीलाल मेनारिया के 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ० ११ में मालवी-भाषा का उदाहरण देते हुए चंद्रसखी का एक पद उद्धृत किया गया है। पर पता नहीं मेनारियाजी ने इसमें क्या मालवीपन देखा ?❀

मुझे तो इसमें अंश मात्र भी मालवीपन नहीं नजर आया, विशुद्ध राजस्थानी है। वैसे तो मालवी भी राजस्थानी का ही एक अंग है फिरभी प्रांतीय विशेषताओं से ही पृथक्त्व किया जाता है।¶

मेनारियाजी ने अपनी पुस्तक पृ-२१२ में चंद्रसखी का समय ब्रेकेट में संवत् १८८० लिखा है। पता नहीं उसका आधार क्या है। पर मेनारियाजी और मिश्रबंधुओं के सूचित समय अनुमान से अधिक महत्त्व नहीं रखते। जैसाकि मैं आगे विचार कर रहा हूँ--चंद्रसखी का समय सं० १७०० के आस-पास का होना चाहिए।

लोक-साहित्य के संग्रह के प्रति जितने सतर्क जैन विद्वान् रहे हैं, शायद अन्य कोई भी नहीं रहा। सैकड़ों वर्षों की प्रवाह-बद्ध चली आने वाली छोटी-बड़ी विविध लोक रचनाओं को (लोकवार्ता, लोकगीत, अनुश्रुतियां) लिपिबद्ध करके उन्होंने उन्हें अमर बना दिया है। लोक-प्रचलित गीतों भजनों की राग-रागिनी और देशियों-ढालों में उन्होंने हजारों रचनाएं बनाई हैं। क्योंकि उनका उद्देश्य जन-साधारण में नैतिक-धार्मिक और भक्ति-भावना का प्रसार करना था। उसके लिए लोकप्रिय-कथाओं, गीतों आदि का अवलम्बन बड़ा सहायक होता है। 'जैन गुर्जर कविओ' भा० ३ में जैन कवियों की रचनाओं में प्रयुक्त देशियों की बड़े परिश्रम पूर्वक अनुक्रमणिका दी गई है। इनकी संख्या २३२८ है। कौनसी देशी किस-किस कवि ने अपनी किस रचना में, किस सम्वत् में प्रयुक्त की--इसका निर्देश देने से हमारे लोकगीतों की प्राचीनता एवं विशालता पर अद्वितीय प्रकाश पड़ता है। हजारों लोकगीत विस्मृत हो गए हैं--इसकी जानकारी हमें इस अनुक्रमणिका से सहज मिल जाती है। इस सम्बन्ध में मूल्यवान् सूचना अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती। अनुक्रमणिका के पश्चात् मेरे प्रेषित देशियों की सूची देते हुए चंद्रसखी का एक भजन उद्धृत किया गया है जो देसाई को 'अनन्तनाथ भण्डार बम्बई' की ३४ पत्रवाली स्तवन संग्रह की प्रति के पत्रांक ३५ में मिला था। वह पद इस प्रकार है--

(राग सारंग)

ब्रजमण्डल देस दिखावो रसिया ॥

ब्रजमण्डल को आछो नीको पाणी-गोरी-गोरी नारि सुघड़ रसिया चतुर रसिया ॥ ब्रजमण्डल ॥ १ ॥

अगर चंदण रो ढोलियो बिराजै, अवल रेसमी लूंबे कसिया ॥ २ ॥

बालापण में गऊओं चराई, तिण देसे चालो वसिया।
मुरली तोरी सदा ही सुहावो, मिरगनैणी नाचै रसिया ॥३॥

❀लेखक ने यह पद भी यहां उद्धृत कर दिया होता तो बहुत उत्तम होता उसके मालवी राजस्थानी की परख हो जाती। —सम्पादक

¶ हम श्री० नाहटाजी के इस विचार से बिल्कुल सहमत नहीं हो सकते। राजस्थानी के विषय में विभिन्न विद्वान् अलग-अलग मत रखते हैं। कुछ लोग शौरसेनी से उसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जो भी हो, मालवी सर्वथा स्वतंत्र है। वह आवंती से निःसृत है, उसका अपना इतिहास बहुत पुराना है। मालवी राजस्थानी के रूप भी भिन्न हैं। हां, राजस्थान की सीमा से संलग्न प्रदेश की बोली पर अवश्य प्रभाव पड़ा है, और वह स्पष्ट ही विकृत मालवी प्रतीत हो जाती है वहां मालवी और राजस्थानी की प्रथकता भी प्रकट होने लगती है। मालव गणों के सार्वदेशिक विस्तार के कारण वह बहुत दूर तक फैली,—आज भी नेपाली और पार्वत्य प्रदेशों तक की भाषाओं में मालवी के अधिकांश शब्द मूल-रूप में उसी अर्थ में विद्यमान है, जो मालवे में साधारण प्रचलित है। राजस्थान में जो मालवी-शब्द मिलते हैं, वे तो निकटता के कारण हैं—या मालवगणों के अधिकृत प्रदेशों में दीर्घकालीन प्रभाव के कारण है। इससे भ्रमित होकर जो लोग 'मालवी को राजस्थानी का रूप' समझ लेते हैं, वे मालवी के इतिहास और परम्परा से अज्ञात होकर भ्रमित हैं। श्री० नाहटाजी जैसे इतिहास-प्रेमियों को ऐसी भावुकता में नहीं आना चाहिए। —संपादक

मटकी फोड़ी दही मेरो डारचो, बांह पकड़ि मेली बसिया।
चंद्रसखी अब आप मिले हैं, कृष्णमुरारी मेरे मन बसिया ॥ ४ ॥

यह भजन ठाकुरसाहब की सम्पादित पुस्तक में है, पर प्राथमिक टेर के सिवाय कुछ भी मिलान नहीं है, इसलिए वह उससे भिन्न समझना चाहिए। पद इस प्रकार है—

ब्रजमण्डल देस दिखाय, रसिया ॥
तेरी रे विरज में गाय बहुत हैं, धोळी धोळी गाय सुरंग बछिया ॥ १ ॥
तेरी रे विरज में मोर बहुत हैं, बोलत मोर फटत छतिया ॥ २ ॥
तेरी रे विरज में नार बहुत हैं। आछी आछी नार मरद रसिया ॥ ३ ॥
तेरी रे विरज में चावल धोळा, हरी हरी मूंग उड़द कचिया ॥ ४ ॥
चंद्रसखी भज बालकृष्ण छबि, नंदजी को लाल हीये बसिया ॥ ५ ॥

लोक-साहित्य में जीवन-रस होता है। वह अपने आप मानव को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। ठाकुर साहब ने ठीक ही लिखा है कि "चंद्रसखी का भारी महत्व संगीतकार के रूप में है × × × आज भी छोटे बड़े सभी प्रकार के संगीतज्ञों और गवैयों में चंद्रसखी के भजनों का आदर है। साधारण जनता विशेषतः स्त्री-समाज में इन भजनों का बड़ा प्रचार है। चंद्रसखी के नाम का जादू ऐसा है कि सुनने वाला मंत्रवत् मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।" कवि का यह पद होली के दिनों में आज भी चंगवाद्य के साथ रसिया लोग बड़े प्रेम से गाते हैं। लोक-साहित्य में भाषा एवं शब्दों में परिवर्तन करने में कोई बंधन नहीं होता। गाने वाले को जो शब्द मधुर जान पड़ता है—प्रचलित पद में परिवर्तन कर कुछ नई कड़ियां बना करके अपने भाव भी उसमें जोड़ देता है। लोक-काव्यों में इसीलिए पाठ-भेद और पंक्ति-भेद अधिक पाया जाता है। चंद्रसखी के भजन भी इसके अच्छे उदाहरण हैं।

उपर्युक्त पद की चाल में न्यायसागर नामक जैन कवि ने अपने चतुर्विंशति-जिन-स्तवन के अंतर्गत वासुपूज्य स्तवन बनाया है जो चौवीसी-वीसी संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। यह स्तवन 'ब्रजमण्डल देस दिखाड़ो रसिया' की चाल में गाना चाहिए—इसका निर्देश कवि ने प्रारम्भ में किया है। इस कवि का जन्म सं० १७२८ में भीनमाल (श्रीमाल) नगर में हुआ था और सं० १७९७ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी रचनाएं सं. १७६६ से सं. १९८४ तक की प्राप्त हैं। चौवीसी स्तवन भी इसी मध्यवर्ती-काल में रचे गए हैं। अतः चंद्रसखी के इस भजन का प्रचार सं० १७६६ के आसपास राजस्थान में अच्छा रहा होगा। उसकी प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता के कारण ही कवि ने वासुपूज्य स्तवन में इसकी चाल को अपनाया है। इससे हम चंद्रसखी का समय इससे पूर्व ही निर्धारित कर सकते हैं। अभी खोज चालू है। सम्भव है इससे और भी प्राचीन किसी जैन रचना में चंद्रसखी के भजनों का निर्देश मिल जाय या किसी हस्तलिखित संग्रह प्रति में इनके पद भी लिखे मिल जांय। जैसाकि मैं पूर्व सूचित कर चुका हूं मेरी धारणा के अनुसार चंद्रसखी संवत् १६७५ से १७२५ के, अर्थात् सं० १७०० के आसपास होने का अधिक सम्भव है। अन्य किसी विद्वान् को इनकी जीवनी व समय के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हो तो अवश्य प्रकाश में लावें। यही अनुरोध है।

शांति! धर्म, संस्कार और सत्-शिक्षा

श्री श्यामनारायण व्यास

चारों ओर से त्राहि-त्राहि और, दशों-दिशाओं में गूंजने वाली मानव की आर्तध्वनि में सुख की इच्छा का वेग जोर मार रहा है। जब-जब साधारण-जन, जो समाज की व्यवस्था, रीति-नीति का कारण है, दुखी हो जाता है, तब-तब नवीन-व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव होता है। इतिहास को पढ़ने से यह सिद्ध भी है, भगवान् श्रीकृष्ण ने—'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्' कहते हुए भी यही तो कहा है कि, जब मानव दुखी होता ही चला जाता है, तब दुःख को दूर करने के लिए मुझे आना पड़ता है—'परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्' से भी यही सिद्ध है।

पाश्चात्य विद्वानों को, जो प्रत्येक बात को विज्ञान की कसोटी पर कसकर चलने के आदी हैं, किसी शक्ति का एकही कार्य के लिए बार-बार जन्म लेना भले ही अस्वाभाविक लगे, किन्तु इस तथ्य को उन्हें भी मान्यता देनी होगी कि, मानव को संत्रस्त अधिक समय तक न तो देखा गया है, और न देखा ही जा सकता है। यह यदि सत्य है तो धर्म की तथा शांति की स्थापना के लिए किसी भी शक्ति का उदय होना सत्य से दूर नहीं हो सकता।

धर्म क्या है?

धर्म ऐसे तर्कों का तत्व है, जिसको सीखने, जानने तथा मानने से आत्मिक, मानसिक तथा सामाजिक शांति बनी रहे। "परोपकारः पुण्याय, पापाय पर पीड़नम्"--यह महर्षि श्री व्यास नें पाप तथा पुण्य का निष्कर्ष, सहस्त्रों वर्ष पूर्व समाज को समझाया था। ये महर्षि जिस समय अपनी वाणी से विश्व को सदुपदेश देते थे, उस समय ईसा, मुहम्मदादि के अनुयायियों का कहीं नाम भी नहीं था। जैसे-जैसे भारत में आत्मचिन्तकों की संख्या बढ़ी और मानवता का दोष, विलासिता उसमें आया, वैसे-वैसे मत-मतांतरों का जन्म होता गया। यह मत-मतांतर उस दशा में दिखाई देते हैं, जबकि कोई आत्म-चिंतक तत्कालीन समस्या सुलझाने का उपाय (मार्ग) बतलाता है। वह उस समय की समस्या तो सुलझा देता है, परन्तु उसका बतलाया मार्ग सदैव स्थिर नहीं रहता, फिरभी उसके अनुयायी रह जाते हैं।

हम देखते हैं दयानन्द, चैतन्य, दादू, कबीर, लूथर आदि के मतों को कितना मान मिल सका है। पश्चिमीय आंग्ल भाषा-भाषियों में अभी राजनैतिक-शक्ति है,—विश्व उनकी ओर देख रहा है। ईसाइयत को हम आज भी जीवित मानते हैं। स्वार्थ के कारण व्यक्ति, जाति तथा राष्ट्र की पूजा, नमाज और भक्ति में धर्म नहीं होता, इसे सत्य समझो। इस तरह दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है--विश्व की सबसे बड़ी ईसाई धर्म की जमात जिन धार्मिक-विचारों के बल पर गर्व कर सकती है, वे विचार उसमें नहीं रहे हैं और ईसाई-धर्म मृतःप्राय बन चुका है। राज्य का संचालन करने वाला धर्म गुरु पोप, धर्म का भी संचालन करता है--क्या धर्म की रक्षा कर सकता है? वह अशांत है क्योंकि राज्य का संचालन करता है! राजाओं की अशांति और चिन्ता को देखते हुए तो हमारे स्मृति-कारों ने कहा था कि--'भ्रष्टो योगी-भवेत् राजा!' हम देखते हैं कि—धर्म का नाम लेकर कहीं कोई किसी स्वार्थ के पीछे दौड़ रहा है!

विश्व का संकट!

विश्व का संकट क्या है? रशिया से लेकर अमेरिका तक, भारत से लेकर चीन-जापान-बर्मा--सिलोन-पूर्व तथा पश्चिम तक मध्यमवर्ग किसी न किसी रूप में वर्तमान से संतुष्ट नहीं है। क्या रशिया के उन साधारण जन को जिन्हें मकान, वस्त्र तथा रोटी तो मिली है, यह विचार नहीं आता होगा कि हमारे कर्म तथा उनका फल क्या है? हम पर ऐसा अनोखा शासन क्यों है? दुनिया से हम दूर क्यों रखे जाते हैं? अमेरिका का जन-साधारण भी अवश्य विचार करता होगा कि, हम धनिक हैं! हमारा शासन है, पर हमारी इच्छा के नाम पर कोरिया का युद्ध क्यों? जब खाने को अन्न, पहिनने को वस्त्र, बैठने को वाहन तथा रहने को अट्टालिकाएं हैं तो युद्ध की

क्या आवश्यकता है ? क्या हमारी सम्पन्नता हमारी विनाशिका बन रही है ? कोई देश तथा राष्ट्र चाहे वह सम्पन्न तथा परमुखापेक्षी ही क्यों न हो, ऐसा नहीं जहाँ का मानव शांति की इच्छा नहीं रखता हो। अपने आपको अशांत निष्कारण व्यस्त न पाता हो ! ऐसा क्यों है ?

ऐसा क्यों है ? यह प्रश्न आजकल शांति के विचारक गर्दन पर एटम-बम के होने की कल्पना करते हुए भी सोचते हैं। अनेक विचारक अपने शांति के उपायों को कसौटी पर कसते दिखाई देते हैं। मार्क्सवाद नाजिज्म, सोशलिज्म आदि मत भी शांति की स्थापना के नाम पर चले थे। कुछ लोग प्राचीन-धार्मिक संस्कृति को याद करते हैं। किन्तु वे अभी भी विज्ञान को शांति के लिए आवश्यक समझते हैं। मैसूर के मुख्यमंत्री ने भारतीय-संस्कृति के लिए कहा है कि १५ लाख रुपया सांस्कृतिक-उत्थान के लिए व्यय किया जावेगा। पैसे से संस्कृति का प्रचार नहीं होता। संस्कृति क्या है पहले यह समझने की आवश्यकता है। क्या हमारा यह विश्वास तो नहीं है कि हमारी संस्कृति का वैसे ही प्रचार हो सकता है जैसे पाश्चात्य-संस्कृति का विज्ञान की सहायता से हो रहा है।

शांति के उपाय !

हमें कई वर्षों तक ऐसे साधुमना ऋषियों की आवश्यकता है, जो गृहस्थ से लेकर राज्य तक का अनुभव रखते हों। संसार के सुख प्रिय हों, किन्तु स्वयं सुख-दुख से दूर रहते हों। स्वार्थ नहीं परमार्थ प्रिय हो। उनका अपना कुछ नहीं हो, किन्तु वे स्वयं समाज के हों। ऐसे ऋषियों ने नालन्दा, उज्जयिनी तथा तक्षशिला में जिज्ञासुओं को, ज्ञानार्थियों को, राज्यार्थियों को तथा जो भी उनके पास सीखने गया था उसके गुणदोष को उपेक्षित करके ही ज्ञान-विज्ञान का दान दिया था। विश्व में उन ऋषियों के प्रकाण्ड पाण्डित्य की चर्चा होती थी।

कहते हैं भारत में सूर्य-सदन था—जहाँ स्वनिर्मित सूर्य से भारत के ऋषि-महर्षि अखिल ब्रह्मांड की गति-विधियाँ देखते थे। सब गतिविधियाँ उनकी जानी पहचानी होती थी। सूर्य-सदन और सूर्य-निर्माण करने वाले भारत-वर्ष की संतानों को पुनः शांत एवं सच्चे रूप में सुसंस्कृत होना है। इसके लिए वे शिक्षा मोल लेते हैं, किन्तु शिक्षा को बेचो मत। शिक्षा दीक्षा के लिए है। शिक्षित-दीक्षित विद्वानों को खोजने का प्रयास करें। वे विद्वान् जो सांस्कृतिक उत्थान के मर्मज्ञ हैं कहेंगे।

शिक्षण में गुण, दोष !

प्रचलित शिक्षा में यह त्रुटि है कि यह प्रारम्भ से आर्थिक-बन्धन में जकड़ी हुई है। विद्यार्थी के लिए इस शिक्षा के पाने के पश्चात् ठोकर खाते फिरने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। इस शिक्षा से देश के विद्यार्थी राष्ट्र तथा सांस्कृतिक-विचारों के प्रतिकूल बनता जा रहा है। इस अशिक्षित देश के माता-पिता बच्चे-बच्ची के मानसिक उत्थान के लिए और ज्ञान की ज्योति प्राप्ति के हेतु कर्मण्यता की सीख के लिए पेट काट कर शिक्षण देते हैं। वे ही बच्चे निरुत्साही, निर्लज्ज, कामी, व्यसनी तथा कला रहित होकर लौटते हैं। इन बच्चों में एकाग्रता का अभाव रहता है। अध्यवसाय उनकी प्रेरणा में नहीं आता। उनके संस्कारों में श्रम से लज्जा की झलक है। ऐसे बच्चे क्या उन्नति कर सकते हैं ?

हमारा सांस्कृतिक शिक्षण !

हमारे सांस्कृतिक शिक्षालयों में बच्चा अपने माता-पिता द्वारा सहर्ष भेजा जाता था। इन शिक्षालयों में आश्रमों में, गुरूकुल तथा विद्यापीठ में शासन तथा नगर के व्यापारी और माता-पिता सहायतार्थ आवश्यक द्रव्य-धन आदि भेजते थे। पर्याप्त धन, अन्न सहायता के रूप में आता था, तभी विदेशों के छात्र ज्ञान की प्राप्ति को नंगे पैर दौड़े चले आते थे। उज्जैन में तो पचासों विद्यार्थी गत महासमर तक सदैव सांदीपनी आश्रम व्यास विद्यापीठ में ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिष, संस्कृत पढ़ते आंखों से देखा गया है। यह विद्यापीठ महाकाल मन्दिर के पास था और इसके आचार्य विक्रम-सम्पादकजी के पूज्य पिताजी श्री नारायणजी व्यास थे। युद्ध-जन्य अभावों से विद्यापीठ शिथिल भलेही बन गया हो, किन्तु छात्र अपनी व्यवस्था से अबभी पठन-पाठन करने आते ही हैं।

संस्कार !

इन विद्यापीठों में संस्कार पर बड़ा/महत्त्व दिया जाता था। सुसंस्कारों की धारा जीवन में बहा दी जाती थी।

राजकुमार से लेकर ब्राह्मण बालक एक समान भोजन तथा वस्त्र पाते थे। समानता की भावना से भविष्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। राजकुमार समानता के संस्कार के पश्चात् दुष्कर्म, अनाचरण तथा प्रजा को पीड़ा देने की कल्पना नहीं कर सकता था। उसका अतीत उसे समझाता था कि उसके शारीरिक अवयव वही हैं जो प्रजा के हैं। वह तो राज्य कर्त्ता एक कारण से ही है। वह सेवा में तत्पर रहता था।

कुमार-विद्यार्थी गुरू तथा आश्रम के हेतु भिक्षा के लिए जाते थे। यह नित्य नियम था। भिक्षाटन से उनको शिक्षा मिलती थी। समाज में रह कर ही मनुष्य जीवित रह सकता है। भिक्षा से मान-अभिमान, उद्दण्डता आदि पतनकारी भाव नष्ट हो जाते थे।

विद्यार्थी वृंद उषा की अमृतमय-वेला में, वाटिकाओं से पुष्पचयन करते थे। स्नानादिक से निवृत्त हो व्यायाम करते थे। सूर्योदय होते होते गुरू के चरण-स्पर्श कर आज्ञाकारी पुत्र के समान समक्ष बैठ जाते थे।

आचार्य तथा गुरू उस समय आचार-विचार, धर्म रीति-नीति, वैद्यक, ज्योतिष, राजनीति और धर्मशास्त्रों के उपदेश देते थे। धीरे-धीरे सब अवस्थाओं में गुरू के आधीन विद्यार्थी होता जाता था। विद्यार्थी की जिज्ञासा और आचार्य के पाण्डित्यपूर्ण अनुभव से भरे उपदेशों से विद्यार्थी का भारती-भण्डार; जगमग-जगमग करने लग जाता था।

आश्रम से बिदा होकर जब विद्यार्थी संसार में कर्तव्य के पथ पर बढ़ता था तो उसका मन शांत तथा गम्भीर होता था। वह कला, ज्ञान-विज्ञान साहित्य, दर्शन, ज्योतिष गृह-निर्माण आदि का आचार्य होता था। आश्रम के उपदेशानुसार जीविकोपार्जन करते हुवे स्वयम्वर में विजयी गार्हस्थ्य में पदार्पण करता था।

माताओं से गृह-शिक्षा प्राप्त कर कलाओं की ज्ञाता सहधर्मिणी और वह आदर्श गृहस्थ हो जाते थे। हर घर में आनन्द-मंगल का साम्राज्य होना फिर आश्चर्य जैसा नहीं होता था। सारा संसार भारत की रीति-नीति सीखने आता था। ऐसी थी हमारी शिक्षा और दीक्षा तब हम शांत थे।

शिक्षा और संस्कार जब तक सारे विश्व के नहीं सुधरेंगे, तब तक अशांति का साम्राज्य रहेगा ही और विनाशकारी प्रयत्नों की होड़-जोड़ लगी रहेगी। सच्ची शांति, मनुष्य के सुसभ्य, सच्चरित्र, विश्वासी, उद्योगी एवं परिश्रमी होने में हैं। अतः सर्वप्रथम सत्-शिक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता है। भारतीय संस्कार और संस्कृति के प्रचार का समय अभी भी नहीं गया है। खड़े हुए योजना-रथ के घोड़ों की लगाम हाथ में है। रोको और देखो! क्या शिक्षा-पद्धति वह——पश्चिमीय स्वीकार है जो विनाश को प्रेम करती है, एटमबम बनाती है, अथवा भारतीय शिक्षा-प्रणाली स्वीकार है, जो शांति को प्यार करती है।

हमारी भारतीय शिक्षण-प्रणाली का आंदोलन ही विश्व की शांति स्थापना का सच्चा और सरलतम प्रयोग सिद्ध होगा।

(पृष्ठ ३१ का शेष)

भिक्षु ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और अपने कमण्डलु से शीतल जल लेकर उसके मुख पर छिड़का। और उसके रूखे केशों पर वह अपना करुणा-कर फेरने लगा।

नारी ने अपनी कीचड़-भरी आँखें खोलीं। कराहते क्षीण-कण्ठ से बोली——

'करुणा-सागर कौन हैं आप? भगवन् पुरवासियों ने छूत के भय से चण्डालों के हाथ मुझे यहाँ सीमा पार फिकवा दिया है। आप...कौन...हैं?'

'पाप शांत हों'——भिक्षु ने अपनी अमृतमयी वाणी में कहा—'मैं उपगुप्त हूं आम्रपाली! समय आया तो, मैं स्वयं ही आज तुम्हारे पास चला आया। मैंने वचन दिया था न?'

उपगुप्त के करुणार्द्र लोचनों से ओसबिन्दु सम अश्रु झर रहे थे। आम्रपाली नव-जीवन पा रही थी।

'बुद्धं शरणं गच्छामि'—का गम्भीर-घोष, युगांतरों से प्रसुप्त उस मौन-महावन को मुखरित कर रहा था!

(जातक-कथा पर से)

वरदान

श्री 'परदेशी'

मधुलिका ने रिक्त-पात्र फिरसे भर दिया। स्वामिनी ने उसे फिर से अपने सुरावर्ण अधरों से लगा लिया। बोली—'तो सामन्त, तुम्हें अपने गुरू के ज्ञान पर इतना गर्व है ?'

'मैं कहता हूँ पाली अगर वे तुम्हारे गुरू होते तो तुम मुझसे भी अधिक गर्व जतातीं।'

'सच ?'

'सामंत सेनगुप्त के कुल में आज तक कोई झूठ नहीं बोला। भदन्त उपगुप्त कोई साधारण ब्रह्मचारी नहीं है। उसकी नसों में क्षात्र-रक्त प्रवाहित है।'

'और क्षत्रियों का रक्त कैसा है, यह मैं खूब जानती हूँ'—

'जानती हो उन क्षात्रों के विषय में जिनका संकुचित वासना में जीवन सड़ रहा है। अनन्त यौवन और प्रचण्ड-ज्ञान के तेज से प्रदीप्त-जीवन तुमने नहीं देखा।'

और सामन्त सेनगुप्त ने अपना पात्र मधुलिका की ओर बढ़ा कर कहा—'और दो कल्याणी।'

मधुलिका ने दोनों के पात्रों को आकण्ठ भर दिया। फिर अपनी स्वामिनी से बोली--"आर्य का कथन यथार्थ है देवि! मैंने भी भिक्षु-प्रवर के दर्शन किए हैं।'...

आम्रपाली मौन रही। सेनगुप्त से उसने अपनी प्याली बदल ली।

'जरा मेरे पात्र से पीओ सामन्त कि तुम्हारी अतृप्ति बनी रहे।'

सेनगुप्त मुस्करा दिया।--'एक बात कहूँ पाली, वैशाली की समस्त नागरियाँ उपगुप्त के पीछे पागल थीं, पर कोई उसके हृदय को न जीत सकी।'

'नागरियाँ हृदय जीतना क्या जाने ?' कह कर गायिका मौन रह गई।

उसने अपना सुरापात्र अधरों से लगा लिया। पात्र में रेशमी रंग की मदिरा छलछला रही थी। नर्तकी को अपनी प्यासी परछाइँ उसमें नजर आई। देश-विदेशों के जाने—अजाने युवकों के कण्ठ-कीर का सुर बन जाने वाला अपना रूप याद आया। रूप, जिसके चरणों में सिर झुकाने में सम्राटों ने गौरव माना था। रूप, जिसके द्वार पर जलने के अभिलाषी का समूह सदैव उपस्थित रहता! ऐसा रूप, चाँद की तरह सुरीला और कटार की तरह नुकीला--यह रूप भी उपगुप्त को आकर्षित न कर सकेगा ? और नर्तकी को अपने पात्र में उपगुप्त की परछाइँ नजर आने लगी!

यदि स्त्री को किसी अनोखे पुरुष का परिचय दिया जाय तो वह उसे देखने के लिए व्यग्र हो जायगी। नारी की पिपासा प्रबल होती है, वह प्रायः अनबुझी ही रहती है। 'मैं उस भिक्षुक को जीतूँगी सामंत!' आम्रपाली ने बड़े दर्प से कहा।

'ऐसा कभी न करना सुन्दरि! यदि तुम हार गईं तो अपनी पराजय तुम्हें आजीवन जलाती रहेगी।'

सेनगुप्त के नेत्र कुछ-कुछ अरुण हो आए थे। पाली अपने इस प्रेमी के आरक्त-मुख की अरुणिमा को और पल-पल में परिवर्तित होती भंगिमा को मुग्ध-भाव से देखती रह गई।

'देवि, उपगुप्त साधारण सन्यासी नहीं है। वह भिक्षु से अधिक गृही है। चौंको नहीं, मधुलिका जानती है, आस पास के सारे नंगे-भूखे भिखमंगे उसके परिवारी हैं। मैं जानता हूँ पाली, तुम्हारे सौन्दर्य में सुरा और गरल का अद्भुत सम्मेलन है, तुमने विश्वविजयी वीरों को विजित किया है। ज्ञानियों का ज्ञान, साधकों की साधना और व्रतियों का व्रत सहज ही भंग किया है। पर भिक्षु उपगुप्त, क्षमा करो देवि, न तो व्रती है, न तापस। वह सेवा-मार्ग का पंथी है। अपने सेवितों की सत्-असत् भावनाएँ उसकी अपनी भावनाएँ हैं। उनके समस्त परिताप का वह प्रतीक है। उसकी हँसी उसके नीरोग होते रोगियों की हँसी है और इसका विषाद पीड़ितों की वेदना है।--इस भेद को तुम कैसे पा सकोगी सुमुखि ? तुम योगी को, भोगी को जीत सकती हो, पर इस विदेह विरागी को नहीं पा सकोगी।' ज्यों-ज्यों सामन्त सेनगुप्त भिक्षु का वर्णन करता था, त्यों-त्यों पाली के मन की मशाल प्रबल-रूप से सुलगती जाती थी। वह खिलखिला पड़ी--'आज मधुलिका ने तुम्हें अधिक पिलादी है, सामन्त! तुमने अभी न पाली को जाना, न अपने मुंडी को!'

'तो, तुम्हीं जान लेना, मैं कल साँझ भिक्षुक के

दर्शनार्थ जाऊँगा। तुम आना चाहो तो रथ पहले इधर आ जाएगा।'

'पाटलीपुत्र की राजपरी तुम्हारे उस अर्द्धनग्न मुंडी को अवश्य देखेगी सामन्त !' और आम्रपाली एक झटके में खड़ी हो गई, स्वर्ण-शिखा-सी उसकी देही में एक निश्चय लहरा गया। सामन्त सेनगुप्त ने नहीं, किन्तु कल्याणी ने उसे देखा। वह अपनी स्वामिनी को जानती थी। वह यह सोचकर सिहर उठी कि जब नारी कोई निश्चय करती है तो उसकी पूर्ति की प्यास कितनी प्रबल भयंकर होती है !

आम्रपाली क्या उससे भी भयंकर नहीं ?

❀ ❀ ❀ ❀

जब से पाली उपगुप्त को देख आई है, उसे अपनी ही सुध नहीं है। उपगुप्त में क्या था यह वह नहीं समझ पा रही है। प्रतिदिन जैसे भिक्षुक वह देखती है--वैसाही मुँडासिर साधु तो है वह; पर साधु नहीं जादूगर है वह ! कैसी मोहिनी ?

उसने कल्याणी को आवाज दी।

नत-मस्तक कल्याणी आकर खड़ी हुई।

विगत सप्ताह से अपनी स्वामिनी में जो परिवर्तन आ गया है उसे मधुलिका जानती है। और वह कैसे न जाने ? पाली को वह उसके बालापन से पहचानती थी। पुरुष और विचित्र पुरुष की माँग उसके मन में सदैव रही है। पर, मन की बात होठों पर लाकर, प्रकट नहीं करती। उपगुप्त जैसे तरुण-सन्यासी को पा लेने की पुकार उसके चिर आकुल अन्तर में हाहाकार करती है तो क्या आश्चर्य ?

'कल्याणी, उपगुप्त किसी भी प्रकार इस भवन में आने चाहिए ?'

'यह असम्भव है देवि।' मधुलिका ने कहा।

'असम्भव है, यह तुम पिछले सप्ताह कहती तो, मैं न मानती। पर...' अपने जीवन में आम्रपाली ने आज पहली बार 'असम्भव' शब्द सुना है और वह भी एक दासी के मुँह से। किसी अलभ्य संजीवनी के लिए नहीं--एक राह चलते भिखारी के लिए, यह कैसी विडम्बना है, मधुलिका--तुम कुछ नहीं कर सकती। मेरी जो सबसे विश्वस्त सेविका चक्रवर्ती सम्राटों को अपने पीछे श्वान की तरह चलाते इस भवन के द्वार तक ले आई--वही कल्याणी एक मुंडी को नहीं ला सकती ?...जीवित या...मृत...'

'दासी को आज्ञा हो देवि ! वह स्वर्ग देवों को, नगर के उच्चवर्ण विप्रों को और अरण्य के असुरों को अपनी स्वामिनी की सेवा के लिए ला सकती है। किन्तु महापुण्य उपगुप्त के लिए उसे क्षमा करें। उपगुप्त शोषितों-पीड़ितों के नेता हैं। उन्हें भरमाना जनता के साथ छल करना है, फिर असम्भव भी है।'

'फिर वही असम्भव ? इस उपगुप्त ने नए शब्द से परिचय कराया 'असम्भव' ! मधुलिका, उपगुप्त दुखितों के उद्धारक हैं न ?'

'यथार्थ है स्वामिनि !'

'तो एक काम करो, तुम भिक्षुक को मेरी किसी असह्य-पीड़ा का कल्पित संवाद दे यहाँ ले आओ। रात...रात कामिनी की कलियों-सी खिल रही है। आज मेरी सुहाग-बेला आएगी। पाली तुझे भरपूर पारितोषक देगी। तेरे इस उपकार को अपनी किसी भी कृतज्ञता से नहीं चुका सकेगी।...मधुलिका मौन क्यों है ?'

'आप अस्वस्थ हैं देवि, यह क्या कह रही हैं। लोक-पूज्य के सामने मिथ्या भाषण ! जहाँ कुख्यात् असत्यवादी भी सत्य सम्भाषण को बाध्य होता है, वहीं मैं झूँठ बोलूं ? इस पाप के लिए तो विधाता को नये नरक की रचना करनी होगी।'

'तू कृतघ्न हो रही है मधुलिका ! न जाएगी ?'

'देवी मुझे मृत्युदण्ड दे सकती हैं।'

आम्रपाली तिलमिला उठी—'दूर हट कलंकिनी।'-उसने आवेश में दासी को एक लात मारी।

नर्तकी को सारा संसार सूना लग रहा था। हृदय में कामना और पराजय की विरोधिनी तरंगे उठ रहीं थीं।...

जीवन की सबसे बड़ी लगन के समय आज, वह अकेली थी। तकिए में मुँह छिपाए पाली फूट-फूट कर रोने लगी। ज्यों-ज्यों वह रोती थी, उसकी वेदना बढ़ती जाती थी, और उपगुप्त अधिक दूर जाता नजर आता था।...

निराशा के अन्धकार में वह बिजली की तरह चमक कर उठ बैठी। 'मधुलिका !'—उसने जोर से पुकारा। जैसे मधुलिका उससे सौ-योजन दूर हो !

'मेरे शृंगार-प्रसाधन और अन्य उपकरण प्रस्तुत करो'—पाली ने विकुंचित भ्रू-भंगिमा पूर्वक दासी की ओर देखा।

मधुलिका को अपनी स्वामिनी अनिंद्य-नक्षत्र-सी लग रही थी।

'मैं स्वयं भिक्षु के आश्रम जाऊँगी। मैंने चाहा था तू उसे ले आती तो मिलनकक्ष के मोहक-वातावरण का उपयुक्त उपयोग होता। कुटिया में यह सुख सामग्री कहाँ ?...'

मधुलिका जड़ प्रतिमा बनी रही।

तब शृंगारिता आम्रपाली दसों दिशाओं को जगाती, वासना का अपना आमंत्रण लिए, गहन अंधकार में ओझल हो गई।

“भिक्षु मानेगा ?'—कल्याणी मधुलिका के मन में द्वन्द्व था।

पर, कहीं से जैसे एक उत्तर मिल रहा था—'यदि उपगुप्त व्यभिचरित हो सकता तो लोक-हृदय उसे अपने प्राणों के सिंहासन पर क्यों कर प्रतिष्ठित करता ?'

रात्रि की उस सूनी नीरवता में कल्याणी कपोत-सी काँप रही थी !

* * * *

अपने हाथ का दीपक एक ओर रख आम्रपाली शिला पर सोए सन्यासी की कनक-कांति को स्तब्ध हो देखती रह गई।

उपगुप्त के सुप्त वदन से अनोखी आभा फूट रही थी। नर्तकी का अन्तर तारुण्य के उस तेज को न सह सका। मन में नारी सुलभ भावों का आवेग लहरा गया। माखन-मृदु हाथों से सन्यासी के पैर दबाने लगी।

उपगुप्त चौंक कर उठ बैठे !

वे विस्मित रह गए। दो पल जैसे समस्त संज्ञा साथ छोड़ गई। नर्तकी ने उनका हाथ थाम लिया।

संज्ञा लौट आई। धीरे से अपना हाथ छुड़ाते हुए बोले—'पाली, ऐसी सघन निशा में यहाँ क्यों आई ?'

नर्तकी नख से धरती कुरेदती रही।

'बोलो'—सन्यासी ने फिर से प्रश्न किया ?

'देव ! मुझे अंगीकार करें।'

'बस, इतनी-सी बात ! इसी के लिए तुम्हें यहाँ आना पड़ा देवि !'

नर्तकी को जैसे अपनी सिद्धि साकार सुगोचर हुई।

'किन्तु वह समय अभी नहीं आया है, पाली ! अभी मेरी तपस्या शेष है। समय आने पर मैं स्वयं चला आऊँगा। निराश न हो !'

'तब तक मैं क्या करूँगी, भदन्त ?'

'जो करती आई हो। चाहो तो शांतम् पापम् का जप करना। तुम्हारा कल्याण होगा। अब जाओ। चाँद का प्रकाश जाने वाला है।'

आम्रपाली लौट गई। उसका मन खिला था।

नर्तकी के जाने पर उपगुप्त 'शांतम् पापम्' कहते द्वार पर खड़े हो गए। आम्रपाली मंदगति से चुपचाप चली जा रही थी।। गुप्त रूप से उसका पीछा करती दो छायाओं में से एक को—भिक्षुक ने पहचान लिया। दूसरी छाया को वे न जान सके। वह कल्याणी थी।

भिक्षुक उपगुप्त की कुटिया में बड़ी देर तक 'शांतम् पापम्' गूँजता रहा !

* * * *

दिनों को पंख लग गए।

एक दिन, एक पक्ष; एक पक्ष और एक मास बीत गया।

सर्वथा निर्जन पथ पर एक भिक्षुक तेजी से बढ़ा जा रहा था। मार्ग में काँटे थे, नन्हें-नुकीले कंकड़ थे, पर उसकी गति में वेग और चेतना थी, जो मुख पर लहरा रही थी।

आम्रवन पार करने पर पीपल का एक विशाल वृक्ष आया, वहीं वह रुक गया। नगर प्रबन्धक की निर्दयता का जो संवाद उसने सुना था, सत्य निकला। सामने ही एक स्त्री चेचक और गर्मी के फफोलों से लदी बेसुध पड़ी थी। पास ही बैठे एक सियार की जीभ से लार टपक रही थी। स्त्री की सारी गिदबिदी देह तप रही है। उसके घावों से पीप बह रहा था, और अधरों पर अनगिनती मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। रोगिणी की उस दशा को देखकर घृणा को भी घृणा आती थी। (शेष पृष्ठ २८ पर)

—पुस्तक–परिचय–परामर्श—

क्या गोरी—क्या सांवरी—लेखक-देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रकाशक—चेतना प्रकाशन, हैदराबाद। मूल्य—सात रुपये, पृष्ठ २००।

प्रस्तुत रचना हिन्दी के ख्याति प्राप्त लोकगीतों के खोजी श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के १९ निबन्धों का संग्रह है। जिसमें--"चम्बा याद रहेगा", "केरल के जलमार्ग पर", "गोदावरी" और "मणिपुर" यात्रा-निबन्ध हैं। 'ठक्कर बापा' और 'चित्र सामने पड़ा है' श्रद्धांजलि-निबन्ध हैं। 'दीये तो जलेंगे' और 'मेले भी आते रहें' की सृष्टि सांस्कृतिक चित्रपट पर हुई है।' इनके अतिरिक्त 'भारत की राष्ट्र-भाषा', 'अध्ययन कक्ष में', 'महादेव भाई की डायरी से' में लेखक निबन्धकार न होकर अध्येता हो गया है। 'यशपाल' और 'बलवन्तसिंह' साहित्यिक-परिचयात्मक निबन्ध हैं। 'क्या गोरी, क्या सांवरी' कलात्मक निबन्ध है जिसमें लेखक का व्यक्तित्व अपनी शैली और प्रतिभा के साथ विद्यमान है। यद्यपि सभी निबंधों को निबंध कहना कहाँ तक उचित होगा जबकि लेखक का व्यक्तित्व दूसरों के उदाहरणों के प्रति सजग होकर उनको यथा-स्थान रखने की कला में गतिशील रहे। इसमें संदेह नहीं कि लेखक चित्रों को शब्दों के जरिए उभारने के प्रति कुशल है। उसमें घुमन्तू लेखक का आभास है। रंगों, रेखाओं और परिस्थितियों को पकड़ने का सामर्थ्य है। इन सब बातों के साथ स्थान-स्थान पर लोक-गीतों की पंक्तियों का प्रयोग करते हुए लेखक अपना धरती के प्रति भावात्मक आकर्षण का परिचय देता चलता है। निबंधों के इस संग्रह में दो रंगीन चित्र हैं। पुस्तक का टायटल सांकेतिक और आकर्षक है। अवश्य ही इन सब विशेषताओं के होते हुए पुस्तक की सात रुपया कीमत कहाँ तक लेखक के इस कथन को सार्थक करेगी कि 'जनवादी संस्कृति ही प्रगतिशील शक्तियों का साथ दे सकती है।'

सड़क नहीं बन्दूक—लेखक—देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रकाशक—चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, मूल्य—चार रुपये, पृष्ठ २०८।

मोटे पृष्ठों पर छपी हुई प्रस्तुत रचना १३ कहानियों का संग्रह है जो लेखक के पंजाबी, उर्दू और हिन्दी के सात छपित कहानी-संग्रहों के पश्चात् आठवां है। कहानी-संग्रह के आरम्भ में लेखक ने--'आमुख' में हिन्दुस्तानी कहानियों के प्रति वैचारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। कृष्णचंद्र और लेनिन के कहानियों सम्बन्धी उद्धरणों के साथ अपने विचार जोड़े हैं। सत्यार्थीजी का कहना है कि कहानी में "सामूहिक प्रभाव इतना जबर्दस्त हो कि पाठक का मन मोह ले। आधुनिक कहानी लेखक पाठक को मोहने के बजाय उसे झझोड़ने की ओर अधिक जागरूक रहता है।" लेखक ने आमुख में रोमानी विचारधारा को छोड़ने का संकेत कर जीवन के विस्तृत क्षेत्र में शब्दों की कमी को दूर करने का आग्रह किया है। जहां तक रोमानी विचारों अथवा चित्रों का प्रश्न है लेखक स्वयं कई स्थानों में उलझा है। 'एक फोटो की कहानी' में दुल्हन का चित्र है—"वह सुन्दर दुल्हन, उसके वह काले रेशमी केश—पहाड़ों के सायों जैसे। नए गाल—नए पके चूलुओं जैसे जिन्हें मनुष्य के हाथों ने मैला न किया हो। उसके पति के ओठों के नीचे ये गाल कितने गर्म रहते होंगे।"

संग्रह में 'सड़क नहीं बन्दूक' पठानी जीवन का चित्रण है, 'पिकनिक' में नए जीवन के पात्र, 'कुलभी' में मध्यम-वर्ग की स्त्री का चरित्र, 'और बांसुरी बजती रही' मनोवैज्ञानिक, 'फत्तू भूखा है', 'मिस बिलमोरिया', 'एक फोटो की कहानी' चरित्र प्रधान, 'जशन' भीलों के जीवन से सम्बन्धित तथा 'सुइयां चलती रहीं' आदि चित्र-प्रधान कहानियाँ हैं। कहानियों की भाषा अपना व्यक्तित्व रखती हैं। निश्चय ही हिन्दी कहानियों में यह संग्रह उल्लेखनीय है।

रक्त के बीज—लेखक मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—चेतना-प्रकाशन, हैदराबाद. मूल्य ढाई रुपये, पृष्ठ संख्या १३६।

मन्मथनाथ गुप्त हिन्दी-जगत् में आज माने हुए कहानी लेखकों में विशेष विख्यात हैं। कुछ कहानी-संग्रहों के पूर्व प्रकाशन के बाद प्रस्तुत रचना उनका नवीन-संग्रह है जिसमें १० कहानियां संग्रहीत की गई हैं। 'राजभवन', 'क्रांति का मुहूर्त', 'भ्रांति भंग', 'इतिहास से बाहर', 'कलाकार का जगत' आदि कहानियों में जीवन की अनु-

भूतियां आदर्शोन्मुखी-यथार्थ की ओर उन्मुख हैं। क्रांतिकारी जीवन की भित्ति पर साहित्यिक-जीवन में पूर्वानुभूतियों का कहानियों के रूप में विकास लेखक के व्यक्तित्व को एक सजीवता प्रदान करता है। 'रक्त के बीज' में कल्पना रहित जीवन के चित्र हैं जो प्रौढ़, सरल और ओजपूर्ण शैली में प्रगट हुए हैं। 'रक्त के बीज' छपाई-सफाई की दृष्टि से निर्दोष है। ऐसी रचना अवश्य ही संग्रहणीय है।

अशोकवन--लेखक लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रकाशक--चेतना प्रकाशन, हैदराबाद. मूल्य--तीन रुपया, पृष्ठ १५२।

'अशोकवन' मिश्रजी के ५ ऐतिहासिक-नाटकों का संग्रह है। मिश्रजी हिन्दी-जगत् में सामाजिक-समस्या-मूलक नाटकों के अग्रदूत हैं। बर्नार्ड-शॉ के व्यंग, चुभती हुई चुटकियां और तीखी व्यंजना के अनुरूप आपकी शैली ढली है। उन्हें पढ़ते हुए निश्चय ही शा की स्मृति हो आती है। ऐतिहासिक नाटकों की दृष्टि से 'अशोक वन' नया प्रयोग है जिसमें 'अशोकवन', 'कौशाम्बी', 'विदिशा', 'भविष्य का गर्व' तथा 'दशाश्व मेघ' संग्रहीत हैं। सभी नाटकों के कथानक प्रचलित घटनाओं से सम्बन्धित हैं। 'अशोकवन' में सीता का प्रसंग, 'कौशाम्बी' में उदयन-वासवदत्ता-कुमार का प्रसंग, 'विदिशा' में शुंगकालीन इतिहास का चित्र, 'भविष्य का गर्व' में 'ईसा के पूर्व का' कल्पना की आंखों से देखा चित्र, तथा 'दशाश्वमेघ' में नागों के अश्वमेघ की कहानी है।

मिश्रजी की शैली में आकर्षण है। ऐतिहासिक-नाटकों के अनुरूप उनकी शैली सफल घोषित होती है।

काला सांप--लेखक--श्री राय दुर्गाप्रसाद रस्तोगी 'आदर्श', प्रकाशक--आदर्श प्रकाशन मन्दिर, दारागंज, प्रयाग. मूल्य २) रुपये।

'काला सांप' लेखक की इक्कीस कहानियों का संग्रह है। कहानियों में नए लेखक की जिज्ञासा एवं अतृप्त मानव की आकांक्षाएं सजीव हो उठी हैं, यद्यपि कला के अभाव में घटनाएं, जो विशेष प्रभावशाली नहीं हैं, अधिक अच्छी तरह से लेखक की कलम से व्यक्त नहीं हो सकी हैं। अपरिपक्वता शैली और भाषा में स्पष्ट झलकती है। कहानियां सामाजिक जिनमें आधुनिक-युग की दिशा का संकेत है। प्रेम, घृणा, तृष्णा, विडम्बना और जीवन की विकृति को लेखक ने अपनी लेखनी से अभिमण्डित करना चाहा है।

सुन्दर छपाई। पुस्तक साधारण दृष्टि से पठनीय है।

नवदीप--लेखक--अलखमुरारी हर्जला, प्रकाशक--ज्ञानमंदिर: कानपुर. मूल्य डेढ़--रुपया।

श्री हर्जला हिन्दी-क्षेत्र में नए-नए आए हैं। 'नवदीप' उनकी ९ कहानियों का संग्रह है। कहानियों के कथानक, पात्र और चरित्र-चित्रण से लेखक का व्यस्त मानस जीवन के यथार्थ की ओर झुका हुआ ज्ञात होता है। पुस्तक के प्रारम्भ में श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्रीमती हर्जला की भूमिकाएं हैं, जो श्री हर्जला के प्रति एक दृष्टिकोण बनाने में सहायक होती हैं। हिन्दी जगत् में श्री हर्जला की कहानियों का स्वागत है।

खोज--लेखक द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', प्रकाशक--चेतना प्रकाशन, हैदराबाद. मूल्य--तीन रुपया।

श्री 'निर्गुण'जी की ६ कहानियों का संग्रह 'खोज' हिन्दी-कहानियों में महत्वपूर्ण योगदान है। कहानियां पठनीय हैं। सभी कहानियों के कथानक सामाजिक, संवाद सुस्पष्ट एवं कथानक को गति प्रदान करने वाले, तथा चरित्र मध्यमवर्गीय जीवन के क्षेत्र से अपनाए गए हैं। यद्यपि कला की दृष्टि से कथा-शिल्प में लेखक की मौलिकता के दर्शन हमें नहीं होते। पुराने ढंग की कलात्मकता यत्र-तत्र कहानियों के सभी तत्वों पर छाई हुई है। पुस्तक जेबी साइज में १६० पृष्ठों की है।

खून की होली--लेखक--राजबहादुरसिंह, प्रकाशक--राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली--मूल्य दो रुपये।

हिन्दी में आज वीररस के साहित्य का अभाव है। कहानियों के क्षेत्र में तो इसका अभाव विशेष दृष्टव्य है। प्रस्तुत पुस्तक जिसमें ५ कहानियां हैं, इतिहास की भित्ति पर वर्णित राजस्थान और महाराष्ट्र की महत्वपूर्ण घटनाओं को सामने रखती है। पुस्तक उन्हीं को समर्पित की गई

है जिन्होंने देश के लिए अपने प्राण की बाजी लगाई। 'गढ़ आया-सिंह गया' मराठी उपन्यास-जगत् के माने हुए लेखक हरिभाऊ आप्टे की प्रसिद्ध रचना है। प्रस्तुत पुस्तक में वह एक कहानी के रूप में आई है। ठाकुर राजबहादुरसिंह का प्रयास इस दृष्टि से प्रशंसनीय है।

शकुन्तला दर्शन—लेखक पं० मूंगाराम त्रिपाठी, प्रकाशक—भारतीय साहित्य-मन्दिर, जबलपुर. मूल्य—सवा रुपया।

'शकुन्तला-दर्शन' महाकवि कालिदास रचित संस्कृत नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की नवीन दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत करने वाली पुस्तिका है। समीक्षा शास्त्रीय एवं सुस्पष्ट है। साहित्य के विचारकों, विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए पठनीय है। छपाई-सफाई साधारण।

एकांत-साधना—लेखिका—मालती ढंडा, प्रकाशक—चेतना प्रकाशन, हैदराबाद. मूल्य चौदह आना।

'एकांत साधना' जैसा कि पुस्तिका का नाम है, मालती ढंडा की ८ छोटी कहानियों का ऐसा संग्रह है जो ढंडा ने अपनी एकांत साधना के दौरान में तय्यार किया। चेतना-प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ५६ पृष्ठों की पुस्तिका है।

—प्रो० श्याम परमार

हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति—ले० श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरीगेट दिल्ली ६. पृष्ठ संख्या ४३ मूल्य आठ आना।

इन्द्रजी द्वारा लिखित इस छोटी-सी पुस्तिका में हमारे राष्ट्रपति के जीवन और कार्यों पर प्रकाश डालने वाले मार्मिक संस्मरण हैं। जिनसे पता चलता है कि राष्ट्रपति कितने अहंकार शून्य, जन-सेवक और कर्मयोगी हैं। देश की आजादी के पूर्व और पश्चात् उनके द्वारा किए गए कार्यों की भी इसमें संस्मरणात्मक चर्चा है। प्रारम्भ में राष्ट्रपति का संक्षिप्त जीवन-परिचय भी दिया गया है। हर भारतीय को प्रस्तुत पुस्तक एकबार अवश्य देख जाना चाहिए। छपाई-सफाई उत्तम है।

आनन्द-गीता—ले० महामण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक—यो० वे० आरण्य विश्वविद्यालय, शिवानन्दाश्रम, आनन्दकुटीर, ऋषिकेश, पृ० सं० १०० मूल्य २) रु०।

प्रस्तुत पुस्तक सर्वप्रथम अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थी, जिसका अच्छा प्रचार हुआ। अब उसीका हिन्दी-संस्करण आनन्द-गीता, उपस्थित किया गया है। मन को कैसे जीतें? संकल्प और उनका दमन, शांति का मार्ग, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, आत्मज्ञान इत्यादि शीर्षकों के अंतर्गत, जीवन को आनन्दमय और सत्पथगामी बनाने के लिए मार्मिक विवेचन किया गया है। आज के युग में वासनाओं से घिरे हुए मनुष्य के लिए इसके आदेश, सफलता और बहुत कुछ अंशों तक प्रेरणा का कार्य करते हैं। योग-वेदांत, भक्ति और सदाचार विषयक ग्रन्थों के प्रकाशन में उक्त संस्था सुन्दर कार्य कर रही है। अध्यात्म-प्रेमियों को 'आनन्दगीता' अवश्य पढ़ना चाहिए। छपाई-सफाई ठीक है।

सक्रिय संध्या साधन--ले० श्री रणछोड़दास 'उद्धव', प्रकाशक--श्री रणछोड़ प्रकाशन मन्दिर, महिदपुर (म० भा०) पृ० सं० ४४ मूल्य ।।।)।

श्री रणछोड़दास 'उद्धव' ने बडे परिश्रमपूर्वक उक्त पुस्तक में संध्या का शब्दार्थ, संध्या के फल, संध्या में सरल अष्टांगयोग और संध्या सभी देवों की नगरी दिखाती है, इत्यादि विषयों द्वारा सभी सज्जनों को संध्या करने के लिए आग्रह किया है। इसमें संध्या करने की विधि-क्रियाएँ, सूर्य-नमस्कार और राष्ट्रीय-प्रार्थना आदि उपयोगी बातें दी गई हैं, कई मंत्रों के हिन्दी भाषानुवाद भी दिए हैं। प्राक्कथन विक्रम-सम्पादक पं० सूर्यनारायण व्यास द्वारा लिखा हुआ है। संध्या से विमुख होकर आज का द्विज-समाज कितना बल-वीर्य-तेजहीन हो गया है, यह किसी से छिपा नहीं है। संध्या की उपासना हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है और उसकी जानकारी के लिए प्रस्तुत पुस्तक अवश्य मनन करने योग्य है।

झाबुआ--प्रकाशक सूचना-विभाग मध्य-भारत।

कुछ समय पूर्व झाबुआ जिले की विषम परिस्थिति ने सभी को चिन्तित कर दिया था, झाबुआ जिले में जो अकाल की काली छाया पड़ी थी, उसे शासन ने अभावग्रस्त क्षेत्र कहकर, एवं अन्य राजनीतिक दलों का भ्रामक-

प्रचार बतला कर, उक्त क्षेत्र में कुछ राहत-कार्य शुरू किए, जिनकी सचित्र जानकारी इसमें दी गई है। समय-समय पर शासन की प्रगतिशीलता दिखाने के लिए, अपनी सफाई पेश करने के लिए सूचना-विभाग ऐसे प्रकाशन प्रस्तुत करता रहा है, उसी की यह भी कड़ी है। पुस्तक-प्रकाशन में जो व्यय-प्रदर्शन हुआ है, वह यदि झाबुआ-पीड़ितों के लिए होता तो कितना उत्तम होता--पुस्तिका आकर्षक छपी है। अमूल्य है।

कवि आरसी की काव्य-साधना--लेखक--श्री प्रताप साहित्यालंकार, प्रकाशक--तारा मण्डल, ४७ जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता. मूल्य २॥) रु०

श्री आरसीप्रसादसिंह हिन्दी के प्रतिभा सम्पन्न माने हुए कवि हैं। उनकी 'कलापी' से 'नई-दिशा' तक की प्रवृत्तियों एवं कला-निपुणता का समीक्षात्मक विश्लेषण लेखक ने उक्त पुस्तक में किया है। लेखक ने कवि की विशेषताओं के साथ-साथ उसकी त्रुटियों का भी दिग्दर्शन कराया है और इसलिए हम कह सकते हैं कि उन्होंने निष्पक्षता के साथ अध्ययन किया है। १५० पृष्ठ की उक्त पुस्तक में, लेखक नें कवि की काव्य-प्रवृत्ति, विचार-सौन्दर्य, प्रगतिवादिता और कलानैपुण्य की विशद विवेचना की है। पुस्तक की छपाई-सफाई उत्तम है। कवि आरसी के काव्य के अध्ययन की दृष्टि से पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

उपवन--रच० श्री कुन्जबिहारीलाल पाण्डेय, एवं श्री प्रकाश उप्पल प्रकाशक--साहित्यमंत्री, मध्यभारत साहित्यकार संसद इन्दौर पृ. सं,५६ मू० १।) रु०

बड़नगर (मालवा) के कवि-द्वय श्री कुन्जबिहारीलाल पांडेय और प्रकाश उप्पल मध्यभारत और आसपास के क्षेत्र में कवि-सम्मेलनों के द्वारा चिर-परिचित हैं। पांडेय-जी अपनी रचनाओं में हास्य का पुट देकर जो मार्मिक-चित्रण आज की दुनिया का करते हैं, वह पढ़ने और सुनने की ही बात है। इसी प्रकार नवोदित कवि 'प्रकाश उप्पल' की रचनाओं में भी उनका उज्वल-भविष्य झांकता नजर आ रहा है। प्रस्तुत संग्रह में दोनों कवियों की दो भिन्न धाराएँ दिखाई देंगी। एक में व्यंगात्मक चुटकियां हैं, तो दूसरे में मधुर गुंजन है। छोटी-सी पुस्तिका का मूल्य १।) रु० कुछ ज्यादा दिखाई देता है। दोनों कवियों की रचनाओं का लाभ लेने के लिए अवश्य इसे एकबार देख जाना चाहिए।

जाग्रति--रच० श्री शिवनारायण उपाध्याय 'शिव' प्रकाशक--भारत साहित्य-सदन ८० म्युनिसिपल आफिस, रोड, इन्दौर. मूल्य ॥।)

श्री 'शिव' के प्रस्तुत-पुस्तिका में दिए हुए गीत गांवों में शिक्षा प्रचार का काम करने वाले भाई-बहनों और ग्राम-सेवकों के लिए उपयोगी हो सकते हैं। सिनेमा के गीतों की तर्ज पर रचे गए ये गीत ग्रामवासियों के लिए प्रेरणादायी हैं। किन्तु प्रचार की दृष्टि से ऐसे संग्रह का मूल्य ॥।) आने कुछ खटकता है।

पर अब भी...रच० श्री महेशशरण जौहरी 'ललित' प्रकाशक--चिन्तनगृह प्रकाशन प्रयाग, मूल्य दो आना।

१६ पृष्ठ की इस छोटी-सी पुस्तिका में मालवा के जाने-माने कवि श्री 'ललित' ने आधुनिक स्वाधीनता का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। वस्तुतः आजादी के बाद, लेखकों, कवियों और कलाकारों को घोर निराशा प्राप्त हुई, और आजादी आज भारत के एक वर्ग-विशेष को छोड़ किसी के लिये भी वरदान सिद्ध नहीं हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई-कवि-कलाकारों ने इस व्यथा को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। 'पर अब भी'......श्री ललित की इसी व्यथा से उद्भुत कविताओं का एक छोटासा संकलन है। मूल्य भी कोई अधिक नहीं है।

धरती पर उतरो--ले० श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' प्रकाशक विनोद पुस्तक मन्दिर, हॉस्पिटल रोड, आगरा, मूल्य २॥)

श्री 'कमलेश' की उपरोक्त संग्रह में दी हुई रचनायें भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ही जनता की दयनीय अवस्था से प्रेरित होकर लिखी गई हैं। इस संग्रह की अधिकांश रचनायें, शोषित, पीड़ित जनता को सार्वभौम क्रांति के लिये वातावरण तैयार करनें में प्रेरित-प्रोत्साहित करती हैं। उदाहरणार्थ-

पीड़ित जन का हृदय
प्रश्न करता अपने से
क्या 'स्वराज्य' है यही
किया जिसके हित हमने

तन-मन-धन
सर्वस्व-समर्पण

इसी तरह आज के शासक-समाज के कुत्यों से संतप्त होकर कवि कहता है--

नहीं एक दो
अरे अवा का अवा यहां तो बिगड़ गया है
चिन्तन-फलसे
सत्य-अहिंसा का सारा सत निचुड़ गया है
सूंघ गया है सांप अनैतिकता सबको

इस प्रकार रचनायें आज की विषम-स्थिति का बड़े मार्मिक ढंग से दिग्दर्शन कराती हैं, पुस्तक की छपाई सफाई सुन्दर है।

दूब के आँसू—ले० श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' प्रकाशक सहयोगी प्रकाशन आगरा। मूल्य २) रु०

श्री 'कमलेश' का यह संग्रह प्रेम-गीतों में हृदय की व्यथा-कथा व्यक्त करता है, रचनाओं मे व्यर्थ शब्दाडम्बर न होकर सीधे-सादे ढंग से कवि ने अपने हृदय की बात कहना चाहा है, कवि का उद्देश्य निराशा में विवशता से घुट मरना नहीं है, वरन् कर्तव्य-रत रह कर अपने लक्ष्य की ओर संकेत करना है कुछ पद्यों में कवि की प्रणय निराशा, प्रणय संदेश और व्यथा का व्यक्तीकरण स्पष्ट है, हां उन पर उसने पर्दा नहीं डाला है और इस दृष्टि से कवि अपनी रचनाओं में सफल भी हुआ है। काव्य-प्रेमियों को कवि के दोनों संग्रह पढ़ लेना चाहिये।

—ल० ना० उ०

कल्पना का कला अंक

कल्पना का कला अंक हिन्दी की प्रगति में एक नये प्रकाश-स्तम्भ और दिशा-निर्देश का प्रतीक होगा।

कला अंक में कला-क्षेत्र के प्रख्यात व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत अध्ययन-सामग्री से लाभ उठाइये। हिन्दी में इस तरह का कोई प्रकाशन अब तक नहीं हुआ है।

इस अंक में कला के विभिन्न अंगों पर सर्व श्री डा. स्टेला क्रैमरिश, डा. हरमॅन ग्वेत्से डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, डा. मुल्कराजआनन्द. रायकृष्णदास. डा. मोतीचन्द्र, अजित घोष, कुमारी जया अप्पास्वामी, आर. वॉन लिडेन, ओ. सी. गांगुली, नीरद चौधरी, विनोदबिहारी मुखर्जी, मार्सेल्ला हार्डी, कार्ल जे. खंडेलवाला, पी. नियोगी, एन. एल. बोस सुधीर खास्तगीर, आदि के लेख पढ़िए।

इस अंक के विशेष सम्पादकः– १. जगदीश मित्तल, २. दिनकर कौशिक और ३. के. एस. कुलकर्णी.

इस अंक का मूल्य ५)

मार्च ५३ तक १२) भेजकर कल्पना के वार्षिक ग्राहक बनने वालों को विशेषांक के लिये अतिरिक्त मूल्य नहीं देना पड़ेगा।

व्यवस्थापक, कल्पना
८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद दक्षिण.

(१)

तोड़ रहे जड़-बन्धन मिथ्या,
जग का माया जाल।
तुम आत्म लीन हो ब्रह्म लीन,
प्रखर वह्नि की ज्वाल ॥

(२)

तुम योगी, चिंतक, आराधक,
तुम प्रलयंकर शंकर ।
तुम उन्मुक्त, तत्वज्ञानी हो,
तुम हिम-उन्नत, दृढ़तर ॥

(३)

या तुम शुद्ध-बुद्ध चेतन हो,
या पावन सुर-सरिता।
कल-कल स्वर में जो कुछ गाया,
स्वयं बन गये कविता ॥

(४)

आत्मशुद्ध ! सौन्दर्य स्वयं ही,
होता है न्यौछावर ।
तुम विरक्त जग का वैभव भी,
बलि होता है तुम पर ॥

महाकवि निराला का अभिनंदन !

महाकवि श्री निराला

(५)

निर्धनता क्या तुम्हें सताये,
तुम हो अवढ़र दानी।
अन्नपूर्णा चेरि तुम्हारी,
भरता धनपति पानी ॥

(६)

तुम दार्शनिक तत्वचिन्तकों की,
जोड़ रहे हो लड़ियां।
छन्द-बन्द कारा की तुमने,
स्वयं तोडदी कडियां ॥

(७)

सूर्य समान कान्तिमय, करते—
कण-कण में उजियाला।
अपने पन में तुम एकाकि,
जय कविवर्य ! निराला !!

(८)

जय युग-चेतन ! युग निर्माता !
जय हिन्दी के गौरव !!
शत-शरदोत्सव अमर मनावें !!!
नव बसन्त की जय, नव!!

श्री 'करुणेश'

महत्वपूर्ण सम्मतियां

मध्य-भारत के मासिक पत्रों में 'विक्रम' का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अंक मध्य-भारत अंक के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसमें मध्य-भारत सम्बन्धी अनेक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक लेख हैं। अधिकांश लेख महत्वपूर्ण हैं और अपने विषयों के सुयोग्य लेखकों द्वारा लिखे गये हैं।

—मध्य-भारत संदेश

'वक्रम' का नव-वर्षांक देखने में आया। अंक बहुत ही उपयोगी प्रतीत हुआ। 'व्यास-उवाच' का 'वेद विमर्श' 'हमारी ईमानदारी (!) लंका में से बोली' 'राष्ट्रभाषा की दशा' 'उत्तर और दक्षिण प्रदेश की अश्लीलता' 'मिस्टर इण्डिया का चुनाव' ''स्व. सहगल जी' और साहित्यिक और-पत्रकार के सदाचार का 'स्वरूप' में एक ही बार में पढ़ गया। सबके सब एक विशेष दिशा का निर्माण करने के लिए जैसे आन्दोलन के लिये परिकर-बद्ध हैं और यही है आज की नितान्त आवश्यकता। मेंढकों की भांति ढेर के ढेर पत्रों में 'विक्रम' जैसे दो चार ही पत्र देखने में आरहे हैं। आपके प्रयत्न की सफलता के साथ मेरी आंतरिक सहानुभूति है। शिननाथ दूबे

संपादक 'कल्याण—

पटना की प्रसिद्ध पत्रिका 'अवन्तिका' लिखती है-

'विक्रम प्रायः पिछले ६ वर्षों से हिन्दी की बड़ी सेवा कर रहा है। योग्य सम्पादक के सम्पादकत्व में इसमें विविध विषयों के सुन्दर लेख प्रकाशित होते रहे हैं। विक्रम की सम्पादकीय-टिप्पणियां 'व्यास-उवाच' नाम से प्रति अंक में सोलह पृष्ठों में प्रकाशित होती है। टिप्पणियों में उपयोगी-विषयों पर बहुत सुन्दर ढंग से विवेचन किया जाता है। विक्रम की गणना हिन्दी के प्रमुख-पत्रों में बड़े आदर के साथ की जाती है।

विक्रम के मध्य-भारत अंक में मध्य-भारत की सुन्दर झांकी देख कर मन प्रसन्न हो गया। आपका मालव और विशेष कर उज्जैन के प्रति मोह ईर्ष्या का विषय हो सकता है। इसका कारण आपकी भारत की प्राचीन-संस्कृति के प्रति अटूट ममता ही है।

--प्रो. विनयमोहन शर्मा

श्री रतनलाल परमार, पत्रकार—

"अतीव हर्ष का विषय है कि 'विक्रम' चिरकाल से मालव महान की यश-गाथा गाते हुए चला आ रहा है। मैं कह सकता हूं कि जिस प्रकार से मालव के उज्वल प्रतीक नर-रत्नों ने संसार में कीर्ति-ध्वजा लहराई थी उसी प्रकार से 'विक्रम' हिन्दी-साहित्य संसार में मालव के साहित्य--संस्कृति और कला का केतु फहरा रहा है। 'विक्रम कीर्ति-मन्दिर स्मृति अंक' में अपनी अनुपमेय सम्पादकीय-टिप्पणियों से जो जानकारी दी गई है, वह इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।"

प्राची बिहार—

" 'विक्रम' मालवा-क्षेत्र से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गवेषणा का कार्य बड़ी तत्परता से कर रहा है। दिसम्बर के अंक में प्रकाशित डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का लेख "उज्जयिनी और उज्जयिनी" अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सम्पादकीय टिप्पणियों में हिन्दी की वर्तमान गतिविधि पर भी इसबार दृष्टि-निक्षेप किया गया है। 'धर्म निरपेक्षता निरर्थक' शीर्षक टिप्पणी विचारपूर्ण है। पं. सूर्यनारायण व्यास अपनी टिप्पणियों में विविध प्रकार की सामग्रियां देते हैं। इस मामले में 'विक्रम' हिन्दी के क्षेत्र में अकेला है।"

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

८९५/१२
२६-५०

गुरुकुल-पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी.

[illegible]
१९५३

पौष
माघ
२००६

संचालक संपादक
सूर्यनारायण
व्यास

मध्य-भारत में सबसे बड़ा साबुन का कारखाना

कैलाश सोप फैक्टरी आगर रोड, उज्जैन

नहाने के
साबुन से
शरीर
साफ, स्वच्छ
रहता है।
किसी प्रकार
की खुजलाहट
या
झुंझलाहट
नहीं आती।
नींद बेफिक्र
आती है।
हर तरह का
आनन्द
मिलता है।

कपड़ों की स्वच्छता के लिए —
कैलाश सोप
कैलाश सोप ही सर्वोत्तम है
कैलाश सोप
KAILASH BAR SOAP
KAILASH SOAP
मालिक: दि विनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड — उज्जैन
निर्माता: दि कैलाश सोप फैक्टरी, आगर रोड — उज्जैन

वस्त्र
धोने का
साबुन
टिकाऊ, सस्त
और
कपड़ों की
मजबूती
को
कायम रखने
वाला है
घिसता
कम है, अधि
टिकता है।
परिश्रम क
लगता है।

[१] (ग्वालियर व इन्दौर को छोड़कर) मध्य-भारत के प्रमुख विक्रेता——

मेसर्स अनंत उपयोगी वस्तु भंडार, सती दरवाजा उज्जैन

[२] ग्वालियर के एजन्ट——

मेसर्स कृष्णमोहन चन्द्रमोहन, सराफा बाजार लश्कर

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
।।=)

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

१ अभिनवाब्द् पदन्या से शुभाशंसा ... श्री० शैलेन्द्र पाठक ...
२ व्यास-उवाच ... ... सम्पादकीय १-१६
३ अवंती का राजनैतिक इतिहास ... श्री० विमलचरण ला १७-२०
४ नवयुग के सफलता की अजोड़ कुंजी विनोद ... ,, श्रीनिवास जोशी बी. ए. २१-२४
५ राजस्थानी रनिवास के व्रत-त्योहार ... ,, राहुल सांकृत्यायन २५ ३५
६ शासन के सामने पंचांग विषयक सांस्कृतिक ...
महत्व का प्रश्न ... ,, मा० वि० किबे एम. ए. ३६-३८
७ भारतीय उत्सवों में मनोवैज्ञानिकता ... ,, श्यामनारायण व्यास ३९-४२
८ परिचय परामर्श ४३-४४
९ अर्चना ... ... ,, विद्यावती मालविका ४६
१० कोकिला मौन हो गई ... ... ,, बसन्तीलाल 'बम'

Advertisement Rates.

Cover page 2nd Rs. 200 per Insertion.
" " 3rd Rs. 150 " "
" " 4th Rs. 300 " "
(In two colours.)
Ordinary full page Rs. 100 " "
" Half page Rs. 60 " "
" Quarter page Rs. 35 " "

विज्ञापन के दर

टाईटिल द्वितीय पृष्ठ – २००) प्रतिमास
" तृतीय पृष्ठ – १५०) "
" चतुर्थ पृष्ठ – ३००) "
(दोरंग में)
साधारण पूरा पृष्ठ – १००) "
" आधा पृष्ठ – ६०) "
" चौथाई पृष्ठ – ३५) "

पत्र व्यवहार का पता— "विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

अभिनवाब्द पदन्यासे शुभाशंसा

कान्ता विशुद्ध रविगौर तनु विशाला–
सस्यैक नीलवसना नवतार हारा ।
मुग्धा रसाल कल काकलिका निनादा–
सेयं वसन्ततिलका नवसंवतः श्रीः ॥

मुग्धा रविन्द वन कान्ति हरा मुखे मे–
हृद्याऽनवद्य चरिता कविता चकास्तु ।
वाणी विलासपदलास्य विधान रक्षा–
सा काऽपि शक्ति रनिशं मम शंतनोतु ॥

सञ्जीवितार्ष-प्रतिभा-प्रभया पुरा या–
ज्योतिष्मती श्रुति सुधाशन भास्वरा या ।
विद्यैकरत्न–निकषोपल–कल्पिता या–
साभारती भवतु भारत-भव्य-भूत्यै ॥

सा वीर शक्ति रमला प्रतिभा कवीनां–
वाणी स्वभाव मधुरा चतुराननस्य ।
विद्यावधूवर चिदात्म सुखैक कोषः–
सारस्वत स्वमखिलं मम भूतयेऽस्तु ॥

—शैलेन्द्र पाठक

मध्य-भारत एवं उत्तर प्रदेश के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ६ खंड २] पौष-माघ सं० २००९ वि०, जनवरी-फरवरी सन् १९५३ [अंक ३-४ पूर्ण सं० ६९

व्यास उवाच

समाज और साहित्य–

साहित्य का सम्बन्ध विचार और वाणी के समन्वय से है, यह समन्वय व्यक्ति में होता हैं, और व्यक्ति समाज का अंग है इसलिए वह समाज और समय से प्रभावित होता है, जिसमें वह उत्पन्न है। इसी कारण समय और समाज का प्रतिबिम्ब साहित्य होता है, विचारों की सूक्ष्म आत्मा शब्दों की स्थूल सृष्टि में जन्म लेकर देह धारण करती है। यदि वैचारिक आत्मा स्वस्थ सबल सुन्दर, और पुष्ट होतो उसका शब्ददेह चिरजीवी बनजाता हैं, और उसका सौंदर्य एवं स्वास्थ्य समाज के लिये हितकारी बन जाता है। समाज के मानस को समंजस बना देता हैं, किन्तु जिस प्रकार जीवन में गति होती हैं, उसी प्रकार विचारों को भी प्रगतिमय होना आवश्यक होता हैं। प्रगति जीवन होने का लक्षण हैं बल का प्रतीक हैं। यदि विचारों में प्रगतिशील नव-शक्ति का प्रवाह न हो तो वह निष्प्राण बन जाता हैं। वह अपने युग-समाज का भी उचित प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, फिर वह युग-युग में जीवित रहने का साहस कैसे संचित कर सकेगा? जिस समाज या युग में जीवन का मूल्यांकन अर्थ, और स्वार्थ से सम्बधित बनने लगता है, वहां मानसिक धरातल नीचे उतरने लग जाता है। उस निम्न धरातल पर रह कर प्राणी उतना समरस सामाजिक नहीं रह पाता, जितना उसे समाज का उचित प्रतिनिधित्व करना चाहिये, तब उसकी विचार धारा भी किस प्रकार निर्मल वा-निर्विकार रह सकती हैं? यदि वह निर्विकार नहीं रही तो उसका निर्मित् शब्द-देह कैसे स्वस्थ-सुन्दर और चिरजीवी रह सकेगा? अस्वस्थ-असुन्दर देह समाज के लिए कैसे उपयोगी हो सकता हैं। अवश्य ही इस जीवन के [illegible] के लिए अन्य साधनों से

सम्पन्न बन जाए, इतर क्षेत्रों में प्रगति भी साध्य करलें, पर वैचारिक लघुता, निर्बलता और असुन्दरता के कारण समाज-स्वास्थ्य के लिए हितकारक नहीं हो सकते। न उस समय और समाज का उचित प्रतिनिधित्व ही कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में हमारे साहित्य का न तो सामयिक मूल्य रहता न सामाजिक ही, वह विचार-विलास क्षणिक कौतूहल या मनोरंजन का विषय भले ही बन जावें, साहित्य की परिभाषा में उसे प्रवेश प्राप्त न हो सकेगा।

वेद-कालीन कला-कौशल !

वैदिक-काल के ऋषियों को अनेक प्रकार की युद्ध-पद्धतियां अवगत थीं। उस समय पंदल कवायद सिखलाई जाती थी। सेना में अश्वारूढ़, गजारूढ़, रथारूढ़ वीर रहते थे। समुद्र यात्रा भी की जाती थी। विदेशों के साथ व्यापार-विनिमय चलता था। नौका और जलपोत चलते थे, विमान का प्रयोग होता था। जरी, रेशम और सूत्र के कपड़े भी बनाये जाते थे। अंक-गणित और भू-मापन शास्त्र भी ज्ञात थे। लोह-दुर्ग तथा कई मंजिलों के भवन निर्माण करने की कला भी अवगत थी। स्थापत्य-शास्त्र के विषय में उस समय की जनता पर्याप्त प्रगतिशील प्रतीत होती है। इसी तरह काल-मापन में उनकी प्रवीणता प्रथम-श्रेणी की ज्ञात होती है। ग्रहणों के आरम्भ और मुक्ति का पूर्व ज्ञान उन्हें रहता था। मालूम होता है आदान-प्रदान और व्यवसाय-विनिमय के लिए मुद्रा का प्रचलन भी होता था। लेखन-कला, यंत्र, मंत्र और तंत्र-शास्त्र के योग्य जानकार भी थे। वेद में इनकी सूत्र-रूप में जो कल्पना प्राप्त होती है, वे प्रवीणता की परिचायक है। उनकी प्रवीणता के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। युद्ध में विश्चुला नामक महिला का पैर टूट गया था, पर दूसरे दिन के सूर्योदय के पूर्व लोहे का पैर बनाकर 'फिट' कर दिया गया था। यदि यह ज्ञान उन्हें अवगत न होता, और उस समय विकसित न होता तो कैसे सम्भव है कि उसका वर्णन वेद में किया जाता। इसी प्रकार गौतम के लिए अश्विनीकुमार द्वारा दूर बने हुए कुए को निकट ला देना, और उसके तल-भाग को ऊपर उठा देना, एवं मुँह को नीचे कर देना बिना तद्विषयक प्रवीणता के कैसे सम्भव हो सकता था ? [illegible] सूचित [illegible] को जल सुलभ बना देने की यह कला कितनी विकसित हो गई होगी ? यह भी बतलाया है कि उस जल के सुलभ हो जाने से गौतम ने विपुल सम्पदा उपलब्ध की। इससे स्पष्ट है कि—उत्पादन क्षमता बढ़ा कर गौतम ने जल-प्रवाह का लाभ लिया था, और उसमें उनका ज्ञान विस्तृत रहा होगा। सम्भवतः उस कूप के जल को टंकी द्वारा ऊपर लेकर सर्व सुलभ बना दिया होगा। ऐसे अनेक वर्णन, सूत्र-संकेत रूप में मिलते हैं, और उनसे तत्कालीन समाज की योग्यता, दक्षता और विविध-विषय प्रवीणता का प्रमाण प्राप्त होता है।

सुवर्ण साधना !

भारतवर्ष की भूमि सोने की खदान है, यह उक्ति अनेक अंशों में सार्थक है, परन्तु इससे हमने सोने को केवल खदान से प्राप्त होने वाला ही समझा है। पश्चिम प्रदेश ने श्वेत सुवर्ण (प्लेटीनम्) के नाम से हमें एक नवीन सोना सूचित किया है, परन्तु यह सोना यद्यपि हमारे लिए 'प्लेटीनम्' बनकर भले ही नया आया हो। वस्तुतः भारत इस श्वेत सुवर्ण को ही नहीं, सोने की कई जातियों से परिचित रहा है, जिन्हें आज तक दुनिया नहीं जानती। कोषकार ने सदियों पूर्व सोने को तीन रूपों में जाना है, सुवर्ण--हेम और हाटक। यद्यपि ये एक सुवर्ण के पर्यायवाची शब्द हैं, पर ये उनकी विभिन्न जातियों के भी परिचायक हैं। आयुर्वेद के रस-ग्रन्थों, वात्स्यायन के काम-सूत्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने सुवर्ण के और भी कई भेद बतलाए हैं। उनके प्रयोग के लिए सुवर्ण की विभिन्न जाति के उपयोग की सूचना की है। रसायन शास्त्र के द्वारा सुवर्ण निर्माण की शतशः विधियों का उल्लेख मिलता है। आज का नया वैज्ञानिक चाहे उसकी सचाई स्वीकार न करे, उसके निर्माण का प्रयोग न जाने, गहराई में न पहुँचे, और उसे अ-सिद्ध सूचित करता रहे किन्तु उसके विधानों की विविधता और शास्त्रीयता प्रकट करती है कि अन्य धातु और वनौषधियों के प्रयोग से ऐसे सुवर्ण का निर्माण होना सिद्ध है। पारद और जस्त से निर्मित सुवर्ण में सोने का अपेक्षित घनत्व सुलभ होता है। वैसे अन्य धातुओं से भी सुवर्ण का वर्ण प्राप्त हो [illegible] उपलब्ध नहीं होता। पारद के

बांधने की जिन वनौषधियों में सामर्थ्य है, उनके द्वारा आबद्ध-पारद वास्तविक सुवर्ण का निर्माण करने में सक्षम बन जाता है और इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी आंखों से सफल प्रयोग देखा है। वैसे अनेक साधक इसके निर्माण के पीछे जीवन यापन कर गए, और निराश बने हैं। यह अनेकों को पागल बना चुका है, तथापि इसके प्रमाणित होने में सन्देह का कारण नहीं है। यह रासायनिक-सुवर्ण अवश्य स्वतन्त्र है और सुवर्ण की ९ जातियों में इसका समावेश अवश्य है। वात्स्यायन जैसे आचार्य और कौटिल्य जैसे राजनीति प्रवीण व्यर्थ ही उल्लेख न करते, फिर रसायनाचार्यों की बात ही भिन्न है, जिन्होंने विज्ञान के आधार पर ही उसके निर्माण की विविध-विधियां प्रस्तुत की है। सोने की जातियों में जाम्बूनद, शातकौम्भ, हाटक, वैणव, शृंगी, शुक्तिज, जातरूप, रसविद्ध और आकरोद्भव (खान से उत्पन्न)। इनमें वैणव--बांस से उत्पन्न होने वाला, शृंगी--सींग से प्राप्त, शुक्तिज--सीप से बनने वाला तथा रसविद्ध--यानि रसायनों से निर्मित, इन विशेष प्रकार के सुवर्ण की कल्पना भी शायद विदेशियों को न हो ? इनके अलंकार निर्माण की विभिन्न विधियां और उनके मौलिक नामकरण और विधान का विवरण तो अपनी स्वतंत्रता--मौलिकता एवं विशेषता लिए हुए है। आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य के प्रकार अलग-अलग हैं। इन कल्पनाओं की सुन्दरता तथा गरिमाओं को न तो आज का अलंकार-प्रिय व्यक्ति जानता है, न निर्माता ही। जिस भारत देश में सदियों पूर्व सोने के ९ प्रकार खोजे हैं और जिसकी बालुका में सुवर्ण-कण प्राप्त होते हैं, सुवर्ण-माक्षिक मिलता है, जिसकी कई वनौषधियां सुवर्ण-निर्माण की क्षमता रखती है, उसके मौलिक-ज्ञान की तो उपेक्षा ही की जाती है। फिर उस 'श्री-सूक्त' को समझने और वैज्ञानिक-कसौटी पर कसने की किसे चिन्ता या प्रवृत्ति हो सकती है, जिसमें 'हिरण्य वर्णां-हरिणीं—सुवर्ण रजतस्रजां--चंद्रांहिरण्मयीं--लक्ष्मीं' आदि शब्दों में सुवर्ण निर्माण की विविध वस्तुओं का स्पष्ट उल्लेख है। आज इसे नाम—पाठ का विषय बना कर भावुक-भक्त सम्पन्नता--साधना चाहते हैं, जबकि उसके पद-पद में लक्ष्मी की प्राप्ति की साधना सुरक्षित प्रतिपादित है।

प्रथम संस्कृत-दीक्षांत भाषण—

भारत की अनेक शिक्षा संस्थाओं में दीक्षांत भाषणों की परम्परा चलती रहती है, इन परम्पराओं में शायद ही कहीं भारतीयता दृष्टिगत होती है। प्रायः पश्चिमी प्रवृत्ति का ही अंधानुकरण होता है, जहां विदेशी शिक्षा का प्रभाव हो--महत्त्व हो, मान्यता हो, वहां दीक्षांत का समारोह भारतीय-पद्धति से हो भी कैसे सकता है ? फलतः उस परम्परा में पोषित-प्रेरित-छात्र स्वदेशी शरीर-धारण करके भी विदेशी-मानस लेकर हमारी संस्कृति-साहित्य की अवहेलना करने वाले हों तो विस्मय का कारण नहीं, यही कारण है कि हाल ही में राज्यपरिषद में प्रस्तुत हुए साहित्य सम्बन्धी प्रस्ताव में एक सदस्य ने संस्कृत को 'मृत-भाषा' कह कर अपनी विकृत मनोवृत्ति का परिचय दिया, पता नहीं उन्होंने फिनलेन्ड के भारत-स्थित राजदूत का वह दीक्षांत भाषण पढ़ा या नहीं जो बनारस के संस्कृत-महाविद्यालय के शिक्षा—सूत्र के संयुक्त द्विवर्षीय-अधिवेशन के समय संस्कृत में दिया और विदेशी रहते हुए भी इसकी संस्कृति और संस्कृत भाषा के गौरव का जी भर कर गान किया। जहां तक हम जानते हैं, भारत में स्वतंत्र होने के बाद यह पहला दीक्षांत भाषण है, जो संस्कृत में दिया गया है और वह भी सुदूर-पश्चिम के एक राजदूत द्वारा। मृत-भाषा कहने वाले उन भारतीयों का पश्चिमी मस्तक लज्जा से अवश्य झुक गया होगा जो इस देश में उत्पन्न होकर भी इस देश की संस्कृति से अज्ञान बने हुए हैं। आज विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है, उपाधियां दी जाती हैं। संशोधन की सुविधा है परन्तु हमारे यहां अनेक विशेषज्ञ उच्च शिक्षा में अब भी अंग्रेजी का मोह संवरण नहीं कर पाते, संस्कृत और राष्ट्र भाषा-हिन्दी के विशेष ज्ञान के लिए भी विदेशों में छात्रों को भेजते हैं। मानों इन भाषाओं का ज्ञान भी समुद्र पार पनपता है और हमारा गौरव गोरों के हाथों में सुरक्षित बना हुआ है, जब कि फिनलेन्ड के राजदूत स्वयं अपने संस्कृत भाषण में यह स्वीकार करते हैं कि 'इस समय विभिन्न राष्ट्र पारस्परिक आदान-प्रदान के द्वारा एक

विश्व-संस्कृति का निर्माण कर रहे हैं। पश्चिम ने इसमें अपना औद्योगिक दान देकर योग किया है, किन्तु ऐसा करते हुए उसमें अपनी आत्मा को खो दिया है, संस्कृत की संस्कृति की समृद्ध निधि के रूप में 'भारत' के पास अपनी आध्यात्मिक बुद्धि एवं प्रतिभा का अक्षय भंडार है, जिसे वह विश्व के अन्य राष्ट्रों को प्रदान कर सकता है। उन्होंने कहा है कि 'स्वतन्त्र भारत के सामने सम्प्रति अपनी संस्कृति की परम्पराओं को स्वदेश और विदेशों में विस्तृत करने का तथा भारत को संस्कृत अध्ययन के केन्द्र बनाने का गुरु दायित्व है।' परन्तु इस दायित्व को समझने की शक्ति और दृष्टि हमारे पथ-प्रदर्शक नेताओं और शासकों को कहां प्राप्त है!

फिनलेंड के राजदूत ने यह सत्य कहा है कि:—

"प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य एक ऐसा समुन्नत पिरामिड है जिसमें तत्कालीन सभी ज्ञान-विज्ञानों का संगत और समन्वित मानवीय ज्ञान प्रतिष्ठित है। मानव के मन और जीवन एवं मृत्यु के सम्बन्धों में प्रश्नों का उत्तर खोजते हुए हमें संस्कृत-साहित्य में जो परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं वे ग्रीक दर्शन से कहीं अधिक उत्कृष्ट हैं। धर्म के क्षेत्र में वेदांती और भक्त-जीवन की गहन समस्याओं के बारे में बहुत दूर पैठ गये हैं।"

"जिस प्रकार संस्कृत के द्वारा भारतीय विचार-धारा ने एशिया को सुसंस्कृत व आनन्द-मय जीवन प्रदान किया है, उसी प्रकार ग्रीक विचार-धारा ने कुछ सीधे रूप में तथा लेटिन के द्वारा यूरोप को सभ्यता प्रदान की। इसी कारण यूरोप बहुत समय तक संस्कृत के ज्ञान से वंचित रहा।"

पर आज यूरोप उस ज्ञान का महत्व अनुभव कर रहा है, और हमारा देश उसे 'मृत-भाषा' कहकर उसकी भाषा और संस्कृति की ओर ताक रहा है। क्या स्वतन्त्र भारत इन राजदूत के सरल मधुर संस्कृत में कथित भाषण का मर्म-महत्व समझेगा। जो भी हो, राजदूत ने संस्कृत में दीक्षांत भाषण देकर इस राष्ट्र की उन्नत परम्परा का पुनः स्मरण दिलाया है, कह नहीं सकते कि शासन को वह जागृत करने में सक्षम हो सकेगा या नहीं।

राष्ट्रीय-पंचांग की एकता का प्रयास!

बहुत समय से विद्वानों में यह विचार का विष बना हुआ है कि सारे भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रीय-पंचांग की आवश्यकता है। आज सारे देश में पंचांग अनेकों पक्षों का आधार लेकर विविध-रूप में प्रचलित हैं। उनकी स्थिति विविधता के कारण चिन्तनीय है, और जनता भी भ्रांत बनकर कोई निर्णय नहीं कर पाती। धार्मिक विधि-विधानों, पर्व-उत्सव में भी भ्रमित हो जाना पडता है। ऐसी स्थिति में किसी निर्णय पर आना आवश्यक प्रतीत होता है, किन्तु जब तक सरकार का इसमें सहयोग न हो तब तक कोई निर्णय सम्भव नहीं। हालही में केन्द्रीय विज्ञान-अनुसंधान विभाग की ओर से ए कमेटी बिठलाई गई है जो इस पंचांग-निर्णय पर सरका को सलाह देगी। इस कमेटी में डॉ० मेघनाद साहा डॉ० गोरखप्रसाद, और डॉ० दफ्तरी, करंदीकर आदि हैं पता नहीं उज्जैन की वेधशाला से हटाए गए श्री० वें को भी इसमें कैसे सम्मीलित किया गया, जो कि ज्योति गणित के सम्बन्ध में अनजान हैं, और जिन्हें पूना पण्डितों ने प्रकट-रूप में इस विषय से अनभिज्ञ माना है इस कमेटी में किसी भी विज्ञ-पंचांग प्रणेता का समावे न करना विस्मय जनक अवश्य लगता है।

इस कमेटी ने ३ दिन के परामर्श के पश्चात् सरका को सलाह दी है कि समग्र भारतवर्ष के लिए वैज्ञानि पद्धति के एक राष्ट्रीय सौर पंचांग की आवश्यकता है उसमें धार्मिक हेतुओं के लिए आवश्यक चांद्रमान जुड़ा लेना चाहिए। और इसके लिए गणना की दृष्टि ग्रीन्विच के पूर्व स्थित उज्जैन के अक्षांश पर एक स्थल सारे भारत के केन्द्र-रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए कमेटी ने यह भी सरकार से अनुरोध किया है कि-आ निकतम साधनों के साथ केन्द्रीय खगोल-वेधशाला स्थापना की जाए।

समिति के ये सुझाव उपयोगी हैं, भारतवर्ष उज्जैन ही ऐसा स्थल है, जहां से सारे राष्ट्र की का गणना के लिए खगोलीय एवं भौगोलीय सुविधा प्रा है। विक्रम में हम इसके पूर्व भी इस पर प्रकाश डा चुके हैं। भारत का यह सर्वथा ग्रीन्विच रहा है,

सुविधा सम्पन्न वेधशाला के स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। डॉ० मेघनाथ साहा की यह भ्रांति है कि भारतीय पंचांग गणना पद्धति में 'अनिश्चितता' और 'असह्य-स्थिति' है। वस्तुतः भारतीय काल-गणना में, पद्धति में कहीं भी अनिश्चितता प्रतीत नहीं होती। सृष्टयादि प्रलयांत काल को भारतीय-पद्धति में यथास्थान स्थिर किया है। अवश्य ही अन्य देशों की काल-गणना अपूर्ण एवं विकृत बनी हुई है।

ग्रीक या खाल्डियन गणना के आधार पर ऐसा कौनसा केलेण्डर बना है, जो हमारे लिए उपयोगी हो सकता है ? हां, कोपिनकस के काल में हमारी और पश्चिम की स्थिति समान रही है। उसके बाद वहां संशोधक उत्पन्न होते गए, और उन्हें राज्याश्रय भी सुलभ होता रहा, किंतु यहां जो प्रमाद प्रतीत हो रहा है, उपेक्षा अवगत हो रही है, उसका कारण सरकार की उदासीनता ही है। आज इस देश में कौनसी ऐसी वेधशाला है, और साधन उपलब्ध है ? जहां साधारण कार्य हो भी रहा है तो शास्त्रीय पद्धति की उपेक्षा कर अंग्रेजी के अनजान अनुकरण प्रिय अनुवादकों के हाथ में उनका सूत्र है, ऐसी स्थिति में कौनसे संशोधन और सुधार की अपेक्षा की जाय ? स्वयं डॉ० साहा कालमान में पवित्र-अपवित्रता का भेद प्रस्तुत कर पंचांग के धार्मिक कार्य समन्वय की अवहेलना कर रहे हैं, जब कि हमारे पंचांग जहां ऋतु-मान के अनुकूल स्वास्थ्य सूचना पद्धति के सहायक बन आयुर्वेद के सहायक हैं, वहां वे धर्म शास्त्र मर्यादा से मिलकर भारतीय संस्कृति के साथ सहयोगी बने हुए हैं, यह समन्वय अत्यन्त महत्व-पूर्ण एवं संतुलित है, भारतीय परम्परा के साथ है, ये केवल कोरे 'केलेन्डर' ही नहीं हैं जो ऑफिस में टांग कर कुर्सी के काल को बतलाते रहें, और कभी २८ फरवरी करदें और ३० दिन का दर्शन भी करवा दे, भारतीय गणना में जो धर्म, या डॉ० साहा के मतानुसार 'पवित्रता' है वह भी खगोल से सम्बन्धित और वैज्ञानिक है। हमारे पंचांग को धर्म और आयुर्वेद के साथ जकड़ कर उसे सर्वथा देश की संस्कृति के साथ समवेत बनाये रखा है यहां दिनारंभ अर्ध रात्रि से माना जाता रहा है। प्राचीन गणना भी मध्य रात्रि से ही है, कुछ काल से सूर्योदय से मानली गई, परन्तु गणना क्रम मध्य रात्रि से ही है, और तिथियों की गणना चांद्रमान से है। वसन्त सम्पात और उत्तरायण-बिन्दु से वर्षारंभ मानना इसमें सम्पात बिंदु से वर्षारंभ भी वैदिक वर्षारंभ है। केलेन्डर में चन्द्र की अपेक्षा सूर्य से काल विभाजन उपयोगी है। वसन्त सम्पात से वर्षारंभ मानने पर वर्षमान ३६५-२४-२२ ही मानना पड़ेगा डॉ० साहा ने एक केलेंडर भी बनाया है। पर उसे निश्चित किए बिना वार और दिनांकों में मेल नहीं बिठलाया जा सकेगा। हमारी ऋतु को लेकर जो गणना है, वह स्थिर और महत्व पूर्ण है। १४०० वर्ष पूर्व आज के अनुसंधान से भी उसमें कोई दोष दिखाई नहीं देता, यदि मासगणना ऋतु से ही अभीष्ट है तो सांतंब गणना ही योग्य हो सकती है, और नहीं।

हम समिति के विचारकों से अनुरोध करेंगे कि वे भारतीय और अन्य पद्धति का गंभीरता से विचार करें और धर्मशास्त्र एवं काल गणना के समन्वय को लेकर ही एकता साध्य करें, इसके लिये भारतीय गणना परम्परा ही सहायक हो सकेगी, अन्य नहीं। जहां केलेंडर की एकता और राष्ट्रीयता साध्य करना आवश्यक है। वहां भारतीयता का मुख्यत्व भुलाने योग्य नहीं है।

पंडितजी का पंडितों पर प्रकोप !

एक ओर राष्ट्र के लिए पंचांग की एकता आवश्यक समझी जा रही है, उसके लिए कमेटी बिठलाई जारही है, वहां दूसरी ओर पिछले साल से पंडित नेहरूजी विभिन्न भाषणों में ज्योतिषियों के और ज्योतिष शास्त्र के विरुद्ध व्यर्थ विष वमन करने में सन्नद्ध बन रहे हैं। अवश्य ही यह उन

के जैसे महान व्यक्ति के लिए अनुचित, अयोग्य और अज्ञानतापूर्ण ही है। शायद उन्हें यह ज्ञान भी न होगा कि ज्योतिःशास्त्र तीन भागों में विभक्त इस राष्ट्र का असाधारण एवं अप्रतिम विज्ञान है। हजारों वर्ष पूर्व उसमें किए गए अनुसंधानों और निश्चित किए सिद्धांतों को आज के किसी भी साधन-सम्पन्न एवं प्रगतिशील विज्ञान ने भ्रांत समझने का साहस नहीं किया बल्कि उसके समक्ष सिर झुकाने को विवश होना पड़ा, गणित और संहिता भाग तो ऐसे हैं जिन्हें निर्विवाद सर्वत्र स्वीकार किया जाता है। केवल ज्योतिष का एक ही विभाग फलित (भविष्य कथन) ऐसा है जिस पर आधुनिकों के कुछ वर्गों में (अज्ञानवश) मतभेद है। यह मतभेद मानव सुलभ है। और यह व्यक्ति की प्रयोगात्मक क्षमता पर निर्भर रहता है। इसलिए सीमित-समझ के कारण सफलता-असफलता को लेकर मतभेद का विषय बन जाना स्वाभाविक है। तथापि इन मतभेदों के रहते हुए भी यह फ़लित भाग आज तक चल रहा है, और चलता रहेगा। क्योंकि उसमें निहित तथ्य और वैज्ञानिक आधार, भ्रांतियों से ऊपर है। उसके आधार में वे सिद्धांत हैं, जिन्हें इस देश के महान पूर्ववर्ति आचार्यों ने गंभीर अध्ययन और अनुभव को लेकर गणना के वैज्ञानिक आधार पर स्थिर किए हैं, परन्तु उनमें अन्तर आने का एक कारण तो यह है कि गणनाक्रम में खगोलीय-ग्रह-गतिविधि में जो परिवर्तन हुए हैं उनका सूक्ष्मता से अध्ययन, अवलोकन और गणना में समावेश नहीं हो पाया, क्योंकि यह सुविधा हमारे देश में कहीं सुलभ नहीं हुई है अपना शासन होने पर भी अनुसंधान के साधन नहीं है। सरकार की जरा भी सहयोग भावना नहीं। दूसरे यह कि यह प्रयोगशील विज्ञान है। जितने भी प्रयोगशील विज्ञान हैं उनमें प्रयोग-कर्ता की प्रज्ञा की पारगामी-शक्ति का आधार रहता है। वह यदि व्यापक बुद्धि-सम्पन्न सूक्ष्मावलोकन क्षम एवं प्रयोग प्रवीण एवं देशकालज्ञ होगा तो परिणाम भी निःसन्देह निश्चित प्राप्त होंगे। डॉक्टरी-विज्ञान के साधन अनुसंधान सम्पन्न और राज्याश्रित होते हुए भी जिस प्रकार प्रवीण प्रयोगकर्ता के सूक्ष्मावलोकन और समझ के अभाव में असफलता पल्ले पड़ती है, रोगी मरण पा जाता है, विकार अज्ञात रह जाता है। उसी प्रकार ज्योतिर्विज्ञान के इस फलित भाग की स्थिति है। परन्तु इस विज्ञान के अनुसंधान की राज्याश्रय की सुविधा कहां सुलभ है? प्रयोगशील विज्ञान डॉक्टरी के होते हुए भी उसके प्रवीण प्रयोगकर्ता के हाथों मृत्यु हो जाने पर न तो सरकार चीखती है न जनता ही। यद्यपि यह जानती है कि डॉक्टरी प्रयोग की सूझ-समझ भूल का वह शिकार होगया है। पर ज्योतिष के फल के फेल होने पर पंडितजी जैसे प्रधान पुरुष भी पुकार मचाने लगते हैं, वे दिल्ली में कुछ दलीलें दे चुके हैं। लखनऊ में भी ललकार लगा चुके हैं। उज्जैन में भी उन्होंने कुछ ऐसा ही उच्चारण किया था। हाल ही में तलैया बाँध के उद्घाटन करते हुए उन्होंने पुनः ऐसी ही आवाज उठाई है। उन्होंने ज्योतिषियों पर विश्वास करने वाले लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा–"तिलैया बाँध इस बात का सूचक है कि प्राकृतिक प्रकोपों पर विजय पाने के लिए मनुष्य अपने कठोर परिश्रम से क्या कर सकता है। केवल मूर्ख लोग ही अपनी कठिनाइयों के हल के लिए ज्योतिषियों के पास जाते हैं। बुद्धिमान मनुष्य मुसीबतों से पार जाने के लिए अपने दिमाग और अपने हाथ का प्रयोग करते हैं।"

—'हिन्दुस्तान'

पंडितजी को शायद यह पता नहीं कि ज्योतिषी कठिनाई के हल के लिए पूछने वालों को ग्रह बतलाकर, भाग्य देखकर आराम से पलंग पर पड़ जाने की सलाह नहीं देता। वह केवल अनुकूल अवसर पर काम करके यश पाने को प्रोत्साहित ही करता है। ज्योतिष की सलाह आदमी को सुस्त नहीं बनाती बल्कि निराश मन को जीवित रखकर जीवन युद्ध में जाग्रति और जोश से बढ़ने को अनुप्राणित भी करती है, आशा और उत्साह से आगे बढ़ने को प्रेरित करती है। आज लाखों करोड़ों की रोजी-रोटी का प्रश्न पंडितजी के प्रगतिशील शासन में खड़ा होगया है। सभी धन्धे बैठ गए हैं। बेकारी और बेरोजगारी ने तबाही लादी है। स्वतन्त्र धंधों में विश्वास नहीं रहा है। भयानक निराशा चारों ओर व्याप्त होगई है। केवल श्रम के भरोसे ही आज आदमी आगे बढ़ने की हिम्मत करने को तयार नहीं। तब यह ज्योतिष ही उनके मरे हुए मन की मलीनता को हटा कर उनके भावी की उज्वल रेखा को इंगित कर आशासंचार करता है। फलतः निराश मानव कठिनाई से

संघर्ष करने को ग्रहों की गणना से आश्वासन पा श्रम, धंदा कार्य, व्यापार, उद्योग करने को नए जोश से आगे बढ़ने का साहस संचय कर पाता है। पंडितजी यदि अपना अज्ञान आवरण हटा कर सावधानी से समझें—सोचे तो उनकी सरकार को ज्योतिष का इस कठिन-काल में बहुत बड़ा सहारा सुलभ हो रहा है। जिसके कारण निराश-मानव भावी को उज्ज्वल मानकर श्रम करने को प्रस्तुत बन रहा है, और विद्रोही भावना से विलग हो रहा है। पंडितजी के शब्दों में 'मूर्ख' लोग ही ज्योतिषी के पास अपनी कठिनाई के हल के लिए जाते हैं, तो कहना होगा कि जो मानव का बहुमत ज्योतिष को विज्ञान मानकर सलाह लेने जाता है, वह सब बकौल पंडितजी के मूर्ख है, तो पंडितजी कितनी बड़ी मानवता का सहज अपमान करते हैं, पंडितजी सभी समझदारों को सहज मूर्ख मानने का फतवा देते हैं। जो लोग ज्योतिषी के पास जाते हैं, वे इतना ज्ञान तो अवश्य रखते हैं कि ज्योतिषी उन्हें कुछ अपने पास से निकाल कर नहीं दे देता, एक विज्ञान के आधार पर उनका भावी-भाषित कर उनकी निराशा को निकाल कर जीवन के लिए आगे बढ़ने को प्रेरणा ही देता है यदि वह सभी को निराशा देता, घर में पड़े रहने की सलाह देता, या आसमान से सहज संपत्ति टपका देने की सम्मति देता तो शायद ही कोई 'मूर्ख' किसी ज्योतिषी से मिलने को जाता रहता। इस निराशा और अविश्वास ग्रस्त काल में पंडितजी को किसी बड़ी योजना और आश्वासनों में विश्वास दिलाने का सामर्थ्य नहीं है। वह उस गरीब ज्योतिषी की ग्रह-गणना से कथित भावी की प्रेरणा में है, जिससे मानव की आंतरिक-आस्था जागृत होती है, विश्वास और प्रेरणा प्राप्त करती है, और जीवन-युद्ध से हताश होनें वाले सैनिकों को पुनः संघर्ष करने के लिए तत्पर बनाती है।

आज भी जनता पर, शासन पर जो प्रभाव ज्योतिषियों का है, वह पंडितजी का नहीं, शायद पंडितजी इस प्रभाव को परख—पहचान ही नहीं पाए हैं। उन्हें नहीं मालूम की यदि कोई ज्योतिषी कह दे तो जो काम शासन के बल-आदेश या भाषण से नहीं हो सकता वह कुछ घंटों में एक ज्योतिषी कर सकता है। शासन चाहे जितने बिल और ऑर्डिनेंस बनाता रहे, पंडित का एक पंचांग हजारों शादियों को सहज रुकवा सकता है और जमा भी सकता है, एक पंडित किसी गांव को खराब बतला दे तो क्षणों में खाली करवा सकता है और शासन किसी बांध या योजना के लिए खाली करवाना चाहे तो मुश्किल का सामना करना पड़ेगा। किसी मकान से आज किसी को सहज नहीं निकलवाया जा सकता, पर एक पंडित घण्टों में अपनी सूचना से खुला छुड़वा सकता है, बड़े से बड़े अधिकारी को कार्य विरत बना सकता है, और दुगने जोश से कार्य करवा सकता है रिश्वत खोरी को खतरा बतला कर बड़े से बड़े रिश्वती को वह ईमानदार बनवा सकता है। पंडितजी को शायद पता होगा कि अनेक राजों-महाराजों को मि. मेनन से महीनों नहीं मिलने दिया गया है, और राज्यों का विलीनीकरण पंडितों की सलाह की राह देखता रुका रहा है। यह स्वयं सरदार पटेल ने पटियाला संघ के उद्घाटन के अवसर पर स्वीकार किया है। जो लोग लाखों अकलदारों पर हुकूमत करते हैं, करते रहे हैं उन पर एक पंडित की हुकूमत चलती रही है, आज भी चलती है, और कल भी चलती रहेगी, यह है ज्योतिषी का प्रभाव। वह जिस दिन ग्रहण बतला देता है लाखों आदमी उस अवसर पर भाग-दौड़ करते यात्रा करते नजर आते हैं, उसके बतलाए पर्व-प्रसंगों पर सरकार तक को सहायक बनने को बाध्य होना पड़ता है। आज वह यदि कोई खतरा खड़ा करदे, भय भावना भर दे तो सरकार के लिए मुसीबत बन सकती है, और वह चाहे तो अपने एक इशारे से सरकार के खजाने को बचाकर लाखों की लागत का काम बिना पूंजी के करवा सकता है। धंदे के लिए लाखों की पूँजी लगवा सकता है। बारिश की सुविधा सूचित कर करोड़ों किसानों को खेती के लिए उत्साहित कर सकता है, प्रेरणा भर सकता है, आज भी गए-गुजरे जमाने में धर्म निरपेक्षता की दुहाई फिरा देने पर भी ज्योतिषी की सलाह में जो शक्ति है, वह सरकार या शासन में नहीं है, निराश शासकों को भी कठिनाई में वह सहारा बन जीवन देने का सामर्थ्य रखता है। भावी भाषित कर कार्य क्षमता जागृत बनाए रख सकता है। पंडितजी ने अन्न की कमी के कारण एकाधिकबार जनता से अन्नविशेष छोड़ने, उपवास कर-

अन्नबचाने का अनुरोध किया होगा पर पंडितजी के कथन से ३५ करोड़ भारतीयों में से कितनों ने अन्न परित्याग कर पंडितजी के अनुरोध को स्वीकार किया ? यदि एक ज्योतिषी ने ग्रहों के प्रभाव की प्रेरणा देकर जनता को रोज उपवास करने के लिए सहज कह दिया होता तो हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं, लाखों लोगों ने सहज अन्न छोड उपवास कर डाला होता। यह ज्योतिषी का प्रभाव है जो पंडितजी देख सकते हैं, यदि पंडितजी उसकी ताकत को न पहचान सके तो यह देश का दुर्भाग्य है उस आचार्य प्रणीत विज्ञान का अपमान हीं है। पर व्यवहार कुशल देश काल से परिचित ज्योतिषी जनता शासन और राष्ट्र के लिए कल्याणकारी ही सिद्ध हो सकता है! समाज के समझदारों का बड़ा वर्ग उसकी सलाह पर चलता है, और कठिनाई में उसका सहारा मानता है, किंतु पंडितजी उस समाज को मूर्ख कह कर अपमानित करने का साहस करते हैं, इसे दुर्भाग्य ही कहना होगा नहीं तो क्या ?

यदि ज्योतिषी के पास जानेवाले मूर्ख हैं....?

ज्योतिषी के पास जाने वाले लोग यदि 'मूर्ख' ही होते हैं, यह मान लिया जावे तो पंडितजी शायद पसंद न करेंगे कि उनके परिवार के अनेक प्रचण्ड-मति पंडित भी ज्योतिषियों के निकट पत्रिका बनवाने, दिखलाने गए हैं, और आज भी केन्द्र से लेकर प्रांतों की सरकारों में पंडितजी के अनेक प्रखर-मति मंत्री--सहकारी-अधिकारी, प्रधान वर्ग के बडे-छोटे लोग अपनी पत्रिका के फेर में, भाग्य का लेखा-जोखा देख कर प्रभावित होने, प्रेरणा पाने, प्रोत्साहन प्राप्त कर प्रगति साध्य करने ज्योतिषियों के आश्रय में निरंतर पहुंचे हैं, पहुँचते रहते हैं, और पहुँचेंगे। क्या पंडितजी अपने उन सभी सहकारी स्नेही, साथी, श्रेष्ठ और ज्येष्ठ जनों को 'मूर्ख' मानने को मजबूर होंगे ? यदि नहीं, तो पंडितजी का यह प्रहार कितना निरर्थक, अज्ञान और लघुता का सूचक है, जो अपनों ही का अपमान कर सकता है। संभव है कुछ स्वतंत्र धंदे करने वाले गरीब पंडितों की रोजी पर पंडितजी के प्रहार का बुरा प्रभाव पड़ जाए, जब कि सारे देश का स्वतंत्र व्यवसाय आज की शासन नीति के समक्ष घुटने टेक कर बलि चढ़ रहा है, तब कुछ पंडितों की रोजी भी विनष्ट हो जाए तो विस्मय नहीं। पंडितजी को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ज्योतिषी के पास ऐसा जादू है जो बड़ों बड़ों को बराबर अपनी ओर आकर्षित करता है, अनेक अकलदार भी कलदार लेकर पंडितों के पास पहुँचते हैं, और पंडितजी के प्रहार के बाद भी पहुँचते रहेंगे, तथापि पंडितजी ने बिना सोचे समझे अपने अनेक अकलदार संगी-साथी-ज्ञानी विज्ञानी सहकर्मियों को सहज 'मूर्ख' मनवाने को जिस प्रकार बाध्य बनाया है, वे अवश्य पंडितजी के प्रति शायद कृतज्ञ (!) रहेंगे, और अपना आत्मरूप पहचानेंगे। यह तो स्पष्ट है कि पंडितजी नें ज्योतिषियों के पास जाने वालों को 'मूर्ख' बतलाया है, इससे ज्योतिषी की बुद्धिमत्ता में तो उन्हें संदेह नहीं, जो बड़े-बड़े माने-जाने हुए मंत्रियों शासकों अधिकारियों को सलाह दे, मार्ग दर्शन दे और आकर्षित कर सके उस ज्योतिषी की योग्यता, बुद्धिमत्ता पर किसे संदेह हो सकता है ? स्वयं पंडितजी यह स्वीकार कर ही लेते हैं कि कठिनाई की राह निकलवाने के लिए ही लोग ज्योतिषी के पास जाते हैं, तो उसकी योग्यता में किसे संदेह हो सकता है, रही बात उन बुद्धिमानों की जो स्वयं बहुत प्रवीण, योग्य, अनुभवी, शासक, और विशेषज्ञ, नेता होकर भी उस बेचारे ज्योतिषी से सलाह लेने, पथ-प्रदर्शन के लिए पहुँचते हैं, पंडितजी उन्हें किस प्रकार सन्मान-भावना (?) से देखते हैं यह वे अवश्य गंभीरता से समझेंगे।

नर्मदा-तट पर नवीन स्तूप—

जिस मालव प्रदेश में सम्राट प्रद्योत के आचार्य महाकात्यायन ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली, अशोक ने अपने आत्मज महेन्द्र और आत्मजा संघमित्रा को धर्म प्रीत्यर्थ अर्पित किया, और अपनी प्रियतमा श्रेष्ठि-सुता के स्नेह वश सांचीस्तूप, एवं अवंती की वेश्या टेकरी स्तूप का निर्माण किया उस मालव में स्तूपों की प्रचुरता होना आश्चर्य नहीं स्वाभाविक है, अनेक टीले-टेकरियां बौद्ध कालीन अवशेषों को अपने अंतराल में छुपाए खड़ी प्रकाश की प्रतीक्षा में पड़ी हुई है। म. भा. में पद्मावति (पवाया) की महत्व पूर्ण खुदाई के पश्चात् कोई नवीन कार्य आरंभ ही नहीं हुआ है, आज का शासन तो इन सांस्कृतिक आवश्यक कार्यों को उपेक्षा से देखता

है, पुरातत्व-विभाग एक सुप्त-सदस्य की तरह उसकी गणना में पड़ा हुआ है, उस ओर देखने उसके महत्व को समझने का अवकाश ही किसे हैं, कुछ वर्ष पूर्व स्व. विष्णु रघुनाथ करंदीकर और इन पंक्तियों के लेखक ने प्रयत्न कर नर्मदा तटवर्ती कसरावद ग्राम के 'इंटवर्डी' स्थल पर स्तूप की आशंका से खुदाई की थी और वहां महत्वपूर्ण स्तूप प्रकट भी हुआ था, उसके कई वर्षों बाद पुनः डॉ० सांकलिया के नतृत्व में वैयक्तिक प्रयास उसी नर्मदा तटवर्ती प्रदेश में हाल ही में प्रारंभ हुआ है, जिसमें म. भा. भी श्रेय लेने को सहज सहयोगी बन गया है। अवश्य ही डॉ० सांकलिया का प्रयत्न प्रागैतिहासिक-कालीन सामग्री का संशोधन करना है, जोकि महत्व का है, और इस दिशा में हमने प्रवृत्ति प्रारंभ की थी। जिस प्रकार उस प्रवृत्ति में इंटवर्डी स्तूप का पता चला था, ठीक उसी प्रकार हाल ही में नर्मदा के दक्षिण तटवर्ती महेश्वर के समीप नावदा तोली ग्राम में ईंटों से निर्मित दूसरे स्तूप का भी पता चला है जिसकी ईंटों पर ब्राह्मी लिपि में कुछ अक्षर अंकित हैं, स्तूप के ७ फिट नीचे के स्तर में मिट्टी के पात्रों के रंगीन खण्ड भी उपलब्ध हुए हैं, डॉ० सांकलिया का मन्तव्य है कि इस क्षेत्र की भूमि के स्तरों के क्रम से यह पता चलता है कि पाषाण काल के पश्चात एक क्रम भंग हो गया है, इसका यह प्रमाण है कि बालुका के विशाल संग्रह के नीचे विचित्र मृणमय-पात्र तथा कांसे और तांबे के मिश्रित, पत्थर के बने हुए औजारों की संस्कृति के प्राप्त होते हैं।

२१ मार्च श्री 'हृदय' जी का स्मृति-दिन है. मध्य-भारत अपने प्रिय हृदय को अंजलि अर्पित करता है।

निःसंदेह नर्मदा उपत्यका के भूगर्भ में तथा अवंती और उसके आसपास की भूमि में इतिहास के प्रागैतिहासिक काल के अमूल्य साधनों का भण्डार भरा हुआ है। यदि इन स्थानों का उत्खनन, संशोधन किया जाए तो विस्मय-विमुग्ध कर देने वाली सामग्री का पता चलना सहज संभव है। अन्य,

पुराण काल, एवं प्रागैतिहासिक अनेक ग्रंथियां खुल सकती हैं, प्रमाण के साधन प्रस्तुत कर सकती है ।

रवीन्द्र की एक कविता, कालिदास

रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक कविता में कालिदास की प्रशंसा इस बात पर की है कि उन्होंने-अर्थात् कालिदास ने प्रतिदिन के व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख और आशा नैराश्य के द्वन्द्व से मथित विष को शंकर की तरह पीकर संसार को विशुद्ध आनंदलोक से प्राप्त निष्कलुष सौंदर्य का अमृत प्रदान किया है। कविता इतनी महत्वपूर्ण है कि उसका पूरा अनुवाद देने का लोभ मैं नहीं संभाल पाता हूँ । कवि कहता है:—

“ अमर कवि कालिदास, क्या तुम्हारे दुःखसुख और आशा-नैराश्य के द्वन्द्व हमी लोगों की तरह नहीं थे ? क्या तुम्हारे काल में राजनीतिक षड्यंत्रों और गुप्त आघात प्रतिघातों का चक्र सब समय नहीं चलता रहता था ? क्या तुम्हें कभी हमी लोगों की तरह अपमान, अनादर, अविश्वास और अन्याय सहन नहीं करना पड़ा ? यथार्थ-जीवन के क्रूर-कठोर, अभाव से क्या तुम कभी पीड़ित नहीं रहे ? और उस निर्मम पीड़न के कारण क्या तुम्हें कभी निद्राहीन रात नहीं बितानी पड़ी ?

(ऐसा संभव नहीं है । तुम्हें भी निश्चय ही जीवन की यथार्थता के कटु अनुभव हुए होंगे)। पर यह सब होने पर भी उन सबके ऊपर तुम्हारा सौंदर्य-कमल आनंद के सूर्य की ओर उन्मुख होकर निर्लिप्त, निर्मल रूप में खिला है । उसमें कहीं दुःख-दैन्य और दुर्दिन के अनुभवों का कोई चिन्ह नहीं है, जीवन के मंथन से उत्पन्न विष को तुमने स्वयं पान किया है और उस मंथन के फलस्वरूप जो अमृत उठा उसे तुम समग्र संसार को दान कर गये हो ।

पंडितों की ‘ पुरी ’ में ‘ गधों ’ का प्रवेश !

बनारस भारतवर्ष का पुरातन ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र रहा है, वहां का वातावरण ही ऐसा है कि कोई विद्या-विहीन शायद रह सके । जहां ज्ञान की गंगा प्रवाहित होती हो वहां अज्ञान को वास करने का अवसर भी कैसे मिल सकता है. धारा नगरी में राजा भोज के लिए यह किंवदन्ती है कि उसके शासन में कुम्हार भी पंडित हो तो रह सकता था, अन्यथा उसे स्थान नहीं था, इससे यह प्रतीत होता है कि जहां कुम्हार रहते हो वहां उसक आराध्य पशु-‘ गधा ’ अवश्य रहता ही होगा। फिर कुम्हा भले ही पंडित बन जाए उसकी सोहबत उसके प्यारे ग से बराबर बनी रही होगी, इसका मतलब है भोज राज्य में कुम्हार पंडित के रहते हुए भी गधों की कम नहीं रहती थी, पर जब से यशपुंज-राजापुंज चले गये, औ भोज ने इस भूमि से रिश्ता छोड़ दिया सरस्वती फि निरवलंब हो गई, पंडित-खंडित बन गए, और गधे तो उ काल से लेकर अब तक वैसे ही रहे, आज तक को मौका ही नहीं मिला कि किसी एक गधे को भी घोड़ा त ठीक खच्चर ही बना डाले ! इसलिए इस प्राणी क प्रतिष्ठा में जरा भी बाधा नहीं आई, बल्कि संख्या सुविधा ही हो गई है किंतु काशी ने अब तक अप नीची नहीं की, पाठशाला, और पंडितों की प्रचुरता पोषित बनाए रखा है। रांड-सांड सीढ़ी सन्यासी के रह हुए भी यह नगरी पंडितों की प्रिय बनी हुई है द्विपद-गधों का भी वहां शायद पता नहीं पड़ता, ता असली चौपाए तो वहां कैसे प्राप्त हों ? द्विपदों के काश में पहुंचने पर उन्हें पढ़ कर पंडित बन जाने को बाध बनना पड़ा, या अपढ़ रहते हुए भी वे ‘ गुरु ’ का गौर पा गए, फिर भला गुरुता से उतर कर ‘ गधा ’ बनने क कोई कारण नहीं । यही वजह है कि जब आज उत्त प्रदेश की सरकार ने ‘ चन्द्रप्रभा ’ नदी के बांध पर मि ढोने के लिए असली गधों की तलाश की तो काशी गधे खोजने पर भी नहीं मिले, कहीं १०-२० गधों मांग होती तो काशी में नए गए हुए और ‘ गुरुता की पद प्राप्ति से पूर्व कुछ का पता चल भी जात किन्तु एक साथ २००० गधों का पंडितों की अ गुरुओं की नगरी से निकाल लेना सम्भव नहीं हो सक था। सरकार की किफायत शाही के लिए गधों के बि गति भी नहीं थी, फलतः पंडितों के पड़ोस की नगरी गाज पुर और बलिया से यह भर्ती की जा रही है । काशी अपनी गति न देख पंडितों में सहज प्रवेश न पाकर संयमी प्राणी पड़ोस में प्रवासी बनकर पर्याप्त संख्या प्रतिष्ठित है, और सरकार के सम्मान सहित आमन्त्रण पंडितों की नगरी काशी में पदार्पण करने जा रहा है

'चंद्रप्रभा' को बांधकर जनता को जीवन (जल) देने के लिए कटिबद्ध हो रहा है, यह काशी के पंडितों के लिए भी प्रसन्नता की बात होगी। गुरुओं का गौरव-वहन करने के लिए तो अनेक जीव वहां पहिले ही विद्यमान हैं। अब भार-वहन के लिए बलिया गाजीपुर से गधे भी पहुंच रहे हैं। कौन कह सकता है कि इस भार-वहन-काल में पंडित और गुरुओं के प्रभाव से प्रभावित होकर वे वापिस न लौटें, और अपने आत्म-विस्मृत स्वभावानुरूप गुरुओं की गलियों में ही न रमा लें। यही संभव हुआ तो इनके बेचारे बलियाई मित्रों का मन मलीन हो जाएगा, गाजीपुर की गौरव परम्परा टूट जाएगी।

अवश्य ही काशी के गुरुओं को कुछ दिन यह विषमता खटकेगी, गधों के अभाव वाली नगरी में गधों का गमनागमन गड़बड़ा देगा, पर पड़ोस प्रेम अन्तर में उतर कर आत्म-सात् कर लेने को जब विवश कर देगा, तब यह विषमता समता में समाविष्ट हो जाएगी, और 'समान-शील व्यसनेषु सख्यम्' सार्थक हो जाएगा।

महर्षि वेद-व्यास का स्मारक !

उत्तर-प्रदेश ने इधर जितने साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्य किए उतने अन्य प्रदेशों में नहीं हुए। इस दिशा में वहां का शासन सतर्क रहा है। हाल ही में कालपी में महर्षि वेद-व्यास के स्मारक बनाने का अभिनन्दनीय आयोजन किया गया था। महर्षि वेद-व्यास भारत की प्रातः स्मरणीय विभूति हैं। उनकी विशाल रचना में समस्त भारत की आत्मा और संस्कृति सन्निहित है। जिसने व्यासजी का महाभारत नहीं पढ़ा—समझा उसे 'भारतीय' कहने में भी संकोच होगा, व्यास का साहित्य विशाल है और सजीव है, इसलिए व्यास तो प्रत्येक भारतीय के लिए सदैव अमर हैं, अमर रहेंगे। प्रत्येक भारतीय और भारत के रग-रग में उनकी स्मृति भरी हुई है, तथापि कालपी उन वंदनीय विभूति की जन्म-भूमि मानी जाती है, यह कालपी वासियों के लिए असाधारण सौभाग्य की बात है, हम उस नगरी के उन नागरिकों का अभिनन्दन करते हैं जिन्होंने अपनी राष्ट्रीय विभूति का स्मारक स्थापित कर सांस्कृतिक सजगता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। इस सत्कार्य का समारम्भ महामान्य मुन्शीजी के द्वारा किया गया, और नागरिकों ने उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग दिया, उचित तो यह होता कि सारे भारत की श्रद्धांजलि वहां अर्पित होती, और स्मारक भी ऐसा बनाया जाय जिस पर महर्षि की रचना की सूक्तियों को अंकित किया जाय, और तत्कालीन घटना-क्रम की चित्र कथा भी उस स्थान पर उत्कीर्ण हो। इस अवसर पर मा० मुंशीजी ने बड़ी भाव-पूर्ण श्रद्धांजलि महर्षि व्यास के प्रति इस प्रकार समर्पित की:—

"भगवान व्यास आर्यत्व की मूर्ति थे। आर्यत्व के एक आदि संस्थापक के पौत्र, मच्छी-मार के दौहित्र, वह भारतीय जातियों के मिश्रण के प्रतीक थे। छिन्न-भिन्न हुए वेदों को उन्होंने एकत्रित कर संस्कृति की अव्यक्त मूर्तियों को व्यक्त किया और अपनी संस्कृति को सातत्य दिया। भगवान श्रीकृष्ण की महत्ता उन्होंने देखी, उनका प्रचण्ड व्यक्तित्व शब्दों द्वारा मूर्तिमान किया, उनके शब्दों को शब्ददेह देकर मानव उद्धार के लिए अमर किया। भगवान व्यास ही भारत के गढ़ने वाले उसके अधिष्ठाता और प्रणेता है। यह भारत केवल हिन्द देश ही नहीं है, यह तो संस्कार और भावना से गढ़ा हुआ भारत प्रभावशाली शरीर है। जो भारत तीन हजार साल से जैसा था वैसा ही जीवित चला आता है। जो आज समस्त संसार के लिये जिन्दा है। भगवान व्यास जगत के आद्य पैगम्बर थे। उन्होंने अनुभव किया. सिखलाया कि मनुष्य मात्र में दैवी अंश है। जब भी राग, भय और क्रोध की शृंखला टूट जाती है, तब इस देह में होते हुए भी उसको सिद्धि मिल जाती है। उनका सिखाया धर्म जीवन का विकास करने वाली प्रचंड शक्ति है। इसी धर्म के कारण भारत जिन्दा है। भारत इसी धर्म से महान होगा।

आज मैं अपने को धन्य मानता हूं। पानीपत में भगवान परशुराम के किए हुए पंचसरों के मैंने दर्शन किए। भगवान श्रीकृष्ण के जन्म-स्थान और देहोत्सर्ग दोनों की रज मैंने अपने सिर पर चढ़ाई है। भगवान रामचन्द्रजी की अयोध्या देखकर मैं पवित्र हुआ। आज मुझे अत्यन्त हर्ष है कि मैं भगवान श्री वेद-व्यासजी के जन्म-स्थान की रज अपने सिरपर चढ़ाकर कृतार्थ होता हूं। यह अधिकार प्राप्त होने पर मेरे सौभाग्य की सीमा नहीं है।"

स्व. सर हक्सर

देशी राज्यों की राजनीति में सर कैलाशनारायण हक्सर अग्रगण्य व्यक्तियों में रहे हैं, यद्यपि उनके निर्णय

का श्रेय महाराजा माधवराव सिंधिया को था, परंतु उन्होंने अपनी प्रतिभा, कुशलता और योग्यता के बल पर सारे भारत में राजनीति के क्षेत्र में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था। वे गवालियर राज्य में अपने जीवन के बहुत काल तक उच्च पदों पर आसीन रहे, उनका प्रभाव शासन पर बहुत रहा। स्व० महाराजा के वे विश्वस्त व्यक्तियों में माने जाते थे, यहां की पोलिटिकल मिनिस्टरी को छोड़ बीकानेर के प्रधानामात्य भी रहे, उसके पश्चात नरेन्द्र मण्डल के परामर्शदाता के स्थान पर पहुंच गये थे, राउण्डटेबल कान्फरेंस के समय उन्होंने बहुत कार्य किया, फेडरेशन की योजना भी उन्होंने तैयार की थी, जो महत्व की मानी गई थी। उसके बाद वे काश्मीर में (वर्तमान सदरे रियासत) युवराज के गार्जियन होकर रहे, तथा सर गोपाल स्वामी आयंगर और राजा सर महाराजसिंह के बाद काश्मीर के प्रधान मंत्री के रूप में भी उन्होंने कार्य किया। इन पंक्तियों के लेखक का काश्मीर महाराजा के अतिथि रहते हुए सर हक्सर से तीन मास तक निकट सम्बन्ध रहा है, और उनकी व्यापक योग्यता प्रतिभा, और प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखने का निकट से अवसर मिला है। सर हक्सर का प्रभावशाली व्यक्तित्व असाधारण था, लोग उन तक पहुंचने में और पहुंच जाने पर उनके समक्ष चर्चा करने में भी चौकते थें। परन्तु हमने देखा है कि उनका तेजस्वी व्यक्तित्व अत्यंत कोमल स्वभाव भी रखता था, एक बार हमें सर तेज बहादुर सप्रु, और सर हक्सर में झड़प होते हुए भी देखने का अवसर मिला है, दोनों ही बचपन के साथी थे और परस्पर व्याही भी थे। हमने काश्मीर के वर्तमान युवराज करणसिंहजी को पिता की तरह डांटते हुए भी देखा है और हृदय से चिपका कर माता की ममता से आंखों में आंसू भरे प्यार करते हुए भी देखा है। इतने वयोवृद्ध होते हुए भी उनकी असाधारण स्मरण शक्ति, और प्रतिभा का भी चमत्कार हमने देखा है। राजनीति निपुणों के विशिष्ट-वर्ग में सर हक्सर, सर मनुभाई का स्वतंत्र स्थान ही था, यद्यपि उनका जीवन देशी राज्यों की राजनीति में रत रहा, परन्तु वे सर्व भारतीय-एवं सार्वदेशीय ख्याति के व्यक्ति रहे हैं। अंग्रेजी भाषा पर उनका वर्चस्व था ही, पर गवालियर के संबंध के कारण वे मराठी भी अधिकार पूर्वक उपयो करते थे। जिन्होंने स्व० आर. एस. पंडित (श्री विजया लक्ष्मी पंडित के विद्वान पति) की अनूदित राज तरंगिणी के विद्वत्तापूर्ण अनुवाद और संशोधन को देखा है उन्हें स हक्सर की विद्वत्ता पूर्ण भूमिका को भी पढ़ने का अव सर मिला होगा। वे सर हक्सर की ज्ञान गरिमा का अनुमान कर सकते हैं। इन पंक्तियों के लेखक की समुद्रयात्र पुस्तक पर भी कृपा कर सर हक्सर ने भूमिका लिख थी। यह उनके अपार स्नेह का ही कारण था, विधि विधान देखिए कि सर हक्सर ४० वर्ष गवालियर रहें, हमें कभी परिचय का अवसर नहीं आया, किन् काश्मीर में उनकी कृपा संयोगवश सुलभ हुई आज सर हक्सर इस जगती में नहीं रहे, गवालिय राज्य तो बहुत समय से उनकी सलाह-सहयोग से वंचि बन गया था पर आज उनके जैसे ज्ञान-वयोवृद्ध प्रति एवं प्रभाव सम्पन्न राजनीतिज्ञ से यह देश वंचित हो गय है, सर हक्सर कहीं भी रहे हों, पर उनको मध्यभार पर गर्व था, आत्मीयता थी, वे अपने को इसी प्रदेश अन्न-जल से निर्मित मानते थें, इसलिए सर हक्सर स्वर्गवास से मध्यभारत की बड़ी हानि हो गई है पुरानी पीढ़ी के राजनीति-प्रवीणों में, और देशी राज्य के इतिहास में सर हक्सर का नाम सदैव स्मरणीय रहे यद्यपि हक्सर सा० ‘ कर्नल ’ थे, ‘ सर ’ का सम्मा प्राप्त थे, पर अंग्रेजों के साथ उनकी स्वाभिमान-प्रियत के कारण कई टक्करें हुई थी, ब्रिटिश-शासन की ‘ काल सूची ’ में उनका नाम अंकित था, पर यह सब आज कित जानते हैं। सर हक्सर को भी उनके एकांत जीवन विस्मृत बनादिया था, और अब तो वे और ऐसे एका में चले गए-विस्मृति के गहन-गर्भ में विलीन हो हैं, जहां से कोई नहीं लौटता। हम इस स्वर्गीय विभू को साभिवादन श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

और स्व० सरगोपाल स्वामी !

विधि-विधान कितना विचित्र है, सर हक्सर के स्व वासी होने को थोड़ा ही समय हुआ था कि उनके काल काश्मीर में प्रधानामात्यपद पर रहने वाले उनके साथी सर गोपाल स्वामी आयंगार भी आज दुनिया से

गए। सर हक्सर गोपाल स्वामी की प्रवीणता के प्रशंसक थे, उनके शासन कौशल को वे दाद देते थे, उधर गोपाल स्वामी सर हक्सर को अपना बड़ा बुजुर्ग मानकर शासन में उनकी सलाह लेते रहते थे। जिस दिन श्रीनगर की रेजिडेंसी में युवराज कर्णसिंहजी के वैवाहिक सम्बन्ध स्थिर होने के उपलक्ष में भोज दिया गया था, स्व० सरहक्सर के साथ हमें भी उन्हें निकट से परिचय करने का प्रसंग प्राप्त हुआ था, काश्मीर से विश्राम लेकर स्वतन्त्र भारत में सरगोपाल स्वामी ने जो स्थान-मान-यश प्राप्त किया, वह उनकी योग्यता, प्रवीणता और कौशल के अनुरूप ही था, काश्मीर की समस्या के तो वे मर्मज्ञ ही थे, उनके अभाव से आज इस देश की अपार क्षति हो गई है। स्वास्थ्य की पर्वाह न करके इस प्रतिभा पुत्र ने कार्यक्षेत्र में निरंतर समर-संघर्ष किया और भारत की जीवनांत तक सच्ची सेवा की। रेल्वे से लेकर रक्षामंत्रीत्व का कठिन भार वहनकर जरा-जर्जर देह की उपेक्षा द्वारा जीवन उत्सर्ग कर दिया।

मास्को का महा-मानव !

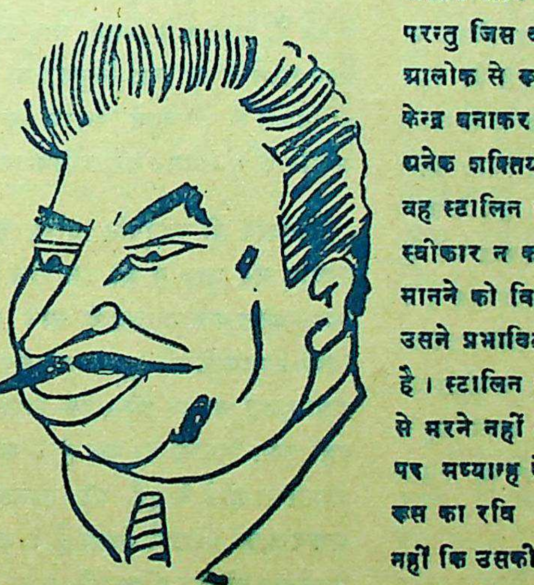

मार्शल स्टालिन के रूप में विश्व का एक विराट व्यक्तित्व एवं रहस्य-मय महा--मानव उठ गया। जो विश्व के राज-कारण में एक प्रचंड-शक्ति समझा जाता था, इतिहास निर्माण करने की जिसमें सामर्थ्य थी, विश्व-विजय जिसका स्वप्न था, विज्ञान जिसका अनुचर था, जिसकी प्रचण्ड सैन्य-शक्ति, राजनैतिक-क्षमता, और शासन-कौशल का जगत लोहा मानता था, जिसके आतंक के कारण राजनीति नए-नए रंग पलटती थी, बड़ी-बड़ी शक्तियां चौंकती थी, जिसका भय, आतंक सुप्त-शक्तियों को सदैव सजग-सतर्क रखने को विवश बनाए देता था, जिसकी भ्रू-भंगिमा कराल-काल को चुनौती देने को उद्यत रहती थी। पश्चिम को प्रकंपित कर देने वाले हुंकारी हिटलर ने भी जिसके द्वार पर जाकर हार स्वीकार की। जिसके मास्को से उड़कर आने वाली हवा में जंग के जन्तु की खोज-बीन होती थी, जिसकी विचारधारा से जगत की मानवता सतर्क रहती थी, और उसके कदाचित कथित एक-एक शब्द के रहस्य का अनुसंधान मूल्य माना जाता था। जिसे मिलना भी 'ईश्वर' के दर्शन जैसा दुर्लभ था, वह प्रचण्ड-शक्ति विचार, भय, आतंक का निर्झर, मास्को का महा-मानव, आधुनिक-युग का चाणक्य विश्व वर्चस्व-भावना का प्रतीक, सर्वदा जाग्रत, मार्शल स्टालिन जीवन-संघर्ष में विजयी होकर भी मृत्यु के मोह-पाश के वश हो गया! स्टालिन के जागृत रहते हुए ब्रिटेन-अमेरिका जैसी ताकतें कभी सुषुप्ति का सुख नहीं ले सकी। स्टालिन की चिर-निद्रा से उन्हें क्षणभर ही सही सुख की नींद नसीब हुई होगी। अवश्य ही रूस की नई निर्मित-नीति इन्हें निद्रित रहने देगी या जागृत, यह तो नव शासन-शासक और उनके कार्य की प्रतिक्रिया से ही प्रतीत होगा। परन्तु जिस व्यक्ति ने निरन्तर २५ वर्ष शासन कर अपने आलोक से रूस को जागतिक-राजनीति के नाश निर्माण का केन्द्र बनाकर ज्योतिर्मय रखा, 'जिस शक्ति-पुंज' के समक्ष अनेक शक्तियों की प्रचण्डता पराभव स्वीकार कर चुकी वह स्टालिन मरकर भी जीवित बना रहेगा। उसका शासन स्वीकार न करके भी उसके विरोधियों को उसके वर्चस्व मानने को विवश बनना पड़ा है, विश्व की राजनीति को उसने प्रभावित किया है, प्रेरित किया है, और पलटा भी है। स्टालिन की यह विजय असाधारण है, और उसे मौत से मरने नहीं दे सकती। अवश्य ही राजनीति के दिङ्मंडल पर मध्याह्न के प्रखर-कर द्वारा तेज प्रसारित करने वाला रूस का रवि अस्ताचल गामी हो गया, पर इसमें संशय नहीं कि उसकी लाल-लाल किरणें बहुत काल तक दीप्ति-वान करती हुई राजनीतिक गगन-मंडल को रक्तिम बनाए रखेगी।

दो क्षय अस्पतालों का शिलान्यास !

मध्य-भारत में केवल १६ माईल के अन्तर से केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्राणी श्री. राजकुमारी अमृतकोर के हाथों दो क्षयरोग के अस्पतालों के लिए शिलान्यास करवाया गया।

कभी ताले चाबी की या पहरे की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, यूरोप में हमने अपनी आँखों से देखा है कि स्विटजरलैंड आदि स्वस्थ सम्पन्न-सुखी देशों में दरवाजे खुले छोड़ दिए जा सकते हैं, पर कोई किसी वस्तु को हाथ नहीं लगाता। हमारा सामान पेटी में रखा हुआ था, पर पेटी में ताला टूट चुका था, वह पेटी ज़ूरिक (स्विटज़रलैंड) के स्टेशन पर खुले वेटिंग-रूम में एक सप्ताह पड़ी रही, पर किसी ने स्पर्श नहीं किया। इटली के एक गाँव में हमने देखा एक महिला की बगल से एक छोटा बण्डल सड़क पर पड़ गया, दो घण्टे तक वह वैसे ही पड़ा रहा किसी ने उठाया तक नहीं। वही महिला पुनः उस ओर से खोजती निकली और उसे उठाकर चली गई। इसके विपरीत लन्दन का हाल है, हमें स्वयं को लन्दन में कटु अनुभव हुआ। रात के समय हम लन्दन पहुँचे थे, जिस होटल में ठहरे वहाँ केवल एक कमरा खाली था। हम अपने मित्र के साथ उसी कमरे में इस शर्त के साथ टिक गए कि सुबह १० बजे हमें खाली होने वाले दो दूसरे कमरे दे दिए जावेंगे। जब हमने दिन के ४ बजे दूसरे कमरे में सामान बदला तो अन्य नगरों की आदत के अनुसार सामान समेटने की आवश्यकता नहीं समझी। क्षण भर में ही तो सामान ऊपर के कमरों में पहुँच जाने वाला था, पर जब सामान सारा पहुँच गया तो हमने देखा उसमें से हमारा सुवर्ण का सेफ्टी रेज़र और उसके सोने के सामान की सुन्दर डिबिया गायब है! हमने शिकायत की पर कमरे का नौकर चोरी स्वीकार करने को तय्यार नहीं। जब मैनेजर से स्पष्ट वस्तु स्थिति बतलाई तो ६ घण्टे बाद वह रकम हमें हस्तगत हुई! यह लन्दन की नैतिकता का एक नमूना है। हमें जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि किसी जगह ऐसा प्रसंग प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि इसके विपरीत ईमानदारी देखकर हमें दंग रह जाना पड़ा, और हिन्दुस्तान तो इस नैतिकता की पूंजी पर गर्व करता आया है। लेकिन आज इस देश में माल की मिलावट, चोरी, डाकेजनी, ब्लैक बाजारी, भ्रष्टाचारी का केन्द्र बना डाला है। आदमी पर आदमी का विश्वास उठता जा रहा है। ईमानदारों को दीपक लेकर ढूंढने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। ऐसे समय हमें जब किसी अन्य देश से यह समाचार मिले कि वहां १०० वर्ष में पहली बार चोरी हुई है तो ईमानदारों के इस देश में आश्चर्य अनुभव किया जाता है। हालही में सान मारीनो नामक यूरोप के एक देश में १०० वर्ष में पहली चोरी हो जाने के कारण बड़ा क्षोभ हो रहा है। पुलिस उस घटना की जांच कर रही है, नागरिक चिंतित बन गए हैं। कहते हैं कि एक दूकान में सात लगाकर कई लाख लीरे (इटैलियन-मुद्रा) का कपड़ा चोरी चला गया है। इस प्रदेश में पुलिस को १०० वर्ष में कभी चोरी की घटना नोट नहीं करना पड़ी। सान मारिनों की सात्विक जनता अपने घरों पर ताला लगाना जानती ही नहीं। वहां के लोगों का विश्वास है कि यह चोरी किसी बाहरी आदमी ने की है। जहां अपने नागरों पर इतना विश्वास हो, वहां सतयुग ही कहना होगा पर इस चोरी ने वहां भी कलि-प्रवेश प्रकट कर दिया है। परन्तु रामराज्य और सत्ययुग के आविष्कारक इस भारत में आज यही घटना विस्मय का विषय बन गई है।

हम अपना आत्म-गौरव और आत्म-रूप ही भूल गए हैं। आज हमें अपनी आत्मा में भी कहीं छुपा चोर दिखाई देने लगता है। हमारे बाजारों में रत्नों की ढेरी शुभ्र प्रकाश फैला कर दिन में सूर्य किरणों से कांति फैलाती रहती थी, और रात में चन्द्र किरणों से आँख-मिचौनी किया करती थी, पर उन्हें कोई आँख उठाकर नहीं देखता था क्योंकि 'पर द्रव्येषु लोष्टवत्' हमारा आदर्श था। किन्तु आज हमारे बाजार में ब्लैक का चारों ओर अंधेरा फैला हुआ है। जब हमारी आत्मा में भी प्रकाश की जगह ब्लैक ने ले ली है तो हम बाहर कौनसा प्रकाश पा सकते हैं। हम प्रगति के पंथ पर जा रहे हैं, क्योंकि मानव को मशीन बनाकर उसकी उन्नति चरम तक ले जाने का विशाल विचार रखते हैं। हमारे पास आत्मा के विकास, प्रकाश देखने का अवसर ही कहाँ है?

अवंती का राजनैतिक इतिहास

श्री विमलचरण ला

मगध पर शुंगों का उत्कर्ष ईसा के दो शताब्दि पूर्व हुआ, उस समय अवन्ती मगध साम्राज्य का भाग थी या नहीं, यह अभी तक एक समस्या बनी है। जो निश्चित-रूप से विदित है, वह यह है कि शुंगकुल के प्रतिष्ठाता पुष्यमित्र का राज्य मगध से नर्मदा तक था। और पाटलीपुत्र, विदिशा, अयोध्या इत्यादि उसके प्रमुख नगर थे। परन्तु यद्यपि अवन्ती शुंग साम्राज्य का भाग रही हो, तबभी महामहिम के स्थानावास के लिए उज्जैन की अपेक्षा विदिशा ही चुनी गई थी। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नामक ग्रन्थ के अनुसार विदिशा पर राजकुमार अग्निमित्र का राज्य था। शायद अग्निमित्र को उसके पिता ने महामहिम नियत कर दिया हो। भरहुत के शिलालेखों में भी विदिशा एवं खेतीमित्र एवं वेणीमित्र नामक दो शुंगवंशीय राजकुमारों का उल्लेख मिलता है।

पुराणों के अनुसार शुंगवंशी राज्य काल ११२ वर्षों का रहा और ४५ वर्षों का इनके उत्तराधिकारी शौंगभृत्य काण्व का। शौंगभृत्य के उत्तराधिकारी आंध्रवंशी लोग हुए, जो कि विंध्या, गोदावरी एवं नर्मदा में शक्ति पकड़ आगे बढ़ रहे थे।[१] इस प्रकार उत्तर-भारत में आंध्र लोगों का उदय ईसा के २५ वर्ष पूर्व माना जा सकता है। और सत्यता की दृष्टि से यह भी मानना पडेगा कि पुरीका में शिशुका—सिमुका नामक उनके प्रथम राजा का उदय इससे कुछ पूर्व ही हुआ होगा।

काण्व लोग ब्राह्मण थे, और शुंग लोगों से किसी भी प्रकार बल में कम नहीं थे। उनके विषय में यह प्रमाण मिलता है, कि इनने भी कई राजाओं को अपने आधीन कर लिया था। (एते प्रांत सामंता)[२] अवंति का काण्व साम्राज्य का एक भाग होना भी समस्याओं में अछूता नहीं है। यह भी संदेह-पूर्ण है कि विदिशा भी उस साम्राज्य का भाग था या नहीं। पुराणों में इस प्रकार की कथा मिलती है कि जब शुंग राज्य समाप्तः प्राय था, तब शिशुनंदी नामक राजा ने विदिशा पर राज्य करना प्रारम्भ किया। शिशुनंदी के वंश में केवल तीन राजा हुए, और पुरीक का समकालीन शिशुक नामक राजा था, जो कि शिशुनंदी का दोहित्र था, और यही सातवाहन वंशी प्रथम राजा हुआ है। रायचौधरी इस प्रकार सोचते हैं कि प्रथम सातवाहन राजा सिमुक ने शिशुनंदी को विदिशा का महामहिम बना दिया था, परंतु यह कुछ जंचता नहीं, और फिर प्रमाण भी इसके विरोध में उपलब्ध हैं। पुराणों के अनुसार तो हम यह सोच सकते हैं कि शुंग राजाओं की बचत-खुचत विदिशा में रह गई थी, जो कि काण्व लोगों के हाथ में आ गई थी, और जिसके अधिकारी वे ही हुए।

नाशिक की गुफाओं में वाशिष्ठी पुत्र पुलमायी जिसने कि अपने शासन के १९वें वर्ष में वह शिलालेख लगवाया था, उसके अनुसार उसके पिता गौतमीपुत्र शातकर्णी का यशोगान शक, यवन, पह्लव (पार्थियन) जातियों के संहारक के रूप में किया गया है, और यही गौतमीपुत्र सातकर्णी क्षहरात वंश का संहारक सातवाहन राजा था। उसके समय में आंध्र-राज्य में निम्नलिखित स्थान भी शामिल थे। असिक (ऋषिक) असक (अश्वक, अश्मक), मूलक (जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी), सुरथ (सुराष्ट्र, राजधानी गिरीनगर), कुकुरापरांत (राजधानी सूरपारक), अनूप, विदर्भ (विदर्भ), आकरावंती, विंध्याचल के कुछ पहाड़ी हिस्से, ऋक्षवत, पारीयात्र, एवं कान्हगीरि (कान्हेरी) उसकी प्रशंसा प्रियदर्शन, वरवारणविक्रम और चारुविक्रम की तरह भी की गई है, इससे कुछ विद्वान् लोग इसे ही वास्तविक विक्रमादित्य मानते हैं, जिसके नाम से संवत् अभी तक प्रचलित है।[३]

गौतमीपुत्र के शिलालेख में ऐसा उल्लेख है कि गोवर्धन (जो नासिक के पास है) ही उसकी विजय का प्रथम विश्रामस्थल (camp) था। उसके राज्यकाल

---

[१] पारगिटर पृष्ठ ३३, ३५, ७०, ७१

[२] रायचौधरी पृष्ठ ३३०

[३] अनति (काठियावाड़) को हटा दी गई थी, और राज्य-भाषा संस्कृत हो गई थी।

के २४वें वर्ष तक भी उसका वर्णन शक, यवन, पार्थियन आदि का संहारक और ह्रास करके क्षहरात को निष्कासित कर देने वाले की तरह नहीं आता। और यदि उसके पुत्र वाशिष्ठी पुत्र ने जो कुछ अपने पिता गौतमीपुत्र के विषय कहा है, सच है, तब निश्चित ही है कि गौतमीपुत्र को उसके राज्य शासन के २४वें वर्ष बाद ही ऐसी विजय मिली थी।

गौतमीपुत्र शातकर्णी और उसके उत्तराधिकारियों का जो भी सातवाहन राज्य था, और जिसमें कि आकरावंती भी शामिल थी, उसी के विषय में जूनागढ़ की चट्टानों पर के शिलालेख शक संवत ७२ में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वही राज्य सीमा महाक्षत्रप रूद्रदमन प्रथम की थी। इससे भी पूर्व शक संवत् ५३ का एक शिलालेख जयराम के पुत्र एवं चष्टन के पौत्र रूद्रदमन प्रथम का खुदवाया हुआ मिलता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह शिलालेख उस समय का है, जबकि रूद्रदमन का राज्य कच्छ में था। परन्तु इसके पश्चात् अनेक परिवर्तन हुए और ३० वर्ष पश्चात् रूद्रदमन ने फिर जूनागढ़ में एक नया शिलालेख खुदवाया। उस समय चष्टन वंशी महाक्षत्रप की राजधानी सुराष्ट्र और काठियावाड़ में उनका राज्य शांतिपूर्ण ढंग से ईसा के ३८८ वर्ष तक चलता रहा।

इसमें एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने की है, कि रूद्रदमन के शिलालेखों में कहीं भी उनका वर्णन क्षहरात नाम से नहीं मिलता है। परन्तु रूद्रदमन प्रथम एवं गौतमीपुत्र शातकर्णी, उसके पुत्र, उनका उत्तराधिकारी वाशिष्ठीपुत्र पुलुमायी की राज्य सीमा को एक ही मानना एवं एक ही काल में उनका राज्यकाल मानना, इतिहास विरोधी बातें हो जाती हैं।

पुराणों के उल्लेखानुसार जैसा कि हम पहिले ही देख चुके हैं, सातवाहन वंशी प्रथम राजा, कृष्ण भ्रातृ शिशुक--सिमुका की प्रथम राजधानी पुरीक थी, और लगभग ईसा के ३५ वर्ष पूर्व काण्व लोगों के पतन के साथ सातवाहन लोगों का उत्कर्ष हुआ था। इससे हम यह भी सोच सकते हैं कि जब शिशुक--सिमुक पुरीका पर राज्य कर रहा था, उसी समय उसके नाना ईसा के लगभग ७० वर्ष पूर्व शुंगों के पतन के पश्चात् विदिशा पर राज्य कर रहे थे।

जैन ग्रंथ विविध तीर्थ कल्प के अनुसार सातवाहन वंश के एक शक्तिशाली राजा ने मालव राजा विक्रमादित्य को बुरी तरह हराया था। इस प्रकार विक्रमादित्य हार कर फिर अवंति को भाग गया था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। जब सातवाहन राजकुमार ने दक्षिण का भू-भाग अधिकार में कर लिया और जिस उत्तरापथ की सीमा ताप्ती नदी तक थी, तब गोदावरी तट पर बसे प्रतिष्ठान नगर में उसका राज्याभिषेक हुआ था। उसने अपने नाम से एक संवत् भी प्रारम्भ किया था। (स्वकीय संवत्सरम् प्रावर्तयत्) [1]

परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सातवाहन राजाओं ने भारत में अपना संवत् प्रारम्भ किया था। जो भी सातवाहन शिलालेख अभी तक ज्ञात हैं, उन सब में अलग-अलग राजाओं ने अपने व्यक्तिगत राज्यों के हिसाब से संवतों का उपयोग किया है। प्रथम सातवाहन राजकुमार जिसे हम दक्षिण स्वामी कह सकते हैं, वह गौतमीपुत्र शातकर्णी है। इस राज्य का विस्तार कुछ ही पूर्व सिमुक और उसके भाई कृष्ण ने प्रारम्भ कर दिया था। सिमुक के राज्य की दक्षिण सीमा गोदावरी के दक्षिण तट पर नाशिक थी एवं पश्चिमी सीमा नानाघाट तक थी। नानाघाट कोनकन से पूना जिले में जुन्नार तक जाने वाले दर्रे का नाम था। सीमा विस्तार का अंतिम कार्य गौतमीपुत्र ने ही सम्पन्न किया। परन्तु इसके पूर्व ही सातवाहन ने नाशिक, शुर्पारक (कुक्कुशपरांत), भरुकच्छ, प्रभास (काठियावाड़) और दशपुर (मन्दसौर) इत्यादि प्रदेश क्षहरात—क्षत्रप––नहपाण के हाथों से छीन लिए थे। नहपाण के जामातृ उषवदत्त (रिषभदत्त) ने न केवल उत्तमभद्र (उत्तमर्ण) को मालव (दक्षिण-पूर्वी मालवा) के पंजों से छुड़ाया था, परन्तु उसे मालव लोगों को बन्दी बनाने तक के लिए योग्य बना दिया था।[2]

---

[1] विविध तीर्थ कल्प पृष्ठ ६०

[2] नहपाण काल के नाशिक गुफाओं में उषवदत्त के शिलालेख।

पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप की विस्तृत सीमा कोनकन से सिंध और सुराष्ट्र एवं आनर्त से आकारावंती व अनूप तक थी। और यह सीमा जब तक चंद्रगुप्त द्वितीय ने नहीं छीनली, तब तक उस पर शक क्षत्रप का ही अधिकार रहा था। गुप्त साम्राज्य के महामहिम का वासस्थान उज्जैन थी या विदिशा, इसका निर्णय शिलालेखों के आधार पर नहीं किया जा सकता। यह बहुधा विश्वास किया जाता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्य मंत्रालय पहिले तो विदिशा में रहा, उसके पश्चात् उज्जयिनी में लाया गया।[1] नहपाण की ही तरह कुमारगुप्त प्रथम के शिलालेखों में भी मालवगण (पश्चिमी मालवा) का प्रमुख नगर दशपुर (आधुनिक मन्दसौर) था।

उज्जयिनी के बहुश्रुत शकारि विक्रमादित्य जिनके दरबार में प्रसिद्ध नवरत्न थे चंद्रगुप्त द्वितीय ही बतलाए जाते हैं। ये नवरत्न थे, सुश्रुत-संहिता के रचयिता धन्वंतरी,[2] नैयायिक क्षपणक, संस्कृत शब्दकोष अमरकोष के रचयिता अमरसिंह, शंकु, इतिहासकार वैतालभट्ट, यमक काव्य के निर्माता घटकर्पर, संस्कृत-भाषा के अद्वितीय कवि कालिदास, प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर, व्याकरणाचार्य वररुचि। पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप को निकाल भगा देने वाले चंद्रगुप्त द्वितीय की उपाधि शकारि सर्वथा उपयुक्त थी। सिक्कों के आधार पर प्रचलित दंतकथा के अनुसार कर्म विशेषणों से जैसे विक्रमादित्य, परमभागवत महाराजाधिराज श्री चंद्रगुप्त विक्रमादित्य श्री विक्रम, सिंह विक्रम, अजीत विक्रम, विक्रमांक इत्यादि से चंद्रगुप्त द्वितीय का आदर किया जाता था। चंद्रगुप्त द्वितीय के उत्तराधिकारी कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त भी विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित होते थे, परन्तु दोनों में से किसी को भी शकारि उपाधि से विभूषित नहीं किया गया था।

गुप्तकाल की प्रसिद्धि का बहुत बड़ा श्रेय चंद्रगुप्त-विक्रमादित्य एवं उसके प्रशस्ति लेखकों को है। दूसरा काल जो विक्रमाब्द कहलाता है विक्रमादित्य से सम्बन्धित है जो कि परम्परा से उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध है। विक्रमाब्द का प्रारम्भ ईसा के ५७ वर्ष पूर्व से होता है। इसके विकास की चार श्रेणियां रही हैं, प्रथम तो नाम विहीन रही, द्वितीय में यह कृत-संवत् कहलाया, तृतीय में एक स्थिति सूचक विवरणात्मक नाम मालवगण स्थिति दिया गया, चतुर्थ में यह विक्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुप्तकाल में मालव या कृत नाम केवल दशपुर या मन्दसौर का ही था। परन्तु फिरभी एक महत्वपूर्ण प्रश्न रह ही जाता है कि किसने मध्यभारत और पश्चिमी-भारत का नाम मालव रखा ? कृत नामक संवत् का सर्वप्रथम उपयोग राजपूताना के मोखरी में बड़वा के पत्थर के शिलालेख पर मिलता है--कृतेहि २०० ९० ५=२३८ ईस्वी सन् (२९५—५७=२३८)। और सबके बाद का उपयोग तक्षशिला में जिहोणिक के चांदी के बर्तन पर खुदे आलेख में है। इसमें प्रथम क वर्ण के स्थान पर सं का उपयोग किया गया है—

क १ (×) १०० २० २० २० २० १० १ (१९१)

इस संवत् के नाम विहीन काल के विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं--

(१) शोडास के Mathura votive tablet पर (२) पत्तिका के आलेख में तक्षशिला के ताम्रपत्र पर। और इसके बाद का (३) गोंडोफरनेस के तख्तेबाही--प्रस्तर-शिलालेख पर। तीनों के संवत् निम्नलिखित प्रकार हैं।

(१) सं. ७२=१५ इस्वी सन्। (२) सं. ७८ =२१ इस्वी सन् (३) सं १०३=४६ ईस्वी सन्। इस सं. १०३ में गोंडफरनेस के राज्य-काल का २६ वां वर्ष था।

उपर्युक्त जो उस महाराजा गोडफरनेस का शिलालेखी संवत् १०३ है, उससे कल्पना होती है कि उक्त महाराजा के पूर्व भी तीन राजा हो गए हैं, जिन्होंने ७७·७८ वर्ष तक राज्य किया, क्योंकि सं. १०३ में गोडफरनेस का राज्य करते कुल २६ वर्ष ही हुए थे। इस प्रकार सं. १०३ −२६=७७ वर्ष तक इनके पूर्व भी लोगों ने राज्य किया।

---

[1] रायचौधरी पृष्ठ ४६८

[2] धन्वंतरी क्षपणकामरसिंह शंकु, वैतालभट्ट घट कर्पर कालिदासाः ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायाम् रत्नानि वै वररुचि नंव विक्रमस्य।

इस तीसरे शिलालेख में महाराजा मोग का नाम मिलता है, जिससे यह समझा जा सकता है कि गोंडफरनेस के पूर्व वे ही राजा हुए थे। यहां यह बात ध्यान देने लायक है कि मोग के पिता जो कि मोग के पूर्व राज्य कर रहे थे वे कुस्स के क्षहर (क्षहरात) क्षत्रप लिआक कुशलक की तरह सम्बोधित किए गए हैं। यदि यह बात सही है तो चष्टनवंशी कच्छ के अधिपति शक क्षत्रप जो कि रूद्रदमन प्रथम के पश्चात् गोतमीपुत्र शातवाहन के पूर्व नहपान के अधिकार में थी, जिसके विरोधी मालय या मालव लोग थे--का सम्बन्ध क्षहरात क्षत्रप या पश्चिमी ओर दक्षिणी भारत के महाक्षत्रप से किसी भी प्रकार नहीं था।

रूद्रदमन प्रथम द्वारा प्रचलित संवत् जो कि शिलालेखों में प्रचलित रहा, शक-संवत् की तरह कुशाण के समय प्रसिद्ध हुआ। शक संवत् का प्रारम्भ हम ७८ ईस्वी सन से ले सकते हैं। रूद्रदमन के सम्बन्ध में और कहीं इस प्रकार के उल्लेख नहीं मिलते। जहां कहीं जो भी उल्लेख मिलते हैं, वे उसके पिता जयदमन और दादा चष्टन और कनिष्क प्रथम ने एकही काल में राज्य करना प्रारम्भ किया। चष्टन ने पश्चिमी भारत के और कनिष्क ने उत्तरापथ और मध्यदेश को कुशाण राज्य की पश्चिमी अंतिम सीमा सांची थी, और उसके परे कुशाण राज्य नहीं था। इसी बात को शक संवत् २८ के सांची की बुद्ध प्रतिमा के शिलालेख ने भी सिद्ध कर दिया है। यदि हम पुराणों की बात मानलें तब तो शुंगों का पतन एक ओर तो कण्वों के एवं दूसरी ओर सातवाहनों के सिमुक एवं उसके भाई कृष्ण के नेतृत्व में उत्कर्ष होने पर हुआ। और ईसा पूर्व सन् २५ में सातवाहनों के उत्कर्ष पर कण्वों का पतन हुआ। तब नहपाण काल के नाशिक की गुफाओं के शिलालेख (नाशिक) में कृष्ण के शिलालेख एवं सिमुका की रानी नागनिका के नानाघाट की गुफाओं के शिलालेखों से पूर्व के प्रतीत होते हैं। नाशिक की एक गुफा का उषवदत्त के संस्कृत शिलालेख में मालव की शूरता एवं पराक्रम का वर्णन तो है ही, परन्तु उषवदत के नेतृत्व में उत्तमभद्रों द्वारा दी जाने वाली करारी पराजय का भी जिक्र है।

नहपाण काल के किसी भी शिलालेख में शातकर्णी नामक राजा के अस्तित्व का जो कि दक्षिणाधिपति कहलाया-वर्णन नहीं है। इसी के विपरीत जूनागढ़ की चट्टानों पर के शिलालेख में रूद्रदमन द्वारा पराजित दक्षिणाधिपति पराक्रमी सातकर्णी एवं उससे अपनी राज्य सीमा को फिर से छीन लेने का वर्णन है।

वाशिष्ठी पुत्र पुलुमायी के नाशिक की गुफाओं के शिलालेखों में सातवाहनों की राज्य-सीमा में आकरावंती अनूप, कुक्कुरापरांत, सुराष्ट्र, सह्य, विंध्या, रिक्षावत और पारीयात्र भी शामिल हैं। और उनमें वाशिष्ठीपुत्र और उसके पिता गोतमीपुत्र को दक्षिणाधिपति कहा गया है और क्षहरात वंशियों का उन्मूलक भी कहा गया है। इससे एक और पूर्व कल्पना होती है कि शक, यवन और पार्थियनों ने, जो कि पश्चिमी-भारत के समुद्री किनारे पर फैले हुए थे, इस कार्य में मदद दी थी, और इस बात की पुष्टि रूद्रदमन प्रथम के जूनागढ़ के शिलालेख से हो जाती है। जब पश्चिमी और दक्षिणी भारत के क्षहरात क्षत्रप नहपान के समकालीन उषवदत्त के शिलालेखों पर सातवाहन एवं शक क्षत्रप के सम्बन्ध से विचार करते हैं, तब एक ऐसी ऐतिहासिक-काल सम्बन्धी समस्या खड़ी हो जाती है, जिसे सरल करना आसान काम नहीं। उस काल में दशपुर अवश्य नहपाण के राज्य में शामिल था, परन्तु इस बात का अभी तक कोई सबूत नहीं मिलता, जिसके आधार पर कहा जा सके कि उज्जयिनी या अवंती भी उसके राज्य की सीमा में ही शामिल थी।

अनु०—प्रो. निगम

नवयुग के सफलता की अजोड़ कुँजी-विनोद

अनुवादक
श्री
श्रीनिवास
जोशी

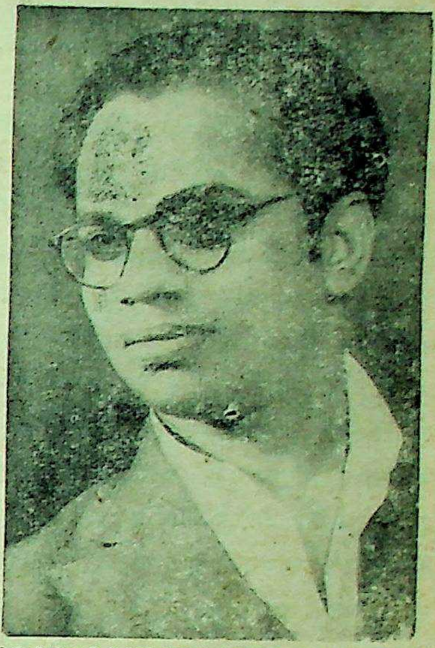

हम अबतक अच्छी तरह से यह समझ ही नहीं पाए हैं कि हमारे दैनंदिन जीवन में विनोद का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। यह सांस्कृतिक मन्वन्तर का समय है। जीवन के विविध अंगों में नित्य नवीन परिवर्तन हो रहे हैं। राजनीति, विद्याव्यासंग या कहिए कि जीवन के सभी क्षेत्रों में एक महान क्रांति हो रही है। इस सर्वांगीण क्रांति को पचाने के लिए एक ही मात्रा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। और वह है--विनोद ! इस मात्रा का कार्य बाह्यलेपन नहीं वरन् मन के अन्दर प्रवेश करके वैज्ञानिक ढंग से योग्य परिवर्तन करना है। विनोद के केवल स्पर्श मात्र से ही अपने सब आचार विचारों में कायापलट हो जाता है।

राष्ट्र के जीवन में तो विनोद का स्थान हुकूम के इक्के जैसा है। केसर विलियम कितना शक्तिशाली बादशाह था ! कैसी उसकी धाक थी। परन्तु हास्य के अभाव में उस गरीब को सिंहासन खोना पड़ा। विलियम होहेन्झोलर्न संभव है अपने घरेलू जीवन में थोड़ा बहुत हँसा हो, पर उसके सार्वजनिक जीवन के चित्र देखिए ! उसकी वे लफ्फेदार मूंछे, वह उग्र और क्रूर चेहरा—ऐसा लगता है कि जैसे वह सदा किसी न किसी पर झल्लाता रहा होगा। इन दिग्विजयी महापुरुषों का हास्य युद्ध में पाई हुई जय या दूसरों को सताने की प्रवृत्ति में से ही निर्माण होता है। नहीं तो वैसे उनके चेहरे की इस्त्री कभी नहीं बिगड़ती। होहेन्झोलर्न की जय-पराजय का लेखा जोखा करते समय उसके हास्य की यह रीति भी अवश्य रूप से ध्यान में रखनी होगी। युद्ध में जर्मनी की हार हुई। इस का स्पष्ट कारण यह था कि विलियम होहेन्झोलर्न यह जानता ही नहीं था कि कब और कैसे हँसा जाता है। वह केवल स्वप्न सृष्टि में मग्न रहा और अपनी महत्वाकांक्षाओं को किसी प्रकार का लगाम या प्रतिबन्ध नहीं लगा सका।

यूरप के सारे तानाशाहों के विषय में भी यह बात लागू होती है। उनके आगे की ओर फैले से जबड़े—दांतों के नीचे मजबूती से दबे हुए होंठ--उनमें से हरेक का चेहरा इतना भयानक प्रतीत होता है कि बस ! कुछ न पूछिए ! सारी दुनियां का बोझ जैसे इन्हीं के सर पर आ-गिरा हो। जैसे ये हैं तो दुनियां जी रही है। नहीं तो महाप्रलय हो जाता। तानाशाही राष्ट्रों पर के आक्षेपों में सबसे अधिक बदनामी करने वाला आक्षेप, यदि कोई हो सकता है. तो वह यह है कि उनके नेता हास्य-विमुख होते हैं। दूसरी ओर प्रजातन्त्र देशों के अध्यक्ष सदा हँसते-हँसाते रहते हैं। प्रेसीडेन्ट रूझवेल्ट सार्वजनिक जीवन में खूब खिलखिला कर हँसते थे। कितनी भाग्यशाली रही है अमरिकी जनता। परन्तु यूरप के इन तानाशाहों का हास्य न जाने कहां भाग गया है ? क्या उनकी प्रजा को अपने नेताओं का हास्ययुक्त चेहरा देखकर एकदम रुंआसी आ जाएगी ? या भय सूचक, क्रोधित और उग्र चेहरे के अभाव में जैसे सारे देश में हाहाकार मच जाएगा ? हिटलर के विषय में जब मैंने यह पढ़ा कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन में बडे मन-मोजी ढंग से रहता है, तो उसके प्रति मेरे मन में आशा और आदर उत्पन्न होगया। लेकिन यदि इन तानाशाहों को चौबीसों घन्टे इस प्रकार के चेहरे धारण करके रहना पडे तो समझ लीजिए कि इन राष्ट्रों के दिमाग में ही कुछ खराबी उत्पन्न हो गई है। हास्य-विहीनता उल्टी खोपड़ी होने का लक्षण है।

तानाशाहों के हास्य पर हमने यह पिष्टपेषण केवल समय का दुरुपयोग या व्यर्थ की चर्चा के लिए शुरू नहीं किया है। सर्वशक्तिमान राज्यकर्ता यदि हँसता न होगा,

विनोद बुद्धि का यदि उसमें अभाव होगा. तो उसका गम्भीरता पूर्वक विचार करना आवश्यक है। गलतियां, तर्कदुष्टता, विसंगति और हरबात का अतिरेक--इन सब विकल्पों का मर्मभेद करने वाली एक ही शक्ति है--और वह है विनोदबुद्धि ! जरा सोचिए तो, विनोदी राज्यकर्ता यदि सारी दुनियां का राज चलाने लग जाए तो कैसा आनन्द आएगा ? अपने इस सुख-स्वप्न का मैं ज्यों-ज्यों चित्रण करता हूं त्यों-त्यों राजनीति में विनोद की महिमा का महत्व मुझे अधिकाधिक जंचता जाता है। अपने देश के सर्वश्रेष्ठ विनोदकार को सर्वाधिकार सौंप दीजिए। फिर उनकी एक अन्तर्राष्ट्रीय-परिषद् बुलवा कर सारी दुनियां का भवितव्य उनके हाथों में निःसंकोच दे दीजिए। मैं दावे से कह सकता हूं कि विनाश के ज्वालामुखी की ओर द्रुतगति से अग्रसर होने वाली दुनियां का अधःपात निश्चित टल जाएगा।

विनोद के साथ खिलाड़ी एवं समतोल वृत्ति आती है। सच्चा विनोदकार समतोल वृत्ति का सियाना आदमी होता है। प्रत्येक राष्ट्र का प्रतिनिधि श्रेष्ठ विनोदकार होने से उस देश के सबसे अधिक समतोल, स्वस्थ और समंजस वृत्ति के मनुष्य को ही वह प्रतिनिधित्व प्राप्त है। आयलैंड का शॉ, कॅनेडा का स्टीफन लिकॉक, चेस्टरटन जीवित नहीं है तो इंग्लंड का प्रतिनिधित्व वुडहाउस या आल्डस् हक्सले; बिल रॉजर्स होता तो अमेरिका का प्रतिनिधित्व और भी अच्छी तरह करता पर अब उसकी जगह रॉबर्ट बेंचलो या हेवुड ब्राउन भी वह काम बड़ी चतुराई से कर सकता है। इटली, फ्रॉन्स, जर्मनी और रूस के प्रतिनिधि भी इस तरह चुन लिए जाएँ। युद्ध का जरा भी भय उपस्थित हो तो इन सबको आपस में सिर फोड़ने के लिए बैठा दीजिए और फिर मजा देखिए। वे कुछ भी करें, पर युद्ध प्रारम्भ करना उनके लिए असम्भव है। युद्ध प्रारम्भ करने की बात तो दूर रही...पर युद्ध विषयक बातें करना उन्हें ठीक से नहीं आएगा। वैसे विचार मन में आते ही उनकी विनोद-बुद्धि उन्हें फटकारेगी। युद्ध की घोषणा करने वाले लोग असीम कल्पना की शराब पीकर पगले बन जाते हैं। हम करें सो कायदा का घमण्ड उन्हें होता है। उनमें एक अन्ध विश्वास होता है कि भगवान उनके पीछे है। पर विनोदकार की बात ही कुछ और होती है। उसमें आत्म-परीक्षा की शक्ति होती है। वह हठीले इन्सान की तरह नशे की धुंदी में कभी नहीं रहता। आप देखेंगे--स्वयं बर्नार्ड शॉ ही पुकार उठेगा—'यह आयलैंड की गलती है।' बर्लिन का व्यंग चित्रकार उसे रोककर कहेगा--'नहीं महाशय ! गलती तो हमारी है।' हेवुड़ ब्राउन इस बात की जिद पकडेगा कि सारे घुटाले की जड़ अमेरिका है। तब अध्यक्ष स्थान से स्टीफन लिकॉक सबको शांत करके कहेगा--'मित्रों, मूर्खता एवं आत्मघाती वृत्ति में हम एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं। यह डींग कोई राष्ट्र नहीं मार सकता। विनोद की सौगंध लेकर अब आप ही कहिए कि आत्मनिंदकों के झगडे में से प्रलयकारी युद्ध कैसे शुरू हो सकता है ! क्योंकि युद्ध के सूत्रधार कौन होते हैं ? बलोन्मत्त, कारस्थानी, दुरभिमानी और मठ्ठ-बुद्धि, जिद्दी और महत्वाकांक्षी, चाणाक्ष और क्रोधी, देशभक्ति के नशे से धुंद बने हुए, मनुष्य जाति पर अत्यधिक उपकार करने की प्रेरणा लिये हुवे, सारी दुनिया पर अपने कर्तव्य का सिक्का जमाने की इच्छा रखने वाले...मृत्यु के पश्चात् अपनी अश्वारूढ़ मूर्ति का स्वप्न देखने वाले लोग ही युद्ध के लिए कारणीभूत होते हैं। वैसे देखा जाय तो ये लोग जन्म से ही भीरू, क्रूर और मूर्ख होते हैं। विनोदकार के धैर्य, स्थैर्य और व्यवहारचातुर्य जैसे गुणों का उनमें सम्पूर्ण अभाव रहता है। साधारण-सी बात में भी उनका पित्त भड़क जाता है, और फिर उसी-उसी बात की चर्चा का पिष्टपेषण वे करते बैठते हैं। विनोदकार की दृष्टि विशाल होती है, वह नीर क्षीर का न्याय जानता है। तुच्छ बातों पर वह कालापव्यय कभी नहीं करता।

आजकल मुत्सद्दी लोगों के विषय में एक भ्रामक एवं मूर्खतापूर्ण कल्पना रूढ़ हो उठी है कि उसे सर्वसामान्य लोगों से अलग दिखना चाहिए। जिसके चेहरे पर व्यर्थ की सावधानी, चिंताग्रस्तता और धीर-गम्भीरता न हो वह सच्चा राजनीतिज्ञ हो ही नहीं सकता, जो थोड़ी कुसबुस न करे, या जो यह न दर्शाये कि मैं जागतिक-महत्व की समस्या हल करने में व्यस्त हूं...वह मुत्सद्दी ही क्या ? ऐसे विचार वाले लोगों को हमारी विनोदकारों की परिषद की कल्पना हास्यास्पद प्रतीत होगी।

और देखा जाय तो यह आवश्यक भी नहीं है कि दुनिया का अधःपात टालने के लिए विनोदकारों की ही परिषद् बुलाई जाय। विनोद का ठेका केवल विनोदकारों ने तो ले नहीं रखा है ? प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विनोद का वृन्दावन होता ही है, उसके जाग्रत मात्र होने की देर है। आज यूरप महायुद्ध की भीषण खाई की सीमा पर खड़ा है। दुरभिमानी, करारी, आकांक्षी, मानवजाति के स्वयं कथित हितचिंतक और 'बनचुके' मुत्सद्दी आज भी ऐसी परिषद् को प्रतिनिधि बनाकर भेजिए, पर उनकी हर बैठक से पहले, दस मिनट के लिए मिकि माउस के चित्रपट प्रदर्शन का कार्यक्रम रखिए, युद्ध के बादल यों नष्ट हो जायेंगे।

विनोद का मूलग्राही एवं वैज्ञानिक कार्य इसी प्रकार का है। विचारों की दिशा बदल देगा, हृदय परिवर्तन करना। और यह निश्चित है कि मन का परिवर्तन होते ही मनू के परिवर्तन में देर नहीं लगती। हम कहना यह चाहते हैं कि विनोद का सम्बन्ध ठेठ संस्कृति की जड़ तक पहुँचता है। भविष्य के गर्भ में समंजसता का जो युग बंदिस्त है, उस युग का मार्ग स्पष्ट करने के लिए विनोद एक बेजोड़ कुंजी है। विचारों की सरलता, कलह विमुखता, सामोपचारिक वृत्ति की वृद्धि के बिना लोगों के मन नहीं सुधर सकते। समंजसता स्थिर हो गई तो यह कहा जाएगा कि युगांतर हो गया। आदर्श युग का यह अर्थ नहीं कि वह न्यून रहित, तर्क शुद्ध और बुद्धिवादी युग हो। नया आदर्श युग न्यूनता का पर उसे मान्यता देने वाला, भूलें करके उन्हें स्वीकार करने वाला, झगड़ों का न्याय झगड़ों द्वारा न करते हुए, सामवृत्ति से निपटने वाला समंजसता का युग होगा। अवास्तव एवं असम्भव ध्येयवाद को हृदय में रखने से उपरोक्त योग्य अपेक्षा रखना कहीं उचित है। इतना भी प्रत्यक्ष में उतर सका तो लीजिए कि हमने बाजी जीतली। पर यह प्रत्यक्ष में उतर कैसे सकता है ?

सीधीसादी विचारधारा, हेलमेल का तत्वज्ञान और सूक्ष्म तारतम्य की जानकारी के बिना यह प्रत्यक्ष रूप धारण नहीं कर सकता। हां, विनोद में इन बातों का निश्चित समावेश होता है।

आज दुनिया की गतिविधि इतनी विचित्र बन गई है कि समंजसता के इस युग की कल्पना का मन में स्थिर होना भी कठिन हो गया है। अपनी विद्वत्ता गम्भीरता में डूब गई है। तत्वज्ञान पर निराशा की छाई-सी आ गई है। विचारशक्ति पर बनावटी अवगुंठन पड़ गया है। सारा जीवन संकीर्ण, सापेक्ष और उलझनमय बन गया है। पांडित्य की यह जड़ता...यह थोथी गम्भीरता और वैचारिक अवगुंठन ही अपनी अधोगति के मूल कारण हैं। सुधार और संस्कृति का ठोस प्रतीक है--आचार-विचारों की सहज सुन्दरता। परन्तु हम सहजता से कृत्रिमता की ओर एवं सरल-साधे जीवन के बजाय बनावटी जीवन की ओर अधिक झुक रहे हैं, यह अधःपतन का लक्षण है। आकांक्षा, कल्पना और ध्येय के हम दास होते जा रहे हैं। हम अपने ही द्वारा निर्माण की हुई कृत्रिम समाज पद्धति के कट्ठे में अपनी गर्दन फँसा चुके हैं। इस स्वयं निर्मित धागे से मुक्त होना हमारे लिए मुश्किल हो गया है। पर इस जकड़ी हुई अवस्था में भी हम भाग्यवान् हैं। क्योंकि इस अवस्था में भी हम अपने स्मित की सहायता से उन भव्य कल्पना, ध्येय एवं आकांक्षाओं का भार हल्का कर सकेंगे, उसे झेल सकेंगे। क्योंकि विनोद-बुद्धि की अद्वितीय संजीवनी हम में से हरएक को प्राप्त है। कसे हुए खिलाड़ी का कंदुकस्पर्श हल्काफुल्का होने पर भी उसका परिणाम निश्चित रहता है। विनोदवृत्ति की भी यही बात है। विनोदकार के पास आत्मविश्वास में से निर्माण हुई सहजता होती है। आकांक्षा और ध्येय; विचार और विकार इन्हें वह सहज उठा सकता है। वह सच्चे अर्थ में 'कल्पना प्रभू' होता है। वह कल्पना के साथ मजे से खेलता है। और जो उससे मजे से खेलता है, वह उसका दास कभी नहीं हो सकता। जड़त्व कृत्रिमता का द्योतक है। कृत्रिमता अशुभ की प्रतीक है। कल्पना और विचारों का बोझ बढ़ते ही मनुष्य गम्भीर बनने लगता है, उसके विचारों को जड़त्व प्राप्त हो जाता है।

तो, सहजता अकृत्रिमता और सरलता—ये विचारों की गहराई के चिन्ह हैं। विचारों की सरलता अप्राप्य वस्तु जैसी है। विचारों में सरलता न होगी तो उसमें अकृत्रिम सहजता कैसे आएगी ? विद्वत्ता और वाङ्मय के क्षेत्र में सहजता साध्य होना दुष्प्राप्य सिद्धि के मिलने

जैसा है। लेखन में गडबड हो तो तुरन्त समझ लीजिए कि लेखक के मन में विचारों की गडबड रही होगी। कॉलेजों के नए प्रोफेसरों के व्याख्यान अवतरणों से भरे एवं बडे-बडे शब्दों से युक्त होते हैं। विचारों की सरलता एवं आविष्कार की सहजता देखना हो तो हमें किसी पुराने प्रोफेसर के पास जाना चाहिए। इसका रहस्य भी यही है। कोई नया प्रोफेसर बडे-बडे शब्द टालकर सहज सुन्दर भाषा में बोलता हो तो फौरन समझ लीजिए कि वह सचमुच होशियार है। ज्ञान के केवल पान से कुछ नहीं होता। उसे पचाकर उसका प्रभाव शरीर पर दिखना चाहिए। यहां 'प्रभाव' का अर्थ शब्द जड़ता के सूजन से नहीं है। प्राप्त किए हुए ज्ञान का जीवन के सर्वसामान्य अनुभवों से समन्वय किए बिना—अर्थात् उसे पचाए बिना—किसी भी अपण्डित को उसे मजे से प्रदर्शित करना नहीं आ सकता।

ज्ञान-साधना के प्रदीर्घ रेगिस्तान से प्रवास करते हुवे बीच-बीच में प्रचीति की वाटिकाएँ लगती हैं, वहां रुकना ही पड़ता है। और तब ये पण्डित अपने-अपने मन में प्रश्न करते हैं कि यह सब में क्या कर रहा हूं? ऐसे प्रश्नों का उत्तर खोजते हुए ज्ञान में पूर्णता आती जाती है। तब विचार स्वच्छ हो जाते हैं, शंका—कुशंकाएं एकदम नष्ट हो जाती हैं, कल्पना साकार होने लगतीं हैं, विचारों को आकार प्राप्त होता है और उनमें सूत्रबद्धता आ जाती है। और तब ज्ञान-साधक ज्ञान की उस चरम-अवस्था को पहुंच जाता है जिसे सियाना कहते हैं। इस अवस्था तक पहुंचे हुए लेखन में कृत्रिमता बिलकुल नहीं रहती। कल्पना स्फटिक की भांति स्वच्छ हो जाती है क्योंकि उन्हें सत्य सहजावस्था में हस्तगत हो जाता है। उनकी पारदर्शक शैली का लेखन पढ़कर पाठक प्रसन्नता से कह उठता है—'अच्छा? जिसे सत्यसत्य कहते हैं, वह कितना साध्य और सहज सुन्दर होता है।

सहजता की सिद्धि प्राप्त करने के लिए विनोद देवता को शरण गए बिना चारा नहीं! ध्येयवादी मनुष्य अपनी कल्पना के आकाश में त्रिशंकू की तरह लटकता रहता है। परन्तु विनोदकार के पैरों तले वास्तवता की अनुभव सिद्ध जमीन रहती है। केवल कल्पना सृष्टि में तल्लीन रहने वाले मनुष्यों के विचारों में सदा उलझन पैदा हो जाती है। विनोदकार कल्पना-सृष्टि और सत्य-सृष्टि के बीच की विसंगति झट से दिखलाने वाला रोखठोक एवं व्यवहार निपुण व्यक्ति होता है। उसके लेखन में स्वप्नवत्, आभासमय या ढोंग जैसा कुछ नहीं होता। सरलता, सहजता, एवं स्वाभाविकता आदि गुण उसमें आप ही आप आ जाते हैं।

व्यर्थ की पवित्रता, झूंठा डामडोल, रटी हुई वाक्पटुता उसे कभी पसन्द नहीं होती। वह सियाना होता है क्योंकि वह विनोदी होता है। उसे सब व्यवहार स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनका आविष्कार भी वह बडे सहज सुन्दर ढंग से करता है। इसीलिए यह कहना पड़ता है कि साधी रहन-सहन और सरल विचार-धारा की वृद्धि होकर समंजसता का युग पास लाना हो तो विनोद बुद्धि को जागृत करना होगा। विनोद-बुद्धि की वृद्धि पर मानवीमन का विकास निर्भर है। इस विषय में कुछ ठोकताले भी पक्के किए जा सकते हैं जैसे—प्रत्यक्ष सृष्टि—स्वप्नसृष्टि=पशु। प्रत्यक्ष सृष्टि+स्वप्नसृष्टि=हृदयव्यथा या ध्येयवादी। प्रत्यक्ष सृष्टि+विनोद=वास्तववाद। स्वप्नसृष्टि—विनोद=एक कल्लीवृत्ति। स्वप्नसृष्टि+विनोद=छांदिष्टता। प्रत्यक्षसृष्टि+स्वप्नसृष्टि+विनोद=सियानापन।

श्रेष्ठ-गुणों से युक्त विचारधारा में प्रत्यक्ष सृष्टि पर से तीव्रगति से जाने वाली स्वप्नसृष्टि विनोद का लगाम पहने रहती है। और ऐसी विचारधारा को ही सियानापन या समंजसता कहते हैं।

मूल लेखक—लिव् यू टँग के "पीलस ऑफ लाफटर" से

राजस्थानी रनिवास के व्रत-त्यौहार

श्री राहुल सांकृत्यायन

नवरात्र—

दशहरा राजस्थान का जातीय त्यौहार है, किन्तु उसका सम्बन्ध अन्तःपुरिकाओं से उतना नहीं है। अन्तःपुरिकाएँ नवरात्र में बड़ी ही श्रद्धा—भक्ति से माताजी की पूजा करती हैं। दीवार पर कुमकुम से त्रिशूल बना दिया जाता यही माताजी की प्रतिकृति है। वहां खूब पन्नी लगा दी जाती। स्त्रियों के अपने त्यौहारों में ब्राह्मणों के कर्मकांड और वेद-मंत्रों की उतनी आवश्यकता नहीं होती। सामने आग में घी डाला जाता जिसे जोत जगाना कहते। ठकुरानी या रानी माताजी की पूजा करतीं और लौंडिया माताजी के गीत गातीं। माताजी के ऊपर कुमकुम का छींटा अंगुलियों से डालना यही पूजा है। लापसी और मिठाई का भोग लगाया जाता। माताजी की पूजा में शराब की बोतल आवश्यक है, रोज सबेरे पूजा करते समय शराब की धार दी जाती। पूर्वी जिलों में आजकल यह धार शराब की न होकर लौंग और दूसरी चीजों से मिश्रित पानी से दी जाती है, जिसका अर्थ है असली शराब की जगह नकली शराब देकर माताजी को फुसलाना। जो स्त्रियां नवरात्र-व्रत रखतीं, वह नौ दिन तक एक वक्त खाती और उनके भोजन में माताजी का प्रिय खान-पान—मांस और दारू अवश्य रहता। कितनी स्त्रियां नौ दिन व्रत न रख कर केवल आदि और अन्त के दो दिनों में रखतीं। नवमी के दिन लापसी और खीर का भोग लगाया जाता। पशुबलि देना पुरुषों की पूजा का अंग है, जो रनिवास में नहीं होती। लापसी सवा सेर, सवा पांच सेर या सवा मन की तैयार की जाती। नवमी के साथ स्त्रियों की माता-पूजा समाप्त हो जाती। अगले दिन राजपूत पुरुष दशहरा की पूजा और हथियारों का प्रदर्शन करते हैं।

दीवाली—

दशहरे के दूसरे दिन से दीवाली की तैयारियां होने लगती। सलमाडा में महलों की हर साल सफेदी नहीं होती, और जो दीवारें वज्रलेप की हुई होती उन पर चूना न पोत कर साबुन और सोड़े से धोते। रंग करने के स्थानों में रंग करा लिया जाता। उसी दिन गर्मी और बरसात के साथी पंखों को बिदा किया जाता, और छत के पंखे खोल लिए जाते। कमरों में दरी और गलीचे का स्थान अब रूईदार गद्दे लेते। दीवाली के आने की सूचना बीराबारस (कार्तिक बदी १२) से शुरू होती है। भाई की बहन सुबह चार बजे उठकर उस दिन उबटन करती, शिर धोती है। अगले दिन धन तेरस होती, जिस दिन भी स्त्रियां सिर धोती, और उत्सव की वेषभूषा ग्रहण करतीं। उससे अगले दिन रूपचौदस पड़ती। इसी दिन यदि विधि-विधान ठीक से किया जाय तो स्त्री को मोहक-रूप मिल सकता है। खूब शरीर में उबटन करके स्त्रियां नहातीं। नहाते वक्त उनके सामने घी का दिया जलता रहता, जिस पर महिला की आंख बराबर लगी रहती। वह दीप की ज्योत से शरीर की ज्योत बढ़ाती। उस दिन ऊंगा की दातवन की जाती कड़वे तूंबे का रंग सोने जैसा होता है। आंख को वह बहुत भाता है, यद्यपि जीभ उसको बर्दाश्त नहीं कर सकती। मतीरा (तरबूजा) राजस्थान की कितनी स्वादिष्ट चीज है, और तपे रेगिस्तान में उसके खाने से कितनी तृप्ति होती है, लेकिन वह आंखों को उतना तृप्त नहीं करता, जितना कड़वा तुम्बा। इसीलिए कहावत है--

मनरंजन भूखभंजन की तिसियां घणी उमेद।
तन्ने झोलो मत मारो, म्हारी गड़तुंबा की बेल।

--किसी मुसाफिर ने मतीरे को आनन्द से खाकर तृषा (प्यास) को घनी (पूरे) तौर से हटाने वाले मतीरे को आशीर्वाद देना चाहा, लेकिन उसके मुँह से अंतिम पद निकल आया--"म्हारी गडतुंबा की बेल।" और मतीरे को झोला मारने लगा, लेकिन गडतुम्बा खूब फलने-फूलने लगा। स्त्री गडतुम्बा जैसा सुवर्ण वर्ण में होना चाहती है, लेकिन भीतर से वैसी नहीं, इसलिए पहले उसकी ओर-चाव से देख कर फिर तुंबे को एड़ी के नीचे दबाकर छोड़ देती। रूपचौदस का विधि-विधान

इतनें से समाप्त नहीं होता। नहाने के बाद खूब शृंगार (काजल-टीकी) किया जाता, और अच्छे-अच्छे कपड़े पहने जाते हैं।

उसी दिन शामको कानी दीवाली होती। अगले दिन कार्तिक की अमावस्या को सभी जगहों की तरह राजस्थान में दिवाली मनाई जाती है। ठिकानों में नोकर-नोकरानियों को आदमी पीछे सूखा (बिना सिझा) चावल आधा सेर तथा घी-चीनी देते हैं। यह सलमाडा का रेवाज है। मालर (जनपुर) में उसकी जगह नोकर-चाकरों को फुलके और लापसी दी जाती है। मिट्टी के दियों को कुम्हार दे जाता, जिन्हें पानी में रख कर ठण्डा कर लिया जाता, फिर दियों में तेल डालकर सात बड़े थालों में उन्हें सजाया जाता, जिनमें से एक-एक थाल में इक्कीस दिये होते। फिर दिये की पूजा होती। फिर सभी जगह दिये जला दिए जाते कमरों में, मंदिर में, छत पर, गढ़ के कंगूरों पर दीयों की दो-दो तीन-तीन पांती जगमग-जगमग करने लगती। अगर हवा कुछ तेज दिखती तो तेल में रूई बोर कर जलाई जाती। आजकल मोमबत्तियों और बिजली के भी दिये जलते हैं। दीवाली की मुख्य पूजा है लक्ष्मीपूजा। घर के सारे जेवर रीठे और सूअर के बालों की कूंची से दिन में साफ कर लिए जाते। फिर तोसाखाने में चौकियां लगा दी जातीं। दस बजे रात के करीब वहां एक थाल में गिन्नियां सजाई जातीं। एक दो या तीन जितनी थालों में आए जेवरों को सजा दिया जाता। महिलाएँ सुन्दर कपड़ों पर अधिक और जेवर पर कम ध्यान देतीं, क्योंकि जेवर लक्ष्मीपूजा के लिए सजाकर रक्खे जाते। उस दिन घर का सारा नकदनारायण और सभी आभूषण अर्थात् सारी माया तोशाखाने में यहां इकट्ठी रहती। डाकुओं और चोरों के लिए यह बहुत अच्छा समय है, उन्हें किसी चीज के ढूंढने की जरूरत नहीं। लेकिन ठाकुरों और राजाओं के तोसाखाने बन्दूकधारी संतरियों द्वारा सुरक्षित होते हैं। तो भी ऐसी घटनाएं हुई हैं. जबकि दीवाली को डाकुओं और चोरों ने घर की लक्ष्मी को बटोर ले जाने में सफलता पाई। कभी-कभी जल्दी लक्ष्मी को घर में पधारने के लिए उन्होंने दीवाली की नकल की।

मालवा के सुलतान के दरबार में किसी समय एक साधु आया और उसने कहा, कि मैं सारी माया को दुगुनी कर सकता हूं। दरबार ने घर भर के सारे जेवरों को एक कोठरी में जमा कर दिया। साधु तीन दिन की पूजा से जेवरों को दूना करने के लिए कोठरी में चला गया, और कह गया, कि तीन दिन से पहिले इसे न खोलना। तीसरे दिन कोठरी खोली गई तो न साधू था न जेवर। जेवरों और मोहरों-रुपयों के पास दीवार पर लक्ष्मी की तस्वीर लगा दी जाती है। दूसरे ठिकानों और राज्यों में इसका निर्बन्ध नहीं है, किन्तु जसपुर में लक्ष्मीपूजा के समय महिलाएँ सलमा-सितारे के काले रंग के कपडे पहनती हैं। वहाँ अगरबत्तियां जलाकर सारे तोसाखाने को सुगन्धित कर दिया जाता है। तेल के दीवों की जगह आजकल मोमबत्तियों का ज्यादा रेवाज है, तब भी दो बडे दीवे घी और तेल भर कर रख दिए जाते हैं, पहरा लगा रहता है, जिसमें वह बुझने न पाए—नहीं तो न जाने कब लक्ष्मीजी पधारें और तोसाखाने में अंधेरा देख कर उलटे पांव लौट जांय।

लक्ष्मीजी को सलमाडा में पके हुए चांवल और मूंग के ऊपर घी-चीनी रख कर भोग लगाया जाता है। मारवाड़ में उन्हें लापसी जिमाई जाती है। उस दिन महिलाएं लक्ष्मीजी के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हैं—लेकिन यह हाथ जोड़ने की मुद्रा पद्ममुद्रा न होकर भिक्षा-मुद्रा—पसारी अंजली होती है। प्रसाद बांटा जाता है, आधीरात तक गाना-बजाना होता है। जो भाग्यवती अंतःपुर की नारी अक्षर पढ़ना जानती है, वह "गोपाल सहस्र नाम" का पाठ जरूर करती है, शायद उन्हें लक्ष्मी-सहस्र नाम का पता नहीं है।

दीवाली की रात के भिनसारे नोकरानियां उठ जाती हैं। इस समय उनका काम है दरिद्रता को घर से बाहर निकालना। घर की सारी बुहारियों (झाडुओं) को इकट्ठा करके दरवाजे के बाहर रख आना, बस दरिद्दर को बाहर निकाल देना है। पूर्वी जिलों में सूप पीटते हुए दरिद्दर को घर से बाहर निकाला जाता है। जनपुर में भी सूप का निकालना आवश्यक समझा जाता। राजकुलों और ठाकुरों के गढ़ों में दरिद्दर को गढ़ के फाटक से बाहर करना पड़ता है।

और बच्चों की तरह गौरी की भी अपनी छोटी-सी आलमारी थी। लक्ष्मीपूजा के लिए उसे पांच रुपये नकद और एक रुपये के लड्डू मिल जाते थे। आलमारी में पाटा बिछाकर, पीला कपड़ा फैला पांच रुपये और कागज पर बनी लक्ष्मी की मूर्ति रख देती। फिर अपनी मां और ताई की देखादेखी कुमकुम के छींटे देकर लड्डू का भोग लगाती। तोसाखाने में जब रात भर अखण्ड दीप जलता, तो गौरी की लक्ष्मी क्यों अँधेरे में रहती? वह चिराग जलता छोड़ आलमारी को बन्द कर चली जाती और दूसरे दिन हर-साल जब आलमारी खोलती, तो लक्ष्मीजी की मूर्ति और पीला कपड़ा जला मिलता। यह दुर्भाग्य की बात थी इसमें सन्देह नहीं।

दीवाली के दूसरे दिन रामासामा होता। प्रजा में पुरुष ठाकुर साहब के पास जाते, और स्त्रियां भीतर ठाकुरानी के दरबार में हाजिर होतीं। ठाकुरानियां पीने वालियों को शराब देती, विधवाएँ शराब नहीं पी सकती थीं, उनके लिए भंग का गिलास तय्यार रहता। साथ में लक्ष्मीजी के प्रसाद के पान-इलायची के साथ तश्तरी में लड्डू पेश किए जाते।

उस दिन अपराह्न में गोरधन (गोबरधन) की पूजा की जाती। डोढ़ी के सामने नायन काफी गोबर रखकर हाथ पैर वाला सोता आदमी बना देती, यही गोरधन था। शाम के वक्त डोढ़ी पर कनात घेर दी जाती, और अन्तःपुर से ठाकुरानियां और रानियां गोरधन पूजने वहां आतीं। थाल में बिना जला घी का दीपक, तथा हरे या पीले रंग के काचरे, बेर के फल, कुमकुम और पानी की घण्टी होती। इस समय बाजरे के हरे सिट्टों का लाना भी शुभ माना जाता। पहले कुमकुम के छींटे दे गोरधन की पूजा होती; घी के दीवे को जला कर गोरधन के पेट पर रख दिया जाता, और काचरे तथा बेर बिखेर दिए जाते, फिर गोरधन की परिक्रमा करके हाथ जोड़ दिया जाता। इसके बाद पांच-छः महीने का बछड़ा लाकर गोरधन के ऊपर खूब रौंदाया जाता, अर्थात् गोरधन की पूजा करने की सारी कसर निकाली ली जाती। पूजा हो जाने के बाद गाती--बजाती स्त्रियां अंतःपुर में चली जातीं। राजस्थान में, विशेष कर सलमाड़ा में हर त्योहार के दिन सासु, ननद और जेठानी के सामने पांच रुपया रख कर पगे लागना आवश्यक समझा जाता है। बड़ी-बूढ़ियां बहू को आशीर्वाद देतीं—"सीली हो, सपूती हो, बूढ़ सोहागन हो, सात पूत की मां हों।"

मकर संक्रांति—

मकर-संक्रांति भारत के और स्थान के हिन्दुओं में भी अपना विशेष स्थान रखती है, लेकिन राजस्थान में तो उस दिन से कई वार्षिक-व्रत शुरू हो जाते हैं, इसलिए उसका और भी महत्व है। भिनसारे बहू उठती है, और "सूती सेहज जगाणा" (सूती शय्या जगाना) की रसम अदा करती है। सास-ससुर मीठी नींद में सोए रहते, उस समय बाजे-गाजे के साथ बहू उनके शय्या-कक्ष के द्वार पर पहुँचती। दोनों उठ बैठते। उनके सामने मुहर या पांच-पांच रुपये रख कर मिठाई बांटी जाती। जेठ को भी पांचों कपड़े तथा रुपये की भेंट दी जाती। जेठानी को चाहे घाघरा-ओढ़नी और सारे ही कपड़े रुपये के साथ भेंट किए जायें, लेकिन उसे "जेठाणी को कांचलो" (अर्थात् जेठानी के लिए चोली) देना कहते हैं। "देवर को घेवर, और देवरानी को कांचली" भेंट की जाती। यह जरूरी नहीं है, कि सभी की भेंट-पूजा हर साल की जाय। वह एक-एक साल एक-एक की हो सकती है। ननद के सामने भेंट की चीजों के साथ चांदी के कटोरे में खीर भर कर उसमें भेंट की मुहर डालकर भाभी पूछती है--"खूंटी चीर कटोरे नीर, बताओ बाईसा आप रो वीर।" इस पर ननद अपने भाई को बाहर से बुलाकर उसका हाथ पकड़े हुए कहती--"खूंटी चीर कटोरे नीर, देखो भाभी म्हारो वीर।"

मकर-संक्रांति का दूसरा नाम तिलसंक्रांति भी है, उस दिन तिलों के खाने और दान करने का बड़ा महातम है। काले-सफेद तिलों के लड्डू बना लेते हैं, जिन्हें ब्राह्मणियों और नौकरानियों में बांटते हैं। रेवड़ी और गजक जैसी तिल वाली मिठाइयां बाजार से मंगा ली जाती हैं। पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार में मकरसंक्रांति को "खिचड़ी" कहते हैं। राजस्थान में इसे 'खिचड़ा खाना' कहते हैं। बाजरा कूट कर मूंग की दाल के साथ दोपहर को खिचड़ा बनाया जाता है, उसके साथ कढ़ी और घी का होना भी आव-

श्यक है। राजस्थान वाले 'खिचड़ी के चारयार दही, पापड, घी, अचार' के ब्रह्मवाक्य को नहीं मानते। मकरसंक्रांति के दिन वहां मूली खाने में बहुत धर्म माना जाता है। शायद साग-सब्जी खाने और दान देने का भी इस दिन का भी बड़ा महातम माना जाता था, इसीलिए सामर्थ्य अनुसार बड़े लोग मालणों (कुजड़िणें) का चार-चार पांच-पांच तक छाबड़ा (टोकरा) साग लुटा देते हैं। उस दिन छोटी लड़कियां सूर्य की पूजा करती हैं, कलसी में पानी, हाथ में चावल ले सूर्य के सामने अर्घ देती हैं। कोई-कोई इस व्रत को दूसरी संक्रांति तक रोज पूरा करती है।

वसंत झेलणा आदि और भी कई तरह के प्रचलित व्रत हैं, जिनका उल्लेख पुराणों या दूसरी ब्राह्मण विधियों में नहीं मिलता, यद्यपि उनके उद्यापन में दिए जाने वाले दान ब्राह्मणियों या ब्राह्मणों को ही मिलते हैं। राजस्थान की अंतःपुरिकाओं में प्रचलित कुछ और त्योहार निम्न प्रकार के हैं--

माघ सुदी पंचमी वसंत पंचमी (श्रीपंचमी) सारे उत्तरभारत में प्रसिद्ध है। इसके उसलक्ष में पूजा आदि भी की जाती है। राजस्थान में पहिले ही से जो बो दिए जाते हैं, जिनकी उगी हुई पोधों को (जोहारा) थाली में सजा शिर पर रख कर ढोलनियां रानी और ठाकुरानी के पास आती हैं, और थाली को उनके सामने रख वहीं बैठकर गीत गाती हैं। रानियां--ठाकुरानियां कुमकुम से वसंत की इस पोध को पूजतीं हैं। फिर उनमें से कुछ पत्तियों को अपने चूडे में डाल लेती हैं, ढोलणियां फिर वसंत के गीत गाती हैं। पूजा करते समय थालियों में दो या पांच रुपये यथा श्रद्धा, यथा प्रसन्नता रख दिए जाते हैं। वसंत का दिन राजस्थान में फागुन की सूचना देता है। उसी दिन होली के लिए डांडा गाड़ दिया जाता है, और चंग (डफ) लेकर पुरुष धमाल (डोरियां) गाने लगते हैं। जिस वक्त होली का डांडा खड़ा हुआ हो, उस समय पीहर या सासरे जाना जनपुर में शुभ नहीं माना जाता। जरूरी हो तो होली के दिन घर से बाहर किसी धर्मशाला या और जगह बिताकर अनिष्ट के निवारण करने का प्रयत्न किया जाता है।

आंवला एगारस—

पूर्वी प्रदेशों में आंवले का महातम कार्तिक में माना जाता है और उस समय आंवले के नीचे भोजन करना--कराना बड़े पुण्य की बात समझी जाती है। राजस्थान में फागुन बदी एकादशी को 'आंवला एगारस' कहते हैं। आंवले के नीचे खाने--खिलाने का कोई महातम नहीं, हां, कुछ दिन आंवले की पूजा जरूर करते हैं।

शिवरात्रि—

फागुन कृष्णा त्रयोदशी 'शिवरात्रि' का महा-त्योहार है। उस दिन व्रत रख कर स्त्रियां फलाहार रखती हैं, जिसे शागार (शाकाहार) कहते हैं। आलू का हलवा, गाजर का हलुवा, बादाम का हलुआ इस प्रकार तरह-तरह के हलवे बनते हैं। सिंगाड़े की पूड़ियां भी तय्यार की जाती हैं। दोपहर के करीब शिवजी की पूजा की जाती है जिसमें प्योंदी (कलम) वाले बेर, मूली की मोगरियां, शांगरी, बेलपत्र शिवजी की कुंडी पर चढ़ाते हैं। ज्यादा भूख हो, तो पूजा से लौटते ही शागार कर लिया जाता है, नहीं तो चार-पांच बजे भोजन करते हैं। रात को सारी रात जागरण करने का बड़ा महातम है, और इसके लिये रात-रात स्त्रियां भजन गाती हैं। रनिवास की महिलाएं पर्दे के कारण शिवालय नहीं जासकतीं, इसलिये उन्हें शिवरात्रि की पूजा रनिवास में ही करनी पड़ती है। शिवरात्रि के दूसरे दिन सबेरे मांड़-निकाला साधारण चांवल पकाया जाता है। उस दिन सलमाबाद जैसे कितने ही प्रदेशों के रनिवासों में जोगनों को अन्तःपुर के भीतर नहीं जाने देते। जनपुर में उनकी गति अबाध है। जोगन के खप्पर में भात भर दिया जाता है। एक लाख का चूड़ा गुलाबी या पीला रंगा दो हाथ कपड़ा तथा कुछ पैसे जोगन को दे दिये जाते हैं। उस दिन मीठे या फीके चांवल खाने का महातम है।

लूर लैना—

लूर-लैना फागन के गीत और नाच को कहते हैं, जिसका मारवाड़ की स्त्रियों में काफी रिवाज है। यह फागुन के हलके-फुलके नाच और गीत शहरों और गावों, कुटियों और महलों में सर्वत्र होते हैं। दस-दस पंद्रह-पंद्रह स्त्रियों की दो मंडलियां बनकर आमने-सामने खड़ी हो जाती हैं। फिर एक मंडली ताली बजाती कुछ कूदती हुई सामने की मंडली के पास पहुंचती हैं, उसी तरह गीत गाती, नृत्य मुद्रा में लौट जाती हैं। दूसरी मंडली भी वैसा

ही करती है । लूर-लैना के गीत फागुन में गाये जाने वाले दूसरी जगहों की तरह अधिकतर अश्लील होते हैं । काम से निश्चिन्त होकर यह नृत्य-गीत आधीरात के बाद तक होते रहते हैं । पुरुष भी इन्हें देख सकते हैं । कुंवारी लड़कियां अपना अलग लूर लेती हैं । वैसे लड़कियां, बूढ़ियां, तरुणियां और प्रौढ़ायें इच्छा होने पर सभी इस नृत्य में शामिल होती हैं । इस समय गाये जानेवाले गीत वृन्दावनी सारंग राग की लय में होते हैं । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि सभी रागों और रागिनियों के उद्गम जन-गीत हैं । यदि सासु की दया और उदारता प्राप्त हो, तो रानियां और ठकुरानियां भी लूर लेती हैं, हां, उनका गाना नाचना कुछ धीमी गति और धीमें स्वर से होता है ।

होली—

फागुन की पूर्णिमा को होली जलाई जाती है । जसपुर-जनपुर में व्यक्तिवाद ज्यादा है, और वहां हर घर अपनी अलग होली लगाता है, लेकिन सलमाडा में ऐसा नहीं होता । एक होली ठाकुर के लिये गढ़ के फाटक के सामने लगती है, और दूसरी नगर या गांव वालों की किसी रेतके टीले पर । इसके लिये गोबर के गोले छेद करके पहले ही से बडकुले सुखा लिये जाते हैं । हर एक घर के हर एक पुरुष के लिये एक-एक गोबर की गोल ढाल भी बनाई जाती है । इन गोबर के बड़कुलों की माला बना ली जाती है । फिर उन्हें कच्चे सूत की गोली-गोलियों (कूकड़) और तीन-चार हलदी की गांठों के साथ थाल में रख कर स्त्रियां उस दिन होली पूजने जाती हैं । मारवाड़ में हरे गेहूं की बालें भी साथ लेजाती हैं । अन्तपुरकी रानियां-ठाकुरानियां अपनी ओर से इस पूजा-सामग्री को नौकरानियों द्वारा होली पूजने के लिये भेजती हैं । इसी समय मर्द चंग लिये धमाल गाते वहां पहुंचते हैं । पूजा कर लेने के बाद होली में आग लगा दी जाती है । बड़कुलों को उसमें डाल दिया जाता है, लेकिन होली की स्थापना के लिये जो लकड़ी का (डांडा) पहले पहल गाड़ा जाता है उसे सुरक्षित निकाल कर अगले साल के लिये रख लिया जाता है । हलदी की गांठ और कोंकड़ी भी लौटा कर घर लाई जाती है, जो गनगोर की पूजा में काम आती है ।

शीतला पूजन—

गनगोर की पूजा के बारे में पहले कहा जा चुका है । इसी सोलह-सत्रह दिन की पूजाके भीतर ही चेत विदी ७ को शीतला की पूजा आती है । यह वही पूजा है, जिसे पूर्वी उत्तर-प्रदेश और बिहार में 'बसियोड़ा' कहते हैं । बासी भोजन करने के कारण उसका वहां यह नाम पड़ा । शेखावाटी में 'बाशेडा' कहते हैं, और दूसरी जगहों पर शील सातम कहते हैं, शील का अर्थ है ठंडा अर्थात् ठंडा भोजन । जनपुर में यह ठंडा भोजन चार-चार पांच-पांच दिन पहले से बनने लगता है । नहीं तो उसी पहली रात को गुलगुले, मीठी पूड़ियां, रोटी तथा दूसरे भोजन-पक्वान बनते हैं । सलमाडा में गुड़ डाल कर साबित बाजरे का मीठा भात पकाया जाता है । इस त्योहार का मुख्य प्रयोजन है—बालबच्चों को शीतला या चेचक के प्रकोप से बचाना । बच्चों की मायें बल्कि होली के दिन ही से बासी खाना खाने लगती हैं । बाजरे की राब (राबड़) बनाई जाती है । खाटी राबड़ी के बनाने का कायदा है, बाजरे के आटे को पानी में फेंटकर धूप में या चूल्हे के पास रख दिया जाता है । शाम को ऊपर का निथरा पानी निकाल कर उसे उबालते हैं, फिर गाढ़े आटेको उस में डाल देते हैं । पंद्रह बीस मिनिट पकाने के बाद खाटे की राब तैयार होजाती है । इसे दूसरे स्थानों में खाटी लापसी या ढोवा की राबड़ी भी कहते हैं । छाछ में फेंट कर नमक डालकर इसे खाते हैं । गर्मियों में यह अच्छा मालूम होता है । बाजरे को कम पानी में भिगो कर ओखल में डाल कूट कर उसके छिलके को दो-तीन बार फटक कर भी छाछ में पका कर खाटे की राब तयार की जाती है । राब को रात के समय दूध के साथ और सबेरे दही या छाछ के साथ नमक डाल कर खाते हैं । जनपुर में इसके बनाने में बाजरे की जगह मक्की इस्तेमाल करते हैं ।

शीतला सप्तमी के दिन स्त्रियां शीतला मां के गीत गाती हैं । अन्तःपुर की लोडियां जो निरंतर काम नहीं करतीं, बल्कि विशेष समयों पर सेवा करने आती हैं, उन्हें 'खालसे की माणसां' कहते हैं । इस समय वह आकर आठ दिन तक बराबर शीतला मां के गीत गाती हैं । आज चेचक के टीके के कारण शीतला मां का पुराने युग जैसा

रोब नहीं रह गया है, नहीं तो इस त्योहार को बड़ी गम्भीरता के साथ मनाया जाता था। तीन पत्थर रख कर उसमें से एक को शीतला, दूसरे को ओरी (छोटी) और तीसरे को अचपड़ा मान कर तीनों प्रकार की शीतलाओं की पूजा गढ़ के भीतर ही हुआ करती थी। उस दिन की पूजा के लिये जो खाद्य-सामग्री तैयार होती उसमें बाकी सबको सूचा रक्खा जाता लेकिन राबड़ी में ओंठ लगा कर उसे झूठा कर लेना जरूरी समझा जाता। बिना नमक की एक कटोरी राबड़ी और चार रोटियां शीतला मां के लिये विशेष तौर से तयार की जाती। तीनों पत्थरों की पूजा सबेरे को जाती। पहले उन्हें ठंडे पानी से ठंडा कर लिया जाता, फिर कुंकुम की बिन्दी लगा के राबड़ी, मक्खन और कच्चे दूध का भोग लगता। ठाकुरानी और रानियां परदे के कारण शीतला स्थान नहीं जा सकतीं, लेकिन उनके भी बच्चे होते हैं, जिनके लिये शीतला का भय बहुत रहता इसलिये पूजा में वह अनुपस्थित कैसे रह सकती हैं। वह शीतला मां की पूजा घरमें ही कर लेती हैं और साथ ही सात-आठ थालों में भोग और पूजा की सामग्री सजा कर जरी के थालपोस से ढांक देती हैं। थालपोसों के कोनों में चांदी के झुमके लगा लौंडियों को सोने के आभूषणों और अच्छे-अच्छे कपड़ों से सजा कर थालों को उनके सिर पर रख नगाड़ों, बैंडबाजों, निशान और पलटन के साथ गाते बजाते शीतला के मन्दिर की ओर भेजती हैं। वहां भी शीतला को ठंडा करने के लिये दो-तीन मशक पानी डलवाया जाता है। शीतला या चेचक की बीमारी में रोगी को ताप बहुत सताती है, इसलिये शीतला को ठंडा करने की बड़ी आवश्यकता होती है। इसीलिये उसे शीतला कहते भी हैं। शीतला की पूजा के बाद वहां से एक-एक लोटा पानी लाकर हर एक कोठरी और कमरे में उसका छींटा लगा कर कहा जाता है—"ठंडा झोला झोंका दीजो म्हारी मां।" शीतला सातम को चूल्हा नहीं जलाया जाता, ठंडा ही खाना खाया जाता है। मां के डर के मारे दूध तक को भी गरम नहीं किया जाता। बच्चों की मातायें डरके मारे एक-एक बात को बड़ी श्रद्धा और भय से करती हैं।

गणगौर—

राजस्थान में गणगौर का त्योहार भी बड़े तड़क-भड़क से किया जाता है। यह होली से अगले दिन शुरू होकर सोलह दिन-चैत सुदी ३ तक चलता रहता है। रात को होली जलती है, सुबह को रावलों की नौकरानियां ढोलणियों के साथ गाते-बजाते होली जलने की जगह जाती हैं, और वहां से राख लेकर उसी तरह गाते-बजाते रनिवास में आती हैं। पानी डालकर राख की सोलह पिंडिया बना के चौड़े मुंह के मिट्टी के बर्तन, या छावड़ी या टोकरी में रख देती हैं, फिर ऊपर की ओर कुमकुम और नीचे काजल की टीकी लगा दी जाती है। रानियां और ठाकुरानियां अपने हाथों यह विधि करती हैं।

इसके बाद नौकरानियां गाते-बजाते बड़े धूम-धाम से दूब लेने जाती हैं। उनके हाथ में छोटे-बड़े तीन-चार गड़वे होते हैं। बाग या कुएं पर जाकर वह दूब तोड़ती हैं निचले गड़वे में आधा पानी भरकर उसके मुंह पर दूब को सजा दूसरा गड़वा रख देती हैं। इसी तरह बाकी गड़वों को सजा कर सबसे ऊपर वाले छोटे गड़वे के मुंह पर दूब को सजा कर फूल से भर सुंदर गुलदस्ता सा बना देती हैं। फिर चारों गड़वों को दो स्त्रियां एक ही लम्बाई-चौड़ाई और प्रायः एक ही उमर की अपने सिर पर रखती हैं। उनकी दोनों तरफ हथियारबंद दो-दो संतरी चलते हैं। वैसे ये अन्तःपुर की नारियां बिना हाथ लगाये ही सचमुच गजगामिनी बन अपने गड़वों को लेकर चल सकती हैं, लेकिन गणगोर का गड़वा यदि गिर जाये, तो इसे भारी असगुन माना जाता है, इसलिये वह सारे रास्ते अपने दोनों हाथों को गड़वे से लगाये रहती हैं। घंटों ऐसा करने में उनका हाथ जरूर दुखता होगा, लेकिन क्या करें रानी का हुक्म और असगुन का भय। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि गड़वा शिर पर रखने के लिये अन्तःपुर की सबसे सुन्दर दो परिचारिकायें चुनी जाती हैं, और उनके शरीर में कीमती वस्त्र और भूषण रहते हैं। ऊपर की ओर उनके बाजुओं से दो दो हाथ लम्बे फुंदने (लूम) लटकते रहते हैं। जिनमें ताजा तासबादले का काम होता है।

अन्तःपुर के दरवाजे पर पहुंचने पर डोढ़ी (द्वार) खेलाने का (विशेष गीत) गाया जाता है। रास्ते में आते वक्त आगे-आगे ढोलणियां गीत गाती चलती हैं। और पीछे से अन्तःपुरिकायें बेताल का गीत सुनाती चलती हैं। डोढी के भीतर जाने पर रानी साहिबा

आगे बढ़ कर सिर से गड़वा उतारती हैं। फिर सोलह पिंडियों के पास पूर्व की ओर मुंह करके दीवार पर कुमकुम और काजल की सोलह टिकियां लगाती हैं और दोनों हाथों में दूब को झाड़ू की तरह सजा कर दूध-दही-पानी की कुंडी में से—जिसमें एक कौड़ी और एक साबुत सुपारी पहले ही से रक्खी रहती है—घोल घोल कर सोलह छींटे देकर पूजती है। यदि रानी या ठाकुरानी का अपनी सौत या जेठानी-देवरानी से बहुत प्रेम होता है, और चाहती हैं कि जन्म-जन्मांतर तक उनका साथ न छूटे तो इस समय गणगौर की पूजा दोनों मिल कर करती हैं। पूजा करते समय स्त्रियां गणगौर के गीत गाती हैं। रोज सवेरे बिना पानी पिये गणगौर की पूजा इसी तरह चलतीं। आठ दिन तक केवल राख की पिंडियों की पूजा होती।

शीलसातों—

चैत बदी सप्तमी आती, तो लौंडियां कुम्हार के यहां काली मिट्टी लाने के लिये उसी तरह बाजे-गाजे के साथ जातीं। इस मिट्टी से दो जोड़े स्त्री-पुरुष की मूर्तियां बनाई जाती हैं। अन्तःपुरिकायें कुशल कलाकार नहीं होती, इसलिये यह मूर्तियां भद्दी होती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एक जोड़े को शिव-पार्वती कहा जाता और दूसरे जोड़े को माली-मालन। पुरुष के सिर पर साफा-सा बांध दिया जाता, और स्त्री के चारों ओर घाघरे की तरह कपड़ा लपेट दिया जाता। माली-मालन के सिर पर दो मुकुट बनाकर चिपका दिये जाते हैं। फिर इन दोनों जोड़ों को पिंडी वाली टोकरी में रख दिया जाता है। अब इनकी भी पूजा होने लगती है। काली मिट्टी लाने के दिन ही एक बर्तन में जौ या गेंहूं बो दिये जाते हैं, जिनको बराबर सींचते रहते, उनके जवारे धीरे-धीरे उग आते हैं। अब रात को जवारे की सवेरे को गणगौर की गीत होती है।

तीज (चैत सुदी ३) के दिन पूजा खतम होती है। अब गणगौर का जलूस निकलता है। लकड़ी की एक सुन्दर स्त्री-मूर्ति बराबर के लिये गणगौर बनाकर रक्खी रहती है। उसे चौकी पर बिठाते, घाघरा-ओढनी पहनाते, कुरती-कांचली- लगाते, कीमती से कीमती कपड़े व्यवहार किये जाते हैं। सोने और जड़ाऊ जेवर से गणगौर को अलंकृत किया जाता है। शाम को चार बजे गणगौर का जुलूस निकलता है। महाराजा साहब चार घोड़ों की बग्गी पर पीछे-पीछे चलते, उनकी बग्गी में चंवर और मोरछल डुलाने वाले भी बैठ जाते हैं। इस समय गाने वाली डावडियां और साथ ही जसपुर की प्रसिद्ध रंडियां भी होती हैं। सड़क पर गणगौर का जुलूस जहां रुकता वहीं रंडियां अपना नाच गाना दिखाती। गणगौर को शहर से इसी तरह बाहर ले जाते, वहां घुड़दौड़ होती। गणगौर फिर वहां से राजा के आगे२ लौटती। उसे मीठी चीजें खिलाई जातीं, नाच गाना होता। एक कमरे में गणगौर अगले साल के लिये रख दी जाती। जसपुर में गणगौर में गणगौर की यात्रा दो दिन निकलती है। गणगौर की मूर्ति इतनी सुन्दर होती, कि कहावत है—"कैसी खूबसूरत है, बिलकुल गणगौर-सा मुंह है।"

घुड़ला—

शीतला सातम की तरह चैत सुदी १० को घुड़ला का त्यौहार मनाया जाता है। कुम्हार एक मझोले आकार का ऐसा घड़ा बनाता है जिसमें चारों ओर बहुत से छेद होते हैं, और मुंह कुछ अधिक चौड़ा होता है। इसी को घुड़ला कहते हैं। घुड़ले के भीतर दीये को ठीक तरह से रखने के लिये मुट्ठी-दो मुट्ठी जौ या गेहूं रख दिया जाता है। उस पर तेल भरा दीया जला कर रख देते हैं। शाम को रोशनी के समय अच्छे-अच्छे कपड़े और जेवर पहन कर कोई लौंडी घुड़ले को अपने सिर पर रखकर नगर में घूमने के लिये निकलती है। सारे गांव में घुड़ला फिरता है और लोग घुड़ले में अपनी शक्ति के अनुसार रुपया-दो-रुपया या पांच रुपया डाल देते हैं। अधिक धनी सेठ लोग रानी या ठकुरानी के घुड़ले में अधिक द्रव्य रख देते हैं। अन्तःपुर में आने पर रानियां और ठाकुरानियां, राजा और ठाकुर भी उनमें रुपये डालते हैं। ठाकुरानियां दीये में तेल डालती हैं। घुड़ले की इस तरह यात्रा हो जाने के बाद जसपुर में तो तलवार से उसकी गर्दन काट कर कूंए में फेंक देते हैं, लेकिन सलमाडा में घुड़ले के भीतर की चीजें निकाल कर उसे सम्हाल कर रख दिया जाता है। इस त्यौहार

को कुंवारियों का पर्व समझा जाता है। एक परम्परा कहती है कि घुड़ेलखां नामक कोई मुसलमान सरदार था, जो किसी राजपूत लड़कियों को हर ले जा रहा था। राजपूतों ने आक्रमण करके उसकी गर्दन काटली। घुड़ेल खां की औरतों ने रोते-चिल्लाते हुए कहा-"हाय हमारा खसम बिना नाम-निशान का ही मारा गया" इस पर राजपूतों ने उसका सिर काट लिया और कहा, कि हम इसका हर साल जुलूस निकाला करेंगे, इस प्रकार तुम्हारे खसम का नाम बुझने नहीं पायेगा। कहते हैं वही घुड़लखां यह घुड़ला बन गया। इस कथानक में कुछ गलती हो सकती है, क्योंकि छेद वाले घड़ों में दीया रख कर पूजा करना भारत के और भागों में भी अन्य समयों में देखा जाता है।

आखातीज —

वैशाख सुदी ३ की अक्षय तृतीया ही यह आखातीज है। सलमाडा में आखातीज का विशेष रिवाज नहीं है, लेकिन मालर में यह सबसे बड़ा त्यौहार है। इस दिन काल-अकाल भाग्य-अभाग्य के लिये शकुन लिया जाता है। वैशाख की अमावस्या के दिन राजाओं और ठाकुरों के यहां गद्दी के पास सातों अनाज की कूड़ियां (राशि) लगा दी जाती है, जोकि आखातीज तक वैसी ही बनी रहती है। अमावस्या से ही अमल (अफीम) घोलना शुरू हो जाता हैं। अफीम को पानी में घोल कर पेड़े में रख कर टपका कर छान लेते हैं। यह छना हुवा अफीमजल या अमल-पानी चांदी की छोटी-बड़ी कटोरियों में थाल के अन्दर रख दिया जाता है। मेवों बतासों से भरे हुये थाल भी तैयार रक्खे जाते हैं। राजा या ठाकुर अपनी हथेली में अमल-पानी डालकर बडे-बूढ़ों-बच्चों सबको देते हैं। और नौकर तक भी अन्नदाता के हाथ से ही अमल-पानी को चाटते हैं। अमल-पान करने के बाद मुट्ठी-मुट्ठी मेवे-बतासे लोगों को दिये जाते हैं। जिस तरह राजा और ठाकुर अमलपान कराते हैं, उसी तरह अन्तःपुर में रानियां-ठाकुरानियां आगत स्त्रियों को अपने हाथ अमल चटाती हैं। खूब-गाना बजाना होता है। उस दिन खाने के लिये गेहूं को कूट कर चने की दाल के साथ खिचड़ा पकाया जाता है, गुड़ डाल कर गेहूं की राबड़ी, गलवानी, बाटी-फुलके भी खाने के लिये तैयार किये जाते हैं। इस दिन कोई व्रत या पूजा नहीं होती। बस यह खाने-पीने का पर्व है। दरबार में आये किसानों को भी गलवानी, खीच और गोली रोटी खिलाई जाती है। इन्हीं चीजों को राजा-महाराजा लोग भी उस दिन खाते हैं। सुगन लेने के लिये गाय या भैंस का गोबर लाकर लोहे या पत्थर की पंसेरी पर रख देते हैं, फिर मन में जिस बात के लिये सुगुन निकालना हो, उसके सफल असफल होने की मनसा रखते एक लोटे को गोबर पर रख कर दबाते हैं। लोटा खाली होता है। यदि बात सफल होने वाली होती है, तो उठाने पर गोबर के साथ पंसेरी भी उठ जाती है, नहीं तो वह नहीं चिपकती। गौरीने एक बार अपनी ननद के लिये सगुन किया था, तो पंसेरी लोटे में चिपक गई और गोरी उसे आठ-दस हाथ तक लिये फिरी। किसान लोग इस दिन अपने जानवरों और फसलों के बारे में भी सगुन निकालते हैं।

निर्जला एकादशी-

यह जेठ सुदी ११ का व्रत है, जिसे बिना मुंह में पानी डाले भूखा रह कर किया जाता है। उस दिन सलमाडा के ठाकुर और बड़े-बड़े लोग मिट्टी के ताजे घड़ों के ढक्कन पर एक-एक खरबूजा और भीतर दो-दो ओले के लड्डू रख सवा बित्ता सफेद कपड़े के साथ कुछ पैसों को रख कर ब्राह्मणों को देते हैं। ऐसे चालीस-पचास घड़े दान दे दिये जाते हैं। जब बर्फ सुलभ नहीं था, तो ओले के लड्डू मिट्टी के घड़े के पानी में डाल कर बर्फ वाले शरबत की तरह पिये जाते थे। निर्जला एकादशी का व्रत विधवा ठाकुरानियां ही अधिक करती हैं।

देव सोवणी ग्यारस-

निर्जला से एक महिने बाद आषाढ़ सुदी ११ को होने वाली एकादशी देव सोवणी एकादशी है। उस दिन देवता सो जाते हैं, और फिर वह कातिक सुदी एकादशी को ही चार महिने बाद जगते हैं। इसीलिये उस एकादशी को देव-उठान कहते हैं। इस दिन कुंवारी लड़कियां अपनी गुड़ियों को पानी में फेंक देती हैं, और फिर चार महिने तक के लिये उनके गुड़ियों के खेल बन्द रहते हैं। तालाब

वर्षा होने के कारण उस समय भरे रहते हैं। गुड़ियों को उसमें डालने के लिये ले जाती हैं। साथ में गेहूं-चने की घूघरी भी ले तालाब पर जाकर खा लेती हैं। यदि तालाब में पानी नहीं रहा, तो गुड़ियों को कूओं में फेंक देती हैं। देव सोवणी से देव-उठान तक नया चूड़ा भी नहीं पहना जा सकता।

सावन की तीज

सावन शुरू होते ही झूले लग जाते हैं। पूर्वी प्रदेशोंसे राजस्थान की तीज में कुछ विशेषता है। यहां व्रत नहीं रखा जाता। और गणगोर की तरह तीज की मूर्ति का जुलूस निकाला जाता है। वही गणगोर की काठ की मूर्ति सावन के लहरिये कपड़े को पहना कर तीज की बना दी जाती है। बरसात का महिना होने से तालाबों में खूब पानी रहता जिसमें नारियल चढाये जाते और तैरने वाले लड़के कूद कर नारियल लूटते हैं। बन्दूकों का निशाना भी तीज के समय लगाया जाता है। गाना-बजाना भी उसी तरह होता है।

अन्तःपुरिकायें परदे के कारण इसका आनन्द उतना नहीं ले सकतीं, क्योंकि उनको अपने झूले हरे-भरे वृक्षों पर न टांग घरों के भीतर कड़ियों में लगाना होता है। मारवाड़ में अच्छे सास-ससुर अपनी बहु-बेटे को झूले पर खड़ा करके झुलाते हैं। साथ में पास खडी लौंडियां गाना-बजाना करती हैं। बेटे-बहु पर निचरावल करके रुपये भी बांटे जाते हैं। इस समय झूलकर जब कोई स्त्री नीचे उतरना चाहती है, तो उसे रोक कर कहा जाता है, "अपने पति का नाम बताओ, तब उतरने पाओगी।" यही एक समय है, जब कि स्त्री अपने पति का नाम लेती है, सो भी बड़े कविता मय ढंग से—

"छोटी मोटी नगरी गढ़पत गांव।
बापजीशा का बेटा सिंह नांव।"
"कोरे कागज अंग्रेजी कायदा।
वह तो यहां हैं नहीं, नाम लेने में क्या फायदा।"
"डब्बी में डब्बी, डब्बी में डोरी।
अमुक सिंह नाम में उसकी गोरी।"
"हाथ में गजरा, में करूं अमुकसिंह से मुजरा।"

कुंवारी लड़कियां उस समय निम्न प्रकार से जवाब देकर उतरने पाती हैं—

"लसरक लोडी, लसरक गांव।
झट आवे लाडा, झट लूं उसका नांव।"

सावन की तीज खाने- पीने और मौज करने का पर्व है। उस दिन हलवा, लापसी, तथा दूसरे तरह-तरह के पक्वान बनाते हैं। मातायें अपनी लड़कियों को मिठाइयां और दूसरी चीजें भेजती हैं, जिसे सिंजारा कहते हैं। नई शादी होकर आई बहू के पीहर से लहरियां चुनरी, घाघरा कुर्ती-कांचली और घेवर आता है। पहिली बार आने पर सिंगारा ज्यादा होता है, और सास के लिये भी कितनी ही चीजें आती हैं।

रक्षाबंधन-

सावन की पूर्णिमा को रक्षाबंधन का त्योहार होता है, इसे मारवाड़ में राखड़ी और सलमाडा में राखी कहते हैं। बाप और भाइयों के हाथ में उस दिन राखड़ी बांधी जाती है। पीहर भी कपड़े के साथ राखी भेजी जाती है, जो हर एक बाप, भाई और भोजाइयों के लिये अलग-अलग होती है। उसके साथ मिठाई और कितनी ही चीजें भेजी जाती हैं, जिसे दूना करके वहां से लौटाते हैं। इस दिन लड़कियां और ब्राह्मण राखी बांधने के लिये आते हैं, उन्हें दक्षिणा मिलती है।

सातूड़ी तीज-

भादों विदी ३ की इस तीज को काजड़ी तीज या बडी तीज भी कहते हैं। मारवाड़ में इस दिन स्त्रियां व्रत रखती हैं और तीज के चांद को देख कर सत्तू खाने का महातम मानती हैं। लेकिन यह सत्तू साधारण सत्तू नहीं होता है, बल्कि घी में भुने गेहूं के आटे या बेसन में मीठा डाल कर लड्डू बना लेते हैं, उसी को सत्तू कह कर खाते हैं। सत्तू के लड्डू बांटे भी जाते हैं।

राजस्थान की नारियां और भी बहुत से व्रत करती हैं, जिसको उनकी भाषा में 'झेलणा' (सहना) कहा जाता है। सभी झेलणे मकर संक्रांति से आरंभ होते हैं।

मौनझेलणा-

सूर्य डूबने से पहिले राम-राम कह कर स्त्री मौन धारण कर लेती है, आरती के समय सात-आठ बजे रात

को हाथ जोड़ कर चुपचाप मौन छुड़ाने के लिये किसी के सामने खड़ी हो जाती है. लेकिन मौन वही छुड़ा सकती है, जो कि उसकी विधि जानती है, अर्थात् उस मंत्र को जानती है, जिसके पढ़ने से मौन छुड़ाया जासकता है। वह मंत्र है--

"झालर बाज्या घंटा बाज्या, बाज्या ताल मजीरा ।
सिरीकिसनजी कांसे बैठ्या, चिड़ी चिड़कला बासे बैठ्या ।
उठो राणी, पियां पाणी ।
मौनियां की मौन खुल्ली, बोलो भूखी राम-राम ।"

बस मंत्र सुनते ही मौनियां अपना मौन छोड़ कर बोलने लगती है । अगर किसी दिन बीच में भूल कर बोल दे, तो उसका प्रायश्चित्त है, एक दिन का निराहार। साल भर का व्रत कर लेने पर चांदी का घड़ियाल, झालर, चांदी का डंका, चांदी के सात सितारे बनवा कर ब्राह्मणी को दे दिये जाते, और इस प्रकार व्रत का उद्यापन हो जाता है।

तारादातन झेलणा--

भिनसार को जब कि आकाश में तारे होते हैं, तभी उठ कर दातन करने का व्रत 'तारादातन झेलणा' कहा जाता है । यह भी एक मकर संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक चलता है । अगर किसी दिन नींद नहीं खुली, और तारोंके डूब जाने के बाद दातवन करना पड़ा तो उसका प्रायश्चित्त एक दिन का निराहार है । सालभर निर्विघ्न व्रत समाप्त हो जाने पर चांदी का दातवन और चांदी के सात तारे को ब्राह्मणी को देकर व्रत समाप्त किया जाता है ।

सामी रोटी झेलणा--

यह भी सालभर का व्रत है । सुबह दस ग्यारह बजे गेहूं की रोटी पर घी-शक्कर, लड्डू या दही रख कर ठाकुरानी अपने कमरे से बाहर निकलती है, और जो सामने आता है, उसे रोटी दे देती है । सामने रोटी देने के कारण इस व्रत का नाम "सामी रोटी झेलणा" पड़ा । साल भर व्रत करने के बाद उस दिन तीन सौ साठ रोटियां बनाई जाती हैं । हलवा, पूवा, या घी-शक्कर के साथ इन रोटियों को ब्राह्मणियों में बांट दिया जाता है ।

काजल टीकी झेलणा--

यह झेलणा सामी रोटी की तरह ही बहुत कठिन नहीं है । सुबह-सुबह उठ कर सात औरतों के सिर में इंगुर की सात टिकियां लगानी पड़ती हैं । किसी दिन यदि संख्या कम होजाती, तो उसे दूसरे दिन पूरा करना पड़ता है । एक मकर संक्रांति से दूसरी मकर संक्रांति तक यह व्रत चलता है । व्रत पूरा होने के दिन चांदी या लकड़ी के सिंदोरे में इंगुर (हिंगलू) रख चांदी के सात तारों के साथ ब्राह्मणियों को दे दिया जाता है ।

धर्मराजजी की बात झेलणा--

यह भी एक बड़े महत्व का व्रत है । मरने के बाद हर एक आदमी को धर्मराज के पास जाना पड़ता है, जिनका ही दूसरा नाम यमराज है । यदि धर्मराज को पहले से संतुष्ट कर लिया जाय, तो नरक में जाने का भय नहीं रहता । धर्मराज की एक कहानी है, जिसे व्रत रखने वाली स्त्री रोज सुन लिया करती है । वही धर्मराज की बात है। मरने के बाद जब यमदूत उस स्त्री को धर्मराज के सामने ले जाते हैं, तो धर्मराज स्वयं गवाह बन कर कह देते हैं-- "हां, इसने मेरी बात सुनी है ।" और फिर न्यायाधीश बन कर उसे स्वर्ग में भेज देते हैं । यदि सालभर यह झेलणा बिना नागा पूरा हो जाय, तो फिर यमराज से डरने के सारे कारण खतम हो जाते हैं । व्रत पूरा करते समय छाबड़ी में ज्वार भर उसे घाघरे-लूगड़ी-चूड़ी-जूती के साथ ननद या जेठ की लड़की को प्रदान किया जाता है। ननद से भी ज्यादा जेठ की लड़की का महातम माना जाता है । कहावत है--"नणद जिमाई, जेठौती आंगण आई ।" अर्थात् ननद के भोजन कराने में जितना पुण्य है, उतना जेठ की लड़की के आंगन में पैर रखने भर से हो जाता है ।

बाट बुहारना झेलणा--

रास्ता सब के उपयोग की चीज है, इसलिये उसको ठीक-ठाक रखना एक सामाजिक धर्म है । जातकों की कहानियों से पता लगता है, कि किसी समय इस देश में व्यक्तिवाद से ऊपर सामाजिक धर्म को माना जाता था। सड़क तैयार करना, पुल बनाना, पांथ शालाएं खड़ी करना जैसी बातों को बहुत चाव से लोग करते थे । बाट बुहारना व्रत भी उसी तरह की सामाजिक सेवा का एक अवशेष है । परदे के भीतर घुटती रानियां-ठाकुरानियां बाट बुहारने के व्रत को नहीं कर सकती । यह काम उनकी

नौकरानियां और दूसरी स्त्रियां करती हैं। बड़े तड़के ही झाड़ू लेकर घरसे निकल पड़ती हैं, और अपने पास के रास्ते को कुछ दूर तक साफ कर देती हैं। यह व्रत भी साल भर का होता है। व्रत पूरा कर लेने के बाद एक बुहारी और एक छाबड़ी (झाडू-टोकड़ी) भंगन को दे दिया जाता है।

पति के पैर-खोलना झेलणा—

यह पति-पूजा का एक विशेष महत्व का व्रत है। सुबह के वक्त जब पति बाहर जाने लगते, तो एक गिलास या एक कटोरी में उनके अंगूठे को पानी में डुबा लिया जाता है और उसे पत्नी चरणामृत बनाकर पी जाती है। साल भर तक बिना नागा इस व्रत को करना पड़ता है किसी दिन पति देवता कहीं बाहर गये हों, ऐसे समय व्रत टूट न जाय, इसके लिये चरणामृत को पहिले ही से शीशी में भर करके रख लिया जाता है। साल भर व्रत कर लेने पर पति को सोने की अंगूठियां, धोती साफा आदि भेंट किया जाता है।

सास-ससुर के पैर-पूजणा झेलणा—

यह साल भर का व्रत भी मकर संक्रांति को आरम्भ होता है। रोज सास और ससुर को एक साथ बैठाकर कुंमकुम से उनका पैर पूजती है। ससुर या सास साल में किसी दिन कहीं बाहर चले जाय, तो व्रत न टूट जाय, इसके लिये पैरों में केशर लगा कर कपड़े पर उनकी छाप उतार ली जाती है। जिस दिन दोनों में से एक या दोनों अनुपस्थित रहते, उस दिन उनके पैर की छाप की पूजा कर ली जाती है। भूल या नागा होने का मतलब था, उस दिन भोजन से वंचित रहना। व्रत पूरा होने के बाद सोने की अंगूठियां और कपड़े सास-ससुर के भेंट किये जाते हैं।

अन्तःपुरिकाओं का जीवन कितना बन्धन का होता है। उनके घूमने की परिधि कितनी सीमित होती है, और यदि वह पतिवंचिता या उपेक्षिता हुई, तो जीवन बिताना कठिन हो जाता है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इसमें शक नहीं कि समय-समय पर आने वाले यह पर्व और त्योहार राजस्थान की चिरबंदिनी नारियों के कष्ट को कुछ हलका करने में सहायक होते हैं। रियासतों के खतम करने से पहले ही पश्चिमी हवा रनिवास में घुसने लगी और महाराजाओं के थाल अब भोजनगृह के मेज और प्लेटों में बदल चुके हैं जहां कुर्सियों पर बैठी सास-ससुर और बेटी-बहू बिना किसी परदे और संकोच के भोजन करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि रनिवासों की संख्या कम की जाने का प्रयास होने लगा। वस्तुतः इस 'सुधार' का यही उद्देश्य था, कि विलासपूर्ण जीवन से वंचित न रहा जाय। इसका साकार रूप देखना हो, तो राजपूताना जाने की आवश्यकता नहीं, इन पंक्तियों के लेखक ने तो मसूरी में ही उसे देख कर अपनी साध बुझाली। एक तरुणी रानी कितनी ही बार सड़कों पर बिना परदे ही नहीं, बल्कि सिर मुंह खोले हुए अपनी परिचारिकाओं के साथ घूमती दिखाई पड़ती है उनके बाल कटे हुए हैं, मालूम होता है कोई पाश्चात्य सिनेमा की तारिका हो, लेकिन बालों के साथ साथ राजस्थानी घाघरा और चूनरी तथा ललाट में सिंदूर की लम्बी रेखा का होना वह अत्यावश्यक समझती हैं। पूर्व और पश्चिम का कितना सुन्दर सम्मिश्रण है? घाघरे चूनरीवाली पुरानी महिलायें तो इन्हें देख 'चोटी काटी' कह कर गाली तो देतीं, लेकिन तो भी चोटी-काटी रानी साहिबा अपने घाघरे और चूनरी का प्रदर्शन कराना अत्यावश्यक समझती हैं। तारीफ यह, कि वह अपने शरीर पर साड़ी कभी ही कभी आने देती हैं किंतु अपनी परिचारिकाओं के शरीर पर नहीं। उनका शासन चले, तो शायद कम से कम अपने वर्ग की सभी नारियों के लिये कानून बना दें, कि चोटी कटवा कर घाघरा-चूनरी को राष्ट्रीय पोशाक के तौर पर अपनायें।

शासन के सामने एक पचांग विषयक सांस्कृतिक महत्व का प्रश्न

श्री मा. वि. किबे एम्. ए.

इतिहास का आधार काल-गणना है। किस घटना का काल आज से कितने समय पूर्व हुवा, इसके समझने के लिए निश्चित काल-गणना की आवश्यकता है। सामान्य दैनंदिन के व्यवहार में भी इसकी उपयोगिता है। निसर्ग ने इसके लिए चार चक्रों का निर्माण किया है, उनमें से अधिक से अधिक २६ हजार वर्ष का एक काल-चक्र है। पृथ्वी आकाशस्थ नक्षत्र चक्र का परिभ्रमण करती है। यह पृथ्वी उसकी सांवत्सरिक गति से पीछे-पीछे हटकर पुनः उसी स्थान पर आती है, करीब २६ हजार वर्ष का यह क्रम है। और दूसरा चक्र उससे छोटा है। पृथ्वी सूर्य के आसपास परिभ्रमण कर इस चक्र का निर्माण करती है, इस काल को 'संवत्सर' कहते हैं। तीसरा उससे भी छोटा चक्र है, यह चन्द्र के द्वारा पृथ्वी-प्रदक्षिणा से बनता है। इसी प्रकार ४था सबसे छोटा चक्र भी है, यह चक्र पृथ्वी की अपनी दैनंदिन गति से बनता है, जिससे कि हम दिन-रात का अनुभव करते हैं।

इन चक्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म काल निर्णय द्वारा वास्तविक काल-गणना का निश्चय उपलब्ध हो जाता है।

भारतीय ज्योतिर्विदों ने इन परिभ्रमणों के गणित द्वारा जो निश्चय किए हैं वह आधुनिक-साधनों से उपलब्ध निर्णयों से बहुत कुछ मिलते हुए हैं। किन्तु इन निश्चयों के जो साधन एवं सिद्धांत हैं वह निसर्ग की अनिवार्य अनिश्चितता के कारण कालांतर में अन्तर उपस्थित कर देते हैं। पाश्चात्य काल-गणना आधुनिक-साधनों से सुसज्जित होने के कारण सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। पाश्चात्य-देशों ने अपने वर्ष के दिन, एवं दिनांक निश्चित किए हैं वे निसर्ग की सूक्ष्मता के अत्यन्त निकट पहुंचते हैं, तथापि एक हजार संवत्सरों के बाद प्रकृति में और उनकी गणना में अहोरात्र का फर्क पड़ने वाला है, क्योंकि जबसे फरवरी के २९ दिनों की योजना हुई है, यह अन्तर हो जाना स्वाभाविक हो गया है।

भारतवर्ष में प्राकृतिक-ऋतु आदि से सामंजस्य में रखने के लिए पंचांग का निर्माण हुआ है। ऋषि प्रणीत धर्म निःश्रेयस्कर होने से वह निसर्ग से अविभाज्य है, और उस सम्बन्ध की सुविधा प्राप्त करने के लिए पंचांग बनाए जाते हैं। अन्य धर्मीय देशों या समाज के लिए भी पंचांगों की आवश्यकता होती है, परन्तु वह इतनी अधिक नहीं।

भारतीय-पंचांग के पांच प्रमुख अंग होते हैं। उसमें आकाश में नक्षत्र पृथ्वी से किस समय किस जगह दिखना चाहिए, काल-गणना का सबसे बड़ा चक्र है, उसी के आधार पर निर्णय होता है। उसी पर से संक्रांतियों की स्थापना होती है। उसी पर से ऋतुओं का भी निश्चय किया जाता है वार, योग और करण ये मध्यम तथा अंतिम चक्रों से सम्बंधित है।

मध्यभारत में गणित के भिन्न आधार स्वरूप भिन्न-भिन्न पंचांग बनते हैं। उनमें से अधिकांश ऐसे हैं कि जिनका उपरोक्त ३ चक्रों में से एक से भी बराबर मेल नहीं होता। अनेक कारण हैं, उनमें से मुख्य गणित की वार्य एवं अनिवार्य स्थूलता भारतीय-ज्योतिर्विदों ने बृहत्-चक्र में सूक्ष्मता प्राप्त करने के लिए अब्जावधि अहर्गणों का मानदण्ड लिया है, और अधिक एवं क्षयमास योजना करके सामंजस्य लाने का प्रयास किया है। तिथियों के लिए मध्यम मान लेकर धार्मिक व्यवहार के हेतु सुगमता करदी है।

उपरोक्त प्रथम प्रयास को छोड़कर, जिसके सम्बन्ध में निर्णय करने के साधन सामग्री अभी पर्याप्त प्राप्त नहीं है, निश्चय नहीं किया जा सकता और जो प्रयास किए गए हैं, वे स्थूल स्वरूप होने के कारण उनको समय-समय पर संशोधित किया जाता है। खग्रास सूर्य-ग्रहणों के वेधों से ज्ञात होता है कि पृथ्वी की सांवत्सरिक गति में मंदता आती जा रही है। इसके लिए पाश्चात्य अधिक संख्यक देशों में संस्कार किए गए हैं, उनका गणित तीनों चक्रों के लिए

इसी कारण सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो सका है। गणित में उन्होंने इस प्रकार के संस्कार देने की सुविधा भी रखी है। भारतीय ज्योतिषियों को भी यह बात मालूम थी, परन्तु साधनाभाव के कारण उन्होंने कालांतर संस्कार करने की आवश्यकता मान्य करके भी, योग्य व्यवस्था करने का भार आगे के विद्वानों पर छोड़ दिया है, वह अनिवार्य भी था।

आधुनिक-काल में बहुधा पाश्चात्यों की साधन-सामग्री लेकर उनका प्राचीन सिद्धांतों से मेल जुड़ाकर वास्तव-स्थिति दर्शक पंचांगों के निर्माण करने के प्रयास किए गए हैं। काशी में ऐसा प्रयत्न प्रथम ज्योतिषाचार्य बापूदेव शास्त्रीजी ने किया, और केवल पाश्चात्य-गणित का आधार लेकर महाराष्ट्र में आचार्य केरू नाना छत्रे ने किया। ऐसे प्रयत्नों में दृक प्रत्यय तो साध्य हुआ, तथापि उनके समय में सायन गणना का ख्याल कर जो आगे के वास्ते निरयन गणना रखते हुवे भी आरम्भ स्थान का (जो निरयन गणना के वास्ते अत्यन्त आवश्यक है) निश्चय करना था, उनका गणित इस भूमि में दृढ़-मूल नहीं हुआ। परन्तु वह ऐसा नहीं कर सकते थे, क्योंकि संक्रांति तो नैसर्गिक कारणों से, बृहत् चक्र से एवं पृथ्वी के स्थूल गति के कारण सायन ही होना चाहिए। परन्तु सायन एवं निरयन गति में जो कालांतर में फरक आता है वह उनके समय में बहुत बढ़ गया था, और इस कारण यदि सायन को महत्व देते, तो उनका पक्ष जैसा सायन वादियों का हुवा, वैसा बिलकुल ही अलग हो जाता। कारण यह है कि भारतीय-पंचांग बहुतांश सैद्धांतिक गणित को छोड़कर सुविधा के लिए सारणियों पर निर्भर रहने लगे, इससे अयनांश बहुत बढ़ गए। लो० मा० तिलक ने अयनांशों में जो शक काल के दोसो-चारसो शताब्दि के बीच में सारणियों के गणित ने आरम्भ स्थान निश्चित किया था और फिर स्थूल गति लेने से फरक पड़ा था, उसको ठीक करके सारणियों पर आधारित पंचांगों में और दृक तुल्य पंचांगों में सामंजस्य लाने का प्रयास किया वह भी अभी तक सर्वमान्य नहीं हुवा। और यद्यपि अयनांशों में बदल करते हुए कई पंचांगों ने गणित दृष्टया सुधारणा की है तो भी प्रमुखता से इन्दौर से निकलने वाला पंचांग स्थूल गणित को ही पकड़े हुए है।

पृथ्वी से जो सांवत्सरिक नक्षत्रीय चक्र सम्बन्धित है उसमें से जिस नक्षत्र स्थल से उस चक्र का आरम्भ माना जाता है या चाहिए, वह दो प्रकार का होता है। एक तो पृथ्वी के अयनगति के कारण संवत्सरारम्भ में पृथ्वी जिस नक्षत्र को सन्मुख रख कर अपने प्रवास को आरम्भ करती है वहां उसे फिरसे पहुंचने में कुछ देर लगती है। इसमें जो काल लगता है वही अयन है। सायन गणना में यह आरम्भ स्थान उपरोक्त कारणों से चल रहता है और निरयन गणना में उन्हीं कारणों से जो अन्तर पडता है उसे अयनांश कहते हैं। २६ हजार वर्ष का जो बृहद-चक्र है उसमें यह अयनांश नष्ट होकर निरयन आरम्भ स्थान फिरसे आरंभ स्थान पर आता है, सारांश सायन में आरम्भ स्थान चल रहता है एवं निरयन में पृथ्वी के भ्रमण से घटित आरम्भ स्थान एवं माने हुवे आरम्भ स्थान में फरक बढ़ता जाता है। यदि समय-समय पर यह फरक निकाला न जावे तो मासों में और ऋतुओं में मेल नहीं रहेगा, जैसाकि मुस्लिमों का पंचांग जिसका आधार चंद्रकृत संवत्सर पर है, वैसा प्रतिवर्ष न होते हुए भी उसमें तीन वर्षों में होता है, यह कई वर्षों में होगा। यद्यपि क्षय एवं अधिक-मास से इसमें दूरी मिलेगी, परन्तु अयनांशों में आरम्भ स्थान से अन्तर बढता जावेगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि करीबन दो हजार वर्ष पूर्व भारतीय ज्योतिषियों ने जो आरम्भ स्थान माना था, वही सायन गणना का आरम्भ स्थान था। परन्तु पंच-सिद्धांत में दिया हुआ नक्षत्र या पृथ्वी का गतिमान सारणियों के और ग्रहलाघवादि ग्रन्थों में मानी हुई गति से अधिक सूक्ष्म था, तो भी वास्तविक गति उससे भी अधिक सूक्ष्म है, ऐसा आधुनिक साधनों से एवं सूर्य-ग्रहणादि समयों से, अन्य दृक तुल्यता के प्रत्यय से सिद्ध हुआ है। इस पर से लोकमान्य प्रमुख भारतीय ज्योतिर्गणकों का यह अनुमान है कि गत-काल में जो आरम्भ स्थान माना गया था उससे अब तक करीब १६, २० के बीच में अयनांश मिलते हैं। स्थूल गणितज्ञों का कहना है कि यह २३ या २४ अंश है। परन्तु सत्य यह है कि वह जिस गणित का पालन कर रहे हैं उसे वह वास्तवता से अधिकाधिक बढ़ते जावेंगे। वह इस भरोसे पर हैं कि वास्तविक गत-काल

में माने हुए आरम्भ स्थान से पृथ्वी या नक्षत्र चक्र ३० अंश पीछे हटेंगे तब वह फिरसे अपने पूर्व पद के तरफ जाने लगेंगे । उदाहरणार्थ ऋग्वेद में ही जो उल्लेख मिलता है...नितांत काल्पनिक प्रतीत होता है। कई पंचांगकर्त्ताओं ने अयनांश जो आज तक की स्थूल गति से प्राप्त हुवे हैं वही रखे हैं, परन्तु आगे के लिए गति सूक्ष्म ली है यह भी समाधानकारक नहीं है ।

जैसा ४,५ सौ वर्षों पूर्व यूरोप खण्ड के पाश्चात्य-देशों में जो वास्तविक तिथि गणना में और गणितागत गणना में अन्तर पडा था वह निकाल दिया वैसी ही घटना अब स्वतन्त्र भारत में की जानी चाहिए। लोकमान्य तिलक का प्रयत्न भी पूर्ण स्वरूप का नहीं था। कम से कम उसी का अनुसरण अब किया जावे तो गणित में अधिकाधिक सूक्ष्मता आएगी। कम से कम पाश्चात्य गणित से मेल बैठेगा और वह सूक्ष्मतर है यह तो हमारे सैद्धांतिक-गणित से भी करीब १८ वर्षों में २० दिन का फर्क पडा है, उसके बदले दो हजार वर्षों में केवल दो दिन का ही पडेगा। यदि अब आरम्भ स्थान को निरयन करके सूक्ष्म गणित आधार माना जावे, इससे भी स्पष्ट है।

देश के सामने निश्चित काल-गणना के सम्बन्ध में ३ प्रश्न है—

(१) मुसलमानों के पंचांग इतने शीघ्र नहीं; तथापि आधुनिक पाश्चात्य देशों के पंचांगों से शीघ्र, ऋतुओं और मासों में तथा संक्रांतियों में भिन्नता आती जावेगी।

(२) आधुनिक गणित के आधार पर प्रचलित सायनारम्भ स्थान को मान कर आगे निरयन गणना से पंचांग बनाए जावें।

(३) मध्यम मार्ग यह है कि वास्तविक वेध से आए हुए छायार्क को मान कर किसी निश्चित तारिका को आरम्भ स्थानीय मानी जावे और अयनांश दिए जावे। इससे गणित द्वारा दृक तुल्यता प्राप्त होगी, और अभी हिन्दुओं के चालू संस्कारों में बहुत-सी गडबड नहीं होगी। उपरोक्त सूचनाओं में से किसी को भी मान्यता दी जावे तो कम से कम अयनांश ३० तक बढ़े अब तक व्यवहार में बहुत फरक नहीं पड़ेगा। हां यह बात स्पष्ट है कि प्राचीन अचल राशियों के जो स्थान नियत किए गए हैं, या फलित ज्योतिष ग्रन्थों में जो उनके फल दिए हैं, उसमें अन्तर पड़ेगा वस्तुतः अब भी पडने लगा है। फल ज्योतिष को नया ही निर्माण करना पड़ेगा और आर्य ज्योतिषी पंचांग सुधारणा का (कम से कम आमूलाग्र सुधारणा का) विरोध कर रहे हैं उसका यही कारण दिखता है।

जो कुछ कल्पना की है वह सही हो या नहीं, शास्त्र के पालनार्थ एवं सार्वजनिक दृक तुल्यता के सिद्धयर्थ अयनांश वाद का निर्णय होकर पंचांग सार्वत्रिक होना आवश्यक है। भारतीय संस्कृति का रक्षण तभी हो सकता है। नहीं तो तज्ञ विद्वानों के सामने सिर झुकाना ही पड़ेगा। क्या यह स्थिति वांछनीय है?

जिस प्रश्न की यहां तक चर्चा की है उसका उत्तरदायित्व विशेषतः मध्य भारत शासन पर है इसमें विलीन हुए राज्यों द्वारा अनेक पंचांग मुख्यतः ग्रह लाघवीय या अन्य गणित पद्धति पर तयार किये हुवे, निकलते थे और अब भी शासन की मान्यता से निकलते हैं और उपर कहे अनुसार जनता को शास्त्र शुद्ध मार्ग दर्शन नहीं करते। सुप्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वराहमिहीर उज्जैन, कम से कम मालवे ही के थे। भारत वर्षीय पृथ्वी के चित्र में दक्षिण ध्रुव को मिलाने वाली रेखा १ को जैसे इन दिनों ग्रिनविच से, उज्जैन से मान कर, तैयार किये जाते थे। आधुनिक नक्शों में भी पृथ्वी का एक हवामान का प्रकार बतलाने वाली भूमध्य रेखा उज्जैन के ऊपर से ही जाती है। जयपुर के महाराजा जयसिंह ने जो दो जगह भारतवर्ष में वेधशालायें बनवाई थीं उनमें की एक उज्जैन में ही स्थित है। विलीन महाराजा सिंधिया के राज्य में इस वेधशाला का थोड़ा बहुत पुनरुद्धार भी हुआ था। वहां वेध लेने की व्यवस्था की थी और वेध के परिणाम प्रसिद्ध भी किये जाते थे। छायार्क तथा अन्य ग्रहों के, तारकाओं के स्थान भी समय २ पर निश्चित करके समयानुसार प्रकाशित किये जाते थे, और म. भा. शासन ने भी वही प्रथा चालू रखी है, परन्तु इसका योग्य विस्तार

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

भारतीय उत्सवों में मनोवैज्ञानिकता

★ श्री श्यामनारायण व्यास ★

भारतीय उत्सवों की शृंखला में "होलिका-दहन" भी एक मुख्य एवं अत्यन्त प्राचीन उत्सव है। इस उत्सव के साथ हिरण्य कश्यप दैत्य और ईश्वर भक्त ध्रुव का इतिहास है। आज इस उत्सव का जो स्वरूप हमारे सन्मुख है वह हमें इतिहास की परंपरा की जानकारी देने में एकदम असमर्थ है। 'आई होली मतवाली' गाते हुवे. जरा एकबार अपने उत्सवों की विशेषता पर दृष्टिपात करलें तो अच्छा हो। हम अपने मत से अपना शासन चलाने का ढिंढोरा गत सात वर्षों से पीट रहे हैं। हमने अपना समय प्रदर्शन, उद्घाटन, विविध अनैतिहासिक समारोह आदि मनाने में लगाया है, किंतु यह हमारा ही दुर्भाग्य है कि हम अपने उत्सवों की परंपरा को जीवित रखने के लिये कोई एक भी योजना नहीं बना सके। कहा जा सकता है कि, हमने धर्म निरपेक्ष जब स्वीकार कर लिया है तब कोई भी धार्मिक उत्सवों का आयोजन हम कैसे कर सकते हैं। किंतु अब हमें जान लेना चाहिये चाहे यह विलंब से ही सूझ क्यों न प्राप्त हुई हो कि विश्व के छोटे बड़े सभी राष्ट्र अपने ऐतिहासिक उत्सवों का आयोजन करते रहे हैं, चाहे वे धार्मिक ही क्यों न हों और उनके उत्सवों से उनमें जातीय, राष्ट्रीय तथा नैतिक जागृति बनी रहती है। लोकमान्य गंगाधर तिलक का गणेश उत्सव का आरंभ अखिल भारत में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने की कामना से ही प्रारंभ किया हुआ था। हमें जब कि हम राष्ट्र को उन्नत करना चाहते हैं और यह आवश्यकता प्रतीत होती है कि हमारी संस्कृति की छाप अखिल विश्व पर पड़े, तो यह आवश्यक जान लेना चाहिये कि, हमारी संस्कृति घरों से निकल कर विश्व में नहीं फल सकती वह तो राज्यके द्वारा ही प्रसारित की जा सकती है। हमें गौतम बुद्ध और ईसा का स्मरण करते हुवे यह उपदेश अनायास ही मिल जाता है कि ईसा की तथा बुद्ध की विचार धारा राज्याश्रयी होकर ही पनपी थी। बुद्ध धर्म का प्रचार अशोक के राज्य काल में तथा ईसाई धर्म का प्रचार भी ट्यूडर वंश के पूर्वजों के काल में हुवा था। जिन तथ्यों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है वे इतिहास साक्ष्य से निर्दोष सिद्ध मान लिये जाते हैं। अतः हमें आज धर्म निरपेक्ष राज्य में रहते हुवे भी प्राचीन सांस्कृतिक उत्सवों की परंपरा चलाने के हेतु श्रम करने में लज्जा का अनुभव नहीं होना चाहिये। आज बड़े बड़े नगरों में अर्धनग्नावस्था में बालडांस और फिल्मों में अभारतीय नृत्यों पर रोक लगाने में हिचकिचाहट नहीं करना चाहिये। इनके स्थान पर भारतीय कलात्मक उत्सवों का आयोजन करना चाहिये।

हमारे उत्सवों की विशेषता—

भारतीय सांस्कृतिक जीवन चर्या ही अत्यन्त प्राकृतिक और पारदर्शी मननशील जीवन निर्माण की द्योतक है परंतु यदि विचार किया जावे तो हमारे उत्सव तो विश्व के उत्सवों को चुनौती देने वाले तथा अत्यन्त ही शांत भावना लिये हुवे हैं। इनका प्रचार विश्व कल्याण के लिये आवश्यक है।

यदि हम संवत्सर प्रतिपदा से लेकर दण्डारोपिनी पौर्णिमा तक होने वाले उत्सवों की नामावली लिखने बैठें तो कई कालम भर जावें। वैसे भी बारह महिनों के बारह उत्सव मुख्य हैं और उनको हमारी गुजरी कई पीढ़ियां मनाती आई हैं। चैत्र में रामनवमी का उत्सव सारे देश में धूम धाम से मनाकर हम एक आदर्श राजा की स्तुति करते हैं। वैशाख में अक्षय तृतिया के दिन कृषि प्रधान देश-

वासी होने के कारण हम हमारी कृषि में कोई भी क्षय न होने पावे इस हेतु दान आदि करते हुवे कृषि कर्म को प्रारंभ करते हैं। ज्येष्ठ मास में भारतीय रमणियां विदुषी सावित्री की पति-भक्ति का स्मरण करती है और वट का पूजन करते हुवे स्वामी की दीर्घायू की कामना करती हैं। इस व्रत से पुरुषों में अपनी अर्धांगिनी की उनके हित की कामना देखने से पत्नियों के प्रति द्रढ़ विश्वास की भावना भर जाती है। छोटी सी वधु के साथ वृद्धा सास जब इस उत्सव और उपवास को करती है तो पति-भक्ति का अंकुर फूट पड़ता है। आषाढ़ में जब कि हमारे देश में मेघों की ओर द्रष्टि लगी रहती है और हमारे कोटि कोटि कृषक धरती माता को हरीभरी देखने बेचेन हो जाते हैं, उस समय भी वे गुरुपूजन गुरु पौर्णिमा को करते हैं। ग्रामों से लेकर बड़े बड़े आधुनिक नगरों में भी इस उत्सव के लिए सांस्कृतिक विद्यार्थी श्रद्धा के साथ गुरु पूजन को जाता दिखाई देता है। गुरु की पूजा होना चाहिये यह सर्व सम्मत बात है किंतु भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहां युगों से गुरुपूजन एक निश्चित दिन होता आया है। सांस्कृतिक वृद्ध से लेकर बालक तक इस दिन का महत्व जानते हैं।

श्रावण में स्त्रियों तथा पुरुषों का सम्मिलित उत्सव होता है। श्रावण की पौर्णिमा को बड़ी-बूढ़ी, अधेड़ तथा नवयौवना नारियां अपने संपर्क में आने वाले पुरुषों का रक्षा-सूत्र बांधती हैं। इस रक्षा के सूत्र से रक्षा होना संस्कृतज्ञ लोगों की वैज्ञानिक कसौटी पर कसा हुआ है, जब एक स्त्री संपर्कित पुरुष को भैया तथा भाई संबोधित करके उसकी रक्षा की कामना करते हुवे रक्षा-सूत्र से बांधती है तो उसे, पुरुष मात्र में निर्लज्जता जैसी भावना का उदय होना असंभव दिखाई देता है। इस उत्सव के आयोजन ने भारत को निःसंदेह फ्रांस, इटली, इंग्लैंड, और अमरीका आदि देशों के समान उच्छृंखल होने से बचाया है। काम भावना का पुरुषों की ओर से पहले प्रकाशन होता है इसलिये उन्हें स्त्रियों की ओर से अंकुश में रखने का इससे अधिक सुन्दर कोई उपाय ही नहीं।

भाद्रपद में चौंसठ कला के अवतारी श्रीकृष्ण जैसे गीता के निर्माता की स्मृति अमर रखने के लिये बड़े ही उत्साह से उनका पूजन स्मरण होता है।

श्रीकृष्ण की स्मृति हमें पौरुषत्व की, पुरुषार्थ की प्रेरणा देती है। साधारण परिवार में जन्म लेकर एक बालक किस प्रकार इतना महान नीतिकार, योद्धा, साहित्यिक, दार्शनिक तथा शासक हो सकता है इसे हम इस उत्सव से ज्ञात कर सकते हैं। एक ओर हम कृष्णाष्टमी सपरिवार मनाते हैं तो दूसरी ओर गृहणियां, बच्चियां, सभी नारियां हरतालिका का व्रत भी मनाती हैं। एक ओर बरसाती मेघ छायें रहते हैं, जिनका वर्णन करते हुवे, भर्तृहरी ने श्रृंगारशतक में लिखा है कि, कामिनियां वर्षा का स्वागत करते हुवे प्रसन्नता प्रकट करती हैं, क्योंकि बरसात में उनका कंत उनकी ही निगरानी में घर में रहता है बाहर नहीं जा सकता। उपर्युक्त भर्तृहरी के उदाहरण का स्मरण भी हमसे दूर रहा इसका कारण हमारे भाद्रपद के सांस्कृतिक ये उत्सव ही हैं। पति पत्नी में सात्विकता हो, कामुकता न आ पावे, स्त्रियां उच्छृंखला न हो जावें इस हेतु से मनीषियों ने उन्हें हरतालिका का उत्सव आयोजन करना बतलाया था जिससे उपवास और संयम द्वारा वे शील रक्षण कर सकें।

सारा आश्विन मानों उत्सवोंसे भरा हुआ है—प्रथम पक्ष में श्राद्ध पक्ष का दौरदौरा रहता है। इन पंद्रह दिवस में भारतवर्ष में अपने पूर्वजों की स्मृति की जाती है। यही ऐसा समय जलवायु के मान से है कि हमारी फसलें (साखें) खेतों में लहलहाती हैं और हम कुछ समय निकालकर अपने पूर्वजों की गौरवगाथा गा सकते हैं। उनके निमित्त श्रद्धा के फूल अर्पित कर सकते हैं।

इन पन्द्रह दिनों के पश्चात् नवरात्रि का उत्सव होता है और देवियों की पूजा की जाती है। महाकाली, महासरस्वती का पूजन इन नौ दिनों में

होता है। महाकाली का पूजन करते हुवे जब ब्राह्मण देवी के सन्मुख किसी पशु अथवा पक्षी का वध करता है तो वह पाप नहीं करता क्योंकि वह समाज को यह बतलाता है कि किस प्रकार यह मूक प्राणी इस देवी के नाम पर लाकर मैं बलि करता हूँ, उस प्रकार से समाज के ठेकेदारों! तुम सेनाओं में जाने देकर मनुष्यों से मनुष्यों की बलि दिलवाते हो इस रक्त को देख कर दया की जो भावना तुममें आ रही है, उसे चिरस्थाई रखो। नव-रात्रि के ठीक समाप्ति पर विजयादशमी का दिन आता है। राम ने रावण को जीतकर संसार पर उपकार किया ऐसा समझ कर आज के दिन बाहु पूजन करवाना निश्चय किया था, किंतु सीता ने कहा था कि, सारी पृथ्वी से जब तक सब अत्याचार दूर नहीं करते, तब तक बाहू पूजन शोभा जैसा नहीं, और राम पुनः अहिरावण वध को तैयार हुवे। रावण अहिरावण के उदाहरण से सन्तोष हमें नहीं, हमें इस उपदेश को ग्रहण करना चाहिये कि मनुष्य मात्र का धर्म है कि वह प्रति क्षण विश्व कल्याण की कामना करने को तत्पर रहें। यह उपदेश देने के हेतु विजयादशमी आती है। विजयादशमीके दिन वीणापाणि सरस्वती का उत्सव विसर्जन होता है और समस्त बुद्धि-जीवी लोग "सरस्वतीं प्रणम्यादौ, सर्व—कार्यार्थ सिद्धये" कहते हुवे पुनः भगवती भारती की ज्ञान वीणा से झंकृत हुई झंकार से विश्व में, ज्ञानामृत पीने पिलाने की चेष्टा करते हुए कहते रहते हैं, "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिहविद्यते" इस महीने में चन्द्र अपनी किरणों से अमृत वृष्टि करता है, और समस्त जड़ चेतन में अमृत भर जाता है, शाखों से नवान्न प्राप्त होता है और इस मास के अंत में "कोजागरी" शरत पूर्णिमा को दुग्धपान करते हुवे 'या निशा सर्वभूतानां सौख्यदायिनी,' कहते हुवे अधिक देर तक जाग कर कार्तिक की सुखद ऊषा के समय जागने को निद्रा के वश होते हैं। कार्तिक के प्रथम पक्ष में हम धन्वंतरी का स्मरण करते हुवे शरत के चन्द्र की कला से अमृत प्राप्त औषधियों को प्रकाश में लाने वाले आर्य वैद्य धन्वंतरी का स्मरण करते हैं। सारे वर्ष तक जिन औषधियों की हमें आवश्यकता होती है उनका पूजन हम करते हैं, इक्षु, आंवला, साल और जड़ी बूटियां घर में लाई जाकर पूजते हुवे हम स्वास्थ्य का चिंतन करते हैं। हमने पिछले समय क्या संचय किया, हमारा श्रम साथक हुआ या हमने व्यर्थ समय गंवाया इसका लेखा जोखा करने को दीपावलि मनाते हैं, और महालक्ष्मी का पूजन करते हुए प्रार्थना करते हैं कि हे देवी तुम हमें ऐसी सुबुद्धि दो कि हम धर्म पूर्वक जीवन यापन करते हुए तुम्हारी कृपा प्राप्त करते रहें। द्यूतक्रीडा भी करते हैं और जानने की इच्छा करते हैं—जानते हैं कि द्यूत से युधिष्ठिर जैसे धर्माचरणी को भी कैसा मोह हुआ था कि वे द्रौपदी को दाव पर लगा हार बैठे थे। मार्गशीर्ष मास में नाग दिवाली का उत्सव मनाया जाता है और व्यासवंश के शिरोमणि सांदीपनी के आश्रम के पुनः संस्थापक आचार्य श्रेष्ठ श्री नारायणजी व्यास महाराज का श्राद्ध किया जाता है। महाराष्ट्र तथा दक्षिण की जातियां खण्डेराव की जयंती मनाकर वीर बनने की प्रेरणा प्राप्त करती हैं। गुरु दत्तात्रय जन्मोत्सव मनाते हुए सारे भारतवर्ष में ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति की भावना की धूम मच जाती है।

पौष में परमवीर हनुमान की स्मृति में, उपासना में, निस्वार्थता और उससे ही सुख प्राप्त हो सकता है इसका उपदेश हमें सदैव ज्ञात रहे इस भावना को लेकर हम निष्काम परमवीर भक्त श्री हनुमान का स्मरण करते हैं। बल, बुद्धि तथा सेवा भक्ति की भावना हमें हनुमदष्टमी से प्राप्त हुई हैं।

माघ मास में हम कृषि की साखों को संग्रहीत करने में व्यस्त रहते हैं, और यही वह समय है जब हम अधिक उत्सव आदि का आयोजन नहीं करते फिर भी इस मास के अन्तिम दिन हम दाण्डारोपण

करते हुए निश्चित करते हैं कि हमारे आस-पास कोई ऐसा प्रश्न तो नहीं है जिससे समाज, घर तथा विश्व में अशांति फैलने की संभावना हो, यदि है तो हम उसका नाश करेंगे। इस प्रकार के विचार के साथ माघ के अन्त में और फागुन से एक दिन पूर्व हम दांडारोपण करते चले आरहे हैं। फाल्गुन के प्रथम पक्ष में भूत-भावन शङ्कर की स्मृति में नौ दिन तक उत्सव होते हैं और त्रिलोक कल्याण के हित विष पीने वाले चंद्रशेखर का हम उत्साहपूर्ण वह 'विषपान' स्मरण करते हुए लोक कल्याण का पाठ पढ़ते हैं। फाल्गुन के दूसरे पक्ष में हम अन्न-धन से सम्पन्न वसुन्धरा पर हमारी ग्रीष्म की साखों को जब देखते हैं तो हम और हमारा मन गा उठता है, तन नाचने लगता है—तन मन में उमंग आ-जाती है ऐसी अवस्था में यदि बसंत का यौवन हमें प्रसन्नता देता है और चारों ओर से चल रही त्रिविध वायु हमें इतना उत्साह से भरदे; प्रकृति की गोद में पटक दे कि हम भी लाल-पीले, कचनार, ढाक, पलास, कनेर सरसों के फूलों के रंग से रंगीन होने को उतावले हों, आपस में रंग उडाने लगें तो हमारा इसमें क्या दोष। हमारी भूमि की सम्पन्नता हमें आनन्द सरिता में डुबो-डुबो देती हैं। हमारे पूर्वजों ने भी बसंत के गुण-गान किए हैं और फाल्गुन का महत्वपूर्ण समय आनन्द उल्लास के लिए योग्य बतलाया है। यही समय स्त्री और पुरुषों में सम्पूर्ण इन्द्रियों का उपभोग करने के लिए वैद्यकशास्त्र ने भी उपयुक्त बतलाया है। हम आनंद आयोजन इस समय करते हैं।

हमारा आयोजन—

दोष यह तो हमारा है कि हमने इन उत्सवों के आयोजन में वीभत्सता को संयुक्त कर लिया है। हम यदि श्रीकृष्णाष्टमी के पूर्व से रास-लीला के नाम पर छोटे-छोटे अबोध कुमार कुमारियों से रीतिकाल के कवियों के ब्रज भाषा के गीत सुनने को उत्सुक रहते हैं और वर्षा काल में धर्मस्थान, मन्दिरों और भवनों में मनसुखा और कृष्ण की लीला के नाम पर समाज के सन्मुख कामोद्दीपक क्रीडा करवाते हैं तो किसको दोष दे? यदि हम फाल्गुन में रस-रंग में मतवाले हो मां-बहनों पर जुल्म ढाते हैं तो किसे दोष दें? यदि हम दीपावली पर लक्ष्मी पूजन के साथ-साथ खुलेआम जूआं खेलते हैं तो किसे दोष दें? रक्षाबन्धन, भैयादूज को मनाने वाले देश के समाचार पत्र यदि नारी के साथ बलात्कार का समाचार नित्य छापते हैं तो इसमें क्या रहस्य है? अस्पतालों के डाक्टर नर्सों को सिस्टर कहते हैं, और नर्सें उन्हें केवल मिस्टर कहती हैं तो क्या समझें?

निश्चय ही प्रचलित शिक्षा और रीतिकालीन राजाओं के समय से भारतीय उत्सवों की परम्परा पर दूषित विषाक्त धूम छागया था जो आज समाज पर छाया हुआ है। समाज अपने उत्सवों के ऐसे आयोजनों को निरर्थक जान, परम्परा मात्र जीवित रखने के लिए उन्हें मनाया करता है। आज हमारा शासन है और हमें समाज में बौद्धिक तथा आत्मिक उन्नति की ओर दृष्टिपात अवश्य ही करना चाहिये। यदि हम अपने उत्सवों को भूल जायँगे तो समाज में रही-सही भारतीयता, उसका आर्यत्व किसी दिन जाकर पाश्चात्य संस्कृति में घुल-मिल जावेगा, और भारत का गौरव नष्ट हो जावेगा। देखना है कि शासन कब तक आर्य उत्सवों से उदासीन रहता है!

(पृष्ठ ३८ का शेष)

करवा कर इस वेधशाला को आधुनिक यंत्र सामग्री से कम से कम हैद्राबाद के अनुसार, सुसज्ज कर विद्वानों के हाथ में देना चाहिये, और धर्म शास्त्राधिक का विचार कर एक मान्य पंचांग प्रसिद्ध करवाया जाना चाहिये, तभी उसका उपयोग होगा। आधुनिक उज्जैन में परंपरागत ही नहीं, स्वपराक्रमी [illegible] हैं। ऐसी हालत में सब प्रकार की सुविधा एकत्र की जा सकती है, और शासन अपना उत्तरदायित्व ग्रहण कर सकेगा और सारे भारतवर्ष के लिए मार्ग दर्शक हो सकेगा। भारतीय पंचांग अनेक दृष्टियों से अन्य देशीय दिन-दर्शिकाओं से विशिष्टत्व रखता है इस पर ध्यान आकर्षित होना आवश्यक है।

परिचय-परामर्श

हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति—

लेखक- विजयेन्द्र स्नातक एवं क्षेमेन्द्र 'सुमन' प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, मूल्य ३ रु.

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के इतिहास का सुलभ, सरल एवं ज्ञातव्य जानकारी से युक्त संक्षिप्त संस्करण है। लेखक-द्वय द्वारा इतिहास ग्रन्थों के प्रणयन की छाप इसमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी की प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रवृत्तियों का परिचय, लेखक-कवियों और कालों की विवेचना तथा हिन्दी भाषा की स्थिति और विकास का अनुकरणीय ढंग से इसमें उल्लेख किया है। वस्तुतः यह पुस्तक हिन्दी के विद्यार्थियों के लिये पठन पाठन की दृष्टि से उपयोगी है।

सुभद्रा-परिणय— लेखक— वीरेन्द्रकुमार गुप्त, प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, मूल्य २ रु.

सुभद्रा-परिणय की कथावस्तु पौराणिक है। किन्तु परम्परा से निर्धारित कथा-सूत्रों को लेखक ने नाटक में अपनी मौलिक सूझ से एक नया स्वरूप प्रदान किया है। इसलिए लेखक बधाई का पात्र है। उसने पांडवों के तीर्थाटन को राजनैतिक बल बढ़ाने का बहाना, सुभद्रा-परिणय को राजनैतिक महत्व का विषय तथा अभिमन्यु की हत्या का कारण सुभद्रा का प्रसंग माना है। लेखक के शब्दों में "राजनीतिक चक्रों का परिचालन मानवीय एवं राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर न होकर बहुधा व्यक्तिगत लगाव के द्वारा ही हुआ करता है। यही ध्वनि इस नाटक की कथावस्तु से निकलती है।"

नाटक की भूमिका सेठ गोविन्ददास ने लिखी है। आपके शब्दों में— "सुभद्रा-परिणय" में वस्तु, नेता और रस तीनों बातें सुचारु रूप से पायी जाती हैं।......श्री वीरेन्द्र कुमार गुप्त में नाटक लिखने की सहज प्रतिभा जान पडती है......"

पुस्तक पठनीय है। छपाई-सफाई उत्तम।

शक्ति पूजा— लेखक— बी. मुखर्जी 'गुरुजन' प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, मूल्य- १। रु.

'शक्ति पूजा' पौराणिक कथा पर आधारित मौलिक चिन्तन का फल है। 'सुभद्रा परिणय' की भांति प्रस्तुत नाटक के लेखक ने महिषासुर को शक्तिशाली तथा हिमालय की तरह अटल व्यक्तित्व बनाया है। लेखक ने इस असुर का अध्ययन कर उसके उद्धत रूप को चित्रित करने की अपेक्षा सन्मान एवं श्रद्धा का पद दिया है। 'शक्ति पूजा' में यद्यपि लेखक ने घटना-सूत्र को सुसम्बद्ध करने के लिए महिषासुर-सम्बन्धी कुछ घटनाओं को अपने अनुकूल मोड़ा है तथापि उससे नाटक के रस में व्यवधान नहीं आने पाया। श्री मुखर्जी का यह नाटक हिन्दी की महत्वपूर्ण रचना है जिसमें बंगाल की दुर्गापूजा का वातावरण नवीन भावनाओं से सहज ही जुड जाता है।

पगध्वनि— लेखक— आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, मूल्य डेढ़ रु.

लेखक ने यह नाटिका डा० राजेन्द्रप्रसाद की प्रेरणा से लिखी है। लेखक ने यह प्रगट करना चाहा है कि भावी भारत को उन्नत और व्यवस्थित करने के लिए साहित्यकार ही एक मात्र सहायक सिद्ध होगा। अतः गांधीजी के सत्य और अहिंसा के तत्वों को प्रस्तुत साहित्य-रचना में आत्मसाधन करने का प्रयास किया गया है। पुस्तक की भूमिका स्वरूप लेखक ने 'दो शब्द' २८ पृष्ठों में लिखे हैं। जिसमें सामाजिक, राजनैतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। यदि कहा जावे कि प्रस्तुत नाटिका लेखक की भावना का प्रदर्शन मात्र है तो अत्युक्ति न होगी। छपाई उत्तम।

बादलों के पार— लेखक— हरिकृष्ण 'प्रेमी' प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स मूल्य-तीन रु०।

बादलों के पार लेखक के ११ एकांकियों का

संग्रह है। लेखक के कथनानुसार 'इन लघु नाटकों में मैंने तरुण हृदयों के सन्मुख राजनीति, समाजनीति और मानवता से सम्बन्ध रखने वाले कुछ संघर्षों के चित्र रखे हैं।' लेखक ने अपने लघुनाटकों को दृश्यों में विभाजित किया है। नाटक के टेकनीक की दृष्टि से जहां तक एकांकी का प्रश्न है यह दोष माना जाता है। अपने दोष को प्रयोग का स्वरूप देकर लेखक ने मंच पर आनेवाली कठिनाइयों की अवहेलना करनी चाही है। उसने बताया है कि यह भी एक ढंग मानना चाहिए। युग क्रमशः आडम्बर-विहीन रंगमंचों की ओर आकर्षित हो रहा है वहां दृश्यों की लंबी योजनाएँ कहां टिक सकती हैं। नाटक केवल साहित्यिक कृति मात्र रहने देना अलग बात है।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार के लघुनाटक दिये हैं। 'यह भी एक खेल है' और 'रूप-शिखा' दो मालव सम्बन्धी ऐतिहासिक नाटक भी इस संग्रह में संकलित हैं। पुस्तक वास्तव में संग्रहणीय है।

योग और स्वास्थ्य— लेखक- आचार्य भद्रसेन प्रकाशक— यौगिक व्यायाम संघ, अजमेर, मूल्य ढाई रुपये।

योग और स्वास्थ्य पुस्तक की द्वितीयावृत्ति स्वागत का विषय है। प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका पं० हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा लिखी गई है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए व्यायाम के विभिन्न सरल प्रयोगों का विवेचन, नियम, आहार आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन और विविध बातें इसमें बताई गई हैं। योगासन से लाभ बताते हुए लेखक ने ५३ आसन, मुद्राएँ, प्राणायाम विधि, चिकित्सा एवं विविध रोगों को दूर करने के यौगिक उपाय बताये हैं। पुस्तक प्रत्येक व्यायाम प्रेमी एवं शरीर-स्वास्थ्य के निर्वाहक के लिए उपयोगी है।

दीवार— श्री पृथ्वीराज रचित, पृथ्वी थि० प्रकाशन बम्बई, मूल्य— ३ रुपये।

'दीवार' पृथ्वीराज कपूर, रमेश सहगल और इन्द्रराज आनन्द के सामूहिक प्रयत्नों का प्रयास है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के शब्दों में "दीवार" को मैं एक महाकाव्य मानता हूँ। इसमें देश में घटित मर्मान्तक घटनाओंका यथातथ्य चित्रण पात्रोंके प्रभावशाली संबन्धों में एक कहानी के इर्द गिर्द घूमते हुए, कलाकार पृथ्वीराज के अनुभव का स्पर्श पाकर हिन्दी नाटक के रंगमंच पर सजीव हो उठा है। नाटक को भारतीय साहित्य में दृश्य काव्य माना है। कदाचित् इसीलिए श्री बेनीपुरी ने इस रचना को बीसवीं शताब्दी के 'आई हिस्से की सबसे बड़ी गद्य रचना' कहा है। इस कथन के पीछे 'दीवार' का अभिनय पक्ष विशेष उत्तरदायी है। निःसंदेह इस रचना में लेखक-त्रय की प्रतिभा जिस बलंदी से व्यक्त हुई, उससे कहीं अधिक इसका अभिनय जनता के समक्ष प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। क्योंकि देश की तत्कालीन घटनाएँ जब 'दीवार' खेला जा रहा था, उसी के अनुरूप हो रही थीं। यथार्थ को नाटकीय रूप में सामने देखकर निश्चय ही प्रभावित हुए बिना कोई नहीं रह सकता। कहानी का अंत पृथ्वी के हृदय के उस स्वप्न का रूप है जो लेखनी से बद्ध होकर प्रगट हुआ। पृथ्वीराज अपने समस्त कलाकारों सहित इसके लिए बधाई के पात्र हैं। 'दीवार' पुस्तिका को छपित रूप में सामने लाने की आवश्यकता थी। पृथ्वी थियेटर्स के इस प्रकाशन के लिए हिन्दी जगत अनुगृहीत है। --श्याम परमार

भारत-भक्ति— ले. श्री हरिमोहनलाल श्रीवास्तव एम. ए., एल. टी. प्रकाशक- सहयोगी प्रकाशन मन्दिर लि०, दतिया, पृ. संख्या ४८ मूल्य ||).

'भारत-भक्ति'— वीर पूजा और देश प्रेम की भावभरी भेंट है। महाराणा प्रताप, शिवाजी, गांधी, नेताजी, सरदार पटेल, महारानी झांसी, जवाहर आदि के सम्बन्ध में लेखक ने अपने भाव व्यक्त किये हैं; भाषा और भाव अच्छे हैं।

रावी के तट पर— ले० श्री. राधेश्याम द्विवेदी

प्रकाशक– केशव साहित्य कुटीर करेरा (मध्यभारत) पृ. सं. ७२ मू. ।॥)।

रावी के तट पर--जननायक नेहरू द्वारा २६ जनवरी १९३० को लिया हुआ संकल्प २६ जनवरी १९५० को भारतीय गणतंत्र के रूप में सत्य सिद्ध हुआ, इसीकी स्मृति को पुनरुज्जीवित करने की दृष्टि से श्री द्विवेदी ने "रावी के तट पर" नाम से अपना खण्ड-काव्य प्रस्तुत किया है, भावों की दृष्टि से रचनाओं में जहां सुंदरता दिखती है, वहां भाषा-दोष और प्रूफ की भूलों से उसका सारा आनंद ही लुप्त हो जाता है। कवि को प्रकाशन के लिये शीघ्रता करने के पहिले रचनाओं में भाव-भाषा और शुद्धता की दृष्टि से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। पुस्तक की छपाई सफाई भी साधारण ही है, फिर भी राष्ट्र प्रेम की भावना से लिखे गये इस खंड-काव्य का हम स्वागत करते हैं।

विधवा— रच. श्री. रामाचार्य पाण्डेय, प्रकाशक-श्री. रामराज पाण्डेय, नागरी निकेतन, श्रीनगर, कानपुर. पृ. सं. ४८, मू० ।॥).

विधवाओं की सहानुभूति में रचे गये इस खंड-काव्य में, विधवाओं की करुणदशा का मार्मिक चित्रण किया गया है, कवि ने समाज के ठेकेदारों पर भी अपना रोष प्रकट किया है। पुस्तक की छपाई, सफाई साधारण है, प्रूफ की भूलें भी बहुत हैं। कवि विधवा की सहानुभूति में इतना संतप्त और आकुल हो उठा है कि कहीं कहीं लेखनी अनियंत्रित-सी हो गई है। हमें तो प्रारंभ की ये पंक्तियां ही खटकीं।

निष्ठुर पति उसको छोड़ चला,
जब उसकी मधुर जवानी थी।

मरते हुए पति को निष्ठुर बताना कुछ अजीब सा लगता है, जो बेचारा स्वयं मौत के शिकंजे में पड़ा हो, जिसका जीना न उसके हाथ में है, न मरना ही वह कैसे निष्ठुर है, समझ में नहीं आता।

त्रिवेणी के संगम पर– रच. श्री वासुदेव गोस्वामी प्रकाशक— सहयोगी प्रकाशन मंदिर लि. दतिया (विन्ध्य) पृ. सं. ७४ मू. १।) रु०।

प्रस्तुत कविता संग्रह में कवि ने भिन्न २ विषयों पर अपने विचार संक्षेप में सुन्दर ढंग से व्यक्त किये हैं। 'त्रिवेणी के संगम पर' रचना सुन्दर है। ठहरोनी जैसी सामाजिक बुराइयों के प्रति भी कवि सजग है। कुछ रचनायें ब्रज भाषा, कुछ खड़ी बोली और कुछ गीत शैली की तीन धाराओं में कवि की विनोद प्रियता, गणितवृत्ति और सेवाभिरुचि भली प्रकार देखी जा सकती है।

युगल-विनोद — रच. श्री. युगल किशोर द्विवेदी 'हिन्दी भूषण', शाजापुर. प्रकाशक– हिन्दी साहित्य समिति, शाजापुर, मूल्य ।).

प्रस्तुत कविता-संग्रह पूर्ण रूपेण मालवी में है। मालवी भाषा के कवियों में युगलकिशोरजी का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। आपकी भाषा सचोट और भाव विलक्षण हैं। कवि जहां सामाजिक बुराइयों के प्रति सजग है, वहां वर्तमान राजनैतिक हथकण्डों से भी संतप्त हैं, श्रावणी, दसेरो, दिवाली, पंदरा अगस्त, स्वराज्य की झांकी, चुनाव को भूत आदि रचनायें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। "चाय को चालो" में चाय पीनेवालों पर कसकर व्यंग है, मालव-निवासियों को मालवी-भाषा में प्रकाशित साहित्य को अपनाकर लेखक-कवि-कलाकारों को प्रोत्साहन देना चाहिये। इस छोटी सी पुस्तिका की भूमिका मालवी-भाषा में विक्रम संपादक श्री सू. ना. व्यास के द्वारा लिखी गई है।

लोकमत— (साप्ताहिक)– श्री लखपतराय 'चंचल' के सम्पादकत्व में इन्दौर से हाल ही में यह साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा है। कांग्रेस और वर्तमान शासन की आलोचना इसमें प्रमुख रूप से है। लेकिन आलोचना भी बेबुनियादी नहीं है। भाषा का स्तर जरा ऊंचा हो तो ठीक रहेगा। इसके रंग-ढंग को देखने से पता चलता है कि पत्र अच्छा चल

निकलेगा। वार्षिक मूल्य का तो पता नहीं लगता, किंतु १ अंक का मू० तीन आने हैं। हम इन्दौर से प्रकाशित इस साप्ताहिक का स्वागत करते हैं।

ल. ना. उ.

हस्तिनापुर— श्री. अमरचन्द, पृष्ठ संख्या ६४। श्री जैन संस्कृति संशोधन मंडल, बनारस. सन् १९५०

प्रस्तुत पुस्तिका भारतीय विद्या के एक नए होनहार विद्वान की प्रथम कृति है। वह अंग्रेजी में लिखी हुई और चित्रों से विभूषित है। प्रकाशक बनारस का जैन संस्कृति संशोधन मंडल है कि जिस की ओर से अन्याय प्रसिद्ध विद्वानों की कृतियां प्रकाशित की जा चुकी हैं। इस पुस्तिका का विषय हस्तिनापुर है जो कि महाभारत और पुराणों से विख्यात पौरव कुल के राजाओं की राजधानी होने के अतिरिक्त तीन जैन तीर्थंकरों, श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ तथा श्री अरनाथ की प्रमुख जीवनघटनाओं के स्थल के तौर पर तथा अनेक ऐतिहासिक एवं काल्पनिक घटनाओं की रंगभूमि के तौर पर भी साहित्य में प्रसिद्ध है। इस साहित्य की विस्तृत आलोचना हिन्दू, बौद्ध तथा जैन ग्रंथों के आधार पर की गई है। परन्तु तीनों इतिहास स्रोतों का वर्णन पृथक् पृथक् ही किया जाकर उनकी भिन्नताओं का समाधान करने का प्रयास नहीं किया गया है जो वास्तव में पूरे तौर पर होना भी कठिन नहीं, किंतु असंभव है।

संबंधित साहित्य का परिचय लेखक ने मूलग्रंथों के अतिरिक्त इतिहास विषयक विवेचनात्मक ग्रंथों के अनुसार किया है, जिनमें विजयेन्द्र सूरिजी की "हस्तिनापुर" नाम की हिन्दी पुस्तिका उसमें दिये हुए विशाल साहित्य संग्रह के कारण उल्लेखनीय है।

केवल उस प्रश्न का उल्लेख श्री. विजयेन्द्र सूरिजी की एवं श्री. अमरचन्दजी की पुस्तिका में नहीं पाया जाता है कि प्रौढ हस्तिनापुर की विद्यमानता में महातेजस्वी राजर्षि जनमेजय के समय में ऐतरेय ब्राह्मण द्वारा उल्लिखित आसन्दीवान् नगरी भारत की राजधानी क्यों, कब से और कब तक रही होगी? इस प्रश्न पर उस समय प्रकाश पडेगा जब भारत शासन के पुरातत्वविभाग द्वारा उस भूमि पर कराया गया उत्खनन कार्य पूरा और उसका फल दृष्टिगोचर होगा।

उक्त उत्खनन की कुछ जानकारी भी अमरचन्द जी की पुस्तिका के उत्तर भाग में दी गई है। उत्खनन वास्तव में यह प्रश्न सुलझाने के उद्देश्य से किया गया था कि सिन्धु तट की प्रसिद्ध प्राचीनतम सभ्यता का भारत के पूर्व इतिहास से क्या संबंध है। लेखक ने उत्खनन के स्थलों का स्वयं अवलोकन किया है। परन्तु उनको उसकी रिपोर्ट हस्तगत नहीं थी। तथापि उनके मत से इतना विदित है कि महाभारत के इतिहास के जिन जिन स्थानों पर उत्खनन किया गया है, वहां से उपलब्ध प्राचीन मृट्पात्र आदि अवशेष एक ही सभ्यता के लक्षणभूत हैं, जो कि मध्यभारत ही की सभ्यता होने की संभावना है। फिर भी हस्तिनापुर का उत्खनन स्थल गंगा के पूर से बहाई प्राचीनतम हस्तिनापुर नगरी के स्थल से कुछ दूर होने के कारण वह अनुमान मात्र है।

प्राचीन हस्तिनापुर की ओर वाचक का ध्यान आकर्षित कर के उसकी समस्याओं पर लक्ष्य दिलाने से लेखक ने भारतीय विद्या की सेवा की है। आशा है कि उसके फल स्वरूप संबंधित विषय के विशेषज्ञ भारत की प्राचीन राजधानी के इतिहास पर अभी तक जो पर्दा लगा हुआ है वह शीघ्रतया तोड़ के उसका स्पष्ट दर्शन करावेंगे।

रा. काळे
रिसर्च प्रोफेसर
सिंधिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट,
उज्जैन.

कारावास— लेखक- यश; प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, मू० दो रुपया।

'बन्दी जीवन की कई बातों एवं घटनाओं का मेरे मन पर गहरा प्रभाव हुआ। बन्दी

व्यक्त करने के लिये मैंने 'फिक्शन' का आश्रय लिया। इस संग्रह में कारावास से सम्बन्धित जो कहानियां हैं, उनमें मैंने बन्दी जीवन के कुछ पहलुओं को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इनमें आपको कारावास की झाँकी नहीं झलक मिलेगी।' उक्त शब्दों के साथ लेखक ने प्रस्तुत संग्रह के सम्बन्ध में 'मन की बात' कही है। 'मन की बात' मनीराम, फौजू, मूला, मुराद, निरंजन, नम्बरदार, दरोगा, वार्डर, जेलर आदि के सम्बन्ध में दिलचस्प किस्से कहानियों की भूमिका के रूप में प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। प्रत्येक किस्सा स्वयं में एक लघुत्तम-कथा प्रतीत होता है। इस प्रकार २० पृष्ठी भूमिका के पश्चात् 'कारावास', 'टाट की वर्दी', 'बोलजवान' 'अहाता नं० २', 'रसीला पत्थर' 'शीला' और 'मुझे मौत चाहिए' सात कहानियाँ संग्रह में दी गई हैं। प्रत्येक कहानी का अपना सधा हुआ टेकनीक और अचूक प्रभाव है। 'रसीला पत्थर' और पूरिका के अतिरिक्त शेष सभी कहानियाँ जेल जीवन से लिए गये पात्रों की कहानियाँ हैं। अंग्रेजी कहानियों-सी सधी हुई शैली में लेखक कहानी के एक-एक पर्त को उठाता है। प्रत्येक कहानी एक कैदी के चरित्र का चित्र प्रस्तुत करती है। 'रसीला पत्थर' एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसने अपने को अपने ही में बांध रखा है। जो स्वाभिमानिनी और प्रेम के अपार्थिव रूप में विश्वास करने वाली है। निःसन्देह ऐसी लड़की का चित्रण अपने आप में मौलिक और मनोवैज्ञानिक उलझनों से युक्त है। भावनाओं के आधिक्य में ऐसे पात्र का अन्त भी उपयुक्त तरीके से ही लेखक ने दिखाया है। यदि कहा जाये कि श्री यश की कुछ कहानियाँ हिन्दी-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं तो अत्युक्ति न होगी।

पूर्णिमा— लेखक— अनन्त गोपाल शेवड़े, प्रकाशक— साहित्य रत्नाकर, ग्वालियर, मूल्य-तीन रुपये बारह आने, पृष्ठ २९०।

पूर्णिमा के लेखक श्री अनन्त गोपाल शेवड़े हिन्दी के आधुनिक उपन्यास-लेखकों में अपना स्थान बनाते चले जा रहे हैं। कथा के चुनाव में लेखक शेवड़े समाज के सत्यों से प्रभावित है। निश्चय ही यह उनकी समाजोन्मुखी धारा प्रगतिशील विचारों से प्रभाव शून्य नहीं है। घटनाओं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर उठाकर उनमें गति प्रदान करने में लेखक की कला सँवरी है। 'पूर्णिमा' उनका दूसरा उपन्यास है। इसके पूर्व उनका एक उपन्यास 'ईसाईबाला' प्रकाश में आचुका है। 'पूर्णिमा' एक रोमान्टिक कालेज के छात्रा की कहानी है जिसका व्यक्तित्व दो विरोधी तत्वों से मिश्रित है। एक ओर वह जीवन के रोमान से आकर्षित होती है और दूसरी कला और विचार के क्षेत्र में झुकती है। विलास उसके जीवन में रोमान का केन्द्र है और विनय उच्च विचारों का। इस द्वंद में वह भावावेश की स्थिति में अपने को बहा देती है। विनयकुमार ही अन्त में एक प्रभावशाली चरित्र के रूप में उसे जीवन की कमजोरियों से ऊपर उठाकर आगे बढ़ाता है। श्री शेवड़े की कलम ने नारी के हृदय के उन गूढ़ रहस्यों को पूर्णिमा के रूप में प्रगट किया है, जिन्हें प्रायः साधारण मनुष्य अपनी आँखों की ओट किये रहता है।

उपन्यास का वातावरण कालेज जीवन, सतपुड़ा और अमर कंटक की तलहटी में विकास पाता है। स्थानीय वातावरण-चित्रण से उपन्यास उभरा है। अन्त में श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में हमें कहना होगा— 'श्री शेवड़ेजी कुशल कलाकार हैं।'

जीवन के मोड़— लेखक— महावीर अधिकारी, प्रकाशक— आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, मूल्य-तीन रुपये।

श्री महावीर अधिकारी का यह प्रथम कहानी-संग्रह वास्तव में उनके 'जीवन के मोड' का सूचक है। १७ कहानियों का यह संग्रह जीवन के खरे पहलुओं को छूता है। प्रो० भीमजी के रूप में जनता की शक्ति का मनोरंजक ढंग से परिचय, 'जीवन के मोड' में वास्तविकता को छुपा कर, कर्तव्य से

विमुख हो सामाजिक दायित्व का अभिज्ञान, 'प्रेरणा' और उत्तरदायित्व में हर पात्र का स्वाभाविक आवेश आदि का चित्रण हमें हमारी दुनिया में रख-कर कुछ दिखाते हैं। श्री अधिकारी की इस बात से सहमत हैं कि 'अपना जीवन बौद्धिक स्तर से कभी आगे नहीं बढ़ा।' इसलिए उन्हीं के शब्दों में—'नगरों के कृत्रिम जीवन से और इस कृत्रिम जीवन की अपेक्षा कृत अधिक चैतन्य अपने को स्वीकार कर लेने से जो बौद्धिक नेतृत्व प्रस्तुत करने की भावना पैदा होनी अपरिहार्य थी वही इन कहानियों में उभर आई हैं।'

'जीवन के मोड' छपाई-सफाई की दृष्टि से श्रेष्ठ, चिकने कागजों पर छपी, संग्रहणीय साहित्यिक पुस्तक है।

सफर की साथिन-- लेखक-- रामसरन शर्मा, प्रकाशक-- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, मूल्य-एक रुपया बारह आने।

लेखक श्री रामसरन शर्मा के शब्दों में प्रस्तुत एकांकी-संग्रह का 'उद्देश्य आपको हँसना है, कुछ का आपकी दुखती रग को छेडना।' हँसने का उद्देश्य हास्य की सामग्री से सम्बन्धित है। चूँकि पुस्तिका में नौ एकांकियों का समावेश है और नाटक के रूप में हास्य को पैदा करने का प्रयत्न किया गया है अतः इसकी पूर्णता रंगमंच से जुड जाती है। जहां तक कहा जाये प्रस्तुत एकांकियों में दृष्यों का क्षण-क्षण में बदलना हास्य के लिए घातक है। व्यवहार में वह और भी कठिन। एक दो मिनट में दृष्य पूरा हुआ और फिर दूसरा। यह और भी आपत्तिजनक प्रयास है कि एकांकियों में कई दृष्यों का समावेश किया जायें-। 'प्रयोग के नाम पर यह अनुचित प्रतीत होता है। भाषा और शैली की दृष्टि से तथा हास्य के उपादानों के नाते यह संग्रह अवश्य कुछ-कुछ सफल है। यद्यपि इसका प्रकाशन 'हिन्दी में हास्य कहाँ है?' के उत्तर स्वरूप है, पर इससे उत्तर पूरा नहीं होता, अधूरा ही रहता है। सुन्दर जिल्द, आकर्षक छपाई।

अगले पांच साल-- लेखक- जी. ए. पथिक, प्रकाशक— आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, मूल्य-पाँच रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक घटनाओं पर लेखक ने संवेदनशील होकर विचार किया है। श्री पथिक अनेक राजनीतिक, पुस्तकों के लेखक हैं। आपने आगामी पांच वर्षों को दृष्टि में रखकर पाकिस्तान, काश्मीर, नेपाल, पंजाब, पख्तून की समस्याओं पर, भारत की आंतरिक समस्याओं पर सुझाव, एशिया एवं उसके विश्वव्यापी सम्बन्ध की चर्चा, साम्प्रदायिकता एवं आवश्यक-भावी सम्भावनाएँ तथा कम्युनिस्ट, किसान-मजदूर आन्दोलन, कांग्रेस की समस्याएँ आदि सभी विषयों पर गम्भीरता पूर्वक चिंतन किया है।

पुस्तक में इस प्रकार कुल २२ राजनीतिक निबन्धों का संग्रह है। भूमिका लेखक भारतीय संसद के सदस्य वेंकटेशनारायण तिवारी हैं। छपाई उत्तम।

—श्याम परमार

अर्चना

कुमारी
विद्यावती
मालविका

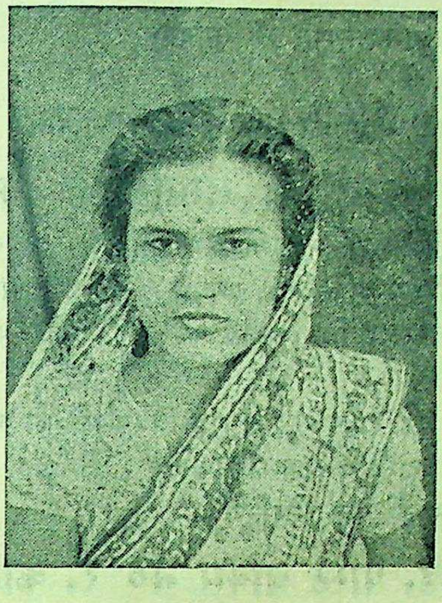

प्रिय ! आवो मैं करूं अर्चना,
मंगल-गीत सुनाऊँ ॥
सरल स्नेह से प्रतिपल, प्रतिक्षण,
रंजित हो वसुधा के कण-कण
ले निज में उल्लास भावना,
सदा कहे यह मुक्त समीरण
प्रिय ! दर्शन दो करूँ अर्चना,
मंजु मधुरिमा पाऊँ । प्रिय......
उज्ज्वल राका का धवल हास
सौंदर्य भाव का मृदु विकास.
निर्झर निर्मल चंचल जल में
राकेश बिम्ब मधुमय विलास,
लेकर यामिनि करे अर्चना
कीर्ति तुम्हारी गाऊँ ॥ प्रिय......

कल्पना के कला-अंक की योजना

कला-अंक के सम्पादन और प्रकाशन को शत प्रतिशत सफल बनाने के लिये कला-जगत् के प्रख्यात व्यक्तियों की एक सलाहकार समिति बनाई गई है ।

सलाहकार समिति के सदस्य

१. डॉ. स्टेला क्रैमरिश, २. डॉ हरमॅन ग्वेत्स ३. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, ४. डॉ. मुल्कराजआनन्द. ५. श्री अजित घोष, ६. श्री जी. वेंकटाचलम ७. श्री कार्ल जे. खंडेलवाला ८. श्री पृथ्वीश नियोगी तथा ९ विनोदबिहारी मुखर्जी, ।

इस अंक का सम्पादन सर्व श्री जगदीश मित्तल, दिनकर कौशिक तथा के एस कुलकर्णी कर रहे हैं ।

विशेषांक का मूल्य ५) होगा मार्च तक १२) भेजकर वार्षिक ग्राहक बनने वालों को विशेषांक के लिये अतिरिक्त मूल्य नहीं देना पड़ेगा ।

इस अंक का प्रसार राष्ट्र के कोने-कोने में ही नहीं विदेशों के प्रमुख केन्द्रों में भी करने की योजना है । कल्पना के माध्यम से विज्ञापनदाता अपनी विज्ञाप्य वस्तुओं का प्रचार देश-विदेश में कर सकते हैं ।

विशेष विवरण के लिये लिखिये—

व्यवस्थापक, कल्पना
८३१, बेगम बाज़ार, हैदराबाद दक्षिण.

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति ॥-) आने]

—सुमित्रा—

[वार्षिक मूल्य ६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर
तथा
संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**— देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।
२. **डायरी के पन्ने**— हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।
३. **सबसे प्यारी कृतियां**— पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।
४. **पत्रांजलि**— देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ—हस्ताक्षर के साथ।
५. **विश्व-भारती**— संसार के महान कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर
६. **भारत-भारती**— देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।
७. **हमें यह कहना है!**— संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

कोकिला——मौन–होगई…!! (एक स्मृति)

—बसन्तीलाल बम

आजादी के अक्षय वट से,
गाँधी के गुण गाते-गाते—
नील-गगन में लीन होगई।
अखिल विश्व की चतुर कोकिला,
श्यामल घन में स्वयं खोगई।
कितना संगीत भरा शैशव, बह चला काव्य की धारा में,
कितना उल्लास भरा जीवन, निशि की रहस्य-मय कारा में,
युग की महान आशा वादी, छा रहा नील नभ अरुण राग,
मलयज बरसाती सन्ध्या में, गाती निशि दिन रागें विहाग,
कल्पना-उनींदी-पलकों से, मुसका कर चिर वरदान देगई। अखिल…।
कल्पना-श्याम अलकें पसार, आवरण खोल साकार हुई,
गम्भीर बन गई क्षण भर में, जीवन भर का आधार हुई,
छा गई विश्व के कण कण में, जैसे भू पर नभ का वितान,
रवि, शशि, तारक-दल, सम जिसमें, चलते फिरते मानव महान,
कर्तव्य सतत गति शील जगत में, जड़ जीवन को प्राण देगई। अखिल…
मनोराज की रानी जग की, उलझी राजनीति से जूझी,
विश्व देखता रहा चकित सा, रही पहेली भी अन बूझी,
कारागृह की दीवारों में, बँधगई कुसुम उरसी रानी,
स्वातन्त्र्य-समर में अग्रगण्य होचली जगत में सेनानी,
वह सत्य, अहिंसा की पुजारिणी, विनय प्रेम पर मुग्ध होगई। अखिल…।
संकल्प, साधना, अविचल-प्रण, मुख-मण्डल पर मुस्कान अमर,
पथ में बिखरती थी पराग, मधु-सौरभ भरती लहर-लहर,
जाते-जाते कह गई 'न छूना', यह मेरी अन्तिम वाणी,
उद्भासित दिव्य करों में थी अमृता मुक्तिवर कल्याणी,
रविरश्मि तपन, मधु-अलि-गुन्जन;
चिर विहग गीत, गाते-गाते,
विकल सांझ में मौन होगई,
मुक्त देश की श्वेत-हँसिनि,
श्यामल-घन में स्वयं खोगई।

नोट:—विश्व-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडु के निधन पर।

Phone No. 48

Regd. No. N. 887

भारत के परमादरणीय राष्ट्रपति का विक्रम को आशीर्वाद !

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी।

प्रिय महाशय !

ज्येष्ठ सम्वत् २००९ की विक्रम मासिक पत्रिका मिली। यह उच्च कोटि के सुसंस्कृत संपादक द्वारा संपादित हो रहा है, और इसमें जरा भी संदेह नहीं कि उसके द्वारा सुसंस्कृत वाणी जगह जगह फैलेगी, और लोग विद्वत्तापूर्ण जानने योग्य विचार जान सकेंगे।

श्री वाल्मीकि चौधरी

पर्सनल सेक्रेटरी टु दी प्रेसीडेंट

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

866
94/25
R 4653
गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी

विक्रम

फाल्गुन २००९

संचालक संपादक **सूर्यनारायण व्यास**

अतीत की उज्जयिनी

श्री मदनलाल वर्मा 'साहित्य-रत्न'

आज नवागत युग में गुंजित तेरी मधुर प्रभाती !

विगत-युगों के स्वप्न-शयन में लिपटे नील दिगम्बर !
संस्कृति की मंगल-बेला के शुभ प्रलम्ब मन्वन्तर !
रजत-परों में शुभ्र-कांत अलका से लज्जित भूतल--
जगा रही हो ज्योति-पटल वसुधा के धूसर पथ पर !

संसृति की बालुका-राशि में बिखरी नव-कणिकाएं
पाषाणों के सोपानों पर चित्रित दिव्य कथाएं !
झांक रही हो श्वेत घनों में रश्मि सुहासित सुन्दर
—किस द्युति पथ में मुद्रित उज्जयिनी क्षिप्रा के तट पर !

लहरों की स्वर्णिल आभा, झिलमिल दीपों की बाती।
आज नवागत-युग में गुंजित तेरी मधुर प्रभाती !

किस कवि के करुणा-आख्यानों में स्मृति के पत्रों पर—
पलकों में शत नाश-सृजन के मूंदे अश्रु निरन्तर !
कला-प्रेयसी ! नव सर्गों के कहाँ मधुरतम प्रान्तर ?
परिवर्तन की पगध्वनि में सोये स्तूप बन शांत-प्रहर !

किस निशीथ में पुष्प-पल्लवित उद्यानों में रंजित;
इन्द्रिय-गोचर दर्शन में ज्यों अब भी सुषमा-मंडित !
विभा-विहंगम के स्वर गाते प्रातः महिमा कूजित--
भग्न खण्डहरों की रानी ! लगती अबभी तुम पुंजित !

अबभी मन्दिर से जय-ध्वनि मुखरित घण्टों की आती !
आज नवागत-युग में गुंजित तेरी मधुर-प्रभाती !

री संस्कृति का स्वर्ण-चितेरा तेरा चित्र उतारे !
कमल वनों की मंजु-ज्योत्स्ना वन्दनवार संवारे
भुज मृणाल में, हर्षित मुखों में चारु कमल ले अर्पित-
जीवन सन्-सन् करती समय आंधियों में उजियारे !

अब यों मौन पराजय में तेरा वो शैशव प्यारा !
अस्त हुआ कब निभृत-भाग्य का तेरा [illegible] ध्रुवतारा !
विजय वैजयन्ती गीतों में झंकारों सा प्यारा--
मौन हृदय में सुप्त भारती का वो हृदय दुलारा !

राग-सिन्धु ले वीण मृदंगों पर कि शारदा गा
आज नवागत-युग में गुंजित तेरी मधुर-प्रभाती

बोधि सत्व के पद चिन्हों पर तन्द्रिल विगत-कहा
सिंह द्वार पर विक्रम के संवत्सर-सी कल्याणी
सन्ध्या के पावक-पथ सुवलय सुरधनु में मनभा
उतरो मालव की छाया बन कलित-ललित बन वाणी !

मेघदूत की सुरबालाएं ध्वनित पखावज कङ्गन !
कालिदास की कलित कल्पनाओं के नूपुर वन्दन !
नव-भारत के हेम निलय में हंसिनियों के पग धर—
स्वर्ण-कलश ले चिर-दिन जागो पथ के अभिनव जलधर !

अवन्तिके ! ले वरदानों में विद्या-श्री मुसकाती !
आज नवागत-युग में गुंजित तेरी अरुण प्रभाती !

वार्षिक
६) रु.

एक अंक
।।=)

विक्रम

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

१ व्यास-उवाच ... ... संपादकीय १-१६
२ अवंती का राजनेतिक इतिहास ... श्री विमल चरण ला १७-२५
३ माधवी-प्रभात ... ... श्री कुमारी विद्यावती 'मालविका' ... -२५
४ मालव प्रदेश में प्रागैतिहासिक अवशेषों की खोज एक इतिहास प्रेमी २६-३१
५ जय मालव ! ... ... कुमारी विद्यावती 'मालविका' ... ३२
६ मध्यभारत की मराठी पत्र-पत्रिकाएं ... श्री कृ. गं. कवचाले ३३-३८
७ गद्य-गीत ... ... श्री शेख मुईनुद्दीन ३६
८ अशासकीय शिक्षण-संस्थाएं ... मुनिराज श्री विद्याविजयजी ... ४०-४४

Advertisement Rates.

Cover page 2nd Rs. 200 per Insertion.
" " 3rd Rs. 150 " "
" " 4th Rs. 300 " "
(In two colours.)
Ordinary full page Rs. 100 " "
" Half page Rs. 60 " "
" Quarter page Rs. 35 " "

विज्ञापन के दर

टाईटिल द्वितीय पृष्ठ—२००) प्रतिमास
" तृतीय पृष्ठ—१५०) "
" चतुर्थ पृष्ठ—३००) "
(दोरंग में)
साधारण पूरा पृष्ठ—१००) "
" आधा पृष्ठ— ६०) "
" चौथाई पृष्ठ— ३५) "

पत्र व्यवहार का पता— "विक्रम"—कार्यालय उज्जैन [मालवा]

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति]
॥-) आने]

-सुमित्रा-

[वार्षिक मूल्य
६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर
तथा
संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. हम इनसे मिले थे— देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।
२. डायरी के पन्ने— हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।
३. सबसे प्यारी कृतियां— पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।
४. पत्रांजलि— देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ—हस्ताक्षरके साथ।
५. विश्व-भारती—संसार के महान कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर
६. भारत-भारती— देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।
७. हमें यह कहना है !—संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

मध्य-भारत एवं उत्तर प्रदेश के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ६ खंड २] फाल्गुन सं० २००९ वि०, मार्च सन् १९५३ [अंक ५ पूर्ण सं० ७०

व्यास उवाच

साहित्य की सृजन-शक्ति में शैथिल्य !

हमारे अधिकांश साहित्यकारों में आज मौलिकता का अभाव दिखाई दे रहा है। वे कविता और कहानी का आश्रय लेकर सस्ती-भावुकता में प्रवाहित हैं। साहित्य का ललित-विभाग अवश्य प्रगति कर रहा है, पर उसका खरापन कला की कसौटी पर कितना उतरेगा, यह प्रश्न भिन्न है। प्रचार और प्रसिद्धि के प्रलोभन में हम अध्ययन की उपेक्षा कर रहे हैं। यही कारण है कि हमारे लेखन में स्थायित्व नहीं, गंभीरता नहीं, न विषय ही रहता है। हमारे लिए जिन विषयों के ज्ञान की जरूरत है, वे अछूते ही पड़े हैं, उन पर लेखनी की प्रवृत्ति ही नहीं हुई। बहुत दिन हुए हिन्दी-साहित्य की प्रगति पर किसी ने पण्डित नेहरू को छेड़ दिया था। उन्होंने विनम्रता-पूर्वक साहित्यिकों से कुछ जिज्ञासा कर ली थी, उसमें उन्होंने कुछ विषयों की सूचि भी दी थी कि—'मुझे नहीं मालूम हिन्दी में इन विषयों पर रचनाएं हैं या नहीं' पर यह सूचि हिंदी के साहित्यिकों के लिए एक प्रकार से पण्डितजी का चेलेंज ही था। यह लेख पण्डितजी का 'विशाल-भारत' में छपा था। अवश्य ही बहुतों को वह स्मरण भी हो, पर सत्य यह है कि क्या आज भी उनकी बतलाई हुई सूचि पर कोई रचना प्रकाशित हुई कितनों ने उसे गम्भीरता से लिया है ?

आज हम में से अधिकांश लोग संस्कृति पर चर्चा करते हैं, पर हमारे साहित्यकारों में २-३ को छोड़ कितनों ने इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार भी किया है। जिन दो-तीन लेखकों ने इस पर विचार किया है, उन्होंने भी अपना एक क्षेत्र सीमित रखा है, वे संस्कृति की परिभाषा में ही उलझ गए हैं, और उसमें

भी विभिन्न धाराओं का उचित समीक्षण—एवं समाधान नहीं कर सके। आज भी संस्कृति के अनेक अंग अस्पृश्य बने हुए हैं। केवल एक सांस्कृतिक विषय को ही ले लिया जावे तो उस पर एक स्वतंत्र कॉलेज चल सकता है, एक ही अंग की पूरी लायब्रेरी बन सकती है। सांस्कृतिक विषयों के विभिन्न अंग हैं, उदाहरणार्थ परम्परा और आविष्कार, सांस्कृतिक विधि रक्षा और पुनरुद्धार, संस्कृति का भविष्य, मानवता और राष्ट्रीयता, मानवता और व्यक्ति, श्रमजीवी मानवता, मानव और मशीन, मानव और अवकाश, लेखक और मजूर, राष्ट्रीय संस्कृतियों का पारस्परिक सम्बन्ध, राष्ट्र एवं संस्कृति, राष्ट्रीय संस्कृति और मानवता, राष्ट्रीय संस्कृति—एवं वर्ग, राष्ट्रीय संस्कृति और सामाजिक वर्ग, वर्ग तथा संस्कृति, राष्ट्रीय अल्प-संख्यकों का साहित्यिक आत्मप्रकाश, वास्तविकता के विरुद्ध राष्ट्रीयता, युद्ध और संस्कृति, औपनिवेशिक जातियों का साहित्य, साधारण समाज के दीक्षित जन, विच्छिन्न मूर्तियां और अग्रदूत, अनुवंश, सामाजिक समर्थन या विरोध में लेखक का संबंध, व्यक्ति का वर्ग प्रतिनिधित्व, कलाकारों की स्वतंत्रता का स्वरूप, वाणी की स्वतंत्रता, अप्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष सेंसरशिप्, निर्वासित लेखक, गैर-कानूनी साहित्य, लेखक और जनता के सम्बंध, सोवियत् साहित्य की शिक्षा, साहित्य और श्रमजीवी, लेखक और नवयुवक, साहित्य का आलोचनात्मक मूल्य, साहित्य का निरपेक्ष मूल्य, समाज के दर्पण और आलोचना के रूप में साहित्य, सामाजिक परिवर्तनों का साहित्य तथा कला पर प्रभाव, साहित्य में निरवच्छिन्नता विच्छिन्नता का मूल्य, साहित्यिक कार्यों के विविध-रूप, साहित्य का सामाजिक कार्य, विशिष्ट प्रकार के चरित्रों की सृष्टि और उनका अनुकरण, साहित्य प्रतिपादन में नवीन टेकनीकल साधन, लेखक और संस्कृति रक्षा, लेखक के प्रयत्नों में समानता साधन का उपाय, लेखक और कलाकार का चरित्र, साहित्य पर चरित्र का प्रभाव, समय और साहित्य, साहित्यिक प्रगतिशीलता का मानदण्ड, नवीन और पुरातन का अंतर, एवं उनका साम्य साधन, पुरातन में प्रगतिशीलता, प्रज्ञा और प्रतिभा का अंतर, मौलिकता और कल्पकता, सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता का आधार, संस्कृति संगम। इस प्रकार इस विषय का इतना अधिक विस्तार है कि यह अकेला विषय अनेक विद्वानों की विचार की वस्तु बन सकता है। और उसके विभिन्न पहलुओं पर वैज्ञानिक विश्लेषण—विवेचन किया जा सकता है। विभिन्न साहित्य, विविध भाषा और देशों की दृष्टि से इस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु आज हमारी दृष्टि बहुत सीमित हो गई है। मौलिकता का स्रोत मानों मंद पड़ गया है यही कारण है कि हमारा लेखक एक प्रकार की कुण्ठा अनुभव कर रहा है। प्रज्ञा की पराधीनता ने प्रगति को अवरुद्ध बना दिया है। सृजनात्मक-शक्ति शिथिल बन गई है।

पुनः विश्वविद्यालय-विवाद !

मध्यभारत के विश्वविद्यालय का प्रश्न जन-मनोवेदना का विषय बन गया है। इन्दौर के वे मित्र जो राजधानी का बटवारा करवा कर भी संतुष्ट नहीं हुए, विश्वविद्यालय की राह में भी रोड़े अटकाते जा रहे हैं और अब उसमें केंद्र की कूट नीति भी काम करने लगी है। राजधानी का निर्णय देते हुए प्रधानामात्य पंडितजी ने उज्जैन को आश्वस्त किया था, स्पष्ट शब्दों में उसके विश्वविद्यालय सम्बन्धी अधिकार को स्वीकार किया था, किंतु कुछ ही काल के बाद उनके शब्दों ने पलटा खा लिया, तथापि हम जहां तक समझते हैं उनके पत्र. विश्वविद्यालय के वर्तमान स्वरूप से असंतोष है, स्थान के विषय में विरोध व्यक्त नहीं होता, पर आज तो विधान-सभा के निर्णय में रुकावट डालने का कार्य केंद्र कर रहा है। पार्लमेंट के हालही के अधिवेशन में शिक्षा-विभागीय-व्यय की चर्चा के समय संसद् के मध्य--भारतीय सदस्य श्री० राधेलालजी व्यास ने बहुत ही हृदय-स्पर्शी शब्दों में केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय से अनुरोध किया है कि--"वह उज्जैन में विश्वविद्यालय की स्थापना में रुकावट न डाले, उन्होंने इस प्रसंग पर उज्जैन में विश्वविद्यालय बनाने के सम्बन्ध में किए गए वर्षों के कार्यों की चर्चा भी की, और कहा कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की रुकावट के कारण ही उसकी स्थापना रुकी हुई है। प्रारंभिक सभी तैयारी हो चुकी है। १ करोड़ ६० लाख रुपया भी एकत्र है, केन्द्र कुछ नहीं करना चाहता तो मध्यभारत सरकार को क्यों रोकता है।" श्री. व्यासजी ने कहा कि "यह बात समझ में

नहीं आती कि जब राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी, नेहरूजी, तथा अन्य कई नेताओं ने उज्जैन को विश्वविद्यालय के लिए सर्वोत्तम स्थान बतलाया है तो यह रुकावट क्यों ?"

किंतु माननीय मौलाना ने इसपर कोई उत्तर नहीं दिया, सहयोगी-नवभारत टाईम्स के विशेष-वृत्तदाता ने भी यही लिखा है कि--" कांग्रेसी सदस्य श्री० राधेलाल व्यास ने बहुत ही उत्तेजना के साथ शिक्षा-मंत्रालय पर आरोप लगाया था कि वह उज्जैन विश्वविद्यालय के निर्माण में रुकावट डाल रहा है। इस संबन्ध में राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और पं नेहरू के साथ उन्होंने मौलाना आजाद के भी नाम की चर्चा की थी। संसदीय परंपरा है कि जब नामोल्लेख पूर्वक कोई आक्षेप किया जाता है, तो मंत्री को उसका उत्तर देना ही पड़ता है। पर उज्जैन विश्वविद्यालय के प्रश्न को मौलाना आजाद ऐसा टाल गये जैसे कि उसका उल्लेख ही न हुआ हो।" (२५ ३.५३ न० भा० टाईम्स)।

हम समझने में असमर्थ हैं कि जिस शासन के सर्वोच्च प्रधान-पुरुष राष्ट्रपति ने यह शब्द कहे हों कि--" इतना ही नहीं, मैं आशा करता हूं कि जो यहां की सरकार है, और केन्द्रीय सरकार है उससे भी आपको सहायता मिलनी ही चाहिए, और समय आने पर मैं आशा करता हूँ कि वह मिलेगी " उसी के शासक उज्जैन के विश्वविद्यालय को सहायता देने के बदले बाधा प्रदान कर रहे हैं। यह कौनसी परम्परा, और कौनसी नीति है ? अपने ही प्रधान के वादों-आश्वासनों की अवहेलना केन्द्र का सचिवालय क्या नहीं कर रहा है ? हम अत्यन्त आदर के साथ राष्ट्रपति महोदय का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं, और नम्र विनय भी, कि वे उज्जैन में कथित अपने भाषण के उक्त उद्धरण के अनुसार केवल इतना ही कर सकें तो कृपा होगी कि उनके केन्द्रीय-शासन द्वारा चाहे सहायता न भी मिले, पर वह उज्जैन के अधिकार पर आघात तो न करे !

हमारी अल्पमति में यह बात भी समझ में नहीं आ पाती कि यह प्रांतीय स्वाधीनता किस प्रकार की है, जिसमें केन्द्र का अंकुश उसके अधिकार को कुचलता जाए ! विधान-सभा के निर्णयों को बिना कारण रोक देने का केन्द्र को यह कैसा अधिकार है ? केवल एक नगर के कुछ मुट्ठीभर लोगों की मांग पर प्रांतभर की जनता के विचारों को बलि चढ़वा देने के लिए केन्द्र का कराल हाथ खड्गहस्त हो तत्पर बन जाए ? जिन मुट्ठीभर लोगों को राजधानी का बटवारा राजी न रख सका, रेडियो स्टेशन रंजन न कर सका, उन्हें विश्वविद्यालय का भी रोड़ा बनने दिया जाता है। मध्यभारत में शायद और कोई नगर अपने किसी भी विकास के अधिकारी नहीं है ? केन्द्र भी उसी नीति से पक्षपात कर गंध प्रसारित न करें।

प्रतिनिधियों का (स्मृति) पत्र !

कुछ दिन ही हुए मध्यभारत के चुने हुए प्रतिनिधियों ने जिनमें मध्यभारत के पूर्व-मुख्यमंत्री, एवं अन्य मंत्री भी हैं, भारत सरकार के शिक्षा-मंत्री के समक्ष एक स्मृति-पत्र प्रस्तुत किया है, और उसमें अनुरोध किया है कि वे उज्जैन विश्वविद्यालय के निर्माण में बाधा न दें, उनके शब्दों में मध्यभारत का हार्द है, और बल है, उन्होंने अपने पत्र में इस प्रदेश के बहुमत की वाणी को व्यक्त किया है, जो उज्जैन में विश्वविद्यालय की स्थापना का औचित्य मानती है, और जिसे मध्यभारत शासन एवं धारा-सभा ने प्रकट भी किया है। देखना है, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की इसपर कैसी प्रतिक्रिया होती है ? कांग्रेस पक्ष, धारा-सभा, एवं अपने पक्ष के शासन के निर्णय को केन्द्र के द्वारा जब रोक दिया जाता है, बाधा दी जाती है तो हम समझने में असमर्थ हैं कि केन्द्र अपने दल, या अपने अंकित शासन की यह कैसी प्रतिष्ठा रखती है ?

प्रधान-मंत्री का नया पत्र !

प्रधान-मंत्री नेहरूजी के पिछले दो परस्पर विरोधी पत्रों का पर्याप्त प्रचार हो चुका है, हाल ही में उज्जैन विश्वविद्यालय समिति को उनका एक नया पत्र प्राप्त हुआ है, उसमें बतलाया गया है कि वे मध्यभारत में एक तीसरे दर्जे के विश्वविद्यालय की स्थापना को पसंद नहीं करते, न उसे प्रोत्साहित किया चाहते हैं, यह बात सोलह आना सही है। मध्यभारत-वासी कोई भी नहीं चाहेगा कि तीसरे दर्जे का विश्वविद्यालय निर्माण हो, हम भी यही चाहते हैं कि मध्यभारत का विश्व-विद्यालय, एक उच्च कोटि का, और

आदर्श हो, जो उसकी पूर्व परंपरा के अनुरूप हो सके, परन्तु पंडितजी ने तथा राष्ट्रपति महोदय ने एकाधिक बार आज के विश्वविद्यालयों की रीति-नीति की आलोचना की है, खुलकर विरोध किया है, लेकिन अबतक ऐसी कोई योजना, अथवा विचार-धारा प्रस्तुत नहीं की है, जिसके अनुसार देश के विश्वविद्यालयों की परिपाटी में परिवर्तन लाया जा सके, उन्हें आदर्श बनाया जा सके, या जो नवीन स्थापित हो उनको उस आदर्श-प्रणाली पर प्रतिष्ठित किया जा सके, तब केवल आदर्श और स्तर के नाम पर और विश्वविद्यालयों को पोषित रखा जावे, और मध्यभारत की राह में रोड़ा अटकाया जावे यह कौनसी नीति है ? क्या भारत सरकार के शिक्षाविभाग ने इन लंबे पांच वर्षों में अनेक आलोचनाओं के रहते हुए भी कोई आदर्श पद्धति प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ! जब केन्द्र अकर्मण्य रहा हो– जहां सभी साधन व्यक्ति और विशेषज्ञ सुलभ हो सकते थे, तो मध्यभारत को ही उसका दण्ड क्यों दिया जावे ? उसे क्यों लटकाया जावे ?

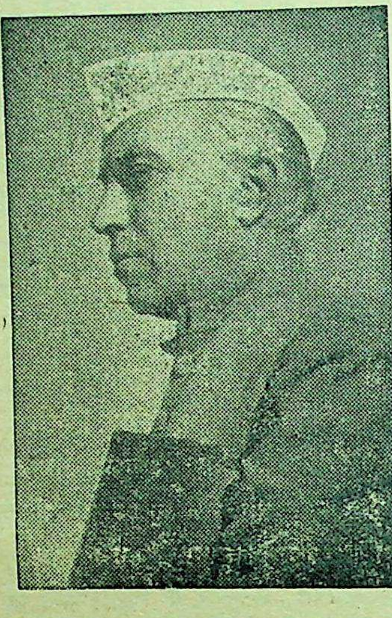

उत्तम यह होता कि पंडितजी अपनी आदर्श और 'वास्तविक' समझी जाने वाली कोई पद्धति सूचित करके उसके अनुसार विश्व विद्यालय स्थापित करने की आज्ञा देते, बजाय इनके केवल आदर्श की हवाई कल्पना की आड में एक प्रांत की प्रगति में रुकावट डालते हैं। पता नहीं पंडितजी किसे 'वास्तविक विद्यालय' कहना चाहते हैं, यदि वे केम्ब्रिज, और आक्सफर्ड आदि को आदर्श मानते हों तो उनके आदर्शों पर चलने वाले आज के विश्व विद्यालय तो विपुल हो गए हैं, पंडितजी से हम यह आशा तो नहीं करते कि वे किसी भारतीय प्रणाली को आदर्श स्वीकार करेंगे, भले ही वे सांची में बौद्ध-भिक्षुओं की अस्थियों का (अंतर राष्ट्रीयता के कारण) आदर करें, परन्तु केन्द्रीय शिक्षा विभाग के गठन उसके वातावरण को देखते हुए तो यह अपेक्षा रखना भी व्यर्थ है कि वहां कोई भारतीय-आदर्श को लेकर 'वास्तविक विश्व–विद्यालय' की कोई योजना निर्माण कर सकेगा। तब पंडितजी की 'वास्तविक' योजना कौन सी होगी यह जानना केवल मृग-मरीचिका रहती है।

पंडितजी ने अपने इसी पत्र में कहा है कि 'विश्व विद्यालय के लिए व्यक्ति, और धन की आवश्यकता होती है।' सही है, लगभग १ करोड़ जन संख्या वाले इस प्रदेश में न तो व्यक्ति की कमी होगी, न धन की ही। इस प्रदेश में प्रतिभा की किसी से कमी नहीं है, और धन तो १ करोड़ रुपए की राशि में पूर्व–स्वीकृत इसी उद्देश्य से सरकारी खजाने में जमा पड़ा है। आवश्यकता पड़ने पर यह प्रदेश अपनी उदारता में पीछे नहीं रहेगा। यदि पंडितजी उपेक्षा न करे, रोक लगाने की परम्परा को परित्याग करे तो गंगाजली की विशाल निधि भी गवालियर नरेश द्वारा इसके लिए सहज सुलभ है, क्या हम आशा करें कि पंडितजी अपनी 'वास्तविक' विश्व विद्यालय की योजना प्रकाश में लाएंगे, और मध्यभारत को विश्व–विद्यालय स्थापित करने में रुकावटें उठाकर प्रगति में सहायक बनेंगे।

और आश्चर्य—

इधर केन्द्र में संसद के मध्यभारतीय सदस्य, श्री म. भा. के भूतपूर्व राजस्व मंत्री रहे हुए श्री राधेलालजी व्यास संसद की चर्चा के समय स्पष्ट शब्दों में जब यह घोषित करते हैं कि "विश्व विद्यालय के लिए १ करोड़ ६० लाख रुपया भी एकत्रित है, तब हम मध्यभारत के वित्त-मंत्रीजी का धारा सभा में यह उत्तर सुनकर स्तब्ध हो जाते हैं कि– उज्जैन में विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए मध्यभारत कोष के वास्ते कोई विशेष रकम निश्चित नहीं की गई है" (२४ मार्च–हिन्दुस्तान)

जबकि इस के विपरीत मध्यभारत की धारा सभा १९४९ के अंतरिम अधिवेशन के समय एक सदस्य ने प्रश्न किए जाने पर तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने यह उत्तर दि या कि—

'तत्कालीन ग्वालियर शासन ने जो एक करोड़ की निधि विक्रम विश्व विद्यालय के लिए स्वीकृत की थी, वह रकम मध्यभारत के फण्ड में जमा हुई है, वह रकम अलग कहीं जमा नहीं हुई है.।'

(कार्य विवरण अं. धारा सभा १२ नवम्बर १९४९ पृ. ३०)

४ वर्ष पूर्व एक जुम्मेदार शिक्षा मंत्री जिस रकम को मध्यभारत कोष में सुरक्षित बतलाते हैं उसे आज के वित्त-मंत्री 'कोई रकम नहीं है' सूचित करे, यह रहस्य भी हैरत में डाल देता है ? ग्वालियर की उत्तरदायी सरकार के प्रधान मंत्री मा. लीलाधरजी जोशी, राजस्व मंत्री, मा. राधेलालजी, शिक्षा मंत्री श्री विट्ठलकरजी और वित्तमंत्री श्री तखतमलजी आज भी उस रकम, उसकी सार्वजनिक घोषणा के लिए प्रमाण बने हुए हैं, शासन के रिकार्ड भी उसकी साक्षी दे सकते हैं। तब वित्तमंत्रीजी से सविनय पूंछना चाहते हैं कि वह १ करोड़ की रकम कहां गई, उसका सूद कहां है ? मध्यभारत कोष में उसे स्वतंत्रता पूर्वक जिस हेतु से वह घोषित-प्रचारित की गई है, क्यों नहीं उसी हेतु के लिए सुरक्षित रखे और उसका सूद भी उसके साथ जुड़ाए ? ग्वालियर के उत्तरदायी शासन द्वारा स्वीकृत उज्जैन विश्व विद्यालय की रकम केवल उज्जैन के अधिकार की वस्तु है, उसका विनियोग किसी भी दूसरे काम में, या दूसरे स्थानपर नहीं किया जा सकता। उज्जैन ही उसका एकमात्र अधिकारी है, और वह भी विश्व विद्यालय ही। केन्द्र या प्रांत को उसमें बाधा देने का कोई कारण नहीं। हम चाहते हैं कि इसका स्पष्टीकरण किया जाए, वह रकम उज्जैन को दी जाए, गवालियर के लिए हुए धन पर अन्य का अनुचित अधिकार नहीं है।

वर्तमान वित्तमंत्रीजी के विचारों से भ्रम फैलने की संभावना है। जनता स्पष्टीकरण चाहती है, और अपनी वस्तु का उसी कार्य के लिए विनियोग करने का उचित अधिकार भी !

पाकिस्तान की यह हवा !

स्वतन्त्रता के बाद भारत की जो दशा विभाजन के कारण बन गई थी, वह अवश्य ही पाकिस्तान द्वारा प्रेरित और पोषित थी। उस विषमता पर भारत ने जिस प्रकार विजय प्राप्त की, वर्चस्व किया, वह साधारण घटना नहीं है। लाखों विस्थापितों का प्रश्न, आंतरिक विषमता, असन्तोष, अन्न की असुविधा, वस्त्र का अभाव आदि अनेकों बातें विभाजन के फलस्वरूप ही प्राप्त हुई थी। आज हवा ने रुख पलटा दीख रहा है। अन्न से आत्मनिर्भर पाकिस्तान--आज कठिनाई अनुभव कर रहा है, वस्त्र का प्रश्न भी उसे विवश कर रहा है। इन सबके ऊपर वह बात है--जिसे पाकिस्तान ने अपनी नींव में डालकर अपना साम्राज्य स्वप्न बनाया है—मजहब परस्ती ! इस जहर ने वहां फिरकापरस्ती का प्रचण्ड-ताण्डव खड़ा कर दिया है। अहमदिया-सम्प्रदाय के जनाब जफरुल्ला का जीवन असह्य बन गया है। जिस मियां जफरुल्ला ने सत्य को असत्य बनाकर विश्व की आंखों में धूल झोंककर पाकिस्तान के लिए काश्मीर हड़पने के लिए दिन को रात बनाया, और रात को दिन, भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों को निरन्तर विषमय रखने के लिए कोई भी प्रयत्न न छोड़ा, उसी पाकिस्तान के मौलवी-मुल्ला मण्डल ने जफरुल्ला की जड़ खोद कर फेंक देने के लिए सारे पाकिस्तान की नींव में सुरंग डालना आरम्भ कर दिया है। सम्भव है जफरुल्ला ने जिन्ना के बाद पाकिस्तान में अपने को अमर बना लेने का स्वप्न सोचा हो, पर नींव खुलने से पूर्व, केवल करवट बदलने के काल में ही उनको वह कांटे बनकर चारों तरफ चुभने को तैयार हो गया है। जफरुल्ला अपने ही जाल में उलझ गए हैं, फंस गए हैं। निजामुद्दीन भी उनकी नौका को पार लगाने में नाकामयाब दिखाई दे रहे हैं, उनका लाहोर से लंगर उखड़ गया है, तूफान और भंवरों में शासन की नय्या डगमगाने लग गई है। सम्भव है आतंक की आंधी के बाद आसमान उजला दिखाई देने लगे, पर जिनकी जड़ें हिल गई हैं, दीवारे फट गई हैं, वे सहज 'सांसों' से सम्हलने वाली नहीं है। आज कराची में भी कमजोरी आ गई है, पंजाब और बंगाल के बीच कुदरत ने एक खाई खोद ही रखी है। जो आलोचना आतंक में आवाज दबाए रहती थी, वह आज ऊपर उठकर आसमान में उड़ती दिखाई देने लगी है। पाकिस्तान-पार्लमेण्ट के विरोधी-दल के नेता मियां इफ्तिखारुद्दीन ने खुले शब्दों

में वर्तमान मंत्री-मण्डल को सर्वथा असफल घोषित किया है, और सभी को स्तीफा देने की झिड़की भी दी है।

मियां इफ्तिखार ने वर्तमान मंत्री-वर्ग का मजाक उड़ाते हुए उन्हें जिस तरह के विभाग देने का विचार व्यक्त किया, वह उनके वास्तविक-रूप का निदर्शक ही था।

"उन्होंने कहा कि व्यापार-मंत्री श्री फजलुर रहमान को निर्धनता तथा आर्थिक पराधीनता मंत्री, उद्योगमंत्री सरदार अब्दुर्रब निश्तर को अनिर्णय मंत्री, खाद्यमंत्री पीरजादा अब्दुल सत्तार को भूख, चोरबाजार तथा तस्कर व्यापारमंत्री, आंतरिक मामलों के मंत्री श्री गुरमानी को दमन, तथा गृहयुद्ध मंत्री, सूचनामंत्री डॉ. कुरेशी को अफवाह तथा गलत सूचना-मंत्री तथा वित्तमंत्री श्री मुहम्मदअली को मदारी तमाशा मंत्री बन जाना चाहिए। उन्होंने कहा विदेश-मंत्री श्री जफरुल्लाखां ने पाकिस्तान को ब्रिटेन तथा अमरीका का गुलाम बना दिया है और पाकिस्तानी वैदेशिक मामलों का संचालन लन्दन तथा वाशिंगटन से होगा। प्रधानमंत्री ख्वाजानाजीमुद्दीन आम अराजकता का विभाग सम्हाले हुए प्रधानमंत्री बने रहेंगे।" —हिन्दुस्तान

यह विभागों का वितरण कराची के शासन का नग्न-चित्र प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि पाकिस्तान को पांच वर्षों में असफलता ही पल्ले पड़ी है, और इसी में उसका भविष्य बोल रहा है।

"शन्नो वरुणः"—

भारत-सरकार की राष्ट्रीय मुद्रा पर 'सत्यमेव जयते' शब्द-अंकित है, और राज्यासन के पृष्ठ पर 'धर्मचक्र प्रवर्तनाय' लिखा हुआ है। 'सत्यमेव जयते' यह वास्तव में हमारा आदर्श है और इसी में भारत की गौरव-परम्परा निहित है। शासन का यह मुद्रा-लेख हमारी राष्ट्रीय-परम्परा के अनुरूप ही है। 'धर्म-चक्र प्रवर्तनाय' शब्द का विशेष हेतु रहा है। जब देवानांप्रिय सम्राट् अशोक ने धर्म प्रचार को अपना--अपने शासन का ध्येय बना लिया था, तब उसने अपना यह मुद्रा-लेख घोषित किया था। किन्तु आज की हमारी 'धर्म-निरपेक्ष' सरकार इस मुद्रा-लेख को अंकित कर कौनसी संगति सूचित कर सकती है? अवश्य ही धर्म के तथ्य--तत्व मूलतः समान होते हैं पर धर्म जिस भावना से ग्रहीत है, उसका वर्तमान-शासन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रहता। यदि यह धर्म के पूर्व 'राज्य--धर्म प्रवर्तनाय' शब्द अंकित कर लेता तो सही स्वरूप समझ में आ सकता था, उसे अशोक के अनुकरण की आवश्यकता नहीं थी। अशोक यद्यपि बौद्ध था और उसने ही इस धर्म का विस्तार द्वीपान्तरों तक किया था। फिर भी धर्म प्रधान शासन में उसकी विभिन्न-धर्म सहिष्णुता थी, इस कारण उसका यह आदर्श बाधक नहीं—साधक रहा है। हमारे शासन का तो धर्म आधार ही नहीं है, फिर इस आदर्श-वाक्य की संगति क्या है? परन्तु शासन को धर्म और पुरातन में प्रेम न होते हुए भी उसे उन्हीं आदर्श वाक्यों को खोज कर लगाने का मोह है, जो एक विशिष्ट-भावना से निर्मित--ग्रहीत और प्रतिष्ठित है। हालही में भारतीय नौका-दल के लिए नए सूचक चिन्ह का प्रयोग किया गया है। पिछले शासन के नौका-दल पर ताज का चिन्ह था, उसका स्थान अशोक-स्तम्भ के सिंहों ने ले लिया है, और 'स्क्रोल' पर 'शन्नो वरुणः' यह संस्कृत वैदिक-शब्द अंकित किया गया है। अवश्य ही यह शब्द नौका-दल के लिए सर्वथा उपयुक्त और वास्तविक है, हमारे लिए गौरव का विषय है। किन्तु ऐसे आदर्श वाक्यों को खोजने के लिए भारतीय-ज्ञान का ही सहारा लेना पड़ता है, फिर सरकार, भारतीय-ज्ञान की अन्य विशेषताओं से विलग रह कर विदेशों का अनुकरण करने को क्यों आतुर रहती है, यह समझ में नहीं आता। निःसंदेह जिस मस्तिष्क ने वरुण के कल्याणकारी मंत्र को खोजकर नौका-दल के लिए निर्वाचित किया, वह अवश्य भारतीय-संस्कारों से पूर्ण-प्रभावित है और हम उसका इस सुन्दर सूचित निर्वाचन के लिए अभिनन्दन करते हैं। साथ ही सरकार का भी कि उसने 'शंनो वरुणः' को स्वीकार कर लिया।

संघर्ष काल का शिशु-समुदाय—

अब नानी की कहानी का काल समाप्त हो गया, न राजा रहे, न रानी ही, परियों का वह प्रभाव भी नहीं रहा, जल से नारी तितली बनकर तैरने लगी है। दूसरे महायुद्ध ने बालकों की मीठी बातों को नया मोड़ दे दिया है। वे राकेट, राशन की चर्चा करने लगे हैं। खिलौनों में उनके सामने मोटर, टैंक, विमान उत्तर पड़े हैं, आसमान में चांद-तारों से अब उन्हें उतना मोह नहीं, जितना विमान

गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी

के घोष में आकर्षण बढ़ गया है, आये दिन लड़ाई, मारकाट, लूट, हत्या, डाकेजनी ने उनपर आतंक जमा लिया है, उनके माता-पिता भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और सिफारिशबाजी की चर्चा में संलग्न रहते हैं, इसलिए जिन लोककथाओं से वे अपने संस्कार सीखते थे, परम्परा को पहचानते थे, वे भी गायब हो गई हैं, आज उन्हें वादों का विवाद सुनना पड़ता है, पार्टी के प्रपंच में पौरुष दिखाई पड़ता है। हर घर में रोटी-रोजी का राग सुनाई देता है। मां का दूध तो केवल उन भाग्यवान बालकों को ही मिलता है, जो अब भी धर्म निरपेक्ष राज्यों में रहकर संस्कारों को समेटे हुए हैं, वर्ना आया की आराधना में रहकर पैदा होते ही 'आर्टिफिशल' मां; और शीशी के दूध की धारा मिलने लगती है, फिर गाय के दूध का स्वाद तो उन्हें क्या मालूम हो सकता है जब वह मिलावट के साथ भी मामूली तौर पर मँहगा मिले। जरा और पांच वर्ष के बाद ठहरिये तो– पेड़ और पौधों के दूध को ही पहचानना पड़ेगा, जिन्हें बम्बई सरकार पनपा रही है, और घी की बात छोड़िये, उसका स्थान डाल्डा,वनस्पती लेता हो जा रहा है। जहां घी और दूध की सरिताएं बहती सुनी जाती थी, वहां चाय के कप का कंपन कानों से टकराता है, कोका कोला, की शीशियों के कार्क खुलते दिखाई देते हैं, शर्बत-शराब और नीरा की नालियाँ बहना चाहती हैं. जब बहन और भाई का कानूनी हक मान्य हो जाएगा, तब प्यार पछाड़ खाकर न्यायालय के द्वार पर पहुंचने लगेगा, राखियाँ बाँधने वाली बहने हथकडियों को आधार बनाकर हिस्से तलब करती दिखाई देगी, बहन को बिदाई में दी जाने वाली साड़ियां, भाईयों के हाथों द्रोपदी के चीरहरण की तरह खिचने लगेंगी। लिपस्टिक लगाने वाली ललना, अपने लाल का गाल चूम कर भला पावडर, और पालिश क्यों पुंछने देगी?

अब रात की अँधेरी-निशा में बालक भयभीत भी न होगा 'ब्लेक आऊट' की कल्पना में, उस का कठोर मन उलझा रहेगा। आकाश से कभी कोई तारा टूटता था, और कोई समझदार भी देख लेता था, तो क्षण भर सहम जाता था, पर अब अचानक स्वर के साथ भी कोई धड़ाके की आवाज चली आए तो वह 'बम' के फूटने की ही कल्पना करेगा। घर में, बाजार में, खेल में, पुस्तकों में, समाचार पत्रों में, रूस, कोरिया, अमेरीका, पाकिस्तान, काश्मीर के खिचावतनाव के समाचार भरे रहते हैं, गैस, गोली, लाठी की चर्चा चलती है, यही उसका मनोरंजन बन जाता है, विचार का विषय बन जाता है, उसकी सूझ इन्हीं समाचारों के आसपास सिमटी रहती है। बालक विनोद के वातावरण में नहीं, किंतु भय आतंक चिंता के चक्कर में पड़ा रहता है। चीनी के नियंत्रण ने उसके मुँह की मिठाई को छीन लिया, मंद मुस्कान को मसल दिया, और कूडे-करकट भरे नाज की सूखी रोटी खाकर उसे भूखे रहने को मजबूर बना दिया है, विदेशी-विलायती मां-बाप के बेटे यदि किसी चीज को नयी समझ खेलना चाहें तो वह शायद 'हमले के समय रक्षा करने का साधन' ही रहती होगी, पर भारतीय मां-बाप के गरीब बच्चों को भी राशन की दुकानों पर क्यू लगाकर नमक, तेल-लकड़ी लेते समय सेना की कवायद, और मुसीबत का ही पाठ पढ़ना होगा। स्कूलों में पार्टी बाजी संघ-समाज का समा बँधा रहता है, साहित्य वादों से घिरा रहता है, अश्लीलता यथार्थ कला के कक्ष में कब्जा किये हुए है, और कपड़ों की कमी ने स्वयं सब को यथार्थ-रूप समझने को बाध्य बना डाला है। क्षण भर पहिले की राजनीति– 'उखाड़ो, तोड़ो-निकालो' का नारा लगाती थी, और दूसरे ही क्षण 'निर्माण करो' नींव डालो, राष्ट्रीय-हित का राग अलापती है, ऐसी हालत में बालक भ्रम और विचार-विभ्रम में उलझ जाए तो विस्मय ही क्या? बालकों के मानस पर रचनात्मक भावना के अंकुर उग ही नहीं पाते कि संहार का सन्देश कानों को फोड़ कर प्रवेश करने को मचल उठता है। पार्टीबन्दी, दलबन्दी का द्वन्द्व दुंदुभि लेकर दूसरे स्वरों को सीमा में भी पहुँचने नहीं देता। मनोरंजन भी जब चित्रपटों पर मारकाट, लूट-खसोट दिखलाता-सिखलाता है, और समझ के सींग निकलते ही प्रणय, प्यार का पड़ोसी बना देता है तो उस कोमल-किशोर का क्या कुसूर है कि वह राजरानी की कृत्रिम-कहानी की उपेक्षा न करे। उसे कृत्रिम-कहानियों में क्यों रस होने लगा। जब सारा दृश्य ही सजीव-कृत्रिम देख--सुन--समझ रहा है, और परियों को वास्तव में पड़ोस पा रहा है। बालक में अनुकरण करने की अद्भुत नैसर्गिक-क्षमता रहती है, वह आज कृत्रिम काल का वास्तविक अनुकरण कर रहा है। समाज का संसार का

सही स्वरूप प्रकट रहा है। इस वास्तविक अनुकरण को, स्वरूप को सामने देख कर भी हम नहीं समझ रहे हैं। यह हमारा भविष्य बतला रहा है कि हम कहां जा रहे हैं, हमारी भावी पीढी कहां जाना चाहती है।

पं. नेहरूजी का भविष्य-विज्ञान के विषय में भ्रम।

प्रधानामात्य पं० नेहरूजी का नियम है कि जब वे भावुकतावश हो किसी बात को सहसा बोल जाते हैं तो फिर वे अगले दो-तीन भाषणों में धीरे-धीरे उसका स्पष्टीकरण चतुराई से करते जाते हैं। जिस समय राजप्रमुख-प्रथा को समाप्त कर देने की आवाज उठी थी, तब पण्डितजी ने सहसा ऐसी ही कुछ बातें कह दी थीं। उसके बाद हैदराबाद तथा अन्य स्थानों पर अपने भाषणों में उसे यथाक्रम स्पष्ट करते गए। ठीक यही स्थिति ज्योतिः शास्त्र के विषय में प्रतीत होने लगी है। देहली की किसी एक नगण्य घटना को लेकर वे ज्योतिषियों पर बिगड़ गए। उसके बाद तुरन्त ही दिल्ली की एक सभा में आवेश वश उन्होंने कुछ आक्षेप कर डाले। वहां से लखनऊ पहुँच कर दूसरी सार्वजनिक-सभा में पुनः आक्षेपों की पुनरावृत्ति कर डाली। गत-मास 'तलैया-बांध' के सिलसिले में फिर एक-बार तीसरी बात कह डाली। हमने इन सभी आक्षेपों के उत्तर दिए हैं और पण्डितजी के तर्कों का व्यवस्थित-तर्क-पूर्ण उत्तर दिया है और पण्डितजी की सेवा में भी भिजवाया है। सम्भवतः पण्डितजी ने देखा हो, या सुना हो। हालही में जब वे मेरठ पहुँचे तो पुनः एक सार्वजनिक-सभा में ज्योतिष को स्मरण करना न भूले, परन्तु इसबार पण्डितजी के स्वर में परिवर्तन प्रतीत हुआ। यह परिवर्तन भी प्रकट करता है कि पण्डितजी को भ्रम है और वे अनजाने ही आक्षेप कर जाते हैं। पण्डितजी के भाषण का यह अंश 'पी० टी० आई०' ने इस प्रकार प्रसारित किया है—

"कुछ लोग इस देश के भविष्य के सम्बन्ध में ज्योतिषियों की सूचनाओं को बीच में लाते हैं। ज्योतिष-शास्त्र के ये कथन सच हों या गलत मुझे उनमें कोई रस नहीं। ये कथन सच हो तो भी, लोग ज्योतिष-शास्त्र पर आधार रखने वाले बन जावें यह मैं नहीं चाहता।" आगे पण्डितजी ने कहा—"मुझे यह समझ में नहीं आता कि सूर्य और तारागण हममें क्यों अनुराग लेते हैं? यह मेरे मन में जरा भी समझ में नहीं आता, सूर्य और तारागण पर हम आधार रखते हैं, यह विचार ही मानव और देश को निर्बल बनाता है। हमारा प्रारब्ध—किस्मत पहले से ही स्थिर हो चुका है और जो कुछ होने को है वह होता है। यह विचार गलत है, यदि तुम्हारी यह मान्यता बन जावे तो तुम में शक्ति ही कहां रहती है?

खराब माने जाने वाले भावी को भी सुधार कर नई किस्मत बनाने की तुम में ताकत होना चाहिए।"

पण्डितजी के भाषण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि नवीन-संस्कारों के भारतीय ज्ञान और विज्ञान से अपरिचित साधारण-जन जिस प्रकार ज्योतिःशास्त्र के विषय में भ्रांत-धारणा लेकर विचार रखते हैं, वे उसी प्रकार के हैं, पण्डितजी कहते हैं कि--कुछ लोग देश के भविष्य के विषय में ज्योतिषियों के भविष्य को बीच में लाते हैं। हमारा खयाल है, प्रत्येक विचारशील व्यक्ति और आम लोग भी अपने या अपने देश के भावी जानने को उत्सुक जरूर हैं, उस जिज्ञासा में भविष्य के प्रति स्वाभाविक आकर्षण अवश्य है--अंधश्रद्धा या अंधविश्वास नहीं। जो अंधविश्वास लेकर ज्योतिष, धर्म या शास्त्र को मान्यता देते हैं, वे 'कुछ' ही लोग होते हैं।--बकौल पण्डितजी के उन कुछ लोगों के कारण भविष्य 'देश के बीच' में आकर कोई 'बाधा' का कारण नहीं बनता। 'कुछ' लोगों की मान्यता से न तो शासन की गति-विधि में अंतर आता है, न जन-मनोवृत्ति ही भ्रांत होती है। सर्वसाधारण अपने विश्वासों और मान्यताओं को अपने तक ही सीमित रखता है। आज के केन्द्रीय-शासन में अनेक अधिकारी सिविलयन्स अँग्रेजी शासन की श्रेष्ठता और अँग्रेजी-भाषा की उत्तमता को मानते हुए भी स्वदेशी-शासन में काम कर रहे हैं, स्वदेशी-भाषा को अपनाते जा रहे हैं। उनकी अपनी निजी 'अँग्रेजी आस्था' से देश के शासन में कहां बाधा उपस्थित होती है? तब पण्डितजी को ज्योतिष के भविष्य-कथन पर भी चिन्ता नहीं करना चाहिए।

पण्डितजी--'ज्योतिष का भविष्य सच हो या गलत उसमें रस नहीं लेना चाहते' बहुत उत्तम है, परन्तु वे दूसरों के अनुराग रखने पर भी क्यों आपत्ति अनुभव करते हैं। अवश्य ही पण्डितजी ने फलित की सचाई--या गलती से

अनुराग न लेकर अपनी 'तटस्थता' स्वीकार की है। इससे स्पष्ट है कि उन्हें इस शास्त्र के विषय में कोई जानकारी नहीं है, फिरभी वे जब ज्योतिषी के पास जाने वालों को सहज 'मूर्ख' बतला देते हैं तो यह कितनी बड़ी भूल है, जो व्यक्ति 'रस' नहीं लेता वह उसके स्वाद को जाने बिना दूसरों को 'मूर्ख' बतलाने का कैसे साहस कर सकता है?

पण्डितजी की चाह।

पण्डितजी कहते हैं--'यदि ये भविष्य सही भी हों तो लोग ज्योतिष शास्त्र पर आधार रखे यह वह नहीं चाहते।' भारतवर्ष में लाखों-करोड़ों लोग धर्म, शास्त्र, पूजा, अर्चा, अध्यात्म-भावना आदि पर आधार रखते हैं। पण्डितजी इन पर विश्वास नहीं रखते, आधार नहीं बनाते और वे नहीं चाहते कि लोग भी न माने तो क्या लोग पण्डितजी के 'न चाहने से' यह स्वीकार कर लेंगे? भौतिकवादी नहीं चाहते कि अध्यात्मवाद उनके राह का रोड़ा बने। इससे अध्यात्मवादी को भौतिकवाद स्वीकार कर लेना आवश्यक नहीं है। अपनी संस्कृति, अपनी परम्परा, अपनी धारणा, अपने शास्त्र का आधार कोई भी ईमानदार अपनी सच्ची राष्ट्रीयता रख कर छोड़ नहीं सकता, न ईसाई बाइबिल छोड़ देगा, न भारतीय अपने धर्म ग्रन्थ!

पण्डितजी की समझ—

पण्डितजी को यह--"समझ में नहीं आता कि सूर्य और तारागण हममें क्यों अनुराग रखते हैं?" बीसवीं सदी में रहने वाला हरएक वैज्ञानिक यह पण्डितजी को सहज बतला सकेगा, चाहे पण्डितजी ज्योतिषी के बतलाने पर शायद स्वीकार न भी करें, पर जिस रोज सूर्य और तारागणों ने हम जड़ चेतन्यों में अनुराग लेना बन्द कर दिया, उस रोज न तो यह पृथ्वी ही टिकी रहेगी, न जड़-जंगम ही! न आकाश में वायुयान ही उड़ पायेंगे, न पानी में जहाज चल सकेंगे।

सूर्य नक्षत्र का प्रभाव—

सन् १९३७ के जून में जब एकरोज सूर्य मण्डल पर रजोवलय का वातावरण छा गया था (अरोरा बेरेलिस) तब सारे इंगलेंड में वायरलेस टेलिग्राफी, रेडियो आदि घन्टों रुक गए थे, शायद पंडितजी को यह पता होगा। वे दूर न जाएँ तो, निकट ही में देख लें कि रोज शाम होते ही अनेकों वृक्षों की पत्तियां, कलियां, कुम्हला कर अपनी पंखुडियां समेट कर सो जाती हैं। सूर्य रहते हुए वे खिली-खुली रहती हैं, इसी तरह जितने दूध वाले रसवान्-वृक्ष, वनौषधि हैं, वे चंद्र के रहते हुए ही दूध देते हैं, ज्योंही सूर्य की किरणें प्रकाश फैलाने लगती हैं, उनका दूध सूख जाता है, बूंद भी निकलने नहीं पाती, आदमी को यदि सूर्य का प्रकाश न मिले, या अल्प मिले तो उसका स्वास्थ्य-संतुलन बिगड़ जाता है। आज के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने यह मान्यता प्रकट की है कि सौर मण्डल में तेजोह्रास हो रहा है, इस कारण जनता का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है, पंडितजी को स्मरण होगा कि अमेरिका के प्रसिद्ध उड़ाके कर्नल लिंगबर्ग के बच्चे को उड़ाने की सनसनी भरी हुई घटना बहुत वर्ष पूर्व घटी थी, जब वह लड़का-चोर पकड़ा गया तब उसने जिस निसैनी का उपयोग किया था वह प्रमाण में काम दे सकी थी। वह निसैनी उसी पेड़ की लकड़ी की थी जो चोर के मकान में लगा था, और सूख गया था। उस निसैनी और पेड़ की लकड़ी की एकता को प्रमाणित करने के लिए एक वज्ञानिक की गवाही हुई थी, उसने यह सिद्ध किया था कि लकड़ी के काटने पर अंदर जितने वर्गाकार चिन्ह (सर्कल) मिलते हैं वे वृक्ष की आयु सूचित करने वाले हैं, उन चिन्हों पर जब-जब सूर्य-ग्रहण उन वर्षों में आता है, उतने ही चिन्ह विकृत हो गए हैं, संपूर्ण सर्कल नहीं बने, इससे स्पष्ट है कि सूर्य-किरणों का प्रभाव वृक्षों पर, उसकी आयु पर भी स्थायी असर करता है, और ग्रहणों के समय किरणों के उपयुक्त-एवं आवश्यक ताप-मान न मिलने से एक जड़ वृक्ष पर भी दुष्प्रभाव होता है। ऐसी हालत में मानव प्रकृति से उसका कितना सम्बन्ध रहता है, यह कल्पना की जा सकती है, यह ज्योतिषी की नहीं एक सुधरे हुए अमेरीका देश के वैज्ञानिक की सम्मति है।

इसी प्रकार लंदन की प्रसिद्ध घटना है कि एक व्यक्ति को केवल शुक्ल-पक्ष में, (जबकि चंद्र की कला वृद्धि होती है) उन्माद बढ़ता जाता है, और वह नर-हत्या करने को प्रेरित होता है। उसने कई हत्या कर डाली है, पुलिस

उसकी तलाश में परेशान है। चन्द्रकला के साथ नारी के ऋतुओं का सम्बन्ध सर्वविदित ही है। चन्द्र ज्योत्सना से प्रभावित होने के नर-नारी और वनौषधियों के अनेक प्रमाण प्रत्यक्ष है।

यदि सूर्य का पर्याप्त प्रकाश न मिले तो साधारण बात है जमीन धान्य तक ठीक न दे सकेगी, उसकी उत्पादन-क्षमता में अन्तर आ जाता है। एक किसान भी अपढ़ होते यह जानता है कि मृगशिर नक्षत्र पानी न दे तो खेती खाली रखी रह जाती है। स्वांति का बूंद न मिले तो मोती नहीं बन पाता। यह जाने दीजिए, एटम के निर्माण के लिए विषुवत-रेखा पर प्राप्त होने वाली सौर-किरणें ही उसके परिमाणु विभाजन की क्षमता रखती है।

और एटम् तथा कास्मिक-किरण

हाल ही में कास्मिक-किरणों के विभिन्न अक्षांशों पर प्रभाव-परिवर्तन की परीक्षा के लिए इटली के भौतिक विज्ञान शास्त्री प्रो० वी० रिस्पोली बाम्बे की टाटा इंस्टीट्यूट में अपना यही परीक्षण कर रहे हैं। वे ४२ अक्षांश वाले रोम में परीक्षा कर चुके हैं, और अब १२ अक्षांश पर उसके परिवर्तन को परख रहे हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक मि० भाभा भी यही कहते हैं कि भूमध्य-रेखा पर चुंबकीय शक्ति के प्रभावशील होने के कारण कास्मिक किरणों के अणु विखण्डन का कार्य यहां सहज-सुलभ हो जाता है। यह ग्रह-नक्षत्रों के किरण-प्रभाव का ही कारण है, या और कुछ? आज कुछ मनचले वैज्ञानिक भौम और चन्द्रलोक की सैर के लिए सन्नद्ध बन रहे हैं, आखिर हमें इन ग्रह-तारागणों में यह 'रस' लेने की क्यों प्रवृत्ति है?

विश्वविद्यालय के प्रश्न पर नेहरूजी का पत्र

No. D/S/3197.

प्राईम मिनिस्टर्स
सेक्रेटरीएट नई दिल्ली
२१ मार्च ५३

प्रिय महाशय,

प्रधानमंत्री ने मुझे यह लिखने के लिए कहा है कि यह आश्चर्य चकित कर देने वाला है कि बगैर पर्याप्त आर्थिक तथा अन्य व्यवस्थाओं का प्रबन्ध किए एक विश्वविद्यालय के लिए इतनी चर्चा की जा रही है। विश्वविद्यालय कहां स्थापित हो इससे प्रधानमंत्री का कोई सम्बन्ध नहीं, किंतु इसके लिए वे बहुत सतर्क हैं कि विश्वविद्यालय सही अर्थों में विश्वविद्यालय होना चाहिए। केवल विधान सभा में पास कर देने से विश्वविद्यालय की स्थापना नहीं हो जाती। धन व व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। ऐसा लगता है कि उन लोगों में से अधिकांश ने, जो मध्यभारत के लिए विश्वविद्यालय की मांग करते हैं, इस बात पर जरा भी विचार नहीं किया है कि विश्वविद्यालय कैसा होना चाहिए। विद्यमान विश्वविद्यालयों का स्तर गिरता जा रहा है और सारी व्यवस्था के परिमार्जन की जरूरत है। तीसरी श्रेणी के विश्वविद्यालय की स्थापना को न तो स्वीकार ही किया जा सकता है और न प्रोत्साहित ही। —बी. एन्. कौल

प्रधान प्राईवेट सेक्रेटरी प्राईम मिनिस्टर

विज्ञान औ
ग्रह-नक्षत्र

रूस, अमेरिका और दूसरे देशों में उनके सैन्य-संचालन के लिए खगोल (ग्रह-नक्षत्रों) का ज्ञान आवश्यक हो गया है। उन्हें आधुनिकतम साधनों से वैज्ञानिक बनाया जा रहा है-और उसमें ग्रह-तारों की सहायता की आवश्यकता अनुभूत होती है। तब भी पण्डितजी की यह समझ में नहीं आता कि—'ग्रह-तारे हममें क्यों रस लेते हैं?' तो इसमें किसकी समझ का दोष है? हमें विश्वास है कि ग्रह-तारों में विश्वास रख कर 'रस' लेने वाले रशियन्-अमेरिकन् आदि वैज्ञानिकों को पण्डितजी कभी 'अन्ध-विश्वासी' नहीं मानेंगे, जो लाखों रुपया खर्च कर अपनी आब्जर्वेटरी द्वारा ग्रह-तारों की गतिविधि के साथ अपने शासन को वैज्ञानिक-साधन सम्पन्न बनाए रखते हैं।

क्या ग्रह-तारे मानव को निर्बल बनाते हैं—

इन ग्रह तारों के आधार पर काम करने वालों के विषय में यदि पण्डितजी का यह आरोप कि 'यह विचार ही मानव और देश को निर्बल बनाता है,' तो भू-मध्यरेषा पर प्राप्त उष्ण किरणों की शक्ति से अणु-विघटन द्वारा निर्मित होने वाला प्रचण्ड विनाशास्त्र, जो आज उन राष्ट्रों की महती शक्ति का आधार बनता जा रहा है। क्या वह 'मानव और राष्ट्र की निर्बलता का प्रतीक बतलाया जा सकेगा? पण्डितजी को यह जरा भी समझ में नहीं आ पाए तो क्या कहना चाहिए !!

NO. D/S/3197

Prime Minister's Secretariat,
New Delhi,
21st March 1953.

Dear Sir,

In reply to your letter No. 576/9 Dated the 13th March 1953, Prime Minister has asked me to say that it is surprising that there is so much talk about a University without having made any adequate arrangements for its finances etc. Prime Minister is not concerned with the location of the University, but he is very much concerned that a University should, in fact, be a University, Passing of an act of legislature dose not really create a University. Men and money are required. Evidently most people who are demanding a University for Madhya Bharat have not given much thought to what a University should be. Our existing Universities have deteriorated and the whole system has got to be overhauled. To start a third-rate University is hardly to be approved of or encouraged.

Yours faithfully

Sd. (B. N. Kaul)
Principal Private Secretary
to the Prime Minister

भविष्य कथन का वैज्ञानिक-आधार—

शायद पंडितजी को भविष्य या फल कथन पर ही शंका है ! किन्तु पण्डितजी यह जानलें कि यह भविष्य या फल-कथन ग्रह गति-विधि के गणित पर आधारित परिणाम ही हैं। एक परिणाम है 'एटम्' तो दूसरा 'भावी-कथन' भी परिणाम ही है। एक परिणाम को वे प्रत्यक्ष देख सकते हैं, पर दूसरे परिणाम की सचाई जानने में उन्हें 'रस' नहीं, जबकि वह भी प्रत्यक्ष ही होता है। तो यही कहना होगा कि बिदेशी-विधान पर उन्हें आस्था है, भारतीय पर उपेक्षा ! गणित से निकलने वाले परिणाम का दूसरा नाम फल या भविष्य है, तब एक परिणाम को स्वीकार करके 'भावी' शब्द से भागने की जरूरत नहीं। उसे भी वे समझें-जानें-प्रयोग करें--और अनुसंधान का विषय बनावें, चूँकि उसका 'फल' तत्कालीन लाभप्रद होता है, इसलिए उसमें व्यवसाय ने स्थान पा लिया है; ब्लेक भी पनप गया है, किन्तु इससे उसकी वैज्ञानिकता में अन्तर नहीं आता।

पण्डितजी ने ज्योतिषी के विषय में यह धारणा बना ली प्रतीत होती है कि वह प्रारब्ध को पहिले से ही स्थिर हुआ मानकर चलता है, इसलिए वह भाग्य के निश्चित-भावी को भाषित कर देता है। परन्तु यहां भी पंडितजी बड़े भ्रम में हैं। ज्योतिःशास्त्र के विषय में अज्ञ-जनों में फैली हुई भ्रांति के शिकार हैं।

ज्योतिष का तथ्य—

वस्तुतः ज्योतिष शास्त्र मानव के उत्पन्न होने के वातावरण और निर्माण की स्थिति में उसे प्राप्त किरणों के तत्वों से उसके व्यक्तित्व के स्वरूप, सबलता, निर्बलता, निरोगता, सरोगता, कर्तृत्व क्षमता, अक्षमता, प्रगति, हीनता, का विश्लेषण करता है। जैसे शनि के प्रभाव-काल में उत्पन्न मानव में लोहतत्व पर्याप्त हो जाने के कारण वह साहसी, शक्ति सम्पन्न, सबल, सैन्य आदि के लिए सक्षम

मानव हो जाता है, अन्य तत्व अल्प रहने के कारण दबे रह जाते हैं। काश उसमें गुरु-शुक्र के तत्व पर्याप्त प्राप्त हो जावें तो वह बजाय सैनिक के बुद्धि-प्रधान आविष्कारक--साहसी, सैन्य-संचालक बन सकता है।

यदि शनि का प्रभाव उसके उत्पत्ति-काल में कम मिला (अर्थात् शरीर में लोह-भाग अल्प रहा) और भौम का प्रभाव बढ़ गया तो उसमें उसे सबल-रक्त प्राप्त होगा, और वह केल्शियम्-प्रभावित शक्ति-सम्पन्न बन जावेगा। केल्शियम् के प्रभाव में उसकी कौनसी स्नायु सबल होगी और उसे किस प्रकार कार्य करने को प्रेरित करेगी, यह निर्णय किया जा सकेगा, इसलिए प्रारब्ध के पूर्व निर्माण का प्रश्न ही कहां उठता है। केवल उसे प्रारब्ध निर्माण की कौनसी दिशा की ओर ले जायगा यह कल्पना करने का अवकाश रहता है।

डॉक्टर और ज्योतिषी—

एक डॉक्टर किसी विकार के पूर्व-चिन्ह के संक्षिप्त स्वरूप को देख कर भविष्य में होने वाली उसकी भीषण क्रिया का भविष्य सूचित करदे तो, क्या यह पूर्व निश्चित् भविष्य कहा जा सकेगा? ज्योतिषी इसी तरह मंगल-प्रभाव की कमी में उत्पन्न (केल्शियम् की कमी में जन्म ले लेने पर) आदमी को पांडु या एनिमिया के शिकार रहने की सूचना देवें तो वह पूर्व निश्चित प्रारब्ध की सूचना हो जाती है? यह तो विशुद्ध वैज्ञानिक चीज है। और ज्योतिषी वही बतलाता है, यह भिन्न बात है कि अधिकांश ज्योतिषी को उसके वैज्ञानिक रूप का (दृष्टि-कोण के अभाव के कारण) ज्ञान नहीं, समन्वय की समझ न हो (न होने के कारण ही जो भ्रम होते हैं वही पंडितजी को भी उलझाये हुए हैं) तो उस विषय की विशुद्ध वैज्ञानिकता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आ सकता। वह वैज्ञानिक तथ्यों और शरीर निर्माण के तत्वों के आधार पर ही भावी की सूचना करता है। भविष्य,-तात्विक-विश्लेषण पर आधारित है। जिसके चिन्ह वह निर्माण-काल के तत्वों को न्यूनाधिक लक्षित कर अनुभव करता है। ग्रह और तारागण का नाम उसकी अपनी तात्विक-परिभाषा के परिचायक हैं, और जिन तत्वों के प्रभाव-काल में जो जन्म लेता है, उसके अनुकल-प्रतिकल परिवर्तन का समय-समय पर जो प्रभाव हो सकता है, उनके अनुसार कार्य करने की क्षमता-अक्षमता, हानि-लाभ, जीवन-मरण की सूचना की जाती है।

तात्विक-विवेचन का एक उदाहरण।

कोई व्यक्ति पैदा होता है, तब समझिये कि उसके शरीर-निर्माण (कन्स्ट्रक्शन) के जो २ प्रकृति-प्रवत्त-तत्व आवश्यक होते हैं, और वे जिन ग्रह तारों के द्वारा वातावरण में रहकर उसे मिलते हैं, उनमें ज्योतिष शास्त्र की धारणा या सिद्धांत के अनुसार मंगल-ग्रह से केल्शियम प्राप्त होता है। यदि जन्म के समय वह मंगल-ग्रह सौर-मंडल में अस्त-प्रभावहीन हो गया है, और दूसरी ताकतें उसे प्रभावित कर रही होंगी (जैसे कि शीत-काल में ग्रीष्म का तापमान सुलभ नहीं—ग्रीष्म में शीत का सामंजस्य सरल नहीं) तो मंगल (केल्शियम) उसे उतनी मात्रा में निर्माण-काल में उपलब्ध नहीं हो सका, वह जितनी ताकत का होना चाहिए वह नहीं बन सका। अब आगे चलकर जब ऐसा ही वातावरण रहेगा—आयगा, तब उसको केल्शियम की कमी के कारण जो शारीरिक गठन और स्नायुओं में तथा रक्ताभिसरण आदि में निर्बलता होनी चाहिए, वह होगी ही। इसे ज्योतिषी अपनी परिभाषा में मंगल का विपरीत होना कहेगा, फलतः कम केल्शियम वाला प्राणी जिन परिस्थितियों में काम करता होगा उस तरह की निर्बलता का शिकार बन, वह कमजोरी अनुभव करेगा, यह शुद्ध वैज्ञानिक वस्तु है, इसे पंडितजी 'पूर्व निश्चित प्रारब्ध' इसलिये मान लेते हैं कि उन्हें इसकी वैज्ञानिकता की कल्पना नहीं हो सकी है, हो भी कैसे जब वे उसमें 'रस' नहीं लेते। किंतु इस स्पष्ट-प्रत्यक्ष वैज्ञानिक वस्तु में मान्यता रखने से हमारी 'शक्ति' के न रहने का कोई भी कारण नहीं होता। वस्तुतः पंडितजी के तर्क ज्योतिष के अज्ञान द्वारा फैली हुई भ्रांति पर आधारित हैं, काश, वे तर्क को तोलकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करें तो हमें सम्पूर्ण विश्वास है, उनका भ्रम निरसन हो जायगा, और ज्योतिष की वैज्ञानिकता, स्पष्टता, परिणाम-दर्शनी क्षमता की सचाई को स्वीकार करने को बाध्य होंगे।

विनोबा की विजय !

विनोबा के भूदान-आन्दोलन ने आरम्भ ही में तेलंगाना के प्रांत-साम्यवादियों में एक चमत्कार प्रेरित कर दिया

था, और आज ५ लाख एकड़ जमीन मिल जाने पर धीरे धीरे उन्होंने एक ऐसी क्रांति भावना भरदी है कि समाजवादी पक्ष तो उनका भक्त ही बन गया है, और पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे पुरुष को भी उन्होंने अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। शायद पंडितजी, साम्यवाद की प्रचण्ड लहर को रोकने के लिए विदेशी पद्धति पर से प्रकाश पाने की प्रतीक्षा में हों, वे गांधी और विनोबा की भारतीय विचार-शैली की सहज कल्पना भी नहीं कर सकते। किंतु पंडितजी को यह विवश होकर स्वीकार करना पड़ेगा कि यह भारत संस्कार-भूमि है। उसकी सम्पूर्ण-समस्याएं आध्यात्मिक भाव-भूमि के आधार पर ही सहज सुलझाई जा सकती हैं। उसी पद्धति से परिणाम कारक भी हो सकती हैं। गांधीजी के त्याग, तप, कष्ट-सहिष्णुता और आचरण ने सहज सारे देश को उनकी ओर आस्थावान बना दिया, और विजयी बना दिया। भगवान रामकृष्ण और बुद्ध को भी वैभव त्याग कर बाहर निकल जाने पर उनके चरित्र, आचरण और विचार पर सबको न्योछावर बना दिया, और वे अमर होगए। आज विनोबा भी उसी परम्परा और संस्कृति को लिए क्रांति करने निकल पड़े हैं। यह क्रांति भारत के सिवा किसी अन्य देश के लिए कल्पना का विषय भी नहीं हो सकती। 'भूदान' शब्द भी अपने में सर्वथा मौलिकता लिए हुए है। उसके तत्वों और परिणामों को आज का समाज शायद क्रांति कहे परन्तु वह वही क्रांति है जो हमारे देश के मंत्रदृष्टा-मुनियों ने, महर्षियों ने अनेक बार प्राप्त की है, और सफल बनाई है। आज अमेरिका रशिया से बेचैन है, और देश भी निद्रा में भय-भीत बन रहे हैं, परन्तु भारत के इस ऋषि ने भू-दान की आर्ष कल्पना के द्वारा जो मार्ग सुझाया है, वह कितना अर्थपूर्ण और कितना महान है! विनोबा की इस प्रवृत्ति से सारे देश की भूमि-समस्या का सात्विक हल मिल जाता है। विषमता की जड़ ही भूमि-समस्या है। जिसने सामाजिक और आर्थिक विषमता बढ़ा रखी है और यही विषमता दूसरे देशों के वादों का आश्रय लेने को विवश बना देती है, परन्तु विनोबाजी ने इस विषमता से छुटकारा दिलाने का क्रांतिकारी पथ-प्रदर्शित किया है। निःसंदेह जिस उलझन में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ विचारक उलझे रहते हैं, उसे एक वीतराग साधु ने विवेक और विचार पुरस्सर सुलझा कर नवीन प्रकाश दे दिया है। पंडित नेहरूजी अत्यन्त प्रभावित प्रतीत होते हैं, पर साथ ही वे यह भी समझने का कष्ट करें तो उचित होगा कि यह सब भारतीय परम्परा और संस्कृति द्वारा ही सुलभ हुआ है, जिसके प्रतीक साधु-विनोबा हैं, और गांधीजी भी थे। हमारा देश उसी परम्परा और पद्धति से शासन में ही नहीं–जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है। जिस विदेशी समाजवाद की सूझ को समेटे जयप्रकाश जनता में प्रकाश फैलाना चाहते हैं, उनको भी विनोबा की 'जय' करने को विवश होना पड़ा। वहीं से उन्हें प्रकाश मिलने लगा है। जिस रोज हमारी राजनीति भी गांधी-विनोबा जैसी विभूतियों से प्रभावित हो अपने राष्ट्र की परम्परा को लिए चलने लगेगी, उस रोज अवश्य हमारा देश कल्याण मार्ग का पथिक बन सुख-शांति समाधान सेवित करने लगेगा।

चर्चिल की कुटिल-नीति

कूटनीति के इतिहास में अंग्रेजों का इतिहास बड़ा महत्वपूर्ण है। विश्व उनके कूटनीतिक कारनामों से परिचित और प्रभावित है। किंतु चर्चिल उन अंग्रेजों में स्वतंत्र प्रकार के व्यक्ति हैं जिन्होंने कूटनीति के साथ कुटिलनीति में भी अपने को उच्च प्रमाणित किया है। भारत तो चर्चिल से पर्याप्त-परिचित है। हिन्दू-मुसलमान, हिन्दू-अछूत और अन्त में पाकिस्तान के विभाजन के रूप में हमारे समक्ष उनकी कुटिलनीति प्रत्यक्ष फलवती बनी हुई है। अब महासमर के बाद वे पुनः इग्लेंड के प्रधानामात्य होकर अपनी धूर्तता का जाल फैलाने लगे हैं। पाकिस्तान को अपनी रक्षा पंक्ति में प्रविष्ट करवाने का षड़यन्त्र उन का जारी है। उधर सूड़ान में मिश्र का पाकिस्तान भी बन जाता, किंतु जनरल नजीब ने उनकी चालों को चलने नहीं दिया, उधर जो ज़ुल्म किसी डिक्टेटर ने नहीं किए उनका प्रयोग कर केनिया के स्वातंत्र-संघर्ष को कुचलने का प्रयास जारी है। आफ्रिकाद्वीप में गोरों का सम्पूर्ण वर्चस्व स्थापित कर देने का प्रयत्न चल रहा है। मलान की मदद पर उनका हाथ हथियार का काम कर ही रहा है। ठेठ दक्षिण रोडेशिया से लेकर केनिया-युगाण्डा तक का प्रदेश इन गोरों का समवायतंत्र स्थापित कर लेना

चाहता है। काश्मीर को भारत से लेकर पाकिस्तान में मिला देने की जी जान से कोशिस चल रही है। चाहे मिश्र इन्हें महत्व न दे, ईरान ठुकराता जाए, पर चर्चिल साहब अपने खण्डित-साम्राज्य की सीमा स्वेज, सूड़ान, मलाया को मिलाकर बनाए रखने को उत्सुक बने हुए हैं। ईरान चाहे हाथ में न आए, पर उसकी आर्थिक स्थिति को कुचल कर दफना देने का प्रयास है ही। वह यह समझ रहे हैं कि यदि तीसरा महासमर हो ही गया तो रशिया का 'एटम' उसे समाप्त करने का विचार करेगा। उसके पूर्व वह अपने को 'तीसरे दर्जे की शक्ति' से ऊपर उठाकर बिस्तृत साम्राज्य का स्वामी सूचित कर लेना चाहते हैं। फिर चाहे वह अपना अन्त ही क्यों न हो जाने दे! पर अब चर्चिल की चालों को पहचाना जाने लगा है। आफ्रिका के काले गोरों की कुटिलता का कठोरता से संघर्ष कर सामना कर रहे हैं। ईरान चाहे अपने को बर्बाद बना ले, डा० मुसद्दिक को मनवा लेना मुश्किल है। उधर नजीबमिया भी स्वेज की सेना को सीधा रास्ता बतलाने पर तुलगए हैं, अवश्य ही पड़ोस के प्रपंचों को प्रत्यक्ष देखते हुए भी पाकिस्तान अपनी नाक कटवाकर दूसरों को अपशकुन करवाने का प्रयास कर रहा है, और काशमीर का भावी उलझा रहा है। एक ओर चर्चिल की चाल है, दूसरी ओर जफरुल्ला की जाल है। देखना है, इसमें भारत का भावी क्या बनता है? पर अवश्य ही पाकिस्तान में जफरुल्ला के जर्ये चर्चिली-चाल चलना सहज नहीं दीखता। पाकिस्तान की जनता जागृत बन रही है। जफरुल्ला स्वयं अपनी जाल में उलझ गए लगते हैं, पाकिस्तान की पार्लमेंट में विरोधी-पक्ष के नेता मिया इफ्तिखार ने जफरुल्ला पर खुला आरोप लगाया है कि वे प्रगतिकारक-पथ से पाकिस्तान को ऍंग्लो-अमेरिकन सत्ता के हाथ बेचने का प्रयास कर रहे हैं। शासक-दल के विषय में आम चर्चा वहां है कि पाकिस्तान को यदि अमेरिका के हाथ बेच [illegible] आवे तो उसे काशमीर मिल जाएगा। परन्तु उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि यदि भारत अमेरिका का कहना ही मानले तो काश्मीर तो क्या सारा पाकिस्तान उसे अमेरिका दिलवाने को उत्सुक बन सकेगा! मिया इफ्तिखार ने जफरुल्ला को 'पूर्व के जाति भ्रष्ट,' और 'मध्य पूर्व के लिए ब्रिटेन अमेरिका का एजेन्ट' घोषित किया, इस चख-चख से स्पष्ट है कि पाकिस्तान का नागरिक मि० चर्चिल और उनके हथियार जफरुल्ला को सही समझने लग गया है। वहां उनकी चाल गलती नहीं दीखती।

मास्को से सबक!

प्रायः अधिनायक तन्त्रों में वैयक्तिक महत्वाकांक्षाएं उत्थान के अवसर की ताक में रहा करती हैं। एक अधिनायक के बाद अनेक व्यक्ति या शक्ति ऊपर उठने की कामना कल से या बल से करती है। मास्को में जब मो० स्तालिन की बीमारी प्रकाश में आई, अनेक देशों ने यह सोचना आरम्भ कर दिया था कि वहां सत्ता के लिए संघर्ष होगा, परन्तु रूस की राजनीति में और चाहे जो हों, परन्तु विदित होता है कि देश भक्ति की भावना वहां व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से ऊपर उठी हुई है। यही कारण है कि स्तालिन के अवसान के २४ घन्टे के भीतर बिना नन-नुच किए चुपचाप शासनतन्त्र को निर्विवाद निर्मित कर दिया गया। अनेक बढ़े-बूढ़ों के रहते हुए एक युवक को नेता बनाकर रूस के आंतरिक-द्वन्द्व की गंध उड़ाने वालों को चुनोती दे दी। मालोन्कोव क्या हैं, और क्या नहीं। पर मोलोतोव, विशंस्की और बेरिया ने उनका नम्रता पूर्वक निर्विरोध नेतृत्व स्वीकार कर लिया! इससे रूसी-देश भक्ति की भावना को स्वीकार करना होगा। इनके विपरीत हमारी स्थिति यह है कि हमारे राष्ट्र को स्वाधीन बने कुल पांच वर्ष ही बीते हैं। हमारे सामने बाहरी और भीतरी अनेक गुत्थियां हैं, विषमताएं हैं। चाहिए तो यह था कि हम अपनी पार्टी-बाजी को आलोचना-प्रत्यालोचना को एक ओर रख, जब तक देश को सुसंगठित, सुरक्षित और सुव्यवस्थित न बनाले सामूहिक संगठित एकता के साथ देश को सर्व शक्ति सम्पन्न और निरापद बनाने में ही अपनी शक्ति लगाने पारस्परिक मत-भेदों को, विचारों को एक ओर रख राष्ट्रीय एकता और उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति की साधना में अपने को लगा देते, परन्तु इसके विपरीत हमारा प्रयत्न पार्टी-बंदियों द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा के लिए उसकी शक्ति को विश्रृंखलित बनाने की ओर हो रहा

है। आज सहयोग के बजाय समाजवादी–जन सत्ता-ग्रहण करने के लिए अपने सूत्र सामने रखते हैं। संघ के सारे प्रयत्न शासन को शिथिल बनाकर अपने हाथ में शक्ति लेने के लिए चल रहे हैं। कम्यूनिस्टों की कला भी इसी तरह काम कर रही है। मानों सत्ता हाथ में लेना ही देश भक्ति है। और सत्ता हाथ में आते ही ये देश को स्वर्ग बना देंगे और सुख का समीरण संचारित कर देंगें। वर्तमान शासन की आलोचना करके ये यही प्रचार करना चाहते हैं। इन्हें रूस से उसके तात्कालिक निर्विरोध परिवर्तन से सबक लेना चाहिए। जहां करोड़ों लोग रहते हैं। अपने विचार पक्ष दल भी वहां अवश्य होंगें, परन्तु कहीं कानों कान हम उनके विवादों की कल्पना नहीं कर पाते और अपने शासन को शिथिल बनाने की कोई प्रवृत्ति को पहचान नहीं पाते। एक दूसरे को बुरा कह- गिराने चढ़ाने की चालों की 'चूँ' भी नहीं सुन-समझ पाते, मतभेदों की हवा भी हम तक नहीं पहुंच पाती। संभव है यह रूसी राजनीति, या अधिनायक तंत्र का प्रभाव हो, फिर भी हम उस जनतंत्र को किस प्रकार सराहें जो अपने घर, अपने ही राष्ट्र को जर्जर बनाने का आयोजन कर रहा हो, जबकि रूस का अधिनायक तंत्र बड़ी से बड़ी टक्कर झेलकर विपत्तियों से ग्रस्त बनकर भी अपने राष्ट्र को सबल, सुव्यवस्थित, समुन्नत बना लेता है, और विश्व में अपना वर्चस्व स्थापित कर लेता है! हमें रूस के अधिनायक तंत्र के गुण-दोषों से मतलब नहीं, उसकी एक सूत्रता के साथ सर्वतोमुखी उन्नति ही हमारे समझने-सोचने की वस्तु है, जो रूसियों की देश भक्ति, राष्ट्रोन्नति की ज्वलंत परिचायक है। अधिनायक तंत्रों के अंत में क्रांति होने की संभावना सहज रहती है, सत्ता के लिए सब कुछ कुर्बान कर दिया जाता है, किंतु रूस ने अत्यंत शांति और विवाद के बिना जिस परिवर्तन को अनायास साध्य बना लिया, वह उनकी राष्ट्रीय उच्च भावना का प्रतीक अवश्य है, भारत की विभिन्नताएँ और कांग्रेस को 'कन्डेम्' करके अपनी कामनाएँ पूर्ण करने के प्रपंच को अपनी राष्ट्रीय-भावना की भव्यता के साथ तोले तो हमारा स्वरूप हमें ही लज्जित बना देने को पर्याप्त होगा। जहाँ हमारे सामने रोटी-रोजी का प्रश्न विषम रूप लिए खड़ा हो, वहां हम उसकी दुर्बलताओं को दलगत भावना के लिए उपयोगी बनाकर देश की दशा को उपेक्षित करें। यदि यही राजनीति है तो राजनीति का उपहास और क्या हो सकता है।

हमने पांच वर्ष में कितनी प्रथक्ताओं को पोषित बना लिया है। सुसंगठित राष्ट्र बनाने के विपरीत कितनी अधिक विश्रंखलताओं को विकसित बनाया है, हमारी देश भक्ति, शासन-हथियाने के 'स्वार्थ' पर सवार होकर विषमता विस्तृत करती हुई सरपट भागी चली जा रही है। सत्ता और स्वार्थ के सौदे पर राष्ट्रीयता खरीदी-बेंची जा रही है। क्या हम अपने राष्ट्र को उन्नत करने, ऊपर उठाने के लिए सामूहिक सहयोग के साथ अपने भेद-भावों, सत्ता-स्वार्थों को एक ओर रख कुछ वर्ष राह नहीं देख सकते? अपनी आंतरिक विषमताओं को वश में रखकर, विचार और मतभेदों को भुलाकर यदि संगठित-प्रयास पाने के लिए सन्नद्ध बन जाएं तो निःसंदेह कुछ वर्षों मे हम अपने इस महान् राष्ट्र को बहुत ऊंचाई पर ला रख सकते हैं, सुखी, सम्पन्न और शक्ति-शाली बना सकते हैं, हमें मास्को से सबक लेना चाहिए।

मा० मुंशीजी का 'पत्र-साहित्य।

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल मा. मुंशीजी ने साहित्य के विभिन्न अंगों पर बहुत कुछ लिखा है। वे गुजराती के प्रथम श्रेणी के कथा साहित्य सृष्टा हैं, उन्होंने इतिहास, नाटक और शिक्षा-तथा संस्कृति पर भी रचना की हैं, परंतु कथा-साहित्य में उन्होंने जो रस-निर्झरिणी प्रवाहित की हैं वह उनकी लेखनी का सुयश है। कुछ समय से वे राज्यपाल होने के बाद एक पत्र-मालिका 'कुल पति के पत्र' के रूप में लिख रहे हैं, इन पत्रों में राजनीति, इतिहास, जीवनी, मनोरंजन, साहित्य इतिहास, शिक्षा और कृषि आदि विषयों का बड़ी सुन्दरता से समावेश रहता है, पत्र बड़े ही रोचक, सामयिक और सरस होते हैं, गंभीर किंतु मनोरंजक चर्चा के कारण इन पत्रों ने एक आकर्षण बना रखा है, इन पत्रों में मुंशीजी के अनेक अनुभव संचित है, शिक्षा और विज्ञान पर बड़ी चुभती–चुटकियां होती हैं, मुंशीजी का दृष्टिकोण सांस्कृतिक रहता है। इस लिए वे भौतिक, वैभव और विज्ञान की वर्तमान उन्नति पर भी करारी चोट लगाने से नहीं चूकते, वे जब इलाहाबाद गए और आग्रा गए, वहां के छात्रों की अनुशासन हीनता

का अनुभव किया तो उन्हें गहरा दुःख हुआ, उन्होंने लिखा था कि लखनऊ में कालिदास-स्मृति मनाने के प्रसंग पर जब २-३ सौ व्यक्ति ही आए, तब एक सिनेमा नटी के रेलवे से पास होने का समाचार सुनकर हजारों की भीड़ स्टेशन पर पहुंच गई थी। उन्हें छात्रों की यह प्रवृत्ति और विनम्रता जन्य आत्म संयमन का अभाव देखकर गहरी वेदना हुई, उन्होंने पत्रों में बड़ी ही कुशलता से इसका चित्र अंकित किया है।

इसी प्रकार लखनऊ की विज्ञान परिषद की महत्ता को मानते हुए भी उसकी पश्चिमी·प्रवृत्ति की खुलकर आलोचना की है। स्वयं पंडित नेहरूजी के दृष्टिकोण के अभारतीय अंश पर भी कसकर ताने कशी की है, गत १५-१६ जनवरी को बनारस में जो संस्कृत की विश्व परिषद का द्वितीय अधिवेशन हुआ था, अपने पत्रों में मुंशीजी ने बड़ा सजीव वर्णन, भावना पुरस्सर किया है। वे बनारस के पंडितों द्वारा धारा-प्रवाह·संस्कृत सुनकर आनंद से अभिभूत हो गए, उन्होंने लिखा है—

"मौका बड़ा दिलचस्प था; शुद्ध संस्कृत धड़ल्ले के साथ बोली जा रही थी, और लगभग सात हजार नरनारी उसका रसास्वादन कर रहे थे— यह एक ऐसी बात है जो केवल बनारस में ही संभव है। साथ ही यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता हो तो यह इस बात का प्रमाण है कि संस्कृत एक मृत तथा गई गुजरी भाषा नहीं है।"

इस अधिवेशन का उद्घाटन राष्ट्रपति ने किया था, भाषण क्या था? वह स्वाधीन भारत का अभियोग ही था, और वह न्याय·संगत भी था। राष्ट्रपति ने कहा था—

"वर्तमान समय की उपेक्षा और उपहास के उपरान्त भी संस्कृत और उसके पंडित जीवित हैं। यह केवल इसलिए सम्भव हो सका कि उन पंडितों ने कभी लक्ष्मी का दासत्व स्वीकार नहीं किया। सहस्त्रों वर्ष पूर्व उनके पूर्वगामियों ने सरस्वती के पुजारियों को प्रलोभन से ऊपर उठने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने कहा था कि बुद्धिमानों को यश, अथवा अपयश दीर्घकालीन कष्टमय जीवन अथवा आसन्न-मृत्यु के भय की चिन्ता किये बिना सन्मार्ग पर आरूढ़ रहना चाहिए। यही कारण है कि हमारे पंडितों ने नानाविध कठिनाइयों, अर्थकष्टों और उपेक्षाओं का सामना करके भी संस्कृत को जीवित रखा है और उसके भंडार को समृद्ध किया है।"

इसी प्रसंग पर एक बड़ी ही महत्वपूर्ण घटना घटित हुई, जिसे आज के जमाने की नई रोशनी रखने वाला शायद पसंद तो क्या करे, वह इसे ढोंग, पुराना पंथी कह कर नाक भौं भी सिकोड़े! बात यह थी कि राष्ट्रपति ने पंडितों की चरण पूजा और भेंट अर्पण की थी। हम अनुमान करते हैं कि जब यह बात

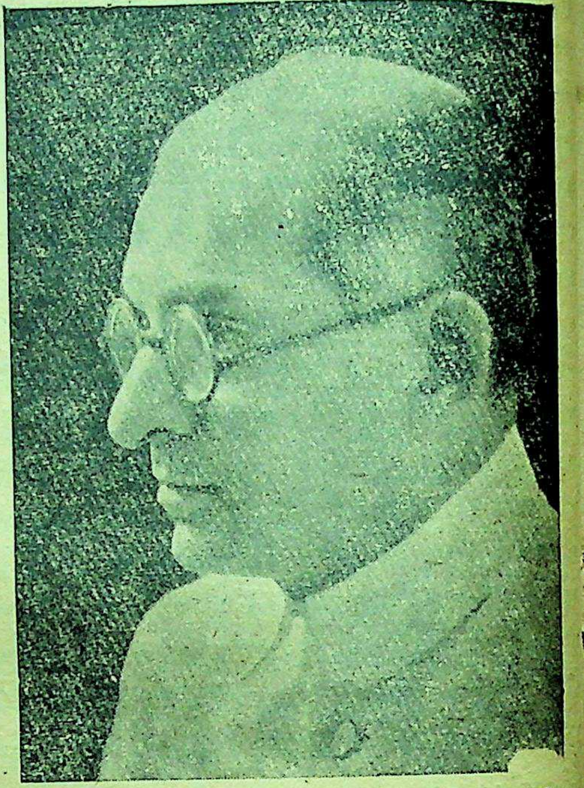

हमारे पंडित नेहरूजी के कानों तक पहुँची होगी त अवश्य उन्हें बहुत बुरा लगा होगा, सहसा उनके मुंह से निकल गया होगा कि— 'चौपट' कर दिया! परंतु मा मुंशीजी के शब्दों में इस घटना का वर्णन और आलोचना भी सुन लीजिए--

"अन्त में राष्ट्रपति न लगभग १२० सुविख्यात पंडितों को प्राचीन परिपाटी से सम्मानित किया। उन्होंने प्रत्येक पंडित के चरण पखारे तथा उन्हें पुष्पमालाएं पहनाईं। पंडितों ने उन्हें आशीर्वाद दिया, और उनकी भेंट स्वीकार की। उन्होंने अनुभव किया कि स्वतंत्र भारत वही भारत है जिसके मधुर स्वप्न वे देखा करते थे।

"नई रोशनी के कुछ लोग, जो अपने आपको "प्रगतिशील" बताते हैं, इस प्रकार के लोगों का तिरस्कार करते हैं। हमारे ग्रेजुएट, जिनमें इन पंडितों के विद्यानुराग का दशमांश भी नहीं है कभी-कभी उनसे दशगुना वेतन पाते हैं; यही नहीं कुछ मामलों में तो इसके अतिरिक्त उन्हें पेन्शन तथा अन्य सुविधाएं भी मिली होती हैं। परन्तु इन पंडितों की तुलना में आखिर वे कहां ठहरते हैं? ये अडिग विश्वासी लोग हैं; इनके लिए पांडित्य ध कमाने का साधन नहीं है, अपितु ईश्वर का एक रूप जिसकी विनम्र अर्चना होना आवश्यक है तथा य आवश्यक हो तो यह अर्चना आत्मप्रेरित निर्धनता के म की जानी चाहिए।"

के लिये स्थापन होने वाली संस्थाओं की व्यवस्था वर्तमान युग के नियमानुसार स्थानिक कमेटी, व्यवस्था कमेटी, जनरल कमेटी आदि द्वारा होती है। ऐसी संस्था के सिर पर द्रव्य-व्यय की बहुत बडी जवाबदारी होने से प्रतिवर्ष की आय-व्यय के हिसाबों को, बाकायदा मान्य ऑडीटर से ऑडिट करवाकर और जनरल कमेटी से बहाली लेकर, मेनेजिंग कमेटी द्वारा प्रकाशित करना, अनिवार्य हो जाता है।

ऐसी संस्थाएं प्रायः किसी शिक्षा प्रेमी साधु या गृहस्थों की प्रेरणा और उनकी ऊँची भावनाओं से स्थापित होती हैं। ऐसी संस्थाओं को यदि उसके प्रेरक और स्थापक की सेवा का लाभ निःस्वार्थवृत्ति पूर्वक मिल जाता है, तो वह संस्था 'सोने में सोहागा' बन जाती है। क्योंकि जिन उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं को लेकर, जिनकी प्रेरणाओं से ऐसी संस्थाएं स्थापित होती हैं, वे स्वयं संस्था के पीछे रही हुई भावना को सफल करने में जितनी दिलचस्पी, प्रेम और महत्व रख सकते हैं, वैसा दूसरे नहीं रख सकते। ऐसी संस्थाओं को शासन भी प्रसन्नतापूर्वक सहायता करता है और करनी ही चाहिये।

इस प्रकार अनेक भव्य उद्देश्यों, भावनाओं और तरीकों से प्रचुर संख्या में सामाजिक शिक्षण संस्थायें स्थापन हुई हैं।

२—शिक्षण के हेतु की सफलता !

अब यह बात प्रसिद्ध और सर्वमान्य हो चुकी है कि शासकीय शिक्षण संस्थाओं की अपेक्षा, ऐसी सामाजिक शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा का हेतु अधिक सफल होता है। इसके कई कारण हैं। (१) ऐसी संस्थायें किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियों की मनोभावना के विशेष उद्देश्य को लेकर स्थापित होती हैं और इसका संचालन, केवल मशीन की तरह नहीं, किन्तु आवश्यकतानुसार परिवर्तन पूर्वक होता रहता है। (२) इसमें अध्यापकों की पसन्दगी खास विचारपूर्वक की जाती है। (३) ऐसी संस्थाओं में प्रायः छात्रालय अवश्य होते हैं। क्योंकि चरित्र-निर्माण के कार्य में छात्रालयों का रखना आवश्यकीय हो जाता है। (४) ऐसी संस्थाओं की व्यवस्था में प्रायः बाधक तत्त्व कम उपस्थित होते हैं। (५) ऐसी संस्थाओं का दैनिक कार्य-क्रम और अन्य वातावरण ऐसा उत्पन्न किया जाता है जिससे शिक्षण और चरित्र निर्माण का हेतु सफल होने में बल मिले। ऐसी संस्थाओं की आर्थिक स्थिति प्रायः कमजोर होने के कारण जैसे व्यय मितव्ययिता से किया जाता है, वैसे गरीब और मध्यम स्थिति के लोगों को जितना हो सकता है उतना विद्यादान देने में बहुत कुछ रियायत दी जाती है, फलतः शिक्षण महंगा भी नहीं पड़ता।

भारतवर्ष में कहा जाता है कि जुदे-जुदे राज्यों में शासकीय संस्थाओं की अपेक्षा ऐसी संस्थायें अधिक हैं। मध्यभारत में ऐसी संस्थाओं की संख्या बहुत कम है। परन्तु अब शासन का ध्यान उस तरफ गया है और ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहित भी किया जाता है।

३—अशासकीय संस्थाओं की आर्थिक स्थिति

समाज के दान पर आधार रखकर चलने वाली संस्थायें प्रायः आर्थिक कठिनाइयों का सामना अवश्य करती ही रहती हैं! संस्था छोटी हो चाहे बड़ी, प्रायः इसका सभी को अनुभव हो रहा है, ऐसा मेरा मानना है। ५० वर्ष से भारत की पैदल यात्रा करते हुवे, शिक्षण क्षेत्र के एक विद्यार्थी की हैसियत से प्रायः सब जगह संस्थाओं को देखने का तथा उनकी बाह्य और आंतरिक व्यवस्थाओं को समझने का प्रयत्न करता रहता हूँ। इस सारे अनुभव का निष्कर्ष अगर कहूँ तो यह है:—

जिस संस्था के लिये किसी व्यक्ति या व्यक्तियों ने लाखों या करोड़ों रुपये अलग रखे हों और उसके ब्याज में से संस्था चलाई जाती हो ऐसी, अथवा दयालबाग की तरह एक व्यापारिक दृष्टि से व्यापार द्वारा लाखों रुपये पैदा करना और उसमें से संस्था चलाना, ऐसी संस्थाओं को छोड़कर, जो संस्थायें

केवल समाज के चन्दे पर चलाई जाती हैं, उन संस्थाओं को आर्थिक कठिनाइयों का सामना अवश्य करना पड़ता है। सामान्य संस्थाओं की बात तो दूर रही, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और विश्वभारती जैसी महान संस्थाओं का वार्षिक घाटा भी किसी दानी श्रीमन्त द्वारा या जनता के द्वारा पूरा किया जाता है। महात्मा गांधीजी का अहमदाबाद का आश्रम, भावनगर का दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन ऐसी २ कई प्रसिद्ध संस्थायें बिजली की चमत्कार की तरह से अस्त हो गई। अभी भी कई ऐसी बड़ी २ संस्थाएं हैं, जो आफ्रिका आदि देशों में अपने प्रतिनिधियों को भेजकर, सिनेमा, नाटकों के शो लेकर, एवं संस्था के लड़के लड़कियों को नचाकर पैसा एकत्रित कर लेती हैं और किसी प्रकार अपना वार्षिक व्यय पूरा करती हैं।

इसीलिये दानवृत्ति पर चलने वाली संस्थाओं की आय को मैं आकाशवृत्ति की आय कहता हूं। समय पर अनुकूल वर्षा गिरने पर, काश्तकार फूला नहीं समाता। किन्तु समय पर पानी नहीं आने से काश्तकार की जो दशा होती है, वही दशा संस्था और संचालकों की भी कभी-कभी होती है। मिल जाते हैं, तब हजारों लाखों मिलते हैं और नहीं आते हैं तो चार छः महीने तंगी भी उठानी पडती है। इसीलिये मैं इसको आकाशवृत्ति कहता हूँ, लेकिन संस्था के निःस्वार्थी संचालकों को न इससे निराशा होती है, न दुःख। ऐसी कठिनाइयों के साथ जो संस्थायें चलाई जाती हैं, मेरा नम्र मत है कि वे अधिक फलदायक भी होती हैं। क्योंकि संचालक रात दिन इसकी प्रगति के लिये प्रयत्नशील रहता है और उसकी भावना भी भरी रहती है कि, मैं अपनी जिन्दगी पर्यन्त प्रगति ही देखता रहूँ। मरने के बाद क्या है, "आप मरे सारी डूब गई दुनिया"

४—शासकीय सहायता!

ऐसी सामाजिक संस्थाओं को शासन की ओर से सहायता देने के नियम हमेशा से चले आते हैं। समयानुसार इनमें परिवर्तन अवश्य हुआ करता है।

किन्तु एक समय था, किसी भी सार्वजनिक कार्य में शासन की सहायता लेना बहुत कम लोग पसन्द करते थे। कारण यह था कि सहायता तो कम मिलती थी किन्तु दखलगिरी ज्यादा होती थी। समय में परिवर्तन हो गया। शासन की उदार नीति के कारण अथवा शासन की नीति अपने सिर पर से बोझा कम करने की होने के कारण वर्तमान शासन ने सहायता के जो उदार नियम बनाये हैं वे प्रशंसनीय हैं। शासन यदि नियमों के अनुसार ऐसे सामाजिक कार्यों में सहायता करे, तो शिक्षण का क्षेत्र बहुत अच्छा फलदायक हो सकता है। और इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि ऐसी अशासकीय संस्थाओं के द्वारा, शिक्षण प्रचार होने से शिक्षा का हेतु अधिक से अधिक सफल हो सकता है।

किन्तु एक बात अनुभव सिद्ध हो रही है कि नियम तो नियम होते हैं किन्तु नियमों को पालने का आधार मानव-स्वभाव पर रहा है। शासन व्यवस्था करने वाले भी मानव हैं। जिनके अधिकार में जो कार्य शासन ने रखा हो, उनकी उदारता या कृपणता, उनकी सरलता या कठोरता उनकी भला करने की मनोवृत्ति या बुरा करने की मनोवृत्ति इन बातों के ऊपर सारा दारमदार है और यही कारण है कि शासन की अपार उदार नीति होते हुए भी कभी-कभी बिना कारण संस्थाओं को कष्ट उठाना पड़ता है।

बड़े मनुष्य का बड़प्पन सत्ता से प्रतीत नहीं होता है किन्तु उनके हृदय की विशालता, गुणदृष्टि सहानुभूति और प्रेम से प्रकट होता है।

हमारी संस्था में एक एज्यूकेशन डायरेक्टर महोदय पधारे। उन्होंने संस्थाओं के छोटे-बड़े सभी कार्यों का खूब सूक्ष्मता पूर्वक निरीक्षण किया। मेरे पास बैठे और बात-बात पर उन्होंने संस्था की तारीफ की। मैंने कहा "………साहब, हमारी संस्था में कितनी खामियां हैं, कितनी अपूर्णताएँ हैं, हमारा कार्य कितना दोष पूर्ण है, यह तो आपने नहीं बताया। आप जैसे महान शिक्षण शास्त्री,

विद्वान, अनुभवी महानुभाव से तो मैं, यही आशा रखता हूं कि आप हमारे मार्ग दर्शक बनें, संस्था की न्यूनताएं बतावें, ताकि धीरे-धीरे उन खामियों को दूर करने में हम लोग समर्थ हो सकें।" उन्होंने कहा—"संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, समाज नहीं, शासन नहीं कि जिसमें न्यूनता न हो। मैं तो इस संस्था के पीछे आप लोगों की जो भावना है और उन भावनाओं को सफल बनाने का जो आप का प्रयत्न है, उसी को देखकर प्रसन्न होता हूँ। आदर्श भावना और आदर्श प्रयत्न न्यूनताओं को अपने आप दूर कर लेंगे।"

कहने का तात्पर्य यह है कि "दृष्टि वैसी सृष्टि।" जिस कार्य को हम जिस दृष्टि से देखेंगे, उसी प्रकार का दृश्य हमारे सामने आवेगा। 'दृष्टि से मेरा मतलब है मनोवृत्ति।' इसीलिए बड़े जवाबदार पदाधिकारियों में उदार दृष्टि की आवश्यकता है और जो वास्तव में बड़े होते हैं, वे प्रायः उदार दृष्टि वाले ही होते हैं। वे किसी का नुकसान करना तो चाहते ही नहीं।

खास करके इस समय में, जब कि सारे संसार में अन्धाधुन्धी चल रही है, ईर्ष्या, द्वेष का साम्राज्य सर्वत्र फैल रहा है, जरा-जरा से स्वार्थ के लिये मनुष्य कैसे भी अच्छे से अच्छे कार्य को नष्ट करने में नहीं हिचकता, उस अवस्था में जवाबदार व्यक्तियों को कितनी गम्भीर, मस्तिष्क का संतुलन और विचार शीलता रखने की आवश्यकता है, यह दिखलाने की आवश्यकता नहीं है क्या ? जवाबदार व्यक्ति के थोड़े से प्रमाद में भयंकर अन्याय और अनर्थ होने के उदाहरण आज संसार में नहीं मिल सकते हैं। हम किसी का भला न कर सकें, तो हमारा कम भाग्य किन्तु किसी निर्दोष को नुकसान पहुँचाने का पाप तो हम न करें। यह बात प्रत्येक समझदार व्यक्ति को अपने हृदय में ओत-प्रोत बना लेनी चाहिये। एक साधारण कहावत है 'सौ गुन्हेगार छूट जांय, इसकी हरकत नहीं, किन्तु एक बिना गुन्हेगार हमारे हाथ से दण्डित न हो।' यही सत्ताधारियों का शानपन है, यही उनकी बुद्धिमता है, यही उनका बड़प्पन है।

वर्तमान समय की शासन की सहायता में एक दिक्कत यह भी खड़ी हुई है कि सहायता प्रतिमास नहीं दी जाती। देश की वर्तमान परिस्थिति से कोई अज्ञात नहीं है, व्यापारियों का व्यापार जैसे ठप हुआ है, वैसे उनकी दान-वृत्ति भी संकुचित हो गई है। ऐसी अवस्था में तीन-तीन या छः छः महिनों तक सहायता की रकम का न मिलना, दान-वृत्ति पर आधार रखने वाली संस्थाओं को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता होगा—यह सब कोई समझ सकते हैं।

शासन को इस समय बहुत कुछ बातों का विचार करना है। आज सारे संसार में प्रत्येक प्रकार की महंगाई सीमा का उल्लंघन कर चुकी है। वह इतनी बढ़ गई है कि आज के ५०) पचास रुपये, पहिले के २०) रु० के बराबर भी नहीं रहे। परिणामतः वेतन, आदि सभी कार्यों का व्यय आशातीत बढ़ गया है। तीसरी बात यह है कि पाश्चात्य देशों का अनुकरण करते हुए बालकों के शारीरिक विकास के जो साधन पहिले अल्प व्यय, बल्कि बिना व्यय के उपलब्ध होते थे और उसमें अपूर्व विकास होता था, उसके बदले में अत्यन्त व्ययसाध्य साधन बन गये हैं। शासन भी ऐसे साधनों का उपयोग करने के लिये एक अथवा अन्य तरीके पर बाध्य करता है। चौथी बात यह है कि वर्तमान समय में ठोस काम की अपेक्षा कागजी काम इतना बढ़ गया है कि जिसके कारण समय और द्रव्य-व्यय भी काफी हो रहा है।

उपर्युक्त बातों की ओर यदि कोई संस्था उपेक्षा बुद्धि रखती है और अपनी पद्धति के अनुसार, शिक्षण प्रचार के लक्ष्य को पूरा करने में दत्तचित्त रहती है तो शासनाधिकारियों की अरुचि के पात्र भी बनने का भय निरन्तर रहता है। इसलिये इच्छा से किंवा अनिच्छा से, सबके साथ सबको यह कार्य करने पड़ते हैं। एक तरफ जनता का सहयोग कम

और व्यय अधिक ऐसी परिस्थिति में सामाजिक शिक्षण संस्थाओं का भविष्य मुझे तो भयानक मालूम होता है। इसलिये शासन को चाहिये कि उपर्युक्त सारी परिस्थितियों पर ध्यान देकर ५०% प्रतिशत सहायता करने के नियम में परिवर्तन कर, अधिक नहीं तो कम से कम ७५% प्रतिशत की सहायता करने का नियम बनाना चाहिये।

संस्थाएं, खास करके ऐसी सामाजिक शिक्षण संस्थाएं कि जो केवल परोपकारार्थ चलती हैं और ज्यादातर गरीब और मध्यम वर्ग के बालकों में शिक्षण प्रचार और चरित्र निर्माण के लिये ही चलाई जाती हैं, ऐसी संस्थाओं में अध्यापक और पुस्तकादि शिक्षण साधनों के अतिरिक्त अन्य व्यय भी काफी होता है कि जो अनिवार्य होता है। शासन यदि वेतन और एक आध नौकर का व्यय ही ५०% प्रतिशत देकर के चुप रह जाय, तो संस्था के संचालकों को दूसरे बहुत बड़े व्यय की व्यवस्था करने के लिये, भीख मांगने की आवश्यकता होती है, जो कि आज के समय में एक असाध्य सा प्रयोग रह गया है।

इसलिये मेरा नम्र निवेदन है कि शासन को अपनी अधिक उदार नीति बनाने की आवश्यकता है। यदि शासन ऐसी संस्थाओं द्वारा शिक्षण के हेतु सफल होने की आशा रखता है तो बेशक, जैसा कि मैं पहिले लिख चुका हूं कि जो संस्थाएं निजी हों, स्वार्थी हों, केवल पैसा कमाने के लिये चलाई जाती हों जिनका कोई विधान न हों ऐसी संस्थाओं को शासन की ओर से सहायता न मिले, तो कोई बुरी बात नहीं है। बल्कि मिलनी ही न चाहिये। किन्तु जो संस्थाएं सच्ची हैं, प्रामाणिक हैं, ठोस काम करने वाली हैं, परोपकारार्थ चलती हैं, जिनका विधान वर्तमान नियमानुसार निश्चित हो, ऐसी संस्थाओं को अधिक से अधिक सहायता देकर प्रगतिशील बनाने में पूरा सहयोग देना चाहिये।

आशा है शासन उपर्युक्त सभी परिस्थितियों का अवश्य विचार करेगा।

आश्चर्यजनक उन्नति—

सचित्र मासिक 'उषा' का दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ प्रचलन.

समस्त भारत में मूल्य केवल चार आना

जिसे पढ़ने के लिए कालेज, लायब्रेरियों तथा सार्वजनिक वाचनालयों में लोग एक-दूसरे पर झूम जाते हैं। जिसमें प्रकाशित सुरुचिपूर्ण और शिक्षाप्रद साहित्य की पाठक हृदय से सराहना करते हैं।

फिल्म-पत्रिकाओं तथा फिल्म व्यवसाय क्षेत्र में जिसने हलचल मचादी है।

विशेषता—सभी मासिक पत्रों में जिसका मूल्य बहुत कम है।

अपने परिवार में अच्छी शिक्षा व स्वस्थ वातावरण के निर्माण के लिये आप भी वार्षिक सदस्य बनकर इस सस्ते और सुन्दर साधन से लाभ उठाइये।

दो विशेषांकों सहित उषा का वार्षिक शुल्क ४) रु०

३० अप्रेल तक वार्षिक सदस्य बनने वालों को २०० पृष्ठों का शैवालिनी (उपन्यास) मुफ्त दिया जायगा।

नोट—नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

व्यवस्थापक—
भोज-प्रकाशन, धार.

मध्य-भारत में सबसे बड़ा साबुन का कारखाना।

कैलाश सोप फैक्टरी आगर रोड, उज्जैन

नहाने के साबुन से शरीर साफ, स्वच्छ रहता है किसी प्रकार की खुजलाहट या झुंझलाहट नहीं आती। नींद बेफिक्र आती है। हर तरह का आनन्द मिलता है।

कपड़ों की स्वच्छता के लिए
कैलाश सोप
कैलाश सोप ही सर्वोत्तम है
KAILASH BARS
कैलाश सोप
KAILASH SOAP
मालिक : दि विनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड — उज्जैन
निर्माता : दि कैलाश सोप फैक्टरी आगर रोड — उज्जैन

वस्त्र धोने का साबुन टिकाऊ, सस्ता और कपड़ों की मजबूती को कायम रखने वाला है घिसता कम है, अधिक टिकता है। परिश्रम कम लगता है।

[१] (ग्वालियर व इन्दौर को छोड़कर) मध्य-भारत के प्रमुख विक्रेता—

मेसर्स अनंत उपयोगी वस्तु भंडार, सती दरवाजा उज्जैन

[२] ग्वालियर के एजन्ट—

मेसर्स कृष्णमोहन चन्द्रमोहन, सराफा बाजार लश्कर

महत्वपूर्ण - सम्मतियाँ

श्री रविभाई रावल

"'विक्रम' का प्रत्येक अंक मेरे स्वाध्याय का होता है, हिन्दी भाषा के साथ मेरा परिचय प्रगाढ़ करने में सहायक भी होता है। श्रीनिवास जोशी की असली मालवी शैली में लिखी हुई हास्य कथाएं मालवा एवं गुजरात का धरातल एक ही है, यह सिद्ध करती है।"

श्री सूर्यकांतशास्त्री एम.ए. डी.लिट (जालंधर)

"भाषा विषय और शैली सभी मनोहर हैं। गेटअप सुन्दर है, और आपकी संपादन शैली आदर्श है।"

श्री श्यामसुंदर द्विवेदी

एम. ए. एल एल. बी. साहित्यरत्न

"विक्रम अपनी सांस्कृतिक गौरव-गरिमा के अनुरूप तथा यशस्वी परम्परा लिए है। मालवा और उज्जैन का भविष्य आपके कुशल हाथों में सुरक्षित है। 'विक्रम' उसका सजग प्रहरी है।"

भारती (नागपुर)

"विक्रम अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं प्रगतिशील विचारधारा के लिए पत्र-जगत में अपना विशेष स्थान रखता है। उसकी संपादकीय टिप्पणियों की स्पष्टता और विविधता उसकी अपनी चीज है।"

आज (बनारस)

"पत्र को हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों का सहयोग प्राप्त है। संपादकीय टिप्पणियां बहुत ही विचारपूर्ण और प्रगतिशील हैं। हिन्दी में ऐसे सुन्दर पत्रों का अभाव है।"

आजकल (दिल्ली)

"जिसने भी 'विक्रम' की संपादकीय टिप्पणियां पढ़ी हैं, वह इनकी स्पष्ट वादिता और विद्वत्ता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। लेखों का चयन एवं संपादन भी उत्तम है, जो पत्रिका को उच्च कोटि की पत्रिकाओं में अग्रणी स्थान दिला देते है।

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

२६-५-५३

विक्रम
चैत्र
२०१०

संचालक संपादक **सूर्यनारायण व्यास**

मध्य-भारत में सबसे बड़ा साबुन का कारखाना

कैलाश सोप फैक्टरी आगर रोड, उज्जैन

नहाने के साबुन से शरीर साफ, स्वच्छ रहता है। किसी प्रकार की खुजलाहट या झुंझलाहट नहीं आती। नींद बेफिक्र आती है। हर तरह का आनन्द मिलता है।

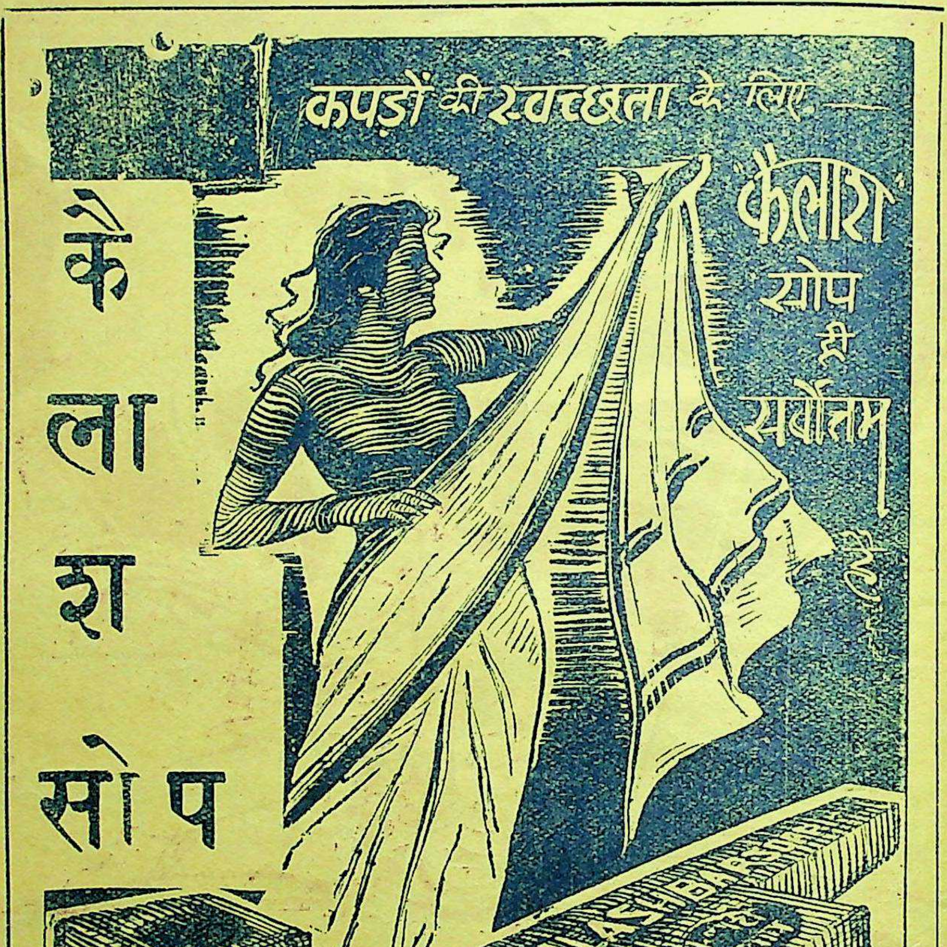
कैलाश सोप
कपड़ों की स्वच्छता के लिए —
कैलाश सोप ही सर्वोत्तम है
KAILASH BAR SOAP
कैलाश सोप
KAILASH SOAP
मालिक: दि विनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड — उज्जैन
निर्माता: दि कैलाश सोप फैक्टरी आगररोड — उज्जैन

वस्त्र धोने का साबुन टिकाऊ, सस्त और कपड़ों की मजबूती को कायम रखने वाला है घिसता कम है, अधि टिकता है। परिश्रम क लगता

[१] (ग्वालियर व इन्दौर को छोड़कर) मध्य-भारत के प्रमुख विक्रेता—

मेसर्स अनंत उपयोगी वस्तु भंडार, सती दरवाजा उज्जैन

[२] ग्वालियर के एजन्ट—

मेसर्स कृष्णमोहन चन्द्रमोहन, सराफा बाजार लश्कर

वार्षिक
६) रु.

एक अंक
॥=)

विक्रम

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

१ हुए सब मधुमय आज रसाल ... ... श्री बालकृष्ण शर्मा (धार)
२ व्यास-उवाच ... ... संपादकीय १-१६
३ कवि की मृत्यु ... ... श्री 'दिनकर' १७-
४ ईश्वर विषयक मतभेद ... ... स्वामी श्री विशुद्धानन्दजी १८-२१
५ मांडवगढ़ के श्रीमाल जसधीर की लिखाई हुई स्वर्णाक्षरी प्रति... श्री अगरचन्द नाहटा २२-२६
६ ग्रामगीत-लोकगीत-जनगीत ... ... श्री श्याम परमार एम. ए., एल. टी. ... २७-३०
७ कलाकार की साधना ... ... श्री अरुणचन्द्र गुहा ३१-३५
८ बाल्या की बेन (मालवा की नानी) ... श्री मदनमोहन व्यास ३६-३७
९ लेकोड़ा ... ... श्री के० ना० डांगे ३८-४०
१० उज्जयिनी ... ... श्री मानसिंह राही ४१-
११ शिकायत ... ... श्री प्रकाश चप्पल ... ...

Advertisement Rates.

Cover page 2nd Rs. 200 per Insertion.
" " 3rd Rs. 150 " "
" " 4th Rs. 300 " "
(In two colours.)
Ordinary full page Rs. 100 " "
" Half page Rs. 60 " "
" Quarter page Rs. 35 " "

विज्ञापन के दर.

टाईटिल द्वितीय पृष्ठ - २००) प्रतिमास
" तृतीय पृष्ठ - १५०) "
" चतुर्थ पृष्ठ - ३००) "
(दोरंग में)
साधारण पूरा पृष्ठ - १००) "
" आधा पृष्ठ - ६०) "
" चौथाई पृष्ठ - ३५) "

पत्र व्यवहार का पता— } " विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

“ हुए सब मधुमय आज रसाल ”

श्री. बालकृष्ण शर्मा (धार)

◆

आरहा। मधु-मय मन्थर मौन—
धरा पर चुपके चुपके कौन ?
खिले हैं कमल अमल हैं ताल,
हुए सब मधु-मय आज रसाल,
सजाता पीताम्बर से मौन
धरा को भावुक सा यह कौन ?

आरहा मधु मय-मन्थर मौन—
धरा पर चुपके चुपके कौन ?
चहक में भर मादक मनुहार—
विहग ने गाया सौ—सौ बार
प्रकृति में भरने अनुपम-रूप
आरहा दसों-दिशा से कौन—
धरा पर चुपके-चुपके मौन ?

कली के मन में अलि का गीत—
गीत में मधुर—मिलन—संगीत
'प्रेम है अमर' सिखाने रीत
आरहा रति-पति सा यह कौन ?
धरा पर मधु-मय-मन्थर मौन ?
पपीहा के प्रिय गीत समेट,
पिकी को करने आया भेंट
पुलक भर प्राणों में अनमोल,
लुटाता मधु—कोषों को कौन—
धरा पर चुपके चुपके मौन ?

मलय का रथ केशरिया गात,
रेशमी रातें, मधु—रस हाथ
मिलन मुसकाया जिसको देख—
विरह की पलकें बरसीं मौन,
आरहा दसों—दिशा से कौन
धरा पर मधु-मय-मन्थर मौन ?

मध्य-भारत एवं उत्तर प्रदेश के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

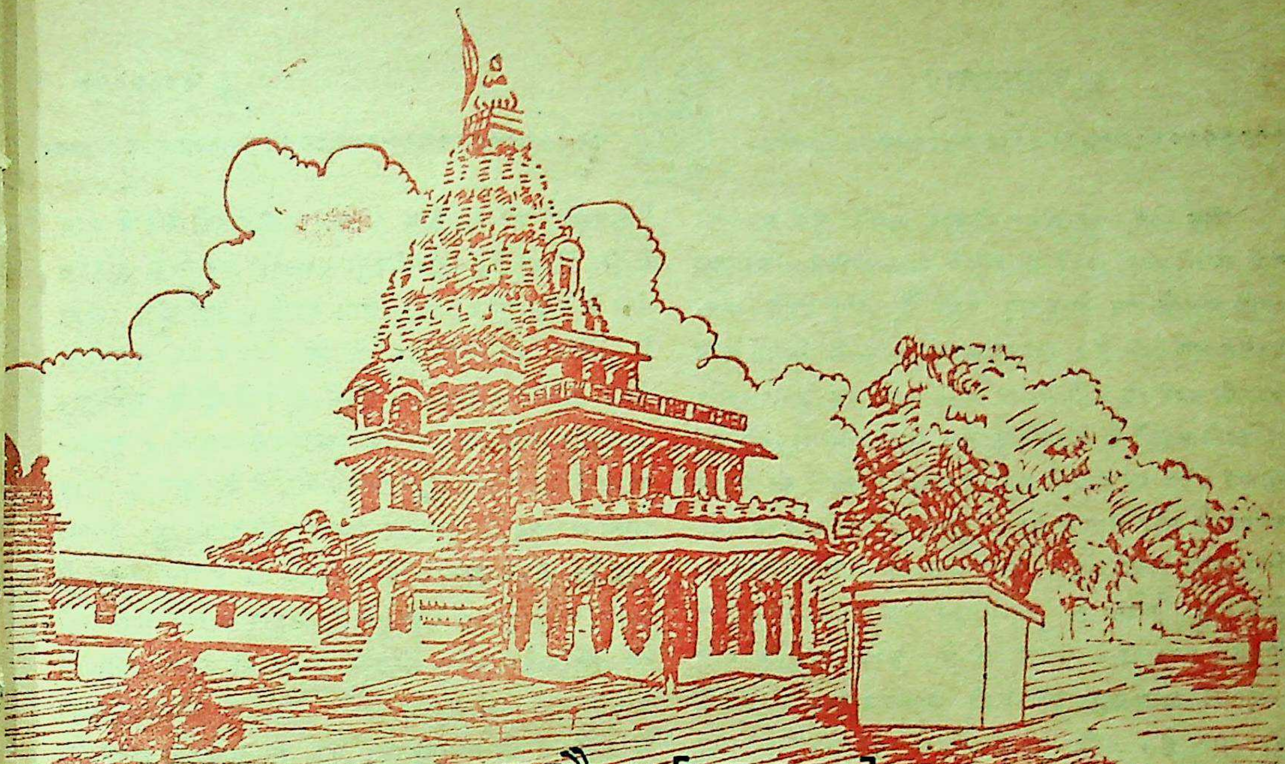

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ६ खंड २] चैत्र सं० २०१० वि०, अप्रेल सन् १९५३ [अंक ६ पूर्ण सं० ७१

व्यास उवाच

मालव-संस्कृति और भाषा का व्यापक प्रभाव—

मालव-गणों के शौर्य की कथा गाथाओं से पुराण महाभारत के अनेक स्थल भरे हुए हैं। महाभारत के कुरुक्षेत्र में, तथा अन्य समरों में मालव-गणों का महत्वपूर्ण योग रहा है। सिकन्दर के साथ संघर्ष करके मालवों ने अपनी कीर्ति अमर करली है। आज से ३ हजार वर्ष पूर्व मालव-गणों की महत्ता मान कर व्याकरण कर्ता पाणिनी ने उनके गण तंत्र की व्याख्या भी की है। ये मालव पंजाब में समर-काल में गए, अपने अधिकृत-प्रदेशों की रक्षा के लिए रहे, और कुछ वहीं बस गए। इसी प्रकार राजस्थान के कुछ प्रदेशों पर भी हैहय-मालव गणों ने अधिकार किया और वहां सूत्र संचालन के लिए रहे, इसी तरह उत्तर प्रदेश के बहुत बड़े भू-भाग में मालव गणों ने शासन किया। इस अवसर पर जो मालव-जन वहीं रहे, परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया और सांस्कृतिक आदान प्रदान किया, वे अपनी भाषा संस्कृति संस्कार और सभ्यता की छाप उन प्रदेशों में सुरक्षित कर गए, आज पंजाब में जिस जिंद-प्रदेश और सरहिंद-मालव भाग में 'मालवी-सिख' नाम धारी जन बसे हुए हैं, उनकी भाषा में यद्यपि सदियों के संस्कारों के कारण पंजाबीपन पनप गया है, परन्तु उनके संस्कारों में मालव-भूमि और मालवे के मध्यभाग में प्रचलित रीतियों का स्पष्ट दर्शन होता है। उनके लोक गीतों में वही भाव हैं, वही विषय हैं जो यहां के संस्कारों में अद्यावधि समवेत है। अनेक गीत ऐसे प्राप्त होते हैं, जिनका पंजाबी आवरण हटा दीजिए तो वे मूलतः मालवीय मिलते हैं। इस से स्पष्ट है कि पंजाब के सुदूर अंतरिम भाग में मालवी-सिख नाम से अभिहित लोग किसी काल में मालवे से गए हुए ही हैं।

लोक गीत, गृह-जीवन-संस्कार उसके मूल रूप को नहीं छोड़ते। यही उनके संस्कृति के स्रोत बनकर शतियों तक उनके असली रूप को बनाए रखते हैं, और उनके परिचायक बन जाते हैं। राजस्थान की भाषा में मिलने वाले मालवी शब्द भी उसी प्रकार शतियों-पूर्व पड़े प्रभाव और संस्कारों-संबंधों के परिचायक हैं। फिर राजस्थान तो इस मालव प्रदेश का पड़ोसी भाग है। वहाँ संस्कारों का प्रभाव पड़ता रहे और आदान प्रदान होता रहे तो आश्चर्य नहीं, किंतु सुदूर राजस्थान के जिन भागों में मालवी भाषा का मेल-जोड़ मिलता है, वह मालव गणों के अधिकृत-काल के दीर्घ सम्बन्धों के कारण ही है। ११वीं शती के राजशेखर ने आबू-आदि प्रदेशों को मालव-जनपद के रूप में ही माना है। माहिष्मती के हैहयों का अधिकार आबू और जयपुर के कर्कोट-नगर आदि पर था. यह महा भारत, मत्स्यपुराण से भी प्रकट है। इधर सुदूर मगध का भी मालव से सम्बन्ध दीर्घ-काल पर्यन्त रहा है, मौर्य, शुंग और गुप्त काल में मगध और अवंती अनेक शतियों पर्यन्त सम्बन्धित रहे हैं। मालव यौधेय-गणों का सम्बन्ध इतिहास विदित है। बुद्ध-काल में भी मालव और मगधों का गहरा सम्बन्ध रहा है, शासक-शासित के रूप में भी एक दूसरे के निकट रहे हैं। प्रद्योत, अशोक, चन्द्रगुप्त के सम्बन्धों को कौन नहीं जानता, स्वयं सेनापति पुष्यमित्र भी वहीं से आकर विदिशा का शासक रहा, सारा क्षेत्र बिहार भी उसके आधीन था ही, ऐसी स्थिति में सांस्कृतिक सम्बन्धों में निकटता आ जाना स्वाभाविक है। पर यह तो बहुत पुरानी बात हुई, दसवीं ११वीं शती में धारा के भोजराज का भी प्रभाव अधिकार देश के विभिन्न भागों पर रहा है। भोज के वंश के अनेक जनों ने बिहार के विभिन्न भागों पर अपना प्रभाव स्थापित किया है। आज भी जितने बिहार प्रदेश-स्थित परमार क्षत्रिय हैं, वे अपने को 'उज्जैनी राजपूत' ही मानते चले आ रहे हैं। महारानी लक्ष्मीबाई की तरह बिहार का परमवीर क्षत्रिय कुंवरसिंह जिसने विदेशी सत्ता के छक्के छुड़ा दिए थे, विद्रोही के रूप में जिसका स्वातंत्र्य-संघर्ष रोमांचित कर देने वाला हुआ है, वह भी उज्जैनी-राजपूत ही था, जिस प्रदेश का नाम भोजपुर कहा जाता है और जिस प्रदेश की भाषा 'भोजपुरी' के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका व्यापक क्षेत्र है, वह 'भोजपुर' भी महाराज भोज (धारा-नगरी के) के ना से ही अंकित है। यह भोजपुर-परगना बक्सर के अंतर्ग गंगा के दक्षिण-तट वर्ती भाग पर है। वहाँ मुंडा जा के 'चेरो' का वास था, उनपर विजय कर ११वीं १४वीं शति के अंदर धारा नगरी के परमारों ने अधिका प्राप्त कर लिया था। क्योंकि मध्ययुग में अवंती के माल परमारों का वर्चस्व बहुत अधिक था, वे देश भर में प्रभा शाली बने हुए थे. परमार वंश का इतिहास बहुत उज्व रहा है। उनके ज्ञान, शौर्य, औदार्य की कथा-गाथाओं शतशः रचनाएं भरी पड़ी हुई हैं, बिहार का भोजपुर उन् की स्मृति है। और भोजपुरी-भाषा भी उसी नाम सम्बन्धित है। भोजपुरी के लोक साहित्य और संस्कारों में, भाषा में भी मालवी का रूप स्पष्ट लक्षित होता है। आज उसमें जो अंतर हम देखते हैं, वह मालव से सम्बन्ध विच्छिन्न होने, तथा सुदूर वर्ती प्रदेश की इन भाषाओं के सम्पर्क-प्रभाव के कारण है। परंतु भोजपुर और भोजपुरी नाम अब तक भी भोजराजा के सम्बन्ध को लिए अपने मालव महत्व को चिर साथी बनाए हुए हैं। इस प्रकार मालवी भाषा और मालव-संस्कृति का प्रभाव देश के विशाल और विभिन्न भूभाग पर प्रतिष्ठित है।

शांति की विडम्बना—

जनसाधारण संघर्ष नहीं चाहता, वह शांति से रहने, शांतिमय वातावरण चाहने को उत्सुक रहता है। परंतु बड़ी-बड़ी ताकतें युद्ध को उपयोगी समझती हैं। इसलिए नहीं कि एक पूंजीवादी है, और दूसरा साम्यवादी, इसलिए भी नहीं कि यह गोरा है, और वह काला, परंतु विश्व में तनाव रहना उनके लिए एक आवश्यक विषय बन गया है। रूस अपने आपको स्वयं शांतिवादी कहता है। चीन भी शांति का प्रचार करता है, उनकी जनता शांति के लिए आयोजन करती रहती है। पर एक दूसरा राष्ट्र इन शांति चर्चाओं को भी केवल प्रचार मानकर उसमें युद्ध के अंकुर का अनुभव करता है, और अपनी शक्ति बढ़ाता जाता है। मार्शल स्टेलिन के अवसान के पश्चात् जब सोवियत-शासन ने कुछ शांति के लिए कदम उठाए तो उन्हें भी एक चाल समझा जा रहा है। यूरोप में अमेरिका के सैनिक-कमान

मि. गन्थर ने स्पष्ट ही कहा है कि यह सोवियत शांति की चर्चा पश्चिम के सैन्य-संगठन को समाप्त करने का कारण होजाएगी। यूरोप को अपने सैनिक संगठन की जितनी चिंता है, शांति की उतनी नहीं। यही हाल अमेरीका का भी बना हुआ है। वहां का डेली वर्कर और वालस्ट्रीट जर्नल नामक-पत्रों का मत है कि सोवियत शांति-प्रयत्न से अमेरिका की साधन-सम्पन्नता को धक्का लग जाएगा। इससे स्पष्ट है कि यूरोप और अमेरिका शांति के प्रयत्नों को भी पसंद नहीं करते। यही स्थिति फ्रांस की हो रही है। वे लोग कोरियाई-शांति अपने लिए अन्य खतरे की संभावना समझते हैं। उन्हें यह पसंद नहीं कि कोरिया में नर संहार कभी रुके। यह बड़ी ताकतों की मनोवृत्ति का चित्र है, इन चित्रों में स्वार्थ का प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। विभिन्न शक्तियां किसी न किसी स्वार्थ से खिचाव को बनाए रखना वांछनीय समझती हैं। वे नहीं चाहतीं कि जागतिक-शांति की स्थापना हो, उन्हें संघर्ष में सुख है और स्वार्थ है, यह तो हुई शासकों, बड़ी-बड़ी शक्तियों की बात। पर दुनियां भर में एक और वर्ग है जो शांति को पसंद नहीं करता, उसे सदैव-संघर्ष प्रिय है, वह दूसरों के घर जलाने पर अपने शरीर की शीत मिटाने का आदी है, वह वर्ग व्यापारियों का है। व्यापारियों का लाभ दो दलों के, दो शासनों के संघर्ष में रहता है। जर्मन और अंग्रेजों की लड़ाई में उसने जी भर कर लाभ उठाया है, अभी विश्व के एक कोने में चलने वाले कोरियाई-संघर्ष में भी बाजार को चढ़ते देखा है और एक के दो बनाने का सु-अवसर साधा है, वह शांति की चर्चा को भी सुनना सह नहीं सकता। कोरियाई-संधि के समाचारों के आते ही बाजार गिरे हैं, शेअर्स उतर गये हैं। भला वह इस उतार को कैसे बर्दाश्त करे"? उसे तो आसमान से बातें करने वाले भावों से मतलब रहता है, जनता के बड़े वर्ग का नाश हो या शासन टकराते रहें। उसे चाहिए कि वातावरण में तनाव बना रहे, संघर्ष सुनाई देता रहे और उसका बाजार बढ़ता रहे। इसका लाभ वह उठाता रहे, वह शांति की चर्चा में जागतिक-आर्थिक संकट का संदेह करता है, बेकारी बढ़ जाने का अंदेशा अनुभव करता है, अर्थात् जमाने में पैसा बढ़ते रहने के लिए और बेकारी को रोकने के लिए सदा-सर्वकाल संघर्ष का वातावरण ही रहना आवश्यक है। मानों बेकारी और बेरोजगारी को रोकने का एकमात्र इलाज अशांति का बना रहना है। जहां यह विचार और वातावरण हो, वहां शांति का स्वर किसके कानों को सुनना पसंद पड़ेगा। तब शांति के लिए किए जाने वाले अनेक नाटक अंतर में अशांति को छुपाए हुए शांति की विडम्बना ही कर रहे हैं नहीं तो क्या?

निरुद्देश्य शिक्षा—

अंग्रेजों के शासन-काल में हमारी शिक्षा गुलाम बनाने के कारखाने की तरह समझी जाती थी, परंतु हमारे देश के स्वतंत्र होजाने के ५ वर्ष पूर्ण होजाने पर भी उसमें कोई सुधार नहीं हो पाया। शिक्षा कैसी चाहिए और उसका क्या स्वरूप हो इस विषय में हमारी कोई नीति नहीं मालूम देती, वर्तमान शिक्षा प्रणाली निरुद्देश्य परम्परा को वहन करती जा रही है, न तो उससे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है, न मस्तिष्क का विकास ही साध्य होता है। हमारी किसी एक विषय के विशेषज्ञ बनने की प्रवृत्ति भी उन्नायक नहीं है, व्यापक ज्ञान और व्यवहार के अभाव में विषय की विशेषज्ञता निरर्थक सिद्ध हो जाती है। प्रारंभ में शिक्षा में हमने ऐच्छिक विषय रख कर जिज्ञासु को स्वतंत्र ज्ञान-लाभ करने का मार्ग प्रशस्त बनाया था, परंतु यह प्रणाली भी संकीर्णता में सिमिट कर विकास में बाधक रह गई, शिक्षा में ज्ञान की दीप्ति मंद पड़ गई और विकास अवरुद्ध हो गया, फलतः उसमें व्यवसाय भावना ने प्रवेश कर शिक्षा को धंदे का माध्यम-मात्र बना दिया है। सामान्य-ज्ञान के अवसर पर ही छात्रों के सिर व्यवसाय सवार हो जाता है। परिणाम यह होता है कि वह सामान्य ज्ञान शून्य व्यवसायी बन कर ही जीवन में प्रवेश कर लेता है। उसे विकास का अवसर ही उपलब्ध नहीं होता। इस संकुचितावस्था से शिक्षा को निकालना होगा, सामान्य ज्ञान यदि केवल पाठ्य मात्र रहा तो भी उससे समस्या का हल नहीं होता, उसे तो जिज्ञासा की वृद्धि और ज्ञान के विकास का माध्यम बनाना चाहिए। स्वयं छात्र में ज्ञान की भूख या विकास की अभिरुचि जागृत करना ध्येय होना चाहिए। जब तक सामान्य-ज्ञान द्वारा छात्र विभिन्न समस्याओं से संघर्ष करने की प्रवृत्ति न करे, और विचार द्वारा उन्हें सुलझाने को प्रेरित न करे तब

तक उसके सामान्य-ज्ञान की सार्थकता नहीं। आज ज्ञान केन्द्रों में भी कोई एक दूसरे से तारतम्य या समन्वय नहीं दिखाई देता। प्राथमिक शिक्षा केन्द्रों से उच्च शिक्षा का कोई सम्बन्ध सीधा नहीं आता। ज्ञान का दीप तो पावर हाऊस के एक बटन दबाते ही सर्वत्र समान रूप से प्रकाशित हो जाना चाहिए। एक के प्रकाश से दूसरे को आलोक भी प्राप्त होना आवश्यक है। एक विशाल पावर हाऊस से चाहे किसी नगर के सभी दीपस्तम्भ प्रज्वलित दिखाई दे, राजपथ और गलियों तक आलोकित हो उठे, किंतु एक विश्व विद्यालय की प्रवृत्तियों का कॉलेज पर कोई परिणाम दिखाई नहीं देता। यह असंगति भी शिक्षा के विकास में बाधक है, इन में एक-सूत्रता और सुसंगतता लाना भी आवश्यक है, आज का छात्र पुस्तकी-बोझ से बोझिल इतना बन जाता है कि उसकी ज्ञान-गरिमा उस बोझ से दब कर पनप ही नहीं पाती, उसका मन विकसित ही नहीं हो पाता। और व्यवसाय के सिर पर सवार होते ही ज्ञान के आलोक को विकास का अवसर नहीं मिलता, सहसा वह मंद पड़ जाता है, ज्ञान की भूख, असमय ही मंदाग्नि की शिकार बन, उस की रुचि को रोक देती है, जब तक हम शिक्षा के क्षेत्र में यह स्वस्थता सुलभ नहीं कर लेते कि ज्ञान की रुचि जागृत रहे तब तक मानव का मनोविकास रुका रहेगा, ज्ञान दौर्बल्य इस देश में दूर नहीं होगा।

दयनीय-ज्ञान केन्द्र

आज देशके ज्ञान केन्द्रों की दशा अत्यन्त दयनीय बनी हुई है, न तो उचित शिक्षण का प्रबंध है, न छात्रों में संस्कार, या चरित्र का निर्माण होता है, इसके विपरीत शिक्षा का स्तर बहुत ही गिरा हुआ है, जितनी महँगी यह स्तर-हीन शिक्षा प्राप्त होती है, उतना ही महँगा जीवन बन जाता है, इस पर भी छात्रों में आत्म-निर्भरता की भावना नहीं आपाती। अपने देश-प्रदेश, राष्ट्र के विषय में कोई आत्माभिमान, देश या प्रदेशाभिमान जागृत नहीं होता, चरित्र का अधःपतन सहज होता जारहा है। शिक्षणालय विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के अड्डे बनते जारहे हैं और छात्रों के समय का अपव्यय होता है। जहां मास्टर मेहनत कर अधिक समय पढ़ाता है, वहां उसका स्तर बहुत नीचा रहता है, केवल कुछ लेक्चर देदेने वालों को उससे अधिक मूल्य मिलता है, और जो केवल 'प्रोफेस' करता है उसे उससे भी अधिक कीमत दी जाती है, जब कि जितनी ऊंची कही जानेवाली शिक्षा मिलती है, उस हाईस्कूल-कॉलेज व युनिवर्सिटी में ज्ञान का समय क्रमशः सीमित बनता जाता है, शायद वर्ष में आधे से भी कम महीने, किन्तु कीमत अत्यधिक, इस पर भी ज्ञान का भार बढ़ जाते हुए भी वास्तविक ज्ञान वहां ऊपर जाते-जाते शून्यवत् बनजाता है। उसमें भी व्यवहार का तो नितांत अभाव ही हो जाता है, क्रमशः चरित्र की गिरावट, संस्कार में हीनता, और उच्छृंखलता के साथ छात्र पार्टी बंदी के दल दल में फँसता जाता है। इस स्थिति का मुकाबला तभी किया जासकता है, जबकि ज्ञान केंद्रों का क्रम, व्यवस्था और ज्ञान की दिशा का संपूर्ण सुव्यवस्थित रूप से परिवर्तन कर दिया जावे। ज्ञान विज्ञान में नवीन और पुरातन के उचित और आवश्यक परिवर्तन किए बिना शिक्षा-सुधार संभव नहीं। शिक्षा क्षेत्रों का राजनीतिक अड्डे बनने से रोकना भी उतना ही आवश्यक है जितना उनके ज्ञान-संस्कार-चरित्र-सुधार का संमार्जन आवश्यक है। शिक्षा में अभिनवता का अभिनिवेश तो चाहिये ही, पर पुरातनता का प्रवेश भी परमावश्यक है, वर्तमान शिक्षा में भारतीयता उपेक्षित हो गई है फलतः संस्कार हीनता ने सवारी करली है। वर्तमान शिक्षण का उद्देश्य ज्ञान लाभ, आत्म विकास न होकर केवल जीवन के व्यवसाय का माध्यम होता जारहा है, उच्चशिक्षण तक पहुंचने के पूर्व छात्र को जीविका की चिंता चढ जाती है, विद्यालयों के ज्ञान-भार में भी स्तर की हीनता के कारण बौद्धिक विकास की अपेक्षा विकार का अवसर अधिक रहता है। यह समय की सीमितता के कारण अपव्यय तथा पार्टी प्रपंच की प्रेरणा के लिए सुविधा प्रदान करती है। इसमें चुनाव प्रथा के प्रविष्ट हो जाने के कारण पार्टियों को प्रोत्साहन मिलता है, और ज्ञान केन्द्र अखाड़ेबाजी के क्षेत्र बनते जा रहे हैं। जहां ज्ञान के नवीन सूत्र और परिमार्जन की परिवर्तन की आवश्यकता है, वहां शिक्षालयों से सभी प्रकार की निर्वाचन प्रथा को विनष्ट कर दिया जाना चाहिए, उसका स्वरूप सुधारा जा सकता है, जैसे ज्ञान में विशिष्ट (सीनियरों) को स्वाभाविक [illegible] से प्रथम स्थान मिलना चाहिए, योग्यता के लिहाज

से प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान मिले तो पार्टी का प्रश्न ही नहीं उठ सकेगा। इसी तरह विश्व विद्यालयों में फेकलटी, सिनेट से लेकर वाइस चांसलरों तक का चुनाव, योग्यता, सिनियारिटी के लिहाज से प्राथमिकता प्राप्त करता जावे तो यह पार्टीबंदी प्रविष्ट नहीं होगी।

शिक्षा में आत्म निर्भरता एवं सूत्र-बद्धता—

शिक्षण-संस्थाओं को आत्म निर्भर बना देने और एक दूसरे विषय-विभागों से सम्बन्धित कर देने की भी आवश्यकता है, इनका नवीन दृष्टिकोण से पुनर्गठन किया जाना चाहिए। जहां साहित्य और कला विभाग के विद्यालय में साहित्य-कला को प्राथमिकता और विशिष्ट स्थान रहे, वहां उसमें व्यावहारिकता और आत्म निर्भरता का उतना स्थान अवश्य रहे, जितनी उस संस्था के लिए आवश्यकता हो। जिस विद्यालय में जितने छात्रों-प्राध्यापकों की संख्या हो, उस अनुपात से वहां जमीन की व्यवस्था संलग्न रहना आवश्यक है, उस जमीन से उन छात्रों का पोषण साहित्य उपलब्ध हो और वहां का कृषि कार्य भी उन्हीं लोगों के द्वारा संपन्न किया जाए, जिससे उन्हे ज्ञान के साथ कृषि कार्य का व्यावहारिक ज्ञान लाभ तो होगा ही, देश की एक कठिन समस्या में भी सहयोग प्राप्त होगा, छात्रों में आत्म निर्भरता की भावना आएगी। साथ ही एक विषय के विद्यालय का दूसरे विषय के विद्यालय के साथ भी सम्बन्ध सूत्र-बद्धता बनी रहे, इसलिए साहित्य कला विभाग के साथ कृषि विद्यालय को कृषि कर्म के लिए, विज्ञान विद्यालय को कृषि कर्म के आवश्यक उपादानों के लिए और टेकनिकल विद्यालय को विद्यालय के उपयोग में आने वाली वस्तुओं के सहयोग के लिए संलग्न रहना चाहिए। इसी तरह प्रत्येक विद्यालय को एक दूसरे से सम्बन्धित रहने का अवसर प्राप्त होगा, और छुट्टियों में या अन्य विराम अवसरों में आत्म निर्भरता प्राप्त कर सके, अपने विषय-विशेष में निष्णात बनकर भी दूसरे विषयों का व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कर सकेंगे। अपना खाना, कपड़ा, फर्नीचर सभी वे अपने लिए, अपने विद्यालय के लिए पैदा कर सकेंगे, पराधीनता का पाठ उन्हें मिलेगा ही नहीं। अवश्य ही इस प्रकार के विद्यालयों को इतनी सुविधा की भूमि में ही प्रतिष्ठित करना होगा। जहां वे खेती से लेकर अपने समस्त आवश्यकता विभाग की पूर्ति कर सके। क्योंकि "ज्ञानं भारः क्रियां बिना" बिना क्रिया के ज्ञान भार स्वरूप ही हो जाता है। अवश्य ही वे विद्यालय जो बम्बई कलकत्ता जैसे नगरों में हैं, जिन्हें भूमि की सुविधा सरल नहीं, उन्हें औद्योगिक ज्ञान के व्यावहारिक शिक्षण का अवसर मिलेगा, और अपने अन्य विषयों में प्रवीणता प्राप्त कर सकेंगे। छात्रों के द्वारा जो श्रम लिया जाय उसका लाभ उनकी फीस या अन्य व्यय की पूर्ति के रूप में उन्हें मिल सकता है। ताकि उनका ज्ञान व्यय-साध्य महँगा न बने, बलिक श्रम साध्य सुलभ होजाए। इस प्रकार कोई छात्र केवल धन-हीनता के कारण ज्ञान-वंचित नहीं रह सकेगा। उसे श्रम पर विश्वास होगा, और वह उन्नति विकास और विशिष्टता प्राप्त कर सकेगा। इस रूप-रेखा के अनुकरण से विभिन्न विद्यालयों में जहा पारस्परिक सूत्रबद्धता होगी, वहां आत्म निर्भरता, श्रम शीलता, व्यावहारिकता भी प्राप्त होगी। पार्टी बंदी से मुक्ति मिलेगी, निर्धनता उनके लिए अभिशाप नहीं रहेगी। वे आत्म विश्वास और आत्म विकास के साथ योग्य नागरिकता प्राप्त कर सकेंगे। शिक्षा का ध्येय भी पूर्ण होगा, अवश्य ही सुविधाएँ देकर भी विद्यालयों को शासन-तंत्र से स्वतंत्रता देना आवश्यक होगा। इस प्रकार कुछ समय बाद सभी शिक्षा स्वतंत्र, आत्म निर्भर बन सकेगी, और सभी विषय के छात्र अपने-अपने विषयों की प्रवीणता प्राप्त करते हुए भी व्यावहारिक दीक्षा से संपन्न बन, आत्म निर्भरता अनुभव कर सकेंगे। हां, ज्ञान के स्वरूप में ऐसे तत्वों या प्रणालियों का अवश्य सम्मिश्रण करना पड़ेगा जिससे अधिक से अधिक समय छात्रों का अपने योग्य चुने हुए संस्कारी अध्यापकों से सुरुचिमय संपर्क रहे। चरित्र और संस्कारों का उनमें समावेश हो सके। इसके लिए शिक्षा प्रणालिका में उपादेय परिवर्तन आवश्यक है। उसमें भारतीयता का अभिनिवेश वांछनीय होगा।

विश्वविद्यालय उज्जैन में ही स्थापित होगा।

पिछले अंक में हमने उज्जैन के लिए म. भा. धारा सभा और शासन द्वारा विश्व विद्यालय के निर्णय और केन्द्र द्वारा उपस्थित बाधाओं की विस्तृत और स्पष्ट

आलोचना की थी, उसके साथ ही हमने प्रधान मंत्री श्री नेहरूजी के पत्र की प्रतिलिपि भी प्रकाशित की थी, जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट ही कह दिया है कि—'विश्वविद्यालय का स्थान कहाँ हो इससे उनको कोई मतलब नहीं'। इस के बाद केन्द्रीय शिक्षा मंत्री मा. मौलाना आजाद ने भी म. भा. के मुख्य मंत्रीजी को अपना मत स्पष्ट व्यक्त कर दिया है। वे विश्व विद्यालय के स्वरूप के विषय में आपत्ति रखते हैं, उन्हें विश्व विद्यालय कहाँ बने इससे कोई मतलब नहीं। प्रधानामात्य और शिक्षा-मंत्री के इन स्पष्टीकरणों से प्रभावित हो, म. भा. के मुख्य मंत्री ने धारा सभा के एक अल्पावधि प्रश्न के उत्तर में सदन को यह बतलाया कि—

"दिनांक १ अप्रेल १९५३ को केन्द्रीय शिक्षा मंत्री से वे म. भा. विश्व विद्यालय के प्रश्न के सम्बन्ध में मिले थे, केन्द्रीय शिक्षा मंत्री का मत है कि केन्द्रीय शासन ने जो विशेषज्ञ-समिति बनाई है, जब तक उसकी रिपोर्ट प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक मध्य भारत विश्व विद्यालय विधेयक पर आगे कार्यवाही की जाना मुनासिब नहीं है। विश्व विद्यालय के स्थान के सम्बन्ध में भी चर्चा हुई थी, इस पर केन्द्रीय शिक्षा मंत्री का मत है कि विश्व विद्यालय के स्थान निश्चित करने का अधिकार मध्य भारत शासन का है। केन्द्र इस विषय पर अपना कोई आगृह नहीं रखता है। यह अधिकार पूर्णतः मध्यभारत का है, तथा वह जहाँ चाहे विश्व विद्यालय का स्थान निर्धारित करे, केन्द्र का विशेषज्ञ समिति निर्माण करने का आशय केवल विश्व विद्यालय के लिए आदर्श ढाँचा तैयार करने का है।" इसी सिलसिले में मध्य भारत शासन ने पुनः यह अपना निश्चय दुहराया है कि वह उज्जैन में विश्व विद्यालय स्थापित करने के अपने निर्णय पर दृढ है।

हाल ही में प्रादेशिक कांग्रेस का अधिवेशन १८-१९ अप्रेल को उज्जैन में हुआ, उसने भी एक प्रस्ताव द्वारा म. भा. शासन के उक्त निर्णय को स्वीकृति की मुहर लगा दी है। अवश्य ही विरोधी-भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले एकाध सदस्य ने 'हिज मास्टर्स व्हाईस' बन अपना क्षीण स्वर उच्चारित किया था, परंतु केवल उन्हीं के मत को छोड़ सभी नें सबल समर्थन देकर उज्जैन के अधिकार को स्वीकार किया। फलतः अब न तो केन्द्र की रुकावट रहती है, न प्रदेश कांग्रेस के विषय में संदेह ही। शासन ने तो अपने निश्चय को पुनः पुनः उज्जैन में विश्व विद्यालय स्थापित करने के लिए दृढता से घोषित किया है। इस स्थिति का उज्जैन ने संतोष के साथ स्वागत किया है। अब देखना है कि निरंतर संघर्ष और विरोधी वातावरणों से जूझकर अंततः उज्जैन में विश्वविद्यालय स्थापित करने की दृढता को मध्य भारत शासन ने जिस प्रकार मान्य किया है, वह कब तक स्थापित होता है, और उसका स्वरूप क्या होता है?

प्रधान मंत्री श्री. नेहरूजी ने चाहे अभी आदर्श विश्वविद्यालय के स्वरूप की झलक नहीं दिखलाई है, विशेषज्ञों की समिति देखना है कौनसा अपना आदर्श उपस्थित करती है, तथापि यह स्पष्ट है कि प्रधान मंत्री किसी तीसरे वर्ग के विश्व-विद्यालय को तो पसंद नहीं करेंगे। हम चाहते हैं कि आपसी संघर्ष और विकार को एक तरफ रख हमारे मध्य भारतीय बुद्धिजीवी ऐसी कोई आदर्श योजना प्रस्तुत करने का प्रयास करते जो अपने प्रांत और संस्कृति की परम्परा के अनुकूल होती, और जिसमें प्राचीनता के उच्चादर्शों के साथ नवीनता के मौलिक-उपादेय तत्व भी सम्मीलित होते। हमारी योजना को आधार मान कर केन्द्र को तदनुसार ही अन्य विद्यापीठों के लिए परिवर्तन करने को प्रेरित होना पड़ता। परंतु खेद तो यह है कि विश्व विद्यालय को लेकर संघर्ष का माध्यम बना सस्ता आत्म प्रचार करने को प्रस्तुत बन जाने वालों से किसी ठोंस प्रवृत्ति की कैसे आशा की जावे?

वित्त-विभाग का स्पष्टी-करण भी!

विश्व-विद्यालय की उलझन का केन्द्र और प्रादेशिक-शासन द्वारा स्पष्टीकरण हो जाने के साथ ही मध्यभारत के वित्त-विभाग के जिस एक उत्तर से संदेह-जनक वातावरण बन गया था, उसका भी निराकरण हो गया है। श्री० वित्त मंत्री ने स्वीकार किया है कि भूतपूर्व ग्वालियर शासन के द्वारा स्वीकृत उज्जैन विश्व-विद्यालय के लिए १ करोड़ की धन-राशि सरकारी खजाने में सुरक्षित है। ठीक पांच वर्षों के ६० महिनों के बाद खजाने की गहन-गुफा में दबी हुई दौलत में से कठिनाई के साथ १ करोड़ की छोटी-सी रकम को खोजलाने और सुरक्षित बतलाने

के लिए वास्तव में वर्तमान वित्त-मंत्रीजी बधाई के अधिकारी हैं। विक्रम ने इस राशि के स्पष्टी-करण की गत अंक में मांग की थी, हमें इस रकम को अनेक उलझनों में रहकर सुरक्षित बनी रहने से संतोष मिला है।

अवश्य ही खजाने की लम्बी रकमें लाभ-प्रद व्यवसायों में लगादी जाती हैं, उसी तरह इस करोड़ की राशि का भी राज्य ने लाभ-जनक विनियोग किया होगा। इतने वर्षों में इस रकम का सूद भी प्राप्त हुआ होगा और वह भी कम नहीं होगा, हम वित्त-मंत्रीजी के साथ ही धारा-सभा के सदस्यों से भी अपील करते हैं कि वे इसका पता चलावेंगे और सूद सहित समस्त रकम को उज्जैन विश्व-विद्यालय के लिए स्वतंत्र सुरक्षित करवाएं ताकि भविष्य में यह रकम अपना आकार बढ़ाकर विश्व-विद्यालय के लिए अधिक उपयोगी बन सके। क्योंकि अब केन्द्र को कोई आपत्ति नहीं है। और हमारे राज्य का मत स्पष्ट, और निर्णय दृढ़ हो ही गया है। ऐसी स्थिति में १ करोड़ की निधि अपने सूद को लेकर एक उत्तम विश्व-विद्यालय के निर्माण में पर्याप्त सहायक सिद्ध होगी।

गोरों का काले पर प्रहार !

केनिया में जो विग्रह चल रहा है, उससे सारी दुनिया परिचित है, आफ्रिकनों और गोरों की संघर्ष परम्परा अब जोमोकेन्याता के केस के कारण बहुत प्रकाश में आ गई है। माऊ-माऊ आंदोलन की आड़ में केनिया के आफ्रिकनों की स्वतन्त्र भावना को गोरे प्रत्येक प्रकार से कुचलने को उतारू हो गए हैं, हाल ही में किकियू जाति के प्रधान लोकप्रिय नेता को दबा देने के लिए एक न्याय का नाटक खेला गया था, उसके अभिनय के अवसर पर अभियुक्त के प्रख्यात धारा शास्त्री मि० प्रिट को सब तरह तंग किया गया। भारतीय धारा शास्त्री दीवान चमनलाल भी इस केस के लिए केनिया गए थे, और अन्त में इस न्याय-नाटक का पटाक्षेप जोमो केन्याता को १० वर्ष की सजा देकर कर दिया गया। संभवतः गोरों ने इससे सुख की सांस ली होगी। परन्तु यह भ्रम उनको नहीं रहना चाहिए कि इस तरह वे केनियनों की आत्मा, या स्वाधीन बनने की भावना को अब दबा सकेंगे। बल्कि यह सनसनी-दार सजा केनिया के किकियुओं की चेतना को चौगुनी कर देने में सहायक होगी, और सफलता के समीप पहुंचा देगी। जोमो केन्याता यद्यपि पिछड़ी जाति के जाग्रत नेता हैं, वे विद्वान् भी हैं। अपने प्रदेश के प्रमुख जन-प्रिय नेता हैं। उन पर केनिया के गोरे-शासन ने माऊ-माऊ प्रवृत्ति से सम्बन्धित होने का आरोप लगाकर अपनी शक्ति भर कड़ी से कड़ी सजा ठोंक दी है, किन्तु भारत में भी महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि पर ऐसे ही मनमाने अभियोग लगाकर न्याय के नाटक को अभिनीत किया गया था, और निर्लज्जता-पूर्वक सजाएँ ठोंक दी गई थी, परन्तु उनके समक्ष शासन को शीघ्र ही सिर झुकाने को विवश होना पड़ा था। उसी तरह केनिया के गोरों को निकट भविष्य में जोमो केन्याता के कदमों में अपने कर बढ़ाने पड़ेंगे। एशिया की जाग्रति को अब कोई गोरी प्रजा अपने साम्राज्य विस्तार के लिए कुचल नहीं सकेगी। किसी का रंग ही उसके उत्थान में बाधक नहीं बन सकेगा। जोमो केन्याता भले ही काले हों, पर उनके अन्तर का प्रकाश गोरों की कालिमां से कहीं अधिक शुभ्र है। उस शुभ्रता के आलोक को कोई गोरा प्रसारित होने से नहीं रोक सकता। परन्तु गोरे अपने काले कृत्यों से केनिया में अपने को जिस तरह कलंकित बना रहे हैं, वह उनके अन्त का सूचक है। जोमो केन्याता की सजा इस बात की सूचक है कि अब उनका भविष्य उज्ज्वल है।

पाकिस्तान में परिवर्तन चक्र !

वास्तव में पाकिस्तान के लिए वह दुर्भाग्य का दिन था जिस रोज लियाकत अली के शासन ने सन से सम्पत्ति अर्जित कर, कोरिया की कठिनाई से लाभ लेकर अपने रुपये का मूल्य नहीं घटाया था, उसी रोज अपनी हेंकड़ी में उसने भावी आपत्ति को आमंत्रित कर लिया था, मगर मिया की जिद्द ने आज मुसीबत को मोल ले लिया। भारत ने पटसन की पैदावार बढा ली, और कोरिया में समर शिथिल हो गया। अब पाक का रुपया गिरने लगा, और उसकी कठिनाई बढने लगी, वह आर्थिक संकट में अंदर ही अंदर सिमिटने लगा, इधर प्रकृति ने उसे सहारा नहीं दिया, अन्न की आपत्ति ने उसे घेर लिया, उधर उसे आंतरिक संघर्ष का सामना करना पड़ा, पंजाबी और बंगाली भावना ने जोर पकड़ा, सिंध का असंतोष पुराना था

हो, वह खुर्रों की खराबी से बढ गया, पंजाब में अहमदिया आंदोलन ने अराजकता की हालत उत्पन्न कर दी, इस ओर प्रधान मंत्री नाजिमुद्दीन का मंत्री-मंडल मतभेदों में उलझा। स्वयं नाजिमुद्दीन ने बंगाली होते हुए भी उर्दू भाषा का पक्ष लिया, फलतः बंगाल में वे अप्रिय बन गए, इस स्थिति का लाभ लेकर पंजाब के मुमताज दौलताना और फिरोज खां नून ने बल पकड़ कर शासन को शिथिल करने का प्रयास किया, पठानों के प्रतिनिधि सरदार निश्तर और अब्दुल कयूम खान भी पीछे नहीं रहे। परंतु इसमें एंग्लो अमेरिकन कूट-नीति भी दाव खेलती रही है, मिया नाजिमुद्दीन अंग्रेजों के समर्थक कहे जाते थे, कहते हैं कि उनको उतारने में अमेरिकन कूट-नीति भी कम काम नहीं कर रही थी। फलतः कुछ समय के अंदर ही समस्त नाजिमुद्दीन मंत्री मण्डल को असफल और अयोग्य बनाकर पाक-प्रधान मण्डल से अकस्मात् उतार दिया गया। जिसे सारी दुनिया ने आश्चर्य के साथ सुना! इस पर विभिन्न प्रतिक्रियाएं हो रही हैं, कुछ ने समर्थन किया, कुछ ने अनुचित माना, स्वयं नाजिमुद्दीन खाँ ने इस तरह उनके निष्कासन को अवैधानिक बतलाया है, और वे निकाले जाने पर भी अपने को मंत्री मानते जा रहे हैं, परंतु इंग्लेंड के विधानज्ञों ने इस निष्कासन को उचित बतलाया है। यह उलझन चल रही है, पाक-प्रधान मंत्री नाजिमुद्दीन का निष्कासन तो हो ही गया, पर वे मुस्लिम लीग के प्रधान भी हैं, यह अधिकार लेकर वे अपना बल अनुभव कर रहे हैं, हालांकि इस पद से भी उन्हें उतार देने के पाक-प्रपंच प्रवृत्ति मय हैं, स्वयं नाजिमुद्दीन उनके साथ घटित घटना को अ-प्रजातांत्रिक बतलाते हैं, यह विवाद का विषय बन रहा है, तथापि पाक-प्रधान मण्डल का नव निर्वाचन तो हो ही गया। नए प्रधान, अमेरिका के पिछले राजदूत और अमेरिका के समर्थक, खेल-कूद के माहिर मिया मुहम्मद अली बन गए हैं, उन्होंने मंत्रि मण्डल बना लिया है। प्रजातंत्र के नियमानुसार जो सबल दल हो उसका नेता निमंत्रित किया जाता है, परंतु मुहम्मद अली का कोई दल है, या था भी, इसका हमें पता नहीं, वे किस आधार पर मंत्रि-मण्डल बनाने बढ़े, और कौन से तंत्र के अनुसार सहज प्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुए। यह प्रश्न वैधानिक विचार का हो जाता है। जो भी हो अब वे अमेरिका से आते ही पाक-प्रधान मंत्री के सिंहासन पर सहज समासीन हो गए हैं। नाजिमुद्दीन भी इसी तरह प्रधान बन बैठे थे, पाकिस्तान में अभी कोई विधि-नियम नहीं है। जब जैसी जरूरत होती है भारतीय संविधान की शकल की नकल उतार कर काम चला लिया जाता है। कह नहीं सकते नए पाक प्रधान की नई नीति क्या होगी? शासन की गति-विधि क्या होगी? उनका आरंभिक भाषण एक 'शिष्टाचार' का सूचक मात्र है। उसमें उन्होंने भारत के प्रधानामात्य से मिलने में खुशी जाहिर की है, परंतु जिस मंत्रि मण्डल में अधिकांश भारत विरोधी विचार रखने वाले सदस्य हों, उनका सहसा कोई 'रूस' के रुख की तरह परिवर्तन हो जाए, यह संभावना कम है। प्रधान मंत्रियों के मिलन पर भी जब काश्मीर जैसी उलझन भरी समस्या का सक्रिय समाधान सामने आए, तभी विश्वास का वातावरण बन सकता है। अभी तो पाकिस्तान में परिवर्तन-चक्र गतिमान है। केवल प्रधान मण्डल तक ही नहीं, अनेक परिवर्तनों की प्रवृत्ति चलती रहेगी और रेगिस्तानी ऊँट किस करवट बैठेगा यह देखना है। अवश्य ही अंतर-राष्ट्रीय स्थिति विषम बन रही है। पाकिस्तान के समक्ष अपनी रक्षा का प्रश्न महत्व रखता है। वह यदि सुरक्षित रहना चाहता है तो भारत के साथ मिलकर ही वह रह सकता है, और कोई गति नहीं है। "नान्यःपन्था विद्यते"। देखना है मिया मुहम्मद अली की नई नीति रीति कौनसा रंग पलटती है। अभी तो पाकिस्तान परिवर्तन के चक्कर में चढ गया है। तात्कालिक-परिवर्तन केवल एक 'अर्द्ध-सत्य' की तरह है। उसकी आंतरिक स्थिति, आर्थिक-विषमता, अन्न का भय इतना विषम है कि केवल इस परिवर्तन से उसका समाधान संभव नहीं दीखता। उसकी रक्षा के व्यय-भार ने खजाने को खतरे में डाल दिया है, अब कहीं अन्न की आयात के लिए उसे अपने को कहीं रहन न रख लेना पड़े! इस उदारता के लिए बाहर के कुछ राष्ट्र अपनी थैली का मुँह खोल देने की होड करने को तत्पर बने हुए हैं।

मध्य भारत का प्रशंसनीय-प्रयास!

मध्य भारत-शासन द्वारा आयुर्वेदिक औषधियों के प्रयोग का प्रयास आरंभ होरहा है, वह डाक्टरी दवाइयों

के मुकाबले में देशी दवाइयों को प्रोत्साहित करना चाहता है, यह वास्तव में प्रशंसनीय बात है। आज डॉक्टरी उपचार में केवल सर्जरी (शल्य चिकित्सा) ने ही प्रगति की है, उसके उपचार का अन्य भाग उतना सफल नहीं है, इसके सिवा वह सरल-सुलभ भी नहीं, जन साधारण के लिए वह बहुत मँहगा पड़ता है। सफलता भी संदिग्ध रहती है, प्रत्येक डॉक्टर रोगी-मानव को अपनी दवा के प्रयोग का विषय बनाता है, आयुर्वेदिक चिकित्सा डॉक्टरी के विपरीत अत्यंत सरल, और सस्ती होते हुए भी इस देश के जन-मानस की प्रकृति के अनुकूल होती है, डॉक्टरी में अब तक अनेक रोगों का कोई निश्चित उपचार नहीं है, वहाँ अनुमानित प्रयोग ही होते हैं, ब्लड-प्रेशर पर जो प्रभाव सर्पगंधा का होता है, वह अन्य अंग्रेजी दवाइयों का नहीं, सर्पगंधा से हमने देखा है कि वातोन्माद, रक्ताभिसरण में सहज लाभ होता है, अनेक अंग्रेजी दवा के आदी ब्लड-प्रेशर के रोगी हजारों रुपया बर्बाद करके भी विकार मुक्त नहीं हो पाते, वहाँ सस्ती सर्पगंधा सहज रोग को जड़ से खोदेती है। इसका प्रमाण स्वयं महात्मा गांधी थे. क्षय, केन्सर, डायबिटीज् (मधुमेह) मस्से (पाईल्स) के विकारों का नाम भयजनक बनगया है, साधारण विषम-ज्वर के दीर्घ कालीन हो जाने पर सहज डाक्टर उसे क्षय कहकर आदमी को प्रकंपित बनादेता है जबकि आयुर्वेद में विषम ज्वर के अनेक-भेद बतला कर उन्हें इतना भयावह नहीं समझा जाता, सरल सावधानी के उपचार से स्वस्थ बनाया जाता है, क्षय की भी अनेक भारतीय उपचार विधि है, जिनसे आश्चर्य जनक लाभ होता है। हमारे एक स्नेही वैद्यजी ने अनुभव किया है कि थर्ड-स्टेज के रोगी को बिच्छू के काट लेने मात्र से उसके शरीर के रोग कीटाणु नष्ट होगए, और वह रोगी स्वस्थ बनगया है, इसी तरह असाध्य समझे जाने वाले केन्सर (नासूर) को भी गाँव के कुछ भील लोग जंगली वनौषधियों से नष्ट करते देखे गये हैं। मधुमेह, संधिवात, रक्ताभिसरण के विकार में मधुमक्षिका के दंश से सहज लाभ होता है।

प्रायः स्मॉल पाक्स-माता के विकार से प्रति वर्ष हजारों लाखों-लोग, विशेष कर बालक पीड़ित होते हैं, और उचित-उपचार के अभाव में जान से हाथ धो बैठते हैं। हमारे स्नेही-प्रवीण वैद्यजी ने इसके लिए सहज-सरल उपचार खोज निकाला है, उसमें न तो रस्सी से गुदवाकर त्रास पाने की जरूरत है, न अन्य आशंका की. केवल सुपारी के फूल के साथ मुलेठी (ज्येष्टीमध) को मिलाकर देदेने से माता से मुक्ति मिल जाती है, इसी तरह मोग्रे की जड़ घिसकर चटा देने से भी यह विकार नहीं होता। इसी प्रकार हमारा अनुभव है कि जिस माता को बालक को दूध पिलाने के लिए स्तनों में दूध नहीं उतरता उसे केवल 'मृतवत्सा' के बीजोंको गले में पहना देने मात्र से दूध-धारा प्रवाह आनें लग जाता है। ऐसी हजारों सरल सस्ती और प्रामाणिक वनौषधियां और उपचार हैं, जिन्हे डॉक्टरी के मंहगें मोह को छोड़कर समाज में सरलता से प्रयुक्त करने का प्रयत्न होना चाहिए, म भा. सरकार का यह विचार बहुत ही श्लाघ्य है, हम चाहते हैं कि वे अनुभवी अनुसंधान प्रिय पंडित-उपचारकों का सहयोग प्राप्त कर इस दिशा में सफल प्रयोग करे, गांवों में भी ऐसे

श्रीमंत राजप्रमुख महाराजा सिंधिया
जिनको हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी ने अपना
चांसलर चुना है, इस सन्मान के लिए
अभिनन्दन !

अनेक वनोषधि वेत्त जन हैं, जिनके पास अद्भुत उपचार क्षमता है। भिल्ल जाति के अपढ़ जन भी इसमें कई प्रवीण हैं, उनका पता लगाकर उनसे जानकारी लेने का प्रयास किया जाना चाहिए, यह कार्य श्रम और व्यय साध्य है, इस दिशा में जामनगर के डॉ. प्राणजीवन मेहता ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। हमने प्रत्यक्ष उनकी प्रवृत्तियों को देखा है। मध्य भारत में योग्य वैद्यों का अभाव नहीं है, उनका सहयोग लेकर इस दिशा में सफलता प्राप्त की तो अवश्य ही विदेशी आश्रय से छुटकारा मिल सकता है और जनता बहुत सस्ता और सफल उपचार पाकर स्वास्थ्य सुख समाधान अनुभव करेगी।

बम्बई में मृत-मानव-समस्या का समाधान—

हमारी भारत सरकार भारतीय जनता की सुख-सुविधा पाने के लिए कितनी तन तोड कोशिश कर रही है, किसी से छुपा नहीं है। लाखों की लागत लगाकर उसने पंचवर्षीय योजना बनाई, अनेकों बांध बन रहे हैं, सैकडों कल-कारखाने खुल रहे हैं, अनेक नगण्य नाम पाने लगे हैं, कई कंगाल करोड़पति बनने का स्वप्न सेवित कर रहे हैं, जो साइकिल किराए पर लेकर नहीं चढ़ पाए थे, वे कीमती कार की कोमल कुशन पर आराम अनुभव कर रहे हैं, कानी कोडी की जिन्हें आमदनी नसीब नहीं होती थी, वे धारा सभा से लेकर पार्लमेण्ट तक प्रतिष्ठा पाने लगे हैं, और पचासों पूंजीपति उनको प्रणाम करने की प्रतीक्षा में रहते हैं। जिन्हें दो जून खाना मिलने की मुसीबत होती थी, उन्हें बड़ी बड़ी दावतें दी जाती हैं। सभा-समारंभों में सन्मान सुलभ होता है, जिनका चेहरा देखना पसंद नहीं करते थे, उनके लंबे चौडे चित्र पत्रों में प्रकाशित और प्रचारित होते हैं, कपड़ा जिन्हें पहनकर इज्जत बचाने को नसीब नहीं होता था, उनके घर मिल की गांठें गौरव बढ़ाती हैं, समाज में जिन्हें कोई स्थान नहीं मिल पाता था, वे नेतागिरी में नाम नुंचवाकर नामी गिरामी समझे जा रहे हैं, यह सब प्रगति नहीं तो क्या है? परंतु यह उन्नति, प्रगति, सुख-सुविधा जीवित मानव के लिए ही हुई है। अकाल पड़ने पर भी, सूखा होजाने पर भी खाद्य-मंत्री से लेकर प्रांत के सभी प्रधानों ने बार बार जोर देकर दुहराया है कि— भूख से किसी को मरने नहीं दिया जाएगा। यह जीवित जन के प्रति प्रेम रखने का उत्कट प्रमाण ही तो है। सारी दौड़-धूप, सारे प्रयत्न जीने के लिए हैं! जीवितजन की सुख सुविधा के लिए हैं, मर जाने पर कौन किसे पूंछता है? पुराणों में कथा किम्वदन्तियों में सुनते हैं कि मरजाने पर यमराज के यहां पूछ होती है, उसकी हैसियत के अनुसार व्यवस्था होती है, पर यह किसने देखा या सुना है? हमारे देश में शायद इस ओर बम्बई को छोड़कर और किसी ने इस पर भी विचार किया होगा? बम्बई स्वर्ग जो है, वैसे काश्मीर भी स्वर्ग समझा जाता है, किंतु वह प्राकृतिक है, भौतिक स्वर्ग तो बम्बई ही है। स्वर्ग में पहुंचने वाले प्राणियों को सुख पहुंचाना वहां की सरकार का काम होना भी चाहिए। जो लोग जीवित स्वर्ग में जाना चाहते हैं, रहना चाहते हैं, वहां बम्बई में उनके लिए किस सुविधा की कमी है? सुरा और सुंदरी सदैव तत्पर रहती आई है, पर कुछ समय से सरकार ने सुरा की सुरसरी का स्रोत सरल नहीं रहने दिया है, वह दुर्लभ बनती जा रही है। फिर भी अप्राप्य नहीं, सो सजीव स्वर्ग नगरी बम्बई में जो रहते हैं, उन्हें इस महंगाई में भी कोई मुसीबत नहीं, तब विदेह होकर पहुंचने वालों को भी उस सुरपुरी में क्यों मुसीबत पाना पड़े। इसलिए बम्बई सारे देश का पहिला स्वर्गीय नगर है, जहां सरकार ने पांच लाख नगद की लंबी लागत लगाकर बम्बई में मर कर प्रेत लोक पहुंचने वालों के लिए उनकी प्रतिष्ठा और आराम के अनुरूप बिजली से लिपट कर देह-विलय (काया-कल्प) करने की सुगम-सरल व्यवस्था सुलभ बनादी है। देश की महँगाई ने किसी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा, जीने की सुख-सामग्री तो ठीक, मुर्दों की व्यवस्था के लिए भी पैसे कम नहीं लगते। पर जब हमारी सरकारें महँगाई को मिटाने के लिए यत्न शील हो बन रही हैं तो क्रमशः भावों में उतार आएगा ही। जहां व्यापारी अनेक नियंत्रणों के लगा देने पर भी ब्लेक बाजारी से लाभ लूटने से नहीं चूकता, तब विवश होकर सरकार को वे धंदे अपने हाथ में लेने पड़ते हैं, राष्ट्रीयकरण करना पड़ता है, अभी घरू उद्योगों, छोटे धंदों पर सरकार की सलाह हाथ डालने की नहीं है, वर्ना क्या मजाल कि उनमें मँहगाई मुंह मार सके। पर जीवित-आदमियों के रोटी-रोजी के कारण अभी सरकार इस ओर

चुप बनी हुई है, हां, जब बाम्बे की सरकार ने बेचारे मर जाने वालों को भी मँहगाई का शिकार बनते देखा तो यह वह सह न सकी, और इस धंदे को मजबूर हो हाथ में लेना पड़ा। जिन साधनों को लेकर अब तक ५० रु० तक लोगों को एक मृत-मानव के लिए अंतिम-संस्कार सुलभ बनाने के हेतु व्यय करना पड़जाते हैं, उनके बजाय बिजली के साधन तैयार होजाने के कारण केवल १२ रु० तक ही मृत-मानव भस्मीभूत बन जाएगा। इस सरकारी सूझ और सुंदर सस्ती सुविधा को पाकर कौन मानव ऐसा होगा जो मर जाने को तैयार न बन जाए! और वे लोग जो मरने वालों से ममत्व रखकर भी, मँहगाई की मुश्किल के कारण रुपये के लिए रोते रहते हैं, वे भी इस सरकारी सुविधा को लेकर मौत को मन से अभिनंदन देने लगेंगे। हमारा विश्वास है बम्बई की सरकार के इस सत्प्रयत्न को सभी प्रेत प्रसन्नता से सराहेंगे, और जीवित जन भी आत्मोत्सर्ग के लिए उत्साहित बन जावेंगे। मुर्दे तो जी उठेंगे, और जिन्दा लोग जान निसार करने को आतुर हो उठेंगे। आचार्य अत्रे के 'नवयुग' के शोरे वाले का तो यह मत है कि– प्रेत-दहन के लिए काफी खर्च होता है इस चिंता से कितने ही लोग सुख से चिता से चिपटने को राजी नहीं होते थे, पर ५० रु० की जगह कुल १२ रु. में भला अब कौन मजे से मरने को राजी न होगा। यद्यपि आज देश में दुर्भाग्यवश जीवित-जन की कठिनाई का हल सरकार को सरल नहीं बन पा रहा है, पर बम्बई ने मृत मानव की मुसीबत को हल कर लिया है, यह कम महत्व की बात नहीं है। इस प्रगति के लिए सरकार की सभी बम्बई वासी सराहना करेंगे।

एक तेजस्वी राष्ट्रीय मुसलमान का अवसान–

बैरिस्टर आसफअली के उठ जाने से दिल्ली नगर, और मुस्लिम जाति से एक उच्च-देशभक्त-व्यक्ति का अभाव हो गया है, आसफअली तेजस्वी-धारा शास्त्री, ओजस्वी वक्ता, मनस्वी राजनीतिज्ञ और यशस्वी कूटनीतिज्ञ रहे हैं। उन्होंने जीवन का महत्व पूर्ण भाग भारत की सेवा और संघर्ष में व्यतीत किया है, वे जिन्दा दिल, प्रहसनप्रिय और उदारमना व्यक्ति थे, वे सर्व प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें स्वतंत्र भारत का अमेरिका में प्रथम राजदूत नियुक्त किया गया था, वे गवर्नर भी रहे और पुनः राजदूत बन कर स्विट्झरलैंड गए थे, वहीं उनका सहसा हृदय की गति बंद हो जाने से अवसान हो गया। दिल्ली ने अपना लोकप्रिय प्रतिभाशाली व्यक्ति और कांग्रेस ने अपना एकनिष्ट सेवक खो दिया है। वे जब अमेरिका से राजदूत होने के पश्चात् वापिस आए तो अपनी शान और उच्च रुचि के अनुकूल नए साजो सामान से सज्जित बढ़िया मोटर 'देकाडं' साथ लाए थे, भारत पहुँचने पर गवर्नर बन गये, उन्हें उस कार के उपयोग का अवसर नहीं आया। संयोग-वश वह मोटर-कार हमें उपलब्ध हो गई, अब भी वह हमारे पास है। इस तरह स्व. आसफअली का हमसे सम्बन्ध जुड गया। आसफअली सा० नहीं रहे, पर उनकी स्मृति हमारे निकट 'कार' के रूप में सुरक्षित है। वह हमें उनका सदैव स्मरण कराती रहती है।

महाकालेश्वर-मंदिर-विधेयक!

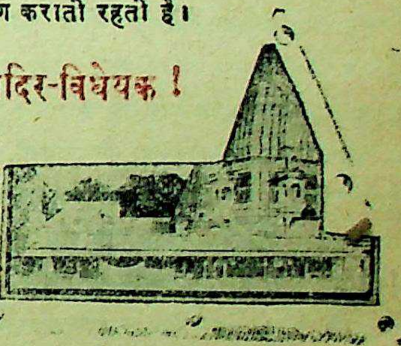

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के बाद धार्मिक-स्थानों तीर्थों-मंदिरों, मठों, विद्वानों और कलाकारों की स्थिति डगमगा गई थी, इधर शासन की धर्म निरपेक्ष नीति के प्रचार ने भी उसे प्रभावित किया, जिस तरह पुरी के प्रसिद्ध मंदिर जगन्नाथ की पूजा अर्चा में अव्यवस्था उत्पन्न हुई, नाथद्वारे के वैभव-संपन्न श्रीनाथ-मंदिर को मुश्किल का सामना करना पड़ा, उसी प्रकार अवंती के प्रसिद्ध, ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण धार्मिक-स्थान महाकालेश्वरजी के मंदिर को भी कठिनाई का सामना करना पड़ा। पत्रों में चर्चा चली, विक्रम ने भी शक्तिभर यत्न किया। इस पर म. भा. शासन ने एक 'बिल' बनाया, हाल ही में यह बिल म. भा. धारा सभा ने स्वीकार कर लिया है। भविष्य में इस विधान के अनुसार इस मंदिर की पूजा-अर्चा आदि की व्यवस्था होगी, जहां तक विधान का सम्बन्ध है वह साधारण रूप में अच्छा है, उससे मंदिर की परम्परा में कोई बाधा नहीं पड़ती, यदि उसकी व्यवस्थापिका समिति उचित निर्मित हुई, और वह सावधानी से कार्य करे तो

मंदिर में उसकी स्थिति में ठीक सुधार किया जा सकता है। इस स्थान को अपने महत्व के अनुरूप आदर्श बनाया जा सकता है, परंतु विधान के बन जाने और पास होजाने पर भी हम यह नहीं जान सके कि उसके संचालन के लिए व्यय की कोई व्यवस्था किस प्रकार की गई है। शासन ने कोई निधि भी निश्चित नहीं की, न घोषित की है। अब तक जिस सीमित आय से मंदिर की व्यवस्था की जाती रही है, वह मँहगाई के बढ़ जाने पर उतनी ही रही है, परिणाम यह हुआ कि ५० वर्ष पूर्व जो चीज १)रु. में एक रुपए के लायक मिलती थी, वह अब उसी रुपए में घटकर चार आना बराबर मिल रही है, और पूजन आदि की स्थिति खराब हो गई है। जब कि चपरासी से लेकर सड़क सफाई करने वालों को भी मँहगाई भत्ता आदि मिला, महाकालेश्वरजी ने चूंकि कोई 'हड़ताल' का आश्रय नहीं लिया, उन्हें कुछ पल्ले न पड़ सका। हमें आशा थी कि नए विधेयक के स्वीकार हो जाने पर कोई निश्चित निधि की व्यवस्था की जाएगी, परंतु उसका कहीं पता नहीं चल पाता। शासन यदि महाकाल की चढ़ोतरी पर निगाह रखता हो तो यह भी ऐसी महत्व की, या नियमित नहीं है कि उससे उचित व्यय व्यवस्था हो, पर यह तो ऐसा होगा कि महाकाल अपनी पूजा करवाकर अपना खर्च पूरा करे, और चूंकि महाकाल में अपनी व्यवस्था की क्षमता नहीं रहती है, इसलिए सरकार उस पूजा की रकम ले कर सरपरस्ती करे, शासन स्वयं अपना कोई उत्तर दायित्व अनुभव न करे। यह कहां तक उचित है? चाहिए तो यह कि शासन समयानुकूल उचित व्यय-व्यवस्था का भार लेकर उसका आदर्श संचालन करे। एक निश्चित निधि स्वतंत्र रखदे। जहां देश-विदेशों से लाखों यात्री निरंतर आते रहते हैं, उसको अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप बनावे।

विधेयक में पूजा-अर्चा की परम्परा को यथावत् रखने की व्यवस्था की गई है। यह ठीक होते हुए भी विचारणीय है, क्योंकि पिछले कुछ काल से पूजा की विधि में एक प्रांतीय पद्धति ने प्रवेश पा लिया है, उसे शास्त्र-विहित बनाया जाना परमावश्यक है। जब तक यह परिवर्तन नहीं किया जाएगा, तब तक उसका सर्वभारतीय और सार्वजनिक रूप प्राप्त न होगी, उदाहरणार्थ श्रावण मास की मान्यता-सवारी आदि में महाराष्ट्र पद्धति को प्राप्त है। इस से आधा श्रावण और आधा भाद्रपद श्रावण के रूप में प्रविष्ट है, यह एक प्रांतीय-पद्धति है, उसे पलटा जाना जरूरी है। इसी तरह पूजा-पद्धति में आरती वगैरह में मराठी भाषा का प्रचलन है, वहां संस्कृत पूजा पद्धति लेने की आवश्यकता है। ऐसे सुधार बहुत सूझ-बूझ प्रवीण परामर्श के पश्चात् करना आवश्यक है। मंदिर की मर्यादा के विषय में भी उसकी उज्वल परम्परा के अनुरूप नियमन की सुधार की आवश्यकता है, इन कुछ बातों के सिवा विधेयक का रूप ठीक है, विधेयक में कुछ भूलें रह गई हैं, जैसे महाकालेश्वर की अधिकृत भूमि मंदिर के पीछे ही है, उसे मंदिर के अधिकार क्षेत्र में लेना रह गया है, जब कि देवास की धर्मशाला के नाम से ज्ञापित एक स्वतंत्र व्यक्ति के अधिकार के स्थान को हठात् मंदिर का विषय बना लिया गया है। जो कि वास्तव में आज तक स्वतंत्र समझी जाने वाली वस्तु पर अनधिकार हस्तक्षेप हो जाता है। आशा है ऐसे सुधारों को अब भी विधान में सम्हाल लिया जाएगा। ऐसे छोटे दोषों के रह जाने पर भी यह विधेयक महाकालेश्वर मंदिर के लिए उपादेय है, जनता को इससे समाधान मिलेगा।

लेकोड़ा-ग्राम का सुधार स्वप्न—

लेकोडा-मालवे का-उज्जैन के निकटवर्ती एक ग्राम है। वह एक विशाल ताल के तट पर बसा हुआ है। रेलवे से चलते हुए यात्रियों की दृष्टि इस ताल की तरलता को देखकर मुग्ध बन जाती है, अंग्रेजी शासन के काल में अनेक शिकार के शौकीन यहाँ पहुँचते थे, और ताल में स्वच्छन्द तैरते हुए कोमल पक्षियों को मारकर अपना मन चाहा करते रहते थे। काश यह ताल यूरोप के किसी भू-भाग का खण्ड होता तो शायद इसके तट पर न जाने कितने किशोर सैर सपाटे के लिए पहुँचते, और इस स्थान के सुंदर बना स्वर्गीय समीरण का सेवन करते, परंतु दुर्भाग्य-वश यह ताल प्रकृति-सुंदर प्रदेश मालव में रहकर भी उपेक्षित दशा में अपने भाग्य के दुर्दिन देख रहा है। हाल में ग्राम पंचायत के चुनाव को लेकर, उज्जैन के सुलेख और कल्पना प्रवीण अध्यापक [illegible]. के. ना. डांगे प्रथम बार इस लेकोड़ा ग्राम में गए थे, उन्होंने उसे [illegible] कर जो

प्रकट किया है, और साकार बना देने का स्वप्न सोचा है, वह इस अंक में अन्यत्र लेख बद्ध प्रकाशित हो रहा है।

कल्पना-प्रवण लेखक ने लेकोड़ा को देखकर सुंदर स्वप्न देखा है, उसका शतांश भी यदि ग्राम-सुधार-विभाग या ग्राम-कार्यकर्ताओं की कल्पना का विषय बन सकता तो यह लेकोड़ा ही क्या अन्य अनेक सुंदर स्थान इस प्रदेश में आकर्षक बन जाते, और अनेक नागरिकों को अपने सौन्दर्य निरखने को विवश बना देते। यों हमने ग्राम सेवक बनाने के कारखाने की तरह ग्राम विद्यालय की भी स्थापना की है, ग्राम सेवकों की टोलियों से इधर-उधर भटकते हुए भेंट भी हो जाती है, पर वहां शायद ऐसी दीक्षा नहीं दी जाती कि किसी एक ग्राम को प्रयोग का विषय बनाकर उसे आदर्श के रूप में प्रस्तुत करें। केवल नारे लगाकर, भाषण देकर, पैदल प्रयास की परम्परा डालकर सिर में सूझ के अंकुर नहीं उगाए जा सकते। श्री. डांगेजी जैसों की सूझ का सहारा लेने की भी क्या आवश्यकता है, जब कि– न कुछ काम के नाटक के नयनाभिराम चित्र पत्रों में प्रकाशित होकर सहज सफलता उन्हें सुलभ बना देते हैं। ग्राम-सुधार का श्रेय दे देते हैं। तब सूझ और श्रम का क्या मूल्य मिलेगा? लेखक महाशय इंग्लैंड में कवियों के स्वप्न सौन्दर्य के अनुरूप मालवे के ग्रामों को आदर्श देखना चाहते हैं, वह तो बहुत दूर की बात है, जब कि अपने नगरों में ही आंखों के सामने सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले सुंदर सरोवरों को कूड़े-कचरों से पाटा जा रहा है, सरकार से सौ-सौ बार कहने पर भी उज्जैन का रुद्रसरोवर (हरसिद्धी तालाब) आज नगर की गंदी गाडियों से भर भर कर पाटा जा रहा है, पर उसे रोका नहीं जाता। आज यदि उसे ही जल और कमल से पूर्ववत् शोभित कर दिया जाए तो उज्जैन की धूल भरी सड़कों से निकल कर नागरिकों का मन क्षण भर पुलक उठे। नगर शोभा में चमक आ जावे। हाल ही में श्रम-सप्ताह के समारंभ में उसे सुधारने का प्रयास सोचा गया था, पर पता नहीं किस प्रपंच में वह पासा पलट गया! उद्धार उलट गया! पानी भर देने से मलेरिया के मच्छर बढ़ जाने की बात कही जाती है, पर आज शहर की गंदगी पड़ने से जो मलिनता वहां बढ़ रही है, वह मलेरिया को मात करने वाली बीमारियों का घर ही बन रही है। जब नगर के बीचों-बीच बने हुए सुंदर स्थानों की यह दुर्दशा है, तब लेखक की लेकोड़ा-ग्राम के लिए की गई भव्य भावना का भावी तो अंधःकार में ही समझना चाहिए। ऐसे न जाने कितने स्थान इस प्रदेश की पुण्य, एवं प्रकृति-सुंदर-भूमि में यत्र तत्र उपेक्षित बने हुए, सरकार और सहकार की सूझ से सरोकार न रखकर अपने आप में सिमटे जा रहे हैं। श्री डांगे की सूझ के अनुसार वे सुधार का सुअवसर पाजावें तो निःसंदेह स्वर्गीय सुषमा के आगर बन सकते हैं।

सरकारी साहित्यकार संसद!

भारत सरकार निकट भविष्य में साहित्यकार-संसद (एकेडमी) स्थापित करने का विचार रखती है। यह शुभ समाचार है। इसके पूर्व नृत्य-नाटक के सम्बन्ध में एक ऐसी ही संस्था का सरकार ने आरम्भ भी किया है। अभी पता नहीं चल पाया कि उस संस्था ने कौनसी प्रगति की है। सरकारी संस्था के द्वारा भारत के कम से कम कुछ प्रमुख स्थानों में रंग-मंच की स्थापना का निश्चय तो प्रकट होना ही चाहिए। फिर भारतीय नृत्य-कला के विषय में संस्था द्वारा सुयोग्य विद्वानों की सहायता प्राप्त कर संशोधन भी किया जाना चाहिए। भारतीय नृत्य शास्त्र के विधिवत् अध्ययन की भी व्यवस्था की जाना चाहिये। भारतीय नृत्य शास्त्र विविध अंगों से पूर्ण है। उसकी बहुत छान-बीन हुई है। शरीर के एक-एक अंग को लेकर उसका कला पूर्ण विश्लेषण किया गया है। केवल हाथ और उसकी अंगुलि के विविध प्रकार-परिवर्तन का जिस गंभीरता और रसमयता के साथ वर्णन किया गया है, भावों की विभिन्नता का प्रदर्शन सूचित किया गया है, शायद अन्य साहित्य में सम्भव न हो। नृत्य और नाटक के क्षेत्र में भारतीय साहित्य विशद है। उसके संशोधन, वर्गीकरण, प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता हैं। यदि सरकारी संस्था यह कार्य हाथ में ले तो कुछ समय में ही एक विशिष्ट साहित्य की पूर्ति कर सकती है। सरकारी संस्था का क्षेत्र केवल आधुनिक नाटक या नृत्यों को प्रोत्साहन अथवा रक्षण ही नहीं होना चाहिए। उसे साहित्य के संशोधन पुनर्जागरण और प्रकाशन एवं प्रयोगक्षम बनाना भी होगा।

साहित्य एकेडमी के स्वरूप के विषय में सरकारी कल्पना का पता न चले तब तक उस पर विचार करना सम्भव नहीं। केवल कतिपय लेखकों के असंतोष निवारण के लिए उसकी सदस्यता का सम्मान प्रदान कर देना या पुरस्कृत कर देना ही नहीं होना चाहिए। एकेडेमी ऐसे साहित्य के प्रणयन की भी प्रवृत्ति करे जो भारतीय विश्व-विद्यालयों के ज्ञान विस्तार के विषय बन सके, उपेक्षित अंगों की पूर्ति करे और संशोधन प्रवृत्ति भी करे। साहित्य की गतिविधि को भी परखे, उसके पथ प्रदर्शित करे। एकेडेमी द्वारा ऐसी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाए जिसमें त्रैमासिक प्रकाशित साहित्य के सर्वांग की योग्य निष्पक्ष समीक्षा हो। वह इसके लिए विविध विषय के निष्णातों का अध्ययन मण्डल संगठित करे और उनके निष्कर्षों की योग्य जनों के द्वारा आलोचना की जावे। उसके बाद उसका प्रकाशन हो। इससे साहित्य की विभिन्न धाराओं का पर्यवेक्षण भी संभव होगा। और निरंकुशता का निवारण होगा। इसका फल यह होगा कि लेखनी की धारा को उचित मोड़ मिलेगा। साहित्यिकों में सतर्कता भी आएगी। प्रकाशन में भी सावधानी समाविष्ट होगी। आज जनता में साहित्य की भूख सजग है। पर सन्तोष देने वाला साहित्य बाजार में कम से कम मिल पाता है। जिसके पास विचार हैं, उसके हाथ बाजार नहीं। और जिसके हाथ बाजार है, उसके पास विचार की उतनी पूंजी नहीं है। इस गत्यवरोध को संसद समाप्त कर सकती है। यदि वह इस दिशा में सतर्क हो। आज रायल्टी का राग अलापा जाता है। उसकी चिंता उन थोड़े से लोगों के लिए है जो कतिपय प्रकाशकों के पाश में पड़ पीड़ित होते हैं। किस्से-कहानी के कूड़े की तरह प्रकाशित होने वाले साहित्य (!) के लिए नहीं। प्रकाशक की सारी जाति समान नहीं है। समृद्ध-सरकार भी जब रेडियो पर रिले किए जाने वाले कविता रूपकों को सस्ते दामों में खरीदती है तो, औरों की क्या बात? सरकारी प्रकाशनों में भी आज यही विषमता चल रही है। हिन्दी पत्रों को वह वितरण नहीं करती, समालोचनार्थ नहीं भेजती। स्वयं सरकार द्वारा प्रकाशित पत्र स्वतंत्र पत्रों से परस्पर विनिमय में भी संकोच करते हैं, यह स्थिति स्वयं सरकार और संपन्नों की संस्थाओं ने उत्पन्न कर रखी है। डालमिया के धर्मयुग, नवभारत आदि, सरकारी 'आज कल' प्रयत्न करने पर भी विक्र के विनिमय में दुर्लभ हैं। तब साधारण प्रकाशकों की स्थिति और उनके व्यवहार की कल्पना लेकर रायल्टी के राग अलापने में क्या अर्थ है? वस्तुतः साहित्यिकों के संगठन, या संस्था के अभाव के कारण ही यह विषमता है, साहित्य एकाडमी यदि सफल बन, सूझ के साथ कार्य करे तो साहित्यिकों के सभी अभावों का वह उचित उपाय निकाल सकेगी। साहित्य के अभाव की पूर्ति भी वह कर सकती है, और साहित्यिकों के भी। सरकार और साहित्यिकों के लिए वह उचित माध्यम बन सकती है, देखना है सरकार द्वारा स्थापित होने वाली संस्था का क्या स्वरूप होता है। यदि एकाडमी सुंदर सुसंगठित और श्रेष्ठ जनों के सहयोग से कार्य करे तो निश्चय ही साहित्य और संस्कृति का प्रवाह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रवाहित कर सकती है। सरकार केवल नाम पाए हुए साहित्यिकों तक ही अपनी संस्था का द्वार उन्मुक्त न रखेगी, वरन् ऐसी प्रतिभा को प्रवेश करने का अवसर देगी, जो साधन सुविधा के अभाव में संकुचित बनी दबी हुई है। परंतु यह संस्था साहित्यिक-सदाव्रत जैसी भी न बन जाए, साथ ही सरकार द्वारा निर्मित एक 'धर्मशाला' का रूप भी न लेवे, जिस में साहित्यकार पलकर अपने विचार स्वातंत्र्य और विद्रोही भावना को खो दे। साहित्य एकाडमी स्वतंत्र भारत के साहित्य स्रष्टाओं की स्वतंत्र संस्था हो। जिसका सम्मान सरकार-समाज और साहित्य में समान हो।

शेख सा. की संदेह-जनक प्रवृत्ति—

शेख अब्दुल्ला नवीन काश्मीर के निर्माता के साथ संदेह के स्रष्टा भी बन गए हैं, उनकी नीति उलझनों को सुलझाने के बजाय उलझाने का कारण बनती जा रही है। वे इतने आंदोलन, प्रवाद और अशांति को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी काश्मीर को एक समस्या बना रहे हैं, दो झण्डे को जुड़ाकर उन्होंने जहां एक शंका खड़ी की, वहां भारतीय संविधान को सीधा स्वीकार नहीं किया। अपनी सुप्रीम कोर्ट के विषय में भी वे मौन हैं, वे 'राज प्रमुख' को 'सदरे रियासत' कहने में सुख मानते हैं, जब कि निजाम ने नाम पलटने में आना कानी नहीं की। जमींदारों को मुआवजा देने में भारत की जो नीति है, उसे शेख सा. काश्मीर में कायम नहीं रखते। हाल ही में

उन्होंने काश्मीर की भाषा को सहज उर्दू बना डाला है। आज स्वयं पाकिस्तान को उर्दू के राज्य भाषा स्वीकार करने में बंगाल के कारण आपत्ति अनुभव करना पड़ती है, परंतु शेख सा. काश्मीरी, डोंगरी और पंजाबी आदि की अवहेलना कर सारे काश्मीर पर उर्दू का अधिकार स्थापित कर देते हैं, भारत सरकार ने देश की प्रमुख भाषाओं में काश्मीर के लिए काश्मीरी को मान्यता दी है, यद्यपि काश्मीरी एक बोली है, तथापि उसे भाषा के वर्ग में मान्यता मिली है। भारत सरकार ने काश्मीर के लिए उसे प्राकृत माना है। पर शेख सा. ने उसकी अवहेलना करके उर्दू को प्रतिष्ठित कर दिया है। काश्मीर की विभिन्न बोलियों की गणना की दृष्टि से देखा जाए तब भी काश्मीर में उर्दू को इतना अवसर नहीं कि राज्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो सके। काश्मीर की शारदा-लिपि के बाद मुगल काल के प्रभाव वश फारसी का फैलाव हो गया था, पर उर्दू का इतना प्रसर नहीं रहा। आज भी श्रीनगर तथा उसके पास-पड़ोस में काश्मीरी का प्रचलन है, लद्दाख आदि में तिब्बती और जम्मू आदि में पंजाबी और हिन्दी का प्रचार है, उर्दू का आधिपत्य नहीं। ऐसी अवस्था में शेख सा. यह नवीन राज्यभाषा घोषित कर पुनः विशेष शंका संदेह को ही बढ़ावा दे रहे हैं. यह प्रयत्न भी भारतीय संविधान के अनुकूल नहीं है। शेख सा. अपने निर्णय के अनुकूल भारतीय-संविधान संशोधित करवाना चाहते हैं, उसकी पूर्व स्वीकृत काश्मीरी भाषा को स्वीकार नहीं करते। शेख सा. स्वतंत्र मनोवृति के हैं, स्वतंत्र मनोवृत्ति बुरी नहीं, परंतु जिस वातावरण में रहकर वे यह स्वतंत्रता बरत रहे हैं, वह उनके लिए संदेह का विस्तार कर रही है। आज जो लोग काश्मीर के विरुद्ध होने वाले आंदोलन को बुरा समझते हैं, उन्हें भी शेख सा. के विषय में शंका का अवसर मिलता है, शेख सा. इसकी चिंता न कर उनकी सहानुभूति भी खो रहे हैं। वे तर्क दे सकते हैं, पर सक्रिय संदेह की प्रवृत्तियों से काश्मीर को कठिनाई में भी डालते रहे हैं। भारत की सहानुभूति खोकर काश्मीर को शेख सा. कहां ले जाना चाहेंगे? वे काश्मीर को अ-साम्प्रदायिक-शासन कहते हैं, परंतु उर्दू को अधिकार देकर क्या वे सम्प्रदाय विशेष को महत्व नहीं दे रहे हैं? वे काश्मीर के ९० प्रतिशत जनों को बढ़ावा देते हैं किंतु जम्मू के बहुमत की उपेक्षा भी करते जा रहे हैं, काश्मीर को जम्मू से अलग बनाने की कोई नीति तो उनकी नहीं है? हमने सम्प्रदायवादियों से कभी सहानुभूति नहीं की, न हम पर उनके विकृत विचारों का प्रभाव ही पड़ा है। परंतु शेख सा. की गति और प्रगति स्वयं संदेहों की जनक बनती जा रही है, काश्मीर के भविष्य के लिए इससे अनेक आशंकाएं जन्म ले लेती हैं।

साधु-समाज का सहयोग भी लीजिये!

भारतवर्ष धार्मिक स्थान है, यहां सदियों से योग्य-विद्वान्, त्यागी, तेजस्वी--निस्पृह साधु, सन्यासी, यति, फकीरों की परम्परा चली आती है। देश के विभिन्न भागों में अनेक मठ-मंदिर, संस्थान, अखाड़े हैं, उनके प्रति धार्मिक भावुक-जनों की आस्था है, और उनका जनता के एक वर्ग-विशेष पर प्रभाव भी है। साधुओं का अपने २ वर्गों में विशाल संगठन भी है, यह माना कि अन्यान्य वर्गों की तरह इनके समाज में भी अनेक विकृतियां आ गई हैं, तथापि आज अनेक विद्वान्-साधु-यति-महात्मा अत्यन्त विचार-विवेकशील और विचारक हैं, उनकी समाज-सेवा की भावना भी बहुत है, यदि सरकार अपनी उपेक्षा वृत्ति से देखना छोड़कर इस विशाल व्यापक समाज का सहयोग लेने का स-स्नेह और सादर प्रयत्न करे तो देश की अनेक समस्याओं में सहज सुधार संभव हो सकता है। साधु-वर्ग उपदेश-प्रवचन करते हैं, वे यत्र-तत्र घूमते भी रहते हैं। सरकार उनके सहयोग से ज्ञान-प्रचार प्रसार का कार्य लेने का प्रयास करे तो प्रौढ़-शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा की बहुत बड़ी सुविधा हो सकती है, हर मठ, मंदिर, अखाड़े संस्थानों में एक-एक शाला चलाई जा सकती है। घूमने-फिरने वाले साधु-सन्यासी चलते-फिरते हुए जनता के वर्गों को अपने प्रभाव से शिक्षित-दीक्षित बना सकते हैं, ऐसी ही सामूहिक योजनाओं के लिए भी साधुओं की प्रधानता में कार्य लिया जावे तो उनके प्रभाव-वश कई कार्य सरलता से सम्पन्न हो सकते हैं, और साधुओं के विषय में जो सरकारी उपेक्षा वृत्ति है, वह भी दूर हो सकती है। साधु-समाज के हित के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं, केवल देश-काल के अनुरूप उनके कार्य का रूप और दृष्टिकोण

नया होना आवश्यक है, हम नहीं समझते कि यदि उनके साथ स्नेह, सहानुभूति, और उनकी स्थिति का भाव रखते हुए सहयोग का प्रयत्न किया जाय तो देश का बहुत बड़ा विरक्त-वर्ग बिना कुछ लिए-दिए जन-सेवा के लिए अवश्य आगे आ सकता है। यह कार्य देश और समाज-सेवा के लक्ष्य को लेकर भारत के राष्ट्रपति महोदय सहज साध्य कर सकते हैं। वे दिल्ली, हरिद्वार या ऐसे किसी स्थल पर देश-भर के प्रधान प्रभावशाली साधु-संत, महन्त, मठाधीश, मण्डलेश्वर प्रधान पुरुष को आमन्त्रित करें, चर्चा करें और उनके सहयोग से सरकार का सूत्र जुड़ाकर कार्यक्रम निश्चित करें। हमारा विश्वास है, बहुत बड़ी जन-शक्ति का सहज ही लाभ-सुलभ हो जायगा। और साधुओं को भी जन-सम्पर्क सेवा की एक नई दिशा प्राप्त होगी, वे जन-हित के लिये तत्पर बन जाएंगे, फिर जनता में भी उनके प्रति नवीन आदर उत्पन्न हो जाएगा। इतिहास साक्षी है, साधु-समाज ने समय-समय पर शासन और समाज का सदैव सहयोग किया है, बड़ी समस्याओं को सुलझाया है, संघर्ष भी किया है, रामराज्य में वशिष्ठ, विश्वामित्र, वालिमकी की महत्व-पूर्ण राष्ट्र-सेवा, राज्य और समाज-सेवा रही है। ठेंठ मुगल काल तक भी अनेक शासनों को साधुओं का सभी प्रकार (संघर्ष में भी) सहयोग रहा [illegible] और उसी परम्परा को यह साधु समाज अब तक लिए [illegible] रहा है, सरकार को चाहिए कि वह इस उपेक्षित-वर्ग [illegible] भी संपर्क साध्य करे, दृष्टिकोण को परिवर्तित करे, और समाज में अवशिष्ट इनके प्रभाव की वास्तविकता को समझ इनकी समाज सेवा की भावना को विकसित बनाए। हमारा विश्वास है, सरकार की कुछ सहकारी योजनाएं अवश्य ही साधु-सहयोग से सफल बन सकती हैं।

श्री मुंशीजी और छात्र !

श्रीयुत मा. मुंशीजी के पत्रों की चर्चा हम पिछले अंक में कर चुके हैं। वे उत्तर प्रदेश के राज्यपाल हैं, उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद, बनारस और आगरा शिक्षा के केन्द्र हैं, इन केन्द्रों में बड़ी से बड़ी शिक्षा प्राप्त करने के लिए हजारों छात्र जुड़ते हैं, उनकी आधुनिक-शिक्षा किस प्रका का संस्कार जागृत करती है और उसका मुँशीजी प क्या प्रभाव पड़ा यह जरा उन्हीं के शब्दों में सुने औ सोचे कि यह शिक्षा हमारे देश और उसके भविष्य किस ओर ले जा रही है।

“ मुझे शुद्धमति, परिश्रमी और महत्वाकांक्षी छात्रों मिलना बहुत पसंद आता है। मैं मानता हूं कि यह मे कमजोरी है। खैर मैं इलाहाबाद में भी कई नवयुवकों मिला; वे अतिमेधावी थे; परन्तु उनमें मुझे शालीनत के प्रति औत्सुक्य का स्पष्ट अभाव नजर आया।

“ अजीब बात है कि इलाहाबाद जैसे नगर में ज शिष्टाचार की एक दीर्घ परम्परा विद्यमान हो, आचा हीनता का घुन लग गया दिखाई देता है। इसे स्थानी अभिशाप माना जाए, या यह दूरव्यापी है ? क्या यह ह सकता है कि यह बुराई हमारे छात्रों में घर कर गई है? मैं इस पर विश्वास करने से इन्कार करता हूं। यह त एक बहुत ही भद्दी बात है।

“ इस सप्ताह की कुछ घटनाओं ने मुझे इतनी चो पहुंचाई कि एक समारोह में तो जो मेरे मन में आया मैं वही कह डाला। यदि शिक्षा हमें आचरण की शालीनता नहीं सिखाती, बाहरी विनम्रता नहीं अपितु वास्तवि निर्मलता से स्वतः उत्पन्न होने वाला सद्व्यवसार— वह व्यर्थ है। यदि मेरी चलती तो मैं नृत्य, संगीत औ सदाचार को सभी स्तरों पर अध्ययन के अनिवार्य विष बनाकर छोड़ता।

“ भारत सदाचार का घर रहा है। अपने से बड़ों के सम्मान में हमारे छात्र हाथ जोड़ कर उठ खड़े होते और आदर से उनके चरण छूते थे; परन्तु अब क्या होत है ? चमकदार टाइयां लगाए, बढ़िया क्रीज की पतलू पहने और ठस्से से चलने वाले हमारे युवक अब अपने पिताओं और पितामहों का सम्मान एक अल्प सी “चु रहो” (चियरियों) से करते हैं।

‘क्या यही संस्कृति है ? मैं समझता हूं यह संस्कृति क अभाव है। सभ्य आचरण ‘देव, द्विज, प्रजा पूजनम्’ की देन है

कवि की मृत्यु

श्री 'दिनकर'

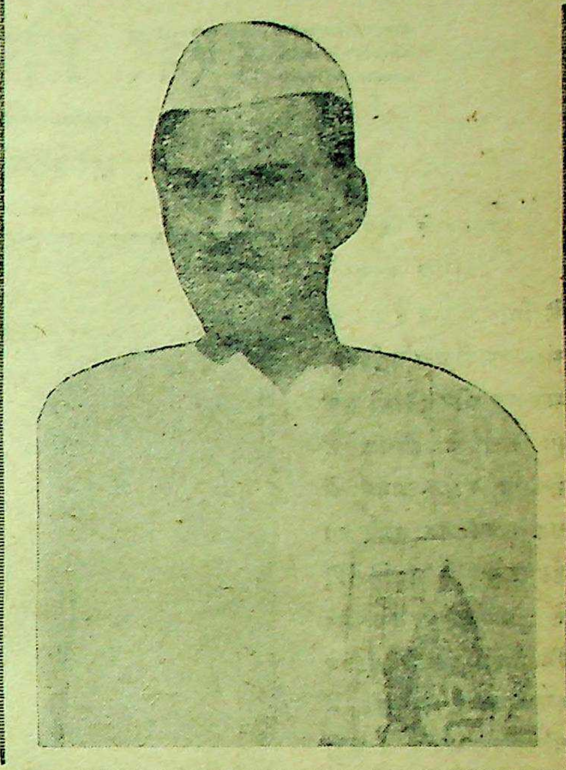

जब गीतकार मर गया, चाँद रोने आया,
चाँदनी मचलने लगी कफन बन जाने को
मलायानिल ने शव को कंधे पर उठा लिया,
वन ने भेजा चंदन-श्रीखंड जलाने को

सूरज बोला, 'यह बड़ी रोशनीवाला था
मैं भी न जिसे भर सका कभी उजियाली से
रँग दिया आदमी के भीतर की दुनिया को—
इस गायक ने अपने गीतों की लाली से'

बोला बूढ़ा आकाश, 'ध्यान जब यह धरता
मुझमें यौवन का नया वेग जग जाता था
इसकी समाधि में डुबकी एक लगाते ही—
तन कौन कहे, मन भी मेरा रँग जाता था'

देवों ने कहा, 'बड़ा सुख था इसके मन की—
गहराई में डूबने और उतराने में'
माया बोली, 'मैं कई बार थी भूल गई—
अपने को, गोपन-भेद इसे बतलाने में'

'योगी था', बोला सत्य, 'भागता मैं फिरता
यह जाल बढ़ाए हुए दौड़ता चलता था
जब-जब लेता यह पकड़ और हँसने लगता
धोखा देकर मैं अपना रूप बदलता था।'

मर्दों को आई याद बाँकपन की बातें
बोले, 'जो हो, आदमी बड़ा अलबेला था
जिसके आगे तूफान अदब से झुकते हैं
उसको भी इसने अहंकार से झेला था'

नारियाँ बिलखने लगीं, 'बाँसुरी के भीतर—
जादू था, कोई अदा बड़ी मतवाली थी
गर्जन में भी थी नमी, आग से भरे हुए—
गीतों में भी कुछ चीज रुलानेवाली थी

'वे बड़ी-बड़ी आँखें आँसू से भरी हुई
पानी में जैसे कमल डूब-उतराता हो
वह मस्ती में झूमते हुए उसका आना
मानों, अपना ही वत्स झूमता आता हो

'निष्कपट प्रेम का अभिलाषी, भोला-भाला—
बालक था, कोई पुरुष दिव्य अवतारी था
तुमतो कहते हो मर्द, मगर, मन के भीतर—
यह कलावंत हमसे भी बढ़कर नारी था।

'चुपचाप ज़िंदगीभर इसने जो ज़ुल्म सहा
उतना नारी भी कहाँ मौन हो सहती है ?
आँखों के आँसू मन के भाव जता जाते
कुछ सोच-समझ जिह्वा चाहे चुप रहती है

'पर इसे नहीं रोने का भी अवकाश मिला
सारा जीवन कट गया आग सुलगाने में
अखिर वह भी सोगया, ज़िंदगी ने जिसको—
था लगा रखा सोतों को छेड़ जगाने में'

(शेष पृष्ठ २१ पर)

ईश्वर विषयक मतभेद

श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी

ईश्वर के विषय में विभिन्न आचार्यों के विभिन्न मत हैं। सर्व-साधारण में यद्यपि ईश्वर, अल्लाह और God एक ही अर्थ के बोधक हैं तथापि दर्शन-जगत् में एक का ईश्वर दूसरे को ईश्वर रूप से मान्य नहीं है। भास्कर वल्लभ और निम्बार्क मत में ईश्वर स्वयं जगत् के रूप में परिणत होता है, (ब्रह्म परिणाम-वाद) रामानुज, माध्व, सांख्य और नैयायिक वादी कहते हैं कि ईश्वर का परिणाम मानने पर वह नाशवान् वस्तु सिद्ध होगा, अतएव भास्करादि सम्मत परिणामी ईश्वर को वे प्रकृति कहते हैं तथा उनके मत में ईश्वर निर्विकार और अपरिणामी है। द्वैताद्वैत वादी निम्बार्क के मत में ईश्वर एक अंश से जगद्रूप में परिणत होता हुआ भी दूसरे अंश से अपरिणामी ही बना रहता है। परन्तु अन्य आचार्य लोग एक अखंड ईश्वर में इस प्रकार का अंश-विभाग तथा एक ही वस्तु का एक ही काल में अपरिणामी होते हुए भी परिणत होना असम्भव मानते हैं। नैयायिक और माध्व-मत में ईश्वर को केवल निमित्त-कारण-मात्र माना जाता है परन्तु शंकराचार्य, निमित्त और उपादान दोनों ही कारण मानते हैं।❀

(फुटनोट पृष्ठ २१ पर)

इस जगत् के साथ ईश्वर के सम्बन्ध में स्वीकार करने वाले मत-वादों के विषय में उपरोक्त चर्चा की गई है। परन्तु ऐसे भी दर्शन हैं जिनमें ईश्वर को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। सांख्य मत-वादी ईश्वर के बिना ही जगत् की व्युत्पत्ति प्रदान करते हैं। जड़, प्रकृति और चेतन पुरुष (ब्रह्म) के संयोग से ही सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, निधन और प्रलय उनके मत में सम्भव है, अतएव ईश्वर के स्वरूप के विचार में वे नहीं पड़ते। पूर्व मीमांसक भी वैदिक ऋचाओं के कर्मफल प्रदान करने का सामर्थ्य प्रतिपादन करके संतुष्ट हो जाते हैं, जगत् की व्यवस्था के लिए उनको ईश्वर की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बौद्धवादी भी ईश्वर के सम्बन्ध में इसी प्रकार का विचार रखते हैं। प्रत्यक्ष से अर्थात् किसी आत्मा या परमात्मा के अस्तित्व को अंगीकार करके उसके स्वरूप के विषय में विवाद करना उनको अभिमत नहीं है। वे संसृतिजन्य प्रत्यक्ष दुःख और उसकी निवृत्ति के मनोवैज्ञानिक उपायों को ही प्रमुखता देते हैं। परन्तु जैन-दर्शन केवल इतने से ही संतुष्ट नहीं है। वह ईश्वर के अस्तित्व का यथा-सम्भव सभी उपायों से खण्डन करके कर्म-नियम की स्थापना करना चाहता है। परन्तु कर्म-नियम की व्य-

वस्था के लिए ईश्वर नहीं तो देवताओं के रूप में अतीन्द्रिय शक्तियों पर उसने विश्वास अवश्य प्रकट किया है। अतएव इस मत में आकर ईश्वर, जगत् का न तो उपादान कारण रह जाता है और न निमित्त कारण, किन्तु एक अखण्ड ईश्वर कई देवताओं के रूप में विभक्त होकर सीमित शक्ति सम्पन्न-मात्र रह जाता है।

ईश्वर के विषय में दो और धारणायें संसार में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। एक मत में तो यह विश्वास किया जाता है कि ईश्वर आकाश में रहता है, तथा अपने पुत्र (ईसामसीह) द्वारा जगत् में भक्ति और सद्गुणों का प्रचार करता है। दूसरे मत में भी ईश्वर अपने रसूल (मोहम्मद) द्वारा जगत् में अपने मत का प्रचार चाहता है, किन्तु इस मत में ईश्वर प्रथम मत की तरह मनुष्य-मात्र के प्रति दयावान् होने की आज्ञा नहीं देता। जो उस पर श्रद्धा रखता है उसी के प्रति ईश्वर दया का व्यवहार करता है अन्यथा वह कृपा का पात्र नहीं समझा जाता। दोनों ही मतों में ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसा विश्वास है कि वह संसार के सभी मनुष्यों को स्वर्ग में अपने पास बुलाना चाहता है। मनुष्य को सुख देने के लिए उसने एक अत्युत्तम स्वर्ग का निर्माण किया है, परन्तु एक शैतान बीच में (उसकी भूल से ?) उत्पन्न हो गया है जो उसकी सृष्टि के मनुष्यों को बहकाता है तथा नरक के प्रति ले जाता है। नरक भी ईश्वर द्वारा ही रचित है, परन्तु स्वेच्छा से नहीं, किन्तु शैतान के कारण विवश होकर। एक और मत यहूदियों का है जो उक्त दोनों मतों से मिलता जुलता है। इन मतों में ईश्वर जीवों के कर्मानुसार अनुग्रह अथवा निग्रह नहीं करता, किन्तु वह इस विषय में सर्वथा स्वतन्त्र है। पूर्व-जन्म मान्य न होने के कारण उक्त मतों में ईश्वर बिना पूर्व कर्म के ही जीवों को अच्छा या बुरा शरीर तथा अच्छी या बुरी प्रवृत्ति देता है तथा इसी प्रकार फल देते समय भी वह जीवों के पाप-पुण्य के ऊपर विचार न करके उनकी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार (इस्लाम मत में ईश्वर श्रद्धा-भक्ति का विचार करने के लिए भी वचन-बद्ध नहीं है) फल प्रदान करता है।

इसी प्रकार सर्व-साधारण में ईश्वर के विषय में कई प्रकार की धारणायें प्रचलित हैं। किसी का ईश्वर, प्रतिज्ञा का अथवा स्वधर्म का पालन न करने पर रुष्ट होकर उसको नाना-प्रकार से कष्ट देता है तो किसी का अनेक अपराधों के करने पर भी क्षमा-शील ही बना रहता है। यह ईश्वर के स्वभाव विषयक मतभेद का प्रदर्शन हुआ और स्वरूप के विषय में मतभेद का होना तो अनिवार्य है, क्योंकि उसका प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं किया है।

दर्शनाचार्यों ने ईश्वर के स्वरूप और स्वभाव का निर्णय करने के लिये मुख्यतः युक्ति तर्क से काम लिया है। श्रुति को प्रामान्य मानने वाले इस विषय में श्रुति-प्रमाण भी प्रदान करते हैं। फलतः विरोध फिर भी रह जाता है। सारांश यह कि, ईश्वर विषयक धारणा न केवल प्रति सम्प्रदाय किन्तु प्रति व्यक्ति भिन्न भिन्न होती है एक अव्यक्त और अदृष्ट वस्तु की धारणा का व्यक्तिगत कपोल कल्पना होना अनिवार्य है। देश काल और परिस्थिति के अनुसार ईश्वर सम्बन्धी धारणा में भी विभिन्नता पाई जाती है। वस्तुतः सबका तात्पर्य एक अखण्ड व्यापक ईश्वर से है, इतने अंश में तो प्रायः सभी सहमत हैं। परन्तु वह दृश्यमान् जगत् का उपादान कारण भी है अथवा नहीं ? यदि केवल निमित्त कारण है तो उसका स्वरूप और स्वभाव कैसा है ? इत्यादि विषयों पर सब की धारणायें भिन्न भिन्न हैं।

जीवात्मा विषयक मतभेद—

प्रायः सभी वैष्णव दर्शनों में जीवात्मा को अणुपरिमाण माना है। अर्थात् जीव प्रति शरीर में भिन्न और असंख्य हैं। यह हृदय के एक देश में स्थित रहकर अपनी चेतना के प्रकाश द्वारा समस्त शरीरगत सुख दुःखादिकों का अनुभव करता है। वैष्णव मतों में जीव को ईश्वर के अंश रूप से स्वीकार किया गया है। परन्तु उस अंश का अपने अंशी ईश्वर के साथ किसी के मत में भेद किसी के मत से अभेद और किसी में भेदाभेद है। किन्तु जैन दार्शनिकलोग एक देश स्थित जीव का सम्पूर्ण देह के अनुभव को समान रूप से ग्रहण कर सकना असम्भव समझते हैं। अतएव उनके मत में जीव सम्पूर्ण देह में व्यापक है और शरीर के विकास के साथ साथ जीवात्मा का आकार भी सदृश पुद्गल (परमाणुओं) के समावेश द्वारा विकसित होता हुआ माना जाता है। (इस प्रकार इस मत में जीवात्मा अनंत अवयवों

का संघात स्वरूप है) सांख्य और न्यायादि दर्शनों में इस प्रकार का संकोच विकास वाला देह सीमित जीवात्मा नाशवान् हो जाता है। अतः इन मतों में आत्मा व्यापक और असंख्य है। अद्वैत वेदान्त मत में जगत के साथ जीवात्मा भी ब्रह्म में अध्यस्त अथवा विवर्त है। इसी प्रकार जीवात्मा को किसी ने अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन का प्रतिबिम्ब तथा किसी ने अधिष्ठान चेतन के अज्ञान से प्रतीयमान अन्तःकरणगत सीमित अहंभावना आदि रूप से माना है।

बौद्ध दार्शनिक किसी स्थायी जीवात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। उनके मत में 'अहं' रूप से अनुभूत आत्मा क्षणिक और प्रतिक्षण जायमान है। प्रत्येक पूर्व कालीन "अहं" (आत्मा) पर जात "अहं" से सर्वथा भिन्न है, परन्तु उसी के सदृश स्मृति और ज्ञान वाला होता है।

वैष्णव लोग इसी अहं को इन्द्रिय और मन से प्रतीत ज्ञान का आश्रय मानते हैं, परन्तु जैन मत इससे भिन्न है। इस मत में आत्मा ज्ञान का आश्रय नहीं किन्तु ज्ञान आत्मा का परिणाम है; अतएव 'अहं' (मैं इत्याकारक अनुभव) आत्मा का स्वरूप भूत धर्म है। पूर्व मीमांसक जैमिनि और कुमारिल भट्ट को भी यही सम्मत है। प्रभाकर; न्याय और वैशेषिक दर्शनों में आत्मा का 'अहं' रूप में परिणाम नहीं होता, किन्तु यह आत्मा का एक ज्ञान रूप गुण है। इससे भिन्न सांख्य और पातञ्जल मत में आत्मा ज्ञान स्वरूप तथापि निर्गुण और अकर्ता है। अद्वैत वेदान्त दर्शन भी इस अंश में सांख्यपातञ्जल से सहमत हैं; किन्तु उक्त मतवादी आत्मा को प्रति शरीर भिन्न अतः अनेक मानते हैं जब कि अद्वैत वेदान्त में आत्मा केवल एक है। अद्वैतवादी 'अहं' को विशुद्ध अन्तःकरण का परिणाम मानते हैं। "मैं जानता हूं," "मैं सुखी हूं" आदि 'अहं' के साथ प्रतीयमान जानना और सुखी होना आदि धर्मों को आत्मा के साथ अन्तःकरण के धर्म (जानना, सुखी होना) का तादात्म्य अध्यास मानते हैं, जो वास्तव में भ्रान्ति मात्र है। सारांश यह कि, अन्तःकरण के जानना आदि धर्म भ्रान्ति से आत्मा में आरोपित होते हैं।

इसी प्रकार आत्मा के चेतन और अचेतन होने के विषय में भी मतभेद हैं। न्याय वैशेषिक मत में आत्मा स्वभावतः जड़ है और मन के साथ संयोग होने पर आ में चेतना की जागृति होती है। प्रभाकर मीमांसकों मत में आत्मा में ज्ञान है, परन्तु वह अनित्य है तथा स्वयं प्रकाश है। मीमांसकाचार्य कुमारिल भट्ट के मत आत्मा खद्योत (जुगनूं) के सदृश चिदचिद् रूप है। कि सांख्यपातञ्जल मत इन दोनों विरोधी धर्मों को एक स्वीकार नहीं करता। उनका कहना है कि जो अचि (जड़) अंश प्रतीत होता है वह जड़ प्रकृति का अंश है इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान स्वरूप होने के विषय में स दार्शनिकों का विवाद है और सभी आत्मा के स्वरूप पृथक् पृथक् रूप से निर्द्धारण करते हैं।

मुक्ति विषयक मतभेद—

हमारे जीवन का मूल उद्देश्य क्या होना चाहिये साधना और दार्शनिक प्रवृत्ति का अभीष्ट क्या है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर स्वरूप ही दार्शनिक विचारों का आरम्भ होता है। दार्शनिक विचारों का फल तत्त्व निर्णय में है और साधना का फल निर्णीत तत्त्व की प्राप्ति अथवा त द्वारा निर्द्धारित स्थिति को प्राप्त होना है। सभी दर्श जीवन के मूल उद्देश्य की व्याख्या 'मुक्ति' शब्द द्वार करते हैं, परन्तु यह 'मुक्ति' प्रत्येक दार्शनिक के विचा से भिन्न अर्थ रखती है। वैष्णव लोग मुक्ति का अ भगवान् के धाम में निवास तथा भगवान् की नित्य लील विहार में सम्मिलित होना समझते हैं। किन्तु जैन लो भगवान् को नहीं मानते इसलिए उनके मत में अलोक आकाश में आत्मानन्द में स्थित रहने का नाम मुक्ति औ पातञ्जल सांख्य मत में आध्यात्मिक, आधिदैविक औ आधिभौतिक इन तीनों तापों से निवृत्त होकर स्व-स्वरूप स्थित होने का नाम मुक्ति है तथा नैयायिक एवं वैशेषि लोग इक्कीस प्रकार के दुःखों से मुक्त होने को मुक्ति कह हैं। प्रभाकर के मत में भी आत्मा नैयायिकों के समा सुखदुखादि से रहित होकर अपने अचेतन स्वरूप में स्थि रहता है। बौद्धमतावलम्बी इस निरन्तर प्रवाहित हो वाले विज्ञान सन्तान की धारा के उच्छिन्न होने पर शून्य वस्था को निर्वाण या मुक्ति कहते हैं। अद्वैत वेदान्त म में जीव स्व-स्वरूप ब्रह्मानन्द में सहज भाव में स्थि होता है।

इसके अतिरिक्त ऐसे भी मत हैं जिनमें मुक्ति एक निश्चित काल पर्यंत रहती है, उसके पश्चात् उसका पुनरागमन होता है। पाश्चात्य मतों में पुनरागमन मान्य न होने के कारण जीव पुनः संसृतिबन्धन में तो नहीं पड़ता; किन्तु उक्त मत में मुक्त जीव भी देह युक्त होने के कारण ईश्वर या स्वर्ग प्राप्ति होने के पश्चात् भी उसका स्वर्गादि में संसरण होता रहता है। अर्थात् उच्च नीच सुख भोग जन्य आपेक्षिक सुख दुख उसे प्राप्त होते रहते हैं। मूल तत्व के स्वरूप के विषय में मतभेद के अपरिहार्य होने के कारण उसकी प्राप्ति के पश्चात् होने वाली स्थिति के विषय में भी मतभेद का होना अवश्यम्भावी है।

(फुटनोट पृष्ठ १८ का)

❀ इस प्रकार ईश्वर के स्वरूप और स्वभाव के विषय में मत भेद होने का फल यह होता है कि, उपासना की रीति में भी पृथकता आ जाती है। उदाहरणतः, जो सम्प्रदाय इस जगत को ईश्वर के अपने स्वरूप का परिणाम मानता है उसकी दृष्टि में जगत के यावत् पदार्थ ईश्वर रूप हैं और सबकी ईश्वर रूप में उपासना करना उसका अभीष्ट होजाता है। परन्तु जो इस जगत को ईश्वर से सर्वथा भिन्न प्रकृति मात्र का परिणाम मानते हैं वे इससे उदासीन होकर शुद्ध ईश्वर या ब्रह्म में स्थित होने का अभ्यास करते हैं। संसार के सभी धर्म ईश्वर को मानते हैं परन्तु एक देश के सम्प्रदाय की उपासना पद्धति दूसरे देश से सर्वथा भिन्न है। भारत के विभिन्न सम्प्रदायों की उपासना पद्धति में–देश की एकता के कारण तथा एक ही प्रकार के ग्रंथों को प्रामाण्य मानने के कारण–अनेक अंशों में समानता है। परन्तु जैन बौद्ध आदि ऐसे भी सम्प्रदाय है जिनकी उपासना में मूलतः भेद है।

(पृष्ठ १७ का शेष)

बेबसी बड़ी उन बेचारों की क्या कहिये ?
चुपचाप उन्हें जीवन - भर जलना होता है
बरछे द्वेषों के चारों ओर तने रहते
बचकर उनको बेदाग निकलना होता है

जाओ कवि, जाओ, मिला तुम्हें जो-कुछ हमसे
दानी को उसके सिवा नहीं कुछ मिलता है
चुन चुनकर हम तोड़ते वही टहनी केवल—
जिसपर कोई अपरूप कुसुम आ खिलता है

विष के प्याले का मोल और क्या हो सकता ?
प्रेमी तो केवल मधुर प्रीत ही देता है
कवि को चाहे संसार भेंट जो, लेकिन,
बदले में वह निष्कपट गीत ही देता है

आवरण गिरा, धरती की सीमा शेष हुई
अब पहुँच नहीं तुम तक इन हाहाकारों की
नीचे की महफिल उजड़ गई, ऊपर कल से—
कुछ और चमक उट्ठेगी सभा सितारों की !

मांडवगढ़ के श्रीमाल जसधीर की लिखाई हुई स्वर्णाक्षरी प्रति

श्री अगरचन्द नाहटा

मालव-प्रांत के साथ जैन-धर्म का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है, मालव की राजधानी उज्जयिनी का वर्णन जैनागमों में पाया जाता है। मालव-देश अपने सुखी और समृद्ध-जीवन के लिए बहुत विख्यात् रहा है। विक्रमादित्य और भोज की कथाओं ने तो मालव-प्रदेश और उज्जयिनी नगरी और धारा नगरी को साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान देकर अमर बना दिया है। विक्रम और भोज की कथाओं के अतिरिक्त भी अनेक पौराणिक एवं काल्पनिक-कथाओं का सम्बन्ध कहानी लेखकों ने उज्जैन के साथ जोड़ दिया है। ऐसी अनेकों कहानियां जैन-साहित्य में भी प्रसिद्ध हैं। ऐसी कहानियों के प्रारम्भ में प्रसंगवश कवियों ने मालव-देश और उज्जयिनी नगरी का बहुत ही सुन्दर वर्णन, कहीं-कहीं तो बहुत ही विस्तार के साथ अलंकारिक ढंग से किया है। मेरी इच्छा है कि कभी ऐसे वर्णनों में से चुनकर उनके संग्रह-रूप में अपना एक विस्तृत लेख विक्रम के पाठकों के सम्मुख उपस्थित करूँ। प्रस्तुत लेख में तो मालव के एक प्रसिद्ध और समृद्ध नगर मांडव के एक जैन श्रावक ने स्वर्णाक्षरों में सुन्दर चित्रों से सज्जित—विभूषित कल्पसूत्र और कालिकाचार्य कथा लिखवाई थी, उसकी प्रशस्ति का ऐतिहासिक-सार उपस्थित किया जा रहा है।

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य कालिकाचार्य का मालव और उज्जयिनी के साथ जो विशेष सम्बन्ध रहा है वह सर्वविदित है। उज्जयिनी के पश्चात् मालव में धारा नगरी भोज के कारण अधिक प्रसिद्ध हुई और तदनन्तर मांडवगढ़ का स्थान आता है। मांडवगढ़ बहुत ही समृद्ध नगर था।

माण्डवगढ़ के मंत्री पेथड और संग्रामसिंह और मुकविमंडल आदि तो बहुत प्रसिद्ध हैं पर इनके अतिरिक्त और भी बहुत से विशिष्ट जैन व्यक्ति वहां हुए हैं उनमें से श्रीमाल वंश के बहकरा गोत्रीय जसधीर भी एक हैं इनके सम्बंध में अभी तक अन्य कुछ जानकारी प्राप्त न थी। दो वर्ष हुए अपने व्यापार-केन्द्रों के निरीक्षणार्थ आसाम जाकर जब मैं कलकत्ते पहुँचा तो वहां के सुप्रसिद्ध स्व० पूरणचंदजी नाहर के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह का निरीक्षण करते हुए कतिपय स्वर्णाक्षरी सचित्र प्रतियां अवलोकन में आई। इससे दो तीन वर्ष पूर्व से मैंने स्वर्णाक्षरी और रौप्याक्षरी प्रतियों का विवरण संग्रहीत करना प्रारम्भ किया था और उसी प्रसंग से नाहरजी के स्वर्णाक्षरी प्रतियों को देखने उस विशिष्ट संग्रहालय में पहुँचा था। वैसे नाहरजी से हमारा साहित्यान्वेषण के कार्यारम्भ के समय से ही घनिष्ट सम्बंध रहा है उनकी सहृदयता, संग्रहशीलता, कला-प्रेम आदि की हमारे पर गहरी छाप पड़ी है। उनके स्वर्गवास हो जाने पर उनके सुपुत्र विजयसिंहजी नाहर के राष्ट्रीय कामों में व्यस्त रहने के कारण उनका संग्रहालय अब वैसा लाभप्रद नहीं रहा, फिरभी हमारे प्राचीन सम्बन्ध के कारण जब भी मैं और मेरे भ्रातृपुत्र भंवरलाल वहाँ के हस्तलिखित-ग्रंथों के निरीक्षणार्थ जाते हैं तो अत्यंत व्यस्त रहने पर भी विजयबाबू कभी स्वयं साथ चलकर कभी अपने सुपुत्र आदि को भेजकर आवश्यक व्यवस्था कर ही देते हैं। उसके अनुसार जब गतबार उन स्वर्णाक्षरी प्रतियों को देखा तो अचानक एक महत्वपूर्ण प्रति के कुछ पत्र उलट-पुलट से पड़े हुए नजर आए। देखने पर विदित हुआ कि वे पत्र 'कल्पसूत्र' के हैं। उस प्रति के पत्रांक ११८ से १२२ तक के पांच स्वर्णाक्षरी सचित्र-पत्र ही मिल सके। उसी कल्पसूत्र के साथ की लिखी हुई कालिकाचार्य कथा के पत्रों के साथ अस्त-व्यस्त रूप में पड़े हुए कुछ ऐसे पत्र भी नजर आए जो उस कथा के नहीं थे। ध्यान से पढ़ने पर वे इस प्रति को लिखाने वाले उदार एवं भक्त श्रावक की परिचायक प्रशस्ति के पत्र विदित हुए। प्राप्त पत्रों के श्लोकों के क्रम को व्यवस्थित करने पर वह ११ पत्रों की पूरी प्रशस्ति ही मिल गई। इससे हम दोनों को बड़ा ही हर्ष हुआ। यह प्रशस्ति एक लघु काव्य ही है। ६१ श्लोकों में प्रति के लिखाने वाले श्रावक एवं उनके गुरु के वंश का यह वर्णनात्मक काव्य है। सम्वत् १५५५ के फाल्गुन महिने में इस प्रति को संघनायक जसधीर की भार्या कुंवरि ने खरतर गच्छीय सोमध्वज गुरू को प्रदान की थी। ऐसी रमणीय और बहुत से द्रव्य खर्च करके

लिखाई हुई प्रति को भेंट करने के प्रसंग से कुंवरि के गुरु ने अपने प्रशिष्य शिवसुन्दर को इस प्रशस्ति रचने का आदेश दिया। इस स्वर्णाक्षरी प्रति में कल्पसूत्र और कालिकाचार्य कथा का पाठ दो हिस्सों में लिखा गया है बीच में बोर्डर रक्खा गया है, चारों ओर का बोर्डर बड़ा ही सुहावना लगता है। पत्रों पर लाल रंग की जमीन बना करके उस पर सुनहली स्याही से पाठ लिखा होने से उसकी सुन्दरता में और भी अभिवृद्धि हुई है। बोर्डर में हलदीया, बेंगनी, लाल और क्वचित् काला रंग भी प्रयुक्त है। बोर्डर में कहीं वेलबूंटे कहीं चौकड़ी अंकित है। इस प्रति में प्रसंग २ पर जैसा कि अन्य कल्पसूत्र की सचित्र प्रतियों में पाया जाता है सुन्दर चित्र अंकित थे जिनमें से अब प्रति के प्राप्त ५ पत्रों में से दो ही चित्र उपलब्ध हैं। प्रशस्ति वाले पत्र भी स्वर्णाक्षरी हैं और उनकी संख्या ११ है। प्रत्येक पृष्ठ पर ८ पंक्तियां और प्रति पंक्ति में ३० अक्षर लिखे हुए हैं। प्रति की साइज १२×४।।। इन्च है।

श्वेताम्बर जैन-समाज में कालिकाचार्य के समय से कल्पसूत्र को संघ के समक्ष बांचने का रिवाज विशेष रूप से प्रचलित हुआ प्रतीत होता है, इससे पूर्व पर्युषणों के दिनों में साधुओं के ही पढ़ने का ग्रन्थ था। जब से वह श्रावकों के समक्ष बांच कर सुनाया जाने लगा, उसका प्रचार बढ़ना स्वाभाविक था। कल्पसूत्र के रचयिता आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं। इस सूत्र के तीन विभाग हैं— १. जिन-चरित्र जिसमें पश्चानु पूर्वी से भगवान महावीर की जीवनी विस्तार से, तदनन्तर पार्श्वनाथ, नेमीनाथ, आदिनाथ इन तीन तीर्थंकरों का चरित्र संक्षेप से वर्णित है। दूसरा अधिकार स्थविरावली का है, जिसमें भगवान महावीर से लेकर देवगणिक्षमा श्रमण तक के आचार्यों की परम्परा विस्तार से वर्णित है। तीसरे अधिकार में साधुओं की समाचारी है। विद्वानों की राय में यही ग्रंथ का मूल भाग है। श्रावकों के लिये तो पहिले के दो अधिकार ही श्रवणीय एवं विशेष उपयोगी हैं। कई विद्वानों की राय में जब से श्रावकों के समक्ष इस सूत्र का वाचन प्रारम्भ हुआ तभी पीछे से ये प्राथमिक दो विभाग बढ़ाये गये होंगे। कल्प-सूत्र का वाचन श्वेताम्बर जैन समाज में प्रति-वर्ष पर्युषणों के दिनों में विभिन्न रूप से होता है। शताब्दियों से इसका प्रचार अधिक रहने के कारण संस्कृत एवं लोक-भाषा में इस ग्रंथ की शताधिक टीकायें लिखी गई। यावत् जैन ग्रंथों में सबसे अधिक टीकायें इसी ग्रंथ पर लिखी गई है। १३वीं शताब्दी से इन टीकाओं की रचना प्रारम्भ होती है। वैसे निर्युक्ति आदि कुछ प्राचीन टिप्पण भी मिलते हैं। १७वीं शताब्दी से तो इसपर खूब टीकायें लिखी गई और अब भी यह क्रम जारी है।

पर्युषणी के अष्टाह्निका महोत्सव का अंतिम एवं प्रधान दिन सांवत्सरिक पर्व है जो बहुत प्राचीनकाल से भाद्रपद शुक्ला ५मी को मनाया जाता रहा है। कालिकाचार्य ने एक नरेश की असुविधा के कारण ५मी के स्थान पर चतुर्थी को सांवत्सरिक पर्व की स्थापना की और तबसे श्वेताम्बर जैन-समाज के बहुत से गच्छ (समुदाय) इसी परिवर्तन को अपनाते हुए चले आ रहे हैं। कई पंचमी को सांवत्सरी पर्व मनाने के पक्ष में भी हैं। सांवत्सरिक जैसे महत्वपूर्ण वार्षिक पर्व का दिन परिवर्तन कर देने की स्मृति में कालिकाचार्य की कथा भी कल्प-सूत्र के साथ सुनाई जाने लगी फलतः इस कथा के भी पचासों रूपांतर जैन विद्वानों के रचित प्राप्त हैं। डाक्टर नोर्मल ब्राउन ने 'स्टोरी आफ कालक' नामक ग्रंथ में इस कथा के कई रूपांतर और विविध चित्रित-प्रतियों के फोटो प्रकाशित किए हैं। तदनन्तर साराभाई नवाब ने "कालिकाचार्य कथा संग्रह" नामक एक संग्रह ग्रंथ भी प्रकाशित किया है। कालिकाचार्य नाम के तीन-चार जैनाचार्य हो गये हैं। अतः नाम-साम्य के कारण एक दूसरे की घटना का मिश्रण ऐसे रूप में हो गया है जिससे तथ्य को निकालने में एक बड़ी समस्या उपस्थित हो गई है। मुनि कल्याणविजयजी ने प्राचीन ग्रंथों के आधार से कुछ तथ्य पूर्ण बातें अपने द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ में प्रकाशित अपने लेख में प्रकाशित की है। इस लेख में भिन्न २ कालकाचार्यों की घटनाओं का विश्लेषण किया गया है।

कल्पसूत्र और कालिकाचार्य कथा की १३वीं शताब्दी से चित्रित रूप में भी अनेक प्रतियां मिलती हैं। १५वीं, १६वीं शताब्दी में तो ऐसी सचित्र प्रतियां तैयार करवाने का खूब ही प्रचार रहा है। स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी प्रतियां भी १५वीं शताब्दी से प्रचुर परिमाण में लिखी गई। जिनमें से प्रस्तुत लेख में विवेच्य प्रति भी एक है।

स्वर्णाक्षरी व रूप्याक्षरी प्रतियों को लिखने के लिये स्याही भी एक विशेष प्रकार से बनाई जाती है। सोने और चांदी के वर्क को एक खल में डाल करके धूल-कचरे रहित धव के गूंद के पानी को डालकर घोटाई की जाती थी, वर्क को पूरी तरह से घुट जाने पर उसमें मिश्री का पानी डालकर हिलाया जाता है, जब सोने-चांदी का चूर्ण नीचे बैठ जाता है तो ऊपर के पानी को आहिस्ते २ निथारकरके कईबार में निकाल दिया जाता है। उस समय यही ध्यान रखा जाता है कि सोने-चांदी के वर्क का अंश उस पानी में न चला जाय।

चांदी की स्याही से लिखी हुई प्रतियां अधिक दिनों तक वैसी तेजदार नहीं रहती। चांदी का तेज आहिस्ते २ मन्द हो जाता है, सोने की स्याही में वैसा नहीं होता। इसलिये और वैसे भी सोने की स्याही का आकर्षण सोने के अधिक मूल्यवान होने से ज्यादा रहता है अतएव रौप्याक्षर प्रतियां बहुत कम लिखी गई हैं। जो थोड़ीसी रौप्याक्षरी प्रतियां मेरे अवलोकन एवं जानकारी में आई हैं उनका संक्षिप्त परिचय में 'आजकल' के अप्रेल १९५२ में प्रकाशित अपने लेख में दे चुका हूं। स्वर्णाक्षरी प्रतियां बहुत सी मिली हैं। जिनके सम्बन्ध में बहुतसी जानकारी इकट्ठी कर रखी है। कभी स्वतन्त्र लेख द्वारा उसे प्रकाश में लाई जायगी।

कल्पसूत्र एवं कालिकाचार्य कथा की जो १५वीं १६वीं शताब्दी में लिखित बहुत-सी प्रतियां मिली हैं, वे विभिन्न स्थानों में लिखी एवं चित्रित की जाने पर भी उन सबकी लेखन चित्र-शैली लगभग एक-सी है। यह चित्र शैली ताडपत्रीय प्रतियां, जो कि १२वीं शताब्दी से सचित्र रूप में मिलने लगती हैं उन्हीं से परम्परागत चली आ रही है। इस १५-१६ शती के काल में वह सर्वत्र रूढ़-सी हो गई प्रतीत होती है। १७वीं शताब्दी में राजपूत व मुगल चित्र शैली ने अपना प्रभाव बढाया। इससे पूर्ववर्ती चाहे वह प्रति गुजरात, मालवे, राजस्थान और उत्तर-प्रदेश कहीं भी चित्रित की गई हो, चित्रशैली सर्वत्र एक-सी ही मिलेगी। माण्डवगढ में लिखी गई जिस प्रति के लिखाने वाले का परिचय प्रस्तुत लेख में दिया जा रहा है, उसके बहुत से पत्र नहीं मिले। इसलिए उसमें चित्र कितने थे नहीं कहा जा सकता? कल्पसूत्र की प्रतियों में चित्रों की कमी बेसी भी पाई जाती है। कई प्रतियां २०-३० चित्रों वाली हैं तो ऊपर में चित्रों की संख्या ६०-७० तक पहुंच गई है। सचित्र कल्पसूत्र के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से डाक्टर नोर्मनब्राउन का संस्करण पाश्चात्य-देश में छपने के कारण बहुत सस्ता व सुन्दर है। वैसे देवचन्द लालाभाई पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत से २० वर्ष पूर्व सचित्र कल्पचित्र कालिकाचार्य कथा के साथ प्रकाशित हुआ था जो ८ रुपये तक में मिलता था। तीसरा संस्करण साराबाई नवाब अहमदाबाद वालों ने प्रकाशित किया था जिसका मूल्य २०) रुपये था। अभी उसका नया परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित हुआ है जिसका मूल्य २००) रु० रक्खा गया है।

स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र की कई-कई प्रतियों में लिखाने वाले श्रावक के वंश परम्परा की प्रशस्ति व जिनके उपदेश से वह प्रति लिखाई गई या जिस गुरू को वहराई गई उनके गुरू परम्परा की प्रशस्ति बडे विस्तार से लिखी मिलती है। इन प्रशस्तियों की रचना जैन मुनियों ने की। अधिकांश प्रशस्तियां जो विस्तृत हैं पद्य में लिखी गई हैं, थोड़ी गद्य में भी लिखी मिलती हैं। प्रस्तुत लेख में विवेच्य माण्डवगढ के मन्त्री जसधीर की लिखाई हुई प्रति की प्रशस्ति अभी तक उपलब्ध सभी स्वर्णाक्षर प्रतियों से अधिक बडी है। वैसे स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी के अतिरिक्त अन्य सुन्दराक्षरों में लिखित अन्य प्रतियों के अंत में भी लिखाने वाले श्रावक और उनके गुरू परम्परा के परिचय देने वाली बडी २ प्रशस्तियां लिखी मिलती हैं। इन प्रशस्तियों से अनेक ऐतिहासिक बातें प्रकाश में आती हैं। श्रावकों के कुलवंश गोत्र प्रसिद्ध पुरखाओं, उनके सुकृत्यों के इतिवृत्त के साथ उस समय के शासक--राजाओं, नगर, ग्रामों व श्रावकों का उन राजाओं से सम्बन्ध, इसी प्रकार जैनाचार्यों के गच्छ, गुरू परम्परा, उस परम्परा में होने वाले विशिष्ट विद्वानों एवं प्रभावक आचार्यों के कार्य कलापों का वर्णन, राजा आदि से उनके सम्बन्ध इत्यादि अनेकों बातों पर इन प्रशस्तियों द्वारा अपूर्व प्रकाश मिलता है। ऐसी ताडपत्रीय प्रतियों की प्रशस्तियों का एक संग्रह मुनि जिनविजयजी ने सम्पादित कर सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित किया है। दूसरा संग्रह देश विरति धर्माराधक सभा अहमदाबाद की ओर से प्रकाशित

हुआ था। दिगम्बर समाज की ओर से आमेर और आरा के सरस्वती भण्डार के ग्रन्थों की प्रशस्तियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है पर उनमें ग्रन्थकार की रचना प्रशस्तियां अधिक हैं। लेखन पुष्पिकायें हैं, वे अधिकांश गद्य में और छोटे रूप में हैं। थोड़ी-सी पुष्पिकायें बड़ी हैं पर श्वेताम्बर समाज की प्रशस्तियां उनसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। कल्पसूत्र की जिस प्रशस्ति का ऐतिहासिक सार नीचे दिया जाता है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ काव्य की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। इसमें मालव और मण्डप-दुर्ग का वर्णन अलंकारिक ढंग से ११ श्लोकों में दिया गया है। प्रशस्ति का सार इस प्रकार है।

प्रशस्ति के प्रथम पद्य में मण्डप दुर्ग के जिनालयों में स्थापित पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ को नमस्कार करके ५ श्लोकों में क्रमशः आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमीनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी इन पांच तीर्थंकरों का वर्णन किया गया है। सातवें श्लोक में गुरू चरणों को नमस्कार कर सौवर्णाक्षरी कल्पसूत्र की प्रशस्ति की रचना करने का उल्लेख करते हुए प्रति को लिखाने वाले श्रावक के वंश का विस्तृत परिचय इस प्रकार दिया है--

ढिल्ली में श्रीमाल वंश बहकटा गोत्रीय संघ मुख्य शालिग नामक श्रावक निवास करते थे। उनकी पत्नी लक्ष्मी की कुक्षि से जसधर उत्पन्न हुए। जसधर की पत्नी पद्मश्री से तवल्हिण तथा कुलधर नामक दो पुत्र हुए। इनमें से कुलधर के सीहा, हेमा, सोमा और गोमा नाम के चार पुत्र हुए। जिनमें सीहा ढिल्लीपति ग्यास साहि के टंकशाली हुए। आपके शीलवती गोरी नामक भार्या थी। इतना परिचय देकर १७वें श्लोक से बिना कुछ सम्बन्ध जोड़े ही २७वें श्लोक तक मालवे के मण्डप-दुर्ग का कवि वर्णन करने लगता है।

मंडप दुर्ग में सोम के पुत्र जसधवल निवास करते थे, सम्भव हैं ये सोम उपर्युक्त कुलधर के पुत्र सोमा ही हो और दिल्ली से आकर ही यहां रहने लगे हों। इसी से कवि ने दिल्ली के सीहा का वर्णन छोड़कर एकाएक मंडपदुर्ग के सोम के वंश का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है, वास्तव में यह प्रति उसी के वंशज जसधीर ने लिखाई है इसलिये कवि को मुख्य-रूप से इसी के वंश का वर्णन करना अभिप्रेत था, दिल्ली का वर्णन तो पूर्व परम्परा दिखलाने के लिये ही किया गया है।

सोम के पुत्र जसधवल की पत्नि कमलाबाई से जगसिंह नामक पुत्र हुआ। जसधवल के भ्राता तथा सोम के द्वितीय पुत्र जीणा के जालहा नामक पुत्र हुआ। इधर जगसिंह की पत्नी हीरू की कुक्षी से जसवीर संज्ञक पुत्र हुआ जो ग्यास साहि के यौवराज्य में प्रधानता प्राप्त था। जसवीर के सन-खत, ललितादेवी, स्याणी और हंसाई नामक चार पत्नियां थीं। जसवीर ने चित्रकूट (चित्तोड) करहेटक (करहेडा) नागहृद (नागदा) देवकुलपाटक (देलवाडा) कुंभलमेर राणपुर (राणकपुर) तीर्थ एवं वसन्तपुर (सीरोही राज्य) आदि के चैत्यों की स्नात्रोत्सव आदि भक्ति की। सं० १५११ में संघ के साथ तीर्थ-यात्रा कर उसने संघपति पद प्राप्त किया। आपने जीरापल्ली (जीरावल्ला) अर्बुद-गिरि (आबू) इन दो तीर्थों की यात्रा करके भी अपना जीवन-धन सफल बनाया। महाराजा कुंभा ने जिनकी ललाट पर संघपति-पद का तिलक किया था। इस महाराणा ने ५० से अधिक बार संघपति स्थापित किये थे।

संघपति जसवीर के हरखू, देऊ और सुहगी नाम की तीन पुत्रियां थीं। जिनमें से हरखू ने धारा नगरी में आदिनाथ प्रभु का मनोहर बिम्ब स्थापित किया था। देऊ संघपति पाहुराज की पत्नि थी। जिसने विधिवशः सम्यक्त्व और वृत्तादि धर्म की-आराधना और उपासनादि-द्वारा धर्म की प्रभावना की थी। तीसरी पुत्री सुहगू राजमल को ब्याही थी, उसकी कुक्षी से संघपति जावड[1] पैदा हुए थे, जिन्होंने मंडप-दुर्ग में बावडियां, कुवे, तालाब, कुंड आदि पर जीव रक्षार्थ चोकियां बैठाई थी और रौप्य, स्वर्ण और मणि के जिनबिम्ब बनवाये थे। ये संघ-पूजा सम्यक्त्व एवं शील में बड़े दृढ़ थे। प्रतिष्ठा के समय आपने प्रचुर द्रव्य धार्मिक-कार्यों में व्यय किया था।

उपर्युक्त जसधीर की पत्नी ललतादेवी से जसधीर नामक पुत्र हुआ। संघपति जसधीर के झमकू, कुंवरी, चम्पाई और मेलादेवी ये चार पत्नियां थीं, इनमें झमकू के सरस्वती और पूरी नामक दो पुत्रियां उत्पन्न हुईं। सरस्वती संघपति मंडण के पुत्र जावड़ से ब्याही गई थी। इसके गंगा नामक पुत्री हुई थी। झमकू की दूसरी पुत्री "पूरी" सहस्त्रमल को ब्याही गई उसके सहिमल, पृथ्वीमल और संग्राम नामक तीन पुत्र हुए।

---

[1] इनका विशेष परिचय और किसी लेख में दिया जायगा।

जसधीर ने पुंडरीक-गिरि (शत्रुंजय) रैवत-गिरि (गिरनार) अन्तरी (पार्श्वनाथ) इलादुर्ग (ईडर) पोसीनक, वाडववाटिका, सिरोही, नन्दीपुर (नान्दिया) के जिनालयों में स्नात्र-पूजा, ध्वज दंड आदि के रोपन द्वारा जिन भक्ति करके धर्म प्रभावना की। जावड़ के साथ उसने जीरा, पल्ली और अर्बुद तीर्थ की भी यात्रा की। सं० १५४४ के विकराल, दुष्काल, के समय मंडपदुर्ग में इन्होंने सत्राकार (दानशाला में दान) किया। संघ-पूजा के समय जिन्होंने श्वेताम्बर साधुओं को सुन्दर वस्त्रों की पहिरावणी की। दुष्काल के बीत जाने पर महाजनों को उसने बागे पहनाये और श्राविकाओं को कसुम्बे रंग की चुनड़ी आदि वस्त्र पहिनाये। इस प्रकार उसने धन-धान्य वस्त्रादि से दीन-हीन व साधर्मियों की भक्ति की। मुनियों से उसने कल्प-सूत्र बँचवाया। इसी प्रकार मुनि-पद गणि पद के नन्दी उत्सव और साधर्मियों के वात्सल्य में उसने बहुत-सा धन खर्च किया। उस जसधीर सुश्रावक के जागा नामक भतीजा पुत्र के समान सेवा करने वाला हुआ।

इस प्रकार ६५ श्लोकों तक में उपर्युक्त वर्णन करके ६६ वें से जसधीर के गुरु परम्परा का वर्णन प्रारम्भ किया है।

भगवान महावीर के शासन्ता के संचालक आर्य-सुधर्मा के वंश में उद्योतन सूरि नामक आचार्य हुए। उनके शिष्य वर्धमान-सूरि ने आबू के ऋषभ बिम्ब की स्थापना की। इनके शिष्य जिनेश्वर सूरि ने पाटण में नृपति दुर्लभराज से खरतर विरुद प्राप्त किया। इनके शिष्य जिनचन्द्र सूरि व अभयदेव-सूरि हुए। अभयदेव-सूरि ने जैनागम नव अंगों पर टीका बनाई और स्तंभन पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट की। इनके पट्टधर जिनवल्लभ-सूरि और उनके पट्टधर जिनदत्त-सूरि हुए जो युग-प्रधान आचार्य थे। इन्होंने ६४ योगनियों को जीता था। इनके शिष्य जिनचन्द्र सूरि और उनके पट्टधर क्रमशः जिनपति-सूरि, जिनेश्वर-सूरि, जिनप्रबोध-सूरि, जिनचन्द्र-सूरि, जिनकुशल सूरि और जिनपद्म-सूरि हुए। जिन पद्मसूरि का विरुद "बाल धवल सरस्वती" था इनके पट्टधर क्रमशः जिनलब्धि-सूरि, जिनचन्द्र सूरि, जिनोदय-सूरि, जिनराज-सूरि, जिनभद्र-सूरि, जिनचन्द्र सूरि और उनके पट्टधर जिनसमुद्र सूरि हुए। जसधर इन्हीं का भक्त श्रावक था।

उपर्युक्त जिनकुसल-सूरि की परम्परा में उपाध्याय विनयप्रभ, विजयतिलक, क्षेमकीर्ति, क्षेमहंस और उनके शिष्य सोमध्वज हुए। जिनके भावराज और क्षेमराज नामक दो शिष्य थे। सोमध्वज के उपदेश से प्रस्तुत स्वर्णाक्षरी सचित्र कल्प सूत्र लिखाया गया। श्रावक जसधीर या उसकी पत्नि ने पंचमी तप की आराधना करके उद्यापन किया था। जिस उद्यापन में झलमल, पुस्तक, पुट्टक, जपमाली, लेखनी, चांदी की दवात, चन्द्रवा, झल्लरी, कलश, स्फटिक मोती और विद्रुम की जयमाला, चाँदी की वासकुपी, अष्ट मंगलिक, रेशमी वस्त्र के विटांगणे आदि पांच-पांच वस्तुएं रखी गई थी उसने एक करोड़ नमस्कार मंत्र का जाप किया। छमासी, रोहिणी, मौन एकादशी आदि व्रत आराधन कर उद्यापन के साथ उन्हें पूरा कर अपने जन्म को सफल बनाया। सं० १५५५ के फाल्गुन मास में इस स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र की प्रति को लिखवाकर संघपति जसधीर की भार्या कुंवरी ने सोमध्वज गुरु को भेंट की। गुरु के आदेश से शिवसुन्दर मुनि नें उपर्युक्त वर्णन वाली प्रशस्ति बनाई। प्रशस्ति का सार यहीं समाप्त होता है।

इस प्रशस्ति के रचयिता शिवसुन्दर वाचक क्षेमराजजी के शिष्य थे। इनके रचित गौतम पृच्छाव बालाबोध (रचना सं० १५६९ खीमसर) लुम्पक मत निर्लोठन-रास (सं० १५६५) एवं कई स्तोत्र आदि हमारे संग्रह में हैं। इनके गुरु खेमराजजी तो बहुत अच्छे विद्वान तथा प्रतिभा शाली कवि थे। संस्कृत भाषा में आपने उपदेश सप्ततिका नामक स्वरचित प्राकृत-ग्रंथ पर सं० १५४७ में हिसार के श्रीमाली दोवासाह के आग्रह से विस्तृत टीका बनाई, जो जैन आत्मानन्द-सभा भावनगर से प्रकाशित हो चुकी है। उक्त संस्था द्वारा इस ग्रंथ का गुजराती भाषांतर भी छप चुका है। आपने पृथ्वी पवन-दहन आदि पर संस्कृत में द्वात्रिंशिकाये लिखी है। जिनकी अपूर्ण प्रति बीकानेर के भुवन भक्ति भंडार में प्राप्त है। राजस्थानी भाषा में आपके रचित श्रावक-विधि चौपाई (सं० १५४६) इक्षुकार चौपाई, फलोधी पार्श्वनाथ रास, चारित्र मनोरथ माला, नमीराज चौ०, मेतार्य चौ०, तेरेली-पुत्र चौ० जिनपालित जिनरक्षक चौ०, चौबीसी, मण्डपाचल चैत्य परिपाटी और अनेक स्तवन आदि प्राप्त हैं। इनमें से मंडपाचल चैत्य परिपाटी में मांडवगढ़ के जैन मंदिरों का वर्णन होने से महत्व-पूर्ण है। मांडवगढ़ के जैन मंदिरों के सम्बन्ध में फिर कभी प्रकाश डाला जायगा।

ग्रामगीत : लोकगीत : जनगीत

[पारिभाषिक प्रयोग पर विचार]

श्री श्याम परमार एम. ए., एल. टी.

राजस्थानी लोक-साहित्य के उन्नायक स्वर्गीय श्री० सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी लोकगीत' (संवत् १९९९) पुस्तिका के प्रारम्भिक पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में 'लोकगीत' एवं 'ग्रामगीत' शब्दों के समानार्थी प्रयोग के विषय में लिखते हुए हिन्दी में उस समय तक की इस प्रचलित मान्यता को कदाचित् प्रथम बार भंग करने का प्रयत्न किया। आपने लिखा है--

"कुछ लोगों ने लोकगीतों को 'ग्रामगीत' भी कहा है। परन्तु हमारे ख्याल से लोकगीतों को ग्राम की संकुचित सीमा में बाँधना उनके व्यापकत्व को कम करना है। ग्राम और नगरों के भेद अर्वाचीन काल में बढ़े हैं। गीतों की रचना में ग्राम और नगर का इतना हाथ नहीं है जितना कि सर्व-साधारण का--'लोक' का।" [1]

इससे स्पष्ट है कि लगभग दस वर्ष पूर्व हिन्दी में 'ग्रामगीत' शब्द प्रचार में आ गया था। इससे बहुत पहले पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने 'ग्रामगीत' शब्द का ही प्रयोग किया है। किन्तु पारीकजी ने सन् १९३८ में राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित राजस्थानी गीतों के बृहद संग्रह को 'राजस्थान के लोकगीत' [2] शीर्षक से ही अभिहित किया। यद्यपि इसके चार वर्ष पूर्व राजस्थान के श्री जगदीशसिंह गेहलोत द्वारा संकलित मारवाड़ी गीतों का शीर्षक 'मारवाड़ी ग्रामगीत' ही था। अतएव सन् १९४० के लगभग 'ग्रामगीत' और 'लोकगीत' शब्दों के व्यहृत प्रयोग-विषयक प्रश्न का उठ आना स्वाभाविक था। यह प्रश्न मूलतः 'लोक' शब्द से सम्बन्धित रहा। इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेजी के 'फोक' (Folk) शब्द के पर्याय स्वरूप हिन्दी में अन्य प्रांतीय भाषाओं की भांति 'लोक' शब्द का व्यवहार आरम्भ हुआ। अंग्रेजी में 'फोक' का अर्थ है लोग, राष्ट्र, जाति, सर्व साधारण अथवा वर्ग विशेष। इसी शब्द से बने 'फोक लिटरेचर', 'फोकलोअर', 'फोकटेल्स', 'फोकसांग' आदि शब्दों के अनुरूप 'लोक-साहित्य', 'लोक-वार्ता', 'लोक-कथा', 'लोक-गीत' आदि शब्द हिन्दी में गढ़े गये। पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "'लोक' शब्द का अर्थ--नगरों और ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है। जिसका आधार पोथियाँ नहीं हैं।" [3] इसी व्यापक अर्थ में गीत के साथ 'लोक' शब्द जोड़ा जाना अभीष्ट प्रतीत होता है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने सन् १९२४ के पश्चात उत्तर-भारत में गीत-संकलन का आंदोलन आरम्भ किया। वे सन १९२७ (८ नवम्बर) को प्रयाग से बम्बई रवाना हुए। वहां जाकर आपने गुजराती और मराठी गीतों की पुस्तकें खरीदीं। तब तक मराठी और गुजराती में 'लोक-गीत' शब्द का प्रयोग होने लगा था। विशेषतः गुजराती में यह शब्द बहुत परिचित-सा हो चुका था। क्योंकि श्री झवेरचन्द मेघाणी के सद्-प्रयत्नों से लोक-साहित्य की ओर सन '२३ के पहले ही गुजराती विद्वानों की दृष्टि जा चुकी थी। उक्त सन में प्रकाशित श्री मेघाणीजी की पुस्तक 'सौराष्ट्र नी रसधार' के प्रथम भाग के 'बे-बोल' (दो शब्द) में इस प्रकार के पूर्व प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है। और सन १९३० के लगभग रणजीतराय मेहता-लिखित ग्रंथ 'लोक-साहित्य' के नाम से ही प्रकाश में आ चुका था। श्री देवेन्द्रसत्यार्थी जो इन दिनों अपने लेखों द्वारा प्रसिद्ध हो रहे थे, सन् ३६ तक 'ग्रामगीत' शब्द का ही प्रयोग करते रहे।[4] इस सन् के काफी पहले भी

---

[1] हिन्दी साहित्य-प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित (प्रथम संस्करण), पृष्ठ--१।

[2] यह ग्रंथ दो भागों में प्रकाशित है। श्री पारीक के अतिरिक्त ठाकुर रामसिंह एवं नरोत्तम स्वामी भी इसके सम्पादक हैं।

[3] 'जनपद' त्रैमासिक (अंक १), लोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ६६।

[4] देखिए 'हंस' (फरवरी, १९३६) में प्रकाशित श्री देवेन्द्रसत्यार्थी का लेख-- 'हमारे ग्राम-गीत'

त्रिपाठीजी का गीत संग्रह 'कविता-कौमुदी' (५वां भाग) प्रकाशित हुआ था।[५] उसमें 'ग्रामगीत' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है–'लोकगीत' का तो संकेत भी नहीं है। उसमें अंग्रेजी के 'फोकसांग' का उल्लेख अवश्य है, जिसका हिन्दी अनुवाद आपने 'ग्रामगीत' ही किया है। श्री रवि ठाकुर द्वारा लिखित एक पत्र में प्रयुक्त 'रूरल सांग' (Rural Song और 'फोकलिटरेचर' (Folk-literature) के पर्याय श्री त्रिपाठीजी ने क्रमशः 'ग्रामगीत' और 'ग्राम-साहित्य' लिखे हैं : अतः 'फोकसांग' और 'रूरलसांग' दोनों ही त्रिपाठीजी के अनुसार 'ग्रामगीत' ही हैं। इतना ही नहीं आपने श्री लाजपतराय द्वारा प्रयुक्त 'फोकलोअर' (Folklore) का अनुवाद भी 'ग्रामगीत' ही किया है।[६] डॉ० सत्येन्द्र ने 'फोकसांग' के लिए 'ग्रामगीत' और 'फोक-लोअर' के लिए 'गीतकथा' का प्रयोग किया है।[७] इन शब्दों के निश्चित प्रयोग की समस्या अधिकांश में आज भी बनी हुई है। आज भी भूल से लोकगीत को 'ग्रामगीत' और लोक-साहित्य को 'जन-साहित्य' कहा जाता है।[८] अस्तु। जहां तक हिन्दी का प्रश्न है श्री त्रिपाठीजी का 'ग्रामगीत' के प्रति विशेष मोह है। उन्होंने इस विषय पर कुछ दिनों पूर्व पुनः विचार किया और 'ग्रामगीत' शब्द को ही अधिक उपयुक्त बताया है आपने लिखा है-'मैंने गीतों का नामकरण ग्रामगीत शब्द से किया है। क्योंकि गीत तो ग्राम की सम्पत्ति हैं; शहरों में तो वे गये हैं, जन्मे नहीं; फिर ग्रामों का यह गौरव उनसे क्यों छीना जाय?...... ग्रामगीत तो शहरों में भी प्रत्येक संस्कार में, जातीय त्यौहारों और सार्वजनिक उत्सवों में गाये जाते हैं। इससे मैं उचित समझता हूं कि गांवों की यह यादगार 'ग्रामगीत' शब्द द्वारा स्थायी हो जाये।"[९]

गांवों के प्रति विशेष प्रेमवश भावना प्रधान होकर वह य भी कह जाते हैं कि "मेरी राय में ग्रामगीत किसी पुरु या स्त्री विशेष की रचना नहीं है, बल्कि स्वयं प्रकृति क गान है" और "वेदों की तरह 'ग्रामगीत' भी अपौरुषे है।"[१०] अपने इस भावावेशी कथन को आगे की पंक्तियों में व्यवस्थित करते हुए शहरी जनता द्वारा इस गौरव क व्यर्थ लूटा जाना उन्हें स्वीकार नहीं, क्योंकि 'लोक गीत' 'लोक' के संयोग से बना है और उसका तात्पर्य शहरी और ग्रामीण दोनों जनता है। पर चूंकि गीतों के रचयिता गाँव वाले हैं तो शहरी लोगों को व्यर्थ श्रेय क्यों दिया जाय। "अतएव मैं फिर भी यह उचित समझता हूं कि लोक गीत की अपेक्षा 'ग्राम गीत' शब्द ज्यादा उपयुक्त और न्याय युक्त है।"[११]

'ढोला-मारूरा दूहा' (संवत १९९१) में लोकगीत 'बेलेड' का पर्यायवाची बताया गया है। लेखक ने 'गीत-काव्य' को भी इसी कोटि में गिना है।[१२] सिजविक ने अपनी संकुचित दृष्टि से इस विषय में अपनी मौलिक परिभाषा दी है। उसके शब्दों में "इट इज ए लोअर एण बिलांगज् टू दी इल्लिटरेट" (यह अनुश्रुति का अंग है और जनता की सम्पत्ति है)।[१३] 'राजस्थान के लोक-गीत' के सम्पादकों ने 'आदिम मनुष्यों के इन्हीं गीतों का नाम लोक-गीत' बताते हुए लिखा है कि "लोकगीत सच्चे काव्य हैं।"[१४] क्योंकि रामचन्द्र शुक्ल की काव्य-विषयक व्याख्या के अनुसार उनके द्वारा 'शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा होती है' तथा सृष्टि के नाना रूपों के साथ मनुष्य की भीतरी रागात्मिका प्रवृत्ति का सामंजस्य ही कविता का लक्ष्य है।' इस पारि-भाषिक अनुकरण से लोकगीत स्वभावतः 'काव्य' की संज्ञा पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

कृष्णदेव उपाध्याय ने 'ग्राम गीत' और 'लोक-गीत' दोनों को दो भिन्न कोटि में माना है। आपके अनुसार 'फोक सांग' 'ग्राम गीत' हैं और 'बेलॅड' 'लोक-गीत'

---

[५] प्रथम संस्करण संवत १९८६ में प्रकाशित हुआ।

[६] देखिए त्रिपाठीजी को लिखे गये पत्र, कविता-कौमुदी (५वां भाग), पृष्ठ ७७, ७८।

[७] ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ४६।

[८] देखिए काकाकालेलकर लिखित 'जीवन विहार' (१९४७) पुस्तक (वोरा एन्ड कम्पनी बम्बई) के निबन्ध 'लोक गीत (ग्राम गीत)' तथा 'हमारा लोक साहित्य (जन साहित्य)'

[९] [१०-११] 'जनपद' त्रैमासिक (अंक १), ग्राम-साहित्य, पृष्ठ ११।

[१२] नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित (प्रथमावृत्ति), पृष्ठ ४१।

[१३] ढोला-मारू रा दूहा, पृष्ठ ४०।

[१४] प्रथमावृत्ति, रा. के. ला., पृष्ठ ५।

"ग्राम गीत से मेरा आशय उन गीतों से है जो गेय हैं... लोक गीत वे हैं जो प्रबन्धात्मक हैं और इनमें कथा की प्रधानता है, गान नहीं।"[१५] कमलाबाई देशपांडे के अनुसार मराठी में 'लोक गीत' 'जानपदगीत' एवं 'ग्राम-गीत' तीनों ही शब्द एकार्थी हैं तथापि 'लोक गीत' शब्द ही ज्यादा प्रयोग में आता है।[१६] इसमें संदेह नहीं कि लोक गीत शब्द विपदार्थी है— उसकी व्यापकता में कोई कसर नहीं। अंग्रेजी के एक कोष में 'फोक सांग' का अर्थ है— 'कोई भी गीत या वीर गीत जो लोक में उत्पन्न होकर परम्परा द्वारा दूसरों को सौंपा जाये, या कोई गीत जो इसके अनुरूप लिखा जावे।'[१७] राहुल सांकृत्यायन ने अपनी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक में 'गीत' के स्थान पर 'गीतें' शब्द का प्रयोग किया है।[१८] मराठी में यही शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होता है और अनेक पुस्तकों के शीर्षक में भी राहुल की भांति प्रयुक्त किया गया है जैसे- 'वर्हाड़ी लोक गीतें', 'जानपद गीतें', 'जुनी मराठी गीतें' आदि। हिन्दी के लिए यह प्रयोग अवश्य नया है।

उक्त प्रकरण से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इन दिनों प्रचलित लोक गीत, ग्राम गीत, जन गीत आदि। विभिन्न शब्दों के प्रयोग निश्चित कर लिए जायें। गीत शब्द की व्याख्या तो हिन्दी में बहुत हो चुकी है। अब केवल इसके वंशजों पर विचार करना है।

'लोक' वस्तुतः ग्रामीण एवं नागरिक जन के सामान्य अर्थ में सदैव व्यवहृत होता आया है; अतएव जब 'लोक गीत' का प्रयोग किया जाये तब सामान्य जनता द्वारा उद्भूत मौखिक गीत के ही अर्थ में उसे गृहण किया जाये। इस प्रकार लोक नाट्य, लोक कथा, लोक-साहित्य, आदि शब्दों के अर्थ भी व्यवस्थित हो जाते हैं। लोक भावनाओं का प्रतिबिम्ब केवल ग्राममात्र की जनता से नहीं हो सकता। ग्राम की सीमाएँ संकुचित हैं और ग्राम एवं नगर के भेद को मिटाने वाले 'लोक' शब्द की परिधि दोनों को अपने में समेट लेती है। 'ग्राम गीत' (जैसा कि पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने बताया) ग्राम की सम्पत्ति है और लोक गीत के ही अंतर्गत आते हैं। 'लोक गीत' का सृजन कहीं भी हो सकता है किन्तु 'ग्राम गीत' तो केवल ग्राम में ही जन्म लेते हैं। 'ग्राम-गीत' के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिभाषाएँ विचारणीय हैं--

(१) 'ग्राम गीत आर्येतर सभ्यता के वेद(श्रुति) हैं।'[१९]

—हजारीप्रसाद द्विवेदी।

(२) 'ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार हैं'[२०]

--रामनरेश त्रिपाठी।

(३) 'ग्राम गीत छोटे होते हैं और रचनाकाल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते हैं।'[२१]

—कृष्णानन्द गुप्त

(४) 'ग्राम गीत छोटा ही नहीं बड़ा भी हो सकता है।'[२२]

—डा० सत्येन्द्र

परिभाषाओं की यह खींचतान वस्तु के चित्र को संवारने में कम सहायक होती है। परिवर्तन का प्रभाव निश्चित रूप से नगर और ग्राम की सभ्यता एवं उसके सम्बन्ध पर पड़ता है। अतएव लोक-साहित्य और ग्राम-साहित्य की स्थिति काल-क्रमानुसार बदलती रहती है। मानव-सभ्यता के कृषि-अवस्था में आते ही ग्रामों और नगरों की सभ्यता में भेद उपस्थित हुए, यद्यपि दोनों का सम्बन्ध बराबर बना रहा और दोनों एक-दूसरे को प्रभावित भी करती रहीं। नगर में ग्राम की अपेक्षा किंचित परिष्कृत-रुचि पनपने लगी। परिष्कार की यह स्थिति जब काफी ऊँची उठ गई तो ग्राम और नगर संस्कृति का भेद स्पष्ट दीखने लगा। इससे असंस्कृत (सर्व-साधारण) और संस्कृत (परिष्कृत-जन) ये दो वर्ग प्रगट हुए। लोक-साहित्य इसी समय का

---

[१५] जनपद (त्रैमासिक), भोजपुरी लो. गी., पृष्ठ ३८।

[१६] 'मराठी भाषेंत लोकगीत, जानपद गीत व ग्राम-गीत हे सर्व शब्द एकमेकांचे अर्थी वापरतात. तरी हल्लीं लोकगीत हा शब्द जास्त उपयोगांत येत आहे...' (लेखक को लिखे गये एक पत्र से उद्धृत)

[१७] चेम्बर्स टुवन्टीएथ सेन्च्युरी डिक्शनरी, पृष्ठ ३६५

[१८] 'आदि हिन्दी की कहानियां और गीतें' (फरवरी, १९५१)।

[१९] 'छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय' की भूमिका, पृष्ठ ५।

[२०] कविता-कौमुदी (५वां भाग), ग्राम गीतों का परिचय, पृष्ठ १।

[२१] और [२२] 'ब्रज लोक-सा. का अध्ययन', पृष्ठ ७५।

मौखिक, परम्परा-गत साहित्य है जो सामाजिक स्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। ऋगवेद की ऋचाएँ किसी समय मौखिक थीं। लिपि-बद्ध होकर वे इस मौखिक परम्परा से छूट गईं। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश आदि का अधिकांश साहित्य-परिष्कृत रुचि-सम्पन्न जन के हाथ पड़कर लिपिबद्ध हुआ और इस प्रकार लोक-परम्परा के प्रवाह से एक ओर जाकर लिपित होकर रुक गया। तत्कालीन-स्थिति में वही लोक-साहित्य था, आज नहीं। लोक-गीत, लोक-साहित्य का ही गीत-प्रधान अंग है जिसका उद्भव-नगर और ग्राम के संयुक्त साधारण-जन के मध्य होता है। वही वर्ग 'लोक' है। किन्हीं अंशों में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का संस्कृत-जन भी इस 'लोक' का अंग बन जाता है। अतः ग्राम-गीत इस दृष्टि से लोक-गीत के पूरक ही हैं। एक 'ग्राम-गीत' 'लोक-गीत' हो सकता है, किन्तु 'लोक-गीत' 'ग्राम-गीत' नहीं हो सकता। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में कहीं-कहीं 'जन-गीत' शब्द का प्रयोग लोक-गीत के अर्थ में किया जाता है। किन्तु, 'जन-गीत' विशिष्ट-वर्ग के गीत का द्योतक है। लोक-गीत जिस प्रकार लोक-साहित्य का अंग है, उसी प्रकार जन-गीत भी जन-साहित्य के अन्तर्गत है। जन-साहित्य की व्याख्या करते हुए श्री नामवरसिंह ने लिखा है–"जन-साहित्य औद्योगिक-क्रांति से उत्पन्न समाज-व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य-जन का साहित्य है। इसलिए जन-साहित्य लोक-साहित्य से इसी अर्थ में भिन्न है कि लोक-साहित्य जहां जनता के लिए जनता ही द्वारा रचित साहित्य है, वहां जन साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है।"[२३] यही व्याख्या जन-गीत और लोक-गीत पर लागू होती है। इसी तुलनात्मक प्रसंग में यदि मराठी की लेखिका सौ० मालती दांडेकर के लोक-साहित्य सम्बन्धी दो तथ्यों का उद्धृत किया जाना अनिवार्य प्रतीत होता है।

"हें साहित्य लोकांनींच रचलें, लोकांसाठींच व लोकां संबंधींच तें रचलें गेलें म्हणून लोकांचे लोकांसाठींच रचलें गेलेलें व लोकांनींच रचलेलें तें लोक साहित्य."[२४] श्री नामवरसिंह ने अपनी व्याख्या में यह स्पष्ट बताया है कि लोक-साहित्य का रचयिता लोक-समाज के भावों की अभि-व्यक्ति का माध्यम मात्र है। उसका व्यक्तित्व लोक भावों में तिरोहित होकर लोक-स्वरूपी हो जाता है। जन साहित्य के रचयिता का व्यक्तित्व अपना वैशिष्टय नहीं खोता। उसका साहित्य 'लोक-साहित्य की तरह मौखिक नहीं होता बल्कि प्रेस द्वारा मुद्रित और प्रकाशित होता है। संक्षेप में, 'जन-साहित्य' शिष्ट व्यक्ति द्वारा रचा हुआ वह साहित्य है जो सह-संवेदना के फल स्वरूप सामान्य जन के लिए अभिव्यक्त होता है।"[२५] दुहराने की आवश्यकता नहीं कि यही भेद 'लोक गीत' और 'जन गीत' पर घटित होता है।

लोक गीत का सृजन संगीत के माध्यम से लोक-रंजक होकर परम्परा में सम्मिलित होने के क्रम में व्यक्ति और समष्टि के भेद को नष्ट कर देता है। किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा निर्मित कोई गीत जन मानस को आंदोलित कर उसके स्पन्दन के स्वरों से मेल खाने लगे और कालान्तर में उसी भांति अथवा थोड़े परिवर्तन के साथ जीवित रहे तथा निरन्तर प्रयोग में आता रहे तो वह गीत 'लोक गीत' ही कहलायेगा। उसे 'लोक गीत' की संज्ञा इतिहास और प्रयोग के सहारे प्राप्त होगी। मूल में कोई गीत लोक गीत नहीं कहा जायगा। परिस्थित-वश समाज में अनुष्ठान अथवा औपचारिक मूल्य पाकर विशेष संस्कृति की पृष्ठ-भूमि में ही वह लोकगीत बनता है। प्रत्येक गायक अथवा गीत-निर्माता के साथ कर्म-रती समाज होता है। समाज की प्रतिक्रिया गायक अथवा गीत-निर्माता पर होती है। यह समाज ग्राम अथवा नगर कहीं का भी हो सकता है। यदि व्यक्ति-प्रसूत कोई गीत समाज के भावों को आन्दोलित कर टिक गया तो कालान्तर में यही लोक गीत होगा, इसमें संदेह नहीं।

अस्तु, 'लोक गीत', और 'जन गीत' शब्दों का पारस्परिक भेद लोक साहित्य के प्रति बढ़ती हुई रुचि को देखते हुए ध्यान देने योग्य है।

---

[२३] जनपद त्रैमासिक (अंक २), पृष्ठ ६३-६४।

[२४] लोक साहित्याचें लेणें (१९५२), ओळख, पृष्ठ १

[२५] जनपद (अंक दो), पृष्ठ ६४।

कलाकार की साधना

श्री अरुणचन्द्र गुहा

तक्षशिला के राज मार्ग पर शिल्पी कलाविद का कला भवन है। कलाविद तरुण है। शरीर और मन में यौवन की उमङ्ग है, जीवन के वसन्त काल की मोहकता है। शिल्पी की स्वप्नमय दृष्टि है। अभी तक यह राजधानी के कोलाहल में खोया नहीं था। यह तो अपने भवन की अटारी पर दूर दूर के पर्वतों पर दृष्टि लगाये बैठा था। घनमालाएं आ आकर पर्वतों के मस्तक पर किरीट पहना रही है। कलाविद किरीट युक्त पर्वतों की ओर घनमालाओं के रङ्गोत्सव की शोभा निहारने में एकतान बना है।

कलाविद मन ही मन विचार करता है कि निरन्तर चलती हुई इस रङ्ग-क्रीड़ा का नायक कौन है? एक ज्वलन्त अग्नि पिण्ड आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रति-दिन घूमता रहता है, और यहाँ चित्र विचित्र रङ्ग क्रीडा होती रहती है। जो रङ्ग इसके अवयवों में दृगत नहीं होता वह इन घनमालाओं के आलिङ्गन के साथ क्षण भर में उत्सव का रूप धारण कर लेता है। नये नये मिलन में वह अपनी प्रिया को रँग देता है। इतना होने पर भी वह स्वयं अविकृत रहता है। यह ज्वलन्त अग्नि पिण्ड, सूर्य और घनमालाओं का यह विचित्र, परन्तु रंगीन मिलन, कलाविद के मानसिक पट पर रंग की तूलिका चलाता जाता है।

ठीक इसी प्रकार इसका मन भी अपने पियामिलन के समय आलिङ्गन द्वारा अपनी प्रिया को रंग देगा।

शिल्प की साधना में इसका यौवन गहराई में सो रहा है। यह अपनी चौपाल की भूमि पर आंख ऊँची करके देखता तक नहीं। परन्तु एक दिन यौवन अपना अधिकार लेकर इसके मन के द्वार पर आ खडा हुआ।.........

अस्ताचल की ओर प्रयाण करते हुए दिनकर की आभा मार्ग में चलने वालों पर पड़ रही थी। इसी आभा में चलती हुई एक मूर्ति उज्ज्वल होकर सामने आई! उसे देख कर ऐसा मालूम होता था मानों विश्व की दशों दिशाओं के सौन्दर्य का एक एक कण एकत्रित कर इस एक मूर्ति की आकृति बनी हो। विस्तृत जनसमूह के मध्य चलती हुई इस युवती की मूर्ति लुप्त हो गई।

इसने सुना था कि देवताओं ने असुरों को मोहित करने के लिये तिल तिल कर सौन्दर्य का संग्रह किया था और तिलोत्तमा की आकृति का निर्माण किया था। साथ ही इसने यह भी सुना था कि एक यूनानी कलाकार ने कई निरुपम सुन्दरियों का एक-एक अंग लेकर हेलेना की मूर्ति बनाई थी।

मानों यह मूर्ति भी इसी प्रकार की है। सम्भवतः इसने इस मूर्ति को पहले भी देखा है, परन्तु इस सौन्दर्यवती को देखकर इसके हृदय की सुप्त वीणा के तार झनझना उठे। आज इसकी आंखों ने देखा कि संसार का समस्त सौन्दर्य आ-आकर इसी युवती में एकत्रित हुआ है।

इसके मन में विद्युत् की चमचमाहट चमक गई। परन्तु रात्रि के निद्रित क्षण एवं दिवस के कर्म कोलाहल में उसका मन इस विद्युत-स्पर्श से कुछ सीमा तक मुग्ध बन गया। इतना होने पर भी इसकी आंखें रह रहकर यह जान रही थी कि मानों वे किसी की प्रतीक्षा कर रही हों, इसीलिये वे मार्ग ही की ओर लगी हुई थीं।

आज भी पहिले के अनुसार पहिली युवती इसके हृदय में एक बिजली दौड़ाकर चली गई। इसके पहिले भी ऐसा ही हुआ था। इस प्रकार प्रतिदिन होता गया और इसकी हृदय-वीणा तीव्रता के साथ झनझना उठी।

इसके पश्चात् सहसा इसे विचार आया कि "कदाचित यह युवती पहिले भी इसी मार्ग पर इसी प्रकार आया करती हो, और बिजली के अनुसार अदृश्य हो जाती हो। परन्तु मैंने इसे नहीं देखा हो, ये सभी दिन व्यर्थ गये। मेरी दृष्टि भी व्यर्थ थीं, क्योंकि वह ऐसे ही इधर उधर घूमा करती थी। इसलिये इन दिनों में मेरी आंखों ने इस चलायमान श्री की प्रतिमा के दर्शन नहीं किये थे।

वह प्रतिदिन खिड़की खोलकर इस शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करता रहता। इस प्रकार एक दिन दोनों की चार

आंखें हुईं। प्रथम दिन तो यह युवती समझ न सकी कि इस प्रकार जो निस्संकोच दृष्टि पड़ी वह आकस्मिक थी या प्रतीक्षमान थी। दूसरे दिन फिर चारों आंखों ने तारा मैत्रक साधा। राज मार्ग के कोलाहल के मध्य में दोनों की आंखों का गुप्त अभिसार हो गया। अन्तिम दिन वह युवती अपनी दृष्टि से आमन्त्रण दे गई।

दूसरे दिन कलाब्धि मार्ग के किनारे पर आ खड़ा हुआ। इसकी लुब्ध दृष्टि नारी के मुख पर जा पहुंची, परन्तु........ इसकी दृष्टि के आलिङ्गन में उस युवती के चेहरे पर रंगों का विचित्र खेल नहीं दिखाई दिया। कलाब्धि को इससे थोड़ा आघात लगा। इसके हृदय में वेदना हो गई, और इसकी दृष्टि पीछी फिर गई। भगवान सहस्त्र-रश्मि के स्पर्श से बादल जिस प्रकार रंगीन बन जाते हैं उस प्रकार इसकी दृष्टि के स्पर्श से युवती की आकृति रंगीन नहीं बनी थी।

दूसरे दिन कलाब्धि ने उस युवती का अनुसरण किया। शिल्पी राज मार्ग से अपने अभिसार में जा रहा था। आगे आगे चलती हुई इसकी प्रिया एक के पश्चात् एक मार्ग पार कर रही थी। इस प्रकार चलते चलते कलाब्धि नगर के अन्तिम छोर तक आ पहुंचा व अकस्मात् चौंक पड़ा, इसे मालूम हुआ कि वह कहां आ गया है। यह युवती कौन है? विचार कर वह खड़ा रह गया। उस नवयौवना ने पीछे फिर कर मन्द मुस्कान के साथ कलाब्धि को दृष्टि से बुलाया।

करुण स्वर में कलाब्धि बोला, "तुम कौन हो? तुम मुझे कहाँ ले आई हो?"

युवती हंस पड़ी और बोली—"तुम राजधानी में रहते हो और मुझे नहीं जानते? मैं विभाषा........"

कलाब्धि बोला—"तू...तू...विभाषा है। नगर की विख्यात गणिका!!"

विभाषा फिर हंस पड़ी और बोली, "आओ मित्र! यह मुझ गरीब की कुटिया है!"

इस हंसी के साथ ही कलाब्धि के चेहरे पर शीतल अपमान की एक राशि मानों बरस पड़ी!

सन्ध्या के समय गोधूलि का अन्धःकार नीचे उतर रहा था। कलाब्धि नगर को पार कर अपने भवन की ओर चल पड़ा और विभाषा अपने विलास भवन की ओर मुड़ी। वहाँ जाकर वह अपने प्रतिदिन के तरल विलास स्रोत में डूब गई। इस स्रोत में कलाब्धि की स्मृति का एक कण भी नहीं था।

इस प्रकार कलाब्धि पुनः अपने निर्जन भवन में आ गया। रात्रि का गाढ़ अन्धःकार धीरे धीरे पृथ्वी पर उतर रहा था। इसकी सारी रात दुःस्वप्न के अनुसार फैल गई। प्रभात हुआ। प्रतिदिन तो यह नवीनता और उत्साह लेकर उठता था। क्लान्त विश्व के लिये जो प्रभात नवीन अर्घ्य लेकर पदार्पण करता है, वही प्रभात आज इसके हृदयतन्त्र पर किञ्चिन्मात्र भी प्रभाव नहीं डाल सका। इसके हृदय में अत्यधिक ग्लानि भर गई थी। किसी भी प्रकार इसके हृदय का विषाद दूर नहीं होता था। आज पुनः इसे स्मृति आई कि इसकी दृष्टि के स्पर्श से उस नारी की आकृति रंगीन नहीं बनी थी।

सुन्दर बादल हैं, सूर्य की किरणे भी सुन्दर हैं, इसीलिये दोनों के मिलन से दोनों का रंगीन रूप उत्साह का रूप धारण कर रहा है। विभाषा के अन्तर्लोक में सौन्दर्य नहीं, इसलिये दोनों की दृष्टि का मिलन होने पर भी रंगीनी नहीं आई, परन्तु इस प्रकार के तर्क वितर्क से इसके मन को सन्तोष नहीं हुआ! हृदय क्षुब्ध बना हुआ था। हृदय की शान्ति खो चुकी थी। कई दिनों के पश्चात् वह चित्र बनाने बैठा परन्तु हृदय ने साथ नहीं दिया, वह राज मार्ग पर चल निकला।

चलते चलते वह भगवान तथागत की अस्थि के धर्मराजिका स्तूप के समीप आ पहुँचा। बुद्ध और बोधिसत्व के जीवन की पवित्र कथा, मन्दिर मूर्ति तथा प्राचीन चित्रों में से एक स्वर निकल रहा था। कलाब्धि ने इस वातावरण में चित्त को शान्त करने का प्रयत्न किया। बोधिसत्व ने ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को पुत्र और कन्या सब अर्पण कर दिया फिर भी देवराज इन्द्र ने आकर उनकी पत्नि भद्री को भी मांगा! अपनी पत्नि के मांगने पर बोधिसत्व को कुछ दुःख अनुभव हुआ, परन्तु उनकी साध्वी पत्नि भद्री अनिमेष दृष्टि से अपने पति की ओर देख रही थी। उसकी दृष्टि में से पुण्यप्रभा झर रही थी जिसके साथ व्यथा का निवेदन भी मिश्रित था। पति ने आज्ञा दी कि "जाओ!" बस आज्ञा होते ही वह ब्राह्मण वेशधारी

इन्द्र के साथ चल निकली। उसकी दृष्टि की पुण्य प्रभा और अधिक उज्वल बन गई और दूसरी ओर वेदना का स्रोत भी झरने लगा !

परन्तु भद्री कौन है? बोधिसत्व की स्त्री! इसी कारण से वह बोधिसत्व के संसर्ग से पुण्यमयी हो गई है। बोधिसत्व ने कौन जाने, जन्म जन्म में कितना पुण्य किया है! कलाब्धि के जीवन के स्पर्श से क्या किसी जीवन में पुण्य प्रदीप प्रकट हो सकता है! अन्तर के गाम्भीर्य में से उत्तर आया-हाँ, प्रकट हो सकता है!

इस विचार के बाद ही वह पुनः विभाषा के भवन में गया। इस समय वह द्वार से पीछा न लौटा। विलास के उपकरणों से सुसज्जित विलासिनी के विलास गृह में कम्पित हृदय से उसने डरते डरते प्रवेश किया, और विभाषा के सामने आ खड़ा हो गया। शिल्पी को देख विभाषा अट्टहास करती हुई बोली —"आगये मित्र, मैं जानती थी कि तुम आओगे ही!"

कलाब्धि बोला, "तूने कैसे जाना कि मैं आऊँगा ही?"

विभाषा ने मन्द मुस्कराहट के साथ कहा--"मैंने तुम्हारे जैसे कई लोगों को देखा है, इसलिये मेरे समझने में भूल नहीं हो सकती।"

कलाब्धि ने कहा —"दूसरे लोग आते हैं; वैसे मैं नहीं आया हूं। मैं तो तुझे लेजाने के लिये आया हूं। चल मेरे साथ। मैं चित्र रंगूंगा, मूर्तियों का निर्माण करूंगा। और तू भी रेशमी चित्रपटों पर भाँति भाँति के चित्र निकालेगी तथा गीत गाकर भगवान बुद्ध को वन्दन करेगी। साथ ही नृत्य द्वारा प्रभु के चरणकमलों में समस्त ग्लानियों के लिये निवेदन करेगी।"

विभाषा ने अट्टहास किया और बोली, "वाह मेरे ये अंग-प्रत्यंग, ये हाथ, ये अँगुलियाँ, क्या इसलिये हैं कि इस प्रकार चित्र निकालने या नाचने का काम करे?...... इसके बदले तुम स्वयं ही मेरे पास आओ; तुम्हारे पास मत्तयौवन है, सुन्दर सौष्ठव-बद्ध देह है, मेरे पास धन है और दूसरा बहुतसा, धन आयगा। मैं तुम्हें अपने हृदय का मित्र बनाऊंगी। जो बाहर के मित्र आवेंगे उन्हें मैं तुम्हारा नव घनश्याम देह बतलाऊंगी। तुम्हारी ये गम्भीर और प्यासी आंखें ये तमाल बाहु, ये चम्पक जैसी अंगुलियां, और इन सब के विनिमय में तुम्हें मेरा नतयौवन तथा मेरी सुन्दर देहलता मिलेगी।" इतना कह कर वह व्यंग्य में हँस पड़ी। उसकी हँसी में उसकी परिचारिकाओं ने भी साथ दिया।

कलाब्धि बोला- "नारी, तू मेरा उपहास कर रही है, मैं कलाकार हूं, मैं सौन्दर्य का उपासक हूं। मैं कामातुर होकर तेरे सामने नहीं आया। मैं तो इसलिये आया हूं कि जो सुन्दरों में श्रेष्ठ है, जो सर्व सौन्दर्य का केन्द्र है, उसके चरणों में तुझे समर्पित कर तेरे अन्तर में से उसे प्रकट करके प्रत्यक्ष करूं.........। आज तो मैं तेरे व्यंग्य को ले जाता हूं।"

विभाषा बोली-"तुम सौन्दर्य के उपासक हो, क्या मेरी देह में भगवान का वास नहीं? मैं रूपोपजीविनी हूं, क्या लेकर मैं इस व्यवसाय में प्रवृत्त हूं, इसका मुझे तनिक आभास है! मेरे एक भक्त ने मुझे एक दिन कहा था:--

अधरः किसलय रागः, कोमल विटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवन मङ्गेषु सन्नद्धम्॥

अर्थात मेरे अधर नवीन पल्लव जैसे हैं, और कुसुम के समान लोभनीय यौवन, मेरे सर्वांग को घेरे हुए हैं। कलाकार! क्या तुम भी यह सब देख रहे हो?"

पुनः विभाषा हंस पड़ी और उसके साथ २ परिचारिकाएं भी व्यंग्य में हँसी।

कलाब्धि बुद्ध के अस्थि-स्तूप से होकर आया था। वहां उसे बुद्ध के जीवन का स्पर्श हुआ था। विभाषा उसके नयनों में मादकता के आवरण में आई थी। उसके कई दिन विषाद और विश्लेषण में फंक चुके थे। वह बुद्ध के चरणारविन्दों में कुछ समर्पण कर आया था। इसलिए वारवनिता का अपमान उसे स्पर्श न कर सका।

कुछ ही क्षणों के बाद कलाब्धि बोला-"विभाषा, जिस व्यक्ति ने तेरे रूप का वर्णन किया था, उसने सत्य ही कहा था, परन्तु साथ में वह यह भी कह सकता था--

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै,
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,—

परन्तु उसने ऐसा नहीं कहा-इसलिए कि तू पुष्प होते हुए भी अनाघ्रात नहीं, किसलय होते हुए भी कर्कश-

कर-स्पर्श से विद्ध हो चुकी है, तुझमें नव-रस है, परन्तु वह अनास्वादित नहीं, इसी प्रकार अखण्ड पुण्य का फल-स्वरूप तेरा रूप निष्पाप नहीं है। जो रूप पाप-स्पर्श से मुक्त नहीं वह रूप ही नहीं······इसीलिए तू मेरा आज उपहास कर सकी। इस उपहास को लेकर विभाषा, मैं जाता हूं।"

वह चला गया।

उस रात विभाषा के विलास-भवन की विलास-सभा प्रतिदिन के समान जम न पाई। कहीं गीतों की स्वर-धारा अटकती थी तो कहीं नृत्य का ताल बेताल हो रहा था।

थोड़े दिनों के पश्चात् ही कलाब्धि पुनः विभाषा के घर आया। मार्ग में अभी भी सूर्य के प्रकाश की हल्की-सी आभा उतर रही थी। फल-स्वरूप मार्ग की सैकड़ों बत्तियां अभी जल न पाई थी। इस आलोक और अंधकार की संगम बेला में कलाब्धि विभाषा के भवन में पहुंचा। उसने कहा—"मैं पुनः आया हूं, मैं पुनः तुझे आमंत्रित करता हूं।"

विभाषा ने मधुर हंसी के साथ कहा -" बैठो!"

निर्दिष्ट आसन पर बैठकर कलाब्धि बोला—"विभाषा अब कितना समय है ? तू कब मेरे पास आवेगी ?"

"मैं तो नहीं आती हूं—तुम मेरे पास कब आओगे ?"

'विभाषा, मैं तो तेरी प्रतीक्षा में बैठा हूं। जिस दिन तेरे अन्तर का सौन्दर्य प्रकट होगा, उस दिन तेरा हाथ पकड़कर मैं तुझे प्रभु के चरणों के निकट ले जाऊंगा।"

विभाषा की गुलाबी मुखाकृति पर गम्भीरता छा गई, और वह बोली —"तुम जो इस अन्तर के सौन्दर्य की बात करते हो, उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया है ? जो आंखों से नहीं देखा जा सकता। उसके लिए तुम इतने परेशान किस-लिए होते हो ? और मुझमें जो दैहिक-सौन्दर्य है, उसकी तुम किसलिए उपेक्षा करते हो ?"

कलाब्धि के मनमोहक मुख-मंडल पर प्रफुल्ल ज्योति छा गई, और धीर-गम्भीर स्वर में उसने विभाषा से पूछा—"विभाषा, तूने कभी पवन को देखा है ?"

" नहीं।"

कलाब्धि की वाग्धारा आगे बढ़ी, "फिर भी पवन का स्पर्श शरीर को शीतल करता है, नयनों को आह्लाद देता है। इस पवन का तू अनुभव कर सकती है ? पवन का सन-सन शब्द तू सुन सकती है, उसके पैर नहीं, पर उसके द्रुतगमन के पदक्षेप को तू जान सकती है। आंत का सौन्दर्य भी ऐसा ही है। तू इसे देख नहीं सकती, परन् अनुभव कर सकती है।"

कलाब्धि की हृदय-स्पर्शिणी वाग्धारा से विभाषा अधिक गम्भीर होकर प्रश्न किया—"क्या तुम इस आंतरि सौन्दर्य को मेरे अन्तर में प्रस्फुटित कर सकते हो ?"

"हां, यदि तेरे अन्तर में कोई साधना हो, चाहे व कला की हो, या प्रेम की, अथवा धर्म की हो, तो मैं तेरे अन्तर के सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने में समर्थ हो सकूंगा।"

"तुम यह किस प्रकार करोगे ?"

विभाषा के इस प्रश्न से कलाब्धि उत्साह में आ गया और उसकी वाग्धारा और अधिक प्रभाव-शील हो गई, "अति-सुदूर पश्चिमाकाश की ओर दृष्टिपात कर, विभाषे? वहां पर्वत-मालाओं के स्पर्श से कादम्बिनी (मेघमाला) के साथ सूर्य रश्मियों का आलिंगन हो रहा है। मिलन के आवेग से सभी रंगीन हो गए हैं। रश्मि के आंतरिक आवेग से घनमाला भी रंगीन बन गई है। इसी प्रकार मैं अपने आंतरिक आवेग से तेरे अंतर को रंगीन बना दूंगा। तेरे अंतर में अभी कहीं भी रंग नहीं है। सारा रंग-मात्र तेरी देह में है। मैं अपने अंतर को चीरकर उसमें से रंग ले तेरे अन्तर में पूर दूंगा······। प्रथम मैं इस रंग को चित्र में ले जाऊंगा और पश्चात् उस चित्र का प्रतिबिम्ब तेरे अन्तर में पड़ेगा।"

कलाब्धि की वाग्धारा ने विभाषा के अहंकार को नष्ट कर दिया। वह मृदुल स्वर में बोली, "जिस दिन तुम यह कर सकोगे, उस दिन मैं तुम्हारा हाथ पकड़ तुम्हारे साथ चल निकलूंगी, और तुम जहां ले जाओगे, वहां मैं आऊंगी।"

कलाब्धि के मुख-मण्डल पर विजय का आनन्द छा गया, उसकी मोहिनी मुखाकृति और अधिक मोहिनी बन गई। वह बोला—" रसवन्ती, आगामी पूर्णिमा के दिन इसी समय पर तू मेरे भवन पर आना, वहां तुझे चित्र में अपना असली रूप दिखाई देगा। पश्चात् वही रूप तेरे अन्तर में प्रकट हो जायगा।"

"बहुत अच्छा, तो मैं नियत समय पर आ पहुंचूंगी।"

+ + + +

कलाकार की तूलिका अविराम गति से चित्रपट पर चल रही थी। चित्र मानव के अन्तर को अंकित करने की सफल साधना है। जो बात शब्दों से नहीं हो सकती वह तूलिका के द्वारा उत्पन्न हो जाती है। इस अंकन में जितना आंतरिक है उतना ही सार्वभौम है। लिपि-लेखन के समान चित्र की भाषा के लिए समय की सीमा नहीं होती। यह तो स्थल और समय के बन्धन से मुक्त है।

इसी लिखावट में कलानिधि हृदय की बात लिखने बैठा। जिस बात को वह विभाषा के अन्तर में प्रस्फुटित करना चाहता था, वही बात लिखने लगा—"शाक्य-शिशु को सामने एक प्रस्फुटित कमल पर सुला दिया है और वे मुग्ध नेत्रों से विभाषा की प्रतिकृति को देख रहे हैं। कलाकार ने महा-प्रजापति के भावों को विभाषा के चित्र में से स्पष्ट करने का विचार किया कि जिन्होंने अपने अन्तर के रक्त-कमल में शिशु-गौतम को बहुत ही सावधानी से सुलाया था।"

कलाकार धीरे २ चित्र पूरा कर रहा है। आज त्रयोदशी है। चित्र के अवयव और वर्ण-रेखा सब तैयार हो गए हैं। मात्र वर्ण-छटा शेष है। कमल को रक्त के सदृश लाल बनाना पड़ेगा और उसका प्रतिबिम्ब विभाषा के मुख मण्डल पर, वक्षःस्थल पर व नयनों पर गिरेगा तथा इस प्रकार यह क्रमशः इसके अन्तर के अन्तःस्तल में व्याप्त बन जायगा।

कलाकार ने हृदय चीर कर अन्दर से रक्त लिया और उससे उसने कमल को रंगीन बनाया। उस रक्त-वर्ण कमल की आभा विभाषा के मुग्ध मुख-मण्डल पर, वक्षःस्थल पर और नयनों पर प्रतिबिम्बित हो रही है। कलाकार एक के बाद एक रंग भर रहा है। सारे चित्रपठ पर अस्त-गामी सूर्य की आभा व्याप्त हो रही है।

"ओ३म् मणि पद्मे हूम्"

इस कमल की प्रभा चित्र की समग्र पट-भूमिका पर फैलाई गई है, इसलिए कि यही चित्र-पट, इसके समीप विश्व का प्रतीक बन गया है।

इस प्रकार चतुर्दशी भी बीत गई।

फिर आई पूर्णिमा। हृदय में से बहता हुआ अभी भी बहुतसा रक्त दिखाई दे रहा है। चित्र की नीचे की धरणी रक्त से ओत-प्रोत हो गई और वहां पड़ा है कलाकार का अर्धचेतन देह! हाथ में अभी भी तूलिका है।

अभी संध्या की सुखद लालिमा अन्तरिक्ष में दिखाई दे रही थी। अन्धकार धीरे २ फैल रहा था, और विभाषा कलाकार के भवन में आ, उपस्थित हो गई। आज इसकी गति में उन्माद का औद्धत्य नहीं था। मन्दगति से वह चित्र के समक्ष आ, खड़ी हुई। ज्योंही इसकी चित्र पर से दृष्टि हटी कि देखा चौकी (मेज) के पाये के समीप कलाकार का अर्ध चेतन देह पड़ा हुआ है, उसके हाथ में तूलिका है, परन्तु हृदय, बहते हुए रक्त से वह रक्तमयी बन गई है।

"तू आ गई विभाषा ?" कलानिधि ने मृदु, मन्द स्वर में पूछा—कलाकार के चरणों के समीप बैठकर सरकती २ विभाषा ने रुद्धकण्ठ से कहा—"हां, मैं आई हूं, परन्तु तुम तो मुझे छोड़कर चले जा रहे हो ?"

टूटते हुए शब्दों में कलानिधि बोला' "विभाषा, मेरी साधना सार्थक हो गई। मैंने तेरे अन्तर को प्रदीप्त किया है। मैंने तुझे अपने लिए मांगा था, परन्तु तू मिली भगवान बुद्ध के लिए। विभाषा, मैं तेरी मुखाकृति पर की दीप्ति देख सकता हूं। अब मुझे कोई दुःख नहीं। मैं तुझे भगवान बुद्ध के चरणों में समर्पित होते हुए देख रहा हूं। विभाषा, बिदा……सखि……प्रिये……बिदा। देख, वह रक्त-कमल समस्त दिशाओं में प्रस्फुटित हो गया है। देख, भगवान बुद्ध की दीप्ति से तेरा अन्तर, मुख, नयन, वक्षःस्थल सर्वस्व रंगीन बन गया है।

"ओ३म् मणि पद्मे हूम्।"

दूसरे दिन तक्षशिला का श्रीमन्त समाज यह सुनकर स्तब्ध हो गया कि नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी विभाषा, धर्मराजिका विहार में जाकर भिक्षुणी संघ में सम्मिलित हो गई है।

--अनु० मदनलाल जोशी

मालवी-रचना

बाल्या की बेन [मालवा की नानी]

श्री मदनमोहन व्यास

या ऊबी छोटी-सी देखो, मालवा की नानी।
गला में ई के जरासी, चांदी की खुँगाली,
छोटी-सी बाली कान में, सूरत भी भोली-भाली।
है पांव में बाणा, माथे गोबर की टोपली,
ने साथण ऊ से पूछे, क्यों कां जाय गोपली ?
छोटो--सोक बोर गूँथ्यो, हाथ में कड़ो,
छोटी-सी लाल घाघरी, ने माथा पे घड़ो।
कदी हाथ में लकड़ी लइने, घर से या चले,
तो ढोर-होण पोंचइ आय, ग्वाल के भेले।
मवरस्यो नी देख्यो, मां--बाप है गरीब,
छोटो सो घर ने खेत कंईं, दो बीघा दो जरीब।
कुण ई के भणाय, कुण पोथी बंचाय ?
"या तो रोज छाणा थेपे, ने गारो मचाय।"
ई की मां जो गत की होय, तो नव्हाय धुवाय,
नी तो ई की जीजी रोज, लाकड़ा धकाय।
फिर भी घरको सभी काम करे, या ऐसी है स्यानी,
या ऊबी छोटी-सी देखो, मालवा की नानी॥

+ + +

कुण ई के 'रीबिन' ने, 'एरिंग' मँगाय ?
कुण ई के पाटी पाड़ी ने टीकी लगाय ?
'नाथी' 'लच्छी' 'सोरमी' ने, 'भूरी' ईका नाम,
खेत, खलो, गारो, गोबर, ईज ईका काम।
पण इतरी आबदा में भी वा फूल-सी खिले,
ने रोज मेहनत करे, जैसी सांचा में ढले।
पाणी भरे, गोबर सोरे, धोवणा धोवे,
लीपे, छावे, थाके जदे, नींद भर सोवे।
सुख-दुख में थोड़ी भोत, उम्मर बढ़े,
के ब्याव की वेदी पे ई की, जिन्दगी चढ़े।
चली जाय सासरे, कोई लावे तो पीयर आय,
ने दोई घरे या तो, खरी मेहनत कोज खाय।
है ईका दुख--सुख की, लम्बी कहानी,
या ऊबी छोटी-सी देखो, मालवा की नानी।

* * *

गृहस्थी में देखो तो वा, फिकर में डूबी,
सासू ने जेठानी लड़े, सामने ऊबी।
जो ई को पइसो लइने, बाप थली भरे,
तो बेची हुइ बेटी, महा दुःख में मरे।
हँसणो ई को पाप, ई को बोलणो मना,
डाँटे, डरावे, घर का सभी जणा।
घर की बहु कंईं ? जणे मोल की दासी,
ने सब जीमे ताजो भोजन, आज खाय बासी।
चुप--चाप रे तो सभी, घुन्नी बताय,
बोले तो बिचारी भोली, लापर केवाय।
छंड़ा मँज ऊका, प्राण घुटता जाय,
भगवान का दिया वी सभी गुण लुटता जाय।
ई के मन की होंस पड़े, मन में दबाणी,
ऐसी बेबस होय आज, मालवा की नानी॥

÷ ÷ ÷

थोड़ा दन पेलाँ जो, कली फूल बनी थी,
जीका मन में आशा ने, उमंग घणी थी,
कोयल जैसी कूकती थी, झूला झूलती,
आम्बा मोर देखी ने, खुशी से फूलती,
दोड़ी--दोड़ी घर आगे, नाचती फिरती,
माय का आगे आगे वा काम करती।
ऊके ऊको हिरदो लगतो, फूल से हलको,
हँसती गाती नाचती, वा मारती किलको,
गाड़ी घोड़ा देखती तो, दोड़ती आगे,
ने छोरा होण से होड़ लेती, "कुण पेला भागे ?"
सावण में वा गीत जो उगेरती मधुर,
तो ऊका आगे फीका लगता बंसरी का स्वर।
राखी आती बीरा हाथे, राखी बांधती,
ने तारा सरीखा भाई था, तो वा चाँद थी।
दिवासा पे झोली, भरी धाणी लुटाती,
जातरा मेला में जइने, खेलकणा लाती।
चलती थी वा मस्त चाल, अनोखी लगती,
भोली--भाली, ऐसी थी के, मन के लगती।
एक झलक में कर देती, हिरदा पे निसानी,
ऐसी मतवाली कुण ? आज मालवा की नानी।
ई का चेहरा पे सुर्खी क्यों के, या चाय नी पियें,
है ढील में फुर्ती ई के, आलस नी छियें,

रंग बिरंगा कपड़ा, ऊको गठीलो बदन,
चलने में निराली चाल, उठी है गर्दन।
बड़ीसी निर्दोष आँख, खूब चमकदार,
हिरनी जैसी चपल, अंग अंग दमकदार।

हर्या - भर्या खेत में वा ऊबी है देखो,
कंई करूँ हूँ ऊका, रूप को लेखो।
गोरा गोरा हाथ से गोफण या चलावे,
तो खेतका पंखेरू ऊड़े लुगड़ो लहरावे।

इतरी भली लगे जैसी स्वर्ग की परी,
कांचली चूनर पेरी ने खेत में उतरी।
या मिट्टी का महल में बसे रूप की रानी।
या ऐसी मस्त फुण, वाज मालवा की नानी ॥

❀ ❀ ❀

अबे दिन रात काम, फिर भी पूरोनी पड़े,
घर की गरीबी, हर बात में अड़े।
तकदीर काज आसरे, रे वे है काश्तकार,
कर्जा से वीरान बणे ऊकी, सब बहार।

बाप घर छोड़ी ने जो सासरा में आय,
बहू का मनमें आशा ने, उमंग नी समाय।
ऊके रेवे भाग पेज, भरोसो बड़ो,
के सुसा को हुइ जायगा यो, चांदी को कड़ो।

मन की लहर जैसी, जवानी भीरे,
सपना में मीठी प्रेम भरी कहानी भीरे।
पण यांतो भाग में ज ऊके, भाटा लिख्या था,
ने ऊके ऊका सरीखा, मनख नी मिल्या था,

कोई पीवे दारू ई से क्षय का बिमार,
कोई फूंके गांजो, इसे दमा का शिकार।
ऊके रात दिन पड़ी, भुगतनी सजा,
ने जिन्दगी कँई ? बिचारी की अईगी कजा।

मूरख नर मिले तो ऊके, रोज को मारे,
रोज का झगड़ा से बाबी, तन पे तेल झारे।
हायरे देखो तो, या लक्ष्मी है घर की,
या सोना की बेलड़ी, खदान या नर की।

या चाँदनी अमृत बरसावे, फूल खिलावे,
जो हंसीदे तो साँची कूँ, मुर्दा के जिलावे,
ऊके मुरखता से पड़े दुःख उठाना,
आलसी का घरे [illegible], टेम पे दाणा।

ई के पड़े आशा की दीवार गिराणी,
ऐसी बवस होय, वाज मालवा की नानी।
फिर कँई करे कीपे रंज उतारे ?
कद तक आफत झेल २ अपणो मन मारे ?

ऊपर से ई पे वहम करे, जाति ने समाज,
इतरा पे भी करे नी या, मूंडा से आवाज।
ई के क्रोध आवे तो, पी जावे झेर का घूंट,
तो भी तम को के, याज डाले घर में फूट।

बोले नी, या सांस रुकने से मूंडो खोले,
घर का सभी लोग, अपणी गल्ती ई पे ढोले।
या बुरी नी है ई के, सबने जाणी पेंचाणी,
या ऐसी भोली-भाली, देखो मालवा की नानी ॥

+ \+ \+

है प्रेरणा या जीवन की, या मीठी कल्पना,
है ई की भोली आंख में, निर्माण का सपना।
या मालवी बाला है, या पार्वती गिरजा,
उन रिद्धि-सिद्धि गणपती के, ईनेज सिरजा।

ई का लाल राजा भोज, विक्रम सरीखा,
वी भर्तृहरी योगी भी, ज्ञान ई सेज सीख्या।
इनी माधुरी ने, कवी कालीदास बनाया,
ई की याद मैंज, मेघदूत रचाया।

या नारी मंडन मिश्र की, विद्यावती महान,
ई से गृह-शास्त्र सीख्या, शंकराचार्य भगवान।
या भोलपन से, बाज बहादुर मोहने वाली,
गढ़ मांडव की रूपमती, याज वा नखराली।

या मालवा की धरती की, लजीली लाज है,
ई का पीछे जिन्दगी का, सारा साज है।
या कल्पलता संसार की, तम ई के समालो,
मूरखता निर्दयता से, मत कालजो बालो।

या है पवित्र ऐसी, जैसो क्षिप्रा को पानी,
वा ऊबी छोटी-सी देखो, मालवा की नानी ॥

× × ×

अबे भई ईका साथ, न्याय तम करो,
ईके ईका हक्क दो, लालच पे मत मरो।

ई को तन--मन—धन अबे, याज सुधारें,
भगवान की अमानत है, या मिली हमारे।
भणाओ--लिखाओ, होंशियार बणाओ,
कर्ता--धर्ता मानो मती गुडिया बताओ।

संसार का सब काम या भी, करी सके है,
राज--काज, नीति--धर्म, याद ई के है।
समान है अधिकार, जब या आधो अंग है,
या पिछड़ीगी तो समजो, लकवो है-प्रसंग है।

जो जिन्दगी में नारी-नर, का साथ चले है,
तो देश में घर-घर में, सुख की ज्योति जले है।

(शेष पृष्ठ ४० पर)

लेकोड़ा

श्री के० ना० डांगे

अपने राज्य में आदर्श ग्राम कितने और कौनसे हैं ? आपके जिले में आदर्श ग्राम कौनसा है ? प्रदर्शिनी में चित्र और आदर्श ग्राम के नमूने पच्चीस वर्षों से मैं देखता आया हूं, परन्तु मेरे जिले के आदर्श गांव का मुझे दर्शन नहीं हुआ, मैं उसका नाम नहीं जानता, मुझे उसके सम्बन्ध में वास्तविक कुछ कल्पना ही नहीं है।

मुझे कल्पना तो यह है कि आदर्श ग्राम में एक-दो तो भी अच्छे चौडे रास्ते हों, दो हजार आबादी के लिए आठ-दस कुए गहरे और स्वच्छ पानी के हो, पोस्टमेन, व्हेक्सिनेटर, तीन चार शिक्षक, एकाध वैद्य या डॉक्टर, चावडी, दो-चारसो की सभा गर्मी में हो सके ऐसे वटवृक्षों की छाया, मल-मूत्र का वैधानिक नहीं तो व्यावहारिक प्रबन्ध, न ठगने वाले और न ठगाने वाले, सरल अन्तःकरण के ग्रामीण, जो सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त दूसरे भले मनुष्यों का भी आतिथ्य करना जानते हो, शहर से अथवा रेलवे स्टेशनसे संबंध रखने वाली पक्की सड़क, ऐसी सड़क न हो तो वह तैयार करने वाला सेवा पथक—यह झांकी में एक अच्छे ग्राम में देखना चाहता हूं। यह भी कुछ आदर्श के लक्षण नही हैं, आदर्श ग्राम तो एक स्वावलंबी स्वराज्य है, प्रकृति के गोद में सुरक्षित मानवता प्रसार का एक केन्द्र है, वहतो एक स्वप्न है, आज तो अच्छा ग्राम वह है जहां यह आकर्षण हो कि शहर के मनुष्य चार दिन सुविधा से रहकर आयें जहां जाने पर उनको पश्चात्ताप और रोग न हो, स्वास्थ्य, आनन्द, उत्साह हो, बार बार जाने की इच्छा हो, ऐसे ग्राम आपके जिले में कितने हैं ? मेरे जिले में ऐसा कोई ग्राम हो तो दुर्भाग्य से मुझे उसका पता नहीं है, मैं पता लगाने का प्रयत्न कर रहा हूं।

जनता और जनता की सरकार मन में लावे तो एक एक ग्राम एकेक तहसील में तयार करके दिखलाना कोई कठिन बात नहीं है। लोग व्याख्यानों से ऊब गये हैं, वे देखना चाहते हैं ग्रामोद्धार का प्रत्यक्ष प्रमाण, 'ग्राम्य' नहीं 'ग्रामीण' जीवन का शांति सुखमय, रसरुचिमय, प्राकृतिक वातावरण। शहरों में अब यह हवा नहीं है, शहरों के हजारों लोगों की इच्छा है कि ऐसे स्वच्छ वातावरण का लाभ उठा कर हम हमारा खोया हुआ शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करें, परन्तु जावे कहां ? चित्रों में देखे हुए इंग्लेंड के ग्रामों की भारत में अपेक्षा करना तो विचित्रता होगी।

तो भी मैं अपेक्षा करता ही रहता हूं, आज नहीं अगली पीढी में, हम बिलकुल वृद्ध हो जायेंगे तब मन में आता है गोल्डस्मिथ की तरह ऐसे ग्राम में शांति से दिन बिताएंगे अधिक नहीं तो कुछ थोड़े ही, थोड़े नहीं तो एक दो तो भी ऐसे ग्राम पास हो , जिनमें यह आकर्षकता आज नहीं तो निकट भविष्य में उत्पन्न होगी, अच्छे ग्रामों को छोड़कर शहरो में हमेशा रहना यह एक विकृति है, प्रकृति नहीं। प्रकृति तो हमें गांवों के तरफ खींचती है, विकृति ग्रामीणों को शहरों के तरफ खींचती है, सैंकड़ो ग्रामीण घरबार छोड़कर पेट पालने के लिये शहर में बसते हैं ग्रामों की आबादी बढ़ती नहीं है।

इसलिये ग्रामोद्धार आवश्यक है। आज के हमारे मोटर वाले स्वयं सेवकों के मन में छिछलापन है, रचनात्मक कार्य को लोग एक मजाक समझते हैं, घडीभर के लिये ग्राम में जाकर वहां सफेद पोश लोग घडीभर रास्ता साफ कर, रटा हुवा व्याख्यान देकर संध्या को अपने बंगले पर वापिस लौटे यह एक नाटक सा हो गया है। समाचार पत्रों के वर्णनों में ऐसे कार्यों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन आता है, उसका एक शतांश भी सही सिद्ध नहीं होता है और वह एक शतांश भी अपने कार्य का प्रभाव भी पीछे नहीं छोडता है, तो भी प्रगति करने का मार्ग इसी अँधेरे में से है। सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।

मैं भी इसी नाटक का पात्र एक दिन बन गया और ग्राम पंचायत के चुनाव की देखभाल के लिये मैंनें उज्जैन के पास लेकोड़ा (स्टेशन) का एक ग्राम मेरे कार्य के लिये चुना। उज्जैन का निवासी होते हुए यह मेरा पहिला ही मौका था कि मेरे चरण इस ग्राम के प्लेटफार्म को छू सके। इच्छा तो बहुत थी, सुंदर सरोवर, विशाल वट वृक्ष, स्टेशन के पास ही ग्राम, संध्या का रमणीय समय और हमारे ग्रामोद्धार की उमंग से भरे हुये अंतःकरण, परंतु दुर्दैव ! जो ग्राम हमने चुना वह स्टेशन के पास नहीं था, खास ग्राम तो उस सरोवर के परे बसा हुवा था, दो चार मील का

चक्कर था, रात अंधेरी थी, अब हमारे होंश ठिकाने पर आये, थोड़ी देर बाद एक किसानी-गाडा आया, उसमें आरूढ होने का मेरे आयुष्य में पहिला ही प्रसंग था, जो मेरे मित्रों की सहायता से सफल हुवा। रात्रि के अंधेरे में गाडी के बैल और उनको सो-सो गालियां देने वाला हमारा सारथी रास्ता किस तरह देखता है, यह मेरे लिये महदाश्चर्य की बात थी, भगवान् की दया से हम गांव में सकुशल पहुंचे, प्रारंभिक वार्तालाप किया, स्कूल, अर्थात् एक कमरा था वहां भगवान् के भरोसे सामान रखा, घर से पाथेय ले गये थे, वह निकाला और पानी......

यह प्रसंग शत्रु पर भी न आवें। हम पानी पीते थे या नहरू के कीडे पी कर मृत्यु का आवाहन करते थे, समझ में नहीं आता था। हवा अच्छी थी, उसमें दोष नहीं था, प्रकृति पूर्णावस्था को पहुंची थी, मनुष्य की कृति सदोष थी, मानो चंद्रबिंब पर कलंक। प्रातःकाल हुवा, अब वर्णन करना औचित्य की सीमा के बाहर जाएगा। हम लोग निलंज्ज तो हैं ही, परंतु कृषि के लिये आवश्यक खाद की हम जान बूझ कर बरबादी करते हैं, और उबर जमीन खाद के लिये भूखी प्यासी, यह कैसी अव्यवहार्यता, कैसी असंबद्धता!

उस गांव में भी हमने चाय को नहीं छोड़ा, शहर के नागरिकों के सद्‌गुण नहीं, प्रत्युत नर-नागरता के दुर्गुण ग्राम में शीघ्र प्रवेश करते हैं। निरीक्षण के लिये निकले टीन के पत्रे, मंगलोरी कवेलू, दुकानों में बढ़िया सिगारेट, भवन निर्माण, तांबें पीतल के नये बर्तन, लंबे लंबे टॉर्च यह सब बतलाते थे कि वहां की माली हालत सुधर रही है, चक्कर लगाते लगाते कुए पर गये और वहां जो दृश्य देखा, शंका हुई कि क्या हम लोग जंगली जानवर तो नहीं हैं? कुए का रास्ता खराब, गंदा पानी उसमें ही मिलता था, सीढ़ियां खतरनाक, कुए की दीवालें गिरी हुई, दूसरा कुआ देखा उसका भी पानी वैसा ही खराब। एक एक आदमी को चालीस चालीस बार नहरू निकले हैं, पंचायत निर्वाचन का कार्य करके साफ सफाई पर व्याख्यान दिया और झट लेकोडा सरोवर का चक्कर लगाकर बीसवी शताब्दि के लेकोडा स्टेशन पर आये, मानों आफ्रिका के जंगल से छुटकारा पाया, भगवान् मृत्युंजय को धन्यवाद दिया।

में तो बचा, और लेकोडा स्टेशन पर पहुंच गया, परंतु इन चोबीस घंटे में मैंने जो देखा वह जीवन है कि मरण है, जीवन में मरण है कि मरण में जीवन है? आदर्श ग्रामीण—जीवन से यह जीवन सहस्रावधि-योजन और कितने ही शताब्दियां दूर है। कवियों का लेक-डिस्ट्रिक्ट, कीटस का हम्पस्टीड, गेटे का वीमार, बर्नार्डशॉ का अयॉट, शताब्दियों पहिले भी इतना खराब नहीं था, जितना आज का लेकोडा है। इस 'लेक' लेकोडा का नाम भी काव्यमय क्यों नहीं? इतना भी हम नहीं कर सकते।

परंतु केवल बुराई करने से काम नहीं चलेगा। हमारे गांव आदर्श नहीं हैं तो हम आदर्श बनावे। हम अर्थात् हम सब काम में जुट जाएँ। सरकार से मदद अवश्य लें परंतु सरकार की राह न देखते बैठें। सरकार को बहुत काम और समय कम है, हमको कम काम और समय बहुत है, इन छुट्टियों में हमने कुछ किया, परंतु क्या इतना किया जितना साने गुरूजी का सेवा—पथक कर रहा है? क्या इतना घूमें जितना वयोवृद्ध संत विनोबा तैलंगण में घूमें? क्या इतना साहित्य पढा जितना इंग्लंड का एक मजदूर भी पढ़ लेता है? उज्जैन के कार्यकर्ताओं के लिये लेकोडा पडोस का स्थान है, वह एक सैर करने की जगह हो सकती है। खेती, पशु पालन, नौका विहार, दुग्ध व्यवसाय, साहित्य गोष्ठी, रोग निवारण आदि अनेक काम वहां शुरू किये जा सकते हैं, और कुछ महीनों के भीतर ही लेकोडा स्टेशन एक आदर्श ग्राम हो सकता है। सरकारी सब विभाग, और हम सब मिलकर एक नमूने का स्थान बना सकते हैं। एक अच्छा पथिकाश्रम, अथवा निवास स्थान वहां बने तो कितनें ही लोग वहां शनिवार-रविवार, सप्ताह के आखरी में, आमोद प्रमोद के लिये जा-आ सकेंगे। लेकोडा स्टेशन उज्जैन का एक सुंदर उपनगर हो सकता है।

ग्राम की बातें करते करते में उपनगर की बातें करने लगा। उपनगर को ग्राम कहना यह भी एक छल कपट होगा। परंतु अभी लेकोडा टूटी फूटी झोंपडियों का, आधे से अधिक विवर्ण, परंतु रोचक परिस्थिति का गांव रेल से दिखाई देता है, उसे यदि उपनगर की सुविधाएं प्राप्त हो जाये तो ग्रामीण जीवन और नगर-जीवन का वहां सुंदर समन्वय हो सकता है। और एक दिन आएगा कि उज्जयिनी

के साहित्यिक शरदपौर्णिमा की काव्यगोष्ठी लेकोडा की नौकाओं पर सफलता पूर्वक संपन्न कर सकेंगे। और उषःकाल के पहिले ही घर वापिस आजावेंगे, साथ दूध, दहीं, मक्खन, सिगाडे; लेकर ऐसी अभिलाषा बढ़ रही है।

यह तो एक संकेत रूप से कहा गया है महू, इंदौर, उज्जैन एक ही शहर तो है और पातालपानी-महू से लेकर लेकोडा-उज्जैन तक का विभाग मालव का उपवन, मध्यभारत का एक अलंकार बन सकता है। हर एक स्टेशन की सजावट अभिरुचि पूर्ण, प्लेटफॉर्म और वेटिंग रूम सुसज्ज और वृक्षलताओं से सुशोभित, पास ही ठहरने का प्रबंध, पाठशाला, वाचनालय और ग्रंथालय की सुविधा, पालिया स्टेशन पर मैंने व्हॉलीबॉल देखा ऐसी क्रीडा भूमि हर एक स्टेशन के पास, पानी स्वच्छ, सुलभ, जंतु रहित और हॉटेल का अन्न स्वादिष्ट इन बातों के करने में क्या कुछ शताब्दियाँ बीतनी चाहिये? शासन और सार्वजनिक संस्थाएँ जुट जाएँ तो कुछ सप्ताह का ही यह सवाल है, मालव का पठार जनता का क्रीड़ाशैल मध्यभारत का एक 'नॅशनल पार्क' हम बना सकते हैं।

बंबई के पास के सोपारा स्थान पर बंबई-राज्य ने एक नॅशनल पार्क बनवाया है, वह भारत में पहिला ही नॅशनल पार्क है, एक अक्वेरियम भी खोला है, मध्यभारत की जनता की मांग हो तो एक नॅशनल पार्क और अक्वेरियम (मत्स्यालय) लेकोडा अथवा आगर हो सकता है। मालवे में कोई 'झू' (प्राणिसंग्रहालय) भी नहीं है वह भी ऐसे उपनगर में क्यों न हो। फिर भी ऐसे स्टेशनों का उपयोग उद्योग व्यवसायों के लिये अच्छा हो सकता है, यह तो पालिया, राऊ, दलोदा आदि स्टेशनों के कभी कुछ चालू कुछ बंद छोटे बड़े कारखानों से प्रतीत हो सकता है। बीजलपुर शिक्षक विद्यालय, राऊ- क्षयरोग चिकित्सालय, रालामंडल- कस्तूरबा ग्राम सेविका विद्यालय, फत्तेहाबाद महिलामंडल ऐसी ही संस्थाओं के नाम हैं जो प्रतिभावान् कार्यकर्ताओं को इस तरह के स्थानों पर अन्य संस्थाएँ खोलने की चुनौती दे रहे हैं। आगर उज्जैन से लेकर पातालपानी महू तक एक रेल्वे-लाईन मानों मालवे की जीवन रेखा, भाग्य रेषा और हृदय रेषा सब एक ही बन सकती हैं। इग्लंड में गरीब मजदूरों के लड़कों को रेल में बिठला कर हवाखोरी और स्वास्थ्य लाभ के लिये समुद्र तट ले जाते हैं, हमारी प्रज्ञा और प्रतिभा जागृत हुई तो हमारे बच्चे भी लेकोडा, आगर अथवा पातालपानी स्वास्थ्य लाभ के लिये जा सकेंगे, परन्तु कब?

आज कल्पकता की कमी है, दृष्टिकोण स्वस्थ सुंदर जीवन के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है, नगरों में केंद्रीभूत संपत्ति ग्रामों के तरफ झुकती नहीं है, परन्तु साधन विद्यमान है, हमारी महाकाली, महालक्ष्मी, महा सरस्वती इन ग्रामों पर कृपा कटाक्ष करें तो एक दिन यह भारत का आदर्श जनपद हो जावेगा। कोई लोणावला, खंडाला, कसारा, गिरनार अथवा न्यूयॉर्क के समीप लॉंग आयलॅंड, फ्लोरिडा में मियामी, इग्लंड में ब्रायटन, फ्रान्स में रिव्हीरा देखने जाते हैं। उसी तरह मालवे के पठार पर आया हुवा यात्री इस छोटी लाईन पर का नयनाल्हादक जनपद देखकर मंत्र मुग्ध हो जावेगा। अडयार, ट्रिप्लिकेन बीच, अरुणाचलम् की झांकी अवंती प्रदेश में दीखने लग जायगी। नगरों में भी जोड़-तोड़ कर क्या कमाया? जन-धन-मन का विकेंद्रीकरण करो, आओ, और यहाँ रहो, ये गांव हमको निमंत्रित कर रहे हैं, परंतु सुनता कौन है?

इतने में बड़ी जोर से सीटी बजाते हुए, रेल ने लेकोडा स्टेशन पर प्रवेश किया, मैं विचारतंद्रा से जागृत हुआ, सो पचास मुसाफिर यहाँ चढ़े, और उतरे। सूर्य भगवान् पश्चिमक्षितिज की ओर झुक रहे थे, एक बाजू के सुंदर सरोवर की लहरें किनारों पर टकरा रही थीं, और छोटी छोटी नावें नीचे ऊपर हो रही थीं, मैंने मन ही मन तटस्थ वट-वृक्ष को वंदन किया, रेल चलने लगी। लेकोडा स्टेशन दृष्टि से ओझल हो गया, परंतु भविष्य में लेकोडा और उसकी अप्रतिम झांकी नेत्रों के सामने से हटती नहीं। प्रतिभा जाग उठेगी तो यह भी एक स्वप्न एक दिन साकार हो जावेगा।

(पृष्ठ ३७ का शेष)

सताओ मत रुलाओ मत, मान बढ़ाओ,
मां, बहिन, बेटी, बहू का, तम लाड़ लड़ाओ।

है लक्ष्मी, है शारदा, है याज भवानी,
लो देखी ली अब आपने, या मालवा की नानी॥

या ऊभी छोटी-सी देखो, मालवा की नानी॥

उज्जयिनी

श्री मानसिंह राही

जब तक नभ में चाँद सितारे अमर रहेगा नाम।
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(१)

ऊपर नील गगन का साया नीचे मनहर धरती।
मस्ती में इठलाती बहती क्षिप्रा कल कल करती।
ये चमकीले कलश ये सारे गुम्मद ऊँचे नीचे।
युगों युगों के लिखे हुए इतिहास हैं इनके पीछे।
रोज सुनहरी सुबह यहां की रोज सलोनी शाम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(२)

कलाकर साहित्यकार यह युग-पुरुषों की मां है।
खोज करो तो अनगिनती गुदड़ी में लाल यहां है।
डगर डगर विश्वास बिछा है बिखरी हैं आशायें।
कण कण इसका बोलरहा है जीवन की भाषायें।
थके मुसाफिर यहां ठहर कर पा जाते विश्राम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को, बारम्बार प्रणाम ॥

(३)

भरथरी गुफा जो इसके दिल की गहराई बतलाती।
आने वालों के स्वागत में अपनी पलक बिछाती।
उजली चादर ओढ मछन्दर बैठे लगा समाधी।
जैसे खादी के कपड़ों में उतर पड़े हों गाँधी।
हिन्दु कहते नाथ मुसलमाँ कहते पीर तमाम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(४)

बेरों के पेडों के सायें जब खेती उगती है।
हरी चुनरियाँ ओढ़े धरती दुलहन सी लगती है।
थके बाजुओं से सर–सर फिर हँसिया चलता है।
यह शोषण का युग है श्रम का मोल नहीं मिलता है।
महा क्रान्ति का रूप कालिका मान रहा अविराम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(५)

कालियादेह जो सामन्तों की ऐशों भरी कहानी।
शोषित पीडित कलाकार के श्रम की एक निशानी।
कुन्ड कुन्ड यह बहता पानी था जिन्होंने बाँधा।
ना वो रानी राजा रह गये ना कोई शहजादा।
अब यह जनता की थाती जनता के आये काम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(६)

सात तवों को तोड़ मुक्त वह सिद्धनाथ का बड़ है।
संघर्ष करो बंधन तोड़ो कहता भैरवगढ़ है।
बारह वर्षों में ऋषियों के कुम्भ यहां भरते हैं।
तीरथ का नाम प्यार इस मिट्टी से करते हैं।
यहां इन्हीं कुन्जों में बारह-खड़ी पढ़े घनश्याम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(७)

पुरातत्व प्राचीन शिलाखण्डों की कमी नहीं है।
मोहनजुदडो और हडप्पा जैसे छुपे यहीं हैं।
गद्य-पद्य कविता, अफसाने लिक्खे हैं कूचे-कूचे।
अमर साधना ज्योतिष की कोई यंत्र-महल से पूछे।
जो नक्षत्रों की गतिविधियों से चिरपरिचित अविराम॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(८)

धुंधली-धुंधली छतों के सेहरे घरों में बांध रखे हैं।
जैसे कोई थके काफिले आकर यहां रुके हैं।
ये सडकें जो इंसानों के पगों को छू मदमातीं।
ये चिमनियां मिलों की जो आहों का धुवां उडाती।
यहां भी जीवन और मौत में पग-पग है संग्राम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

(९)

मौत है क्या जब महाकाल मुर्दों की भस्म रमाते।
हरसिद्धि जन-जन में है दीपों के खम्भ बताते।
बढ़चुके बहुत अन्याय तीसरा नयन है खुलने वाला।
जोर-जुल्म के घटा टोप में छुपता नहीं उजाला।
यही कहरही अपनी धरती आज कलेजा थाम ॥
कालिदास की उज्जयिनी को बारम्बार प्रणाम ॥

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति ॥-) आने

-सुमित्रा-

वार्षिक मूल्य ६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर

तथा

संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**— देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।

२. **डायरी के पन्ने**— हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।

३. **सबसे प्यारी कृतियां**— पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।

४. **पत्रांजलि**— देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ—हस्ताक्षर के साथ।

५. **विश्व-भारती**— संसार के महान कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दी रूपान्तर

६. **भारत-भारती**— देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।

७. **हमें यह कहना है!**— संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

—: शिकायत :—

श्री· प्रकाश उत्फुल्ल

शिकायत सी फड़कते ओंठ पर कुछ बात आती है !

अचानक नींद में मैं गुनगुनाता एक दो गाने,
कि लगता तुम अचानक आ गये हो आज सिरहाने;
कि सारे अवयवों में दौड़ जाती एक क्षण गरमी,
बड़ी भाती, गिलहरी सी तुम्हारी देह की नरमी;
कि सेमल की रुई को उंगलियाँ अनजान सहलातीं,
झरोखे से निगोड़े चाँद की किरनें चलीं आतीं;
मगर है चाँदनी की चाह, जिसकी देह को छूकर,-
नशीली सी जवानी ले शरद की बात आती है !
शिकायत सी फड़कते ओंठ पर कुछ बात आती है ! !

कि मेरे बाहुपाशों में स्वयं का वक्ष बँध जाता,
गरम साँसें उठा करतीं हृदय का वेग थम जाता;
कि लगता पार्श्व में कुछ सांप जैसा रेंगता आया,
सपेरे के गले में हार डाला और गरमाया;
कि हौले से अधर पर डालदी फैली फनी अपनी,
समर्पित आज कर डाली सुहागन ने मणी अपनी;
मगर ये स्वप्न हैं केवल कि सहसा टूट जाते हैं—
दरद का साथ देने तो अकेली रात आती है !
शिकायत सी फड़कते ओंठ पर कुछ बात आती है !

अचल विश्वास कहता है कि सच का क्या ठिकाना है ?
न पलकें आज तुम खोलो अगर कुछ प्यार पाना है;
कबूतर की गुटुरगूँ, इस समय बस सुन रहा हूँ मैं,
उसी ध्वनि में तुम्हारे नभ स्वरों को गुन रहा हूँ मैं;
विकल आशा तभी तो श्वास में लिपटी पड़ी सोती,
बहुत दिन से इसी विश्वास को लेकर सुबह होती।
कि मेरी देह में है ताप लगता है मुझे ऐसा—
कि ठण्डे नीम की ठण्डी हवा ठण्डक चुराती है !
शिकायत सी फड़कते ओंठ पर कुछ बात आती है ! !

विक्रम

द्वि० वैशाख
सं. २०१०

गुरुकुल-पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी
२६२१
२३/१०
गुरुकुल-पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी
जून० २०५३

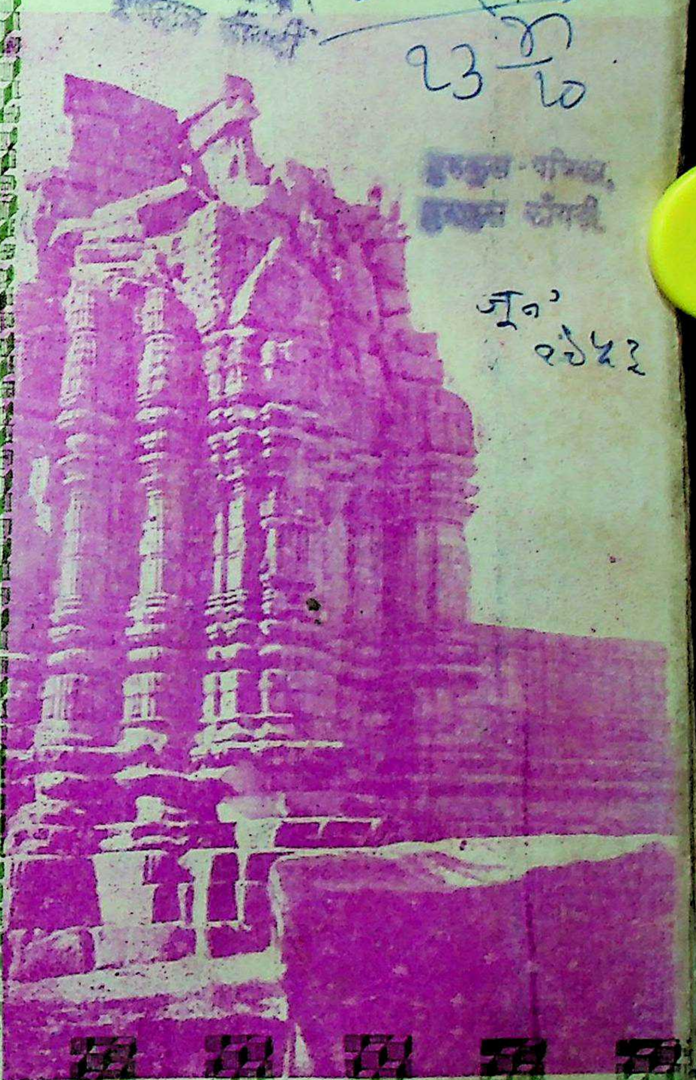

संचालक संपादक
सूर्यनारायण व्यास

महत्वपूर्ण - सम्मतियाँ

"विक्रम के इस विशेषांक में अवन्ती का राजनैतिक इतिहास, उज्जयिनी-दर्शन, खेचर विलसितम् आदि लेख विशेषरूप से गवेषणात्मक हैं। अंक पठनीय एवम् संग्रहणीय है।" नवभारत टाइ.

"मालवा का भारतीय संस्कृति के निर्माण में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, यह तथ्य सामान्य भारतीय तो भुला ही नहीं सकते। मालवों के हृदय में तो यह गौरव की भावना आज भी स्फूर्ति पैदा करती है। उसी स्फूर्ति और आज की नवीन परिस्थितियों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिए 'विक्रम' निरन्तर प्रयत्नशील है। 'विक्रम' अनेक वर्षों से मालव के साहित्य, संस्कृति, कला और इतिहास का परिचय कराता चला आ रहा है, यह मालवेतर लोगों के लिए ज्ञानवर्द्धक और मालवों के लिए उत्साह-वर्द्धक है। इस प्रयास की, हम सफलता चाहते हैं।"

—'हिन्दुस्तान'

"मध्यभारत अंक : प्रस्तुत विशेषांक में महामालव का ऐतिहासिक, सामाजिक और साहित्यिक दर्शन बड़ा विलोभनीय हुआ है। पं. व्यासजी की मार्मिक टिप्पणियां तो 'विक्रम' की अपनी विशेषता होती है।"

—'सर्वोदय'

"'विक्रम' का जुलाई-अगस्त अंक 'मध्यभारत'-अंक है। विशेषांकों की परंपरा में 'विक्रम' का यह मौलिक प्रयास है। इस अंक में मध्य देश का सर्वांगीण परिचय कराया गया है। उज्जयिनी-दर्शन, अवन्ती का राजनैतिक इतिहास, मालव का संक्षिप्त राष्ट्रीय इतिहास, इतिहास और दर्शनीय स्थानों की भूमि मालवा, मालव के हिन्दी साप्ताहिक एवं मासिक, मालवा के लोकनाट्य मांच, लोक-कला की पुण्यभूमि मालवा तथा धार तथा मांडव के दर्शनीय स्थान आदि लेख व्यापक दृष्टि से परिचय के साक्षी हैं। ऐतिहासिक गवेषण की दृष्टि से भी 'विक्रम' का काम बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। इस अंक में 'पद्मावती', भोजदेव प्रदत्त बेटमा का ताम्रपत्र और बाग गुहा समूह का निर्माणकाल गवेषणापूर्ण लेख हैं। अनुसंधान की दृष्टि से 'कहां राजा भोज और कहां गांगली तेलन' काफी रोचक है। आवश्यक चित्रों तथा मालवी भाषा की कविताओं ने तो इस अंक को और भी सार्थक तथा उपादेय बना दिया है।"

—'प्राची'-सितम्बर ५२

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

विक्रम

द्वि० वैशाख
सं. २०१०

गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी
२६२७
२३ जी/२०
गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी
जून० २०५३

संचालक संपादक
सूर्यनारायण व्यास

टेलीफोन नम्बर ११

तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टैक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

वार्षिक
६) रु.

एक अंक
।≈)

विक्रम

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

१ प्रलयङ्कर वीणा-झंकार … श्री सूर्यनारायण व्यास … …
२ व्यास-उवाच … … … सम्पादकीय … … … १-१६
३ क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी ! … … श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' … … १७
४ मध्य भारत के लोगों में सभ्यता, चैतन्य और जागृति … १८
मा० श्री कैलाशनाथजी काटजू …
५ ऊन … … … श्री कृ. गं. कवचाले … … १९-२४
६ पंजाबी और मालवी लोक-साहित्य में साम्य और इसके कारण … … … २५-३०
श्री नरेन्द्र धीर … … … ३१-३३
७ मित्रविन्दा … … … श्री 'मधुबन' … … … ३४-३९
८ केवल पेट के लिये … … … श्री राम डोके एम. ए. … … ४०-४१
९ काव्य साहित्य में प्रगतिशीलताका मापदण्ड … श्री मदनलाल वर्मा 'साहित्य रत्न' … ४२-४६
१० काव्य-विहार … … … श्री मदनलाल वर्मा, कुमार, शिवशंकर जोशी
श्री जीवन जोशी, देवव्रत्त 'देव', हरीश निगम
श्री मदनलाल जोशी… … …

Advertisement Rates.

Cover page 2nd Rs. 200 per Insertion.
" " 3rd Rs. 150 " "
" " 4th Rs. 300 " "
(In two colours.)
Ordinary full page Rs. 100 " "
" Half page Rs. 60 " "
" Quarter page Rs. 35 " "

विज्ञापन के दर

टाईटिल द्वितीय पृष्ठ – २००) प्रतिमास
" तृतीय पृष्ठ – १५०) "
" चतुर्थ पृष्ठ – ३००) "
(दोरंग में)
साधारण पूरा पृष्ठ – १००) "
" आधा पृष्ठ – ६०) "
" चौथाई पृष्ठ – ३५) "

पत्र व्यवहार का पता— } "विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

प्रलयंकर वीणा-झंकार !

वीणा-बाण, तार प्रत्यंचा, स्वर-शर, ध्वनि हुंकार !
राग-विराग घोर-घनगर्जन, तडित्-तार टङ्कार !
छूते ही तीखी निकलेगी - अंतर की चीत्कार !
अग-जग का यह घन-घमंड भी क्षणभर में होवेगा क्षार !
भू-मंडल-आकाश-कँपेगा, बन कर एकाकार !
शेषनाग डोलेगा, फन से निकलेगी फूत्कार।
तारे टूट - टूट बरसेंगे, होगा . हाहाकार !
उदधि उबल कर, अंबर छूकर, देगा ताल सँवार !
स्वर-सप्तक से सात लोक का होगा स्वाहाकार !
तार-तार, स्वर-स्वर पर होगा, संसृति का संहार !
मेरी प्रलयङ्कर वीणा झंकार ! -

सू. ना. व्यास

मध्य-भारत, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

वर्ष ७ खंड १] द्वि० वैशाख सं० २०१० वि०, जून सन् १९५३ [अंक २ पूर्ण सं० ७३

व्यास उवाच

मध्य-भारत में संशोधन-प्रवृत्ति का विकास आवश्यक !

मध्यभारत में संशोधनात्मक प्रवृत्ति के लिए जितना बड़ा विशाल क्षेत्र और अवकाश है, उतनी ही यहां शिथिलता है, शासन भी इस ओर उदासीन रहा है। हमने १९३५-३६ में इस दिशा में प्रयास किया था, और उज्जैन की खुदाई हुई थी उसमें सफलता भी मिली थी, उसके साथ ही नर्मदा-उपत्यका में संशोधन प्रवृत्ति आरंभ हुई थी। जिस समय महाराज स्व. सर् सयाजीराव गायकवाड़ उज्जैन में आए थ, हमने प्राचीन ग्रंथ संग्रहालय के लिए प्रेरणा करने का उनसे आग्रह किया था, उन्होंने तुरन्त ही तत्कालीन गृह मंत्री महाराज खाशे सा. पंवार को प्रेरित कर उज्जैन में प्राच्य ग्रंथ-संग्रहालय की स्थापना के लिए प्रोत्साहन दिया। उज्जैन में यह संस्था अब भी अपनी शक्ति, और सीमा में संशोधन कार्य कर रही है। परन्तु इसमें पर्याप्त विकास का अवकाश है. मध्य-भारत में ग्रंथ-संपत्ति कम नहीं है, विभिन्न-नगरों, और ग्रामों के पुरातन परिवारों, और भाण्डारों में अस्त-व्यस्त–अरक्षित पड़ी हुई है, उनके संचय के लिये सतत-सीधे प्रयास की आवश्यकता है। उनके प्रकाशन और परिचय के लिए एक त्रैमासिक के आरंभ करने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। जन साधारण, और जिज्ञासुजनों में इस ओर रुचि करने का प्रयास भी होना चाहिए, संग्रहालय के पास १० हजार से अधिक पुस्तकें हैं, उनके परिचय, प्रकाशन, और संशोधन के लिए सुविधा होनी चाहिए। इस संस्था में ऐसी प्रवृत्तियों के प्रारम्भ करने की आवश्यकता है जिनसे भावी विश्वविद्यालय के लिए उच्च कोटि का साहित्य-सुलभ हो सके। इसे 'एकेडेमी' का स्वरूप भी सहज दिया जासकता

है, इसकी योजना हमने शासन के समक्ष बहुत समय हुआ प्रस्तुत की हुई है । अवश्य ही संस्था के लिए सरकार ने इस बार कुछ सहायता की है, परन्तु उसे योजना-बद्ध करके नवीन रूप से पुनर्गठित और व्यवस्थित बनाकर आरंभ करने की आवश्यकता है । यदि नवीन दृष्टि से इस संस्था को संचालित किया गया तो यह अवश्य संशोधन प्रवृत्ति में अधिक उपयोगी हो सकती है ।

मध्यभारत का पुरातत्व विभाग तो केन्द्र के अंतर्गत जारहा है, उसका क्षेत्र विस्तृत हो रहा है, परन्तु मध्यभारत में कुछ महत्व पूर्ण स्थानों पर खुदाई के लिए प्रांतीय शासन को ध्यान देना चाहिए । पूना के विश्व विद्यालय ने नर्मदा-उपत्यका के संशोधन का प्रयास आरंभ किया है । सुनते हैं कि बड़ोदा, बाम्बे के विश्वविद्यालय उज्जैन का महान अनुभव कर इस दिशा में उत्खनन का विचार कर रहे हैं । मध्यभारत को इसे उदासीनता छोड़ आरम्भ करना चाहिए । चाहे तो वे अन्य संशोधन-प्रवृत्ति करने वाली संस्था, अथवा व्यक्ति का सहयोग लेकर यह कार्य कर सकते हैं ।

संशोधन प्रवृत्ति के क्षेत्र

संशोधन के लिए हमें कार्य, और क्षेत्र-विभाजन कर-लेना चाहिए, ऐतिहासिक संशोधन, पुरातत्व वस्तु संशोधन, सांस्कृतिक-संशोधन, साहित्य संशोधन, आर्थिक और मानसिक संशोधन, जल-वायु-खनिज संशोधन, आदिवासि जन-जाति संशोधन, सीमा प्रदेश एवं भाषा विषयक-संशोधन, इस प्रकार विभिन्न-प्रवृत्ति, और रुचि के वैयक्तिक प्रयास करनेवाले लोगों का सहकार साध्य कर इन दिशाओं में प्रवृत्ति की जासकती है ।

मालव-इतिहास

आज समग्र मालव प्रदेश का कोई व्यवस्थित इतिहास नहीं है, उसके लिए विद्वानों की समिति बनाकर व्यवस्थित इतिहास के लिखवाने की आवश्यकता है । उसे विषयानुरूप, या कालानुरूप बाँटकर सर्वांगीण संशोधन के साथ तयार करवाना चाहिए । मालव का इतिहास भारत के इतिहास का महत्वपूर्ण भाग है, सारे भारतीय इतिहास में से यदि मालव प्रदेश को हटादिया जाए तो वह ५० प्रतिशत अपूर्ण रह जायगा । भारतीय संस्कृति और साहित्य में भी इस प्रदेश की महत्वपूर्ण देन है जो विश्व का विषय बन इस राष्ट्र का गौरव बनाए हुए हैं । इसके लिए प्रवीण पंडितों की परिषद बनाने, और कार्यारंभ करवाने की आवश्यकता है ।

संग्रहालय

एक केन्द्रीय संग्रहालय की स्थापना करना बहुत ही आवश्यक है, गवालियर के संग्रहालय में उत्तर प्रदेश के भूभाग का उपलब्ध साहित्य रखा जा सकता है, किन्तु केन्द्रीय संग्रहालय उज्जैन में रहे जहाँ समस्त मालव प्रदेश की अस्त-व्यस्त तथा संशोधन में प्राप्त सामग्री का व्यवस्थित संग्रह किया जाना चाहिए । उपलब्ध साहित्य की पुस्तिकाएँ तयार करवाई जाना चाहिए, उज्जैन के आसपास अनेक स्थानों में बहुत बड़ी संख्या में पुरातत्व सामग्री बिखरी पडी है, उसे एकत्रित कर सुसम्बन्ध बना संग्रहालय में रखने की आवश्यकता है । निःसंदेह केवल संग्रह मात्र से बहुत बड़ा संग्रहालय सहज बन सकता है ।

प्राकृतिक साधन

मध्य-भारत में प्रकृति ने अपने अनेक साधन सुरक्षित बना रखे हैं, खनिज पदार्थ, वनस्पत्ति, औषधि का भण्डार भी बहुत भरा हुआ है । हमने अपने नदी-नद-निर्झरों के जल को भी ठीक तरह नहीं पहचाना है, उनका संशोधन शेष है । उनके जानकारों का अभाव भी इस प्रदेश में नहीं है । कृषि की दृष्टि से इस प्रदेश जैसा उर्वर भाग तो अन्य-प्रदेशों में भी नहीं है । उसका उचित लाभ भी हम नहीं उठा पाए हैं, प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी ऐसे अनेकों स्थान हैं जिनका विकास होना चाहिए ।

समाज की आर्थिक स्थिति

प्रकृति-प्रदत साधनों के साथ ही समाज की आर्थिक स्थिति का सीधा सम्बन्ध है । इसका उचित रूप से निष्णातों द्वारा प्रांत व्यापी संशोधन होना चाहिए । नगर एवं ग्राम की आर्थिक स्थिति, आरोग्य, और शिक्षण-स्थिति का विवरण-विश्लेषण किया जाना चाहिए । यह कार्य हमारे कॉलेजों के अर्थ विभाग के प्राध्यापक-एवं छात्रों के द्वारा लिया जासकता है । शाला के छात्रों तथा मेडिकल

'ऊन' के चौवारा नम्बर एक की नृत्य मुद्रा

कॉलेज के द्वारा आरोग्य स्थिति का विवरण तयार करवाया जासकेगा, नागरिक डॉक्टरों का भी इसमें सहयोग प्राप्त हो सकता है । इसी प्रकार बाल-मनोविज्ञान की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, उनके विकास, उनकी प्रवृत्ति, शक्ति, निर्बलता, आदि का विचार किया जाय । बाल-मानस-शोधन प्रवृत्ति की जानकारी उनके विकास में बहुत सहायक होगी ।

साहित्य-संशोधन !

हमारे प्रदेश में साहित्य-संशोधन की प्रवृत्ति सर्वथा शिथिल बनी हुई है । कोई भी संस्था इस दिशा में कार्य नहीं कर रही है, साहित्य संग्रह और शोधन इतने बड़े प्रदेश के लिए बहुत ही महत्व रखता है । एक भी ऐसा संग्रहालय नहीं है, जहाँ साहित्य का भण्डार हो, संशोधन को प्रेरणा मिले, साहित्य नगरों, ग्रामों घरों में बिखरा पड़ा है, इसके अतिरिक्त कंठ-साहित्य भी है जो आज निरन्तर लुप्त होता जारहा है । हमने ग्रंथालय प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित नहीं किया है, संग्रह के लिए नियम निर्माण या प्रवास भी नहीं किया, नगर-और ग्राम विकास के लिए साहित्य-संग्रह और संशोधन प्रोत्साहनीय है ।

कला-और संस्कृति

कला और संस्कृति के लिए सामाजिक प्रवृत्तियों संस्कारों, जन जीवन के अध्ययन की प्रवृत्ति को उत्साहित करना होगा । अनेक धर्म संप्रदाय, मत-पंथों की उत्पत्ति, विकास और क्षीणता का अध्ययन होना चाहिए, मध्यभारत में बहुत पुराने काल से अनेक मत-मतान्तरों, धर्म संप्रदायों ने जन्मलिया है । उनके जन्म-विकास और लय में किस वातावरण, या समाज स्थिति ने कार्य किया, यह स्वतन्त्र किन्तु महत्व पूर्ण विषय है । मालव की कला व्यापक क्षेत्रमें विस्तृत रही है, कलम, कूंची और हस्त कौशल ने बड़ा योग दिया है, चित्रकला में ग्राम कला, भित्ति लेखन, रंगानुरंजन, रंगवल्ली (रांगोली) मेंहदी-मांडना, पूजा-अर्चा के चित्र, मूर्ति, खिलोने निर्माण, वास्तु-कला, स्थापत्य कला, शिल्प-शृंगार, चित्रकारी आदि में मालवा की स्वतन्त्र शैली रही है । इसी प्रकार संगीत, नृत्य, नाट्य, अभिनय की अपनी परम्परा विशिष्ट रही है । आवन्ती रीति, मालव राग, आदि आज भी स्वतंत्र स्थान रखते हैं, ग्राम्य और नागरिक कला एवं जीवन के संस्कारों के संशोधनार्थ विभिन्न भागों की संस्कार-यात्राएं आयोजित की जाएं, और उनका अध्ययन कर संशोधन किया जाए । इसदिशा में स्वल्प प्रयत्न उज्जैन की प्रतिभा-निकेतन, लोक साहित्य परिषद्, कला निकेतन यत्नशील है, परन्तु इस प्रवृत्ति को सांस्कृतिक स्रोतों की खोज, और अध्ययन आदि के लिए विशेष सहयोग और प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । मालव की भाषा और उनके भेद, प्रभाव, संस्कार की जानकारी आदि के लिए समय, सहयोग, और सम्पत्ति का सहारा भी चाहिए । लोक गीत, ग्राम गीत, उक्तियां, किंवदन्तियां, जातिगत-संस्कार, उपजाति, भेद, उनके जन्म-विकास, संस्कार का संशोधन होना चाहिए। अनेक जातियों के कालवश परिवर्तन हुए हैं, उनमें संस्कारों की खोज की जाए तो उनके पूर्व, और पश्चात् पड़े प्रभावों का, मूल स्रोतों का सहज ज्ञान सम्भव होगा । सामाजिक परिस्थितियों परिवर्तनों का समाज शास्त्र, वंश शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन अपेक्षित है । संयुक्त परिवार

प्रथा और विभक्त पद्धति के कारणों की जानकारी भी आवश्यक है। अनेक जातियों के मिश्रण, और मूल रूप की जानकारी की जानी चाहिए, आर्जुनायन (आंजणे) गुर्जर-संघ (गूजर) आदि के स्रोतों को समझने के लिए उनके संस्कार-इतिहास का अध्ययन होना चाहिए। यह हमारी भावी सुधारणा के लिए महत्व के विषय हैं। संस्था, कॉलेज, और विशेष प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के सहयोग से यह विशाल विषय हमारे भविष्य, और इतिहास के लिए महत्व के हो सकते हैं।

इसी प्रकार जन जाति, आदिवासी के उत्कर्ष के लिए भी इस संशोधन की आवश्यकता है। भौगोलिक, भाषाकीय दृष्टि से हमारी संस्कृति, सीमा का संशोधन जरूरी है। ये महत्व के प्रश्न हैं जिसका निकट भविष्य में उपयोग होता है। सरकार को इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए, अवश्यही यह कार्य विशुद्ध ज्ञान, संस्कृति, और संशोधन की दृष्टि से ही किया जाना आवश्यक है। इसमें किसी राजनीतिक दलगत भावना, और संकुचितता को प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए। हम जानकारों, प्राध्यापकों, प्रौढ़ विद्यार्थियों को विराम काल में प्रेरित कर सुविधा देकर यह कर सकते हैं. उनके लिए ज्ञान-विकास में भी सहायक होगा, और संशोधन में भी सहायक होगा। हम उज्जैन की प्राच्य-ग्रंथालय-संस्था में इस विषय को स्थान देकर संग्रह, और संशोधन का अवसर देसकते हैं। लोक-कला, संस्कृति साहित्य, के लिए उक्त संस्था में क्षेत्र है, साधन है, संग्रह की सुविधा है, संशोधन का अवकाश है, विशेष रूप से इसी दिशा में कार्य करने वाले प्रवृत्ति शील व्यक्तियों की नियुक्ति कर के प्रवास, प्रकाशन प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दे सकते हैं।

नगाधिराज हिमालय की हार!

विश्व के सर्वोन्नत नगाधिराज हिमालय ने आखीर अपना गर्वोन्नत गगन-स्पर्शी-मस्तक झुका कर, मानव को समोद शिखर पर चढ़वा लिया और अपनी हार मानली! बड़े-बूढ़ों का स्वभाव होता है वे अपने पुत्र या शिष्य से पराजय में भी सुख मानते हैं। लगातार ३२ वर्ष के कठोर, प्राण की पर्वाह न कर किए जाने वाले प्रयत्न में पर्वतराज ने प्रत्येक कसोटी पर मानव को परखा, पर मानव ने अपने दादा के मस्तक पर आरूढ़ होने की विजय वासना को प्राणों की पर्वाह न करके भी छोडा नहीं, अंतमें नगाधिराज को दयार्द्र बन अपना उन्नत-मस्तक ममता व झुका देने को बाध्य बनना पड़ा, और पर्वत पुत्र शेरप तेर्नसिंह को अपने सहयोगी हेलरी के साथ श्रृंग पर सग आरोहण करने की सुविधा प्रदान करना पड़ा। अजेय प विजय पाकर मानव ने अपना मस्तक उँचा किया है। वी केसरी तेर्नसिंह की शौर्य-साधना सफल हुई है, आज वि उस नरवीर का अभिनंदन कर रहा है। यद्यपि अभिन महारानी एलिजाबेथ, और ब्रि. प्रधान सर चर्चिल कर्नल हन्ट के ब्रिटिश पर्वतारोही दल का ही अभिनंद किया हैं, तेर्नसिंह की उपेक्षा की है, किन्तु वस्तुतः यह पर्व विजय उसी की है। जिसके मार्गदर्शन के साहस प्रेरणा, श्रम, और धैर्य ने ब्रिटिश-दल को प्रगतिपथ और सफल मार्ग-द्रष्टा बन अग्रसर बनाया। अवश्य ह शेरपा तेर्नसिंह इस दल का विशेष सदस्य नहीं था, कि उसके पथ-प्रदर्शक बने बिना किसी दल का अजेय नगाधि-

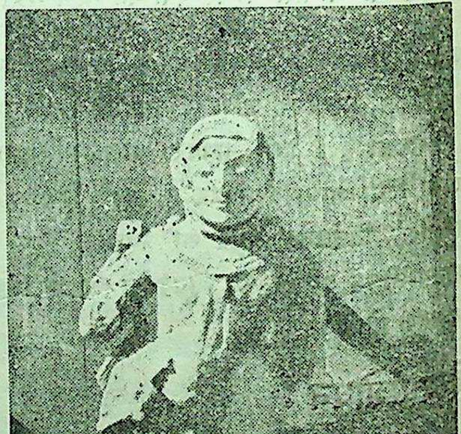

ऊन के राजा बल्लाल की खंडित प्रतिमा जिससे इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ेगा।

राज पर चढजाना संभव नहीं था। जिन श्रमिकों के सहारे, प्राण की पूंजी पर यश संपादित किया जाए उन्हें भुलाकर या उपेक्षित कर कोई दल अपनी विजय का ढिंढोरा पीटे या पिटवाए यह न तो उचित है, न संभव ही। कर्नल हन्ट के दल की विजय का श्रेय सच पूँछाजाय तो तेर्नसिंह को ही है। तेर्नसिंह का अनुभव, पिछले ११ बार प्रयास की पूंजी ब्रिटिश दल के साथ न होती तो कह नहीं सकते कि यह सफलता का सेहरा उनके सिरपर रखा भी जासकता था। वास्तव में यह गौरव तो तेर्नसिंह, और उसके सहयोग से शिखर पर पहुँचने वाले न्यूजीलेंड वासी कर्नल हिलेरी को प्राप्त हुआ है। उससे सारा विश्व अपना गर्व अनुभव कर रहा है, जो हिमालय शृंग विश्व का सर्वोन्नत शृंग समझा जाता था, जो भारत का अप्रतिम प्रहरी बना हुआ था, जिसे जीतने की कामना में अनेक प्राण अर्पित हुए, अनेक प्रयास निरर्थक बने, उसके शृंग पर मानव ने अपने चरण चिन्ह अंकित कर दिए हैं, यह असाधारण घटना है। इसने इतिहास को पलट दिया है, साहित्य को नई दिशादी है, कल्पना बिहारी कवियों को अपनी कल्पना में अजेय बने हुए हिम शृंग को पराजित प्रस्तुत करना पडेगा। पाठ्य पुस्तकों के पृष्ठों को परिवर्तित करना पडेगा। मानव ने प्रकृति के अनेक साधनों पर इससे पूर्व अनेक विजय प्राप्त करली थी, पर पर्वतराज को पराजित करने में कल तक विवश बनता रहा था, पर उसने प्रयास का पीछा नहीं छोडा! पराङ्मुख नहीं बना था. अखीर उसने प्रकृति की इस अद्भुत और अगम्य स्थली को भी सतत साधना रत रह कर साध्य कर लिया, और सिद्ध कर दिया कि जगमें कोई वस्तु असंभव नहीं, अगम्य नहीं। किंतु इसे भी प्रकृति की कृपा ही कहना चाहिए, उसने न चाहा तब तक ३२ वर्षों के ११ प्रयत्नों को सफल नहीं बनने दिया, आज उस प्रकृतिने अपनी अनुकूलता दिखलाकर मानव के मन को मुदित, और उसके मस्तक को ऊँचा उठाने का अवसर प्रदान किया है परंतु यह उन्नत मस्तक उस भारतीय का ही है, जिसके सहारे युवक हेलेरी और उसके दल ने अपना सिर ऊँचा बनाया है। वस्तुतः शेरपा तेर्नसिंह भारतीय मानव का प्रतिनिधित्व करता है, उसके गौरव को भारतीय अपना गौरव ही मानेंगे। कर्नल हन्ट के दल की सफलता का सहर्षस्वागत करते हैं, किंतु उन कुलियों को जरा भी कम नहीं आंकना चाहते, जिनके बल बूते पर श्रमसाहस पर और मार्गदर्शन पर ही यश की पताका फहराई जाती है। शेरपा तेर्नसिंह का पर्वत विजय सम्बन्धी आत्म विश्वास। अगाध श्रद्धा और अतुल साहस को धन्य है, जिसके कारण कर्नल हन्ट के दल ने अद्भुत अपूर्व विजय प्राप्त की।

तेजस्वी तेर्नसिंह की हिमाद्रि विजय अमर कीर्ति का विषय बन गई है। उसने विशाल नगपति के मस्तक पर पहुँच कर इतिहास को पलट दिया है।

रानी एलिजाबेथ के राज्यारोहण दिवस पर इस विजय संदेश ने विश्व में सहर्ष विस्मय विस्तारित कर दिया है।

ब्रिटिशरोंने इसे शुभ शकुन भी मान लिया है, पर यह स्मरण रहे कि उनके विजयाभियान में तेजस्वी तेर्नसिंह जैसे भव्य भारतीय के उचित पथ प्रदर्शन की प्रथम आवश्यकता रहती है। निःसंदेह मानव की निसर्ग पर यह महान विजय हुई है, हिमालय की २९००० फीट ऊँची चोंटी पर चढजाना मानव के लिए वास्तव में असाधारण और अद्भुत घटना है। २९ हजार फीट चढ़जाने के बाद प्रकृति से प्राण पराजय पाजाते हैं, किंतु तेर्नसिंग ने पिछले पराजयों की पर्वाह न कर प्राणों से खेलते हुए प्रकृति पर इसबार साहस पूर्वक विजय प्राप्त करली है। मानव ने आकाश में उडकर, सागर के तल में पहुंचकर, ज्वालामुखी में फसकर अपना शौर्य प्रतिष्ठित किया है, पर हिम के उन्नत शिखर पर चढकर इसबार उसने प्रकृति को पराजित बना दिया है। विज्ञान के सहयोग, और तेर्नसिंह के साहस के सहारे से आज जो अगम्य शिखर मानव चरणों से अंकित बना है, वह इतिहास की अमर गाथा ही नहीं बना रहेगा, भावी युग के लिए मानव का पथ प्रशस्त बना देगा। जिस नेपाली वीर भारतीय तेर्नसिंग के मार्गदर्शन में यह हिम विजय प्राप्त हुई है हम गर्वोन्नत मस्तक से उस महान प्रथम भारतीय तथा उसके साथियों का शत-शत अभिनंदन करते हैं।

अखीर हिमालय ने 'पुत्रात्-शिष्यादिच्छेत् पराजयम्' के अनुसार अपने पर्वत पुत्र से ही पराजय स्वीकार की है। मानव का मस्तक ऊपर उठगया, पर्वत का मस्तक झुकगया

है ! आकाश को चूँमने वाली चोटी ने एक गरीब कुली के चरण चूम लिए हैं ! !

प्रकृति के वैभव को साधारण पुरुष ने पराभूत कर लिया हैं।

हमारी लज्जा !

जो नरवीर तेर्नसिंग ६ बार पर्वतारोही दलों के साथ एक अकिंचन सहायक बनकर गगन चुम्बी-शैल शृंग पर चढ़ने का साहस करता रहा, और अन्त में इस ग्यारहवें अभियान में गिरि-शिखर पर सफलता पूर्वक आरोहण करने में सफल हुआ, उसे आजतक क्या हमारी सरकार ने कभी कोई सहायता देकर प्रोत्साहित किया ? यदि ब्रिटिशदल के साधनों का उसे सहयोग न मिलता तो आज भारत यह गर्व कर सकता था ? क्या भारत ने उसे साधन-सुविधाएं प्रदान की होती तो वह यह विजय अपने अन्य शेरपा-साथियों के साथ सुलभ न बना पाता ? और भारत का मस्तक गर्वोन्नत न कर पाता ? आज हमारी सरकार तेर्नसिंग को सफल पाकर गौरव अनुभव करती है, किन्तु उसे यह अवश्य संकोच हो रहा होगा कि तेर्नसिंग के प्रति उसकी उपेक्षा रही है। विदेशी वीरों को जब उस देश की सरकारें और समाज लाखों की रकम, और अद्यतन-साधन सुलभ करदेती है, तभी वे 'एवरेस्ट' तक प्रवास कर, आरोहण का प्रयास लगभग सौ-डेढ़ सौ शेरपाओं को सहाय में लेकर करते हैं। जिन शेरपाओं की सहायता से वे सफलता पाते हैं, उन शेरपाओं की दीन-हीन दशा को कौन देखता है ? उनका धंदा पर्वतारोहियों का सहायक बनकर प्राणों की बाजी के साथ की हुई यत्किंचित् कमाई पर परिवार पोषण करना रहता है। यही हालत नर केसरी तेर्नसिंह की रही है। आज वह अकिंचन-विनम्र-शेरपा तेर्नसिंह विश्व का गौरव भाजन बन रहा है। तब भी हम उसे 'पदक' प्रदान कर प्रसन्न होना चाहते हैं। वस्तुतः उसके असाधारण साहस पर हमारी सरकार को उसे सदा के लिए निश्चित बना देना-इतनी-भूमि, और धन से सम्पन्न करदेना चाहिए कि उसकी आगे आने वाली पीढी अपने वीर-वंश का स्मरण करती रहे। उसे अर्थ-चिन्ता से मुक्त बना देना चाहिए। आज यदि कोई राजतन्त्र होते तो अवश्य उसे जागीर काट कर देदेते। पर पदक पुरस्कार द्वारा हम प्रसन्नता अनुभव करना चाहते हैं। आज तेर्नसिंह का सम्मान केवल भारतीय होने पर ही नहीं है उसने विश्व के अजेय गिरिशृंग को पराजित किया है, इसलिए उसका विश्व में सम्मान है। विश्व-वीर के रूप में ही उसका महत्व है। अवश्य ही वह कर्नल हन्ट, या हिलेरी का सहायक बनकर गया हो, पर हन्ट के हिलेरी को उसीने सहायता देकर ऊपर चढ़ाया है। इसलिए वह विजयी ही नहीं किन्तु विजयी बनने का दावा करने वाले हिलेरी को भी विजयी बनाने का यश तेर्नसिंह ने ही प्राप्त किया है।

अब 'नाम' का प्रश्न !

'एवरेस्ट' के नाम पलटने का प्रश्न भी यूरोप, और भारत में उठ खड़ा हुआ है। आज जब कि जमाने में राजतन्त्र, और साम्राज्यवाद की कब्र खुद रही है, तब प्रगतिशील इंग्लेंड के श्रमजीवियों के पत्र 'डेली हेराल्ड' ने यह सुझाव रखा है कि एवरेस्ट का नाम माऊण्ट-'एलिजाबेथ' पलट दिया जाए। भारत के श्रमजीवी सम्हल जाएं कि वे जिनका अन्धानुकरण करते जारहे हैं, उनके प्रगति-प्रिय पत्र के अगुआ ने जनतन्त्र के जमाने में किस दर्जे की साम्राज्यवादी भावना व्यक्त की है ? यह हैं ब्रिटेन के समाजवादी, जो बदले हुए जमाने में भी कट्टर पंथी पन की मनोवृत्ति लिए हुए हैं ! इस 'डेली हेरल्ड' को अमेरीका के एक पत्र 'ब्रुक लिन ईगल' ने केवल द्वारा यह उत्तर दिया है कि "माउण्ट एवरेस्ट का नाम माउण्ट-एलिजाबेथ नहीं, किन्तु माउण्ट भूतिया तेर्नसिंग रखा जाना चाहिए, जिसने एवरेस्ट का शिखर सर किया है। एलिजाबेथ ने शिखर सर नहीं किया है।" और इसीलिए 'डेली मिरर' ने भी यह अनुरोध किया है कि इसी वीर तेर्नसिंह का सम्मान किया जाना चाहिए जिसके बिना पर्वत पर चढ़ा नहीं जासकता था।

रानी एलिजाबेथ ने भी कर्नल हन्ट, और हिलेरी को 'सर' का सम्मान देते हुए वीर तेर्नसिंह को सम्मानित करने और जार्ज पदक प्रदान करने की घोषणा करदी है। इधर राष्ट्रपति द्वारा पदक प्रदान किया गया है। नेपाल-दार्जिलिंग-(जहाँ तेर्नसिंह का निवास है) तथा कलकत्ता-

दिल्ली में भी इस नरवीर तेर्नासिंह के स्वागत सम्मान के अनेक आयोजन किये गये । 'ये उचित भी हैं, तेर्नासिंह विश्व सम्मान का अधिकारी है वह चाहे नेपाली वंश का हो, भारत का नागरिक हो, किन्तु वह आज विश्व-मानव बन चुका है ।

तथापि हमने पराधीन बन एक महान् पर्वत को 'एवरेस्ट' कहा, अब हम एलिजाबेथ, या तेर्नासिंह कहकर पर्वत की परम्परा को नर-नाम से न झुकाएँ यही उत्तम होगा। इस विजय प्रसंग पर 'एवरेस्ट' नाम का कलंक तो हमें मिटा ही देना चाहिए, पर्वत का नाम यदि पुरातन सुलभ हो तो वही रखना-घोषित करना चाहिए, अन्यथा 'स्वर्ग शिखर' कहना उत्तम होगा । 'कैलाश' नाम से एक अन्य शिखर विद्यमान है, इसलिए यह स्वर्ग-शिखर ही उत्तम होगा ।

पूना का भाषा-सम्मेलन !

अनेक भाषा, और बोलियों वाले हमारे इस देश में भाषा के प्रश्न को लेकर विद्वानों और विचारकों में अब भी एक बड़ी उलझन बनी हुई है । हिन्दी को राष्ट्र भाषा मान लेने पर भी उलझन खत्म नहीं हुई है, ज्ञान और विज्ञान के माध्यम के प्रश्न पर विद्वानों में मतैक्य नहीं हो रहा है, जिन लोगों ने प्रगतिशील विज्ञान की जन्मभूमि या विकास भूमि विदेश को स्वीकार कर उन्नति साध्य की है, वे हिन्दी के माध्यम से पारिभाषिक शब्दों को स्वीकार करने में हिचकते हैं,- उलझन अनुभव करते हैं, इसी तरह अंतर राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्ध, और राजनीतिक व्यवहार के लिए भी अंग्रेजी की आवश्यकता को महत्व देना चाहते हैं । कुछ समय हुआ पूना विश्व विद्यालय के म. म.- प्रो. काणेजी की अध्यक्षता में एक भाषा-विदों का सम्मेलन आयोजित किया था, उसमें भाषिक समस्या को लेकर विचार विमर्श किया गया, स्वयं प्रो. काणेजी ने जो विचार व्यक्त किए उनसे प्रतीत होता है कि वे हिन्दी का विरोध करने से तो हिचकते हैं, परंतु उसकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए अगले पचास वर्ष कठोर श्रम द्वारा उसमें क्षमता लाने की बात बतलाते हैं, तभी वह 'केन्द्रीय शासन, व्यापार व्यवसाय और भावों के आदान प्रदान के लिए योग्य वाहन बन सकेगी' । इससे उनके मन में रहने वाली हिन्दी की निर्बलता का भान होजाता है, महाराष्ट्र में हिन्दी के प्रति जो भावना काम कर रही है यह उसका प्रतीक है । ठीक इसी तरह वैज्ञानिक और औद्योगिक पारिभाषिक शब्दों की आड़ में बंगाल के प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने भी अपने भाषण में कहा है कि 'अंग्रेजी आज कल विश्व संस्कृति का एक अद्वितीय वाहन बनी हुई है, भारत के लोग इसे अन्य किसी भी यूरोपीय भाषा की अपेक्षा आसानी से सीख सकते हैं, चूंकि भारतीयों के उच्च वैज्ञानिक जीवन और अंतर राष्ट्रीय सम्बन्धों में अंग्रेजी का स्थान कोई भारतीय भाषा शीघ्र नहीं लेसकेगी, इसलिए वैज्ञानिक अध्ययन अंग्रेजी के जरिये ऐच्छिक बनाकर अंग्रेजी का मार्ग खुला रखाजाय।' नागपुर युनिवरसिटी में भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र की जो अनेक पुस्तकें हिन्दी मराठी में स्वीकार की हैं उसकी आलोचना भी की और 'कूप मण्डूकता' से अभिहित किया !

डॉ० चटर्जी से भी 'हिन्दी का भारतीय भाषा के रूप में विकास' विभाग के अध्यक्ष श्री एम् वेंकटेश अय्यंगर नम्बर मार गए हैं, वे हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' भी कहने में चौंकते हैं, वे कहते हैं हिन्दी को फेडरल संघीय भाषा कहा जाए !

और डॉ० राणे ने हिन्दी को बंगला, तामील, मराठी से 'अशक्त' ही माना है । यहाँ तक कि कुछ लोगों ने हिन्दी को प्रादेशिक भाषा तक कहने का तर्क दिया है । पूना में होने वाले सम्मेलन के उक्त रूप में हमें कोई अस्वाभाविकता नहीं मालूम हुई, परंतु भाषा के विद्वानों में जहाँ यह मनोवृत्ति और पूर्व ग्रह भावना काम कर रही है, वहाँ अवश्य ही हिन्दी की प्रगति, और राष्ट्र भाषीय रूप के विकास में सतत् और कठोर प्रयास की आवश्यकता है ।

अवश्य ही डॉ० चटर्जी के कुछ सुझाव सुन्दर हैं, बम्बई के गवर्नर सर गिरजा शंकर वाजपेयीजी के विचार भी समझने योग्य हैं, हमें संकीर्णता, और दुराग्रह से तो दूर ही रह कर उदार भावना के साथ काम करना होगा, अन्यथा हम विकास साध्य न कर सकेंगे परंतु अंग्रेजी के प्रति दुराग्रह पूर्ण मोह, और हिन्दी के प्रति आशंका रखकर जो विद्वान् भाषा भय उत्पन्न करते हैं, या वैज्ञानिक प्रगति के अवरुद्ध होजाने की आशंका उत्पन्न करते हैं, वे

अनेक भाषाओं के विशाल देश रूस को कैसे भुला देते हैं, जहाँ अंग्रेजी को जरा भी अवकाश न मिलने पर भी ज्ञान विज्ञान की प्रगति में बाधा तो दूर किसीसे पीछे तक नहीं रहे हैं। रूसी विज्ञान उद्योग, अंतरराष्ट्रीय व्यवहार आज अंग्रेजी के न जानने पर भी अंग्रेजी देशों के लिए ईर्ष्या और स्पर्धा का विषय बना हुआ है, सरकार अनेक मिशनों को बाहर भेजती रहती है, एक बार इन भाषा-भक्तों के बडे मिशन को भी मास्को को यात्रा करने क्यों नहीं भेजते, जहाँ जाकर विभिन्न भाषाओं की पृथकता रहते हुए उसमें एकता प्रथित करने वाली रूसी भाषा का स्वतंत्र व्यापक और वैज्ञानिक विकास अपनी आंखों से देख सकें। शायद तब इनकी आंखों पर अंग्रेजी-मोह का पड़ा पर्दा उठ जाए और राष्ट्र भाषा की एकता का गर्व अनुभव हो सके।

हम डॉ० सुनीति कुमार से यहाँ सहमत हैं कि—'भारत के अधिकांश भाग लिए के संस्कृत भाषा से निकाली गई सांस्कृतिक शब्दावलि देश को एक सूत्र में पिरोने के लिए 'सबसे शक्ति शाली रज्जू होगी' और भारत की सभी भाषाओं के लिए अधिक से अधिक एक जैसी वैज्ञानिक, और सांस्कृतिक शब्दावलि बना कर ही एकता साध्य की जासकती है, और वह शब्दावलि संस्कृत से ही लीजाना चाहिए।'

संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा के रहते हुए हमें अंग्रेजी रथ को राष्ट्र के सिर पर चढाने की क्यों आवश्यकता रहनी चाहिए, ज्ञान सभी जगह से लिया जासकता है, भाषा सभी सीखी जासकती हैं, आदान प्रदान भी उदारता पूर्वक आवश्यक है, परंतु राष्ट्र भाषा के गौरव को गिरा कर परायों की पूंजी पर ही अपनी पेढ़ी की प्रतिष्ठा नहीं की जाना चाहिए। भाषा सम्मेलन ने निम्नलिखित सुझाव स्वीकार किए हैं:—

१. सभी ज्ञान विज्ञानों के लिए पारिभाषिक शब्दों का आधार यथा संभव संस्कृत हो।

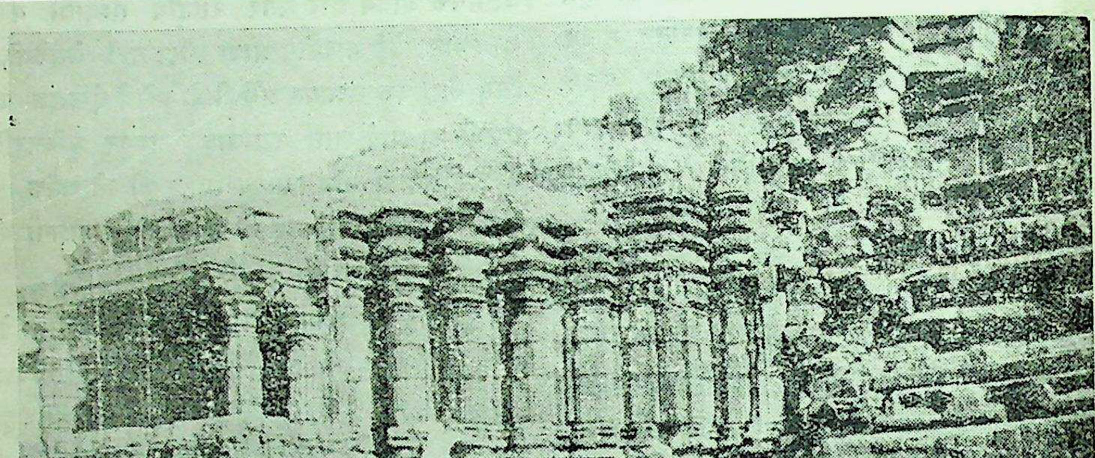

'ऊन' का चौबारा नम्बर एक (११वीं शताब्दी)

२. समस्त अन्तर्राष्ट्रीय संकेतों, प्रतीकों और सूत्रों को जैसे वे इस समय हैं इसी रूप में रहने दिया जाय।

३. अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिभाषाओं को उसी रूप में रहने दिया जाय यदि उनके लिए कोई उपयुक्त हिन्दी शब्द न मिलें।

४. वैज्ञानिक टॅक्निकल शब्द सारे भारत में यथा-संभव एक ही प्रकार के हों।

सम्मेलन ने यह कहा कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में मुख्य बाधा, यह है कि प्रादेशिक भाषाएं यह समझती हैं कि हिन्दी का विकास उनके अधिकारों का हनन है। सम्मेलन ने प्रादेशिक भाषा भाषियों को कहा कि यह भय निर्विवाद है। वे अपने सब कार्य प्रादेशिक भाषा में ही कर सकते हैं।

निग्रो-नारी द्वारा मलान की मलामत !

सफेदों के समाज में कालों के प्रति जिस कुटिल-नीति का व्यवहार हो रहा है, वह आज के प्रगतिशील और सभ्य-समझे जाने वाले युग के सिर पर काला कलंक ही है। एक ओर मानव अधिकार-रक्षा के आदर्श का आडम्बर रचने वाले अमेरीका में निग्रों के साथ निम्न कोटि का व्यवहार किया जाता है, हब्शियों को हेय समझा जाता है, तो दूसरी ओर दक्षिण अफ्रिका में कालों के साथ क्रूर व्यवहार पराकाष्टा को पहुंचा हुआ प्रत्यक्ष मानवता को गंभीर चुनौती देरहा है। सफेद चर्म-किन्तु काले-क्रूर हृदय के मलिन-मलान शासन में आज काली चमड़ी-किन्तु निर्मल हृदय के नरों का निर्दयता से दमन चल रहा है। और सफेदी का दम्भ रखने वाले ये बगले, सरोवर तीरपर ध्यानावस्थित बन उसमें बसने वाले जीवों को चुन-चुनकर पैरों तले पकड़ कर कुचल रहे हैं। तथा उनकी जात के अन्य जन आराम से दूर खड़े, खुली आंखों यह देखकर मौन समर्थन कर रहे हैं। यह गोरों की गिरावट का कैसा ज्वलन्त प्रमाण है ! किन्तु इन काले कर्मों पर रानी के राज्याभिषेक के अवसर पर तब तक पर्दा पड़ा रहा, और पोप की स्पष्ट वाणी भी प्रच्छन्न बनी रही,–जब तक कि अमेरिका की एक निग्रो नारी ने अपनी कला के माध्यम से सार्वजनिक-प्रदर्शन द्वारा मलान की मट्टी पलीद करने वाली स्वर–लहरी से गोरों के कठोर-जड़ कानों पर पड़े पर्दे को चीर नहीं दिया ! मेरी ब्रायंट अमेरीका की निग्रो-नारी नर्तकी है, उसके संगीत का सौरभ काले-कंठ से निकलकर गोरों से गौरव प्राप्त है। वह रानी के राज्याभिषेक में गायिका के रूप में लंदन आई थी, परन्तु पता नहीं उसने गोरों का गौरव-गान किया या नहीं। रानी को रिझाने के लिए कोई राग रंजन किया या नहीं, किन्तु उसके एक गीत ने–जिसे एक गोरे-अंग्रेज कवि (डेविड विलयी) ने रचा है–समस्त गोरों के दाम्भिक गर्व का पर्दा फाश करके अवश्य रख दिया है। उसकी ध्वनि गोरों की दुनियां को लांघकर सारे जग में छागई, गीत में मेरी ब्रायंट ने 'मलान की मलामत मत करो !' की आवाज रानी के राज्यारोहण पर बुलंद की ! 'हिन्दुस्तान' में श्रीमती इलासेन ने लिखते हुए बतलाया है कि "राज्याभिषेक समारोह में लन्दन-यात्रियों को अनेक आश्चर्यजनक बातें देखने को मिलीं; परन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि एक अश्वेत अमरीकी गायिका ने राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रियों में से आस्ट्रेलिया के रूपवान मैंजीज को या भारत के सुविशिष्ट नेहरूजी को अपने सांध्य-संगीत का सम्मान प्रदान नहीं किया; वरन् उसके लिए दक्षिण अफ्रीका के ७८ वर्षीय प्रधान मन्त्री और जातीय पृथक्करण युद्ध के कापालिक डा० डेनियल मलान को उपयुक्त पात्र समझा।"

मेरी ब्रायन्ट के गीत में संगीत का सौन्दर्य होगा, यही कारण है कि गोरों ने उसे राज्यारोहण के प्रसंग पर स्वागत के साथ सुना होगा, परन्तु उस गीत में जो गहरा और चुभता हुआ तीखा-व्यंग है, उसने अवश्य ही गोरों के कठोर-दिल में भी शूल चुभो दिए होंगे। उस गीत की पंक्तियों का अनुवाद 'हिन्दुस्तान' से हम सादर यहां देरहे हैं।—

गीत का अनुवाद

हम संयुक्त जन और आदिवासी आपके समक्ष उपस्थित हुए ह-
यह दृढ़ विश्वास लेकर कि तीन कालों के मिल जाने से
एक गोरा नहीं बन सकता।
हमने एक अत्यन्त दुष्ट अपवाद सुना है और हम उसके
निराकरण के लिए आये हैं।
जब हम अंग्रेजी पत्र पढ़ते हैं जिनमें लानत मलानत की
जाती है—

एक ऐसे पुरुष की जो हमारे हित के कार्यों में संलग्न है, तो हमें महसूस होता है कि आपका रोष गलत दिशा और गलत लक्ष्य की ओर है।

इसलिए आपको सही मार्ग की ओर उन्मुख करने के लिए आज रात हम आपसे यह अनुरोध करने आये हैं;

'इस बिना पर मलान की मलामत मत कीजिए
कि वह हमारे रंग से छड़कते हैं!'
हम जानते हैं कि काली चमड़ी रखना गलती है
और शहर के काले मोहल्लों में जन्म लेना भी गलती है!
यह बिलकुल ठीक ही है कि हमारे गन्दे, पुराने घर जला डाले जायें!
मलान एक अद्भुत पुरुष है!
मलान की मलामत मत करो!
वह अपनी शक्तिभर कल्याण कर रहे हैं!
वह हम सबको श्वेत राजनीति से मुक्त रख रहे हैं
और उन सब बातों से भी जो हमने राजनीतिक चालबाजियों के बारे में सुनी हैं।
हम तो सिर फोड़ने के बदले कम खाकर शान्ति से रहना पसंद करेंगे!
मलान एक अद्भुत पुरुष है!
मलान की मलामत मत करो!
क्योंकि, जब से उनका संरक्षण प्राप्त हुआ
भारतीय, जुलू और काफिर बच्चा बच्चा उछल पड़ता है–
जब कभी भी वह प्यारा डाक्टर दिखलाई पड़ता है!
क्या हुआ यदि हम दो सो वर्ष पूर्व के युग में पहुँच गये हैं?
मलान तो एक अद्भुत पुरुष है!

मेरी ब्रायंट ने स्वयं इस गीत के विषय में कहा है कि मेरे खयाल में गीत की सबसे महत्वपूर्ण पंक्तियां वे हैं, जिनमें कहा गया है–

"मलान की मलामत मत करो, वह शक्तिभर
भलाई कर रहे हैं,
मलान एक अद्भुत पुरुष हैं।"

मेरी ब्रायंट कहती हैं—"क्यों, आप जानते हैं?– क्योंकि मैं महसूस करती हूं कि–डॉ. मलान जो कुछ कर रहे हैं, उस पर उनका विश्वास है, और अन्ध-उत्साही व्यक्ति उत्तरदायी राज पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक खतरनाक होता है।" –यह सर्वथा तथ्य है!

मेरी ब्रायन्ट के उस सुन्दर एवं मार्मिक-गीत ने राज्य रोहण के राग-रंग में रौनक बढ़ाई, या गोरों के चे पर हवाइयां उड़ाई, यह जानने का जर्या नहीं मि किन्तु निश्चय ही यह गीत, काले-कण्ठ से निकल गोरों के गले में 'गरल' की तरह ही उतरा होगा। राज्य रोहण के भव्य-आयोजन में मेरी ब्रायन्ट का यह सुरी संगीत एक विशिष्ट घटना ही है!

देशद्रोहियों का परिचय प्रकाशित करें।

दिल्ली से सूचना प्रकाशित हुई है कि भारत सर ब्रिटेन की निष्ठा पूर्ण सेवा करने के उपलक्ष में तत्का शासकों ने जिन लोगों को राजनीतिक पेंशन (पाना-श दी थी, उन्हें बन्द करदेगी। वास्तव में यह शुभ समाच है, सरकार की इस निश्चय के लिए सराहना की जाए वास्तव में यह कदम बहुत देरी से उठाया गया है, रा रहीसों के विलयन के पूर्व ही भारत से इस पाप को धो साफ कर देना चाहिए था, क्योंकि ये पेंशनें जागीरें या भारत पर विदेशियों को जमाने के लिए दी गई थी, भारतीयों के विरुद्ध अंग्रेजों को सहायता देने के लि दीगई थी, जिन्होंने देशद्रोह कर 'जयचंद' का काम कि था। प्रायः १८५७ के समय अधिकांश ऐसे पेंशन पुरस्क का सदाव्रत बाँटागया था, हमारे मध्य-भारत प्रदेश भी ऐसी कुछ जागीरें, पेंशने दीगई हैं, जिन्होनें देशद्रोह दुश्मनों को मदद दी थी। महारानी लक्ष्मीबाई के स ऐसे पापों की पेंशन पाने वाले अब तक भी उत्तर-प दक्षिण मध्य-भारत में ऐश्वर्य का उपभोग कर प्रा कलंक भाजन बने हुए हैं। स्वतंत्र भारत में ऐसे क को पांच पांच वर्ष तक पनपने दिया जाना अपराध पोषित करना ही है। इतने समय के बाद ही सही भार सरकार ने जो निश्चय किया है, वह उचित है। यह है कि उन पापों से प्राप्त रकम का उपभोग, वर्त उपभोक्ताओं को उनके जीवन पर्यन्त भोगने का मिलेगा और बाद में समाप्त कर दिया जावेगा। इसके पूर्व ऐसे लोगों की नामावलि उनके कार्य प और प्राप्त रकम की सूचि के साथ जनता में प्रकाशित प्रचारित करदी जाना चाहिए, ताकि जनता उनके रूप को, चरित्र को ठीक तरह पहचानले। और उ

भावी सन्तान देशद्रोह के प्रायश्चित के लिए विचार कर सके। हम मध्य भारत-शासन से अनुरोध करेंगे कि वह अपने प्रदेश के राजनीतिक-इतिहास लिखने के साथ ही उन देशद्रोहियों का परिचय भी प्रकट करदे जिन्होंने प्रांत को कलंकित बनाया ! और समाज में स्वतंत्रता प्राप्त होजाने के बाद भी शान जमाए बैठे हैं।

दो प्रतिभा-पुत्रों का महा प्रयाण।

स्व. लक्ष्मीधर वाजपेयी हिन्दी के पुराने साधक विद्वान कवि और लेखक थे, उनकी सेवाएं बहुत महत्व की रही हैं। सम्मेलन को सम्पन्न रखने में उनका बहुत बड़ा भाग था, उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। विविध विषय में उनकी योग्यता थी, अनेक पत्रों में सम्पादक भी रहे हैं। साहित्य की पुरानी पीढ़ी का यह धनी लेखक अन्त में आर्थिक संकट में ग्रस्त रहा, और साहित्य को सम्पन्न करके भी विपन्नावस्था में संसार से मुक्त होगया ! परमात्मा उनकी आत्मा को सद्गति दे।

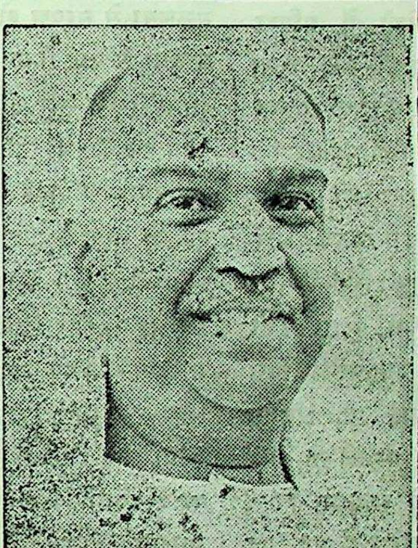

स्व. मुकर्जी

श्री० श्यामा प्रसाद मुकर्जी सहसा स्वर्गीय हो गए, यह वास्तव में विचित्र विधि-विधान ही है। उनका अन्त संघर्ष-रत रहते हुए काश्मीर में स्थान-बद्ध अवस्था में होगया। वे प्रतिभा शाली बंग पुत्र थे, ज्ञान और प्रतिभा उनके परिवार की वस्तु थी। सर आशुतोष मुकर्जी जैसे भारत के माने सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, और अग्रगण्य विद्वान् के पुत्र होने के कारण श्यामा बाबू को ज्ञान की विरासत पिता से मिली थी। वे प्रमुख वक्ता, तेजस्वी प्रतिभा, और अपनी धुन के धनी थे। पार्लमेंट में विरोधी दल के नेता के रूप में उनका प्रभाव था। उनके विचारों, कार्य पद्धतियों से चाहे मत-भेद हो सकता है, परन्तु उनकी योग्यता का आदर विरोधियों को भी करना पड़ता था। कांग्रेस से उनकी पटरी नहीं बैठती थी, जनसंघ का नेतृत्व उन्हें प्राप्त था। काश्मीर की शासन-नीति के विरुद्ध उन्होंने आन्दोलन छेड़रखा था। काश यह आन्दोलन जनसंघ के मंच से न छिड़ा होता तो मुकर्जी को इसमें समाज के बड़े वर्ग से सहयोग प्राप्त होता और काश्मीर को भी झुकने को बाध्य बनना पड़ता, किन्तु संघ से संचालित होने के कारण साम्प्रदायिक भावना से सना समझ श्रीनगर की संदिग्ध नीति के विरुद्ध साशंक समाज की सहानुभूति और सहयोग भी सीमा में सिमटा रहा, और विधि-विधान है कि स्वयं मुकर्जी जैसे प्रतिभा-शाली-व्यक्ति को उसी भूमि में पहुँच कर अकस्मात् प्राणोंत्सर्ग प्रसंग प्राप्त हो गया। उनका यह अन्त भी काश्मीर की गुत्थी को सुलझाने में सहायक बनजावे तो सार्थक हो जाएगा।

किन्तु....

खेद यह देखकर होता है कि डॉ. मुकर्जी के अवसान को लेकर भी सन्देह भावना व्यक्त होरही है, कुछ पत्रों में और कुछ समझदारों की भाषा में जो भावना व्यक्त हो रही है प्रचारित की जारही है, वह देश की शान्ति के लिए चिन्ता का विषय बन सकती है। ऐसे समय जहां संयम से काम लेना चाहिए, समझदारी से सोचना और वाणी-विस्तार करना चाहिए, वहां ऐसे संदिग्ध, और साक्षेप विचार प्रचार से जनता में उच्छृंखलता को प्रेरणा मिल सकती है। और उन्मादवश कोई भी भीषण प्रतिक्रिया हो सकती है, किंतु यह देखकर दुःख होता है कि अनेक जुम्मेदार बनने वाले जनों के मुंह से, कलम से, और पत्रों से ऐसी असंयमित-भाषा प्रचारित हो रही है। हमारे पत्रकार मित्र देश को किस ओर प्रेरित-प्रोत्साहित करना चाहते हैं ? जिन्हें अंकुश रखकर राष्ट्र शांति की चिन्ता करना चाहिए क्या वे ही निरंकुश बन अशांति आमन्त्रित करना चाहते हैं ? जिस नेता को बिना मत-भेद के सार्वत्रिक अंजलि अर्पित की जारही है। आदर अभिव्यक्त किया जारहा है। वहां पारस्परिक आक्षेप का प्रचार न तो शिष्टता का सूचक हो

सकता है, न सार्वदेशिक शान्ति की महत्ता को मानते हुए दूरदर्शिता पूर्ण ही ।

सरकारी साहित्यिक (!) कारखाना !!

नवशिक्षित-नवयुवकों में साहित्यिक बन प्रकाश पाने की बडी बेचैनी होती है। पत्रों में अपनी रचनाएँ छपी देखने की आतुरता स्वाभाविक होती है, कृत-श्रम-कृत—विद्य जनों की रचनाओं को पत्रों में देख-पढकर उनकी जोड़ में जुड जाने की आकांक्षा होजाती है। वह अपनी पूँजी की पर्वाह किए बिना पांच-सवारों में प्रतिष्ठा पाने को बेचैन बनजाते हैं। प्रतिभा के प्रसाद पाए बिना ही अपनी प्रत्येक रचना को प्रथम श्रेणी की मान—जान कर प्रथम श्रेणी में प्रविष्ट होने की कामना करते हैं। चाहे उनसे कल्पना और कला कोसों दूर रहे। ऐसे नवोदित-नवयुवकों के लिए किसी विज्ञान ने कोई आविष्कार नहीं किया कि प्रतिभा की पूँजी उनके सिर में समाविष्ट होकर क्षण में उनके ज्ञान की ज्योति को चमकावें, और सहज साहित्यकार बनादे। लेखक और कलाकार बनाकर कल्दार की कला से भी परिचित करवा दे, परंतु इस तरह के ज्ञान को जगाने में विज्ञान भी विवश रहा। मस्तिष्क की स्नायुओं को सुषुप्त शिथिल बना देने में भले ही विज्ञान ने सफलता पाई हो, अंतर्मन से अपराध कुबूल करवाने में कामयाबी पा ली हो, पर अज्ञान में ज्ञान-दान देने का दाक्षिण्य नहीं आसका, किन्तु मालूम होता है 'भारती' के भक्त, भारतदेश में अब यह दुर्लभ न होगा। सरकार सभी दिशा में सतत यत्न-शील बनी हुई है। कला और साहित्य की 'एकेडेमी' खोलने के साथ सरकार की यह चिंता स्वाभाविक होसकती है कि सारे देश में सर्वत्र युवकों की 'प्रज्ञा-पलटन' भी पनपती दिखाई दे। इसलिए हाल ही हमारे माननीय मौलाना के शिक्षा मंत्रालय से एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है, उसमें बतलाया गया कि "नव शिक्षितों के लिए साहित्य निर्माण करने वालों को ट्रेनिंग का पहला 'साहित्यिक कारखाना' (वर्क शॉप) जुलाई १९५३ से जनता कॉलेज अलीपुर दिल्ली में शुरू होगा।" 'मौलाना' की मेहरबानी से 'अलीपुर' के कारखाने में जुलाई के बाद तुरन्त ही साहित्यिक ढलने लग जाएंगे, और यह अभाव भी देश से मिट जाएगा। अलीपुर वर्क शॉप के ढले हुए साहित्यिक कितने कसे हुए किशोर बन सकेंगे यह आज कहना कठिन है, किन्तु य समाधान मानना होगा कि वे स्वदेशी तो होंगे ही। मॉस्को मार्केट से आयात होकर स्टेलिन-स्टॉल से बने हुए वे हर्गिज न होगें। हमारी सरकार हर चीज अपने देश, औ अपने ही कारखानों से बनाकर बाजार में रखने का सतत साहस और श्रम कर रही है, तदनुसार ही यह एक महान् कार्य—'साहित्य-कारखाना' का आरम्भ भी है। आरम्भ में इस कारखाने में जिन नवयुवकों को ढाला जावेगा, वे बिहार, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, पेप्सू-पंजाब, और उत्त प्रदेश के लेखक होगें। इन प्रदेशों के साहित्यिकों की ढलाई सफलता से सम्पन्न हो जाने के बाद शेष प्रांतों को भी प्रतिभा से पाट दिया जाएगा। हर प्रदेश में ऐसी 'वर्क शॉप्स' सहज खुल जाएँगी। कोई नव शिक्षितों को निराश रहने का कारण नहीं होगा। कारखानों से निकले हुए साहित्यिकों में कोई विषमता भी नहीं रहेगी, क्योंकि वे एक ही साँचे में ढल कर निकलेगें। स्टेंडर्ड होना उनके लिए स्वाभाविक है। अब पुराने पिछड़े हुए साहित्यकारों को सरकार से कोई शिकायत नहीं रहना चाहिए कि 'वह साहित्य के लिए कुछ नहीं करती।' सरकार शान्ति के साथ यही सोच रही थी किस तरह साहित्यिकों का निर्माण किया जाय। आखीर उसने साहित्यिक वर्क शॉप खोलने का निश्चय किया और अलीपुर में आरम्भ कर यह समस्या भी सरलता से हल करदी है। जिन उपर्युक्त-प्रदेशों के उम्मीदवारों को इसमें ढालने के लिए लिया जावेगा, उन प्रदेशों में साहित्य-सृष्टा का कदापि अकाल नहीं पड़ सकता। बल्कि आवश्यकता पड़ने पर अन्य प्रदेशों में भी उनका आसानी से निर्यात हो सकेगा। हमें विश्वास है नव शिक्षित-नवयुवकों की निराशा निरस्त हो जाएगी और वर्कशॉप से निकलते ही उनकी प्रतिभा के प्रकाश के लिए प्रशस्त पथ प्राप्त हो जाएगा। और साहित्यकारों को भी सरकार से चीख-पुकार करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। सरकार में वह शक्ति है कि एक वर्कशॉप खोल कर प्रथक् पड़े हुए प्रवीण-पुर्जों की पर्वाह किए बिना सहज सहस्त्रों-साहित्यकार ढाल सकती है। साहित्यकार बनने के उत्सुक नए उम्मीदवारों को चाहिए कि माननीय मौलाना को 'वालेकुम सलाम्!' आदाब से अर्ज करें।

डॉ० री का राग,

कोरिया का प्रश्न आज दुनिया की दृष्टि में उलझन का विषय बना हुआ है। दीर्घकालीन प्रयत्न के बाद वहां के युद्ध बन्दियों की समस्या सुलझती मालूम होरही थी कि दक्षिण कोरिया के ताना-शाह डॉ० सिगमनरी ने राष्ट्रसंघ के समझोते, और अमेरिका के अनुरोध की अवहेलना कर हजारों युद्ध बन्दियों को सहसा मुक्त बना अजीब उलझन उपस्थित करदी है 'री' जैसे पिद्दी के प्रयत्न, और दुःसाहस ने समस्त राष्ट्रों को सहसा विस्मित और खिन्न ही नहीं बना दिया है। आसन्न शान्ति को भी समेट कर रख दिया है। जिन बन्दियों का उत्तरदायित्व भारत लेरहा था, और अपनी सेनाएँ भेजने का विचार कर ही रहा था, री ने उस पर भी साम्यवाद के समर्थक होने का आरोप लगा कर संघर्ष की सूचना करदी है। आशा की जारही थी कि लंबे समय से उलझी हुई बंदियों की समस्या भारत के प्रयास से सुलझने चली है तो युद्ध-विराम की संभावना भी निकट आसकेगी, किंतु दुनिया की दृष्टि में एक क्षण में धूल झोंक कर डॉ० री ने शांति की राह में रोडे अटका दिए हैं।

उधार मध्य पूर्व का वातावरण जिस गति से पलटता जारहा है वह भी कम विस्मय का विषय नहीं है। स्वेज की समस्या ब्रिटेन के लिए जितना सरदर्द बनरही है, भारत के लिए भी उसका कम महत्व नहीं है। इजिप्ट की हवा में राजनीतिक चक्र जोर से घूमरहा है। फारूक की फजीहत होजाने के बाद नजीब का नेतृत्व नया रूप लेरहा है। जनरल नजीब की शक्ति ने अंग्रेजों की भेद नीति को तोड कर सूड़ान की समस्या को सुलझा लिया, और वातावरण पर वर्चस्व स्थापित कर लिया है। उधर रानी नरीमान अपने भावी उत्तराधिकारी को त्याग कर साधारण नागरिक की हैसियत में स्वदेश वापिस आगई, और अब नए प्रणय बन्धन में भी बँधने की सूचना सुनाई देरही है। लंदन में जिस समय रानी का राज्याभिषेक, और कामन वेल्थ के प्रधानों का मिलन महोत्सव होरहा था, तब नेहरूजी के मिलने के पश्चात् जनरल नजीब ने सहसा मिश्र के शासन तंत्र में एक नवीन क्रांति करदी। राजतंत्र को बिदा कर गण तंत्र की घोषणा करदी, नजीब इस नए तंत्र के राष्ट्रपति पद पर आसीन होगए हैं, इस प्रकार ऐशिया में एक नवीन गणराज्य और प्रतिष्ठित होगया है। नजीब ने जिस स्फूर्ति, शौर्य, और साहस से मिश्र का काया पलट करना आरंभ किया है, वह दूर पूर्व के लिए अवश्य महत्व पूर्ण बन जाएगा। अब स्वेज समस्या भी सुलझती दिखाई देरही है, नेहरूजी और पाक-प्रधान के संयुक्त प्रयास से उसमें भी आशा होचली हैं।

काश्मीर के मामले में भी मिया महम्मद अली आशान्वित दिखाई देते हैं। वे एक वर्ष की अवधि में कोई हल निकालने का संकेत देते हैं, जब कि पंडितजी ६ मास में ही मार्ग मिलने का भविष्य भाषित करते हैं। यदि मिया मुहम्मद अली अपने सहयोगियों की वृत्ति पर विजय पासके तो पंडितजी के भविष्य में सचाई सुलभ होने में संशय का कारण नहीं, किंतु हमतो पाकिस्तान में भी नवीन परिवर्तन की संभावनाएँ देख रहे हैं। आश्चर्य नहीं आगामी अगस्त में ही वह अपना रूप रंग पलटने को प्रेरित हो, यद्यपि ब्रिटेन उस के काया-पलट से प्रसन्न नहीं होसकेगा, पर पाकिस्तान प्रयास, और संयुक्त-साहस से मिश्र की ओर निगाह रख कर निर्णय कर ले तो कोई कठिनाई न होगी, बल्कि भविष्य सुधारने में सहायता ही मिलेगी।

अवश्यही पंड़ितजी विदेश प्रवास, और राजनीतिक प्रयास में बहुत ऊँचाई पर उठ गए हैं। उनकी प्रतिष्ठा राजनीतिक जग में बहुत बढ गई है, विश्व के विशिष्ट जनों में उनका अपना अलग स्थान बन गया है। समस्त एशियाई देशों पर उनका नेतृत्व स्थापित हो रहा है। वे न चाहे तो भी एशिया खण्ड उनमें आस्था बढाता जारहा है, यह भारत का गोरव है। काश अपनी इस महान विभूति पर हम गर्व करना समझें !

एक तेजस्वी पत्रकार स्वर्गीय !

'वन्देमातरम्' गुजराती-दैनिक के प्रखर पत्रकार श्री० सामलदास गांधी का सहसा हृदय की गति अवरुद्ध हो जाने के कारण अवसान होगया ! श्री. गांधी बम्बई के पत्रकार-जग में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। गुजराती भाषा उनकी अपनी अनूठी थी, वे प्रहार करने में अत्यन्त तेजस्वी होकर विरोधी को कुचलने का सामर्थ्य रखते थे।

'वन्देमातरम्' गुजराती पत्रों में अपनी शैलि का निराला पत्र रहा है, उन्होंने 'जन्मभूमि' के सम्पादन से प्रथक् होकर स्वतंत्र पत्र निकाला, और उसे प्रथम श्रेणी का बनादिया। वे पत्रकार ही नहीं वाणी पर भी अद्भुत वर्चस्व रखते थे, उनकी देश सेवा भी महत्व पूर्ण रही है। जूनागढ के नवाब का मान मर्दन करने उनके नेतृत्व में ही साहस पूर्ण चढाई हुई थी, और नवाब को श्री गांधी के समक्ष अपना शासन सशस्त्र समर्पित करदेना पड़ा था। श्री. गांधी श्री. महात्मा गांधी के बन्धु के पुत्र थे, इसलिए उनका ओज परम्परागत था, उनका व्यक्तित्व भी बहुत भव्य, आकर्षक, और तेजस्वी था। उनकी गहरी-भँवे, और चमकती हुई आँखें उनके तेजस्वी व्यक्तित्व, और प्रतिभा की प्रतीक थी। हमें उनके स्नेह और सहयोग का सद्भाग्य प्राप्त हुआ है। वन्देमातरम् कार्यालय में आमंत्रित कर हमें उन्होंने एक सहयोगी के रूप में सम्मानित भी किया है। विक्रम के प्रति उनका सहज अनुराग था, अनेक टिप्पणियों को वन्देमातरम् में उद्धृत कर स्नेह प्रदर्शित किया है। प्रथम बार हमारे सुयोग्य स्नेही श्री० विजय भट्ट के साथ अन्धेरी में मिलने का सुयोग मिला है, उसके बाद और भी प्रसंग आए हैं। हम उनकी व्यापक योग्यता, साहस वृत्ति, प्रचण्ड-पत्रकारिता, तेजस्वी प्रतिभा से प्रभावित हुए हैं। सामलदास भाई के उठ जाने से गुजराती-पत्रकार जग से एक प्रथम श्रेणी का प्रभावशाली व्यक्तित्व उठगया है। एक देश भक्त-मानव नहीं रहा है। वे जूनागढ़ शासन के मन्त्री बनकर भी विरक्त रहे, अन्त में शासन की शान को ठोकर मार कर लेखनी के धनी बनकर ही रहे। जीवन भर संघर्ष किया, और साहस, शौर्य एवं प्रकट किया। उनके जैसा निर्भीक-साहसी स्पष्टवादी पत्रकार नहीं रहा, यह वास्तव में अत्यन्त दुःख की बात है। हम सद्भावना पूर्वक स्व. गांधी की स्मृति में अपनी अंजलि अर्पित करते हैं।

मध्य भारत में डाकुओं का आतंक, कारण और उपाय !

मध्यभारत में एक समय से उत्तरी भागमें डाकुओं का आतंक छाया हुआ है, अनेक घटनाएँ घटी, और हानियां हुई, पुलिसको भी परेशान होजाना पड़ा। इस पर शासन की विशेषतः पुलिस विभाग की कटु आलोचना हुई है। पत्रों में भी पर्याप्त प्रचार हुआ है। यह सच है कि मध्यभारत शासन में शिथिलता है, नियंत्रण, और आतंक का अभाव है, शासन में जो शक्ति चाहिए वह इसमें नहीं, अनुभव का अभाव हैं, व्यवस्था में सु-सूत्रता नहीं। मन-माना परिवर्तन होता है, और संगठन का अभाव है, तथापि डाकुओं के आतंक में यही कारण हो सो नहीं। इसकी पृष्ठ भूमि कुछ अलग है, कारण भी भिन्न है। इसके लिए हमें वस्तु स्थिति को ठीक तरह समझना चाहिए, और उसी के अनुसार उपाय योजना की जाना चाहिए। केवल शक्ति-भय आतंक से या प्रचार, और आलोचना से ही काम नहीं चलसकता। समाचार पत्रों में जो विवरण छपते हैं, उनसे ही जन साधारण अपना मत बनाते हैं, और आलोचना उसी को लेकर होती है। शासन ने यदि वस्तु स्थिति का उचित अध्ययन कर उस पर प्रकाश डाला होता तो बहुत कुछ भ्रम नहीं फैल पाता और वह भ्रांत प्रचार भी नहीं होता जिससे आतंक का अंत करने में भी बाधा उपस्थित होने लगती है। वस्तु-स्थिति पर प्रकाश न डालने के कारण शासन जुम्मेदार हैं, यदि समाचार पत्रों द्वारा उचित, ज्ञातव्य, और तथ्य प्रकट किए जाएँ तो जनता स्थिति से अवगत रह कर आतंक के उन्मूलन में सहायक भी हो सकती है। जहां तक हम समझ सकें हैं, इस समय राजस्थान आगरा, भिण्ड-मुरेना मिल कर डाकुओं के १७ दल काम कर रहे हैं, इनमें अधिकांश राजस्थान (धोलपुर) के गुजरों के गिरोह हैं। आगरा जिले के डाकूदल-मानसिंह चरना मल्लाह, महावीरा और महाराज सिंह गूजर हैं. और भिण्ड तथा मुरेना जिले के लाखनसिंह, झकर पराका, सुलतान सिंह गूजर-सुकानू मछीरा-बाग चीनी थाना के हैं।

भिण्ड मुरेना में केवल लाखन सिंह और झकर परा, तथा महाराज सिंह के दल की ही अधिक दौड रहती है। अन्य सभी दलों का दौरा राजस्थान में ही लगभग ४ मास से होरहा है।

हमारी जानकारी के अनुसार लाखनसिंह के गिरोह में ११ व्यक्ति थे, अब उनमें से केवल ७ रहगए हैं। २ पुलिस के आक्रमण में मारे गए, तथा १ पकडा गया, और एक डाकुओं का साथ छोड कर भाग गया है।

महाराजसिंह का दल तो प्रायः समाप्त हो चुका है। हाल ही में इस दल का एक डाकू मातादीन ३०३ बन्दूक ९० कारतूस, के साथ पुलिस द्वारा पकड़ा जा चुका है।

प्रश्न यह है कि इन डाकुओं का आतंक इतने लंबे समय तक चलता कैसे रहा ? जहां तक हमने समझा है इसके ३ कारण प्रमुख हैं।

प्रथम कारण इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति है, दूसरा कारण स्वयं जनता है, और तीसरा कारण यहां की आर्थिक दशा है।

भिण्ड-मुरेना जिले में चम्बल, यमुना, सिन्ध, दुबेश, आसन, परज, आदि नदियों के खाल-खद्दर प्रायः ८०-९० फुट तक गहरे हैं, और इनका विस्तार भी ३०० मील तक फैला हुआ है। कहीं २ नवीन नदियां एक दूसरी के निकट होगई हैं, वहां १५ से २० मील तक की खाल खद्दरों की बढ जाती हैं। वहां तुरंत पहुंचने के कोई साधन सुलभ नहीं रहते। इधर सडकों का प्रायः अभाव ही बन गया है। फलतः इन खाल-खद्दरों के प्रवेश में डाकुओं के दल के पहुंच जाने पर उनका पाना मुकाबला करना सहज संभव नहीं हो जाता। फिर ये स्थल इन्हें प्राकृतिक सुरक्षा के बनगए हैं, वहीं परास्त करना अत्यंत कठिन होजाता है। इसी भौगोलिक स्थिति का लाभ दस्यु दल को मिलजाता है।

दूसरा कारण इस भाग की जनता है, जो स्वस्थ, और मजबूत है। प्रायः पुलिस, और मिलिट्री में इस भाग से ही अधिकांश प्रविष्ट होते हैं, जो खाली रहते हैं, वे कमाई के अन्य साधनों के अभाव में लूट-खसोट डाकेजनी के काम में सहज लग जाते हैं, और यह उनका स्वभाव बनजाता है। यह स्थिति सदियों से बनी हुई है, फलतः जन-मनोवृत्ति इसकी आदी बन गई है। जन साधारण इनके कर्म को बुरा समझने या आलोचना करने की अपेक्षा, इनके शौर्य, औदार्य और गुणों की प्रशंसा करती है, इसका प्रभाव भी उनके दल, और बल को समर्थन प्राप्त होने में ही सहायक होता है।

इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति आज ही से नहीं, मुगलकाल से प्रख्यात रही है। दस्युओं से त्राण पाने के लिए चम्बल के बीहडों में तब भी बड़ी संख्या में सेना रखी जाती रही है। शेरशाह अब्दाली ने लगभग दस हजार सैन्य को इटावा के इस सीमावर्ति प्रदेश के लिए लंबे समय तक सुरक्षित रखा था। पिछले ग्वालियर शासन की ओर से भी इस जिले के विशेष भागों के लिये फौजी, और पुलिस प्रबन्ध रख छोड़ा था, इससे इस प्रदेश की दशा की सहज कल्पना की जासकती है।

यह भाग प्रायः अशिक्षा का शिकार है, अधिकांश लोग शिक्षा के अभाव के कारण गलत मार्ग अपनाने लगते हैं।

इस प्रदेश की जनता धार्मिक आस्था में कट्टरता की पक्षपातिनी हैं। उनमें उच्च-नीच के प्रति कट्टर-पुरातन भावना विद्यमान है। डाकू तक धार्मिक, मर्यादा के भक्त, ब्राह्मण देव साधुओं में आस्था रखते हैं। वे अपनी मान मर्यादा धर्म के लिए मर मिटने में संकोच विचार नहीं करते। इस स्थिति का सतर्क और गंभीरता से विचार करके ही उन पर धैर्य से काबू पाया जा सकता है. आज हवा में बह कर जो लोग सार्वजनिक कार्यकर्ता के रूप में इस प्रदेश में स्थिति, और गंभीरता का विचार किए बिना, तथा शिक्षा की स्थिति जाने बिना सवर्ण और हरिजन के प्रश्न को लेकर जिस प्रकार उत्तेजना देने वाली भाषा में प्रचार कर प्रेरणा देते हैं. वे मर्यादा पर मर मिटने वालों के मस्तक की आग में घी का हवन ही कर डालते हैं, फलतः यह संघर्ष भीषण बन जाता है, घातक होता है, पारस्परिक कटुता भी सीमोल्लंघन कर आतंक को उत्साहित करती जाती है। शासन को समझदारी से प्रदेश की मनोवृत्ति समझकर काम करना चाहिए विद्रोही-भावना भडकाने की अपेक्षा, उनके मनोवैज्ञानिक-समाधान को प्राथमिकता देकर समाज-सुधार का आरंभ करना चाहिए। वस्तुतः उनके अज्ञान निवारण करने के लिए शासन को सयत्न होना चाहिए, वहां केवल अधिकार, और कोरे प्रचार की सहज पहुंच नहीं, इसी प्रकार उनकी आर्थिक दशा के सुधार के लिए भी विविध प्रयत्न होना चाहिए। डाकुओं के किसी दल विशेष के अंत से उस प्रदेश की पनपती हुई प्रवृत्ति, और मनोवृत्ति में सहज अंतर आसकता है, यह समझना भूल होगी। आतंक से विचार और प्रवृत्तियां नष्ट नहीं होती। डाकू, डाकू-प्रवृत्ति में भी साहसी-शूर, और धर्म भीरु मानव रह कर अपनी अमुक मर्यादाओं का पुजारी रहता है, यदि वह 'डाकू'

प्रवृत्ति से पराङ्मुख बन गया तो अधिक ईमानदार, सच्चा मानव बन सकता है। इसलिए उसे उस प्रवृत्ति से पराङ्मुख बनाने का प्रथम प्रयास शासन को सोचना-करना चाहिए। वह आतंक नहीं, मनो-वैज्ञानिक आर्थिक, और शैक्षणिक ही हो सकता है।

अवश्य ही प्रस्तुत प्रयास में-जो सुयोग्य अनुभवी और विचार-शील विवेचन-क्षम विद्वान् डी.आई.जी. पं जगन्नाथ प्रसादजी शर्मा के नेतृत्व, तथा उत्तर-प्रदेश की पुलिस के सहयोग से चलरहा है- इतना नियंत्रण होगया है कि इन ४ मासों में भिण्ड। मुरेना जिले के भू-भाग में इस दल ने कोई नवीन आक्रमण नहीं किया। आतंक के प्रयास में दस्युओं को या तो विफलता मिली है, या-पकड़ा जाना-पड़ा, अथवा-प्राणों से हाथ धोना पड़े हैं। विगत वर्ष इसी भाग में लगभग १९ डाके पड़े थे, किन्तु इन दिनों एक भी ऐसी अघटित घटना इस दल द्वारा न हो सकी, यह श्रेय अनुभवी अधिकारियों की व्यवस्था को है। जहाँ तक हमें जानकारी प्राप्त हुई है, दस्यु-दल आतंकित हो गया है। वह आक्रमण की अपेक्षा आत्म-रक्षा के लिए अधिक चिंतित बनगया है। ऐसी अवस्था में हमारे प्रचार पर अंकुश की आवश्यकता है। पत्रों में डाकुओं के पास 'वायर लेस सेट' और 'रिसिवर' आदि साधन होने की भ्रांत-सूचनाएं जनता की साहस-भावना को कमजोर बना कर दस्यु दलों को प्रोत्साहित करने वाली बनजाती है। अशिक्षित-समाज पर इसका उलटा असर होता है। वे उनके आतंक को मिटाने में शासन की सहायता करने का साहस भी नहीं कर सकते। दस्युदल के नियंत्रण के लिए पत्रकार अधिकृत, और उचित समाचार ही प्रकाशित करें तो सहायक हो सकते हैं। शासन को चाहिए कि वह अधिकृत समाचारों से जनता से सम्पर्क बनाए रखे, शासन की उपेक्षा ही इस तरह की 'मनमानी' की जुम्मेदार है।

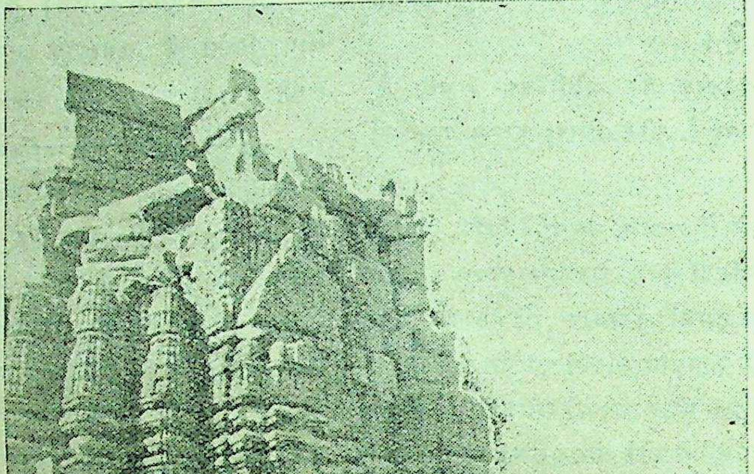

महाकाल मंदिर ऊन ११ वीं शताब्दी

इस समय दस्यु-दल दब रहा है, उचित घेरे में घिर रहा है। योग्य अनुभवी अधिकारियों की सूझ, साहस और उचित व्यवस्था से परिस्थिति पर काबू आरहा है। पुलिस का भी पर्याप्त प्रबंध है। राजस्थान की ओर से भी यदि पूर्ण सहयोग सुलभ हो तो कोई विस्मय नहीं कि वर्षा के इस आरंभ काल ही में आतंककारियों का अंत हो जाए।

क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

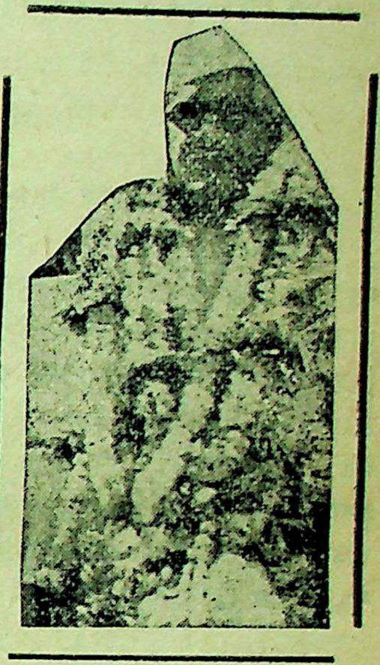

क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !
आई सांझ ? ढल चुकी है क्या वह जीवन की प्रखरदुपहरी ?
क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !

१

क्यों जागूँ मैं सई सांझ से सोउंगा ! तू कौन, बोल, री ?
जो कि बजाती आई निधड़क जाग्रति का घनघोर ढोल, री ?
मेरे सालस निमिष-पात्र में मत जाग्रति का गरल घोल, री ;
सोऊँ या जागूं तुझको क्या ? जाग-जाग मुझसे मत कह री।
मैं हूं थकित, शिथिल-मन प्रहरी !!

२

मैं हूँ कौन ? पूछते हो तुम ? मुझको निरखो रंच न मन भर ;
मैं हूं महामृत्यु ! हैं मेरी लीलाएं उन्निद्र, शयन—हर।
मैं लाई हूँ तुम्हें चुभोने जाग्रति के ये शूल चयन कर ;
आज भंग करने आई हूँ मैं यह जीवन निद्रा गहरी ;
क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !

३

सोते रहे दिवा-निद्रा में; खोलो अब तुम अपने लोचन ;
जागो, ग्रहण करो यह मेरा शुभ वर जीवन-संकट-मोचन ;
आवो, मैं तव भालदेश पर करूं अमृत-अंजन, गोरोचन ;
क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !

४

मेरा शुभागमन निश्चित है; मम आलिंगन हैं अटलाचल ;
पर, तुम मुझे मिलोगे कैसे ? निद्रित ? या चिर जाग्रति पल-पल ?
यदि तुम जगते मिले मुझे, तो वरण करोगे मुझको अविकल !
इसीलिये मैं लहराती हूं काल सलिल पर जाग्रति-लहरी;
क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !

५

जागे नील कमल जीवन में, कर विषपान अमर बन आए !
जागी शक्ति छिन्नमस्ता वह जिसको शोणित कण मनभाए !!
जागे वे बलिदानी, जिन जिनने, प्राणार्पण-गायन गाए !
शिवि, दधीच, नचिकेता जागे जिनकी सुयश -पताका-फहरी ???
क्या तुम जाग रहे हो, प्रहरी !

मध्यभारत के लोगों में सभ्यता, चैतन्य और जागृति

श्री. मा. डॉ. कैलाशनाथ काटजू (गृहमंत्री-भारत)

मध्यभारत के लोग आज मध्य-भारत यूनियन के निर्माण की वर्षगांठ मना रहे हैं। उनके जीवन की यह एक महत्वपूर्ण घटना है। मेरा अपना घर जावरा में है जो पहले मध्यभारत में एक छोटी-सी रियासत थी। इसलिए मुझे मध्यभारत की अवस्थाओं का व्यक्तिगत ज्ञान है। गत २००० वर्षों में मध्यभारत ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। पहले यह एक था किन्तु जब मुगल साम्राज्य खत्म हुआ तो उसके छोटे छोटे टुकड़े हो गए और छोटे-छोटे राजाओं ने अपने पृथक् राज्य कायम कर लिये। परिणाम यह हुआ कि लोग क्षितिज से आगे देखना भूल गए और कूपमण्डूक हो गए। पहले की इन हालतों को देखते हुए गत ५ वर्षों में आश्चर्यकारी परिवर्तन हुए दिखाई देते हैं।

मध्यभारत के लोग शताब्दियों की नींद से जागे हैं और अब उनके सामने एक नई दुनिया है जिसमें इन्हें अपने हाथ-पांव किसी सामन्तशाही से बंधे हुए नहीं मालूम होते। और इस नये जागरण ने जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं, और सुविधाओं की जिनके कारण जीवन रहने लायक बनता है, भारी मांग पैदा कर दी है। सबसे बड़ी मांग और सबसे बड़ी भूख शिक्षा की है और यह एक प्रभावोत्पादक चीज है। राज्य सरकार ने काफी कुछ किया है लेकिन मांग फिर भी बढ़ती जाती है। आम चुनावों के सिलसिले में गांवों के अपने व्यापक दौरों में मैंने यह देखा कि निरक्षर स्त्री पुरुष देश के ज्वलन्त राजनीतिक प्रश्नों पर होने वाले विचार-विमर्श को बड़े गौर से सुनते और अच्छी तरह समझते हैं। उन्हें अपनी खुशहाली में काफी दिलचस्पी थी और उनके साथ बातचीत करके उनकी तीव्र सूझबूझ प्रकट होती थी।

मध्यभारत कई तरह से सौभाग्यशाली है। प्रकृति ने इसको वरदान करने में कुछ कसर नहीं रखी और वह इस सुखी प्रदेश के निवासियों पर कृपालु रही है। जलवायु समशीतोष्ण और स्वास्थ्य प्रद है, दृश्य सुहावन हैं, और परमात्मा की दया से आबादी अधिक नहीं है तथापि जीवन स्तर नीचा है और लोग उसे ऊंचा उठाना चाहते हैं। इसी उत्कण्ठा ने चम्बल योजना में लोगों की गहरी दिलचस्पी पैदा कर दी है और मध्यभारत का प्रत्येक निवासी यह महसूस करता है कि उसकी भावी समृद्धि इस चम्बल योजना की सफल पूर्ति पर निर्भर है। मध्यभारत के लोगों के दैनिक जीवन में चम्बल का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। यह उन्हें मुग्ध कर देती है और वे महसूस करते हैं कि चम्बल के पानी में ही उनकी प्रगति की सा आशायें निहित है इसलिए वे चम्बल योजना की पूर्ति में कोई विलम्ब बर्दाश्त नहीं कर सकते।

विद्युत् शक्ति की आवश्यकता

लोग यह महसूस करते हैं कि आज के जमाने में विद्युत् शक्ति के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती। यह केवल बड़ी-बड़ी मिलें या कारखाने चलाने अथवा नगरों व कस्बों को आलोकित करने का ही प्रश्न नहीं है, इसका मतलब गांवों में फिर से जान-फूंकना और सब तरह के ग्रामीण कुटी-उद्योगों का विकास करना है। प्रत्येक देहाती अपनी आंखों के आगे देखता है कि दिन प्रतिदिन उसका गांव सूना होता जाता है। एक तरफ तो यह स्कूलों की मांग करता है जिससे उसके बच्चे शिक्षित हो सकें। दूसरी तरफ वह देखता है कि वही बच्चे जब शिक्षित हो जाते हैं तो अपने देहाती घरों की ओर पीठ फेर लेते हैं। वहां उनका जी नहीं लगता और गांव का जीवन उन्हें बहुत नीरस लगता है। पहले जमींदार व जागीरदार गांवों के अर्थचक्र की धुरी थे। उनका जीवन ग्राम-समाज का केन्द्र था। अब सामन्तशाही चली गई और उनके साथ जमींदार और जागीरदार भी गए। अब किसान अपनी असली हैसियत में आया है इसलिए गांवों की आर्थिक गतिविधि का केन्द्र बदल गया है और उसके अर्थ तन्त्र का गांव-वासियों के एक समग्र और सहयोगी जीवन के नए आधार पर पुनर्निर्माण करना है। एक आत्मनिर्भर अर्थतन्त्र आवश्यक है किन्तु उसमें जीवन का स्तर अच्छा होना चाहिए, शिक्षित नौजवानों को अपने पुराने घरों

(शेष पृष्ठ २४ पर)

मध्यभारत की मध्ययुगीन भग्नप्राय मन्दिरों की नगरी

ऊन

लेखकः—
कृ. गं. कवचाले, देवास

धर्म-प्रधान भारत में अनेक कारणों से अवनतावस्था को प्राप्त हुए स्थानों में मध्यभारत के नीमाड़ प्रदेशान्तर्गत ऊन गांव की गणना की जाती है। नीमाड़ के एक प्रधान नगर, या केन्द्र ही कहिये, (खरगोन से) यह ऊन गाँव उत्तर की ओर १० मील की दूरी पर बसा हुआ है। यहाँ के परमार कालीन हिन्दू और जैन धर्म के भग्न प्राय मन्दिर तथा पुरानी बस्ती के लम्बे-चौड़े फैले हुए अनेकानेक चिन्ह देखकर प्रतीत होता है कि, किसी समय में यह एक महत्व का धार्मिक नगर रहा होगा। आज उसकी मामूली बस्ती और मन्दिरों की दुर्दशा, उस समय की कुछ कल्पना दिलाते हुए हृदय को चोंट पहुंचाती है। आइये, यहां पर हम आपको इस स्थान की पुरानी कहानी संक्षेप में सुनाते हैं।

ऊन के निर्माण सम्बन्धी जन-श्रुति

जनश्रुति है कि, धार के इतिहास प्रसिद्ध परमार राजवंश से सम्बंधित एक बल्लाल नामक राजा था। किसी समय वह अपनी रानी के साथ घूमता-घामता इस स्थान पर आ पहुँचा। रात्रि को उसका यहीं पर मुक़ाम रहा, एक अद्भुत घटना घटी। राजा निद्रावश हो जाने पर उसके पेट में से एक नागिन बाहर निकली और पास एक बिल था, उसमें से एक नाग बाहर आया। दोनों निकट आये और उनके बीच वार्तालाप शुरू हो गया। उस वार्तालाप के दौरान में नाग मे नागिन से कहा, 'यदि राजा कहीं पानी में बुझाया हुआ चूना खा ले तो तेरा अन्त हो जायगा।' और नागिन बोली, 'यदि राजा ने तेरे बिल में गरम तेल कूड़ा तो तू निश्चित ही नहीं बच सकेगा।' यकायक इसी समय रानी की नींद टूटी और उसने वह वार्तालाप सुन लिया। पर डर के मारे वह कुछ देर तक अवाक् पड़ी रही। जब नाग-नागिन अपने-अपने स्थान को वापस लोटने लगे, तब नागिन को राजा के मुख में से पेट में उतरते देख रानी से नहीं रहा गया। भयकम्पित आवाज से वह चिल्ला उठी। राजा जागा और रक्षक गण भी वहां पर दौड़ आये। रानी ने आंखों-देखी घटना वर्णन की। सब भयचकित हो गये। पश्चात् राजा ने घटना की सत्यता को परखना चाहा। उसने पानी में बुझाया हुआ चूना खा लिया और जिस बिल में नाग को घुसते हुए रानी ने देखा था, उस बिल में गरम तेल कुड़वा दिया। क्षणात् परिणाम दृष्टिगोचर हो गया। एक ओर राजा के मुख द्वारा मरी हुई नागिन बाहर निकली, तो दूसरी ओर बिल में से तड़फता हुआ नाग बाहर आया। मरते समय मनुष्य वाणी से नाग बोला, "राजा, मैं ब्राह्मण हूं। मेरे पास अगणित धन है, वह मैं तुझे समर्पण करता हूं। मेरी अन्तिम इच्छा है कि इस धन का व्यय धार्मिक कार्यों में किया जाय।" राजा ने नाग की उस इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से उसी स्थान पर १०० मन्दिर, १०० तालाब और १०० कुएं बांधकर गांव बसाने का संकल्प किया; किंतु दुर्भाग्यवश उसका जीवन समाप्त होने के पहले वह उनमें से ९९ मन्दिर, ९९ तालाब और ९९ कुएं बांधकर गांव

भी अधूरा निर्माण कर सका, अर्थात् प्रत्येक में न्यूनता रह गई ; इसी कारण इस गाँव का नाम 'न्यून' रक्खा गया, जो कालान्तर से 'ऊन' में परिवर्तित होगया। वास्तव में 'न्यून' और 'ऊन' का एक ही अर्थ, कम या कमीवाला, है और उनका आपसी सम्बन्ध संस्कृत-प्राकृत भाषा से प्रस्थापित है।

उपर्युक्त जनश्रुति निरवलम्ब कल्पना मात्र नहीं कही जा सकती। उसमें तथ्यांश है। वह कहाँ तक है, यह हमें कहने की आवश्यकता नहीं, पाठक स्वयं उसको समझ सकते हैं। परमारों के आधिपत्य-काल में राजा बल्लाल की कृपा से इस गाँव की स्थापना हुई और यहाँ पर अनेक मन्दिर, कुएँ, तालाब आदि निर्माण किये गये; परन्तु इतना करने पर भी राजा को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कुछ न्यूनता अनुभव की, इसलिए 'न्यून'-'ऊन' नाम इस गाँव को दिया गया।

राजा बल्लाल का अस्तित्व और समय निर्णय

परन्तु इतिहास में न तो ऊन का वर्णन अधिक मिलता है और न राजा बल्लाल का परिचय बराबर पाया जाता है परमारों के शिलालेखों, दानपत्रों आदि में भी राजा बल्लाल का उल्लेख कहीं नहीं है। तथापि बड़नगर (गुजरात) की कुमार पाल-प्रशस्ति (सन् ११५१ ई०) और सोमेश्वर की 'कीर्ति कौमुदी' तथा देलवाडा (आबू) की तेजपाल-प्रशस्ति (सत् १२३१ ई०) में इस राजा का वर्णन 'मालवेश्वर' की उपाधि के साथ मिलता है। उनमें लिखा है कि, 'गुजरात के चोलुक्य राजा कुमारपाल के सामन्त आबू के परमार राजा यशोधवल ने 'मालवेश्वर' राजा बल्लाल को परास्त कर मार डाला और राजा कुमारपाल ने उसका मस्तक अपने महल के द्वार पर लटका दिया।' वास्तव में धार के परमार-राजा यशोवर्मा (सन् ११३३–११४२ ई०) और उसका पुत्र जयवर्मा (सन् ११४२–अज्ञात) ये दोनों, गुजरात के राजा सिद्ध राज जयसिंह (१०९४-११४२ ई०) और उसका उत्तराधिकारी कुटुम्बी कुमारपाल (सन् ११४२-११७४ ई०) द्वारा क्रमशः पराजित हो जाने पर मालवे में परमारों का आधिपत्य नहीं-सा रह गया था; तब यशोवर्मा के अनन्तर बल्लाल नामक किसी पराक्रम वाली पुरुष ने आगे बढ़कर गुजरात के चोलुक्यों के हाथ में गया हुआ मालवे का राज्य वापस लेने का झण्डा उठाया। और 'मालवेश्वर' की उपाधि धारण कर मालवे उस हिस्से पर अधिकार जमाया हो, जिसके अन्तर्गत ऊ गाँव बसा है। यह पुरुष परमार वंश के सम्बन्धियों या अधिकारियों में से होने की अधिक सम्भावना है। प्रो० कीलहार्न का भी यही अभिप्राय था; परन्तु इतिहासाचा चि० वि० वैद्य इससे सहमत नहीं थे। उनका अनुमान कि बल्लाल या बल्लालदेव यह एक उपाधि होकर परमार-राजा जयवर्मा ने धारण की थी। परन्तु परमा के लेखों में कहीं भी बल्लाल नाम, न तो राजा के रूप मिलता है, न उपाधि के रूप में। और स्वयं जयवर्मा ने अपने लेखों में इस उपाधि का प्रयोग नहीं किया है।

उपर्युक्त कुमारपाल-प्रशस्ति, कीर्ति कौमुदी और तेज पाल-प्रशस्ति में के 'मालवेश्वर' राजा बल्लाल सम्बन्धी कथन की पुष्टि २० वर्ष-पूर्व रोहेरा (सिरोही-राज्य) गां में प्राप्त एक दानपत्र से होती है। यह दान-पत्र म० म० गौरीशंकर ओझा को मिला था। उसके ८ वें श्लोक लिखा है कि, 'रामदेव से (आबू का परमार) रा यशोधवल उत्पन्न हुआ, जिसने युद्ध में मालवे के रा बल्लाल का गर्वगंजन किया।' इस दानपत्र में सम्वतोल्ले नहीं है। अब इन सब साधनों के द्वारा राजा बल्लाल समय पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। वह इस कि, राजा कुमारपाल सन् ११४२ ई० में सिंहासना हुआ और मालवे के राजा के मस्तक को काट अपने महल के द्वार पर लटका देने का स्पष्ट वर्णन है। कुमारपाल प्रशस्ति सन् ११५१ ई० में रची गई। राजा बल्लाल के मारे जाने की घटना सन् ११४२ लेकर सन ११५१ तक के बीच की होना निर्धारित इसको और भी स्थिर करने में राजा बल्लाल के राजा यशोधवल का समय देखना अवश्य है। परन्तु धवल का निश्चित समय अभी तक अज्ञात ही है। इसके 'महामण्डलेश्वर' की उपाधि सहित नामोल्लेख हुआ एक शिलालेख सन् ११४५ ई० का प्राप्त हुआ है, अजमेर के राजपूताना म्यूज़ियम में सुरक्षित है। इस सन् ११४५ से लेकर सन् ११५१ तक के बीच किसी में बल्लाल का मारा जाना और भी स्पष्ट होता है।

का राजा जयवर्मा, जिसका राज्यकाल सन् ११४२ ई० से आरंभ हुआ था, एक नाम-मात्र का राजा था। ताम्रपत्रों में कहीं कहीं उसका नाम छोड़भी दिया है। अर्थात् राजा बल्लाल ने सन् ११४२ ई० के लग-भग राजा जयवर्मा की दुर्बलता से लाभ उठाकर नया राजपद निर्माण किया होगा और ७-८ साल तक स्वतंत्र राज्योपभोग लेकर 'मालवेश्वर' बन गया होगा। पुरातत्वविदों के मतानुसार ऊन के मन्दिर भी इसी समय के होना दिखाई देते हैं। अर्थात् ऊन के मन्दिरों की, राजा बल्लाल के द्वारा बनाये जाने की जनश्रुति असंगत प्रतीत नहीं होती। अब रही बात नाग-नागिन की। इस बात से, राजा जन्मेजय के सर्पसत्र की की भांति, अनुमान हो सकता है कि, बल्लाल ने किसी नागवंशी क्षत्रिय को नष्ट कर विपुल धन प्राप्त किया हो और वह मन्दिर, तालाब, कुएँ आदि के निर्माण में लगाया हो।

ऊन और ऊन के मंदिरों का सामान्य परिचय

पुराने समय में अपने नाम पर नगर बसाने या तालाब बनाने की एक परिपाटी राजा लोगों में प्रचलित थी, जिसके कई उदाहरण इतिहासज्ञ पाठक जानते ही हैं। मालवे के कुछ परमार-राजाओं ने भी इस परिपाटी का पालन किया था, जिसके जीते-जागते प्रमाण अब तक विद्यमान हैं। देखिए राजा मुँजके मुँजपुर (राधनपुर-राज्य) और मुँजसागर तालाब (धार), भोज के भोजपुर (भोपाल राज्य) भोजकट और भोजपाल तालाब (भोपाल ताल), उदयादित्य का उदयपुर (ग्वालियर-राज्य) और देवपाल का देवालपुर (इन्दौर-राज्य) आदि। राजा बल्लाल ने भी इसी परिपाटी के अनुसार ऊन गांव को बसाया परन्तु उसने इस गांव को अपने नाम पर न बसाते, पूर्वोक्त कथनानुसार, 'न्यून' नाम से बसाया। इस गांव में मन्दिर निर्माण करते समय ही उसने सुन्दर-सुन्दर भवन, वाटिकाएं राजपथ, तालाब आदि भी निर्माण किया होगा; परन्तु आज उनमें से कुछ मन्दिरों और तालाबों के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का नामो-निशान भी नहीं रहा है। काल ने इस गांव की पुरानी समृद्धि का संहार कर डाला है और मन्दिरों के साथ भी कुटिलता से खिलवाड़ करने में कोई बाकी नहीं रखी है। यहां के सभी मन्दिर भग्नप्राय हो गये हैं; परन्तु उस विपदावस्था में भी वे अपने समय की सुन्दर स्थापत्यकला और धार्मिक लोक-प्रवृत्ति का बराबर परिचय दे रहे हैं। उनमें मण्डप, अर्द्धमण्डप, महामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह (देवकक्ष), शिखर आदि मन्दिर के सभी लक्षण विद्यमान हैं। किसी भी मन्दिर को आप देखिए, उसका कोई भाग ऐसा नहीं है, जिसमें पत्थर को काट कर मूर्तियां या नक्काशी बनाई न गई हों। जगह-जगह पर ताक हैं, उनपर भी मूर्तियां बैठी हैं। छत में भी नक्काशी काम किया हुआ है। इस सुन्दर कारीगरी को देख कर दर्शक को हठात् दांतों तले उँगली दबानी पड़ती है। और उनके बनाने वाले कारीगरों की कल्पकता तथा हस्तलाघवता का कायल होना पड़ता है। अनेक देशी-विदेशी शिल्पकोविदों ने भी यहां मंदिरों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। मन्दिरों की इन की तुलना उनके समसामयिक(११वीं-१२ वीं-शताब्दि) खजुराहो के मन्दिरों केसाथ की जा सकती है। केवल तक्षणकला में ही खजुराहो के मन्दिर यहां के मन्दिरों से कुछ अधिक श्रेष्ठ मालूम होते हैं।

ऊन के मन्दिर-समूह में से अधिक मन्दिर ब्राह्मण धर्म के हैं और शेष जैन धर्म के। किन्तु इन दोनों प्रकार के मन्दिरों में विशेष अन्तर नहीं है। ऊन की संस्मरणीय या दर्शनीय प्राचीन निधि जो कुछ अब विद्यमान है वह यही मन्दिर समूह है इनमें से कुछ चुने हुए मन्दिरों का वर्णन यहां किया जाता है।

चौबारा डेरा

चौबारा का अर्थ है खुली हुई बैठक और डेरा का अर्थ है निवास स्थान। अर्थात् मुसलमानों के ईदगाह के नाई गांव के बाहर खुले मैदान में निर्माण किया हुआ मन्दिर यह चौबारा डेरा, यहां का सब से बड़ा आलीशान मन्दिर है, जो नेमावर (निमाड़) के सिद्धनाथ मन्दिर के सदृश सुन्दर और सुडोल बना है। इस पूर्वाभिमुख-मन्दिर का पिछला हिस्सा काल की कराल झपटों के कारण भग्न हो चुका है। मन्दिर के मध्य में सभामण्डप होकर पूर्व, दक्षिण तथा उत्तर में अर्धमण्डप हैं। प्रधान द्वार से मन्दिर में प्रवेश करते ही गर्भगृह के द्वार के ऊपरी भाग में सप्त-मातृकाओं के [illegible] नृत्य करते हुए श्री शंकर का दर्शन अनायास हो [illegible] है। सभामण्डप के आधार स्तम्भों पर बढ़िया चित्रकारी बनी हुई है। जो नेत्र को तृप्त कर देती

है । यह चित्रकारी तथा सभा मण्डप के गुम्बज की बनावट देलवाडा के विमलशाह और तेजपाल के मन्दिरों की एकदम याद दिलाते हैं । सभा मण्डप और गर्भगृह की दीवारों पर विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा गणेश की प्रतिमाएँ खुदी हुई हैं और मण्डप एवं गर्भगृह के बीच की उत्तरी दीवार पर, धारा नगरी की भोजशाला की दीवारों के समान, व्याकरण सम्बन्धी दो छोटे-छोटे लेख तथा सर्पबन्ध खुदे हुए हैं । मन्दिर के गर्भगृह में अधिष्ठात्री देवता का स्थान वर्षोंसे रिक्त पड़ा है, वहां कोई प्रतिमा नहीं है और गर्भगृह के द्वार को भी अब ईंटें चुनकर बन्द कर दिया गया है। इसी द्वार के ऊपरी भाग में पूर्वोक्त सप्तमातृकाओं के साथ शिव नृत्य का दृष्य खुदा हुआ है ।

कुछ वर्ष पूर्व इस मन्दिर के पास का एक टीला खोदा गया था, तब उसमें से कुछ जैन मूर्तियां निकली थीं, जिनमें एक पद्मासनस्थ जिन प्रतिमा का आसन था । इस आसन में दो सिंह और दो हाथी के बीच एक धर्मचक्र होकर बि० सं० १३३२ का पंक्ति का एक लेख खुदा हुआ हैं । यह आसन इस समय इन्दौर के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है ।

महाकालेश्वर का मन्दिर

चौबारा डेरा के समीप ही उत्तर में महाकालेश्वर का विशाल मन्दिर है । इसके सभामण्डप का गुम्बज और गर्भगृह के शिखर का शिरोभाग काल के कुचक्र के शिकार बन गये हैं इसकी बनावट चौबारा डेरा जैसी ही है और अनुमान होता है कि, इसका सभामण्डप, चौबारा डेरा के सभामण्डप की अपेक्षा अधिक विस्तृत था । गर्भगृह की बाहरी ताकों पर ब्रह्मा तथा विष्णु की और अन्दरी ताकों पर त्रिपुरारि नटेश तथा चामुण्डा की प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं । कुछ समय पूर्व मण्डप के मलबे में यहां के नन्दी की खण्डित मूर्ति भी पाई गयी थी ।

बल्लालेश्वर का मंदिर

महाकालेश्वर मन्दिर के उत्तर-पूर्व में बल्लालेश्वर महादेव का मन्दिर है । जान पड़ता है कि, राजा बल्लाल ने अपने नाम पर शिवलिंग की स्थापना कर इस मन्दिर का निर्माण किया होगा । इस मन्दिर में सभामण्डप आदि कुछ नहीं है और इसके शिखर के स्थान में मुस्लिम शैली का गुम्बज है । स्व० राखालदास बन्दोपाध्याय ने लिखा है (माडर्न रिव्यू, सितम्बर १८३०) कि, यह शिवालय गिर जाने पर मुसलमानी शासन काल में इस का जीर्णोद्धार करते समय मस्जिद का आभास उत्पन्न करने के हेतु खास तौर पर यह गोल गुम्बज, इसके सिरे पर बनाया गया हो । इस मन्दिर की दीवार पर नागरी लिपि में खुदा हुआ एक लेख है, जो अस्पष्टता के कारण पढ़ा नहीं जाता सम्भव है यह लेख मन्दिर के मरम्मत के सम्बंध में होगा ।

छोटे महाकालेश्वर का मन्दिर

गांव से बाहर ऊन-खरगोन सड़क के समीप एक ऊंचा किन्तु छोटा शिव-मन्दिर है । लोग इसे भी महाकालेश्वर का मन्दिर कहते हैं । इस मन्दिर में सभामण्डप वगैरा कुछ नहीं है और इसकी रचना भी साधारण है । कठोर कालाघात के कारण इसका कलेवर अब जर्जरित हो गया है। शिखर के अधिकांश पत्थर स्थानच्युत हो चुके हैं, जिससे यह निकट भविष्य में धराशायी हो जाने की विशेष सम्भावना है ।

छोटा चौबारा डेरा

ऊन–खरगोन सड़क और चौबारा डेरा के बीच एक विशाल जैन मन्दिर है । इसका खास नाम है नाहल भवार का डेरा; परन्तु लोग इसे छोटा चौबारा डेरा कहते हैं। यद्यपि काल के झकोरे ने इसके शिखर को गिरा दिया है, तो भी सुन्दरता की दृष्टि से यह मंदिर ऊन के मन्दिर समूह में सर्वोत्तम कहा जा सकता है । इसमें चतुरस्र मण्डप हैं, जिनकी रचना अजीब ढंग की है । मण्डप के चार द्वार हैं, जिनमें से केवल पूर्व और पश्चिम के द्वारों से जाने-आने के लिए सीढ़ियां बँधी हुई हैं । गर्भगृह के द्वार के समीप दो विशाल खड़ी जैन दिगम्बर प्रतिमाएं वर्षोंतक बेगौर पड़ी थीं । सन् १९३० ई० में वे दोनों ही इन्दौर पुरातत्व संग्रहालय में पहुँचाई गईं । उनमें से एक मूर्ति तीर्थंकर शान्तिनाथ की है उसके आसन पर सं० १२४२ माघ शु० ७ लिखा है । दूसरी प्रतिमा के आसन पर भी इसी प्रकार तिथि निर्देश किया हुआ है; परन्तु यह [illegible] होने के कारण बराबर पढ़ा नहीं जाता ।

ग्वालेश्वर का मंदिर

छोटे चौबारा डेरे से कुछ फासले पर और एक जैन मन्दिर है, जो ग्वालेश्वर के मन्दिर से नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के सभामण्डप के सामने अर्घ मण्डप है और गर्भगृह सभामण्डप की सतह से १० फीट नीचे है, जहाँ कई सीढ़ियाँ उतर कर पहुँचते हैं। गर्भगृह में तीन विशालकाय जैन प्रतिमाएँ एक पंक्ति में खड़ी हैं। इनमें से बीच की प्रतिमा सबसे बड़ी है, जो लगभग १२॥ फीट ऊँची होगी। इसके दोनों ओर की प्रतिमाओं पर तिथि-निर्देश है; परन्तु उनमें से केवल बाईं ओर की प्रतिमा पर की तिथि वि० सं० १२६३ ज्येष्ठ शु० १३ पढ़ी जाती है। इन विशालकाय प्रतिमाओं के स्नान-पूजनादि विधि जमीन पर खड़े होकर करना पुजारी के लिए असाध्य है, इसलिए प्रतिमाओं के पीछे की दीवार में दोनों ओर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। शिखर के आमलक और चूड़ामणि (कलश) को छोड़कर यह मन्दिर अभी तक सुदृढ़ है।

इस मंदिर के ग्वालेश्वर नाम के सम्बन्ध में कहा जाता है कि, इसके अगल-बगल की जमीन पहले से गोचर भूमि रहती आई है, जिससे यह मन्दिर ग्वालों का एक विश्राम स्थान बन गया है और उस पर से लोग इसे ग्वालेश्वर कहने लग गये हैं।

नीलकण्ठेश्वर का मंदिर

गाँव की बस्ती में नीलकण्ठेश्वर का मंदिर है। इसके शिखर का शिरोभाग गिर गया है और सभामण्डप भी नष्ट हो चुका है; परन्तु गर्भगृह में प्राचीन शिवलिंग विद्यमान है और ताकों पर पार्वती, सूर्य, विष्णु तथा वराह की मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसी प्रकार गर्भगृह के बाहरी ताकों पर भी त्रिपुरारि, चामुंडा और नटेश्वर की मूर्तियां उपस्थित हैं। उस मंदिर की तक्षणकला बहुत सुन्दर है। कुछ समय-पूर्व इस मंदिर के पास खण्डित मूर्तियों का एक ढेर पड़ा हुआ था, जो अब नदारत है।

गुप्तेश्वर का मंदिर

नीलकण्ठेश्वर के मंदिर के समीप गुप्तेश्वर महादेव का एक अनूठा मंदिर है, जो भूगर्भ में बना है, तथा अपने अधिष्ठाता भगवान् गुप्तेश्वर का नाम सार्थक कराता है। इसकी सतह नीलकण्ठेश्वर के मंदिर से कोई ३० फीट नीचे है। अन्दर प्रवेश करने के लिए सीढ़ियाँ बँधी हुई हैं। इस मंदिर के मण्डप और शिखर शायद ही रहे हों। आज उनके कोई चिन्ह दिखाई नहीं देते।

मंदिरों के विध्वंस के कारण

निःसन्देह आश्चर्य की बात है कि ऊन का एक भी मंदिर 'बुतशिकन' का पुण्यलाभ करने वाले ऐतिहासिक आततायी मुसलमानों के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट नहीं हुआ है। यहाँ के मंदिरों के विध्वंस के कारण दो हैं एक कुटिल काल का दुर्व्यवहार, और दूसरा जनता की अनुचित उपेक्षा-वृत्ति। हाँ, इन दोनों कारणों से कुछ लाभ उठाकर एक मुसलमान ठेकेदार ने महाराजा द्वितीय तुकोजीराव होल्कर के राज्यकाल (सन् १८४४-८६) में यहाँ के मन्दिरों को अवश्य नुकसान पहुँचाया था। उस ठेकेदार ने यहाँ के एक तालाब की पाल बांधते समय इन मन्दिरों को लावारसी माल समझा और उनके बहुत से पत्थर निकाल कर उपयोग में लिये। पश्चात् इन्दौर पुरातत्व विभाग की बदौलत पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट की ओर से यहाँ के मन्दिरों की कुछ-कुछ मरम्मत की गई है।

हमें यहाँ के जैन मन्दिरों को उपेक्षावश नष्ट होते देख बड़ा दुःख होता है। ये मंदिर दिगम्बर जैनों के हैं और मालवे का दिगम्बर जैन समाज बहुसंख्य होकर काफ़ी धनसंपन्न है। उसमें धर्मश्रद्धा का अभाव भी प्रतीत नहीं होता; ऐसी परिस्थिति में ऊन के इन प्राचीन भग्नप्राय मंदिरों के जीर्णोद्धार का भाव उस समाज के अन्तःकरण में वर्षों तक क्यों नहीं उठ सका, यह एक आश्चर्य की बात है। वास्तव में जैन समाज की यह सांस्कृतिक विरासत अपना मूल्य रखती है और अपने पुनरुद्धार की अधिकारिणी है।

क्या यही पावागिरी सिद्धक्षेत्र है !

लगभग ३५ साल पहले यहां के मन्दिरों की दुर्दशा की ओर नहीं, इस स्थान की ओर जैन समाज विशेष रूप से आकर्षित हो गया था। जैन पुराणों में पावागिरी सिद्धक्षेत्र की चर्चा प्रचुर परिमाण में मिलती हैं, परन्तु उस क्षेत्र का वास्तविक पता अभी तक नहीं लगा है। सन् १९१८ ई० में ऊन के किसी स्थान पर खोदते समय जमीन में से महावीर स्वामी की एक ढाई फीट ऊँची पद्मासनस्थ

मूर्ति, चरणपादुका और चार अन्य छोटी-छोटी प्रतिमाएँ बाहर निकलीं। वे सभी अखण्ड थीं। उन्हें देखकर जैनियों के आनन्द और भक्ति का पार नहीं रहा। महावीर स्वामी के मूर्ति के आसन पर सम्वत् १२५२ अंकित है और साथ ही 'रतनसा' नामक किसी व्यक्ति का नाम खुदा है। अर्थात यह निःसन्दिग्ध है कि, यह रतनसा इसका प्रतिष्ठापक और उसके नष्ट हुए मन्दिर का निर्माता था। इन मूर्तियों तथा चरणपादुका आदि को देख कर जैन पण्डितों और आचार्यों ने यह स्थिर किया है कि, हमारा प्राचीन पावागिरी सिद्ध क्षेत्र यही ऊन है। निर्वाण काण्ड गाथा संख्या १३ में पावागिरी का भौगोलिक परिचय देते समय लिखा है:-

> पावागिर वर सहरे सुवण भद्दाइ मुणिवरा च उरो।
> चलणा णदी तडग्गे णिव्वाण गयाण मोतेसि ॥

इस श्लोक में उल्लिखित चलणा नदी, ऊन के पास से बहने वाली चरूढ नदी ही होना बताया जाता है। इसके सिवा ऊन के निवासी कुछ दन्तकथाएँ कहते हैं, जो कि ऊन को पावागिरी सिद्धक्षेत्र होने की कल्पना देते हैं। यहां की पुरानी बस्ती के लम्बे लम्बे फैले हुए चिन्ह, मन्दिरों की भरमार, चतुर्दिक् तालाब और पहाड़ी को देखकर यह तो स्पष्ट जाना जाता है कि, ऊन पुराने समय में एक सुविशाल सुन्दर धार्मिक नगर था। परंतु उसका पावागिरी सिद्धक्षेत्र होना कहाँ तक ठीक है, नहीं कह सकते।

जीर्णोध्दार की आशा

कुछ भी हो, अब जैन भावुक और धनीमानी सज्जन ऊन के भाग्य को जगाना चाहते हैं, यह उत्तम है। उन्होंने मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए बहुतसा धन इकट्ठा किया ह और प्रत्यक्ष कार्य का श्री गणेश भी कर दिया है; परंतु उनके कार्य की गति सर्वथा कूर्मगति सी दिखाई देती है, जो अभीष्ट नहीं है। हम आशा करते हैं. अब जीर्णोद्धार का कार्य यथोचित गति से किया जाये।

ऊन के दक्षिण में पहाड़ी पर एक प्राचीन जैन मंदिर भग्नावस्था में था, उसका जीर्णोद्धार किया गया है। इस मंदिर में तीन मूर्तियां एक पंक्ति में हैं। बीच की मूर्ति १७ फीट ऊँची और शेष मूर्तियां १५-१५ फीट ऊँची हैं।

कहना न होगा कि, ऊन के मंदिरों के जीर्णोद्धार से दिगम्बर जैनों को पुण्य-सम्पादन के साथ-साथ अपनी पुरानी कला संस्कृति की रक्षा का भी श्रेय अनायास प्राप्त हो जायगा।

हम यह भी आशा करते हैं कि, हमारी मध्यभारत सरकार भी जागृत होकर अपने पुरातत्व विभाग की ओर से ऊन के पुरातन कलामण्डित मंदिरों के पुनरुद्धार का और उस स्थान के अनुसन्धान का कार्य आरम्भ कर देने के लिए शीघ्र ही तैयार हो जावेगी।

(शेष पृष्ठ १८ का)

बसने का आकर्षण होना चाहिए और उनमें अपने आप अपने आस पास एक नया वातावरण बना लेने की क्षमता होनी चाहिए। यह गांवों में बिजली लगाने से ही हो सकता है जो गांव वालों को सिचाई के लिए पानी, घरों में रोशनी, अन्य मनोरंजन के साधन तथा कुटी उद्योगों के लिए कम खर्चीली शक्ति प्रदान करेगी। चम्बल योजना न केवल खेतों को पानी देगी अपितु समस्त मध्यभारत को बिजली भी सप्लाई करेगी। इसी लिए मध्यभारत के लोग इसे जल्दी से जल्दी पूरा करना चाहते हैं।

शासन में सुधार

गत ५ वर्षों में शासन में भी काफी सुधार हुआ। दक्षिणी इलाकों के आदिवासी भाइयों पर प्रकृति का कुछ प्रकोप रहा, वहां वर्षों से वर्षा बहुत थोड़ी हो रही है लेकिन सरकार अपनी ओर से लोगों की कठिनाइयों को दूर करने की भरसक कोशिश कर रही है।

किन्तु इन सबसे बढ़ कर महत्व चम्बल का ही है। यह बकारों को काम दे रही है और लोगों को मितव्ययता की प्रेरणा देती है। छोटी बचत-योजना में बचाया गया प्रत्येक पैसा न केवल व्यक्ति के अपने लिए अपितु समाज के लिए कल्याणकारी है। लोगों को याद रखना चाहिए कि "चित भी उनकी और पट भी उनकी" ऐसा नहीं हो सकता।

हम एक तरफ तो भारी खर्चीली योजनाओं की मांग नहीं कर सकते और साथ ही उसका सारा खर्च कुछ थोड़े से अमीरों पर नहीं डाल सकते हम सब सामाजिक न्याय समान अवसर तथा असमानताओं को हटाने के हामी हैं। लेकिन हमें अपनी जिम्मेवारियां अपने कन्धों पर उठाना और अपनी मदद आप करना सीखना चाहिए। और मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि मध्यभारत के लोगों ने यह पाठ अच्छी तरह सीख लिया है।

ईश्वर उन्हें वर दे और उनका कल्याण करे।

पंजाबी और मालवी लोक-साहित्य में साम्य और इसके कारण

★ श्री नरेन्द्र धीर ★

अभी उस दिन मालव-लोक-साहित्य परिषद् के संयोजक श्री० श्यामजी परमार की पुस्तक मालवी लोकगीत पढ़ रहा था कि मेरी दृष्टि कुछ ऐसी पंक्तियों पर जाकर अटक गई जिन्हें मैं ज्यों का त्यों पंजाबी में सुनचुका था। मैंने तुरंत ही अपना पंजाबी लोकगीतों का संग्रह निकाला, और मैं देखकर आश्चर्य चकित रहगया कि न केवल मालव और पंजाब में भाव साम्य ही मिलता वरन् शब्द और पंक्तियां तो अलग रहीं—सम्पूर्ण गीत ही लगभग अक्षरशः समान ही है।

पंजाब और मालवे के समभावी साहित्य पर कुछ लिखने के पूर्व में उन कारणों पर विवेचना करना आवश्यक समझता हूँ जिनसे कि इन गीतों में साम्य है। मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूंगा कि इस साम्य का कारण स्वाभाविक न होते हुए एक ऐतिहासिक सत्य है।

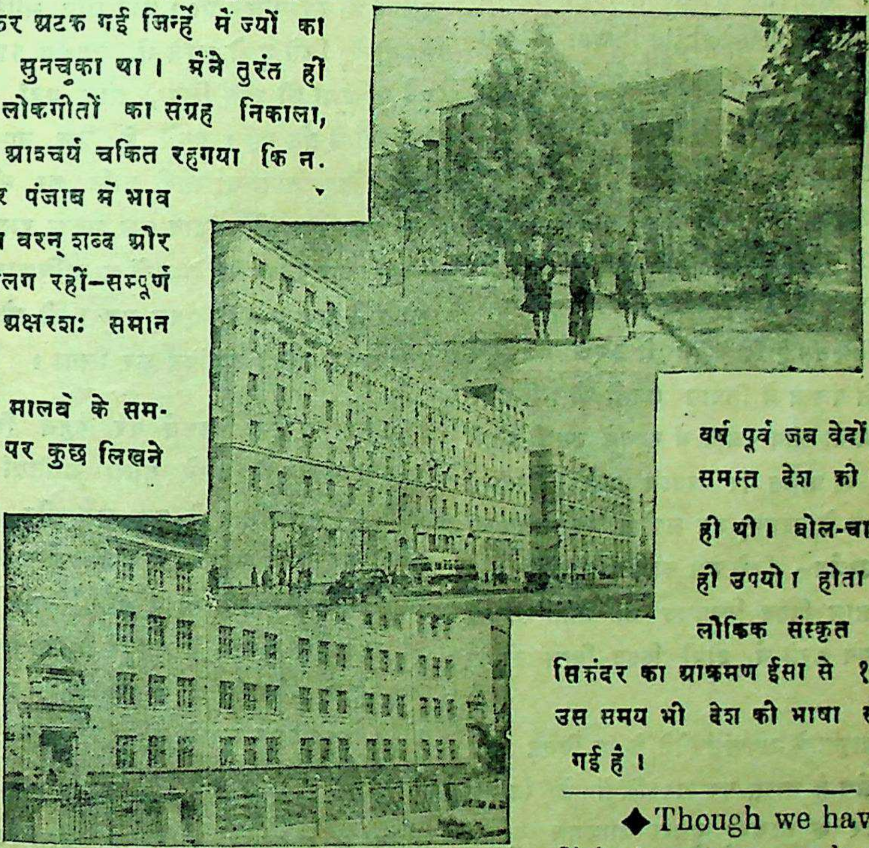

(१) वेलो रुसिया, जिसने द्वितीय महासमर के पश्चात पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत आश्चर्य जनक उन्नति की है उध्वस्त वेलो रुसियन जनता ने अपने नगर को पुनः सर्वाङ्गसुन्दर और सम्पन्न बना लिया है, चित्र उसका प्रमाण है, नमिंस्क का राजकीय विश्वविद्यालय (२) सोवियत केन्द्र के नए जन आवास ग्रह (३) और यह भव्य भवन सेकण्डरी स्कूल है।

हम लोग भली भांति जानते हैं कि भारतवर्ष की प्राचीनतम भाषा वैदिक संस्कृत है, उसी काल में भारत निवासियों द्वारा जो भाषा बोली जाती थी वह लौकिक संस्कृत कही गई। इस लौकिक संस्कृत को विद्वानों ने पांच विभिन्न प्राकृतों में विभाजित किया है इन प्राकृतों से अपभ्रंश और अपभ्रंश से विभिन्न प्रांतीय बोलियां बनी हैं।

आज से दो तीन हजार वर्ष पूर्व जब वेदों की रचना हुई समस्त देश की भाषा ◆ संस्कृत ही थी। बोल-चाल में संस्कृत का ही उपयोग होता था किन्तु उसे लौकिक संस्कृत कहा जाता है। सिकंदर का आक्रमण ईसा से १७५ वर्ष पूर्व हुआ उस समय भी देश की भाषा संस्कृत ही मानी गई है।

◆ Though we have some 220 dialects more spoken in India there is only one sacred language and literature namely Sanskrit. In spite of the great varietis of people and different divergent sects and dialects, India from the valley of the Bramhaputra in the east to the Ravi in west and from the Himalayas to the Indian ocean is one socially and culturally"— History of Bharat—p p 19 by Dr. R. R. Sethi

सिकंदर के आक्रमण के समय पंजाब में एक जाति मल्ल, मालव, मल्लोई रहती थी। इस जाति का युद्ध सिकंदर से हुआ था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहास-कार डॉ. राय चौधरी ने अपनी पुस्तक पृष्ठ ६५ पर लिखा है–

"Southern part of the Jhungchott with the contiguous portion of the lower valley of the Ravi was occupied by the Sibis and the Malvas with whom were associated Kshudrokas, while lower down the chenal lived Ambasthos."

इसी पुस्तक में पृष्ट ६७ पर डॉ. साहब लिखते हैं कि:–

"The conqurer (Sikandar) himself-received a dangerous wound while storming one of the citadels of powerful tribe of 'Malvas'".

अतएव यह निश्चित है कि ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व कोई 'मालव' जाति पंजाब में निवास करती थी। सिकंदर के समय में जो यूनानी लोग पंजाब में रहगये उनकी बोली का प्रभाव संस्कृत या प्राकृत पर अवश्य पड़ा होगा◆। सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् जब अशोक का शासन था तक्षशिला तथा उज्जैन– जिसे उस काल में अवंती कहा जाता था, वो विशाल विश्व-विद्यालय थे, जहां सहस्त्रों विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे, दोनों विश्व-विद्यालयों का सम्बन्ध भी था।

संस्कृत या प्राकृत के अपभ्रंश होने के या बिगड़ जाने के कारणों में विशेष है भारत पर परदेशियों के विभिन्न आक्रमण। सिकंदर के पश्चात् दूसरा आक्रमण यूनानी एजाडिमिट्रिप्स ने तदुपरांत उसकी सन्तान मेनेन्डर ने ईसा से १७५ वर्ष पूर्व किया। तथा पुष्यमित्र शुङ्ग से युद्ध किया मेनेण्डर भारत में ही बस गया और उसने उत्तरी भारत पर अधिकार कर उस पर राज्य किया। उसकी राजधानी वर्तमान स्यालकोट है जिसे उस समय सकला या संगलदीप भी कहा जाता था। उन्हीं दिनों में पथिया के राजा मेथ्रेडिटीज़ प्रथम ने पंजाब के पश्चिमीय भाग को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया, इस प्रकार पंजाब में निवास करने वाले पंजाबियों पर तथा 'मालव' जाति की बोली पर एक साथ यूनानी तथा पथिया के निवासियों की बोली का प्रभाव पड़ा।

कुछ समय पश्चात् यूनानियों को सीथियन जाति के लोगों ने, जिन्हें भारतवर्ष के निवासी शक कहते थे-बेक्ट्रिया से निकाल दिया, उन्होंने पंजाब पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। सीथियन सम्राट ओआ के राज्य में पंजाब भी सम्मिलित था। धीरे धीरे सीथियनों की एक टुकड़ी ने, जिसे यूची कहते थे, लगभग १५० वर्ष ईसा के पूर्व बेक्ट्रिया को जीत लिया, और वहाँ यह जाति पांच विभागों में बँट गई। इनमें से एक उपभाना ने जिन्हें कुशान कहा जाता था सारी जाति का संगठन कर उसे एक कर दिया और पंजाब तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। जब पंजाब पर कुशानों का अधिकार हो गया तो शक लोगों ने अवन्ती प्रदेश एवम् मथुरा की ओर प्रस्थान कर वहां अपना राज्य स्थापित कर लिया।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यूनानियों के पश्चात् पंजाब में बसने वाली जातियों - जिनमें मालव जाति भी सम्मिलित थी–पर शक और कुशान जाति के लोगों का प्रभाव पड़ा। उधर जो लोग अवन्ती के मूल निवासी थे, उनकी बोली में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था क्योंकि पंजाब के भूतपूर्व शासक अब उन पर शासन कर रहे थे, परिवर्तन में पंजाब और अवन्तों प्रदेश की बोली में निश्चित रूप से गहरा साम्य था।

कनिष्क कुशान वंश का प्रतापी राजा था। उसके समय में नागार्जुन, अश्वघोष, वसुमित्र तथा आयुर्वेद शास्त्र के पंडित चरक भी हुए। उसके शासन काल में प्रायः विद्वानों की विभिन्न गोष्टियां हुआ करती थीं, जिसमें समस्त भारत के विद्वान एकत्रित होते थे। इससे भी प्राय: भाषा का आदान प्रदान होता रहा। कुशान साम्राज्य के पतन के पश्चात् लगभग दो सौ वर्ष का इतिहास अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री आर. डी. बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'Prehistoric Ancient & Hindu India' में पृष्ठ १३६ पर, ई. सन २०० के लगभग का

◆ स्मिथ ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री पृष्ठ ९२

वर्णन ◆ करते हुए लिखा है कि प्रान्तीय बोलियों को त्यागकर लोगों ने एक बार पुनः संस्कृत को स्थान दिया। यह काल चन्द्रगुप्त प्रथम के पुत्र समुद्रगुप्त का था। उसने सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त की और सम्पूर्ण उत्तरी भारत, हुगली से सतलज और चम्बल तक, तथा हिमालय से नर्मदा तक अपने आधीन किया। हिमालय की असभ्य जातियाँ, राजपूताना और मालवा के निवासी उसे अपना स्वामी समझते थे। अन्तर-प्रान्तीय आवागमन उसके ही काल में आरम्भ हुआ – अतएव बोलियों में भी साम्य-सा होने लगा।

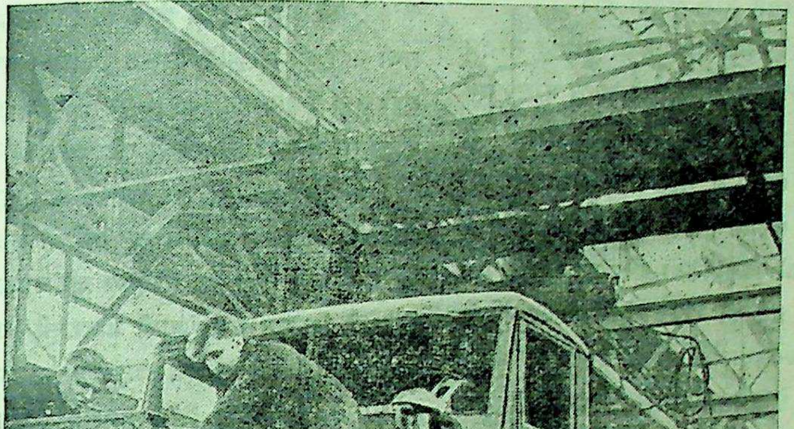

वेलो रूसियों ने केवल अपना नगर ही सुन्दर नहीं बना लिया है, बल्कि उद्योग-व्यवसाय में भी पर्याप्त विकास किया है। अपने मोटर कारखाने में २५ टन कीसेस्फ डिपीन्ङ्ग लॉरी के पुर्जे जुडाए जा रहे हैं,

समुद्रगुप्त के पश्चात चंद्रगुप्त विक्रमादित्य जो समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र न था सिहासनारूढ हुआ समुद्रगुप्त ने उसे अपना युवराज घोषित किया था। कुछ इतिहास-कारों के मतानुसार यह उज्जैन का ही प्रसिद्ध सम्राट विक्रम था। उसने सौराष्ट्र, मालवा और काठियावाड़ को जीत कर अपने राज्य में मिलाया और शक सरदारों को जो क्षत्रप कहलाते थे, लड़ाई में हराया। चन्द्रगुप्त के शासन के पूर्व ही मालव लोग अवन्ती प्रदेश † में आ बसे थे, तथा ईसा से सत्तावन वर्ष पूर्व एक 'मालव सम्वत्' नामक सन भी उन्होंने प्रारम्भ किया था, जो कुछ दिनों बाद विक्रम सम्वत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विद्वानों की राय है कि यह सम्वत् 卐 'मालव' नाम की जाति का चलाया हुआ है। यही लोग सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब में रहते थे। कुछ समय के बाद ये लोग इधर उधर फैल गये। जिस देश में ये लोग बसे वह 'मालवा' कहलाने

◆ In place of magadh and other local dialects, classical Sanskrit gradually came to be recognised as the literary language of Northern & central India.

† डॉ. ईश्वरी प्रसाद का 'भारत वर्ष का इतिहास' पृ.९२

卐 Chandraverman was defeated by Samudragupta ofter his compaigns in Bengal, the Punjab and Afghanistan,

लगा। छटी शताब्दी ईस्वी के पश्चात् यह सम्वत् विक्रमी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

५१० ई० के लगभग हूगों का राजा मिहिरकुल जो कि एक कट्टर शैव था तथा अत्याचारी था-का युद्ध मालव नरेश यशोधर्मन से हुआ। ये हूण लोग श्री गोरीशंकर ओझा के मतानुसार मालव में बसने वाले कुनबी हैं।

हमने पाया कि मालव तथा पंजाब का घनिष्ट सम्बंध ही नहीं रहा हैं, वरन पंजाब के लोग ही मालव में जाकर बस गये हैं, इसी प्रकार अमीर तथा गुर्जर लोग जो पंजाब में पाये जाते थे वे भी बड़ी संख्या में मालव में जाकर बसे।

इसके पश्चात तथा सम्राट हर्ष के पूर्व मालव नरेश ने हर्ष की बहिन राज्य श्री को पकड़ लिया और उसके पति को मरवा दिया। उस समय हर्ष की राजधानी थानेश्वर पंजाब में थी। हर्ष के भाई राज्यवर्धन ने युद्ध में मालव के नरेश को परास्त किया। हर्ष के शासन काल में मालव उसके राज्य में रहा तथा मालव कवि बाण ने हर्षचरित की रचना की।

इसके उपरान्त भी सन १००८ ई० में जब मेहमूद-गजनी ने पंजाब पर आक्रमण किया तब पंजाब के राजा आनंददयाल ने मालव नरेश से भी सहयोग मांगा और महमूद से युद्ध किया। यह मालव और पंजाब का अंतिम सम्बन्ध था।

उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्यों को देख कर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पंजाब के लोग ही मालव में जाकर बसे और पंजाब के रीति रिवाज, बोल चाल, भाषा तथा यहाँ की संस्कृति मालव से बहुत साम्य रखती है। यही नहीं पंजाब का फिरोजपुर जिला अभी भी 'मालव' कहलाता है वहां की बोली को 'मालवी' कहाजाता है।

नवी शताब्दी में सन ८५० के आसपास नागार्जुन, जलन्धर, मछन्दर तथा गोरख जैसे नाथ देश में भ्रमण कर रहे थे। इन नाथों का साहित्य जो प्राप्त है उससे ज्ञात होता है कि उन पर पंजाबी गुजराती, मालवी तथा राजस्थानी बोलियों का समान प्रभाव था। उक्त साहित्य से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि गोरखके समय विभिन्न प्रान्तीय भाषाएँ पूर्णतया निखर नहीं पाई थी। तथा भारत के इन प्रान्तों में कुछ कुछ अन्तर से अपभ्रंश ही बोली जाती थी। चाहे ये बोली उसकाल में भी पंजाब में पंजाबी, गुजरात में गुजराती या मालवा में मालवी कहलाती हो।

मुसलमानों के आक्रमण तथा उनके पंजाब में निवास करने के कारण पंजाबी की बोली पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा और आज पंजाबी मालवी से बहुत दूर प्रतीत होने लगी। श्री श्याम परमार ने भी अपनी पुस्तक मालवी लोक गीत की भूमिका हँसता गाता मालवा के पृष्ठ ६ पर स्वीकार किया है, कि मालव जाति पंजाब की ही निवासी थी। वे लिखते हैं—

"सिकन्दर के इतिहास लेखकों ने मालवा के निवासियों के सम्बन्ध में अनेक बातें लिखी हैं। उनके अनुसार मालव जाति अधिकांश में ऊपरी पंजाब की रहने वाली थी। उन्होंने सिकंदर से मुठभेड़ होने का उल्लेख भी किया है। सिकंदर के शब्दों में 'मालव जाति उस समय की सर्व श्रेष्ठ जातियों में थी' यह बात इतिहासकारों ने भी लिखी है।

उक्त तमाम तथ्यों पर विचार कर हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि पंजाबी तथा मालवी के लोक साहित्य में यदि भाव, भाषा, शब्द या पंक्तियों में साम्य है तो यह एक ऐतिहासिक साम्य है, एवम् एक ऐतिहासिक सत्य है।

His brother Naraverman returned to northern Malava and was reigning there in 404-Samudragupta claimes to have also sufugated the Malaya. Arjunayana Yaudheya, Madarka, Abhira, Prarjuna, Sankanik, Kaka and Kharaparika tribes. Among these tribes the Malvas are the same as the malloi of the historious of Alexander the great and the Malays of the time of Nahapan. These tribes lived in the Panjab and the Rajputana. They issued coins in copper. Later on some of them settled in the fertile plains watered by Narbada & its tributories and that province became known as malwa from the tribe of malava', Prehistoric ancient & Hindu India by— Dr. R. D. Banerjee P. P 164.

मालवी में गाये जाने वाला एक दोहा है◆–

"बनाजी थें तो काबल का वासी
जाय बसे काबल का रस्ते कागद कद आसी"

गीत में काबुल नगर में प्रियतम का वास बताया है इसका कारण यही प्रतीत होता है कि उन दिनों लोगों का सम्बन्ध अधिकतर काबुल से अवश्य रहा होगा, तभी पति के काबुल चले जाने की बात इस दोहे में बैठ सकी।

इसी प्रकार परमार जी की ही पुस्तक में दो ऐसे गीत दिये गये हैं जो एक दूसरे से साम्य रखते हैं। यहाँ उन दोनों गीतों को ज्यों का त्यों उध्दृत करदेना असंगत न होगा। प्रथम गीत मालवी है तथा दूसरा काँगड़ा जिले का पंजाबी गीत है––

(१)

एजी एक तो भाल राजाने मारी लियो
लागो मरगा पे घाव मरगो पड़ी गयो
राजा पड्यो रे पड्यो तन तड़पी रियो
एजी हाथ कू जोड़ मरगो क्या बोले
एजी सिंग तो देणा सिंगी नाथ कूं
एजी, आँख तो देणा चंचल नार कूँ
एजी, खाल दो देणा साधु संत कूँ
एजी, पाँव तो देणा कायर चोर कूँ
एजी, इतरा तो बोल प्राण छोड़ी दिया

(२)

चुगदा चुगेन्दा हिरणू बोलदा
मियाँ हेडिया के
संगोटा ताँ मेरे कुसी साधे जोदेयाँ
साधे संत जोदेयाँ
जेहड़ा दूर दूर बजावे नाद
मियाँ हेडिया वो
खेल्लडू ताँ मेरी कुसी पडते जो देयाँ
पडत पाधे जो देयाँ
ज्वेहड़ा बैठे आसण लाई के
मियाँ हेडिया वो
अक्खो ताँ मेरीयाँ कुसी राणियें जोदेयाँ
राणिये सुन्दरां जोदेयाँ
जेहड़ी रक्खे डब्बियां पाई के
मियाँ हेडिया वो
लत्तां तो मेरियाँ किसे घोड़े जोदेयाँ
घोड़े बाँके जोदेयाँ
जेहड़ा रण विच पावे जीत
मियाँ हेडिया वो

दोनों गीतों में भाव साम्य तो है, किन्तु शब्द साम्य इस गीत में न मिला। सम्भव है यह गीत परमारजी के विचारानुसार कोई नाथ सम्प्रदायी साधु ले आया हो, या पंजाब से यह मालव लोगों के साथ चला गया हो। गीत में अहिंसात्मक भाव हैं –अतएव यह गीत काफी पुरातन भी हो सकते हैं।

अब हम उन शब्दों पर विचार करेंगे जो पंजाब और मालव के लगभग समान हैं और जिनसे भाषा–साम्य का आभास मिलता है—

पंजाबी	मालवी	अर्थ
हेठे	हेठे	नीचे
काई	कइं	क्या
कद	कद	कब
कदी	कदी	कभी
नीं	नीं	नहीं
के	के	क्या
समीसंझा	सवीसंझा	संध्या को
सिवाँदे	सिवइंवे	सिलादे
सुण	सुण	सुन
चीरा	चीरा	साफा
चुन्नी	चुनरिया	दुपट्टा
वीर	वीर	भाई
परणादित्ती	परणईदी	ब्याहदी
रिन्दू	राँधूं	पकाऊँ
भिख्या	भिख्स्या	भिक्षा
सूम	सूम	कंजूस
सोकण	सोकन	सौत
चम्बा	चम्पा	फूल का नाम
धोला	धोला	श्वेत
हाल्ली	हाली	हलवाहे
लाड़ा-लाड़ी	लाड़ा-लाड़ी	दूल्हा दुल्हन

◆ मालवी लोक गीत– श्याम परमार पृष्ठ ६०

उक्त शब्दों से यह निश्चय होता है कि पंजाबी तथा मालवी के बहुत से शब्द ज्यों के त्यों मिलते हैं तथा समान हैं। नीचे हम कुछ और पंक्तियां भी उपयुक्त समझते हैं जोकि, दोनों बोलियों में साम्य प्रदर्शित करती हैं। केवल इतना ही नहीं दोनों बोलियों में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतादि के नाम भी समान ही हैं–

पंजाबी	मालवी	पंजाबी	मालवी
काकण	कामण	घोड़ी	घोड़ी
सुहाग	सुहाग	बन्ना	बना
बधावा	बधावा	साँझी	साँझ
टिक्का	टीका	विदाई	बिदाई
हल्दी बटना	हल्दीउबटन	तियाँदे गीत	तीज के गीत

एक मालवी गीत की पंक्ति है जो विवाह के समय गाया जाता है। यही पंक्ति पंजाबी गीत में भी है, जो इसी अवसर पर गाया जाता है–

मालवी पंक्ति है–

"ऐसो वर ढूंडो जो गोकुल को कनैयो"

पंजाबी पंक्ति है–

"तारयां विच्चों चन्न, चन्ना विच्चों काहन,
कन्हैया वर लोड़िये।"

एक पंजाबी गीत है जिसमें पिता ऊपर सोया पड़ा है, उसे सूचना दी जाती है कि उसकी कन्या विवाह के योग्य हो गई है। इसी प्रकार एक मालवी गीत भी है, किन्तु इसमें पिता के स्थान पर मां है–

पंजाबी पंक्ति है–

उत्ते चढ़ सुत्ता बाबुल के नींद आइयो
बाबल ने कहीं नींद प्यारी घर कन्या कुमारी
सलोही बेटी वर मंगदी"

मालवी पंक्ति है–

"लाड़ा की मां कइ सूता के जागो"

विवाह के अवसर का ही एक और गीत देखिये, जो सम्पूर्ण ज्यों का त्यों मिलता है। पंजाबी गीत है–

"बे तूँ काला काला काला क्यो देआ साला
काला किन गुने
मेरो मां गई लोंगां हेठ, मैंमाऊ दे पेट महीआसी जेठ
मैं काला ऐस गुने
बे तूँ पींला पीला पीला क्यो देआव कील्ला
पीला कित गुने
मेरी माँ गई हल्दी हेठ, मैं माऊदे पेट, महीआसी जेठ
मैं पीला ऐस गुने
बे तूँ तिक्खा, तिक्खा तिक्खा पूरया सिक्खा
तिक्खा किस गुने
मेरी माँ गई मिरचाँ हेठ, मैं माऊदे पेट महीआसी जेठ
मैं तिक्खा ऐस गुने
बे तूँ गोरा गोरा गोरा मक्खन देओ बोरा
गोरा किस गुने
मेरी माँ गई चम्बे हेठ, मैं माऊदे पेट, महीआसी जेठ
मैं गोरा ऐस गुने" ......इत्यादि

अब मालवी गीत देखिये--

"तू तो पीलो रे लाडा पीलो काय गुणे
म्हारी माँता ने छटीरे जगई हल्दी रूखतले
तू तो गोरो लाड़ा गोरो काय गुणे
म्हारी माताने छटीरे जगई चन्दन रुख तले
तू तो चरपरोरे लाड़ा चरपरों काय गुणें
म्हारी माता ने छटी रे जगई मिरच्या रूख तले
......इत्यादि

उपर्युक्त शब्द, पंक्ति तथा गीतादि से यह निश्चय हुआ कि मालवी एवम् पंजाबी में पर्याप्त मात्रा में साम्य है। नीचे दो पहेलियां भी दी जाती हैं जो पंजाबी से मिलती हुई हैं--पंजाबी (बुंझारत) पहेली है--

"धौलो डाढीदा बुड्ढा सब्बे थांह विकान्दाई"
--प्याज़

मालवी पहेली है--

"धोली डाड़ी को डोकरो, ऊ हाटो हाट बिकाय
बूजो हो बेंवई म्हारी पारसी नीतो हारो घर की
नार"--प्याज़

पंजाबी–"जंगल जाई लक्कड़ ल्याइं
गिल्मी नाल्या सुक्कीना ल्याइं
लक्कड़ लंके घर नूं आईं"--सर्प

मालवी--"जंगल जाना लकड़ी लाना
गीली नहीं लाना सुखी नहीं लाना
लकड़ी लई ने जल्दी ही आना"--सर्प

नोट--उक्त लेख में जो ऐतिहासिक संगति जुडाई गई है, और पंजाब से मालवी लोगों को आयागया बतलाया है। यह भ्रम है। सत्य यह है कि मालवों ने ही पंजाब में जाकर अधिकार जमाया, और अपनी भाषा-संस्कृति को फैलाया है, विक्रम में पहिले प्रकाशित हमारा लेख देखिए–जिसमें इस भ्रमका खण्डन किया गया है।— संपादक

मित्रविन्दा

श्री 'मधुवन'

उन दिनों अवन्ती का वैभव आकाश चूम रहा था। प्रजा सुखी थी। प्रदेश में धन-धान्य का प्राचुर्य था लोगों की वृत्ति सात्विक थी, क्योंकि ऐश्वर्यशाली यह नगरी अखिल आर्यावर्त के शिक्षा-केन्द्र होने के गौरव से भी विभूषित थी। देश-विदेश के शिक्षार्थी पवित्र क्षिप्रा-तट पर स्थित सांदीपन आश्रम में जिज्ञासा लेकर प्रवेश पाते थे और शिक्षा की समाप्ति पर जब यहां से विदा लेते थे तो एक लम्बी अवधि के पश्चात स्वदेश पहुँचने की सुखद कल्पना से अवन्ती के वियोग का पलड़ा कहीं अधिक भारी होता था। वे भारी मन लिए हुए विवशतापूर्वक यहां से जा पाते थे और धरती के जिस छोर पर भी पहुँचते इसकी प्रशंसा करते न थकते थे।

अवन्ती का भौतिक और सांस्कृतिक ऐश्वर्य अमरों को मानों सचेत करता था, कि मृत्युलोक की यह स्वर्ग भूमि कहीं उनके लिए भी ईर्ष्या का विषय न बन जाय। तब अवंती का सबसे बड़ा आकर्षण थी राजकुमारी मित्रविन्दा। संपूर्ण विश्व को चकित कर देने की क्षमता रखने वाले उस अतुलित सौंदर्य की साम्राज्ञी की चर्चा पूरे आर्यावर्त में थी। उस देव-बालाओं को लज्जित करने वाली सर्वांग सुन्दरी-कुमारी पर अवन्ती को गर्व था। उसकी वाक्-चातुरी, दयालुता, निष्कपटता आदि गुणों ने उसकी कीर्ति में चार-चाँद लगा दिये थे। वह दृढ़ प्रतिज्ञ एवं सच्ची क्षत्राणी थी।

+ + +

कहते हैं कि माता-पिता का अपरिमित प्रेम प्रायः सन्तान को हठी एवं दुराग्रही बना देता है और फिर ऐसी सन्तान का तो कहना ही क्या जिसके माता-पिता का 'अभाव' शब्द से कभी संपर्क ही न रहा हो। राजकुमारी मित्रविन्दा भी अत्यधिक प्रेम दुलार पाकर हठी होगई थी, किन्तु दुराग्रही नहीं। उसकी हठ अमंगल की सृष्टि करने वाली, एवं दूसरों के मन को चोट पहुँचा कर खिलखिलाने वाली कभी नहीं होती थी। उसकी हठ को हम दूसरे शब्दों में दृढ़ इच्छा शक्ति कह सकते हैं।

एक बार एक साधारण-सी बात उसके मन में जमगई थी, तब वह अल्हड़ बालिका थी किन्तु अवस्था के विकास के साथ-साथ वह साधारण सी बात भी स्थायी भाव बन कर उसके जीवन का एक आवश्यक अंग बन कर रह गई।

बचपन में उसने किसी कृष्ण की लीलाओं के विषय में सुना था। वह माखन चुरा-चुरा कर खा जाता है। ग्वालिनों के दही-दूध के मटके फोड़ देता है। जो बड़ा ही नट-खट है किन्तु बांसुरी इतनी मीठी बजाता है कि लोग काम करना भी भूल कर उसकी स्वर्गीय लय में आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। जो इतना वीर है कि बालक होते हुए भी बड़े-बड़े सूरमाओं को सहज ही अपनी बुद्धि और बल से पराजित कर सकता है। जो व्रज के वासियों की आँखों का तारा है। ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व वाले कृष्ण से वह बहुत प्रभावित हुई। कृष्ण की रास-लीला की कहानियाँ, उसके मोहन रूप का वर्णन उसकी वीरता एवं वाक्-चातुर्य की कई घटनाओं ने उसके छोटे-से मन में उस महापुरुष के प्रति एक जिज्ञासा के भाव उत्पन्न कर दिये थे। काश! वह भी ऐसे महापुरुष को देख सकती! एकबार अपनी आँखों से उन्हें जी-भर कर दर्शन करने का सौभाग्य पा सकती।

अवस्था के विकास के साथ-साथ कृष्ण का रूप उसके हृदय में अधिक वृहत् रूप धारण करता गया। किशोरावस्था पर यौवन ने इंद्रजाल फेंका और कली फूल बनकर मनुहार भरी दृष्टि से अपने रूप-रस पर रीझने वाले किसी भ्रमर के विषय में विचारने लगीं। किन्तु…जो बचपन में उसके लिए केवल एक कौतुहल था वही उसके यौवन की देहली पर इस प्रकार असंभावित रूप से अपना अधिकार कर लेगा इसकी

उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी। न जाने कब वह कृष्ण को अपने आपको हृदय से सौंप चुकी थी।

+ + +

एक दिन राजकुमारी ने सुना 'कृष्ण ने रूक्मणी हरण किया क्योंकि वह कृष्ण को ही वरण करना चाहती थी'। उसे रूक्मणी के चरित्र पर श्रद्धा हो आई, ओह कितनी भाग्यशाली है वह जिसने कृष्ण को उसे अपनाने को विवश कर दिया। धन्य है उसका पवित्र प्रेम !! उस समय उसकी भावना में न तो नारी जाति की स्वाभाविक ईर्ष्या थी और न सौतिया-डाह की भावना, वरन् वह संतुष्ट थी कि उसके आराध्य देव ने उस स्त्री के साथ न्याय किया जिसकी वह अधिकारिणी थी।

ऐसी ही कुछ और कृष्ण के परिणय की घटनाओं की भनक उसके कान पर पड़ी किन्तु वह पागल नहीं होगई। वह भी कृष्ण को चाहती थी। उसे प्रेम करती थी किन्तु उसका प्रेम प्रतिदान नहीं मांगता था। वह तो स्वयं को दान करके सुखी थी। अपने कृष्ण का सुख ही उसका सुख था।

वह घंटों अपने आराध्य के ध्यान में डूबी रहती कभी स्वाभाविक रूप से विचार भी आता 'काश ! मुझे भी वे रानी न सही दासी के रूप में ही अंगीकार कर सकते'। किन्तु तुरन्त ही वह यह सोचकर रह जाती 'वे मुझसे दूर ही कब हैं ? वे तो मेरे रोम रोम में बसे हुए हैं। छलिया कहीं के··· यूं ही व्यर्थ मेरा मन लेने का प्रयत्न करते हैं।

+ + +

बेटी पराया धन है चाहे वह राजा की हो, या भिखारी की और शायद यही उसका अस्तित्व है। अवन्ती—राज ने भी देखा कि मित्रविन्दा का चांचल्य गांभीर्य में परिणित हो चुका है। उसका अंग-अंग यौवन से प्रस्फुटित होने लगा है, कई देशों के राजकुमारों के सन्देश भी आये थे किन्तु राज्य का कार्य-भार वे सबल कंधों पर डाल चुके थे। उनके पुत्र ही शासन के संचालक थे। राजा ने मित्रविंदा के स्वयंवर के विषय में उन्हें बुलाकर विचार किया।

मनुष्य के विचार और व्यक्तित्व के द्योतक उसके कार्य होते हैं। अपने आपको चाहे मनुष्य कितना ही छिपाना चाहे फिर भी कभी तो बात प्रकट होतीं ही है। मित्रविंदा का खोई-खोई रहना, घंटों तापसी के समान एक ही स्थान पर आंखें मुंदे हुए बैठे रहना और समय-समय पर कृष्ण-चर्चा करना उसके कृष्ण-प्रेम के द्योतक थे। भाइयों और महाराज के कानों तक भी बात पहुंचीं। कहते हैं बात हवा से भी अधिक शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान को पलायन करती है। धीरे-धीरे कई स्थानों तक मित्रविंदा के कृष्ण-प्रेम का सन्देश पहुंचा। कई देशों के राजकुमारों ने निराशा से सिर पीट लिया। कौरव राजा दुर्योधन ने भी सुना। कृष्ण के प्रति इस पवित्र प्रेम में भी उन्हें किसी राज-नीतिक कूटनीति की छाया दिखाई दी। यह भी हो सकता है कि कृष्ण के प्रति विद्वेष रखने से उसने ऐसा सोचा हो, किन्तु वह चुप न बैठ सका। अवंती के कुमारों को वह अपना मित्र मानता था और शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में थी। सुन्दरी राजकुमारी का परिणय और कृष्ण के अपमान की दोहरी सफलता की कल्पना से वह हर्षित हो उठा। किन्तु······स्वयंवर में मित्रविंदा अपनी इच्छा से ही अपना वर चुनेगी, इसकी उसे स्वतंत्रता थी। कृष्ण को वहां अनुपस्थित पाकर वह किसी को भी चुनने पर विवश होगी अतएव दुर्योधन ने पांसा फेंक ही तो दिया।

अवन्ती के स्वयंवर का कृष्ण को भेजा गया निमंत्रण बीच में ही रोक लिया गया। देश-देश के राजकुमारों और राजाओं ने अवन्ती के दर्शन करके अपने को सराहा। ना आये तो केवल कृष्ण। द्वारका तक सन्देश पहुंचा ही नहीं था। कहते हैं सच्चे प्रेम में ईश्वर का वास होता है। कोई अदृष्ट शक्ति उसकी सफलता के हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहती है, और प्रेमीजन उपस्थिति का आभास अपने हृदय की प्रत्येक स्पंदन के साथ अनुभव करते हैं। वे उससे दृढता पाते हैं तथा प्रेम का उज्वलतम रूप

सत्य एवं पवित्रता की ज्योति से उनके हृदय को आलोड़ित करता ही रहता है ।

कृष्ण के कानों तक भी मित्रविंदा के प्रणय की कहानी पहुँची । दुर्योधन की चाल का भी उन्होंने अनुमान लगा लिया । निमंत्रण न पाकर भी मित्रविंदा की चिन्ता से वे व्याकुल हो उठे, कहीं वह बापरी अपने आपको प्रेम की बेदी पर उत्सर्ग करके प्राणों से हाथ न धो बैठे ! नहीं तो सब क्या कहेंगे ! अवन्ती की प्रजा क्या कहेगी ! क्योंकि वह उसी अवन्ती की कुमारी है जिसका कृष्ण के जीवन निर्माण में बहुत बड़ा हाथ रहा है । उसी की शिक्षा एवं गुरु के आशीर्वाद से तो कृष्ण इतने बड़े दार्शनिक और राजनीतिज्ञ के पद तक पहुँचे थे ।

अधिक विलम्ब अनुचित था । छद्मवेश में कृष्ण ने अपने विश्वस्त सैनिकों के साथ प्रयाण किया ।

उधर मित्रविंदा पूर्ण श्रृंगार करके वरमाला लिए हुए स्वयंवर-भवन में खड़ी थी । देवताओं तक की दृष्टि उसके रूप पर लगी हुई थी । कमल सी बड़ी बड़ी आंखें सहसा उठीं । एक सहमी हुई दृष्टि से चारों ओर देखा किन्तु वे तुरन्त ही झुक गईं और कुछ सफेद मोती धरती पर ढुलक पड़े । वे नहीं दिखाई दिये थे, जिन्हें वह जी भर कर देखना चाहती थी । वह घनश्याम सा रूप सुन्दर व्यक्तित्व मोर-मुकुट, वैजयंती-माला और सुदर्शन कहीं कुछ भी तो नहीं दिखाई दिया था । तो……क्या जयमाला किसी के भी गले में नहीं पड़ेगी ? या उसे अपने हृदय को कुचलने को विवश होना पड़ेगा ? किन्तु ……किसकी मजाल है जो अवन्ती की सीमा में एक कुमारी के अधिकार से उसे वंचित करे ? पर……वे तो आये ही नहीं । क्या जीवन भर कौमार्य अंगीकार करना पड़ेगा उसे ? क्या अवन्ती की राजकुमारी का स्वयंवर एक खेल ही होकर रह जायगा ? किन्तु, वह ऐसा क्यों सोचती है । उसका कृष्ण जो उसके साथ है । वह छलिया नहीं आये तो क्या हुआ मित्रविंदा भी अपने हृदय का समझाना जानती है । वह अवन्ती की मिट्टी में पली है…… जिसने कृष्ण को कृष्ण बनाया । इस अवन्ती कुमारी का प्रणय इतना सस्ता नहीं हो सकता कि किसी के भी चरणों पर उछाल दिया जाय……

वह अपने आप में उलझी ही थी कि स्वयंवर मंडप में उसे हलचल सुनाई दी । उसने चौंक कर देखा कि वही घनश्याम सा सुन्दर रूप, सुन्दर मुखाकृति मोर मुकुट, वैजयंती-माला, हवा में फहराता हुआ पीताम्बर और चमकता हुआ सुदर्शन । एक हाथ से उसे आलिंगन किये हुए हैं, और दूसरे में सुदर्शन विरोधियों को ललकार रहा है । वह हर्ष से विभोर हो उठी । उसकी कमल-सी सुन्दर आंखें किसी की आंखों के चार होते ही शर्म से पानी होकर चू पड़ीं ।

युद्ध हुआ । रक्त-पात भी हुआ । किन्तु विजय प्रेम की ही हुई ।

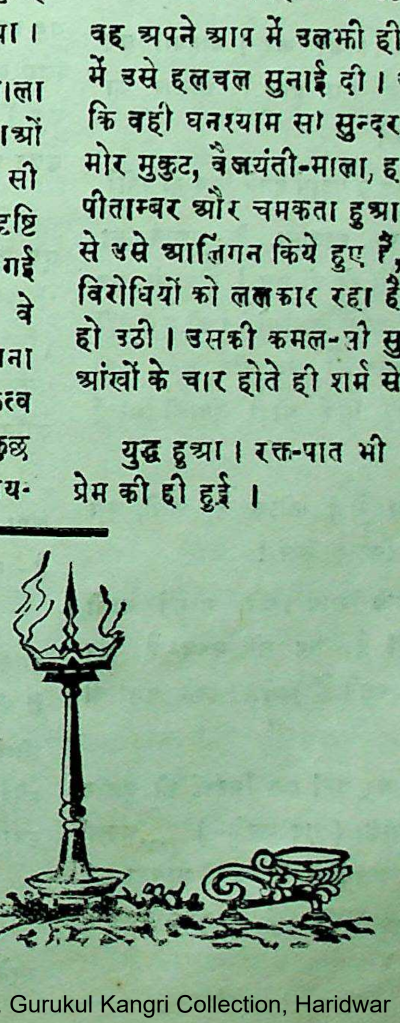

केवल पेट के लिए

श्री राम डोके एम. ए.

(बाबासाहब, तथा सुमति बाई दोनों दीवाली की खरीदी के लिये घूम रहे हैं।)

सुमति बाई— (थक कर सांस लेते हुए) चलो भई; अब थोड़ी सी मिठाई और ली कि अपनी यह खरीदी खत्म हुई।

बाबासा.—(चेहरे पर रुखाई से प्रश्न चिन्ह बनाकर) अर्थात्, और तुम्हारी 'मिठाई मैंया' रह गई ही है? पिछले दो-तीन रोज से मुझ पर और बाल-बच्चों पर बराबर गरम बनकर कुछ गरमागरम पदार्थ तुमने बनाये हैं! अब और किसलिए मिठाई चाहिये?

सुमति बाई—(मुंह बिचकाकर कर) वाहवा! घर पर मिठाई बनाई है तो इससे क्या हुआ? बाजार का स्वाद उनमें कहां से आएगा?

बाबासा.—फिर घर पर ये पदार्थ इतने किए ही क्यों?

सुमति—(सदा की तरह बाबासा. के अज्ञान का मजाक उड़ाते हुए) ऐसे कैसे हो जी तुम! दीवाली पर हमारे यहां कोई आने जाने वालों के लिये देने को कुछ नहीं चाहिए क्या? (गुलाब जामुन की तरह ओंठ बना कर) परंतु क्योंजी! अपने लिए सिर्फ थोड़ी बंगाली-मिठाई तो चाहिएगी!

बाबासा.— (विवशता से) ठीक है, चलो, इस अगली दूकान से ही थोड़ी मिठाई लेलें!

सुमति—(मंद-स्मित के साथ) अरे, सामने वाली दुकान कुछ मिठाई की नहीं है, वह तो क्लब है, वह ऊपर का बोर्ड तो देखो (पढ़ते हैं) ......श्री बालाजी क्लब!

बाबासा.— ठीक है, पर यहां एक मिठाई की दूकान थी, क्या नाम था—देखो उसका (याद करके—) ...अपर्णा मिष्टान्न मंदिर अब यह क्लब यहां कब से आगया..?

सुमति—अरे, जरा, ठहरो तो वह देखो तो क्लब के अन्दर कौन खड़ा है?

बाबासा.— (आश्चर्य सहित) एँ... अरे वे तो वे ही प्रचण्डमति! उसी कविता सप्लाय एण्ड कं० के मालिक! पर ये यहाँ कैसे? चलो जरा पूँछे तो सही, (जोर से आवाज देकर) —प्रचण्ड मति—ओ प्रचण्ड मति...!

(जोर से खँखार कर और ऐतिहासिक-स्वरके साथ) —कौन है ...? ओहो बाबा साहब, हलभ्य-लाभ हलभ्य-लाभ! (थोड़ा आवाज छोटा करके) अरे सुमति बाई भी साथ हैं क्या?

सुमति— पर आप आज यहाँ कैसे?

प्रचण्डमति— आज इस दीवाली के शुभ मुहूर्त पर यह नया क्लब आरंभ किया है न! इसके उद्घाटन के लिए यहाँ आया था, (बाबासा. की ओर साश्चर्य देख कर) एँ... यह क्या बाबासाहब? इस तरह इधर-उधर आप क्या देख कर उलझ रहे हैं?

बाबासा.—मैं... मैं यह आसपास लगे सुभाषितों को एक एक कर पढ़ रहा था, 'अन्न ही परम ब्रह्म हैं' 'No sound mind without a sound belly.' (बिना पेट के पूर्ण रहते हुए मस्तिष्क पुष्ट नहीं रह सकता) 'अतृप्त मानव अधूरा ही रहता है।,' 'उदर भरण ही है जानिए यज्ञ कर्म!'

क्योंजी प्रचण्डमति! बाहर श्री बालाजी क्लब का बोर्ड लगा है, और अंदर ये सुभाषित वचन......क्या बनाया है- तुमने यह सब!

प्रचण्डमति— (गंभीर स्वर से) बाबा साहब, यह इतना 'लाईट्ली' मत लीजिए, आज के इस उपवासीयुग में धीरे धीरे रसातल की ओर जाने वाली 'खान-कला' के जीर्णोद्धार करने के लिए ही यह प्रयास किया जारहा है और उसी उदात्त भावना से प्रेरित होकर ही इस क्लब की स्थापना भी की गई है।

सुमति—'खान कला' अर्थात् खाने की कला ही है-न?

प्रचण्डमति—बिलकुल ठीक। जैसे गान कला-यानि गाने की कला, पान कला, यानि पीने की कला, उसी तरह

खान कला, यानि खाने की कला ! परन्तु 'खान' शब्द मूलतः यहां का नहीं है। यह मुझे खान बहादुर डेरा इस्माईल खान (वल्द) डेरा गाजी खान के बाड़े की तीसरे मंजिल वाली अंधेरी कबाड़ खाने की खोली में एक फूटे हुए हुक्के के ऊपर लिखा हुआ मिला है।

बाबासा.—(कौतुहल से) ओहो !

प्रचण्डमति—जी हाँ, आरम्भ में यह हुक्का मुहम्मद तुगलक मुसलमान बादशाह का है, पर हिन्दुस्तान की राजधानी को बदलकर अपनी सेना के साथ दौलताबाद जाते हुए यह हुक्का राह में गिर गया, और खान बहादुर डेरा इस्माइलखान–डेरा गाजी खान के पडदादा के पडदादा के हाथ लगगया, तब से यह उनके पास खानदानी हुक्का के रूप में सुरक्षित रहा है। कहने का मतलब यह कि 'खान कला' के इस 'खान' शब्द का यह ऐतिहासिक महत्व है !

सुमति–क्यों नहीं, होना ही चाहिए, तुम्हारा चुनाव जो है।(थोड़ा स्वर पलटकर) परन्तु क्योंजी प्रचण्डमति ! शब्द शब्द के लिए तुम इतने अधिक सतर्क रहते हो पर 'श्री बालाजी क्लब' जैसा यह बिलकुल 'बाल बोध' नाम तुमने कैसे रखलिया ? इस नाम से तुम्हारी खान-कला, पान-कला, नाम आदि से जरा भी संगति नहीं बैठती ?

प्रचण्डमति— नहीं, सुमति बाई ऐसा नहीं है, इस नाम में भी एक विशेष-अर्थ है, पदार्थ प्रतिष्ठित है, इसके एक एक अक्षर में सनातन पक्वान्नों की सांस्कृतिक-सौरभ समाविष्ट है, 'श्री बालाजी क्लब' की श्री-से-श्री खण्ड, बा–से बासूंदी, ला–से लड्डू–और जी–से जलेबी, क्यों ? है न हमारे ध्येय (पहले पेट) के साथ सुसंगत नाम ?

बाबासा.—(बीच ही में) परन्तु क्योंजी ? 'खाने' जैसी एक अत्यंत साधारण बात के लिए खासतौर पर इस क्लब के स्थापित करने की आवश्यकता क्यों हुई ?

प्रचण्डमति— बात यह है कि आजकल लोगों को यह समझ नहीं है कि क्या खाना, कैसे खाना, कितना खाना, आदि। इस कारण जो खाना चाहिए वे खाते नहीं, और न खाने की चीजें खाते हैं।

सुमति— (हँसकर) हां, यह तुम जरूर ठीक कह रहे हो प्रचण्डमति !

प्रचण्डमति—सच ही है यह ! अपने शरीर को गोल बनाना ही प्रत्येक का 'गोल' होना चाहिए, इसके लिए हर एक को मस्त, और पुष्ट–पदार्थ खाना चाहिए। परंतु इसकी पर्वाह न कर लोग······ किसी का वक्त खाते हैं, किसी का सर खाते हैं, किसी की गाली खाते हैं, किसी के पैसे खाते हैं, लातें खाते हैं, और ······ और ····· (भूल जाते हैं) इस तरह कुछ न कुछ खाने में समय नष्ट करते हैं, कुछ लोग यह खाने में असमर्थ रह जाते हैं वे अपने दांत-ओंठ खाते बैठते हैं, या खाली हवा खाने में मगन रहते हैं, है न-बाबा साहब, इस तरह कुछ न कुछ खाने में आदमी समय खपाता रहता है न ?

बाबासा.—सच है, सच है हमारा ही हाल देखो (श्रीमती की ओर संकेत करके) इनके मुंह से निकले मुक्ता-फल हमें भी रोजाना खाना पड़ते ही हैं।

प्रचण्डमति—तो देखिए, कहने का तात्पर्य यही कि इस तरह के गप्पे खाने की अपेक्षा हमारे इस क्लब में आकर सिर्फ खाने की चीजें ही खाना ठीक है न ?

सुमति—यह सब ठीक है जी, पर हमें यह नहीं समझ पड़ता कि रसोई घर की बातों के लिए 'बालाजी क्लब' सरीखी स्वतंत्र संस्था की क्या आवश्यकता है ?

प्रचण्डमति—है, है, और फिर है, सुमतिबाई, जैसा तुम समझ रही हो, उस तरह इस गंभीर-प्रश्न की मर्यादा रसोई घर तक मर्यादित नहीं है। तुम जरा खुली आंखों से देखो कि आजकल के युवकों की दशा कितनी भीषण है। 'प्रकृति-परिवर्तन' उनमें हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति मानों अपने शरीर को बिगाड़ने के लिए तत्पर है। उनके गालों के दोनें (पत्तल के साथ रहने वाला द्रोण) छाती की पत्तलें और हाथ पैर कि सिवाइयां········राम-राम, कितना हीन, और लज्जास्पद दृश्य ?

सुमति— (चिन्ता के स्वर में) हमारे बाबा का भी यही हाल है ! वह कॉलेज का स्टूडेंट होगया अपने शरीर की जरा पर्वाह नहीं, खाने पीने की तरफ तो बिलकुल ध्यान ही नहीं, और आजकल तो उसे एरंडी के सिवा कुछ पचता ही नहीं है।

प्रचण्डमति— (प्रवचन के जोश के साथ) देश भर के लोगों का स्वास्थ्य इतना गिरता जारहा है, पर इस ओर

किसका ध्यान है ? सभी विचार शील-साहित्य और जीवन, संस्कृति और जीवन, राष्ट्र और जीवन, नीति और जीवन, सिनेमा और जीवन, समाज और जीवन, इत्यादि विषयों पर गला फाड़-फाड़कर मुँह चला रहे हैं, किन्तु खाना और जीवन की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता है ? बाबा साहब, आपही कहिए,—क्या साहित्य, क्या संगीत, क्या संस्कृति, और क्या नीति, इन सभी की अपेक्षा खाना ही जीवन के लिए महत्व पूर्ण हं कि नहीं ?

बाबासा.— अवश्य हमारा तो यही अनुभव हं, भई ।

प्रचण्डमति—और इसलिए हम कहते हैं कि-'खान कला' को महत्व देकर 'खूब खाओ और मस्त रहो' के आदेश देने वाले हमारे इस क्लब की तरह आज देश को हजारों 'क्लब' की भारत को भूख है !

बाबासा.—प्रचण्डमति ! हमें यहां एक शंका उठती हं, खूब खाओ, खूब हंसो, खूब जीयो, ये सारी कल्पनाएँ -भावनाएँ कानों को बड़ी मधुर और रोचक लगती हं, पर मं कहता हूं ये बातें इस मँहगाई, और रॉशनिंग के युग में हम जंसों के लिए कंसे सरल हो सकती हं ?

सुमति—(निःश्वास लेकर) और नहीं तो क्या ? मं कितने दिनों से एक सरीखी इनके पीछे लगती हूं कि हम एक बार 'कालीमाता' हॉटेल में चलकर पेट भर बंगाली मिठाई खाआवें, पर क्या करें ? मिठाई का नाम लिया कि मेरे मुँह में पानी छूटने लगता है । और खाने की बात कहती हूँ तो इनके मुँह का पानी उड़ने लगता है ।

प्रचण्डमति—रुकिए, रुकिए, बाबा साहब, सुमति बाई, यही प्रश्न आज सुबह ही क्लब के उद्घाटन के अवसर पर कई लोगों ने पूंछा था, उसका उत्तर भी हमारे पास तैयार है । हमने एक अंक शास्त्री की सहायता से जो लोग निरंतर यह चीख पुकार करते हैं कि हमें पौष्टिक भोजन सुलभ नहीं हो पाता उनके फिजूल खर्चों के आंकड़े इकट्ठे किए हैं, (दूसरी ओर मुँह करके) 'लंबोदर! ओ लंबोदर! ! अरे, वह सुबह सभा में पढकर सुनाई थी, स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट-है न? जरा, इधर लाना तो,

लंबोदर—लाया साहब, (लेकर आता है)

प्रचण्डमति—इधर आओ, यहां लाओ । बाबा साहब, सुमति बाई, यह हमारे इस क्लब के मंनेजर हैं, इनका नाम लंबोदर, यहां जो 'खादक' आते हैं, उनकी सुविधा यही देखते रहते हैं !

सुमति—'खादक' ! (साश्चर्य)

प्रचण्डमति—जी हां, हम अपने क्लब के सदस्यों को 'खादक' ही कहते हैं ।

सुमति—वाह वा, बहुत सुन्दर, मुझे यह शब्द बहुत पसन्द आया ।

प्रचण्डमति—जी, हां, मं क्या कह रहा था,……हां, उस रिपोर्ट का, लंबोदर, जरा पढना तो वह रिपोर्ट ।

लंबोदर—(पढता है) धारा १, अपने देश का लगभग प्रत्येक तरुण प्रति दिन ५$\frac{१}{४}$ कॅप चाय पीता है, धारा-२ प्रति दिन लगभग रक्त विहीन ओठों के रंगने के लिए लगभग हर तरुण को ७$\frac{१}{२}$ पान खाने के लिए चाहिए । धारा-३,अपने जीवन में अढ़ाई थंली तमाखू फांक लेता है, और सवा थंली नासका (नस्य) सूंघ लेता है ।

सुमति—(बीच ही में) क्योंजी यह ही ठीक हुआ न, मंने शादी के बाद तुम्हारी तमाखू सूंघने की आदत छुड़वादी ।

बाबासा.—तूने तमाखू सूंघना छुड़वादिया पर क्या परिणाम हुआ, याद है । जब मुझे अपनी सास पहली दीवाली पर एक सुन्दर चांदी की डिबिया देने वाली थी, वह र गई कि नहीं ।

प्रचण्डमति— हां, हां, जरा वह पूरी रिपोर्ट तो सु लीजिए, हाँ, लंबोदर, आगे बढ़ो—

लंबोदर— धारा-४, हमारे देश का प्रत्येक तरु सरासर ६$\frac{१}{४}$ सिगरेट फूँक कर धुँआ उड़ा देता हं ।

सुमति—हमारे बाबा का भी इसमें नम्बर आएग बदमाश कहीं का, रोज उसके कमरे में सिगरेट के टु पड़े हुए मिलते हैं, और पूँछने पर कहदेता हं कि (न बनाते हुए) मां, मं नहीं पीता हूँ ये सिगरेट, मेरे पास बड़े बड़े लोग आते हैं न वे पीते हैं,—कहीं का बदमाश !

बाबासा:—अरे, बीचही में क्यों बोल रही हो जरा सुनलो,

हां, लंबोदर……

लंबोदर—प्रत्येक युवति अपने निस्तेज चेहरे की बाहरी चमक रखने के लिए सरासर ३½ तोले पावडर, और पौन तोला स्नो नष्ट कर देती है।

सुमति—(जप्त न कर) अपन भई, सुखी हैं इस मामले में।

बाबासा.—फिर तूने बीच ही में मुंह चलाया न ?

प्रचण्डमति— (हंसकर) रहने भी दीजिए-बाबा-साहब आज आप दोनों ही इस रिपोर्ट सुनने के 'मूड' में नहीं हैं, फिर कभी सुनवादेंगे।

लंबोदर, रखदे यह रिपोर्ट अभी तो।

हां, बाबासा. मुझे आपको इस रिपोर्ट के द्वारा यही बतलाना था कि ऐसे अनेक फिजूल की बातों पर व्यर्थ खर्च करने की अपेक्षा लोगों के जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक पौष्टिक पदार्थ खाने की सुविधा नहीं मिल सकती, क्या यह अब आप स्वीकार कर सकते हैं ?

बाबासा.-- यह सब सही है, पर जो लोग इन बातों पर खर्च करते हैं, उनके लिये तो सत्य है, पर मुझ जैसे के लिये यह कैसे हो ? मैं चाय पीता नहीं सिगरेट लेता नहीं और सौभाग्य से हमारे इनको भी स्नो-पावडर वगैरा का कोई खर्चा नहीं है, केवल दीवाली के त्योहार पर स्कीन कलर की बस एक चिमटी भर बंदरछाप टूथ पावडर काली चाहिये।

सुमति-- चिढकर यह क्या तुम्हारा..... मैं तो घर जाती हूं।

बाबासा.- अरे जरा, अरे जरा......,

सुमति- नहीं, मैं जाती हूं वे थैलियां तुम लाते हो न साथ !

प्रचण्ड मति- (बीच में बचाव करते हुए) अरे वाह, यह क्या सुमति बाई, तुम जैसों को सरल विनोद में क्या चिढ़ना चाहिए, ठहरिये न, जरा देखो तो सही-

सुमति- तुम कुछ भी समझो प्रचण्डमति, मुझे इनका यह सब पसंद नहीं आता,.........अब तुम कहते हो इससे ठहरजाती हूं। कुछ समय पर......

प्रचण्डमति- थैंक्स ! हा, हा, हां, आप क्या कह रहे थे बाबा साहब ?

बाबा साहब- मेरा कहना यही था कि मेरा जब एक पैसा भी किसी व्यसन पर खर्च नहीं होता तब ज्यादा पैसे पौष्टिक पदार्थ खाने के लिए कहां से लाए जाएँ ?

प्रचण्डमति- क्षमा करें बाबा साहब, जब आपको कोई भी व्यसन नहीं तो तुम्हारा यह ढीला ढीला स्वास्थ्य कैसे ?

बाबासा.-(निश्वास लेकर) है, बस यह न पूछो। क्या कहूं, नेचर ने ही यह दगा दिया है ! तब हमारी काया पर माया कैसे दीखेगी ? मासिक डेड सौ रुपए मेरे लगभग २०) २५) हरमास डाक्टर के पल्ले पड़जाते हैं !

प्रचण्डमति- बाबा साहब ! यही २०-२५ रुपए आप डाक्टर के पेट में डालने की अपेक्षा अपने खुद के पेट में डालदो तो कैसा हो.. ? जाने दो, यदि आपको यह डॉक्टरी खर्च बचाना हो तो केवल १० रु. देकर हमारे क्लब के दुग्ध दौड़ विभाग के सदस्य बन जाइए, प्रतिदिन कप भर दूध, और एक माईल की दौड ही बस तुम्हारे लिए जरूरी है।

सुमति- (अट्टहास करते हुए) बस, बस, बहुत बढ़िया! ठीक इनसे दौड लगवाइए।

ये घर पर पडे पडे केवल मासिकों के पन्ने उलट पलट कर पडे रहते हैं !

बाबासा.- (कुछ चिढकर) तू बीच बीच में मत बोल, इस में तुझे क्या समझता है ! तो, मि० प्रचण्डमति खाना और व्यायाम दोनों ही कार्यक्रम चलते हैं, शायद इस क्लब में ?

प्रचण्डमति- जी हां, खेलना, और गिलना दोनों ही कार्य क्रम गले से गला मिलाकर यहां चलते हैं।

दिवाली के लिए विशेष रूप से हमने यहां कितने ही काम्पिटिशन भी किए थे, आज ही सुबह विजयी खाना-डुओं को पुरस्कार बांटे गए हैं !

सुमति- खूब, 'खानाडू' !

प्रचण्डमति- (हंसकर) हां, साहब, हम यहां खिलाडी की तरह 'खानाडू' कहते हैं।

सुमति- 'हंसकर' वाह वाह, किस किसने पुरस्कार पटकवा लियाजी !

प्रचण्डमति- नहीं, पटकवा नहीं लिया, मटकालिया कहिए।

सुमति– ठीक, ठीक भूल हुई, किसने २ पुरस्कार प्राप्त किया...?

प्रचण्डमति– वे जोशीजी की अन्नपूर्णाबाई हैं न उन्होंने सीताफल खान प्रतिस्पर्धा में इनाम प्राप्त किया।

सुमति– अरे उस सत्तर साल की बुढियाने...?

प्रचण्डमति– जी हां, मुँह में एक भी दांत न रहते एक मिनिट और तीन सेकंड में सारा सीताफल सटक लिया, और तरुणों को तडाका मार दिया !

बाबासा.- गजब किया भई, वाह ! अपने को तो सीताफल खाने का जमता ही नहीं। पूरा एक घण्टा चाहिए एक सीताफल के लिए।

प्रचण्डमति– इसी तरह बालु शास्त्री पुराणिक ने तीन-इंच त्रिज्या वाली आठ दिनों की ठंडी वातुल पुडी सिर्फ एक मिनिट और आधे सेकंड में समाप्त कर डाली ।

सुमति– सुन सुन कर में तो विस्मित बनरही हूँ । क्योंजी ! महिलाओं नें कोई पुरस्कार नहीं पटक··· (तुरंत जीभ काट कर) मटकवाया ?

प्रचण्डमति– क्यों नहीं, जरूर मटकवाया ! उस गोखले की अकल... (क्षमा कीजिए) अलका ने अपनी नाक के द्वारा प्याज के छिलके उतार दिये, और मजा यह कि उसकी आँखों से एक बूंद भी नहीं निकला।

सुमति– बराबर, उसकी नाक है ही ऐसी, नुकीली ठीक मेरी नाक की तरह ही, पहिले मुझे पता चलता तो में भी इस स्पर्धा में पार्ट लेती !

बाबा साहब– तुम्हें कहां है, नाक से कांदे छीलने की आदत ?

सुमति– देखा–फिर–तुम ·····

बाबा सा.– ठीक-ठीक, जाने भी दो, व्हेरी सॉरी !

सुमति– क्योंजी प्रचण्डमति ! क्या छोटे बच्चों के लिये इस क्लब में कोई स्थान नहीं है ?

प्रचण्डमति– वाह, है यह कैसे हो सकता है ? उनके लिये भी स्पर्धाएँ थी ही, वह गणपत गोटे वाले का गोट्या है न······

बाबा सा.– हां, उसे किस बात का इनाम मिला···?

प्रचण्डमति–उसने सील बंद पेटी में छुपाकर रखे हुए सूखे बूरसे के लड्डू को सिर्फ ३४ सेकंड में खोल कर निकाल लिया, और सहज मजाक में पूरा का पूरा ही गिल कर उतार लिया, इस पर उसे क्लब की ओर से पाठशाला से रोज वापिस लौटने पर १ साल तक एक लड्डू मुफ्त मिलता रहेगा।

सुमति– (नखरे के साथ) हमारे उस खण्डू को भी इसका बहुत बढिया प्रेक्टिस है, क्या पता था कि तुमने यह स्पर्धा रखी है, हमें तो मालूम ही नहीं पड़ा। क्योंजी! क्या इन स्पर्धाओं के लिए कुछ नए पदार्थ भी तुमने तयार किए हैं ?

प्रचण्डमति– वाह, अवश्य किए हैं न ! आपकी वह सोना बाई सोला बिस्वा है कि नहीं, उन्हें काट-कसर के सामान बनाने में इनाम दिया है, उन्होंने मुंगफली के छिलकों की बढिया चटनी तयार की थी, (कुछ याद कर) ओ हो, ठीक याद आगई, अरे लंबोदर ! वह परदेश के पुरस्कार पौष्टिक पद्धति से भिजवा दिये कि नहीं ?

बाबा सा.– पौष्टिक पद्धति क्या (आश्चर्य)

प्रचण्डमति– अर्थात पोस्ट–द्वारा।

लंबोदर– कौन से पुरस्कार भिजवाना है साहब ?

प्रचण्डमति– अरे ··वह, उस संशोधक गुंडो-पो दण्डकारण्ये को उनके 'दूसरे बाजीराव कालीन घटं वाले संशोधनात्मक निबंध के लिए दिया गया वह पुरस्का वह अलग निकाल कर रखा है न···?

लंबोदर– जी हां, ध्यान में आया।

बाबा साहब– वाह, वा, आपने तो संशोधन, प्र लेखन आदि साहित्यिक स्पर्धाएँ भी रखी थी !

प्रचण्डमति– जी हां, यही नहीं। 'जीने के लिए भोज या 'भोजन के लिए भोजन' इस विषय पर वाद-वि भी रखा गया था। अरे हां, क्योंजी लंबोदर ! 'भो भोजन के लिए ही है, यह पक्ष अत्यंत सुन्दर प्रकार किसने प्रतिष्ठित किया था ?

लंबोदर– जी, वही अपने गोविंदराव सहस्त्र-भोजने

प्रचणमडति– ठीक, ठीक, अभी उनका पुरस्कार भी पहुँचाया है, उसे भी पौष्टिक-प्रकार से भेजदेना। भू मत, क्योंकि वे संग्रहणी से पीडित हैं. अपना पुरस्कार आकर ले न सकेंगें।

लंबोदर- बहुत ठीक !

बाबा साहब- कमाल है भई, प्रचण्डमति ! हर साल नई नई संस्था आरंभ करते हो ! ठीक है, मुझे अपने बालाजी क्लब का सदस्य बना लीजिए।

प्रचण्डमति- अवश्य आपको तो सदस्य बनना ही चाहिए, और सुमति बाई आपको भी !

सुमति- तो क्या मैं इन्हे अकेले ही थोड़े खाने दूंगी पौष्टिक पदार्थ !

प्रचण्डमति- देखिए बाबा साहब !

बाबसा.- (सदैव के विवश स्वर में) बना लीजिए हमें सह कुटुम्ब सदस्य ! पर अब चलना है न ?

सुमति- अच्छा चलते हैं, प्रचण्डमतिजी, फिर मिलेंगें! तुम्हारा मुकाम तो अभी यहीं रहेगा ही कुछ दिन !

प्रचण्डमति- (हँस कर) जी, मुकाम ! अब तो आखीरी मुकाम मिलने तक इस प्रचण्डमति के शरीर को एक जगह ठहरने का अवसर ही नहीं, आजही बाहर जाने का विचार कर रहा हूँ ।

बाबासा – आज ही, बस क्या और कहीं कोई व्यवसाय आरंभ करना है?

प्रचण्डमति- जी हां, आज ही दिल्ली जाना होगा ·· खाद्य मंत्री को मिलना है !

सुमति- क्योंजी······चलना है न अब ?

बाबा साहब- हाँ-हाँ, चलो ठीक है प्रचण्डमतिजी मैं सदस्य शुल्क भेजदूंगा, अच्छा नमस्कार !

प्रचण्डमति- वाह साहब चंदा कहाँ जाता है, आपका स्नेह चाहिए हम गरीबों पर (दोनों जाते हैं)

* * *

प्रचण्डमति- (खूब जोर से हँसकर) क्यों भई लंबोदर ! खावक इन-चार्ज कैसा रहा ?

लंबोदर- गजब है साहब आपभी ! कुछ कहने की जगह नहीं ।

प्रचण्डमति- तुम कहते थे न कि इस दिवाली पर इस मिठाई की दूकान का दीवाला पिट जायगा ?

लंबोदर- वास्तव में स्थिति तो ऐसी ही आगई थी, मिठाई इस नगर में क्या उठती ?

प्रचण्डमति- (अंदर ही अंदर हँस कर) और अब ? कितने खरीदार जुटा दिये है । वे भी ऐसे नहीं कि आज हैं और कल नहीं, बिलकुल परमेनेन्ट ?

लंबोदर- मालक, आपके लिए असंभव कोई बात नहीं, इस खाने की मजेदार स्पर्धा करवाना, एक सीधे से अपर्णा मिष्टान्न मंदिर को 'श्री बाला जी क्लब' के रूप में संस्था की शक्ल में पलट देना, मीठे पदार्थों की मिठाई फैलाकर उसके गीत गायन कर साहित्य, राजनीति की सांठ-गांठ जुडाकर लोगों को आकर्षित कर परमनन्ट ग्राहक बना लेना, यदि आपने मेरा तार मिलते ही आनें का कष्ट न किया होता तो इस दुकान का नामोनिशान कब रहपाता, पर अब आपके आजाने मात्र से······ !

प्रचण्डमति- अरे भाई, क्षुद्रसी बात को महान रूप देकर लोगों के गले के नीचे उतारना पडता है । सभी बडे लोग यही करते हैं । जरा साहित्य को ही देखो न ! सीधी सरल भाषा का साहित्य पाठकों के सहज समझ में आजाता है, इसलिए वह स्वतंत्र, या महान मालूम नहीं होता, इसी लिए साहित्य क्षेत्र के 'डिप्लोमेटस' अत्यंत हलकी चीज को यथा संभव दुर्बोध और गूढ़ बनाकर पाठकों को चकित कर देते हैं, और महान श्रेष्ठ, युग प्रवर्तक बन बैठते हैं । ऐसी हालत में अपनी मिठाई की दुकान चलाने के लिए यह मधुर षडयंत्र किया इसमें कौन सा अपराध हुआ ?

लंबोदर- मैं क्या कहूँ मालिक मुझे तो इसमें कुछ समझता नहीं है ।—

प्रचण्डमति- अच्छा अच्छा, मेरा सामान तो सब तयार है न ? और देखो मेरा सूट वगैरा इस बॉक्स में मत रखना, केवल बिना इस्त्री किया हुआ एक मैलासा खादी का शर्ट और एक गांधी टोपी, बस मेरे साथ इतना सामान काफी है । मुझे अन्न मंत्री को मिलने जाना है········। जल्दी ही यह तैयारी करदो ··· तब तक मैं आइने के सामने खडा हो कर चेहरे के उज्वलपन के भाव बदलने का प्रेक्टिस कर लेता हूँ ······· बस तुम जाओ ।

(किर्लोस्कर से सधन्यवाद)

काव्य-साहित्य में प्रगतिशीलता का मापदण्ड

श्री मदनलाल वर्मा 'साहित्य-रत्न'

भारतीय जीवन में काव्य का आदर्श सदा से महान था। प्रकृति और पुरुष की सजीव प्राण-सत्ता के साथ साहित्य का जन्म हुआ। कविवर पंतजी के शब्दों में:- 'यह काव्य अलौकिक सदा चला, आ रहा सृष्टि के साथ पला'! ब्रह्मानंद सहोदर कह कर भारतीय समीक्षकों ने काव्य की प्रतिष्ठा को उच्च स्थान दिया और 'रसात्मक वाक्यं काव्यं' में उसकी स्वीकृति दी। प्राचीन युग में उषस्-छन्दों की वन्दना केवल भारतीयों की आध्यात्मिक चेतना ही नहीं, भारत की शांत-भूमि, उसकी सांस्कृतिक परम्पराओं से पुनीत उज्वल हैं, और भारत की सृजनवती संस्कृति आत्माभिमुखी है- यह पश्चिम को भ्रान्त करने का कोई संभ्रम नहीं, अपेक्षाकृत भारतीय जीवन की पूर्ण इकाई का इंगित-मात्र हैं कि, प्रलय-जलधि में भी भारत जीवित है- उसका जीवन-दर्शन विशाल एवं प्रशस्त गौरव का परिचायक है! यथा:-
'तुम चिर सारथि तव रथ चक्रे मुखरित पथ दिन रात्री'

आधुनिक-युग में जहाँ काव्य-पारखी और काव्य कोविद काव्य की नयी नयी परिभाषाओं का अनुगमन करते जाते हैं वे भारत के उन उदात्त-तत्वों को भूल जाते हैं- साहित्य का 'नीर क्षीर हंस विवेक' आज राजनैतिक गुट्टों और शासन हथियाने की नारेबाजी का प्रचार, मात्र भुलावा बन गया है और हमारे 'युग-दूत' काव्य में या तो सेक्स और भूख के उभाड़ने वाले चित्र देकर रह गये हैं या दारुण-विभीषिकाओं का राज्य-पाट लेकर 'साधन' की सिद्धि-पीठि पर ख्यातिप्राप्त महाभारत के दृश्य-विधान रचते हैं।

'मालवा की शबेरात' और यू. पी. की साँझ जहाँ उर्दू कवियों के लिए प्राकृतिक सम्मोहन की कलात्मक वस्तु है! हमारे डाक्टरेट युग-प्रवर्तक कवि मास्को की लालसेना का आत्म विज्ञापन देकर या प्रणय-स्वप्न के छूँछे चित्र देकर मौन प्राय हैं- यह कहकर कि उनका यौवन प्रदीप तो 'राम की शक्ति पूजा' से महान है। स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद जी ने साहित्यकारों के व्यापक संगठन की भावना से काव्य में प्रगतिवादी परम्परा को नयी देहलीज पर ला अग्रसर किया, मोर्चाबन्दी का बाजार साहित्य में लग गया किसी ने प्रगतिशीलता में प्रतीक सजाये किसी ने रूप रंग, ध्वनियों के प्रयोग किये। वस्तुतः हमारा प्रगतिवाद 'उपयोगितावाद' का संस्करण बना। काव्य की आत्म-चिन्तना का सहज शोभन प्रशस्त-पथ अब भी हमारे सम्मुख विकृत सा है, जब कि दिनकर 'जब कलाकार मर गया चाँद रोने आया' की प्राणवन्त-रसवन्ती से अलग गा रहे हैं। बाह्य सौन्दर्य का दृश्य विधान आधुनिक कवियों में अवश्य है किन्तु जीवन दर्शन की गहरी पैठ प्राचीन से कम।

काव्य का सौजन्य क्या है? उसके नैसर्गिक कला-प्राणों में विराट् की गूँज है वह कलावन्तों के प्राणों का संगीत है, भारती के प्राणों की प्रार्थना और वीणा के तारों पर झंकृत होने वाला आत्म-निवेदन आज के गीत साहित्य के आलोक स्वरों में संचरित हुआ है। हमारे आलोचक-प्रवर डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील-काव्य को वर्ग-श्रेणी का नाम देकर अन्तर्राष्ट्रीय किसान मजदूरों की रक्तिम क्रांतियों के संघर्ष में उद्भूत किया चाहते हैं- श्रमजीवी मानवता का गीत गाना तो बुरा नहीं है-किन्तु आधुनिक कवियों के प्रति उनकी 'ट्राटस्की वाद' की भौतिकता और 'बुलन्द' नारे बाजियों में नैसर्गिक काव्य आदर्शों का दिवाला पिट गया ज्ञात होता है। हिन्दी के समालोचना साहित्य में आत्मानुभूत जीवन-कला से शून्य व्यक्तिवादी अतिक्रमण इससे अधिक क्या हो सकता है? उर्दू, फारसी शब्द कोषों को उधार लेकर हमारे समालोचना शास्त्र को सजाया जाय, इससे अधिक हास्यास्पद क्या होगा।

आधुनिक नव-युग के तरुणों की सृजनशील परम्पराएँ तो सुनहले ताने बाने नहीं बुनती, किन्तु नवोदित कवि अपनी क्रान्ति चेतना के उन्मुक्त-संगीत के प्रति चिर सजग है- आज का नवीन तरुण यथार्थता के व्यंग्यात्मक चुटीले प्रयोग करने में। शहरों के निष्क्रिय अभिजात्य-वर्ग की रेशमी तकियों और उनकी साया में पलने वाली लक्ष-लक्ष शोषित श्रमजीवी मानवता के प्रति।

अपेक्षाकृत इसके आचार्य हजारी प्रसादजी द्विवेदी के आलोचनात्मक दृष्टिकोण व्यापक हैं- मानवतावादी परम्परा के पोषक हैं- उनकी आलोचनात्मक वर्चस्वता प्रखर होकर भी गांभीर्यपूर्ण है, वह प्रशस्त आत्म उद्बोधन को लेकर चली है जहाँ आचार्य शुक्लजी ने भारतीय संतों के प्रति एवं आधुनिक कवियों के प्रति शुष्क बने रह कर सोचने का कष्ट न किया वहाँ आधुनिक परिपाटी के समालोचकों में श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, गुलाबराय एम. ए. डा. रामकुमार वर्मा, सत्येन्द्र, शातिप्रिय द्विवेदीजी ने उन्मुक्त होकर लिखा है। समालोचक प्रवर द्विवेदी जी की विचारधाराएं भौतिक-दर्शनों के प्रति चिन्तनशील होकर भी युग-चेतना के ज्योतिर्मय प्रकाश शिखरों को छू लेती है।

आज के समालोचनावाद वादों की संकीर्ण सड़कों पर ही सीमित न रहें तो अच्छा। जहाँ आधुनिक हिन्दी की जीवन्त साधना में, युगकवि पंत, प्रसाद, निराला, श्री मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी जैसे उन्नायकों के प्राण बोल रहे हैं- वह कविता हमारे 'हृदय' की वस्तु है- भारत के तपःपूत मनुजत्व के संवेदनशील- भावों को संस्पर्श करने वाली कविता 'बुद्धिवाद' की पराकाष्ठाओं का दर्शन मात्र तो नहीं।

आज के कलम का 'वनमाली' मरण का त्योहार मनाकर भी हृदयवान है, निर्मम के प्रति, अश्रद्धा के प्रति— वह पेट और बुद्धि के बिजनेस की तराजू पर शोषण और कुंठाओं के गीत नहीं बेचता! भारत और एशिया की ज्वलन्त-आत्मा नूतन बनकर साकार हो!

"नया पथ"

हिन्दी की नई साहित्यिक चेतना का प्रतिनिधी, हिन्दी साहित्य में देशभक्ति, जनसेवा, स्वाधीनता और शान्ति कामना की महान और गौरवशाली परम्परा को आगे लेजाने वाला राजनैतिक सांस्कृतिक मासिक पत्र।

❀ विशेष स्तम्भ ❀

* मासिक टिप्पणियां * व्यंग और प्रहसन * आज की राजनीति * मार्क्सवाद की पाठशाला
* आर्थिक लेखा जोखा * कथा, कहानी और कवितायें * विज्ञान और हम
* सिनेमा जगत * हमारी संस्कृति * पुस्तक परिचय

'नया पथ' को नये और पुराने सभी साहित्यकारों का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त है।

संपादक— श्री शिव वर्मा

वार्षिक चन्दा ६ रुपया. ● ६ माही तीन रुपया. ● एक पत्रिका मूल्य आठ आना ● पृष्ठ संख्या ४८

आगामी पहली अगस्त को "नया पथ" का पहला अंक तुलसी अंक के रूप में प्रकाशित होगा।

एजन्सी लेने वालों को २५% कमीशन और डाक खर्च मुफ्त।

'नया पथ' कार्यालय
राम भवन, सेण्डहर्स्ट रोड, बम्बई ४.

काव्य—विहार

कला और नारी

श्री मदनलाल वर्मा साहित्य-रत्न

कलाकार ! तुमने उस दिन किस प्रतिमा का निर्माण किया ?
अपने लघु-हाथों से प्रिय रंगों का अनुसंधान किया !
अमर तूलिका से जीवन में किसे कला का प्राण दिया ?
या कि बाँसुरी पर युग-युग तक किसका सुमधुर गान किया ?
इन्सानों के वैभव की दुनियाँ में रह जो मौन रही—
और एक दिन किसी भाव की भाषा में पहचान गई !

और एक दिन बोल उठी प्रतिमा कह 'मैं नारी हूँ'…
कहीं गरीबों के दुख-दर्दों में मैं अब तक मारी हूँ !—
जिस दिन कविता का रुदन हुआ, और सदन के दीप बुझे !
हे कलाकार ! धन वालों के धन-बल होते भी एक तुम्हारी हूँ !
शोषण से पूरा देश दुखी था नहीं राग था कुंजों में—
कहाँ इलोरा और अजन्ता में नवयुग के सपनों की अवतारी हूँ !

नहीं राजधानी में तुमने उसको खँडहर बीच सजाया है !
कचनारों आमों वन सरसों से सिंगार लजाया है !
मंजु-मेघ आकाश-कुसुम का मंजुल हार चढ़ाया है !
चम्पक-द्युति से वनबाला का उषा-गात मुसकाया है !
मालव की धरती पर जिस दिन पग पग ले रोटी औ नीर —
वहीं कला रोती थी झोपड़ियों में चित्रित अहह अधीर !—

ओ नारी ! केशों की द्युति में किसी कृष्ण का राग लिए !
चमक माँग—रेखा मुसकाती धूमिल स्वर्ण—पराग लिए !
शुभ्र-भाल पर बिन्दु कि पलकों में अँसुवन के भोर लिए—
शुक—नासा अधरों के पुट, गीतों के प्रणय-विहाग लिए !
तुम श्रृंगारो आज प्रलय की वीणा झंकृत, सुकुमारी !
नये सृजन के कवि के गायन सुनो कला जागो नारी !

गायक श्री रवीन्द्र के स्वर को खोजा किसने जाना था ?
इसी विश्व में किसी आंग्ल—कन्या ने स्वर पहचाना था !
बापू के दुखड़ों में जिस दिन हार जायगा जग मानी !
महामुक्ति के अमर—पंथ पर साथ बढ़ें हम शोषित पीड़ित सेनानी !
अब न कला की जननि भिखारिन या कि कलाधर पहने वेश भिखारी का !
रूप धरो नव शक्ति-वाहिनी, दिव्य-सिंहनी ग्रामवासिनी-नारी का !!

आई रात सुहानी

श्री॰ कुमार

(१)

लिए अंक में जगमग चन्दा आई रात सुहानी ।
सिन्धु-तरंगों पर लहराईं नभ की भरी जवानी ।
लहर लहर पर ताल दे रहे मस्त पवन के झोंके,
लगे झांकने नभ-वातायन से समूह परियों के,
सरोवरों में कुमुदिनियाँ मृदु मन्द मन्द मुस्काईं,
लिए चांद का मादक चुम्बन किरणें भागी आईं,
सदा सुहागिन दिग्वधुओं ने घूँघट के पट खोले,
लगी थिरकने कहीं चकोरी अन्तर में मधु बोले,
सिन्धु-तरंगों पर लहराई नभ की भरी जवानी ।
धवल धवल घनभ, दल दिशाएँ, धवला वसुधारानी ।

(२)

प्रकृति मगन हो गई आवरण ओढ़ रश्मियों वाला,
नखत डूबते उतराते पी चले विभा की हाला,
स्वर्गलोक के गान सुधा-से लगे बरसने भू पर,
नभगंगा ने ली अँगड़ाई आज धरा के ऊपर,
प्रकृति-पुरुष की धवल वासना, मोह सुधा की धारा-
लहराई अगजग के ऊपर चीर तिमिर की कारा;
सिन्धु-तरंगों पर लहराई नभ की भरी जवानी ।
धवल उमंगें, धवल तरंगें, धवज हृदय की वाणी ।

(३)

गगन-कुसुम की प्रभा सुरभिमय अन्तरिक्ष में छाई,
अन्धकार पर विजय विभा की शहनाई लहराई,
मुस्काया रजनी का यौवन, खिली रात की रानी,
मन्द-मन्द बह चला शून्य पर समय नदी का पानी,
हिम किरीटिनी की आँखों में सुख के सपने डोले,
चरण पखारे सागर ने मन ही मन होले होले,
धवल हृदय के धवल हास-सी, बिखरी धवल हिमानी ।
सिन्धु-तरंगों पर लहराई नभ की भरी जवानी ।

नया विश्वास

श्री शिवशङ्कर जोशी, बी. ए.

(१)

मिटी जब श्वास संग सो-सो मनुज के प्राण की आशा,
झुके मस्तिष्क तब सो-सो विकल संताप से बोझिल ।
सहज अनुराग पा बोली मृगों की मौनतम भाषा,
टूटी निस्तब्धता सो-सो विजन में गा उठी कोकिल ।

कि जब तुम पास आये हो,
नया विश्वास लाये हो ।
नये अनुराग से संचित
नया उल्लास लाये हो !

(२)

समंदर पर चली सो-सो भयङ्कर जब प्रबल आंधी,
प्रलय घन जब घुमड़ आये मिटाने सृष्टि की थाती ।
भयंकर ज्वार से लड़ने किनारों ने कमर बांधी,
जली साकार दीपक की नये विश्वास की बाती ।

कि जब तुम पास आये हो,
नया विश्वास लाये हो ।
नये चंदा के हाथों में
नया आकाश लाये हो !

मालव—गरिमा

"जीवन" जोशी, विशारद

हरा भरा भरपूर हमारा !
प्यारा मालव देश, हमारा प्यारा मालव देश !!

१

विन्ध्य शिखर के अस्थिजाल,
करते दृढ़, इसका पावन तन !
रक्त-वाहिनी बन, सरिताएँ,
सींच रही, मालव प्रदेश !! हरा मेरा...

२

लहलहा रही धानी धरती,
लहलहा रहे हैं हरे खेत!
हैं ज्वार, मकई, गेहूँ कपास के,
पौधे यहां धनेश !! हरा भरा...

३

हरित दूब, लहराती बालें,
कलकल करते, बहते नाले!
गिरि उपत्यका, सौम्य विन्ध्य की,
सुन्दर सुभग सुवेश !! हरा भरा...

४

उत्तर चम्बल, दक्षिण रेवा,
पश्चिम माही, पूर्व बेतवा!
विन्ध्या से आच्छन्न खण्ड जो,
वही मालवा देश !! हरा भरा...

५

पावन क्षिप्रा अमृत जल से,
करती नित अर्चन–पूजन!
यह अवन्तिका इसके उर में,
बसते जहां महेश !! हरा भरा...

६

पाण्डव युग की बाग गुफाएँ,
साँची के स्तूप निराले!
माण्डव दुर्ग, महिष्मति प्यारी,
दशपुर के अवशेष !! हरा भरा...

७

उदयगिरि, ग्यारसपुर, विदिशा,
भित्ति-चित्र-युत गुफा, मूर्तियां!
पुरातत्व इतिहास हमारा,
कहते ये अवशेष !! हरा भरा...

८

मिट्टी से उपजाते सोना,
धरती के ये धनी किसान!
दोनों हाथ लुटाते कोई—
भूखा रहे न शेष !! हरा भरा...

९

मालव के पश्चिम में बसते,
तरकश धारी भल भीलाले!
साफा और लँगोटी बांधे,
वही पुराना वेश !! हरा भरा...

१०

मन्दसौर, भोपाल, धार,
देवास और उज्जैन नगर!
इन्दौर, जावरा, बढ़वाणी,
सुन्दर नगरों का यह प्रदेश !! हरा भरा...

११

मीलों के ऊँचे बम्बों से,
झांक रहा उद्योग जहां!
इन्द्रपुरी इन्दौर नगर यह,
आकर्षण इसमें सविशेष !! हरा भरा...

१२

कुहुक कुहुक के मधुर राग में,
कोयल गाती गीत निराले!
वनश्री बिखर रही है चहुँ दिशि,
ऐसा सुन्दर देश !! हरा भरा...

१३

पग पग पर बहता है पानी,
मग मग में है अन्न अपार!
इस धरती की महिमा गाते,
आठों याम सुरेश !! हरा भरा...

१४

कालिदास की ज्ञान–साधना
भोज, मुञ्ज, विक्रम का बल!
पावन किया अहिल्या ने, दे–
अपना शुभ सन्देश !! हरा भरा...

१५

विज्ञ कलाकारों की जननी,
मालव है पुनीत पावन!
करते सब मिल इसका वन्दन,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश !! हरा भरा...

मुझको यह धरती प्यारी है !

देवव्रत 'देव'

नहीं कल्पना में उड़ना है मुझको आता,
स्वर्गलोक का अतुलित सुख-ऐश्वर्य मुझे तो तनिक न भाता,
जगमग करते, सुन्दर नक्षत्रों से पुरित आसमान से–
मानव की जगती प्यारी है ।
मुझको यह धरती प्यारी है ।

(१)

ऊपर देख न पाउँगा, हँसते खेतों को,
कल्पवृक्ष पर पर सुन न सकूँगा, कोयल के मधुमय गीतों को,
नन्दन-वन के सुन्दर सपनों से भी सुखकर, वसुन्धरा की–
सुरभित-कुसुमित फुलवारी है ।
मुझको यह धरती प्यारी है ।

(२)

अमरलोक का नहीं मुझे 'अमरत्व' चाहिये ,
सब कुछ खोकरके भी मुझको तो मेरा 'अपनत्व' चाहिये,
'अमर मुक्ति' के 'शाश्वत बन्धन' से तो मुझको, जगती का–
'स्वच्छन्द-बन्ध' ही सुख कारी है ।
मुझको यह धरती प्यारी है ।

(४)

······इन्द्रासन से गिरता देखो 'नहुष' धरा पर,
उसे सान्त्वना देती मां वसुधा, निज प्राणों से दुलरा कर,
ऐसी पतित-पावनी, कल्याणी मां से भी बढ़कर के, क्या–
अमरलोक वह भवहारी है ?
मुझको तो धरती प्यारी है ! ···

'चंदू का काका'

श्री हरीश निगम

वाहो म्हारा चन्दू का काका
तम क्यों फिरो बांका बांका

१

सिड़ पिड़ सिड़ पिड़ थां की चप्पल बोले
थें चालो जद थांको आखो तन डोले
पण थांको नरमलो मूंडो हिये प्रेम घोले
ने कपड़ा असा पेरो के कुतरा होय दोले
अरे क्यां चल्या कोप तो पीजाओ चा, का
वाहो म्हारा चंदू का काका ।

२

परोड़े आठ बजे तम नींद से जागो
ने पइसा वास्ते आखा घर का आल्या थागो
नित का तम उज्जण ने रतलाम भागो
असा कंइ तमाने दड़ा को शोक लागो
घर में भलंइ पड़ता होय फाका
वा हो म्हारा चंदू का काका ।

३

अबे तमारे कथ वा को लागो चस्को
कवी चंदू बतलाय तो उका कान मस्को
अबे तो यो रोग कोयनी म्हारा बस को
नी होय तो तम आगा यांती खस्को
म्हारा घतेड़ो पड़ी गयो मारी मारी ने हाका
वा हो म्हारा चंदू का काका ।

४

बायर से तम आवो तो कंई करं थांकी सेवा
ने खाटला पे सुइ जावो जेवा का जेवा
म्हारा पास आया के अइ जाय लेवा
ई थांका मिन्तर ने मिन्तरोल्या केवा ?
इनके देखी ने म्हारे पड़ी जाय धाका
वा हो म्हारा चंदू का काका ।

५

खर्चो करवा में तम कसर नी राखो
ने बजार की कंई बासुन्दी चाखो ?
अबे तो अपना घर मेज आंबो पाको
तम बायर जावो तो म्हारा जीव जाय झांको
मानो नी तो पाटलून में लागेगा टांका
वा हो म्हारा चंदू का काका ।

६

काल ज नानवया के खांसी हुई गई
में देखी ने वांज ठगी ठगी हुई गई
अइ ने नरस वई दवा को कई गई
पन लाती कांसे घर में से बरकत म्हई गई
इसतरे तो टाबर का मूँडा में भरायना माखा
थोड़ा मानो हो म्हारा चंदू का काका।

७

कंई घणी काई हुई गई कुड़ा बावड़ी करुं
म्हारी जांघ उगाड़ूँ तो मैंज लाजे मरुं
आखा सात समुन्दर की सई भरुं
सब झाड़का छोली ने बगडुं अरु
आखा धरती का पाठा ये भी गुण नी आय पांका
वाहो म्हारा चंदू का काका
तम क्यों फिरो बांका बांका
अबे तम हुई गया जाका पाका

म्हारो मालवो ?

श्री मदनलाल जोशी शास्त्री साहित्य-रत्न

स्वर्ग लोक ती घणो रुपारो म्हारो मालवो प्यारो !

अमरत जैसो सरस रसीलो, यो शिवना को पाणी,
गणगोरां पर मीठी मीठी, लागे गहूँ की धाणी।

विखे चांदनी रातां में यो, ऊपर चांद रुपारो,
स्वर्ग-लोक ती घणो रुपारो, म्हारो मालवो प्यारो॥

जद चम्बल की धारा कल कल कल कल करती जावे,
रसवन्ती मीठी बोली में जद वा गीत सुणावे।

लहराई जावे धरती पर, अन, पाणी ने चारो
स्वर्ग-लोक ती घणो रुपारो, म्हारो मालवो प्यारो॥

विक्रम की नगरी उज्जयिनी, तीरथ घणो है भारी,
दरशन परशन करवा आवे, दुनिया का नरनारी।

तीन लोक को नाथ आपणो, महाकाल रखवारो,
स्वर्ग लोक ती घणो रुपारो, म्हारो मालवो प्यारो॥

मन्दसौर, दशपुर ने देखो, अरे सौंधनी प्यारी,
रख्या मालवा की पूँजी वी जय का थम्भा भारी।

मात मालवा का खेतां में, चमके कारो गारो।
स्वर्ग लोक ती घणो रुपारो, म्हारो मालवो प्यारो॥

शकुन्तला ने मेघदूत ले, कालिदास कवि आया,
जणा मालवा ने चमकायो, वी था मालव-जाया।

यो सपूत बेटो व्यो माँ को, घणो लाड़लो प्यारो,
स्वर्ग लोक ती घणो रुपारो, म्हारो मालवो प्यारो॥

बाग बगीचा कुड़ा बावड़ी हरया भरया मुसकावे,
आँबा ऊपर कारी कोयल कू, कू, कूक, हुणावे।

धीरे धीरे चाले वायरो, ठण्डो टोप हुंकारो,
स्वर्ग लोक ती घणो रुपारो, म्हारो मालवो प्यारो॥

आगई बदरिया काली

मदनलाल जोशी साहित्न

सुधा की धार बरसाती, बदरिया आगई काली।
मनोहर मृदुल मनमोहक पुलक कर पवन भी आया,
सुकोमल सुखद शुचि स्नेहिल सँदेशा साथ में लाया,
सहज ही मधुर मधुरस से हृदय की भरगई प्याली,
सुधा की धरा बरसाती, बदरिया आगई काली !!
मचल कर होगया गीला, धरा का वह असित आंचल,
दिखाई देरहा अनुपम छलकता रूप नव श्यामल !
सलौनी सुखद स्मृतियों से, सजी उपहार की थाली !
सुधा की धार बरसाती, बदरिया आगई काली !!
सुनहले वेश में सजकर, मगन हो गगन मुसकाता,
मिलन की मधुर-यामा में धरा पर स्नेह बरसाता !
खिली लख, प्रम की क्यारी, मुदित हो झूमता माली !
सुधा की धार बरसाती, बदरिया आगई काली !!
चमकती चपल आभा में चुनरिया ओढ़ सतरंगी,
गगन में लाज से लुक छिप दिखा मुख तड़ित तन्वंगी !
ढुलकते कण इधर रिमझिम बरसती बदरिया काली,
सुधा की धार बरसाती, बदरिया आगई काली !!

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ
सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति ॥-) आने

-सुमित्रा-

वार्षिक मूल्य ६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर
तथा
संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**— देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।
२. **डायरी के पन्ने**— हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।
३. **सबसे प्यारी कृतियां**— पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।
४. **पत्रांजलि**— देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ-हस्ताक्षरके साथ।
५. **विश्व-भारती**— संसार के महान कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर
६. **भारत-भारती**— देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।
७. **हमें यह कहना है!**— संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

महत्वपूर्ण - सम्मतियाँ

"मैं विक्रम में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण ऐतिहासिक लेखों को बड़े चाव से पढ़ता हूं। उनसे मेरी ज्ञानवृद्धि होती है। मेरा विश्वास है कि विक्रम अपने ढंग का अकेला हिन्दी मासिक है। आप उसके द्वारा हिन्दी के पाठकों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक-चेतना उद्बुद्ध करने का स्तुत्य प्रयत्न कर रहे हैं।"

— हजारीप्रसाद द्विवेदी

"आप जिस हृदयग्राही रूप में 'विक्रम' निकाल रहे हैं, उससे मैं आकर्षित होता हूं।"

—(डॉ.) वासुदेवशरण अग्रवाल

"विक्रम सांस्कृतिक स्तर पर सुन्दर ढंग से निकल रहा है, सम्पादकीय टिप्पणियां तो बड़ी विचारोत्तेजक होती हैं।"

–राजबहादुरसिंह (भू. पू. संपादक नवभारत टाइम्स,

'विक्रम अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं प्रगतिशील विचारधारा के लिए पत्र-जगत में अपना विशेष स्थान रखता हैं। उसकी सपादकीय टिप्पणियों की स्पष्टता और विविधता उसकी अपनी चीज है।"

—'भारती' नागपुर

'·जिसने भी विक्रम की संपादकीय टिप्पणियां पढ़ी हैं, वह इनकी स्पष्टवादिता और विद्वत्ता से प्रभावित हुए बिना न रहेगा। लेखों का चयन एवं संपादन भी उत्तम है जो पत्रिका को उच्च कोटि की पत्रिकाओं में अग्रणी स्थान दिला देते हैं।

— 'आजकल' दिल्ली

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

७.५.५३

विक्रम

सु/आ 15१८५३

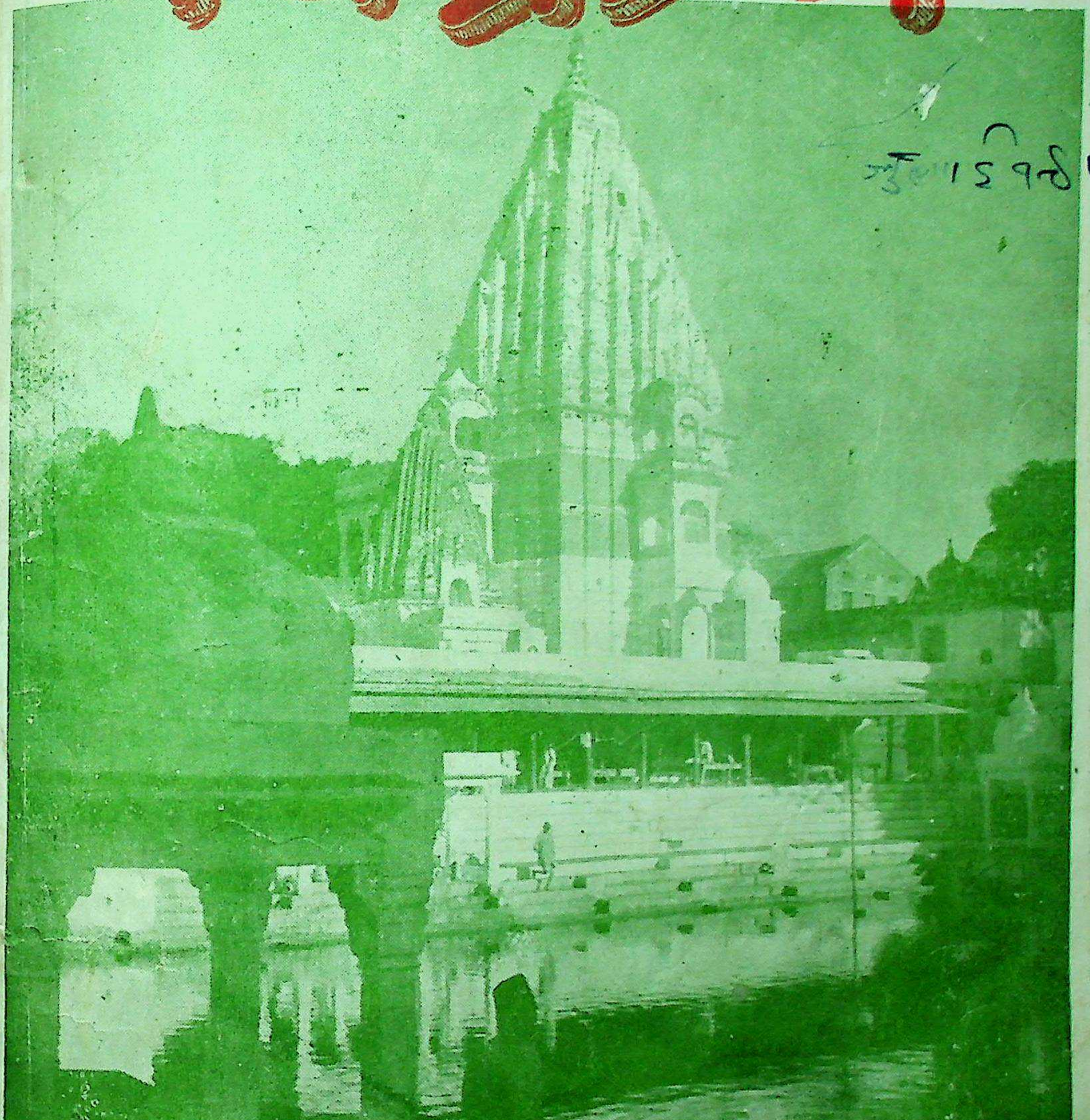

संचालक संपादक

सूर्यनारायण व्यास

ज्येष्ठ सं. २०१०

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि॰]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टेक्सटाइल मशीनरी पार्ट्स, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी॰ आई॰ पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के वने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मैनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
।।=)

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

१ पंद्रह अगस्त ... ... श्री जगमोहन नाथ अवस्थी ...
२ व्यास-उवाच ... ... सम्पादकीय १-१६
३ रूसीविद्वान वारान्निकोव ... ... श्री वी. वी. बाला बुशेविच ... १७-१९
४ त्रिपुरा से शांति-निकेतन ... ... श्री नारायणप्रसाद 'भूषण' २०-२८
५ मालव-गण पंजाब के अर्वाचीन निवासी थे ? ... श्री नरेन्द्र धीर २९-३३
६ श्री धीर के तर्क कसौटी पर ... ... संपादक ३४-३८
७ मुक्ति बोध ... ... श्री रत्नेश कुसुमकर ३९-४०
८ तुरतदान महा-पुन्न ... ... श्री अक्षयचन्द्र शर्मा ४१-४५
९ पुस्तक परिचय-परामर्श ... ... श्री 'बम' ४६-४७
१० स्व. रवीन्द्र के प्रति ... ... श्री कैलाश शर्मा ... ...

मध्य भारत की पंचवर्षीय योजना, देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए बनाई गई पंचवर्षीय योजना का ही अविभाज्य अंग है।

२२ करोड़ ४९ लाख की इस योजना में राज्य की कृषि तथा उद्योग-धन्धों को समुन्नत बनाने के लिये एवं नागरिकों के स्वास्थ्य और शिक्षा की समुचित व्यवस्था के हेतु व्यापक प्रबन्ध करने की दृष्टि से पृथक्-पृथक् योजनाएँ सम्मिलित की गई हैं। चम्बल घाटी विकास, सिंचाई की व्यवस्था, सामुदायिक विकास योजनाएं, गहन कृषि, हरिजनों तथा आदि वासीयों का उत्थान तथा गृह उद्योगों को प्रोत्साहन आदि के कार्य इस विशाल योजना के विविध अंग हैं।

इस योजना की सफलता में देश की उन्नति है।

१५ अगस्त

यह दिन वह है जब कि कटे थे पराधीनता-वन्धन ।

जीवन की छवि है आजादी, जन्म सिद्ध अधिकार,
बलिदानों के बल से खुलता, सदा मुक्ति का द्वार,
स्वतन्त्रता की सुधा, अमरता मानव को देती है,
युग-पुकार बन, स्वर्णद्वार यह नित्य खोल देती है ।

मंगलमूर्ति तुम्हारा करता क्षण क्षण जन जन वन्दन,
यह दिन वह है जब कि कटे थे पराधीनता-वन्धन ।

हमें सुरक्षित रखना है इस दिन का प्रिय वरदान,
मुक्ति सुमन मुरझा न जाय है इसमें ही कल्याण ।
सजग रहे हैं आजादी के प्रहरी परम प्रवीण,
वर्षगाँठ का दिवस दिव्य हो शाश्वत रुचिर नवीन ।

समता के चन्दन से चर्चित महापर्व का अर्चन ।
यह दिन वह है जब कि, कटे थे पराधीनता वन्धन ।

आजादी के कल्पवृक्ष को दिया रक्त से सींच,
खिला मुक्ति का पावन पंकज संघर्षों के बीच ।
दुर्ग दासता सदियों का हो गया सदा को ध्वस्त,
पूज्यनीय पन्द्रह अगस्त है आभारी तव युग समस्त ।

मुक्ति-प्रतीक राष्ट्र-ध्वज पावन जय जय अरि-मद-गंजन,
यह दिन वह है, जब कि कटे थे, पराधीनता-वन्धन ।।

—जगमोहननाथ अवस्थी

मध्य-भारत, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड १] ज्येष्ठ सं० २०१० वि०, जुलाई सन् १९५३ [अंक ३ पूर्ण सं० ७४

ग्राम्य उवाच

भाषावार देश-विभाजन।

जब से महासभा ने भाषावार प्रांत-निर्माण के प्रश्न को स्वीकार किया, देश के समक्ष एक नई विभाजन समस्या उत्पन्न हो गई है। अनेक उपेक्षित नेता-जनों के लिए एक आन्दोलन, और नव–नेतृत्व-का मार्ग प्रशस्त हो गया है। हानि-लाभ और विश्रृंखलितता के विचार को गंभीरता से किए बिना ही 'आत्म-उत्थान' के लिए सतत प्रयास जारी होगए हैं। टी. प्रकाशम् का पथ अंधकाराबृत बना तो उन्होंने आंध्र को स्वतन्त्र करने की आवाज बुलन्द की, परिणाम वश अनेक ध्वंस काण्ड हुए, और एक व्यक्ति ने भावुकता वश अपने प्राणों की आहुति तक दे डाली, फलतः केन्द्र को कमजोर बन आंध्र निर्माण का निर्णय करना पड़ा। आज आंध्र की राजधानी की समस्या को लेकर आपसी द्वंद्व चल रहा है, उधर मद्रास से आंध्र को विभक्त होते हुए देख राजाजी का हृदय जर्जर बन रहा है। अब केरल की ओर से सत्याग्रह की धमकी दी जारही हैं, और महाराष्ट्र, महाविदर्भ भी सजग हो रहे हैं। बीच में बेचारी बम्बई दो पति की पत्नि की तरह महाराष्ट्र, और गुजरात के बीच खींची जा रही है। आज यद्यपि बृहद्गुर्जर, आबू और राजस्थान का प्रश्न उतना बलवान् प्रतीत नहीं होता, पर बम्बई को लेकर जो रस्साकशी चल रही है, वह कटुता बढ़ाने वाली प्रतीत होरही है। इन भाषिक-विभाजनों की चर्चा से देश के अनेक भाग विभक्त होने की भावना पर चर्चा करते दिखलाई दे रहे हैं, आज भोपाल, अजमेर इसी उलझन में त्रिशंकु बने हुए हैं, मध्य-भारत में नीमाड़ से भी यह दबी आवाज उठरही है कि उसे स्वतन्त्रता क्यों न हो ? इसी तरह महा-मालव की कल्पना भी कुछ लोगों के दिमाग में

नेतृत्व के लिए गड़-बड़ मचा रही है। यह सारी उलझनें देश की एकता को खतरे में उलझा देने वाली है, अनेक आपत्तियों को जन्म देसकती है, हालांकि इनकी स्वतन्त्रता राजनीतिक, और आर्थिक कारणों से कहाँ तक सुसंगत, सुव्यवस्थित, और सुरक्षित हो सकती है, यह विषय अत्यंत गंभीर है; किन्तु इसकी ओर ध्यान देने का आन्दोलकों को न तो अवसर है, न विचार ही। ऐसे विभाजकों को प्रोत्साहन दिया गया था आंदोलन एवं धमकी से निर्बलता उपर्यक्त की तो देश अनेक खण्डों में बँट जाएगा, और अनेक विषैल समस्याएं घातक रूप में समक्ष उपस्थित हो जाएगी। आज इस प्रदेश से, और कल उस प्रदेश से यह आवाज आती ही रहती है।

एक नया सुझाव !

इसकी अपेक्षा तो क्या ही उत्तम हो कि समस्त देश को एक बार केवल चार भागों में बांटदिया जाए, जैसे पूर्व-भारत, पश्चिमी भारत, दक्षिण-भारत, और उत्तरी-भारत। ये विशाल विभाग भी बन जाएँगें, और शासन के लिए विशेष सर दर्द भी नहीं रहेगा। एक एक बड़े भागों में आन्तरिक भाषीय विभाजन भले ही कर दिया जाए, जो, उस भाग की केन्द्रीय (विभागीय) सत्ता के अन्तर्गत हों। उन्हें अपने स्वतन्त्र विकास की सुविधा प्राप्त रहे। इस तरह सारा देश अनेकता में भी केवल ४ विभागीय सूत्रों में गुम्फत होकर एकता बनाए रख सकेगा, और स्वतन्त्र-भाषिक राज्य· के निर्माण द्वारा प्रथक् न बन कर उलझनों का उत्पादक भी न होगा। ४ विभागों में से हर एक विभाग का विशाल-क्षेत्र होगा, आत्म निर्भरता होगी, और स्वतन्त्र सीमा, और विकास होगा। सभी साधन सुलभ होंगे। देश को पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण भागों के बंटवारे में न तो सीमाओं की समस्या जटिल बनेगी, न व्यवस्था–रक्षा की ही। सभी की प्रचण्ड जन-धन साधन शक्ति होगी। और इन चारों दिशा के ४ विभागीय शासनों को सूत्रबद्ध रखने के लिए केन्द्रीय-शासन की देश के मध्य-भाग (मध्य-भारत) में प्रतिष्ठा कीजाए, जहाँ लगभग १ कोटि मानव-शक्ति है। सुरक्षा के समस्त साधन हैं, जल वायु सर्वथा सुखद अनुकूल है। धनधान्य की विपुलता है; स्वस्थ वातावरण है। राष्ट्र-रक्षा की निर्भयता है, स्थल की विशालता है। विकास लिए विस्तृत क्षेत्र है, और ऐतिहासिक एवं सांस्कृ परम्परा इसकी पृष्ठ भूमि में है। यहाँ से चार विभा को सरलता से, सुगमता से, सूत्रबद्ध, व्यवस्थित रखा सकता है। क्याही उत्तम होकि भाषावार प्रान्तों की म करने वाले इस दृष्टि से व्यापक और विशाल रूप से रा की नव-रचना के लिए शान्ति और गम्भीरता से विच करें। कानों में भनक आई है कि राजस्थान की ओर गुजरात, राजस्थान, मध्य-भारत, कच्छ, सौराष्ट्र इन प प्रदेशों को जुड़ाकर एक पश्चिम-भारतीय भाग बनाने कल्पना उठी है, उस पर आगरा के अधिवेशन-काल में कु लोगों ने उड़ती चर्चा भी की है। जहाँ तक सांस्कृति समता का खयाल है, ये पहिले भी एक दूसरे के निकट सम्बन्धित रहे हैं। इतिहास की कई घटनाएँ इन्हें आपस में जुड़ाती, और विभक्त बनाती रही हैं, और शासन सुरक्षा की दृष्टि से भी उनमें क्षमता और व्यवस्था में समान-हित संलग्न हो सकते हैं। आर्थिक-व्यापारिक औद्योगिक सम्बन्ध आज भी इनमें समान है। इन भागों अपने बन्दरगाह, अपने उद्योग विकास की स्वतंत्र विशा सुविधा भी है। ऐसी हालत में यह एकता तो प्र भव जैसी नहीं, परन्तु इसे पश्चिम भारत का रूप सीम शुद्ध कैसे सुलभ होगा। राजस्थान तो उत्तरी भारत विस्तृत रहता है। इसलिए यदि ठीक भौगोलिक दृष्टि सीमा-शुद्ध पूर्व, पश्चिम-उत्तर-दक्षिण भागों को जुड़ा दिशा के अनुसार एक बना दिए जाएँ, और स्वतन्त्र वि जाएँ तो अन्य अनेक उलझनें समाप्त हो सकती हैं, कि उनको सुव्यस्थितत सु-सूत्र ग्रथित रखने के लिए म भारत को केन्द्रीय-स्थान मिले बिना गति नहीं है।

कल्याणकारी साहित्य

साहित्य समाज निर्माण करने वाला है, मानव समाज में उचित और अपेक्षित करने की उसमें सामर्थ्य है, आचार्य बिनोबा ने एक बार साहित्य के विषय में है· 'जो समाज को शुद्ध करता है, और समाज का कल्या करता है- वह साहित्य है।' परंतु आज के साहित्य में क्षमता है ? हम निरंतर साहित्य का निर्माण करते प्रतिदिन प्रकाशन होता है, प्रतिवर्ष हजारों ग्रंथ सा

के नाम पर निकलते हैं, बिकते हैं, पर क्या उनमें से अधिकाँश समाज के लिए कल्याणकारी होते हैं ? इसके विपरीत समाज को अंधःकार में लेजाने वाले, पतन की ओर पहुंचाने वाले, विपथगामी साहित्य की रचना ही होती है। हम वादों की वकालत करने को विकृत वस्तु का विकास करते हैं, समाज की निर्बलता को पहचान कर उसे प्रेरित करने का सामान सुलभ बनाते हैं, और उसे साहित्य समझना-समझाना चाहते हैं। आचार्य अत्रे जैसे सफल साहित्यकार, और अनुभवी कवि की मान्यता है कि साहित्य के स्वरूप के विषय में अब तक हमारे मस्तिष्क में उलझन ही बनी हुई है, क्योंकि साहित्य सम्बन्धी विचार हमने ऊपर ही ऊपर किया है। साहित्य शब्दों का शास्त्र है, रस निर्माण करने की यह योजना है, लेखक का यह एक तंत्र है, यही अधिकांश लोगों को समझ होगई है, और साहित्य के सम्बन्ध में जो वाद विवाद होते हैं वे सब इसी प्रकार बाह्य स्वरूप को लेकर ही होते हैं, साहित्य को इसी में सीमित समझलिया जाता हैं, निर्माता यह नहीं सोचता कि उन में उसका दृष्टिकोण (ध्येय) क्या है ? विचार किस प्रकार का है ? साहित्य के अंतरंग पर दुर्लक्ष्य कर हम बहिरंग पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित कर देते हैं, साहित्य की आत्मा का आकलन हम नहीं करना चाहते। जरा हम पुरातन साहित्य की ओर देखें हजारों वर्षों से वह जीवित चला आरहा है। वह केवल शब्द या रचना को लेकर नहीं, उसके विचारों का मूल्य रहा है। यद्यपि उसमें शब्द और रचना की उपेक्षा नहीं हुई है, तथापि वह साहित्यका महत्व पूर्ण-भाग नहीं बना था, उस साहित्य द्वारा उन लोगों ने अपने जीवन का साक्षात्कार प्रकट किया है। इसी कारण उनका साहित्य अमर बन गया है।

आचार्य अत्रे ने अपने अनुभव के आधार पर सत्य प्रकट करते हुए बतलाया है कि "अलौकिक साहित्य का निर्माण पुराने जमाने में ही हुआ है।" ज्ञान के अत्युन्नत शिखर पर उस काल के बुद्धिजीवी लोग चढ चुके थे। आज के युग में मानवीय बुद्धि के (और नहीं तो) साहित्य में तो अधःपतन ही हुआ प्रतीत होता है। पहिले के साहित्य निर्माताओं ने मानवी जीवन के रहस्यों को शोध कर निकालने का कितना प्रचण्ड प्रयास किया है। जीवन को भव्य, और उदात्त स्वरूप देने के लिए कैसी अप्रतिम कल्पनाएं निर्मित की ! उज्वल और अलौकिक मूल्य एवं गुणों को प्रगति देने के लिए उन्होंने कैसे आकाश, और पाताल को एक बनाया ? महाभारत, और रामायण मानवीय-प्रतिभा तथा बुद्धि के प्रचण्ड चमत्कार ही तो हैं। इन काव्यों में आदर्श-मानव का चरित्र, और आदर्श जीवन का तत्वज्ञान ही तो भरा हुआ है।। दूसरी कोई चीज इनमें मिल नहीं सकती। शायद गीता को साहित्य बतलाना लोगों को रुचिकर न हो, परन्तु भगवान् का गायन किया हुआ यह काव्य ही तो है, भारतीय साहित्य की यह गंगा ही है। क्योंकि गीता ने यह चिरंतन संदेश दिया है कि सार्वभौतिक कल्याण के लिए आत्मोपम्य बुद्धि के साथ मानव व्यवहार करे। आज प्रतिदिन हजारों कविताएं लिखी जाती हैं और कौनसा ऐसा पत्र है जिसमें दैनिक कविता प्रकाशन न होता हो, परन्तु इनका मूल्य मानव के मन पर कितना होता है, कितने क्षण उनका प्रभाव रहता है ? किन्तु कबीरदास को लीजिए जिसने कभी कागज कलम, और स्याही को स्पर्श भी नहीं किया, परन्तु कबीर के जीवित काव्य को सदियों बीत जाने पर भी जनता ने अपना कण्ठ हार बना रखा है। तुलसी, सूर, मीरा को ही लीजिए, क्या किसी प्रेरणा से, या कल्दार की कामना से उन्होंने काव्य रचना की है ? 'आत्मानुभूति', और 'स्वान्तः सुखाय' की हुई उनकी रचना लाखों को स्वांतः सुख प्रदान कर देने वाली बनी हुई है। इसीलिए श्री अत्रेजी ने कहा है कि–'साहित्य स्वप्न रंजन या कल्पना बिहार ही नहीं होता आत्मानुभूति के सिवा जीवित साहित्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता।' जो साहित्य जीवित है, आत्मानुभूति से परिप्लुत है वही समाज का कल्याण कर सकता है। वर्षा ऋतु में पैदा होकर दूसरे क्षण मर जाने वाले करोड़ों कीड़ों की तरह रोज रोज पैदा होने वाले साहित्य की स्थिति है।

धर्म-धारणा, भ्रम, और स्वरूप !

धर्म शब्द ने आज के युग में बड़ा भ्रम, और विभिन्न भावना को जन्म दे दिया है। धर्म किसी संकुचित धारणा में सिमटाया नहीं जा सकता, तथापि संकुचित ज्ञान रखने वाले धार्मिकों ने उसे संकीर्णता की सीमा में समाविष्ट

बना दिया है। धर्म की अनेक व्याख्याएं हुई हैं। पण्डितों पुरोहितों ने धर्म को कुछ अलग प्रकार से प्रचारित किया है। धर्म में प्रांतीयता का प्रवेश होगया है। जातीयता उसमें जुड़ा दी गई हैं, उसमें कुछ कर्म बन्धन बंध गए हैं, और अज्ञान ने उन बन्धनों में बंध कर धर्म को भी बांध दिया है। वस्तुतः धर्म की धारणा बहुत विशाल हैं। वह मानव-धर्म, राजधर्म, स्त्री-धर्म आदि अनेकों भेदों में विभक्त होकर भी अपनी धार्मिक-एकता को बराबर बनाए हुए हैं। यूरोप का धर्म यद्यपि शासन के धर्म निरपेक्ष घोषित कर देने पर भी रानी के राज्याभिषेक के समय पोपों के पाश में पड़ा पनपता दीख रहा हैं, परन्तु भारत की धर्म-निरपेक्ष घोषणा इस देश की परम्परा और 'धर्म राज्य' के प्रतिकूल प्रतीत होती है। वस्तुतः मानव-धर्म-कार धर्म को 'धारणात् धर्म' कहते हैं, अशोक-महान जैसे बुद्ध-धर्मावलम्बी भी सर्व धर्म सहिष्णुता में आदर्श बन कर सिद्ध होता है, और उसके वैयक्तिक धर्म पर कोई आपत्ति उपस्थित नहीं होती, पर आज के शिक्षित जनों की एक अज्ञानमूलक यह धारणा हो गई है कि–धर्म ही समाज के ह्रास और अधोगति का कारण बना हुआ है, वह धर्म को भ्रम में उलझाने वाला एक जाल समझता है, परन्तु धर्म विहीन-समाज जीवित नहीं रह सकता क्या मानव धर्म की विशालता को गंभीरता से मनन कर समझने का यत्न किया है? वस्तुतः जो कर्म निष्काम होकर यज्ञ-भावना से किया जाए, और जिस कर्म से जीव जीव में अभेद भावना की वृद्धि हो उसका नाम ही तो 'धर्म' है, धर्म की इस व्याख्या में संकीर्णता को कहां अवकाश रहता है? और इस अभेद-भावना वृद्धि करने वाले धर्म से किसे मतभेद रह सकता है? फिर इस धर्म को समाज के ह्रास का, अधोगति का कारण समझने की भ्रांति क्यों होना चाहिये। जिस धर्म के अंग यह हों कि–पार्थक्य, विषमता, शोषण उत्पीडन, आदि का सतत विरोध करना और सहयोग, सौहार्द, विश्व संस्कृति-एवं ऐक्य-मूलक सदिच्छा के लिए सतत उद्योग करना इसमें भला किसे आपत्ति हो सकती है? कौनसा धर्म इस मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध हो सकता है? तब 'धर्म' शब्द से भडकने-भागने की क्या आवश्यकता है।

'बोए पेड़ बबूल के आम कहां से खाय !'

मा० मुन्शीजी ने कृषि मन्त्री रहने के समय वन म त्सव का आरम्भ किया और उन्होंने अपनी रसीली आं से सारे देश को हरा-भरा बना देने का स्वप्न सोचा, अव ही लोगों ने मुन्शीजी के मत को मान्यता देकर हजारों नहीं, लाखों लता-वृक्षों को सूखी जमीन पर लहरा दिया पता नहीं उन लता गुल्मों में से कितनों ने जीवित ए कर जमीन में जड पकड़ी, और कितने बिना पानी सूख ठूंठ बन गए। परन्तु सभी प्रादेशिक सरकारों ने वृक्षारो पण समारोह मनाया, और केमरे में उनके द्वारा दिए ग फव्वारे की सहस्त्र धारा स्त्रोतस्विनी बनी, प्रकाशित प्रचारित हुई। इन चित्रों को देखकर अवश्य ही जमीन हरी-भरी दिखाई पडी, मुन्शीजी की सूझ के अनुसार आम-अंगूर केले नासपाती-नारियल-नारंगी के नवीन पौधों ने नवजीवन पाया, और उनके साहित्यिक स्वप्न ने [illegible] साकारता साध्य की। कृषि मन्त्री रहते हुए धान्य की तंगी को देखकर उन्होंने एक बार बम्बई में यह सहज सलाह भी दी थी कि लोग अन्न की अपेक्षा फल को आहार पूर्ति का साधन बनायें। कह नहीं सकते कि उनकी प्रेरणा से लाए गए पौधे कितने पनपे, और सफल बने, किन्तु मुन्शीजी का युग मन्त्रालय से समाप्त हुआ, और फल-फूल लता कु की कमनीय-कल्पना भी विलीन होगई। वैसे आम-अंगू अनार के अगणित पेड लगे और भूगर्भ में प्रविष्ट भी हो मानव नें उनका आनन्द उठाया कि नहीं कौन जाने, पर जैसे ही डा० पंजाबराय देशमुख नें इस पद का भार ग्र किया, इस वर्ष चौथा वन महोत्सव उनके समक्ष आ डाक्टर साहब साहित्य रसिक उतने नहीं हैं, जितने व्या हारिक और कृषीजीवी। इसलिए उन्होंने लता-कु आश्रमों की रसमयी कला-कल्पना को छोड़ खेत-खलिहा की उपयोगिता और नाइट्रोजन (नेत्रोजन) की आवश्य को अनुभव कर नई उद्घोषणा की है कि नवीन-वन-म त्सव में इस बार आम-इमली को छोड़ बागों में बबूल जायें। इनके सुलभ बीजों को बाग में बखेरा जावे। बिना पानी के पनप भी सकते हैं, और अपने कंटक कलेवर से स्वयं-सुरक्षित भी रह सकते हैं। काश सूख तो जलाने के काम में भी सहज आसकते हैं, अब बागों

आवश्यकता नहीं। अनार अनावश्यक हैं, अन्न अधिक उपज ही रहा है, इसलिए फलों की फसल भी उतनी जरूरी नहीं रही। और लता-कुंजों की जगह ही कहां रहती है जब सारी जमीन 'अधिक अन्न उपजाओ' में उपयोगी हो गई। चरागाहों के लिए भी चंगुल भर जमीन न बच पाई तो भला इन आश्रमों के लता-गुल्मों की क्या गति, जिनका स्वप्न मुन्शीजी भृगु-भारद्वाज के युग में रहकर करते रहे। फिर फूलों की आवश्यकता भी केवल मजारों पर चढ़ाने के लिए ही तो रह गई है, धर्म निरपेक्ष शासन में किसी धार्मिक-विधि को तो गुंजाईश ही क्यों रहने लगी, सो उतने फूल तो मिनिस्टरों के गमलों में और गलियों में ही उग सकते हैं। रहे बेचारे बेंत बांस बंबूल, इन्हें किसी सूझ-समझ के आदमी को सहज बोते नहीं देखा। ये आदिवासियों की तरह उपेक्षित ही रहे हैं, इस ओर डॉ. देशमुख का ध्यान गया, और उन्होंने देश का ध्यान दिलवाया, यह वास्तव में बड़े महत्व की बात है। दुधारू और उपयोगी जीवों के जीवन, और रक्षा के लिए तो सभी यत्नशील हैं, किन्तु जिन ऊँटों-बकरियों की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता, उनके पोषण की ओर ध्यान दे कर बँबूल के पौधों को पनपाने का श्रेय डॉ. देशमुख को ही देना होगा। इन उपेक्षित-वृक्षों को वन-महोत्सव में स्थान देकर डॉ. देशमुख ने उपेक्षित जन जाति की तरह ही उपेक्षित वृक्ष जाति के उद्धार का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। अज्ञान के अन्धकारावृत युग में गांव के कुछ भोले भाले लोग बबूल बो लिया करते थे। और उनसे ही आम के पाने की आशा बांधा करते थे, समझदार लोग उन्हें गंवार समझकर यह कविता कहते थे कि—

"बोए पेड़ बबूलके,
आम कहां से होय।"

फलतः कोई समझदार बबूल का महत्व मानने को तैय्यार नहीं होते थे। आज डॉ. देशमुख की कृपा से बबूल को राष्ट्रीय और राजकीय महत्व प्राप्त होगया है। और कोई आश्चर्य नहीं कि यह बबूल एक रोज देव-श्रेणी में पहुँच कर 'वृक्षराज' की उपाधि से अलंकृत बन जाए! लोग-बाग अज्ञता के कारण बबूल में भूत प्रेत का आवास समझ उसे उपेक्षित बनाए हुए थे। स्वयं तुलसीदासजी को बबूल से ही प्रेत का साक्षात्कार हुआ था, परन्तु अब यह कल्पना सरकार की कृपा से सहज मिथ्या बनजाएगी। और बँबूल राष्ट्र का सम्मानित वृक्ष बन जाएगा। किसी के घर पर या आंगन में बँबूल का उगना अशुभ समझा जाता था। इस वैज्ञानिक और व्यावहारिक युग में इस कलंक से भी बबूल मुक्त बनजाएगा। अब से बबूल केवल बकरियों का भोजन बनकर ही खाई-खन्दकों की एकान्त जीवनी नहीं बिताएगा। बबूल के इस सौभाग्य पर आम और इमली को भी ईर्षा होने लग जाएगी। इस सुदिन को पाने के लिए उसकी समस्त-जाति (जो कटंक-कुल की है) डॉ. देशमुख की चिर-ऋणी ही बनी रहेगी। उसके अंग शूल, फूल बनकर जन-पथ को प्रफुल्लित बनाते रहेंगें। जय देशमुख की! 'जय-जय बेंत-बबूल-बांस की!!

नवीन मूर्ख-लक्षण

महाराष्ट्र के-राजनीतिक-संत, समर्थ रामदास स्वामी ने मूर्खों के बहुत से लक्षण बतलाए हैं, उनके 'दासबोध' में मूर्ख-लक्षण का एक अध्याय ही है। पर वह जमाने की बात हो गई। आज यदि मूर्खों के लक्षणों की खोज की जाए तो और भी अनेक लक्षण सुलभ हो सकते हैं, नीति शास्त्र में एक जगह बतलाया है कि जहां अबला—प्रबला बन जाए, राजा बालक हो, और निरक्षर-मन्त्री हो वहां धन की आशा तो ठीक जीवन की आशा भी दुर्लभ समझना चाहिए। परन्तु आज स्वतन्त्र-भारत में राजा नामक प्राणी तो संग्रहालय की वस्तु बन गया है। हां, अबलाएँ प्रबल होती जारही हैं। और मन्त्री तो प्रायः देश में निरक्षर ही नियुक्त किए जाते हैं, इसलिए जीवन का और जीविका का प्रश्न अवश्य दुर्लभ बनता जारहा है। फिर भी साक्षरता आन्दोलन बढ़ता जारहा है, किन्तु जनता का यही कहना है कि आज 'मूर्ख' बन कर काम करने में ही लाभ है। अधिकांश पार्लमेंट के सदस्य इसके प्रमाण में प्रस्तुत किये जासकते हैं जो मूर्खता के महत्व की साक्षी देसकते हैं। ऐसी अवस्था में मूर्खताके नवीन लक्षणों को संगृहीत कियेजाने की आवश्यकता है। हमारे प्रधान मन्त्री मा० नेहरूजी ने आगरा के महासभावाले अधिवेशन के अवसर पर कुछ नए मूर्ख-लक्षण बतलाए हैं। मराठी सहयोगी 'किर्लोस्कर' ने

उन लक्षणों को आसपास लाल रेखा से अंकित कर प्रकाशित किया है। पं. नेहरूजी ने जो नवीन मूर्ख-लक्षण बतलाए हैं, वे इस प्रकार हैं:—

१ शासन पर धौंस जमाने के लिए जंजीर खींचकर रेलों को रोकना। इमारतों को आग लगाना।

२ सरकार से अपनी माँगें मनवाने के लिये अन्न सत्याग्रह करना।

३ समाज की प्रगति रोकने वाली वे रीति-नीति जो अनेक सदियों की परम्परा से कितनी ही पुरानी पड़गई हो, उनसे चिपट कर रहना।

४ दुनियाँ द्रुतगति से बढ़ती जारही है, किन्तु भूतकाल की ओर ही निगाह लगाए जीवित रहना।

५ देश में प्रत्येक नागरिकों को काम धन्दे मिलने की कोशिश करने के बिना ही लोक-कल्याणकारी राज्य स्थापित होगया है, यह समझ लेना।

पं. नेहरू जी ने उक्त शब्दों में नवीन मूर्ख-लक्षण निर्दिष्ट किए हैं। परन्तु इन लक्षणों में से एक लक्षण और शेष रह जाता है। जो पण्डितजी ने मेरठ की सभा में सूचित किया था, वह छठा लक्षण यह है:—

६ जो लोग ज्योतिषियों के पास जाते हैं वे मूर्ख हैं।

इस प्रकार हमारे प्रधानामात्य ने पिछली मूर्ख-लक्षणावलि में नये 'षट्-सूत्री' 'मूर्ख-लक्षण' जुड़ा दिए हैं। यद्यपि ये लक्षण अज्ञ (मूर्ख) जनों से उपलब्ध होते हैं, और इनका लाभ-सज्ञान को सुलभ होना चाहिए फिर भी राजर्षि भर्तृहरि का कहना है कि अज्ञ-जनों को सरलता से समझाया जा सकता है, सवाल ज्ञान-लव-दुर्विदग्धों का कठिन होता है।

अज्ञः सुखमाराध्य सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः
ज्ञान-लव दुर्विदग्धम् ब्रह्माऽपि तंनरं न रंजयति

जहां ब्रह्मा भी हार मान जाता है, वहां लक्षणों का कोई भी 'कोष' बना कर रख दिया जाए तो कोई लाभ नहीं। जब हमारा शासन मूर्खों को प्रोत्साहन देकर उन्हें महत्व देने की नीति निश्चित बनाए हुए है, वहां लक्षणों की लिस्ट बढ़ा कर वह किसे लज्जित करना चाहता है?

साहसे श्री (ः) प्रति वसति !

साहस में लक्ष्मी का वास होता है, 'यह धारणा व्यापारी समाज की है, वह पैसे के पीछे इज्जत को सौदे पर चढ़ाकर साहस कर बैठता है, और दौलत हाथ न आने पर दीवाला निकाल कर नई दूकान कर लेता है, और इसे वह 'साहस का-सौदा' कहता है। 'साहस' करना शुभ नहीं माना जाता, नीति कथाओं में साहस करने की मनाही की गई है, साहस की परिभाषा भी ठीक नहीं बतलाई गई है, तथापि साहसी व्यक्ति जब उचित साहस कर बैठता है तब उसकी प्रशंसा ही की जाती है किसी के मकान में आग लगी हो, और कोई प्राणी अन्दर रह गया हो तब उसके बचाकर निकाल लाने के काम को साहस पूर्ण कहा जाता है, हालांकि वह साहस प्राणों के साथ खिलवाड़ तो हो ही जाता है, पानी में डूबते हुये को बचाना भी साहस है, शस्त्र धारी उन्मत्त से बचाने में भी साहस की आवश्यकता होती है, प्राणों के बचाने के लिये पानी में कूद कर पेड, दीवार से फांदकर साहस के सिवा सुरक्षा संभव नहीं। पुलिस, मिलिट्री के जनों को साहस का ही सामना करना पड़ता है, इसी तरह एवरेस्ट पर आरोहण करना भी कम साहस का काम नहीं था, और इसी लिये भारत सरकार ने जो वीर पदक साहसी तेनसिंह को प्रदान किया, उस पर 'साहसे श्री प्रतिवसति' शब्द अंकित किया है अवश्य इस 'साहस, शब्द में नीति की कथित वह परिभाषा नहीं ली गई है, जो साहस को क्रूरता में परिगणित करती है, यहां साहस में शौर्य, को स्वीकार किया गया है परन्तु पदक पर जो वाक्य अंकित किया गया है-(साहसे श्री प्रति वसति) वह भ्रमोत्पादक अवश्य है, यह वाक्य संस्कृत के नाटक मृच्छकटिक का है, और इसका उपयोग नाटक के प्रसिद्ध चोर शार्विलक ने उस समय किया है जब वह चोरी करके गहने से भरा पात्र उठा लेता है, इस प्रकार यह साहस से श्री (लक्ष्मी) प्राप्त कर लेता है। अवश्य ही यह साहस अनुचित था, और उस अनुचित के समर्थन संतोष में उस उक्त वाक्य का उपयोग किया था, परन्तु तेनसिंह के पद पर यही वाक्य उसके 'सत् साहस' का प्रतीक बन अंकित होता है, हां इस वाक्य में भारत सरकार की ए भयंकर भूल रह गई है, जो ऐसे राष्ट्र के प्रतीक के लि

शोभाजनक नहीं है, इस वाक्य में 'श्री' के समक्ष विसर्ग की आवश्यकता थी, विसर्ग के रह जाने से यह उच्च संस्कृत वाक्य अशुद्ध रह गया है, वह इस प्रकार होना चाहिये था

'साहसे श्रीः प्रतिवसति'

साहस के भी प्रकार हैं, साहस, दुःसाहस, अतिसाहस, आदि, परन्तु यहां साहस शब्द का जो अर्थ श्री को लेकर अंग्रेजी वाक्य में पदक पर अंकित हुआ है, वह 'गौरव' (ग्लोरी) है, और वह उचित ही है, फिर भी उस पर जो 'विसर्ग' की भूल रह गई है, वह भारत जैसे महाराष्ट्र के लिये तुरन्त सुधार देने योग्य हैं।

रूसी परम्परा का पुनरावर्तन।

रूस में जिस रोज मो. मालनकोव का महत्व स्थापित हुआ, उसी रोज यह आशंका उपस्थित हुई थी कि मोलोटोव, और बेरिया जैसे बुजुर्गों के रहते हुए युवक मोलनकोव का नेतृत्व अवश्य नया रंग लाएगा, नेतृत्व के आरंभ में ही तथा कथित षड्यन्त्रकारी डॉक्टरों को निर्दोष बनाकर छोड़ा जाना शांति के लिए बाहर प्रोत्साहन देना, और सक्रिय कदम उठाना एक बार रूसी-राजनीति में परिवर्तन का सूचक अवश्य बन गया, किन्तु विदेशियों ने बेरिया के मतभेद की गंध पा ली थी, जो थोड़े ही समय बाद जाकर सही साबित हो गई। सहसा बेरिया की बर्खास्तगी और बंदी बनाने की बात प्रकाश में आई, और राजनीति में 'अणुबम्' जैसा विस्फोट हो गया, जो बेरिया लगातार २० वर्ष पर्यन्त स्टेलिन का सहकारी विश्वास-भाजन और साम्यवाद का स्तंभ माना जाता था, वह नये नेतृत्व में साम्राज्यवाद का समर्थक और देशद्रोही घोषित किया जाता है, और बंदी बना कर सीखचों में बन्द कर दिया जाता है, यह विस्मय का विषय ही है। परंतु राजनीति में नेतृत्व परिवर्तन की यह परम्परा रही है। स्टेलिन को भी ट्राटस्की जैसी शक्ति से टकराना पड़ा था, और उसके अनेक सहयोगियों को मौत के घाट उतार देना पड़ा था। आज मालनकोव को बेरिया के समर्थकों के साथ वही व्यवहार करना पड़े तो आश्चर्य का कारण नहीं। यह रूस की राजनीति परम्परा का पुनरावर्तन-प्रतीक ही है।

कोरिया में युद्ध विराम-संधि!

लगातार ३ वर्ष पर्यंत मानव-रक्त की प्रवाहिनी बहाकर, तथा लगभग १ करोड़ जनों को गृह हीन, निराश्रित कर, कोरिया ने बड़ी कठिनाई के साथ, प्रे० सिंगमनरी के द्वारा निरन्तर रोड़े अटकाते रहने पर भी युद्ध विराम-संधी को साध्य कर लिया, यह वास्तव में संतोष की बात है। इस समर में अमेरिका ने करोड़ों की निधि कौड़ी के मोल बहाई है। रूस ने चीन के कन्धे पर बंदूक रख कर लाखों नर नारियों की निर्मम हत्या की है। सरकारी सूत्रों से कथित २४ लाख जनों को जान से हाथ धोना पड़ा है और धंदे-रोजगार घरबार से विहीन हो जाने वालों की संख्या अत्यन्त विशाल है। इस सर्वनाशकारी सीमित समर का-चाहे देरी से ही क्यों न हो-समाप्त हो जाना स्वाभाविक संतोषजनक हो जाता है। किन्तु सिंगमनरी की सुलगती हुई ज्वाला इससे शमन हो जाती है ? उत्तर और दक्षिण कोरिया के बीच पड़ी हुई भीषण दरार दब जाती है ?

अवश्य ही निरन्तर चलने वाला तात्कालिक रक्तपात बंद हो गया। सेनाएँ समर भूमि से १५० मील दूरी पर खिसक गई, किंतु उत्तर-कोरिया पर कम्युनिष्टों का वर्चस्व बदस्तूर बना हुआ है, कोरिया की आत्मा दो भागों में विभक्त बनी हुई है, अवश्य ही यह 'युद्ध-विराम' हैं, युद्धांत नहीं। पता नहीं यह 'विराम' -चिन्ह किसी रोज सहज अदृश्य हो जावे और 'संधि समाप्त हो कर सुप्त ज्वालामुखी को भड़का देने में सहायक बन जावे। आज क्षण भर ही सही, नरमेध निवारण पर, कंकालों की धरणी कोरिया के युद्ध विराम पर, आराम क्यों न मनावें ?

कलाकार– मुंशीजी की सृजन प्रेरणा

"मेरी अवस्था कुछ भिन्न है। मुझे अकस्मात् आकर्षण अनुभव होते हैं। जिन मित्रों से मैं मिलता हूं, जो पुस्तकें मैं पढ़ता हूं, जो घटनायें मेरे साथ घटित होती हैं, और तो और जिस पर्वत–शिखर की मैंने यात्रा की है या जिस चांदनी का मैंने रस-पान किया है, उन सबके साथ मैं एक खास रिश्ता जोड़ लेता हूं। तब एक अस्पष्टसी इच्छा

मुझ पर अधिकार कर लेती है, निज के व्यक्तित्व-सम्बन्ध की एक अद्भुत भावना मेरे जीवन में आती है और उसके बाद एक सृजनात्मक प्रवृत्ति जागती है ।

दुर्भाग्यवश मुझे कोई गुरु नहीं मिला, शायद मैं होनहार शिष्य न होऊं । मेरे पथ प्रदर्शक रहे हैं मेरे अपने अनुभव, इस विषय की पुस्तकों का अध्ययन, गांधीजी के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क, जिससे मुझे पता लगता था कि आत्मा सम्बन्धी मामलों में गांधीजी की प्रतिक्रिया क्या होती थी, गीता और योगसूत्र का लगातार स्वाध्याय, एवं कई महत्वपूर्ण निर्णयों में पथ प्रदर्शन करता हुआ एक दिव्य व्यक्तित्व जिसकी कभी-कभी अस्पष्ट झांकी मिलती रहती थी ।

साहित्यिक कृतियां लिखते हुये यथार्थ सृजनात्मक प्रयास की उपलब्धि के समय भी मुझे विशेष अनुभूति होती है । पहले मेरा मन किसी पात्र या उसकी स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करता है, उसके बाद विचार, भाव और इच्छा उसके साथ एकाकार हो जाते हैं । तदनन्तर सृजन पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है । फल हमेशा एक अप्रत्याशित उपलब्धि होती है, एक संतुष्टिदायक सृजन, जिससे कि मैं अपने आपको सर्वथा भिन्न, पहले से अधिक उत्कृष्ट और अपने तई अपने आपको और अधिक निकट पाता हूं ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि गहन इच्छा और अनवरत ध्यान मुझे सृजन की मनोदशा में खींच ले जाते हैं और तब शब्दों के माध्यम से एक जीवित पात्र या मनोरंजक स्थिति का चित्रण हो जाता है । कभी-कभी साहित्यिक कार्यकलाप से सर्वथा पृथक इसी प्रकार एक अनुभूति और न रुकनेवाली मांग आ उपस्थित होती है और उसे या तो स्वीकार करना पड़ता है या उसका आदेश-पालन करना पड़ता है, इसके सिवाय और कोई चारा नहीं होता ।

मैं इस प्रकार की अनुभूतियों को प्रायः अपने नाजुक स्वभाव या अपनी प्रारम्भिक परिस्थितियों से उत्पन्न समझता रहा हूं । इस लोक को या इस लोक की बातों को त्याग देने का मुझे प्रलोभन नहीं हुआ, मैंने महसूस किया कि यह दैनिक जीवन ही है जिसमें आत्मा की झांकी मिल सकती है ।

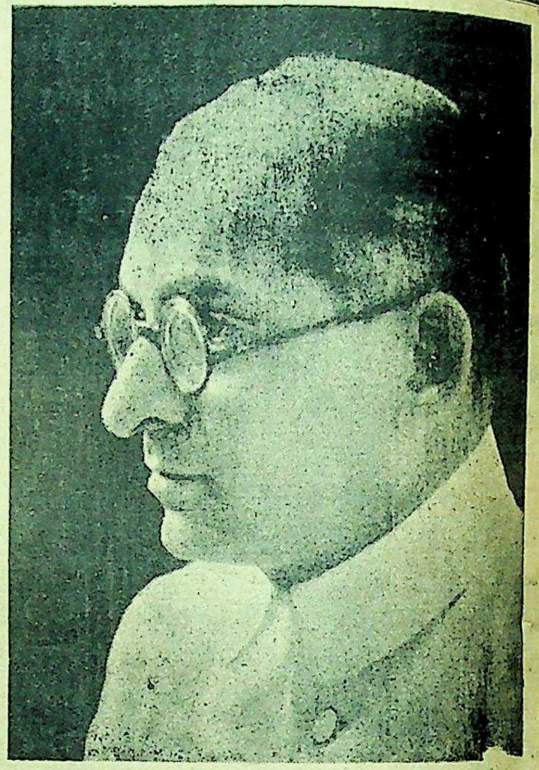

ऐसी ही एक अनुभूति प्रायशः इस प्रकार होती है। कोई ख्याल मुझे जकड़ लेता है और मुझ पर हावी हो जाता हैं । वह खयाल मेरी नस-नस से अपनी अभिव्यक्ति के लिये आतुर हो उठता है, मेरा 'स्व' भी उसी ख्याल में लीन हो जाता हैं । तब वह ज्वलन्त विचार शब्दों का रूप धारण करता है, प्रायः उससे जीवन-प्रवाह की दिशा ही बदल जाती है, कभी-कभी शब्दों में प्रकट की हुई मूर्ति जीवन में सच्ची उतरती है—चाहे वह कई सालों बाद ही क्यों न उतरे ।

मुझे अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों से एक और प्रकार की अनुभूति भी होती रही है । किसी विशिष्ट व्यक्तित्व के आकस्मिक विकास के पश्चात् अत्यन्त थकान, हृदय के आवेगों का तनाव तथा पराजय की प्रबल प्रवृत्ति समुद्भूत हो उठती है । यह व्यक्तित्व किसी अज्ञात स्थान से उठता है, मुझ पर आधिपत्य जमा लेता हैं और अपने निर्णयों को मुझसे मनवाता हैं और मुझे उसका आदेश पालन करना पड़ता हैं ।

मुझ में आवेगों के ज्वार आया करते हैं । तब मेरे चेतन मन को चुनौती देती हुई कोई वस्तु मुझ पर

जाती है। और इस प्रकार पारलौकिक शक्ति की एक अस्पष्ट झलक को मैं पकड़ पाता हूं।

इन अनुभूतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि जो जीवन मैं जीता चला आया हूं उससे किसी खाड़ी ने मुझे जुदा कर दिया है। मैं सामान्यतया दो लोकों में विचरण करता हूं। जब ये दोनों मिलते हैं तो उनकी छाप मेरे सामान्य जीवन को जकड़ लेती है। कुछ समय के लिए वे दोनों लोक एक हो जाते हैं, और फिर जुदा हो जाते हैं, किन्तु उनकी छाप मेरे जीवन को आकार और अभिव्यक्ति देती रहती है। (मा० के० एम. मुंशीजी के पत्र साहित्य से)

‘इन्हें कच्चा खाइए !’ एक सरकारी-सूझ !

भारत सरकार के सूचना विभाग ने स्वास्थ्य-शिक्षा लेख-माला पत्रों में वितरित करना आरंभ किया है, इसके दो लेख हमारे समक्ष आगये हैं। इनमें प्रथम का शीर्षक है "इन्हें कच्चा खाईए !" इस शीर्षक को पढ़ते ही हमारे मन में अनेक आशंकाएं उत्पन्न हुईं कि आखिर सूचना-विभाग किन्हें ‘कच्चा खाने’ की सलाह देता है? पर यह शंका हमारी तब हट सकी जब संपूर्ण लेख पढ़ गए। लेख के शीर्षक ने जैसा हमें भ्रमित हो जाने का अवसर दिया, उससे कम भ्रम उस सलाह से नहीं हुआ जो स्वास्थ्य के लिए सरकारी सूचना विभाग ने तर्क दिए हैं। आज-कल जिस तरह योजनाओं की बाढ़ आजाने के कारण बहुत लोग इस काल को योजना युग ही कहने लगे हैं, उसी तरह निसर्ग निर्मित चीजों को उसी रूप में स्वीकार करने की हवा चल पड़ी है, और उसे ‘विटामिन् युग’ कहा जाए तो हर्ज नहीं। अनेक भोले, और और प्रयोगवादी जन तो इस युग प्रेरणा से प्रेरित हो अनेक पदार्थों को कच्चा चबाने लगे थे, कईयों ने कच्चे-अनाजों को निगल कर अपनी आंतों को उलझन में डाल दिया, पेट की पीड़ा से परेशान होकर प्रकृति से पनाह मांगली, किन्तु पेट को प्रयोग-शाला बना कर छोड़ा। इसी तरह सरकारी सूचना विभाग ने हाल में ‘भोजन को नैसर्गिक रूप में’ खाने को जीवनदायी बतलाने का प्रयास किया है। उनकी सलाह है कि पकाने से भोजन के अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व विटामिन और खनिज कुछ न कुछ कम हो जाते हैं। उन्होंने उदाहरण के लिए ‘पत्ते गोभी’ को पेश किया है। पता नहीं पत्तागोभी शाक-पात की तरह किस प्रकार, और कितनी तादाद में खाई भी जा सकती है?

असली रूप में खाद्य वस्तुओं के लाभ-गिनाते हुए लेख में लिखा गया है कि "तरकारियों को छीलने काटने और फिर पकाने के लिए घन्टों आग के पास बैठ कर तपने में समय और शक्ति का अपव्यय होता है, और इंधन पर जो खर्च होता है वह अलग!" परंतु तरकारियों को धोने के लिए पोटेशियम् परमेंगनेट की सलाह है, जो शायद खर्च की अपेक्षा नहीं रखती होगी? क्या आलू गुईया तुरंया, करेले भी कच्चे खाए जा सकते हैं? कुछ चीजें जिन्हें सूचना विभाग ने नाम लेकर गिनवाया है, वे छोटे बच्चे से लेकर समझदार भी प्रायः कच्ची चबालेते हैं, उनमें वे किसी की सलाह आवश्यकता नहीं समझते। पर भारतीय जलवायु, जमीन की स्थिति आदि को ध्यान में रखकर ही यहां विटामिन-युग से पूर्व जो उबालने की प्रथा है, वह उसके बाह्य तत्वों के विषाक्त प्रभावों से बचने की दृष्टि से ही है, और फिर सात्विक स्वरूप में सुस्वादु बनाने में रोचकता का ध्यान रखा गया है। वह रोचकता भी केवल स्वाद तक सीमित नहीं, उसमें पड़ने वाले पदार्थ भी स्वास्थ्य, और उस पदार्थ के पाचन की प्रक्रिया से सम्बन्धित ही होते हैं, इनके तथ्य से परिचित होकर ही विटामिन के प्रवाह में बहने की सम्मति समुचित हो सकती है। यह सच है कि बहुत तले हुए पदार्थ और बहुत तेज मसाले से मिले खाद्य स्वास्थ्य के लिए अधिक हितकर नहीं होते किन्तु अनेक पदार्थों को बिना पकाए या उबाले उनके दूषित-विकार या स्वभाव से विरहित नहीं किया जा सकता। ‘विटामिन’ के प्रवाह में बहकर कच्ची ककड़ी का अधिक मात्रा में सेवन पित्ताशय को कुपित कर हानि ही बढ़ा देगा, और गाजर-मूली भी बिना समझे पेट में शूल उठाए बिना नहीं छोड़ेगी। उनके उबालने से ही उनका यह दोष निवृत्त किया जा सकता है ऐसी अनेक चीजें हैं, जिन्हें उबालकर ही उनके विकार से विरहित बनाया जा सकता है, और सेवन स्वास्थ्यमय हो सकता है। हां,

कुछ मात्रा में कच्ची चीजें खाई भी जाती हैं, पर लहसन तथा प्याज के जैसी कच्ची चीजों की कच्ची मात्रा परिमित ही उचित होती है। अवश्यही ये पोषक स्वास्थ्यप्रद भी हैं, किन्तु जहां 'धर्म' के रूप में इन्हें वर्ज्य-घोषित किया है वहां उसके पीछे उनकी गन्ध नहीं उन्मादकता है। और लहसन की उष्णता, सात्विक-भोजन और तामसिक भोजन के रूप में आयुर्वेद ने विभक्त रूप बतलाकर लहसुन प्याज को तामसिक रूप में रखा है। वह गलत नहीं है, जहां उन्हें तामसिक सूचित किया है, वहां उनके गुणों की गाथा भी कम नहीं गाई है, केवल सात्विक भोजन में ही उन्हें वर्ज्य बतलाया है, और उस दृष्टि से 'धर्म' में दाखिल कर सही समझाया है। जहां चातुर्मास में हरी सब्जियों को मना किया है वहां 'धर्म' स्वास्थ्य से प्रतिकूल नहीं जाता, धर्म के अन्दर अनेक ऐसी वस्तुएं हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वथा सानुकूल एवं वैज्ञानिक है, पर धर्म प्रधानता के कारण उन पर उचित प्रतिबंध लगाया गया है। धर्म के इन तत्वों और तथ्यों को सही समझने का कहां प्रयास हुआ है। निसर्ग की उत्पन्न की हुई सभी वस्तुओं को उसी रूप में स्वीकार करलें तो बड़ी विचित्र हालत हो जायगी। मानव को स्वयं निसर्ग ने जिस रूप में उत्पन्न किया वह यदि वैसा ही रहे तो जग की बहुत सी कठिनाइयां हल हो जायगी, जिस तरह निसर्ग दत्त अनेक पदार्थों को स्थ्य-शिक्षा' में कच्चे खाने की सलाह है और आग से तपने, घण्टों समय व्यतीत करने से बचा बात बतलाई जाती है, उसी तरह निसर्ग से मानव अपनी नैसर्गिक-स्थिति में ही रहने लगे तो प्रदत्त जलवायु-वातावरण के सभी सुखों को

रूसी कलाकार द्वारा अङ्कित भारतीय-चित्र

सरलता से प्राप्त रह सकता है। कपड़े-बनवाने, के खर्च से बच जाए प्रकृति के अनेक उप से वह इन आवरणों कारण वंचित रह है। खर्च और स भी व्यर्थ नष्ट कर है, जिस तरह मा अपने शरीर के नैसर्गिक - नियमों अवहेलना करता है, तरह उसके खाद्य, में भी उसने संस्कार किए हैं। और वे तरह स्वाभाविक हो हैं! जिस तरह संस जीवन के लिए आ श्यक हैं। उसी पदार्थों के लिये आवश्यक है। निस निर्मित पदार्थों का गिक रूप में उप किया जाना स्वाभावि हो तो पाक-निर्माण का कभी अस्तित्व नहीं हो पाता। निसर्ग को छोड़-पकाने-बकाने-तपने-तपाने की उलझन पड़ता, निसर्ग के साथ ही समरस रहकर सादे जीवन मानता, किंतु उसके जीवन में संस्कार ने सभी समाविष्ट हो उसे सुसंस्कृत बनाया है। उसके संस्कार पर आधारित हैं, निसर्ग की

साधनों का संस्कार युक्त ही उपयोग करता है, और वह उचित भी है। निसर्ग निर्मित-कच्चे-कपास का कम महत्व नहीं होता पर उसके संस्कार से ही वस्त्र बना कर मानव समाधान अनुभव करता है। उपयोगिता स्वीकार करता है। निसर्ग से संसर्ग मर्यादित कर मानव ने अपनी स्थिति मर्यादित बनाली है, और यही कारण है कि वह निसर्ग प्रदत्त उपहारों को भी उसी मर्यादित मात्रा में उपयोगी बनाकर ग्रहण कर सकता है, न वह नैसर्गिक रूप में रहा है, न वह मूल-नैसर्गिक साधनों के साथ रह सकता है। अतः उसे हर स्थिति में 'संस्कार पर समाश्रित हो जाना पड़ता है, ऐसी हालत में यदि पानी में क्लोरिन और पोटाशियम् प्रयुक्त करे और खाने में पकाने का प्रवेश करे तो अस्वाभाविक नहीं।

कवि खबरदार का अवसान !

श्री० अरदेशरजी फ्रामजी खबरदार गुजरात के प्रथम श्रेणी के पुरातन पीढ़ी के साहित्यकार थे। उन्होंने पार्सी जाति में जन्म लेकर भी जीवन भर गुर्जर-गिरा की तत्परता, एक निष्ठता से निरंतर सेवा की, उनकी अनेक काव्य-पुस्तकें प्रकाशित हैं। अपनी शैली के वे भावुक कवि थे, कविता के साथ ही उनकी इतिहास शोधन में भी प्रवृत्ति थी'। 'दर्शनिका' के कवि के रूप में उनकी कीर्ति सर्वत्र विस्तृत हो गई थी। उन्हें गुजराती साहित्य परिषद् का अध्यक्ष भी निर्वाचित किया गया था। कवि खबरदार अच्छे ज्योतिःशास्त्र के जानकार भी थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने पारसी धर्मग्रंथों पर भी अनुसंधान किया था। यद्यपि स्व० खबरदार कवि, आलोचक, संशोधक ज्योतिर्विद थे, यावज्जीवन साहित्य-सेवा ही की, किंतु जीवन-व्यवहार के लिये उन्होंने मोटर और सायकल की दूकान चला कर व्यावहारिक भी सिद्ध किया। बीमारी के शिकार होकर उन्हें सुदूर मद्रास-प्रांत में जाकर रहना पड़ा, वहां भी अंत तक वे संशोधन प्रवृत्ति को निरंतर चलाते रहे। खेद है कि उनके लिखित कुछ ग्रंथों की पांडु- लिपियां चोरी चली गई और प्रकाश में न आ सकी, इसका उनके हृदय पर आघात भी हुआ। वे अवसान से पूर्व पुनः बम्बई में आकर रहना चाहते थे किन्तु परमेश्वर उन्हें परलोक प्रवासी बना गए। सहसा हृदय गति रुक जाने से उनका शरीरांत हो गया, इस प्रकार गुर्जरगिरा का एक पुरातन-प्रसिद्ध पंडित उठ गया।

नामों के भ्रष्ट रूप !

हम विश्व-मानव बनने का विचार करते हैं, विश्व साहित्य की जानकारी का दावा भी रखते हैं, हमारी यह चिंता रहती है कि इंग्लिश में जो नाम लिखा जाता है, उसका शुद्ध रूप क्या है, शुद्ध उच्चारण क्या है, रशियन, फ्रेंच नामों उच्चारणों, ध्वनियों की हमें चिंता होती है। हम सावधानी भी लेते हैं कि हम से भूलें न हों, और यह ठीक भी है, पर इसके विपरीत हमारी यह स्थिति भी देखने योग्य है कि हम अपने ही पास-पड़ोस के प्रदेश के नामों-शब्दों की ओर उदासीन बने हुए हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास के अनेक नामों में हमें अब-तक उलझनें होती हैं। भ्रष्ट उच्चारण और भ्रष्ट नाम लेकर हमारे पत्रकार, पंडित उपयोग करते हैं, और धड़ल्ले से करते जाते हैं। प्रायः गाडगिल को गाडागिल और गद्गिल कहा जाता है, करमरकर को करमारकर, कारमरकर बना देते हैं। हाल ही में स्विट्झरलेंड में भारत ने जिन सज्जन को राजदूत के पद पर नियुक्त किया है, उनका पत्रों में 'गुण्डेबिया' प्रायः प्रकाशित हुआ है, वस्तुत वे पार्सी सज्जन हैं और उनका नाम 'गणदेविया' है। गुजरात में एक ग्राम का नाम 'गणदेवी' है संभवतः उसी से उनका यह नाम सम्बन्धित है। जैसे 'करंजिया'। जब हम विदेशी नामों के लिए गंभीर चिंता करते हैं, तब अपने ही देश के और पड़ोस के प्रदेशों के नामों में ऐसी गंभीर भूलें करने में नहीं हिचकते। प्रायः ये भूलें अंग्रेजी से अनुवाद करने की प्रवृत्ति के कारण ही होती हैं, और हिन्दी-पत्र प्रायः इसके शिकार बनते हैं। 'गणदेविया' को 'गुण्डेबिया' बनाने का श्रेय इन्हें ही दिया जा सकता है, फिर उन मद्रासी बन्धुओं के विचित्र नामों के लिए तो कहना ही क्या है, जो हमारे लिए किसी विदेशी नाम से कम कठिन नहीं रहते। यद्यपि अलगेसन्, नटेसन, जैसे मद्रासी-महाशय, किसी हेरिसन हेण्डरसन पीयर्सन की तरह ही हैं, पर अनेक पट्टाभि कोडा वेंकटप्पैया, निजलिंगप्पा हिन्दी में आकर इतने विकृत

रूप ले लेते हैं कि उन्हें पहचानना असंभव नहीं तो कठिन जरूर हो जाता है, इसी तरह अनेक ग्रामों के नामों का अपभ्रंश हमें उन्हें पूरी तरह पहिचानने नहीं देता । किंतु यह स्पष्ट है कि इस सारे भ्रम की जड़ में अंग्रेजी-भाषा है जिसमें लिखे जाकर ये नाम-धाम अपना चोला पलट जाते हैं, और उस चोले को उठाकर उनके असली रूप को पाने में हम भ्रमित हो जाते हैं । जिस प्रकार पवित्र-मथुरा अंग्रेजी में अपवित्र रूप पा लेती है, और गंगा गड़बड़ा जाती है, शासन के सूचना-विभाग ने इधर कुछ नामों के असली-और शुद्ध-रूप वितरण करने का नगण्य प्रयास आरम्भ किया है । किन्तु सारे शासन के प्रमुख पदों पर काम करने वालों के नामों का शुद्ध रूप भी वह यथाक्रम प्रसारित प्रकाशित कर दे तो हजारों नामों, पदों, का सही रूप सामने आ जावे । जो लोग अंग्रेजी की फोन डायरेक्टरी, या सिविल सूची उठाकर नामावलि खोजते हैं, वे उसी अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी नामों का भ्रष्टरूप बनाकर उपयोग करने लगते हैं । हम उत्तर प्रदेश में रहकर महाराष्ट्र, गुजरात के नामों को सही नहीं समझपाते, इसी प्रकार उत्तर प्रदेशीय नामों का महाराष्ट्र में अनर्थ होता है, यह हमारे अपने देश, और अपने पड़ोसी प्रदेश की निकटता की दशा है, और हमारा लक्ष रशियन इंगलिश, फ्रेंच शब्दों के शुद्ध रूप जानने का है । हमारे एक मित्र ने 'निकोलो काट पेट् की' नामक एक रशियन व्यक्ति का विनोद में यह सही स्वरूप बतलाया था-'निकालो खाट पटकी' इसी तरह डा० कुर्तकोटि को कोर्टकोटी बनते देखा है । इग्लंड के राजकवि 'रुडियार्डकिपलिंग' को रुदयार्ड कपिलिंग हमने मुद्रित पढ़ा है, यह हमारी प्रगति है, या अज्ञान का विकास ।

यह दिल्ली है ?

"यह दिल्ली है, हम ऑल इण्डिया रेडियो से बोल रहे हैं" यह आवाज रोजाना आपकी पहचानी हुई ही है । तो अवश्य आप को किसी भी समय यह सुनाई देगा कि— 'अब आप भुवनारायण से अमुक कवि के दो गीत सुनेंगे भारतेन्दु से अमुक का एक गीत सुनेंगे ।' और बस समझ लीजिए कि कविता के नाम पर राग-रागिनियों की मिट्टी पलीद हो रही है । और आवाज क्या है मानों पंजाब से किसी का सस्वर 'स्यापा' ही सुनरहे हैं। अब, इन्द्रा नलिनी सुत, या किसी बनर्जी बाला के कण्ठ से कविता का कर्कश बिना जोड़ तोड़ के इधर-उधर खींचतान करता हुआ स्वर सुनरहे। यही समझेंगे कविता का श्राद्ध समारोह रेडियो से किया जारहा है । कविता के कानखींच कर, आसानी के साथ, बिना पद-पंक्ति के विचार किए जारहा है, और जिस संगीत, और स्वर के साथ किया जाता है, उसे अलाप तो क्या प्रलाप ही बाध्य बन जाएगें । इन बेतुकी, बेरंग राग की कविता सुनकर शायद आपका दिल यही चाहता होगा कि का कान मसक कर तुरंत चुप करदिया जाए, हां, इन साओं के साथ जो साज अपना सुर मिलाते हैं वह तूम तड़ांग के और क्या होता है ? सहज ही समझ आता है कि साजवालों को बिना राग के उस गीत साथ मनमानी संगत करना पड़ती है । इसलिए रागों 'रुलाई' को राजी रखना पड़ता है । इसपर भी कविता अनेक बार सुनने को मजबूर बनना पड़ता बंगाली-मद्रासी बालाओं के द्वारा हिन्दी के गीतों गवाया जाता है जो न हिन्दी के पद्यों को ठीक समझ हैं, न स्वर साध पाती है । किसी मीठी कविता को इस तरह तोड़-मरोड़ती है कि वे मरसिया बन जा इन्द्रा नलिनी सुत जब स्वाभाविक गीत गाती है, तो उनके कण्ठ की कोमलता दाद पालेती है, पर कविता कहलाकर कण्ठ की कोमलता को कुचलवा जाता है ।

पता नहीं गाए जाने वाले गीतों को कौन चुनता महादेवी के गीत भाव-रहस्य पूर्ण हों तो वे गाने के गीत हो सकते हैं —यह समझना तो भूल होगी । न जाने योग्य गीतों को बिना समझे यदि गवाया जाएगा उनकी दुर्दशा होना स्वाभाविक ही है । पता नहीं दुर्दशा को वे कवि लोग कैसे पसन्द कर लेते हैं, सामने अपनी मानसिक संतान की मिट्टी पलीद देखकर वे कैसे मन मारकर रहजाते हैं । या तो रेडियो पर उनका गुण गान होता समझ सन्तोष पाले या संगीत से उनका सरोकार नहीं रहता । पर

सरकार संगीत के सुधार के लिए फिल्मी गीतों को रेडियो से निकालकर सीधी सड़क बतलाना चाहती है, वही कवियों की कोमल रचनाओं को जिस कठोरता से अंग-भंग कर बेरंग बनाती है, उसके विवेक को क्या कहें? शास्त्रीय संगीत को प्रश्रय देकर प्रोत्साहित करने का दावा करने वाली सरकार के सूत्रधारों को कान हो तो वह सुनें-समझें कि इन गीतों की रेडियो पर किस तरह दुर्गति की जाती है। कैसे भोंडे गले से, भद्दे-बेसुरे राग से बिना सुर-तान के समेटा जारहा है! यह सब सरकार के कान के पास होता है, और वह कला की हत्या होती देखकर भी संगीत के सुधारका प्रयास प्रचारित करती है। प्रतिदिन ६० प्रतिशत गीत गान दिल्ली रेडियो से ऐसे होते हैं जिनको सुनकर कान में कसक हो उठती है, मनमें मितली आती है। बाम्बे-लखनऊ के संगीतके समक्ष दिल्ली का गायन दो कौड़ी का कहा जासकता है। भाग्यवश ही दिल्ली के केन्द्र से कोई कोमल कण्ठ सुनाई पड़जाता है, तान में तन्मय होजाने का अवसर आता है, अथवा अच्छे कण्ठों में भी जब कविता ठूंसदी जाती हो तो जान बूझकर उनकी कला का भी कचूमर निकाल दिया जाता है। अवश्य ही केवल वाद्य के प्रयोग में आनन्द अनुभव होता है। रिकार्डों में रुचि रहपाती है। और बाहरी संगीत के 'रिले' किये जाने पर कला के दर्शन हो जाते हैं। किन्तु कविता, गीत, गान आदि की दृष्टि से दिल्ली में संगीत की समाधि ही बनजाती है, पर सरकार का कहना है वह सुधार कर रही है। काश वह बम्बई के संगीत से दिल्ली की तुलना करना जानती तो अवश्य अन्तर समझपाती!

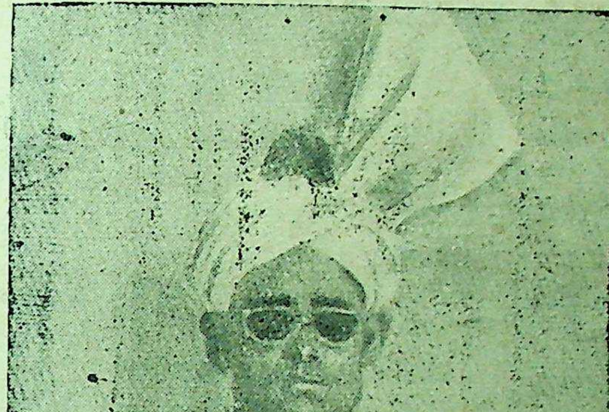

रूसके कलाकार द्वारा अंकित एक भारतीय अफसर

काश्मीर में क्रांति

काश्मीर के नेता शेख अब्दुला काश्मीर के स्वर्गीय खण्ड से ऊपर उठ कर अखिल-भारतीय ही नहीं, अन्तर राष्ट्रीय राजनीति में महत्व प्राप्त कर गए थे, और इस ऊँचाई पर जिस जमीन ने उन्हें उठाया था, वे उसे ही ठोकर देकर अपना अलग आवास बना लेना चाहते थे। जिस भारत के आश्रय से उन्होंने यह मान सम्मान शक्ति और साधन प्राप्त किया था, इधर कुछ समय से उन्होंने उसे उपेक्षित कर अपना स्वतन्त्र—अस्तित्व बना लेने का प्रयास आरम्भ कर दिया था। शेख सा. की वाणी ने विवेक का बांध तोड़ कर जिस असंयम का आश्रय लेना आरम्भ किया था, उसने काश्मीर में और उसके बाहर अनेक भ्रांतियों को उत्पन्न कर उनके स्वप्न–सिहासन की कीलें खिसकाना शुरु कर दिया था। दुर्भाग्य से प्रजा-परिषद् के आन्दोलन ने असमय अवसर पाकर उनकी महत्वाकांक्षा पूर्ति को प्रोत्साहित किया, किन्तु उस आन्दोलन के अन्तर

में रहने वाले असन्तोष ने शेख सा. की जड़ों में जहर भी डाल दिया, और असन्तोष की आग भी उत्पन्न की। सुयोग समझा जाना चाहिए कि शेख सा. की रीति-नीति, और निरंकुशता के निरन्तर बढ़ते जाने के कारण उनके निकट साथियों में भी असन्तोष की चिनगारी भड़क उठी, और सहसा शेख सा. का अधिनायक-तन्त्र उनके स्वप्नों के स्वतन्त्र साम्राज्य के साथ क्षण भर में काश्मीर के कीचड़ में फँस कर विलीन बनगया ! शेख सा. ने अपनी कबर अपने ही हाथों खोद ली थी। जिस शंका और भ्रम के वातावरण को उन्होंने बाहर फैलाया था, जिन उलझनों को समझदारों के सिरों में सजन किया था, वही उलझनें उनके आस-पास इस तरह बढ़ गई कि वे स्वयं बुरी तरह उसी के फंदे में फँसकर अपनी लम्बी कमाई की नेतृत्व की पूंजी को बर्बाद कर एक क्षण में दिवालिया बनजाने को बाध्य कर दिये गए। काश्मीर के भविष्य को अँधेरे में रख कर, अपने भविष्य को उज्वल-उन्नत बनाने के प्रयास में शेख सा. को ही किसी कन्दरा की कैद में पड़ जाना पड़ा। इस तरह काश्मीर का 'शेर' शिकंजे में फँस ही तो गया ! दुर्भाग्य तो यह है कि जिस नेशनल कांफ्रेंस ने उन्हें नेतृत्व प्रदानकर इतना ऊपर उठा दिया था, उसी नेशनल काँफ्रेंस ने एकस्मात् बन्दी बनाकर कारावास में कैद कर डाला। काश, काश्मीरी जनता इतनी जल्दी नहीं चेतती तो आश्चर्य नहीं कि कुछ समय बाद शेखजी उसे भी दूसरा 'कोरिया' बनाकर नए नरमेध का नाटक खेल जाते ! अवश्य ही काश्मीर में अभी समझ बाकी है। जिसका सुबूत ठीक समय पर, सदरे रियासत करणसिंहजी और उनके सलाहकार, तथा बख्शी गुलाम मुहम्मद ने साहस पूर्वक दिया ! शेख अब्दुल्ला जैसे व्यक्ति का सहसा पतन स्वाभाविक, और स्वागत योग्य ही है। परन्तु काश्मीर के लिए यह महत्त्व पूर्ण क्रांतिकारी घटना घट गई है। शेख सा. ने अपने सहायक भारत की स्थिति को डावाँ-डोल बना दिया था। सारे देश में शंका और सन्देह का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। 'शेर' शेख सा. के शासक से बन्दी बन जाने पर काश्मीर पर जो काली घटाएँ घुमड़ कर छारही थी, वह आशा है परिवर्तन की हवा से छँटने लग जाएगी। पुनः भू-स्वर्ग काश्मीर में सुखद समीर प्रवाहित होगी, जो भारत को भी समाधान दे सकेगी। काश्मीर के शासन के सूत्र को हाथ में लेते हुए नवीन प्रधान मंत्री, किन्तु पुराने जन सेवक, और गृह मंत्री बख्शी गुलाममुहम्मद ने जो घोषणाएं की हैं, वे स्पष्ट व्यवहारिक, और उपयोगी हैं। काश्मीर पर उसका उचित प्रभाव होगा; किन्तु शंकित भारत उचित प्रतिक्रिया देख कर ही समाधान अनुभव कर सकेगा, तथापि शेख का आकस्मिक पतन, और नवीन शासन का आरम्भ अंधकार में आशा की प्रकाश-रेखा की तरह ही होगया है। और शेख के पतन के पश्चात् पाकिस्तान में जो प्रतिक्रिया हुई है, शेख-शासन समाप्त के कारण जैसा मातम मनाया गया उससे स्पष्ट हो जाता है कि शेख से 'पाक' का लगाव लिपटाव कितना अधिक होगया था। अब वीर शेरे काश्मीर ने किस तरह शेर की खाल में रहकर अपने असली रूप को ढंक कर रख छोड़ा था। इस खाल को उठाकर असली रूप में ठीक समय ही प्रकट कर

हाथी और हिन्दी !

हाथी तैयार थे और मम्मी तथा मैं पूर्ण अनुभवहीनता से उत्पन्न तत्परता के साथ एक हाथी पर चढ़ गए। हमें एक ऐसे होदे पर बैठना पड़ा जो उल्टी खाट बांधकर बनाया था। हम अलग-अलग खाट के पायों को पकड कर बैठ गयें। मैं नहीं जानता क्यों, परन्तु मुझे ऐसा महसूस होता था कि मैं एक पैदल यात्री हूँ और हाथ में लाठी लिए, झटकों के साथ चलता हुआ अनन्त की ओर जा रहा हूं।

महावत ने चिल्लाकर कहा "ऊपर" और हाथी ने उसको आज्ञा मानकर हमारे ऊपर की एक वृक्ष की डाल तोड ली। यह देखकर मेरा हृदय आनन्द से उछल पडा। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी ऐसे ढंग से प्रगति कर रही है, जिसका पंडितों ने स्वप्न भी न देखा होगा। बाद में जब महावत ने पुकार कर कहा "नीचे !" और हाथी नें सूंड नीचे झुका कर हमारे सामने की घास साफ कर दी, तब तो मेरे आनन्द का ठिकाना ही नहीं रहा। यदि हाथी इतनी सरलता से हिन्दी सीख सकते हैं तो क्या हमारे कुछ देशवासी कम होशियार है ? मैं विश्वास नहीं कर सकता। परन्तु, कदाचित इन प्राणियों को श्रीगणेश का, जो कि बुद्धि और ज्ञान के देवता हैं ? और जिन्होने मनुष्य के मुख की अपेक्षा हाथी का मुख पसंद किया है, आशीर्वाद प्राप्त है। या कुछ ऐसी बात है कि कोई बडा आदमी हाथी बनता है ?

(कुलपति के पत्र से)

सदरे रियासत और उनके सहकारियों ने जो क्रांतिकारी कार्य किया है, वह निःसन्देह महत्वपूर्ण कहा जाएगा ।

और यह ज्योतिष का चमत्कार……!

काश्मीर में शेख के पतन की कल्पना सारे जग में शायद पतन के दो दिन के पूर्व भी किसी को नहीं हो सकती थी; परन्तु पण्डित जी, या कोई स्वीकार करें या न करें, ज्योतिष के द्वारा यही निर्णय ६ मास पूर्व स्पष्ट प्राप्त हो गया था । इसके प्रमाण में हमारा 'चैत्री महाकाल पंचांग' देखा जा सकता है, जो जनवरी में प्रकाशित होकर हज़ारों हाथों में पहुँच चुका था । उसके प्रथम पृष्ठ में स्पष्ट यह वाक्य अंकित है —

“ नेपाल काश्मीर भी क्रांति विप्लव के स्थल होंगे, शेखका देशान्तर निवास संभव होगा काश्मीर के लिए एक नवीन नेता का निर्माण होगा, साम्प्रदायिकता की आड़ में उत्तम पुरुषों की हानि संभव होगी । ”

यह उद्धरण स्वयं इतना स्पष्ट है कि इस पर कोई टिप्पणी की आवश्यकता नहीं, जो लोग ज्योतिष के लिए संदेह समझते हैं वे पचांग को देखलें, और अपनी आत्मा से उत्तर पूँछे !

शासन ऐतिहासिक साधन-सामग्री को शीघ्र सुरक्षित करे ।

मध्य-भारत इतिहास की साधन-सम्पत्ति की दृष्टि से बहुत समृद्ध-प्रदेश है, उसके पद-पद पर ऐतिहासिक घटनाओं की परम्परा प्राप्त होती हैं, अनेक भू-गर्भ आज भी अनेक घटनाओं को अपने अंतराल में रज, संपुटों में लपेटे खोजो की प्रतीक्षा में है, इनके क्रमिक संशोधनों से अनेक उलझी हुई ग्रंथियां सुलझने की आशा है । परन्तु इनके अतिरिक्त लिखित साहित्य भी इस प्रदेश में व्यापक रूप से विस्तृत है । अवश्य ही उज्जैन के प्राच्य ग्रंथ संग्रहालय में कुछ साहित्य सुरक्षित हुआ है, परन्तु उसमें भी सरकारी आर्थिक- सहयोग इतना पर्याप्त नहीं कि उदारता पूर्वक ग्रंथ- साहित्य संग्रहीत किया जासके । इसके अतिरिक्त इतिहास साहित्य जो पुरातन कागज-पत्रों, सनदों, ताम्र शासन-पट्टों परवानों के रूप में अनेक पुरातन परिवारों, और राजवंशों में रक्षित होकर बिखरा हुआ है, उसके संग्रहीत करने की परमावश्यकता है। इसके संग्रह के लिये न तो प्रयास हुआ है, न सुरक्षा के लिये कोई स्थल या सहायता-या-उद्योग हो पाया हैं । मध्यभारत के २२ राज्य विलीन हो गए हैं, इनके सिवा सैंकड़ों जागीरों को समाप्त कर दिया गया है, इन परिवारों में मध्यभारत की अनेक महत्व पूर्ण घटनाओं का लिखित, उत्कीर्णित साहित्य होना अनिवार्य है । इसके संग्रह संशोधन की परमावश्यकता है । यह साधन इतिहास की अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालने वाला सिद्ध हो सकता है । यह कार्य सीधे शासकीय सूत्र से आशंकाओं के कारण सरल साध्य नहीं, सहज उपलब्ध नहीं हो सकता, इस साहित्य को किसी संशोधन-संस्था को सहायता करके ही प्राप्त किया जा सकता है। जो जन प्रतिनिधित्व रखती हो इतिहासानुसंधान की प्रवृत्ति रखती हो । शासन को चाहिये कि इस ओर शीघ्र ध्यान दें, और इन साधनों की रक्षा, व्यवस्था, और प्राप्ति के लिए अविलम्ब प्रयास आरम्भ करदें । अन्यथा इतिहास की यह बहुमूल्य सामग्री ध्वस्त-व्यस्त-विनष्ट अथवा अंधकारावृत हो जाएगी । राजों, जागीरदारों, जमीदारों की उपेक्षा होना स्वाभाविक है और सरकार को सहयोग देने में शंकाशील होना भी स्वाभाविक है, स्वतंत्र इतिहास संशोधन में अनुराग रखने वाले जनों, या संस्थाओं में उन्हें आशंका का कारण नहीं होगा, और यह महत्व पूर्ण साहित्य सुलभ बन सकेगा यदि सरकार सहयोग करें, साधन सुलभकरें, तो उज्जैन की इतिहास-संशोधन सभा इस दिशा में कार्य करने को तत्पर हो सकती है । शासन को इतिहास की इस महत्व पूर्ण सामग्री को काल कवलित होने के पूर्व ही सुरक्षित बनाने का तुरन्त उद्योग आरम्भ कर देना चाहिऐ ।

लोक-संस्कृति-अंक ।

लोक-साहित्य-कला और संस्कृति के क्षेत्र में इधर जैसी प्रगति दिखलाई दे रही है, वह जागृति की प्रतीक है । विविध प्रदेशों में इस दिशा में जन-रुचि बढ़ती जारही है । कुछ साहित्यिकों के लिए यह कार्य स्वाभाविक बनता जा रहा है, ऐसी स्थिति में प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका ने 'लोक-संस्कृति-अंक' निकाल कर इस ओर प्रेरित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है । सम्मेलन पत्रिका

का यह विशेषांक हिन्दी-साहित्य में अपने प्रकार का महत्वपूर्ण-अंक है। विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति-कला, काव्य-संगीत, और साहित्य का सुन्दर महत्वपूर्ण, और अध्ययनीय-संग्रह उपस्थित किया है। अधिकारी विद्वानोंकी लेखनी से जो साहित्य प्रस्तुत किया है, वह संपादक जी के सतत परिश्रम का फल ही है। लोक-संस्कृति के क्षेत्र में यह अंक एक मानदण्ड का, अथवा कोष का स्थान ग्रहण कर लेगा। पत्रिका के सम्पादक श्रीयुत रामनाथ जी सुमन ने ऐसे मनोहारी, सर्वांगपूर्ण और सुरुचिपूर्ण, आकर्षक अंक देकर लोक-साहित्य की जो श्रीवृद्धि की है, वह वास्तव में स्मरणीय रहेगी। हम सभी संस्कृति प्रिय जनों से अनुरोध करेंगे कि पत्रिका के इस लोक-संस्कृति अंक को प्राप्त कर अपने संग्रह में सुरक्षित रखें हिंदी में अपने ढंग की यह अनूठी, और सर्व प्रथम होते हुए भी ऐसी सुन्दर-वस्तु है, जो सभी परिवारों की शोभा-श्री और ज्ञान बढाने वाली सिद्ध होगी। हम पुनः ऐसे सुन्दर-विशेषांक प्रकाशित करने के लिए सम्मेलन, तथा विद्वान् सम्पादक का अभिनन्दन करते हैं।

भारत-जय

भारत की जय जय !
गूँज उठी धाम कुटी घर में
ग्राम में नगर में;
प्रेम मय
भारत की जय जय !
शिखरों में विन्ध्य हिमाचल के,
लहरों में गंगा यमुना के पंचजल के
फैल रही उठकर
कोटि-कोटि कण्ठ में समान स्वर
तीनों ओर भेंट रहे सिन्धु के अतल से
भारत की, भारत की जय-जय !
यह जयकार बोल उठा
पुण्य में अभय में
लोल उठा, डोल उठा
मेरे इस छोटे से हृदय में !
साधन युगानुयुग कल्प का,
फूल यह एक हो सहस्र शूल तल्प क.
जय जयकार
परिपूर्ण भारत का सुमन सुगन्ध सार !
युग के युगान्तर का सुप्रभात !
वाणी की स्वकीय लघु गोद में
हमने उछाल लिया प्रेम में, प्रमोद में
अतुल अतीत का स्वकुल जात !
रखना है पूर्ण परिरक्षण में
यह जयकार जय जयकार;
यों ही नहीं खेल गया आकर वचन में;
शोधनीय ऋण है,
पुष्ट से उचारा हुआ प्रण है।
फैल रहे हिंसा घृणा विष से,
इसको बचाना है,
संकटों से जूझ जूझ आ रहे अनागत को,
उज्जवल प्रभा रत को
संरक्षित सौंप इसे जाता है
यह है पराभव विहीन, सदा व सर्वमय-
भारत की
भारत की
भारत की जय जय !

—सियारामशरण गुप्त

उज्जैन का यह हाल !

उज्जैन में अपने-अपने नेतृत्व की नैया लेकर जितने-जन भाग्य की भागीरथी में पद-प्रतिष्ठा की पतवार लगाए लोभ की लहरों के थपेड़े खाते हुए भँवरों को भुलाकर बेधड़क मझधार में बढ़े जाते हैं, उतने ही अपने आधार की उपेक्षाकर अल्प अस्तित्व वाले आत्म-रूप के प्रति उपेक्षित बने हुए हैं; उन्हें उस उज्जैन की भी उतनी चिन्ता नहीं, जिसकी जमीन पर उनकी जीवनी निर्भर है। भाग्य निर्माण निश्चित है। आज इस नगरी की कितनी दुर्दशा हो रही है, क्या कोई दृष्टि उठाकर देख रहा है? वर्षों से विक्रम-कीर्ति-मन्दिर की शिला, शासन का सिर शर्म से जमीन पर जुड़ाती हुई खुले आसमान के नीचे जंगल में गड़ी खड़ी है। योजनाओं के दम्भ दिखाने वाली करोड़ोंके फंड पर पोषित सरकार चम्बल की चमक भले ही दिखा कर स्वप्न का संसार खड़ा करे, पर कीर्ति-मंदिर पर निरर्थक पक्षपात-पूर्ण विवाद खड़ा कर उसपर एक ईंट जुड़ाने का साहस नहीं करती। क्षय, अस्पताल की आधार-शिला भी खुली जमीन पर जानवरों की खुजली मिटाने का साधन बन शासन के सिर कलंक का काला टीका लगाती हुई खुली खड़ी हुई है। विश्व-विद्यालय के विवाद को खड़ा कर जिस प्रकार उज्जैन को अपमानित किया जारहा है, उससे किस शासन, और जन नेतृत्व का नाम नीचा नहीं हुआ है? सत्ता, और नेता के इस निकृष्ट रूप को देखकर उज्जैन यदि तिरस्कार की तीखी निगाह से निरखें तो आश्चर्य का कारण नहीं। दाम-दान का निरा दम्भ दिखाकर भाषणों की भूरसी बाँटकर प्रचार पाखण्ड की पक्षपात पूर्ण पूँजी लिए न तो नेतृत्व निभ सकता है, न शासन ही सत्ता जमाएँ जीवित रह सकता है। पर आज उज्जैन के साथ यही हो रहा है मन्त्री मोद मना रहा है। नेता नजाकत के साथ नैवेद्य लगा रहा है।

रूसी विद्वान् बारान्निकोव

श्री वी० वी० बालाबुशेविच

लम्बी और सख्त बीमारी के बाद सोवियत संघ के एक अग्रणी प्राच्यविद्याविद अकदमिशियन अलेक्सेई पेत्रोविच बारान्निकोव का चार सितम्बर १९५२ को देहान्त हो गया।

अकदमिशियन बारान्निकोव का जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण था। वह, सब से पहले और सबसे बढ़कर, उन असीम सम्भावनाओं का मूर्त रूप था जोकि सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक के लिए खुली हैं। आपका बचपन गरीबी में बीता था। १८९० में एक बढ़ई के घर में जन्म लिया था। परिवार की आमदनी में सहारा देने के लिए छोटी उम्र में ही आपको खेतों में काम करना पड़ा था। लेकिन, बावजूद जानतोड़ मेहनत के, ज्ञान प्राप्त करने की आपकी आकांक्षा मरी नहीं। पहाड़ जैसी बाधाओं को पार करते और भारी मुसीबतों को सहते हुए आपने माध्यमिक स्कूल की मंजिल पार की, व विश्वविद्यालय में आप भर्ती हुए और १९१४ में ग्रेजुएट की डिग्री आपने प्राप्त की। इसी विश्वविद्यालय की इतिहास और भाषा विज्ञान फेकल्टी के प्राच्य-भाषा विभाग में आपने सबसे पहले संस्कृत का अध्ययन शुरू किया। लेकिन अध्ययन के अपने प्रमुख क्षेत्र के रूप में भारतीय भाषाओं और भाषा विज्ञान को आपने बाद में चुना, उस समय जब कि आप सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में एम. ए. के विद्यार्थी थे। जहां १९१६ में आपने, अकदमिशियन एफ० आई० श्चेरबात्स्की और एस० एफ० ओल्डनबर्ग के तत्वावधान में संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन शुरू किया।

अक्टूबर की महान् समाजवादी क्रांति ने अलेक्सेई बारान्निकोव के सामने व्यापक संभावनाओं का रास्ता खोल दिया। मास्टर की डिग्री आपने १९१७ में प्राप्त कर ली थी। कुछ ही काल में प्राच्य-विद्याविदों के बीच भारत विद्या में अपने खोजपूर्ण काम के कारण इस योग्य युवक विद्वान की ख्याति व्यापक रूप में फैल गयी। भाषाओं के क्षेत्र में आपकी देन असाधारण रूप से महान् है। यहां यह नहीं भूलना चाहिए कि क्रांति से पहले रूसी विद्वान भारत के प्राचीन इतिहास, उसके धर्म और दर्शन

तथा प्राचीन भाषाओं पर मुख्य ध्यान देते थे। इन विषयों को लेकर भारत सम्बन्धी खोज करने वाले रूसी विद्यार्थियों ने अनेक व्याख्यात्मक ग्रन्थों की रचना की थी। लेकिन भारत की आधुनिक भाषाओं, साहित्य और इतिहास की ओर कोई कतई ध्यान नहीं देता था, उनका अध्ययन नहीं के बराबर होता था। केवल इक्के-दुक्के विद्वानों ने, सबसे पहले और सबसे बढ़कर १९ वीं शती के रूसी-भारत-विद्याविद प्रोफेसर मिनाएव ने जो तीन बार भारत हो आए थे, भारत की आधुनिक भाषाओं और साहित्य तथा अपने समय के भारत के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में गम्भीरता के साथ दिलचस्पी लेनी शुरू की।

बारान्निकोव ने विज्ञान की जो महान सेवा की उसका महत्व इस बात में है कि आपने सोवियत संघ में भारत की आधुनिक भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण का सूत्रपात किया। हिन्दी, उर्दू, मराठी बंगाली और पंजाबी का। लेनिनग्राद ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट और लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में आपने इन भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की और पुराने स्कूल के प्रतिनिधियों द्वारा खड़ी की गई बाधाओं को पार किया जो भारत विद्या का क्षेत्र मुख्य रूप में संस्कृत और भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन तक सीमित रखना चाहते थे। हायर स्कूलों में भारत की आधुनिक भाषाओं के अध्ययन का सोवियत भारत विद्या के लिए भारी महत्व था। कारण कि ठोस वैज्ञानिक आधार पर आधुनिक भारत का, उसकी संस्कृति का, उसके आधुनिक और समसामयिक इतिहास का, जिसके प्रति अक्टूबर क्रांति के बाद भारी दिलचस्पी पैदा हो गयी थी, अध्ययन किया जा सकता था।

किन्तु बारान्निकोव ने भारत की आधुनिक भाषाओं के अध्ययन का संगठन करने से भी ज्यादा काम किया। इन भाषाओं के अध्ययन कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आपने पाठ्य पुस्तकों की एक सिरीज का तथा अनेक मौलिक खोजपूर्ण ग्रन्थों का जो भारत की कतिपय आधुनिक भाषाओं के व्याकरण और उनके इतिहास से सम्बन्ध रखते थे, प्रकाशन किया। हिन्दी, उर्दू और मराठी भाषाओं के सम्बन्ध में बारान्निकोव द्वारा लिखी गई पाठ्य पुस्तकों में "हिन्दुस्तानी (उर्दू और हिन्दी)" खास तौ से महत्वपूर्ण है। सोवियत संघ में इन भाषाओं का अध्यय करने वालों के लिए आज दिन भी यह एक बहुमूल्य पाठ्य पुस्तक का स्थान रखती है।

अकदमिशियन बारान्निकोव के भाषा विज्ञान सम्ब अन्य ग्रन्थो में निम्न उल्लेखनीय हैं; "हिन्दुस्तानी पेचीदा क्रिया-पद्धति" "उर्दू में फारसी के तत्व," "हि गद्य की समस्याएँ" और सबसे बाद आपकी अन्ति कृति "भारतीय भाषा विज्ञान की परम्परा में ऐतिहासि तुलनात्मक पद्धति के तत्व।"

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अकदमिशियन बारान्निको की कृतियां भारत की आधुनिक भाषाओं और उनके इतिहास के अध्ययन को भारी देन है। सैद्धान्तिक गम्भीरता और नया दृष्टिकोण इनकी विशेषता है। इस सही मान्यता पर ये टिकी हैं कि भाषाओं के अध्ययन का उन लोगों के इतिहास के अध्ययन के साथ गहरा सम्बन्ध है जो उनका निर्माण करते तथा उन्हें बोलते हैं। यह बात खास तौर से आपकी कृति "भारतीय भाषा विज्ञान परम्परा में ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति के तत्व" प लागू होती है जो कि जोसेफ स्तालिन की प्रतिभाशा कृति "मार्क्सवाद और भाषा विज्ञान की समस्याएँ" बाद प्रकाशित हुई थी।

भारत विद्याविद के रूप में अकदमिशियन बारान्निको की व्यापक सूझ बूझ का परिचय, भारतीय साहि के इतिहास सम्बन्धी मुख्य समस्याओं के अध्ययन त विस्तृत विवेचन और भारतीय साहित्य की महत्वपूर्ण गारों के रूसी भाषाओं में अनुवादों से भी मिलता है।

अकदमिशियन बारान्निकोव के आलोचनात्मक ऐतिहासिक साहित्यिक खोज कार्यों का क्षेत्र बहुत व्याप था। भारतीय महाकाव्यों के सम्बन्ध में आपने का समय लगाया था और भारत के प्राचीन साहित्य के हास सम्बन्धी भाषणों की एक पूर्ण सीरीज आपने तै की थी। भारत के आधुनिक साहित्य पर निबन्धों रचना करने पर भी आपने भारी ध्यान दिया था। साहित्यिक खोज कार्य द्वारा, जोकि मूलस्रोतों के अध्य पर आधारित था, आपने जो नतीजे निकाले वे भार

साहित्य की कुछ खास समस्याओं पर नयी रोशनी डालते हैं, और भारत की आधुनिक भाषाओं के साहित्य के उन पहलुओं को उभार कर रखते हैं, जिनकी ओर अबसे पहले तक कोई ध्यान नहीं दिया गया था।

रूसी भाषा में भारतीय साहित्य की महान कृतियों के अनुवाद पर अकदमिशियन बारान्निकोव ने अपने जीवन के अनेक वर्ष लगाए थे। आप ही थे जिन्होंने सोवियत पाठकों को लल्लूलालजी कृत "प्रेम सागर," साथ ही अजीज उद्दीन अहमद तथा प्रेमचन्द जी जैसे लेखकों की रचनाओं से परिचित कराया। इससे भी बढ़कर यह कि आपने युग के महानतम भारतीय महाकाव्य तुलसीदास कृत रामायण से सोवियत पाठकों को परिचित कराया। फासिस्त हमलावरों के विरुद्ध सोवियत जनता के युद्ध के कठिन सालों में यह अनुवाद किया गया था। इस ग्रन्थ का, और साथ ही अनुवादक द्वारा प्रस्तुत विस्तृत टिप्पणियों तथा नोट्स का, मध्य युगीन भारत की सामाजिक प्रवृत्तियों के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्व है।

अकदमिशियन बारान्निकोव के जीवन के आखिरी साल उन्नीसवीं शती के सुप्रसिद्ध भारत विद्याविद प्रोफेसर मिनाएव की "भारतीय डायरियां" को प्रकाशन के लिए तैयार करने में बीते।

भारतीय साहित्य की सुप्रसिद्ध कृतियों से सोवियत जनता को परिचित कराने की दिशा में किये गये बारान्निकोव के महत्वपूर्ण काम का जिक्र करते समय इस तथ्य का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जा सकता कि भारत के प्राचीन महाकाव्य "महाभारत" का मूल संस्कृत से रूसी में अनुवाद करने के लिए आपने सोवियत भारत विद्याविद वी० आई० कालियानोव को प्रेरित किया और उनके अनुवाद का संपादन किया।

अकदमिशियन बारान्निकोव ने रूस के महान लेखकों के, खासतौर से मेक्सिम गोर्की के, भारत के आधुनिक साहित्य पर लाभप्रद असर का भी गम्भीर अध्ययन किया था। इस क्षेत्र में उनके लिखे हुए 'भारतीयों का रूसी साहित्य से लगाव," "ए० एस० पुश्किन भारतीय आलोचकों की नजर में," निबन्ध तथा अन्य कितने ही लेख शामिल हैं।

अकदमिशियन बारान्निकोव की बहुमुखी गतिविधि का स्रोत भारतीय जनता के प्रति उनका महान् प्रेम और उनकी संस्कृति के प्रति ऊँचे सम्मान की भावना थी। भारत की महान् जनता की संस्कृति और इतिहास से सोवियत जनता को परिचित कराने तथा भारतीय और सोवियत जनता को और भी ज्यादा घनिष्ठ रूप में एक दूसरे से नजदीक लाने और उनके बीच सांस्कृतिक आदान प्रदान को मजबूत बनाने में बहुत भारी योग दिया।

इसी के साथ साथ आप सोवियत संघ तथा सोवियत संघ की जनता के सांस्कृतिक जीवन के बारे में सच्चाई से भारतीय जनता को परिचित कराना अपना लाजमी कर्तव्य मानते थे। युद्ध के दौरान में भारतीय समाचार पत्रों के लिए आपने बहुधा लेख लिखे जो कि सोवियत भारत विद्या के बारे में, उस खोजकार्य के बारे में जोकि सोवियत भारत विद्याविद कर रहे हैं और अपने काम के बारे में जोकि आप "रामायण" के रूसी अनुवाद का प्रकाशन करने की दिशा में कर रहे थे तथा अन्य कितने ही विषयों के बारे में होते थे।

अकदमिशियन बारान्निकोव की गतिविधि और खोज लिखने के काम तक ही सीमित नहीं थी। लेनिनग्राद नगर सोवियत के सदस्य के रूप में सोवियत संघ के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन में भी आप सक्रिय हिस्सा लेते थे। नगर सोवियत के आप अनेक वर्षों से सदस्य थे और ठीक मृत्यु के दिन तक इस पद पर बने रहे।

सोवियत भारत विद्या के लिए की गई अपनी सेवाओं के कारण अकदमिशियन बारान्निकोव सोवियत संघ के अत्यन्त सुप्रसिद्ध प्राच्य विद्याविदों में माने जाने लगे। १९३९ में आपको सोवियत संघ की विज्ञान अकदिमी के लिए चुना गया। अनेक सालों तक सोवियत संघ की विज्ञान अकदिमी की प्राच्य इंस्टीच्यूट में आप अधिकारपूर्ण पद पर आसीन रहे। आप लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा विज्ञान विभाग के भी अध्यक्ष थे।

अकदमिशियन बारान्निकोव ने अपने वैज्ञानिक काम से सोवियत संघ और भारत की जनता के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत बनाया। सोवियत सरकार इस कार्य

(शेष पृष्ठपर)

क्षिप्रा से शान्तिनिकेतन

श्री नारायणप्रसाद 'भूषण'

शिप्रा मेरी प्रिय चम्बल की एक पावन सहायिका है। चञ्चला चम्बल और शिप्रा की धाराओं पर सरस्वती की तरल तरंगें प्रायः प्रवाहित होती रहती थीं। वायु विचलित झोंकों में उसकी स्वच्छन्द स्वरलहरियां लहराती थीं। मेघदूत चम्बल और शिप्रा पर मानो बरसा पड़ता था। कालिदास की काव्य कादम्बिनी अभी भी इनके अञ्चलों के माणिक मोतियों में मिलकर पत्थरों और अगणित रज-कणों से टकरा कर क्वणित हो रही है।

चम्बल तट पर पिपलौदा में पिप्पलाद, और यम-दग्नि के आश्रम हजारों ऋषियों को नागहृद (नागदा) तक शिक्षा देते थे। सान्दिपनी क्षिप्रा कूल पर अपनी शिक्षा की दानशाला बनाए बैठे थे।

तब डाल्टन मान्टेसरी प्राजेक्ट प्लॉन का नामो निशां नहीं था। पेस्टोलोजी, हर्बर्ट रूसो जन्मे भी नहीं थे। यहां तो क्या यूनान में सुकरात का या प्लेटो का नाम भी नहीं था।

कुछ समय बाद तीन विश्वशिक्षक चम्बल क्षिप्रा के बीच अपनी शिक्षा की सरिता बहागए। वे हैं श्रीकृष्ण, बुद्ध भिक्षु महाकाश्यप और भगवान महावीर।

इनकी शिक्षा लोगों के दिलों में घर कर गई आज भी अहिंसा और कर्मयोग को कौन नहीं मानता? इनकी शिक्षा में अहिंसा के मौलिक तत्व ही तो थे।

आजकी शिक्षा आर्थिक हिंसा प्रतिहिंसा की पोषक है, युद्ध की जननी है। विषमता का व्यापार है।

कौन कह सकता है शिक्षा प्रशिक्षा अवाञ्छनीय है? परन्तु आज के 'मानव-परेशानी' के युग में शिक्षा तो ठीक, प्रशिक्षा भी बाड़ से उठ कर बागर को खारही है। आज शिक्षा-सुधार में जितना कार्य करें सब विपरीत परिणाम कारक होजाता हैं। इस शिक्षा से न किसी को समृद्धि मिलती है, न राहत न सन्तोष, न उचित ज्ञान ही!

किसी समय में प्रशिक्षित शिक्षक नहीं मिलते थे तो कहा जाता था अप्रशिक्षित शिक्षकों से क्या सुधार हो सकता है? अब करोड़ों रुपये लगा कर ट्रेनिंग कालेज एवं स्कूल्स खुल रहे हैं C. T. B. T. L. T. Med धड़ल्ले से निकलते जारहे हैं, कोई शिक्षा विशारद हैं कोई माण्टेसेरी ट्रेण्ड परन्तु लग ऐसा रहा कि जितना उपचार किया व्याधि बढ़रही है। जितने प्रशिक्षित ज्यादा बढ़ रहे हैं उतना ही शिक्षा जगत में अंधेरा फैल रहा है। देश के नौनिहाल बालक बालिकाएँ उच्छृंखल, बेकार, अव्यवहारिक अनुशासन हीन, श्रद्धाविरत हो रहे हैं। यहां तक कि उन प्रशिक्षितों पर भी शिक्षा का कोई असर नहीं, वे तो प्यासे मृग की तरह १०) ५) तरक्की के पीछे रेगिस्तान में मारे मारे फिर रहे हैं। उन्हें कोई नहीं पूंछता। प्यासे को पानी चाहिये न कि पानी के उपदेश।

मुझे तथागत की बात याद आती है। कुछ भिक्षु एक अनार्य अशिक्षित को पकड़ लाए और अमिताभ से अनुनय की कि इसे भगवान उपदेश दें। शिक्षा दें। बेचारा अपढ़ भूखा था। भगवान ने आदेश दिया इसे शिक्षा नहीं भिक्षा दो पहले रोटी खिलाओ और फिर शिक्षा।

ये विश्व-शिक्षक समय की जरूरत और प्रपीड़ित मानवता की नाड़ी (नब्ज) को पहिचानते थे, यही कारण था उनकी शिक्षा के कारण अंगुली माल डाकू से साधु और माणिका वेश्या से महा महिमान्विता विदुषी श्राविका बन गई।

आज देवता स्वरूप भोले भाले बालक पश्चिमी प्रणाली से ही नहीं, उसके अधूरे ज्ञान से चल रहे स्कूलों में, शिक्षा विभागों में राक्षस बन कर डाकू बन कर गुरु के हत्यारे बन कर निकल रहे हैं।

परीक्षा प्रणाली भी क्या है? ३३% ज्ञान देकर ६७% अज्ञान से ही जीवन की यात्रा तैर करने को मजबूर करती है। कितने ही साहित्य रत्न और स्नातक प्राप्त सीता को सिता और गीता को गिता और पिता को पीता लिखते हैं। कितने ही मनोवैज्ञानिक एक बनिये के मनोविज्ञान से भी गिरे हुए हैं।

शिक्षा में केवल मस्तिष्क बढ़ाया जारहा है, दिल और हाथ पैर तराशे जारहे हैं। अर्थ-तन्त्र का शिक्षा पर भयङ्कर प्रभाव पड़ रहा है। कोई कितना अच्छा काम करे मिट-जाए परन्तु यदि वह शिक्षक डिग्रियों के सींखचे में नहीं आता तब तक उसे वेतन वृद्धि नहीं दी जायगी। इसके ठीक विपरीत कुछ मत पढ़ाओ लिखाओ परीक्षा पास करो। उन्नति हो जायगी। मानो यहां काम करने के पैसे नहीं मिलते परीक्षा पास करने की ही वृत्ति मिलती है।

भूखे प्यासे शिक्षक अपने बच्चों को ही नहीं पढ़ा सकते तो दूसरे के बच्चों को बच्चा समझने को कब तक तय्यार होंगे ? श्री विनोबाजी ने ठीक ही कहा है यदि स्कूल्स कालेजेज् बन्द होजाएं तो लाभ नहीं तो हानि भी नहीं होगी।

गांधिजी विश्व में तीसरे शिक्षा जगत निर्माता थे। उन्हें देश की गरीबी का पूरा पूरा ख्याल था। उन्होंने आज की शिक्षा की कोढ को शीघ्र दूर करने का वर्धा में संकल्प कर लिया था और अपने अनुरूप तालीम के केन्द्र खोले, परन्तु आज उनके व्यवस्थित रूप से कई L. T. S. और B. T. S. बडे मिठास व कला पूर्ण ढंग से भंग कर रहे हैं।

भारतीय बालकों के दुर्भाग्य हैं कि वे आजाद हिन्द के तो बालक हैं, परन्तु उस जमाने के गुलाम माता पिताओं के हैं। आजकल की परीक्षा प्रणाली युक्त शिक्षा से कई मां बाप दरिद्र हो गए हैं, गांव बिना अकाल और अनावृष्टि के उजड़ गए हैं। अंग्रेजी शराब में सराबोर डायरेक्टर्स इन्सपेक्टर्स के हाथों ही यदि वास्तविक शिक्षा का जनाजा निकाला जारहा है तब तो कहना ही होगा—

" ऊधो किस किस को समझाइये जब कूए भांग पड़ी "

१४ वर्ष के बच्चों पर परीक्षा प्रणाली का मनोविज्ञान की दृष्टि से घातक असर पड़ता है। अतः मैंने श्रीमती हेलन पारर्खस्ट डाल्टन प्रणाली की प्रणेत्री-की तरह अभ्यास पत्र Assi Foruec inmeu बनवाए और उसका प्रयोग किया। बालक वर्ष भर कुछ नहीं करते। परीक्षा के समय ही थोड़ासा घोटा लगालेते हैं अतः मासिक हाउस कंट्रेक्ट ग्राफ पर प्रयोग करता रहा।

अनुभूति कहती है कि यदि शिक्षक गण प्रामाणिकता से इसका अनुसरण करें तो परीक्षा प्रणाली कल बन्द की जासकती है। जितनी प्रामाणिकता परीक्षा में नहीं बरतीजाती उससे अधिक प्रामाणिकता इन असाइनमेण्टस् व ग्राफ भरने में वांछनीय है।

अच्छा तो मैं, इस शिक्षा को संताप की अकुलाहट से चाहता था वर्धा और शान्तिनिकेतन तो देखूं। प्रशान्त सम्मेलन हुआ था तब इन्हीं दोनों संस्थाओं में हुआ था उस समय में वर्धा-सेवाग्राम तो सौभाग्य से देख आया था परन्तु शान्ति निकेतन की प्यास नहीं बुझ पाई थी।

अतः क्षिप्रा तीर नृसिंह घाट उज्जैन के आम्र कुंजों में ही चलशाला को पढ़ाकर शान्ति निकेतन की शान्ति का लाभ ले लिया करता था।

मैंने सुना था शान्तिनिकेतन में गुरुदेव ने बालकों को बहुत आजादी दे दी थी। परीक्षा की सुरसा को मार भगाई थी अतः मेरे लिये वह इसीलिये शिक्षातीर्थ था। वैसे तो वह सबके लिये शिक्षा संस्कृति एवं कला का तीर्थ ही है।

१४ जून ५३ को रुपयों की यातनाएं सहन करते हुए भी अकुलाकर चल पड़ा भोपाल गाड़ी से शान्ति और शैक्षणिक शान्ति की ओर, ग्रीष्मावकाश तो था ही।

रात्रि भर भोपाल के गर्म प्लेट फार्म पर तड़पता रहा। दूसरे दिन, दिन भर इटारसी नागपुर ग्राण्ड ट्रंक एक्सप्रेस से गर्म गर्म पहाड़ों में से गुजरता रहा। "मरामझिरी" के आसपास कई टनेल्स पार करता रहा। सायंकाल को मद्रास जाने के लिये बस एक ही यह गाड़ी रह जाती है अतः भीड़ का तो ठिकाना ही क्या ? थर्ड-क्लास में भी आजकल पंखें लग गए हैं परन्तु हवा तो उनसे भी गर्म ही होजाती है। यात्रियों के बैठने के नम्बर्स बैठकों पर लगा दिये हैं परन्तु उनकी पर्वाह करता कौन है ? हमारे देश के यात्रियों में आज भी यह दोष रहगया है कि दर्वाजे के पास ढेरो सामान जमा देते हैं जिससे चढनें उतरने वाले कभी कभी ट्रेन में ही रह जाते हैं।

उतरते समय प्लेट फार्म पर उतरने भी नहीं देंगे कि चढ़ने वाले धक्का-धूमी मचा कर चढ़े चले आते हैं। यदि सभ्यता या ईमानदारी में रह जाएं तो रह ही जाएं इसी कारण तो लोग बेईमानी को अच्छा समझ लेते हैं।

नागपुर से वर्धा और वर्धा से पुलगांव किसी कारण-वश चला गया । पवनार अब श्री विनोबाजी की पवनार के दर्शन किये ।

पुलगांव से प्रातः ७॥ बजे कलकत्ता मेल पकड़ा और नागपुर होते हुए हावड़ा की ओर चलपड़ा । रास्ते में ऐतिहासिक सीताबल्दी और रामटेक के दर्शन किये, बिलासपुर दुर्ग तक मध्य प्रदेश ही चल रहा था । लू की लपट खिड़की खोलने से मना कर रही थी ।

सायंकाल होते ही एक मुसलमान यात्री ने रमजान शरीफ के रोजे को खोलने के लिये नमाज रेल में ही पढ़ना चाही । मुझसे अवकाश मांगा मैंने सहर्ष स्थान दे दिया । मुझे रंग बिरंगे संध्याराग में कल्पना हुई कि अब मगध प्रदेश आएगा जहां तथागत विहार करते थे, मध्यप्रदेश के आगे ईब्रु पहिला स्टेशन बिहार व उड़ीसा का 'झाड़सूगड़ा' आते ही नंगे पैर मगध भूमि में उतर पड़ा । कलिंग की भी कल्पना हो रही थी, जहाँ अशोक के युद्ध में अहिंसा की नदी उपगुप्त बौद्ध भिक्षु ने बहाई थी । मैंने विचारा "अशोक" को महान कहते हैं परन्तु जिसने महानदी पर अहिंसा की महानदी बहादी उसे लोग क्यों भूलते हैं ? उसकी महानता में भी कोई कोर कसर है ?

रात्रि भर ट्रेन चलती रही ऊपर के बर्थ पर जगह मिलते ही सोगया । टाटानगर की खटखट में नींद खुली मनुष्य तो मर ही गया है । मनुष्यता सूख गई है । लोहे की मशीन की तरह मनुष्य भी मशीनें बन गया है । बिहार का औद्योगिक नगर टाटा की विपुल सम्पत्ति का स्मरण दिलाता रहा । कई मजदूर बाबू इस स्टेशन पर चढ़े और उतरे, इन्हीं विचारों में कि पूँजीवाद का फोड़ा पक गया है, परन्तु इससे मनुष्यों को राहत कब व कैसे मिलेगी पुनः आंख लग गई ।

सुबह उठते ही मैंने स्वतः को बंग भूमि में पाया, मुकुलित मालव महाकोशल, विदर्भ से मगध तक सूखी भूमि पार की । यहां की एकाएक वायु-विचलित हरियाली को देख कर मैंने एक पड़ोसी प्रवासी से पूछा क्या रात वर्षा हुई है ? उसने उत्तर दिया-नहीं तो । फिर यह हरियाली कैसी ? उसने कहा बंगाल तो सदा हरा भरा रहता है यह भारत का एक बगीचा है । यह भूमि सदा सुहागिन है । सुभाष बाबू और रवीन्द्र ठाकुर यहां पैदा हुए हैं । वस्तुतः प्रत्येक ग्राम केले, नारियल आदि के वृक्षों के झुरमुट में बसा है । उनके आसपास खाई लबालब जल से भरी हुई रहती हैं । ऐसा लगता है मानो प्रकृति यहां स्वश्रृंगार निरत रहती है । कसर इस बात की रही कि यहां हर घर मछली पालकर पकडता है, उसका व्यापार करता है, और खा जाता है । 'कोलघाट' 'बागनान' स्टेशन निकट आते ही आते रूपनारायण और दामोदर नदी जो शायद गंगाजी की ही शाखाएँ हैं मटमैले जल से सराबोर मिली । इनकी चौड़ाई क्या है मानो ये समुद्र हैं ।

सन्तरे के नगर नागपुर के बाद कोई फल यहां तक नहीं मिला । आजकल बम्बई से कलकत्ता और हरिद्वार से मद्रास कहीं जाइये चाय, तेल में तले पदार्थ, दूषित दूध, या मावे की मिठाई अवश्य मिलेगी, लेकिन शुद्ध दूध घी की वस्तु तो घर पर नहीं मिलपाती तो यहां कैसे सम्भव हैं ? सफर में इन्सान खाता क्या है ? आंतों से खिलवाड़ करता है ।

ग्यारह बजे हॉवड़ाब्रिज स्टेशन ने पूर्व ही दूर से दर्शन दे दिये । दम में दम आया कलकत्ता आगया है । चाहा था किसी स्टेशन पर स्नान करलूं परन्तु सोचा हॉवड़ा बहुत बड़ा स्टेशन है वहां सावकाश ही प्लेट फार्म या वेटिंग रूम में नहा लूँगा । परन्तु उतरते ही निराश होगया । पूर्वी पाकिस्तान के शरणार्थियों के कारण तो पगडंडी इतना रास्ता भी मुसाफिर खाने में मुश्किल हो गया । शरणार्थियों के बच्चे बहिने माताएँ सब गर्म फर्शियों पर मैले कुचैले पड़े हुए थे । स्टेशन का रंग रोगन भी न मालूम कब से नहीं हुआ था ।

मिरर स्ट्रीट पर मेरे एक मित्र के यहां ठहरा । यहां बसेज में बिस्तर रखने का भी प्रबन्ध है । काली माई के दर्शन के लिये नहा धोकर खाना खाकर सुस्ता कर चलदिये ।

भीषण गर्मी थी, ट्राम के पाटों के बीच छाई हुई हरियाली भी सहम रही थी । डामर की सड़क पर पैर रखना पाप था । धूप से सारा नगर घबडा रहा था, परन्तु फिर भी यहां बेचारे रिक्शा वाले मानव नंगे पैर ही तो जैसी तपीतपाई सड़कों पर आदमियों को इधर से उध

ढोया करते हैं। आजकल यह प्रथा यहीं नहीं, पुरी बनारस प्रयाग सर्वत्र देखने को मिली। विज्ञान के युग में मनुष्य बस इतना ही कर पाया है। रिक्शा वालों का जीवन मानवता पर एक अमिट कलङ्क है।

इसी प्रकार भोपाल व इटारसी से काटोल तक के गर्म पहाड़ों पर पत्थर फोड़ने वाले मजदूरों को काम करते हुए देख दिल दहल जाता है। यह सब पैसे का पाप है। लोग कहते हैं "पैसे का क्या यह तो हाथ का मैल है" परन्तु इस मैल का मेल भी कहां होता है ?

हुगली नदी का पानी इतना गंदा है कि इसे गंगा कहने में संकोच होता है। उसी पर देश विदेश से जहाज शहर के अन्दर तक चले आते हैं। जहाज क्या हैं ? विशाल महल हैं। बल्कि भवन हैं। भारत के छोटे मोटे गांव हैं। जो कतार से यहां पडे हुए दिखाई पड़ते हैं।

कालिका का मंदिर हरसिद्धी उज्जैन से भी अच्छा बन सकता थ। बलिदान मृतक पशु यहां प्रसाद के रूप में बांटे जाते हैं। मन्दिर के अन्दर ही श्रीकृष्ण का वैष्णव मन्दिर है। बलिदान के मन्दिर में वैष्णव कैसे दर्शन करते होंगे ?

बंगाल से बलि में भैंसे बकरे चढ़ाने का अन्त न मालूम कब होगा ? धर्म के नाम पर पाप वैसा ही हो रहा है जो महावीर और बुद्ध के पूर्व याने २५००० वर्ष पूर्व होता था। दुर्गा पूजा में तो पशु चलती फिरती भाजी बन जाते होंगे।

यहां विक्टोरिया मेमोरिअल बेल गच्छ का पार्श्वनाथ मन्दिर भी देखा। श्री पोद्दार छात्रालय के कुछ अहिंसक छात्रों एवं श्री छोटेलाल जैन बेलगच्छ में ही रहते हैं, 'बलि' के रोक के सम्बन्ध में मैंने चर्चा की। उनने कहा पढ़े लिखे बंगालियों द्वारा इसके प्रयास मे श्री रवीन्द्रठाकुर ने भी गालियां खाई हैं। फिर भी आपका प्रयास जारी रहे तो अच्छा है।

दूसरे दिवस श्री रामकृष्ण मिशन का बेलूर मठ देखा

सारे कलकत्ता में पैसे का हाहाकार मचा हुआ है। पर मठ देख कर शान्ति हुई। यह हुगली के तीर पर अमेरिकनों द्वारा बनाया गया है। उपासना भवन जिस पर एक तैरता हुआ हंस बना है, प्रशस्त है। देखने योग्य है। यहां श्री रामकृष्ण परमहंस का मठ है। श्री विवेकानन्द का मन्दिर एवं मातृ मन्दिर तथा शिशुशारदा भवन भी हैं।

निकट ही मिशन का शिल्प मन्दिर एवं इन्टर कॉलेज है। यहां गेस प्लान्ट रखे हैं जिनसे गाय के गोबर से गेस तय्यार होता है जो भोजन बनाने व रोशनी के काम आता हैं। मोटर का स्कूल विद्युत स्कूल देखने योग्य हैं।

सामाजिक शिक्षा प्रसार के लिये दृश्य श्रव्य शिक्षण का उपयोग होता है, मिशन की निजकी सिने व्हान्स एवं कई प्रोजेक्टर्स हैं जो विभिन्न गांवों में लेजाए जाते हैं। इस सम्बन्ध में मेरी श्री मंत्री वामृतानन्दजी तथा एक कार्य-कर्ता श्री श्रद्धाचैतन्य से चर्चा हुई। उनने अपने मिशन की सेवाओं के अतिरिक्त मेरे चलाए हुए अस्पताल स्कूल, चल शाला, कोढ़ी और अन्धों की सेवा के प्रयोग ध्यान पूर्वक सुने और बड़े प्रसन्न हुए।

रात को ही पुरी के लिये रवाना हुआ, "वाल्टेयर" तक के लिए सीट रिजर्व कराई थी। प्रातः कटक के पास महानदी के दर्शन हुए यहां इसकी तीन धाराएँ हैं।

आज उत्कल व प्राचीन कलिंग के दर्शन का दिन है कटक सम्राट अशोक का विजय स्थल है। भुवनेश्वर का विशाल मन्दिर तो प्रसिद्ध ही है। भारतीय संस्कृति का प्रतीक है।

भुवनेश्वर उड़ीसा की नयी राजधानी बनाई गई है। उत्कल के लोगों में भयंकर दरिद्रता है। किसान नंगे ही गर्मी में हल जोते रहते हैं। गांधीजी को उत्कल के ही किसानों पर तर्स आया था। बेचारा उड़ीसा कभी बंगाल में मिला, कभी बिहार के साथ रहा, और कभी स्वतंत्र। अंग्रेजो ने जमीदारों ने तो इसे आम के छिलके की तरह चूसकर सूखने को डाल दिया है। यहां की भाषा उड़िया है। पासही प्रसिद्ध कोणार्क मंदिर है। खण्ड गिरि है। यहां जैन और बौद्ध मूर्तियां निकलती हैं। एल खारवेल व अशोक के सम्बन्ध में यहां के इतिहास तत्व वेत्ता श्री केदारनाथ पत्री जो सम्भवत: म्यूजियम डायरेक्टर भी हैं, संशोधन कर रहे हैं। कटक के एक वेटेरिनरी सर्जन और अन्य उत्कल निवासी मिले, उनने अपने उत्कल के अंग्रेजों के जमाने के शोषण का करुण और कच्चा चिट्ठा सुनाया।

तत्पश्चात् भारत प्रसिद्ध श्री जगन्नाथ पुरी मन्दिर के दर्शन किये । मैं उसे चांवल (भात) का तीर्थ कहूंगा । मन्दिर बहुत ही बड़ा है । पण्डे पुजारियों की आय भी उन्नत हैं फिर भी वहां सफाई की यथातथ्य व्यवस्था नहीं । हजारों मक्खियां भिनकती है और वही प्रसाद बाजारों में मिलता है । नगर पालिका मिठाईयों को कांच या जालों में रखवाने की व्यवस्था करदे तो यात्रियों पर बड़ी कृपा होगी । संक्रामक रोगों से बचाने का जगन्नाथ पुरी में पुण्य लूट लेगी । मन्दिर में एक जैन प्रतिमा भी है ।

परन्तु कुछ यौन सम्बन्धी प्रतिमाएँ भी हैं जो न मालूम क्यों ? कब ? और कैसे ? लगाई गई हैं । कहते हैं कोणार्क में भी ऐसी प्रतिमाएँ पत्थर पर उत्कीर्ण लगी हुई है । क्या ये यहां से हटाकर यौन विज्ञान की किसी संस्था में नहीं रखी जासकती है ?

समुद्र स्नान का यहाँ बड़ा आनन्द है । कलकत्ते में बंगाल सागर ढूंढा नहीं मिलता यहाँ पूर्व से सी-ब्रीजेज (ठंडी नसीमें) चलकर दोपहर को भी मन शान्त कर देती है ।

रातभर का प्रवास कर पुनः कलकत्ता के दर्शन हुए । आज गंगाजी और समुद्र के मिलन स्थान को खोजने की धुन सवार हुई । डॉयमण्ड हार्बर तक पहुंचा परन्तु "हिनोज दिल्ली दूरस्त ।" यहाँ हुगली नदी ही समुद्र बन गई है । आस पास कई एक जहाज पड़े रहते हैं कागजी तक सड़क गई है । मकर सक्रान्ति पर बोट में लोग मुहाने पर स्नान करने जाते हैं । सुभाष नगर में सुभाष बाबू की सजला स्मृति जाग उठी ।

अब मुझे अपने असली अनुराग की संस्थाएं देखने की प्यास लगी । यहां का मूक बधिर विद्यालय देखा यहाँ बालक लुहारी, सुतारी, छपाई का काम भी सीखते हैं । बालक और बालिकाओं के अलग २ छात्रावास हैं । प्रेमानन्द कोढ़ी अस्पताल भी देखा । बेला में अन्धशाला देखी ।

दूसरे दिन प्रत्यूष में ही स्नान कर, क्यूलएक्सप्रेस से बोलपुर की ओर चल दिया । ११ बजे दिन में बर्दवान होंती हुई गाड़ी पहुँची । सामान स्टेशन पर ही रखा । रिक्शा में धूप से सिकता हुआ चला शान्ति निकेतन की ओर । शान्ति निकेतन के प्रवेश द्वार में प्रवेश करते ही, हिन्दी और चीनी भवन दिखे । धूप में लाल माटी की सड़क पर चलता ही रहा आस पास उद्यान आम्र निकुंजों की हरीयाली । वृक्षों के झुरमुट । परन्तु गर्मी ने शान्ति निकेतन में भी अशान्ति जो मचा रखी थी । सुना है इ दिनों शान्ति निकेतन बहुत ही गर्म रहता है । थोड़ी दूर पर कला भवन मिला, यहाँ शिक्षकों द्वारा निर्मित प्रस्तर कलाकृतियां पक्के और कच्चे कुटीरों के समूह वर्षा ऋतु में बड़े ही सुहावने प्रतीत होते होंगे । यहाँ बुद्ध, अभय और ध्यान मुद्रा में चूने की प्रस्तर प्रतिमा में बैठे हैं । श्रवण कुमार की कावड़ एक विशेष कलाकृति है । आ चम्बल-भारती और विश्व-भारती के मिलन का सा दि निकला था । श्री राधाचरण जी 'बागची' के कुटीर में पहुँचा । मैं गरम, मेरे कपड़े गरम । सड़क लाल, पास के पोखरे के पत्थर लाल, भवनों के प्लास्टर लाल और मेरी आंखे भी लाल । ऐसी ही स्थिति में सूखा हुआ, कुम्हलाया हुआ, प्यासा-थका-मांदा एक अत्युच्च कलाकार के निकट पहुँचा ।

नमस्कार चमत्कार के पश्चात् ही उनने पानी का पूछा । उनकी नन्हीसी अबोध बालिका स्फटिक जैसी तश्तरी पर साफ कांच के ग्लास में शीतल जल लाई और ग्लास देने के पूर्व अत्यन्त 'विनय' से नमस्कार किया । मैंने न तो उसकी वाणी सुनी न उसके अन्य गुण देखे उसके नमस्कार मात्र में ही कला बोल रही थी । उसका ना भी तो "अजन्ता" है ।

बागची जी भी मस्त प्राणी हैं । मालूम हुआ भगवान महावीर की तरह निजानन्द रसलीन रहा करते हैं । लड़क से चिढ़ सच्ची सरस्वती और रमा से प्रेम, उनके रोमरो में कला रमी हुई है । उपनिषद् वेद को वह अपनी क में मुंह से बोलवा सकते हैं ।

उन्होंने मुझे घड़ी भर सुस्ताने को कहा, परन्तु मु तो उनकी कला से ही सुख मिल गया, उन्होंने श्री निकेत का मार्ग बताया । १ मील पश्चिम में बिना छत्री, बि टोपी या सिर पर रूमाल रखे, भर दोपहर में दीवाना चल पड़ा । मुझे सामाजिक व ग्राम्य शिक्षा श्री व शान्ति निकेतन प्रणाली का ज्ञान जो करना था । मैं अपनी ग्राम में अनिवार्य शिक्षा पर इसका प्रयोग चाहता था ।

विनय भवन से होता हुआ "सिरुल" ग्राम के समीप श्री-निकेतन पहुंचा। मार्ग में एक भी प्राणी नहीं मिला जिससे मार्ग भी पूछ लेता। अनुमान अनुमान में ही पहुंच गया। इस समय पश्चिमी द्वार पर रिक्शा प्रायः नहीं मिला करते हैं। यहां लुहारी, सुतारी, 'लेकर' व 'लेदर' वर्क, बेकरी, कताई बुनाई आदि विभाग देखे। सामाजिक शिक्षा के केन्द्र भी यहां हैं। यूनेस्को की ओर से समाज शिक्षा-सेवियों का प्रशिक्षण भी विनय भवन में चलरहा था। सिरुल ग्राम-वासियों से भी मिला। "बाल गुड़ा" और "भू-वन-डांगा" ग्रामों में शान्ति व श्री-निकेतन की शिक्षा प्रणाली के प्रभाव का अध्ययन किया। मैंने रात के जगे हुए होने और इतनी धूप में चैन लेने की लालसा होने पर भी चैन नहीं लिया, पुनः शान्ति निकेतन आया। सीधा उत्तरायण आफिस में श्री रथीन्द्रनाथ जी की स्वास्थ्य दशा पूछने गया। पता चला था के आप रुग्ण हैं।

तत्पश्चात् श्री सन्तोष कुमार 'भोंजा' 'चोधरी' जो श्री नन्दलाल बोस के जामातृ हैं, उनसे मिला। उनने मेरी शिक्षण समस्याएं सुलझाने के लिये पुनः श्री-निकेतन में मिलने को कहा। उज्जैन के कलाकार कस्तूरबा ग्राम इन्दोर के अध्यापक और शान्ति निकेतन के शिष्य श्री चन्द्रेश 'सक्सेना' के विषय में भी चर्चा की।

श्री प्रिया रंजन सेन ने कालिदास की उज्जयिनी, क्षिप्रा, चम्बल पर बहुत देर तक चर्चा की। फिर मैं चीनी दम्पत्ति श्री तानयून शान से मिला। एक चीनी विद्यार्थी श्रीमती शान के पास लेगया, उनने अपने पति का परिचय कराया। बुद्ध धर्म, साम्यवाद, चीनी संस्कृति पर खासी चर्चा छिड़ गई। आपने नालन्दा, श्रावस्ती, बुद्ध गया, सारनाथ को भी देखते जाने को कहा। जैन धर्म के सम्बन्ध में उनके क्या विचार हैं? इस प्रश्न पर आपने मुझे आपका एक लेख "अंग्रेजी हुक्मचन्द अभिनन्दन ग्रन्थ" में बताया। आपने प्रत्येक चीनी विद्यार्थी से परिचय कराने के विषय में भी औत्सुक्य प्रकट किया।

मैं अपने सौभाग्य को मन ही मन सराहता रहा कि इस जन्म में मैं शान्ति निकेतन के सूर्यास्त के सौन्दर्य को गरीब होते हुए भी देख रहा हूं। यहां की पथधूलि मैंने माथे मल ली इस भावनासे कि कभी गुरुदेव यहां पुष्प वाटिका में जिन्दे फूलों (बालकों) को पढ़ाते थे। श्री दीनबन्धु एण्ड्रूज जैसे मानव मंगलकारी व्यक्ति का व्यक्तित्व यहां के कण-कण में बिखरा हुआ है।

सूर्यास्त के पश्चात् ही श्री क्षितीशचन्द्रजी से यहां की शिक्षा पद्धति समझने के लिये मिला। उनने भारतीय संस्कृति के आधार पर पूर्व और पश्चिम की मैत्री का भी, अनूठा शैक्षणिक परिचय दिया।

"माता माण्टेसूरी से भी अधिक यहां की बालकों की शिक्षा प्रणाली उपयुक्त है।" ऐसा सिद्धसा कर दिया। परीक्षा प्रणाली से छोटे बालक यहां नहीं पढ़ाये जाते हैं। बालकों की छिपी हुई शक्ति का साहजिक विकास किया जाता है। संगीत, चित्र, काव्य, नाटक, नृत्य, पूर्व पश्चिम की मैत्री यहां की शिक्षा के विशिष्ट, शिष्ट एवं मिष्ट अंग हैं। विज्ञान की अपेक्षा 'कला' पर अधिक ध्यान दिया जाता है। खुलेवायु में पढ़ाई कितनी सुन्दर वस्तु है?

अब तो "शान्तिनिकेतन" यूनीवर्सिटी ही है। श्री नेहरू जी चांसलर हैं, आर्थिक कठिनाई तो है ही। क्या ही अच्छा हो यह संस्था केवल श्रीमन्तों की ही नहीं रह जाय, किन्तु गरीब से गरीब भी इससे लाभ उठा सके। आज तो अधिकतर धनवानों के ही बालक इससे लाभ उठा सकते हैं। "सेवाग्राम" गरीबों की संस्था है, इसका भी उद्देश्य दरिद्रनारायण की सेवा है, परन्तु कहीं उद्देश्य से दूर न होजाए यह देखना है। यहाँ की विश्व भारती पत्रिका तो सर्व श्रेष्ठ पत्रिका है ही। चेस्टर बावेल्स् की सुपुत्री भी यहां अध्ययन करती है।

यहां के कुछ प्राध्यापकों ने दुर्गापूजा व दीपावली के बीच फिर शान्ति-निकेतन आने का मुझसे आग्रह किया है। मैं भी चाहता हूँ "चलशाला (उज्जैन) व शान्ति-निकेतन एक करदूं", परन्तु पैसे की दीवार बीच में चट्टान बनकर खड़ी है।

आज भी शान्तिनिकेतन की द्रुमावलियां, उद्यान, चित्राङ्कण, कलाकृतियां, प्राचार्यों से चर्चाएं मेरी आंखों में तैर रहे हैं व कानों में गूंज रही हैं।

आते समय वाराणसी से होता हुआ आऊं यह संकल्प था ही। 'क्यूल" (Kuil) होता हुआ चला आरहा था, उत्तर पश्चिम की ओर मगध में गाड़ी मुड़ रही

थी, बाएं हाथ की ओर गंगाजी पूर्व दक्षिण की ओर मीलों से बही चली आरही थी। भारतेन्दुजी की पंक्तियां मुँह से बरस पड़ी, "नव उज्वल जल धार, हार हीरकसी सोहति, बिचं बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मणि पोहति" भागलपुर पाटलीपुत्र के दर्शन दिये। यहां तो गंगाजी पर बोट चलते हैं। अशोक, चन्द्रगुप्त मोर्य और उज्जैन को दिमाग में डोरी लग गई। नालन्दा, वैशाली, बुद्धगया को नमस्कार कर आगे बढ़ा। काशी के निकट गंगाजी का पुल सूर्यास्त होते होते आया। गंगा की गंभीरता और रात होती हुई वेला की गम्भीरता से हृदय सत्य, शिव, सौन्दर्य त्रयी में गहरा उतरता रहा। मार्ग में एशिया का सबसे बड़ा जंक्शन 'मुगल सराय' भी मिला। यहाँ आठ-आठ दस-दस मिनिट में हर दिशाओं के लिये गाड़ियां छूटती हैं।

बनारस छावनी की श्रीकृष्ण धर्मशाला में रात रहा। शौचादि के लिये यहां टट्टियां नहीं हैं, प्रत्यूष में ही एक बड़े सहन में सब लोग बैठ जाते हैं।

उषाराग में ही गंगाजी चलदिया। तांगे वालों का व्योपार तो यहाँ पूरा मरगया है, रिक्शा का ही प्रचलन है। मणिकर्णिका घाट पर धोती गमछा लेकर खड़ा ही था कि फिर भारतेन्दुजी की पंक्तियां याद आगई।

"कासी कहूं प्रिय जानि ललकि भेंटयो जग धाई।
सपनेहू नहीं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बंधे नव घाट, उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुं छतरी, कहुं मढ़ी बड़ी मन मोहत जोहत ॥"

कलकत्ते में कभी भी मैंने गंगाजी का स्नान नहीं किया था। आज "हिमनग कंठ हार कल।" में स्नान कर अपने को धन्य माना। वस्तुत: भारत भर की माता गंगा मैया है। अपनी चम्बल यमुना में से होती हुई इसी में तो विन्ध्याचल और हिमाचल जल स्रोतों से प्रेमाबद्ध हैं। नारायणप्रसाद को चम्बल युक्त गंगाजल और गंगा से बंगोपसागर मिल जाए फिर उसे क्या चाहिये? प्रकृति का साहचर्य, निसर्ग निरीक्षण, जनमानस में अवगाहन बस आनन्दातिरेक। आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!! खूब स्नान किया तैरकर! डूबकर!! मल मल कर!! क्योंकि उसमें चम्बल जल भी तो है।

सिन्धिया घाट से चढ़ता हुआ, अहिल्याबाई (मध्य-भारत की पुण्यवती सम्राज्ञी) द्वारा नव निर्मित विश्वनाथ मन्दिर का दर्शन किया। परन्तु उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर की ओर बात है। महाकाल की मूर्ति भी बड़ी है। और महा समय की कल्पना भी विशद।

काशी विश्वविद्यालय होल्कर हाउस के पश्चात् भारत माता मन्दिर देखा। सारनाथ जाना था, विविध बिहारों की पावन यात्रा करनी थी, अतः व्रत से रहा। केवल फल फूलों पर गुजारा किया।

छोटी गाड़ी गोरखपुर से पेसेंजर तीन आने का टिकिट खरीदकर मुड़ा सरस सारनाथ की ओर। तुलसीदास रोड़, हरिशचन्द्र घाट, असीघाट, दशाश्वमेघ घाट देखकर "संवत सौरहसो असी असी गंग के तीर" स्मरण हो आया इतने में ही 'वरुणा' नदी आगई। ज्ञात हुआ 'वरुणा' और उसपार 'असी' सरिता के मध्य बनारस बसा है, इस कारण उसे वरुणा, असि या वाराणसी कहते हैं। उत्तर प्रदेश के निचले मैदान की गर्मी तो बला की गर्मी है। फिर भी 'शबे मालवा' का आनन्द मध्य-भारत में उठाया जारहा है, तो औरंगजेब के शब्दों में 'सुबहा बनारस' का नज्जारा भी तो समा बांध देता है। औरंगजेब की बनाई हुई मस्जिद की मीनार से यदि गंगाजी देखी जाए तो कहना पड़ेगा--

सफ बांधे दोनों जानिब बूटे हरे हरे हों।
नदी का साफ पानी तस्वीर (अरुण आकाश की) ले रहा हो।

कलकत्ते में एक सज्जन 'श्री नबालजी' ने कहा था आप शान्ति निकेतन या सारनाथ जा रहे हैं, बुद्ध बोध भरपूर लेने, कभी इसी इच्छा से 'खांसा जयन्तियां नागा की बर्फीली घाटियों को पार करता चीन से होन च्वांग हिंदुस्तान में आया था। मैंने कहा उसकी क्या बात है। वह तो एक महा श्रमण तपस्वी था और मैं व्यर्थ का घुमक्कड। उनने कहा वह युग ऐसा था कि ज्ञान के नाम पर यात्रा की तो किसी गांव या नगर के लोग श्रद्धावनत होकर उसे ठहराते, खाना खिलाते आवभगत करते थे। अब कोई पानी का भी नही पूछता। हां, प्रेस और प्लेट फार्म पर जरूर आपका नाम आजायगा। अतः इस दृष्टि से आज के ऐसे घुमक्कड़ों को साधना भी कम नहीं।

मुसाफिर से बातोंही बातों में चट से सारनाथ आ गया। श्री रामतीर्थआश्रम का बोर्ड मात्र ही देख पाया, १२ बजे थे। उत्तरप्रदेश की धूप अपने पूरे तारुण्य पर थी अब न तो सुबह था न बनारस।

चौखंडी स्तूप दूर से दिखाई पडा। मैंने जूते उतार लिए वहीं से नमस्कार किया उस स्थान की धूल सिर पर चढ़ाई क्योंकि बुद्धजी ने बुद्ध गया में प्रज्ञा-पारिमिता, दानपारिमिता शीलपारिमिता पार होकर सम्यक सम्बोधि प्राप्त कर धम्म चक्र प्रवर्त्तन के लिए यहाँ विचरण किया था पांच शिष्यों को सर्वप्रथम उपदेश दिया था।

पास ही 'गंज' गांव है। लोगों से पूछा यह क्या है? उन्होंने कहा यह सीता की रसोई है। मुझे आश्चर्य हुआ, "स्तूप साफ दिख रहा है, और लोग क्या कह रहे हैं!" मैं श्रद्धासिक्त हो स्तूप पर चढ़ा उत्खनित भाग भी देखा। अन्दरी ऊपर का भाग कुछ मुगल संस्कृति सी बनावट का दिखा। लाल ईंटें और धूप में मस्तिष्क चकराने लगा। पानी का अभाव तो इस वर्ष है ही। कहां पियें? किससे पानी मांगे?

'अस्तु', प्रश्न चिन्ह दिमाग में लगा रहा। आगे चला मूल गंध कुटी बिहार का शिखर और धम्मेक स्तूप बहुत ही बड़ा दिखाई दिया। बाईं ओर चला। यहां धम्म चक्क जिनबिहार धर्मराजिक स्तूप हैं। यहां भगवान अमिताभ ने एक वर्ष चातुर्मास किया था और सर्व प्रथम उपदेश दिया था।

'चरथ भिक्खवे चारिकम् बहुजन हिताय बहुजन सुखाय उत्थाय अनुकम्पाय देव मनुस्सार्णं।

देसेथ भिक्खवे आदि कल्याणम्, मज्झे कल्याणम्, परिवसने कल्याणं सात्थं, सव्यंजनं ब्रह्मचर्येण पकासेथ"

हें भिक्षुओं। बहुत जनों के हित और सुख के लिए देवताओं और मनुष्यों के उत्थान और कल्याण के लिये उन पर अनुकम्पा करने के लिये इधर उधर घूमो और सार्थ सब्रह्मचर्यं ऐसा उपदेश करो जिसके आदि मध्य और अंत में कल्याण हो।

इसे 'इसिपतन' या "मृगद्व" भी कहते थे क्योंकि यहां मृगों के लिये हराभरा वन था। यहां हिसा का भगवान ने निषेध किया था। आज भी इन खण्डहरों बिहारों की भूमि में हिसा, मांसाहार, अश्लील शब्दोच्चारण वर्ज्य है। प्रमुख बिहार Main shrine के समीप खण्डित अशोक स्तंभ है जिसमें ब्राह्मी लिपि में भिक्षुओं में फूट न डाली जाने की आज्ञा अंकित है।

धम्मेक स्तूप में कुछ पावन अस्थियां भगवान बुद्ध की रखी हुई थीं। उसके उत्खनन से स्वर्ण मोती, चंदन आदि निकले थे। बनारस के किसी राजा ने धर्म की वस्तु घर में न रखने के भय से उसे गंगाजी में प्रवाहित कर दिया था यह स्तूप अशोक निर्मित है। यहां कनिष्क कुमार देवी आदि के बनाए हुए भी भग्न विहार हैं। निकट ही श्रेयांसनाथ जैन मंदिर भी हैं। एक म्यूजियम है जहां यहां की उत्खनित वस्तुएं संग्रहित हैं। देखने के लिये =) का टिकट लेना पड़ता है।

यहाँ बिड़ला की एक धर्मशाला, एक जैन धर्मशाला भी हैं। पोस्ट आफिस, महाबोधि लायब्रेरी, प्राथमिक बेसिक महाबोधि स्कूल, महाबोधि इंटर कालेज और फ्री डिस्पेंसरी भी है।

लेडी मूनासिह लंका की एक दानशाला भी है। बर्मी आर्य संघाराम भी बना हुआ है।

मूल गंध कुटी बिहार में जाते ही सम्यक शांति मिलती है। एक बहुत बड़ा घंटा बुद्ध मंदिर में टंगा हुआ है जो, एक लकड़ी के आड़े टंगे हुए टुकड़े से बजाया जाता है। अपने मंदिरों जैसी गंदगी यानी, फूल, बिलपत्र पैरों के नीचे कुचले हुए और उनकी सडांध हरहर भोले या गिरिराज धरण की जय आदि यहां नहीं है। यह अत्यन्त स्वच्छ मंदिर है। शांत है पिन ड्राप साइलेन्स है। मंदिरों में भी लोग अपने यहां अपशब्द का उच्चारण करते हैं, यह बात बौद्ध मन्दिर में नहीं है। एक विशाल सुनहरी प्रतिमा भगवान बुद्ध की है उसके सामने एक रस्सा लगा हुआ है उसे पार करनें की दर्शकों को अनुमति नहीं है। फूलपत्ती, अनाज पैसों की फेका फेंकी करना और तज्जनित गंदगी यहां नहीं है। तीनों अन्तर प्राचीरों पर " कोरात्सुनोसु " एक जापानी कलाकार के ४००० और चार साल के बनाए हुए सजीव चित्र हैं जो जापान सरकार के आदेश से बनाए हुए हैं। इन में पूरा बुद्ध चरित्र अंकित है। वस्तुतः हमारे भारतीय कलाकारों के देखने योग्य चित्र हैं। यह १९३२ से

१९३६ तक बनाए गए हैं। अंग्रेज उपासक श्री व्राइटन ने १०००० रुपये इस बिहार के लिये दिये थे श्रीमती "हेवा बिटाराइन" ने भूमि प्रदान की थी। श्रीमती "एलिजावेथ" 'होनोलूलू' निवासिनी ने भी सहायता की थी। अनागारिक श्री देवमित्र धम्मपाल तो महाबोधि के प्राण ही रहे हैं।

एक ग्वाल ने मुझे चौखंडी स्तूप के बिषय में कहा "हुमायू शेरशाह के भय से इसमें कुछ दिनों के लिये छुपा हुआ था। गंज ग्राम की सीता नामक लड़की ने यहां उसे रोटियां खिलाई थी। जब वह घर आया तो अकबर से कहा। उसके समुचित ध्यान न देने पर स्वतः उस स्तूप के अन्दर के भाग को सीता स्मृति में बना दिया —इसलिये यह सीता की रसोई कहलाता है।"

काशी बिद्या का घर होते हुए भी पैसे के अभाव में यह बालक अपढ़ ही है। और पाठशाला महाबोधि के सम्मुख चौपाए चराता हैं। ऐसे कई बालक निरक्षर होंगे।

तत्पश्चात में श्री ली चून सेंग फुकियन चीन निवासी द्वारा सन १९३८ बुद्धाब्द २४३३ में बनायेहुए चीनी बुद्ध मंदिर में गया वहां बुद्धजी की विशाल प्रतिमा के सामने कांच की पूरी सुगंधित तैल से बरनी भरी थी, उसी में बत्ती जल रही थी। लंका के एक कलाकार द्वारा बनाए हुए बुद्ध चरित्र के चित्र चारों ओर लगे हैं। चीनी ढोल भी रखा हुआ है। चीन के लोगों द्वारा बनाया हुआ चिक भी मंदिर के द्वार पर टंगा हुआ था।

मंदिर के पार्श्व भाग में दो चीनी भिक्खु श्री 'पिण्टाओ' और श्री चिन्हाओ से मिला। उनने मुझे चीन के बुद्ध धर्म पर बातें समझाईं। श्री गांधीजी का उनके कमरे में एक चित्र लगा हुआ था। उनने कहा चीनी जनता गांधीजी को बुद्धजी के समान समझती हैं। सम्भवतः यहां से अधिक चीनी लोग उन्हें श्रद्धा से मानते हैं। दोनों ने एक चीनी पुस्तक भी दी।

पास ही यहां एक चबूतरे पर अश्वत्थ वृक्ष है। बोद्ध गया में जिस बोधिवृक्ष के नीचे भगवान तथागत को ज्ञान प्राप्त हुआ था उसी की एक कलम अशोक कन्या संघमित्रा लंका ले गई थी। उसी की कलम देवमित्र धम्मपालजी यहां लगाई है। उसके पत्ते मैंने भी उज्जैन ले जाने के लि रख लिये। धर्मदूत का कार्यालय देखता हुआ फिर अश के नीचे ठहरा क्योंकि इसी लंका के अनुराधापुर से ए डाली मेरे सम्मुख गत शीत में सांची के चेत्यगिरि विहा के समीप श्री नेहरूजी, ब्रह्मा के यू नून, लंका के रत्न से नायक, सिक्किम के महाराज कुमार, स्याम, नेपाल कम्बो डिया के अन्य सज्जनों के सम्मुख अगहन शु० १५।१९५ को लाई जाकर लगाई गई हैं। दो बार दर्शन का लाभ लिया चीनी मंदिर के नौकर के कमरे में एक चिड़िया मारने गुलेल रखी हुई थी। यह देखकर आश्चर्य हुआ संभव किसी को मारते हुए देखकर उससे लेकर रखली हो।

श्री रामकृष्णमिशन आश्रम देखने का समय ही न रहा बनारस आकर स्नान किया। रात को १बजे मोटरगेज प्रयाग की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में श्री यदुनंदन अध्यापक आयुर्वेद काशी विश्वविद्यालय मिले। आपने सूर्यनारायणजी व्यास उज्जयिनी के बिषय में पूछा और विद्वानों ने पूछा।

प्रयाग में प्रत्यूष मे ही संगम स्नान किया। वहां गं का जल दुग्धोज्वल श्वेत है और यमुना का आकाशोज्व नील। मिलन पर भी कुछ दूर तक रंग में भिन्नता जमुनाजी में जल अधिक है, गंगाजी में कम। प्रतीत हो है गंगाजी जमनाजी में मिली हो। यहां घाट नहीं बने उज्जैन व बनारस के घाट बड़े सुंदर हैं। किले में अक्ष वट व अशोक की लाट है।

श्री नेहरूजी का आनंदभवन व स्वराज्यभवन पुन उत्तर प्रदेश शासन का Psychological (मनो ज्ञानिक केन्द्र भवन) देखा।

जबलपुर 'मदन महल' भेड़ाघाट इटारसी होशं बाद की रेवारानी व भोपाल की पर्वत राजि देखता पुनः ३ बजे शिप्रा सलिल में स्नान कर घर पहुंचा।

इस प्रकार मुझे बार बार स्वप्न में दीखता है वि क्षेत्र " शिप्रा से शांति निकेतन "।

मालव-गण पंजाब के अर्वाचीन निवासी थे ?

श्री नरेन्द्र धीर

इन्हीं पंक्तियों के लेखक ने कुछ दिन पूर्व 'विक्रम' के पृष्ठों में ही एक लेख लिखा था जिसमें यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि मालव-गण पंजाब से होते हुए अवन्ती प्रदेश में पहुंचे, इसी कारण उनकी बोली में तथा पंजाब की 'मलवई' में पर्याप्त समानता है। लेख के अंत में 'विक्रम' के विद्वान् सम्पादक श्री व्यास सूर्यनारायण जी ने एक नोट द्वारा स्पष्ट किया था कि यह मेरा भ्रम मात्र ही है तथा यह भी संकेत मिला था कि वास्तव में मालव गण अवन्ति प्रदेश से पंजाब में युद्धादि के लिये या अन्य कार्यों से आते रहे हैं। हमें अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि निश्चयात्मकरूप से अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया है कि मालव-गण पुरातन निवासी अवन्ति प्रदेश थे या पंजाब में स्थित 'मालव' के। दोनों ही मतों का प्रतिपादन विद्वान करते हैं, तथा अपनी अपनी बात को सिद्ध करते हैं; किन्तु न्यायोचित तर्क अप्राप्य ही हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद की रचना ईसा से २५०० वर्ष पूर्व सप्तसिन्धु (पंजाब) में हुई ❀ इससे हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि पंजाब या सप्तसिन्धु में आर्य लोग सर्व प्रथम निवास करते रहे हैं। उस समय मध्य-भारत या दक्षिण-भारत में आर्यों का निवास नहीं था। धीरे धीरे आर्यों ने अपना विस्तार किया और लगभग हजार-डेढ़ हजार वर्ष ईसा से पूर्व तक वे लोग नर्मदा तक फैल सके। इसी काल में मध्यभारत में अवस्थित अवन्ती प्रदेश ने अपनी ख्याति पाई और वह बौद्ध मत का एक प्रधान केन्द्र बन कर रहा। कालान्तर में 'अवन्ती-भाष्य' रचना हुई। इस काल तक हमें कहीं भी 'मालव-गण' का उल्लेख नहीं मिलता है।

कुछ विद्वान पुराणों का भी सन्दर्भ देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं जैसा कि श्री व्यासजी का मत है- किन्तु इतिहासकारों का अधिकतर मत यही है कि पुराणों की रचना ईसा की चौथी शताब्दी में सम्पूर्ण हुई ❀। सम्भव है मालव-गण पुराणों के रचना काल में मध्य-भारत में पहुंच चुके हों। यदि मालव गण आर्य थे तो यह निश्चय ही है कि वे पंजाब से होते हुए ही अवन्ती प्रदेश में जा बसे; किन्तु उनके अनार्य होने के सम्बन्ध में कोई भी प्रमाण नहीं मिलते—वे निश्चित तौर से आर्य ही थे। आर्यों का भारत में आगमन पंजाब या सिंध के मार्ग से ही हुआ है, निश्चय ही पहिले आर्यगण पंजाब में आकर बसे और कालान्तर में वे अवन्ती प्रदेश में चले गये। पुरातनकाल से आधुनिक मालव अवन्ती प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था, 'मालव' के नाम से नहीं।

इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय मालव-गण पंजाब में निवास करते थे। उन्होंने सिकन्दर से युद्ध भी किया था, तथा उसका अंग-अंग छेद दिया था। यूनानी इतिहासकार प्लूटार्क ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया है- "मालव भारत की सब से अधिक युद्ध कुशल जाति कही जाती थी। उनसे युद्ध करते हुए सिकन्दर ऐसी स्थिति में पहुंच गया था कि वह उन के द्वारा उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले जावें। उसने अपने को मालवों की दीवाल के नीचे से खदेड़ भगाया †।" यही नहीं ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुए विद्वान 'पाणिनी' ने भी मालवों का निवासस्थल पंजाब ही बताया है। मेसेडोनिया के लेखक भी मालवों का निवास पंजाब ही मानते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० जायसवाल "हिन्दूपॉलिटी" के चतुर्थ परिच्छेद में लिखते हैं—

❀ "भारतवर्ष का इतिहास"- डॉ० ईश्वरी प्रसाद एम. ए. डी. लिट, पृष्ठ २६

❀ "पुराण कुल १८ हैं। इनमें श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण मुख्य हैं। इनका आधुनिक हिन्दू धर्म पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। विद्वानों का कहना है कि यह चौथी शताब्दी ईसवी के लगभग रचे गये।"—'भारत वर्ष का इतिहास'- डॉ० ईश्वरी प्रसाद, एम. ए. डी. लिट, पृष्ठ ४१

† 'चन्द्रगुप्त मौर्य और अलेक्जण्डर की पराजय'-डॉ० हरिश्चन्द्र सेठ

"The Macadonian writers describe many of these (described by Panini) respublics. Two of them are the kshudrakas & the Malavas"

कौटिल्य ने भी अपने अर्थ शास्त्र में 'मालव' का उल्लेख किया है। डॉ० जायसवाल 'Hindu Polity' के पांचवे परिच्छेद में 'Republics of the Budhist Literature' (५००-४०० ई० पूर्व) में लिखते हैं –

"Politically the most important of the group were the Vrijis or Vedabas & the Mallas. This was also noticed bothly by Panini & Kautillya"※

दोनों लेखों में दिये गये ऐतिहासिक तथ्यों से हमें यह ज्ञात होता है कि ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व से १५० ई० तक मालव गण पंजाब की भूमि पर ही निवास करते रहे, इसके पश्चात् वे लोग (क्षुद्रक भी मालवों में विलय हो गये) राजपूताना में गये और वहाँ से भी कालान्तर में अवन्ती प्रदेश में जा बसे। हम पहिले लिख चुके हैं कि डॉ० राय चौधरी के मतानुसार मालव गण पंजाब के ही निवासी थे। × उसके पश्चात् हमने डॉ० आर. जी. बनर्जी के मतानुसार यह भी स्पष्ट लिखा है कि वे कालान्तर में नर्मदा के समीप जा बसे 卐। डॉ० जायसवाल भी 'हिन्दू-पॉलिटी' में स्पष्ट लिखते हैं—

"क्षुद्रक तथा मालव-गण ३२६ ई० पूर्व तक पूर्णतया स्वतंत्र हो कर रहे। इसके पश्चात् क्षुद्रक गण मालवों में विलय हो गये और मालव-गण ईसा की तृतीय शताब्दी तक भी स्वतन्त्र होकर ही राजपूताना की बंजर भूमि में विचरण करते रहे। उन्होंने लगभग १००० वर्ष का स्वतंत्र जीवन व्यतीत किया यह निश्चय है।"※

ग्रीक इतिहासकार 'एरियन' भी इसी मत का समर्थक है। जो पुरातन सिक्के प्राप्त होते हैं, उनसे भी यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मालव गण पंजाब, राजपूताना तथा मध्यभारत में निवास करते हैं। यही नहीं मालवगण का स्वतन्त्र राज्य भी इन प्रांतों में रहा है। +

उपर्लिखित ऐतिहासिक तथ्य ही नहीं, और भी ऐसे विभिन्न प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनसे हम निश्चय रूप से कह सकते हैं कि मालवगण पंजाब के ही अर्वाचीन निवासी हैं, और यहीं से वे लोग कालान्तर में अवन्ती प्रदेश (मध्य भारत) में गए हैं। जिन ग्रन्थों में अवन्ती तथा मालव प्रदेश को भिन्न बताते हुए एक ही बताया है निश्चय ही वे ग्रन्थ बाद के लिखे हुये हैं। विद्वानों का मत है कि पुराणों की रचना ईसा की चौथी शताब्दी में समाप्त हुई। पुराणों में मालव एवं अवन्ती प्रदेश दोनों का ही उल्लेख मिलता है। यह निश्चय है कि अवन्ती को ही कालान्तर में मालव कहा गया है, इसी कारण लेखकों ने इस प्रदेश को दोनों नामों से सम्बोधित किया है। यह भी सम्भव हो सकता है कि पहिले लेखक गण इसे अवन्ती पुकारते रहे, तथा जब मालव गण वहाँ जा बसे तो उसे वे 'मालव' कहने लग गये। बौद्ध साहित्य के कुछ ग्रन्थों में जिनकी रचना ईसा

※"Apart fromthis Panini says that these republics were situated in the valhika country : Jayaswal mentions that this valhika country is nothing but the territory of Punjab & the Sindh — He bases his judegment on the fact that Valhika meant 'rivers' and, again the Valhika country was for away from the Himalayas'... chapter IV Dr. Jayaswal's "Hindu-Polity"

× देखिये,-"Advanced History of India" डॉ० रायचौधरी, पृष्ठ ६५

卐 देखिये-'Prehistoric Ancient & Hindu India'-डॉ० आर. डी. बनर्जी, पृष्ठ १६४

※ देखियें,-डॉ० जायसवाल रचित-'Hindu Polity' १९ वां परिच्छेद

+"Some coins give us the names of the kings & dates of their reigns. The Malava coins are found in the Punjab Rajputna & C. I. This shows that the independent kingdom of Malavas was situated in these parts of India respectively" 'Hindu Polity'- by Dr. Jayaswal, chapter XIX (c)

से पूर्व मानी जाती है में अवन्ती प्रदेश का ही उल्लेख मिलता है--मालव प्रदेश का नहीं।

बहुत समय पूर्व डा० सिल्वन लेवी ने एक प्राकृत पद्य प्रकाशित किया था, पता नहीं उसका आधार क्या है ? परंतु उसमें अवंती की (मालवा की नहीं-ले०) केन्द्रीय भूमि 'माहिष्मती' बतलाई है-

हंतपुरं कलिङ्गानि अस्सकानांच पोटनम्।
महिस्सती अवन्ती ना सोवीरानां वेरोसकम्।

और हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में एक 'कुमालव' शब्द अंकित किया है (भूमिकाण्ड २६) सम्भव है, पण्डित भगवद्दत्तजी के अनुसार 'यह छोटा मालवा होगा। परंतु यह सौवीर गण राज्य के अंतर्गत था, अलबेरूनी इसे मुलतान के पास प्रदेश में सूचित करता है। वैसे सौवीर का स्वतन्त्र वर्णन अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति, भास के अविमारक आदि में तथा आयुर्वेद ग्रंथों में भी है। वहां मालव की कहीं चर्चा नहीं है। इसी प्रकार वाल्हिक देश में क्षुद्रक और मालवों को आयुध जीवी कहा गया है। (काशिका वृत्ति ५।३।११४) महाभारत कर्ण पर्व में वाल्हिक में अनार्य निवास बतलाया है। सम्भव है इन अनार्यों के उच्छेदन के लिए आयुधजीवी (सैनिक) मालवों को रखा गया हो। क्षुद्रक मालवों का वर्णन प्रायः महाभारत में कई स्थल पर आया है। पातञ्जलि (१५० ई० पू०) ने भी (महाभाष्य) इनकी चर्चा की है (इनका निवास उस समय भी पंजाबही में प्रतीत होता है--ले०)। मालव का वर्णन सभा पर्व (७८-७०) में भी आया है। ये गेहूं के पात्र भरकर युधिष्ठिर को अर्पण करने के लिए लाये थे। यह सभी जानते है कि मालव भूमि गेहूं के लिए प्रख्यात है (निश्चय ही मध्यभारतीय मालव प्रदेश से पंजाब-स्थित मालवों में गेहूँ आदिकाल से ही बढ़िया और श्रेष्ठ होता आया है। इसी कारण पंजाबी का 'अखाण' आख्यान प्रसिद्ध है—"कणक मालवी अम्म पुआधी-रत्ता गन्ना बड़ा सुआद्दी।" अर्थात् मालवी गेहूँ, पुआध का आम, तथा लाल-रंग का गन्ना बड़ा स्वादिष्ट होता है।-ले०) ये वहां से यह उपहार ले गये हों। इससे यह प्रतीत होता है कि महाभारत युद्ध-काल में जो मालव योद्धा गये थे वे उत्तर भारत में कुछ समय रहे हैं। परन्तु कुछ इतिहासज्ञ आधुनिक फिरोजपुर से लगे हुए भाग को उस प्रदेश का 'मालवा' मानते हैं *। और इन्हीं पर से पंजाब के मालव उदीच्य-मालव कहे गये हों और सौराष्ट्र से संलग्न प्रतीच्य-मालव। अवश्य ही उदीच्य और प्रतीच्य मालव महाभारत में (भीष्म पर्व ११७।३३।११६। ८५ और द्रोणपर्व ७।१५) युद्धकाल में संयुक्त थे और कर्ण-पर्व के इस श्लोक—

'मालवा मद्राश्चैव द्राविडा श्चोग्रकर्मिणः। (५० अ. २) के अनुसार भी महाभारत में उनका सहयोग था।" § ऊपर हमने देखा है कि महाभारत आदि में मालवों का उल्लेख तो अवश्य मिलता है, किन्तु उनके निवासस्थान का उल्लेख स्पष्ट नहीं मिलता-तर्क लगाने पर उनका निवास पंजाब में होना अधिक उचित जंचता है, क्योंकि महाभारत की रचना के पश्चात् के इतिहास पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो हमें मालवों का निवास पंजाब में ही मिलता है; जिसे कि ये शकों और कुषानों के शासन काल में छोड़ गये।

आज जिस सम्वत् को अधिकांश भारतीय सम्मान की दृष्टि से देखते हैं वह विक्रम सम्वत् मालव सम्वत् के नाम से भी प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब मालव-गण पंजाब से अवन्ती की ओर उतरने लगे तो उन्हें मार्ग में निश्चय ही पर्याप्त कठिनाईयों का सामना करना पड़ा होगा—कुछ युद्ध भी सम्भवतः लड़ने पड़े हों। जब रणक्षेत्र का जीवन व्यतीत कर मालव-गण अवन्ती प्रदेश में पहुंचगये और वहां के निवासियों पर उन्होंने अपना अधिकार स्थापित कर लिया, तब उन्होंने मालव सम्वत्

---

* मेरा अपना मत है कि धर्मराज युधिष्ठिर को भेंट करने के लिये मालव-गण गेहूँ पंजाब के ही मालव प्रदेश से ले गये-क्योंकि गेहूँ के लिये प्रसिद्ध प्रदेश में अवन्ती से जो कि लगभग ७-८ सो मील दूर है-गेहूँ ले जाना अनुपयुक्तसा प्रतीत होता है। इसके साथ ही कुछ मालव-योद्धाओं के उत्तरी भारत में रह जाने से ही कोई प्रदेश 'मालव' नाम से प्रसिद्ध हो गया हो यह भी तर्क युक्त प्रतीत नहीं होता।

§ "मालव, मालव-जनपद और उसका क्षेत्र विस्तार" —प्रो० सूर्यनारायणजी व्यास पृष्ठ ४ तथा ५ पर।

की घोषणा की प्रतीत होती है। यह समय निश्चय ही ईसा से ५७ वर्ष पूर्व रहा होगा। जब इतिहासज्ञों का विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७५-४१३ ई०) सिंहासनारूढ़ हुआ और शकों पर विजय प्राप्त कर 'शकारि' के नाम से पुकारा जाने लगा तब उसने मालव-सम्वत् को ही विक्रम-सम्वत् में परिवर्तित कर दिया प्रतीत होता है। ऐतिहासिकों का निश्चित मत है कि "मालव-सम्वत् छठी शताब्दी ईसवी के पश्चात् 'विक्रम सम्वत्' होकर प्रसिद्ध हुआ।" ❀

मालवगण के रूप-रंग, चाल-ढाल से यह निश्चित् ज्ञात होता है कि वे लोग आर्य थे। आर्य लोग प्रायः सिंध या पंजाब के मार्ग से ही भारत में फैल सके हैं। मालवगण भी निश्चय है कि पंजाब या सिंध के मार्ग से ही होते हुए अवन्ती प्रदेश में जाकर बसे। उन्हें मालव का मूल निवासी मानना वास्तव में भ्रम ही है। यह भी सम्भव हो सकता है कि मालवगण का एक दल अवन्ती प्रदेश में चला गया हो और दूसरा दल सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् गया हो। किन्तु यह निश्चय ही है कि मालवगण पंजाब में भी पर्याप्त समय तक अपना अधिकार जमाये रहे। जिस प्रकार गुर्जर लोग पहिले पंजाब के जिले गुजरात में रहे तदुपरान्त राजस्थान को पार कर के गुजरात (सौराष्ट्र) में पहुँचे, उसीप्रकार मालवगण भी पहिले पंजाब के मालव में निवास करते रहे तदुपरान्त मध्य-भारत में उपस्थित मालव में पहुँचे। सम्भव है कि उनके पंजाब से प्रस्थान की तिथियों में कुछ अन्तर हो किन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि सर्व प्रथम पंजाब ही में बसे।

पहिले हम पंजाब (मालवा) तथा अवन्ती (मालवा) की बोली में साम्य पर कुछ संकेत कर चुके हैं; यहां हम पुनः इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं। पंजाब (मालवा) में अभी भी कुछ ऐसी जातियां मिलती हैं जो कि अवन्ती (मालवा) से मेल खाती हैं; जंसे—

पंजाब में	अवन्ती में
सांसी या संसी	सांसी
कंजर	कञ्जर
खाती	खाती
खटीक	खटीक
आजड़ी	आंजना
कम्बो	कुनबी
तमोली	तम्बोली
बालई	बलाई

पंजाब तथा अवन्ती के ब्राह्मणों को तो ऐसी विभि जातियाँ तथा उपजातियाँ प्राप्त होती हैं जो एक ही है दोनों प्रदेशों के रीतिरिवाजों में भी समानता मिलती है अवन्ती (मालवा) में जिस 'सांझी' को बालिकायें संजो हैं वही 'संझा' उसी रूप में यहां पंजाब में भी एक पखवा तक बालिकाओं का आकर्षण बनी रहती है। विवाह आदि के अवसर पर दोनों स्थानों पर समान ही रीतियों का चलन है। श्रावण तृतीया के झूले अवन्ती में यदि 'तीज के झूले' कहे जाते हैं तो पंजाब में उन्हें "तीयाँवीपींगाँ" के नाम से स्मरण किया जाता है।

न केवल यही वरन् यूनानियों के प्रभाव से जहां को 'ह' उच्चारित करने का प्रयोग मालवा (अवन्ती) है वहाँ पंजाब के मालवा में भी 'स' का 'ह' ही उच्चार होता है; जैसे—

पैसा को पैहा
ससुरे को सहुरे
सांस को सांह
फांस को फांह
बरस को बरह......इत्यादि

निश्चय है कि यूनानियों का आक्रमण ईसासे वर्ष पूर्व हुआ था, तभी से 'स' का उच्चारण 'ह' प्रारम्भ हुआ। मालवी में प्रायः 'स' का उच्चारण भी ही होता है। यदि मालवगण उस समय पंजाब में नि न करते होते तो कभी भी वे यूनानियों के इस उच्चा का अनुकरण न कर पाते। यह तर्क भी हमें इसी नि पर पर पहुँचाता है कि ई० पूर्व ३२५ तक माल निश्चय ही पंजाब में निवास करते थे। इसके पश्चा पंजाब से मध्य-भारत में गये।

❀ देखिये— "भारतवर्ष का इतिहास"— डॉ० ईश्वरी प्रसाद, एम. ए. डी. लिट—पृष्ठ ९२

खड़ी बोली में जिस अर्थ में 'मैं' का प्रयोग होता है वही मालवी में 'हूँ' तथा पंजाबी में 'हों' होगया है। 'तुम्हारे' को मालवी में 'थारे' तथा पंजाबी (मलवई) में 'त्थारे' या 'त्वाहरे' कहा जाता है। केन्द्रीय पंजाबी में यही शब्द 'त्वाडे' बनजाता है। 'कहा' शब्द जहां मालवी में 'कियो' बनजाता है, वहाँ पंजाबी में 'कियाह' हो जाता है, इसी प्रकार 'करा' मालवी में 'कर्यो' हो जाता है और पंजाबी में 'कर्या' बन जाता है। किसी व्यक्ति को सम्मान देने के लिये या संज्ञा को बहुवचन में प्रयुक्त करने के लिये यदि मालवी में 'हुन', 'होण' या 'होन' का प्रयोग होता है तो पंजाबी मलवई में वह 'होनाँ', 'होणां' या 'हुनां' बनजाता है; जैसे—

मालवी में	मलवई में
मास्टर हुन	मास्टर होनाँ
मास्टर होण	मास्टर होणाँ
मास्टर होन	मास्टर हुनां...इत्यादि

खड़ी बोली से प्रादेशिक भाषा बनते समय जो परिवर्तन पंजाबी में हुए हैं, वही लगभग मालवी में हुए प्रतीत होते हैं; जैसे—

खड़ी बोली में	मलवई में	मालवी में
द्वार	दुआर-दुवार	दुआर-दुवार
माँ	माड़ी	माड़ी
बड़े	बढ्या	बड्या
भेजना	भेजणा	भेजणा
कभी	कदी	कदी
जब	जद	जद

...इत्यादि

अब हम कुछ ऐसे शब्द भी देखेंगे जिनका रूप दोनों प्रदेशों में समान हो है—

मलवई	मालवी	अर्थ
ढोला	ढोला	प्रिय
बाट	बाट	दूरी
उठ्या	उठ्या	उठे
कोण	कोण	कौन
मँगालाँग-मँगालीगे	मँगईलांगा	मंगालेंगे
कम्मसरे	कामसरे	काम निकलना
तळा	तळाव	तालाब
बाँचना	बाँचना	पढ़ना
जाया	जाया	जन्मा
घणी	घणी	बहुत
बाट	बाट	प्रतीक्षा
घुँघर माल	घुँघर माल	घुँघराले बाल
त्योर	तेवर	विवाह के कपड़ों के जोड़े
तगादे	तगादे	आभूषण
बिन्दना	बीन्दना	बींधना
जणी	जणी	पैदा की हुई
बारी	बारी	खिड़की
नवीं	नवी	नई
अल्ल	आल	घीया या लौकी
विसोरी	विसोरी	परदेशी
उन्हाला स्याला	उन्हाला-स्याला	गर्मी-सर्दी
दुलाई	दुलाई	रज़ाई
मेवळा	मेवळा	मेघ
हताई	हताई	चोपाल
कागद	कागद	पत्र
जीमो-रसोई	जीमो रसोई	भोजन करो
मूँदड़ा	मूँदड़ा	एक प्रकार की अंगूठी
रामजणी	रामजणी	वेश्या
तेह-त्रेह	तीस-तीह	प्यास

उपर्युक्त तर्कों, शब्दों, रीतिरिवाजों तथा दोनों ही स्थानों की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि को देखकर हम यही पाते हैं कि दोनों प्रान्तों में पूर्णतया साम्य है; एवम् निश्चय ही मालवगण किसी समय पंजाब के निवासी अवश्य थे जो कि कालान्तर में अवन्ती-प्रदेश में जाकर बसे, जिसके कारण वह 'मालवा' कहलाने लगा।

'लोक-साहित्य' की यदि और खोज की जाये तथा दोनों प्रान्तों का ही लोक-साहित्य पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत हो जाये तो निश्चय है कि हमें दोनों प्रान्तों की एकता सिद्ध करने में और भी बल प्राप्त होगा। वह दिन वास्तव में धन्य होगा जब दोनो प्रान्त अपने पुरातन सम्बन्धों को पहिचान कर पुनःएक सूत्र में बद्ध हो जायेंगे और अपने पुरातन सम्बन्धों को पुनःस्थापित एक स्वर में गा उठेंगे—

> "कणक मालवी, अम्म पुआधी
> रत्ता गन्ना बड़ा सुआद्दी"

श्री धीर के तर्क कसौटी पर !

संपादक

श्री नरेन्द्र धीर युवक हैं। इतिहास से अभी उनका सम्बन्ध सीधा नहीं आया है, उन्हें अध्ययन और अन्वेषण की ओर प्रवृत्त देख आनन्द होता है, परन्तु वे जो धारणा लेकर इस क्षेत्र में प्रवेश करने आए हैं, वह धारणा भ्रम मूलक है, और उनके आधार भी अधूरे हैं। विक्रम में हमने कुछ समय पूर्व यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि इतिहास में जिन मालवों का पंजाब प्रदेश में उल्लेख मिलता है, वे मालव से ही गए हुए हैं, पंजाब से मालव में आए हुए नहीं है। हमने जो तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किए थे, वे ऐसे थे जिनका उत्तर देने के लिए महाभारत, पुराण, इतिहास, और वैदिक-परम्परा के अध्ययन की आवश्यकता है। श्री धीर ने हमारे उस लेख का उत्तर देकर मालवों को पंजाब से इधर आने की बात बतलाने का बाल-सुलभ प्रयास किया है। उनके प्रयास में जिन अधिकांश आधार-उद्धरणों को लिया गया है, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है, क्योंकि उन विद्वानों ने अपने ज्ञान का आधार विदेशी विद्वानों की भ्रांत धारणा से बनाया है। स्वयं की मौलिक-मति, और ज्ञान का सहयोग नहीं लिया, न उन विद्वानों की संशोधन क्षेत्र में मौलिकता के कारण प्रतिष्ठा ही है। ऐसी अवस्था में जिन भ्रांत प्रणालियों का अनुकरण कर उन्होंने इतिहास को पर-प्रत्ययनेय-मति से सँवारा है, उनका गहत्व अधिक मूल्य नहीं रखता। ऐसे ही इतिहास ग्रंथों के उदाहरणों को आधार बनाकर श्री धीर ने अपने विषय को सहज उत्साह में आकर 'न्यायोचित' बनाने का प्रथम प्रयास किया है, वह भ्रामक बनजाए तो अस्वाभाविक नहीं। उन्होंने डॉ० ईश्वरीप्रसाद के भारतवर्ष के इतिहास को लेकर ऋग्वेद की रचना को ई० पूर्व २५०० वर्ष तक समझकर प्रारम्भ ही में बहुत बड़ी भूल कर डाली है, क्योंकि ईश्वरीप्रसादजी ने मध्ययुग के भ्रांत-इतिहास को भी दूसरे विद्वानों के उदाहरणों के आधार पर ही रचा है। स्वयं की पूँजी परिमित रही है, इसलिए उनके इतिहास को वह महत्व नहीं मिल सका, जो आज श्री सी. व्ही. वैद्य जैसे प्रचण्ड-पंडित के इतिहास को प्राप्त है। ऋग्वेद की रचना पर जिन व्यापक अध्ययन और ज्ञान की आवश्यकता है। वह आधारों का आधान करने वालों के पास नहीं पहुँचे तो विस्मय का कारण नहीं। वैदिक-विज्ञान के पढ़ने वालों, अध्ययन शील, और ऐतिहासिक-दृष्टि रखने वाले विद्वानों ने उसके मर्म को समझकर उसमें सूचित खगोलीय स्थिति के प्रत्यक्ष-गणित को आधार लेकर गणना द्वारा स्वीकार किया है कि वह ई० पूर्व ६००० हजार वर्ष पूर्व की रचना है, स्वयं वेद विद्या के अप्रतिम विद्वान् मेक्समूलर जैसों को उन तर्कों को स्वीकार करने को बाध्य बनना पड़ा है, जो अकाट्य, और प्रत्यक्ष है। जिन्होंने स्व. तिलकजी का 'ओरायन' पढ़ा है, उन्हें बतलाने की आवश्यकता नहीं। २५०० वर्ष की बात तो तथ्यरहित, भूल से भरी हुई, और कभी से मजाक का विषय बन चुकी है, उस तर्क को श्री धीर ने अपना आधार बनाकर सर्वप्रथम आर्यों के भारत आगमन को मान लिया है। और यह कहने का साहस कर डाला है कि "उस समय दक्षिण, या मध्यभारत में आर्यों का निवास नहीं था।" श्री धीर को यदि यह ज्ञात होता कि नर्मदा संस्कृति का विकास आज ५० हजार वर्ष पूर्व हो चुका था, और वहाँ प्रागैतिहासि अवशेष उपलब्ध होकर अस्तित्व प्रमाणित भी कर रहे हैं तब वे यह कहने का साहस नहीं करते। इस उपत्यका और अवन्ती के प्राप्त अवशेष मोहनजोदड़ों हड़प्पा साम्य सिद्ध कर रहे हैं तो यह सहज ही ६ हजार वर्ष त पहुँच ही जाते हैं, यह मोहेंजोदारों के समय-निश्चित जाने से स्वयं प्रमाणित है। फिर वह बात तो भिन्न रह है, जो आज से २०-२५ हजार वर्ष पूर्व प्रलयोपरां पृथुवंश्य और मान्धाता की स्थापित-सभ्यता इसी नर्म के तटपर उद्भूत हुई थी, और जिस तट की हैहय-सभ्य की खोज के लिए डॉ. सांकलिया आदि यत्नशील है जिसे वे १ लाख वर्ष पूर्व की मान रहे हैं।

यदि श्री नरेन्द्र के विचार मान लिए जावें तो "ई पूर्व २५०० वर्ष" के समय जब सप्त-सिन्धु से आर्य

कर भारत के विभिन्न भागों में फैले तो मालव ही क्या, सारे भारतीय-आर्य-जन 'पंजाबी' बन जावेगें, अकेले मध्य-भारतीय ही अलग नहीं रहेंगे। इस प्रकार सारा भारत पंजाबी बन जाएगा, न तो उनमें मालव रहेंगे, न सौराष्ट्र, सौवीर, लाट, मद्र, अंग, बंग कलिंग ही ! वे बौद्ध-काल में 'अवन्ती प्रदेश को प्रख्यात बन 'बौद्धमत का केन्द्र' बन जाने की बात कहते हैं, परन्तु उन्हे इसके पूर्व के इतिवृत्त का यदि पता होता, अध्ययन होता तो ऐसी 'अट-पटी' बात नहीं कहते।

वे पुराणों के आधार को भी खोखला समझते हैं, और जो विद्वान् (साथ में मुझे भी उन्होंने जुड़ा लिया है) इस दिशा में प्रयास करते हैं उन्होंने भी अपने आधार डॉ. ईश्वरीप्रसाद को लेकर वे अपना मत मनवाने का प्रयास करते हैं। कुछ पुराणों की रचना के विषय में अंग्रेज, और उनका आधार लेकर इतिहासज्ञ बनने का दावा करते हैं, वे ९ वीं शति का मानते हैं, वे भी महाभारत, भागवत, वायु पुराण, ब्रह्मवैवर्त आदि को पर्याप्त पुरातन मानते हैं। वायु पुराणों की संगति तो वैदिक संहिता, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथों तक से सीधी है, और उन्हीं की विशद–व्याख्या इनमें हुई है। उन्हें अभिनव मानने का कौन साहस कर सकता है ? उनके आधार से आज इतिहास की अनेक उलझी हुई गुत्थियां सुलझती दीखती हैं, और सुसम्बद्ध भी लगती है, किंतु यहां प्रश्न पुराणों का इतना नहीं है, श्री धीर महाभारत को पुराण समझने की भूल न कर बैठें ! महाभारत को ९ वीं शती का समझने का अब तक साहस नहीं हुआ है, उस का अनुशीलन करने वाले जितनी गहराई में उतरे हैं, वे उसे ५००० साल से कम का समझने का साहस नहीं कर पाते, जिन्होंने महाभारत की कालगणना, खगोलीय स्थिति, महाभारत समर आदि की संगति महाभारत सूचित गणना क्रम से ही लगाई है, वे इसी निर्णय पर पहुंचे हैं कि महाभारत अत्यंत पुरातन है, कमसे कम ४-४।। और पांच हजार वर्ष के पीछे नहीं खींचा जासकता। उसकी प्रामाणिकता में संदेह का अवसर कहां रहजाता है ? श्री धीर मालव गणों को आर्य होने के नाते ही पंजाब से आए हुए मानलेते हैं तो उन्हें यही कहना चाहिए कि सारे भारतीय ही आर्य होने के कारण-पंजाबी बनजाते हैं। वे मालवी, गुजराती, बंगाली कहाँ रहपाते ? परन्तु यह तो नहीं है कि सिर्फ मालवी ही पंजाब से आने पर इस देश में मालवी कहेगए, और दूसरे देश के लोग अलग अलग नाम से ज्ञापित बनगए ! क्या जो आर्य पंजाब से मालवे में आए तब वे वहाँ मालवी कहे जाते थे ? आर्यों के आगमन काल में पंजाब का कोई 'भाग' मालव कहा जाता था ? जब उस समय सभी 'आर्य' थे, तो मालवी, गुजराती, बंगाली नाम ही क्यों हो सकते थे ? आर्य कहीं से आए हों मालव में वे मालवी हुए, गुजरात में गुजराती, बंगाल में बंगाली। यदि श्री धीर यह समझते हों कि आर्य आए तभी मालवी थे तो सभी प्रदेश में वे जाकर मालवी क्यों नहीं कहे गए ? क्या आर्यों के आगमन काल में ऐसे नाम भेद, जाति भेद भी थे ? यह श्री धीर का तर्क बच्चों जैसा है, आर्य तो समस्त उत्तर भारत ही है, जो जहां बसा वह उस प्रदेश का अधिवासी बना, और उसी नाम से ज्ञापित हुआ। मालव आर्य होकर भी मालव वासी होने के कारण ही मालवी रहे, माने गए, इससे उनके आर्यत्व के कारण पंजाबी पन नहीं आजाता। वर्ना सारा पंजाब भी 'मालवा' कहा गया होता, और वहाँ से चलकर जाने वाले जहाँ जाते, वे मालवी कहे जाते, किन्तु यही पुष्ट करता है कि मालव-प्रदेश से जाने के कारण ही दूसरे प्रदेशों में लोग जिस प्रदेश के थे उस नाम से ज्ञापित हुए, और उनका उन प्रदेशों में उस नाम से स्वतंत्र स्थान नाम ग्राम प्रचारित हुआ। जिस तरह मालवे से गए हुए मालव पंजाब में अपने को अलग 'मालवी' कह कर अब तक पंजाब में अपनी स्वतन्त्रता, प्रथकता, मालवीयता प्रमाणित करते हैं, मालवा तो एक ही प्रदेश सारे देश में है, और वह आजसे नहीं, पुरातनतम काल से। अवन्ती उसकी राजधानी, प्रधान नगरी रही है। अवन्ती-मण्डल एक प्रख्यात–प्रौढ़ विकसित विभाग होने के कारण अपनी ख्याति रखता था, मालव सारा प्रदेश ही था, महाभारत इसकी पर्याप्त पुष्टि करता है।

हमारा यही कहना है कि मालव प्रदेश से ही मालव-गणों ने जाकर सिकन्दर से लोहा लिया था, पंजाब में पहुंचने से वे पंजाबी होगए यह तर्क मजाक है। मालव को

प्रचण्ड गण-शक्ति ने एक नहीं अनेक बार,मालव से बाहर जाकर, ठेठ भारत की सीमा से आक्रमणकारियों को खदेड़ा है। प्रथम विक्रम का पंजाब का कोरूर-युद्ध, मन्दसौर के यशोधर्मन का शक टोली का पराजय प्रमाण है कि ठेठ पंजाब की सीमा से शकों की टोली को खदेड़ भगाया है। इससे वे पंजाब के तो नहीं बन जाते। खदेड़ने के बाद सीमा-सुरक्षा के लिए, व्यवस्था के लिए अपनी शक्ति को उस प्रदेश में रख छोड़ना, उस प्रदेश का ही बन जाना नहीं है। सिकन्दर के समय भी यही हुआ है। जिन मालवगणों का उल्लेख है वे पंजाब के नहीं मालव के ही थे। पाणिनी ने मालवगणों की स्थिति और गण व्याख्या की है। पर उन्हें 'मालव' कहा है, पँजाबी नहीं। और उन्हें सैन्य-शक्ति माना है। परन्तु श्री. धीर को यही अभी पता नहीं कि पाणिनी ईसा से ५०० वर्ष पूर्व के थे, वे जरा पाणिनी के उद्भव काल के विषय में प्रामाणिक तथ्य जान लेते तो ठीक होता। इसी तरह 'अवंती भाष्य' की रचना करने की बात भी कही है, वह गलत है। 'अवंती-भाष्य' जैसी कोई चीज नहीं बनी है, न है ही।

डॉ. जायसवाल या अन्य विद्वानों ने मालवों के पंजाब में रहने की जो बात कही है, वह तो ठीक है। हम भी स्वीकार करते हैं कि 'मालव गणों' के सैन्य पंजाब में थे, परन्तु इसी स्थिति को लेकर जो भ्रम फैल रहा है कि वे पंजाब से मालव में आए थे, यहाँ ही मतभेद है। और इस मतभेद के जनक अंग्रेज इतिहासकार हैं तथा हमारे अनुकरण प्रिय पंडित वर्ग भी। वस्तुतः देखना यह है कि श्री धीर के उद्धरण के अनुसार "ईसा से ३२५ वर्ष पूर्व, और १५० वर्ष तक जो मालव पंजाब की भूमिपर निवास कर रहे थे।" वे कौन थे, और कहाँ से गए थे, और उस समय, या उसके पूर्व इस मालव-प्रदेश में जो लोग रहते थे, वे मालव कहे जाते थे, या अन्य। डॉ० जायसवाल ने या अन्य विद्वानों ने जिन 'मालवों' को 'पंजाब में रहते समझा' और "राजस्थानी-बंजर-भूमि में विचरते" जाना है, वे मालव प्रदेश के ही रहे हैं, क्योंकि 'गणशतों' में इनकी विपुलता रही है, और शौर्य-विजय-व्यवस्था-और वर्चस्व प्राप्त करना ही इनका लक्ष्य था। इसलिए उत्तर-भारत के बहुत बड़े भाग पर ये छाए हुए थे। इसके लिए हमें महाभारत का आश्रय लेना होगा, जहां से हमारी यह भ्रांति निवारण हो सकती है। महाभारत में मालव-गणों के प्रचण्ड पराक्रम का अनेक जगह, अनेक प्रकार से वर्णन आया है, और अनेक प्रदेशों पर प्रभाव स्थापित करने की चर्चा हुई है। उत्तर के बहुत बड़े भाग पर उनके आधिपत्य की भी गाथा मिलती है। पूर्व मालव, और पश्चिम-मालव का भी जिक्र है, इससे हमें भ्रमित होने का कारण नहीं। पूर्व मालव विदिशा प्रभावित क्षेत्र के रहे हैं, और पश्चिम मालव माहिष्मती-क्षेत्र के रहे हैं। माहिष्मती के हैहयों का तालजंघों का समर तो बहुत व्यापक, और महान् रहा है। स्वयं भार्गव, और हैहयों के समर का इतिहास पुराकालीन है। जमदग्नि-परशुराम, और हैहयों के संघर्ष की बात महाभारत और उससे आधारित पुराणों में तो है ही, परन्तु जरा सावधानी से देखें तो ऋग्वेद, और अथर्ववेद में भी है। इन्ही हैहयों को मल्ल और मालव कहा है। महाभारत में तो स्पष्ट ही इन्हें गण मानागया है। वह माहिष्मती मालव भूमि में ही है। जैसा कि श्री० धीर का भ्रम है कि महाभारत में कहीं नहीं लिखा है कि ये मालव कहाँ थे, जब माहिष्मती के अत्यंत पुरातन काल में मालवों का अस्तित्व था, प्रभाव था, देश के विभिन्न भागों में वर्चस्व था, तब यह प्रश्न ही कैसे उठ सकता है कि मालव लोग नहीं थे, या कहीं बाहर से आयात हुए थे? इसके प्रमाण ऋग्वेद की हैहय-समर की ऋचाएं हैं। जिन्हें इतिहास का कोई जानकार पिछली नहीं बतला सकेगा, इसी तरह महाभारत में विन्द-अनुविन्द के राज्य-शासन का उज्जैन में होने का स्पष्ट उल्लेख है, और वह महाभारत समर में कुरुक्षेत्र में लड़े भी थे, इसके सि हाथी अश्वत्थामा भी उज्जैन से गया था, इसे पंजाब का कैसे बनाया जासकेगा? इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि इतिहास-काल से बहुत पूर्व महाभारत और वैदिक का में इस प्रदेश को मालव कहा जाना माना जाता ऋग्वेद में इसे ही मल्ल-मल्व, मालव कहा है। अव प्रदेश शायद उस काल में कहा गया है जब इसकी सी सीमित हुई, परन्तु मालव-सम्वत् और मालवगण इ साक्षी है कि यह प्रदेश अत्यन्त पुरातन समय से मालव र है। मालव-गण नए नहीं बसे, वे तो वैदिक और महाभा काल से रहते आए हैं। जामदग्न्य का वैदिक आ

आज भी महू के पास माहिष्मती के हैहय-मालवों के समर की साक्षी में प्रस्तुत है। अवश्य ही मुलतान के पास के जिस भाग को अलबेरूनी ने मालव कहा है, वह 'कुमालव' रहा है, और मालव के प्रभाव काल का अवशेष ही हो सकता है। जिस प्रकार आयुधजीवी मालवों को अनार्यों-वाल्हिकों के उच्छेदन के लिए रखा गया था जिसका उल्लेख काशिका वृत्ति में आया है– उसी प्रकार शकों के लिए, सिकन्दर के लिए, भारत सीमावर्ति पंजाब में मालवों कों सैन्य-रक्षा के रूप में रखा गया होगा। पातंजलि ने (१५० ई० पूर्व) जब यह मालव-गण की चर्चा की है, तब स्पष्ट ही उसने विदिशा में-मालव में ही बैठकर की है, क्योंकि वह पुष्यमित्र-शुंग का पुरोहित था, और विदिशा में अश्वमेध का पुरोहित बना था, वह यह जानता था कि शुंगोंने शत-गणों को जुडा कर दिग्विजय करने का साहस संचित किया था। उसे पंजाब के वर्णन करने का कारण नहीं। श्री धीर ने पातंजलि का "उस समय निवास पंजाब ही में था" कहा है यह उनके इतिहास के अज्ञान का स्पष्ट प्रमाण है। श्री धीर महाभारत के सभापर्व के उस वर्णन को लेकर जिसमें मालव गणों की ओर से युधिष्ठिर को गेहूँ की ख्याति पंजाब के अश्वाण (आख्यान) में भी चली आती है, फिर भी श्री धीर मालव को ७-८ सो मील दूर मानकर पंजाब के 'मालव' से ही गेहूँ ले जाने को समर्पित करना चाहते हैं, पर महाभारत को सावधानी से देखते तो पता चलता कि जब उज्जैन से विन्दानुविन्द की सैन्य-शक्ति पजाब तक लड़ने पहुँची थी तो कुछ लोग गेहूँ लेजाने का कार्य नहीं करसकते थे।? युधिष्ठिर को पड़ोस के गेहूं तो मिलते ही होगें। उसकी भेंट की क्यों आवश्यकता हो सकती थी? मालवे के प्रख्यात् पदार्थ की भेंट लेजाने में ही विशेषता रह सकती थी। श्री धीर ने यह भी कहा है कि 'महाभारत में मालवों का उल्लेख तो अवश्य मिलता हैं, पर उनके निवास स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।" किन्तु श्री धीर उद्धरणों पर अपना आधार बनाए तो यह कैसे मिलसकता है? वे महाभारत पढ़ते तो अवश्य उनकों ऐसे अनुमानों की आवश्यकता नहीं, अंधेरे में अपना मत भ्रम से या निरर्थक तर्क स्थापित करने का प्रयास न करना पड़ता, जो सर्वथा भ्रम-पूर्ण और असंगत है। मालव सम्वत् की स्थापना का जो तर्क श्री धीर ने दिया है वह भी मजाक होजाता है, मालव-गणों की उपस्थिति को जब हम अत्यंत पुराकाल से देखते हैं तब उनके सम्वत् को हम पीछे ढकेले यह विचित्र है। जिस छठीशती में मालव सम्वत् मिलता है, उसमें भी 'मालवानां गणस्थित्या यातेशत चतुष्टये' शब्द है, जिससे स्पष्ट विदित होता हं कि उस मालव सम्वत् का उस शिला में उल्लेख है जिसे ४०० सो साल (याने शत) बीत चुके हैं। वह छठी में ही चला है, यह नहीं है। जब मालवों ने पंजाब में शकों को खदेड़ा तब वैसे ही पंजाब को असुरक्षित नहीं छोड़ आए होंगें। क्या जीते हुए स्थानों को कोई शत्रु धकेल कर वैसे ही छुट्टा छोड़ देसकता हं? तब मालवों को रक्षा की दृष्टि से रहना ही पड़ा होगा।

इसी तरह द्वितीय चन्द्रगुप्त की संवत स्थापना के तर्क पर श्री धीर ने "ऐतिहासकों का निश्चित मत" प्रतिपादित किया हं। वह सर्वथा भ्रांत हं। इतिहासज्ञों में इसी संवत को लेकर गंभीर मत-भेद हं। इस उक्त 'निश्चित मत' पर जिन डॉ० ईश्वरीप्रसाद को श्री धीर ने उद्धृत किया हं। उन्हें विक्रम-संवत के विषय में अधिकारी माना ही नहीं जाता। उनके मत का क्या महत्व हो सकता हं? जब तक मालव-भूमि के अन्तराल से कोई प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक यह गुत्थी सुलझ नहीं सकती, फिरभी दुनिया में विक्रम संवत को छठी शती में कहने वाले भी उसके नाम से दो हजार साल से जुड़ा हुआ संवत ही मानते चले आ-रहे हैं। छठी शती घटाकर मानने को स्वयं छठी शती का प्रतिपादन करने वाले भी नहीं करते! श्री धीर ने अजीब तर्क दिया हं कि 'मालव-लोग पंजाब से होकर आए होगे, इसलिए मालवों का अवंती प्रदेश पूर्व निवासी मानना ही भ्रम पूर्ण होगा। इस तरह तो समस्त आर्य पंजाब सिंध से ही चलकर अन्य प्रदेशों में पहुंचें तो उन्हें कहीं का भी वकील श्री धीर के—'मूल निवासी' कहलाने का कभी अधिकार नहीं मिल सकेगा, वे सभी प्रदेश के केवल 'पंजाबी-आर्य' ही कहे जाएगें? पर पंजाब और सिंध मे जो आर्य बाहर से आए थे, उन्हें पंजाब सिंध का भी कैसे माना जाएगा, वे भी तो कहीं से आकर ही उस प्रदेश में होकर गुजरे थे! यदि गुजरने भर से श्री धीर आर्यों को पंजाबी बनालें तो

उनकी सूझ-समझ को धन्य है। रही बात पंजाबी और मालवी बोली के 'साम्य की बात, इससे भी हमारे मत को ही विशेष पुष्टि मिलती है कि जो मालव-गण मालवे से पंजाब में गए, रहे, उनकी भाषा-बोली संस्कार का प्रभाव वहाँ पड़ा और जो लोग सैन्य जीवी होने के कारण या अन्य अधिकार के कारण सुरक्षा व्यवस्था के लिए चिरकाल रहे, बसे, उन्होंने अपनी बोली-संस्कार से पंजाब के उन-उन प्रदेशों को प्रभावित किया, और जो वहीं रह गए, उनके ज्ञातियों के संस्कारों में आज भी वह परम्परा अक्षुण्ण बनी हुई है। भाषा-वेष के परिवर्तन में भी मानव के मौलिक संस्कार उसके उद्गम को प्रकट करते रहते हैं' यह सिद्धांत भी है। अतः पंजाब की बोली में मालवी से साम्य दिखाई दे और संस्कार में एकता प्रकट हो तो विस्मय का विषय नहीं। नृवंश-शास्त्र की दृष्टि से यह उसकी असली पहचान का ही प्रतीक है। किंतु जिन संझा और झूले के पर्वोत्सवों से मालव पंजाब की तुलना कर समानता दिखलाई गई है, वह ऐसे त्यौहार हैं, जिनका सारे भारत के हिन्दुओं में प्रचलन है। उसकी समानता से श्री धीर अपना उद्देश्य सिद्ध नहीं कर सकते। और यूनानियों के प्रभाव से 'स' को 'ह' कहने के जो उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किए हैं, वे मालवी के मौलिक नहीं हैं। वे विशिष्ट जातियों के ग्रामीण प्रयोग हैं, जो विभिन्न प्रदेशों से आकर मालव में बसी है। और 'स' को 'ह' कहती हैं। मालवी में 'स' की जगह 'स' ही है। और 'ह' की जगह 'ह' ही है। उससे यूनानी आक्रमण को जुड़ाकर पंजाबी बनाने से काम नहीं चल सकेगा। वे जिस ई०. स० पूर्व ३२५ की बात करते हैं। उसके बहुत पश्चात कालपर्यन्त मालवे की विशेष भाषा संस्कृत रही है। जो ११ शती तक प्रायः प्रचलित रही। और जब भाषा का स्थान लिया, उसके बाद बुद्ध काल के पूर्व और पश्चात स्वतंत्र अवंती भाषा का प्रचार था, जिसका विकृतरूप मालवी है। जिस भाषा का संस्कृत प्राकृत ने परिष्कार किया हो, महाराष्ट्र संसर्ग से शुद्धता रक्षित रही हो, उस पर यूनानी प्रभाव का अब तक परिणाम प्रतीत हो यह तो अजीब तर्क है। भोज आदि परमार शासन तक इस प्रदेश को कितना ज्ञान प्रभाव प्राप्त हुआ है। शुंग से लेकर गुप्तकाल तक इस प्रदेश का कितना सारस्वत महत्व रहा ज्ञान विज्ञान की सुरसरिता प्रवाहित हुई इन शति के संस्कारों को भुला, ३२५ ई० पूर्व के यूनानी प्रभाव मालवी में मिलाने का तर्क देना सिवा मनोरंजन मजाक और क्या कहाजाए? आवन्ती-प्राकृत मालवी में संस्कार कैसे लुप्त-लुप्त रहा, और आज सहसा कैसे प्र होगया, यह श्री धीर का जोड़-तोड़ का तूफानी तर्क कहना होगा। इन तर्कों के तौल प्रस्तुत कर द्राविड़ी-प्राणाया द्वारा, पंजाबी से मालवी तार-तम्य जुड़ाने का जो प्रया प्रस्तुत किया है, उससे सरल तो यही होसकता था जो मालवी लोग पंजाब में जाकर रहे, बस उनमें भाष संस्कार साम्य प्रतीत होता है, और यही प्रमाणित कर है कि वे इधरसे गए हुए हैं, और भाषा--संस्कारों सुरक्षित बनाए हुए हैं। परन्तु इस के लिए जो प्रय निराधार आधारों के अनुमान पर निकाल कर श्री धीर मालवों को पंजाब से मालवे में पहुँचाने के लिये किया है, वह असंगत है, असम्बद्ध अनैतिहासिक और सर्वथा भ्रां भी है।

अवश्य ही इन दोनों (पंजाबी-मालवी) में यह एक तो है ही कि पंजाब पर्यन्त मालव गण पहुंचे थे, और साधना की थी, और मालव तक एकता का सूत्र प्रति किया था, परन्तु इस एकता को तोड़ कर मालव के माल गणों को पंजाबी बतला कर वहाँ से यहाँ भेजने का दुःसा प्रयास करना कौनसी एकता को स्थापित कर सकेगा जबकि प्रत्यक्ष महाभारत से लेकर वैदिक साहित्य चिर-पुरातनता मालवगणों को मालव-भूमि से ही सुसम् प्रमाणित करती जारही है। पंजाब सीमा प्रांतीय प्रदेश है, और प्रायः परचक्र के आक्रमण उधर से ही होते रहे उसी निवारण के लिए मालव-शक्ति खपती रही है, निरन्तर उस प्रदेश पर 'आयुध जीविनः होने के कार सुरक्षा संघटन के लिए व्यस्त रही; और अन्य गणों जुड़कर लोहा लेती रही। जो ठेठ इतिहासकाल के य धर्मन के शक उच्छेदन तक तो पंजाब से मालवों का हार्दि सम्बन्ध तो बनाही आरहा है। उसके लिए मालव ग को पंजाब का आदिवासी बनाने की निरर्थक खींचतान न तो आवश्यकता है न. औचित्य ही।

श्री धीर अभी युवक हैं, उन्हें इतिहास, और संस्

(शेष पृष्ठ ४० पर)

मुक्ति-बोध !

श्री रमेश कुसुमाकर

प्रियतम के वियोग में वह हिमपिण्डसी बनी अचल पड़ी रही। हजारों वर्ष बीत गये। सूर्य की आलेनमा किरणों ने उसे छेदकर पानी-पानी कर दिया अब वह सरिता थी-सदानीरा !

◆ ◆ ◆

उस दिन नारी का पर्व था। निशारानी अपनी कृष्ण कुन्तल-राशि का मनमोहन विन्यास कर रही थी। उसके नीलाम्बर पर अगण्य-तारे लुक-छिपकर उसके अमित सौन्दर्य का प्रदर्शन कर रहे थे। द्रुम-संकुल वन-प्रान्तर को एक सरिता अपने जीवन का अर्घ्य दे सींच रही थी-अनन्त युगों से।

किसी दिन उसका भाग्य चमकेगा ! अपने जीवन-संगीत का मधुरिम स्वर-लहरियों से किसी दिन वह अपने आराध्य को रिझा सकेगी......! बस, यही आशा लिये वह गतिमान थी। बह रही थी वह अपने जीवन के भार को लेकर और गिन रही थी मधु-मिलन के उन पावन क्षणों को, जिस दिन वह अपनी युग-युग संचित जीवन राशि को एक बारगी ही उमड़कर उंडेल देगी उनके चरणों में ! वेदना, आशा-निराशा, भाव और कल्पना सभी कुछ वह न्योछावर कर देगी...... !

उन्होंने उसे वचन दिया था—"एक दिन उसका उद्धार होगा। धैर्य, सन्तोष अडिग आत्मीयता की कड़ियां उन्हें बांध लेंगी। वे आवेंगे......अवश्य आवेंगे। आशा ही तो अमर धन है। उसने सुना अकस्मात, कोई उसके कानों में कह रहा है आश्वासन के स्वरों में—देवी, धीर धरो, आही रहा हूं।

इसी आश्वासन पर कई युग बीत गए। स्मृतियों का कोष अखंड था। अपने सुरम्य तट पर अब 'मनोहर घाट बंध गये। गगन चुम्बी श्वेत स्फटिक प्रस्तरों के देवालय अपने भाग्य पर इठला रहे थे। किसी दिन उनका भी तो उद्धार होगा। उनकी प्रस्तर मय काया किसी के स्पर्श मात्र से धन्य-धन्य हो उठेगी। वहां का वातावरण सौम्य था। असीम शान्ति वहां थी पंछी चहकते थे। साधकों की मुक्त कंठ-ध्वनि पवित्रता बिखेरती थी।

(२)

तन्वंगी सुन्दरियों का समूह अपनी मंगलमय थाल संजोकर लाया। अगणित मिट्टी के दीप टिमटिमा रहे थे। आज वह चिरवियोगिनी अपने आंसुओं से उनके पादाम्बुज पखारेगी ! कई मन्वन्तरों के बाद उसकी कल्पना के प्राणधन, उसके तारक, उससे अठ खेली करने आवेंगे।

◆ ◆ ◆

निर्मम हैं निष्ठुर हैं। बड़े अगम्य हैं वे। बड़ी कठिन कसौटी है उनकी। फिर भी वे फूलों से कोमल हैं। वह क्षुद्र बुद्धि उन्हें जान भी तो नहीं पाती। दोष किसका ? क्या जानूं। नहीं, नहीं, इतने पर भी वे आवेंगे। भरत ने वचनों में बांधा था और मैंने भी तो बांधा है। मन......छि......छि......आशा और विश्वास, प्रेम और भक्ति के साधना-सदन को तू अविश्वास की आंधी बनकर उसकी नींव को हिलाना चाहता है। दुष्ट ! चंचल !! ऐसे कितने ही विचारों के विवर्त सरिता का हृदय-मंथन कर रहे थे।

◆ ◆ ◆

आंखों में नीर बहाती हुई वह देख रही थी, उसके शीतल अन्तराल पर वे असंख्य दीपक वायु के थपेड़ों से कांप-कांप कर महाशून्य में अपनी ज्योति विलीन कर रहे थे। वे बुझ रहे थे। उधर उस नीलाकाश में कोई-कोई तारे झलक रहे थे। तटिनी मौन थी। विचारों का तूफान उसके जीवन को कुछ कुछ उद्वेलित कर रहा था। वह सोच रही थी अन्त में एक दिन उसे भी किसी के सम्मुख आत्म-समर्पण करना होगा। आत्मसात होना होगा उसे भी किसी 'ज्योतिषा ज्योति' में।

यकायक वह चौंकी। उसके अंग में थिरकन थी, कम्पन था मृग-शावक-सी वह ठिठकी। एक विचित्र ही मादकता वह अनुभूत करने लगी अपने जीवन में। किसी की पगध्वनि सुनाई दे रही थी। यह किसकी होसकती है, एक कल्पना उठी उसके हृदय में ! आशा ने कहा—प्रियतम तो नहीं ? क्यों नहीं, जरा देख तो लूं ! शायद वे ही......।

अकस्मात जल में हिलोरे उठीं। दीपक स्नेह कांपा : चिराकांक्षित मिलन की घड़ी समीप थीं। सरिता की लहरें उसकी उमंग [illegible] देख रही थीं-कोई परिचित-सा 'अनजान' बनकर अपने एक हाथ से उसकी लहरों का स्तंभन कर रहा है और दूसरे हाथ से मिट्टी के दीप की टिमटिमाती बाती को मलय के झोंकों से बचा रहा है।

सरिता उमड़ी। एक गाढ़ा परिरम्भण दे उसके चरण पकड़ लिये। प्रेमाश्रु झर-झर-झर बह निकले। वह मौन थी, स्तब्ध! पलकें झुकीं। अलकें उलझीं। ब्राह्म मुहूर्त था......शंख-ध्वनि होरही थी।

कुछ दिनों पश्चात् जनता ने कहा—सरिता सूख गई। निष्प्राण है यह तो! दिवाकर की प्रचण्ड रश्मियां बड़ी निर्मम हैं। ममत्व शून्य! आह! हमारा जीवन...... देव की इच्छा!

देवालय विध्वंस थे और घाट जीर्ण शीर्ण। पंछी भी वहां से प्रस्थान कर गये। अब वह निर्जन थी, निस्तब्ध। मरघट की शान्ति वहां डेरा डाले थी। पुराणों के पन्ने कभी कभी उसकी राम-कहानी सुना देते हैं।

कोई कहता है, वियोगिनी के आंसुओं में वह अब भी बहती है। कोई कहता है, 'अच्युत चरन तरंगिनी, और कालिन्दी की वह एक सहेली है जो आज भी अन्तः सलिला है!

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

(शेष पृष्ठ का १९)

की भारी सराहना करती थी और १९४५ में उन्हें इसके लिए आर्डर आफ लेनिन से सम्मानित किया गया। १९-४६ में आपको महान कौमी युद्ध सम्बन्धी वीरतापूर्ण श्रम का पदक प्रदान' किया गया।

सोवियत भारत विद्या को अकदमिशियन बारान्निकोव के निधन के रूप में भारी क्षति सहनी पड़ी है। आपके शुभ दृष्टांत का अनुसरण करते हुए भारतीय विषयों के सोवियत विद्यार्थी आजकल सोवियत संघ और भारत की महान जनता के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने के लिए हर सम्भव प्रकार से काम कर रहे हैं।

(शेष पृष्ठ ३८ का)

की दिशा में केवल कुछ उद्धरणों का उधार लेकर तथा आधार बनाकर ही बिना गहराई में उतरे ऐसे भ्रम फैलाने का प्रयास प्रारम्भ नहीं कर देना चाहिए। जो न तो तर्क की तुलापर ठीक उतरे, और न इतिहास की कसौटी पर खरे ठहरे। वे स्वयं गहराई में उतर कर इन विषयों को देखने की क्षमता प्राप्त कर लेगें तो उन्हें स्वतंत्र प्रकाश प्राप्त होगा। जिन आधारों के अनुकरण करने के कारण बड़ो बड़ों से गहरी भूले होगई हैं, होती रही है, उन भूलों को ही आधार बना लेने से उलझन ही बढ़ने की संभावना बनी रहती है, उन आधारों की स्वतन अध्ययन और पूर्ण-ग्रह रहित दृष्टि से ही छान बीन की [illegible] चाहिए, तभी उचित निर्णय पर पहुंचा जासकेगा।

तुरत दान महा-पुन्न :

❀ राजस्थान की एक लोक वार्त्ता ❀

श्री अक्षयचन्द्र शर्मा

'तुरत दान महा पुन्न' राजस्थान की एक विख्यात लोकोक्ति है, पर यह कम लोगों को मालूम है कि इसके पीछे कौनसी कथा छिपी है। लोकोक्तियों में एक ओर जन-जीवन के अनुभव भी रहते हैं तो दूसरी ओर उनके प्रादुर्भाव में कोई महत्वीय घटना भी कभी कभी छिपी रहती है। इस दृष्टि से कहावतों का अध्ययन विशेष लाभ-प्रद और रोचक हो सकता है।

हमारे कथा-साहित्य में राजा भोज और माघ पण्डित के नाम प्रभूत मात्रा में प्रचलित मिलेंगे। राजा भोज का कथाओं में बार बार आना उनकी शतमुखी प्रसिद्धि का द्योतक है। इन कथाओं से एक ही ध्वनि निकलती है कि राजा भोज गुण-ग्राहक, विद्या-व्यसनी, कला-प्रेमी और ज्ञान पिपासु था।

'तुरत दान महा पुन्न' कहावत की कहानी एक प्राचीन राजस्थानी वार्तासंग्रह के आधार से यहां दी जाती है।

'पतिदेव ! देखते नहीं, लड़की विवाह योग्य हो गई है। आपको तो जैसे इसकी चिन्ता ही नहीं !'

ब्राह्मण इसका क्या उत्तर देता। ब्राह्मण भोला जरूर था, पर यह उससे छिपा नहीं था कि अब किसी न किसी तरह विवाह तो करना होगा। वह कभी मन में विचारता 'अन्धे की माखी राम उड़ावै।' उसने ब्राह्मणी से कहा---'क्या करूं। कुछ सूझता नहीं, तुमसे क्या छिपा है! घर में फूटी कोड़ी भी तो नहीं।'

ब्राह्मणी यह सुन कर चिन्ता में डूब गई। उसे राजा भोज की याद आई। उसने कितनी ही बार राजा भोज की विद्याविलासिता व दानशीलता की कथाएं सुनीं थीं। ब्राह्मणी का हृदय उत्साह से भर गया और कहने लगी--

'पतिदेव पास हो तो उज्जयिनी है। सुना है, राजा भोज बड़े दानी हैं। धर्मात्मा हैं, दीन-दुःखियों के प्रेमी हैं। आप यदि वहां जाकर अपनी करुण कथा सुनावेंगे तो आपको अवश्य कुछ मिलेगा।'

ब्राह्मण यह सब जानता था। कितनी ही बार उसके दिल में भी राजा भोज के पास जानें की बात उठी थी। लेकिन यह सोच कर वह शान्त हो जाता कि मैं निरक्षर, वहां जाकर क्या करूंगा।

'जानती नहीं, वहां बड़े बड़े कवि लोग रहते हैं। गुनी जन का वहां आदर है। राजा के यहां खाली हाथ क्या जाऊं! 'शिलोक' नहीं तो 'गाहा' भी तो हो तब भी जाना हो सकता है।'

ब्राह्मण का कहना ठीक था। ब्राह्मण गरीब हो सकता है, पर मूर्ख हो यह लज्जास्पद है। ब्राह्मणी विदुषी थी, यदा कदा कविता भी बनाया करती थी। कहने लगी-'श्लोक' का क्या करोगे, एक गाहा जोड़ दूंगी। फिर तो जाओगे न।'

प्रातः होते ही ब्राह्मण उज्जयिनी जाने के लिए तैयार हो गया। ब्राह्मणी ने गाहा देते हुए कहा--इसे राजा भोज को देना। मूल्य पूछने पर एक लाख टके का बतला देना। 'गाहा' इस प्रकार थी।

तुरत दान महा पुन्न, करै सो पावै।
हाथ का दिया, काहीं ही न जावै।।

ब्राह्मण उज्जयिनी की ओर चल पड़ा। उज्जयिनी उसके गांव से दूर नहीं थी। दो-तीन कोस पर ही तो थी। ब्राह्मण के पैर आगे बढ़ रहे थे। पर उसका दिल पीछे की ओर उड़ा जा रहा था। वह सोचता था, मैं राजा से क्या कहूँगा। अन्दर कैसे जाऊंगा। बड़े बड़े पहरेदार होंगे। इस प्रकार की सैकड़ों आशंकायें उसके दिल में उठती। पर, उसे जाना तो है ही। सुना है, भोज बड़ा दयालु है। लड़की का विवाह नहीं हुआ तो नाक कटाई हो जायगी, जात बिरादरी में चख-चख होगी। अतः मनोनित काम भी नहीं चल सकता।

उज्जयिनी के दरवाजे इतने में दीख पड़े। वह लोगों से पूछता-पूछता राजा भोज के दरबार के पास जा पहुंचा। ब्राह्मण ने देखा कि द्वार पर दरबारी खड़ा है। दरबारी ने विनम्रता से झुक कर प्रणाम किया, पूछा—'ब्राह्मण देवता, क्या आज्ञा है?'

'राजा भोज से कहो एक ब्राह्मण आया है, साथ में एक गाहा लाया है।'

दरबारी ने राजा भोज को ब्राह्मण के आगमन की सूचना दी। राजा भोज स्वयं आगे बढ़ कर ब्राह्मण को लिवाने आया। राजा ने ब्राह्मण का आदर-सत्कार किया और उचित आसन देकर पूछा—

'ब्रह्मन्! यहाँ आने का आपने कैसे कष्ट किया? क्या आज्ञा है?'

'राजन् एक गाहा लाया हूं। उसे बेचने आया हूँ।'

'देवता! गाहा बेचोगे?'

'हाँ, बेचूंगा महाराज!'

'पर, जानते हो! गाहा का मूल्य मैं कैसे चुका सकता हूँ! एक सुन्दर गाहा के लिये मेरा समस्त राज्य भी तो तुच्छ है। मैं तो यहाँ गाहा को खरीदता नहीं, केवल उसकी विनम्र पूजा किया करता हूँ।'

ब्राह्मण यह सब कुछ न समझ सका। उसकी लड़की विवाह योग्य हो गई है। उसे विवाह करना है। ब्राह्मण पल भर चुप रहा, फिर बोल उठा 'हाँ, महाराज गाहा बेचूँगा और वह भी एक लाख टकों में। न कम न ज्यादा।'

राजा ने कोषाध्यक्ष को एक लाख टका देने की आज्ञा दी। ब्राह्मण ने राजा को गाहा दी और हृदय से सैकड़ों आशीर्वाद।

गाहा को राजा ने पढ़ा।

'तुरत दान महा पुन्न, करै सो पावै
हाथ का दिया कहीं ही न जावै।'

राजा ने पूछा—'ब्राह्मण! इस गाहा का रहस्य अर्थ?'

ब्राह्मण सकपकाया, इस प्रश्न का उत्तर वह क्या देता। वह गाहा का अर्थ क्या जाने। निरीह ब्राह्मण ने स्पष्ट कहा, 'राजन्! इसका अर्थ मैं नहीं जानता। मेरी स्त्री ने इसे बनाया है, वही इसका अर्थ जानती है।'

राजा भोज भोले ब्राह्मण की स्पष्टवादिता से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। ब्राह्मण का नाम, गाँव, धाम पूछ कर उसे सादर विदा दी।

ब्राह्मण अपने गाँव को लौट आया। धूमधाम से अपनी बेटी का विवाह किया गया चारों ओर राजा भोज की दानशीलता की चर्चा होने लगी।

एक दिन राजा भोज शिकार खेलने निकले। दू जङ्गल में घोड़ा दौड़ाते दौड़ाते साँझ होने को आई। राजा को प्यास लग गई थी। पास ही एक छोटा सा गाँव दीख पड़ा। राजा ने अपने घोड़े को उधर बढ़ाया। देखा, गाहा वाले ब्राह्मण देवता का गाँव है। राजा भोज को गाहा याद आ गई। राजा ब्राह्मण के घर पहुँचा। ब्राह्मण ने राजा का आदर सत्कार किया। पर, राजा भोज को उज्जयिनी पहुँचने की उतावल थी। राजा ने ब्राह्मणी से पूछा—देवी उस गाहा का अर्थ क्या है?

ब्राह्मणी ने कहा—'राजन्! गाहा का अर्थ गुजरात के साँवल सा. सेठ का लड़का बताएगा, जो आज से ठीक दसवें रोज उत्पन्न होगा।' राजा अपनी राजधानी को लौट आया।

गाहा के अर्थ का खोजी राजा भोज एक दिन चुपचाप गुजरात के लिए चल पड़ा। साथ में न घुड़सवार, न मन्त्री और न भृत्य-वर्ग। एकाकी राजा, गुजरात की सीमा से ५.७ कोस पहले ही राह भूल गया। इधर उधर भटकता वह एक गुफा के पास जा पहुँचा। रात को पास आते देख राजा ने यहीं आस-पास पड़ाव डालने की सोची। सामने एक भील लकड़ियों का गट्ठर लादे, और पीछे कंधे पर झूलती हुई आटे की पोटली लिये दीख पड़ा। भील वहाँ अकेले घुड़सवार को देख कर ठिठक गया। पूछा—'कौन हो तुम?'

'मैं एक बटोही। राह भूल गया हूँ।'

'कहाँ जाना है?'

'गुजरात को।'

'गुजरात को? तो पास ही पगडण्डी जाती है। जल्दी करो। यहाँ आस-पास सिंह रहता है।'

'पर, भाई! मैं दिन भर से चलते-चलते थक गया हूँ। यहीं-कहीं रातवासा नहीं मिलेगा क्या?'

'रातवासा! यहाँ तुम्हें कहीं जगह दीख पड़ती है। खुले में रहोगे तो सिंह बेमौत मार डालेगा, बटोही!'

पर, राजा भोज थक कर चूर होगया था और उधर काली रात धीरे धीरे बढ़ती हुई आ रही थी।

भील चाहता था कि घुड़सवार वहाँ न रहे। पर अब वह बटोही को जाने के लिये कैसे कहे! उसने गु

था अतिथि देवता होता है। और आज वही अतिथि देवता उसके द्वार के पास से कैसे लौटा दिया जावे।

'ठहरना है तो ठहरो, यहीं ठहरो बटोही। वह सामने गुफा देख रहे हो, वहाँ चलो। घोड़े को खुला चरने छोड़ दो मैं भी अभी आया।'

राजा भोज भील की वाणी से आश्वस्त हुआ। घोड़े से उतरा और ऊपर चढ़ने लगा। गुफा के पास पड़ी शिला पर सुस्ताने बैठ गया। अन्दर से भीलनी ने आहट सुनी और वह बाहर निकल आई। उसके बाल बिखरे हुए, आँखों में क्रोध, जैसे अभी किसी पर उबल पड़ेगी। भील इस बात को जानता था। वह शीघ्रता से पहुँच कर कहने लगा–'चलो अन्दर, अभी आ रहा हूँ।'

भील ने अन्दर पहुँच कर न मालूम क्या क्या कहा। राजा इसे न समझ पाया। लेकिन, भीलनी की तीखी कर्कश बोली मानो राजा से साफ-साफ कह रही थी कि यह कोई प्रेमालाप नहीं, महाभारत की भूमिका है। पर, राजा बटोही है उसे अभी इनसे क्या लेना है!

भीलनी ने आटे को गूँदा और उससे चार रोटियाँ बनाईं। भील ने कहा—आज हमारे यहाँ पाहुना आया है, इससे हमें दो दो रोटियाँ नहीं मिलेंगी। आज हम तो बाँट कर बराबर-बराबर खायेंगे।

भील ने न मालूम यह प्रस्ताव भीलनी के सामने क्यों रखा! क्या वह भीलनी को नहीं जानता! अभी अभी भीलनी ने भील पर जो गालियों की बोछार की थी, क्या वह सब यों ही थी! भील सब कुछ जानता था, और इस प्रस्ताव के कुफल से भी वह अनजान नहीं था। फिर भी उसके हृदय के एक निभृत कोने में एक सजग विश्वास था कि बुरे क्या हमेशा बुरे होते हैं।

भीलनी ने गर्जन करते हुए कहा—"मेरी दो रोटियों से एक कौर भी नहीं भाग फूटे। ऐसे भोज बनते हो तो अपनी रोटियों खिलाओ।' भोज ने बाहर बैठे अपने नाम को सुना पर अनजानी बोली के कारण वह समझ न सका

भील कुछ भी उत्तर न देकर दो रोटियों को लिये हुए बाहर निकल आया। 'अतिथि देवता होता है।' भील का हृदय इस बात को भाषा में नहीं भाषा हीन भाव में हजारों बार दुहरा चुका था। 'बटोही! ये दो रोटियाँ लो। अभी पानी भी लाता हूँ।'

राजा ने भील की ओर देखा, यह जानने के लिये कि कहीं यह भूखा तो नहीं। भील को यह समझते देर न लगी कि राजा की आँखें क्या खोज रही हैं। भील ने कहा, 'आप भोजन कीजिए। मैं खा चुका हूँ।'

राजा भोज भूखा है, आगे खोज करने का न अवसर था और न स्थान! भोज ने भोजन करने के बाद पानी पीकर सन्तोष की साँस ली।

रात गहरी हो चली। बटोही की आँखों में नींद घुलने लगी। भील ने भीलनी से जाकर कहा, "अब सोने का प्रबन्ध करना है। थोड़ी जगह दो तो काम चले।"

भीलनी ने समझाते हुए कहा, देखो न गुफा में केवल दो के लिये जगह है। बटोही बाहर पड़ा रहेगा। उसके भाग की बात! सिंह यदि उसे खा जावे तो इसमें हमारा क्या अपराध!

भीलनी ने बात बेजा नहीं कही थी। पर भील ने कहा, यह कैसे हो सकता है कि अतिथि बाहर पड़ा रहे और हम भीतर बेखटके सोवें।

'तो फिर तुम जानो। मैं अपनी जगह देने से रही।' भीलनी के इस उत्तर को भील जानता था फिर भी उसके हृदय के निभृत कोने में एक सजग विश्वास था कि बुरे हमेशा बुरे नहीं होते हैं!

भील ने बाहर आकर बटोही से भीतर सोने के लिये कहा। राजा ऊँघ रहा था। वह आवाज सुन कर उठा और भीतर जाकर सो रहा। सोते ही नींद ने आघेरा। भीलनी अन्दर अपनी जगह सो रही।

भील गुफा के बाहर बैठ गया। उसने गुफा द्वार पर शिला लगा दी थी ताकि कोई अन्दर घुस न सके।

सुबह हुआ। राजा नींद से जग पड़ा। शिला के इधर उधर से प्रकाश की किरणें गुफा में उजाला किये हुई थी। दूर कोने में भीलनी दीख पड़ी। राजा ने अभिवादन किया और कहा–'देवी! इस शिला को दूर कैसे करें।'

भीलनी बोली—इसे भील हटा सकता है या राजा भोज।

राजा भोज ने जोर जोर से आवाज लगाई । पर, कोई बोला नहीं ।

राजा ने अपने हाथ से शिला हटाई । भीलनी चिल्ला उठी—'तुम राजा भोज हो क्या ?'

'बटोही' राजा भोज ने कहा—'हाँ, मैं केवल बटोही हूं ।'

राजा ने जो कुछ देखा, उससे राजा का मानस करुणा और आत्म ग्लानि से भर उठा । भील की हड्डियाँ इधर उधर बिखरी पड़ी थी, रुधिर के छींटे पड़े हुए थे । मालूम होता था कि बहादुर भील ने सिंह से काफी देर तक द्वन्द्व युद्ध किया है । शेर भी लहू लुहान छटपटा हुए कन्दरा में पड़ा मौत की इन्तजार में था । । राजा भोज संभल कर उठा और फिर उसके आँखों के सामने अंधेरा छा गया । राजा की आँखों में आँसुओं की अनवरत धारा थी । पर, कर्तव्य आंसुओं से ज्यादा महान् है । राजा अकेला दूर दूर से लकड़ियाँ चुनने चल पड़ा । लकड़ियों की चिता बनाई गई । राजा ने बहादुर भील के शरीर के टूटे हुए अवयवों को लकड़ियों के ऊपर रखा ।

भीलनी यह सब पत्थर बनी देखती रही । सारे जीवन के पाप रात से भी ज्यादा स्याह होकर उसके आँखों में भर उठे । 'मैं पापिनी ! मैं पापिनी !!' इस प्रकार वह चीख उठी और दौड़ती हुई राजा भोज के पास पहुँची । राजा भोज चिता के चारो ओर घूम कर लांबा (अन्त्येष्टि संस्कार के लिये लगाई जाने वाली अग्नि) लगा रहे थे । भोज का हृदय अतिथि के लिये प्राण देने वाले वीर भील की मृत्यु-व्यथा से भर रहा था । इतने में भीलनी आग की लपटों में कूद पड़ी । चारों ओर आकाश में यही ध्वनि गूँजने लगी 'मुझे अपने पापों का प्रायश्चित करने दो ।' देखते देखते भील और भीलनी दोनों भस्म शेष रह गये, लेकिन इस घटना की अमिट छाप राजा भोज के हृदय-पटल पर जम गई । राजा भोज ने चिता की राख को झुककर प्रणाम किया और वह गाहा के रहस्यार्थ खोज में चल पड़ा ।

'सांवल सा सेठ का घर ?'

यहाँ ऐसा कौन है, जो उसे नहीं जानता । 'तुम परदेसी हो क्या राहगीर ?'

'हाँ, परदेसी हूँ । उज्जयिनी से चला आरहा हूं । बड़ा नाम सुन रखा था सांवल सा सेठ का ।' ब्राह्मण का रूप बनाये हुए राजा भोज ने कहा ।

दूसरा राहगीर ब्राह्मण था । वह भी सेठ सांवल सा के घर दान-दक्षिणा के लिये जा रहा था । सांवल सा के पुत्र जन्मोत्सव जो है ।

दोनों इधर उधर की बातें करते २ सांवला सा सेठ के द्वार पर आ पहुँचे । सांवला सा सेठ के द्वार पर याचकों की भीड़ जमा थी ।

आज सांवल के हर्ष का पारवार नहीं था । बुढ़ापे पुत्र-रत्न को पाकर वह अपने पुरबले भाग्य को सराह रहा था ।

राजा भोज सेठ के वैभव को थोड़ी देर देखता रहा । भोज का साथी ब्राह्मण भीड़ में इधर उधर खो गया । भोज को तो अपनी गाहा के मर्म जानने की बेचैनी थी, इसलिये वह तेजी से सांवल सा सेठ की ओर बढ़ा ।

सेठ ने दूर देश की पोशाक धारण किये हुए अजनबी ब्राह्मण को देखा विनम्रता के साथ सेठ कहने लगा, आर्य ! स्वागत है । धन्य हूँ मैं, जो आपने मेरे घर को अपनी चरण-धूलि से पवित्र किया है ।'

ब्राह्मण वेश धारी भोज इस विनम्रता को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहने लगा—तुम्हारे बड़ा भाग्य शाली पुत्र हुआ है । आशीर्वाद देने चला आया हूं ।

सेठ ने ब्राह्मण से दान-दक्षिणा लेने को बहुत विनती की, पर ब्राह्मण ने अस्वीकार करते हुए कहा—अभी तो मैं लेने नहीं, आशीर्वाद देने आया हूँ ।

सेठ राजा भोज को प्रसूति घर तक ले गया । सेठ ने धाय से पुत्र को लाने के लिये कहा । धाय शिशु को लेकर आई । शिशु राजा भोज को देख कर मुस्करा उठा और भोज से कहने लगा—गाहा के अर्थ को जानने आये हो क्या ? अभी जरा शहर में घूम आओ । सांझ पड़े आना फिर गाहा का अर्थ बतलाया जायगा ।

सेठ व धाय कुछ न समझ सके । भोज ने आ आशीर्वाद देकर मंगल श्लोक पढ़ें । सेठ ने भक्ति भा पूर्वक राजा भोज को विदा दी ।

राजा भोज दिन भर शहर में इधर उधर घूमता रहा। एक दरवाजे के बाहर राजा भोज ने देखा कि प्रसूता सूग्ररी एक ओर खड़ी है, उसने अपने बच्चे को बाहर डाल दिया है। उस बच्चे को गीध, कौवे और सियार नोच रहे हैं और सुग्ररी खड़ी खड़ी तमाशा देख रही है। भोज एक तरफ खड़ा हो इस दर्दनाक दृश्य को देखता रहा। राजा ने सोचा कि इस बच्चे ने कोई भयंकर पाप किया है, जिसका फल यह भोग रहा है। इतने में राजा को गाहा के अर्थ की याद आई। वह जल्दी २ सेठ के घर पहुँचा। सेठ पहले की तरह अपने बच्चे के पास ले गया।

बच्चे ने पूछा—क्यों गाहा का अर्थ मिला ?

'नहीं।' राजा ने उत्तर दिया।

'तो फिर विमल सा सेठ के घर जाओ। कल उसके लड़की होगी, वही इस गाहा का अर्थ बतलाएगी।'

दूसरे दिन राजा भोज विमल सा के घर पहुँचा। विमल सा सेठ ने अतिथि ब्राह्मण का आदर-सत्कार किया। राजा भोज ने विमल सा से कहा, भाग्यवान्! अभी तुम्हारे घर एक सौभाग्यवती कन्या का जन्म होने वाला है। वह तुम्हारे घर को उजारेगी। उसे आशीर्वाद देने चला आया हूँ।

सेठ को ऐसा मालूम हुआ जैसे उसको कहीं से कुबेर का खजाना मिल गया है। वह आनन्दतातिरेक में गद्-गद् वाणी से बोला-धन्य हो ब्राह्मण देवता! आपकी जबान फले। सात लड़कों के बाद लाडली कन्या का जन्म मेरे कितने सौभाग्य का चिन्ह है।

उसी समय दासी ने कन्या के जन्म का सुसंवाद सुनाया।

राजा भोज ने कहा—सेठजी! कन्या को देखना चाहता हूँ, उसे आशीर्वाद देकर लौट जाऊंगा।

विमल सा सेठ भोज को अन्दर ले गया। दाय से कन्या को लाने के लिये कहा गया। आज्ञा पाते ही दाय कन्या को ले आई कन्या ने राजा भोज को देखकर मुस्काने लगी उसने पूछा-'कैसे आना हुआ राजन्!'

'गाहा का अर्थ पूछने आया हूँ, सौभाग्यवती!'

'गाहा का अर्थ अभी नहीं मिला क्या ?'

'नहीं।'

'तो सुनो। वह जो सांवल सा सेठ का लडका है, वह पहले भील था। याद है, उसने तुम्हारे लिये प्राण दे दिये थे उसीका उसे तुरन्त फल मिला है। वह भाग्यशाली बन कर जन्मा है। कल तुमने सूग्ररी की बच्ची को देखा था न, जिसको गिध, सियार नोच रहे थे-वह वही भीलनी थी। उसको भी उसके कुकर्म का दण्ड तुरन्त मिला। याद है, अन्त में भीलनी अपने कुकर्मों पर पछताती आग में जल मरी थी, उसी सुकर्म का फल है कि मैं सुग्ररी की जूण (योनि) से तुरन्त छुटकारा पाकर अब विमल सा सेठ के घर पुत्री बन कर जन्मी हूँ। अब तो गाहा का अर्थ मिल गया न!'

राजा की आंखें खुल गई। विमल सा इस रहस्य को समझ न पाया। राजा भोज ने विदा मांगी। विमल सा ने रुकने के लिये बहुत आग्रह किया, पर वह रुका नहीं।

भोज उज्जयिनी के लिये रवाना हुआ। सोचने लगा यह गाहा कितनी अमूल्य है। आज इसका रहस्य समझ पाया हूँ। अभी तो भील की चिता की राख भी पूरी तरह उड़ नहीं पाई होगी कि दोनों को अपनी २ करनी के अनुसार तुरन्त फल मिल गया। मेरे लाख टके इस गाहा के सामने कुछ भी नहीं, कुछ भी तो नहीं।

तुरत दान महा पुन्न, करै सो पावे
हाथ को दियो काहां हो न जावे।

पुस्तक-परिचय-परामर्श

आँखों देखा रूस ले० श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार

बंगला भाषा के ख्याति प्राप्त लेखक और बंगाल के वयोवृद्ध, यशस्वी पत्रकार श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार उन सम्माननीय लेखकों में से हैं जो सन् १९५१ में "रूस के लेखक संघ" द्वारा भारतीय साहित्यिकों और कलाकारों को निमन्त्रित करने पर भारत सरकार द्वारा भेजे गये सांस्कृतिक-प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य थे। 'आंखों देखा रूस" बंगला भाषा में लिखित "आमार देखा रशिया" का हिन्दी अनुवाद है और इसकी लोक-प्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण तामिल, तेलगु, व अंग्रेजी भाषाओं में अनुदित होजाना तो है ही किन्तु श्री मजूमदार की रोचक और आकर्षक वर्णन शैली तथा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी भाषा ने पाठकों के हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लिया है।

अंतर राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर साम्राज्यवादी देशों ने 'रशिया' के विरुद्ध कई प्रकार का भ्रामक प्रचार तथा मनगढ़ंत भ्रान्त धारणाओं को फैला रखा है। वे कहते हैं कि रूस अपनी फौलादी दीवारों के बीच कई रहस्य छिपाये बैठा है। वहां संसार की मानवता के विरुद्ध भीषण षड़यन्त्रों की रचना होती है, किन्तु श्री मजूमदार ने "आंखों देखा रूस" में बहुत ही संक्षेप में तथ्यपूर्ण प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर रूसी जीवन की रोचक झांकी अंकित की है। वहां की निर्माणकारी योजनाएँ, वहां का समाज रहन-सहन, रीतिरिवाज, शासन व्यवस्था और जन जीवन पर उसका प्रभाव सब कुछ इस प्रकार चित्रित किया है कि पाठक अपने आप को खोदेता है और वह कुछ क्षणों के लिये उस देश में चला जाता है 'जहाँ मानव अपने मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र उसके लिये उन्मुक्त हैं और वहां के मानव का मानदण्ड उसका 'श्रम' और उसकी कर्तव्य शक्ति है। रूस की उत्पादन-शक्ति, खेती की व्यवस्था, 'ट्रेड-यूनियनें' और कल कारखानें आदि का भी अध्ययन श्री मजूमदार ने बड़ी बारीकी से किया और वह इतना सुलझा हुआ है कि एक साधारण व्यक्ति भी उसे बिना किसी कठिनाई के समझ सकता है।

रूस के साहित्यिक, सांस्कृतिक और कला के क्षेत्र को चित्रित करते समय श्री मजूमदार ने अपनी कुशल लेखनी द्वारा कई जटिल समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है, और उनके समाधान करने के तरीकों को भी सतर्कता पूर्वक परिलक्षित किया है। रूस का नारी जीवन श्री मजूमदार के लिये आश्चर्य की वस्तु है। वे जब अपने 'महिला दर्शक' से नारी जीवन सम्बन्धी विषयों पर चर्चा करते हैं तो उन्हें एकदम भारतीय नारी का विपरीत चित्र स्मरण हो उठता है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् रूसने निर्माण के क्षेत्र में आश्चर्य जनक प्रगति की है। फिर भी रूस के सम्बन्ध में कई प्रकार भ्रान्तियां पैदा की जारही हैं। श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ने उनको दूर करने का भरसक व जी तोड़ प्रयत्न किया है, और उसमें वे शत् प्रतिशत सफल भी हुए हैं। अनुवाद बहुत स्वाभाविक, सरल और सफल हुआ है। पुस्तक सभी के पढ़ने की चीज है।

प्रकाशकः—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
मूल्य २) रुपये

-यूरोपा-

लेखक श्री देवेन्द्रचन्द्र दास

यों तो हिन्दी साहित्य में भी प्रवास वर्णनों की कमी नहीं हैं, बंगला साहित्य से अनुदित 'यूरोपा' ने हिन्दी साहित्य में प्रवेश कर प्रवास साहित्य को एक नया मार्ग प्रदर्शित किया है। प्रवास वर्णन दो प्रकारके होतेहैं प्रथम तो रेलवे के 'टाईम टेबल' अथवा किसी ऐतिहासिक स्थानों पर पाये जाने वाले "गाईड" के समान, और दूसरा वह जो साहित्य के लालित्य सहित किसी देश-विशेष का सांस्कृतिक व आन्तरिक परिचय दे सके। वैसे 'यूरोपा' भी

है तो प्रवास वर्णन किन्तु उसने यूरोप के बाह्याडम्बर को छोड़कर आन्तरिक सौन्दर्य और राष्ट्र की आत्मा के दर्शन कराये हैं। किसी भी देश की विचित्रताओं को यदि हम एक विहंगम दृष्टि से देखें तो हमें उस देश की मिट्टी का पता नहीं लगसकता। श्री देवेन्द्रचन्द्र दास ने अपनी 'यूरोपा' में ऐसी भूल नहीं की। न तो वे 'इफेल टावर' की ऊँचाई बताने में व्यस्त हैं और न उसके निर्माण काल पर अपना मत प्रदर्शित करते हैं, न टेम्ज़ नदी के किनारे वाले लम्बे-लम्बे वृक्षों की पांतों का वर्णन है और न उसके विशाल पुल का परिचय। उन्होंने इनको जान बूझ कर टालने की कोशिश नहीं की किन्तु वातावरण और आवश्यकता के अनुसार इनका सन्दर्भ भी दिया है। इंग्लेण्ड, स्पेन, जर्मनी, फ्रान्स, इटेली और हॉलेण्ड—चाहे कहीं भी हों श्री दास ने अपने अन्तर चक्षुओं से प्रत्येक देश की प्रत्येक वस्तुओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण किया और स्थान-स्थान पर उनका चित्रण भी किया है, जिसके कारण श्रीदास की बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टेगोर ने उक्त उद्धरण में 'यूरोपा'' को आशीर्वाद देते हुए यह कहा है कि "यूरोपा बंगला हिन्दी अनुवाद है, स्वयं लेखक के द्वारा किया गया। भाषा संस्कृत बहुल अवश्य है परन्तु रस अथवा भाव हानि जरा भी नहीं होती 'शरद् साहित्य' का हिन्दी में खूब प्रचार है अतः इस किस्म की भाषा समझना अब साधारण पाठक के लिये दुष्कर नहीं।"

-स्वर्णाहन-

'स्वर्णाह्न' में मालवा के तरुण गायक श्री करुणेश की उन तेवीस कविताओं का संग्रह किया है, जिसमें कवि ने देश प्रेम की प्रखर भावना को पद्य-बद्ध कर राष्ट्र भारती के चरणों में तो अर्पित किया ही है किन्तु राष्ट्र नायक जवाहर व राजेन्द्र बाबू, तथा राष्ट्र भारती के अमर गायक प्रसाद, गुप्त, पंत व महादेवी के प्रति भी अपनी भावनाञ्जली अर्पित की है। संग्रह में कुछ ऐसी कविताएं भी संग्रहित हैं जो बालकों के पाठ्यक्रम में ली जा सकती है। भावना की गहराई और कल्पना की उड़ान ने कविताओं को और भी आकर्षक बना दिया है। गेयस्वप्रधान गीतों का शब्द चयन कवि की प्रखर-प्रतिभा का परिचायक है।

श्री 'करुणेश' मालवा के उदीयमान कवि हैं। 'स्वर्णाहन' के भूमिका लेखक पं. सूर्यनारायणजी व्यास ने अपनी भूमिका में लिखा है कि, "कवि के प्राप्त संग्रह के पढ़ने से विश्वास होता है कि वे शीघ्र ही अपने भावनोपवन के किसी ऐसे सुमन से भारती के विशाल मंदिर में काव्य देवी की पूजा करेंगे जिस पर हिन्दी भाषा भावी को गर्व होगा।"

प्रकाशकः—प्रतिभा प्रकाशन, हिन्दी साहित्य समिति बड़नगर　　मूल्य-चौदह आना।

श्री 'वंम'

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति
॥-) आने

-सुमित्रा-

वार्षिक मूल्य
६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर
तथा
संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**—देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।

२. **डायरी के पन्ने**—हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।

३. **सबसे प्यारी कृतियां**—पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।

४. **पत्रांजलि**—देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ—हस्ताक्षरके साथ।

५. **विश्व-भारती**—संसार के महान कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर

६. **भारत-भारती**—देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।

७. **हमें यह कहना है!**—संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

स्व० रविन्द्र के प्रति

[कैलाश शर्मा]

ओ महाकवि युग मानव विराट !
न में न्तर का आश्रय
द राग-छन्द गति लय सुन्दर—
न्यों का पारावार निहित;
अभिव्यक्त हुई युग की धारा
ंध-मुक्त-प्रेरक अविरल,
न में पाया कविता ने
साकार रूप आश्रय निश्चल।

ानव जग के सम्पूर्ण भाव
उपेक्षित पद दलित मूक,
त शत हृदयों का व्यथा भार—
ोषित उत्पीड़ित की पुकार,
पुलक उठे वाणी का सहसा पा दुलार !

ोमल कलियां किसलय मर्मर
न-डाल-पात् उद्यान सभी
कह उठे स्वयं सम्पूर्ण हाल।

ेद सिक्त श्लथ मानव के
न्तित बोझिल कृश तन के—
न के, सकल राग —
औ' दुखित उर की वाणी भी हो उठी मुखर !

य द्रष्टा, शिव साधक, सुन्दर
गये विश्व को दान अमर,
ग जीवन के रहस्योद्घाटक,
खुल गई ग्रंथियाँ जीवन की चिर गोपन !

न गई प्रेरणा आजीवन
ाञ्चन गृह में थी कमी कौन ?
ोल सभी निःशब्द द्वार
मानव उरके वह लगन मौन !

बिखरी देशों में बन खण्ड खण्ड
व दलित त्रस्त,
र पुन वाणी के मधुर शब्द
पाकर स्वरूप सहसा
मानवता होगई आश्वस्त !
फिर कह उठे तुम ही शीश उठा—
औ ऊर्ध्व निवासी अजर अमर !

'हम मर्त्य निवासी तुम जैसे,
हम मानव भी अमृत पुत्र !'
तुम्हारी सृष्टि में हरदम
रूप सिन्धु था हिल्लोलित,
जब हुई अर्चना पूर्ण

औ' दृष्टि का उन्मेष मदिर
कर गया धूलि कण को स्वर्गिक
रूप विभा से जगमग;
रह गये देखते सूर्य चन्द्र
उडुगण अपलक।
कह उठा तभी यह सकल विश्व
तुम सत्-शिव-सुन्दर के साकार रूप !
भ्रममय यह कैसा अन्धकार !

युग-युग का रवि क्या हुआ अस्त ?
जन-मन का कवि क्या हुआ अस्त ?
होगये अचानक हृदय रिक्त !
होगई नग्न पशुता सहसा
असहाय मनुजता आज विकल,
भय से काँप रही वसुधा जब
स्वर क्यों सतत मौन मेरे गायक ?

कह रही तुम्हारी विश्व प्रिया
वो अर्ध नग्न, बाँहें फैला
करुणार्द्र स्वरों में रही पुकार—
'जेते नाहीं देबे—जेते नाही देबें'

पर चले गये तुम
शान्ति के अग्रदूत,
कर गीत मौन
लेकर जगती का प्रकाश औ' संबल !

Phone No. 48

Regd. No. N. 88

विक्रम

साहित्य और संस्कृति की सुर-सरि प्रवाहित करने वाला हिन्दी-भाषा का सचित्र सुन्दर मासिक पत्र । जिसे मध्यभारत, उत्तरप्रदेश राजस्थान आदि राज्यों ने मान्य किया है, और जो नगर, ग्राम की पाठशालाओं से लेकर विदेश के दूतावासों तक सुसंस्कृत समाज में पढ़ा जाता है, हिन्दी के सभी मान्य विद्वानों ने विक्रम के विचारों की एक स्वर से प्रशंसा की है, यदि आप ग्राहक नहीं हैं तो तुरंत ग्राहक बन जाइए, विक्रम, ज्ञान सुरुचि का, राष्ट्रीयता के साथ भारतीय-संस्कृति के आदर्शों का पोषक पत्र है।

यदि आप अपनी वस्तु का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं तो मध्यभारत उत्तरप्रदेश राजस्थान से लेकर विदेशों तक के दूतावसों में विक्रम के द्वारा लाभ उठा सकते हैं, विक्रम आपकी वस्तु के विज्ञापन का सर्वोत्तम माध्यम है ।

विक्रम-कार्यालय, उज्जैन

(मालवा)

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

१८/६/४१०

गुरुकुल कांगड़ी

जुलाई—सितम्बर १९५३

विक्रम

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

विक्रम संवत २००८

संचालक संपादक

सूर्यनारायण व्यास

आषाढ़-श्रावण २०१०

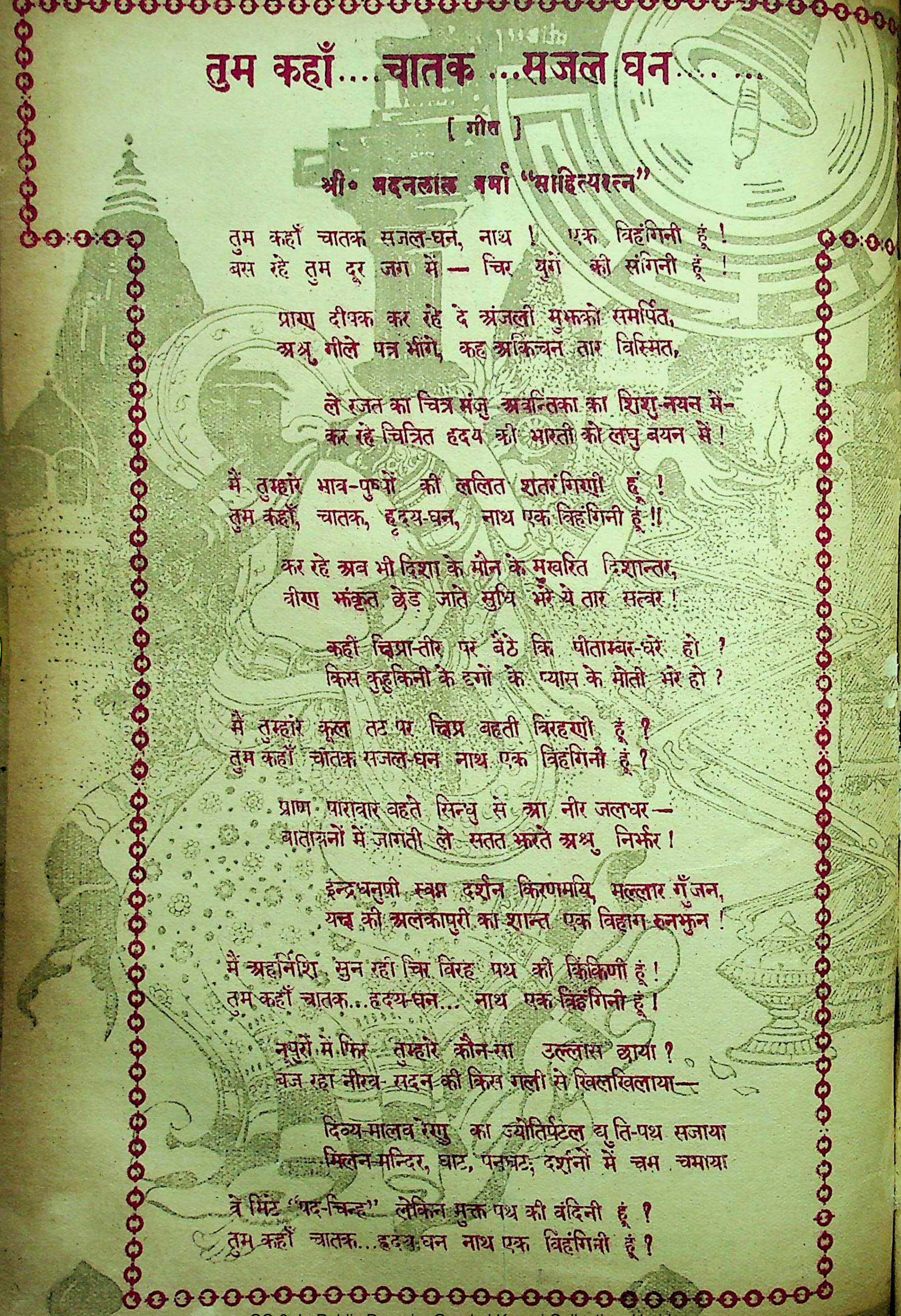

तुम कहाँ....चातक ...सजल घन..... ...

[गीत]

श्री० मदनलाल वर्मा "साहित्यरत्न"

तुम कहाँ चातक सजल-घन, नाथ ! एक विहंगिनी हूं !
बस रहे तुम दूर जग में — चिर युगों की संगिनी हूं !

प्राण दीपक कर रहे दे अंजली मुझको समर्पित,
अश्रु गीले पत्र भीगे, कह अकिंचन तार विस्मित,

ले रजत का चित्र मंजु अवन्तिका का शिशु-नयन में-
कर रहे चित्रित हृदय की भारती को लघु बयन से !

मैं तुम्हारे भाव-पुष्पों की ललित शतरंगिणी हूं !
तुम कहाँ, चातक, हृदय-घन, नाथ एक विहंगिनी हूं !!

कर रहे अब भी दिशा के मौन के मुखरित दिशान्तर,
वीण झंकृत छेड़ जाते सुधि भरे ये तार सत्वर !

कहीं क्षिप्रा-तीर पर बैठे कि पीताम्बर-धरे हो ?
किस कुहुकिनी के दृगों के प्यास के मोती भरे हो ?

मैं तुम्हारे कूल तट पर क्षिप्र बहती विरहणी हूं ?
तुम कहाँ चातक सजल-घन नाथ एक विहंगिनी हूं ?

प्राण पारावार बहते सिन्धु से आ नीर जलधर —
वातायनों में जागती ले सतत झरते अश्रु निर्झर !

इन्द्रधनुषी स्वप्न दर्शन किरणमयि, मल्लार गुँजन,
यक्ष की अलकापुरी का शान्त एक विहाग रुनझुन !

मैं अहर्निशि सुन रही चिर विरह पथ की किंकिणी हूं !
तुम कहाँ चातक...हृदय-घन... नाथ एक विहंगिनी हूं !

नूपुरों में फिर तुम्हारे कौन-सा उल्लास छाया ?
बज रहा नीरव- सदन की किस गली से खिलखिलाया—

दिव्य-मालव रेणु का ज्योतिर्पटल द्युति-पथ सजाया
मिलन-मन्दिर, घाट, पनघट; दर्शनों में चम चमाया

वे मिटे 'पद-चिन्ह' लेकिन मुक्त पथ की वंदिनी हूं ?
तुम कहाँ चातक...हृदय-घन नाथ एक विहंगिनी हूं ?

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
॥=)

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

आषाढ़ २०१०

१ तुम कहाँ... चातक...सजलघन ... ... श्री मदनलाल वर्मा सा. रत्न ... ...
२ व्यास-उवाच ... ... सम्पादकीय १-१६
३ सांस्कृतिक केन्द्र मध्य-भारत और उसके पुनर्विकास की आवश्यकता ... श्री राघेलाल व्यास एम्. पी. १७-१८
४ मालवा में दस दिन ... ... श्री डॉ. गंगाशंकर पंड्या १९-२२
५ निरर्थक बात ... ... श्री रवीन्द्रनाथ टागोर २३-२४
६ पत्रकार आगरकर ... ... श्री कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ... २५-२८
७ प्रेम, स्वाभिमान और अहंकार ... ... श्री भैयालाल वर्मा २९-३०

श्रावण २०१०

१ आहत मुद्राओं का प्रागऐतिहासिक स्रोत्त एवं उज्जयिनी की प्राचीन मुद्राएँ ... श्री वि. श्री वाकणकर १७-२५
२ नर्मदा उपत्यका के लोकगीत ... ... श्री श्याम परमार एम्. ए. एल. टी. ... २६-२९
३ नीरजा के गीतों की भावगत आधार भूमिका ... श्री दुर्गा प्रसाद झाला ३०-३३
४ पुस्तक परिचय-परामर्श ... ... श्री बसन्तीलाल 'बम' ३४-३८
५ अमर पथिक ... ... श्री एम्. एम्. कान्त सिन्हा ... ...

Advertisement Rates. / **विज्ञापन के दर**

Advertisement Rates.	विज्ञापन के दर
Cover page 2nd Rs. 200 per Insertion.	टाईटिल द्वितीय पृष्ठ – २००) प्रतिमास
" " 3rd Rs. 150 " "	" तृतीय पृष्ठ – १५०) "
" " 4th Rs. 300 " "	" चतुर्थ पृष्ठ – ३००) "
(In two colours.)	(दोरंग में)
Ordinary full page Rs. 100 " "	साधारण पूरा पृष्ठ – १००) "
" Half page Rs. 60 " "	" आधा पृष्ठ – ६०) "
" Quarter page Rs. 35 " "	" चौथाई पृष्ठ – ३५) "

पत्र व्यवहार का पता— "विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति] ॥-) आने]

—सुमित्रा—

[वार्षिक मूल्य [६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर

तथा

संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**—देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।

२. **डायरी के पन्ने**—हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।

३. **सबसे प्यारी कृतियां**—पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।

४. **पत्रांजलि**—देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ—हस्ताक्षर के साथ।

५. **विश्व-भारती**—संसार के महान् कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर

६. **भारत-भारती**—देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।

७. **हमें यह कहना है!**—संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

मध्य-भारत, उत्तर प्रदेश तथा [illegible] एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

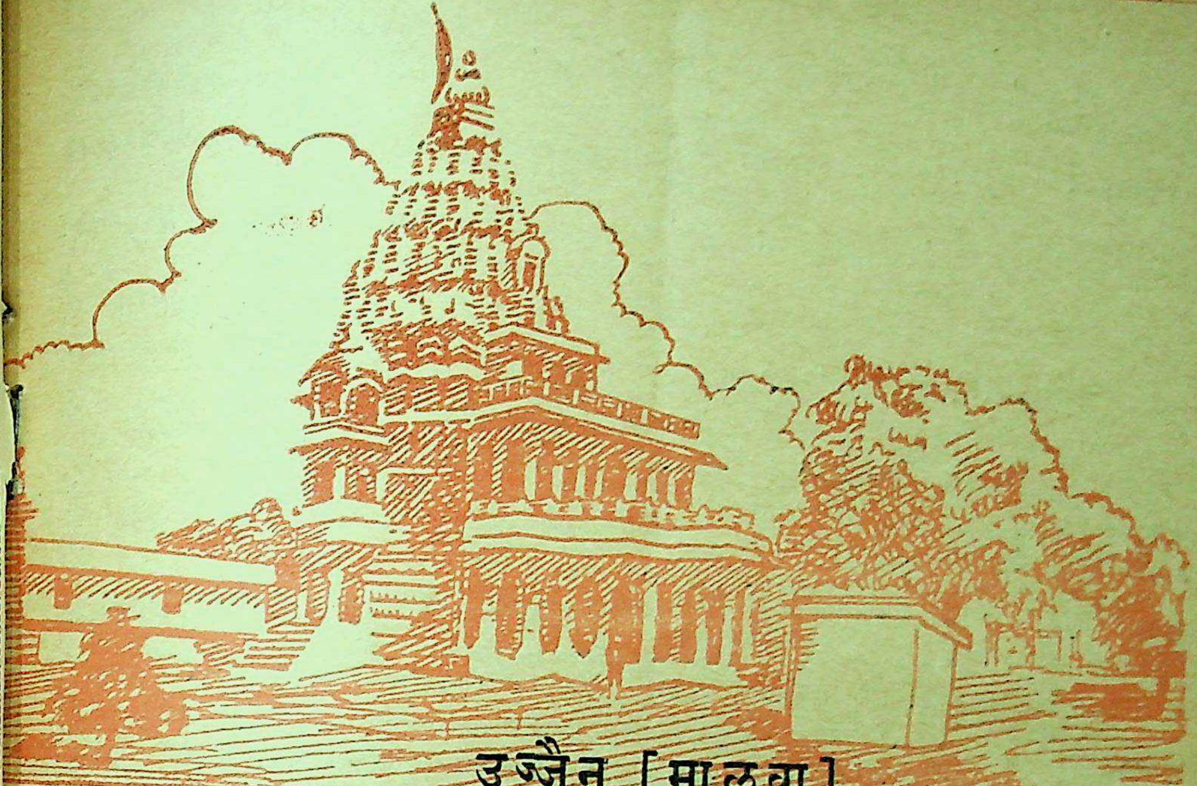

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड १] आषाढ़-श्रावण सं० २०१० वि०, अगस्त-सितम्बर सन् १९५३ [अंक ४-५ पूर्ण सं० ७५

व्यास उवाच

र्ग संहिता का महत्व और उसकी पुरातनता !

महाभारत में गर्ग संहिता का उल्लेख है, गर्गाचार्य के नाम पर मुहूर्त-फल-भविष्य कथन भी प्रचलित है। गर्ग संहिता में भारतीय इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख आया है, नागरी प्रचारिणी के कोषोत्सव स्मारक ग्रन्थ में इस गर्ग-संहिता के कुछ श्लोकों का उद्धरण भी दिया है, गर्ग और पराशर ये दोनों भावी कथन के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। महाभारत में इन दोनों की चर्चा भी आई है, कुछ लोग इनकी रचनाओं के विषय में संदेह करते हैं। और कुछ विद्वान् इन्हें बहुत पुरातन नहीं मानते। परन्तु वेदांग ज्योतिष में गर्ग और पराशर को पुरातन, आचार्य के रूप में कहा गया है। इससे इन आचार्यों को निकट का नहीं कहा जा सकता, वेदांग ज्योतिष के काल के विषय में अनेक विद्वान् उसकी ग्रह-गति सूचना से सहमत हैं कि यह ग्रन्थ ई० पूर्व ११०८ के लगभग होता है। मेक्समूलर ई० पू० ३ शति और वेबर ई० स० पूर्व ५वीं शति का अनुमान करते हैं, जब वेदांग ज्योतिष में गर्ग-पराशर का उल्लेख स्पष्ट है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गर्ग-पराशर इस काल से अवश्य पूर्ववर्ति हैं, इसी तरह पातंजल, महाभाष्य में भी गर्ग का नाम कई बार आया है। और पाणिनी ने भी (४।३,११०, ४-१०, १०५) गर्ग-पराशर का उल्लेख किया है, इससे ये दोनों आचार्य पाणिनी के भी पूर्ववर्ति अवश्य हैं, पाणिनी का समय लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व माना गया है, जब गर्ग-पराशर पाणिनी से पुरातन हैं तो स्वभावतः वेदांग ज्योतिष उससे भी पुरातन है ही, क्योंकि वेदांग ज्योतिष में कथित आढक और खारि नामक मान (नाप) पाणिनी के समय में प्रचलित थे। (५-१-५३ इ०), अतः वेदांग ज्योतिष में गर्ग-पराशर के नामोल्लेख से उनकी पुरातनता प्रमाणित होती है,

इन्हीं गर्ग ने अपनी संहिता में एक 'युग पुराण' अध्याय दिया है । उसमें युगों के महत्व वर्णन देते हुए प्रस्तुत कलि-युग के विषय में शकों के आगमन तक की बात है, इसे देखकर डॉ० जायसवालजी ने उक्त ग्रन्थ को ई० स० पूर्व ४०-५० वर्ष का बतलाया है, परन्तु पाणिनी के उल्लेख और उससे पूर्ववर्ति वेदांग ज्योतिष के उल्लेख को देखते हुवे यह उनका अनुमान ठीक नहीं होता । अवश्य ही शकों की चर्चा और उस समय हुए अवर्षण, दुष्काल की बातों को गर्ग-संहिता में पाकर उनका यह अनुमान होना स्वाभाविक है, किन्तु पाणिनी ने और उसके पातंजलि ने जब गर्ग का नामोल्लेख किया है तो गर्ग को इतना पीछे नहीं खींचा जा सकता । पाणिनी के पश्चात और ई० स० १५० वर्ष पूर्व पातंजलि का होना प्रमाणित है । ऐसी अवस्था में मगधसाम्राज्य, पाटलिपुत्र की स्थापना से लेकर अग्निमित्र के आगमन तक, शक प्रवृत्ति और यवन राज का पाटलिपुत्र पर आक्रमण तथा ऐसे कुछ यवनराजाओं का नामोल्लेख जिनका केवल मुद्राओं पर नाम अंकित है और क्षिप्रातट पर (उज्जैन में) शकों का शासन होना आदि ऐसी बातें गर्ग ने कही हैं, जैसे प्रत्यक्षदर्शी कह रहा है । सन्देह होने का अवसर है, किन्तु अन्य पुराणों में भी युग वर्णन का प्रायः अध्याय है और उसमें गर्ग की तरह ही वर्तमान युग का चित्रण किया है। उन वर्णनों को आधुनिक इतिहासज्ञों की समझ के अनुसार नवम-शति की रचना भी मानलें तो भी आज की जो दशा हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं उसका बहुत कुछ नग्न चित्र मिलता है । इस कारण क्या हम उन वर्णनों को प्रत्यक्ष दर्शी-लिखित या आधुनिक बतलाने का साहस कर सकेंगे ? तब गर्ग के कथन को उस काल का समकालीन कहने का कैसे साहस कर सकते हैं ? नवम-शती के पुराणों के आधुनिक वर्णन से हम उन्हें आज का लिखा हुआ नहीं बना सकते, तो गर्ग की पुरातनता को संदिग्ध मानने का कोई कारण नहीं। गर्ग संहिता, गर्ग की दिव्यदर्शिनी-दृष्टि से भावी-दर्शन की क्षमता का प्रमाण है, जो ग्रह-गति के सफल-द्रष्टा के रूप में ज्योतिर्विज्ञान की विशेषता को प्रमाणित करती है । वराहमिहिर इस गर्ग संहिता को लेकर बहुत कुछ अपने ग्रन्थ प्रणयन में सहायता प्राप्त करते हैं, महाभारत में तो इसका महत्व स्वीकार ही किया गया है । इसलिए केवल युगों की दशा के स्पष्ट यथा तथ्य निरूपण पर से ही किसी के समय को पीछे खींचने का प्रयास करना न तो युक्ति-युक्त होगा, न उचित ही । गर्ग को पीछे खींचने के लिए हमें पातंजलि, पाणिनी और महाभारत के साथ वेदांग ज्योतिष का भी विचार करना होगा, जिनमें गर्ग वर्णन है और जिन्हें सभी इतिहासज्ञों ने लगभग तीन हजार साल से कम का नहीं माना है ।

राष्ट्रसंघ का महत्व

संयुक्त-राष्ट्र-संघ विश्व की एक महत्व पूर्ण संस्था है। वह यदि सच्चाई-विवेक, और संतुलन से काम करे तो विश्व का बड़ा हित कर सकती है, बहुत से तनावों को तुरन्त तोड़ सकती है, किन्तु काश्मीर और कोरिया के मामले में उसने जिस प्रकार अपनी प्रवृत्ति प्रकट की है, वह पक्षपात प्रथक् नहीं कही जा सकती । वहाँ भी गुट बाजी की गुहा सुनी जाती है, तटस्थता ताक पर रखी रह जाती है। काश्मी के काम में हम भारतीयों को ऐसा ही कटु अनुभव आया है उसकी अध्यक्षता के लिए आज अमेरिका ने श्रीमती विज लक्ष्मी का समर्थन किया है, जब कि कोरियाई सम्मेलन लिए भारतीय-सदस्यता का विरोध भी उसने, उसके प्रभा क्षेत्र के राष्ट्रों ने और पाकिस्तान तक ने किया है। हालांकि ब्रिटेन के भू० पू० प्रधान मन्त्री एटली तक ने भारतीय-सदस् ता के विरोध की आलोचना की है, चीन, और रूस तक उसको अनुचित बतलाया है, यह गुट-बाजी का गुल खिला देता है, इस राष्ट्र संघ की अध्यक्षता के लिए विजयालक्ष्मी की वरणी होजाना यह अवश्य ही उन असाधारण गौरव है और भारत का भी । परन्तु कार्य की दृ से उस अध्यक्षता का कितना महत्व होगा, यह प्रश्न अधि महत्व रखता है । काश यह संस्था अपनी स्थिति के अनुरू तटस्थता के साथ कार्य करने में समर्थ होतो अनेक आपत्ति का सरल अन्त हो सकता है। इसके लिए अध्यक्ष, महामन्त्री की तटस्थता बड़ी आवश्यक होती है ।

निःसन्देह दो गुटों के बीच में रहकर भारत ने नीति के साथ तटस्थता का निर्वाह किया है, वह उसके के अनुरूप ही रहा है । और विजयाजी का वहाँ वरण गया वे भी उसी गौरव परम्परा का निर्वाह करेंगी ही।

अध्यक्ष की तरह ही राष्ट्रसंघ के महा मन्त्री का पद महत्व रखता है, उस पद पर भी तटस्थता की रक्षा का दायित्व है, पिछले महामन्त्री मि. त्रिग्वेली पर साम

समर्थक होने का प्रचार हुआ है । दक्षिण अफ्रिका के मामले में भी उनके शैथिल्य ने प्रगति नहीं की । और उनका कार्य-काल समाप्त होगया । अब उस स्थान पर स्वीडन के मि. हेमर शील्ड आसीन हैं, उन पर भी अनेक राजकीय निर्णयों के करने का उत्तरदायित्व है । हाल ही में उन्होंने राष्ट्र-संघीय अमेरिकी मण्डल के समक्ष प्रवचन करते हुए अपने असाधारण उत्तरदायित्व की चर्चा की है । उन्होंने भगवद्गीता का 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का उल्लेख करते हुए कहा कि—जब भगवद्गीता यह बतलाती है तब समस्त युग, और समस्त तत्व चिंतकों के अनुभव का ही उसमें दर्शन हो जाता है, और आत्मस्थ अवस्था में सकाम कर्म निष्काम कर्म की अपेक्षा निम्न श्रेणी का हो जाता है । ये शब्द गहरी श्रद्धा को अभिव्यक्ति देते हैं, हमारे समस्त प्रयासों में इस श्रद्धा को आत्मसात् करके ही हम सुखी हो सकते हैं ।

मि. हेमर शील्ड के इन विचारों और गीता पर आस्था से उनकी ऊँचाई, चिन्तन शीलता और निष्पक्ष पातिता प्रतीत होती है, जो उनके पद के अनुरूप है । देखना है वे उदात्त-भावना को उस कूट-नीतिक वातावरण में कहाँ तक सार्थक बना रखते हैं ।

म. भा. शिक्षा विभाग का अभिनन्दन !

निःसन्देह इस देश का प्रत्येक संस्कृति-भक्त म. भा. शिक्षा विभाग का हृदय से अभिनन्दन करेगा कि उसने अपने प्रदेश भर की समस्त शिक्षा-संस्थाओं को अमर कवि कालिदास की पुण्य स्मृति मनाने का आदेश देकर एक महान कार्य किया है । यद्यपि कालिदास भारत के लिए राष्ट्रीय विभूति है । उसकी केवल एक कृति ने शतियों बाद अनुवाद-रूप में विदेशों में पहुँचकर समुद्र पार के संस्कार-स्वामियों को मुग्ध बना लिया, उनके गर्वोन्नत मस्तक को भारत के समक्ष आदरावनत बना दिया और विश्व की सर्वोच्च-विभूति के रूप में सन्मान प्राप्त किया, इसलिए महाकवि हमारे समस्त राष्ट्र की श्रद्धा का भाजन होकर भारतीय राष्ट्र का सामूहिक वन्दनीय बनना चाहिए । जिस प्रकार पश्चिम के सभी राष्ट्र अपने पारस्परिक भेद-भावों को क्षण भर भुलाकर अपनी विभूति शेक्सपीयर के प्रति शासकीय—एवं सैनिक सम्मान समर्थन कर गौरव अनुभव करते हैं । ठीक उसी प्रकार स्वतन्त्र भारत के केन्द्रीय और प्रादेशिक शासनों के द्वारा कालिदास के प्रति सन्मान अर्पित किया जाना चाहिए । परन्तु मध्य-भारत को तो विशेष गर्व ही है कि महाकवि कालिदास उसके भव्य भू-खण्ड की अमर-निधि है, जिसने समस्त संसार को अपनी सांस्कृतिक देन देकर उपकृत बना लिया है, इस दृष्टि से मध्य-भारत के शिक्षा विभाग ने महाकवि का पुण्य स्मरण, और स्मृति—पूजा की प्रेरणा देकर वास्तव में अपने प्रदेश की विभूति को उचित अर्घ्य अर्पित किया है । यह अन्य प्रदेशों के लिए भी मार्ग दर्शक होगा ।

शासकीय विज्ञप्ति इस प्रकार है—

महाकवि कालिदास दिवस मनाने सम्बन्धी ।

महोदय !

भारत वर्ष में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसने महाकवि कालिदास का नाम न सुना हो, यद्यपि महाकवि कालिदास का काल-निर्णय ठीक प्रकार से अभी तक नहीं किया जा सका है, तथापि यह बात सर्व मान्य है कि रघुवंश, मेघदूत, कुमार-संभव, एवं शकुन्तला जैसे अद्वितीय महाकाव्यों, नाटकों के रचयिता इस महाकवि का आश्रय स्थान मध्य-भारत स्थित मालव भूमि ही रहा है । हम मध्य-भारत वासियों के लिए यह विशेष रूप से गर्व की बात है ।

महाकवि कालिदास के महाकाव्यों का अनुवाद विश्व की अधिकांश भाषाओं में हो चुका है । इन महाकाव्यों के अमर-प्रकाश से न केवल भारत वर्ष, अपितु समस्त विश्व आलोकित हुआ है । विश्व के अन्य देशों में भी महाकवि कालिदास की गणना विश्व के अन्य सर्व श्रेष्ठ साहित्यकारों में की जाती है ।

इस महाकवि की पवित्र-स्मृति देश के विभिन्न-भागों में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को मनाई जाती है, इस साहित्य देवता का स्मृति-दिवस मनाना शिक्षा संस्थाओं के लिए अत्यन्त प्रेरणा-प्रद होगा । **इसलिए शासन ने यह निर्णय किया है कि यह पुण्य-पर्व इस वर्ष १४ नवंबर १९५३ को राज्य की समस्त शिक्षण संस्थाओं में मनाया जावे ।**

उस रोज महाकवि की स्मृति में उनके साहित्य की चर्चा परिचय, नाटक, रूपक, तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन किया जावे ।

इस वर्ष के अनुसार भविष्य में भी समस्त शिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को महाकवि कालिदास दिवस मनाया जाएगा।

भवदीय
(ह०) व्ही. एम्. व्यास
असिस्टंट—सेक्रेटरी
(शिक्षा विभाग म. भा.)

हमारा विश्वास है उक्त शासकीय-विज्ञप्ति का सर्वत्र स्वागत होगा, और समस्त शिक्षा संस्थाएँ सारे प्रदेश में कविकुल-गुरु की स्मृति में सादर सामूहिक-सुरुचिपूर्ण अंजलि अर्पित कर मध्य-भारत में एक परम्परा स्थापित कर देगी। उनकी यह परम्परा अन्य प्रान्तों को भी प्रेरित प्रोत्साहित करेगी। अकेले शिक्षा संस्थाओं तक ही यह स्मृति पूजा सीमित नहीं रहेगी, बल्कि मध्य-भारत का समस्त शासन सामूहिक रूप से इसे शासकीय स्वरूप देकर एक आदर्श उपस्थित करने में किसी से पीछे नहीं रहेगा। आज हम समुद्र पार के शेक्सपीयर को विदेशी होते हुए भी साहित्य देवता के रूप में सन्मान करते हैं, उसकी स्मृति में 'अंजलि चढ़ाते हैं; तब हम अपनी ही अमर-विभूति को राष्ट्रीय-वन्दना देने में संकोच का कारण नहीं बना सकते। जिस कालिदास को गेटे, शेली, कीट्स जैसों ने हार्दिक अंजलि अर्पित करने में अपना गौरव माना, जिसे महायोगी अरविन्द ने अर्घ्य अर्पित किया, महाकवि रवीन्द्रनाथ ने अपनी प्रतिभा की पुनीत अंजलि भेंट की, माइकेल मधुसूदन दत्त जैसे ने पूजा की, उस राष्ट्र और विश्व कवि की स्मृति पूजा हमारे महान् राष्ट्र का गौरव ही है। कालिदास की अमर लेखनी ने—हमें विश्व के सांस्कृतिक क्षेत्र में गौरवान्वित बनाया है। मध्य-भारत शासन का यह प्रेरणा प्रद आदेश, उसके गौरव को बढ़ाने वाला होगा, स्मरणीय रहेगा।

क्या ही उत्तम हो कि मध्य-भारत—शासन कालिदास की प्रिय-अवन्ती में उसका स्थायी स्मारक स्थापित करे, और प्रति वर्ष वहाँ एक साप्ताहिक समारम्भ कर शासकीय सन्मान अर्पित करे, और कालिदास ने अपने काव्य में मालव-मण्डल के जिन-जिन स्थानों का विशेष रूप से वर्णन किया है, उन उन स्थानों पर उस श्लोक से अंकित एक स्मृति स्थल (स्तम्भ) स्थापित करे। हमारे अनुरोध और सुझाव पर नागपुर के रामगिरि (रामटेक) पर जहाँ मेघदूत के यक्ष ने विरह काल व्यतीत किया था, और कवि की अमर प्रतिभा सप्राण बनी थी, नागपुर विश्व विद्यालय के वायस चांसलर स्व. डॉ. केदार ने स्मृति स्तंभ की स्थापना की थी, और 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' (मेघदूत के आरम्भ के कारण ही) वहाँ स्मरण-समारोह-यात्रा आरम्भ की थी। इसी प्रकार मध्य भारत शासन को भी महाकवि के स्मृति-स्थलों को जागृत स्मरणीय बनाना चाहिए।

शिक्षा विभाग का प्रशंसनीय कार्य

'भोजदिवस'

धार तथा उससे सम्बन्धित प्रदेश में सरस्वती के सुपुत्र महाराज भोज की पुण्य-स्मृति मनाने के निमित्त हमनें विक्रम के इन्ही स्तम्भों में गत वर्ष आग्रह किया था। इसके पूर्व भी व्यक्तिगत प्रयास किये हैं, परन्तु हमें खेद है कि धार की जनता ने उस पर ध्यान नहीं दिया, पता नहीं इस सांस्कृतिक समारंभ-स्मृति पूजा में उन्हें कौन सी आपत्ति अनुभूत हुई। अवश्य ही धार की भोजशाला आज अन्य धर्मियों के अधि-कार का विषय बन मध्यभारत के मस्तक पर कालिमा बनी हुई है, परन्तु हम स्वतंत्र रूप से, सार्वजनिक भोज-स्मृति तो अवश्य मना सकते हैं और अपने इस महनीय-कीर्ति अमर नरेश का संस्मरण तो सादर कर ही सकते हैं, हमने मध्य भारत बन जाने पर प्रथम एडमिनिस्ट्रेटर श्री गोखलेजी से अनुरोध किया था और श्री विरूलकरजी से भी, किंतु हमें सफलता नहीं मिली। निःसन्देह हम वर्तमान शिक्षामन्त्री श्रीयुत नरसिंहरावजी दीक्षित की हृदय से प्रशंसा करेंगे कि उन्होंने हमारे अनुरोध पर यथासम्भव ध्यान देकर भोजदिवस मनाने के लिये यहाँ की समस्त शिक्षा संस्थाओं को आदेश दे देने की कृपा की है। वास्तवमें उनका यह कार्य उस ऐतिहासिक महान् विभूति की स्मृति में उनके शासनकाल के लिए भी ऐतिहासिक एवं स्मरणीय बन जाएगा। मध्यभारतवासी जन अपनी महान् ऐतिहासिक परम्परा रखते हैं, उन पर हम परम्पराओं को जागृत कर जनता में प्रेरणा देने का उपक्रम आरम्भ करना हमारे शासन और नेतृत्व का कर्तव्य होना चाहिये। हमारी अन्य प्रगति की सूचनाएँ, योजनाएँ चाहे वर्तमान के लिए सुखकारी बन सकती हैं, किन्तु अतीत उज्जवल इतिहास का संस्मरण हमारे संस्कारों को जागृत कर

वाला बन जाता है, जो भावी समाज की सुदृढ़ता—संस्कारिता और गर्व का विषय बन सकता है। भारतीभूषण भोज धारानगरी मालव या अपने प्रांत के लिए ही नहीं, सारे देश के लिए वंदनीय अमर-विभूति है। वह नरेश होने के कारण नहीं, किन्तु महान् सरस्वती-पुत्र होने के नाते वह हमारे सारे देश के लिए शतियों से स्मरणीय और वंदनीय बना हुआ है। भारत का कौन सा संस्कारी प्राणी होगा जो भोज की गौरव-गाथा से परिचित नहीं हो। भोज की अनेक सत्य और कल्पित-कथाएँ आज लाखों नहीं करोड़ों लोगों के हृदय में अमर बन कर जीवित चली आ रही है। उसके नाम से मालव और विशेषतः धारा नगरी की रज-रज पावनता की धरोहर बनी हुई है। भोज के काल में एक भी मानव अशिक्षित नहीं रह सकता था, हजारों विद्वान अपनी प्रतिभा का पुष्प अर्पित करने इस प्रदेश में आते रहे हैं। जिस दिन यह महाराज भोज इस धरणी पर नहीं रहे, उस दिन सहसा किसी कवि के अन्तर से यह निकल पड़ा था कि आज धारा नगरी निराधार होगई, सरस्वती निरवलम्ब बन गई, (अद्यधारा निराधारा निरालंबा सरस्वती। पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते)

वास्तव में यह शिक्षामन्त्री ने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है कि धार-मण्डल में पुनः भोज स्मरण आरम्भ हो, हम आशा करते हैं कि धार की समस्त संस्कारी जनता उस स्मृति को सम्मिलित होकर सोत्साह मनाएगी और अपने अमर आराध्य को अञ्जलि अर्पित करेगी। शिक्षामन्त्रीजी का उन्हें और हमें भी आभारी होना चाहिए कि उन्होंने यह सत्प्रेरणा देकर धार के उज्वल अतीत को पुनः प्रेरित करने का आदेश दिया है। शिक्षा विभाग जनसहयोग से इस मंगल-महोत्सव को पूरे उत्साह से सम्पन्न करेगा और आगे भी इस परम्परा को सजग रखेगा। उत्तम तो यह होता कि मध्यभारत शासन कालिदास दिवस, भोजदिवस, विक्रम दिवस को अपने शासन का महान् पर्व स्वीकार करता और सार्वजनिक छुट्टी करके शासकीय आयोजन करता, परन्तु उनमें यह संस्कार जागृति हो तो मध्यभारत का भविष्य उज्वल बन जाए। हम तो शिक्षा मन्त्रीजी को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने यह सांस्कृतिक कदम बढ़ाया, इसी तरह वे धार की सरस्वती-मूर्ति जो भोजशाला से उठकर लन्दन के म्यूझियम में धूल खा रही है, मँगवाने का पूरी शक्ति से प्रयास करें और पुनः भोजशाला में प्रतिष्ठित करें। अवश्य ही वह नवयुग होगा। हमने १९३७ में लन्दन में उस मूर्ति को वहाँ पड़ी हुई देख कर महाराज धार, शासन सभी को लिखा था। पर पता नहीं यह अपनी ऐतिहासिक थाती माँगने की दिशा में कभी कुछ हुआ या नहीं। शिक्षामन्त्रीजी इस कार्य में भी हाथ डालें और मूर्ति प्राप्त करलें तो बहुत महत्व की बात होजाएगी। भोजस्मृति की सार्थकता हो जाएगी।

हमें विश्वास है कि मा० शिक्षामन्त्रीजी भोज दिवस की तरह कालिदास-दिवस के लिए सारे मध्यभारत को प्रेरित करेंगे, ताकि यह महान् स्मृति निरन्तर सदैव प्रतिवर्ष सोत्साह मनाई जावे और भावी पीढ़ी उनके इस कार्य को स्मरण रख सके।

काश्मीर का नया क़दम !

काश्मीर में नए मुख्य मन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने लोकप्रियता प्राप्त करने की दृष्टि से जिन सुधारों की परम्परा आरम्भ की है, वह यद्यपि सहसा आकर्षक लगती है, किन्तु उसके स्थायित्व के लिए कहाँ तक विचार किया है यह समस्या बन जाती है। काश्मीर की कठिनाई पर विजय पाने के लिए सुधारों की आवश्यकता है, काश्मीर में साधनों का अभाव नहीं; उनके उपयोग और व्यवस्था का प्रश्न है, उस ओर बख्शी जी का ध्यान जारहा है, यह उचित ही है। काश्मीर की गरीबी विषम है, अशिक्षा व्यापक है, कला-कौशल पर्याप्त है; परन्तु उनके विकास, व्यवसाय, और व्यवस्था का अभाव रहा है, खनिज सम्पत्ति की भी विपुलता है, पर काश्मीर की स्थिति की विषमता ने इस ओर उपेक्षा की है। बख्शी जी इस दिशा में प्रगति कर रहे हैं, योजनाएँ तय्यार कर रहे हैं, और उनको जारी करने को तत्परता भी बतला रहे हैं। वे कर्म शूर दिखाई देते हैं, व्यावहारिक भी प्रतीत होते हैं; किन्तु जहाँ तक शासन की आर्थिक-अवस्था का सवाल है उसके हल का कोनसा मार्ग उन्होंने सोचा है हम समझ नहीं सके हैं। हालही में उन्होंने बड़ा साहस-पूर्ण कदम उठाकर राज्य भर में समस्त शिक्षा को उन्होंने 'अमूल्य' घोषित कर दिया है। यद्यपि यह स्वागत का विषय है। छात्रों में, पालकों में इससे सन्तोष होगा, लोक प्रियता भी बढ़ेगी। तथापि आज काश्मीर में एक लाख १० हजार छात्र ही इस समय शिक्षार्थी हैं, उन तक तो बख्शी जी की घोषणा उपयोगी, और उपकारक भी हो जाएगी। पर क्या

उन्होंने भविष्य की भी चिन्ता की है? यदि ४० लाख काश्मीरी जनता के ज्ञान प्रसार के लिए भी उनकी ऐसी उदार नीति बनी रही तो उनकी सरकार सभी के लिए उदार बनकर निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था का साहस। भार वहन कर सकेगी? क्या इसके लिए नई कर-प्रणाली का अवलम्ब नहीं करना पड़ेगा? क्या नई शालाएँ, विद्यालयों को आरम्भ कर उन्हें भी निःशुल्क निर्वाह करने को विवश नहीं होना पड़ेगा? ऐसी स्थिति में व्यय की समस्या विषम होना स्वाभाविक है। अवश्य ही बख्शी-शासन ने इस पर दूरदर्शिता से विचार किया होगा, आज की घोषणा उनकी आदर्श अवश्य प्रतीत होती है, पर आगे की आपत्तियाँ उसमें अन्तर्हित हैं, यह उपेक्षणीय तो नहीं। भारतीय-संस्कृति में शिक्षा का व्यापार, विक्रय अनुचित माना गया है। विद्या-विक्रय जीवी को हेय समझा जाता था, फिर भी विद्या प्राप्ति के लिए गुरु शुश्रुषा से, पर्याप्त धन से अथवा विद्या से विद्या के परिवर्तन से लाभ लेने की नीति रही है।

गुरु शुश्रुषया विद्या,
पुष्कलेन धनेन वा,
अथवा विद्यया विद्या,
चतुर्थो नैव लभ्यते।

अन्य मार्ग ज्ञान लाभ के लिए नहीं था, अवश्य ही पुरातन काल में विद्या-वयोवृद्ध गुरु के आश्रम में विनीत-छात्र प्रविष्ट होकर गुरु सेवा की पुनीत भावना से ज्ञान लाभ लेता था, चाहे वह गरीब हो, या रईस। ज्ञान लाभ लेकर गुरु पूजा की पवित्र भावना से वह यथा शक्ति सेवा भी करता था, यह पुराणों में, बौद्ध ग्रन्थों में स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। कालिदास का कौत्स शिष्य भी वरतन्तु के निकट इसी तरह रहा, भगवान् श्रीकृष्ण ने भी महर्षि सांदीपनी के निकट सेवा भावना से ज्ञान प्राप्त किया, और अन्त में गुरु पूजा भी की है। यह परम्परा आदर्श के उदाहरण में है। किन्तु आज के ज्ञान-विक्रय के व्यवसाय युग में काश्मीर का कदम कल्याण कारी होते हुए भी कठिन अवश्य है।

कला मर्मी—कालिदास

महाकवि कालिदास की काव्य-श्री जितनी सुषमामयी मंजुल-मृदुल और मसृण है, उतनी ही उसकी कलाभिरुचि भी कमनीय एवं कोमल-तम है। कविता का लालित्य और लाव जहाँ मनोहारी है, वहाँ कला का स्पर्श भी मुग्ध कर वाला है; रामगिरि पर विरही विकल-विषण्ण-विपन्न औ विवश यक्ष जब अपनी प्रियतमा को अपनी आँखों के सा लाना चाहता है, तब वह पथरीली-पहाड़ी की एक चो चट्टान पर सहज प्रिया का चित्र खींचने लग जाता है। व चाहता है कि पूरा चित्र बनाकर उसके चरणों पर अ नम्रता प्रदर्शित करे; किन्तु उसका हृदय भर आता है, आं अश्रु-धारा प्रवाहित करने लग जाती हैं, और वह चित्र बी ही में अधूरा रह जाता है। उसे इस वियोगावस्था में प तो दूर छूटती ही है, पर उसकी कल्पित मूर्ति को भी जी भ कर आँसुओं से भरी आँखें देखने नहीं देती। कितनी विवश है और यह कैसा हृदय-स्पर्शी चित्र कवि ने अंकित क दिया है।

कालिदास को यह चित्रांकन अधिक पसन्द है तभी मेघदूत की तरह शाकुन्तल-नाटक में भी उसने इसी का पुन वर्तन किया है। दुष्यंत भी शकुन्तला के विरह में व्या हो जाता है, और वह प्रिया का चित्र अंकित कर दिल समाधान देना चाहता है, किन्तु वहाँ भी उसकी निगो आँखें बीच ही में बरस पड़ती हैं, रुकती नहीं और शकुन्तला को चित्र में भी जी भर कर देख नहीं पाता। कै दुर्दशा है। अवश्य ही दुष्यन्त राजा है, साधन सम्पन्न वह अपने महल में ही वन वासिनी शकुन्तला का चि अंकित करता है, और मेघदूत का यक्ष स्वयं वनवासी हुआ है। वह अपने महलों में रहने वाली प्रियतमा चित्र सुदूर एकांत पर्वत की शिला पर अंकित करता है यह अन्तर भी कितना सहज और साम्य रखता है। दुष्य और यक्ष दोनों ही कालिदास की काव्य-सृष्टि के वै विलासी विरह-विधुर पात्र हैं। दोनों ही कला प्रिय, संस्कार दोनों ही दुर्भाग्य के शिकार बन विरही बनते हैं, और दो के हृदय प्रिय-पत्नि के दर्शन की आतुरता से विकल अन हैं। दोनों चित्र से एक झलक पाने की चेष्टा करते हैं, कि आँसुओं की अविरल-धारा उनके मनोरथ को बाढ़ में बहा जाती है। कला का यह मार्मिक, और हृदय हारी-रूप, कवि मृदुल भावना, मार्मिकता, और उदात्त अभिरुचि का हृ स्पर्शी अंकन है। यों कवि ने मालविका का चित्रांकन

बाया है। अग्निमित्र को उससे मुग्ध बनाया है। शाकुन्तल में ऐसे कई स्थल हैं, जहाँ उसकी कलाभिरुचि अत्यन्त उत्कृष्ट प्रकट होती है। जो बात एक सफल चित्रकार की तूलिका से अंकित होनी चाहिए, वह कवि ने कविता के शब्द-देह में साकार सप्राण बनाकर मूर्तिमति प्रस्तुत करदी है।

जरा शकुन्तला के चित्रांकन के लिए दुष्यन्त ने जो पृष्ठ-भूमि (बेक् ग्राऊण्ड) ली है, उसका सौन्दर्य, उसकी मनोरमता तो देखिए—

कार्या सैकतलीन हंस मिथुना
स्रोतो वहा मालिनी।
पादास्तामभितो निषण्ण हरिणा
गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बित वल्कलस्यच
तरोर्निर्मातु मिच्छाम्यधः।
शृंगे कृष्ण मृगस्य वाम नयनं
कण्डूयमानां मृगीम्।

शाकुन्तल के इस श्लोक की रंगीनी को लेकर अनेक कला गुरुओं की तुलिका ने अपनी रंग-रेखा योजना की है, और रुचिं को परिमार्जित किया है, किन्तु कवि की कोमल कल्पना को आज तक कोई तद्रूप साकार-सप्राण नहीं बना पाया, यह हैं कवि की कला कमनीयता और कौशल! इस की मनोहारिता को मूल में जितना सौकुमार्य प्राप्त है, उतना अनुवाद या तूलिका के द्वारा नहीं दिया जकता, ऐसे अनेक शब्द चित्र हैं, जो कलम, या कूँची से अनुकरणीय बन कर भी अपनी मौलिकता में धन्य बने हुए हैं, अमर हैं।

इन्द्रद्वीप [एण्डमन्] ?

पुराकाल में भारत-वर्ष का विस्तार बहुत अधिक था, उसके अनेक उप द्वीप थे। ब्रह्मपुराण (१७ अ.) मार्कण्डेय (५४ अ.) मत्स्य (११४) में भारत के नव उपद्वीपों का वर्णन है। यथाः—

इन्द्र द्वीपः कशेरुश्च ताम्र पर्णो गभस्तिमान्, नागद्वीप स्तथा सौम्यो गान्धर्व स्त्वथ वारुणः।

इसी के आधार पर भास्कराचार्य ने अपने भूगोल वर्णन मेंः—

ऐन्द्रे कशेरु शकलं किल ताम्र पर्णा मन्यद्गभस्ति किलमस्ति कुमारिकाख्यम्। ” इत्यादि

इसी प्रकार स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड (३९) में भी उल्लेख है, इन नव उपद्वीपों में 'इन्द्रद्वीप' का उल्लेख आता है, यह कहां था, और कौनसा था, इस विषय में शायद किसीने विचार किया हो! ब्रह्मपुराण (४१-४२ अ.) में एक वर्णन आया है वह इस प्रकार हैः—

"पुराकृतयुगे कश्चिन्मालवे ऽवन्तिका पुरे। बभूव नृपतिः श्रीमान् इन्द्र द्युम्न इतिश्रुतः ”

इन्द्रद्युम्न सम्बन्धी कथा गाथाएँ अनेक प्रकार से प्रचलित हैं! पुराणों में इन्द्रद्युम्न को महत्व प्राप्त हुआ है, वह अवंतीका नृप था यह भी अनेक स्थानों पर आया है, 'इन्द्रद्युम्नतीर्थ' का भी वर्णन है, जिसमें स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता, अवंती खण्ड में इन्द्रद्युम्न का महत्व बतलाकर उज्जैन में उसकी कीर्ति विश्रुत थी, यह सूचित किया गया है। इसी इन्द्रद्युम्न के विषय में ब्रह्म पुराण में कहा है—

'सगत्वा नृपतिः क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्।............
सागरे चन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद्ध्रुवम्।

एवं गत्वा सनृपतिः दक्षिण स्योदधे स्तरम्। निवस मकरोत्तत्र वेला मासात्र सागरीम्। ”

अर्थात् मालव की अवंतीपुरी में यह इन्द्रद्युम्न नृप था, वह जाकर दक्षिण के सागर-तट पर निवास करने लगा था, सागर तट पर समय व्यतीत करता रहा।

इससे ज्ञात होता है इन्द्रद्युम्न मालवे से सागर तट पर अपना समय व्यतीत करने चला गया था, संभवतः उसी के नाम से इन्द्रद्वीप उसका नाम पड़गया हो, और अपभ्रंश होकर ऐन्द्रमन् या वर्तमान् 'एण्डमन' नाम हो गया हो, पुराणों के वर्णनों ने तथा अन्डमान द्वीप के अक्षांश देशांतर से उसकी संगति भी लगती है, आशा है इस पर विचार किया जाएगा।

भिण्ड-मुरेना के आतंक का अंत लाया जासकता है, किंतु............?

भिण्ड-मुरेना की अपराध परम्पराओं का आतंक मध्य-भारत पर ही नहीं; उत्तर प्रदेश और राजस्थान पर भी छाया हुआ है। इस आतंक ने उक्त शासनों को विचलित-चिन्तित बना दिया है, कुछ समय से इन तीनों प्रदेशों ने मिल कर सम्मीलित प्रयास भी किए हैं, किंतु आतंक मर्यादित

अवश्य बना है, उसका अंत नहीं आपाया है, आतंक के कारणों और स्थितियों का विश्लेषण करते हुए हमने 'विक्रम' में अपने विचार पहिले व्यक्त किये हैं। और उपायों की ओर भी संकेत किये है, शासन की ओर से परिस्थिति का परिशीलन और उपाय योजना के लिए दीक्षित समिति बनाई गई थी, उसका विवरण भी हालही में प्रकाशित होगया है। और उसकी सूचित अनेक बातों को शासन ने कार्यान्वित भी किया हैं, दीक्षित समिति ने जिन विचारों को प्रकट किया है, हम अधिकांश इसके पूर्व प्रकट कर चुके हैं, समिति की यह सूचना उचित है कि आतंक कारियों के अनुयायियों और जिनके विरुद्ध प्रमाण की आशा नहीं है, फरार हैं उन्हें अभय वचन देकर मुक्त बना दिया जाना चाहिए, आतंक क्षेत्र में यातायात की सुविधा और शिक्षा एवं विकास योजनाएँ आरंभ करने का सुझाव विक्रम ने भी दिया ही हैं। परंतु हमें दीक्षित समिति की रिपोर्ट से आतंक के अंत लाने के मूलाधारों का अपेक्षित उपाय विदित नहीं होता। तात्कालिक उपाय योजना, शस्त्रों पर प्रतिबंध, विशेष अधिकारी की नियुक्ति आदि तो केवल सामयिक हैं, आतंकके मूल का अंत नहीं कर सकते उसके लिए जिस मनोवैज्ञानिक प्रयास की योजना आवश्यक है, वह समिति ने सूचित नहीं की हैं। आतंकके अंत के लिए शासकीय उपाय आतंकमय ही होता है, यह स्वाभाविक है, परंतु यदि वह उदारता और सौहार्द के द्वारा संभव हो सके तो शासन को नीति पलट कर उस संभावना की ओर भी सतर्कता से सोचना चाहिये। जहां तक हम जानसके हैं, आतंककारी जन्मना और कर्मणा आतंक-प्रिय नहीं हैं, वे समझदार उदार और लोकप्रियता भी रखते हैं। यही कारण है कि निरंतर १५ वर्षों से शासकीय प्रयत्नों के होते हुए भी वे सुरक्षित बने हुए हैं, और उन्हें आत्मरक्षा के लिए निरंतर अपराधी बनते जाने को विवश होना पड़ा है और पड़ रहा है। शासन की दृष्टि में वे आज आपत्ति जनक दस्यु हो गए हैं, हत्याओं के उत्तरदायित्व उन पर बढ़ रहे हैं और यह सब जहाँ तक हम जान पाए हैं परिस्थिति की विवशता से ही होता गया है और हो रहा है। तब क्या जिन परिस्थितियों ने उन्हें आतंक की ओर प्रेरित किया, आतंक प्रिय बनजाने को बाध्य बनाया, मानवता के नाते उन परिस्थितियों की विवशता को ध्यान में रखते हुए सद् भावना से काम लेकर विश्वास सम्पादन कर उन्हें मानवता की ओर नहीं पलटाया जासकता है ? प्रस्तुत बदली हुई परिस्थिति के उन्हें अनुकूल नहीं बनाया जासकता ? हिंसा का उपाय अहिंसा से नहीं किया जासकता ? गवालियर के स्वर्गीय महाराजा माधवराव सिंधे ने इसी प्रकार कुछ आतंककारियों को पुनः सन्मान बना लिया था, स्वाभाविक जीवन में उन्हें पलट दिया था, ऐसे कई दानव, सज्जन मानव बन कर समाज में (विशेषतः उसी क्षेत्र में भी) अब तक साधारण नागरिकों की तरह जीवित बने हुए हैं, शासन जो उपाय कर रहा है, यह शासकीय क्षेत्रों में प्रचलित उपाय ही है, पर वह आतंक का अंत लाने वाला नहीं है। केवल कुछ प्रस्तुत आतंककारियों के अन्त लाने वाला मात्र हो सकता है। और वह भी हर तरह बहुत मँहगा पड़ सकता है। क्या ही उत्तम हो कि तीनों सम्बन्धित प्रदेश एक साथ मिल कर आतंककारियों से किसी प्रकार संपर्क स्थापित करें और उनका हृदय परिवर्तन करने का, पश्चात्ताप करने की ओर प्रेरित करने का प्रयास करें, उनकी आत्म रक्षा के साथ उन्हें साधारण मानव बन कर रहने को प्रोत्साहित करें। यह असंभव नहीं हैं। साहस और सहिष्णुता के साथ आ विश्वासपूर्ण प्रयास की आवश्यकता है। केवल कानूनी कौशल से किसी व्यक्ति के आतंक का अन्त किया जा सकता है उसकी विचार परम्परा का नहीं, आवश्यकता है परिस्थिति वातावरण पलटने की। यदि शासन अपने को अक्षम अनु भव करता हो तो हमारा यह सुझाव भी है कि वह आचा विनोबा से अनुरोध कर उस क्षेत्र में आमन्त्रित करे और उन आतंककारियों से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यक उचि समस्त सुविधाएँ सुलभ करे, हमारा अनुमान ही नहीं वि भी होता है कि इस उत्तम, सरल और मनोवैज्ञानिक उ से सम्भव है यह विषम-समस्या सुलझ जाए। और शासन संयुक्त प्रयास, व्यय, भार, चिंता, हानि आतंक का अंत जाए। किन्तु शासकों को चाहिए कि विनोबाजी को उ निर्णय की सम्पूर्ण सुधार स्वतन्त्रता का विश्वास दिलावे, उनके निर्णय को पालन करने की शासकीय स्वीकृति अ कर दे।

यदि दीक्षित समिति 'कंटकेनैव कंटकम्' के उपाय की की अपेक्षा ऐसा कोई उपाय सूचित करती तो उत्तम हो भिण्ड, मुरेना का वह क्षेत्र जहाँ आतंकासक्त है. चाहे

परिस्थितियों के कारण, चाहे वातावरण के कारण या और कुछ भी। पर इतना निर्विवाद है कि वह धार्मिक-भावनाप्रधान मर्यादापोषक, शूर, कुलशील का भक्त, साधु, सन्त, देव-ब्राह्मण, स्त्री, अध्यापक आदि का आदर करने वाला भी है, और यह गुण उनके सत् मानव बना देने, सुधरा हुआ साधारण सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए भी अवश्य सहायक हैं। केवल उनके मनोनुकूल उपचार उपाय की आवश्यकता है। शूर जाति हृदय की उदात्त और उतनी ही आत्मार्पण क्षमता भी रखती है, उनके शौर्य को चुनौती देकर उनकी वेशपरम्परा को भी सुधारना सहज सम्भव नहीं। और आज का प्रयास ठीक इसी ओर ले जाने वाला हो रहा है। हम चाहते हैं शासन हमारे इस सुझाव पर शांत चित्त से विचार करे तो हमारा विचार है इस प्रकार आतंककारियों की मानवता जागृत हो सकेगी और उस प्रवृत्ति से वे मुँह मोड़ कर अधिक उपयोगी सच्चे मानव बन कर समाज हित साध्य कर सकेंगे। शासन उनका अन्त करके नहीं, उनकी आत्मा पर विजय पा कर उनकी शक्ति और शौर्य का सदुपयोग करे।

नवीन-नपुंसक-निर्माणकारी प्रस्ताव !

उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री मुन्शीजी की प्रिय पत्नी श्री लीलावतीजी ने राज्य परिषद् में असाध्य रोगग्रस्त वयस्कों को नामर्द बनाने का एक सुझाव प्रस्ताव के रूप में केन्द्र सरकार के समक्ष रख कर नई सनसनी फैला दी। उनका कहना था कि–'स्वस्थ तथा दृढ़ राष्ट्रविकास के लिए तथा जहाँ आवश्यकता हो वहाँ कुटुम्ब को कम करने के लिए सरकार उन वयस्कों को जो पागलपन, अथवा ला-इलाज रोगों से ग्रस्त हो, 'खस्सी' कर देने का उपाय करे; इस प्रस्ताव पर बडी मजेदार बहस हुई, पुरुष और स्त्री सदस्यों ने पक्ष-विपक्ष में दलीलें दी। श्रीमती मुन्शी ऐसे बीमारों को इसलिए खस्सी करवाना चाहती है कि वे अपने भावी सन्तानों में अपने रोग विरासत में न दें। पागलों का प्रपंच न बढ़ पाए, रोगियों के खानदान पनपने न पावें, किन्तु श्रीमती मुन्शी यह भी कहती हैं कि इस प्रकार 'खस्सी' बनादेने से उनके वैवाहिक-जीवन में कोई कमी नहीं आएगी। यह ठीक है, परन्तु श्रीमती मुन्शीजी ने ऐसे लोगों को 'विवाहित–जीवन' में रहने की अवश्य छूट दी है, तब यह समझ में नहीं आता कि उनके स्त्री हृदय ने उन 'खस्सियों' की अभागी पत्नियों की नीरस-जीवनी, और मातृत्व की उत्कट-भावना का कोई विचार क्यों नहीं किया। उपाय योजना क्यों नहीं सुझाई ? पागल की पत्नि का कौनसा पाप है कि उसका जीवन खस्सी-पति की सहचरी बनकर रहने में बीते ! श्रीमती मुन्शी की पतियों पर की नाराजी तो समझ में आसकती है, पर अबलाओं की उपेक्षा का कारण समझ में नहीं आता। इसके विपरीत आज अनेक वातोन्माद (हेस्टेरिया), अपस्मार, मृगी, यक्ष्मा आदि की शिकार नारियों के पतियों की भी कोई पीड़ा का उपचार वे बतला देतीं तो परिषद् का पुरुष वर्ग उन्हें सहायक मिल जाता, जो द्विभार्या-प्रतिबन्ध से परेशान बन सकता है। श्रीमती मुन्शी के प्रस्ताव पास हो जाने पर अवश्य ही देश में कुछ नए विज्ञापन बाजों की बाढ़ आजाती जो नपुंसक बनाने का 'रामबाण-इलाज' प्रस्तुत कर प्रपंच चला सकते। आज तो पागलपटी का प्रचार-युग चल रहा है। 'नामर्दी के शर्तिया' इलाज के लोग अपनी मर्दांगनी बनाए लूट का लाभ ले रहे हैं, तब नामर्दी बढ़ाने का इलाज भी इन लोगों की प्रतिस्पर्धा में प्रकट हो जाता, किन्तु स्वास्थ्य मंत्राणी राजकुमारी अमृत कौर ने श्रीमती मुंशी के प्रस्ताव का यह कह कर कि—'इस विधेयक से मानव दुःख घट जाने के बजाय बढ़ेगा कोई रोग असाध्य नहीं है, और रोगी का इलाज करने के बजाय बल-पूर्वक उसकी सन्तान से वंचित करने का मैं उत्तर-दायित्व नहीं ले सकतीं'–घोर विरोध किया, फलतः श्रीमती मुंशी का प्रयत्न सफल न हो सका, अन्यथा नपुंसकों की संख्या का देश में नए रूप में विकास होता। इधर भोपाल, रामपुर, लखनऊ की कुछ शौहरत नवाबी नष्ट होने से कम हो चली है। लखनऊ की जलवायु से प्रभावित हो श्रीमती मुंशी इसे पुनः प्रेरित-पोषित-जीवित बनाना चाहती थी, किन्तु राजकुमारीजी ने उनका 'राज' ठीक न समझ कर ही समाप्त कर दिया ! किसान लोग अपने खेती के बैल को 'बधिया' बनाकर जमीन जोतने में सफलता अनुभव करते हैं। काश मानवों में भी यह प्रवृत्ति प्रचलित हो जावे तो 'श्रमदान-यज्ञों' की यशस्विता में शायद सन्देह न रहे। पर श्रीमती मुंशी तो उसे आरम्भ में सीमित रखकर पागलों रोगियों तक ही प्रयोग करना चाहती थी। स्वास्थ्य मन्त्राणी ने उन्हें प्रयोग का अवसर भी प्रदान नहीं किया। अवश्य ही ऐसे अनैतिक, अव्यवहारिक, और अनुचित प्रस्ताव के विचार को श्रीमती मुंशी ने गम्भीरता पूर्वक न सोचकर ही मन में कैसे स्थान दिया विस्मय है !

मुक्ति पर्व का मूल्य !

भारत का मुक्ति पर्व १५ अगस्त है। इसी दिन पराधीनता से हमारा यह महान् राष्ट्र सदियों बाद स्वतन्त्र बना है। हमारे लिए यह हर्ष का दिन है; उत्साह का दिन हैं; गौरव का दिन है; किन्तु ६ वर्ष बीत जाने पर भी हमारे मन में उमंग नहीं, आनन्द नहीं, हमारी पीड़ाएँ बढ़ रही हैं, जीवन दूभर बन रहा है। मुसकान के विपरीत मुख पर मलिनता है। मँहगाई ने, बेकारी ने मानव को मसल कर रख दिया है, हम यह पर्व भी कहाँ उत्साह से मनाते हैं ? कल तक जिस तरह शासकीय-उत्सव सरकारी सूत्रों से मनाए जाते थे, आज आजादी में भी जनता की उदासीनता प्रकट हो रही है, जनता में जिस उदासीनता, अविश्वास और उल्लास की कमी है, उसे कोई पंचवर्षीय-योजना दूर करने का उपाय योजित नहीं करती, शासन की इस ओर उदासीनता भी है। मानव-मन का जब तक कोई मनो-वैज्ञानिक सुधार सोचा नहीं जाता, तब यह दशा दूर नहीं होगी। निराशा के वेग को यदि यथा समय रोका न गया तो यह बाढ़, किसी कौसी, या ब्रह्मपुत्रा से कम भयंकर सिद्ध न होगी। हमारे शासन में स्वतन्त्रता के साथ अधिकांश स्वार्थ और सत्ता के मोह ने मदान्धता प्रविष्ट करदी है, पक्षपात और दल-बन्दी ने दुर्दशा को आमन्त्रित कर दिया है, इस कारण स्वतन्त्रता की श्रेष्ठता, और सुख, समाज के लिए स्वप्न की वस्तु बन गए हैं। हाल ही में उज्जैन की घटना है, १५ अगस्त को जिन मन्त्री के द्वारा ध्वजोत्तोलन शासन द्वारा निश्चित हुआ था, उनके अतिरिक्त अन्य ३ मन्त्रियों ने अलग-अलग समाज से आमन्त्रित हो शासन में जिस दलगत-भावना को प्रत्यक्ष किया, और अपने जिस रूप को समाज में प्रकट कर तिरस्कार, और उत्तेजना उत्पन्न की वह प्रमाण है कि आज शासन किस प्रकार जनता की दृष्टि में गिरता जारहा है, और शासक किस प्रकार दल-पक्षों को प्रोत्साहित कर स्वार्थ-सत्ता की सुरा-सेवन कर मदान्ध बन रहा है। समारोहों से उसे मोह है, पार्टी से प्रेम है। १५ अगस्त के 'पर्व' की उसे उतनी पर्वाह नहीं है, जितनी अपनी झूँठी प्रतिष्ठा की, पद की, और प्रपंच की, आराम, आनन्दोपभोग की। त्याग, कर्तव्य, और सेवा भावना से वह दूर होता जा रहा है। जिस समाज ने उसे शासक बनाया था, आज वह उसी से तिरस्कार पाकर शासन पर शान जमाए जम रहा है। वर्ष में एक दिन अपने मुक्तिपर्व पर भी आत्म निरीक्षण करने की कल्पना नहीं कर पाता, हमारी यह मदान्धता यह आत्म विस्मृत भावना, यह दाम्भिकता हमें कहाँ लेजायगी ? हम अपने मुक्ति पर्व के महत्व को भी रस-राग रंग, मनोरंजन, सुरा-सुंदरी-सिनेमा में समेट कर, सेवा की समाधि पर समाज की छाती पर नग्न नृत्य करना चाहते हैं, हम कहाँ जारहे हैं, अपने भविष्य को कहाँ ले जारहे हैं ?

ऑक्सिजन [आकाशामृत का शोध !]

मालवेन्द्र महाराज भोज का नाम विद्यानुरागिता के लिए प्रसिद्ध है, उनके समय जैसी विद्या-कला की उन्नति शायद ही कभी हुई हो, उनका समय स्वर्ण-काल माना जाता है। संमोहनी तथा संजीवनी-विद्या की शोध आपके समय और आपके राज्य में हुई है। रोगी को संज्ञा हीन कर शस्त्र क्रिया करके मार्जन करने की कला का प्रयोग इसी समय हुआ, आयुर्वेद में आकाशामृत (ऑक्सिजन) की शोध हुई। आधुनिक विज्ञान में ऑक्सिजन और कार्बन का शोध नया माना जाता है, परंतु आयुर्वेद में १००० वर्ष पूर्व आचार्य शार्ंगधर ने इसकी खोज करली थी।

आक्सिजन अमृत है और कार्बन विष। मनुष्य श्वास द्वारा आक्सिजन ग्रहण करता है, और कार्बन डाइ ऑक्साइड बाहर फेंकता है। इसी शोध को आयुर्वेद में इस प्रकार प्रकट किया है—

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वाहृत्कमलान्तरम्।
कंठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्॥
पीत्वा चाम्बर पीयूषं पुनरायाति वेगतः।
प्रीणयन्देह मखिलं जीवञ्च जठरानलम्॥ (शार्ंग

अर्थात् नाभि स्थित प्राणवायु हृदय कमल को स्पर्श करता हुआ कंठ द्वार से नासिका द्वारा बाहर आता है, और विष्णुपदामृत अर्थात् आकाश में से शुद्ध आकाशामृत (आक्सिजन) ग्रहण करके वेग से पुनः लौट आता है। शुद्ध अम्बर पीयूष (ऑक्सिजन) जीवन को संतुष्ट करता हुआ, जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। इससे कितना स्पष्ट है कि आयुर्वेद में ऐसे ही अनेक शोध विद्यमान हैं।

(बडनगर वैद्यसम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण से

'मध्यभारत के मुख्य मंत्री का विचारणीय वायु-प्रवचन।'

प्रवचनों की परम्परा में मध्यभारत के मुख्य मंत्री का स्थान विशेष बोलने वालों की श्रेणी में नहीं आता। वे मितभाषी माने जाते हैं, इसलिए उनके भाषण का अन्य भाषकों की अपेक्षा थोड़ा अधिक महत्व हो जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष प्रसंग पर किया गया प्रवचन प्रसंग पर्यन्त ही मर्यादित रह जाता है, परन्तु हम यहाँ जिस प्रवचन को लेकर अपने विचार प्रकट करने जा रहे हैं, वह अखिल भारतीय आकाशवाणी से सर्वत्र प्रसारित हुआ है, उसमें हमारे प्रदेश की प्रगति का परिचय है, और भावी का भव्य चित्र भी अंकित करने का प्रयास है। अगले कार्यक्रम की झाँकी भी दिखाई गई है, अवश्य ही चम्बल योजना से बनने वाले चमन की चकाचौंध हमें उसमें मिलती है, जिसे करोड़ों की रजत राशि से निर्मित हो जाने पर किसी दिन हम या हमारी संताने देख सकेंगी। अन्न धान्य की विपुलता का अनुभव कर सकेंगी, स्वास्थ्य की सुविधा के लिए भी हमारी उदारता विशाल भवनों में स्थल विशेष को नीरोगिता प्रदान कर सकेगी। और शिक्षा के क्षेत्र में हमारा यह गर्व है कि अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक, अर्थात् आय के १४ प्रतिशत का व्यय हमारे यहाँ हो रहा है। किन्तु यह व्यय किस स्रोत से किस सीमित-क्षेत्र को पोषित कर रहा है, यह प्रवचन का विषय नहीं, प्रत्यक्ष का विषय है। उस विशाल व्यय में से १०० माध्यमिक-शालाओं के लिए भवन चाहे बने, २ हजार प्राथमिक शालाएँ खुले और विद्यमान संस्थाओं को उन्नत बनाया जाए-परन्तु प्रांत के लिए अत्यावश्यक एक विश्व-विद्यालय की चर्चा का प्रवचन में नाम तक नहीं मिल पाता, जिस प्रकार धारा सभाओं में से केन्द्र के नाम पर उसे उडा दिया जाता है। उसी प्रकार मुख्य मंत्रीजी के भाषण से वह अदृश्य है, इससे उसके भविष्य के लिए भी आशंकाएं उत्पन्न हो तो अकारण नहीं। स्पष्ट है कि जिन योजनाओं का हरा बाग मुख्य मंत्रीजी ने बतलाया है, उसमें शायद इस महत्वपूर्ण प्रश्न (विश्व विद्या) के लिए कोई योजना न हो, व्यय-व्यवस्था न हो, केवल उस प्रवचन में उज्जैन की अनजान जनता को समझा देने के लिए —'उज्जैन स्थित सिंधिया प्राच्य ग्रंथ संग्रहालय में एक अनुसंधान शाला' खोलने का संकेत कर दिया गया है। यह संकेत ही समझदारों को संदेह उत्पन्न करता है कि पूर्व स्वीकृत, किंतु क्रमशः उपेक्षित बन जाने वाले विश्वविद्यालय के विषय में मुख्य मंत्रीजी का प्रवचन मौन क्यों हो गया है? क्या उसकी विलीनीकरण पूर्व स्वीकृत १ करोड़ की धनराशि जो शासन के खजाने में अब तक 'सुरक्षित' घोषित हुई है, और जो केवल उज्जैन विश्वविद्यालय निर्माण के हेतु ही है, उसे मध्यभारतीय विकास की विशाल-सूचि में अवसर देने में मुख्य मंत्री को विशेष महत्व ही विदित नहीं हुआ? या धारा-सभाओं के दो-तीन निर्णयों के बाद भी वे उसे उपेक्षित करना चाहते हैं? केन्द्र की रुकावट चाहे किसी कारण उत्पन्न हुई हो, वह भी उसके स्वरूप तक ही सीमित है। विश्वविद्यालय की स्थापना के स्थान निर्णय के लिए नवीन अवरोधक नहीं, फलतः किंचित् विलंब से ही स्वरूप समझने का अवसर उपलब्ध हो, तो भी विश्वविद्यालय की स्थापना और स्थान में संदेह का कारण नहीं बनती, तब मुख्य मंत्रीजी के प्रवचन में ऐसी विशिष्ट-वस्तु के प्रति मौनावलंबन किस कारण हुआ, यह संदेह उनकी सदाशयता में शंका उत्पन्न करने का कारण बने तो किसका दोष होगा? हम कह चुके हैं कि हमारे मित-भाषी मुख्य-मंत्री के अवसर प्राप्त विचारों का महत्व हो जाता है, और उसी कारण यह उपेक्षा संदेह-प्रसार में सहायक हो गई है।

(मुख्यमन्त्रीजी के इस भाषण में चम्बल बांध के लिए महत्व बतलाते हुए वाक्य लिखा है कि–'यह योजना शास्त्रीय दृष्टि से श्रेष्ठ मानी गई है, यह 'शास्त्रीय दृष्टि' का प्रयोग हमारी नम्र सम्मति में इस स्थान पर समीचीन नहीं है। बांध के ज्ञान को शास्त्रीय नहीं; किंतु शिल्प की श्रेणी में माना जाता है। कोषकार ने 'विज्ञानं शिल्प शास्त्रयोः' कहा है, इसलिए यहाँ 'शासकीय--दृष्टि' के स्थान पर, 'वैज्ञानिक अथवा शिल्प वैज्ञानिक दृष्टि' से ही प्रयोग किया जाना उचित होगा। यह हमने इस कारण लिखना उचित समझा कि हमारे शासकों में

भाषा का नवीन प्रयोग हो रहा है, उसमें भ्रम प्रसार न हो, औचित्य का विचार रहना आवश्यक है।

'विश्वविद्यालय' के विषय में नया भ्रम-जाल

मुख्य मन्त्रीजी के भाषण ने हमें जो भ्रम उत्पन्न करने का अवसर दिया, हाल ही में पत्रों में उसका रहस्य बिस्फोट हो गया है। यद्यपि अभी तक सरकारी तौर पर कोई सूचना या स्पष्टीकरण प्रसारित नहीं हुआ है। तथापि मध्यभारत और बाहर के पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि म० भा० के विश्वविद्यालय के विषय में केन्द्र से कोई रहस्य मय रिपोर्ट प्राप्त हो गई है, उसमें संघीय विश्वविद्यालय को मध्यभारत में संभवतः तीन स्थानों में खण्डशः बांटा गया है। और एक करोड़ की धनराशि संग्रहीत होने के बाद ही उसकी स्थापना करने का सङ्केत दिया गया है। साथ ही उसका केन्द्रीय कार्यालय उस स्थान पर होगा जहां अधिक छात्र, अधिक कालेज आदि होंगे। कह नहीं सकते कि 'विश्वस्त सूत्रों के आधार' पर प्रकाशित इन सूचनाओं में कितना तथ्य है? किंतु सरकार के मौन से इस सन्देह की पुष्टि का संकेत मिलता है।

हम नहीं समझते कि जिन माननीय मौलाना आजाद ने कुछ समय पूर्व ही म० भा० के मुख्य मन्त्री को यह सार्वजनिक घोषणा कर देने का आदेश दिया था कि-केंद्र विश्वविद्यालय के स्वरूप के विषय में ही अपने विचार देगा, स्थान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, और यह निर्णय करना मध्यभारत का अपना काम है। वही मौलाना का केन्द्र उसके स्वरूप की चर्चा को छोड़ पुनः स्थान के महत्व को अपनी चर्चा का विषय क्यों बनाता है? और विश्वविद्यालय के पाकिस्तानी बंटवारे की सलाह क्यों देने को उद्यत हो गया है? केन्द्र को वर्तमान विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली से असन्तोष है, सारे नेता और समझदारों को भी है। तब वह प्रणाली परिवर्तन की सलाह ही देता तो आज तक उसके लगाए हुए अडङ्गों का हमें औचित्य समझ में भी आता, पर सहसा इतनी लम्बी रुकावटें डाल कर भी वह उसी प्रणाली का पोषण करते हुए मध्यभारत के कालेजों की संख्या और उसके स्थानों की सूचि को लेकर फ़ैकल्टीज के बँटवारे की बात लेकर उलझन उपस्थित करने को क्यों उद्यत होता है? उसका कार्य केवल प्रणाली परिवर्तन की सूचना मात्र था। वह स्थान, विभाग और रुपए को राह का रोड़ा बनाने का क्यों कष्ट करने जा रहा है? क्या मा० मौलाना कुछ दिन पूर्व अपने वचन जो मुख्यमन्त्री के मुख से बुलवा चुके हैं, भूल गए हैं? जो भी हो मुख्यमन्त्री के ब्राडकास्ट भाषण में विश्वविद्यालय की उपेक्षा का शायद यही रहस्य था, जो केन्द्र के माध्यम से अब प्रकाश में आया है।

किंतु हम केन्द्र और अपने प्रदेश के शासन को सावधान करदेना चाहते हैं, विश्वविद्यालय के मामले में हम उज्जैन निवासियों का अब से आप किसी पर विश्वास नहीं रह गया है। न हमें इस तरह आशा-आश्वासनों पर केन् के कर्णधारों की मध्यस्थता पर ही कतई विश्वा रहा है। विश्वविद्यालय उज्जैन ही में बन कर रहेगा, उसे बहानों से, चालों से कोई ताकत टाल नहीं सकती, उज्जैन में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया होगी, और वह शासन के लि चिन्ता का विषय हो सकती है। उज्जैन अपने इस अधि कार के लिए सब तरह के बलिदान देने को तत्पर जाएगा। भू० पू० ग्वालियर शासन का स्वीकृत एक करो रुपया जो मध्यभारत के खजाने में सुरक्षित है, उस प केवल एकमात्र उज्जैन का ही अधिकार है, वह उज्जैन विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए ही सुरक्षित है। उसमें एक पाई भी किसी अन्य कार्य या अन्य स्थान पर कदा नहीं लगाई जा सकती।

उज्जैन में केवल 'इण्डोलोजी' के अध्ययन का स्था बना कर विश्वविद्यालय का बँटवारा बना देने वाली यो नाएँ अत्यन्त हास्यास्पद, अवांछित, और अनुचित ही नहीं उपेक्षणीय भी हैं। उज्जैन इस तरह एक 'इण्डोलॉजी' दान पर अपनी बानत नहीं बिगाड़ेगा, विश्वविद्या उसके अधिकार की वस्तु हैं, उसे वह समस्त-सर्वा प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति और सारा ब दान करने को तत्पर होगा। शासन पर, उसकी निष्ठा और उसके विवेक पर हमें अब तक विश्वास था, वि विद्यालय सम्बन्धी प्रकाशित सूचनाओं में 'सत्य' है तो स है कि उज्जैन निवासियों का विश्वास अवश्य डगमगा जाएगा।

हम पुनः अपने आत्म विश्वास के साथ संपूर्ण विचार और विवेक के साथ कहना चाहते हैं कि विश्वविद्यालय की स्थापना उज्जैन में ही होगी। उसके लिए किसी भी विरोध-बलिदान त्याग के लिए आवश्यकता हुई तो उज्जैन समस्त शक्ति के साथ करने को उद्यत रहेगा। यह हमारा अधिकार है, कोई शक्ति किसी प्रकार हमसे यह छीन नहीं सकती, शासन और केन्द्र इसे सावधानी सतर्कता से सुनले और समझले!

हम शासन की अधिकृत सूचना, विचार जानने की प्रतीक्षा में हैं, यह अंतिम बार उसके विवेक की कसौटी होगी फिर उज्जैन का धैर्य जो अपनी सीमा लाँघ चुका है, कोई प्रतीक्षा नहीं करेगा। पक्षपात प्रवृति के परखने की पराकाष्टा होचुकी है। शासन इस सही स्थिति को अच्छी तरह समझने का प्रयास करे, विद्रोह के विस्फोट होने का अवसर स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

आज की यह शिक्षा ?

हमारी शिक्षा जिस अज्ञान और बेकारी को बढ़ाने वाली सिद्ध हो रही है। उसके उदाहरण आए दिन हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। एक स्थान के रिक्त होने पर सैंकड़ों शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों की दौड़ लगती है, वह बतलाती है कि शिक्षा की प्रगति किस ओर है, हाल में मध्यभारत में कुछ नवीन-शिक्षकों के निर्वाचन के समय उन शिक्षकों ने अपने ज्ञान का दयनीय प्रदर्शन किया। जिस अज्ञान का रूप प्रकट किया, उससे स्पष्ट हैं कि वे जिस ज्ञान को प्राप्त कर दूसरों को दीक्षा देने के लिए उम्मीदवार बन रहे हैं, वह कितना अज्ञानता से भरपूर है। जिन शिक्षकों को देश-काल-स्थिति का भी ज्ञान नहीं, जो जवाहरलाल नेहरू को मध्यभारत का प्रधान तक कहने का अज्ञान प्रकट करते हैं, वे स्वतंत्र-भारत के भावी नागरिकों में संस्कार-दीक्षा देने का दम्भ करेंगे? जिस शिक्षा की यह दुर्दशा है, उसे बढ़ावा देना, उसे पोषित करना, भावी भारत के लिए कितना अनर्थकारी होगा, उसमें उन शिक्षकों का उतना दोष नहीं जितना उनको मिलने वाली शिक्षा प्रणाली का दोष है। जहां यह प्रचलित प्रणाली मूर्खता बढ़ाने वाली, बेकारी को प्रेरित करने वाली है, वहां यह अव्यवहारिकता, उच्छृंखलता, और असंस्कारिता की भी निर्मात्री है। यही कारण है कि शिक्षा-संस्थाएं आज अनाचार और उच्छृंखलता का 'अड्डा' बनती जारही है, हम इसी की अभिवृद्धि के लिए यत्नशील हैं इसी की संख्या-वृद्धि कर हम प्रगति का ढिंढोरा पीटते जारहे हैं, वस्तुतः इस प्रगति को तुरंत रोक कर हमें पहिले यह निर्णय लेना चाहिए कि क्रमशः ज्ञान की दिशा में परिवर्तन करें, पाठ्य क्रम में परिवर्तन करें, अवश्य ही यह सरल और सुगम कार्य नहीं किंतु हम यथा क्रम प्राथमिक के प्रश्न को लेकर ही उसका पुनर्निर्माण करें, योग्य शिक्षा शास्त्री के सहयोग से उसका ढांचा बदलें, क्रम बदले, और बाद में उस का प्रसार करें, इसी तरह माध्यमिक में भी यथा क्रम परिवर्तन करें, शिक्षा के उद्देश्य सार्वजनिक, और सार्वदेशिक भावना से स्वीकार किये जा सकते हैं, किंतु उसके क्रम, और पाठ्य में प्रादेशिक परिस्थिति, और संस्कारों को दृष्टि में रखना आवश्यक है, मातृ-भाषा को महत्व भी

कालिदास प्रेमियों को विशेष सुविधा

(अपूर्वअवसर)

कालिदास के साहित्य प्रेमियों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि अ. भा. विक्रम परिषद् काशी की ओर से कालिदास के समस्त काव्य-नाटकों की मूल, और हिंदी अनुवाद सहित जो महत्व पूर्ण सुन्दर ग्रंथावलि प्रकाशित हुई, जिसका मूल्य ३० रु. है, वह विक्रम के ग्राहकों पाठकों के लिए परिषद् ने उदारता पूर्वक १७) में देना स्वीकार कर लिया है, जो सज्जन चाहें वे विक्रम-कार्यालय उज्जैन से भी प्राप्त कर सकते हैं, और विक्रम परिषद् काशी से भी आशा है कालिदास के समस्त साहित्य का यह सुन्दर संग्रह सभी अपने लिए शीघ्र सुरक्षित कर लेंगे।

वी. पी. नहीं भेजी जाएगी, अग्रिम मूल्य के साथ १॥ डाक व्यय प्रथक प्राप्त होने पर पुस्तक भेज दी जाएगी।

प्रत्येक पुस्तक के साथ महर्षी मालवीयजी के जीवन चरित्र की एक प्रति भेंट में प्राप्त होगी।

सोवियत यूनियन की एक झांकी

अजरबेजन सोवियत समाजवादी प्रजातंत्र 'Neftyaniye Kamni' नामक तेल का एक नया केन्द्र केस्पियनसमुद्र में पिछले दो वर्षों से स्थापित हुआ है। सारा नगर जहां कि कार्यकर्ता रहते हैं, और अन्य स्थान समुद्र में मजबूती से स्टील फाउन्डेशन पर बने हुए हैं।

चित्र में दक्षिण का प्रमुख पुल बताया गया है।

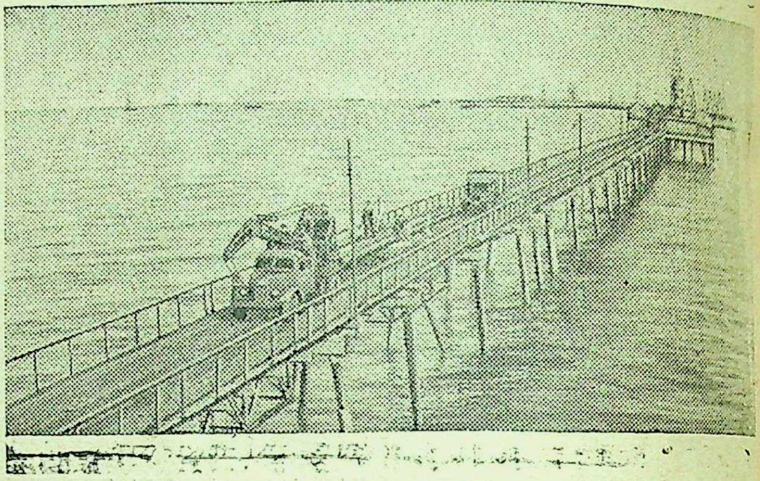

दिया जाना चाहिए, इधर बेसिक की प्रथा भी जोर पकड़ रही है, हम उसका महत्व मानते हुए उसकी प्रयोगावस्था को प्राथमिकता देने की आवश्यकता नहीं समझ सकते, और जिस प्रकार इधर शिविरों, की प्रवृत्ति चल पड़ी है जो केवल कुछ दिनों के भाषणों को भूरसी वितरित कर, दस रुपए दैनिक की लाभ भावना से सैकड़ों रुपए रोज के निरर्थक व्यय का वहन कर योग्यता ज्ञान संस्कार को समेट कर भर देने का प्रयास करती है, वह कहां तक उपयोगी, उचित है, समझने में असमर्थ हैं। हमारे सामने इसी प्रवृत्ति के पोषकों द्वारा संचालित ग्राम सेवक विद्यालय की निरर्थकता का उदाहरण प्रत्यक्ष है। इसकी अपेक्षा हमें किसी एक भाग में एक ही प्रयोग करना चाहिए जहां निरंतर इस प्रयोग की परीक्षा करने का प्रसंग प्राप्त हो सके, और उसी परीक्षण के आधार पर उसके विस्तार का विचार किया जाना चहिए, उससे समय और व्यय का अधिक अप-व्यय नहीं होगा, वहीं से ट्रेण्ड बनाकर अध्यापक भी यथा क्रम वितरित हो सकेंगे, परंतु एक साथ कुछ क्षणों में अध्यापकों को मौखिक भाषणों के द्वारा ज्ञान का 'डोज' देकर विज्ञ बना देने की यह 'शिविरीशैली' कहां तक उपयोगी हो सकेगी, यह संदेह ही है। ज्ञान के क्षेत्र में यह प्रचार प्रवृत्ति, प्रदर्शन, उद्घाटन की मनोवृत्ति अनावश्यक और निरर्थक है।

इसी तरह शिक्षा के पाठ्यग्रंथों का बार बार परिवर्तन और मन-माने पाठयों का शिफारसी प्रवेश भी शिक्षा के लिए बाधक, और मँहगाई का कारण बना हुआ है। डॉ० मुदालियर जैसे शिक्षा शास्त्री ने भी इसकी तीव्र आलोचना की है, कुछ समयपूर्व हमने विक्रम में नारी-शिक्षा के विषय में लिखते हुये बतलाया था कि यह स्वतंत्र प्रकार का होना चाहिए, नारी के मन और वातावरण का उसमें विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। अनेक अंशो में उसमें पुरुषों से भिन्नता अपेक्षित है, किंतु आज उन्हें शिक्षा दी जारही है, वह उनके लिए न तो मनोनुकूल है, न उनके जीवन में उपकारक भी, सहशिक्षा तो और भी अनावश्यक एवं अहितकर है। १२-१३ वर्ष की वय तक यह सीमित रहे तो आपत्ति जनक नहीं, आगे तो उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक ही उनके जीवन के लिए उचित तथा निर्माणकारी शिक्षा दी जाना चाहिए, हमने सह शिक्षा के प्रयोग कुछ सीमित नगरों में करके उसे सफल समझने की भूल कर डाली है। नगरों में भी सीमित वर्ग ही उससे लाभ ले पाता है, जब कि नगरों को छोड़ दें तो ग्रामों, या उपनगरों में भी सह-शिक्षा में सफलता असंभव होती है। हम सहशिक्षा में पश्चिम का अनुकरण करना चाहते हैं, किंतु डॉ० मुदालियर जैसे वे लंदन में सह शिक्षा की दुर्दशा जानी-सुनी है, और वे दुखी बन गए हैं। इससे हमें अपने देश की परम्परा और संस्कारिता को समझकर ही नारी शिक्षा को स्वतंत्र बनाना चाहिए। जिस ढर्रे को हम खींचते पनपाते जारहे हैं, वह ज्ञान अपनी अज्ञानता की देन देकर असफलता प्रकट कर चुका है।

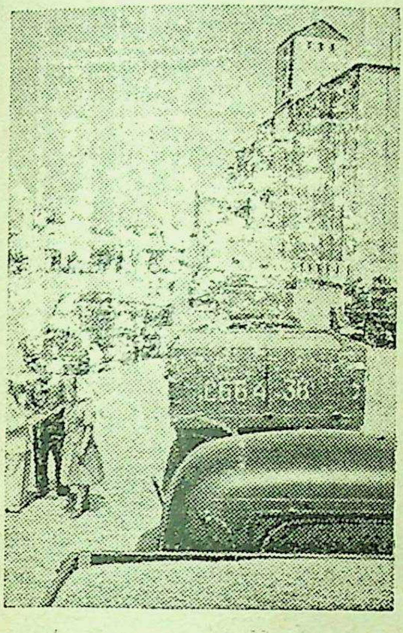

सोवियत यूनियन में

स्टेवरोपोल क्षेत्र—नई फसल से लदी हुई लारियां पेट्रोवास्कोई के वजन उठाने की मशीन पर दिखाई दे रही हैं।

"मन्त्री का गायन"

"इन्दौर में कृष्ण जयंती के उत्सव-निमित्त सुभाष-चौक में जो सार्वजनिक सभा हुई उसमें मुख्य मन्त्री ने दो तीन गायन गाकर श्रोता-जनों को प्रसन्न किया !

—भाषण करने की अपेक्षा मंत्री को गायन करना ही अधिक उपयोगी होगा। संगीत द्वारा मंत्री की लोक प्रियता भी बढ़ेगी। मन्त्री के गायन में उपमन्त्री यदि ठेका (ताल) दें तो गायन में अधिक रंगत ही आएगी।

—मन्त्री के गायन में आवाज की मधुरता की परीक्षा आदि की आवश्यकता नहीं। क्योंकि सरकारी गीत गाना, और रेंकना (रड़-गानो) सदैव शास्त्र शुद्ध होगें ही !

—गाने वाला मन्त्री, अपनी मीठी राग बाजी से प्रजा के दुःख का परिहार कर सकेगा, इस दृष्टि से—गाने वालों में से मन्त्री का निर्वाचन करना ही समझदारी का काम होगा !"

(६ । ६ । ५३ मराठी नवयुग से)

उज्जैन की वेधशाला—प्राचीन—या नवीन ?

पत्रों में पढ़ा कि हाल ही में एक सदस्य के उत्तर में प्रश्नोत्तर के समय मध्य-भारत-विधान सभा में श्रीयुत शिक्षा मन्त्री ने बतलाया कि 'उज्जैन की वेधशाला आधुनिक नहीं है, वह भारतीय प्राचीन ज्योतिः शास्त्र के आधार पर बनाई गई है,' बात ठीक है ! यह वेधशाला लगभग ३०० साल पूर्व प्राचीन ज्योतिष शास्त्र के आधार पर निर्मित हुई है, और स्व. महाराजा माधव राव सा. सिन्धिया ने उसी प्रकार उसे दुरुस्त भी करवाया था, किन्तु जब से उसपर कार्य आरम्भ हुआ है, एक भी विद्वान् उस पर ज्योतिः शास्त्र का जानकार नहीं रखा गया। वेधशाला पर प्रायः अंग्रेजी के जानकारों को ही महत्व दिया गया, और उन्होंने विलायती गणित का आधार लेकर अपने ऑफिस में बैठकर अनुवाद मात्र किए, क्योंकि अधिकारियों को जो इस संस्था में काम करते रहे ज्योतिष शास्त्र की ए. बी. सी. भी मालूम नहीं थी। यह क्रम आज तक जारी है, वहाँ एक भी कार्यकर्ता ऐसा नहीं जिसे ज्योतिष का ज्ञान हो, ऐसी हालत में प्राचीन शास्त्राधार पर बनी हुई वेधशाला होने पर भी प्राचीनता के दर्शन नहीं, और आधुनिक तो वह है ही नहीं। वर्षों से उसमें क्या काम होता है, उसकी क्या उपयोगिता है, इसे शिक्षा विभाग के अधिकारी नहीं जानते इस लिए वह भी अँधःकार में है। शासन के पास ज्योतिष शास्त्र की शालाएँ हैं, उनमें पंडित वर्ग भी हैं; परन्तु वेधशाला से कभी किसी प्रकार उनका सम्पर्क नहीं आया-देखा। ऐसी हालत में उसकी क्या उपयोगिता है, क्या कार्य होता है, यह भी शायद कोई नहीं जानता। एम्. ए. और मॅट्रिक के युवकों को उसमें भर्ती किया जाता रहा हैं, यदि सरकार वेधशाला को आधुनिक नहीं समझती, और न बनाना चाहती है तो उचित यह है कि उसे ज्योतिः शास्त्र के जानकारों के हाथ में देदे, उसके जानकारों के सहयोग से संचालित करे, संगठित करे; और कार्य करे। एक बात और है, वेधशाला का विषय बहुत स्वतन्त्र है, टेकनिकल, और प्रेक्टिकल है, यह ज्ञान अभी किसी शाला या कॉलेज में नहीं सिखलाया जाता, इसके लिए किसी पब्लिक-सर्विस कमीशन के सिलेक्शन पर, या आचार्य, अथवा एम्. एस्. सी. देखकर लेना गलत होगा। उसमें ज्योतिष शास्त्र के मध्यमा, या आचार्य व्यक्ति को

यदि वह अंग्रेंजी भी जाने तो उपयोगी ही है तभी लिया जावे जब तक २-या ३ वर्ष प्रत्यक्ष सक्रिय ज्ञान वह वहाँ रहकर-कार्य कर प्राप्त न करले। केवल 'पद' देखकर डिग्री की परीक्षा से बिठलाया जाना उचित न होगा, आज जो लोग वेधशाला पर काम करते हैं, उनमें श्री० बेलेकर अवश्य योग्य हैं, और जानकार भी हैं। इसी तरह श्री० पुरुषोत्तम जोशी भी पुरातन, और नवीन पद्धति से काम करते हैं, और २२ वर्षों का इन्हें अनुभव भी है। इन लोगों के निकट नए पण्डितों को रखकर ट्रेंड बनाकर ही अवसर दिया जाना चाहिए। इसके सिवा ज्योतिषियों की एक सलाहकार समिति बनाकर वेधशाला का कार्य संचालित किया जाए, शिक्षा विभाग में इस विषय से अनभिज्ञ होने के कारण उनका निरीक्षण कोई अर्थ नहीं रखता, वेधशाला को ज्योतिः शास्त्र के जानकारों का परामर्श या सम्पर्क न रहे तो इसका क्या उपयोग है? शाला के ज्योतिष पण्डितों, पंचांग कर्ताओं को प्रायः संस्था से सम्बन्धित रखने के लिए उन्हें घटना विशेष पर बुलवाया जाना चाहिए, शासकीय पंडितों को वेधशाला की जानकारी लेने के लिए बाध्य बनाया जाना चाहिए, और समय समय पर उन्हें खगोलीय घटनाओं के प्रत्यक्ष जानकार बनाना चाहिए।

यद्यपि मंत्री महोदय इसे आधुनिक-रूप में नहीं देखते न वैसा करने का विचार रखते हैं, किन्तु आज संस्था में जो साधन हैं, जो शक्ति है, वह थोड़े ही विकास से प्रस्तु जहाज, विमान-संचालन आदि में भी सहायक हो सकते है, इसी तरह वेधशाला के कार्यों से जनता का अनुराग भी स्थापित किया जाना चाहिए वह प्रत्यक्ष विषय है। जनता भी देख समझ सकती है, आकर्षित रह सकती है, इसके लिए प्रचार, प्रकाशन का भी सहयोग आवश्यक है। हम चाहते हैं कि सुयोग्य शिक्षा मन्त्री जी उक्त संस्था को चाहे आधुनिक न कहें पर पुरातन में भी उसका बहुत कुछ उपयोग है, इस ओर वे विकास साध्य करें। जब तक इस संस्था को जोकि जिस शास्त्र के आधार पर वह निर्मित है उस शास्त्र के जानकारों को स्थान-या-महत्व नहीं दिया जावेगा इसका उपयोग नहीं आज के स्वरूप में फेरफा करना होगा। ज्योतिः शास्त्र के अनजानों को वहाँ कोई स्था न हो, तभी उस के शास्त्रीय-रूप की रक्षा की जासकती है

आलोचना के तृतीय वर्ष का पहला अंक (९ वां अंक)

"आलोचना अंक"

के नाम से लगभग २५० पृष्ठों का विशेष अंक होगा। इस अंक का मूल्य ५) मात्र होगा, लेकिन वार्षिक ग्राहकों को यह अंक साधारण मूल्य में ही मिलेगा। इस अंक में दार्शनिक-चिन्तन और समीक्षा-पद्धतियों के मूलाधार, मनोविज्ञान, सौन्दर्य-शास्त्र और साहित्य शास्त्र आदि का समीक्षा-पद्धति पर प्रभाव, यूनानी, यूरोपीय, मार्क्सवादी, चीनी, ईरानी इत्यादि के साहित्य-शास्त्रों का भारतीय साहित्य पर प्रभाव, भारतीय समीक्षा व साहित्य शास्त्र के आधार, आदर्श व क्रमिक-विकास, हिन्दी की मध्य कालीन आचार्य परम्परा, द्विवेदी युग के समीक्षात्मक मान दण्ड, शुक्ल जी की परम्परा, बाबू गुलाबराय, आचार्य हजारीप्रसाद, विभिन्न वादों की समीक्षात्मक प्रवृत्तियां, इलियट, रिचर्ड्ज़, मार्क्स, काडवेल और अरविन्द, रसशास्त्र, भविष्यत्-साहित्य-दर्शन, आदि आदि विषयों पर अध्ययन और अनुशीलनपूर्ण निबन्धों का संग्रह रहेगा। (वार्षिक मूल्य १२) मात्र मनीआर्डर द्वारा भेजिये)

सम्पादन समिति डॉ० धर्मवीर भारती, डॉ० रघुवंश, डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, श्री विजयदेव नारायण साही। सहकारी सम्पादकः श्री क्षेमचन्द्र सुमन

प्रकाशकः-- राजकमल प्रकाशन, १ फैज़ बाज़ार, दिल्ली

सांस्कृतिक केन्द्र मध्यभारत और उसके पुनर्विकास की आवश्यकता

श्री० राधेलाल व्यास, एम्. पी.

मध्य-भारत भारतवर्ष का अत्यन्त पुरातन सांस्कृतिक-स्थल है इतिहास के आदि---काल से यहां संस्कृति ने चरम विकास किया है। भारतवर्ष को ही नहीं, समस्त विश्व को मध्य-भारत ने संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में जो देन दी है, वह अत्यन्त मूल्यवान् है। जिस भूमि पर प्रलय के कारण किसी वस्तु का अवशेष नहीं रहा था, वहाँ नर्मदा—उपत्यका मे प्रथुवैन्य और मान्धाता ने मानव का विस्तार कर देश को पुनः स-जन बनाया है। मालवा की प्लेटो-भूमि इसके प्रभाव में साक्षी है, और आज का नवीन ज्ञान सम्पन्न-मानव भी नर्मदा-उपत्यका की पुरातन-तम संस्कृति को ५०. हजार वर्ष पूर्व की मानने को विवश बन रहा है, तब वैदिक और पौराणिक काल कथित भार्गव, और हैहयों की जिस समर-परम्परा को हम देखते हैं, वह भी इसी मालव-तटवर्ति नर्मदा-कूल स्थित महेश्वर (माहिष्मति) की रही है, जिसे हम अभिनव बतलाने का साहस नहीं कर सकते। मध्य-भारत की यह पुरातनता उसकी सांस्कृतिक महत्ता की अति-पुरातनता की सूचक है, फिर जिस पुराण-प्रथित-अवन्ती में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञानार्जन किया हो, अशोक-महान् ने अपने ज्ञान की परीक्षा दी हो, महाकवि कालिदास ने अपनी प्रतिभा का प्रसाद अर्पित किया हो, विक्रमादित्य जैसी विभूति ने सारे राष्ट्र को नवीन संवत् प्रदान किया हो, अठारह पुराणों, उपनिषदों, महाकाव्यों, साहित्य-विज्ञान-ग्रन्थों ने जिस प्रदेश की गौरव-गाथा का सहस्र पृष्ठों में गान किया हो, उसकी सांस्कृतिक-महानता के विषय में जो कहा जाए वह थोड़ा होगा। आज के इतिहास में से अवन्ती और मालव-भूमि के प्रकट तथ्यों को हटा दिया जाए तो इतिहास अधूरा रह जाएगा। इतिहास के विभिन्न कालों को इतिहास निर्माण के लिए इस महा-प्रदेश ने बहुत कुछ दिया है और अब भी बहुत बाकी है, जो इस भूमि के विभिन्न भागों के भूगर्भ में—रजकणों के आवरण में दबा पड़ा हुआ है। जो उत्खनन और अन्वेषण की प्रतीक्षा कर रहा है। इतिहास में जिसे अंधकार-युग के नाम से अभिहित किया वह इसी भाग का अंश है जिसे अवन्ती, विदिशा, दशपुर, माहिष्मती के भूगर्भ के अन्तराल में लुप्त समझा जा रहा है; परन्तु जिस मध्य-भारत में सारे राष्ट्र की राजधानी बनने का विभिन्न-कालों में गौरव प्राप्त रहा, और जहाँ ज्ञान-विज्ञान की सुर-सरिताएँ प्रवाहित होती रहीं क्या उसके उत्थान, और विकास की गाथा साधारण रह सकती थी? माहिष्मती के शासन ने सारे उत्तर-भारत पर अपना वर्चस्व स्थापित किया था, इसी नगरी के मालव-गणों ने ठेठ पंजाब प्रदेश तक पहुँच कर सिकन्दर के शौर्य को शान्त बना दिया था। महा-भारत-समर में मालव-गणों की जो प्रशस्ति मिलती है, उनके विविध पराक्रम का जो प्रसार-विस्तार वर्णित है, वह मध्य-भारत के गौरव का विषय है। यहाँ ही वह महापंडित मण्डन-मिश्र रहता था, जिससे शंकराचार्य को चौंकना पड़ा था, और जिसके द्वार पर शुक और शारिका पंजर-बद्ध विहंग होकर भी जीव, और आत्मा के विषय में गम्भीर वेदान्त-विवाद किया करते थे। और मालव की महत्वपूर्ण भूमि-विदिशा (भेलसा) वही नगरी है, जहाँ महान् अशोक ने आरम्भ में शासन सूत्र सम्हाला था, और बौद्ध-धर्म को देश-विदेशों तक प्रसारित किया था। उस पुरातन-काल में चीन-जापान आदि देशों में धर्म प्रचार के लिए इस प्रदेश के १८ पण्डितों ने अगम्य होते हुए भी कठिन यात्रा की थी। यही नहीं, चीन सम्राट से सर्व प्रथम आमन्त्रित होने का जिस महा पण्डित कश्यप-मातङ्ग को सम्मान प्राप्त हुआ था, वह इसी धरणी का प्रखर-विद्वान् था। यह प्रमाणित करता है कि यह प्रदेश ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में कितना विकसित हो चुका था। विदिशा के शासन में ग्रीक-राजदूत हेलियोडोरस ने परम भागवतधर्म- की दीक्षा ग्रहण की थी, जिसका साक्षी गरुड-स्तम्भ आज भी यहाँ विद्यमान है। महा भाष्य-कार पातंजलि ने यहाँ ही पौरोहित्य कर अश्वमेध-यज्ञ का पुनरारम्भ करवायाथा। विदिशा साहित्य-संगीत-कला का केन्द्र

बन गया था। यहाँ ही रहते हुए अशोक ने अपनी नव परिणीता वेश्य-सुता के लिए सांची के विशाल-शिल्प शृङ्गार के अप्रतिम उदाहरण स्तूप का निर्माण करवाया था, और अवन्ती तो अज्ञात काल से सारे राष्ट्र के संस्कृति का केन्द्र बनी रही है। कौनसा महान् काव्यकार, नाटककार, साहित्यकार है, जिसने अपनी रचना में अवन्ती को अंजलि अर्पित नहीं की है। जब व्यास बाल्मिकी, पुराणकार उपेक्षा नहीं कर सके तो अन्य प्रतिभाएँ पूजन करती रहे उसमें आश्चर्य का कारण नहीं। अनेक इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाएँ यहाँ घटीं। कथा-गाथाएँ यहाँ निर्मित हुईं, और उनको लेकर बड़े-बड़े प्रतिभा-पुत्रों ने अपना आदर व्यक्त किया है। अवन्ती से लेकर ही सारे देश को समय ज्ञान प्राप्त होता रहा है। राष्ट्र की यह ग्रीन्विच कही जाती रही है। संवत् के द्वारा काल गणना का माध्यम भी यहीं से प्राप्त हुआ। ज्योतिर्विज्ञान की जननी तो अवन्ती ही रही है, यहाँ से वराहमिहिर जैसे महान् आचार्य ने उत्पन्न होकर इस विज्ञान के क्षेत्र में अद्भुत और अपूर्व-साहित्य विश्व को दिया है। कालिदास जैसी विश्व विभूति इसी प्रदेश का गौरव था, जिसकी कृति ने भारत को समस्त-विश्व में उन्नत-मस्तक बनाने का सन्मान प्रदान किया। भोज, भर्तृहरी जैसे साहित्यकार, ग्रन्थकार इसी प्रदेश के अमर कलाकार रहे हैं। इसी प्रदेश की आवन्ती भाषा, आवन्ती रीति, नाट्य साहित्य को प्राप्त हुई, जिस मालव-राग ने रागों के राज्य में प्रतिष्ठा पाई, और गीत गोविन्द के अमर-गायक ने जिसे सादर प्रयुक्त किया वह यहाँ की ही वस्तु रही है। तब बाण जैसे महान् कादम्बरीकार ने अपनी अमर-कृति द्वारा अवन्ती की अर्चना की हो, शूद्रक, भास, भारवी जैसे सरस्वती पुत्रों ने अर्घ्य अर्पित किया हो तो कौन आश्चर्य है। इन महान् ग्रन्थकारों के साहित्य से आज हमारा देश समृद्ध है। विदेश गौरव करता है, और वह इसी मध्य-भारत की देन है। एक शाकुन्तल और एक मेघदूत ने विदेशों की विभिन्न-भाषा में पहुँच कर मालव-अवन्ती और इस समस्त-देश का सांस्कृतिक गौरव बढ़ाया है।

किन्तु काल की गति विचित्र है। जहां ज्ञान विज्ञान की निरंतर सरिताएँ प्रवहमान थीं। जिसे महाकवि कालिदास ने 'कांतिमत्स्वर्ग खण्ड' कह कर पुकारा, जिसके बाजार में बिखरी हुई रत्न-राशि को देख कर रत्नाकर समुद्र को निरापानी रहगया कहना पड़ा, जिसे 'वक्र-पंथ' होते हुए मेघ को देखने की कालिदास ने साग्रह प्रेरणा की, भूत-भगवान् महाकालेश्व की पवित्र सांध्यपूजा प्रार्थना में योगदेने का आग्रह कि जिसपर अकबर, जहांगीर जैसे मुगल सम्राट तक मुग्ध र वह मालवा वह अवंती आज काल के थपेड़ों से उध्वस्त अ रसिक-हृदय, और विशाल आँखों की ओर उद्धार के लिए आकांक्षा किए हुए है।

महान् श्रीकृष्ण के गुरु सांदीपन ऋषि का आश्रम ए विशाल विश्व-विद्यालय की प्रतिष्ठा का स्वप्न सेवित कर र है। विक्रम और कालिदास की अमर कीर्ति का स्मार 'विक्रम कीर्ति मंदिर' भी हमारी संकीर्ण मनोभावना में उल आधार शिला से ऊपर उठ नहीं पारहा है। आज ह ग्रीन्विच से अपना समय भी उधार लेकर, विदेशी सन्-तारी से अपना काल-क्रम चलारहे हैं। यदि उज्जैन जो कि देश मध्य में है, विषुवत्-रेखा (भूमध्य रेखा) पर अवस्थित है अपनी वेधशाला (अब्जर्वेटरी) को विकसित-साधन सम्पन्न क सके तो सारे राष्ट्र के समय और काल ज्ञान का अधिका हो सकता है, जो उसकी परम्परा है, अधिकार है। ह देखना चाहते हैं कि महाकविने जिन-जिन स्थानों की या अपने यक्ष-दूत-मेघ के द्वारा की है उन स्थानों पर कालिदा के अमर स्मारक निर्मित हो। कालिदास की कीर्ति अमर र उसका स्मरण हर संस्था शाला में हो, उसकी परीक्षा उसके नाटकों का अभिनय हो। उसके नाम पर भवन-शा नाट्य-रंगमंच स्थापित हों, और एक साहित्य एके मध्य-भारत में निर्मित हो, जहां मध्य-भारतीय-संस्कृ साहित्य का निर्माण होता रहे। इसी तरह वसंतोत्सव पर सरस्वती की नगरी धारा में पारिजात-म नाटिका का विजय स्वरूप अभिनय हुआ था, उसी प्र प्रतिवर्ष धारा नगरी में भोज स्मृति उत्सव मनाया जावे, नय का आयोजन हो। जिस प्रकार यूरोप में शेक्सपीअर लिए बिना भेद भावके सभी राष्ट्र उसकी समाधि पर कर शासकीय सैनिक सम्मान समर्पित करते हैं उसी प्रकार में कालिदास का स्मारक निर्मित कर केन्द्र, और प्रादेशिक प्रतिवर्ष कार्तिक मास में आकर अपना आदर और

—शेष पृष्ठ २१

मालवा में दस दिन

श्री० डॉ० गंगाशङ्कर बल्देवशङ्कर पण्ड्या

(प्रिंसिपल गुजरात-कालेज, डीन, फेकल्टी आफ आर्ट्स, बड़ौदा विश्वविद्यालय)

तारीख ६-२-५३ को ५-४५ बजे शामकी गाड़ी से भोपाल के लिए रवाना हुआ और १०-२-५३ को शाम के ४ बजे भोपाल पहुंचा। रेकार्ड कमीशन का अधिवेशन १० को सुबह ही हो चुका था, शाम को डॉक्टर रमेशचन्द्र मजूमदार का भाषण ही सुन सका, भोपाल में कुछ ठण्ड की आशा थी परन्तु वहाँ की मौसम की असह्य गरमी बहुत अखरी तम्बुओं में रात अच्छी बीती। ११ तारीख को सुबह १०॥ से १२॥ बजे तक संशोधन और प्रकाशन समिति का अधिवेशन हुआ, उस कार्य से निवृत्त होकर दोपहर को यथेष्ट विश्राम किया। शाम को श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई का भारत के नवीन इतिहास पर मननीय भाषण सुना। प्रमुखस्थान भोपाल के प्रधान मन्त्री डाक्टर शङ्करदयाल शर्मा ने सुशोभित किया था।

व्याख्यान के बाद डाक्टर शर्मा से एकाएक मुलाकात हुई और भोपाल के आसपास के दर्शनीय स्थानों के विषय में व्यक्तिगत बातचीत चली। उन्होंने भोपाल से १२-१३ मील दक्षिण में स्थित भोजपुर के मन्दिर जाने की सलाह दी। उनके मतानुसार इतिहास के अभ्यासियों के लिए भोजपुर एक महत्व का स्थान है।

कान्फरेन्सों के बाद ही व्यक्तिगत परिचय और वातावरण का हम लाभ ले पाते हैं, भोपाल के विषय में यही बात हुई। १२ ता. को सुबह सभी सदस्य साँची-भेलसा-उदयगिरीजाने वाले थे। शाम की बात डाक्टर शर्मा को याद रही और उन्होंने भोजपुर जाने का प्रबन्ध भी कर दिया। फलस्वरूप १२ ता. को सुबह साँची की ओर जाने की ठहरी और शाम को भोजपुर जाना निश्चित हुआ।

८ बजे सुबह सभी सदस्य तैयार होकर "बस" में बैठ गए। साँची के रास्ते में रायसीन का प्रसिद्ध किला मिला, किले का महत्व आजके जमाने में कुछ भी न हो परन्तु इसका पुराना इतिहास इसे आज भी महत्व प्रदान करता है। शेरशाह को प्रायः सभी इतिहासकार एक महान शासक मानते हैं, परन्तु पूरनमल के साथ उसका व्यवहार अमानुषिक और नीतिविरुद्ध था ही। शेरशाह को भले ही लोग महान कहें परन्तु क्या रायसीन किले की ईंटें और पत्थर मानव की बर्बरता के साक्षी नहीं हैं?

रायसीन से हम लोग सीधे भेलसा के नजदीक हेलीयोडोरस की लाट देखने गए। डाक्टर मजूमदार ने इस लाट का ऐतिहासिक महत्व समझाया। भागवत (वैष्णव) धर्म का यह पहला ही प्रतीक माना गया है और परदेसी भी हिन्दूधर्म की दीक्षा किस प्रकार लेकर उससे प्रभावित होते थे इस बात का यह एक ज्वलन्त प्रमाण है।

इस लाट से करीब २ मील दूर उदयगिरि की प्रसिद्ध गुफाएँ हैं, हम लोगों ने प्रथम तो वाराह की खुदी हुई प्रतिमा देखी, प्रतिमा आज भी सजी मालूम पड़ती है, फिर चारों ओर ऊपर चढ़ कर सभी स्थान देख डाले। प्राचीनता के साथ चिर नूतन प्राकृतिक सौन्दर्य से भी हम प्रभावित हुए, उदयगिरि के ऊपर से बेतवा के दर्शन एक प्रकार का नेत्र निर्वाण माना जा सकता है।

उदयगिरि देखने के बाद हम लोग साँची के लिए रवाना हुए, साँची के टीले के ऊपर तक आजकल 'बस' जा सकती है, परिणाम स्वरूप हम नवनिर्मित बौद्ध-विहार के सामने ही पहुंचे। नए विहार में कलात्मक भित्ति चित्र दर्शनीय हैं, साथ ही भीतर एक शान्तिमय वातावरण हमें हमारी परम्परागत सांस्कृतिक सौष्ठव की याद दिलाता है। विहार से निकलकर हम सब ने साँची के मुख्य स्तूप के सभी द्वार और दूसरे भग्नावशेष देखे साँची के टीले के ऊपर से चारों ओर का दृश्य मनोरम है। प्रायः पुराने बौद्ध स्तूप और विहार ऐसे ही स्थान पर मिलते हैं और बौद्ध धर्मानुयायियों की व्यावहारिकता के द्योतक हैं।

साँची के टीले के नीचे एक आरामगृह है जिसमें सर जान मार्शल काफी समय तक रहे थे, और उन्होंने वहीं रहकर पुरातत्व का महत्वपूर्ण कार्य भी किया था इस आरामगृह में कुछ

समय ठहर जलपान के पश्चात हम लोग भोपाल के लिए रवाना हुए और १॥ बजे वापिस पहुंचे।

भोपाल से ३ बजे दोपहर हम लोगों ने भोजपुर के लिए प्रस्थान किया। भोपाल से दक्षिण यह स्थान १२-१३ मील है आशा तो यह थी कि भोजपुर की सफर २-३ घण्टे में पूरी हो जायगी, परन्तु रास्ता १० मील के बाद "बस" के अनुकुल न था, परिणामस्वरूप २-३ मील पैदल चलने की बारी आई। रास्ते में धूल, पत्थर, टीले और उतार-चढ़ाव से लोग काफी हैरान हुए, कुछ मित्र तो वापिस लौटने तक की सलाह देते थे, परन्तु दो चार जन आगे निकल ही गए। परिणाम स्वरूप दूसरों को भी उनका अनुगमन करना पड़ा। १-१॥ घण्टे की चलाई के बाद भोजपुर के मन्दिर पहुंचे। मन्दिर दूर से ही भव्य था और उसे देखते ही कालिदास की "क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते". पङ्क्ति याद आई। कहा जाता है कि राजा भोज जिनके नाम पर भोजपाल अर्थात् भोपाल नगर बसा इस मन्दिर के आदि स्थापक थे। यहीं पर बेतवा पर एक बाँध बँधा था जिसकी परिधि २५० मील थी। सुलतान हौशङ्गशाह ने इसे तुड़वाकर "अमरता" प्राप्त की थी।

मन्दिर के अन्दर शिव का करीब आठ फुट ऊँचा लिङ्ग है, इसका बायाँ भाग कुछ खण्डित प्रतीत हुआ। मन्दिर का स्थापत्य अनोखा और नेत्राकर्षक है। इस मन्दिर के पीछे करीब २०० गज दूर जैनों की नग्न मूर्तियाँ हैं इनमें से एक मूर्ति तो २४ फुट के करीब ऊँची है। इस स्थान का महत्व साँची के टीले से कम नहीं, कारण यहाँ हिन्दु और जैन धर्म का सङ्गम है।

भोजपुर से वापिस लौटते समय हमारे "अभिभावकों" को काफी अड़चनें हुई। सब लोगों को किसी प्रकार एकत्रित करके ८ बजे शाम हमारे निवास स्थान पर पहुँचाया गया। अगर भोपाल-सरकार की इतनी मदद न मिली होती तो एक तो भोजपुर पहुँचना मुश्किल था और वहाँ से इतनी जल्दी लौटना तो असम्भव ही था। उत्सवों में जाने वाले प्रायः जनता के सच्चे सम्पर्क में नहीं आ पाते, भिन्न भिन्न प्रान्तों से आए हुए व्यक्ति अपना व्यक्तित्व लेकर आते हैं और अपने व्यक्तित्व का असफल प्रचार भी करते रहते हैं, फलस्वरूप इन उत्सवों से प्रायः मन ऊब जाता है। भोपाल में भी इस प्रकार के प्रसङ्ग आए। जब अँगरेजीदाँ लोगों के विचित्र दृष्टिकोणका बोलबाला रहा। राजनीतिक चर्चा करने क अवसर था ही नहीं; परन्तु तो भी राष्ट्रभाषा, परदेश-नीति, अँग्रेजी का स्थान इत्यादि विषयों पर विचारों का आदान प्रदान होता था। कुछ लोग तो अँग्रेजी राज्य का अस्तित्व मानते हों ऐसे लगते थे, और कुछ लोग अँग्रेजी को "आच न्द्र दिवाकर" रखने में देश का परम कल्याण मानते थे।

भोपाल के कुछ शिक्षित वर्ग से जो सम्पर्क हुआ, उसमें तो यही लगा कि भोपाल अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना रखना चाहता है, अगर भोपाल मध्य-भारत का भाग बने तो राजधानी भोपाल में ही बने, इस बात पर बहुत से लो जोर देते थे। वास्तव में भारत स्वतन्त्र हुआ उसमें कित ही लोगों ने आत्म बलि दी हो; परन्तु आज तो लोग वै क्तिक अहंकार और अपने विशिष्ट भूभाग की प्रतिष्ठा को देशभक्ति का रूप दे बैठे हैं। परिणाम स्वरूप किसी प्रश्न की शुद्ध तार्किक दृष्टिकोण से छान-बीन करना मुश्कि हो गया है।

तारीख १३-२-५३ को सुबह १० बजे उज्जैन पहुँ डॉक्टर शिवमङ्गलसिंह "सुमन" के यहाँ ठहरना ही नहीं पर उनके साथ साथ कुछ समय बिताना था। १२॥ ब दोपहर से लेकर करीब रात के १ बजे तक साथ ही सा उज्जैन में फिरा। सर्व प्रथम पण्डित सूर्यनारायण व्यास से परिचय हुआ। उज्जैन के प्रति उन्हें जो प्रेम है उस आभास मात्र मिलना जीवन का एक अपूर्व अनुभव है उनसे पुरातत्त्व के विषय में थोड़ी बात-चीत हुई और में "महाकाल" के दर्शन किए। रात को बारह बजे शि के तट पर "सुमन" जी, मैं और एक विद्यार्थी-बन्धु "दि बात" का आनन्द लूटते रहे।

उज्जैन का दर्शन मात्र बाह्य नेत्रों से नहीं किया सकता। कितनी ही बार उज्जैन पर से निकला और हर इस "श्री विशाला" पुरी में नवीनता ही मिली। यहाँ धूल, यहाँ के खण्डहर और यहाँ की परम्परा से प्रभा व्यक्ति एक विशेष महत्व रखता है। आश्चर्य तो यही है इस महानगरी में विश्वविद्यालय हो या न हो इस विषय मतभेद है। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि जिस बात में भेद के लिए कोई गुंजाइश नहीं उसमें भी दो पक्ष हो सकते हैं। उज्जैन मध्य-भारत की सांस्कृतिक राज

ही नहीं राजनीतिक रूप में शासन का केन्द्र बनने का भी अधिकारी है; परन्तु इस बात को लोग कहाँ तक आज मानने को तैयार हैं इसकी परीक्षा किए बिना सरकार कैसे कोई निर्णय करे ?

आज कोई भी बात बिना तर्क-वितर्क के हमारे देशवासी स्वीकार करने को तैयार नहीं। हमारे नेता भी "नरो वा कुन्जरो वा" रूपी तटस्थ नीति की पूजा करते हैं। राजधानी का प्रश्न हो और दो शहरों में से एक को पसन्द करना हो तो दोनों पसन्द करते हैं। सही रास्ता तो एक ही होता है। दो नहीं, कभी कभी तीसरा रास्ता जिसके विषय में किसी का ख्याल ही न गया हो ठीक हो सकता है। मध्य-भारत में ग्वालियर और इन्दौर चाहे एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करें; परन्तु मध्य-भारत का कल्याण उज्जैन को ही सांस्कृतिक और हो सके तो राजनीतिक केन्द्र भी बनाने में है, इससे शायद इन्दौर को लाभ ही होगा। यों तो इन्दौर वासी उज्जैन के निकटतम होकर भी इसके आज विरोधी बन रहे हैं।

इन्दौर और ग्वालियर को जो महत्व मिला है वह घटेगा नहीं। आज के जमाने में बने हुए शहर उजड़ते नहीं। कलकत्ता से भारत की राजधानी दिल्ली गई परन्तु इससे कलकत्ता वीरान नहीं हुआ, साथ ही दिल्ली से ज्यादा समृद्धि बम्बई में है। बम्बई प्रान्त की राजधानी पूना करदें तो बम्बई का कुछ बिगड़ने का नहीं; इसी प्रकार इन्दौर और ग्वालियर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखें; परन्तु मध्य-भारत के लिए उज्जैन की पुनः प्राणप्रतिष्ठा होनी जरूरी है। जिस देश को स्वतन्त्र करने में हमारे देश-वासियों ने इतने बलिदान दिए, उनसे यह याचना कि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर अपने प्रान्त और देश के हित का ख्याल करें, यह क्या अत्यधिक माँग है ?

इस प्रश्न पर विचार करते समय मुझे राजस्थान का भी स्मरण हुआ, किसी दिन राजस्थान का केन्द्र अजमेर बनेगा ही। आज जयपुर और उदयपुर में तनातनी हो; परन्तु भविष्य में अजमेर का भौगोलिक महत्व राजस्थान को स्वीकार करना पड़ेगा। यही बात गुजरात में, बड़ौदा, काठियावाड़ में, जूनागढ़ और महाराष्ट्र में, पूना के विषय में कही जा सकती है; परन्तु यह तो विषयान्तर हो रहा है और तर्क-वितर्क भी बहुत लम्बे किये जा सकते हैं।

१४ ता० को सुबह मैं उज्जैन नगरी को छोड़ इन्दौर होता हुआ शाम को तीन बजे महेश्वर पहुँचा। वहाँ पर बम्बई प्रान्त के विश्वविद्यालयों की ओर से ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक उत्खनन चल रहा था, इसमें मुख्य काम पूना विश्वविद्यालय के डॉक्टर साँकलिया कर रहे थे। बम्बई विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थी इस काम में शरीक थे, और दूसरी संस्थाओं और सम्भ्रांत व्यक्तियों ने इसमें मदद की थी।

माहेश्वर बहुत समय से मध्य-भारत की संस्कृति का धाम रहा है। कालिदास की माहिष्मति नगरी डॉक्टर साँकलिया इसी को सिद्ध करते हैं; परन्तु रघुवंश के श्लोक में 'माहिष्मती वप्र नितम्बकाञ्चीम्' रेवा का वर्णन महेश्वर की नर्मदा से मिलता जुलता नहीं। डॉक्टर साँकलिया इसका समाधान रेवा की दाईं ओर मिली हुई सहायक नदी को कालिदास ने रेवा माना होगा, यह कहकर करते हैं। परन्तु कालिदास जैसा समर्थ कवि और प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षक ऐसी भूल करे ऐसा सामान्यतः सम्भव नहीं; परन्तु यह तो हुई अपनी बात !

नर्मदा की बाईं ओर दो स्थानों पर उत्खनन हुआ है, इसमें ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक काल के स्तरों से महत्व पूर्ण अवशेष मिले हैं, पास ही में एक बौद्ध स्तूप के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं, नदी की दाईं ओर अर्थात् महेश्वर के दो कोनों में भी इसी प्रकार की सामग्री प्राप्त हुई है। इन सभी स्थानों का मैंने सूक्ष्म निरीक्षण किया, और परिणाम स्वरूप प्राचीन संस्कृति का धुंधला चित्र मेरे सामने आया, महेश्वर के मन्दिर भी बहुत प्राचीन न हों परन्तु अपना महत्व रखते हैं, उनमें लास्य की भिन्न-भिन्न मुद्राएँ खास देखने की चीजे हैं।

ता. १५-२ को मैं नावड़ा तोली से सहस्र धारा गया इन दिनों यहां के जल-प्रपात चित्ताकर्षक होते हैं, परन्तु रास्ते की धूप ने काफी हैरान किया, स्नान के पश्चात् की ताजगी भी लौटने की धूप ने खत्म करदी। शाम को कुछ तबियत भी अत्यधिक गरमी के कारण बिगड़ी। १६-२ को मैं महेश्वर में ही रहा और वहां के मन्दिरों में फिरा. १७-२ को सुबह महेश्वर से धार की "बस" में बैठा और भाटा के पास उतर गया वहाँ से मांडू ८ मील है।

मांडू देखने की बहुत दिन से इच्छा थी और वह प्रसङ्ग एकाएक उस दिन आया था।

मन में उत्साह तो था ही २॥ बजे दोपहर की कड़ी धूप में माँडव पहुँचा। शर्माजी से क्षणिक परिचय करके एक पथ-प्रदर्शक प्राप्त किया और विश्राम गृह में सामान रखकर घूमने की ठानी।

पथ-प्रदर्शक जंगल के रास्ते नीलकण्ठेश्वर ले गया, वहाँ के दर्शन का लाभ आनन्ददायक था। दर्शन के बाद शीत-जल में स्नान की सूझी। पुजारीजी ने इसका समर्थन किया और मैंने बड़ी निश्चलता से स्नान किया, और इसके पश्चात् पुनः देवदर्शन, मालवा का यह मनोरम और श्रम निवारक था, शायद "शबे मालवा" (मालवा की रात्रि) का सबसे सुखद अनुभव नीलकण्ठेश्वर अथवा रूपमति महल से ही हो सकता है।

नीलकण्ठेश्वर से मैं बाजबहादुर और रूपमती के महल गया। पथ-प्रदर्शक को वहाँ ले जाने में खास दिलचस्पी न थी, उसके मतानुसार वहाँ खास कुछ न था। बाज बहादुर के महल के आस-पास का जंगल और रूपमती के नीचे निमाड़ के सपाट मैदान उसके कौतूहल को न जगाते हों यह मुझे तो नया लगा। माँडव जाने वाले एक रात रूपमती और एक रात नीलकण्ठेश्वर में जरूर बिताएँ तभी माँडव और मालवा का आनन्द वे ले सकते हैं।

परन्तु वह आनन्द मेरे भाग्य में न था, तो भी उस आनन्द की झलक जहाजमहल और हिंडोलामहल के पास विश्रामगृह में मुझे मिल गई। रात को खुले में छत पर सोया रात भर ठण्डी और निरभ्र निर्मल आकाश का आनन्द लिया। सुबह विश्रामगृह के पास के ऐतिहासिक अवशेष देख डाले। इसमें जहाजमहल, हिंडोलामहल, चम्पा-बावड़ी, मसज़िद इत्यादि मुख्य थे।

माँडव देखने के लिए अनुकूल ऋतु बरसात का अंतिम भाग है। शरद ऋतु में भी इसका आनन्द मिल सकता है; वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में भी दूसरे स्थानों से माँडव कम गरम है।

१८ ता० की सुबह माँडव छोड़ते वक्त मालव-भूमि को प्रणाम किया और धार, मेघनगर होता हुआ १० बजे रात बड़ौदा पहुँचा। आज भी जब मालव-भूमि का स्मरण होता है तब लगता है, मानों हृदय वहीं पर है।

(पृष्ठ १८ का शेष)

अर्पित करे। मध्य भारत में विदिशा अवंती दशपुर कालिदास के प्रिय और ऐतिहासिक महत्व के नगर हैं। जहाँ ज्ञान-विज्ञान की सरिता पुनः प्रवाहित होने लगे। धार की भोजशाला फिर सरस्वती का साधना स्थल बने। सांदीपन का आश्रम फिर जाग्रत हो, धन्वन्तरी की भूमि महिदपुर पुनः आयुर्वेद विज्ञान का केन्द्र बने, कायथा (कापित्थक) एक बार फिर महान् ज्योतिर्विज्ञान की जाग्रति में सहायक बने। अवन्ती में एक केन्द्रीय संग्रहालय (म्यूजियम्) स्थापित हो, जहाँ मध्यभारत के अतीत के उज्वल उपलब्ध साधनों का विशाल संग्रह रहे। जहाँ अन्वेषण और अनुसंधान का कार्य होता रहे। जिस मध्य भारत में भारत का सर्व प्रथम कौमुदी महोत्सव हुआ हो, शकुन्तला जैसी विश्वख्याति की नाट्य रचना हुई हो, वहां एक भी उत्कृष्ट-रंग-मंच का न होना खटकने की बात है जिस प्रदेश की प्रदत्त अवंती-रीति ने नाटकों को नया जन्म, नव-प्राण प्रेरणा की थी, आज उसके प्रयोग के लिए कोई स्थान अवकाश न हो। यह वास्तव में विषाद का विषय है। इसी तरह मालव-राग को राग क्षेत्र में देन-देने वाले प्रदेश को संगीत का केन्द्र बन जाना चाहिये। तानसेन, बैजूबावरा, रूपमति के मध्य भारत में संगीत-नृत्य-नाटक में तो देश को प्रेरित करने का सामर्थ्य होना चाहिये। हम कह चुके हैं कि मध्य भारत पुराकाल से कला साहित्य संस्कृति का संगम स्थल रहा है, उसका अतीत परम उज्वल रहा है, और सभी जनता एवं शासन संयुक्त प्रयास आरंभ करे तो भविष्य भी पुनः विकसित प्रकाशमय एवं उज्वल होसकता है। किसी भी शासन या समाज की कसौटी उसके साहित्य और सांस्कृतिक विकास से ही की जासकती है। जब तक हम इस विकास से उदासीन रहें हमारा शासन हमारी प्रगति कितनी ही क्यों न हो, हमारी उच्चता की प्रतीक नहीं बन सकती। मध्य--भारत के अने नगर-ग्राम इतिहास और संस्कृति के आधार हैं हमें उनके पुनरुद्धार और विकास द्वारा अपने प्रदेश उसकी परम्परा के अनुरूप बनाने का यत्न करना होगा। मध्य भारत देश का ही हृदय स्थल नहीं है, राष्ट्र की संस्कृ सभ्यता, और साहित्य का भी केन्द्र रहा है, इसका हमें गौ होना चाहिये, और उस गौरव को लक्ष्य में रख कर ही विकास करना होगा।

निरर्थक बात

श्री० रवीन्द्रनाथ टागोर

दूसरे खर्चों की अपेक्षा निरर्थक खर्च से ही मानव को ठीक तरह पहचाना जा सकता है, क्योंकि मानव नियत नियमानुसार ही व्यय करता है, और अपव्यय स्वेच्छा से करता है।

जिस तरह निरर्थक व्यय का हाल है, वैसे ही निरर्थक बात का हाल। निरर्थक बातों में ही मानव अपने आपको सही प्रकट करता है। उपदेशों की बात जिस मार्ग से चला करती है, वह मार्ग तो मनु के समय से ही पुख्ता बँधा आया है काम की बातें जिस रास्ते पर होकर अपनी बैलगाड़ी हाँक कर ले जाती है, वह रास्ता श्रमशील लोगों के पैर पड़ते रहने के कारण तृण-पुष्प विहीन हो चुका है, और निरर्थक बात अपनी मनमानी रीति से ही कहनी पड़ती है।

इसलिए चाणक्य के व्यक्ति-विशेष में बिलकुल चुप रहने के कठोर-विधान में थोड़ा परिवर्तन किया जा सकता है। मेरे मत से चाणक्य कथित सज्जन जहाँ तक ऊँची-ऊँची बातें करें बीत जाने वाले काल द्वारा परीक्षित-सर्वजन-विदित सत्य की घोषणा में प्रवृत्त रहें, वहीं तक ही शोभित होते हैं; परन्तु सीधी-सादी बात जब ये अपनी भाषा में कहने लगे कि वहाँ आफत ही खड़ी हुई जानिए।

जो लोग कोई बात कहना न हो तो कुछ बोल ही न सके, जो लोग बोले तो बस वेद वाक्य ही, नहीं तो चुप ही उनकी कौटुम्बिकता, उनका साहचर्य, उनका पड़ौस, हे विधाता, 'शिरसिमालिख, मालिख, मालिख, !

धरती पर सभी वस्तुएँ प्रकाशमान् नहीं होती, कोयला जब तक आग न हो तो सुलग ही न सके, स्फटिक बिना कारण ही चमका करता है। कोयले से बड़े-बड़े कारखाने चलते हैं। स्फटिक की माला बनाकर प्रिय जनों के कण्ठ में पहनाई जाती है, कोयला आवश्यक है; और स्फटिक मूल्यवान !

प्रत्येक दुर्लभ-मानव इस स्फटिक की तरह बिना कारण चमकता रहता है। वह सहज ही अपने को प्रकट कर सकता है। उसे कोई खास उपलब्ध की आवश्यकता नहीं रहती, उससे कोई खास प्रयोजन साधने की गरज किसी को नहीं रहती, वह अनायास स्वयं ही देदीप्यमान बना रहता है, और उसे देखने से ही आनन्द मिलता है। मानव प्रकाश को इतना चाहे तो सही, आलोक उसे इतना प्रिय तो हो कि आवश्यक का विसर्जन करके, पेट के लिए प्राप्त अन्न को उपेक्षित कर, यह उज्वलता के लिए लालायित हो उठे। मानव के इस गुण को देखते हुए इसमें सन्देह नहीं कि वह उन उड़ने वाले पतिंगों से अवश्य श्रेष्ठ है। चमकती आँखें देखकर जो जाति अकारण प्राण उत्सर्ग कर सके, उसका इससे अधिक परिचय देने की शायद ही आवश्यकता रहेगी।

पर सभी पतिंगों के पंख लगा कर तो पैदा नहीं होते, प्रकाश का मोह सभी को नहीं होता, बहुत से बुद्धिमान् होते हैं, विवेचकी होते हैं, गुफा देखकर के उस पर से कूदने का प्रयास तो करते हैं, पर प्रकाश देखकर उसके ऊपर उड़ने का निरर्थक उद्यम भी नहीं कर पाते। काव्य देखकर ये लोग प्रश्न पूछा करते हैं —इससे लाभ हो ऐसी इसमें कौनसी वस्तु है ? वार्ता सुनकर उसकी तुलना अठारह पुराणों के साथ करने, उसके सम्बन्ध में गहरी गवेषणा करने, विशुद्ध धर्म के आधार पर उसकी आलोचना करने, अथवा उसकी वाह-वाह करने तय्यार हो जाते हैं, पर जो अकारण हो जो अनावश्यक हो, वह इनके लिए किसी लाभ का नहीं।

जो प्रकाश के उपासक हैं वे इस सम्प्रदाय में अनुराग नहीं रखते। वे इन के जो नाम रखा करते हैं, मेरे मत में अनुमोदन नहीं कर सकता, वररुचि ने इन्हें अरसिक कहा है, मेरे मत में ये लोग रुचि गर्हित हैं, मेरी इन लोगों के विषय में मान्यता है, वह मैं मन में ही रखूँगा। पर पुराने समय के लोग जरा संयम रखकर नहीं बोलते थे। उसका एक उदाहरण संस्कृत श्लोक में मिलता है, उसमें बतलाया है-सिंह के नख से निकला हुआ गज मुक्ता वन में पड़ा था, किसी भीलनी ने उसे दूर से देखा और दौड़ कर उठा लिया, उसने हाथ में लेकर खूब घुमा फिरा कर देखा पर वह उसे पके हुए बेर की तरह नहीं लगा; क्योंकि वह तो मोती ही था,

उसने वह फिर फेंक दिया ! इससे यह स्पष्ट है कि जो लोग वस्तु को उपयोगिता की दृष्टि से देख कर उसका मूल्य तय करते हैं । मात्र सौंदर्य, और उज्वलता का विकास जिन्हें लेश भर विचलित नहीं कर सकता । ऐसे लोगों की कवि ने भीलनी के साथ तुलना की है । मेरे मतानुसार तो कवि इस विषय पर चुप रहे होते तो उत्तम होता, क्योंकि कवि क्षमताशाली होते हैं । विशेषतः न्याय करने का भार बहुत कुछ उनके सिर पर ही होता है । ये गुरु का काम करते हैं, जो सरस्वती के काव्य-कमल वन में वास करते हैं, वे तटवर्ती वेत्र-वन वासियों को उद्वेलित न करे मेरी यही विनय है । सच्चे अर्थों में जिसे निरर्थक कहा जासके वैसी साहित्यिक-रचनाएँ कोई विशेष बात कहने की धृष्टता नहीं करती, संस्कृत-साहित्य में मेघदूत इसका उज्वल-उदाहरण है, यह धर्म की कथा नहीं है, कर्म की कथा नहीं है । पुराण नहीं, इतिहास नहीं, जिस अवस्था का यह प्रलाप है । इसको बेर का फल मान कर पेट भरने की आशा से उठा लेने वाला दूसरे ही क्षण इसे फेंक देगा । इसमें उपयोगिता की बात ही नहीं है, यह तो घड़ा हुआ मोती है, जिसपर विरही के विदीर्ण हृदय के रक्त चिन्ह सहज लगे हुए हैं यदि इन रक्त चिन्हों को पोंछ भी दिये जायें तो इसका मूल्य कम नहीं होने वाला हैं ।

इसका दूसरा कोई उद्देश्य ही नहीं है इसीलिये यह काव्य इतना स्वच्छ, इतना उज्वल है । यह एक माया नौका है, कल्पना की हवा के छूते ही इसके सजल मेघ के बने हुए पुट फूल उठते हैं, और एक विरही हृदय की कामना को बहा कर अविरल वेग के साथ एक निरतिशय-सुन्दर-निरुद्देश्य की ओर चल पड़ते हैं, दूसरा कोई बोझ इनपर लदा हुआ नहीं रहता ।

टेनिसन ने जिस 'अकारण अश्रुविन्दु' की बात कही है, उसी तरह के अश्रुजल का काव्य है । यह बात सुन कर शायद बहुत से लोग मेरे साथ जबाँ दराँजी (वाद-विवाद) करने तय्यार होजायेंगे । बहुत से कहने लगेगें—यक्ष तो प्रभु के शाप से उसकी प्रेयसी से विलग हुआ है, तो फिर मेघदूत की अश्रुधारा को अकारण कैसे कह सकते हो, करने की मेरी इच्छा नहीं है, ऐसी सब बातों का मुझे उत्तर नहीं देना है । पर मैं जोर देकर कह सकता यह यक्ष के निर्वासन आदि की सारी घटनाएँ कालिदास कल्पना है । काव्य-रचना का यह निमित्त मात्र है । नींव बाँध कर कालिदास ने यह भवन निर्माण किया आज हम यह नींव को हटा सकते हैं । मूल बात तो

'रम्याणि वीक्ष्य मधुराणि निशम्य शब्दान्!'

मन अकारण विरह—व्यथित हो उठता है, दूसरी कालिदास ने यह स्वीकार किया है । आषाढ़ के सहसा घनघोर बादलों की घटा देख कर अपने मन में की बहार का विरह जाग उठता है । मेघदूत इस विरह निर्मूल प्रलाप ही है । यदि यह न होता तो वह मेघ को छोड़ बिजली को दूती बनाकर भेजता, और पूर्व-मेघ जगह-जगह घूमता-फिरता, उठता-बैठता, वन को प्रमुदित बनाता, जनपद-वधु की उठी हुई कृष्ण-कटाक्ष पात का आनन्द लूटता, जाता नहीं ।

काव्य पढ़ने के समय जो इस आवक-जावक का खाता खुला रखना पड़ता हो, और क्या मिला, का रोकड़-हिसाब चुका देना हो, तो भी मैं यह स्वीकार कि मेघदूत में से मैं एक तथ्य पाकर विस्मय से उठा हूँ । वह तथ्य यह कि उस समय भी मानव था । उस समय भी आषाढ़ का प्रथम-दिवस नियमानुसार रहता था ।

परन्तु असहिष्णु-वररुचि ने जिनके लिए षणों का प्रयोग किया है, क्या वे इस तरह के 'लाभ' मानेगें ? क्या इससे ज्ञान का विस्तार हो देश की उन्नति होगी ? चरित्र की शुद्धता होगी ? अकारण है जो अनावश्यक है, उनका 'रस' है विधाता, रसिकों के लिये ही भले ढंका रहें, जो आवश्यक, हो, उनकी घोषणा कभी न रुकी रहे । उनके कभी कमी न पड़े ।

पत्रकार आगरकर

श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

जिस प्रकार नर्मदा नदी मध्यप्रदेश और मध्यभारत की सीमाओं को अनेक स्थलों पर मिलाती है, उसी प्रकार स्वर्गीय सिद्धनाथ माधव आगरकर मध्यप्रदेश और मध्यभारत की सीमा पर स्थित खंडवा नगर में रह कर दोनों प्रान्तों को स्नेह के सूत्र में पिरोते थे। उनका पत्र "हिन्दी स्वराज्य" राष्ट्रीय जागरण का सजग प्रहरी था। दोनों प्रान्तों की जनता उसे आदर और सम्मान की दृष्टि से देखती थी। आगरकर जी का जन्म आजकल के मध्यभारत और उस समय के ग्वालियर राज्य के आगर नाम के स्थान में हुआ था। यह छोटासा स्थान अपने दृश्यों की रमणीयता के कारण विशेष महत्व रखता है। किसी समय यहां पर बहुत बड़ी छावनी थी, जिसके भग्नावशेष आज भी इधर उधर दिखलाई पड़ते हैं। मध्यभारत स्वर्गीय गणेशशंकर 'विद्यार्थी' जैसे निर्भीक और कर्तव्य-परायण पत्रकार को अपना कहने का अभिमान तो रखता ही है, आगरकरजी ने भी उसके गौरववृद्धि में सहायता दी। आप भी स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी की भांति अपनी निर्भीकता और कर्तव्यपरायणता के लिए पत्रकार जगत में विशेष स्थान रखते थे।

अच्छे नागरिक में चातुर्य या बुद्धि, आत्मनियन्त्रण और चेतना होना आवश्यक है। पत्रकार के जीवन में तो यदि इन गुणों का समावेश नहीं होता तो वह समाज का नेतृत्व नहीं कर सकता। उसके लिए आत्मनियन्त्रण का अर्थ अपने कर्तव्य एवं पेशे के प्रति ईमानदार रहना है, जो सरल बात नहीं, कारण, अनेक लोग पत्रकारिता के क्षेत्र में कीर्ति या अर्थ-लोलुपता के वशीभूत हो कर प्रवेश करते हैं। सेवा-भावना से प्रवेश करनेवालों की संख्या बहुत कम रहती है। सेवा-भावना और ईमानदारी से काम करनेवालों के लिए हिन्दी की पत्रकारिता एक प्रकार से मरुस्थल भी है। इस मरुस्थल की मृगतृष्णा कभी कभी तो पत्रकार के जीवन को निराशा की घनघोर घटाओं से आच्छादित कर देती है। परिणामतः वह या तो इस क्षेत्र से विलग हो जाता है या असफल होता है।

उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबादी ने लिखा है:

जिन्दगी इन्शां की है
मानिन्दे मुर्गे खुशनवा।
साख पर बैठा कोई दम
चहचहाया उड़ गया॥

यही बात आगरकर जी के सम्बन्ध में कही जा सकती है। आपका जन्म आषाढ़ कृष्ण ६ शनिवार संवत् १९४८ को तांत्या माधवराव लौंढ़े के यहां हुआ था। आपकी माता का नाम पार्वती बाई लोंढ़े था। पहले आपके खानदान के लोग इन्दोर के निकट सावेर स्थान में रहते थे, परन्तु बाद में जीविकावश आगर आ गये। आगर के प्रति विशेष प्रेम होने के कारण ही श्री सिद्धनाथ ने अपने नाम के साथ लौंढ़े के बजाय आगरकर लिखना आरम्भ किया। आगरकर जी की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ में आगर में ही हुई और बाल्यकाल से ही उन्होंने अपनी जन्मभूमि के निवासियों का अनुराग प्राप्त कर लिया था।

सन् १९०८ में मराठी शिक्षा प्राप्त कर आपने अध्यापन क्षेत्र में प्रवेश किया, और अपने परिश्रम तथा अध्ययन के बल पर जीविकोपार्जन करते हुए बी. ए. तक की परीक्षा उत्तीर्ण की। लिखने-पढ़ने का शौक तो आपको प्रारम्भ से ही था। अतएव अध्यापन-कार्य करते हुए भी मराठी पत्रों में लिखना आरम्भ कर दिया। बाद में हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए और जीवन भर हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता की सेवा में संलग्न रहे। सरल और सुन्दर हिन्दी लिखना आपकी विशेषता थी। सन् १९१३ में आपकी एक छोटी-सी परन्तु उपयोगी पुस्तक पाठशाला के विद्यार्थी और उनका स्वास्थ्य प्रकाश में आई। इस बीच आपने हिन्दी पत्रों में लिखना भी प्रारम्भ कर दिया था। अध्यापक के नाते आपने ग्वालियर राज्य के शिक्षा-विभाग में एक सम्माननीय स्थान बना लिया जिससे धीरे-धीरे प्रधानाध्यापक के पद पर पहुँच गये।

अध्यापक विद्यार्थियों को शिक्षा देता है तो पत्रकार जनता को। दोनों का कार्य बहुत कुछ एकसा है और जिम्मेदारियां भी एकसी हैं। अपनी शक्ति और अपने पद का दुरुपयोग कर दोनों ही राष्ट्र को अधोगति की ओर ले जा सकते हैं। अध्यापक आगरकर के भाग्य में तो जनता का शिक्षक बनना बदा था। अतएव सन् १९१९ में आप श्री माधवराव सप्रे की प्रेरणा से पत्रकार-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उस समय मध्यप्रदेश में जबलपुर साहित्य का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज, स्वर्गीय श्री माधवराव सप्रे, स्व० श्री विष्णुदत्त शुक्ल और स्व० दीवान बहादुर बल्लभदास आदि के सहयोग से जबलपुर से 'कर्मवीर' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और इसमें आगरकरजी भी सम्मिलित हुए। वैसे तो ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा माधवराव सिन्धिया आपको राज्य के साप्ताहिक पत्र "जयाजी-प्रताप" जिसका नाम आजकल "मध्य-भारत संदेश" हो गया है-में लेना चाहते थे, परन्तु आगरकरजी के सामने पत्रकारिता एक आदर्श था। इससे हटकर वे किसी पद को कैसे स्वीकार करते? आपने महाराज के सामने यह शर्त रखी कि वे इस पद को तभी स्वीकार कर सकते हैं जब उन्हें राज्य में निरंकुश अधिकारियों की निर्भीक किन्तु शिष्टतापूर्ण आलोचना करने का पूर्ण अधिकार दिया जाय। "कर्मवीर" के अतिरिक्त आपने नागपुर से प्रकाशित "प्रणवीर" पत्र में भी संपादन कार्य किया और बाद में स्वयं अपना पत्र "हिन्दी स्वराज्य" खंडवा से निकाला।

"कर्मवीर" के राष्ट्रीय पत्र होने के कारण आपको अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करने की पूर्ण सुविधा थी। और ऐसा क्यों न होता जबकि उस पर स्वर्गीय माधवराव सप्रे और स्वर्गीय विष्णुदत्त शुक्ल जैसे राष्ट्रभक्त लोगों का वरद हस्त था। यहीं पर आपको श्री माखनलालजी चतुर्वेदी का भी सहयोग प्राप्त हुआ, जिससे आपकी प्रतिभा चमकने में देर नहीं लगी। आगरकरजी कर्मवीर के सम्पादकीय विभाग में काम करने के साथ-साथ व्यवस्था में संचालकों का हाथ बटाते थे। यही कारण था कि आप उन सम्पादकों में नहीं थे जो पत्र की आर्थिक एवं व्यावहारिक कठिनाइयों से अनभिज्ञ रहते हैं।

पत्रकार का प्रधान कर्तव्य अपने विचारों के प्रति ईमानदार रहना है। महात्मा गांधी ने "लोगों की लगन जानना और इसे प्रकट करना" पत्रकार का प्रमुख कर्तव्य बतलाया था। पत्रकार यह कार्य तभी कर सकता है जब वह अपने विचारों के प्रति ईमानदार हो और स्वयं अपने व्यक्तित्व पर विश्वास रखता है। इसके लिए पत्रकार को त्यागमय जीवन बिताना पड़ता है, कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी और स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी हिन्दी में इसी कोटि के पत्रकार थे। उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया और वैभव एवं विलास से कोसों दूर रहे। उनकी इस ईमानदारी का ही नतीजा यह हुआ कि एक ने साहित्य-जगत में और दूसरे ने जनता के हृदय में आदरणीय स्थान प्राप्त किया।

साहित्य जनता के जीवन और जागरण का प्रतिबिम्ब होता है, और समाज का पथप्रदर्शक भी। हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार मुन्शी प्रेमचन्द का कहना है कि जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाप डालते हैं। रवीन्द्रनाथ ने इतिहास के सत्य को विशेष और साहित्य के सत्य को नित्य माना है। पत्रकार के लिए सत्य के इन दोनों स्वरूपों को लेकर चलना आवश्यक होता है और साहित्य का नित्य सत्य उसके जीवन की दीवारों में नहीं, जनता के जागरण में निहित रहता है। इस सत्यानुसरण के कारण ही पत्रकारिता अन्य पेशों से भिन्न एक कला है, जिसमें समाज के जीवन और राष्ट्र के वैभव का सौन्दर्य शत-शत धाराओं में विकीर्ण होकर शिव की आराधना करता है।

आगरकरजी पत्रकार को जनता का वकील मानते थे। इन्दौर में जो सर्वप्रथम मध्य-भारत पत्रकार सम्मेलन हुआ उसके अध्यक्ष श्री आगरकर और उद्घाटनकर्ता 'अखिल भारतीय-समाचार-पत्र-सम्पादक-सम्मेलन' के तत्कालीन अध्यक्ष सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी थे। श्री आगरकर जी ने अपने भाषण में कहा था कि 'अखबार नवीसी और हु[illegible] मतों का शरीर और जीव जैसा ताल्लुक है। बिना जीव के शरीर बेकार है, तो केवल जीव और शरीर का ढांचा न भी बेकार है। दोनों जब तक एक दूसरे के सहयोग से सहकार्य में प्रवृत्त नहीं होते तब तक जिन्दगी पैदा नहीं होती

इसलिए हम यह मानते हैं कि राष्ट्र के नव-निर्माण में पत्रकारों का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। खेद यह है कि अभी पत्रकारिता या अखबारनवीसी का स्वर्णप्रभात निकट नजर नहीं आता। किसी देश में पत्रकारिता या पत्रों की उन्नति उस देश की शिक्षित जनता पर निर्भर होती है। भारत में भी शिक्षा-प्रसार के साथ-साथ पत्रकारिता और पत्रों का क्षेत्र व्यापक बनेगा। हाँ, आज उस पर वे बन्धन नहीं जो विदेशी हुकूमत के समय में थे। उस समय तो पत्रकार की गर्दन हमेशा खड्ग की धार के नीचे रहती थी।

रोम्यां रोला ने लिखा कि "प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनापन न खोवे, भले ही इसके लिए बड़े से बड़ा आत्मत्याग करना पड़े"। आगरकरजी ने अपने जीवन में अपनेपन को कभी नहीं खोया। खोने की बात तो दूर उसे क्षण भर के लिये भी विलग नहीं होने दिया। पत्रकारिता के क्षेत्र में और राजनीति के क्षेत्र में उनका अपना व्यक्तित्व था जिसे उन्होंने सजगता के साथ निभाया। मित्रों के बीच में वे अपनापन स्नेह-रश्मियों सा बिखेरते थे तो राष्ट्र के कदमों में साधना और त्याग की विभूति के रूप में, पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका अपनापन जीवन की गहराई और कर्तव्य-निष्ठा की कठोरता को लेकर चलता था।

आगरकरजी जनता और जीवन के संघर्षों में घबरानेवाले व्यक्ति नहीं थे। फारसी और उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर इक़बाल ने अपनी फारसी की एक कविता में लिखा है कि अगर तुम्हें जीवन के रहस्य की खोज करना हो, तो वह तुम्हें संघर्ष के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलेगा। सागर में जाकर विश्राम करना नदी के लिये लज्जा की बात है। आनन्द की 'उपलब्धि में नहीं, फूलों की टहनियों और नदी के तट पर होती है। आगरकरजी ने कभी विश्राम... कभी विश्राम से प्रेम नहीं किया। मरते दम तक एक सिपाही और ईमानदार पत्रकार की भांति रहे। कठिनाईयों का सामना हंसते-मुस्कराते करते थे। मिर्जा गालिब के शब्दों में "दिल में हजार गम हों, जबां पर शिकन न हो" वाले व्यक्ति थे।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण आपको दो बार जेल जाना पडा। प्रथम बार सन् १९३० में डोंगरगांव-जंगल-सत्याग्रह के कारण और दूसरी बार सन् १९३२ के आन्दोलन में। जेल से आप बीमारी साथ लेकर लौटे और उसने मृत्यु तक आपका साथ दिया। आपके हिन्दी स्वराज्य-पत्र से उस समय की ब्रिटिश हुकूमत तो कांपती थीही मध्यभारत के देशी राज्यों का शासक वर्ग भी भयभीत रहता था। होल्कर स्टेट ने तो 'स्वराज्य' के प्रवेश पर पाबन्दी भी लगाई थी। आपके भाषणों से भयभीत होकर इस राज्य ने सभा बन्दी कानून की सृष्टि की थी। फैजपुर कांग्रेस के समय साप्ताहिक "स्वराज्य" का दैनिक संस्करण भी प्रकाशित हुआ जिसने मध्यप्रदेश तथा मध्यभारत में सनसनी पैदा करदी। होल्कर राज्य ने इस पत्र पर प्रतिबन्ध लगाया परन्तु प्रतिबन्ध लगते ही दैनिक स्वराज्य "दैनिक विक्रम" बनकर होल्कर स्टेट में आने लगा।

आगरकरजी की सफलता का श्रेय उनकी अध्ययनशीलता, निस्पृहता और परिश्रमी मनोवृत्ति को दिया जा सकता है। मनुष्य को परखने की उनमें दिव्य शक्ति थी। गीता के वे अनन्य भक्त थे। लोकमान्य तिलक का उन पर जबरजस्त प्रभाव था। अतएव प्रत्येक कार्य में "मा फलेषु कदाचन" की भावना से रत होते थे। आपका कहना था कि "मैं तिलक मत का अनुयायी था और अब भी कुछ कुछ हूँ, परन्तु गाँधीजी ने मेरे मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया है।" जबरदस्ती सम्मान और प्रतिष्ठा की अंजलियां बटोरना आगरकरजी के स्वभाव के प्रतिकूल था।

आपने हिन्दी में कई स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी। मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ० भास्करराव गणपुले के ग्रंथ "मानसोपचार शास्त्रऔर पद्धति" का आपने हिन्दी में सुन्दर अनुवाद किया जिसकी प्रशंसा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तक ने की। "कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास" श्री तिलक चरित्र तथा "घर के बाहर" नाटक आदि आपकी मौलिक एवं अनूदित पुस्तकें हैं।

पत्रकार होने के नाते आपका दृष्टिकोण व्यापक था और यही कारण है कि आप में साहित्यिक अभिरुचि भी कम नहीं थी। साहित्यिक और पत्रकारिता की भाषा में भी अंतर था। साहित्य में आपकी भाषा कहीं-कहीं पर बाणभट्ट की भाषा की छटा दिखलाती है। उज्जयिनी का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं "अनेक शोधों और प्रासादों से प्रस्फुटित होने वाले दिव्य सौंदर्य कालिदास की रसवन्ती को स्फूर्ति प्रदान करने

वाली उज्जयिनी आज अपने पुराने खण्डहरों के बीच विद्यमान है।" उज्जयिनी का यह वर्णन कालिदास के "रघुवंश" में वर्णित अयोध्या के अन्तिम दिनों की याद दिलाता है।

हास्य और विनोद आप निरंजन नाम से लिखते थे। जमूरे पर लिखी गई आपकी इस कविता में कितना तीखा व्यंग है :—

जमूरे मेरी है क्या बात!
नचा रहा जग को उंगली पर सब मुझसे हैं मात।
मैं चमका सकता तारों को दिन में कह कर रात।
और रात को उगा दिखा दूं सूरज, बना प्रभात।
मूरख को पण्डित कर दूं मैं पण्डत मूरख जात।

आपने कई कहानियाँ भी लिखीं जिनमें देश की परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण मिलता है। "हिन्दू धर्म की ठेकेदारी" आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जाती है। इस कहानी में पड़ौसियों के मानसिक ईर्ष्या द्वेष का सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। आपकी कहानियों में यथार्थवाद और आदर्शवाद हाथ मिला कर साथ चलते हैं। सुप्रसिद्ध फ्रान्सीसी उपन्यासकार जोला ने "कल्पना का निषेध" और "आदर्श का बहिष्कार" यथार्थवाद माना है। आगरकरजी का यथार्थवाद कल्पना का निषेध तो नहीं करता परन्तु उसमें यथार्थ का जो चित्रण है वह मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्थित हैं। यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ का समावेश कुछ लोग कला का लक्ष्य मानते हैं। परन्तु यह स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है जब कलाकार सार्वजनीन भावनाओं को लेकर अग्रसर हो। उसका दृष्टिकोण व्यक्तिगत राग द्वेष से परे रहते हुए भी वह समाज की प्रवृत्तियों से अपरिचित न रहे। कला की भ्रान्ति जीवन की भ्रान्ति बन कर कलाकार को ऊँचा नहीं उठा सकती। इस प्रकार की भ्रान्ति का पोषण करनेवाला विश्व से जय का अधिकारी भी नहीं हो सकता।

"६५ साल पहले," "मिडिल फैल", "मास्टर साहब" आदि आपकी प्रकाशित कहानियाँ हैं। इन कहानियों के पात्र समाज के सजीव व्यक्ति हैं। अधिकतर पात्र खेतिहार या मजदूर होने के कारण कहानियों का विकास सामान्य परिस्थितियों से होकर आदर्श की ओर झुका है।

सजगता भी आगरकरजी की विशेषता थी। खाने-पीने से लेकर लिखने-पढ़ने तक प्रत्येक बात में आप सदा सजग रहते थे। यही कारण था कि आपका घर क्रान्तिकारियों का अड्डा रहते हुए भी पुलिस कुछ नहीं कर पाती थी। पत्र में जो कुछ लिख देते थे वह पत्थर की लकीर हो जाता था और विरोधी : प्रतिपक्षी : को जवाब देना मुश्किल हो जाता था। एक बार आप ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा सिन्धिया से भिड़ गए। महाराजा स्वयं अच्छे लेखक और कुशल राजनीतिज्ञ थे। लेकिन अन्त में उन्हें आगरकरजी की लेखनी के सामने अपनी लेखनी को नतमस्तक करना पड़ा।

सन १९२१ में महाराजा माधवराव इंग्लैण्ड गये थे। वहाँ सम्राट जार्ज पञ्चम के राज्यारोहण के समय बर्मिंघम में शानदार पोलो के खेल का आयोजन किया गया। महाराज को जो घोड़ा मिला था वह अत्यन्त उद्दण्ड और उच्छृंखल था। लेकिन अपने कौशल से महाराज ने उस पर काबू लिया। आगरकरजी ने महाराज को मराठी भाषा में ए कविता भेजी थी।

प्रकृति, ची सुगंध विधिवा, माझे न काहीं असे।
केवल पुष्प वाहक प्रभु प्रेमासि वांछित असे।

आपकी गुण ग्राहकता विरोधियों को भी आपके प्रति प्रे करने को बाध्य करती थी, आपकी आलोचनाएँ सुनने के भी, तत्कालीन अनेक देशी राज्यों के अधिकारी जटिल जटिल विषयों पर आपसे परामर्श लेने को उत्सुक रहते और शत्रु हो या मित्र हरेक को आपका ठीक परामर्श होता था।

हिन्दी पत्रकारिता का वाह्य कलेवर भले दीन-हीन परन्तु उसकी आत्मा सदा बलवती रही है। राष्ट्रीय आन्दो के समय हिन्दी पत्रकारों ने अपना कर्तव्य ईमानदारी के निभाया और उसमें आगरकरजी की देन साधारण नहीं अपनी कार्य-भूमि मध्यप्रदेश में राष्ट्रीय आन्दोलन के सम सदा प्रथम पंक्ति में दिखलाई दिए। इस कर्तव्य निष्ठा ने आपके स्वास्थ्य को बेहद धक्का पहुँचाया, और २३ अग १९४५ को प्रातःकाल आपका असामयिक स्वर्गवास हो ग आपके स्वर्गारोहण से दो प्रान्तों की बेहद हानि हुई। स्व भारत में आगरकरजी जैसे कर्मनिष्ठ और नीतिनिष्ठ की अत्यन्त आवश्यकता थी; परन्तु विधि को यह म न था।

प्रेम, स्वाभिमान और अहंकार

श्री भैयालाल वर्मा

प्रेम अहंकार की कठपुतली नहीं। प्रेम विशुद्ध सत्य को फैलाने वाला प्रकाश है। अहंकार अंधकार की शक्ति है। कुंठित ज्ञान की अभिव्यक्ति अहंकार का सहारा लेकर समाज के सीने पर अपनी छाप लगाना चाहती है। पर अहंकार, जो भिखारी है मान का, दंभी है शक्ति का, इच्छुक है प्रभाव का, बौखला उठता है, जब प्रेम गहन शान्ति का वातावरण उत्पन्न करता है। अहंकार ऊँची उड़ान भरना चाहता है पर प्रेम धरती पर आत्मा को टिकाना चाहता है। अहंकार की अमर्यादित वासनाएं क्षण क्षण रूप बदलती रहती हैं। और असंतोष की मंत्रणा पाकर चंचलता में भ्रमण करवाती रहती हैं मन को। वहाँ कुछ स्थायी टिकाऊ जैसा धरातल आत्मा को नहीं मिल पाता कि जिसके सहारे आत्मा अपने प्रकाश के पुंज को विस्तृत कर सके।

क्या अहंकार स्वाभिमान का सहयोगी नहीं? स्वाभिमान आत्मा के स्वत्व को मर्यादित करने वाला भाव है। वह व्यक्ति और समाज के बीच का संधि पत्र है। मर्यादित अहं की मान्यता जहाँ व्यक्ति के चरित्र पर आदर सहित लग जाती है वहीं वह स्वाभिमान हो जाता है। अमर्यादित अहं जो केवल व्यक्ति की ओर से डींग बन कर उछल कूद मचाता रहता है उसको भला समाज मान्यता कैसे दे सकता है। ऐसी अवस्था में स्वाभिमान को अहंकार के समकक्ष कैसे कहा जा सकता है?

क्या प्रेम वासना है? वासना मनुष्य की आत्मा को पतन की ओर लेजाती है। व्यवहार में अन्याय को प्रश्रय देना वासना का साधन है। बुद्धि को कर्तव्य के घेरे से निकाल कर वासना दूषित कर्म में आस्था रखने का आग्रह करती है। मन को क़ैद की काली कोठरी में डालने वाली वासना मनुष्य की संकुचित वृत्तियों के कठघरे में कैद करके उसका जीवन निराधार बना देती है।

प्रेम आत्मा की उन्नति का साधन है। व्यवहारिक न्याय और दया समाज में प्रेम के आश्रम से ही आए हैं। कर्तव्य की चोरी करना प्रेम कभी नहीं सिखा सकता। बुद्धि को स्वस्थ ज्ञान और मन को शक्ति की श्रद्धा प्रदान करने में समर्थ प्रेम जीवन को सार्थक बनाता है। फिर भी क्या यह प्रश्न रह जाता है कि क्या प्रेम वासना है? दोनों का सम्बन्ध छत्तीस का है।

प्रेम आत्मा का सहज धर्म है। उसकी किरणें बुद्धि को निर्मल बनाती हैं, और तब बुद्धि की निर्मलता भावनाओं को सहज ही स्निग्ध बना देती है। परिणाम स्वरूप कर्मेन्द्रियों को जिस कार्य में प्रवृत्त किया जाता है वह स्वभाव से ही उच्च चरित्र का पोषक होता है। अतः प्रेम चरित्र की उज्वलता का पोषण करता है।

अहंकार आत्मा को छल कर अंधकार में भटकाता है। बुद्धि के तर्क पर ताला लगाने में समर्थ होते ही वह कुतर्क और वितंडावाद के सहारे सत्य का गला घोंटने में सफल होता है। फिर ऐसी बुद्धि द्वारा संचालित मन दूषित भावनाओं की भँवर में पड़ कर इन्द्रियों के साथ अत्याचार न करेगा तो क्या करेगा? परिणाम व्यक्ति के चरित्र से छिपाया नहीं जा सकता। अहंकारी व्यक्ति नम्रता तथा सौजन्यता का नाटक करने में भी सफल नहीं हो सकता।

प्रेम का मूलाधार सर्वव्यापक एकात्मकता है। संसार को समझने के लिये जैसा अपनत्व प्रेम दिखाता है वैसा कोई भी नहीं। 'सब संसार आत्मा का ही रूप है,' इस व्यापक नीति पर विश्वास करके ही प्रेम व्यवहार में अग्रसर होता है।

अहंकार के मूल में ही अलगाव है। 'मैं' को संसार से अलग देखने की बुद्धि ही संसार के प्रति द्वेष निर्माण कर देती है और इसीलिये अहंकारी व्यक्ति सब में अपनी नीति, अपना मत थोपना चाहता है। वह ग्रहण करने से हिचकिचाता है। पर स्वयं की चाल को सर्व-श्रेष्ठ चाल समझ कर आशा करता है कि सब लोग उस पर ही चलें।

समन्वय की शक्ति के आधार पर स्वाभिमान अलगाव और लगाव दोनों की सुनता समझता चलता है। वह अपनी न्याय प्रणाली के कारण प्रेम के पड़ौस में बसने का

अधिकारी हो गया है। पर अहंकार से सावधान रहने की उसकी भी नीति है।

व्यवहारिक जीवन में प्रेम का उदात्त स्वरूप त्याग, सेवा और निःस्वार्थ परायणता में दृष्टिगोचर होता है। यह स्वरुप प्रत्येक क्षेत्र में अपना असर रखता है। सम्पत्ति त्याग प्रेम के लिये खेल है। प्रेमी हृदय सेवा कर्म में रत रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं। भारतीय परम्परा में ऐसे उदाहरण बहुत मिल सकते हैं, जहाँ प्रेम के लिये लोगों ने जीवन तक का उत्सर्ग कर दिखाया।

स्वाभिमान न्याय नियमों के सहारे समाज के धन समय और कर्म के विभाजन पर विश्वास रख कर सतर्कता से चलने का आग्रह करता है। अनुचित और उचित संग्रह को समझना, जीवनोपयोगी सामाजिकता का निर्वाह करना और जीवन की सार्थकता को सामाजिक समत्व में देखना उसकी बुद्धिवादी प्रवृत्ति का लक्षण है।

अहंकार का एकांगी आविष्कार है कि—'पहिले पेट पूजा और पीछे काम दूजा।' व्यवहार में अहंकार संग्रह की अनियमितता में विश्वास करता है। कर्म उसके सारे स्वार्थ से प्रेरित होते हैं और उसके जीवन में ऐसा एक क्षण भी नहीं आता जब वह अपना समय दूसरों की भलाई में लगाने का विचार करता हो।

प्रेम हृदय की भावुकता का वह स्तर है जहाँ वेदना भी मधुर हो जाती है, वियोग और मिलन का अन्तर मिट जाता है। प्रेमी हृदय काव्यानन्द के सागर में डूबा डूबा रहता है।

स्वाभिमान बुद्धि के जागरण का प्रतीक है। वहाँ सुख और दुःख उपयोगिता के आधार पर नापे जोखे जाते हैं। विरह विरह हो कर रुला सकता है और मिलन आलिंगन बद्ध होकर आनन्द के उपभोग के क्षणों का स्वागत भी कर सकता है।

पर अहंकार हृदय और बुद्धि के तल तक नहीं पहुँच पाता। वह तो मन के आवेश के सहारे ही अपनी ढाई चावल की खिचड़ी पकाने में मस्त होने के कारण इन्द्रिय लोलुपता को ही सर्व सुखों का भण्डार मान कर पार्थिव जीवन के स्थूल तत्वों को गिनता रहता है।

प्रेम अन्तरमुखी होकर भी लोक कल्याण से मुख नहीं मोड़ता। वह प्रकृति और परमात्मा के साक्षात्कार की राह बन कर धर्म का स्तम्भ बन जाता है। ऐसी अवस्था में स्वाभिमान विदेह बन कर निष्काम कर्म की प्रेरणा देता है। यह आत्मा का स्वाभिमान ही है जो गीता के कर्म योग में निष्काम भावना की ओर इशारा करके सांसारिक कर्म में प्रवृत्ति रखते हुए भी फल की आकांक्षा को निरर्थक कर देता है।

पर अहंकार की निष्ठा सदा फल की ओर लालायित रहती है। क्योंकि फल ही के संग्रह से वह अपनी सफलता असफलताओं का अंदाज लगाता है। अंहकार की उन्नति कर्म द्वारा प्राप्त असफलताओं में है—कर्म कैसा भी हो, महत्वाकांक्षा का आदर्श प्राप्त करना ही ध्येय है।

प्रेम के व्यवहार में जब अड़चन उपस्थित होती है, तब प्रतिकार के लिये जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है वे त्याग और उत्सर्ग भावनाओं से सजे रहते हैं।

स्वाभिमान के भंग होने की दशा में भी प्रतिकार की लालसा रहती है। पर उचित दंड और उचित कोप का प्रश्रय लेकर स्वाभिमान चाहता है कि गलती करने वाला गलती सुधार ले! फिर क्षमा से भी काम लिया जासकता है। हृदय परिवर्तन की शर्त जो रहती है वहां।

अहंकार को ठेस लगने से तो हिंसा का स्रोत ही निकलता है। वह हिंसा उपलब्ध साधनों की सत्ता से सज कर महानाश की तैयारी में लग जाती है।

विचलित प्रेम क्षमा के सौजन्य से शांति लाभ करता है। विचलित स्वाभिमान अनुग्रह के भार से दब कर ठीक राह पर आ जाता हैं। पर विचलित अहंकार को भय का भूत ही चाहिये जो उसकी कूट प्रवृत्तियों को रोक सके।

स्वाभिमान की स्थिति कभी-कभी डांवाडोल भी हो जाती है। जब वह प्रेम के क्षेत्र से प्रभावित हो कर इसमें ही रम जाता है तब सहज में ही मधु की तरह मीठा स्निग्ध और तरल हों जाता है। और जब वह अहंकार के कठघरे में घिर कर अपमानित होने लगता है तभी वह कटु चिड़चिड़ा और कठोर हो जाता है।

उज्जयिनी की प्राचीन मुद्राएँ

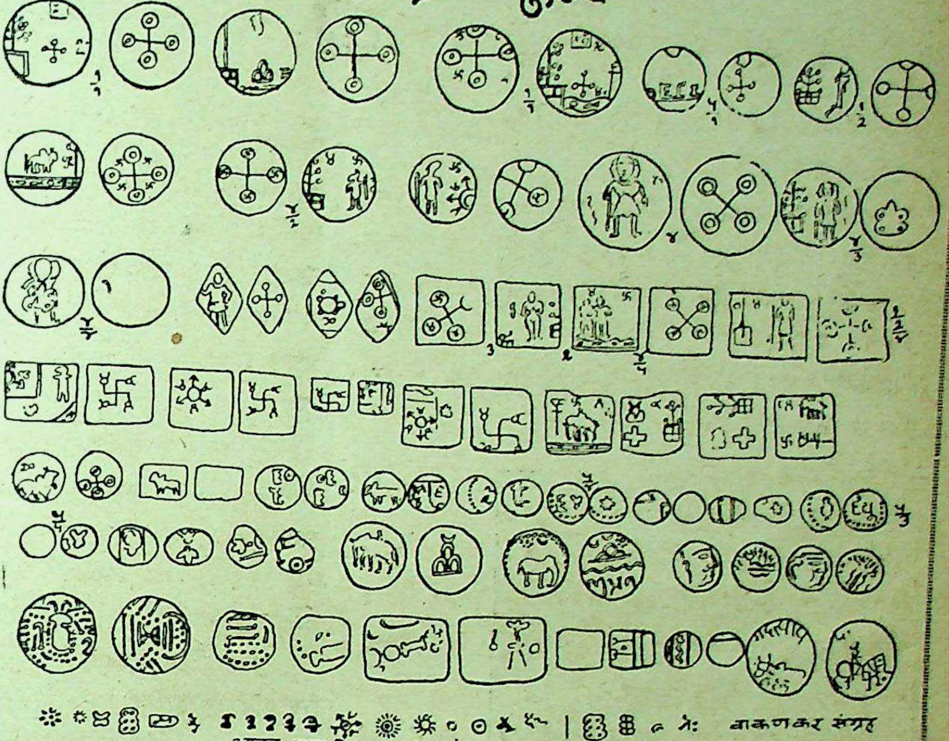

आहत मुद्रा चिन्ह सीधी ओर + उलटी ओर −

वाकणकर संग्रह

आहत ताम्र मुद्राओं तथा मृतिका पात्रों के आकृतियो का साम्य

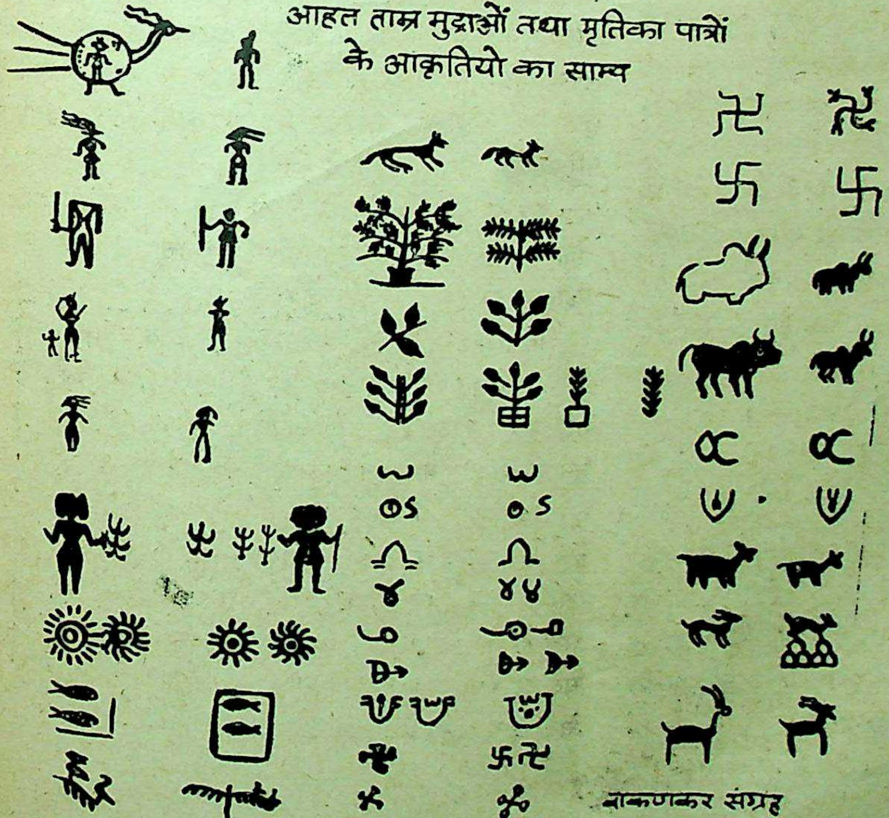

वाकणकर संग्रह

मालवा में दस दिन

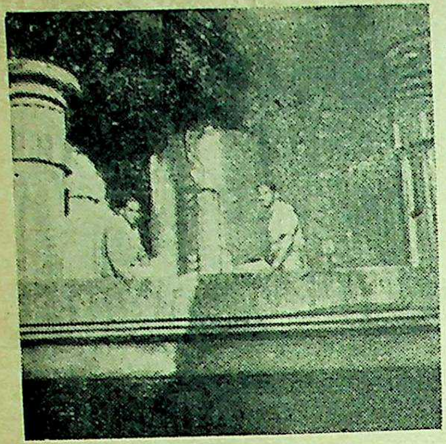

भोजपुर के शिवालय में लेखक अपने एक मित्र के साथ

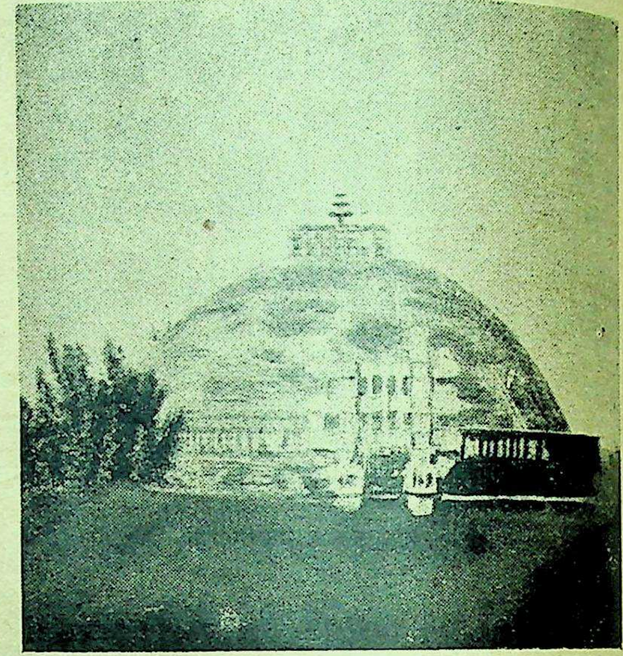

सांची-स्तूफ

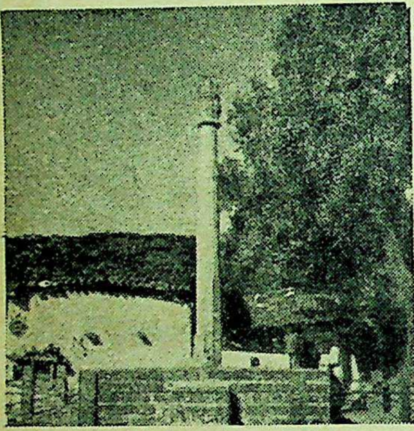

हेलियोडोरस स्तम्भ (भेलसा)
(खाम बाबा)

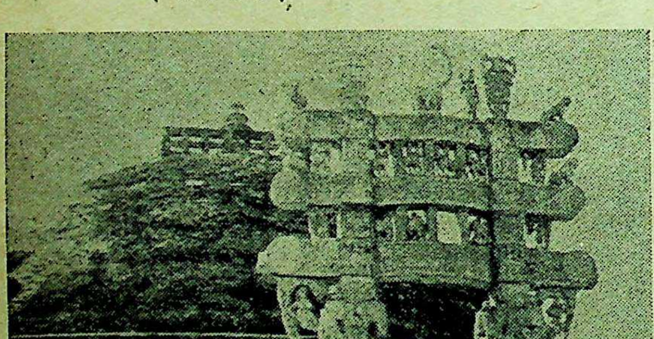

सांची का कलांकन से युक्त भव्य प्रवेशद्वार

सहस्त्र धारा के पास लेखक

आहत मुद्राओं का प्राग्ऐतिहासिक स्रोत एवं उज्जयिनी की प्राचीन मुद्राएं

श्री. वि० श्री. वाकणकर

(प्रथम अध्याय)

मुद्रा संशोधन भारतीय इतिहास के आकलन का एक प्रमुख साधन है। भारत में मुद्राओं का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ यह यद्यपि निश्चित नहीं है फिर भी उत्खनन के द्वारा प्राप्त मुद्राओं से यह ज्ञात हो सका है कि मुद्रा प्रयोग कम से कम ईसा के ६ शताब्दी पूर्व प्रारंभ हो ही गया था। वैदिक काल में वस्तुओं के आदान प्रदान से व्यापार विनिमय होता था। पातंजल महाभाष्य में सोमविक्रयी का उल्लेख आया है, सोम की अधिक न्यूनता के कारण उसका मूल्य भी बढा चढा था। यह समारम्भ पर सोमपानार्थ आए हुए देवताओं के लिए सोमविक्रय होता था। तथा उसके बदले में गाय, सवत्स धेनु, रथ के लिए बैलजोड़ो, अच्छी नस्ल.की गाय बैल की जोड़ी, चन्दन वस्त्र, स्वर्ण, भेड़ें लेकर सोमविक्रयी संतुष्ट होता था। वैदिक ऋचाओं के अनेक स्थानों पर हजारों से धनदान करने का उल्लेख आया है, केवल "सहस्त्र" का प्रयोग निश्चित ही किसी महत्व की इकाई का द्योतक है।

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्र सातमम् इंद्र ता रथिनीरिषः॥ ऋ. १ हे इन्द्र हमारी कीर्ति को वृद्धिगत कर हमें सहस्त्र (अपार) धन दे।

ऐकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्त्रा ऋ. १/११६/२१।

हे अश्विनी, वश की हजारों कालाग्न होवे अतएव तुम्हीं ने उसे एक दिवस युद्ध करने की शक्ति प्रदान की।

ब्राह्मणाय हिरण्यं दद्यात सहस्त्र दध्यात क्षेत्रं चतुष्पादं दध्यात पंचिका

यह भी निश्चित है कि यह इकाई "निष्क" ही होना चाहिए क्योंकि ऋग्वेद के अन्य सूत्रों में निष्क का उल्लेख पाया है। इन्द्र से निष्क की याचना निम्न सूत्र में की गई है :--

अर्हन विभर्षि सायकानी धन्वार्हन निष्कं यजतं विश्व रूपं. ऋ. २।३३।१०

आज भी रुपयों की मालायें गले में पहनी जाती हैं। संभव है उस समय भी निष्क का जैसा उपयोग होता हो। भाव्य राजा से मंत्रदृष्टा कक्षिवान ने सौ निष्क एवं अश्व प्राप्त किए थे। तथा उनका काव्य मय वर्णन निम्न स्थानों में किया है।

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान् शतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम् शतं कक्षीनां, असुरस्य गोनां दिवि श्रवो जरमा ततान। ऋ. १।१२६।२

उपरोक्त ऋचाओं से यह निर्विवाद सत्य सिद्ध है कि भारत में निष्क का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। निष्क का माध्यम सुवर्ण था। उपरोक्त ऋचाओं का अर्थ निम्न है:–

उसकी आर्जव युक्त विनंति के कारण उसके दिए हुए सैकड़ों सुवर्ण निष्क अश्व आदि मैंने ग्रहण किए। मुझ कक्षिवान को उस पराक्रमी राजा से सैकड़ों गायें मिलीं और मैंने उसकी अखण्ड कीर्ति स्वर्ग तक पहुँचाई।

परिस्तृणीहि परिधेहि वेदिं मा जामिं मोष्टी रमुशयानाम्
हो तृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्काएते यजमानस्यलोके
७।९९।१

महाभारत में सुवर्ण निष्कों का वर्णन आया है।

साष्टं शतम् सुवर्णानाम् निष्कामाहुर्धनंतथा. महा. भा. द्रोण-३५.

इन निष्कों का रूप यद्यपि ज्ञात नहीं है फिर भी इन पर किसी प्रकार चिन्ह आहत अवश्य किए जाते थे। युधिष्ठिर ने अपने कोष की आहत सुवर्ण मुद्राओं का उल्लेख इस तरह किया है:--

ताम्र लोहे परिवृत्ता नियतो चतुशताः
पंच द्रोणिक एकैकः सुवर्णास्याहतस्यवै
जातरूपस्य मुख्यस्य अनद्येयस्यभारत
एतत् राजन् मम धनं तेन दिव्याम्यहंत्वया.-महा. भा.

यद्यपि सुवर्ण आहत मुद्रायें कहीं प्राप्त नहीं हुई हैं फिर भी इनकी संभाव्यता पर विश्वास न रखने का कोई कारण नहीं है। सुवर्ण की उपयोगिता व अल्पत्व ने ही उनका अस्तित्व मिटा दिया है। सम्भव है इनके पश्चात ही रजत एवं ताम्र मुद्राओं का प्रयोग प्रागऐतिहासिक काल में प्रारंभ हुआ तथा वह हजारों वर्ष तक याने ईसा से दो शताब्दि पूर्व तक चलता रहा। सुवर्ण आहत मुद्राओं का प्रयोग बौद्ध काल के प्रारम्भ तक निश्चित रूप से था ही क्योंकि त्रिपीटक में "प्रभुत्तम हिरण सुवण्ण" का उल्लेख है तथा जेतवन जातक में जेतवन सुवर्ण खण्डों से खरीदा गया था ऐसी कथा है। चाणक्य ने पण, १।२ पण, ।१।४ पण, १।८ पण, माष, अर्धमाष, काकणी अर्धकाकणी का उल्लेख किया है। पण चांदी की मुद्रा थी तथा चार भाग ताँबा और एक भाग लोहा या सीसा तथा ११ भाग चाँदी मिला कर तैयार होती थी, माष व काकणी ताँबे से बनते थे, इन मुद्राओं की घड़ाई मजूरी ८ प्रतिशत, शासकीय कर ५ प्रतिशत तथा मुद्रा परीक्षण व्यय ११८ प्रतिशत लिया जाता था। इसके तोलमापन का विस्तृत विवरण अनेक स्थानों पर आया है अतएव उस ओर विशेष न जाते हुए एक नये अध्याय का आरम्भ करना श्रेयस्कर है।

सिन्धु प्रदेश के उत्खनन में किसी प्रकार की कोई भी सुवर्ण रजत अथवा ताम्र मुद्रा उन स्तरों में प्राप्त नहीं हुई जो प्राग् ऐतिहासिक हैं, ये स्तर अधिकतर लघु अश्मास्त्र काल एवं ताम्र युग के हैं। अश्मास्त्र काल का शब्दप्रयोग हमने पाषाण काल के स्थान पर किया है क्योंकि ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में पाषाणास्त्रों को (अश्म हन्म) (ऋ. ७।१०४।५) (अथर्व ८।४।५) एवं अश्मचक्र (ऋ० १०।१०१।७) के नामों से उल्लेख आया है। इन स्तरों में अनेक चित्रित मृद्भाण्ड (मिट्टी के बर्तन) एवं मृत्तिका की मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। इन मृत्तिका मुद्राओं पर चित्रलिपि में कुछ लिखा हुआ है जिनका बोध एवं कारण परम्परा आज भी अज्ञात है। किन्तु यह सम्भव है कि ताम्र एवं रजत आहत मुद्राओं पर अंकित चिन्हों का एवं उपरोक्त मुद्राओं एवं मृद्भाण्ड चित्रों का कुछ निकट सम्बन्ध हो। पुरातत्व वेत्ताओं ने इन स्तरों का सम्बन्ध विक्रम से ३ या ४ हजार वर्ष पूर्व का बताया है। मुझे मालवा में सिन्धु संस्कृति समकालीन २४, २५ स्थान ज्ञा हुए हैं वे ये हैं:-

१ उज्जयिनी, २ माहिष्मती (महेश्वर), ३ धार, नेवावली, ५ कानवन, ६ बोराली, ७ ऋणीजा, ८ बिलपां ९ करमदी (रतलाम), १० जावरा, ११ सेजावता, रोजाना, १३ थड़ोदा, १४, १५ मीन, १६ नागदा, टकरावदा, १८ नायण, १९ मिलखुडा, २० परमारखेड़ी, राजगढ़, २२ महिदपुर, २३ गंगधार, २४ चिकल्दा बड़ना-वर।

उपरोक्त स्थानों पर मुझे लघु अश्मास्त्र एवं रंगी चित्रित मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। सिन्धु, नर्मदा एवं चम्ब प्रदेश के इन प्रागऐतिहासिक चित्रणों का घनिष्ठ सम्ब है। इन पर पुते रंग एवं आकृतियां सुन्दर हैं। को दृष्टि से इनका निम्न विभाजन किया है। १ बिनारं २ एक रंगी, ३ द्विरंगी, ४ बहुरंगी तथा आकृतियों दृष्टि से चार विभाजन निम्न हैं। प्रथम चित्रित हुए मृ भाण्ड प्राप्त होने का स्थान दिया तदन्तर उसका चित्र स्वल्पविराम के पश्चात मुद्राओं के चित्र तथा अन्त सांकेतिक अक्षर इस प्रकार चित्रण तीन पंक्तियों में है सांकेतिक अक्षरों का सरलबोध निम्न है।

१. मनुष्याकृतियां, २. पशुआकृतियां, ३ वृक्षवनस् कृतियाँ, ४ भूमिती अनुसारआकृतियाँ। स्तर शास्त्रानु भी इनका विभाजन अलग है किन्तु हमें इन आकृतियों अधिक सम्बन्ध है। अतएव उपरोक्त विभाजन का ही आधार लेंगे। इन विभाजनों के अनुसार हरप्पा, मोहन दड़ो, आमरी, विलायाकुंल्ली, नागदा, थड़ोदा, राजगढ़ महेश्वर के मृद्भाण्ड अभ्यास योग्य हैं। इन महेश्वर प्राप्त मृद्भाण्ड एवं चम्बल प्रदेश के मृद्भाण्ड अधिक लाल पर काले रंग की जाति के हैं।

१. हरप्पा की आकृतियां विशेष महत्व की उनमें कुछ वर्णन पर मयूर अंकन स्पष्ट है। म एक गोल द्वारा विदर्शित किया गया है तथा एक व्यक्ति बताया गया है वैसे ही कुछ बर्तनों पर भी व्यक्ति चित्रण देखने योग्य है, दो के बीच धनुष बाण लिए एक ऊर्ध्वकेशी खडा है। क्र० २) वैसे ही आ० क्र० ३ में हाथ में दण्ड लिए

आ० क्र० ४ में माता-पुत्र अथवा पिता-पुत्र खडे हैं। आ० क्र० ५ विचित्र मृग के पीठ पर वैसा ही एक उर्ध्वकेशी कमर पर हाथ दिए खडा है। इन्हें देख ब्रह्मचर्य का उर्ध्व केशी याद आता है। इन्हीं आकृतियों के चित्रफलक क्र० १ सम्मुख आहत मुद्रा पर अंकित पुरुषाकृतियां भी दी हैं तथा इनका तुलनात्मक अभ्यास शैली की विलक्षण साम्यता ही बताता है। हरप्पा एवं मोहन-जो दडो से प्राप्त विचित्र शिरोभूषण वाले मृत्तिका चित्रों का भी इनसे निकट साम्य है। महेश्वर से श्री पण्डयाजी (राजकोट) को एक चित्रित मृद्भाण्ड का अंश प्राप्त हुआ है इस पर की आकृति वज्रधारी प्रतीत होती है आकृति का साम्य कार्तिकेय से मिलता है पर इसके हाथ में बज्र है अतएव यह कार्तिकेय नहीं है, इस प्रकार के बज्र आहत चिन्हों में भी पाए जाते हैं। कसरावद मुद्रा पर अंकित है अन्तर केवल इतना ही है कि ये केवल दो अस्थियों के हैं और यह तीन का, इन्द्र के पास अनेक अस्थियों का आवमबज्र था, प्राचीन मूर्तियों में बज्र का अङ्कन इसी प्रकार हुआ है अतएव यह सम्भव है कि यह बज्रधारी इन्द्र ही हो (बज्र हस्ताः सजनास इन्द्रः ऋ. २·१२-१३) अनेक मृद्भाण्डों पर सूर्य (रश्मियों सहित) अंकित है इनमें दो प्रकार हैं एक सूर्य की स्थिरता एवं दूसरा सूर्य का गतिमान होना दर्शाता है और आहत मुद्राओं पर भी इस प्रकार का अंकन होता था। (आ० क्र० ७)

२. पशुओं का साम्य भी आश्चर्यजनक है हरप्पा, विधाता एवं कुल्ली के मृद्भाण्डों पर अंकित मछलियाँ स्वस्तिक एवं स्कंद देवसेना अथवा उज्जयिनी चिन्हांकित मुद्राओं पर की मछलियों से मिलती है। आ० क्र० ८) हरप्पा के सिमिटरी के मृद्भाण्ड पर अंकित हरीष के पीठ पर बैठा मक्शी एवं आहत मुद्रा का पक्ष (आ० क्र० ९) दो गाय एवं बीच खड़े व्यक्ति वाले चित्र में एक वन-बिलाव अथवा श्वान अंकित है (आ० क्र० २) आहत मुद्रा का पशु भी उससे साम्य रखता है। नागदा से प्राप्त एक पशु का पार्श्व और पर्वतारोही पशु का आहत चिन्ह निकट साम्य बताते हैं। जैसे ही खण्डीनयुक्त बैलों का साम्य तो आश्चर्यजनक है।

३ वृक्षों की शैली तो बिलकुल एक जैसी ही है, ११ विदाला व नागदा पौधों का चित्रण आहत मुद्रा के जंगला-युक्त वृक्ष का सा है (आ० क्र० १२) चन्नुदारों एवं जावरा के अंकित पीपल की पत्तियां आहत मुद्रा में भी अश्वत्थ वृक्ष पर अंकित हैं (आ० क्र० १३)

४. साथ ही अन्य कुछ ऐसे चिन्हों का निकट साम्य स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है जो (आ० क्र० १४ से २७) तक दिए हैं—कुल्ली की सर्पाकृति, बिन्दु एवं गोल, हरप्पा की मृत्तिका मुद्राओं एवं उज्जयिनी पात्र का ग सदृश्य अक्षर, महेश्वर पात्र का मकार एवं मुद्राओं का मकार (दुर्गीन चिन्ह) नागदा की वीयंकण सी आकृति, हरप्पा सिमेटरी म का धनुष्य-बाण तिलकाकृति, वनचिन्हआदि सब आहत एवं ढली मुद्राओं पर अंकित है। सबसे आश्चर्य तो यह है मृत्तिका मुद्राओं पर अङ्कित सीधे व उल्टे स्वस्तिक ढली एवं आहत मुद्राओं पर भी अंकित है। विशेष कर तक्षशिला एवं उज्जयिनी से प्राप्त मुद्राओं पर तो यह स्पष्ट ही अंकित है।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है कि आहत मुद्राओं के आहत चिन्हों की शैली एवं सिन्धु-नर्मदा-चम्बल प्रदेश के मृद्भाण्डों पर चित्रित आकृतियों की शैली में इतना निकट साम्य है कि मानो दोनों का स्रोत एक ही है। आहत मुद्रायें यदि महाभारत रचना काल के समय प्रचलित थी तो भी पुराणों के अनुसार वह काल ५०५३ वर्ष पूर्व का है अथवा कतिपय विद्वानों के मत से वह काल ईसा से २००० वर्ष पूर्व का है एवं रचना काल ई० ४००० से ३००० वर्ष पूर्व का है। वेद की कुछ ऋचायें महाभारत काल की है क्योंकि उनमें देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख आया है अतएव इस काल तक सुवर्ण निष्क का काल मानना सम्भव है। आहत मुद्राओं का जो काल उत्खननों द्वारा बताया गया है उससे उपरोक्त काल कई हजार वर्ष पूर्व का है। ताम्र का संशोधन होते ही इस युग में व्यापार विनिमय की आदान प्रदान की शैली भी बदली मुद्राओं का प्रयोग बढा इसी कारण ताम्र एवं रजत मुद्राओं का प्रयोग बढ गया। किन्तु आज तो प्राग-ऐतिहासिक मृद्भाण्डों के चित्रण के काल एवं ताम्र व रजत मुद्राओं के काल में इतना अन्तर बताया जाता है कि

वह वास्तव में उतना नही होगा क्योंकि दोनों चित्रशैली स्रोत एक ही प्रतीत होता है। अब या तो इन संस्कृतियों को अर्वाचीनकाल की ओर खींचना पडेगा या आहत मुद्राओं का काल तो भी पीछे ले जाना पडेगा। किन्तु इन संस्कृतियों का अश्मास्त्र काल से सम्बन्ध है तथा यहाँ अनेक स्थानों पर फ्लेक (चकतियाँ) एवं कोएर अस्मास्त्र प्राप्त हुवे है इनका काल निश्चय ही ४००० वर्ष विक्रम पूर्व का है। अतएव आहत मुद्राओं का काल ४ या ५ हजार वर्ष पहले न भी ले आया जा सके तो भी निश्चित ही २ या ३ हजार वर्ष विक्रम पूर्व ले जाने में दिक्कत नहीं होनी चाहिये क्योंकि कला की प्रगति करने में हजार पांच सो वर्ष तो लग जाते हैं। हमने केवल चित्र साम्य पर ही वह अन्दाज लगाया है यदि स्तर शास्त्र की सहायता से अभ्यास और गहराई से किया जाय तो तथ्य का अन्वेषण सुगमता से हो जायगा। सन्क्षिप्त विषय विवरण द्वारा मुद्रा शास्त्रज्ञों का ध्यान इस ओर खींचने का अल्प सा प्रयत्न किया है। वास्तव में शास्त्रज्ञों को मेंने इस विषय पर कहना अनुचित ही है! इस सन्क्षित विषय विवरण के द्वारा मुद्रा शास्त्रज्ञों का ध्यान इस ओर खींचने का अल्प सा प्रयत्न हुआ है।

अब हम दूसरे अध्याय का प्रारम्भ करते हैं। धार स्थित "वाकणकर संग्रह" में अनेक प्राचीन मुद्रायें, राजपूत व मोंगल चित्र, मराठा काल के दफ्तर, तथा प्राचीन मृद्‌माण्ड, मृत्तिका मुद्रा चित्र एवं मूर्तियां हैं। हम जहां केवल प्राचीन मुद्राओं का अभ्यास युक्त वर्णन दे रहे हैं। उज्जयिनी की प्राचयता निर्विवाद है, कला के प्रारम्भ से ही उसका इतिहास मिलता है यहां पीपल लोदरे के सबसे निचले स्तर में से अंकितमृद्‌भाण्ड एवं रंगीन मृद्‌भाण्डों के टुकड़े प्राप्त हुवे हैं। इसी नाले से अपने सन्मुख निकाली हुई धूल धोयों से प्राप्त १९५ ताम्र एवं रजत "वाकणकर संग्रह" में सुरक्षित है वेसे ही महेश्वर से तीन ताम्र मुद्रायें एवं केसूरसे १ आहत ताम्र मुद्रा भी प्राप्त हुई है। इन समस्त मुद्राओं का निम्न विभाजन किया है (१) आहत ताम्र एवं रजत मुद्रायें एव (२) ढली हुई ताम्रएवं रजत मुद्रायें ढली हुई मुद्राओं के निम्न विभाग हैं-

(१) उज्जैयिनी चिन्हांकित, वेष्टणयुक्त वृक्ष सुमेरु, मकाराशी
युक्त गोल मुद्रायें
(२) ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पुरुषाकृति
(३) ,, देवी, वृक्ष एवं अक्षरांकित चोखटी मुद्रायें
(४) ,, ,, ,, ,, ,, कार्तिकेय मुद्रायें
(५) अक्षरांकित मालव मुद्रायें
(६) विशिष्ट चिन्ह युक्त मुद्रायें
(७) वल्लभी, नाग अथवा कलचुरी मुद्रायें

सर्व प्रथम हम आहत मुद्राओंका अभ्यास प्रारम्भ करते हैं, इन मुद्राओं का प्रयोग कतिपय विद्वानो के मतानुसार (डा मोतीचन्द. की वी. सी. आय अनुक्रम ४८/पी १ प्राचीन मुद्रा पृ. १७) विक्रम से १००० वर्ष पूर्व माना है तो अन्य ने विक्र ४ या ५ शता० पूर्व माना है। हमने इसका स्रोत २ से ३ हजार वर्ष पूर्व बताया है। रजत मुद्राओं को कार्षापण अथवा कहापण कहते थे, कनिंघम, एलन, ब्राउन, ओ आदि ने इनपर विस्तृत प्रकाश डाला है, फिर भी मालव की मुद्राओं का परीक्षण असंगत न होगा। इन मुद्राओं से अधिकांश मुद्रायें पीपल लोदरा एवं भर्तृहरी की गु के आस-पास प्राप्त हुई हैं, इनमें तीन प्रकार की मुद्रा हैं प्रकार १ में एक ओर (सीधी ओर) ५ चिन्ह आह है एवं उलटी ओर केवल केड्‌यूशस अंकित है। प्रकार में सीधी ओर ६ चिन्ह आहत हैं एवं उलटी ओर केव केड्‌यूशस अंकित है। प्रकार तीन में सीधी ओर ६ चिन्ह एवं उलटी ओर ३ चिन्ह अंकित हैं, प्रकार १ में सीधी ओर केड्‌यूशस, एक सूर्य, सुमेरु, मनुष्याकृति एवं मकार शरयुक्त चक्र है। पृष्ट पर केड्‌यूशस है इन मुद्राओं यह देखा गया है कि सीधी एवं उलटी बाजू के केड्यूश के ठप्पे एक आकार के नहीं है, अपितु छोटे बड़े हैं। एक छोटा है कभी दूसरा और इनमें आकार भिन्नता है, अतएव यह ज्ञात होता है या तो ये चिन्ह भिन्न समय पर आहत किये हैं अथवा भिन्न भिन्न स्थानों आहत किये गये हैं। ताम्र मुद्राओं पर की मनुष्या इतनी अच्छी नहीं है जितनी रजत मुद्रा पर है। मनुष्याकृतियों में ऊर्ध्वकेशी रूप एवं हाथों की स्थिति

प्रदेशस्थ विचित्र टोप, सदृश वेश रचना वाले मृत्तिका चित्रों का स्मरण कराता है तथा ब्रह्म कर्म के संध्या मन्त्र " उर्ध्वकेशी विरुपाक्षी " की याद दिलाता है। उपरोक्त चिन्ह बाकी के प्रकारों पर भी अंकित है किन्तु प्रकार दो में एक छोटा सूर्य अधिक है एवं पुरुषाकृति का चिन्ह प्रकार एक से कुछ अधिक सुसँस्कृत है। प्रकार ३ में प्रथम और ६ चिन्ह पूर्वानुसार (प्रकार दो के समान) हैं किन्तु उलटी ओर केड्यूशस गोल एवम् एक अननुमानित आकृति। केसूर से प्राप्त ताम्र मुद्रा के पृष्ठ के केड्यूशस स्पष्ट है किन्तु सीधी सी ओर सूर्य, पुरुषाकृति एवम् सुमेरु स्पष्ट है और अन्य चिन्ह अस्पष्ट हैं। इस मुद्रा से केसूर का इतिहास ईसा से पूर्व प्रारम्भ होता है, यह निश्चित हो जाता है। उज्जयिनी में ताम्र मुद्राएँ रजत मुद्रा की अपेक्षा से अधिक प्राप्त हुई हैं।

उपरोक्त मुद्राओं को तोलने पर अनुमानतः ताम्र मुद्राएँ रत्तीभर तथा रजत मुद्रा चढ़ा हुवा है अतएव यह एक बिलकुल नया विषय है किसी समय के आर्थिक दशा के गिरने का ही इससे बोध होता है।

अब हमें दूसरे प्रकार की मुद्राओं का अभ्यास करना है। ढली हुई मुद्राएँ इनके गहरे छाप तय्यार कर एक दूसरे पर रख दिये जाते थे तथा उनके पोले हिस्सों में पिघली धातु ढाली जाती थी, कभी कभी २।४।६।८।१२ मुद्रायें एक साथ ढाली जाती थी तथा इनके धातु मिश्रण भी प्रभाव युक्त थे। चाणक्य ने यह प्रमाण निम्नानुसार दिया है।

ये मुद्रायें अधिकतर गोल हैं तथा क्वचित चोखट्टी हैं, इन ढली मुद्रा में भी कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि पिघली हुई धातु के ठण्डे होने के पूर्व उन पर ठप्पे दबाये जाते थे, साथ साथ यह भी देखा गया है कि कभी कभी ढली मुद्राओं पर आहत चिन्ह भी पाये गये हैं, ढली मुद्राओं के ८ प्रकारों का यहां विचार करना है, जिनमें से चारप्रकार ऐसे हैं कि जिनमें उज्जयिनी चिन्ह प्रमुखता से उपयोग में लाया गया है, इस चिन्ह का अर्थ ज्ञात नहीं है पर उज्जयिनी नगर की चतुर्दिक प्रसिद्धी का द्योतक हैं।

उज्जयिनी चिन्ह में ४ गोल होते हैं तथा वे दो रेखाओं से विपरीत दिशाओं के गोल से मिले हैं और इस पर अथवा का आकार बनाते हैं गोल के मध्य में कभी कभी स्वस्तिक कभी मकार अथवा कभी एक छोटा गोल रहता है, उज्जयिनी में अभी भी चारद्वार यात्रा प्रसिद्ध है तथा देखना यह है कि इस चिन्ह का उससे कोई संबंधित प्रयोजन तो नहीं निकलता।

प्रकार १ में बाईं ओर वेष्टनीयुक्त वृक्ष पर कुंड एवं उनके बीच मत्स्य है, बीच में उज्जयिनी चिन्ह एवं मकार (टुँरीन सिम्बाल) है दाहिनी ओर एक सांकेतिक दंड है, पृष्ठ की ओर (उलटी ओर) द्विगोल युक्त उज्जयिनी चिन्ह है एवं प्रत्येक दो द्विगोल के बीच स्वस्तिक हैं। यह मुद्रा गोल है और इसका वजन रत्ती है. प्रकार दो में पुरुषाकृति, दृश्य आदि चिन्ह हैं इनमें चार प्रकार की मुद्रायें संग्रह में हैं, उ प्र. २/१ इस प्रकार में एक पुरुषाकृति है तथा उसके दाहिनी ओर वेष्टनीयुक्त वृक्ष है, इस वृक्ष को कतिपय लेखकों ने बोधी - वृक्ष कहा है पर बोधी वृक्ष के स्थान पर इसे यदि अश्वत्थ वृक्ष कहा जाय तो अधिक युक्ति संगत होगा, इन मुद्राओं का अभी भी बुद्ध पूर्व न होना निश्चित नहीं हैं अतएव बोधी-वृक्ष के स्थान पर अश्वत्थ कहना ही ठीक होगा क्योंकि अधिक स्पष्ट आकृतियों में इस वृक्ष के पत्ते पीपल के समान ही हैं तथा पीपल को धार्मिक महत्व भी बहुत है, यदि यह बोधि-वृक्ष होता तो इसके नीचे ध्यानस्थ बुद्ध का चित्रण असंभव नहीं था, जब कि पुरुषाकृति का अंकन प्रारंभ हो ही गया था, चाहे वह कितना ही विरूप क्यों नहीं, इस मुद्रा के पृष्ठ पर द्विगोल युक्त उज्जयिनी चिन्ह है।

उ प्र २/२ में बाईं ओर वेष्टनीयुक्त वृक्ष है और मध्य में दाहिनें हाथ में दण्डधारी व्यक्ति है, यह दण्ड शक्तिदंड है, इस व्यक्ति का मुँह दाईं ओर घुमा हुवा है आगे दाहिने ओर कुंड में मत्स्य कूर्म हैं तथा ऊपर चक्र है, चक्र में १८ दंड है तथा चक्र के बाहर उसे १२ शा लगे हैं पुरुषाकृति नदी तट पर खड़ी है क्योंकि सर्पाकृति रेखा से जल का संबोधन किया है तथा उसके नीचे मत्स्य कूर्म आदि बताये हैं, हरप्पा सिमेटरी एच के मयूरांग का गोल इस मुद्रा से घनिष्ठ संबन्ध रखता है।

उ प्र. २/३ में चौखटी मुद्रायें आती हैं किन्तु ये आहत प्रतीत होती हैं, इसमें दाहिनी ओर नीचे सूर्य

(किरण युक्त) ऊपर मत्स्य बीच में दाहिनी ओर मुँहं किये प्रकार २ ब के सदृश्य दाहिने हाथ में दण्ड लिये पुरुषाकृति है, पृष्ठ की ओर विदुयुक्त गोल वाला उज्जयिनी चिन्ह है।

उ. प्र. २/४ में चौखटी मुद्रायें हैं पर ढली हुई हैं सीधी बाजू पर दाहिनी ओर वेष्टणीयुक्त वृक्ष तथा एक व्यक्ति खडा है इस व्यक्ति ने एक प्रकार का अंगरखा पहन रखा है, चेहरा सन्मुख है, पृष्ठ पर प्रकार २/३ सा उज्जयिनी चिन्ह है।

प्रकार २/१, २/२, २/३ एवं क में चित्रित पुरुषाकृति का साम्य आहत ताम्र एवं रजत मुद्राओं से मिलता है अतएव ये मुद्रायें प्रकार ३ से प्राचीन प्रतीत होती हैं, प्रकार २/४ का व्यक्ति उभरी कला का एक नमूना है तथा यह पश्चात की की हुई प्रगति है, इन मुद्राओं में जिसका व्यक्ति इस नाते से उल्लेख किया है वह मुद्रातत्वज्ञों द्वारा स्कंद नामाभिधान प्राप्त कर चुका है यह देवताओं का सेनापति था तथा अपने हाथ में एक शक्ति दण्ड लिये रहता, इसको स्कंद कार्तिकेय मयुराधिष्टित कार्तिकेय भी कहते हैं, इसका वाहन मयूर था और इसी कारण हरप्पा सिमेटरी और संभव है इसी कारण इन मुद्राओं को कार्तिकेय मुद्रा भी कहते हैं। स्कंधकुमार, देव सेनापति एवं कार्तिकेय एक उपास्य देवता के नाम है, यौधेय गण का यह आराध्य देवता था वैसे तो कार्तिकेय की उपासना गुप्तकाल में भी प्राधान्यता पा चुकी थी किंतु ये मुद्राएँ यौधेय गणराज्यों के समकालीन हैं।

प्रकार ३ में दो प्रकार की मुद्राएँ हैं इनमें उप प्रकार ३/१ मुद्रा के दाहिनी ओर नीचे ब्राह्मी में दों अक्षर अंकित हैं तथा तीसरा अक्षर कट चुका है अक्षर बोध "वे ज –" बीच में एक स्त्री की मूर्ति है इसके दाहिने हाथ में एक अगम्य आकृति हैं तथा बायाँ हाथ कमर पर है मुखाकृति स्पष्ट नहीं है बाईं ओर वेष्टित वृक्ष है। पृष्ठ की ओर उज्जयिनी चिन्ह है तथा उसके गोलों में अष्ट आकृतियां है सम्भवतः कूर्माकृतियां अथवा मकार होंगे।

उ. प्र. ३/२ इसमें भी एक स्त्री मूर्ति खडी है, उसका दाहिना हाथ कमर पर है एवं बायां हाथ कोहनी के यहां से मुडा हुआ और ऊपर की ओर है। संभवत. यह शक्तिदंड पकडे ही मूर्ति की दाहिनी ओर नीचे एवं मुद्रा के बाये ओर कोने में ४ मकार अंकित हैं। दो ऊपर की ओर एवं दो एक दूसरे की ओर मध्य में केंद्रित हैं, इसके ऊपर उज्जयिनी चिन्ह है तथा उसके दाहिनी ओर स्वस्तिक है पृष्ठ पर गोलयुक्त उज्जयिनी चिन्ह, गोलों के मध्य में कुछ नहीं है केवल प्रत्येक दो गोलों के बीच मकार है ऐसे चार मकार हैं।

प्रकार ४ ये भी ढली हुई ताम्र मुद्रायें हैं इन्हे कार्तिकेय मुद्रायें कहते हैं। कार्तिकेय कृत्तिकाओं का पुत्र था-ब्रह्मण्यः कृत्तिका सुतः महा. वन. २३/५५ इसे स्कंद कुमार अथवा कार्तिकेय कहते हैं वह हमने इसके पू बताया ही है। रूपकर्मयो छे माता कृत्तिकाओं का दुग्धपा करने के हेतु इसे षण्मुख प्राप्त हुवे यह अत्यंत पराक्र होने के कारण देव सेना का सेनापतित्व इन्हें दिया ग इसी का रूपक रूपान्तर देवसेना को इनकी स्त्री मानने हुआ है। देव सेना का इस षण्मुखी से विवाह हुवा वह भी षष्ठीदेवी कहाती है. यौधेय व रोहितकों में अत्यंत मान था तथा वह गुप्तों तक टिका रहा, पूजा आज भी सर्वत्र प्रचलित है तथा घर में बालक जन्म के छटे दिन षष्ठी देवी की पूजा की जाती यद्यपि यह यौधेयों का प्रमुख देव था फिर भी मालव उज्जयिनी चिन्हांकित मुद्राओं पर इसका चित्रण विचारणीय है, या तो यौधेय वा रोहितकों का यहां भी कारण आधिपत्य रहा होगा वा मालवा गणराज्य भी वह मुख्य देवता होगा। गणेश के साथ कार्तिकेय पूजा आज भी सर्वत्र होती है, इन मुद्राओं के पांच विभाग हैं उ. प्र. ४/१ यह मुद्रा गोल है एक ओर नन कार्तिकेय के स्थान पर त्रिमुखी कार्तिकेय हैं, दाहिने हाथ में शक्तिदंड है तथा बायां हाथ कमर रखा है गले में आभूषण एक कटि में वस्त्र लपेटे पृष्ठ की ओर द्विगोलयुक्त उज्जयिनी का चिन्ह है।

उ. प्र. ४/२ में कार्तिकेय के चित्रण का वही है किन्तु आकार छोटा है एवं पृष्ठ की ओर स्व सहित गोलयुक्त उज्जयिनी चिन्ह है।

उ. प्र. ४/३ यह मुद्रा अन्य मुद्राओं से भिन्न है कार्तिकेय चित्रण शैली प्रकार ४/१, २ सा ही है इसमें कार्तिकेय अंगरखां पहने हैं पृष्ठ की ओर उ

चिन्ह न होते हुवे लक्ष्मीलांछन चिन्ह है, अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुद्रा अवन्ती प्रदेश की नहीं है अपितु व्यापारिक आदान प्रदान में यहां चली आई है अथवा किसी नवीन गण के समूह ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया था किन्तु जिसका उपास्य देवता तो कार्तिकेय ही था।

उ. प्र. ४।४ इस मुद्रा में कार्तिकेय क्र० ४/३ के समान ही दाहिनी ओर वृक्ष है किन्तु मूर्ति के बाईं ओर ऊपर को उज्जयिनी चिन्ह है। पृष्ठ के चिन्ह स्पष्ट नहीं हैं किन्तु इस मुद्रा का भिन्नत्व इसी में है कि ४।५ के पृष्ट का चिन्ह इसके सन्मुख की कार्तिकेय की मूर्ति के धड़ पर ही ठोक दिया गया है, इस प्रकार आहत करने का क्या कारण है यह स्पष्ट नहीं हो सका, किन्तु यह सम्भव है कि वह गलती से हो गया हो।

उ.प्र.४/५ यह चौखटी मुद्रा है इसमें एक ओर षष्ठी अथवा देवसेना दोनों हाथ कमर पर रखकर खड़ी है उसके बांई ओर स्कन्ध है। यह स्कंध "देवसेना प्रिय" अथवा "शष्ठीप्रिय" कहलाता था तथा शष्ठी स्कंध की पत्नि होते हुये भी इस चित्र में सम्भवतः शिल्पकार की गलती से परंपरा के विपरीत दाहिनी ओर खड़ी है अन्यथा पत्नि पति के वाम अंग की ओर होती हैं। शष्ठी प्रजापति की पुत्री थी संभवतः प्रजापति ने अपनी बुद्धिमत्ता के आधार पर देवों की सेना तैयार की तथा स्कंध को सेनापति बनाया था इसी के रूपक दृश्य में देवसेना को स्त्री रूप में हमें देखने को इन मुद्रा में मिला।

शष्ठि स्कंध नदी तट पर खड़े हैं क्योंकि उनके नीचे लहरों की रेखा तथा मत्स्यकूर्म अंकित हैं। स्कन्ध के शिरोभाग के दाहिनी ओर मकार एवं बाईं ओर स्वस्तिक है स्कन्ध धोती के समान वस्त्र पहने हैं।

उ. प्र. ४/६ ये मुद्रायें छोटी एवं चौखुट्टी है इसमें खड़ा व्यक्ति ४/६ के स्कन्ध के समान है इनके पृष्ठ पर उज्जैनी चिन्ह का एक गोल स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रकार ५:– यह प्रकार महत्व का है तथा इसमें अक्षरांकित मुद्रायें आती हैं ये अधिकतर मालवगण मुद्रायें कही जाती हैं इन पर उज्जैनी जम जेम जय इत्यादि लिखा मिलता है इन पर अन्यत्र मिले नाम भारतीय प्रतीत नहीं होते जैसा ओझाजी का कथन है :

उप प्रकार ५/१ यह ढली गोल मुद्रा है तथा सीधी ओर ऊपर एक उठा हुआ भाग है उसके नीचे ब्राम्ही में उज्जयिनीय लिखा है इसके नीचे एक रेखा है तथा संभवतः इस रेखा के नीचे मत्स्यकूर्म आदि हैं, पृष्ठ पर उज्जैनी चिन्ह के दो गोल हैं. यह दुष्प्राप्य मुद्राओं मे से हैं तथा ब्रिटिश म्युझियम में इस प्रकार की केवल चार मुद्रायें रखी हैं भारत के किसी सँग्रहालय में ऐसी मुद्रा नहीं है। (डा. अलतेकरजी के पत्र)

उ. प्र ५/२ यह ताम्र मुद्रा सड़ चुकी है इसके ऊपर ब्राम्ही में जम लिखा है न के हाथी है।

उ. प्र. ५/३ यह मुद्रा मालव की ही नहीं अपितु संसार की अत्यन्त छोटी मुद्राओं का प्रतिनिधित्व करती है इस पर एक किरणांकित सूर्य एवं दूसरी ओर ब्राम्ही में जम लिखा है। सूर्य एवं अक्षरों के चारों ओर बिंदुओं से गोल रेखा उभारी गई है इस प्रकार की समस्त मुद्राओं पर ऐसे ही गोल वेष्ठित हैं। इन मुद्राओं पर अन्यत्र निम्नांकित राजाओं के नाम प्राप्त हुए हैं।

मपयन, यम, मय, मजुप, मपोजय मपय, मगजश, मनोजय गोजर माशय, मरक पछ, मगछ, गजव, जमक, जमपय महाराय, पय एवं मरज, किन्तु वाकणकर संग्रह की मुद्राओं पर जम और जम्न लिखा है। ये सम्पूर्ण या लाक्षणिक नाम प्रतीत होते हैं, मालव जाति जनतन्त्रीय शासन से शासित होती थी अतएव गणाध्यक्ष को राजा के समान विरुद नहीं होता था इसी कारण इन पर विरुद अंकित नहीं है। महाराय विरुद प्रतीत होता है पर यह भी सम्भव है कि वह नाम ही हो यह भी सम्भव है ये स्वल्प रूप हो यथा जय मालवकनां के स्थान पर ज. म. विक्रम जयः के स्थान पर वे ज सम्भव है। यह प्राकृत रूप हो अंकन मुद्रा राजाओं के उपरोक्त नामों में अधिकतर नाम म से प्रारम्भ होते हैं यह भी सम्भव है महाराय यदि उपाधि है तो उसका यह स्वल्प रूप हों। मालवगण पंजाब राजपूताना से मालवा में अवतरित हुए तथा उनकी स्थिरता की ही ये मुद्रायें द्योतक हैं लिपि से विक्रम प्रारम्भ अथवा विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दि की है।

(शंख) जीष्ट्यूजीम

उ. प्र. ५/४ यह एक रजत मुद्रा है तथा इसके दोनों ओर अक्षर है एक ओर जनी स्पष्ट दिखाई देता है अतएव

सम्पूर्ण अक्षर अजनीय होना चाहिये। दूसरी ओर दिखाई देते कुछ अक्षर स्पष्ट नहीं हो सके यह भी दुष्प्राप्य मुद्राओं में से ही है इस प्रकार ताम्र मुद्रायें मिली हैं पर आज तक कहीं भी रजत मुद्रा नहीं मिली थी। यही इस प्रकार की सर्व प्रथम रजत मुद्रा है। (डा. अलतेकर के पत्र)

उ. प्र. ५/५ यह मुद्रा एक मसूर के दाने के बराबर है तथा इस प्रकार ब्राम्ही में जम अथवा जी म लिखा है एवं पृष्ठ की ओर कोई चिन्ह नहीं है।

प्रकार ६ उजयिनी में सीसा व, जस्ते की भी मुद्रायें मिली हैं जिन पर मकार अङ्कित है, अन्य कुछ मुद्रायें भी यहां मिली हैं जिन पर के चिन्हों से वे आंध्र प्रतीत होती हैं। इन पर एक ओर हाथी व नाहुन व मकार अँकित है तथा दूसरी ओर सुमेरु वा चैत्य है (चित्र ८/२) दूसरी मुद्राओं पर वेष्टित वृक्ष चैत्य, हाथी मकार व स्वस्तिक, वेदी अँकित है (८/३) एक मुद्रा पर स्वस्तिक है तथा दूसरी ओर शक्तिदंडधारी व्यक्ति, मकार एवँ शरयुक्त गोलाकार कूर्म मत्स्य व नदी दिग्दर्शक रेखा है ये तक्षशिला में अधिकतया पाई जाती हैं। दोनों ही स्थान विद्या के केन्द्र होने से विद्वानों का आना जाना चलता ही था अतएव उन्हीं के साथ ये मुद्रायें भी यहां आई होंगी। यहां अनेक गधियां मुद्रायें भी प्राप्त हुई हैं। ये शक राजाओं के द्वारा चलाये गये सिक्के हैं, तांबे पर चांदी का पानी चढ़ाया हुआ है। इनका विस्तृत विवरण अनेक स्थानों पर आया है अतएव इनका विस्तार वर्णन नहीं किया। मालवा की कुछ ताम्र मुद्राओं का यहां वर्णन करना आवश्यक है ये नवीन प्रतीत होती हैं क्योंकि इनका वर्णन अन्यत्र पढ़ने को नहीं मिला इनके दो प्रकार है उ. प्र. ८/६ में छोटी मुद्रायें आती है। इन पर केवल रेखाय अंकित है तथा उनके अर्थ चौकोर आकृति बनती है दूसरी ओर सूर्य सा चिन्ह है, बड़ी मुद्रा उ प्र. ६/२ पर एक ओर आड़ी रेखा पर दो लम्ब रेखायें खड़ी हैं तथा उनके सिरों पर दो अर्ध चक्र हैं कुछ अन्य रेखायें भी हैं अन्य कुछ छोटी मुद्राओं पर भी भिन्न चिन्ह अँकित है।

प्रकार ६ इस प्रकार की मुद्राओं का ५ भागों में विभक्तिकरण किया है उ० प्र० ६/१ एक ओर बीच में बैल है इसके सींग आगे को हैं तथा ऐसा प्रतीत होता है कि वह खूँटे से बंधा है तथा आगे
यूप के आगे चौखट में मत्स्यद्वय होना संभव
इसके आसपास और भी कुछ चिन्ह बने हैं पर
अगम्य हैं। दूसरी ओर गोलयुक्त उज्जयिनी चिन्ह
उ० प्र० ६/२ इसमें दाहिनी ओर मुँह किये एक
बैल बताया है इसके ऊपर एक मकार अंकित है तथा दूसरी
ओर गोल युक्त उज्जयिनी चिन्ह है।

उ० प्र० ६/३ उपरोक्त प्रकार के समान ही
इस मुद्रा पर अंकित है पर अंकन भद्दा है मकार
है किंतु उज्जयिनी चिन्ह का गोल एवं एक उठी
रेखा है उ० प्र० ७/४ बाई ओर मुँह किये एक
इस मुद्रा में है तथा पृष्ठ पर ब्राह्मी में हाराज
अंकित है अर्थात संपूर्ण शब्द महाराज होगा।

पद्मावती (पवाया म० भा०) से अनेक इसी
की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं और उनमें अनेक नाग
का प्रसार मालव जाति के अपकर्ष के पश्चात कुछ
इस ओर आया होगा अथवा पवाया के और
के व्यापार के कारण ये मुद्राएँ यहाँ आई होंगी।
राजाओं का चिन्ह स्थिर अथवा गतियुक्त बैल भी
हैं जैसे बैलों वाली मुद्राएं महाराज भवनाग, गणपति,
स्कंधनाग विभूनाग, वृषनाग एवं वीरसेन की है
यह मुद्रा भी इसी नागवंश की होगी वि०
अ० पृ० ६४६ उ० प्र० ७/५ इस मुद्रा में
ओर दक्षिणाभिमुख बैल है उसके सन्मुख
तथा पीछे एक खड़ा दण्ड एवं नीचे दो रेखाओं
में कूप व मत्स्य अंकित है।

प्रकार ७ इस प्रकार की मुद्राओं में एक ओर
की मुखाकृति और दूसरी ओर राजा का नाम व
अंकित है। नामावली बाजू के मध्य में अथवा
युक्त परशु अंकित है ये मुद्रायें जिन पर त्रिशूल
है संभवतः नाग अथवा वल्लभी राजाओं से
क्योंकि दोनो वंशों ने इस चिन्ह को अपनाया
कलचुरी राजाओं के सिक्कों पर भी यह
गया हैं। वे ताम्बे की मुद्राएं हैं तथा उन पर
का पानी चढाया है। यह मुद्रा संभवतः
जो कलचुरी वंश का राजा था तथा मालव पर

६ ठी शताब्दी में कुछ समय राज्य किया था। डॉ० अलतेकर महोदय ने लिखा है "कि त्रिशूल बल्लभी मुद्राओं का प्रमुख चिन्ह था वैसे ही कुछ नाग मुद्राओं का चिन्ह था परंतु क्र० १४ व १५ (मेरे एक पत्र में उपरोक्त मुद्राओं का क्रमांक यही था) बहुत संभव है कि कलचूरी राजा कृष्णराज की मुद्रायें हैं जो तुम्हारे (मालवा प्रदेश पर ६ठी शताब्दी के अन्त में राज्य कर रहा था।" (डॉ० अलतेकरजी के पत्र)।

साथ ही साथ यहाँ महेश्वर (माहिष्मति) के ३ मुद्राओं का वर्णन कर देना श्रेयस्कर समझता हूं ये मुद्रायें मण्डल की जो महेश्वर से प्राप्त हुई हैं वो मुद्राओं पर वेष्टित-वृक्ष बैल, उज्जयिनी चिन्ह एवं मत्स्य कूर्म है उज्जयिनी चिन्ह की मुद्रायें लम्बी हैं। ३ री मुद्रा गधिया है। प्रथम दो मुद्रायें कसरावद मुद्राओं के समान हैं एक ताँबे की चैत्य सदृश्य वस्तु भी महेश्वर से प्राप्त हुई है जो २ मिलिमीटर ऊंची एवं १½ मि. मि. चौड़ी है और अंदर से टोप सदृश्य मोटी है तथा नीचे की ओर दो छेद हैं। एक छेद का भाग टूट गया है अतएव केवल अनुमान लगाना पड़ता है। यह छेदों के कारण यह वस्तु कर्णकुण्डल सी प्रतीत होती है। बनावट से ढली हुई है ऐसा अनुमान होता है। इस पर चौखटा उठावदार हिस्सा है जो अत्यन्त महत्व का है इस हिस्से की बाईं ओर वेष्टनीयुक्तवृक्ष है तथा दाहिनी ओर उभरी हुई रेखाओं में कुछ कमानदार आकृतियां हैं। ढली हुई प्राचीन मुद्रा पर भी यह चिन्ह दिखाई देते हैं अतएव यह अभ्यास योग्य वस्तु है।

उपरोक्त मुद्राओं के वर्णन में ऐसी मुद्राओं के वर्णन भी आगये हैं जिनका अन्यत्र उल्लेख आया है, सभी नई मुद्रायें नहीं है पर उज्जयिनी से प्राप्त मुद्राओं का एकत्र अभ्यास कम से कम हिंदी में इतना विस्तृत देखने में नहीं आया है अतएव यह छोटा सा प्रयत्न मैंने किया है। वैसे ही कुछ नई मुद्राएँ भी प्रकाश में आई है जिनका (उ० प्र० ५/४, ५/५, ५/६, ७, ६, ३/१, ३/२,) उपयोग मुद्राविशारद अवश्य अपने संशोधन में कर सकेंगे। इनके अलावा अन्य मुद्राएं भी इस संग्रह में हैं तथा-मगिय की सुवर्ण मुद्रा परमारों की चार मुद्रा, श्रीमद् बजावरी वाली मुद्रा तथा कुछ मुसलमानी मुद्राए। किंतु इस लेख में केवल प्राचीन मुद्राओं का ही वर्णन किया है आहत चिन्हों का साम्य मृत्तिका पात्र चित्रणों से करते समय मुद्राओं पर अंकित चिन्ह एवं एलन द्वारा दिए हुए चिन्हों की सहायता ली हैं। अक्षरों के पठनार्थ ओझाजी की लिपी-माला, ल० श्री० वाकणकर द्वारा लिखित "राष्ट्र लिपीचा उदगम नी विकास" (विवेक आवर्टो ४६) एवं बूल्हर के पार्ट उपयोग में लाये हैं, लेखन के लिये व० चं० छावड़ा श्री० अलतेकरजी व श्री म० शा० वाकणकर इनकी प्रेरणा ही रही हैं अतएव उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अतिशयोक्ति न होगी।

नर्मदा उपत्यका के लोक गीत

[श्री श्याम परमार एम. ए., एल. टी.]

उत्तर में विन्ध्या और दक्षिण में सतपुडा के मध्य नर्मदा के दोनों ओर दूर दूर तक फैला हुआ प्रदेश निमाड़ कहलाता है[1]। किन्तु मालवा के पठार से नीचे उतरते ही नर्मदा की उपत्यका में निमाड़ी संस्कृति के वे सभी चिन्ह मौजूद हैं जो नर्मदा से दूर जाने पर भी उपलब्ध होते हैं। पूर्वकालीन नार्मदीय सभ्यता का स्वरूप यद्यपि अब लुप्त हो चुका है, पर उपत्यका में बिखरी हुई लोक-साहित्य की सम्पत्ति और परम्पराओं में सुदूर इतिहास के वे अवशेष छुपे हैं जिनकी समता मालव-सभ्यता से सहज ही की जा सकती है।

नर्मदा उपत्यका अपनी उपज के कारण सदैव ही खेतीहर मानव के आकर्षण का स्थल रही है। सम्पूर्ण उपत्यका में कृषि-सभ्यता का वर्चस्व निमाड़ी व्यक्तित्व का परिचायक सिद्ध होता है। उसके लोकगीतों में नर्मदा का प्रभुत्व, ओंकार-मांधाता की स्तुति, कृषि गत विश्वास, सुदृढ़ परम्परा और जीवन के सारल्य का बोध विद्यमान है। नर्मदा के ठीक किनारे पर नाविकों की जाति "नावडया" की अपनी विशिष्ट परम्पराओं में नर्मदा एवं उससे संबंधित नैसर्गिक अथवा अनैसर्गिक घटनाओं के उल्लेख तथा गहरे अन्ध-विश्वास गुम्फित हैं।

नर्मदा उपत्यका के लोकगीतों की अभिव्यक्ति का माध्यम निमाड़ी बोली है जिसका मालवी से मिला जुला "कैरेक्टर" है। केवल कतिपय प्रयोग एवं उच्चारण गत वैशिष्ट्य के अतिरिक्त निमाड़ी मालवी से भिन्न नहीं। वस्तुतः उसकी आधार भूमि मालवी है, जिसे स्वयं डा० ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वे की बृहद् जिल्दों में स्थान देकर घोषित किया है। इतना ही नहीं मालवी और निमाड़ी गीतों में काफी साम्य है। विवाह के बन्ने, देवी-देवताओं के गीत, बालकों के गीत, जन्म से संबंधित गीत, जलमा, सूरज, बधावे होली, सावण, आदि अनेक गीतों की समानता नार्मदीय जीवन में प्रचलित गीतों से करने पर य स्पष्ट हो जाता है कि मालवा से लगा कर निमाड़ के ओर तक एक संस्कृति की धारा अविछिन्न रूप से बह रही है। विवाह अथवा किसी मांगलिक कार्य प्रारम्भ करने के पू पूर्वजों को आमन्त्रित करने के लिए एक गीत गा जाता है :--

सरग भवन्ती हो गिरधरनी
एक सन्देसो लई जाव;
सरग का (अमुक) दाजी से यों कीजों,
तम घर (अमुक) को याव;
जेम सर आए सारजो हो
हमारा तो आवणा नी होय,
जड़ी वृथा बज्जड़ कवाड़
अगल जड़ी लुआ की जी

"--हे स्वर्ग की ओर जाने वाली गिद्धनी, एक सं लेती जा। स्वर्ग के अमुक: दाजी से यों कहना कि तुम्ह घर अमुक का विवाह है।"

"जिस तरह भी हो सके तुम उसे पूर्ण करना हमा तो आना नहीं हो सकेगा, यहां सुदृढ किवाड़ जड़े हुए जिसमें लोहे की अर्गलाएँ लगी हैं।"

ठीक यही गीत मालवा में इस प्रकार की शब्दावलि में अवगुण्ठित है :--

सरग भवन्ती साबली एक सन्देसो लेती
जई न बूढा गळळा से यूँ किजे;
तम घर बरदौड़ी हो,
ताळा जड़या लोहे का ने बज्जड़ कंवा
काचा सूतर का पालना बंध्या है सरग
बरद करो बरदावना, हमारो तो आवणो नी

बालिकाओं द्वारा गाए जाने वाले दो गीतों का भी देखिए :--

---

[1] 'निमाड़' सम्भवतः 'नर्मदा कांठा' अथवा 'नर्मद-अहुरा से बना हुआ शब्द है।

गोगो (निमाडी)

बाप बेटा जीमण बैठा
नी लोटा में पाणी जी
चलो भाभी जी पाणी लांव
अगली गागर तम भरो जी
पिछली गागर हम भरां
गागर का अटका बटका
और मोती जिराये जी

साँझी के गीत (मालवी)

म्हारा बिराजी जीमण बैठा
नी कळषा में पाणी जी
चलो देरानी चलो जेठानी
आपण चालां पाणी जी
ऐली सरवर तम भरो
पेली सरवर हम भरां जी
भरते भरते भई लचकाना
--वई' लचकाना
आंवी कल का अटका बटका
आदी कल का मोती जी
मोती लई ने चलवा लाग्या
लाड़ लो ललकारे जी
ऊभोरे लालूड़ा म्हारा भई बिरा से केवादे
भई बिरा की सातर राणी
साती कामण गावे जी
(उज्जैन जिले में प्रचलित)

नर्मदा उपत्यका के लोक-गीत साहित्य का विस्तार उल्लेखनीय है। संक्षेप में हम उसे निम्न रूप में विभाजित कर सकते हैं :--

प्रबन्ध गीत:--कृष्णावतारी कथा, पाण्डव कथा, अहिमन कथा, चन्द्रहास, नरसी मेहता, मंजी पवार (मुँज पंवार,), मिलना, काजल राणी बामा भगत, धन्ना जाट, नागजी, ग्यारस आदि।

मुक्तक गीत:- भरथरी, वैराग, मृत्यु गीत, सिंगा भगत के गीत, गोपीचन्द, सप्ताह के गीत, कबीरा, तुलसी, कपास, तमाखू, पान विशेष से सम्बन्धित गीत, लावनियाँ, गरबी, पंवाड़े, नाविकों के गीत आदि।

स्त्रियों के गीत:-होली, गणगोर, रणाबाई, जन्म के गीत, विवाह के गीत, नाग महाराज, स्तुति गीत, चन्द्रसखी के भजन, मीरा के छाप वाले गीत, ऊँवरा, सास ननद के गीत, गोना, बिदाई गरबी के गीत, ख्याली गीत आदि।

बच्चों के गीत:-साला मंगनी (मालवा में छल्ला), गोगो, संजा, डेडर माता, घत्तोद्।

प्रथम गीतों में 'मंजी पंवार' धारा नगर के मुंज संबंधी वीर काव्य है। उनका गोड़ों से युद्ध-वर्णन, विजय और अनेक घटनाओं से युक्त उक्त प्रबन्ध प्रायः बरसात के दिनों में गाया जाता है जिसकी स्थायी टेक है :--

'धन रे सुरमा
धन म्हारी माता दुवारे
राणी को जायो पुँवार
ज्यों बल देती माता चोसठ जोगनी
भैरव की आगेवान कपड़ा हिन्दु'

"मिलना" गोपालक जातियों का गद्य-गीतात्मक प्रबंध है। एक ग्वाले को महादेव की कृपा से मिलना नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। उसके जन्म लेते ही राजा के नगारे सोधे हो गए। बालक मिलना का जीवन युद्ध से आरम्भ हुआ। वह मालवा तक में राजा मोरध्वज से लड़ा। अन्त में उसकी कन्या से विवाह कर अपने जन्म स्थान पर लोटा। गवली, भारूड़, गूजर आदि जातियों में 'मिलना' का प्रचार बहुत है। गूजर "हीरा" (हीड़) भी गाते हैं। "काजल राणी" का प्रचार भी शेष प्रबन्धों के साथ निमाड़ में है। धार्मिक प्रबन्धों में "ग्यारस" मालवा की तरह समस्त उपत्यका में प्रचलित है।

इसमें सन्देह नहीं कि नर्मदा उपत्यका के जीवन में लोक संगीत गहराई से समाया हुआ है। गाने का निमंत्रण 'चलो आटा लगाने' का कर दिया जाता है। चोपाल अथवा हताई में मण्डलियां जम जाती हैं। 'आटा लगाने' से तात्पर्य मृदंग के एक ओर के बोल दुरस्त करने के लिए आटा 'चोंटाने' से है। मृदंग के बजने से गीतों का मुखर होना

सहज ही सम्भव हो जाता है । मृदंग के अतिरिक्त ढप, झांझ और ढोलक का प्रयोग गायक-मण्डलियों में किया जाता है । स्त्रियाँ बिना साज के गाती हैं । क्योंकि उनके गीतों का सम्बन्ध में रीति रिवाज से अधिक है । इसलिए वे परम्परायी भी अधिक होते हैं । उनमें टिकाऊपन का तत्व होता है ।

नर्मदा-उपत्यका के मृत्यु गीत विशेष उल्लेखनीय हैं । आत्मा परमात्मा के एकीकरण के भावों से लबरेज मृत्यु गीत निमाड़ी बोली में 'मसाण्या गीत' कहलाते हैं । मृत शरीर के पास बैठ कर गायक दल दाह-संस्कार समाप्त होने तक उन्हें गाता रहता है । केवल युवा पुरुष अथवा नारी की मृत्यु पर उन्हें नहीं गाया जाता । मृत्यु गीत वस्तुतः आध्यात्मिक, विरागी और सांसारिक लोक से ऊपर उठाने वाले भावों में समृद्ध हैं । उन्हें मृदंग के साथ सामूहिक रूप में गाया जाता है । उदाहरणार्थ एक मृत्यु गीत लीजिए :--

आणो[1] आयो रे परिब्रह्म को
अरे सासरिया के जाण
आणो आयो रे परिब्रह्म को ।

१

चालो म्हारी सांत की सई[2] होण
अरे अपण न्हावण[3] जावां
अरे कई देवा मन्दिर सिदारां[4]
आणो आयो रे परिब्रह्म को

२

चालो म्हारी साँत की सई[2] होण
अरे अपण माथो गुँथावा
कई गुंथ्या कई गूँथनो
मोतीअन मांग पुरावां
आणो आयो रे परिब्रह्म को

३

चालो म्हारी सांत की सई होंण
अरे खासी बाग लगाई
चम्पा चमेली दोय मोगरा
अरे खासो बाग लगायो
आणो आयो रे परिब्रह्म को

४

चालो म्हारी सांत की सई होण
अरे खासी चोली सिवाडी
कई रे सीया कई सीवणा
अरे देवा अंग लगावो
आणो आयो रे परिब्रह्म को

मृत्यु गीतों के ऊपर मध्यकालीन साधना की छाप स्पष्ट है । नाथपंथियों की शब्दावली का प्रवेश इन गीतों में कदाचित् १५वीं शताब्दी के बाद सम्भवतः हुआ । कबीरा की छाप भी मृत्यु गीतों में मिल जाती है । जिससे कबीर के माया मोह से ऊपर उठे हुए व्यक्तित्व का लोक जीवन पर प्रभाव प्रगट होता है ।

उपत्यका में दूसरा प्रभाव संत सिंगा का है । सिंगाजी एक गवली के घर पैदा हुए थे । अपने गुरू से वैराग की दीक्षा लेकर वे अपनी अथक साधना से सिद्ध पुरुष हो गए । कहते हैं कि संत तुलसीदास महेश्वर तहसील के निकट पीपल्या ग्राम में सिंगाजी से मिलने के लिए आए थे । औलिया पीर भी सिंगाजी से प्रभावित हुए । सिंगाजी की मृत्यु खण्डवा के निकट हुई । नर्मदा उपत्यका के कृषकों में सिंगाजी का प्रभाव बहुत है । उनकी स्तुति में गाए जाने वाले गीतों के अतिरिक्त दलू और धन्ना भगत की छाप वाले गीत बहुत गाए जाते हैं । स्वयं सिंगाजी के बनाए हुए गीत भी कहीं कहीं प्रचलित हैं । उनका एक गीत है:-

१

ऐसा नर कू सेवणा
जिन जग को जिलाई
बड़वा भोंपा सब कहे
जिन ठग खाई जगाई
जिनका घर का मरी गया
वाकूँ क्यों न जिलाई

२

बात करे सो क्या भए
आतमा कल पावे,[1]

---

१. बुलावा, २. सहेली, ३. स्नान, ४. जायें

१ कष्ट देना

फिरता-हिरता मरी गया
वा नर बैकुण्ठ पावे

३

तिरथ करे सो क्या भये
असनान करावे
जे नर जल कू सेवता
वा मगर कहावे

४

जगन १ कोटि एक फल है
नित साद २ जिमावे
कह जण सिंगा पहचाणजो
वा नर बैकुण्ठ जाए ।

[तिरमख ऊकार, घोट्या ग्राम से प्राप्त]

नर्मदा उपत्यका के संगीत में नारवी, ग्वालन, गरबी, लावनी और पवाड़ा की धुनें पुरुषों में उल्लेखनीय हैं । पुरुषों के गीत प्रायः सामूहिक या बैठकी होते हैं। जो "षतिंगड़" में आरम्भ होकर "दौड़" या उड़ान में आ जाते हैं। "लावनी" और "पवाडे" का प्रभाव खानदेश से और गरबी का गुजरात से उपत्यका में प्रसरित हुआ है । भजनों में "नारदी", "चौताला" और "हतई के भजनों" की अलग-अलग रंगतें हैं। लंगड़ी रंगत, बड़ी रंगत, छोटी रंगत, आड़ी और खड़ी रंगत अलग-अलग लोक संगीत के गाने की पद्धति को व्यक्त करती हैं। गरबी के भी विभिन्न प्रकार हैं जिन्हें चार पाई, दो पाई, डेढ़ पाई, और एक पाई के बन्दों में बांटा जा सकता है ।

"किलगी-तुर्रा" का उल्लेख करना आवश्यक नहीं, क्योंकि वह बुद्धि-परक छन्द कौशल को प्रगट करने का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें दो दलों की संगीत बद्ध द्वांदीय टक्करें होती हैं "किलगी तुर्रा" शक्ति के उपासक का दल होता है और 'तुर्रा" शिव के। "किलगी-तुर्रा" रीतिकालीन व्यवस्था में विकसित हुआ वह संगीत है जो राजस्थान और मालवा तक में मिलता है। उसे हमें लोक संगीत से थोड़ा उठा हुआ मानना चाहिए, क्योंकि जुआबी, अंधर-रकारी, तितारी, चौतारी, दुअंग, मनबसी झड़ झड़पी, सिकस्ती, बहरतबीर, सनत, संर, दूहा, आदि छन्द प्रकारों का प्रवेश उसके विकास पर प्रकाश डालता है।

नर्मदा उपत्यका की उपज अच्छी है। जमीन न काली है और न भूरी। यद्यपि 'छहड़ो' और 'बहड़ी' उनके दो प्रकार दृष्टव्य हैं। लोगों के पास खेती के औजार पुराने ढङ्ग के हैं। उपत्यका के बैल 'सोन कावरे' होते हैं अर्थात् स्वर्ण और काले सफेद रंग की मिलावट वाले । निमाड़ी पुरुष सफेद रङ्ग पसन्द करता है। वह कुरता या "झूल" पहनता है तथा शिर पर लाल पगड़ी बांधता है। स्त्रियां घाघरा और लुगड़ा पहनती हैं। वक्ष पर कांचली पहनती हैं। कुलमी, भारूड़, रजपूत, मट्ठे, अहीर आदि स्त्रियां "काछटा" लगाती हैं। उन्हें लाल रङ्ग से विशेष चाव है । उनकी पसन्द, गहने और वस्त्रों का उल्लेख गीतों में छिटके पड़े हैं।

नर्मदा उपत्यका मानव विकास के इतिहास में उल्लेखनीय स्थल है। उसी प्रकार अपने लोक साहित्य, सङ्गीत और लोक नृत्यों में भी वह समृद्ध एवं परिपूर्ण है।

—निमाड़ पर्यवेक्षण समिति के सौजन्य से

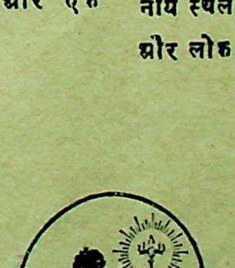

---

१. यज्ञ, २. साधु

नीरजा के गीतों की भावगत आधार-भूमिका

श्री० दुर्गाप्रसाद झाला

प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी--काव्यगत श्री शोभा को विकसाने वाले ऐसे मूल प्रणेता एवं निर्मायक हैं, जिनके कि स्वर-छन्दों ने छायावाद की समस्त भाव एवं रूप-राशि के बिखरे सौन्दर्य को अपने शब्दों के घेरे में बांधकर अन्य कवियों के लिए कुछ भी शेष नहीं रखा; ठीक उसी प्रकार जैसे कि भक्तिकाल में कबीर, सूर, तुलसी और मीरा ने तत्कालीन काव्य-वैभव को उसके सम्पूर्ण रूप में अपनी निश्छल और सहज अभिव्यक्ति में बांध लिया था। प्रसाद ने जब कि काव्य की गुरुता को अक्षुण्ण रख उसमें आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की, पन्त ने प्राकृतिक सौन्दर्य में रहस्य की झांकी पाई और निराला ने अहंब्रह्मास्मि की उद्घोषणा कर अपने प्रबल पौरुष का उद्घाटन किया तो नारी के निष्कपट आत्म-निवेदन की भावना का तथा करुणा से ओत-प्रोत माधुर्य-भाव की सृष्टि का सौन्दर्य अछूता ही रह गया था। महादेवी वर्मा के गीत इसी अभाव की पूर्ति के रूप में अभिव्यक्त हुए।

'नीरजा' इन्हीं आत्म-निवेदन तथा माधुर्यभावमूलक गीतों के चरम विकास की एक सीमा है; क्योंकि महादेवी जी का मानसगत भाव-वैभव अपने सम्पूर्ण रूप में इन ५८ गीतों की सीमा में बंध गया है। बाद में जो कुछ भी गीत-सृष्टि हुई है उनमें चित्रों की कुछ नवीन रङ्गीनता के साथ प्रायः इन्हीं भावनाओं की पुनरावृत्ति हुई है।

वैसे तो 'नीरजा' के समस्त गीतों की भाव-भूमि का मूल आधार एक ही तत्व आत्म निवेदन में खोजा जा सकता है। यह आत्म-निवेदन मूलतः प्रणयमूलक है, जो कि सिद्धांततः एक अपार्थिव सत्ता (निर्गुण ब्रह्म) के प्रति किया गया है। इस प्रकार ये गीत सिद्धान्त की दृष्टि से भावात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत आते हैं, जो कि निर्गुण निराकार ब्रह्म को अपने भाव का आधार बनाता है। लेकिन यह एक विवादास्पद तथा चिन्तनीय विषय है कि निर्गुण ब्रह्म को किस हद तक भाव का आधार बनाया जा सकता है। निर्गुण निराकार सत्ता ज्ञान तथा चिन्तन का विषय तो हो सकती है, लेकिन इन्द्रियगम्य न होने के कारण उसके प्रति अपने राग को केन्द्रीभूत करना अत्यन्त ही कठिन है। राग का सम्बन्ध मन तथा इन्द्रियों से है; अतएव राग-तत्व के उत्तेजन के लिए किसी पार्थिव-आधार का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार यह भावात्मक रहस्यवाद अपने रहस्यवादी रूप में ज्ञान-तत्व पर ही आधारित है जो कि अपनी भावगत प्रेरणा लौकिक अथवा पार्थिव आधार से ही ग्रहण करता है। यह बात एक बड़ी सीमा तक मध्यकालीन संत कवियों पर भी लागू होती है। यद्यपि उन्होंने तात्त्विक रूप में निर्गुण ब्रह्म को ही आराध्य के रूप में देखा है; लेकिन काव्य के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में उसे साकार तथा पार्थिव रूप भी प्रदान किया है। आधुनिक कवियों के विषय में तो यह बात शत-प्रतिशत ठीक उतरती है।

स्वयं महादेवी द्वारा किए हुए रहस्यवाद के विवेचन से भी ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं। उन्होंने लिखा है। 'उसने (रहस्यवादी कवि ने) पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदांत के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली, और इन सबको कबीर के दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बांध कर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे, पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।" महादेवी के इस विवेचन से आधुनिक रहस्यवादी गीतों के और अन्ततः 'नीरजा' के भी गीतों के तीन तथ्यों पर प्रकाश पडता है :—

(१) उसने चिन्तन के क्षेत्र में पराविद्या की अपार्थिवता तथा वेदान्त के अद्वैत का प्रभाव ग्रहण किया।

(२) अनुभूतिगत तीव्रता का आधार लौकिक प्रे ही रहा। और

(३) अभिव्यक्तगत रूप का आधार दाम्पत्य-भा सम्बन्ध रहा।

अतएव सिद्ध है कि नीरजा के गीतों की मूल आ भूत अनुभूति पार्थिव तथा ऐन्द्रिय ही है; हाँ चि के द्वारा परिष्कार कर उसे अतीन्द्रिय एवं अपार्थिव

देने का प्रयास अवश्य किया गया है; जैसा कि डॉ० नगेन्द्र ने दीप शिखा के गीतों का विवेचन करते हुए लिखा है। महादेवीजी के जीवन में सन्तों की आत्म-साधना देखना तो उपहास्य होगा; परन्तु अपनी वासना का परिष्कार करने के लिए उन्होंने साधना की है और अब भी कर रही हैं। उनका काफी समय आध्यात्मिक-साहित्य के अध्ययन और मनन में बीतता है। अतएव उनके गीतों में जो रहस्य संकेत मिलते हैं वे पूर्णतः स्वानुभूत सत्य न होते हुए भी एकदम छायावाद-युग के कवि-समय मात्र भी नहीं हैं।"

यह आत्मनिवेदन मूलतः एक चिर विरहिणी नारी का आत्म-निवेदन है। अतएव विरह की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप ही इसकी अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय काव्य-शास्त्र की दृष्टि से विरह की ग्यारह अवस्थाएं मानी गई हैं, अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता, मूर्च्छा और मरण। महादेवीजी की विरह-भावना चूँकि चिन्तन और मनन की बौद्धिक पृष्ठ भूमि पर आधारित है, अतएव वह संयत है और परिणामतः प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा और मरण की सीमा तक नहीं पहुँचती है; अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन और उद्वेगगत विरह-भावना के चित्र ही हम उनके गीतों में पा सकते हैं। अपनी इन विभिन्न मानसिक स्थितियों को उन्होंने विभिन्न प्रकारों द्वारा प्रकट किया है और अगर इस आधार पर उनके गीतों का वर्गीकरण किया जाए तो वह इस प्रकार होगा : (१) अभिलाषा मूलक (२) जिज्ञासात्मक (३) मानसिक स्थिति के विश्लेषक और (४) सिद्धान्तमूलक। चिन्ता, उद्वेग, मरण, गुण-कथन आदि विरह की विभिन्न अवस्थाएँ इन्हीं प्रकारों में अभिव्यक्त हुई हैं। निम्न उद्धरण इस लक्ष्य पर विशेष प्रकाश डाल सकेंगे।

१. अभिलाषा मूलकः—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

२. जिज्ञासात्मकः—

कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में !
कौन तुम मेरे हृदय में ?

३. मानसिक स्थिति के विश्लेषकः—

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात!

४. सिद्धान्तमूलकः—

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं!
... .

कूल भी हूँ, कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं!

इस आत्म-निवेदन तथा विरह मूलक भावना के अतिरिक्त अन्य और भी तीन ऐसे मूल भाव हैं जो कि 'नीरजा' के गीतों की आधारभूमि का काम करते हैं तथा गीतों के मर्म को समझने में पृष्ठभूमि का काम देते हैं। वे मूल भाव हैं : (१) सुख-दुःख का समन्वय (२) सर्ववाद अथवा जीवन की अखण्डता का भावन, और (३) प्रकृति में बिखरी हुई सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमय अनुभूति।

(१) सुखःदुख का समन्वयः नीरजा के ये गीत वैयक्तिक सुख-दुःख की ही अभिव्यक्ति हैं--यह महादेवीजी के गीतों का ही नहीं, वरन समस्त छायावादी गीतकाव्य का ही एक स्थूल सत्य है। महादेवी वर्मा ने तो गीत की परिभाषा ही इन शब्दों में की है : "सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।" आगे वे लिखती हैं : 'आनन्द से मनुष्य जब चंचल होता है, तब भी गाता है और व्यथा से जब हृदय भारी हो जाता है, तब भी गाता है।" इस प्रकार महादेवीजी के अनुसार सुख और दुःख दोनों की भावावेशमयी अवस्था विशेष ही गीतों की मूल जननी है। सिद्धान्ततः नीरजा में इन दोनों ही तत्वों का समन्वय किया गया है। पन्त और प्रसाद की कृतियों में भी सुख और दुःख के समन्वय का दर्शन हमें मिलता है। यह समन्वय दोनों ही रूपों में है--तथ्य के रूप में भी और आदर्श के रूप में भी। पन्तजी कहते हैं :

यह सांझ उषा का आंगन, आलिङ्गन विरह मिलन का
चिर हास अश्रुमय आनन, रे इस मानव जीवन का।

इसी प्रकार प्रसादजी ने आंसू में लिखा है :

लिपटे सोते थे मन में सुख-दुःख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अंधेरी मिलती मालती कुंज में जैसे

महादेवी भी नीरजा के गीतों को इन दोनों ही तत्वों से प्रेरित मानती हैं। उनकी अनुभूति जहां एक ओर दुःख का स्पर्श करती है, वहीं सुख का भी छोर छूती है।

दुःख से आविल, सुख से पङ्किल
बुद-बुद से स्वप्नों से फेनिल
बहता है युग युग से अधीर
प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर

प्रिय के अभाव की चिरन्तन कसक और जलन की अनुभूति को ही सुख का प्रतीक मानना--उनकी इस समन्वयात्मका भावना को ही प्रदर्शित करती है। कवि साधना में ही साध्य एवं विरहानुभूति में ही सुख की झांकी पा लेती है और फलस्वरूप सुख-दुःख की व्याख्या एक नया रूप लेती है।

जलना ही प्रकाश उसमें सुख !
बुझना ही तम है तम में दुख !

—यह तो हुआ सैद्धान्तिक दृष्टि से विवेचन, लेकिन व्यवहारिक धरातल पर वेदना, पीड़ा और फलस्वरूप दुःख की ही गहरी छाया इनमें ओत-प्रोत दिखाई देती है। महादेवीजी की इस धारणा में कोई अधिक तथ्य नहीं कि सुख और दुलार के आधिक्य की प्रतिक्रियास्वरूप ही इन गीतों की सृष्टि हुई है। और फिर बुद्ध का प्रभाव तो वे स्वयं भी स्वीकार करती हैं, जिनके मतानुसार यह सारा संसार दुःखरूप ही है। अतएव सुख-दुःख का समन्वय बौद्धिक धरातल पर ही हुआ है।

यह सुख दुःख की भावना पूर्णतः वैयक्तिक आधार-भूमि पर ही स्थित है; जो कि व्यक्तिवाद का रूप ग्रहण करती है। व्यक्तिवाद विद्रोहजन्य भी हो सकता है और पलायनशील भी। 'निराला' का व्यक्तिवाद विद्रोहजन्य है। उनका अन्त प्रबल पौरुष से युक्त है और वह उद्घोषणा करता है : 'पद रज भर भी है पूरा नहीं यह विश्व भार।' महादेवी का व्यक्तिवाद पलायनशील है, जो कि सर्वथा एक नए रहस्य लोक से, एक अपार्थिव प्रियतम से सम्बन्ध जोड़ता है, जिसका कि आधार केवल मन की छलना में ढूंढ़ा जा सकता है।

(२) जीवन की अखण्डता का भावनः—यह छायावाद का मूल जीवन-दर्शन है; जो कि अपने में प्रगति के तत्व को समाहित किए हुए हैं। सामन्तीय व्यवस्था में मानव-जीवन खण्ड-खण्ड रूप में विभाजित था और एक सामान्य अखण्ड मानवता के आदर्श का कोई अस्तित्व नहीं था। पूंजीवाद के प्रथम विकासशील स्वरूप ने इस आदर्श की स्थापना की; जो कि साहित्य में भी प्रतिफलित हुआ। यह दूसरी बात है कि वह आदर्श प्रयोग का रूप न पा सका और न पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसा सम्भव ही है।

छायावाद के प्रमुख कवि, पन्त, प्रसाद, निराला--सभी में इस जीवन-दर्शन ने अभिव्यक्ति पाई। प्रसाद ने सारी प्रकृति में एक ही तत्व की सत्ता को प्रधान माना। कामायनी में उन्होंने लिखा :

ऊपर जल था, नीचे हिम था, एक तरल था—एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।

इसी प्रकार 'पन्त' ने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा: "प्रकृति के प्रत्येक कार्य रात्रि—दिवस की आँख मिचौनी, षड-ऋतु परिवर्तन, सूर्य-शशि का जागरण-शयन, ग्रहो-उपग्रहों का अश्रांत नर्तन, सृजन, स्थिति, संहार—सब ए अनन्त छन्द, एक अखण्ड संगीत ही में होता हैं।" महादे वर्मा ने भी सर्व-वाद के रूप में इसी जीवन की अखण्ड का प्रतिपादन किया। छायावाद का विवेचन करते हु उन्होंने लिखा : "छायावाद करुणा की छाया में सौन्द के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ह है।" एक ही आत्म-तत्व को सर्वत्र प्रकृति से कण-क में व्याप्त देखना अथवा जीवन की विभिन्न अभिव्यक्ति को विच्छेदात्मक रूप में न देखकर अभेद की स्थिति देखने को ही सर्ववाद अथवा जीवन की अखण्डता भावन कहा गया; जैसा कि महादेवी वर्मा ने लिखा "छायावाद की प्रकृति घट-कूप आदि में भरे जल एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्रा बन गई। अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल कण, पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही है।" 'नीरजा' के गीतों में भी इसी भाव-तत्व की प्रति

हुई है तभी तो प्रकृति के रूपों में भी कवि की भाषानुकूल स्थिति के अनुरूप ही परिवर्तन होता है।

सकुच सलज खिलती शेफाली
अलस मौल-श्री डाली-डाली
बुनते नव प्रवाल-कुञ्जों में
रजत श्याम--तारों से जाली
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधुकण हर सिंगार झरते हैं झर-झर!
आज नयन आते क्यों भर-भर?

इसी प्रकार 'विभावरी' को कवि ने अपनी ही प्रतिछाया—एक प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है।

ओ विभावरी!
चांदनी का अंगराग
मांग में सजा पराग
रश्मि-तार बांध मृदुल चिकुर भार री!
ओ विभावरी!

(३) प्रकृति में बिखरी हुई सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमय अनुभूति।

यह रहस्य भावना का ही एक तत्व है। रहस्यवादी कवि एक ही चेतन-सत्ता से—अपने प्रिय से समस्त विश्व को प्रकाशित पाता है। यह भावना उपनिषदों की भावना के अत्यन्त ही सन्निकट है, जैसा कि निम्न छन्द से प्रकट होता है: 'तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्व मिदं विभाति'-अर्थात्, उसके प्रकाशित होने से सब कुछ प्रकाशित होता है। सारा संसार उसी के आलोक से आलोकित है। 'नीरजा' के गीतों में सौन्दर्य-सत्ता की यह रहस्यमय अनुभूति विशेषकर तीन रूपों में अभिव्यक्त हुई है: (१) जिज्ञासात्मक रूप में, (२) प्रिय-आगमन के संकेत रूप में और (३) उस विराट-सत्ता की प्रतिछाया के रूप में।

(१) जिज्ञासात्मक रूप: प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर एकाएक कवि के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है कि यह ऐसा महिम सौन्दर्य किस अज्ञात तत्व के कारण है? कवि सोचती है कि कलिका की मुस्कान में, मेघों के सौन्दर्य में, अचलों में, पलकों में-आदि सृष्टि के अनेक व्यापारों में किस अज्ञात तत्व की सत्ता अभिव्यक्ति पा रही है?

जाने किसकी स्मिति रूम-झूम
जाती कलियों को चूम-चूम?

अतएव एक विस्मय का भाव इन गीतों में मिलता है।

(२) कभी-कभी प्रकृति के विभिन्न व्यापारों द्वारा कवि को प्रियतम के आगमन का संकेत भी मिलता है। जैसे मुस्कराते हुए नभ को देखकर कवि पूछ बैठती है।

मुस्काता संकेत भरा नभ, अलि क्या प्रिय आनेवाले है?

(३) प्रकृति के विराट-सौन्दर्य को देख कर कवि कभी उसे विराट-सत्ता की प्रतिछाया के रूप में भी ग्रहण कर लेती है।

लयगीत मदिर, गति-ताल अमर,
अपसरि! तेरा नर्तन सुन्दर!

इस गीत में प्रकृति रूपी अपसरी का एक विराट-सत्ता के रूप में चित्र अंकित किया गया है।

इसी प्रकार नीरजा के ये गीत छायावाद तथा रहस्यवाद के प्रमुख भाव तत्वों को अपने में समाहित किए हुए हैं। वस्तुतः 'नीरजा' छायावादी काल का प्रतिनिधि गीति-काव्य है; जोकि छायावाद की गीति-क्षमता को विस्तीर्ण करने में अपना प्रमुख स्थान रखता है!

पुस्तक परिचय परामर्श

सर मथुरादास स्मारक ग्रन्थ

बम्बई के अत्यन्त लोकप्रिय व्यवसायी, विद्वान् और प्रतिष्ठित नागरिक सर मथुरादास वसनजी गत वर्ष स्वर्गस्थ हो गए, वे अग्रगण्य व्यवसायी होते हुए भी सात्विक और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे। वैभव और विराग के अद्भुत उदाहरण थे, उनकी व्यापक योग्यता और लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि महात्मा मालवीय जी के वे जहां प्रिय थे, महात्मा गांधी और वल्लभ भाई के भी विश्वस्त थे और समाजवादी नेता भी उनके सहयोगी थे। श्री अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफअली का पारिवारिक सम्बन्ध था, हिन्दू विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डॉक्टरेट' का सन्मान अर्पित किया था। वे उदार, दानी, कर्मपरायण और साधुजीवन व्यतीत करते थे, उनके अवसान से अगणित जनों को आघात हुआ, उसी आघात और स्नेह-भक्ति से प्रेरित हो गुजराती के सुलेखक और बम्बई के प्रसिद्ध पुरुष श्री हरिदास भाई आशर ने स्वर्गीय की स्मृति में उक्त सुन्दर ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में अनेक श्रेष्ठ और सन्मान्य जनों के लेख हैं: गुजराती, अंग्रेजी और हिन्दी भाषा में श्रद्धांजलियां अर्पित की गई हैं। श्री आशरजी ने ग्रन्थ में जो प्रारम्भिक वक्तव्य लिखा है, वह बहुत ही मार्मिक और मननीय है। ग्रन्थ को उन्होंने सर्वाङ्ग सुन्दर, सचित्र प्रस्तुत कर स्वर्गीय के प्रति सात्विक श्रद्धांजलि अर्पित की है। विशेषता यह है कि इसके प्रकाशन का समस्त व्यय भी आशरजी ने किया है और आय स्वर्गीय की स्मृति-रक्षा में समर्पित करने का संकल्प भी। हम इस सात्विक स्मृति और संकल्प के लिए श्री आशर सा० को धन्यवाद देते हैं।

ग्रन्थ का मू० १०) रु० प्राप्ति स्थान—कमला पब्लिकेशन्स; ६८ हेमप्रभा, मरीन ड्राइव, बम्बई।

क्रिया शारीर

लेखक—वैद्य रणजीतराय, देसाई,

प्रकाशक—वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, लि०, १ गुप्तालेन, (जोड़ासाकूँ) कलकत्ता, मू० ११)

प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेदीय शरीर क्रिया-विज्ञान बहुत महत्वपूर्ण, अध्ययनपूर्ण और विवेचनात्मक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें पुरातन और आधुनिक शरीर विज्ञान पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया है। शरीर-रचना और शरीर क्रिया इन दोनों भागों में विभक्त कर जिस विद्वत्ता पूर्ण शैली से साधिकार विवेचन किया गया है, वह वास्त में प्रशंसनीय है। जो लोग आधुनिक शरीर विज्ञान सम्बन्ध में नवीन प्रकार के साहित्य से परिचित होकर धारणा बना लेते हैं कि पुराने ज्ञान में यह वैज्ञानिकता हैं। वे इस पुस्तक को पढ़ कर अपने विचार परिव करने को बाध्य बनेंगे। इसमें जहां पुरातन विज्ञान आधार माना है, वहाँ उपयुक्त नवीन को भी किया है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्यतन बन गया है। ग्रन्थ व्यापक ज्ञान देने में निःसन्देह सहायक होगा। आयुर्वेद के सभी विद्वान इसी प्रकार नवीन और पुरा के समन्वय के साथ अपने विषय को समाज के प्रस्तुत करें तो विरोधियों को भी विवश होकर पड़ेगा, निःसन्देह वैद्यनाथ संस्था ने क्रिया शारीर सुन्दर ग्रन्थ को प्रकाशित कर प्रशंसनीय कार्य किया है, वैद्य और वैद्य-विज्ञान से अनुराग रखने वाले लोग इस को लेकर परिशीलन करेंगे। विस्तृत विवेचनयुक्त ग्रन्थ का मूल्य ११) उचित है।

कूल के फूल

मालवे के अलबेले कवि श्री ललित की यह काव्यकृति है। ललित की इसके पूर्व ५ कृतियां प्रकाशित हो हैं। प्रस्तुत पुस्तक ६ठी है। इसमें कवि ने जिस मस्ती भाव-प्रवाह किया है, वह हृदय को सीधा स्पर्श कर है। कवि की भाषा में उलझन नहीं, रहस्य भी नहीं, सीधे सरल-शब्दों में भावों को व्यक्त करने की रखता है। कविता में जहां उसने स्नेह-सिक्त बन की अभिव्यक्ति की है, वहां उसका अंतर बोल उठा पुस्तक की कई कविताएँ बहुत रसमय बन गई हैं। स्नेह का पुजारी तो है, भावुकता और विकार का

कविता छोटी-छोटी हैं, परन्तु उनमें 'बहुत कुछ' मिलजाता है। 'कूल के फूल' में सौरभ है, वह सहसा मन को आकर्षित कर लेता है। मालव के इस मस्त कवि की रचना का अवश्य स्वागत होगा।

मू० २) राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर, अमीनाबाद लखनऊ।

मुक्ति द्वार !

लेखकः—श्री 'ललित'

कवि-ललित की यह 'गद्य' रचना है, ललित की भाषा में मस्तानी-अदा रहती है, ओज रहता है, प्रवाह बहता है, वह शैलिकार उग्र का अनुयायी है, और बहुत कुछ निकट भी। 'मुक्तिद्वार' में ललित ने आत्मानुभूति जिस मार्मिकता से मोड़ कर पेश किया है, वह मर्म को स्पर्श कर लेता है। ललित का मर्माहत हृदय इसमें कराह उठता है, किन्तु मस्ती-चुस्ती के साथ मुन्ने-मुन्नी और मुन्नियां में मृदुता मिलती है, तो 'ज्वार-भाटा' में जीवन' के चढ़ाव-उतार के चित्र, इसी तरह शहीद स्मृति, विन्डलू, आचार्या, संघर्षमयी जीवन की वास्तविकता को छूने वाली सजीव कथा है। लेखक को निकट से जानने वालों के लिए ये कहानियाँ चित्र की तरह समक्ष आजाती हैं, और सतत-संघर्षमय जीवन की सीधी रेखा खींचती चली जाती है। ललित पद्य की तरह गद्य में भी सफलता के साथ प्रगति करता जाता है। मालवे को ललित से बहुत आशा है, आशा है 'मुक्तिद्वार' में प्रवेश कर पाठक अन्तर की उन्मुक्त आत्मा से भेंट कर सकेंगे।

मू. १॥)रु. आदर्श विद्या मन्दिर ३१-१ गोराकुण्ड, इन्दौर।

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति

लेखक—डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, प्रकाशक—आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली। मू० ५)

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा पिछले २८-२९ वर्षों में दिए गए भाषणों का प्रस्तुत संग्रह 'साहित्य, शिक्षा और संस्कृति' शीर्षक के अंतर्गत प्रंबद्ध किया गया है। भाषणों को (१) कला और साहित्य, (२) शिक्षा और (३) संस्कृति शीर्षक प्रदान कर तीन भागों में विभक्त किया है। साहित्य शिक्षा और संस्कृति तीनों के शब्द व्यायकार्थी हैं। डॉ० राजेंद्रप्रसाद ने लिखा है—"साहित्य सभ्यता का द्योतक है और राजनीति परिस्थितियों का परिणाम। इन्हीं से धार्मिक तथा सामाजिक आधिपत्य जमता और उखड़ता है।" लेखक ने प्रधान रूप से 'राजनीतिक प्रभुत्व के कारण राज्याश्रय के बल पर एक भाषा दूसरी भाषा पर किस प्रकार आधिपत्य जमा लेती है, इस पर प्रकाश डाला गया है। इस विषय में प्रथम भाषण मे लेखक ने अपने राजनीति एवं साहित्य ज्ञान का उत्कृष्ट परिचय दिया है। आपने डॉ० रीजडेविल के साथ इस बात का समर्थन किया है कि 'राजनीतिक' सत्ता के साथ-साथ भारतवर्ष में भाषाके प्रभुत्व का केंद्र भी बदलता गया है।' डॉ. भाण्डारकर, विसेण्ट स्मिथ, एमबोल्ट, टोमस डेविस जैसे विद्वानों एवं युरोप और भारतवर्ष के ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख करते हुए टोमस डेविल के अनुसार आप यह स्वीकार करते हैं कि "मातृभाषा की रक्षा देश की सीमा की रक्षा से भी अधिक आवश्यक है क्योंकि यह पर्वत और नदी से भी अधिक बलवती है। इसी सिलसिले में हिंदी के समर्थन के साथ प्रांतीय भाषाओं के उत्थान पर भी आपने जोर दिया है।

प्रथम भाग के अंतर्गत हिंदी उर्दू की एकरूपता, हिंदी का व्यापक रूप, राष्ट्रभाषा का व्यापक आधार, हिंदी का विकास, साहित्यकार का दायित्व, व्रजसाहित्य और भारतीय इतिहास का अध्ययन शीर्षक से भाषण संकलित किए हैं।

दूसरा भाग शिक्षा से सम्बंधित है जिसमें गांधीजी के सम्पर्क से शिक्षा के सर्व-सुलभ होने के प्रति डॉ० प्रसाद की राय उल्लेखनीय है। विद्यालयों की स्थापना किस उद्देश्य से हो, उनसे हमारे चरित्र, मन और समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, आदि विषयों पर चार भाषणों में विस्तारपूर्वक चर्चा है।

तीसरा खण्ड संस्कृति से सम्बंधित है। '·भारतीय संस्कृति एक प्रकार से निराली है,। सबसे हमने बहुत कुछ लिया और इसलिए आज हम यह निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि हमारी आधुनिक संस्कृति पर अनेकानेक प्रकार के प्रमुख वादों का प्रभाव है। देश-काल के फेर से

बहुत बातों में विभिन्नता दीखती है। यह सब होते हुए भी सारे भारत में केवल एकसूत्रता ही नहीं है, बल्कि उन विभिन्नताओं के नीचे और भीतर एक स्रोत है जो उन सबका उद्गम और पोषक बराबर रहा है और आज भी है। भूमिका के इन शब्दोंमें 'भारतीय संस्कृति', 'विक्रम' कीर्ति मंदिर' और 'सोमनाथ में महादेव प्रतिष्ठा' शीर्षक भाषणों का सार निहित है।

प्रस्तुत ग्रंथ का आचार्य शिवपूजन सहाय और डॉ० नगेंद्र द्वारा संकलन सम्पादन हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह संग्रहणीय प्रकाशन है।

झपकियाँ (कहानी संग्रह)

लेखक--ओंकारशरद, प्रकाशक -- रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा मू० डेढ रुपया।

'झपकियाँ' होनहार कहानीकार ओंकारशरद की मर्मस्पर्शी चौदह कहानियों का संग्रह है। कहानियों की सफलता इसी पर आँकी जा सकती है कि प्रस्तुत संग्रह का दूसरा संस्करण पांच वर्ष बाद छप कर सामने आ गया। इसमें दो नवीन कहानियां मिला दी गई हैं कला-पक्ष एवं कहानियों में गठन और प्रभाव का सामर्थ्य साधारण है। लेखक का अपरिपक्व मस्तिष्क कहानियों में परिलक्षित होता है। पुस्तक की छपाई सुंदर है।

अपराजिता (उपन्यास)

लेखक--आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रकाशक--आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली मूल्य दो रुपये।

'अपराजिता' वर्षो से लेखक के मन में घुमड़ती हुई नारी समस्या का समाधान है। लेखक के जीवन में नारी की भावुकता और पीड़ा ने क्रमशः प्रवेश किया। ज्ञान-विज्ञान के युग में उसने देखा कि नारी ने समाज की प्रगति में अपना कदम बढ़ाया, किंतु 'पुरुष' रूपी रावण उसका हरण करनेके लिए तैयार है। नारी को उसने प्रगति का कोई मूल्य नहीं दिया। इसीलिए लेखक 'अपराजिता' से इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'नारी' ही नारी की समस्या को हल कर सकती, है। परंतु 'नारी' रह कर। 'नर बन कर नहीं।' 'नारी' बनने के लिए उसे नारी तत्व को जीवन में आत्मसात् करना होगा। ऐसा करने से ही वह 'अपराजिता' के रूप में उदय होगी।

उपन्यास रोचक और मार्मिक है।

मङ्गलसूत्र (नाटक)

लेखक--वृन्दावनलाल वर्मा; प्रकाशक--मयूर प्रकाशन, झांसी, मूल्य--एक रुपया।

प्रस्तुत नाटक सामाजिक, समस्यामूलक एवं सुधारवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। १९४३ में 'अमृत बाजार पत्रिका' से प्रकाशित एक साधारण समाचार से प्रेरित होकर लेखक ने प्रस्तुत नाटक की रचना की है। समाचार एक कथावांचक के संबंध में था जिसने प्रसंगवश नारी स्वतंत्रता की बुराई की और कथा संदर्भ की प्र्वाह नहीं की। इस पर पढ़ी-लिखी स्त्रियों द्वारा उसकी पूजा उतारी गई। यही घटना नाटक के एक दृश्य में आई है। सुधार विरोधियों को नाटक में शिक्षा नारी के मूल्य को समझने के लिए योग्य सामग्री है।

नाटक प्रवाहपूर्ण है। तीन अंकों में नाटक का प्र है, पर दृश्यों का आधिक्य अभिनय में बाधक प्र होता है।

सामयिक लेख-संग्रह

लेखक—मुनिराज विद्याविजयजी, प्रकाशक-- श्री विजय धर्म सूरि ग्रन्थमाला, शिवपुरी, मूल्य रुपया नो आना।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्याविजयजी के १५ लेखों संग्रह किया गया जो समय-समय पर 'मध्यभारत सं 'नवप्रभात', 'जैन जगत', विक्रम' आदि में प्रकाशित चुके हैं। सांसारिक अनैतिकता, पतन, हिंसा, विकार से दुःखी होकर लेखक ने लेखों के रूपों में अपने वि को व्यक्त किया है। 'अहिंसा का सामर्थ्य' एवं जैन मानव के जीवन की सार्थकता का समर्थन लेखों में है।

"आलोचक रामचन्द्र शुक्ल"

सम्पादकः—प्रो. गुलाब राय, एम. ए
प्रो. विजयेन्द्र स्नातक एम. ए,
प्रकाशकः—आत्माराम एण्ड सन्स, दि
मूल्य ३)

जब खड़ी बोली में लिखना प्रारम्भ ही हुआ था, हिन्दी साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोणों को लेकर नये-नये विचारों का प्रादुर्भाव हुआ और इसी युग में स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य के विशाल रंगमंच पर अवतरित हुए। उन्होंने हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में अपनी मौलिकता, रस ग्राहिता और गम्भीर अध्ययन के कारण भारी उथल पुथल मचादी और एक नये युग का निर्माण किया। इतना ही नहीं किन्तु वे निबन्ध-शैली के निर्माता, इतिहास लेखक, अनुवादक और एक सफल अध्यापक भी थे। अपनी कुशाग्र बुद्धि और सर्वतोन्मुखी-प्रतिभा के कारण वे हिन्दी साहित्य में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर सके ।

भारतीय और पाश्चात्य-शास्त्र मीमांसा का नियमानुसार अध्ययन और अनुशीलन कर उनने अपनी समीक्षा पद्धति स्थापित की और यही कारण था कि हिन्दी में इतना व्यापक और स्वस्थ-काव्य-चिन्तन हो सका। शुक्लजी स्वच्छन्द चिन्तक और उन्मुक्त विचारक थे, इसी कारण वर्तमान युग के पाठक और आलोचक--दोनों ही शुक्ल जी की मान्यताओं और स्थापनाओं को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। इतना ही नहीं उन्होंने आलोचना का शास्त्रीय पक्ष भी काफी सवारा।

आज हिन्दी साहित्य को शुक्लजी का अभाव तो खटक ही रहा है, किन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं जिसके द्वारा उनके साहित्य का सांगोपांग विवेचन और अध्ययन हो सके। श्री गुलाब राय जी व श्री विजयेन्द्र स्नातक के कुशल सम्पादकत्व में "आलोचक रामचन्द्र शुक्ल" पुस्तक प्रकाशित होने से उक्त कमी की तो पूर्ति अवश्य हुई है किन्तु उक्त पुस्तक ने हिन्दी साहित्य को एक अमूल्य उपहार भी दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक तीन भागों में विभक्त है:—जीवन वृत्त, आलोचना तथा प्रमुख कृतियां। तीनों खण्डों में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् साहित्यिकों द्वारा लिखे गये उन लेखों को संग्रहीत किया गया है, जिनके द्वारा स्व० पं० श्री रामचन्द्र शुक्ल के प्रारम्भिक जीवन, उनकी आलोचना पद्धति और उनके विभिन्न ग्रन्थों पर वैज्ञानिक और वैचारिक दृष्टि से प्रकाश पड़ सके।

पुस्तक के प्रकाशक "आत्माराम एण्ड सन्स् दिल्ली" हैं जो आजकल अपनी सम्पूर्ण शक्ति से 'भारती' के भण्डार को सुरभित-सुमनों से भरने में संलग्न हैं। उक्त पुस्तक 'रायल साईज' में छपाई और गेट-अप की सम्पूर्णसुन्दरता को लिये हुए है।

-कोशा-

रचयिताः—पोद्दार रामावतार अरुण
प्रकाशकः—किरण-कुन्ज समस्तीपुर, बिहार
मूल्य सजिल्द ३) रु० अजिल्द २॥) रु०

"कोशा" नौ सर्गों में विभक्त एक ऐतिहासिक प्रबंध-काव्य है, जिसके निर्माता कविवर 'अरुण' ने 'स्वर्गीय-सौंदर्य की उपमा' 'कोशा' को अपनी लेखनी द्वारा साहित्य जगत् में अमरत्व प्रदान कर दिया है। 'कोशा' पाटलीपुत्र की एक ऐसी नर्तकी है जो साहित्य, संगीत, नृत्य और काव्य की पण्डिता है तथा सत्य और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति भी।

सम्राट नंद के मंत्री शकडाल के पुत्र सिद्ध-प्रसिद्ध-योगी स्थूलभद्र और 'कोशा' प्रथम दर्शन में ही प्रेमपाश में बंध जाते हैं और जीवन के अंतिम क्षणों में 'कोशा' आलोक नृत्य का अभिनय करती है और उसकी कारुणिक छाया में भी अपने प्रियतम के दर्शन करती है। प्रस्तुत प्रबंध का विषय भी 'कोशा' का प्रेम बन गया है। कवि के शब्दों में:— 'कविता के इंगित से कथानक की कल्पना ने इतिहास के मोह को सगर्व त्याग दिया है।' इसी कारण इतिहास की कई घटनाओं के यथा तथ्य चित्रण की अपेक्षा मानव मनोरोगों और आदर्शों का चिरन्तन संघर्ष अधिक सफलता से अभिव्यक्त हो पाया है।

अपने पिता की हत्या के पश्चात् जब मंत्री पद के लिये स्थूलभद्र को निमन्त्रित किया जाता है, तो स्थूलभद्र अपने पिता की चिता-ज्वाला में क्षणिक जीवन के विनाश का आभास पा भोग-विलास से उदासीन हो मंत्री पद को अस्वीकार कर देता है और इधर 'कोशा' भी बारह वर्षों की सतत प्रतीक्षा-साधना के पश्चात् विरह-वेदना से व्याकुल हो भोग-विलास को त्याग कर कामदेव की विलास मंत्रणा को ठुकरा देती है और अपने परिश्रान्त जीवन में नारीत्व

की ऐसी ज्योति जगाती है जो मरण के पूर्व अभिनीत होने वाले 'आलोकनृत्य' के साथ अमर हो जाती है। आज 'कोशा' पाटलीपुत्र की वह गणिका नहीं है जो सम्राट नंद के मंत्री शकडाल के पुत्र स्थूलभद्र के प्रेमालाप व भोग-विलास में दिन रात रत रहती थी, किन्तु आज वह आचार्य-सम्भूति विजय के परम शिष्य सिद्धयोगी स्थूलभद्र की अनुयायिनी है जो वासना, विलास और वैभव के तम-मार्ग को छोड़कर वैराग्य के पथ पर अग्रसर हो चुकी है। वह कला-साधिका के समान सात्विक और सरल जीवन बिताती है और 'उसकी कला-आत्मा के प्रकाश की प्रतिध्वनि है'।

–कोशा के चरित्र का परिचय देते हुए स्वयं कवि कहता है:-

"कोशा केवल प्रेयसी नहीं, नर्तकी नहीं,
अनुभूति-ज्योति की वाणी की गीताजंलि है ?
वह कला शिल्पिनी, मानव को भी गढ़ती है ?"

–जब लाखों प्राणों पर दुर्भिक्ष व्याल फुंफकार रहा था, तब कोशा अपने आम्र-कुंज में सैकड़ों भूखे नंगे और बिल-बिलाते मानवों के वीभत्स रूप को देख कर सहम जाती है, वह देखती है:—

"रोने की भी तो शक्ति नहीं दुर्बल तन में,
कंकालों के समुदाय धरा पर बैठे हैं!
तन रुधिर-हीन टेढ़े-मेढ़े हैं झुके हुए,
सूखी लकड़ी सी लगती युगल-भुजाएँ हैं।"

और उसका हृदय करुणा से पिघल जाता है वह वर्तमान युग की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करती है, और तब उदार हृदया 'कोशा' कह उठती है:-

"मानव! तुम भूखे हो, मुझसे कुछ कहो नहीं,
यह आम्र-कुंज कोशा का नहीं तुम्हारा है,
तुम एक-एक फल को खालो, ओ जन समूह!
यह देश तुम्हारा है, तुम इसके जीवन हो,
समता की सृष्टि करो तुम अपने हाथों से—
सम्राट तुम्हारी दुर्बलता का वैभव है।"

"रावण महाकाव्य" रचयिता—श्री हरदयालुसिंह

प्रकाशक.—आत्माराम एन्ड सन्स दिल्ली मूल्य ५) रु०

प्रस्तुत पुस्तक का नाम पढ़ते ही एकदम कुछ आश्चर्य तो अवश्य होता है, किन्तु यह जानना अत्यावश्यक है कि कि 'रावण महाकाव्य' के रचयिता पं० हरदयालुसिंह ने इसके पूर्व 'दैत्य वंश" नामक महा काव्य का निर्माण कर अपनी प्रखर-प्रतिभा का तो परिचय दिया ही है, और साथ ही उनका यह संकल्प भी है कि साहित्य में जो उपेक्षित पात्र हैं उन पर ही लिखें।

उक्त महाकाव्य का कथानक महर्षि-बाल्मीकि-प्रणीत आदि काव्य से लिया गया है, कुछ अंशों तक महर्षि व्यास भी श्री वाल्मीकि से सहमत नहीं और गोस्वामी तुलसीदासजी का तो कवि द्वारा स्थान स्थान पर भारी खण्डन किया गया है फिर भी कवि तो श्री वाल्मीकि को ही अपना कर्णधार मान कर चलता है। राक्षसों की परिभाषा का जहां तक प्रश्न है कई विद्वानों और पण्डितों के भिन्न २ मत हैं। तुलसीदासजी तो राक्षस का नाम सुनकर ही एक वीभत्स और भयंकर व्यक्ति का चित्र खींचने लगते हैं, किन्तु श्री हरदयालुसिह का कथन है कि अधिकांश राक्षसियां देवयोनि, गन्धर्वों, दैत्यों और यक्षों की कन्याएँ थी और राक्षस वेदाध्ययन, तपस्या शिवार्चन आदि करते थे। वे शक्ति-शाली इतने थे कि भगवान् विष्णु से भी भिड़ जाने में सकोच नहीं करते थे।

महाकाव्य के भूमिका लेखक पं. शुकदेव बिहारी मिश्र (मिश्र बन्धुओं में से एक) ने एक स्थान पर कहा है कि 'हिन्दी के वर्तमान युग में इस प्रकार के महाकाव्यों की रचनाओं से उसके उज्वल भविष्य के सूत्रपात का सन्देश मिल रहा है।' 'रावण महाकाव्य' वास्तव में तो वर्णनात्मक अधिक भावात्मक कम। 'काव्य कानन-पंचानन' श्री मम्मटाचार्य और श्री विश्वनाथ जी के महाकाव्यों के सब लक्षणों की पूर्ति के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य में हृदय ग्राहिता ऐसी उभर पड़ी है जो पाठकों को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती है।

श्री हरदयालु सिंह ने अबतक लगभग ८ दर्जन पुस्तकें लिखीं है जिनमें ५ दर्जन प्रकाशित और बाकी 'प्रेस' में है। आप सफल अनुवादक, निबन्धकार, नाटककार टीकाकार, आलोचक और अलंकार ग्रन्थ के निर्माता भी हैं। साथ ही सफल और मौलिक कवि। खेद है कि ऐसे प्रतिभाशाली कवि का कुछ समय पूर्व ही स्वर्गवास हो गया है।

—बसन्तीलाल

अमर पथिक !

श्री एम० एम० कांत सिन्हा "कांत"

आग चबा कर जीवन-पथ पर चलने वाला, पथिक अमर है !
रीत गई हो भले ज़िन्दगी की खुशिहाली की जल-धारा
डूब गया हो भले असीम सुखों का जगमग करता तारा
उजड़ गई हो आशाओं-इच्छाओं की वह बगिया—प्यारी
बिखर गई हो इन्द्रधनुष सी सतरंगी वह दुनिया न्यारी
कदम-कदम पर नित विनाश के व्यथा-बाण चलते हों, फिर भी-
शक्ति संजो कर बाधाओं को दलने वाला पथिक अमर है !
विश्वासों के क़दम डिगाने पर्वत के अभियान शुरू हों
संतोषों की कमर तोड़ने कष्टों के अह्वान् शुरू हों
बांध पगों में पायल नाचे क्यों न मौत सम्मुख ही छण-छण
कर-नियति के संकेतों पर क्यों न शूल बन जायें कण-कण
धीर-पथिक पर अभिशापों के जादू-टोने चलें सदा..., पर—
चीर दुखों के तम की छाती दलने वाला पथिक अमर है !
उल्कापात आँधियाँ हों, तरु-तरु भू पर सिर धुनते हों, तब
उस विनाश के समय लक्ष्य मंजिल का पथिक टोरहा हो, जब
लाख-लाख व्यवधान पगों से टकरायें, पर ठहर न सकते
अभय पथिक के प्रबल चरण पर रंचमात्र भी सिहर न सकते
वक्र—भृकुटि हो महाकाल की, महारात्रि मुस्काती हो, पर—
दृढ़ व्यक्तित्व लिए शोलों सा जलने वाला पथिक अमर है !
परंपरा की नभ्र-दिवारें रोक न सकतीं उसकी गति को
असफलताओं की मनुहारें फेर न सकतीं उसकी मति को
पथ के कण-कण में उसके उन्मुक्त-हास की प्रभा दमकती
स्वर-स्वर में उसके नव जीवन की सिन्दूरी-रेख...चमकती
विजय-पराजय की सीमा से परे, सत्य को पाने के हित—
हिमालयों में हँसते—हँसते जलने वाला पथिक अमर है !

Phone No. 48

Regd. No. N. 887

टेलीफोन नम्बर ११

तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी विनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टेक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी॰ आई॰ पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

विक्रम

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

2-12-53

संचालक-सम्पादक

सूर्यनारायण व्यास

अक्टूबर'

१-७-५३

भाद्रपद

२
०
१
०

धन मत पूजो धरती पूजो!

श्री कुंवर गिरवर सिंह भंवर

(१)

लक्ष्मी थारी माया से या रात अमावस की काली।
कालो नाग तिजोरी बायर करे नित्य की रखवाली॥
मस्जिद का अल्ला पेचाण्या, मंदर का जाण्या भगवान,
काबा काशी पुरी अवन्ती, सब देखी आयो इन्सान'
सब जाण्या पण थारी माया, आज तलक नी जाणी,
कालो कलम बखाने कैसे, थारी माया अणजाणी,
खोल तिजोरी का ताला तू हटा नाग की रखवाली,
लक्ष्मी थारी माया से या रात अमावस की काली,

(२)

जिन मिट्टी का बण्या दिवाण्या जिनमें तेल बले हे,
धरती में उपजे कपास यो जीकी जोत बणे हे,
तेल बणे हे जिनी चीज को वाबी उपजे धरती में,
लक्ष्मी को तेवार दिवाली जनमें प्यारी धरती में,
लक्ष्मी चढ़ी अटारी बैठी धरती की छाती वाली,
लक्ष्मी थारी माया से या रात अमावस की काली,

(३)

जनम भूमी का प्यारा बेटा धरती माँ का मतवाला,
आज इंदारा में बैठ्या हे अम्मावस का उजियाला,
जगमग आखा महल दिवाण्या धरती माँ का चमके,
सूनी सूनी आज इंदारी पड़ी झोंपड़ी झमके,
चलो महल से लाव उजालो करां झोंपड़ी उजयाली,
लक्ष्मी थारी माया से या रात अमावस की काली,

(४)

धन मत पूजो या धरती पूजो धन तो आतो जातो,
दो दिन की भरी तिजोरी डूबत में सब खातो
हल पूजो बख्खर पूजो ने पूजो गो का जाया रे
जिनसे चमके महल आज हे उनकी सबकी या माया,
लक्ष्मी से ज्यादा प्यारी हे धरती माता मतवाली,
कालो नाग तिजोरी बायर रोज करे है रखवाली,

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
॥=)

विषयानुक्रमणिका

		पृ. सं.
१. व्यास उवाच	सम्पादकीय	१-१६
२. मालव संस्कृति की वैदिक और पौराणिक पुरातन परम्परा	श्री सूर्यनारायण व्यास	१७-२०
३. ईश्वर का प्रयोजन —	श्री पाण्डेय जगन्नाथप्रसादसिंह	२१-२३
रस निष्पत्ति	श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी एम० ए०	२४-२८
क्या दूसरे ग्रहों में जीवन का अस्तित्व है ?	श्री ईवान शेवल्याकोव	२९-३१
६ श्रीमद्भारत प्राशस्तिकम्	श्री शैलेन्द्र सिद्धनाथ पाठक	३१
७. राही की बिदाई	श्री जानकीप्रसाद पुरोहित	३२-३३
८. रज्जु नर्त्तकी	श्री कुमारी विद्यावती 'मालविका'	३४-३५
९. दीपमालिके	श्री कुमारी विद्यावती 'मालविका'	३६
१०. रस विहार	श्री देवव्रत 'देव', मधुवन, शक्र, उमारानी भटनागर, मदनलाल वर्मा, रुद्र, मेहता, आनन्दराव दुबे, हरीश निगम	३७-४२
११. परिचय परामर्श		४३-४४

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड

स्थापना १९४२

Paid for capital:-	Rs.	7, 93 500
Assets exeed:-	Rs.	25. Lacs
Claims paid since inception:-over	Rs.	4. Lacs

पेट्रन

ना. महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर राजप्रमुख सौराष्ट्र स्टेट

श्री कन्हैयालालजी चेटिया
रतलाम
मध्यभारत के चीफ एजेन्ट

राजस्थान और यू. पी. में चीफ एजेंसी देना है !

विषेश माहिती के लिए कृपया श्री एच. एन. आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क स्थापित करिये ।

हिन्दी-कथा-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ

सर्वांग-सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

एक प्रति ॥~) आने

—सुमित्रा—

वार्षिक मूल्य ६) रुपया

संचालक—श्री कैलाशनाथ भार्गव स्टार प्रेस कानपुर

तथा

संपादक—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' और श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी

सर्वसाधारण तथा विशिष्ट विद्वानों की सम्मति है कि

परिवार के सभी सदस्यों—स्त्री-पुरुषों, पुत्र-पुत्रियों भाई-बहनों—को 'सुमित्रा' बेधड़क पढ़ने को दी जा सकती है। इसकी कहानियाँ पाठक की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत करती हैं तथा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती हुई उसका मनोरंजन करती हैं, कर्तव्य के लिए सन्नद्ध करती हैं, और भावुकता के दुरुपयोग से बचाती हैं।

'सुमित्रा' के पाठक कहानियों द्वारा बड़े से बड़े और गूढ़ से गूढ़ विषय को भी आसानी से समझ सकते और मानव जीवन की गुत्थियों को आसानी से सुलझा सकते हैं।

नमूना के लिये आज ही पत्र लिखिये

सुमित्रा-प्रकाशन, महात्मागांधी रोड, पोस्ट बाक्स नं० १, कानपुर

विविध विषय विभूषित, सचित्र एवं विचित्र मासिक पत्रिका

नई धारा

१. **हम इनसे मिले थे**— देश के महापुरुषों के जीवन में साहित्य, कला और संस्कृति के लिए जो अन्तर्धारा बह रही है, उसकी झलक हर महिने देखिये।

२. **डायरी के पन्ने**— हमारे साहित्य-महारथियों की डायरी के पन्ने, जिनसे तत्कालीन परिस्थिति पर उनके मनोगत भावों के उद्रेक प्रगट होते हैं।

३. **सबसे प्यारी कृतियां**— पहले साहित्यकार बताएँगे कि निश्चित समय के अन्दर उनकी जो रचनाएँ हुईं, उनमें उन्हें सबसे प्यारी कौन लगी—फिर पाठकवृन्द अपनी राय प्रगट करेंगे।

४. **पत्रांजलि**—देश के महापुरुषों व साहित्य-महारथियों की चुनी हुई चिट्ठियाँ—हस्ताक्षर के साथ,

५. **विश्व-भारती**—संसार के महान् कलाकारों की उत्तम कृतियों के सरस, सुन्दर हिन्दीरूपान्तर

६. **भारत-भारती**— देश के भिन्न-भिन्न अंचलों में भिन्न-भिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का विकास कैसे हुआ—आज उनकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं—इस शीर्षक से पाइये।

७. **हमें यह कहना है!**— संस्कृति, कला और साहित्य के क्षेत्र में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनपर जोरदार सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

और हर अंकमें कहानियां, कवितायें, शब्दचित्र, संस्मरण, नाटक, आलोचना, निबंध!

हिन्दी में नई धारा के प्रतीक **श्री रामवृक्ष बेनीपुरी** इसका सम्पादन कर रहे हैं

डमाई अठपेजी के १०० पृष्ठ, पक्की जिल्द, आकर्षक कवर, सचित्र, सुसज्जित—वार्षिक मूल्य १०), एक अंक १) शीघ्र ग्राहक बनिये—विज्ञापन देने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिये।

प्रबंधक, नई धारा, अशोक प्रेस, पटना ६

मध्य-भारत, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

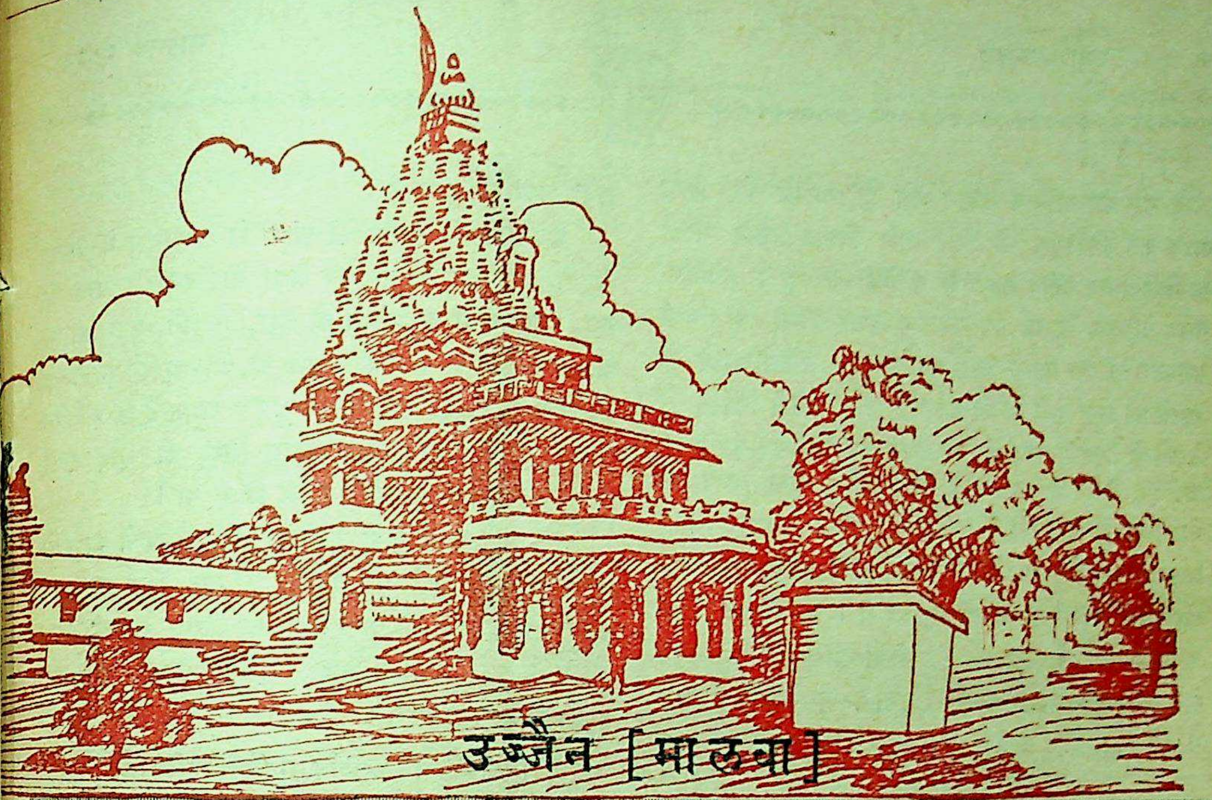

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड १] भाद्रपद सं० २०१० वि०, अक्टूबर सन् १९५३ [अंक ६ पूर्ण सं० ७६

व्यास उवाच

अनंत-ब्रह्मांड !

ब्रह्माण्ड के विषय में भारतीय साहित्य की अति-पुरातन-काल से यह निश्चित धारणा रही है कि वह एक नहीं अनेक है, 'अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड' शब्दों का सैंकड़ों नहीं हजारों बार वेद से लेकर विभिन्न ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है, उनमें भी भूर्लोक; भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि नाम तक उनके पृथक दिए हैं, इसी तरह अतल-वितल-सुतल आदि विभेदों में भूगर्भ के अंतराल का भी विवरण है, आकाश में विस्तारित वायु मण्डलों के भी अनेक स्तरों का, उनकी विभिन्नताओं का, शक्ति का, और नामों तक का स्वतन्त्र निर्देश किया हुआ है। जिस ज्योतिःशास्त्र ने सारे आकाश को छानकर तारों की गणना की; उनकी गति-विधि का अंदाज लगाया; उनके परिणामों की जानकारी प्राप्त की, उनके आकार-प्रकार, ऊँचाई, निचाई का नाप लिया, और उनके विशेष प्रभावकारी ज्योतिष्पिण्डों का प्रथक्करण कर निश्चित सिद्धांत स्थिर किए जिन्हें आजतक एक इंच भी इधर-उधर नहीं किया जासका। उन्होंने सूर्य-चन्द्र-मंगल-बुध ग्रहों को 'लोक' शब्द से ज्ञापित किया है, उन्हें जड़ या ज्योतिर्मय मानकर ही नहीं छोड़ दिया, उनके रूप-रंग-आकार प्रकार, भ्रमण पर भी पूरी गणना के द्वारा अधिकार प्राप्त किया। उन लोगों ने ही ब्रह्माण्ड की अनन्तता का सिद्धांत भी स्थापित किया, परन्तु हमने अपनी बातों—सिद्धांतों को उनकी गहराई को समझे बिना ही उनपर अविश्वास किया, उपेक्षा की है, किन्तु जब आज वेदांत वादियों के 'अतीन्द्रिय-ज्ञान' को अमेरिका का वैज्ञानिक तथ्य मानकर खोजने लगा तो हमें उसमें सच्चाई समझ में आती है, फिर भी जिस दिन वे उसके रहस्य को ठीक पालेंगे तबतक उनका संशोधन समझ स्वीकार करने, और प्रशंसा करने की प्रवृत्ति को अपनाएँगे। जब हमारा ज्ञान-विज्ञान ब्रह्माण्ड के अनेकता की उच्च स्वर से घोषणा करता चला आ रहा है,

हमने उसे आध्यात्मिक उड़ान भले ही समझा हो, किन्तु आज जब लीवरपुल में होने वाले विज्ञान-विकास संस्था के ब्रिटिश मण्डलीय प्रमुख ने वार्षिक परिषद् में खगोल-विधि परीक्षण द्वारा यह विचार व्यक्त किया कि—बाह्य आकाश से दस करोड़ वर्ष पूर्व उद्भुत रेडियों-तरंगों के धरती पर प्राप्त होने के जो ब्रह्माण्ड हम अपनी आँखों से देखते हैं, उसकी बाजू में भी दूसरा एक अद्रश्य ब्रह्माण्ड भी अस्तित्व रखता है, सम्भव है अब हमारे देश वासी भी अपने आत्म निरीक्षण की उपेक्षावश ब्रिटेन के महान् वैज्ञानिक की इस घोषणा को उनके विज्ञान की कसौटी पर चढ़कर चमक-पड़ी है सहज्ञ स्वीकार कर लें। हमारी इस 'परप्रत्ययनेयमति' को क्या कहें? उसे हम आँख मूँद कर मान लेने को आतुर हैं, पर अपने आचार्यों को उपेक्षित करने में हमें गौरव होता है !!

संजीवनी – विद्या

रूस, अमेरिका के वैज्ञानिक मेंढक-और चूहों पर प्रयोग कर यह प्रयास कर रहे हैं कि प्राणियों के प्राणोत्क्रमण हो जाने के पश्चात् उन्हें पुनरुज्जीवित भी किया जा सकता है या नहीं। रूसी वैज्ञानिकों का कथन है कि वे इस दिशा में सफलता साध्य कर रहे हैं। चंद्र और भौम लोक में सजीव पहुंचने का प्रयास करने वाले साहसिक कदाचित् मृत संजीवनी को भी प्राप्त करलें तो विस्मय का विषय तो नहीं है, अवश्य ही अब तक मृत मानव में प्राण संचार कोई नहीं करपाया है,

इस शक्ति के सूत्र को कोई वैज्ञानिक पकड़ नहीं पा सका। हिटलर, या स्टेलिन को कोई शक्ति बचा नहीं सकी परन्तु ऐसी शक्ति अवश्य रही है, जिसे अब तक हस्तगत नहीं किया जा सका है, भारतीय परम्परा में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं, जिनमें मृतों को पुनर्जीवित बना लिया जाता था, शुक्राचार्य के द्वारा असुरों को जिला लेने की चर्चा अनेक जगहहै। रामायण में भी आया है कि रावण के अनेक सैनिक राक्षस मर कर जी उठते थे। संजीवनी बटी की विशेषत आयुर्वेद ग्रंथों में भी पाई जाती है। शस्त्र-विष मूर्च्छा से लक्ष्मण को स्वस्थ बनाने के लिये सुषेण-सूचित संजीवनी को प्राप्त किया गया था, यह कथा तो सर्वज्ञात ही है। इसका यह अर्थ अवश्य है कि पुरा-युग में संजीवनी की जानकारी थी, और उपयोग भी अनेक बार अनेक प्रसंग पर हुआ है।

अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा से परशुराम ने माता रेणुका, और भाई का वध कर दिया तो जमदग्नि प्रसन्न हो गए, परशुराम से वर मांगने को कहा, उन्होंने पुनः माता, और भाई को जीवित करने की याचना की, और ऋषिने पुनर्जीवित कर दिया था! बृहद्देवता में एक संवाद आया है कि अतिवेग के साथ रथ के दौडाते समय ब्राह्मण शिशु की मृत्यु होगई थी पुरोहित ने उसे पुनः जीवित कर लिया था।

ऐसे ही रैभ्य की कथा उपनिषद् में है, रैभ्य ने कृत्या को उत्पन्न कर भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत को मार दिया था, पुत्र शोक में भरद्वाज ने भी प्राण त्याग कर दिए, रैभ्य के छोटे पुत्र उर्वावसु ने प्रायश्चित्त किया, सूर्योपासना की, और पुनः सबको जीवित कर लिया।

(संजीवयित्वा तान्सर्वान पुनर्जग्मुस्त्रिविष्टपम)

(भा. वन. १३८)

एक बार हैहयकुमार अरिष्टनेमी ने तार्क्ष्य के पुत्र को हरिण के भ्रम से मार डाला, प्रायश्चित्त निवारण के लिये तार्क्ष्य के आश्रम में वह गया वहां तार्क्ष्य ने बतलाया यह मेरा ही पुत्र था, और जीवित हो गया है। देखो सामने ही है। इस पर वह आश्चर्य में आगया, पूँछा कि यह जीवित कैसे हुआ। महाभारत (वन१८४) में इसका सविस्तार उत्तर दिया गया है।

आज जिस प्रकार बीमार को खून देकर स्वस्थ किया जाता है पुराने जमाने में आधी आयु देकर दीर्घायु बनाया जाता था, सर्प दंश से मृत प्रमद्वरा को सरु द्वारा आधी आयु प्रदान करने का उल्लेख है, ययाति के यौवनदान की कथा तो प्रसिद्ध ही है। ऐसी अनेक कथा गाथाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि संजीवनी विद्या को हमारे पुराकाल के लोग अवश्य जानते थे, वाल्मिकी रामायण में स्पष्ट ही "संजीव करणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम्" ४.

"अमृतंयत्र मथितं तत्रते परमौषधी"
"संजीव करणीं वीर संधानींच महौषधीम्"

(रामा. यु. कां. १०२)

संजीवनी-औषधि का इस प्रकार वर्णन और जगह भी है भंग अंग, भंग शिरको पुनः यथावत् जुड़ा देना और दूसरे के मस्तक को कटे हुऐ सिर के स्थान पर संयुक्त कर देना, और उसे जीवित रखना ये उदाहरण अनेक मिलते हैं, परन्तु ह

पेनसिलिन के बड़े बड़े कारखाने खोल कर 'उन्नति' करने में प्रगति मान हो रहे हैं, इस ओर विचार करने, अनुसंधान करने का समय ही कहाँ है ?

प्रधानामात्य- (चर्चिल) पुरस्कृत ।

इंग्लैंड के प्रधानामात्य मि. चर्चिल नोबेल 'पुरस्कार के अधिकारी घोषित किए गए हैं। स्वीडन की एकेडेमी ने हाल ही में यह सूचना प्रकाशित की है। महा-अमात्य चर्चिल जहाँ राजनीति के यशस्वी खिलाड़ी हैं, असाधारण वक्ता हैं, वहाँ वे कलम और कूँची के भी धनी हैं। रूखे राजनीतिज्ञ, या वक्तृत्व कला में कौशल प्राप्त करना भिन्न बात है, किन्तु चर्चिल की लेखनी उनकी वृद्धावस्था में भी अविश्रान्त चलती रहती है, उन्होंने अबतक ३० से अधिक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें संस्मरण, यात्रा, उपन्यास, चरित्र आदि हैं। कुछ समय पूर्व ही पांच भागों में विगत महासमर के सुन्दर संस्मरण उन्होंने लिखे हैं, इस महान ग्रन्थ की शैली अत्यन्त आकर्षक और प्रवाहपूर्ण है, यह उनकी विशाल कृति कही जा सकती है, इसी तरह वे केवल लेखक ही नहीं कोमल कलाकार भी हैं। महासमर के समय कासाब्लांका के वायु-विहार करते हुए उन्होंने विमान में बैठकर कई मनोहर चित्रों का निर्माण भी किया है, कलम-और कूंची के धनी चर्चिल जब भाषण देने खड़े होते हैं, उनकी धुंआधार वाणी जोश बढ़ाने वाली सिद्ध होती है। महायुद्ध में विजय पाने का श्रेय जहां उनकी कूटनीतिक कुशलता को है, वहां वाणी की ओजस्विता को भी है। एक प्रधानामात्य में ऐसे विविध गुणों का समावेश वास्तव में अद्भुत और विचित्र ही है, उन्हें नोबल पारितोषिक का अधिकारी घोषित किया जावे उसमें विस्मय नहीं। हां, यह पुरस्कार मि० चर्चिल को साहित्यकार के रूप में दिया जारहा है। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठता है कि क्या मि० चर्चिल साहित्यकार हैं? और ऐसे साहित्यकार हैं जिन्हें साहित्य पर यह उच्च पुरस्कार प्रदान किया जावे? क्या उनकी ऐसी कोई कलाकृति है जिसे 'अमर'-या 'युग की वस्तु माना जा सकेगा? चर्चिल प्रवाहमय गद्य-निर्झरिणी के निर्माता हैं, किन्तु इस निर्झरिणी में स्वाभाविक प्रवाह है। संगीत का समन्वय नहीं, कला का समावेश नहीं। केवल कलम का कौशल है। चर्चिल की सैनिक-मनोवृत्ति का स्वर है, इसलिए उन्हें साहित्य का सन्मान नहीं दिया जा सकता। इसके विरुद्ध भारत के प्रधानामात्य पं० नेहरू की वह 'भारतीय खोज' है, जिसे साहित्य संगीत और कला की अद्भुत निधि कहा जा सकता है। जहां गद्य भी गीत बनकर प्रवाहित है, गाथा भी कविता का रस वर्णन करती है, पं० नेहरू प्रधानामात्य न होते तो भी वे अपनी कला-कृति से साहित्य-सृष्टि से अपने को विश्व के अमर व्यक्तियों में अंकित करवा सकते थे। इसके अतिरिक्त चर्चिल की रचना समय के साथ समाप्त हो जाने वाली-वर्षाकालीन निर्झर की तरह है, डिस्कवरी ऑफ इंडिया निरन्तर प्रवाहित होने वाले निर्झर का संगीत है, किन्तु स्वीडिश-एकेडेमी का निर्णय, महामात्य चर्चिल के पक्ष में है, वह उन्हें इस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में भी परिगणित करवाने जा रहा है. ठीक है! साहित्यकार चर्चिल की जय हो!!

पूना का (संस्कृत) पदवी दान समारंभ ।

पूना का विद्यापीठ निःसंदेह प्रशंसा पात्र है जिसने अपने पदवीदान समारंभ में गत २४ सितम्बर को संस्कृत भाषा का उपयोग किया, और भारत के अन्य विद्यापीठों के लिये प्रेरक कार्य किया है। 'विक्रम' में हमने गत वर्ष विद्यापीठों के पदवी दान सभारंभ के लिये एक उपयोगी प्रस्ताव करते हुए उपनिषद् से महत्वपूर्ण एवं सार्थक उदाहरण ही प्रस्तुत किया था, यह हर्ष की बात है कि हमारे उस उदाहरण की उपयोगिता समझ कर पूना विद्यापीठ ने उसका उपयोग किया है, उक्त समारंभ सरस्वती, और सूर्य स्तुति से किया गया।

'याकुन्देन्दु तुषार हार धवला' आदि सरस्वती स्तवन के पश्चात् 'सूर्यस्तवन' इस प्रकार किया गया,

कल्याणानां त्वमसि महतां भाजनं विश्व मूर्ते ।
धुर्यालक्ष्मी मथ मयि भृशंधेहि देव प्रसीद ।

यद्यल्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे ।

भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मंगलाय ।

ये दोनों स्तोत्र मधुरता से संगीत ताल-लयबद्ध गाये जावें इसलिए, प्रसिद्ध गायिका श्री ज्योत्स्ना भोले द्वारा प्रारंभ में रिकार्ड करवा लिये गये थे, स्तोत्र की समाप्ति के साथ सभा, सदस्यों ने आसन ग्रहण किया, उसके पश्चात् साहित्य विभाग के प्रमुख (डीन) ने पदवी प्राप्त छात्रों को कुलपति के समक्ष प्रस्तुत किया, और कुलपति से निवेदन किया —

मान्याः कुलपति महोदयाः वाङ्गमय-शाखागतासु पी. एच. डी. एम. ए. बी. ए. परिक्षासु यथा विधि समुत्तीर्णा उपस्थिता अथैते स्नातकाः श्रीमतां पुरस्तात्, केचन असन्निहिता दत्तानुज्ञा अस्माभिः । तदेते सर्वेऽपि तत्तत्पदवी वितरणेनानुग्राह्याः अत्र भवद्भिरिति सविनयं प्रार्थ्यते ।

इसके बाद कुलपतिने विद्यापीठ के कोर्ट के सभासदों से पूछा ।

'किं भोः, इयमभ्यर्थना
भवद्भिः स्वीक्रियते ?

सभासदों ने उत्तर दिया 'ओम्'

इस स्वीकृति के पश्चात् क्रमशः पदवीधर छात्रों ने कुलपति के समक्ष उपस्थित होकर नतशिर नमस्कार किया, इसी प्रकार सभी विभागीय छात्रों ने नम्रता प्रदर्शित की, बाद में कुलपति ने छात्रों से कहा—

'पदवी वितरणानंतर मिदानीं पूर्वाचार्याणां वचनानुसारतः प्राप्तावसरमिदं किंचिदशानुसनं दीयते युष्मद्भ्यः—

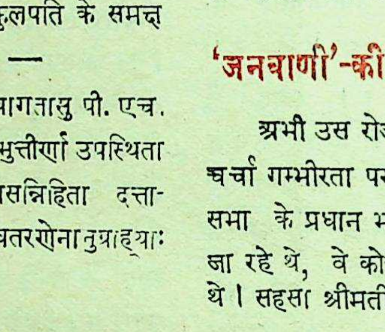

शत-शत अभिनन्दन !!
शतं जीवी हों !!!

(और वह वाक्य कहे जो 'विक्रम' ने सूचित किये थे)

सत्यंवद । धर्मंचर । स्वाध्यायान्माप्रमदः । सत्यान्नप्रमदितव्यम्, धर्मान्न प्रमदितव्यम्, कुशलान्न प्रमदितव्यम् , स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् , मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, राष्ट्र देवोभव, यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि, यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, एष आदेशः, एष उपदेशः, एतदनुशासनम् , एवं मुपासितव्यम् ,

भोस्नातकाः ! सर्व मेतन्मनसि दृढं निधाय युष्माभिः सच्छील समुदाचरेण वर्तितव्यम् ।

इस प्रकार उपदेश देने के बाद विशिष्ट अतिथि का भाषण हुआ और यह समारंभ सम्पन्न हुआ । वास्तव में यह विशिष्ट घटना है भारत के अन्य विश्व विद्यालय भी इस प्रवृत्ति को स्वीकार कर आदर्श की प्रतिष्ठा करेंगे ।

'जनवाणी'-की उपेक्षा न की जाए !

अभी उस रोज की बात है, कुछ गोष्ठी चल रही थी, चर्चा गम्भीरता पर थी, गोष्ठी में देश की एक प्रतिष्ठित धारा सभा के प्रधान भी सम्मीलित थे, सहसा रास्ते से एक दम्पति जा रहे थे, वे कोई सुशिक्षित नहीं लग रहे थे, मारवाड़ी थे । सहसा श्रीमती ने कहा "-लोग कहते थे कि लोगों का राज्य हो जायगा कांग्रेस काम करेगी तो सुख मिलेगा, पर ऐसी तकलीफ, ऐसा कष्ट तो कभी देखा ही नहीं था । "

रास्ते का यह स्वर हमारी गोष्ठी का सहसा ध्यान आकर्षित कर गया, धारा सभा के वे अध्यक्ष मौन हो गए, हमारी चर्चा की गति ही रुकसी गई!

परन्तु यह ध्वनि उस मारवाड़ी दम्पति के स्वर से ही नहीं, समाज के प्रत्येक स्तर के लोगों से सहज प्रतिदिन सुनाई पड़ती है, हम इसे सुनी-अनसुनी करते जारहे हैं । यह नहीं कि शासन करने वाला दल इससे अनजान है, उनके मुंह पर भी जनता चीख कर यही भाषा बोलती है, नेता अभिनेता, कार्यकर्ता सड़क पर सुनकर अपना मुंह नीचे लटकाये चले जाते हैं, कह नहीं सकते कि सत्ता के मद में, स्वार्थ के मोह में, या लज्जा के कारण । किंतु जनवाणीकी यह उपेक्षा, बहुत चिंता की चीज अवश्य है, वे पंचवर्षीय योजना बनाएं, या धुंवाधार भाषण देकर अपने शासन की सफलता का ढिंढोरा पीटें, परन्तु इस असंतोष को बढ़ती हुई आँधी को जो जन-जन

के जीवन में घर करती जा रही है नहीं रोका तो इन योजनाओं की सफलता को जनता का असंतोष प्रतीक्षा नहीं करेगा, ज्वालामुखी की तरह यह असंतोष सामूहिक विस्फोट करेगा, जिसे फिर शायद ही कोई शक्ति सम्हाल सके। इस असंतोष का उपाय-योजनाएँ, भाषण-या प्रचार नहीं है, इनका मनोवैज्ञानिक उपाय आवश्यक है, हमारे उपायों का आज अवलम्ब वैज्ञानिक है।

हम 'मनो वैज्ञानिक' से भटकते जा रहे हैं। हम जनतंत्र और जनता के शासन के हामी हैं, किंतु पिछले शासनों की तरह ही हम जनता से दूर हो रहे हैं, जनता और हमारे बीच एक खाई बढ़ती जा रही है, फलतः शासक आलोचना का विषय होगया है। वह आलोचना की उपेक्षा भी करता है। जनता भूख सह सकती है, गरीबी बर्दाश्त कर सकती है, बेकारी भी उसे विचलित नहीं करती, किंतु असंतोष, और अविश्वास का वातावरण उसे पेट भरे रहने पर भी, धंदे में रहते हुए भी, विचलित बना सकता है। इलाज इस बढ़े हुए असंतोष का अत्यन्त आवश्यक है, विश्वासके वातावरण की सृष्टि करनेकी जरूरत है;इसका मार्ग मनोविज्ञान के द्वारा ही साध्य किया जा सकता है, यह उपेक्षा हमारे लिये भावी को अंधकार मय बना सकती है, हम चाहते हैं कि केन्द्र का शासन अन्य योजनाओं की अपेक्षा इस मार्ग की खोज के लिए विशेषज्ञ-समिति का प्रथम निर्माण करे। जो बात एक मारवाड़ी-दम्पति के मुंह से निकलती है, वह जनता के बहुत बड़े वर्ग का निश्चित प्रतिनिधित्व करती है। इस आवाज की अवहेलना हमें गहरे गर्त की ओर ले जायगी। हम 'असंतोष' की 'आवाज़' को प्रचार के पलस्तर से पाट देना चाहते हैं, किंतु यह विकार को घुमाने का पैबन्द है, उसके मार्जन का मार्मिक उपचार नहीं, जो जड़ काटकर जीवन दीर्घ बना सके—नीरोग बना सके। निःसन्देह शासन की अनेक सफलताएँ हुई हो, परंतु असंतोष की आग की लपटों में ये सफलताएँ धुंधली-धूमिल बनकर रह जाती हैं, और शासन के प्रति अविश्वास, असंतोष बढ़ाने में ही सहायक बन जाती हैं। हम रामराज्य की कल्पना कर रहे हैं,हमें स्मरण रखना चाहिए कि चाहे तथ्य हो या न हो राम राज्य में एक रजक की आवाज ने जनक नंदिनी का सौख्य लूटकर उसे प्रासाद से वन में भटका दिया था, यह उस एक आवाज का असर था, आज हम नगर के हर मार्ग पर, हर परिवार में असंतोष को धधकता प्रत्यक्ष देखकर भी धैर्य शील, या-धृष्ट बने हुए हैं। एक धोबी की झोंपड़ी की आवाज राम-राज्य के सौख्य समेटने की क्षमता रखती थी, किंतु सारे वातावरण में असंतोष की आवाज़ के छाये रहने पर भी हमारे कान पर आज जूँ नहीं रेंगती। 'जनवाणी' का वह बल, और आज जनवाणी की यह अवहेलना !

हम देश को किधर ले जा रहे हैं ?

पंधरा अगस्त की पीड़ा हम भूले नहीं है, हमने अंग्रेजों से उस दिन शासन हस्तगत किया था, उस दिन घोर-काली अमावस्या थी, जिसे अपढ़-गंवार भी अशुभ-दिन मानते हैं। वह तो गनीमत समझिये कि बड़े झगड़े-बखेड़े के बाद चतुर्दशी की रातको समय पलटा गया, परंतु क्या काली अमावस, और क्या चऊदस, दोनों ही चन्द्रहीन अशुभ दिन, फ़र्क इतना ही था कि पत्थर की जगह ईंट। और नतीजा दिल्ली का हत्याकांड, पंजाब का हत्या कांड, गांधीजी की हत्या आदि। परन्तु हमने सबक नहीं लिया, न अब भी सम्हल रहे हैं। यह कोई संस्कृति और परम्परा का ही प्रश्न नहीं है। वैज्ञानिक तथ्य भी है। जिससे सार्वजनिक स्वास्थ्य, हित और भावी सम्बन्धित है। हाल ही में इसी तरह की और घटनाएं घट गई हैं। बीती बात पर अफसोस ही क्या हो, किन्तु हमारी सूझ को ही न जाने क्या हो गया है, मालूम नहीं हमारे देश के भावी में—भाग्य में क्या बदा है। हमें तो कुछ शुभ लक्षण प्रतीत नहीं होते। पंजाब की नई राजधानी चण्डीगढ़ बनी है। बड़ी महनत, बड़े व्यय, और बड़े लंबे समय के बाद बिलकुल नवीन भूमि पर नवीन नगर राजधानी का निर्माण किया गया, ऐसे सर्वथा नवीन और एक महत्व के नव-नगर नवीन-राज्य के आरंभ का दिन फिर हमने चुना वही काली अमावास्या को। कितने खेद की बात है ? यह भारत है जहां हर बात को शुभा-शुभ देखने की भावना है जरा ही गलत हो तो घर २ में उसके परिणाम का मत प्रकाशित होने लगता है। अमावास्या चन्द्र हीन तिथि के कारण ही प्रत्येक शुभ कार्य में अग्राह्य है। सभी तरह वर्ज्य है। जनता के बहुत बड़े वर्ग

में (समझदार और बेसमझ में भी) इसकी अशुभता की धारणा घर किए हुए है। उस भावना, धारणा जनमत, और वैज्ञानिक तथ्य की अवहेलना करके जान बूझ कर अमावास्या को नवीन राजधानी का आरम्भ करना किस अनर्थ को आमन्त्रित करना है कह नहीं सकते, यदि यह सब अनजाने ही हो रहा है तो अवश्य ही हमारे भावी के अँधकार मय होने का यह संकेत ही है। पंजाब वैसे ही खतरे की नोक पर खड़ा है, अमावास्या को आरम्भ होने वाली उसकी राजधानी पता नहीं कौनसे खतरे को न्यौता देने का संकेत दे रही है? क्या शासन में कोई भी ऐसा समझदार विचार-विवेक शील व्यक्ति नहीं है (या हो तो शायद उसकी आवाज नहीं सुनी जाती हो) जो ऐसे महत्व पूर्ण कार्यारम्भ के लिए साधारण सी समझ या विवेक से भी काम ले सके ? आखीर अमावास्या के (विशेष रूप से) चुनाव में शासन को इतना मोह क्यों है ? अथवा यही साहजिक अमावास्या का अशुभ-दिन ही हाथ आ पड़ता है ? और हमारे भविष्य को प्राकृतिक-रूप में बिगाड़ने पर उतारू हो रहा है? किसे दोष दें प्रकृति की प्रेरणा को, देश के भाग्य को या उसके निर्माताओं को ? इन घटनाओं को एक के बाद एक होते देखकर हमारी आत्मा कांप उठती है। देश की आन्तरिक हालत, बेकारी-भुखमरी, गिरावट, असन्तोष, अविश्वास, असफलता, नैतिक पतन, संघर्ष-आदि को देख, जब इन अशुभ घटनाओं की परम्पराओं को तौलते हैं तो और भी अपने राष्ट्र के भावी की चिता चौका देती है। जाने या अनजाने न जाने कौनसा अनर्थ न्यौत रहे हैं। बारूद के ढेरों के पास ही सहज शौकिया छोटी सी सिगरेट सुलगाते जा रहे हैं, पता नहीं न जाने में कौनसा तिनखा उड़कर किस ढेर से ज्वालामुखी भड़का दे ! विदेश के विधर्मी राष्ट्र और विज्ञान और प्रगति के पुरोधा लोग भी अपने धर्म-संस्कार परम्परा, धारणा, भावना, नियम-बन्धन आदि को चिपके हुए चले जाते हैं, उनमें आस्था हो या न हो, अपनी संस्कृति का महत्व विवेक पूर्वक स्वीकार करते हैं, किन्तु हम इतने विवेक-च्युत हैं कि अपनी संस्कृति-परम्परा नियम-विधानों को ठुँकराने में गर्व मानते हैं। हम अपने स्वाधीनता-दिवस पर देशी संस्कारों को ताक पर रख कर राजधानी के समारम्भ में 'केक' को काटना तो फर्ज समझते हैं, कर्तव्य में दाखिल करते है, पर देश की परम्परा को ठुँकराने में महत्व मानते हैं, मानो हमारे इस महान् राष्ट्र की कोई परम्परा नहीं है, संस्कार नहीं, नियम नहीं है ।

नवराष्ट्र की एकता के निर्माता सरदार का स्मरण स्फूर्तिदायी हो !

संसद् और सभाओं के अध्यक्ष-उज्जैन में !

भारतीय पार्लमेंट के अध्यक्ष श्री. दादा सा. मावलंकर की अध्यक्षता में गवालियर में भारतीय धारा सभा के अध्यक्षों का एक सम्मेलन हो गया, अधिकांश अध्यक्ष- गण ग्वालियर से वापिस होकर उज्जैन भी आए, इस बार स्वयं श्री. मावलंकर नहीं आसके, इसके पूर्व वे एक बार आगए हैं, हमें उनसे क्षण भर मिलने का सुअवसर भी मिला है।

उनके व्यक्तित्व ने हमें प्रभावित किया है, इस बार प्रथम बार हमने श्री. अनन्तशयनम आयंगार महोदय के दर्शन किये। लगभग ३-४ घन्टे उनके सहवास चर्चा का प्रसंग भी प्राप्त हुआ है। श्री आयंगार की कीर्ति, यश और उनकी अध्यक्षता की विशेषता को हम जानते रहें हैं, पर प्रत्यक्ष उनकी सरलता, सज्जनता के साथ व्यापक विद्वत्ता का अनुभव कर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे कालिदास के भक्त ही नहीं, विद्वान् भी हैं, इसी प्रकार बम्बई धारा सभा के अध्यक्ष श्री. कुन्टे महोदय की प्रौढता भी अनुभव करने को मिली, अन्य अध्यक्षों में हमें राज्यस्थान के श्री जोशी में प्रतिभा और व्यापक विद्वत्ता के दर्शन हुए। बंगाल, बिहार, विन्ध्य की धारा-सभा के अध्यक्ष भी सुयोग्य, सज्जन हैं; परन्तु राजस्थान के प्रधान की प्रतिभा में हमने तेजस्विता देखी। वस्तुतः धारा सभाओं की अध्यक्षता का काम सरल नहीं, यहाँ न्याय, और विधान की विशेषता के साथ व्यापक योग्यता की आवश्यकता होती है। उनका पद मंत्रीत्व का मान पालेने का सरल सौदा नहीं होता, इसलिए अध्यक्षगण प्रतिभा के धनी होते हैं। ये प्रतिभापुत्र उज्जैन की यात्रा से चाहे वह अल्पकालीन ही क्यों न रही हो प्रसन्न दिखाई देते थे। विशेष रूप से श्री. अनन्त शयनम् महोदय तो, उज्जैन की यात्रा से मुग्ध थे। उनका अन्तर पुलकित हो रहा था, मध्यान्ह की उष्णता में भी शिप्रावात ने उनके मन को मुदित बनाया है। वे कालिदास की रसवन्ती में आनन्दांदोलित हो रहे थे। उन्होंने स्पष्ट ही कहा कि '—उज्जैन में आकर आज मैं वास्तव में मुग्ध, और कृतकृत्य बनगया हूँ। इसका प्रमाण उज्जैन से लौटते हुए इन्दौर के स्वागत सन्मान समारम्भ में वह भाषण है जिसमें उन्होंने विक्रम—कालिदास की यशोगाथा का मुक्त हृदय से गान किया है। किन्तु जिस कालिदास—विक्रम की कीर्ति—शेष नगरी अवन्ती के दर्शन-मात्र से देश विदेश के प्रतिभा पुत्र मुग्ध बन जाते हैं, कृतकृत्यता अनुभव करते हैं, उसके विकास में हमारा शासन कैसी उपेक्षा लिए हुए है। कालिदास और विक्रम के संस्मरणों को देखने की उत्कट लालसा लिए आने वालों को यहाँ पद-पद पर शासन की असफलता दिखलाई पड़ती है। किन्तु वह अपना आत्म यश प्रचारित कर शासकीय सफलता का ढिंढोरा पीटता रहता है। मध्य भारत में यदि उनकी कहीं कीर्ति (?) विदित हो सकती है तो उसका एक मात्र केन्द्र उज्जैन है। पर शासन की सर्वतोमुखी उपेक्षा है तो वह उज्जैन ही!

कालिदास-स्मृति-के सम्बन्ध में,—

पिछले अंक में महाकवि कालिदास के स्मृति दिवस के सम्बन्ध में हमने मध्य भारत सरकार के शिक्षा विभाग की एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसमें स्मृति दिवस के सम्बन्ध में "१४ नवम्बर" प्रकाशित हो गया है. इससे कुछ भ्रम की सम्भावना हो सकती है। वस्तुतः स्मृतिदिवस कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को है, उस रोज ७ नवम्बर है, १४ नवम्बर नहीं।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा विक्रम का नव वर्षारंभ दिवस है। और महाकवि का विक्रम से सम्बन्ध होने के कारण यह महाकवि का वास्तविक संस्मरण-दिवस है। संयोगवश इस दिन प्रायः समस्त शासकीय संस्थाओं में छुट्टी रहती है इस कारण कवि के स्मरण में सर्वत्र सुविधा नहीं हो पाती। इस समस्या को लेकर हमारे पास, तथा शासन के निकट भी अनेक प्रांतों से पत्र आये, तब हमने यह विचार निश्चित किया कि सार्वजनिक सुविधा को लक्ष में रखते हुए, तथा महाकवि कालिदास, विक्रम और उनकी साहित्यिक एवं ऐतिहासिक-परम्परा के अनुरूप ही समय निश्चय किया जावे। यद्यपि कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को महाकवि का संस्मरण सब प्रकार सार्थक, और सुसंगत है तथापि उसी नव-वर्ष-कार्तिक शुक्ला ११ देवोत्थापिनी को कवि के मेघदूत में यक्ष का शाप मोचन दिवस माना गया है। उस दिन विरही यक्ष अपने निर्वासन की शापावधि पूर्ण कर सुखी-सानन्द हो काव्य और जीवन को सफल बना देता है। (शापान्तो मे भुजग शयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ—मेघदूत) उस दिन को भी महाकवि का स्मरण किया जाना उचित और सुसंगत होता है। इसलिए कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से लेकर एकादशी (देवोत्थापिनी) पर्यंत, या इन दोनों दिनों को महाकवि का संस्मरण किया जाना चाहिए कालिदासीय साहित्य के अनेक मर्मज्ञ विद्वानों की भी इसमें सहमति है।

हम चाहते हैं कालिदास को श्रद्धांजलि अर्पित कर

उनके पुण्य स्मरण करने वाले सभी सज्जन, संस्थाएँ, और शासकीय शालाएं कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा, तथा कार्तिक-शुक्ला ११ एकादशी को सुविधापूर्वक हमारे राष्ट्रीय कवि की सादर-सोत्साह स्मृति पूजा का आयोजन करेंगे।

क्या "दूसरे की कमाई पर जीने वाले सब चोर" (?) हैं

हमारे प्रधानामात्य पं. नेहरूजी ने पिलानी में विद्युत-अनुसंधान-संस्था के शिलारोपण करते हुए देश की बेकारी की चर्चा की थी। उन्होंने कहा था, जो लोग काम चाहते हैं उन्हें काम मिलता नहीं यह दुःखद है। उन्होंने बेकारी के बारे में बोलते हुए कहा कि—'परन्तु बेकारी का एक दूसरा प्रकार भी है, वह ऊँचे प्रकार की बेकारी है, जो दूसरों की पीठ पर जीते हैं। इन बेकारों में पण्डितजी ने भारत के ५० लाख साधुओं को याद किया "जो दूसरों की कमाई पर निर्भर रहते हैं। साधुओं, और ऐसे कितने ही लोग जिसमें उच्चकोटि के व्यक्ति भी हैं; अधिकांश भाग सार्वजनिक उदारता पर जीवित रहते हैं। ये कोई उत्पादन किए बिना ही खाते रहते हैं यह स्थिति किसी राष्ट्र के लिए खराब है।" पंडितजी ने और भी कहा कि--"दूसरों की कमाई पर जीने के साधुओं के इस धंदे को भले ही कानून में 'चोरी' न कहा जाता हो, तथापि वास्तव में वह चोरी ही गिनी जायगी।"

पंडितजी के भाषण के ये शब्द हमने (जन्मभूमि-२२-९-५३) गुजराती पत्र से उद्धृत किये हैं। पंडित जी के इन शब्दों को पढ़कर-सुनकर, बेकारी, और चोरी की परिभाषा में सन्तश्रेणी के विशिष्ट जनों को परिगणित होते देख किस विवेक-विचारशील व्यक्ति को कष्ट न होगा ! पंडितजी बिना विचारे ही सहसा एक श्वास में भले बुरे सभी सन्त-साधु विरक्त निस्पृह जनों को निःसंकोच 'चोर' की श्रेणी में गिन गए हैं। चाहे वह रामदास हो-तुकाराम हो तुलसीदास हो, सूरदास हो, गांधी हो, विनोबा हो।

कलतक हम राजा महाराजाओं रहीसों-सेठ-साहूकारों को दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने वाले कहते थे, और उन्हें गौरव से गिराकर 'जनता का हित' सम्पादन किया ! और उनका उत्तराधिकार उन लोगों को दिया जिन्हें त्यागी-तपस्वी कर्मठ कहा जाता था, और हम देख रहे हैं कि जनता की कमाई पर चन्दे-संस्था-सम्पत्ति पर, दूसरों की पीठ पर पलने वालों की इस जमात ने पद पाते ही सार्वजनिक धन पर गुलछर्रे उड़ाना आरम्भ कर दिया, पर चूँकि वह हमारी जमात के हैं, हमने उन्हें बेकार और दूसरों की कमाई पर जीने वाला नहीं बतलाया और अब भी हजारों सभाई संस्थाई सेवक जो जन-धन पर जीवन व्यतीत कर शानशौकत बनायेहुए हैं, वे शायद अपनी खुद की कमाई पर ही जी रहे होंगे ! कितनी संस्थाएँ, सभाएँ, सर्वोदय, संघ, सदन, आदि जनता के फंड पर चलते हैं ? क्या बहुत से श्रमशील सम्पन्नों को नसीब न हो उतने ऊंचे प्रकार के ये जीवन को बिता नहीं रहे हैं ? क्या पंडितजी की दृष्टि में ये भी बेकार और चोर की श्रेणी में समाविष्ट किए जा रहे हैं ? क्या केवल कपड़े के 'कलर' पलटे जाने पर ही साधु की जात में जुड़ा समझ उसे दूसरों के दम पर खाने वाला, मुफ्तखोर-चोर समझ लिया जाता है ? हम नम्रता पूर्वक उन नेताओं से पूंछना चाहते हैं कि उनमें से कितनों के 'हल' चलते हैं ! उत्पादन होता है ? और वे 'हक' की 'हलाल' की पैदा की हुई कमाई खाते हैं ? उनके नेतृत्व का बोझा, क्या कोई दूसरे के दम पर नहीं निर्भर करता है ? यदि पण्डितजी 'साधुओं' से ही नाराज हों तो निराली बात है; किन्तु वे ऐसे बेकारों की जन गणना करवाने चलेंगे तो हमारा विश्वास है पचास लाख साधुओं की तो क्या गिनती, करोड़ से ऊपर साधुओं से भिन्न ऐसे लोगों की संख्या प्राप्त होगी जो जनता के उद्धार का दावा कर, सेवा का सामान लेकर सभा-संस्थाओं की पूंजी पर अपना पेट ही नहीं पालते, मौज-मजा भी मारते है। और जिन्हें सरकार, और बेचारे साधुओं को 'चोर' की गिनती में जुड़ाने वाले समझदार भी सन्मान देते हैं, स्वीकार करते हैं, तब अकेले साधु-समाज पर पंडितजी' का प्रहार कितना विवेक-विहीन बन जाता है।

हम सारे साधुओं के समर्थक नहीं, उनके दल के दुराचारी, नकली नामधारी धूर्त, और दाम्भिकों के सहायक नहीं, परन्तु उस संस्था के महत्व, इतिहास, परम्परा, त्याग, तप, ज्ञान, निस्पृहता, सेवा, उच्चता का हमारे मनमें आदर है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह पराये धन-फंड-चन्दे पर

काम करने वाले ईमानदार निःस्वार्थी सच्चे सेवकों के लिए सन्मान रखते हैं। पूरे पचास लाख साधुओं को परायों पर जीने वाले बतला कर 'चोर' का पद देदेना उसी प्रकार अनुचित एवं दुस्साहसपूर्ण है, जिस प्रकार ईमानदार सेवकों को परायों पर पलने वाला घोषित कर देना। म्युनिसिपालटियाँ सड़क पर चलने वालों के लिये प्रकाशदान देती हैं, यह उसका धर्म है, उसमें चोर भी चलते हैं, साहूकार, सभ्य भी। इसी प्रकार समाज की सचाई से सेवा करने वाले सभ्यों को समाज पोषित करता है। यह उसका कर्तव्य है। फिर उसमें भले भी हों, बुरे भी हों, कांग्रेसी भी हों, साधु भी हों, सभी को 'चोर' समझ लिया जाय तो समाज की कर्तव्य शीलता, उदारता ही समाप्त हो जाएगी। केवल काम की कीमत पर मजदूरी पाने वाले कर्मचारी, उत्पादन कर पेट भरने वाले समाज में रह गए तो अपनी घर गृहस्थी, सुख, स्वार्थ त्याग कर निःस्वार्थ-निसंग-निर्विलिप्त भावना से लोकसेवा करने वाले कहाँ पनप सकेंगे। यदि उनके पेट और परिवार के पोषण का भार, उदार-समाज, संस्था-या सभाएँ न ले सकेंगी, यदि पंडितजी के शब्दों में-ऐसे विरक्त-सेवा भावी जनों को, जो बिना उत्पादन के परायों की पूंजी पर पलने वाले हैं-बेकार चोर की श्रेणी में ही समाविष्ट किया गया तो समाज की सेवा-साधुता ही समाप्त हो जाएगी। साधुता की परिभाषा केवल लाल-पीले-धोले कपड़ों पर परिमित नहीं; न इस, या उस प्रकार की सेवा की सीमा में ही उसे बाँधा जा सकता है। आध्यात्मिक-मानसिक उन्नति के लिए सेवा करना, जन जीवन को उन्नत करने के अनेक प्रकार हैं, जिनमें साधु-सन्तों का असाधारण भाग रहा है, और इसीलिए समाज ने साधु संस्थाओं के भरण-पोषण का भार स्वेच्छया स्वीकार किया है। और संतों ने उनके अन्न-वस्त्र को लेकर समाज की सेवा में समस्त जीवन अर्पित किया है। इसी परम्परा का समाज आज निर्वाह कर रहा है। समय पाकर संस्थाओं में विकार आते हैं, और स्वयं वे समाज की दृष्टि में गिर भी जाती हैं। भगवान् बुद्ध ने जिस सदुद्देश्य से महान् आदर्श लेकर भिक्षु संघ स्थापित किया। क्या वे भिक्षुवर्ग परोपजीवी होने के कारण 'चोर', बेकार कहे जा सकते थे? किन्तु उस आदर्श-संघ में समय पलटते ही विकार नहीं आया, और वह नष्ट नहीं हुआ? क्या रामदास का समाज ऊँचा नहीं था, और कांग्रेस १९२० से १९४२ तक जनता के पोषण पर नहीं पनपी और उसकी सेवा को किसी भी तरह कम कूता जा सकता है? किन्तु आज वही संस्था समाज की पूंजी पर पनप कर कितने गहरे गर्त में गिर गई है। क्या कोई उसे समाज के सिर पर निर्भर रहने वाली बेकार की जमात कहता है? तब केवल उन विद्वानों, महात्माओं, संतों, विरक्तों, (धूर्तों-दुराचारियों को छोड़कर) समाजोन्नति के सतत साधकों को परायों की पूंजी पर पनपने वाला कहना, और 'चोर' की अपमान जनक भाषा से सम्बोधित करना-संत साधु और जनहित कर्ताओं के समूह का अक्षम्य अपराध नहीं है? भारत की संत परंपरा, संत साहित्य, संत सेवा का असाधारण इतिहास है। राष्ट्र संस्कृति-समाज को उनकी असाधारण देन है, पण्डितजी ने सहसा भुलाकर जो आक्षेप किया है वह करोड़ों को मर्म व्यथा पंहुचाए बिना न रहेगा। संत ईसा, मुहम्मद, बड़े बड़े-पीर-पैगम्बर ऋषि मुनि- जिन्होंने कठोर तप द्वारा जनजीवन को, राष्ट्र को, संस्कृति को उन्नत किया है, पोषित किया है उन्हें बेकार, दूसरों पर जीने वाले और हीन बतलाना बहुत बड़ा दुस्साहस ही कहा जायगा।

मालवी की उपेक्षा क्यों?

भारतीय शिक्षा विभाग के अंतर्गत एक फिल्म विभाग भी है, जो 'भारतीय स्कूलों कालेजों के विद्यार्थियों के मतलब की शिक्षाप्रद फिल्म' बनवाकर शिक्षा संस्थाओं और संगठनों को जनता को दिखाने के लिए फिल्म 'निःशुल्क' वितरण करता है, इसमें और भी 'दो युनिक काम करेंगे और साल में १२ फिल्में तयार करेंगे, इसमें-सामाजिक, और वयस्क-शिक्षा सम्बन्धी फिल्म, और सामूहिक-योजना प्रशासन, और योजना-कमीशन के लिये बनाए जाने वाले ये चित्र हिन्दी, बंगला, तामील, तैलगू. मलयालम, कन्नड, गुजराती, मराठी, उडिया, असमिया पंजाबी और काश्मीरी भाषाओं में भी बनाये जाएँगे।'

वास्तव में सामूहिक योजना, और शिक्षा प्रसार की दृष्टि से यह कार्य उत्तम है, और उपयोगी भी। जहां तक तामिल तेलगू, बंगाली आदि भाषा में चित्र बनाने का सम्बन्ध है हमें उनकी उपयोगिता समझ में आ सकती है, परंतु गुजराती

पंजाबी, मराठी में हिन्दी भाषा समझने वालों की कमी नहीं वहाँ उन भाषाओं में चित्रपट निर्माण की आवश्यकता क्यों रहती है ? और काश्मीरी भाषा जैसी कोई भाषा तो है ही नहीं। स्वतः काश्मीर के शासन ने उसको स्वीकार नहीं किया है, वहां की राज-भाषा को उर्दू माना गया है। ऐसी स्थिति में भारत शासन काश्मीरी-बोली को भाषा मानते हुए उसमें चित्रपट बनाने को क्यों उत्सुक है ? यदि काश्मीरी बोली के लिये सरकार चित्रपट बनाने की उपयोगिता समझती है, गुजराती मराठी पंजाबी को भी प्रश्रय देती है तो मालव प्रदेश जैसे लग-भग एक करोड़ मानवों के प्रदेश की उपेक्षा क्यों की जाती है। अनेक लक्ष लोगों की मालवी-भाषा की उपेक्षा की जाना और उसके महत्व को अस्वीकार करना तो अन्याय है। मालव के सैकड़ों ग्रामों नगरों में मालवी ही मातृभाषा है, मालवी के माध्यम से वहां जितना ज्ञान-प्रचार सुलभ है उतना हिन्दी से या अन्य माध्यम से नहीं। ऐसी स्थिति में केन्द्र का ध्यान हम आकर्षित करना चाहते हैं कि अन्यान्य-भाषा में वे मालवी को स्वीकार कर उसमें भी चित्रपट बनाने का आयोजन करें।

मध्यभारत शासन भी प्रौढ़-और अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र में ग्रामों में जाकर तब तक सफल नहीं हो सकता; जब तक वह अपनी मालवी में उनकी आत्मा के निकट न पहुँचे। ग्रामीण शालाओं में मालवी के द्वारा ही सहज ज्ञान प्रचार सुलभ हो सकता है। और शालाएँ उपयोगी, एवं सफल सिद्ध हो सकती हैं, प्रौढ़ों में शिक्षा सरल हो सकती है। परन्तु इस ओर शासन की उपेक्षा पूर्ण-नीति, उसके व्यय को सार्थक नहीं बना रही है। क्या हमारा शिक्षा विभाग, और केन्द्र का फिल्म विभाग इस ओर ध्यान देगा ?

हमारे ग्रामों का विकास 'मालवी' के माध्यम से ही होगा।

म. भा. माध्यमिक शिक्षा परिषद् के सेक्रेटरी की एक विज्ञप्ति के अनुसार सूचना प्रकाशित हुई है कि हाईस्कूल के परीक्षार्थियों की सुविधा के लिये सिन्धी भाषा का माध्यम मान लिया गया है। १९५४ में परीक्षार्थी सिन्धी भाषा का उपयोग कर सकेंगे। म. भा. की यह उदारता म. भा. में शरणार्थी के रूप में आए हुए कतिपय सिन्धियों के लिए उपयोगी हो सकेगी। यहां सिन्धियों की संख्या अधिक नहीं है न उनके स्वतन्त्र पाठ्यक्रम की ही कोई व्यवस्था है, तथापि सहृद भावना बुरी नहीं, अवश्य ही अधिकांश सिन्धी बालक य की भाषा हिन्दी में ही पढ़ते हैं, स्कूलों में सम्मिलित होते हैं और ज्ञान-सम्पादन करते हैं। उर्दू-या-मराठी की तरह वे स कार को अपनी पढ़ाई के लिए विवश नहीं बनाते हैं किंतु य प्रश्न सैकड़ों की संख्या का है, हजारों की संख्या का नहीं। हम देखते हैं कि हमारा शासन जब अल्प संख्यकों की भा को प्रोत्साहन देता है, उदारता करता है तो क्या कारण है कि वह लाखों की उपेक्षा करे ? हमारा आशय उन ग्रामों में बसने वालों से है, जो मालवी भाषा को मातृभाषा मानते हैं उनके जीवन में व्यवहार में मालवी ही ओत प्रोत बनी हुई है और जो सरलता से स्वाभाविकता से उसमें ज्ञान प्राप्त क सकते हैं, उन्हें मालवी से क्यों वंचित किया जाय, ऐसे लोगों की संख्या किसी अन्य भाषी से कम नहीं, किंतु इतनी अधि है कि लाखों पर ही नम्बर पहुंचेगा। यदि हम उन ग्राम शालाओं में मालवी माध्यम स्वीकार कर लेते हैं तो उनके ज्ञान प्राप्ति का कार्य बहुत सरल बन जाता है, वे उत्साह और स्वाभाविक-भावना से सहज शिक्षा प्राप्त करेंगे, उनके प्रौ जन भी सहज शिक्षा लेने को आगे आयेंगे, अनिवार्य और प्रौढ़ शिक्षा में जितनी सफलता मालवी के माध्यम से मि सकती है, उतनी और किसी प्रकार से नहीं। मालवी के द्वा जितना अधिक सहज ज्ञान वर्धन संभव होगा, जितने अल्पका में होगा वह दूसरे मार्ग से नहीं हो सकता, मालवी की लि में कोई अंतर नहीं हो सकता, बल्कि उससे हिन्दी की भा शक्ति-शब्द शक्ति बढ़ेगी। यदि विकास विभाग ग्राम पंचाय के समस्त कार्यों में मालवी को स्थान दे तो उनके कार्य प्रगति तो सहज होगी ही, सफलता भी अधिक मिलेगी। ग्रा वासियों के हित को लक्ष्य में रखते हुए उन्हें यदि वास्ति विकास और प्रगति की ओर ले जाना है तो वहां की शाला कार्यक्रमों, विकास- कार्यों को मालवी-माध्यम से ही संचालि करना होगा। जब हम सिन्धी को सहाय कर सकते हैं मरा गुजराती उर्दू के प्रति भी उदार बन सकते हैं तो लाखों ग्रा वासियों के स्वाभाविक विकास में हमें मालवी के माध्यम

स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिये, हम शिक्षा विभाग और विकास विभाग से इस ओर विशेष ध्यान देने का आग्रह करते हैं ।

एक नवीन'-शास्त्र' का नव-निर्माण !

स्वाधीनता के पश्चात् सभा समारंभों की संख्या भी अपनी सीमा उल्लंघन करती जारही है, किसी 'बांध' के उद्घाटन से लेकर पेट्रोलपम्प तक का उद्घाटन करने की प्रवृत्ति पनप रही है । सिनेमा चित्रपट के पट खोलने से लेकर पुस्तक के पन्ने खोलने तक मंत्रियों का मिल जाना सहज सुलभ होगया है । अभी हमने किसी स्वास्थ्य मंत्री के हाथों नगर स्वास्थ्य के हित बनाए जाने वाले पाखानों या पनालों का उद्घाटन अवश्य नहीं सुना है । किंतु नालों के खुदाई के लिए पहुंचने वाले मंत्री का उस हद तक जाना भी असंभव नहीं होगा । नए वर्तमान-पत्रों के प्रारम्भ होने पर (जो कि आज बरसाती मेंढ़क की तरह पैदा होते हैं, और एक-दो बार फुदककर अकाल अंत पा जाते हैं) उनके प्रकाशनारंभ के लिए मंत्री अवश्य पहुंचते हैं । किसी रोज नई शादी होजाने पर पत्नी के चेहरे से पर्दा उठाने के लिए भी ऐसे ही सार्वजनिक समारंभों का प्रारम्भ होगा, और उसके लिए भी रसिक जनों को आमंत्रण का अवसर उपलब्ध हो सकेगा ।

हाल ही में बम्बई में एक पुस्तक प्रकाशन का उद्घाटन समारंभ सम्पन्न हुआ है । यह पुस्तक बाल काटने सजाने की कला पर लिखी गई है । पुस्तकों के जग में इस विषय पर शायद यह पहली रचना हो सकती है । लेखक ने अवश्य ही यह मौलिक विषय चुना है । केश काटने सजाने-संवारने की कला नाई समाज की परंपरागत है, विदेशों में इसके लिए सार्वजनिक रूप से व्यवस्थित शिक्षण की व्यवस्था है । हमने ऐसे कुशल नाईयों को देखा है जो खास तौर पर इजिप्ट में इस कला की ट्रेनिंग लेकर इटेली में अपना 'सलून' सफलता से चलाते थे । भारत के कुछ राजा-महाराजा भी विदेशों में अपने नाईयों को भिजवाकर या साथ लेजाकर सिर-मूंडने में प्रवीण बनवाया करते थे । किंतु अधिकांश भारतीय मुण्डक-समाज अपने समाज-धर्मी सहकर्मियों के सहयोग से ही इस कला में कौशल्य प्राप्त करते थे, उनका ज्ञान किताबी नहीं बन पाता किंतु कर्म-कौशल ही उनकी कीमत करवाता रहा है । पेरिस में तो सिर संवारे जाने की कला चरम को पहुंच गई है । केश की काट-छांट, उनकी सुरीली सजावट जमावट अनेक जगह अनेक कलाकार करते रहते हैं और उनकी कीमत भी कम नहीं । अवश्य ही किसी जमाने में गंधर्व-किन्नर-यक्ष अप्सर लोकों की सुन्दरी देवकन्याएं कालिदास के शब्दों में सिर में सुगन्धित तेल डालकर या धूंए से सुरभि भर कर तरह तरह की वेणी बांधती होंगी तो उस समय वेश-भूषा की कला हमारे यहां भी कम कमनीय न रही होगी । शास्त्रों में जब पचास साल की उम्र तक सिर न मुंडाने की सलाह दी है तो धर्माज्ञा को मानने वाले लाखों करोडों पुरुष अपने सिर के बालों को बुरी तरह बेतरतीब बखेर कर तो नहीं घूमा करते होंगे । उनको सजाने-संवारने में कुछ घण्टे जरूर खर्च करते ही होंगे, तब इस कला की महिमा भी बढ़ी हुई होगी, ऋषि-मुनियों की विविध जटा-जूटों, राम कृष्ण के केश कलापों की बातों को पढ़ सुनकर यह विश्वास भी होता है । मोहन-जोदरों से मिले हुए छः हजार साल के नरमुंड की दाढ़ी-मूछों और सिर की सजावट से लेकर ठेठ राजघाट (बनारस) से मिली हुई अनेक मृण्मूर्तियों के मस्तक की कला-मयता जिनके एक-एक बांध-बनावट का नाम धाम, कला की महत्ता डॉ. वासुदेवशरणजी अग्रवाल जैसे पुरातत्वान्वेषी ने खोज कर ग्रन्थों में से निकाल कर प्रकट की है । अवश्य ही इस केश-भूषा की कला ने पुराने जमाने में चरम विकास साध्य किया होगा, और उसका कोई शास्त्र भी बना होगा; आज वह दुर्लभ है । गुलामी में कहीं हम यह सोचने का भी सुअवसर प्राप्त न कर सके, स्वतंत्र होने के बाद जिस प्रकार हमें द्रुत गति से प्रगति करना है, उस दृष्टि से हमारे केश किशोर, और केश किशोरियों के केश कला-विन्यास की ओर भी ध्यान जाना आवश्यक ही था । भला हो श्री. नन्दन कालेकर नामक सज्जन का जिन्होंने मराठी में 'केश भूषा शास्त्र, और तंत्र' नामक पुस्तक लिखकर एक विलुप्त विषय को अपने समाज के समक्ष तो रखा । भला, ऐसे अपूर्व, अद्भुत, और अप्रतिम ग्रन्थ-रत्न

का प्रकाशन-समारम्भ क्यों न स्वागत योग्य होना चाहिए, इस समारम्भ की अध्यक्षता बाम्बे जेसे प्रगतिशील प्रान्त के एक प्रधान पुरुष माननीय मन्त्री श्री. भाऊ सा. हिरे ने की। सिख-समाज को छोड़-जहाँ बाल-काटने का कर्म धर्म में दाखिल है—इस ग्रन्थ का सर्वत्र स्वागत ही होगा। खेद है कि यह अभी राष्ट्र भाषा, या अन्तर राष्ट्रीय-भाषा में नहीं हैं, अन्यथा यह 'केश-भूषा-शास्त्र' षट्-शास्त्रों में अपना स्वतन्त्र, और महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता; किन्तु हमारा विश्वास है, मन्त्री का मान प्राप्त कर सहज ही राष्ट्रीय सन्मान का अधिकारी बन जाएगा। क्योंकि मराठी के मान्य साहित्यकार वयोवृद्ध-वरेरकर ने भी सरकार को इस 'शास्त्र' को प्रोत्साहन देने का अनुरोध किया है। केश-कला-रसिक समाज के लिए यह 'शास्त्र' वास्तव में इस युग का धर्म-ग्रन्थ ही बन जाएगा। किसी केश-किशोर-कवि-कलाकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट होना चाहिए ताकि अविलंब इस केश शास्त्र का राष्ट्र भा में रखकर किसी माननीय से उसका प्रकाशन समार सम्भव हो सके!!

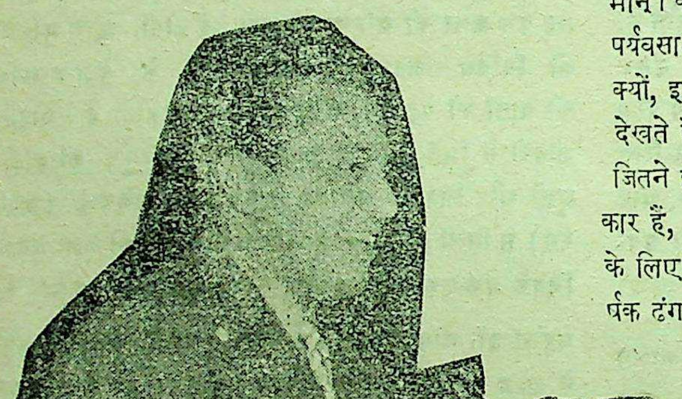

श्रीमंत राजप्रमुख मध्यभारत ने ग्वालियर में महाराष्ट्रीय साहित्य सम्मेलन का उद्घाटन किया!

आपके प्रश्नोत्तर का निष्कर्ष!

जी! शायद आप इस 'प्रश्नोत्तर' शीर्षक से ठीक आश समझ न सके होंगे। हमारा संकेत उस 'प्रश्नोत्तर' से है, प्रायः मासिक, साप्ताहिक, दैनिक में प्रकाशित होते रहते हैं। हाल ही में दिल्ली के सुप्रसिद्ध पत्र 'हिन्दुस्तान' में भी छ लगे हैं। इन पत्रों में देश के युवकों की सामूहिक प्रवृत्ति और मनोवृत्ति का आभास मिलता है। लगभग ६०-७० प्रति ऐसे प्रश्न सिर्फ सिने-अभिनेता, अभिनेत्रियों को लेकर ही हैं, उन्हीं के जीवन में अनुराग बढ़ता दिखाई देता है। इ स्पष्ट है कि हमारे देश की मनोवृत्ति किस ओर रुचि ले है। न तो अन्य विषय में अनुराग है न रस-रुचि ही। जीवन मानो कोई अन्य समस्या है ही नहीं। यदि है भी तो उ पर्यवसान इस सिने समस्या में ही समाविष्ट हो रहा है। क्यों, इन पत्रों में प्रकाशित प्रश्नों के उत्तर देने वाले सज्जन देखते हैं शायद ही अन्य विषयों में उतने प्रवीण, द जितने इन कलाकारों की गतिविधि जीवनी के गहराई के कार हैं, क्या यह प्रवृत्ति प्रोत्साहनीय है? क्या यह देश, सम के लिए हितकर या पोषणीय है? सिनेमा के चित्रों को आ र्षक ढंग से प्रकाशित कर, प्रचारित कर क्या हम स्वयं रुचि को इसी दिशा में प्रेरित नहीं कर रहे हैं! ऐसे प्रश्नों के उत्तर देकर हम कोई विशेष जिज्ञासा का शमन कर रहे हैं या ज्ञानवृद्धि रहे हैं या जनता के सांस्कृतिक स्तर को उठा हैं? क्या कारण है कि हम ऐसे प्रश्नों और उ ऐसे उत्तरों को छाप कर 'जन हित साध्य की प्रवृत्ति पोषित करें? सम्भवतः पत्र प्रचार वृद्धि हो अपने पत्र के प्रति विशेष अनुराग नि कर सकें, किन्तु क्या यह उचित या वांछनीय इससे तो उत्तम हो कि हम कुछ ऐसे प्रश्नों की करें जिनसे हमारी पीढ़ी के ज्ञान-विज्ञान वृद्धि हो, उसमें जिज्ञासा जागृत हो। हम हि के पत्रों में छपने वाली प्रश्नावली की प्रवृत्ति

उच्च स्तर के पत्रों में भी प्रोत्साहित प्रचलित करके समाज की किस सुरुचि को सम्मार्जित करने जा रहे हैं? जहाँ तक हम समझ सकते हैं यह प्रश्न-प्रवृत्ति कोमल किशोरों में पनप रही है, वे अपना आदर्श सिनेमा के अभिनेता को बनाते जा रहे हैं। उनमें अधिक जिज्ञासा इसी ओर बढ़ रही है। क्या समाज के सूत्रधार, शिक्षक, स्थानीय पत्रकार का यही कर्तव्य है कि वह ऐसी प्रवृत्ति को बढ़ावा दे? क्या अब जीवन में यही जिज्ञासा हमारी प्रगति का माध्यम रहेगी? समाज की जिस पीढ़ी में यह सनक सवार है। क्या समाज का सुयोग्य सूत्रधार उसे संवारे, समर्थित करे, या उसे मोड़ कर सही समस्या की ओर प्रेरित करे? हमें प्रश्नों पर परिताप नहीं, जितना संताप उसे प्रोत्साहित करनेवाले उत्तरदाता, पत्रकार पर होता है। पत्रकार देश, समाज का सूत्रधार है। वह सिनेमा के नायकों की जीवनी का चित्रकार नहीं। परन्तु प्रश्नों के उत्तरों से यही लगता है कि वह भी उनमें ही समरस होने जा रहा है। उसी में रस प्रेरित कर रुचि को रगड़ता जा रहा है। पता नहीं वह कहाँ ले जाना चाहता है?

महिला मन्त्रीमण्डल !

पुरुषों के मन्त्रिमण्डलों को हम खूब परख चुके, पीड़ित हो चुके, पनाह मांग गए, किन्तु अभी मन्त्री बननेवाले पुरुष पात्रों की पंक्ति लगीहुई है, जो मन्त्रीत्व की महत्वाकांक्षा को मन में दबाए बैठे हैं, अवसर नहीं पा सके हैं। वे नए प्रान्तों

श्रीमती सौ. महारानी सा. ग्वालियर !
नववर्ष-ग्रन्थि के अवसर पर अनेक अभिनंदन !!

ले? आज तक कीर्ति मन्दिर के लिए न तो कोई मीटिंग भड़ान विचार करने की ही शासन को शायद सुविधा रह जाए है। हम नहीं समझते कि किसी भी कारण को चूल्हे चक्की न्दिर के निर्माण कार्य में किंचित् भी विलम्ब रखा, उनको विद्यालय कभी भी बने, कीर्ति मदिंर को उसके दर्जा दिखलाने क ग गलत बात है, और वह असह्य है। यह भी सामने कर दिया ने का अपमान है। उज्जैन के साथ प्रान्त पर पूरे वर्चस्व के सा करदिया जाएगा। हमने कुछ र रहा है, उसके उदाहरण दो- सूचना भी की थी कि ऐसा मन्त्रि द्वारा लगवाए जाकर धूल- एक ईंट जुड़ाने की शासन नरों को कीर्ति-मन्दिर और त्तय नरों को नौक लहँगा-चोली पहना की है। जब मजबूर होना पड़े। नई निधियों सहज वाचक वस्तुओं का प्रवेश पहा निषिद्ध हो। उस शासन में नरों को गृहकार्य की दीक्षा दिलाना लाजमी है, चूल्हेचक्की सम्हालना भी उन्हें आवश्यक हो। नारी की प्रतिष्ठासीखने के लिए कालेजों की व्यवस्था हो। हाँ! जो नर नारीत्व के गुण से सम्पन्न हों उन्हें सहानुभूतिपूर्वक कार्य, समाज सेवा के अवसर उपलब्ध हो। प्रत्येक विभाग केवल नारी के नेतृत्व में सञ्चालित हो, पुरुष के विशेषाधिकार तुरन्त छीन लिए जावें। जो 'नारीपूजा' के हिमायती हों, उनके नेतृत्व को निर्विरोध स्वीकार करें, उन्हें विशेष सुविधा प्रदान की जावे। वहाँ समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था सभी प्रकार से नारी के

का प्रकाशन-समारम्भ क्यों न स्वागत योग्य होना च
इस समारम्भ की अध्यक्षता बाम्बे जैसे प्रगतिशील
के एक प्रधान पुरुष माननीय मन्त्री श्री. भाऊ न
की । सिख-समाज को छोड़-जहाँ बाल-काटने शुद्धि
में दाखिल है—इस ग्रन्थ का सर्वत्र स्वागत न जमाने
है कि यह अभी राष्ट्र भाषा, या अन्त ारी-राज्य में
नहीं हैं, अन्यथा यह ' केश-भूषा-शा चिन्ह धारण
अपना स्वतन्त्र, और महत्व पूर्ण स मुन्शीजीके नेतृत्व
किन्तु हमारा विश्वास है, मन्त्री के राज्य परिषदीय
ही राष्ट्रीय सम्मान का आ भी वहाँ व्यवस्था होना
मराठी के मान्य साहित्य सा प्रान्त अवश्य ही होना
कार को इस 'शास्त्र' ता का प्रचार का कोई अर्थ
है । केश-कला-रसि शासकों ने
में इस युग का उत्तरप्रदेश के
किशोर-कवि- जी की श्रीमती सौ०

ही में राष्ट्रीय महिला १२ वें अधिवेशन में ऐसे मन्त्रिमण्डल की स्थापना का आग्रह अवश्य किया है जिसमें केवल महिलाएँ ही हों।

उन्होंने कहा—"संविधान में हमें पुरुषों की समानता दी है। योजना आयोग ने हमारी उन्नति और उत्थान के लिए एक योजना बना दी है। अब हमारे पास एक ऐसी शक्ति है जिसका उपयोग हम महिलाओं के हित के लिए कर सकती हैं। अतः हमें आशा करनी चाहिए कि जल्दी ही किसी राज्य में हमारा "सर्व महिला मन्त्रिमण्डल" स्थापित होगा। अनेक राज्यों में अभी तक पुरुषों के मन्त्रिमण्डल ने जो कुछ किया है, ऐसा महिला मन्त्रिमण्डल उससे कहीं अधिक अच्छा काम करके दिखाने में समर्थ होगा।"

श्रीमती मुन्शीजी की तरह हमें भी विश्वास है कि जो काम पुरुषों के मन्त्रिमण्डल ने नहीं किया, उससे उत्तम काम महिलाएँ अवश्य कर गुजरेंगी। यही क्या देश की अनेक उलझी हुई समस्याएँ भी सरलता से सुलझ सकेंगी। अन्न नियन्त्रण, परिवार नियोजन, कोडबिल की कूट समस्याएँ इसी मन्त्रिमण्डल से सुलझ सकती हैं। हम केन्द्र से कहना चाहते हैं कि यदि अनेक योजनाएँ वह सफल बनाना चाहता है तो वह आन्ध्र प्रान्त की तरह एक स्त्री प्रान्त बना कर 'स्त्री हठ' को पूर्ण करे, उसे गुजरात या कामरूप देश को ऐसे शासन के लिए चुन लेने में सुविधा भी रहेगी। हाल ही में हमने इस प्रकार के शासन के लिए एक सरल संक्षिप्त योजना तैयार की है, जो 'पति पवित्रता सप्ताह' के नाम से मध्यभारत के एक पत्र में दीपावलि के अवसर पर प्रकाश में आई है। वह स्त्री शासन के लिये अवश्य उपयोगी रहेगी।

महाकवि कालिदासं प्रति !

कविता वनिता विलास।
सम्प्रति कविः केवलं नान्यस्त्वम्,
कासौ राज्ञो विदग्धपरिषद् ?
कच भवनं भवतो यातम् ?॥ १॥
क गतः सम्प्रति कालिदास।
ननु महान् स नृपतिः स्वामी ते ?
क चसाऽवन्ती ? हन्त न लेशः
कस्याप्यधुना विलोक्यते।॥ २॥
शश्वद्दिव्यानन्दस्यन्दिनि
कुबेर नगरे कवि - नृपते !
वसतिं सततं त्वं कृतवानिति
लोकः सम्प्रति मन्त्रयते।॥ ३॥
नैवापत्ति र्न चाऽपि शोकः,
परमदारुणा न वा व्यथा
नैताभिस्ते समवलोक्यते
कविता कचिदपि कलङ्किता।॥४॥
जीवित सिन्धुं प्रमथ्यगरलं
प्राणहरं त्वं प्राशितवान्-
उदीर्णाश्च ये सुधातुषाराः
समन्तत स्तान्विकीर्णवान्।५॥

—शैलेन्द्र सिद्धनाथ पाठकः

अब विक्रम-कीर्ति मन्दिर का निर्माण कब ?

विक्रम विश्वविद्यालय की दुर्दशा कर दी गई, उसे केन्द्र की कूट नीति ने, वर्ग और स्थान विशेष के प्रभाव में आकर बँटवारे के लिए बाजार में छोड़ दिया। जहाँ आर्ट-साइन्स, आदि की सुविधा हो, छात्रों की संख्या वृद्धि हो वहाँ ऑफिस बनाने का सुझाकर उसका भविष्य भाषित कर दिया गया। इंजिनीयरिंग - एग्रिकल्चर, टेकनिकल विषय को दूसरी जगह देने की दानत बतलादी, अब रही बेचारी 'इण्डोलॉजी' जिसे उज्जैन में उदारता से देने का इशारा है, जिसके लिए मुश्किल से सारे राज्य में १० छात्र मिलें। वैसे अब तक

मध्य-भारत में एक भी कॉलेज में 'एएशन्ट इण्डियन् हिस्ट्री' के अध्यापन-अध्ययन की कहीं व्यवस्था नहीं है, एक भी एम्. ए के कोर्स में संस्कृत विषय तक नहीं, फिर संभव है कि उज्जैन में एक सीट बना देने की उदारता (!) बरती जावे, और ४-६ छात्र वहाँ आजावें, उसे 'इण्डोलॉजी' कह कर विश्व विद्यालय का भाग भाषित कर दिया जावे, यह उस विश्व विद्यालय की मिट्टी पलीद है जिसे मध्य-भारत शासन के पक्षपात, और केन्द्र के कौटिल्यों ने काट कर पैदा होने से पहिले ही समाप्त कर दिया है। भला ऐसे विद्यापीठ को कौन चाहेगा ? फलतः छात्र-समाज संघर्ष के लिए सोच रहा है। सामूहिक विरोध का शासन शिकार बन रहा है, और विश्व विद्यालय का भावी अँधेरे में भटक रहा है। यह है हमारे शासन की निष्पक्ष (?) नीति की सफलता (!) जिसने राजधानी की दुर्दशा बनवाली, और विश्व विद्यालय की मिट्टी पलीद करवाने जा रहा है।

किंतु—

जिस विश्वविद्यालय की आड़ लेकर, आश्वासन की निरर्थक उदारता बतला कर राष्ट्रपति तक को समझाने का साहस किया गया कि विक्रम कीर्ति-मंदिर को विश्वविद्यालय के निकट रखने की दृष्टि से उसकी नींवहिलाने की आवश्यकता है। हम उन जुम्मेदार जनों से पूंछना चाहते हैं कि अब उनके प्रयत्न में कौनसा प्रपंच नींव के निर्माण में रह गया है ? क्या कारण है कि कीर्ति मन्दिर का काम रोक कर मौन लिए लंबा समय बिताया जावे ? अब तो नींव हिलाने का उनका सबल तर्क भी मिट्टी में ढेर हो चुका है। कोईकारण नहीं कि निरर्थक बहानों से कीर्ति मन्दिर निर्माण के कार्य को जरा भी रोका जावे ? आज तक कीर्ति मन्दिर के लिए न तो कोई मीटिंग हुई है न विचार करने की ही शासन को शायद सुविधा विदित हुई है। हम नहीं समझते कि किसी भी कारण को लेकर कीर्ति मन्दिर के निर्माण कार्य में किंचित् भी विलम्ब किया जावे। विश्वविद्यालय कभी भी बने, कीर्ति मंदिर को उसके साथ जुडा कर रोकना गलत बात है, और वह असह्य है। यह उज्जैन का और राष्ट्रपति का अपमान है। उज्जैन के साथ शासन जो सौतेला व्यवहार कर रहा है, उसके उदाहरण दो-दो नींव के पत्थर केन्द्र के प्रधानों द्वारा लगवाए जाकर धूल-पानी में खड़े रखे गए हैं। उन पर एक ईंट जुड़ाने की शासन ने सदाशयता नहीं बतलाई है। कीर्ति-मन्दिर और क्षय विभाग की निधि जनता की है। जब कि अभाव में भी नई-नई निधियों का निर्माण कर नई संस्थाएँ सहज बनती जा रही हैं किंतु जनता की सुरक्षित वस्तु को भी शासन अपने निकट से निकाल कर लगाने में अनेक बहाने, अडंगे लगाता जा रहा है।

—: कालिदास :—

अहो अमरकवि ! राजसभामें
रचे न क्या षड़चक्र नये ?
किये न प्रतिपल दुर्जन-जन ने
तुम पर गुप्ताघात नये ?
अविश्वास अपमान अनादर
इनका क्या था नाम नहीं ?
क्या अन्याय, अभाव कठिन से
पड़ा न तुमको काम कहीं ?
फिर भी कविवर ? काव्य
तुम्हारा रह निर्लिप्त और निर्म्मल,
उठा पङ्कमय जल के ऊपर
बनकर क्या सौंदर्य कमल।
जीवन मन्थन से जो निकला
विष वह तुमने पान किया।
और अमृत जो बाहर आया
उसे जगत को दान दिया

—अज्ञात कवि

कीर्ति मन्दिर को रोकनेका अब कोई कारण नहीं है, तुरंत निर्णय हो और उसका अविलम्ब निर्माण हो, यह अत्यावश्यक है। अन्यथा शासन के सिर पर उज्जैन के उत्थान में रुकावटें लगाने का कलंक अमिट होकर लग जायेगा।

चीनी अतिथि का उज्जैन आगमन।

चीनी दूतावास के सांस्कृतिक सहयोगी (कल्चरल अटेची) हाल ही में चीन-भारत मैत्री के समारोह

में सम्मिलित होने उज्जैन आए थे और हमने भी उनका स्वागत किया। वैसे चीन-जापान के व्यापारी वर्ग हमारे देश में आते-जाते ही रहे हैं, और हम उनसे परिचित भी हैं, परन्तु उज्जैन का तो चीन से बहुत पुराना सम्बन्ध है, उसकी एक ऐतिहासिक परम्परा है। जिस समय चीन पर बुद्ध-धर्म का प्रभाव आरम्भ हुआ, चीन की धर्म-ज्ञान-जिज्ञासा बढ़ी, तब हमारे इस मालव प्रदेश में सांस्कृतिक विकास चरम को छू रहा था, प्रद्योत अशोक के शासन काल में इसी मालव देश की अवंती में अनेक महान् विद्वान्-ज्ञान-धनी वास करते थे, साधना करते थे, उन दिनों चीन में 'हान' वंश का शासन था, चीन के राजदूत त्सायुन को विशेष रूप से अवंती में भिजवाया गया था, वह सम्राट का आमंत्रण ले उज्जैन में महाविद्वान् कश्यप मातंग' की सेवा में आया। यह घटना ई० सन् ६७ की है, उस समय कश्यप मातंग को दुर्गम पथ से लेकर वह चीन गया और चीन की भाषा में प्रवीण होकर अनेक ग्रन्थों का 'ला-यान्' मठ में निर्माण किया और उसी साधना में उसका जीवन चीन में समाप्त हो गया। जब यह इतिवृत्ति हमने अपने वर्तमान चीनी-यात्री को पुराने दिनों की याद दिलाते हुए सुनाए तो वे थोड़े विस्मित बन गए। 'कश्यप-मातंग' नाम से वे सहज पहचान न सके, क्योंकि चीन में उनका नाम 'कू-फा-लान' कहा गया था। (जिसका अर्थ है--भारतीय-आध्यात्मिक-सौरभ) ज्यों हीं कूफा-लान् नाम सुना वे चौंक गए, और उनके समस्त इतिहास की स्मृतियाँ जागृत हो गईं। उन्हें यह पता भी नहीं था कि जिस उज्जैन में वे आए हैं, वह महाभाग कूफा-लान् इसी भूमि का सरस्वती पुत्र था, तब तो उनके हर्ष का ठिकाना न रहा, चीनी अतिथि को बतलाया कि कश्यप-मातंग का चीन में विशाल स्मृति मन्दिर स्थापित है, जो राजाओं से भी अधिक शिल्प-शृङ्गार युक्त और शासन द्वारा सम्मानित भी। परन्तु यही नहीं, चीनी अतिथि को बतलाया कि इसी मध्यभारत से १८ विद्वान् चीन, जापान, कोरिया आदि धर्म-ज्ञान-प्रचारार्थ गए हैं। और अनेक यात्री चीनी भी बराबर आते रहे हैं, जिनमें प्रख्यात् सुयेन चांग, हुएनत्संग, सुङ्ग-युन आदि। मध्यभारत का चीन से व्यापारिक सम्बन्ध पुराने काल में रहा है। चीनी-रेशम यहाँ आता था और उज्जैन की छपी हुई छींटें, आदि विदिशा के हाथी-दांत के सामान भी चीन निरन्तर जाते रहते थे। कालिदास के शाकुन्तल के नायक दुष्यन्त के राज-रथ पर जो ध्वज फरक रहा था वह 'चीनांशुक' ही था, इस तरह चीन और हमारी ज्ञान-शासन-व्यापार सांस्कृतिक परम्परा बराबर बनी रही है।

यद्यपि हमारे देश से कई सांस्कृतिक मिशन चीन भेजे गए हैं, और जाते रहते हैं किन्तु वे यदि चीन और ऐतिहासिक सम्बन्धों की टूटी हुई कड़ी के जुड़ाने के साधन परम्पराओं का भी उस दृष्टिसे अध्ययन करें और शृङ्खला बढ़ाने में सहायक हों तो उनके मिशनों की सार्थकता है। हमतो मध्यभारत सरकार से भी कहेंगे कि वह इन मिशनों में अपना प्रतिनिधित्व भी दे, ताकि मध्यभारत के सम्बन्ध में जो साहित्य-कला इतिहास संस्कृति का साधन उपलब्ध हो उसे प्राप्त कर अपनी टूटी हुई शृङ्खला को जुड़ाएं और इतिहास के अन्धकारमें प्रकाश की रेखा प्राप्त करें।

सरस्वती सुप्रतिभाप्रकाशः
सुधी-चकोरैकसुहृद् विलासः
सदैव सारस्वत चन्द्रहासः
जयत्यसौ सत्कवि कालिदासः
कवे! वीणापाणे वरद सुत !!
किं वाची कलये ?
यशो-भव्यां-मूर्तिं कृतिमणिगणे
दीप्तिमतिते ।
मुदाऽनृत्यद् वीणा क्वणन
विरता मुग्ध-मनसा ।
सुधास्नाता सा [illegible] सरसकविता
ऽऽप्यायित-हृदा ॥
सरस्वत्यानन्दामृत सरसि
रोमाञ्चित वपुः ।
सदाऽविज्ञाना लसित चिति-
लास्यालय सुखम् ।
धृतं नित्यं यैस्तत्कवि हृदय
सम्वेद्यहृदयं-
मुदा शैलेन्द्रीयो लसित पदि
तेभ्योऽञ्जलिरयम्
—शै. सि. पाठक

मालव-संस्कृति की वैदिक और पौराणिक पुरातन-परम्परा

श्री सूर्यनारायण व्यास

'वीतिहोत्राह्यवन्तयः' इस वाक्य में 'वीतिहोत्र' (वीत हव्य) को अवंतिवासी कहा गया है। यह महत्वपूर्ण और विचारणीय विषय है। इससे मालवों की महत्वपूर्ण समस्या पर प्रकाश मिल सकता है।

पौराणिक इतिवृत्तों में वीतहव्य राजकुमारों को सामान्यतः हैहय कहा गया है। जिस संघर्ष में इनका वर्णन आया है, उसे हैहयों 'का संघर्ष सूचित किया गया है। इन्हीं राजकुमारों को वेदों में वीतहव्य-वंशीय कह कर भी इनके राजा या नेता को 'मत्स्य' कहा गया है।

अथर्ववेद में ब्रह्मा के अंगज पुत्रों में अङ्गिरस और भृगुओं की मुख्य रूप से गणना की जाती है, (सायण की अथर्ववेद की भूमिका देखिए) भृगु और अंगिरा सहोदर थे, अथर्ववेद इन्हीं की रचना है। अतएव स्वाभाविक है, कि अथर्ववेद में अंगिराओं के साथ भार्गवों के इतिवृत्त की महत्वपूर्ण एवं पुरातन चर्चा विद्यमान हो। इस सम्बन्ध में अथर्व के पांचवे सूक्तका चतुर्थ अनुवाक् दृष्टव्य है। सूक्त १६ १७ के २९ मन्त्रों में अंगिरा वंशीय बृहस्पति और शेष ४ सूक्तों में भार्गवों के एक संघर्ष का वर्णन है, जो वैतहव्यों के साथ हुआ था। ये वैतहव्य और उनके वंशज वत्स के पुत्र, हैहय और तालजंघ थे, इसका समर्थन महाभारत से भी होता है (अनु० अ० ३०) (अथर्ववेद के १८, १९, २० सूक्त देखने योग्य हैं) भृगु की गौ और सहस्त्रार्जुन हैहय के संघर्ष की गाथा प्रायः प्रत्येक पुराण, महाभारत, रामायण में आई है। ब्रह्माण्डपुराण में तो इस संघर्ष का ३० अध्यायों में सविस्तार वर्णन किया गया है। इन पौराणिक वर्णनों को इतिहास की कसौटी पर कस कर देखा जाए तो अनेक रहस्यपूर्ण, तथ्य की बातों का पता लगता है, जो इतिहास-सङ्गत ज्ञात होती है। मत्वों की शक्ति और व्यापक प्रभाव भार्गवों के लिए असह्य हो गया था। यह इन वर्णनों से स्पष्ट प्रतीत होता है। फलतः यह संघर्ष बहुत समय तक चलता रहा और इसका अन्त एक महान् साम्राज्य के अन्त के साथ हो गया। यह स्पष्ट है कि हैहयों का वर्चस्वपूर्ण स्थान मालव की माहिष्मती ही रहा है। आज का इतिहास,' इसे सहज चालीस हजार वर्ष पूर्व की सभ्यता का स्थल स्वीकार करता है। ऐसी अवस्था में हैहय और वीतिहोत्रों का वैदिककाल में वर्णन हो यह अस्वाभाविक नहीं। पुराणों में तो वैदिक विषयों का विस्तृत विवरण रूपक-युक्त हुआ है।

पुराणों में कहा गया है, कि महाराज शर्याति के वंश में वीतहव्य एक नरेश था, हैहय उसी वीतहव्य का पुत्र था, इसी हैहय के नाम से वीतहव्यों का वंश प्रसिद्ध हो गया। हैहयों में कृतवीर्य और उसका पुत्र कार्तवीर्य-अर्जुन विशेष प्रसिद्ध हुआ है। कार्तवीर्य प्रसिद्ध वीर और सेनानिपुण था, उसकी देश भर में जबरदस्त धाक थी, आतंक था। केवल उसके नाम के भय से ही गत नष्ट वस्तु सहज प्राप्त हो जाती थी। आगे चल कर यह परम्परा ही पड़ गयी, नष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिए कार्तवीर्य का नाम एक स्वयं मन्त्र-शक्तिके रूप में स्वीकृत हो गया। (आहत मुद्राओं में स्कन्ध कार्तिकेय की मुद्राएं भी प्राप्त होती हैं। सम्भवतः इसी के नाम पर 'कृत' काल गणना मानी गई हो।)

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहू सहस्त्रवान्
तस्य स्मरण मात्रेण हृतं-नष्टं च लभ्यते।

इन्हीं हैहयों से भार्गवों की 'गौ' (भूमि) [२] छीन लेने के कारण झगड़ा हुआ है, इसमें भृगु मारा गया था, और

---

[१] भारत, वन, २२१—७ में माहिष्मती को आंगिरस की पुत्री कहा गया है।

[२] अथर्ववेदोक्त 'गौ' को भूमि न समझकर पशुवाचक समझकर भूल की गयी है, गौ शब्द लोक और वेद में भूमि के लिए ही प्रयुक्त है, कालिदास ने जहां 'दुदोह गां स यज्ञाय, या, गामात्तसारांरघुरप्यवेक्ष्य, आदि का मल्लिनाथ ने स्पष्ट अर्थ किया है–'स राजा यज्ञाय गां भूमिदुदोह' तथा 'रघुरपि गां भूमि मात्तसारां–गृहीत धनं आदि।

ये हैहय राजा 'मल्व' ही थे। इसी जाति का दूसरा नाम वैतहव्य था, क्योंकि वैतहव्य वंश में होने के कारण यह नाम पड़ा था, हैहय उसी का अनुवंश है। इन्हीं वीतिहव्यों को पुराणों में 'वीतहोत्रा ह्यवन्तयः' कहा है इससे स्पष्ट है कि ये मल्व-अर्थात् मालव विशेष रूप से अवन्ती के रहे हैं। मल्व शब्द के इस स्पष्ट निर्देश से मालव का ही बोध होता है, और ये मल्व-मालव वैदिक युग से लेकर पौराणिक कालपर्यन्त देशव्यापी प्रभाव रखते थे। और यह भ्रम नहीं रह जाता कि वे कहीं बाहर से आकर मालवे में बसे थे। क्योंकि वीतिहोत्र, हैहय का सम्बन्ध माहिष्मती और अवन्ति से ही चला आता है। उसी समय से इन्हें 'मल्व' कहा गया है।

'मल्व' शब्द मालव-विकास के इतिहास में स्वतन्त्र महत्व लिए हुए हैं। इस शब्द पर विचार करने के प्रथम हमें मरु, माल, मार, माढ्र और प्रमार शब्दों पर भी विचार करना होगा।

मल्व शब्द प्राकृत-मालव-शब्द का वैदिक रूप होना चाहिए, जैसे बल्ह का वैदिक रूप 'बल' है। राजस्थान में 'ड' का उच्चारण उसी प्रकार होता है जिस तरह महाराष्ट्र में 'ड' एवं 'ल' का' ड और ल का मध्यवर्ती मालव, माडव रहा होगा। पंजाब में मारवाड या मालवाड़ का मूल रूप सम्भवतः मल्व वाट, मालव–वाट रहा होगा। मारवाड़ भी मालवों की तरह मारवों का प्राचीन उपनिवेश रहा है। मालव माडव और मारव तीनों ही केवल र,ल, ड के साम्य के कारण अभिन्न दिखायी देते हैं. 'मरु'शब्द ने ही मार या मारवाड़ को उत्पन्न किया है। माल भी इसी तरह एक–स्वरूपता रखता है, किन्तु दोनों के अर्थ में अन्त अवश्य है मार-मरुभूमिका प्रदेशऔर माल पर्वतीय,अथवा उच्च भूतल का देश, मरु शब्द पर्वत एवं आलुकामय भाग का सूचक है। यहाँ आप्टे की संस्कृति डिक्शनरी देखें। इसलिए विभिन्नार्थ रखते हुए भी स्वतन्त्र एक एक अर्थ में समानता भी रह गयी है। पंजाब में जिन्हें माल या माड कहा गया है, वे मालव हैं।

ये मार और माड के नाम से कहे गये लोग मालव हैं, उच्चसानु और राजपूताना के मरु प्रदेश में समानरूप से प्रविष्ट थे, इसलिए, मार, माल, माढ नाम से ज्ञापित होने पर भी अभिन्नता लिए रहे। वैदिक 'मल्व' में और इनमें अन्तर नहीं रहा। कोष ग्रन्थों में माल को मालवा का ही पर्यायवाची माना गया है। यादव कोषकार ने 'माल'मालव देशेच वसते भूमि रूध्वं'का' कहा है। इसी तरह मेघदूत में 'क्षेत्र मालच्च मालम्'में 'उन्नत भूतले',(मालमुन्नत भूतलम्) से इसी प्रदेश को ज्ञापित किया है। फलतः माल और मार का साधारण रल-से साम्य रहते हुए भी-मार मारवाड़ का जहाँ द्योतक है, वहाँ माल-मालव का परिचायक हो गया है। फिर भी दोनों का मूल एक ही है।

जिस प्रजा ने मालव नाम स्थायी रूप से इस प्रदेश को दिया, उन्हें ही वेद में 'मल्व' कहा गया है। अवश्य ही उणादि कोष की व्याख्या में मरु के लिए यह लिखा है कि-'म्रियन्ते भूतान्यस्मिन्निति मरुर्निर्जलो देशो वेति'।

मार शब्द के साथ ही सहसा यह स्मरण हो आता है-कि प्रमार, परमार, परमाल, इन इतिहास प्रसिद्ध शासक जातियों के मालव से धर्म और लम्बे समय के सम्बन्ध से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन मरु-या-मार जाति का प्रतिनिधित्व करने वाला यही वह जनसमुदाय है जो परमार, प्रमार या परमाल नामों से अब तक अभिहित है। जिस आबू से परमारों की उत्पत्ति सूचित की गयी है वहीं वसिष्ठ की 'गो' का(भूमि का)अपहरण हुआ था। वहीं के वीरों ने विश्वामित्र के बल को तोड़ कर वशिष्ठ की सहायता की थी। सम्भव है, इन्हींकी वीरताके वश होकर इन्हें पर-मार,पर मारु कहा गया हो। मार और माल नामान्त नगरों,प्रदेशोंके द्वारा मालव राष्ट्रके व्यापकविस्तार की भी सूचना मिलती है। यूनानियों ने इन्हीं मालवों को 'मल्लई' सूचित किया है, परमारकी व्यापकता से भी इस प्रदेश के व्यापक प्रभाव की सूचना मिलती है। परमारों की दो शाखाएँ स्पष्ट हैं, एक आबू की और दूसरे मालव की। दोनों ने मिल कर एक बहुत बड़े भाग को अधिकृत कर लिया था। सम्भवतः यही कारण है कि महाभारत में उत्तर मालव, पूर्व पश्चिमी मालव आदि नामों से ज्ञापित किया है, स्पष्ट है कि ये गणराज्य ही थे। अनेक स्थानों पर गणरूप में ही इनका उल्लेख किया गया है। यूनानियों के यात्रा विवरणों में भी इनकी गण-शाखाओंका उल्लेख है।

अंधःकारयुगीन भारत में डा० स्व० जायसवालजी ने इन्हें नागों की एक शाखा के रूप में अंकित किया है। उनका कथन है--दशाश्वमेध करने वाले नाग सम्राटों ने प्रजातन्त्रों का रक्षण वर्धन किया जो समस्त पूर्वी पश्चिमी मालव में सम्भवतः गुजरात, आभीर और समस्त राजपूताने यौधेय, और मालव कदाचित् पूर्वी पंजाब के एक अंश मद्र में फैले हुए थे......वाकाटकों के समय में एक समुद्र-गुप्त ने रङ्ग मन्च पर प्रवेश किया तब ये सब प्रजातन्त्र अवश्य ही स्वतन्त्र थे। जान पड़ता है, कि मालव प्रजातन्त्रों की स्थापना ऐसे लोगों और वर्गों ने की है, जो नागों के सगे-सम्बन्धी थे।.........विदिशा के आस पास के निवासी बहुत आरम्भिक काल से नागों के उपासक थे।... मालवों ने जयपुर के पास कर्कोटक नाग के नाम पर रखा गया।...यह ध्यान में रखने योग्य महत्व की बात है, कि नागराजों और प्रजातन्त्री मालवों की सभ्यता एक ही थी। सम्भवतः ये एक ही जाति के थे। राजशेखर के अनुसार टक्कु लोग और मरु के निवासी अपभ्रंश के मुहावरों का ही प्रयोग करते थे। पद्मावती (पवाया) के गणपति नाग का परिवार टालवंशी था.... इससे पता चलता है, कि मालव और नाग लोग एक ही बोली बोलते थे। (अंधकार युगीन भारत-६४३ पृ० ११४-५)

इससे यह स्पष्ट है, कि नागों और मालवों का सम्बन्ध अति पुरातन काल से चला आया है, जब कि वे 'मल्व' कहे जाते थे। अर्बुद (आबू) नागों का एक प्रधान उपनिवेश था, नागों को देव-कोटि की उपजाति (स्कंद पुराण का अर्बुदमाहात्म्य) माना गया है। इन्हीं नागों को मरुओं ने आत्मसात् बना लिया था। मत्स्य पुराण में स्पष्ट लिखा है :—

> एष नागः मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः
> कर्कोटक सुतं जित्वा पुर्यांतत्र न्यवेशयत्।
> सहिनाग सहस्रेण माहिष्मत्यां नराधिपः
> कर्कोटक सभां जित्वा पुरीं तत्र न्यवेशयत्

ब्रह्माण्डपुराण ३ अ० ६९

और जगह भी ऐसे ही उल्लेख हैं। जिनमें कार्तवीर्यार्जुन ने कर्कोटक नाग को उत्तर में (आबू तथा जयपुर पर्यन्त के भाग में) तथा पातालस्थ नागों को दक्षिण में जो कोंकण में रहते थे, परास्त किया था, इससे माहिष्मती के व्यापक प्रभाव का पता चलता है। इन मालव नागों के उत्तर में दीर्घकालीन सम्बन्ध वर्चस्व के कारण इनकी भाषा, तथा संस्कृति का प्रभाव उस प्रदेश में पड़ना साहजिक ज्ञात होता है। यही कारण है, कि मालव की भाषा का विभिन्न भारतीय भागों में जो स्वरूप दिखाई देता है, वह मल्व-मालव नागों, हैहयों वीतहव्यों के व्यापक प्रभाव, वर्चस्व और दीर्घकालीन सम्बन्ध के फलस्वरूप ही है।

कुछ लोगों ने मल्व या मालवों के नामों और मुद्राओं से शंकित होकर उन्हें विदेशी तक समझने का भ्रम किया है। वस्तुतः ये मालव, हैहय, प्रमार, परमाल आदि विभिन्न नामों से प्रसिद्ध वेशकाल भेद से नामान्तर ग्रहण करते हुए भी मल्व-वीतहव्य सूर्यवंशी थे, श्रीराम के नन्दसा के स्तम्भ लेख में मालवेन्द्रकोइक्ष्वाकु प्रथित-राजर्षि वंश लिखा गया है। (भागवत स्कं० अ० १, अ० २)'[1] कुछ पुराणों में हैहयों को यादव-वंश [2] का भी कहा गया है। यह विवेचन की आवश्यकता रखता है।

इसी प्रकार यदु पुत्र सोमवंशी सहस्रार्जुन वंश के हेहय कुलोत्पन्न सोहंजी राजा का पुत्र माहिष्मान् कहा गया है।—

वीतहव्य को सूर्यवंशी शर्याति का पुत्र कहा गया है और उसकी १० स्त्रियों से जो १००पुत्र हुए थे, उनमें यह प्रमुख था। स्वयं वीतहव्य को भी १०० पुत्र थे। इस वीतहव्य ने काशीराज सोदेव उपनामधारी दिवोदास को त्रास देकर शासन से उतार दिया था, और वहीं निवास कर लिया था। कुछ समय के बाद दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने काशी आकर युद्ध के द्वारा वीतहव्य के १००

---

[1] मनोर्महात्मनस्तात प्रजाधर्मेण शासतः
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्याति रिति विश्रुतः ॥६॥
तस्यान्वये द्वौराजन्। राजानौ सम्बभूवतुः
हैहयस्तालजंघश्च वत्सस्य जयताम्बरः ।७॥

[2] भगवद्गीता में—'वीतिहोत्रो धनंजयः' कहा गया है। इससे प्रकट होता है ये वीत्तिहोत्र वंशी धनंजय यादव थे। इसी तरह सहस्रार्जुन या कार्तवीर्यार्जुन ये अर्जुनान्त नाम भी यादव की सूचना देते हैं।

परन्तु इस चर्चा से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि मालवों का अस्तित्व बहुत ही पुरातनकाल से है, और वे इस मालव प्रदेश के ही हैं, ठेठ वैदिक और पौराणिक काल से इनके शौर्य, संघर्ष, प्रजातांत्रिक रूप का प्रमाण प्राप्त होता है। अतएव यह अंग्रेजी इतिहासकारों का भ्रम फैलाया हुआ सारहीन, प्रमाण हीन एवं निरर्थक है कि मालव लोग कहीं बाहर से यहाँ आकर बसे-रहे थे, वैदिक और महाभारत के विविध उल्लेखों-प्रमाणों से यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि वे मालवे ही मालव शासन करने वाले गण थे। वेद में भृगुओं को अथवा की साक्षात् निधि माना है, यह प्रमाणित करता है, कि उस काल के मालव-मलव-वैतहव्य अत्यन्त शौर्यशाली थे, और देश के विभिन्न भागों पर वर्चस्व स्थापित कर प्रभावशाली बने हुए थे, ये वीतहव्य, तालजंध, हैहय माहिष्मती से लेकर मालवी भाग के ही थे, इसमें सन्देह नहीं। जब ठेठ वैदिक महाभारत, पुराण काल के क्रमबद्ध वर्णन को हम देखते हैं, तब किसी प्रकार भी हमारे सन्देह का कोई अवसर नहीं रह जाता कि मालवों की पुरातनता में कितनी प्रामाणिकता है, और इसी प्रदेश से संबन्धित रखने वाली परम्परा है। वैदिक काल को यदि हम आधुनिक खोज के अनुसार ५ हजार वर्ष पूर्व का ही मानते हैं, तो मालवों का मालव में अस्तित्व सहज ५ हजार वर्ष प्रमाणित हो जाता है।

महाभारत काल तक जो वैदिक-काल या ब्राह्मदिन का लगभग अन्तिम समय है। मालव भारतवर्ष के अनेक विभिन्न भागों में फैल चुके थे, उनके जनपद उत्तर, पूर्व, और पश्चिम में अनेक थे, ११ वीं शती तक राजशेखर ने मालव के जनपदों में अनेक स्थानों के नाम गिनाए हैं जिनमें भृग् कच्छ, आबू आदि का भी समावेश हो जाता है। अश्वपति कैकय के समय में भी मालवों की व्यापक सत्ता थी। द्युमत्सेन की पुत्रवधू सावित्री की माता मालवी थी, उसके शत सन्तान मालव ही कहलाए हैं। अश्वत्थामा हाथी मालवेन्द्र का था, जिसने महाभारत में सन्देश प्रसारित कर दिया था। पौराणिक वर्णनों-हैहय तालजंघ, वीतिहोत्र जो कि स्पष्ट ही मालव हैं, से जब वैदिक वर्णन की सरलता से संगति जुड़ जाती है, तब मालव-जनों की पुरातनता, और इसी प्रदेश के कहने में सन्देह का कोई अवसर नहीं रह जाता।

जिन पश्चिमी और इस देश के पश्चिमानुकरणशील-विद्वानों ने मालव गणों की मुद्रा से, उनके विचित्र नामोंसे विदेशी कहने का साहसकिया है,वे सब मुद्राएँ तीसरी-चौथी शती की हैं। क्योंकि शीथियन्, पार्थियन्, आदि का उन्नत-काल उक्त शती के पश्चात् का है। और मालव गणों का ऊर्जित काल वैदिक काल से महाभारत काल होने के कारण बहुत पुरातन हो जाता है। आज भी मालवी-भाषा का जो प्रभाव सिन्धु देश की भाषा नेपाली, पर्वतीय प्रदेश की भाषा पर्यन्त विद्यमान है वह उन्हीं मालव गणों की पुरातन प्रभाव परम्परा का प्रमाण है, जिन्होंने इस देश के विभिन्न भागों पर वर्चस्व स्थापित कर अपनी सभ्यता संस्कृति की छाप छोड़ी है।[1]

पुत्रों का संहार कर दिया। वीतहव्य पर भी वार करना चाहा पर वह भाग गया। भार्गव के आश्रम में छुप कर रक्षा की, पर ऋषि ने यह कह कर कि यहां कोई क्षत्रिय नहीं है, सभी ब्राह्मण हैं, उसकी रक्षा की। (अनु० ८ अ.५३-५८) प्रतर्दन वहां से लौट गया, वीतहव्य को बाद में ब्रह्मर्षि पद प्राप्त हुआ, इसी अवस्था में उसे गृत्समद नाम से पुत्र हुआ। गृत्समद को सुचेता, सुचेता को चर्चा, और उसे विहव्य, विहव्य का वितथ्य, उसे, सत्य, सत्य को सन्त, उसे श्रवा, श्रवा को तम, तम से प्रकाश, इस तरह क्रमशः वार्गानु, प्रमति, रुरु, शुनक, शौनक आदि सन्तान हुए ये भृगुगोत्र से प्रख्यात हुए। (आ० अनु० अ० ८)

वीतिहोत्र वंश भी दो हो गये हैं। एक प्रियव्रत के १० पुत्रों में से नवम जिसे पुष्कर द्वीप का स्वामी कहा गया है। दूसरा सूर्य वंशी निरंष्यन्त के कुल में उत्पन्न इन्द्रसेन राजा का पुत्र इसका पुत्र सत्यश्रवा था। इसी प्रकार तीसरा सोमवंशी आयुपुत्र-क्षत्रवृद्ध काश्य नाम के पौत्र के कुल में उत्पन्न सुकुमार राजा का सन्तान, जिसका सन्तान भर्ग था। और चौथा-सोम वंशी सहस्रार्जुन के प्रपौत्र जयध्वज के पुत्र और तालजंघ राजा से उत्पन्न शत सन्तान में सबसे ज्येष्ठ।

[1] इस सम्बन्ध में हमारा प्रथम-निबन्ध विक्रम (आश्विन २००९) में देखिए।

ईश्वर का प्रयोजन:

श्री पांडेय जगन्नाथप्रसादसिंह

यह संसार क्या है? जीव क्या है? ईश्वर क्या है? हम लोग कहां से आए हैं और कहां जाएंगे? —ये कुछ ऐसे विवादास्पद प्रश्न हैं, जिन्हें मनुष्य अनादि काल से हल करने की चेष्टा कर रहा है। भगवान ही जानें कि उसे इसमें कहाँ तक सफलता मिली है परन्तु यह निश्चित है कि अभी तक इन प्रश्नों का अंतिम हल नहीं मिल सका है, कुछ लोगों का कहना है कि इस संसार के निर्माण होने के बहुत पहले ईश्वर अकेला था, परन्तु एक-ब-एक उसे संसार की आवश्यकता प्रतीत हुई और उसने इसकी रचना कर डाली। उसने कहा कि "एक संसार का निर्माण हो जाय" और हमारे संसार का निर्माण हो गया। दूसरे लोग कहते हैं कि यह विचार गलत है। इस संसार में परमात्मा नाम की कोई चीज नहीं है। विकासवाद के सिद्धांतों द्वारा ही हमारी दुनिया वर्त्तमान स्थिति को प्राप्त हुई है। सब कामों के लिए कोई न कोई कारण है, और वह कारण प्राकृतिक है। इस सृष्टि का कोई उद्देश्य नहीं है। संयोग से भिन्न-भिन्न तत्वों का सम्मिलन हो गया, जिससे सृष्टि का निर्माण आपसे आप हो गया। जीव के संबंध में भी कुछ इसी तरह के तर्क पेश किए जाते हैं।

संसार और जीव की सच्ची व्याख्या चाहे जो कुछ भी हो, इससे हमें कोई मतलब नहीं। हमें तो यहाँ ईश्वर पर ही विचार करना है। क्या ईश्वर की कोई स्थिति है? यदि है, तो क्या वह हमारे लिए आवश्यक है? क्या उससे हमारा कोई काम निकलता है? जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते, वे निम्न लिखित दलीलें पेश करते हैं।

वे कहते हैं कि कुछ लोग ईश्वर में विश्वास रखते हैं, हालाँ कि उससे उन लोगों का कोई सीधा सम्बंध नहीं है और उसकी स्थिति के बारे में उनके पास कोई स्पष्ट प्रमाण भी नहीं है। उनका सिर्फ यही कहना है कि चूँकि यह संसार आश्चर्यजनक है, उसका निर्माता भी कोई अवश्य होगा। ईश्वर के स्वरूप के बारे में भी अनेक मत हैं। प्रत्येक मजहब परमात्मा का अलग-अलग रूप रखता है। इसके अलावा ईश्वर के बारे में मनुष्यों के विचार समयानुसार बदलते रहते हैं। ईश्वर की प्रकृति स्थिर नहीं है।

ईश्वर के बारे में, बहुतों की धारणा, पिता के रूप में है, जो सब जीवों को पुत्रवत् प्यार करता है! अब प्रश्न यह है कि क्या वह मनुष्यों को सचमुच प्यार करता है, ईश्वर को पितृवत् समझने की भावना उसी समय समाप्त हो जाती है, जब हम देखते हैं कि प्रतिदिन आकस्मिक घटनाएं और बीमारियां मनुष्यों को तबाह किए हुए हैं। बराबर भूकम्प, बाढ़ और तूफान मनुष्य और उसके धन को बर्बाद करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारा नित्य का भोजन भी भगवान स्वर्ग से नहीं भेजता। इसके लिए हमें संसार में काफी संघर्ष करना पड़ता है।

वर्षा, फसल, सूर्य की रोशनी— ये सभी प्रकृति की प्रवृत्ति के फल स्वरूप हमें प्राप्त होते हैं। मनुष्यों को हल चला कर अन्न पैदा करना पड़ता है। फसलों के ऊपर ईश्वर का कोई अधिकार नहीं है। वह बबूल के पेड़ में आम का फल नहीं पैदा कर सकता। मतलब यह कि वह प्रकृति के नियमों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता।

जब विज्ञान बाल्यावस्था में था तब लोग विश्वास करते थे कि ईश्वर सर्वशक्ति सम्पन्न है। परन्तु आज विज्ञान इतना बढ़ गया है कि ईश्वर की अमोघ शक्ति पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। विज्ञान ने साबित कर दिया है कि अलौकिक शक्तियों की कल्पना और उनमें विश्वास इस संसार में कोई स्थान नहीं रखते। किसी भी घटना के लिए कोई न कोई प्राकृतिक कारण हुआ करता है। उदाहरण स्वरूप वर्षा का होना, हवा की नमी और तापमान पर निर्भर है, ईश्वर की इच्छा पर नहीं।

अपने नित्य के जीवन में हमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती। मोटर-दुर्घटना होने पर हम कहते हैं कि एंजिन का कोई हिस्सा खराब हो गया होगा। लड़ाई छिड़ने पर हम राजनीतिक और आर्थिक कारणों की खोज करने लगते हैं। बीमार पड़ने पर उस बीमारी के कीड़ों या शारीरिक कमजोरी

पर हमारा ध्यान आकर्षित हो जाता है। चिकित्सा और शल्यशास्त्र का विज्ञान इसी सिद्धांत पर आधारित है कि किसी भी घटना के पीछे कोई कारण रहता है, और यदि उस कारण का पता लग जाय तो नीरोग हो जाना बहुत आसान बात है।

हमारी पृथ्वी और इसके सहयोगी ग्रह, सूर्य से निकल कर उसी की चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। हम लोग ऐसी दुनियां में रह रहे हैं, जहाँ कारण और कार्य सर्वोपरि है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड हेतुत्व (Causation) और सारुप्य (Uniformity of Nature) के सिद्धांतों से समझा जा सकता है।

इसलिए ईश्वर पर भरोसा रखना और उचित परामर्श के लिए उसकी प्रार्थना करना मूर्खतापूर्ण है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है उसे अपने सामने की दिक्कतों के बीच से अपने लिए मार्ग का निर्माण करना है। एक समय था जब मनुष्य को 'सत्य' का ज्ञान नहीं था। और इसीलिए वह असंभव पौराणिक गप्पों और अलौकिक साधनों पर विश्वास करता था परन्तु अब उसे ईश्वर की आवश्यकता नहीं है।

जिन लोगो में हिम्मत और आत्मविश्वास है, उन्हें मार्ग दर्शक और आधार की जरूरत नहीं है। उनके लिए तो स्वतंत्रता जीवन का सार है, यह संसार ही स्वर्ग है, इसलिए इस लोक में तो कष्ट प्रद जीवन यापन और परलोक में सुख-आनन्द प्राप्त करने की आशा में, इच्छाओं का दमन, मूर्खतापूर्ण बातें हैं। जितना सुख हम प्राप्त कर सकते हैं, उसके लिए हमें असलियत तक वापस आना पड़ेगा।

इसी प्रकार के तर्क ईश्वर के अस्तित्व और उसकी आवश्यकता के विरुद्ध पेश किए जाते हैं। उपर्युक्त तर्कों का मुख्य आधार विज्ञान है। इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञान ने बहुत कुछ किया है, उसने संसार के विचारकों को दो दलों में बाँट दिया है। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी आवश्यकता के पक्ष में दूसरा दल भी बड़ी जबर्दस्त दलीलें पेश करता है। वास्तव में विज्ञान का विद्यार्थी भी तो प्रकृति और तर्क के माध्यम से सत्य की ही खोज में व्यस्त है। वह भी तो सर्व-शक्ति-सम्पन्न सत्ता के अन्वेषण में लगा हुआ है, अणु और परमाणु के मूल तत्व की खोज में व्यस्त वैज्ञानिक भी उसी अन्तिम लक्ष्य की तलाश में है, जिसे सर्व शक्तिमान ईश्वर की खोज करने वाला प्राप्त करना चाहता है। दो में फर्क यही है कि एक, एक रास्ते अपनी खोज आरम करता है, और दूसरा दूसरे रास्ते।

हम लोगों में एक दल ऐसा भी है, जो कहता है—"परमात्मा की व्यर्थ खोज करना छोड़दो, क्योंकि वह इ जाल के समान हैं, जिसका भेद पाना असम्भव है। सम्पू चीज का, उसका कोई हिस्सा, क्यों कर समझ सकता है! परन्तु वह दल यह भी स्वीकार करता है कि "चिरन्त सत्य अभेद्य हैं, कोई उसका पार नहीं पा सकता।" उनकी यह स्वीकारोक्ति उनके कथन में विपरीतता पैदा करती है, क्योंकि यह स्वीकारोक्ति भी तो सत्य ही है!

वास्तव में वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर नहीं देता कि उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है। उसका काम केवल अन्वेषण किए हुए सत्य का विवेचन करना है। परन्तु मनुष् के नाते, वह भी अपने मन में अवश्य सोचता है कि "अन्तिम लक्ष्य क्या है?" मनुष्य में अनुभूतियाँ है। व सुन्दरता का अनुभव करता है, किसी हृदय विदारक दृ को देखकर उसका अन्तः करण द्रवित हो जाता है। क्या कारण है कि हत्याकारी हत्या करने के पश्चात् अकेले में पछताता है? हम कोई चीज चुराते हैं, तो हमारा अन्त करण क्यों हमें दोषी करार देता है? ये कुछ ऐसी सचाइ हैं, जिन्हें हम इनकार नहीं कर सकते।

जब तक हमलोग साधारण स्तर पर हैं, जब तक ह में जानवरों की वृत्ति की प्रधानता है, जब तक हम चिरन्त सत्य की वास्तविक प्रकृति से अनभिज्ञ हैं, हमलोग ईश्वर में नहीं भी विश्वास कर सकते हैं और हमें उसकी आवश्यक नहीं भी हो सकती है। परन्तु मनुष्य बुद्धिमान् जीव है मनुष्य में बुद्धि का तत्व ही उसे जानवरों से पृथक करता है बुद्धिजीवी होने के कारण मनुष्य को इच्छाशक्ति की स्वतं है, और इसीलिए उसे नीति और धर्म भी प्राप्त हुए हैं अन्तःकरण की आवाज ही ईश्वर की आवाज है और अ ही ईश्वर पर विश्वास है। धर्म, ज्ञान नहीं है, बल्कि हृदय की एक विचित्र प्रकृति है।

हमारे इस संसार में, जहाँ कष्ट और दुर्गति की प्रध है, जहाँ थॉमस हार्डी के शब्दों में "दुख प्रधान नाटक सुख एक प्रासंगिक उपकथा के समान है हम असहाय बच्चों के समान हैं जो, पंक में फँसे

के बाद, उसमें से निकलने के लिए सहायता प्राप्त करने की चेष्टा में रत हों।" चाहे हम जितने बड़े सूक्ष्म विचारक हों, यह निश्चित है कि हम अपने हृदय के अन्तप्रदेश में यह बराबर महसूस करते रहते हैं कि प्रकृति के इन सम्पूर्ण कार्यों के पीछे एक सर्वशक्तिमान शक्ति काम कर रही है। यदि ऐसा नहीं होता, तो प्रकृति में संकलन, संयोग और परम्परा क्यों कर कायम होते? ये विवेक युक्त निर्माण के प्रतीक हैं और इसीलिए हमें एक विवेकी निर्माता में विश्वास करना पड़ता है।

प्राकृतिक नियमों के अलावा कुछ नैतिक नियम भी हैं; और ईश्वर उन्हीं नैतिक नियमों का प्रतीक है। नैतिक उत्थान की कई सीढ़ियाँ हैं। नीतिमान बनने के लिए हमें अपनी पशु-प्रवृत्ति को त्याग कर ऊँचे उठना होगा, उस प्रवृत्ति को जो उत्सुकता, क्रोध, लालसा और उत्कंठा आदि दुर्गुणों की की खान है। हमें इन दुर्गुणों के भस्म पर अपने व्यक्तित्व का निर्माण करना पड़ेगा। सच्चे साधु और सन्यासी नीतिवान व्यक्ति हैं! वे जन-साधारण की आलोचनाओं की परवाह नहीं करते। वे ईश्वर के अधिक नजदीक हैं, और ईश्वर की भाँति वे भी हमारी आराधना के अधिकारी हैं।

कल्पना कीजिए कि ईश्वर नहीं है। तब हमारी स्थिति कैसी हो जाएगी? तब तो हम जैसे शरीर और मन से कमजोर मनुष्य, इस संसार रूपी महा समुद्र में एकदम निराश्रित हो जाएँगे, जहाँ प्रत्येक लहर हमें बेकाबू करने को तैयार है। यदि बाढ़, भूकम्प, आँधी और अन्य विपत्तियाँ निरन्तर हमपर प्रहार किया करें तो क्या हम जिन्दा रह सकेंगे? कदापि नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि इस संसार में इस तरह की विपत्तियाँ यदा-कदा ही आती हैं, परन्तु वे बहुत बड़ा काम कर जाती हैं। वे हमें आगामी खतरों से सावधान कर देती हैं हम उनका सामना करने को तैयार हो जाते हैं, और इस प्रकार वे हमारी इच्छाओं को मजबूत बना देती हैं, और हमें उद्यमी और चुस्त कर देती हैं। इससे साफ़ जाहिर होता है कि ईश्वर हमारी भलाई के लिए सदा तत्पर रहता है। वह बुराइयों के द्वारा भी हमारी भलाई ही करता है।

अपने चित्त-क्षोभ की शान्ति के लिए हमें भगवान की जरूरत है! प्रसिद्ध मुगल बादशाह बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ की विकट बीमारी के अवसर पर भगवान की प्रार्थना की थी और भगवान ने उसकी प्रार्थना स्वीकृत भी की थी। यह कथा एक ऐतिहासिक सत्य है, जिसे कोई इनकार नहीं कर सकता। जब ब्रिटेन खतरे में था, वहाँ के निवासियों ने परमात्मा की वन्दना की थी, और इतिहास के पाठक जानते हैं कि चर्चों के घन्टे टनटना उठे थे और ब्रिटेन की रक्षा हो गयी थी। इसी प्रकार जब-जब हम पर विपत्तियाँ आती हैं, हम भगवान की गुहार करने लगते हैं। यह हमारी स्वार्थपरता है। सुख-शान्ति के समय हम उसे भूले रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसकी आराधना करने लगते हैं। पर परम पिता ईश्वर एक दयालु पिता की भाँति सदा-सर्वदा किसी भी हालत में अपनी छत्रछाया में स्थान देने को तत्पर रहता है, इसमें सन्देह नहीं। यदि हम ठीक से विचार करें तो हमें ईश्वर की स्थिति में सन्देह नहीं रह जायगा। चिन्तन की कमी के कारण ही, हम, ईश्वर की स्थिति में सन्देह करने लगते हैं। फ्रांसिस बेकन के शब्दों में—"दर्शन के साधारण ज्ञान से, मनुष्य नास्तिकता की ओर झुकता है, परन्तु इस विषय का पूर्ण अध्ययन करने से धर्म की ओर प्रेरित होता है।"

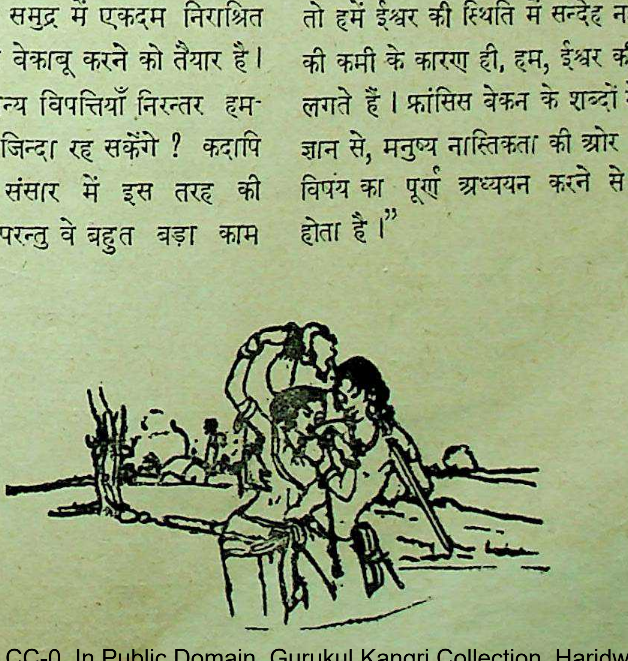

रस निष्पत्ति

श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी एम. ए.

भिन्न भिन्न आचार्यों ने काव्य के भिन्न भिन्न लक्षण दिये हैं। यथा—

१ मम्मटाचार्य के मत में शब्दों और अर्थों का निर्दोष एवं गुणयुक्त होना काव्य है उसमें अलंकार हों चाहे न हों।

तददोषो शब्दार्थो सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

(काव्य प्रकाश)

२ भोजदेव की सम्मति में निर्दोष, गुण और अलंकार युक्त रसात्मक वाक्य काव्य है—

निर्दोष गुणवत्काव्य मलंकारै रलंकृतम्
रसात्मकं कविः कुर्वन् कीर्तिं च विन्दति।

(सरस्वती कंठाभरण)

३ पण्डितराज जयदेव कहते हैं कि निर्दोष लक्षणवती रीति एवं गुण अलंकार समन्वित सरस वाक्य ही काव्य है।

निर्दोषा लक्षणवती सरीति गुण भूषिता
सालंकार रसानेक वृत्तिवाक् काव्यनाम भाक्।

(चन्द्रलोक)

४ आचार्य भामह के मत में निर्दोष, गुण एवं अलंकार सहित शब्दार्थों को काव्य माना गया है —

अदोषो सगुणौ सालंकारौ शब्दार्थो काव्यम्।

(काव्यालंकार)

५ वाग्भट्टाचार्य काव्य उसे मानते हैं जिसके शब्द और अर्थ सरल हों और जो गुण, अलंकार एवं रीति युक्त तथा सरस हो—

साधु शब्दार्थ सन्दर्भ गुणालंकार भूषितं
स्फुट रीति रसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीतये।

(वाग्भट्टालंकार)

६ कविराज विश्वनाथ की सम्मति में रसात्मक वाक्य ही काव्य है—

"रसात्मकं वाक्यं काव्यं"

(साहित्य दर्पण)

७ पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना है—

"रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्यम्।"

(रसगंगाधर)

उपर्युक्त लक्षणों में काव्य की रमणीयार्थ प्रतिपादकता प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार की है। सौन्दर्यपूर्ण विषय का सौन्दर्यपूर्ण वर्णन, जिसे पढ़कर अथवा सुनकर मनुष्य मुग्ध हो जाये, काव्य है, ठीक ही है —

किं क्वेस्तेन काव्येन
किं काँडेन धनुष्मतः
परस्य हृदये लग्नं
न धूर्णयति यच्छिरः

अथत्।

जाके लागत तुरत ही सिर का डुलै सुजान
ना वह गीत न कवित रस ना वह तान न बान।

धनुर्धर का वह बाण और कवि की वह कविता ही क्या जो, हृदय में लगकर सिर न डुलादे।

इस सुन्दर अर्थ और "सुन्दर वर्णन" के अर्थ में समय समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। शब्द और अर्थ को काव्य के शरीर रूप सबने स्वीकार किया, परन्तु उसकी आत्मा क्या है, जो काव्य शरीर को जीवित रखता है, इस विषय में मतभेद रहा है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार काव्य सौन्दर्य को सबने पृथक-पृथक दृष्टिकोणों से देखा है। नील कंठ दीक्षित इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं।

रसं रसज्ञाः क्लपयन्ति वाचि
परै पदार्थानपरे पदानि।
वस्त्रं कुविंदा वणिजो विभूषां
रूपं युवानश्च यथा युवत्याम्।

रसज्ञ : रसिक : कविता में रस ढूँढते हैं, दूसरे वि को देखते हैं, तीसरे पदलालित्य पर दृष्टि देते हैं। जि प्रकार किसी युवती को देखकर युवा उसके स्वरूप को स हते हैं, जुलाहे वस्त्र के व्यौपारी वस्त्र की प्रशंसा करते हैं और सर्राफ उसके आभूषणों पर परख की दृष्टि डालते हैं।

इस सम्बन्ध में मुख्यतया पाँच मत हैं।

उलझण

[मालवी कविता]

श्री आनन्दराव दुबे

जिन्दगी में जीवां तो कसे जीवाँ;
यो लत्ता को लगायो हुओ थेगड़ो बी फाटी'यो हे,
अबे एखे सीवां तो कसे सीवां ।

रोज हाथ पे लाणों ने हथेली पे खाणो,
रोटी खुटीगी पेट आदो भरणो,
नित नवो खाड़ो खोदणेखे कीकायां जाणो ।
तम कईरिया हो कि उधार लायेजा ने खायेजा;
'मरद का दिवाला' मसाण तक,
'टोटा में टोटो' ने 'खारे बेटा घी और रोटो'
बस ईज गीत गायेजा ।
'दादो' म्हारो संघ छोड़ो ने अलग संघ जोड़वा लागो
छोराना खे लकड़ी पटा का हाथ सिखई ने,
कजाणांकीकी जै बोलवा लागो ।
'जीजी' की जिन्दगी जातीरी,
कमाणे की कच-कच से काकाजी कोचवई'या ।
अड़ोसी—पड़ोसी कई'या कि,
'क्योरे-थारा काकाजी' 'कम्युनिष्ट कबसे हुई'या ?
पाणी पड़े तो अन्न आवे,
कोई पाणी की पीड़ का,
ने कोई अन्न की आफत का गीत गावे ।
अब तमीज बताओ,
कई खांवा ने पीवां तो कसे पीवां ।
जीन्दगी में जीवां तो कसे जीवां

* * *

अबे तो शरम बी बापड़ी शरमईगी,
ने दया दूर से देखती रईगी ।
जो बी जवानी में ज्यादे दिन नी होयगो जीणो,
अरे अबी तो जवानी शुरू जो हुई हे,
क्यों हो सवि सांझ का मन्या के कब लक रोणो ?
जिन्दगो की जात्रायें जोखम घणी हे,
कोई की बिगड़ी ने कोई की बणी हे ।
खूब चल्या खूब भाग्या पण दूर रई'यो घर,
दिन वांज असत्यो जां चोर को हे डर ।
बढ़तो चल्येजा तू तो नरी बखत लूटाणां,
अबे असत्या खे कंई इंदारां,
ने लूट्या खे कंई डर ।
डर को नाम लियो की डाकी डर अई'यो ।
पण हिम्मत ने विश्वास की पूड़ी पर पूड़ो खईग्यो ।
डट्यो री ढ़ाडस बन्धी डर का हुई'या चूरा-चूरा,
सांची बिना बोल्ता की ज्वार सड़े हे
ने बोलता का बिकी जाय बूरा-चूरा ।
चोर चालाक ने चतुर हे-क्यांरे, थारा से कंई पावे ?
उनखे मालम है कि नांगी कंई तो धोवे ने कंई सुकावे ।
देखो तम हमारे बीना जान को जोस भरी रीया हो,
चालणी में दूध काड़ी ने तकदीर खे दोस दईरिया हो ?
बापड़ा लोगनो ने तपेलो दूध को भर दियो,
ने तमने मिनकी खे उको नेपो कर दियो ।
दशा या बारद हुई ने कितरा की जवानी गारद हुई,
अब तमीज बताओ कि मजबूरी ने मगरूरी खे--
सीवां तो कसे सीवां
ने जिन्दगी में जीवां तो कसे जीवां ॥

टूटया खेड़ी का सरदार

श्री हरीश निगम

जागीरदार की गई जगीरी गयो मूंछ को ताव
अब पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

१

तू भी रानी, हूं भी रानी, चलती थी या चड़वानी
बेकी बेकी बात करी ने माचे बैठी ठकरानी
बोल्या ठाकर परदा में से बाहर आवो महारानी
छेड़ो काड़ों बेड़ो लई ने कुण्डी से भरलावो पानी
सुकइ गया सब कूवा धन का बन्द हुई सब आव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून तेल लकड़ी का भाव

२

पूर्वज अपना लोई दइ ने जागीरी के लाया था
नरा मरी'या ताव ताव में सांची मां का जाया था

(मेक्सिम गोर्की और लियो टालसटाय)

अबे देख जो ठाकर वा ने बोतल माय भराना
शूरवीर मिनकी से डरपे शेरसिंह 'ने हम जाना
दो बोतल को नशो बतावे पीवे नी वी एक पाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लूण, तेल, लकड़ी का भाव

३

पेला थां रचा करता था अब दीनां ने लूटे
बिगर काम से दीन दुखी ने रोज गड़ी में कूटे
पन या नी मालम के बड़ो पाप को भरइ जाय ने फूटे
ऊबा रइग्या अबे बंदीग्या कांगरेस का खूंटे
कद तक चाले सुनो ठाकर बा कागद की या नाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल लकड़ी का भाव

४

बाग बगीचा ग्राम गाम सब एक जगे ऊबा रइग्या
कांगरेस का सांड छूट्या सो बागर तोड़ी के खइग्या
बकरा से है काम बैल की कंई इज्जत नी राखी
दुर्गा ने सब मुर्गा खाया तमने बोटी चाखी
बोटी तो सब खोटी हुईगी तम अबे दाल से खाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

५

बीसी बदली गई तमारी थोड़ा तो समझो दरबार
बक्स्यो बाबू बगदीमल भी फिरे मांगता आज जुवार
जमनी और जसोदा भागी भाग्यो भागी को भरतार
ठकरानी के ठगी ठगी ने भागीग्यो काल्यो कुमार
कून करे अब रोटी बोलो अपना हाथे करी खाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

६

मोटा मोटा राफा बांदी कम्मर में खोंसी तरवार
छोरा छोरी खाय जलेबी गिरवे है आखो घरबार
आगे चाले छड़ीदार ने पाछे रोवे करजदार
ठाकर बन्या बीच में चाले टूटया खेड़ी का सरदार
अनदाता अन से मेंगा है ढोली डूमड़ा आगा जाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

७

मेहनत करो खेत में हांको हल बक्खर ने नाई
मनखां ने मत को कमीन ई है अपना भाई
ऊंच नीच को भेद छोड़दो छोड़ो हांसी ठट्ठा
सुकई सुकई ने कांटा हुइग्या तेल बिना ई लट्ठा
अपनी मेहनत अपनो खानो हिली मिली के खाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

परिचय-परामर्श

(पत्र--पत्रिकाएँ)

व्यापार-उद्योग पत्रिका—

व्यापार तथा उद्योग मन्त्रालय भारत सरकार की ओर से यह अत्यन्त उपयोगी पत्रिका प्रकाशित होने लगी है। पत्रिका में देश-विदेश के उद्योग-व्यापार की प्रामाणिक एवं उपयोगी जानकारी दी जाती है, तथ्य पूर्ण लेखों के सिवा अंकों में भी व्यापारी के लिए बहुत-सी आवश्यक सामग्री इनमें प्राप्त होती है। विदेशी व्यापार, उनके जयों की जानकारी भी प्राप्त होती है। यह पत्रिका हिन्दी में बहुत काम की है, उद्योग और व्यापार करने वालों के लिए बड़ी उपयोगी वस्तु है। वार्षिक मू. ६ रु. एक प्रति ८ आ., प्रत्येक व्यापारी के काम की वस्तु है।

अग्रवाल समाचार—

उक्त पत्र का आलोच्य अंक महासभा विशेषांक है। चमक दमक के साथ विज्ञापनों से भी दूर यह अंक अग्रवाल जाति के लिए उपयोगी है। मुरारका, भरतिया, भारतेन्दुजी के लेख के सिवा माखनलालजी और सुमनजी की कविता पठनीय है। अग्रवाल समाचार धर्मपेठ नागपुर से प्रकाशित

-प्रदीप—

(स्वाधीनता-विशेषांक)

पंजाब की राजधानी शिमला (२) से प्रकाशित यह सरकारी पत्र सुन्दर निकलता है। स्वाधीनता अंक सरकारी योजना, सफलता के संकेतों के साथ लेख, कविताओं से भी सुसज्जित है। यदि परिश्रम किया जावे तो सरकारी साधनों से निकलने वाला यह पत्र और भी आकर्षक एवं उपयोगी हो सकता है, इस अंक का मू. ४ आना।

ज्ञानोदय—

भारतीय ज्ञानपीठ बनारस से ज्ञानोदय नामक एक सुन्दर मासिक प्रकाशित होता है। इसी दीपावलि से यह अब सहारनपुर के सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री० क. ला. मिश्र प्रभाकरजी के संपादन में सर्वथा नवीन रूप-रंग और रुचि के साथ नव रूप लेकर प्रकाशित होने जारहा है, हमारे समक्ष नमूना-अंक के रूप में बड़ी सजधज के साथ आया है। इस नमूने को देखकर कहा जा सकता है कि हिन्दी में यह बड़ा आकर्षक-पत्र होगा। प्रभाकरजी सूझ के धनी हैं, उनके हाथों 'ज्ञानोदय' का उदय प्रकाश प्रसारित कर सकेगा। हम दीपावली अंक की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे।

ज्ञानोदय सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन समाचार—

दिल्ली के राजकमल प्रकाशन का नाम-काम हिन्दी जगत् में अपनी विशेषता प्राप्त कर गया है। यद्यपि 'विक्रम' को आलोचना (पत्रिका) के सिवा अन्य प्रकाशन की आलोचना का अवसर उपलब्ध नहीं हुआ है, परन्तु हाल ही में उक्त संस्था ने 'प्रकाशन-समाचार' नामक पत्रिका प्रकाशित की है, यह वास्तव में हिन्दी में सूझ-बूझ की वस्तु है। इसकी बड़ी आवश्यकता थी।

२॥ रु. मूल्य में यह समाचार पुस्तक प्रेमियों, नवप्रकाशन के प्रतीक्षकों के लिये अभिनव सूचना और प्रेरणा देने का काम करेगा, पुस्तक प्रचार-प्रसार में इससे बहुत सहायता मिलेगी। राजकमल के इस अभिनव प्रयास की हम सराहना करेंगे।

राजकमल प्रकाशन १ फैज बाजार दिल्ली

विन्ध्य शिक्षा—

शिक्षा-विभाग विन्ध्य प्रदेश शासन की ओर से सुन्दर पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसमें शिक्षण, कला, मनोविज्ञान, अनुशासन आदि विषयों पर उपयोगी साहित्य प्रकाशित हो रहा है। शिक्षा संस्थाओं, शिक्षा प्रेमियों के लिये उपयोगी वस्तु है।

वा० मू० ४), शिक्षा-विभाग रीवां (विन्ध्य)

अदिति—

अरविन्द आश्रम (पांडुचेरी) की यह पत्रिका विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुई है। इस अंक में आश्रम की माताजी के विचार, प्रवचन, और वाक्यों का सुंदर संकलन है, इसमें माताजी की कुछ अप्राप्य पुस्तकों के अंश भी दिए गए हैं, प्रवचनों के साथ स्फुट वचनों का संग्रह भी सुरुचि के साथ अदिति में सजों दिए गए हैं, आश्रम के प्रेमियों, माता के भक्तों को यह पत्रिका प्रेरक सिद्ध होगी। योगी अरविंद के पश्चात अब उस आश्रम की सर्वेसर्वा ये माताजी ही हैं, उनके भक्तों की संख्या भी कम नहीं है, अदिति उनके लिए लाभप्रद प्रकाशन है।

इस अंक का मूल्य १।।।) वा० मू० ६)

चरित्र निर्माण—

श्री० रामचन्द्र शर्मा महारथी हिन्दी के पुराने सुरुचि-सम्पन्न सम्पादक लेखक और पारखी हैं, चरित्र निर्माण उनकी अनोखी विचार-पत्रिका पत्र-जगत् में नवीन रूप में उदित हुई है। चरित्र-निर्माण के लिए आज कितनी आवश्यकता है, यह कहने की बात नहीं। ऐसे समय यह उपयोगी पत्रिका प्रकाशित कर उन्होंने समय की मांग ही प्रस्तुत की है। हमें विश्वास है इसका स्वागत होगा। वा० मू० ६)

निर्माण कार्यालयः—**विज्ञान प्रेस, ऋषिकेश** (देहरादून)

ग्राम-सेवक—

N.P. ग्राम्य जीवन को लेकर इधर कई पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, ग्राम सेवक उनमें अपने ढंग का उत्तम पत्र है। नामानुरूप साहित्य और उपयोगी जानकारी दी जाती है। शिक्षित ग्रामीणों और ग्राम प्रेमियों के लिए बहुत सी हितकर सामग्री इस पत्र में दी जाती है, इस दृष्टि से यह पत्र काम का है। वा० मू० ६) अधिक हो जाता है।

—ग्राम सेवक पटना ३ से प्राप्त

पाटीदार लोक—

बघाना (नीमच) म. भा. से पाटीदार समाज की नवचेतनाका प्रतीक यह पत्र है। पाटीदार जनता के लिए इसका संचालन-जीवन आवश्यक है, हम इसका स्वागत करते हैं। वा० मू० ५)

राजस्थान भारती—

श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च संस्था बीकानेर से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक संशोधन पत्रिका राजस्थान भारती श्री० बदरीप्रशाद सांकरिया के सम्पादक मण्डल द्वारा प्रकाशित हो रही है। ३।४ अंक हमारे समक्ष है। राजस्थानी साहित्य संशोधन के क्षेत्र में इस सुन्दर पत्रिका का जन्म वास्तव में राजस्थानी के उज्वल भावी का सूचक है पत्रिका के सभी लेख सूचनाएं अध्ययन पूर्ण, विद्वानों द्वारा लिखित ज्ञान वर्धन करने वाली है। हम पत्रिका का स्वागत करते हैं, और दीर्घजीवन की कामना।

४ अंकों का मूल्य ८) संस्थाओं से ५)

सचित्र आयुर्वेद—

वैद्यनाथ संस्था आयुर्वेद जग में महत्वपूर्ण सेवा कर रही है। वह औषधि प्रचार और निर्माण द्वारा सक्रिय, अ साहित्य चर्चा अन्वेषण और प्रकाशन द्वारा नव-जीवन जागृ का कार्य भी कर रही है। प्रस्तुत अंक परिषद् अंक आयुर्वेद विद्वानों की परिषद् द्वारा-द्रव्य-गुण-रस-वीर्य आ विषयों पर देश के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा शास्त्रीय चर्चा हु थी। अंक में उसीका विवरण है, यह चर्चा आयुर्वेद के जानकारों, अनुरागियों के लिए बहुत महत्व की, एवं बो प्रद है, चर्चित-विषय पर कुछ विद्वानों के विवेचनात्मक ले भी हैं, जो मननीय हैं।

वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ३६ वाराणसी घोष स्ट्रीट कलकत्ता

प्रतिभा—

प्रतिभा प्रकाशन नागपुर से नवीन पत्रिका अवतरि हुई हैं। पत्रिका का आरम्भ अच्छा है, लेख कहानी, प्रहस कविता आदि का सुन्दर संकलन, सम्पादन हुआ है। पत्रि सुरुचिपूर्ण है। एक अंक का मू. ।।।) है।

देशबन्धु

मथुरा से श्री. कृष्णदत्त वाजपेयी के संपादकत्व में य पत्रिका प्रकाशित हो रही है। प्रस्तुत अंक व्रज संस्कृति अं है। कुछ विद्वानों की रचनाएँ सुपाठ्य, और सुरुचिपूर्ण है। वा० मू० ४) रुपये।

नव-निर्माण—

जोधपुर कुमार परिषद् के श्री नेमीचन्द्रजी जैन भा के संपादकत्व में यह त्रैमासिक नव-निर्माण आरम्भ हु है। पत्र गतिशील है, युवकों की प्रतिभा का स्पष्ट परि मिलता है। राजस्थान की जागृति का यह सन्देश वाहक है। प्रूफ की भुलों की ओर जरा अधिक ध्यान देने आवश्यकता है। पत्र संयमित-सुरुचिवर्धक होगा। वा० मू

मधुवन—

हजारीबाग (बिहार) से यह पत्र निकल रहा है। ह दो अंक देखे हैं, पत्र अच्छा है, किन्तु छपाई-स प्रूफ आदि की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। मू. ४॥)

चाणाक्य—

चाणाक्य यद्यपि बहुत छोटा सा पत्र दिखाई देता किन्तु बड़ी चुभती चीज देकर बड़ों-बड़ों को अपनी आकर्षित करने की क्षमता रखता है। पत्र का अपना स्थान है, और उसे साहित्य जग का सजग प्रहरी जाना चाहिये, चाणाक्य पढ़ने की चीज है, उसकी साहस और सराहनीय है। वा० मू० ३) चाणाक्य

देवेन्द्रनाथ वेन, पटना ४ से प्राप्त।

दीपक माला

इन दीपों से जलते झलमल मेरे मन के गीत अधूरे
इन दीपो से जलते मेरे स्वप्न हुए जो कभी न पूरे
केवल एक रात जलकर बुझ जायेगी यह दीपक माला
पर मरते दम तक न बुझेगा मुझमें तेरा रूप-उजाला

तेरी रूप-शिखा में मेरे अंधकार के क्षण जल जाते
तेरी सुधि के तारे मेरे जीवन को आकाश बनाते
आज बन गया हूं मैं इन दीपों का केवल तेरे नाते
आज बन गया हूं मैं इन गीतों का केवल तेरे नाते

श्री अंचल

Phone No. 48 Regd No. N. 887

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टेक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार; सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,

भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

आश्विन

विक्रम

२०१०

३५६ विक्रम
२४
21

गुरुकुल-पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी

संचालक संपादक

सूर्यनारायण व्यास

गीत

सुश्री-विद्यावती मिश्र

भाग्य मनुज के निश्चय का ही एक नाम है !

जिसके साहस के आगे हिमगिरि भी हारा;
सागर ने भी - सेतुबन्ध स्वीकार किया है,
स्वयं प्रकृति ने उसको जी भर प्यार किया है,
उसको स्वामी मान रहा ज़ल थल नभ सारा;
जिसके बल पर ध्रुव-धरणी चलती रहती है
कर्म--चक्र को कब क्षण भर मिलता विराम है !

चरण पटक दे यदि भू पर तो पानी निकले;
हाथ उठा दे तो नभ उस पर आ झुक जाये,
बादल उसके कंधों पर आकर रुक जाये,
बढ़े सामने, लक्ष्य स्वयं आने को मचले;
चलता है अति अथ इस सीमाहीन परिधि का
चलने वाले के हित होती नहीं शाम है !

भाग्य--कोष पर अंधकार का रहता ताला;
उसमें क्या क्या है कब कोई जान सका है,
उसके वैभव को कब जग पहचान सका है,
शून्य भविष्यत् ने रक्षण का भार संभाला;
किंतु कर्म की चाभी नर के हाथ सौंप कर
विधि श्रद्धा से नत मनु को करता प्रणाम है !

वार्षिक
६) रु.

एक अंक
।।=)

विक्रम

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.

गीत … … … … श्री० विद्यावती मिश्र … …
व्यास-उवाच … … … ,, संपादकीय … … १-१६
विश्ववन्द्य कवि कालिदास … … ,, सूर्यनारायण व्यास … … १७-२०
महाकवि चक्रवर्तिन छित्तप … … ,, डॉ. डी. सी. सिरकार एम. ए., पी. एच. डी. … ३१-३३
राम राज्य, गीता और वेद …. … ,, रणछोड़दास 'उद्धव' … ३४-३९
भाड़े का वर … … … ,, 'मधुवन' … … ४०-४४
काव्य-विहार … … … ,, गयाप्रसाद शास्त्री, इकबाल बहादुर श्रीवास्तव … ४५-४९
परिचय परामर्श … … … … … … ५०-५१

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड
स्थापना १९४२

Paid for capital:- Rs. 7,93 500
Assets exeed:- Rs. 25. Lacs
Claims paid
since inception:-over Rs. 4. Lacs

पेट्रन
ना. महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर राजप्रमुख सौराष्ट्र स्टेट

श्री कन्हैयालालजी चेटिया
रतलाम
मध्यभारत के चीफ एजेन्ट

राजस्थान और यू. पी. में चीफ एजेंसी देना है!

विषेश माहिती के लिए कृपया श्री एच. एन. आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क स्थापित करिये।

पत्र व्यवहार का पता— " विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

बेनीपुरी-ग्रंथावली

दस खंडों में

पहला खण्ड प्रकाशित हो गया !

पृष्ठ सख्या—६२२ : चित्र संख्या १०७

मोनो की साफ-सुथरी छपाई : रेक्सिन की सुनहरी जिल्द : तिरंगा नयनाभिराम आवरण।

इस खंड में बेनीपुरीजी की ये छः अनुपम कृतियां संकलित हैं—

१. माटी की मूरतें २ गेहूं और गुलाब ३. पतितों के देश में ४. लाल तारा ५. चिता के फूल ६. कैदी की पत्नी !

सुन्दर चित्रों से आभूषित किए जाने के साथ ही इन पुस्तकों के पाठ और क्रम में भी मौलिक संशोधन किये गये हैं, जिस कारण इनके कलेवर ही बदल गये हैं !

[मंगाकर देखिये, तो !] प्रति खंड का मूल्य—१२॥)

पूरी ग्रंथावली का अग्रिम मूल्य ❀ १००)

बेनीपुरी—प्रकाशन, पटना ६

कृषि उत्पादन आयुक्त का कार्यालय, म. भा. शासन, ग्वालियर

—विज्ञप्ति—

मध्यभारत मे छोटी छोटी सिंचाइ की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये ओव्हरसियर्स १६ (१००-२००) की आवश्यकता है:—-नियमानुसार मँहगाई भत्ता। इन स्थानों पर अस्थायी नियुक्तियां की जावेंगी एव नियुक्त व्यक्तियों को लोक सेवा आयोग के सम्मुख समय आने पर उपस्थित होना होगा। इन्हें मध्यभारत के किसी भी स्थान में भेजा जा सकता है, एवं कार्य के सन्तोष जनक नहीं होने पर किसी भी समय सूचना देकर कार्यभार से पृथक किया जा सकता है। प्रार्थी को सिविल इन्जीनियरिंग का डिप्लोमा तथा कम से कम दो वर्ष का सर्वेक्षण, निर्माण कार्य, एवं सिंचाई संबंधी ज्ञान होना आवश्यक है। यदि प्रार्थी को दस वर्ष या इससे अधिक समय का कार्यानुभव हो तो वह शैक्षणिक योग्यता के बंधन से मुक्त किया जा सकेगा।

आवेदन कर्ताओं की आयु २० वर्ष से कम एवं ५० वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिये। आवेदन पत्र प्रमाण-पत्रों सहित उपर्युक्त कार्यालय में दिनाङ्क २०-१२-५३ तक प्राप्त होना चाहिये।

कृषि उत्पादन आयुक्त

मध्य-भारत, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के [illegible] के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम

उज्जैन

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड २] आश्विन सं० २०१० वि०, नवम्बर सन् १९५३ [अंक १ पूर्ण सं० ७७

व्यास उवाच

शिक्षा का फलितार्थ !

शिक्षा का उद्देश्य मानव जीवन की प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत कर आत्म विकास के साथ जीवन संघर्ष के लिए सबल बनाना है। व्यक्तित्व और प्रतिभा के विकास के साथ-साथ मनोभावों को समुन्नत करना भी है। किन्तु आज की शिक्षा इस दिशा में कहां तक सक्षम है? अंग्रेजी शासन काल की शिक्षा ने जहां गुलामों को ढालने का कार्य किया है, वहां आज की शिक्षा ने अविश्वास, असंतोष और बेकारी बढाने में प्रगति की है, उच्छृंखलता को उत्साहित किया है, चरित्र को चौपट बनाया है। शिक्षा, आत्मोन्नति, चरित्र निर्माण शालीनता, विनय आदि की जननी है। पर जिस शिक्षा से आत्महृास हो, चरित्र हानि हो, शालीनता समाप्त हो। विनय-विवेक का दिवाला पिट जाता हो उसके दोषपूर्ण होने में कोई शंका नहीं रह जाती। शिक्षा को बेकारी हटाने का माध्यम कहा जाता है। इसका अर्थ यही है कि शिक्षा मनोविकास का साधन नहीं है, धंधे-रोजगार का माध्यम है। यह ठीक है कि शिक्षित व्यक्ति को यह योग्यता अवश्य प्राप्त होना चाहिए कि वह अपना भरण-पोषण कर सके, परावलंबन की पीडा न पा सके, पर शिक्षा केवल रोजगार के लिए प्राप्त करें यह अवश्य अनुचित है। आज की शिक्षा का हेतु केवल रोजगार हो रहा है। इस 'हेतु' के प्रधान पद प्राप्त कर लेने के कारण शिक्षा का 'स्तर' हीन होता जारहा है। ज्ञान-आत्म-विकास की उपेक्षा कर; कारखानों में काम करने की प्रवृत्ति की प्रबलता से शिक्षा के 'हेतु' को कुचल रहा है। कोरे साहित्यिक, कोरे इतिहासज्ञ की तरह ही कोरे कारखानेदार का जीवन भी निरर्थक है। मूलतः आज के ज्ञान की दिशा ग़लत है। उसकी पद्धति और स्तर में मूलभूत कमी है। शिक्षा को मानव जीवन के साथ सामन्जस्य स्थापित करना

चाहिए। मानव जीवन का उद्देश्य केवल पेट भरना, परिवार पालना, धन्धे रोजगार कर लेना और मर जाना मात्र नहीं है, उसका जीवन उच्च उद्देश्य के लिए है। उसी प्रकार जब तक शिक्षा भी केवल कमाई, धन्धे, पेट पालने तक परिमित रहेगी वह अपने असली उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकती। मानव जीवन और शिक्षा के लक्ष्य में समानता स्थापित किये बिना उसकी सफलता सम्भव नहीं। जो शिक्षा पुरुषार्थ को प्रेरित नहीं करती उसका मानव को कोई उपयोग नहीं। मानव ही पुरूषार्थी प्राणी है। अज्ञान पशु भी पेट पालने, परिवार पोषित करने और आत्म रक्षा करने का ज्ञान रखता है। यदि मानव भी शिक्षा प्राप्त कर यही अपना दायरा बना लेता है तो उसकी शिक्षा और पशु के अज्ञान में कौन सी विभाजक रेखा खींची जा सकती है?

आज के शिक्षा शास्त्री ने इस पर विचार किया है? एक ओर हम बेकारों को स्कूल—कॉलेजों में निरन्तर ढालते जाते हैं। और उनकी समस्या को संकट बनाकर सस्ती सर्विसों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। जो जीवन में उलझन असन्तोष-अविश्वास बनकर मानव का विकास अवरुद्ध करती चली जाती है। न वह अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को जान-समझ पाता है, न शिक्षा के लक्ष्य को ही। जब तक इस स्थिति को समझकर सुलझाया न जायगा, तब तक शिक्षा के प्रचलित ढर्रे का चाहे जितना विस्तार किया जावे। चाहे जितना ही व्यय किया जावे न तो मानव का मनोविकास सम्भव है, न शिक्षा का फलितार्थ ही। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि—

"अर्जुन! तुम्हारा अपना कोई निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। अस्थिर बुद्धि वालों के कार्य, और उद्देश्य विभिन्न होते हैं।"

भारत में साधन स्रोतों की कमी नहीं है। किन्तु अपेक्षित-सद्भावना, सहयोग; उत्साह के बिना इन साधन स्रोतों का उपयोग किस प्रकार हो सकता है। बुद्धिवान् चाहे तो उसके लिए जीवन का मार्ग प्रशस्त है। खेद तो यह है कि हमारे बुद्धि जीवी शिक्षा-विज्ञों ने अपने देश की परम्पराओं प्रणालियों और आदर्शों की उपेक्षा करके भौतिकता के अनुगामियों का अन्धानुकरण आरम्भ कर दिया है। यही कारण है कि हमारा आत्मविकास—मनोविकास अवरुद्ध हो गया है। जो शिक्षा जीवन विकास, आदर्श उच्चता चरित्र विनय की जननी है वह आज पेट के प्रश्न पर परिमित हो बेकारी की परिधि पोषक हो गई है। शिक्षा का निरुद्देश्य विस्तार आज के समाज के लिए 'संतति-निग्रह' की समस्या की तरह बन गया है। उसके मनोवैज्ञानिक उपायों की अपेक्षा कृत्रिम उपायों की खोज की जाती है। उसके स्तर, आदर्श और उद्देश्य पर विचार नहीं किया जाता। फलतः शिक्षा का क्षेत्र-विस्तार हो रहा है। शिक्षित-जनों में गिरावट आती जारही है। शिक्षा में से चरित्र और नैतिकता निकल गई आत्म हीन ज्ञान दिनों दिन प्रगति कर रहा है। ऐसी स्थिति में ज्ञान का दिवालियापन देश को दयनीय स्थिति में लेजावे तो क्या आश्चर्य की बात होगी?

हामारे राष्ट्र की रीढ़, शिक्षा-मंत्रालय निराशा के निम्न स्तर पर खड़ा है। पांच वर्ष की प्रगति 'शून्य' के चारों ओर चक्कर काट रही है। जूते पर चढी हुई धूल की तरह हमें शिक्षामंत्रालय को पूरी तरह झाड-पोंछ कर साफ करना होगा, तभी केन्द्रीय-शासन से कुछ आशा की किरणें प्रकाश देने लगेंगी। आज भारतीय-ज्ञान तमोमय बन रहा है। विकास पथ अवरुद्ध होगया है। राष्ट्र की उन्नति का मानदण्ड ज्ञान विकास है। परन्तु मानव की आत्मा को विकसित प्रकाशित करने वाला वही ज्ञान-दीप प्रकाश को पानकर कज्जल की कालिमा प्रसूत करता हो, उसका अन्त आवश्यक है। ज्ञान का दीपक अज्ञान की अँधियारी दूर करने के लिए प्रकाशित किया जाता है। कज्जल-कालिमा द्वारा मति को मलिन बनाने के लिए नहीं।

हमारे राष्ट्र की शिक्षा का आदर्श 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' रहा है। आज वह रोटी-रोजी बेकारी की राह में भटक रहा है। फिर आत्मोन्नति, जीवन की सफलता, मोक्ष, ध्येय-धर्म आदर्श, के पथ का उसे क्या पता होगा? जिस शिक्षा का ध्येय जीवन व्यवसाय मात्र बन गया हो, उससे मानवीय गुणों के विकास की कैसे अपेक्षा की जाय? जब तक हमारी शिक्षा ध्येय निष्ठ नहीं बन जाती, मानव-गुणों का विकास दुर्लभ है।

भगवान् कृष्ण की वंश-परम्परा !

सौराष्ट्र में जामनगर, कच्छ आदि के राज—वंशीय जन यदुवंशीय-जाडेजा क्षत्रिय हैं, जो अपने को भगवान् श्रीकृष्ण के वंशज एवं उत्तराधिकार परम्परा में मान्यता रखते हैं। उनके गोत्र-प्रवर, और कुल-देवों के कारण भी उनकी इस मान्यता में तथ्य दिखाई देता है। पौराणिक कथा-गाथा के अनुसार श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब था, उसका विवाह शोणितपुर के बाणासुर के प्रधान कुभाण्ड की पुत्री रमा के साथ हुआ था और उससे उष्णिक् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह यादवी-युद्ध के समय कुभाण्ड के निकट होने के कारण सुरक्षित रह गया था, कहा जाता है कि उष्णिक् ने मिश्र देश में अपने शासन की स्थापना की थी, और साम्ब के वंशज साम्बा नाम से ज्ञापित हो गए थे, ये साम्ब-जन बहुत समय पश्चात् बलूचिस्तान के द्वारा सिन्ध में आए। वहाँ भी 'साम्ब' के नाम से ही परिचित हुए। सिन्ध में आज भी नगर 'ठट्ठा' नामक जो स्थान है, उसे साम्ब नाम से उन लोगों ने बसाया था, यही सिन्ध के साम्ब अपभ्रंश से 'जाम्ब' कहे गए, और इन्होंने ही १५३० सं० में सौराष्ट्र में आकर साम्ब नगर की तरह जाम्ब नगर की स्थापना की। जाम साहब उसी परम्परा के पुरुष हैं। श्रीकृष्ण के वंशजों की नियमानुसार वंशावलि के संग्रह करने का प्रयास किया गया है, और उसके अनुसार वर्तमान जाम साहब भगवान् श्रीकृष्ण से १३१ वीं, पीढ़ी में स्थिर होते हैं, यह वृत्त एक गुजराती पत्र में हाल ही में प्रकाश में आया है। यह स्पष्ट है कि सौराष्ट्र का पौराणिक इतिवृत्त श्रीकृष्ण के जीवनारंभ से आरम्भ होता है। और उनके अन्त के साथ अन्त होता है। द्वारका से सम्बन्धित होने के कारण श्रीकृष्ण का सौराष्ट्र केन्द्र रहा है। आज भी द्वारका जामनगर के अन्तर्गत रही है, जाम साहब अपने को वत्सवंशीय मानते हैं, उनकी गोत्र-देवी आशापूर्णा है, जिनका पुरातन स्थान जामनगर के सागरतट पर प्राचीनता की साक्षी में स्थित है। इस घटना की संगति लगाने वाली एक बात और बड़ी महत्वपूर्ण प्रतीत होती है, और वह यह कि इन पंक्तियों का लेखक भगवान् श्रीकृष्ण के विद्या-गुरु महर्षि-संदीपन के कुल से चला आता है। पांच हजार वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण उज्जैन में अध्ययन करने आए थे, यह पुराण-प्रसिद्ध घटना है। पांच हजार साल बीत जाने पर भी यह वंश आज इसी अवन्ती में उसके अस्तित्व को प्रमाणित कर रहा है, जैसे कि जामनगर में जाम सा. का कृष्ण वंश। संदीपन वत्सवंशीय थे, और उनकी भी कुल देवी आशापूर्णा थी हम लोगों के परिवार में अबतक भी यही पूज्य बनी हुई है। जबकि जाम सा. का वंश भी वत्स, और कुल देवी आशापूर्णा है। पुरातन जमाने में यह प्रथा रही है कि गुरु, या श्रेष्ठ जनों के वंश-गोत्र आदि को शिष्य जन ग्रहण कर उस परम्परा को स्वीकार करते थे। इसका यह प्रमाण भी मिल जाता है, अन्यथा एक ब्राह्मण वंश के गोत्र देवी आदि राजपुत्र के भी वही रहे, यह विस्मय जनक जरूर है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण वंश की वंशावलि का संग्रह कर जाम साहब १३१ वीं पीढ़ी में माने जाते हैं, उसी प्रकार संदीपन ऋषि की वंशावलि भी हम लोगों के पास क्रमशः चली आ रही है, और उसके अनुसार हमारा क्रम १४५ वीं पीढ़ी में संदीपन मुनि से प्राप्त होता है। इन दोनों वंशावलियों का पौराणिक और ऐतिहासिक परम्परा से सामंजस्य देखकर प्रमाणित बनाया जाना चाहिए, इनसे इतिहास की बड़ी गुत्थी सुलझ सकती है, और तथ्य का भी पता चल सकता है। कालक्रम वश श्रीकृष्ण और उनके गुरु संदीपन के वंश अपना अस्तित्व रख रहे हैं, सुदूर रहते हुए भी उनकी अनेक परम्पराओं में साम्य है। इतिहासानुशीलन के लिए यह महत्व का विषय हो सकता है।

पाकिस्तान-हिंदुस्तान-अमेरिका।

पाकिस्तान का निर्माण ही भ्रम, भय और शंका पर आधारित हुआ है। जिसकी नींव में भ्रम भरा हो, उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति 'भ्रम' को लेकर ही चलती है, आज पाकिस्तान इसी 'भ्रम' के कारण सारे एशिया को खतरे में डालने के लिए उद्यत हो रहा है, जहाँ ईरान, ईराक, इजिप्ट आदि पड़ौसी राष्ट्र, अंग्रेजी, अमेरिकी कूट नीति से क्रुद्ध हो उनकी चालों में फँसने से अपने को सतर्क बनाते जा रहे हैं; वहाँ पाकिस्तान पड़ौसी से सबक सीखना छोड़ सीधा अमेरिका के पंजे पड़ अपना आत्म-विक्रय करने जा रहा है। अनेक बहानेबाजी, टाल-टूल के बाद उसने इतना स्वीकार कर लिया है कि अमेरिका से वह सैनिक सहाय लेने जा रहा है। निःसंदेह

अमेरिका अपने जाल में जकड़ लेने में पाकिस्तान में सफल होगया है। जब तक लियाकत अली जिन्दा थे उसका जादू नहीं चल पाया था, और उनकी हत्या में भी ऐसा ही कोई रहस्य है। नाजिमुद्दीन के पतन के पीछे भी अवश्य प्रपंच रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि मुसद्दिक का पतन, शाह का उत्थान अभी हमारी आँखों के सामने ही है, जहाँ अमेरिका की चालें सफल हुई हैं। सम्भव है नेपाल की राणाशाही भी चुंगल में पहुँच गई होती, यदि महाराज त्रिभुवन ने भारत पलायन न किया होता, इस प्रकार एशिया में दीर्घकाल से अमेरिकी-षडयंत्र चलते आए हैं, अब वह पाकिस्तान में पनपते-पोषित होते दीख रहे हैं, इस पर भी पाकिस्तान 'सार्वभौम स्वतन्त्र'-सत्ता का दम्भ कहाँ तक सुरक्षित बनाए रख सकेगा, यह एक समस्या है। एक ओर उसी के हित में कही गई नेहरू जी की चेतावनी पाकिस्तान को अपनी प्रभुसत्ता में दखलन्दाजी दिखाई दे रही है अब उसकी प्रभुसत्ता खुलेआम अमेरिका के हाथ बिकने जा रही है, यह उसे सुझाने पर भी नहीं सूझ रहा है। आज सारा एशिया पाक के इस नापाक-गठ-बन्धन से चिन्तित हो उठा है। इजिप्ट, ईरान, ईराक, तुर्क आदि के पत्रों ने इसे हिकारत से देखा है। ब्रिटन के पत्र भी इसे भला नहीं समझ रहे हैं अमेरिका के कई पत्रों ने तो भण्डा फोड़कर 'नाना' कहते रहने पर भी पाकिस्तान को पाप-प्रकट करने को विवश बनाया है। स्वयं पाकिस्तान में बड़ा विरोध और भ्रम फैल चुका है, यदि पाकिस्तान का यह सैनिक सहाय समझौता-भय, भ्रम पर आधारित नहीं है तो उसमें इतना दबाव, छुपाव का क्या कारण रहता था? यह पर्दे पोशी ही उसके पापमय होने का प्रमाण है, जिसके प्रकाश में लादेने के कारण पाकिस्तानी प्रधानों में बौखलाहट हो गई है। कोई 'प्रभुसत्ता' पड़ौसी के पीड़ा का कारण बन सकती हो तो उसकी चिल्लाहट स्वाभाविक है। नेहरूजी, रूस, चीन, अफगान, पख्तून आदि का शंकित, सतर्क सावधान हो जाना स्वाभाविक है; परन्तु हमारा खयाल है पाकिस्तान इस की चिंता नहीं करेगा, और अमेरिका तो अपने स्वार्थवश ऐसा सुयोग क्यों हाथ से छोड़ेगा? जो भी हो, इस घटना से किसी रोज एशिया में 'कोरिया-काण्ड' की पुनरावृत्ति सम्भव हो सकती है, और पाकिस्तान का भ्रम उसे ही किसी रोज इस भय में भस्म हो जाने को विवश बना देगा। भारत के लिए अवश्य ही यह प्रश्न जटिल बन जाता है। उसे अत्यन्त सतर्क हो जाने की, और आन्तरिक एकता को सुदृढ बनाने की आवश्यकता है। चीन और रशिया से भारत के अच्छे सम्बन्ध हैं, यह शुभ-चिन्ह है, इस पाक-पाप-बन्धन के कारण और भी यह स्नेह सुदृढ़ बन जायगा, तथापि हमारी आन्तरिक-एकता ही हमारा बल है, हम तटस्थ रह कर भी इस बल पर सुरक्षित रह सकते है।

आज पाकिस्तान में अनेक मतभेद जाग्रत हो रहे हैं, वहाँ आर्थिक समस्या, अन्न-वस्त्र-समस्या भी विषम है, प्रधान मण्डल में भी एकसूत्रता उतनी नहीं है। उधर पाकिस्तानी नव-विधान को लेकर भी बहुत उलझनें उपस्थित हो रही हैं। इस्लामी-धार्मिक-आधार पर बनने वाले संकीर्ण विधान पर आलोचना भी हुई है। पण्डित नेहरू जी की स्पष्ट आलोचना को लेकर वहाँ के गवर्नर जनरल, और कानून मंत्री ने भी उत्तर देने का प्रयास किया है। वस्तुतः जब भारत वर्ष में मुसलमान २३ प्रतिशत थे तब उन्होंने अपने को अलग बनाकर पाकिस्तान बाटा था, वे 'भारत' में भारतीय होकर रहने को तत्पर नहीं थे, आज पाकिस्तान की कुल बस्ती में १५ प्रतिशत हिन्दू रहते हुए भी वही पाकिस्तान उन्हें इस्लाम-मजहबी शासन में अधिकार रहित रहने को विवश करना चाहता है। जो लोग भारत में समान अधिकार मांगने के लिए देश के टुकड़े करवाने को आमादा बने थे, वे अपने, यहाँ १५ प्रतिशत (वह भी अकेले एक भाग में ही) को इस्लाम धर्मानुयायी शासन में रहने को बाध्य बनाना चाहते हैं, यह उनका 'लोकतन्त्र' है? जिस विधान में 'कुरान और सुन्नाह' के विपरीत कोई नियम निर्मित न हो सकने की योजना हो, राज्यधर्म 'इस्लाम' होगा, यह मजहबी रूप स्पष्ट हो, तब उन १५ प्रतिशत अन्य धर्मियों को या तो धर्मान्तरित होना पड़ेगा, या गुलाम बनकर अरक्षित अवस्था में रहना होगा। क्या यह विधान लोकतांत्रिक कहा जा सकता है? वहाँ के करोड़ों हिन्दू भय में पड़ जाते हैं, ऐसी अवस्था में वहाँ विषाद उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस पड़ौस की प्रवृत्ति का प्रत्याघात भारत पर पड़ना स्वाभाविक हो है। जब कि भारत में करोड़ों भी मुसलमान वैधानिक नागरिक मूलभूत अधिकार

है। तब भी पाकिस्तान में उनके लिए ग़लत प्रचार भड़काया जाता है। किंतु पाकिस्तान का स्वयं अनुदार-विधान चीखकर कह रहा है कि वहाँ के अल्पमत अधिकार हीन हो मजहबी तंत्र के तले कुचले जाने को है। ऐसी अनेक समस्याओं ने पाकिस्तान में आन्तरिक उलझनें बढ़ादी है। असत्य, भय, भ्रम, घृणा, और उस पर धर्मान्ध-संकीर्णता ने पाकिस्तानी शासन की जड़ में घुन तो लगा ही दी है; किन्तु सर्वोपरि अमेरिकन-सहयोग से उसने इस कमजोरी को दबाने के लिए जो बल प्राप्त करना चाहा है, वह उसके लिए अस्तित्व के खतरे का ही कारण बन जाएगा।

एकता से—अनेकता की ओर !

जिस प्रकार 'पाकिस्तान' की मांग ने देश में 'विष-विस्तार' कर प्रथकता को जन्म दिया उसी प्रकार भाषावार प्रांत का प्रपंच बुरी तरह पनपता जारहा है। यदि इसे पोषित किया, या प्रोत्साहित किया, तो देश की एकता-अनेकता में बँटती ही जाएगी। चाहे आज हम केवल विनोद तक ही सीमित क्यों न समझें, महिला-मण्डल द्वारा प्रथक-स्वतन्त्र महिला-शासन तन्त्र की मांग भी उसी महत्वाकांक्षा की प्रसूति-पीड़ा को प्रमाणित करती है, जो प्रथकता का प्रसव कर देश को दलित बनाने का आयोजन कर रही है।

अंग्रेजों के जाने के बाद जनता की आन्दोलन-प्रवृत्ति सही दिशा की ओर नहीं जारही है। जनता का नेतृत्व शासन में सम्मिलित हो जाने के बाद उसका स्थान अदूरदर्शी-महत्वाकांक्षियों के हाथों में पहुँच गया है। उसी का यह परिणाम है कि जनमनोवृत्ति अनियंत्रित प्रगति कर रही है। प्रांतों के प्रश्न, सीमा की समस्या अभी सुलझने को है। अनेक भोगौलिक और सांस्कृतिक उलझनों का सामना करना है। मानवता और नागरिकता की परिभाषाएँ हमें स्वाधीनता की स्थिति में सही समझना है। उसके पश्चात् हम जन-तन्त्रता का महत्व उचित अनुभव कर सकेंगे अभी हमें अन्य प्रथकतावादी प्रवृत्तियों को प्रेरित या पोषित होने से रोकना ही श्रेयस्कर है। बम्बई के श्री पाटिल ने ठीक ही कहा है कि भाषिक-प्रांत वाली चर्चा को १५ वर्ष के लिए रोक देना चाहिए, यही उचित भी है। आज हमें पाक-अमेरिकन संधि समस्या ने जिस नई चिंता में विचार करने की गंभीर स्थिति में खड़ा कर दिया है, यह और भी हमें बाध्य करता है कि हम इस समय देश की आंतरिक एकता और सुदृढ़ता को विश्रृंखलित बनाने वाली किसी भी प्रवृत्ति को प्रगतिमय बनने न दें। हम चाहें बहुमत प्रणाली के कारण संख्या-बल को लेकर जनतन्त्र में कुछ भी प्रवृत्ति चला सकते हैं, किंतु उसका परिणाम विवेक एवं दूरदर्शिता की कसौटी पर कहां तक सही राष्ट्रहित-कर्त्ता हो सकता है यह समझ लेने की आवश्यकता है।

केवल बहुमत और संख्याबल के आधार को लेकर ही हम सोचने-और करने लगें तो १९५१ की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में महिला की संख्या आधी से थोड़ी ही कम है। तो इस अनुमान से शासन में महिलावर्ग का पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त किया जासकता है। और जिन, मद्रास त्रावनकोर-कोचीन, कच्छ, उडीसा आदि में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या अधिक हैं,- सहज संपूर्ण सत्ता उनके अधिकार में पहुंच सकती है। ऐसी ही बातों को लेकर श्रीमती मुंशी ने महिला प्रदेश की मांग की थी, और विक्रम के इन्हीं स्तम्भों में हमने मनोरंजन का विषय बना लिया था, यही क्यों काश देश के बेकार या अपढों का सुदृढ़-संगठन बना लिया जावे, और उसे ठीक नेतृत्व प्राप्त हो जावे तो, इनका संख्या बल भी कुछ प्रांतों को प्रथक् बनवा लेने को बाध्य बना सकता है। अभीतक हम नहीं जानते थे कि ऐसे प्रांत का दावा कौन करेगा ? किंतु महज़ मजाक में ही क्यों न हो-दिल्ली के कांस्टीट्यूशन हाऊस में कुछ दिन पूर्व ही, अखिल भारतीय मूर्ख-मण्डल की, एक खास बैठक हुई थी, और उसने पाकिस्तान की तरह 'मूर्खस्तान' की मांग कर डाली है। यही नहीं उस बैठक में जम्मू-हिमाचल-प्रदेश, पंजाब तथा पेप्सू के प्रतिनिधियों ने निश्चित किया कि इन चार प्रांतों को मिलाकर एक विशाल प्रांत बना दिया जावे, क्योंकि भाषा, संस्कृति और मूर्खता में ये चारों समान है। यह 'मूर्खस्तान' कहलाने को तैयार है !! कोई आश्चर्य नहीं कि एक रोज यह मनोविनोद भी रंग पकड़ले, केवल संख्याबल ही तो सहायक बन सकता है। परन्तु राज्य-परिषद की सदस्या श्रीमती अरुण्डेल तो इससे भी कुछ आगे बढ जाती है, उन्होंने राजकोट के अपने भाषण में पशुओं को भी नागरिकता में परिगणित करने की प्रेरणा की है। बात वाजबी है। नगरों में रहने वाले नरों के निरन्तर

सहयोगी पशु जो कि 'नरों' को सब तरह पोषित करते हैं! उन्हें क्यों न नागरिक माना जाए, जब कि नर नागरिक बन सकता है तो उसका सहयोगी पशु उससे प्रथक् क्यों रहे? नगरपालिकाओं की भी यह बेईमानी है कि सीधी सडकों से वह इनको पकडवाकर कांजी हाऊस में मुंदवा देती है। काश श्रीमती अरुण्डेय के कुत्ते, गाय, भैंस, गधे, घोड़े; बकरी, भेड़ें आदि भी नागरिक बना लिये जावें तो नरों के साथ नर-पशुओं की और नारी के साथ नारी पशुओं की भारी संख्या वृद्धि हो सकती है। हमारा तो यह भी सुझाव है कि न केवल पशुओं को ही, उन पालतू पक्षियों को भी जो तोते, कबूतर, तीतर, मुर्गे, बाज, चिडियां आदि के रूप में मानव के संगी साथी बने हुए हैं, क्यों न नागरिक मान लिया जावे। सौराष्ट्र में कुछ समय पूर्व एक सज्जन ने अपने पालतू कुत्ते का नाम परिवार की सूचि में सम्मिलित कर 'राशन' की मांग भी की थी उसी सौराष्ट्र में श्रीमती अरुण्डेल ने यह नागरिकता की आवाज बुलंद की है। कोई आश्चर्य नहीं कि इस संख्या बल को लेकर किसी रोज एक और प्रथक्-प्रांत या शासन, मन्त्रीत्व आदि की नई मांग भी प्रस्तुत हो। जनतन्त्र के इस युग में यह विचारणीय बन जाता है।

शिक्षा मंत्रालय का षड्यंत्र !

राज्य परिषद् में यह सूचना सुन कर कि भारतीय विश्व-कोष 'हिन्दी' में तैयार हो गया है, जहां प्रसन्नता हुई, वहां यह जानकर अत्यन्त परिताप भी हुआ कि यह महान् कार्य दिल्ली के जामिया मिल्लिया कॉलेज के द्वारा सम्पन्न करवाया गया है। जामिया मिल्लया एक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था हैं, उसके प्रमुख डॉ जाकीरहुसेन प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री भी है। गांधीजी की नई तालीम में उनका योग है परन्तु हिन्दी से उनका और उक्त संस्था का क्या सम्बन्ध हो सकता है? इसके सिवा विश्व कोष जैसी महत्वपूर्ण वस्तु की रचना के लिए उक्त संस्था कितनी अधिकारिणी है यह प्रश्न बहुत गंभीर बनजाता है। तीन लाख की लम्बी रकम देकर भारत के शिक्षा मंत्रालय ने गुप चुप यह सांठ-गांठ कैसे करली, और कब करली यह भी कानों कान किसी को खबर तक न लगी? विश्वकोष (इन्सायक्लोपीडिया) की रचना साधारण काम नहीं, उसके लिए इस देश के पुरातनतम इतिहास, साहित्य-संस्कृति ज्ञान-विज्ञान का व्यापक ज्ञान, परिवर्तन, संस्कार आदि की सूझ की आवश्यकता है। मराठी में ज्ञान कोष इसी प्रकार की एक विशाल रचना है, जिसे स्व० डॉ. केतकर ने अपनी समस्त शक्ति और साधना के साथ निष्ठा पूर्वक अनेक विषय के प्रवीण पण्डितों के सहयोग से २३ भागों में अनेक वर्षों में सम्पूर्ण किया था, हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा ने इस दिशा में यत्न किया था, पर वह पूर्ण नहीं हो पाया, अत्यन्त व्यय, श्रम, ज्ञान साधना के सिवा तज्ञों के सहयोग से यह सहज सम्भव भी नहीं हो सकता था किन्तु जिन्हें भारतीय भाषा, साहित्य-संस्कृति, इतिहास, ज्ञान-विज्ञान का ज्ञान नहीं उस संस्था के द्वारा न जाने कैसे, और न जाने कब यह शिक्षा मंत्रालय ने कोष तैयार करवा लिया, और छपकर प्रकाश पाने की प्रसूति पीड़ा पा रहा है। इसी तरह कुछ समय पूर्व समाज शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का निर्माण भी इसी संस्था के द्वारा शिक्षा विभाग ने करवाया है। शिक्षा विभाग की यह जामिया मिल्लिया से मिल्लत अत्यंत खतरनाक ही नहीं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भयंकर हानिकारक तथा असांस्कृतिक है। देश में नागरी प्रचारिणी, सम्मेलन, भाण्डारकर संशोधन संस्था आदि के रहते हुए उनकी उपेक्षा कर जामिया मिल्लिया से एक राष्ट्रीय-ज्ञान-कोष का निर्माण करवा लेना अत्यन्त आपत्तिजनक, है अपमान जनक भी है। हिन्दी भाषी जनता की अवहेलना कर देश की संस्कृति से अपरिचित संस्था के द्वारा इस कोष के निर्माण कार्य का सर्वत्र विरोध आवश्यक है, देश में अनेक अधिकारी विद्वानों के रहते हुए लाखों की लागत का यह बड़ा भारी सौदा गुप-चुप अवांछनीय जनों के द्वारा सम्पन्न करवा लेना भारतीय शिक्षा मंत्रालय का खुला षड्यंत्र है, जो अक्षम्य होना चाहिए। परन्तु जबतक मौलाना का मंत्रालय, सैयदैन, हुमायूं कबीर का कबीला ही उस पवित्र विभाग से मुक्त मार्ग का पथिक नहीं बनादिया जाता, ऐसे अनर्थ अनवरत होते रहेंगे। राज्य परिषद् में इस विभाग को लेकर जो मिट्टी पलीद हुई है, मौलाना की मति यदि कायम है तो उन्हें स्वयं सरलता से मुक्त हो जाना चाहिए, तभी देश का ज्ञान हित साध्य हो सकेगा। सरकार चाहे तो

उन्हें जीवन पर्यन्त सम्मान पूर्वक (सम्पन्नता के साथ) आराम के साधन समन्वितकर स्वतंत्र बनादे, पर शिक्षा विभाग से कलंक धुल जाना आवश्यक है।

'शासन की आवश्यकता' या-अभिशाप!

'शासन' एक स्वतंत्र विज्ञान है। नियम और व्यवस्था का उस पर आधार है। परन्तु जो शासन रुक्ष-'विज्ञान' रह कर मनोविज्ञान की उपेक्षा करता है, उसकी सफलता संदिग्ध बन जाती है, अनेक बार अनुभव किया जाता है कि शासन की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं, परन्तु उससे विपरीत जनता की आवश्यकता होती है, जो शासन अपनी आवश्यकता को महत्व देकर जनता की आवश्यकता को उपेक्षित कर देना चाहता है, वह कठिनाई को आमंत्रित कर लेता है। कभी विपरीत स्थिति भी होती है, किन्तु वह बहुत कम अवसर पर होती है। जो शासन जनता की आवश्यकता को नहीं समझता, उसके हित को दुर्लक्ष्य करता है, और अपनी आवश्यकता को ही जनता के सिर पर थोपना चाहता है वह आपत्ति आमंत्रित किए बिना नहीं रहता, विशेषतः जनतंत्र-शासन में तो जनता की आवश्यकता को ही प्राथमिकता दी जाती है। अधिनायक-तंत्रों की स्थिति भलें ही इससे भिन्न हो। भारतीय जनतंत्र-शासन अवश्य ही नवीन प्रयोग है, और अनेक राज्यों में अनुभव हीनों के हाथ शासन तंत्र आ गया है, फलतः शासन-विज्ञान की जैसी खराबी हो रही है, उसीका परिणाम शासन का शैथिल्य, जनता में अविश्वास, और असंतोष की भावना भयानक रूप लेती जारही है। जनता के प्रतिनिधित्व का दावा रखने वाला व्यक्ति ही जनता की आवश्यकता को न समझ कर स्वयं अपने हाथों जनहित का मर्दन करने लगजाता है। परिणाम यह होता है कि उसका जन-प्रतिनिधित्व बलि चढ़ जाता है, शासन परिवर्तन-चक्र पर चढ़ कर चक्कर खाने लगता है, अपनी स्थिरता बना ही नहीं पाता, दलबन्दी की दुनाली का शिकार बन 'अपनी-आवश्यकता' तक खो बैठता है। जिस शासन में लोक प्रियता और जन-संपर्क के नाम पर ऑफिस की उपेक्षा हो जाती है। सभा-सभारंभ, सत्कार, सम्मान-यात्राएं, उद्घाटन का ओघ आजाता है, वहां जनता की आवश्यकता की कौन कीमत करने लगेगा? भत्ते का भविष्य उज्वल बनाने के लिए भाग्य का सौदा होने लगता है! फाईलें फूल कर दफ्तर की दराज में दाखिल होती जाती हैं, और जनता का भावी अंधकार में निरंतर बढ़ता जाता है। शासक अपनी ही आवश्यकता में उलझता जाता है, जिस प्रकार 'असफलता' शासक को परिवर्तन के चक्कर पर चढ़ाए रखती है, उसी प्रकार शासक अन्य महत्व की बातों का विचार छोड़ अधिकारियों को अविचार पूर्वक इधर से उधर घुमाता रहता है, किसी अधिकारी को अपनी स्थिरता का आधार अनुभव नहीं हो पाता, ऐसी अवस्था में क्या वह जनहित साध्य करे या शासन कार्य ही। काश कोई अधिकारी कुछ समय कहीं रह गया, और वह स्थिति का ज्ञान करने की अवस्था में पहुंच सका तो ठीक उसी समय उस पर शासन की 'आवश्यकता' परिवर्तन के लिए बाध्य बनाने को प्रस्तुत हो जाती है। इसके विपरीत दल-हित, पार्टी प्रभाव, नेतृत्व का नजला भी अधिकारी को उलट-फेर करता रहता है। अनेक पार्टियां, अनेक कार्यकर्ता, सीधे शासन से सम्बन्धित रहते हैं, उनके 'मत' का महत्व मंत्री तक को मजबूर करता रहता है, वे प्रत्येक साधारण अधिकारी को प्रभावित या पीड़ित करने में प्रयत्न शील रहते हैं, ऐसी हालत में किसी एक पक्ष से भी तटस्थ रहना दूसरे पक्ष की नाराजी का शिकार बनना होता है, तब न्याय, निष्पक्षता, शासन, व्यवस्था की क्या दशा हो सकती है, कल्पना की जाना चाहिए। न जनता की आवश्यकता का ही महत्व रहता है न शासन की। जनता की स्थिति-मनोवृत्ति समझे बिना कार्य में समरस हुए बिना सफलता संभव नहीं; किन्तु जनता से सम्पर्क स्थापित करने-या विश्वास सम्पादित करने से पूर्व, या सम्पादित करने की स्थिति में आते ही परिवर्तन का चक्र सहज घुमाव डालदेता है, और इसे "शासकीय-आवश्यकता" से ज्ञापित किया जाता है। इसका कहां तक औचित्य है यह शासक ही जान सकते हैं। हम तो इसे शासन का अभिशाप ही समझते हैं जो शासन को जर्जरित कर रहा है। समस्त शासन इस दुरवस्था का शिकार हो शिथिलता से जर्जर बने तो कोई विस्मय का विषय नहीं यह अवस्था अनेक नव-निर्मित राज्यों की है, मध्य भारत तो इस विकार से ग्रस्त ही है।

"भारतीय आत्मा" की प्रेरणा—

"काव्य निश्चय ही सृष्टि का सृजनात्मक संगीत है, जिसमें मानवता के ओजस्वी स्वर ध्वनित होते हैं। परन्तु कविता को एकदम कल्पना-लोक की वस्तु भी नहीं होना चाहिए। वह भले ही आदर्श का स्तर रखे, किन्तु साथ ही धरती से सम्बन्ध बनाये रखे। प्रयोग-शीलता और प्रगतिशीलता के आज के युग में कविता कलात्मक होती जारही है, जब कि उसे विशुद्ध रूप से रागात्मक ही रहना चाहिए। वादों का विवाद राजनीति का विषय है, जहाँ बोल हृदय की आवाज नहीं होते किन्तु दिखावटी बन कर बकवास हो जाते हैं! भावोर्मियों के तटों के बीच बहने वाली काव्य-धारा अनुभूतियों का प्रवाह रखती है और उसकी समुज्ज्वलता में किरणों का वैभव कलात्मक चमत्कार की सृष्टि कर देता है। राजनीति यथार्थता से आरम्भ होती है और व्यवस्था तथा शासन-प्रणाली के तर्कों में समाप्त हो जाती है। जनतन्त्र भले ही राजनीतिक रूप से एक आदर्श हो परन्तु व्यक्तित्व का विकास तो चिरन्तन प्रतिभा से ही होता है। राजनेता और उनकी राजनीति निश्चय ही नश्वर है क्योंकि उसकी प्रेरणा युग-युगों तक मानव-हृदय को उच्छ्वसित करती है। इन्दौर में 'भारतीय आत्मा' (पं. माखनलाल चतुर्वेदी) ने तुलसी, सूर और मीराँ जैसे सन्त-कवियों की वाणी की महत्ता बताते हुए ठीक ही कहा है कि प्रेम का अशेष प्रवाह कवियों में होना चाहिए जो राजनीतिज्ञ में निःशेष होता जा रहा है। उन्होंने सलाह दी है कि अनेक रसों के साथ शृंगार पर भी कविता हो परन्तु वह ऐसी कि बेटियाँ और बहनें उन्हें साथ बैठकर सुन सकें। हाथ पर राखी बाँधकर ही कलम की नोक से शृँगार में भी आवश्यकतानुसार शुद्ध-सात्विक भावना लाई जा सकती है। साधक के रूप में कवि और बाधक के रूप में राजनेता आज समाज में अस्तित्व बनाये हुए है! पद-प्रभुता के समान कवि की श्रद्धा और उसका विश्वास सदा ही अडिग रहा है, वह न तो कभी सम्पत्तिवालों के सामने झुका है और न सत्तावालों के सम्मुख ही उसने हार मानी है। इन्द्रासन से जब बृहस्पति की मृगछाया सदा ऊँची रही है, जब आज भी कवि का आसन अनेक सिंहासनों कुर्सियों और गद्दियों से भी ऊँचा है और रहेगा। सरस्वती की कृपा के होते हुए कवि और कलाकार को लक्ष्मीपति के सामने हाथ पसारने की जरूरत भी नहीं है। प्रतिभा ने उसे अमरता का वरदान दिया है और उसकी प्रेरणा अपनी परम्परा से उसे दीर्घजीवी रखेगी।"

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

⁂

और २८ नवम्बर को उज्जैन में माधव महा विद्यालय में श्री चतुर्वेदी जी ने रस वर्षा करते हुए कहा था—

"नर्मदा की मंद मन्थर लहरियों को पारकर जब मैं विन्ध्या के प्रांगण में आ पहुँचता हूं तो स्वयं को भी इस भूमि के आंचल से बिंधा पाता हूं और मेरे हृदय की लहरियों पर विन्ध्या के एक-एक पत्थर से झांकने वाली महान् विभूतियों की ध्वनियाँ हृदय को झकझोर देती है। कालिदास, भर्तृहरी, भवभूति, तथा विक्रम पुनः कल्पनालोक में [illegible]रित होते हैं।"

आगे आपने कहा—"जीवन एक धनुष्य है, और साँसें उसकी प्रत्यंचा है। जब लक्ष्य का तीर साधकर उसे

पीछे की ओर खींचा जावे वह उतनी ही दूरी पर, और गहराई पर असर करता है। अर्थात् आगे असर गहरा करने वाली प्रगतिशीलता का अतीत के साथ जितना गहरा सम्बन्ध होगा, उतना ही भावी पर सीधा परिणाम होगा।"

श्री माखनलालजी ने अपने भाषण में कहा कि आप सब अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित करके चलिये, और अपना ध्येय आसमान की तरह विस्तृत और नक्षत्रों के समान चित्रित और अडिग होना चाहिये, जिस प्रकार दस कदम चलकर हम अपने मकान को छोड़ देते हैं, १०० कदम पर पास पड़ौसियों को, ५०० कदम पर मोहल्लों को, ५ मील पर शहर को, ५० मील पर जिले को, और इस प्रकार देश भी छूट जाता है, किन्तु; आकाश और नक्षत्र मालाएँ ही ऐसी हैं जिन्हें हर एक स्थानों पर एक नाम से पुकारा जाता है, और एक रूप में दर्शन भी होते हैं। लक्ष्य एक हो और स्थाई हो।

"यदि रजबअलीखां सा. और पं. औंकारनाथ ठाकुर एक स्थान पर एक स्वर में एक राग गायें तो कोई यह नहीं कह सकेगा कि यह हिन्दू और मुसलमानी राग हैं; क्योंकि वह गा रहा है। इसी कारण साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार, और अभिनेता का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि समाज से वह द्वैत को दूर करे, यह उत्तरदायित्व इन्हीं के सिर पर है।"

साहित्य की व्याख्या।

मराठी साहित्य सम्मेलन गवालियर में आचार्य अत्रे ने साहित्य की सरल व्याख्या करते हुए जो भाषण दिया उसका यह अंश मननीय है—

साहित्य की अत्यन्त सरल व्याख्या यह है कि 'अमर शब्द' ही साहित्य है। आज हजारों वर्ष से लोग गीता पढ़ते हैं क्योंकि उसमें अमर शब्दों का उल्लेख है, जो प्रत्येक समाज को हर काल में समान ही लागू होते हैं। साहित्य अमर वही हो सकता है, जैसा कि सन्त ज्ञानेश्वर ने कहा कि जिस साहित्य में रसोत्पत्ति होकर उसमें परमत्व का स्पर्श हो वही अमर साहित्य है। परमत्व का अर्थ आकाश में रहने वाला भगवान् नहीं है। 'सर्व भूतोति परमेश्वर' अर्थात् जहाँ-जहाँ चैतन्य है उसको ईश्वर का स्वरूप मान कर ही आत्मीयता से उसके कल्याण के लिये जो शब्द लिखे या कहे जावें वही साहित्य कहलायेगा और वह काल क्षय नहीं पावेंगे। सन्त ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास आदि का साहित्य जो हम सैकड़ों वर्षों से आज तक पढ़ते हैं उसका एकमात्र कारण है कि उसमें मानवता के हित के लिये आत्मीयता का दर्शन होता है। आपने कहा कि महाकवि कालिदास के शाकुन्तल को अमर साहित्य इसलिये मानते हैं कि उसमें पुरुष की गैर जिम्मेदारी वृत्ति और स्त्री की नैसर्गिक जिम्मेदारी इसका जो अनन्तकाल से संघर्ष रहा है उसका कलात्मक प्रतीक इसमें दिखाई देता है, स्त्री की कन्या, यौवना और माता इन तीन स्थितियों का जो काव्यमय वर्णन रस-परिपोष करके उसने किया है जिसको देश काल या जाति का बन्धन नहीं है, उसी कारण वह आज विश्व का अति उच्च कोटि का साहित्य माना जाता है। साहित्यिक कलाकृति उत्पन्न करने के लिए किसी तन्त्र की आवश्यकता है यह मैं स्वीकार करता हूँ; किन्तु तंत्र को बहुत ज्यादा महत्व दिया जा रहा है, यह गलत है, हड्डी मांस और चमड़े के शरीर को कितना ही सुशोभित क्यों न किया जाय यदि उसमें आत्मा नहीं है तो वह केवल जलाने के लायक ही रह जाता है, वैसा ही विचार शून्य साहित्य का है। साहित्य में मनुष्य मात्र की अमर भावना का सरस चित्र होना चाहिए और उसके साथ ही अच्छी भावनाओं का परिपोषण होकर बुरी या दुष्ट भावनाओं का नाश होना चाहिए।

साहित्य में यदि विचार न हों, और विचार में यदि मानवता का कल्याण करने की भावना न हों तो वह साहित्य नहीं हो सकता। हम मराठी भाषा के द्वारा भी मानवता की सेवा कर सकते हैं जैसा कि ईश्वर के अलग-अलग स्वरूप मानते हुए उस प्रतीक द्वारा ईश्वर की सेवा भक्त लोग करते हैं, उसमें अन्य भाषाओं का कोई आपसी झगड़ा नहीं होता, आपने कहा कि साहित्य महान् क्रांति कर सकता है सरकार केवल कानून बना कर शरीर पर अधिकार कर सकती है; किन्तु क्रांति का सम्बन्ध तो हृदय से ही होता है, इसी कारण कानून द्वारा ही क्रांति नहीं हो सकती, वह तो केवल साहित्य द्वारा ही हो सकती है, हृदय परिवर्तन करके क्रांति करने का महान् प्रयोग इस देश में महात्मा गांधी ने किया. और उसी कार्य को आज सन्तवर आचार्य विनोबा भावे इस देश में

कर रहे हैं, विनोबाजी जैसा महापुरुष सैकड़ों वर्षों में भी पैदा होने वाला नहीं हैं। हृदय जीत कर क्रांति करने के इस प्रयोग में साहित्यकार एक बहुत बड़ा हिस्सा अदा कर सकते हैं और अखिल मानव जाति में समता ला सकते हैं। अन्त में आचार्य अत्रे ने कालिदास की उस कविता की ओर संकेत किया जिसमें कहा है कि शरीर पर किसी शासक का नियंत्रण रहे; हमारे मन और बुद्धि पर केवल विद्वान् का ही नियन्त्रण रहना चाहिये।

शेक्सपीयर का रहस्य !

जिस प्रकार हमारे देश में महाकवि कालिदास के काल, और स्थल को लेकर अनेक भ्रम धारणाएँ फैली हुई हैं, विद्वानों में विवाद का एक विषय बन गया है, उसी प्रकार पश्चिम के कई कवियों, नाटककारों के विषय में विवाद प्रचलित हैं। अनेक देश उनको अपना बनाने-कहने के लिए यत्नशील है। परन्तु शेक्सपीयर के विषय में ऐसी कोई बात प्रकाश में नहीं आई थी, उसके काल-स्थल को लेकर विवाद नहीं रहा है। शेक्सपीयर की भूमि, उसके साहित्य-साधन आज स्थल विशेष पर सुरक्षित है। वहां सन्मान अर्पित किया जाता है। यात्रा लगी रहती है। किंतु हाल ही में हमने निम्न लिखित समाचार नई सनसनी फैलाता हुआ देखा, जो शेक्सपीयर को असली लेखक ही नहीं कहने देता, उसके नाम पर निकली हुई कृतियों का लेखक एक 'मारलोव' नामक व्यक्ति था। यह सनसनी खेज समाचार सत्य से कहां तक सम्बन्धित है, यह तो समय ही बतलावेगा, परन्तु इस समाचार ने शेक्सपीयर-समस्या को भी एक रहस्य अवश्य बना दिया है। —पाठक स्वयं विचार करें—

शेक्सपीयर की कृतियों का लेखक मारलोव !

लेखक, नाटककार, समालोचक और कवि श्री कालविन हौफमैन ने एक प्रेस सम्मेलन में कहा कि क्रिस्टोफर मारलोव ने वे सभी कृतियां लिखीं, जिन्हें लोग गत ३०० वर्षों से विलियम शेक्सपीयर की समझते हैं। उक्त व्यक्ति ने १७ वर्षों के अनुसंधान के पश्चात कहा कि इंग्लैंड के केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में एक चित्र प्राप्त हुआ है, जिससे विलियम शेक्सपीयर का सभी दावा झूठा होता है। आपने सन १५८५ ई. में चित्रित चित्र के फोटो बताये जो २१ वर्षीय अज्ञात बालक का है। सन १६२३ में शेक्सपीयर के ग्रंथों के साथ प्रकाशित चित्र प्रस्तुत करते हुए श्री हौफमैन ने कहा कि दोनों चित्र मारलोव के हैं। आपने कहा कि उक्त चित्र कॉलेज के कमरे को साफ करते समय मिले थे और वही मेरे अनुसंधान का आधार हैं।

श्री होफमैन ने कहा कि मारलोव को लोग सन १५९३ ई. में मारा गया समझते हैं किंतु वास्तव में वह १६१६ ई. और १६२३ ई. के बीच प्राकृतिक मृत्यु से मरा। मारलोव को नास्तिक समझकर उसे जलाकर मार डालने का आदेश दिया गया था, किंतु उनके मित्र सर थामस वाल्सिंगम ने उसे बचाने के लिए दूसरे मारलोव की हत्या करायी। मारलोव फ्रांस भाग गया और पांच वर्षों बाद पुनः सर थामस के यहां आ गया। मारलोव ने कितने ही साहित्य रचे और सर थामस ने उनका नाटक प्रदर्शित करने के लिए एक अभिनेता शेक्सपीयर से 'सौदा' किया। शेक्सपीयर ने विद्यालय में अल्प शिक्षा ग्रहण की थी। फिर भी उसने मारलोव की कृतियों का लेखक होना स्वीकार किया।

(यू प्रे. अ. तथा टाईम्स आफ इंडियां न्यूज सर्विस)

भारतीय प्रतिभा का तेजस्वी-तारक अस्त !

कानून और विधान-शास्त्र के मर्मज्ञ श्री० बेनिगाल नरसिंह राव के अवसान से भारतीय-प्रतिभा के क्षेत्र से एक दैदीप्यमान नक्षत्र का लोप हो गया है, स्व० राव विदेशी शासन काल में भी इस देश में एक अधिकारी रहे हैं; परन्तु देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् उनकी तेजस्विता ने प्रतिभा का प्रकाश विस्तृत कर दिया था, वे भारत के विधान निर्माण के पश्चात् संयुक्त-राष्ट्र-संघ में इस देश के प्रतिनिधि होकर गए थे, वहाँ उनकी सेवाएँ इस देश के लिए अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध हुईं, उनकी योग्यता की छाप अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में चमक उठी। वे संघ में जिस प्रकार इस देश का योग्यता पूर्ण प्रतीनिधित्व करते रहे उससे भारत का मान बढ़ा है, और उनकी कीर्ति में चार चांद लगे हैं। इसके पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय न्ययालय में उन्हें जज चुनकर उनकी योग्यता और प्रतिभा का विदेशों ने भी सम्मान किया है। स्व० राव के इस सम्मान से भारत की प्रतिभा का समादर हुआ है, और देश का गौरव बढ़ा है। ऐसे प्रचण्ड प्रतिभा

महान् क्षति उठाना पड़ी है। अन्तरराष्ट्रीय राजनीति का एक मर्मज्ञ-प्रवक्ता, न्यायाधीश एवं विधान-विशेषज्ञ ही उठ गया है, स्व० राव की इस देश को अभी बहुत आवश्यकता थी, यह देश के दुर्भाग्य की बात है कि राव जैसा प्रवीण-प्रामाणिक, और पटु-पुरुष उसके बीच से असमय उठ गया है।

स्व० सदानंद

फ्री-प्रेस के सम्पादक तेजस्वी पत्रकार श्री. सदानन्द का स्वर्गवास हो गया है। स्व० सदानन्द जीवन भर उग्र, और संघर्ष-रत रहे, उन्होंने जहाँ विदेशी शासकों से टक्कर ली, वहाँ म० गांधीजी से विवाद करने में भी संकोच नहीं किया। वे विचार के पक्के धुन के सच्चे, निर्भीक पत्रकार थे, कष्टों को झेलते हुए भी जीवन भर जनता के लिए अपने पत्र की स्पष्टता, निर्भयता को कायम रखा, सदानंद के उठ जाने से पत्रकार जग से एक स्वतंत्र, तेजस्वी, निर्भीक कलम के धनी का अभाव हो गया, हम श्री० राव और सदानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

स्वर्ग से भाषण !

आगरा में राज्यपाल श्री मुन्शी की श्रोतामण्डली खिलखिला कर हँस पड़ी, जब कि श्री मुन्शी ने कहा कि आप एक ऐसे व्यक्ति का भाषण सुन रहे हैं, जो स्वर्ग पहुँच चुका है।

श्री मुन्शी कुलपति के शिविर का उद्घाटन करते हुए उत्तर-प्रदेश के विभिन्न स्थानों और विशेषतः लखनऊ में हुए विद्यार्थियों के आन्दोलन की, जिसमें उनके पुतले की अर्थी निकाल कर उसका दाह किया गया था, चर्चा कर रहे थे।

उन्होंने कहा—"मैं स्वर्ग में हूँ और आपके सामने एक आध्यात्मिक जगत् से बोल रहा हूं, क्योंकि मेरे पुतले अनेक बार जलाये जा चुके हैं और मेरी भस्मी प्रयाग के पावन त्रिवेणी संगम में प्रवाहित की जा चुकी है।"

(हिन्दुस्तान)

शिक्षा-संस्था, या बेकारी के अनाथाश्रम !

हाल ही में पंचवर्षीय-योजना विभाग ने देश में फैली हुई बेकारी के लिए बड़ी चिन्ता व्यक्त की है, और उसके उपायों पर भी विचार किया है। सर्व प्रथम उनकी दृष्टि देश के बेकारों को काम दिलाने की ओर गई है, और उन्होंने ८० हजार नए शिक्षक रखने की व्यवस्था की है, यह इस समस्या को सुलझाने का कहाँ तक सही तरीका है। गंभीर विचार की अपेक्षा रखता है, योजना विभाग की दृष्टि में जो बेकार हैं, वे शिक्षक का काम कर सकते हैं, अर्थात् शिक्षा का क्षेत्र बेकारों की भर्ती करने का भटियारखाना है, अथवा शिक्षक का स्तर इतना नीचा सरकार समझती है कि उसमें बेकारों को सरलता से समाविष्ट किया जा सकता

श्रीमान् टंडनजी
आपकी अध्यक्षता में ग्वालियर में
हिन्दी साहित्य सभा की
स्वर्ण-जयन्ती हो
रही है।

है, एक बात और भी है, और वह यह प्रमाणित करती है कि आज की शिक्षा इतनी हीन हो गई है कि उन शिक्षा-क्षेत्रों से बेकार ही ढलकर निकलते हैं, यदि सरकार बेकारी हटाने के लिए ८० हजार बेकारों को शिक्षा क्षेत्र में प्रविष्ट करती है तो वह यह आज की शिक्षा को प्रमाण पत्र देती है कि वे बेकारी बढ़ाने के कारखाने हैं; परन्तु जो लोग बेकार हैं, जिनको शिक्षा क्षेत्र में लिया जा सकता है, वे अवश्य ही पढ़ेलिखे का प्रमाण-प्रत्र अवश्य लिए होंगे तो यह स्पष्ट है कि जिस शिक्षा ने उन्हें बेकारी का ज्ञान दान दिया, क्या वे शिक्षक बन कर लाखों लोगों को ऐसा ज्ञान दे सकेंगे जिनसे उनका भविष्य अंधःकार मय न बन जावेगा? अथवा सरकार यह समझती है कि शिक्षा का क्षेत्र बेकारों का सदाव्रत है? क्या उन लोगों से देश के ज्ञान में वृद्धि होगी, स्तर बढ़ेगा? और बेकारी के हल का सरकार यह सही तरीका समझ कर अपनाती है तो हजारों लाखों शिक्षा संस्थाएँ प्रति वर्ष जिन लाखों लोगों को बेकारी की ट्रेनिंग देकर ढालती जाती है उनके प्रवाह को निरंतर रोक सकेगी? और बेकारी निवारण कर सकेगी? वस्तुतः जो शिक्षा बेकारों की जननी बन कर राष्ट्र का रोग बन गई उसका हटाना, सुधारना तो दूर रहा उसमें बेकारों को अवसर देना तो उस रोग को बुरी तरह फैलाना होगा। बेकारों को अध्यापक बना कर उस अध्यापक के आदर्श का भी अपमान करना है, और उसके स्तर को भी गिरा देना है। आमतौर पर जन धारणा ही यह हो गई है कि जो व्यक्ति किसी अन्य कार्य के योग्य नहीं होता, उसका स्थान शिक्षा शाला में रहता है, शिक्षा के इस मूल्य को कभी सरकार ने कसौटी पर कसा है? यों तो प्रति वर्ष ८० हजार अध्यापक-बेकारों की परम्परा उसे निरन्तर मिलती ही जाएगी, और बेकारी की बाढ़ कभी कम होती हुई दिखाई न देगी। और एक समय ऐसा आएगा जब देश की समस्त शालाएँ बेकारों के अनाथाश्रम ही बने मिलेंगे। शिक्षा की इस दुरवस्था का इस प्रवृत्ति से तो कभी अन्त नहीं लाया जा सकता। न शिक्षा, और शिक्षक की हीनता का ही अन्त हो सकता है। सरकार द्वारा सोचा गया बेकारी-निवारण का यह उपाय शिक्षा के उच्चादर्श का हीनतम अपमान है। देश की बेकारी बढ़ाने वाली इस शिक्षा का बजाय विस्तार के अंत करदेना अधिक आवश्यक है। जिस शिक्षा के क्षेत्र में आदर्श, विवेकवान्, संस्कारशील, विचार-विनय-सम्पन्न उच्च कल्पना के धनी ज्ञान-वैभव संपन्न, सुयोग्य, सुनिर्वाचित जनों को अवसर देकर देश के ज्ञान वैभव को सुसमृद्ध, और विकसित करना है, जिससे राष्ट्र की ज्ञानकर्म शक्ति विकसित हो, समुन्नत हो, निष्क्रियता नष्ट कर सके आदर्श की ओर प्रेरित कर सके, उस शिक्षा के भवन में बेकारी को प्रश्रय मिले, उस शिक्षा के आदर्श का भावी निःसन्देह अंधःकार मय है, देशका ज्ञान तिमिराच्छन्न ही दिखाई देता है।

श्रीमंत राजप्रमुख, मध्य-भारत, ग्वालियर में आपने हिन्दी साहित्य सभा की स्वर्ण जयंती अधिवेशन का उद्घाटन किया।

स्वाधीनता सत्र की प्रथम शताब्दि ।

सन् १८५७ का मई मास भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा, उसके महत्व से आज समस्त देशवासी परिचित हैं। उस दिन इस देश में विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह का सूत्रपात हुआ था। स्वाधीनता की भावना की दीप-शिखा प्रज्वलित हुई थी। इस घटना को आगामी १९५७ के मई मास में पूरे एक सौ वर्ष व्यतीत हो जाएँगे। हमारे लिए यह पवित्र और स्मरणीय इतिहास दिवस होगा। हम समस्त देशवासियों का यह मुख्य पर्व होगा। इस शताब्दि को सार्वदेशिक और सामूहिक रूप से समस्त उत्साह के साथ मनाया जाना चाहिए। संयोग वशात् ठीक १९५७ के उसी मई मास में उज्जैन में सिंहस्थ का महा-पर्व भी आ रहा है। देश भर के लाखों लोग अवंती नगरी में जुड़ेंगे। मानव का महामेला ही होगा। हम मध्य-भारतीयों को इस अवसर का लाभ लेकर उस स्वाधीनता यज्ञ के आरम्भ की शताब्दि का अपूर्व सप्ताह-समारंभ आयोजित करना चाहिए। राष्ट्र की विशिष्ट विभूतियों को इस पर्व पर आमंत्रित कर शताब्दि-उत्सव को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पर्व के रूप में संयोजित कर देना चाहिए। स्वाभाविक रूप में हमें यह सुयोग उपलब्ध हो रहा है। अभी दो वर्ष की देरी है अभी से हम व्यापक एवं सर्वांग सुन्दर योजना बनालें। सभी सार्वजनिक सभा संस्थाएं इस अवसर के लिए संगठित सामूहिक रूप में कार्यक्रम का निर्माण करें और भारतीय गणतंत्र की जननी मालवगणों की वीर-भूमि इस अवन्ती में सिंहस्थ के महा-मानव पर्व पर स्वतन्त्रता-शताब्दि-समारोह का सोत्साह आयोजन करेंगे। आशा है अवन्ती का यह सिंहस्थ-पर्व राष्ट्रीयता, सांस्कृतिकता और आध्यात्मिकता का त्रिवेणी-संगम बन जायेगा। ज्ञान-विज्ञान के इस महत्वपूर्ण पावन-प्रसंग पर हम राष्ट्र-ज्योति का आलोक प्रसारित करने में [illegible] सयत्न बन जायेंगे और सार्वदेशिक आयोजन द्वारा समस्त राष्ट्र का अवंती को आकर्षण-केन्द्र बना देंगे।

जय जनवरी !

जनवरी से नवीन वर्ष आरम्भ हो रहा है और इस वर्ष का सर्वत्र स्वागत हो रहा है। यह 'ईसा' का वर्ष है, ईसाईयों का त्यौहार है। हमारा इससे कोई सम्बन्ध नहीं, हमारी संस्कृति से इसका कोई सरोकार नहीं, पर दो सदियों से यह हमारे सिर पर सवार है। हमारी स्वतंत्र सत्ता भी इसमें सिमटी हुई है। मानसिक पराधीनता इसे पकड़े हुए है। गुलामी की यह 'धरोहर' हमारा आज भी 'उत्सवदिन' बना हुआ है। हमारे अपने 'संवत्' का मूल्य इतिहास के आलेखन का विषय रह गया है, संवत्सर-प्रतिपदा चाहे हमारे राष्ट्र की परम्परा को ही वहन किये चली आरही हो, पर प्रगतिशील प्राणियों के लिए यह पुरातनवाद की प्रतीक मात्र है। ईसा के वैज्ञानिक-युग में विक्रम के विधान का और भारतीय तत्व ज्ञान का क्या मूल्य हो सकता है? यद्यपि संवत्सर प्रतिपदा के वर्षारंभ के साक्षी आकाश के तारे रहते हैं। उसकी प्रत्यक्ष वैज्ञानिकता प्रमाणित करने के लिए खगोल प्रस्तुत है। जब कि जनवरी का कोई लेखा-जोखा हमें कहीं नहीं जुड़ाता, पर जहां अपनों की उपेक्षा ही अपने पन की उन्नति का आधार बनता हो वहां तर्क और विज्ञान परम्परा की पुरानी-पेढ़ी पर प्रतिक्रिया की पूंजी में परिगणित होकर बट्टे के खाते में खो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ईसा भारत के शिष्य थे, तो अवश्य ही गुरु के गौरव गिरि पर चढ़कर आने वाले इस शिष्य के 'सन्' का सत्कार होना चाहिए! आइए, ईसा से 'खीसा' प्राप्त कर हमारे देश में पधारने वाली नई जनवरी, तुम्हारा स्वागत है। भाषण-भ्रष्टाचार का प्रचार संचार करती हुई नई मंहगाई, बेकारी और योजनाओं की योजना बढ़ाती हुई आओ, नये आचार विचार संचार-प्रचार की पूंजी पर पनपती हुई अपना नवीन पद-विन्यास करती हुई पधारो! प्रगतिशीलों के प्रयोगवादियों के लिए अपने पल्ले में नई प्रेरणा बांधती लाना, अपने मायके से पूंजी के साथ ही वे सड़े-गले संस्कार भी समेटती ही लाना जो यहां की योजना में योजित हो जमीन की उपज बढ़ाने के साथ उपयोगी बन सके। और उनसे पोषित हो यहां के प्राणी तुम्हारा सतत् स्वागत करने को समुत्सुक बने रहे। पर अन्न की उपज के

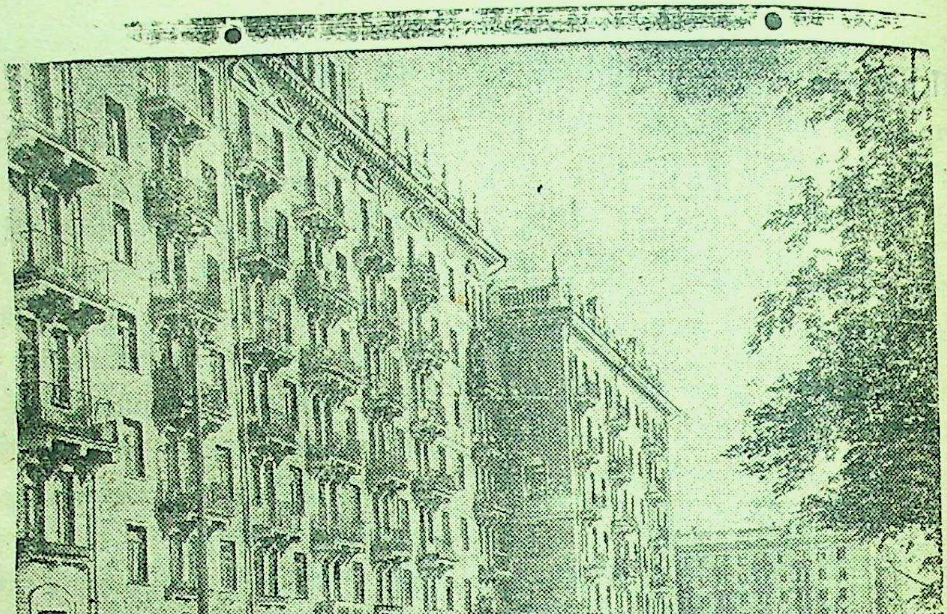

मास्को की नोवो-पेश्चान्या स्ट्रीट में नवनिर्मित भव्य अट्टालिकाओं का एक दृष्य—

साथ आबादी की उन्नति के खयाल को भुला न देना, यहां परिवार नियोजन के तुम्हारे उपासकों द्वारा आविष्कृत अनेक कृत्रिम-उपायों उपचारों का भी प्रचार पनपाना है। पुराने वर्ष के कोरिया-काण्ड की पुनरावृत्ति का प्रारम्भ तो तुम्हारे नए चरण-विन्यास के पूर्व ही पाकिस्तान में हो रहा है। उस प्रवृत्ति के पोषण से तुम भला, कैसे पराङ्मुख रह सकती हो? 'एटम की एनर्जी' को भी तो तुम्हें सर्जीह देना होगी। मास्को में बेरिया की बलि लेकर तुम नए साल का स्वागत लेने आई हो। कोरिया के काले कार्यों का दाग तो तुम्हारे दामन से क्यों छूटने लगा? तुम दग्ध-कालिमामय करों से नया स्वागत-सम्मान लेने आ पहुँची हो अवश्य ही देश के दो टुकड़े बना देने वाले-पंजाब-बंगाल के हत्याकांड से सने हाथों से पाक-प्रदेश नई सहायता पा
तुम्हारा सहर्ष स्वागत करेगा। नये जोश-खरोश, उल्ला
उमंग से तुम वहां नव-नर्तन करना। तुम्हारे स्वागत है
निक्सन के सामने कई बेगम-बीबियों को पर्दे से पल्ला छु
वाकर पहले ही नचवाया जा चुका है; भले ही मुल्ला-मौलवी
चीखते चिल्लाते रहें। अब-बम, गन, प्लेन का प्रसाद प्रस
रित करती हुई पाक-भूमि पर प्रमुदित आओ!

तुम्हारे पिछले साल के अंचल में ब्रिटेन ने कई परि
वर्तनों को समेटा है, शासन में अनेक संशोधन हुए हैं
अवश्य ही ब्रिटेन की धूर्तता ने क्रांति नहीं होने दी, अप
टूटी ताकत को जोड़-तोड़ से जुड़ाए रखा है, इसी
स्टालिनवाद को तुमने रूस में समाप्त किया है। मिस्र

शाह को सड़क पर सरपट करते भटकता बनाया है, और डॉ. मुसद्दिक को मंत्री से मौत के बीच झुलाया है, और काल कोठरी के हवाले कर दिया है। उधर ज. नजीब भी सर्वोपरि नेता के आसन पर आसीन हो गया, ख्वाजा नाजिमुद्दीन पाक प्रधान से पटक दिये गए, और मुहम्मद अली को मलिक-ए-अ ज़म बना दिया। जर्मन और जापान के आन्तरिक-कलहों की कालिमा तुम्हारे अतीत के दामन पर दाग की तरह लगी हुई है। आइजनहॉवर, और मेकार्थी ने अमेरिका की मिट्टी पलीद कर डाली है, इस तरह तुम्हारा पिछला साल संसार की अशांति के इतिहास का एक पृष्ठ ही तो हो गया है, इस पर भी अफ्रिका की जाति भेद नीति को नग्न रूप में नया रंग देती हुई, ब्रि०गायना से जगन को ठुकराती हुई, जो ा केन्याता को काल की चक्की में कुचलती हुई तुम नई दिशा में नए कदम बढ़ाती हुई चली आ रही हो, हे! नई सभ्यता और संस्कार की स्वामिनी! तुम्हारा स्वागत ही किया जाएगा। पोप की प्रेरणा को पल्ले में बाँधकर तुम अपने पथ से चलती रहो। इस पुराने-पवित्र देश में भी 'केक' काटकर अपने संस्कार, और 'संवत्' की समाधि पर तुम्हारे नए 'सन्' का स्वागत करने के लिए नव-समाज-सत्ता सन्नद्ध है। यद्यपि तुम्हारा जन्म परदेश में आज से १९५४ साल पहिले हुआ है, और इस देश का संवत् तुमसे बड़ी उम्र रखता है, उसे विक्रम के नाम के साथ जुड़े २०१० साल बीत चुके हैं, पर तुम सत्ता पर सवार होकर यहाँ आई हो, चाहे वह सत्ता समाप्त हो गई, पर तुम्हारी सत्ता हमारी संस्कृति पर बराबर सवार है। तुम्हारे आगमन पर अब भी लोग अभिनन्दन के लिये आतुर हो उठते हैं। नाच-गाकर तुम्हारा स्वागत करते हैं, तुम धन्य हो!

जय जनवरी!!

बिहार का मूल्यवान् प्रकाशन!

बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् पटना के द्वारा प्रकाशित अभिनव पुस्तकों का संग्रह हाल ही में हमारे पास आया है। पुस्तकों में डॉ. वासुदेव जी का 'हर्ष-चरित', डॉ. मोतीचंद्रजी का सार्थवाह, श्री० सांवलिया बिहारी का 'विश्व धर्म दर्शन', स्व. म. महो. रामावतार पांडेय का 'यूरोपीय दर्शन', और डॉ. हजारीप्रसादजी का 'हिन्दी-साहित्य है'। दीर्घकाल से किसी एक प्रकाशन संस्था से ऐसे मौलिक-महत्वपूर्ण, और सुन्दर ग्रन्थों को प्रकाशित होते हुए हमने नहीं देखा। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने, सर्वथा मौलिक और महत्वपूर्ण साहित्य का एक साथ प्रकाशन कर राष्ट्र-भाषा के भाण्डार की मूल्यवान् वृद्धि की है। भारतीय सांस्कृतिक-साहित्य में उत्कृष्ट-ग्रन्थों का अभाव अबतक भी खटकता है। उक्त परिषद् का यह प्रकाशन उस दिशा में ठोस प्रगति का सूचक है। डॉ. वासुदेव शरण जी ने अपने 'हर्ष चरित' में बाणकाल की सातवीं-शति का जैसा मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया है' वह अद्भुत अभूतपूर्व, और हिन्दी ही नहीं, भारत की किसी भी भाषा के लिए सर्वथा मौलिक-दृष्टिकोण प्रदान करने वाला है, यदि इसी दृष्टिकोण से भारतीय पुरातन साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जावे तो साहित्य में नवीन-क्रांति ही होगी। यह पुस्तक प्रत्येक साहित्यिक सांस्कृतिक व्यक्ति के लिए अवश्य पठनीय है। हमारा विश्वास है संस्कृत, और हिन्दी के जानकार इस हर्ष चरित को पढ़कर मुग्ध बने बिना नहीं रहेंगे। उनके ज्ञान का विकास होगा इसी प्रकार डॉ. मोतीचन्दजी का 'सार्थवाह' भारत के पुरातन-तम काल से लेकर देश के गमनागमन, यातायात, जल-स्थल-प्रवास, और परिस्थिति का जो चित्र प्रस्तुत करता है, वह अपनी दिशा में सर्वथा मौलिक प्रयास ही है। ग्रन्थ बड़े अध्ययन श्रम, और साधना से प्रस्तुत है। हमारे देश की पुराकाल सम्बन्धी अनेक स्थिति परम्परा-व्यवस्था, और विकास-क्रम का इससे पता चलता है। पुस्तक की अध्ययनपूर्ण भूमिका डॉ. वासुदेव शरण जी ने लिखी है, जो अपने में स्वतन्त्र मौलिकता रखने वाली है।

'विश्व धर्म दर्शन' श्री० सांवलिया बिहारी जी की बड़ी सुन्दर, तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित करने वाली, दर्शनेतिहास सम्बन्धी महत्वपूर्ण रचना है। यह बृहत् पुस्तक अपने प्रकार की हिन्दी में नवीन है, और वास्तव में मूल्यवान् है। मराठी में म० म० काणे जी ने अवश्य इस दिशा में दीर्घकालीन श्रम-साधना द्वारा अद्भुत साहित्य प्रणयन किया है। परन्तु हिन्दी में ऐसी साधना सांवलिया बिहारी जी को छोड़ किसी ने इस विस्तार के साथ नहीं की है। स्वनामधन्य स्व० पांडेय रामावतारजी का यूरोपीय दर्शन उनके काल तक की दृष्टि से अपने आपमें एक विशिष्ट मौलिक प्रयास रहा है। और उसी दृष्टि से उसका महत्व आज भी अक्षुण्ण है, उसे प्रकाशित कर परिषद् ने वास्तव में प्रशंसनीयकार्य किया है। डॉ० हजारी प्रसाद जी का "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" भी ऐसी ही मौलिक रचना है जो हिन्दी के अनेक भेदों और रहस्यों पर दृष्टिविशेष से मौलिक-प्रकाश डालती है। डॉ. द्विवेदी जी विद्वान् ही नहीं मौलिक-चिंतक भी हैं। उनका व्यापक ज्ञान इन पांच भाषणों में निर्झर की तरह प्रवाहित हुआ है। और जिस प्रकार वह अपनी मौलिकता लिए हुए है, हिन्दी-साहित्य में अपना स्वतन्त्र विचार और प्रेरणा देने वाला सिद्ध होगा।

नि:सन्देह बिहार रा० भा० परिषद् ने एक से एक बढ़कर महत्त्वपूर्ण साहित्य भेंट कर साहित्य-श्री की वृद्धि की है। सर्वत्र ससम्मान इनका स्वागत होगा।

(हर्ष चरित–मू० ६।), सार्थवाह– मू०११) सजिल्द, विश्व धर्म दर्शन–मू०१३) सजिल्द, यूरोपीय दर्शन ३।) सजिल्द, हिन्दी साहित्य का आदिकाल–३।) रुपये।

प्रकृति का मज़ाक !

आदमी का मजाक महज मनोरंजन तक रह जाता है। पर जब प्रकृति मज़ाक पर उतारू हो जाती है तब आदमी पनाह मांग जाता है। पानी की बाढ़ आने पर प्रलय कह कर, भूकम्प के समय थोडे से जमीन के रोमांच हो जाने पर प्राणी मात्र प्रकम्पित हो जाते हैं। त्राहि-त्राहि मच जाती है। जब जरा अन्न की उपज में कमी हो जाती है। अनेकों को उपवास का आधार लेना पड़ता है। शासन परेशान हो उठता है विद्रोह का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। पर अन्न की समस्या से सावधानी कर आदमी आत्म समाधान मानने लगता है तब आदमी की उपज बढ़ाने का मजाक प्रकृति करने लगती है। वह संतति निग्रह, परिवार नियोजन के उपाय सोचता है। तब ढेर के ढेर संतान बढ़ा कर उसके समक्ष एक समस्या उत्पन्न कर दी जाती है। यह प्रकृति का मजाक नहीं तो क्या है? कभी एक की जगह दो और उससे अधिक बच्चे उत्पन्न होने लगते हैं। स्वभाविकता के विरुद्ध आदमी के घर बंदर, सांप, द्विमुख, बहुबाहु, विकृत शरीर दन्त सहित, ढोर जानवर, तक पैदा होने लगते हैं। शरीर विकृति के तो अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं। आदमी के साथ ही नहीं, गरीब जानवरों के साथ भी प्रकृति मज़ाक से नहीं चूकती, हमने नहीं देखा है, किन्तु देखने वालों से सुना है कि उज्जैन में एक गाय सौराष्ट्र से आई है, वह कभी प्रसूति हुई ही नहीं, किन्तु निरन्तर वह पयस्विनी बनी हुई है। जब कि अनेक बालकों की जननी को बूंद भी दूध नहीं आ पाता। उन्हें तो शायद इस दूध की जरूरत भी नहीं जो आया, या-धाय पर अपनी धरोहर सौंप कर सोश्यल वर्क में संलग्न रहती है। काश प्रकृति इन सुन्दरियों से ऐसा मज़ाक भी करे तो हर्ज नहीं होता। पर जिन्हें बाहरी दूध नसीब नहीं। उनका दूध खींचकर प्रकृति क्रूर-मज़ाक ही कर देती है। आदमी और जानवर की तरह पेड़ पौधों से भी उसका मज़ाक होता है। आदमी कुछ पेड़ों को कलम लगा कर फल-फूल का मजा लेना चाहते हैं, पर प्रकृति रंग-रूप स्वाद में भी मनमाना फेरफार करती रहती है। बढ़िया फलों में कीड़े किलबिला देती है। जड़ों में जोड़ों में नए जोड़ जुड़ा देती है। अधिक धान्य उत्पन्न करने के आंदोलन ने जोर पकड़ा तो प्रकृति ने अनेक प्रान्तों में अकाल फैलाना शुरू किया। नदियों ने बाढ़ से खेत-खलिहान ही नहीं गांव के गांव बहा दिए। आंधी और तूफानों ने त्रास फैला दिया, संतति नियमन के आंदोलन को जनजन्म की बाढ़ ने फेल करना आरम्भ कर दिया। वेश्यावृत्ति उठाने का प्रयास शुरू हुआ तो दिखाई दिया कि अनेक प्रदेशों में पुरुषों से स्त्रियों की संख्या आधी भी नहीं रही है 'निरक्षरता दूर की जाने लगी, शिक्षा का विस्तार होने लगा तो बेकारी का राक्षस मुंह बाए खड़ा हो रहा है। लोगों को रहने के लिये सरकार मकान बढ़ाने लगी तो शरणार्थी की समस्या ने घर बार रखने वालों की मुसीबत खड़ी करदी। देश स्वतंत्र हुआ, व्यापार-उद्योग बढ़ाने की सुविधा प्राप्त हुई तो पैसा पनाह मांग गया, धन का धैर्य टूट गया, अविश्वास, असन्तोष का वातावरण बढ़ गया। जब इमानदारी की जरूरत पड़ी तो समाज में सरकार में ईमानदारी खोजने के लिए शायद रिचर्स-विभाग खोलने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाए। नैतिकता नाम की वस्तु भूले-भटके अखबारों में दिखाई भले ही दे जावे, 'सत्य' अनुसंधान का सबजेक्ट बनने जा रहा है, स्वतंत्र देश में जिन बातों की खास जरूरत होती है, वह मानो यहां से अंग्रेजों के साथ पश्चिम में चली गई। हमारे एक मित्र ने मजाक में बतलाया है——अंग्रेज गए उनके साथ ईमान, इंसाफ और इज्जत सीधी विदा हो गई और वे जो यहां छोड़ गए उनमें–झोली-झंडा और झाड़ू खास थे। जिस पंच-सूत्री प्रोग्राम को हमारे सिर पर उन्होंने उदारता से छोड़ा—वे है-भ्रमण, भाषण, भत्ता, भोजन और भ्रष्टाचार!

प्रचार की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि वास्तविकता उसकी आंधी में कहीं भी पैर जमा हीं नहीं पाती। यह सब प्रकृति का भी मज़ाक नहीं तो क्या है? विज्ञान प्रकृति पर विजय पाने प्रयत्न शील है, पर उसके मजाक के आगे मस्तक टेक देने को मजबूर है।

विश्ववन्द्य कवि कालिदास !

[लेखक—श्री सूर्यनारायण व्यास]

भारतीयप्रतिभा के ज्योतिर्मय-नक्षत्र महाकवि—कालिदास ने अपनी प्रज्वलित प्रज्ञा के प्रकाश द्वारा न केवल इस भूतल को किन्तु समस्त-विश्व को आलोक पुलकाकुल बना दिया है। जगत् के समस्त सरस्वती-पुत्रों ने उसकी महत्ता के के मान में अपना गौरवोन्नत मस्तक सादर नत कर दिया है।

कालिदास महाकवि थे। दुनिया के विभिन्न-भागों में और भी अनेक महाकवि हुए हैं। व्यास और वाल्मीकि भी कवि रहे हैं, लाखों कविताएँ उन्होंने निर्मित की हैं। 'आदि-कवि' का सन्मान भी उनको अर्पित हुआ है। विदेशों की उर्वरा भूमि ने भी विश्व-विदित' कवि-कोविदों को उत्पन्न किया है, किन्तु जो विश्व व्यापकता, विश्व-प्रियता और सार्वजनीन-सन्मान कालिदास ने प्राप्त किया है, वह सौभाग्य इस अवधि तक किसी ने प्राप्त नहीं किया। पर्वत और परमाणु में पदार्थ की एकता रहते हुए जो महदन्तर विद्यमान है, वही कालिदास में और इतर कवियों में है। कालिदास के एक 'मेघदूत' ने उसे जो स्थान दिया है, आज तक वह किसी सार्थवादी कवि के अनुसार—

'कनिष्ठिका सार्थवती बभूव' बना हुआ है।

कवि का 'मेघदूत' यदि केवल विरह-काव्य ही होता तो अनेक काव्य उसकी तुलना के लिए तत्पर बन जाते। किन्तु मेघदूत एक वैज्ञानिक-सत्य सृष्टि है। मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष उदाहरण है, भूगोल और इतिवृत्त, प्रकृति और मानव का प्रत्यक्ष और सत्य चित्र प्रस्तुत करनेवाला असाधारण काव्य है। यही कारण है कि उसके समकक्ष आज तक कोई काव्य नहीं ठहर सका। भगवद् गीता की तरह दुनिया की सभी भाषाओं में उसके अनुवाद और अनुकरण भी हुए, पर वह अपने स्थान पर-यथापूर्व खड़ा है, और महाकवि की अप्रतिम प्रज्ञा के समक्ष नत-शिरस्क बना देता है। इससे अधिक उसकी लोक-प्रियता का और अधिक क्या प्रमाण चाहिए? रघुवंश और कुमार संभव तो कवि-कीर्ति के कलश बने ही हुए हैं।

शाकुंतल का अमर कलाकार !

किन्तु शाकुन्तल का अमर कलाकार कालिदास केवल महाकवि ही नहीं, महान् नाटककार भी है, उनकी एकमात्र कमनीय कृति 'शाकुन्तल' ने उन्हें विश्व-विजेता बना दिया है। शकुन्तला को पाकर जर्मन कवि गेटे जैसी पश्चिम की विभूति आनन्दोर्मिमाला में नर्तन कर उठी है। शकुन्तला ने पश्चिम प्रदेश में भारत के विषय में विस्तृत गहनतम अन्धकार को चीरकर उज्वल प्रकाश प्रसारित कर दिया है। जिस समय दासत्व की शृंखला में आबद्ध भारतीयों की 'कीलित-जिह्वा' अपने अस्तित्व-मात्र के प्रदर्शन में भी बन्धनानुभव कर रही थी। उस कठिन काल में महाकवि की महामूल्यमयी-कृति शकुन्तला ने एक पाश्चिमात्य न्यायाधीश के हृदय में अनुराग की अग्नि-शिखा प्रज्वलित की और उसकी लपटों ने अनन्त-आकाश तक उठकर वहाँ विस्तृत अज्ञानांधः पटल को प्रकाश से पाट दिया, और भारतीय प्रज्ञा के प्रति प्रणमित होने को प्रेरित किया। जो कार्य प्रचुर पूंजी और प्रचार परम्परा से भी कठिन होता वह एक मात्र नाटक शकुन्तला ने दूषित वातावरण में विद्युत् प्रकाश रेखा की तरह सहस्त्रों सद्भाव जागृत कर सम्पन्न कर दिया!

राष्ट्र का आराध्य।

महाकवि कालिदास सरस्वती का श्री शृंगार ही नहीं। राष्ट्र का चेतना प्रेरक पुरुष भी है। विदलित देश का उद्धारक भी है। जीवित रहकर उसकी लेखनी ने जिस अमर-साहित्य की सृष्टि की है, उसके दिवंगत हो जाने पर भी उसकी अमर शब्द-सृष्टि ने हम समस्त भारतीयों का मस्तक गौरव से उन्नत किया है। आज हम महाकवि की पूंजी पर कुबेर का अक्षय भंडार लिए हुए हैं। किन्तु वह पूंजी भौतिक नहीं है, जिस का कोई व्यक्ति-नगर देश या राष्ट्र ही उत्तराधिकारी बन सके। इस ज्ञान वैभव की यही विशेषता है कि सभी उसका निर्बाध उपयोग कर अपने को समृद्ध-सम्पन्न समझते हैं। यही कारण है कि कालिदास जितना हमारा है, उतना ही विश्व का है, सभी उसकी साहित्य श्री से समृद्ध-समलंकृत हैं।

भारतीय ज्योतिर्मय ज्ञानदीप !

किन्तु उसके जन्म देने का सौभाग्य इस महान् सांस्कृतिक देश को ही है। इसलिए हमारा गर्व करना स्वाभाविक है। मध्य-भारत की वह अमर विभूति है। राष्ट्र की ज्ञान राशि का उन्नत नगाधिराज है। सरस्वती का सुन्दर शृंगार है। प्रतिभा की पावन प्रतिमा है। सर्वकालीन जीवित

साहित्य की अक्षय निधि है ! और वह अनंतकाल तक प्रदीप्त और ज्योतिर्मय बना रहनेवाला ज्ञान-दीप है, जिसका प्रकाश सदैव निर्मल आलोक प्रसार करता रहता है। आधुनिक युग के महाकवि श्री रवीन्द्र के शब्दों में—

"उत्सव के दिनों में मिट्टी की जो दीपमाला रची जाती है, उसे कोई दूसरे दिन के लिए नहीं उठा रखता। भारतवर्ष में उत्सव के दिनों में ऐसे ही अनेक मिट्टी के प्रदीप क्षणिक-साहित्य, रात्रि काल ही में अपने जीवन की शोभा दिखलाकर प्रातःकाल अनन्त विस्मृतिगर्भ में तिरोहित हो जाते हैं। किन्तु धातु का जो पहला प्रज्वलित दीप देखा गया वह महाकवि कालिदास का है। वह पैतृक-प्रदीप आज भी हमारे घरों में अपना प्रकाश फैला रहा है। पहिले वह हमारे उज्जयिनीवासी पितामह के प्रासाद-शिखरों पर प्रज्वलित हुआ था। वह आज भी ज्यों का त्यों है, उसमें कभी कोई कलंक-कालिमा नहीं लगती।"

विक्रम और कालिदास इतिहास की एक रहस्यमयी ग्रंथि--

यह विस्मय की बात है कि विश्व का आराध्य-कवि कालिदास अपने विषय में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं करता। कवि-जन्म, जन्मस्थान और रचनाकाल के विषय में इतिहास और कालिदास-साहित्य के अनुशीलन कर्त्ताओं में बड़ा मतभेद बना हुआ है, विक्रम और कालिदास इतिहास की उलझी हुई पहेली ही बने हुए हैं, अब तक अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने अनेक प्रयत्न किए हैं, परन्तु किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचा जा सका है। कालिदास के काव्य और नाटकों के वाक्यों को लेकर अनुमानों के उत्तुंग शैल-शिखर पर आरोहण करने के प्रयास भी हुए हैं। पर वे केवल उपहासास्पद ही सिद्ध हुए हैं, कुछ विद्वानों ने कवि प्रयुक्त 'गुप्त' शब्द को लेकर चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, और कुमारगुप्त तक खींच लाने का आयास किया है, कुछ ने 'विक्रम' शब्द मात्र को सुलभ पाकर विक्रमोर्वशीय की संगति लगा प्रथम शती के पूर्व-कालीन विक्रमादित्य से लेकर दशपुर के यशोधर्मन और हर्षवर्धन तक उसे जुड़ा दिया है। किन्तु किसी स्पष्ट-तथ्यवादी कवि के काव्य से कुछ शब्दों को लेकर उन्हें 'श्लिष्ट' समझ, व्यक्ति या विशेषता बोधक कल्पित करना और उन पर से अनुमानों का आधार प्राप्त करना कहाँ तक उचित एवं युक्ति युक्त हो सकता है?

अनुमान-तरंग !

जिस कवि ने अपने वर्ण्य-विषय में देश-काल परिस्थिति प्रकृति, भूगोल, ग्राम, नगर, नागरिक का यथातथ्य वर्णन करने में ख्याति अर्जित की है, और उनको कवि वर्णित रूप में अब तक भी यथावत् अनुभव किया जा सकता है, वह कवि क्यों श्लिष्ट-भाषा में किसी व्यक्ति या विषय का वर्णन करेगा? रघु की दिग्विजय से समुद्रगुप्त की विजय का आभास पाना, अथवा विक्रम से द्वितीय चन्द्रगुप्त की कल्पना लेना केवल कल्पना विलास के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि कुछ शब्दों से ही कल्पित इतिहास की सृष्टि की जा सकती है तो आजके युगानुरूप शब्दों विचारों और व्यक्तियों को रघुवंश, कुमारसंभव से प्राप्त किया जा सकेगा। क्या 'मालविकाग्निमित्र' के लेखक को अन्य व्यक्ति चित्र अंकित करने में कोई संकोच हो सकता था? वह रघु के ब्याज में समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त क्यों रखता, पुष्यमित्र के अश्वमेध की तरह ही वह स्पष्ट उक्त अश्वमेध का भव्य वर्णन कर सकता था, जो लोग कुमार संभव से स्कन्दगुप्त को खोजना चाहते हैं, या कुमारगुप्त की कल्पना लड़ाने का यत्न करते हैं वे भी अनुमान-लोक में संचार करते हैं।

बंगाल की कल्पना !

हमारे बंगाली-बन्धु 'ऋतु-संहार' के ऋतु-वर्णन को लेकर बंग-प्रदेश की प्रकृति से साम्य सोचते हैं, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि बंगाल में केवल चार ऋतु ही होती हैं, जबकि 'ऋतु-संहार' षड्ऋतु का प्रत्यक्ष चित्र अंकित करने वाला काव्य है, जो विशुद्ध मालव-प्रदेश का प्रतिनिधित्व करता है। इसी तरह मेघदूत के 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' को उठा कर बंगालियों का आग्रह है कि बंगाल के संवत्सरारम्भ का ही वह वर्णन होता है। तब वे यह भूल जाते हैं कि कालिदास जैसा तथ्यवादी कवि मेघ से दौत्यकर्म करवाने जा रहा है, जो वर्षा के सिवा संभव नहीं। यदि वह बंगाल के वर्षारम्भ या प्रकृति से सम्बन्धित भावना को लेकर इस काव्य की रचना करता तो एक शब्द में भी वह बंगाल का (चाहे वह श्लेष में ही क्यों न हो) अपने काव्य

में कहीं भी क्यों न उल्लेख करता ? फिर हमारे यहाँ ऋतुओं की गणना सदैव सौर मास से ही की जाती हैं । 'ऋतु-संहार' इसका सबल प्रमाण है, यहाँ बंग-वर्षारम्भ की कैसे संगति बैठेगी ? आश्चर्य तो यह है कि वर्तमान बंगला वर्षारम्भ तो सम्राट् अकबर का चलाया हुआ है। अकबर सं० १६१२ और हिजरी ९६३ में शासक बना था। यह हिजरी सन् चांद्र मास पर अवलम्बित होता है। अकबर की विशेष आज्ञा से ही सौर गणना होने लगी थी। ऐसी अनेक भ्रांतियों ने कालिदास की कृति और काल के विषय में आशंकाएँ उत्पन्न करदी हैं। आज भी इन्हीं भ्रांतियों में कालिदास का 'आविर्भाव काल' उलझा हुआ है। विदेशों के विद्वानों की विचार सरणी ने हमें और भी दिग्भ्रान्त बनाया है। हम उन्हीं के लिखे अपने इतिहास की काली-कसौटी पर अपने कवि को भी कसकर परखना चाहते हैं। शिलालेख और सिक्कों की सीमा में आधुनिकता के आधार पर पुरातनता की परख करना चाहते हैं, जबकि जिस काल की ये रचनाएँ हैं, उनकी परीक्षा परिधि उन्हीं में समाविष्ट बनी हुई है।

कवि के साहित्यानुशीलन की आवश्यकता !

कालिदास के साहित्य का निष्पक्ष बिना पूर्व ग्रह लिए सावधानी से अनुशीलन किया जाय तो कवि की आत्मा से साक्षात्कार किया जा सकता है। उसके निर्मित शब्द-शरीर के अन्तर में सूक्ष्मरूप में रहने वाली आत्मा अपना परिचय देने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। कवि ने ऐसे अनेक प्रसंग प्रस्तुत किए हैं, जिनके द्वारा हम उसके आविर्भाव काल में अपने को पहुँचा सकते हैं हमें इधर-उधर भटकने या भ्रांत होने की आवश्यकता नहीं है।

शुंगवंश और मालविकाग्निमित्र !

आरम्भ में हम मालविकाग्निमित्र को लेकर विदिशा के वैभव में विहार करें। शुंग शासन की प्रतिष्ठा स्थिति और उसके वातावरण को समझने का सावधानी से यत्न करें तो हमें कालिदास को प्राप्त करने में भी कठिनाई नहीं होगी। 'गुप्त-मूल' या कुमार शब्दों को लेकर उनमें 'श्लेष' शोधन करने की आवश्यकता नहीं। किसी व्यक्ति शासन या किसी काल को लेकर कवि की कोई रचना है तो वह अकेला मालविकाग्निमित्र नाटक ही है। हम काव्यों में ऋतु-संहार को छोड़ कर नाटकों में मालविकाग्निमित्र को ही कवि की आद्य कृति और यौवन काल की कृति समझते हैं। इसी कृति के द्वारा कवि समाज के समक्ष आने का सफल प्रयास साध्य करता है। वह अपने पूर्ववर्ती भास-सौमिल्ल जैसे ख्याति प्राप्त कवि—नाटककार की प्रतिष्ठा से प्रभावित है, और उनके कीर्ति-क्षेत्र में प्रविष्ट होते हुए संकोच अनुभव करता है, किन्तु वह उक्त नाटक को लेकर शुंग-शासन में प्रवेश करने का साहस करता है सहसा उसकी वाणी से पुरानी रचनाओं के विषय में यह उक्ति निकल पड़ती है कि 'पुराण मित्येव न साधु सर्वम्' वह भास की पुरातन-शैली की नाट्य-कृति के समक्ष, अपनी सामयिक घटना पर अवलम्बित शुंग-शासन की स्थिति को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने वाली नाट्य-कृति को समाज के सामने उपस्थित करता है। क्योंकि जनता और शासन के लिए वह सामयिक घटना को प्रत्यक्ष कर देता है। इसलिए भास की भाव भूमि को भूल कर जनता अपने 'काल' के वातावरण का प्रत्यक्ष चित्र देख कर प्रभावित हो जाती है। इस प्रकार कवि अपने पूर्ववर्तियों की कला पर—जनमानस पर अद्भुत प्रभाव डाल देता है। भास आदि के नाटकों पर नवीनता का प्रभाव नहीं पड़ा था। पौराणिक घटनाओं पर ही काव्य - नाट्यकला का कौशल प्रदर्शित होता था। कालिदास ही प्रथम व्यक्ति था जिसने एक ऐतिहासिक महत्व रखने वाली अपने समक्ष घटित (या अपने से कुछ ही काल पूर्व की) घटना को अपनी कला का माध्यम बनाया था। कालिदास का पात्र अग्निमित्र यद्यपि एक साधारण कोटि का है, उसका शासन भी महत्व का उतना नहीं है। फिर भी कवि को प्रभावित होने के लिए यही पर्याप्त था कि वह एक ब्राह्मण सत्ता का आविर्भाव था, और बौद्धों के विरुद्ध धार्मिक-शासन की स्थापना थी, अश्वमेध का पुनराविर्भाव था। इसी प्रकार की भावना कवि की कला को उत्प्रेरक बना सकी, और जनता के आकर्षण का विषय बन सकी। शुंगवंश के प्रथम सम्राट् का जीवन काल ही उन्होंने अपने नाट्य का विषय बनाया, और इस प्रकार कवि अपनी प्रतिष्ठा और कीर्ति को प्राप्त कर भास, सौमिल्ल आदि की स्थापित प्रतिष्ठा का अधिकारी हो गया। इसके पश्चात्-काल की किसी कृति में कवि ने किसी शासक या व्यक्ति को माध्यम बना कर कोई रचना नहीं की, केवल कला की आराधना ही की है। इससे स्पष्ट है कि वह शुंग काल का है।

शुंग कालीन मालव का मर्मज्ञ !

शुंग कालीन विदिशा और शेष मालवभूमि का वह जितना स्पृहणीय और प्रत्यक्ष वर्णन करता है उतना अन्य का नहीं। मेघदूत में भी वह इसी विदिशा-स्नेह से सिक्त होकर अपने मेघ को पहले विदिशा और वेत्रवती को चंचल लहरों से सिक्त समीर का स्पर्श करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और उसी नगरी से वक्र-मार्ग होने पर अवन्ती को जाने के लिए प्रेरित करता है। अग्निमित्र के शासन की सूक्ष्म घटनाओं अन्तःपुर के भेद को भी वह जानता है। और जिस कौशल के साथ उसे वर्णित करता है वह बिना जाने देखें सम्भव नहीं। उस घटना का सिवा कवि के नाटक के अन्यत्र इतिहास में कहीं विशद वर्णन प्राप्त नहीं होता। यह प्रमाणित करता है कि कवि शुंग-काल को निकट से जानता है, बौद्धों के लिए वह काल प्रतिकूल था। कवि ने बौद्धों के प्रति अपनी कहीं सहानुभूति बतलाई नहीं है। बल्कि दिङ्नाग (यदि वह श्लिष्ट है) के लिए उपेक्षा का व्यवहार ही किया है। यदि अग्निमित्र के थोड़े ही समय के पश्चात्काल का मानें तो उसने भागभद्र के शासन में उध्वस्त शुंग-श्री को देखा है। जो लगभग ६० वर्ष के आसपास की स्थिति है। मेघदूत में विदिशा के विषय में—

'यः पण्यस्त्री रतिपरिमलोदगारिभिर्नागराणाम्।
उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥'

यह जो चित्र चित्रित किया है। वह प्रकट करता है कि उसने देवभूति जैसे लम्पट शुंग शासक का रूप अंकित किया है। इसका प्रमाण 'कलियुग-वृत्तांत' में भी प्राप्त होता है।

विहाय पाटलीपुत्रं विदिशायां सुखस्थितः।
अन्यायेन पुरस्त्रीभिर्विहर्तुमुपचक्रमे ॥
अन्यैर्नृतैश्चकितवैर्नृतोनर्तकगायकैः' ।
सुरामांसाशनो मत्तो वारस्त्री संगलालसः॥

इससे शुंगों के पतन की पराकाष्ठा का पता चलता है, और विदिशा की स्थिति का भी। जो कवि उसे निकट से नहीं जानता वह इतना स्पष्ट कैसे अंकित कर सकता है? स्पष्ट ही मालविकाग्निमित्र की रचना इसी काल के सत्य स्वरूप प्रकट करने के लिए हुई। और विदिशा के शुंग-गौरव गिर जाने पर कवि ने अवन्ती में निवास किया। यह काल डॉ॰ केदार के अनुसार ७२ बी. सी. का है।

कला का चरम विकास-काल !

रघुवंश शाकुन्तल इसके पश्चात्काल की रचना है। जब कि कवि की कला 'चरमोत्कर्ष प्राप्त कर चुकी थी, यह विक्रम काल है। और यहां कवि प्रौढावस्था में 'प्रवेश करता है, उसकी कला व्यक्ति और शासन के वर्णन से विरक्त बन अपनी प्रांजलता-प्रगल्भता को ही प्राप्त करती है। और विक्रम-शासन उसे एक आदर भाजन मानकर सन्मान प्रदान करता है।

बौद्धों की उपेक्षा !

कवि की किसी रचना में बौद्ध संस्कृति के प्रति कोई इंगित नहीं है। उस पर वैदिक भावना की छाप ही दृष्टिगोचर होती है। जो कि शुंग और उसके परवर्ती शासन की विशेषता थी। जो कवि मालवे के सुन्दर-प्रमुख स्थानों जलाशयों, प्राकृतिक-सौन्दर्य और सामाजिक विशेषताओं को वर्णित करता है, वह विदिशा के पास रहने वाली उत्कृष्ट कलाकृति और पूर्ववर्ती सांची के स्तूप की सर्वथा उपेक्षा करता है और मालवे के अनेक भागों में अवस्थित स्तूपों चैत्यों-विहारों का कहीं नाममात्र भी नहीं लेता। वह अवश्य ही बौद्धों के प्रति सामयिक उपेक्षावृत्ति से प्रभावित होना चाहिए। वह अपने पूर्ववर्ती महान अशोक का भी कहीं भूल कर उल्लेख नहीं करता है, जो विदिशा में विवाहित हुआ था, उज्जैन में शासक बना हुआ था, और मालवे के विभिन्न भागों के स्तूपों का निर्माता भी था। इस उपेक्षाका अवश्य रहस्यहै। यही रहस्य कविको द्वितीयचन्द्र गुप्तस्यके काल में भी नहीं ले जा सकता क्योंकि वे बौद्धों का सन्मान करते थे। गुप्त सम्राटों के विषय में बौद्ध लेखकों को कोई शिकायत नहीं है। यदि कवि गुप्तकाल की उपज होता तो कदापि बुद्ध प्रशंसा से वंचित न रहता, किन्तु उस पर स्पष्ट छाप वैदिक धर्म, अश्वमेध आदि की है। इसी प्रकार शुंग के सम्राट पुष्यमित्र द्वारा बुद्धों पर किए गए अत्याचारों की भी लेशमात्र चर्चा नहीं की है। इसके विपरीत बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा राजकुमारियों कीं 'दूती' का कार्य करवाया गया है, इससे स्पष्ट है कि वह काल बुद्धानुयायी पतन का था। अग्निमित्र के जीवन को इतनी निकट

से जानने वाला कवि यह न जानता हो संभव नहीं। किन्तु नवीन शासन, नवीन धर्म और ब्राह्मण-वंश का अभ्युदय एवं वैदिक शासन प्रतिष्ठा के प्रति उसकी अनुरक्ति ही जो कि स्वाभाविक है, उसे बौद्ध-अत्याचार-चित्रण से रोकती है। अतीत भारत के अश्वमेध आदि का आविर्भाव उसे प्रभावित किए हुए है, और यही कारण है कि साधारण श्रेणी के नायक अग्निमित्र को लेकर वह अपनी कला का प्रदर्शन करता है।

अश्वघोष !

कवि पर निकटवर्ती साहित्य परम्परा भी प्रभाव डालती है। भास की वासवदत्ता की तरह अग्निमित्र की मालविका उसकी कला का प्रतिपाद्य विषय बन जाती है, उसी प्रकार अश्वघोष का 'बुद्ध चरित' उसे रघुवंश और कुमारसंभव के लिए प्रेरित करते हैं। विद्वानों में थोड़ा यहाँ मतभेद है कि कालिदास पूर्ववर्ती है या अश्वघोष ? यह जो भी हैं, पर एक-दूसरे के काव्य पर प्रभाव स्पष्ट है, चाहे कालिदास प्रभावित हुआ हो या अश्वघोष। प्रथम-शती का उतरार्द्ध या द्वितीय शती का पूर्वार्द्ध ही यह समय हो सकता है। अश्वघोष भी ब्राह्मण है, बाद में बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो जाता है, तथापि उस पर धर्म की अपेक्षा कवित्व का विशेष प्रभाव है, उसकी भाषा भी संस्कृत है। किन्तु कालिदास की भाषा, शैली और कहीं-कहीं वर्ण्य प्रकार में भी साम्य है। अवश्य ही उसकी रचना में शृंगार और शौर्य का अभाव है यह एक बौद्ध के लिए स्वाभाविक है। परन्तु कालिदास में सब रसों का सुन्दर समावेश है। शैली और भाषा के अनु-शीलन से एक-दूसरे में अधिक अन्तर से नहीं विदित होता, इस प्रकार भी कवि प्रथम शती में ही ठहरता है।

अश्वघोष यदि प्रथम है तो कवि पर बुद्ध-चरित का प्रभाव लक्षित नहीं होता। बौद्ध उपेक्षा ही रहती है और यदि पश्चात्-कालीन है तो यह विचारणीय हो जाता है कि उसके बाद भी 'बुद्ध-चरित' जैसी रचना हो और कालिदास अपनी किसी कृति में बुद्ध का स्पर्श भी न होने दे।

चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध जोडने का निरर्थक प्रयास !

जो विद्वान् चन्द्रगुप्त द्वितीय से कवि का नाता जुड़ाते हैं वे यह विचार करें कि द्वितीय चन्द्रगुप्त कभी उज्जैन का सम्राट् नहीं था। उसकी राजधानी पाटलीपुत्र ही थी। कवि ने पाटलीपुत्र में वह आकर्षण कहीं प्रकट नहीं किया जो उज्जैन मालव-प्रदेश के लिए किया है। वह कैसे राजकवि और राजमित्र—या राजसभा का पण्डित रहा हो। एक और बात कि दशपुर का शिलालेख जिस कलापूर्ण सूर्य-मन्दिर के निर्माण की चर्चा करता है, वह चन्द्रगुप्त के पूर्व की घटना है। दशपुर के महत्व को वर्णन करते हुए कवि उस सौन्दर्यराशि मन्दिर को कैसे भुला देता ? इसके सिवा केवल 'विक्रम' शब्द से यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध था। वह यदि हो भी सकता है तो प्रथम ई० स० पूर्व ५७ वाले विक्रम से ही हो सकता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त या यशोधर्मन से तो परम्पराओं की भी सहज संगति न लगती। हाँ, शुंगवंश के अन्तिम काल का चित्र तो रघुवंश से प्राप्त किया जा सकता है। कालिदास ने अपने काव्यों में पाण्डयों का वर्णन विशेष-रूप से किया है, कहीं भी पल्लवों का नहीं और ये पाण्डय जब भारत में शासक थे, विस्तृत थे, वह काल ईसवी सन् की प्रथम-शती ही थी, जो कवि का काल हो सकता है। चन्द्रगुप्त-काल में कवि की खींचतान करने पर स्वयं विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रामाणिक पण्डित मानते हैं कि महाकवि इतने असमर्थ नहीं थे कि उन्हें रघुवंश में छुपे शब्दों में कहने की आवश्यकता पड़ती। कालिदास ने 'उदयन कथा कोविदग्राम वृद्धान्' में उदयन और वासवदत्ता की प्रचलित कथा का उल्लेख कर अपने पूर्ववर्ती भास और उस घटना का ही निर्देश किया है जो उसके आविर्भाव के पूर्व घटित हुई थी यदि चन्द्रगुप्त के काल में कवि का आविर्भाव होता तो इतनी पुरातनतम-चर्चा को उज्जैन के ग्राम वृद्ध शायद ही स्मरण रख पाते और कवि को स्मृति दिलाने का कारण भी नहीं होता।

ध्रुवजी की सूझ !

गुजरात के स्व० विद्वान् केशवभाई ध्रुव ने कवि के ग्रन्थों का सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से विचार किया था। उन्होंने कविप्रयुक्त छन्द-परम्परा पर काल निर्णय करने का प्रयास किया और उनके ये तर्क भी कवि को सयुक्तिक प्रथम-शती में सहज रख देते हैं, इनमें सूझ है और तर्क की मौलिकता है।

ध्रुव महोदय ने पहिले भास, अश्वघोष, वसुबन्धु, पं-

जलि, सुबन्धु, भारवि, माघ, विशाखदत्त, श्रीहर्ष, भव-भूति, आदि में से कई एक पुराने कवियों का समय-निरूपण किया है। फिर प्रत्येक के ग्रन्थों में प्रयुक्त वृत्तों पर विचार किया है और यह दिखाया है कि बहुत प्राचीनकाल में कौन कौन वृत्त अधिक प्रयुक्त होते थे और धीरे-धीरे परवर्ती कवियों ने किन-किन नए छन्दों का प्रयोग आरम्भ किया था प्रत्येक ग्रन्थ में प्रयुक्त अनुष्टुभ, गाथा, आर्या, आख्यानकी, उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा आदि छन्दों को गिन कर उनकी एक सूची उन्होंने प्रकाशित की है। यथास्थान यती का न होना और वर्ण विशेष की शिथिलता पर भी आपने विचार किया है। ऐसे स्थलों की भी सूची आपने दे दी है। फिर इन्हीं बातों का विचार आपने कालिदास के काव्यों और नाटकों के सम्बन्ध में किया है। आपने दिखाया है कि सबसे पुराने काव्यों में अनुष्टुभ और आख्यानकी (उपजाति)की ही अधिकता है। कालिदास के रघुवंश में १९ सर्ग हैं। उसमें अनुष्टुभ्, आख्यानकी, रथोद्धता, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित और वियोगिनी छन्द व्यापक हैं। प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, हरिणी, मालिनी, आदि एक देशीय हैं। उन्नीस सर्गों में ६ सर्गमें अनुष्टभ् में हैं और ८ आख्यानकी में। शेष और छन्दों में। बुद्धचरित के केवल १३ सर्ग मिलते हैं। उनमें से ३ सर्ग अनुष्टभ में और ८ आख्यानकी में हैं। इन दोनों कवियों ने केवल सम और अर्द्धसम वृत्त लिखे हैं। पर उनके परवर्ती भारवि ने विषम और माघ ने जाति-श्रेणी के छन्दों का प्रयोग किया है। बहुत पुराने ज़माने के कवियों के काव्यों में इन छन्दों का प्रयोग नहीं देखा जाता। पहले दोनों कवियों के काव्यों में १२ अक्षरों से अधिक वाले एक भी व्यापक, और १७-१८ अक्षरों से अधिक वाले एक भी एक-देशीय छन्द नहीं। पर परवर्ती भारवि माघ के काव्यों में यह अक्षर-संख्या क्रम से १३—१५ से लेकर १७—२१ तक पहुंच गई है। अतएव सिद्ध है कि कालिदास भारवि के समय के कवि नहीं, किन्तु अश्वघोष के समय के हैं। अनुष्टुभ् आर्ष छन्द है, आख्यानकी उसके बाद का है। इन दोनों की अधिकता रघुवंश और बुद्धचरित में है। रघुवंश में मालभारिणी नामक वृत्त एक देशीय है। अर्थात् किसी पूरे सर्ग की रचना उसमें नहीं की गई। फुटकर तौर पर यह छन्द आया है। पर यही एकदेशीय-छन्द बुद्धचरित में व्यापक-भाव से वर्तमान है। इसके सिवा रुचिरा और शिखरणी भी बुद्धचरित में व्यापक है। इससे साफ सूचित होता है कि बुद्धचरित रघुवंश के बाद का है बुद्धचरित के प्रणेता अश्वघोष सन् ईसवी के पहले शतक में विद्यमान थे। यह बात ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। अतएव, इससे यह भी सिद्ध समझिये कि अश्वघोष से कम से कम सौ वर्ष पहले कालिदास हुए होंगे। निष्कर्ष यह निकला कि जिस विक्रम के नाम से अपना संवत् प्रचलित है उसी के समय में, अर्थात् ईसवी सन् से ५६ वर्ष पहले, कालिदास का समय समझना चाहिए।

और विद्वान भी !

ध्रुवजी का तर्क सर्वथा मौलिक-महत्व का है। और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विदेशी विद्वानों में भी जैसे सर विलियम जोन्स, डॉ० पीटर्सन आदि ने कालिदास को प्रथम शती के विक्रम-काल का स्वीकार किया है। इसी तरह डॉ० नन्दर्गीकर ने अपना पक्ष बहुत योग्यता और प्रमाणों के सबल आधार पर स्थिर किया है कि वह पहली शताब्दी में विद्यमान थे। उनका स्पष्ट अभिमत है कि कालिदास के काव्यों को देखकर ही अश्वघोष ने अपनी रचना की है। अश्वघोष ने कवि के पदमात्र ही नहीं, श्लोक चरणों तक का उपयोग कर लिया है वे अश्वघोष को कवि का पश्चात्वर्ती ही मानते हैं। इन सब तर्कों और विवेचनों से हम यही निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि 'मालविकाग्निमित्र' के निर्माता कालिदास का काल शुंग-वंश और विदिशा के वैभव का काल है। वे अग्निमित्र या उसके समभग के काल में थे, जब लोगों को इस शासन के समय की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का पता था। अतएव कवि ई० सन् पूर्व की प्रथम शती में विद्यमान थे, और वे मालवे में ही थे। शुंग-काल के पश्चात ही विक्रम-काल का प्रारंभ होता है। इसलिए उनका अवंती और विक्रम से निकट सम्बन्ध हो जाता है।

स्व० डॉ० केदार का मत।

कालिदास के विषय में सी. पी. के स्व० डॉ० केदार ने बहुत अनुशीलन किया है, और वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। उनका अभिमत सार रूप में इस प्रकार है।

(१) विदिशा द्वितीय शती बी. सी. और पांचवी शती ई. सन् के मध्य में शुंग-वंश के समय में राजकीय नगर में था।

(२) अग्निमित्र शुंग-वंश का प्रथम राजा था, और उसका राज्य-काल अल्पकालीन होने के कारण, और उसके पिता पुष्यमित्र की मृत्यु के पश्चात् कुछ भी महत्वपूर्ण घटना न होने के कारण, विदिशा उसके समय में राजकीय नगर के गौरव को प्राप्त न कर सका।

(३) शुंग वंश का एक मात्र सम्राट जिसका शासन दीर्घकाल था, और जिसके राज्य में वैदेशिक राजदूतावास के होने का ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध है, वह भागवत या भागभद्र था। ऐतिहासिक प्रमाण बतलाते हैं कि, शुंगों के राज्य के प्रति तीन या चार देशों ने अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की थी।

(४) कालिदास उस समय फले फूले जब विदिशा एक राजकीय नगर था। इसलिए वह भागवत के शासन-काल के शेष भाग में अवश्य हुए थे।

(५) विदिशा और उज्जैन की तत्कालीन सामाजिक-दशा का वर्णन घोर विलासी राजा देवहुति के शासन-काल से अक्षरशः मेल खाता है।

(६) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में अग्निमित्र के जीवन की जिन घटनाओं का चित्रण किया है, शुंग-वंशीय राजाओं के आश्रित होने के प्रमाण हैं।

(७) अग्निवर्ण जो देवहुति के समान था, उस जीवन कथा का वर्णन कर एकाएक रघुवंश को समाप्त कर देना यह सिद्ध करता है कि, कालिदास शुंग वंशीय राजाओं के समकालीन थे।

(८) देवहुति की मृत्यु के पश्चात् विदिशा न राजधानी रह सका और न राजकीय नगर ही। और गुप्त-साम्राज्य के पतन के पूर्व यह पूर्व स्थिति प्राप्त न कर सका।

(९) अगर कालिदास गुप्त-काल में होते तो वे विदिशा को राजकीय नगर के नाम से वर्णन नहीं करते। कालिदास या किसी भी कवि से यह आशा करना एकदम ही स्वाभाविक है कि, अपनी कविता पुस्तक 'मेघदूत' में तात्कालीन घटना या भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक या राजनीतिक दशा का वर्णन करें। यह निर्विवाद है कि विदिशा जैसा था वैसा वर्णन कालिदास ने किया।

(१०) कालिदास 'मेघदूत' में पूर्णिमांत मास का वर्णन न कर, अमांत-मास का वर्णन करते हैं। अगर वे गुप्तकालीन राजाओं के समय होते तो उनके संवत् के अनुसार पूर्णिमांत--मास की ही चर्चा करते। गुप्त--सम्वत् उत्तरी भारत-प्रथा का अनुकरण करता है चूंकि यह गणना ५७ बी० संवत् के समय से बे मेल नहीं हो सकती है, अतः ५७ बी० सी० के पूर्व अवश्यमेव हुए। 'मेघदूत' की रचना भी ५७ बी० सी० के पूर्व ही हुई।

(११) परम्परागत कथाएँ कालिदास को उज्जैन के राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित बतलाती हैं। ५७ बी० सी० वाला संवत् विक्रमादित्य का ही स्थापित किया हुआ है। विश्वास किया जाता है, जो "शकारि" भी कहलाता था। कोई भी गुप्त सम्राट् उज्जैन का राजा नहीं हुआ था। यद्यपि गुप्त-वंशीय सम्राट् वहां के अधिकारी थे, परन्तु उज्जैन में स्थायी दरबार के सिद्धांत के साथ उनका राजा होना असंगत है। गुप्तकाल में पाटलीपुत्र राजकीय नगर था।

(१२) इस परम्परागत कथा को तब और बल प्राप्त होता है, जब नवीं शती ई० सन् से ५७ बी० सी० संवत का नामकरण 'विक्रम संवत्' से हो जाता है। अगर नवीं शती ई० सन् में विक्रमादित्य को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार कर लिया गया, तो कोई कारण नहीं कि ग्यारहवीं शती बाद उसे स्वीकार करने में हम लोग असमंजस करें।

(१३) गुप्त-सम्राटों के अतिरिक्त जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। उज्जैन में एक दूसरा विक्रमादित्य हो गया है, जो 'हूणारि' के नाम से विख्यात है। लेकिन वह छठी शती ई० सन् में हुआ था। उसने सन् ५२८ ई० सन् में मिहरगुल को पराजित किया था, और अगर कालिदास उनके समकालीन थे तो वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन नहीं हो सकते, जो सन ५२८ ई० के ११३ वर्ष पूर्व मर चुका था।

(१४) कालिदास के किसी भी ग्रन्थ में गुप्तवंशीय राजाओं से कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया है बल्कि विदिशा और उज्जैन की दूषित प्रतीत सामाजिक दशा का वर्णन

चन्द्रगुप्त द्वितीय या कुमारगुप्त प्रथम के गौरवपूर्ण शासन के साथ पूर्ण असंगत दीख पड़ता है ।

(१५) कालिदास विक्रमादित्य 'हूणारि' का समकालीन नहीं हो सकता है, क्योंकि वह और वर्णनों के साथ दशपुर (मन्दसौर) के सूर्य-मन्दिर की चर्चा कभी नहीं छोड़ता—जो सन् ४३७-३८ ई० में पूर्ण हुआ था।

गणना- क्रम से भी—

कालिदास के समय के विषय में जितने गहरे अध्ययन की आवश्यकता है उतने ही तथ्यों की प्राप्ति सम्भव है, ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जिस प्रकार प्रथम शती का प्रमाण सहज उपलब्ध हो सकता है, उसी प्रकार गणना-क्रम से भी काल स्थिति जानी जा सकती है। कालिदास ने अपने काव्यों में कई स्थलों पर ऐसे प्रयोग किए हैं, यथा 'प्रससादोदया' दम्भः 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे।' 'प्रत्यासन्ने नभसि' और 'शापान्तो मे भुजगशयनात्' आदि आषाढ़ मास, देवोत्थापन और नभो मास यह संगति सूर्य के पुष्य-नक्षत्र के प्रथम चरण में जाने पर कर्क संक्रांति के समय में सम्भव होती थी पर अब वह आर्द्रा के आरम्भ में होती है। यह नभो मास अब २८' ३१' अंश हटकर होता है और इस स्थिति के आने के लिए गणना-क्रम से लगभग २००० वर्ष का समय चाहिए। यही बात 'प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महोजसः' के अगस्त्योदय की भी है, इसलिए भी कालिदास को २००० वर्ष से नीचे नहीं लाया जा सकता। श्री सी० वी० वैद्य और म० वि० परांजपेजी जैसे अनुशीलनकर्त्ता पण्डित कालिदास को प्रथम-शती में ही स्थापित करते हैं और सबल प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

शाकुंतल की एक घटना।

शकुन्तला नाटक के षष्ठ अंक में एक घटना प्राप्त होती है, उससे यह ज्ञात होता है कि कवि के काल में विधवा को अपने मृत पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं समझा जाता था। धर्म-ग्रन्थों में मनु-आपस्तम्ब, बौधायन, वसिष्ठ आदि स्मृतिकार विधवा को मृत पति की उत्तराधिकारिणी नहीं मानते हैं। और नारद, कात्यायन आदि केवल भरण-पोषण की अधिकारिणी समझते हैं, गौतम एवं बृहस्पति विधवा को एक भाग की अधिकारिणी बतलाते हैं, तथा शंख, लिखित एवं याज्ञवल्क्य संपूर्ण स्वामित्व सूचित करते हैं। इस प्रकार जितना समय आता गया अधिकार वृद्धि होती गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनु-आपस्तम्ब, बौधायन, वशिष्ठ के पश्चात् तथा नारद, कात्यायन, गौतम आदि के पूर्व कालिदास का काल है, इतिहासज्ञ बृहस्पति काल को ईसा पूर्व मानते हैं, अतः कालिदास इससे भी पूर्ववर्ती होते हैं। इसी प्रकार हमारे स्नेही पं० गो. कृ. शास्त्री का मत है कि दुष्यन्त नाम से अंकित अंगूठी को धीवर के पास देखकर जब शासन के द्वारा उसे 'प्राण-दण्ड' देने की बात कही जाती है, वह भी मनु, आपस्तम्ब, बौधायन आदि के मतानुसार 'रत्न-चोर' को प्राण-दण्ड देने की व्यवस्था थी, किन्तु बृहस्पति प्राण-दण्ड को कठोर मानते हैं। इसलिए स्पष्ट है कि यह व्यवस्था भी बृहस्पति के विधान से पूर्व ही की है। और कालिदास इस विधान से भी प्रथम शती के ही सिद्ध होते हैं।

भाषा-प्रयोग की दृष्टि से।

कालीदासीय नाटकों में जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है, वह मागधी प्रचुर भाषा है। यह ई० सन् से पूर्व प्रथम शती की शैली है। उसके पश्चात की प्राकृत मागधी प्रचुर नहीं रही है।

विचार और शैली में साम्य।

भास और कालिदास की नाटकीय विशेषता को भी तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो एक विशेष समता प्रचुर रूप से प्राप्त होती है। जो भास से स्पष्ट प्रभावित प्रतीत होती है, यथा यौगंधरायण वासवदत्ता को पद्मावती के सुपुर्द करता है, और बाद में पद्मावती का राजा के साथ विवाह हो जाता है। राजा वासवदत्ता के विवाह का चित्रोल्लेख देखता है। महारानी पद्मावती राजा को कहती है वासवदत्ता की तरह ही कोई ब्राह्मण कुमारी हमारे अंतःपुर में भी है। इस प्रकार वासवदत्ता प्रकट होती है। राजा के साथ उसका मिलन होता है। यही प्रसंग थोड़े भिन्न प्रकार से और अधिक सुन्दरता से कालिदास ने अपनी प्रथम कृति मालविकाग्निमित्र में उतार लिया है। वहां मालविका को पटरानी के सुपुर्द किया जाता है।

मालविका संगीत सीखती है, वासवदत्ता वीणा सीखती है। मालविका को चित्र से अंकित देखकर तथा नृत्य मुद्रा में देखकर राजा अनुरक्त बन जाता है। जिस तरह वासवदत्ता को चित्र में देखकर राजा मुग्ध बन जाता है। मालविका और वासवदत्ता दोनों ही अन्तःपुर में रहती हैं। इसी प्रकार शकुँतला और वासवदत्ता में भी अनेक प्रकार साम्य प्रकट होता है। पद्मावती की शिरो वेदना, शकुँतला की काम वेदना, पल्लव-शयन, पुष्प-शयन दोनों के मिलने का वर्णन वासवदत्ता का तपोवन वर्णन, और शकुँतला का आश्रम वर्णन, वियोग में उदयन की स्थिति और दुष्यन्त की स्थिति वासवदत्ता के चतुर्थ अंक के प्रमद वन और विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र के प्रमद वन तथा दोनों वनों में दासी का विदूषक को खोजते आना, दोनों में वसंतक पात्र की समानता वासवदत्ता में भंवरा विदूषक को तंग करता है और यहाँ स्वयं शकुँतला को। इस तरह भास और कालिदास के नाटकों में अद्भुत साम्य है। न केवल पात्रों की किन्तु भाषा, शैली, विचार और प्रसंगों में भी विचित्र समानता है।

यह समानता कालिदास को भास से प्रभावित प्रकट करती है। और उनके काल को बहुत निकट ला देने वाली है। यह सिद्ध करती है कि कालिदास प्रथम शताब्दी के पूर्व काल में थे। जो लोग विदेशी विद्वानों के आधार पर अपने विचारों को भ्रांत बनाते हैं, और शब्दों के साथ व्यायाम कर मनमाना मोड़ देते हैं, वे यदि कवि के ग्रन्थों को ही सावधानी से तुलनात्मक और तर्क दृष्टि से परिशीलन करने का सतत परिश्रम करें तो वे महाकवि के काल स्थल परिस्थिति का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष दर्शन कर सकेंगे। कालिदास के काल निर्णय के विषय में बहुत कहा जा सकता है, और सप्रमाण भी। उसके लिये यहां न तो स्थल है न वह अवसर ही। यहां हम कवि की पुनीत स्मृति में केवल अपनी पुष्पांजलि ही अर्पित कर रहे हैं।

कालिदास का स्थल निर्णय।

कालिदास के काल निर्णय की तरह ही स्थल-निर्णय का विषय भी विवादास्पद बना हुआ है। कुछ विद्वानों की सम्मति में कालिदास काश्मीरी थे, कुछ बिहारी, कुछ बंगाली और कुछ हिमालय निवासी एवं विदर्भवासी भी बतलाते हैं। बंगाली बंधुओं ने एक नर मुण्ड भी प्राप्त कर लिया है, जिसे वे महाकवि की मूर्ति मानते हैं। हमने समय २ पर इस सम्बन्ध में विक्रम तथा अन्य पत्रों में पर्याप्त लिखा है। और ऐसे कुतर्कों या काव्य-विनोदों की चर्चा का सतर्क उत्तर भी दिया है। बंगाल की मेघदूत समिति ने जो भ्रांति विस्तारित की थी, उसका सविस्तर, सप्रमाण उत्तर अस्तंगत 'माधुरी' में हमने बहुत समय पूर्व ही दिया है। बंगालियों की कृपा से मेघदूत का 'आषाढ़स्य प्रथम-दिवसे' बंगाली वर्षारम्भ भावना से प्रेरित बन कालिदास स्मरण दिन भी कुछ समय बना, किन्तु महामहोपाध्याय मिराशीजी जैसे कालिदास के अध्ययन-शील विद्वान और म० महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री (सी० आई० ई०) जैसों ने कवि की बंगीयता और आषाढ़ के महत्व को स्वीकार नहीं किया। स्वयं बंगाली होते हुए भी म. महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और म. म. विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रौढ़ पुरातत्वज्ञों ने कवि का स्थल मालव-भूमि ही माना है, हरप्रसादजी शास्त्री तो कालिदास को अनेक प्रमाणों से मंदसौर (दशपुर) का ही मानते हैं। स्वयं विश्व कवि रविन्द्र और योगी अरविंद कालिदास को अवन्ती का स्वीकार करते हैं। कविवर रवीन्द्र ने अपनी एक सुन्दर भाव पूर्ण कविता में यह व्यक्त भी किया है कि यदि मैं कालिदास के काल में अवन्ती में उत्पन्न हुआ होता तो नवरत्नों की मालिका में मेरा भी कहीं स्थान होता। कालिदास के काव्य और नाटकों में मालव भूमि के प्रति जो पक्षपात प्रदर्शित होता है। जिस तरह यहां की छोटी से छोटी नदियों, टीलों, नगर-ग्रामों, प्रकृति पुंजों का वर्णन है, वह स्पष्ट कवि के आत्मीय भाव को प्रकट करता है। उज्जयिनी महाकाल और गन्धवती जैसे एक छोटे से जलाशय को भी वह वर्णित करता है। जब कि रघुवन्शकर्ता कालिदास मेघ को अयोध्या नहीं भेजता। यदि वह द्वितीय चंद्रगुप्त काल का होता तो वह अपने काव्य या नाटक के किसी पात्र को पाटलीपुत्र ही भेजता, वह विदिशा से अवन्ती तक मार्ग में पड़ने वाली वेत्रवती, सिंधु, निर्विन्ध्या, गम्भीर जैसी कृशकलेवरा नदियों को अवश्य स्मरण करता है। पूर्व मेघ का बहुत भाग तो वह विदिशा, दशार्ण, अवन्ती और विशेषतः उज्जैन पर ही

निर्भर कर देता है। स्व० म. म. हरप्रसाद शास्त्री तो ऐसे ही उल्लेखों से प्रेरित हो कवि को मन्दसौर दशपुर का सिद्ध करते हैं।

परन्तु स्व० डॉ० केदार इनसे भी आगे बढ़ गए हैं। उनका मत है कि कालिदास मालव के देवगिरी (देवडूंगरी) का निवासी था, क्योंकि उस एकांत-ग्राम पर स्थित 'स्कन्द' (कार्तिकेय) मन्दिर को वह विशेष रूप से प्रकाश में लाता है यह उसका जन्मभूमि प्रेम ही है। डॉ० परांजपे और इतिहासाचार्य सी. व्ही. वैद्य ने भी कवि की जन्मभूमि उज्जैन होना स्वीकार किया है। सरविलियम जोन्स जिसने शाकुन्तलका अनुवाद किया है। उनकी सम्मति में भी कालिदास का स्थान मालव ही रहता है। ये सब परम्परा और जन-श्रुतियों के भी अनुकूल है, जो विक्रम-कालिदास और अवन्ती को लेकर अनेक रूप में जन-जीवन में न जाने कब से प्रतिष्ठित हैं। कुछ विद्वानों ने अपने अनुकूल प्रकृति चित्रण प्राप्त कर कालिदास को काश्मीरी या हिमालयीन बनाने का यत्न किया है, किन्तु कालिदास ने जिन ऋतुओं का वर्णन किया, वे यथार्थ रूप में मालव प्रकृति में ही सार्थक होती है। ऋतु संहार की षड्ऋतुओं का रूप न तो बंगाल में ही रहता है न हिमालय में ही। बंगाल में केवल ४ ऋतु ही होती हैं, हिमालय में केवल २ ही रहती है कहीं-कहीं ३ भी। फिर शेष ऋतुओं की संगति कैसे जुड़ाई जा सकती है? यदि कवि बंगाली होता तो वह अपनी सर्वप्रथम कृति कही जाने वाली रचना ऋतुसंहार में क्यों नहीं वर्षारम्भ से संवत्सर प्रवृत्ति का संकेत करता है। मेघदूत का आषाढ़ मास तो शुद्ध 'मानसून' (वर्षागम) का सूचक है, जो उसका संदेश वाहक का काव्य माध्यम है। बंगाल में यदि ग्रीष्म समशीतोष्ण रहती है तो ऋतु-संहार के "प्रचण्ड सूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमा" से उसकी कैसे संगति जुड़ाई जा सकेगी? यही आपत्ति हिमालय और विदर्भ को रहेगी। किंतु कालिदास की कृति ही शब्दों में मालव-मोह लिए हुए हैं, जों अपनी जन्मभूमि के अनुराग की साक्षी है। इसके सिवा विदिशा के अग्निमित्र की राज-सभा में प्रवेश शाकुन्तल का अभिनय अवन्ती में किया जाना, ये ऐसी बातें हैं जो उसे अवन्ती में ही मुग्ध रखते हैं। सभी विद्वानों को यह तो मान्य है कि कवि का कार्यक्षेत्र अवन्ती और मालव भूमि रहा है, यही कारण है कि यहां के जल-स्थल नाग-समाज और प्रकृति एवं वातावरण से वह पूर्ण परिचय ए समरस है, किंतु कवि को वे कहीं बाहर से मालवा या अवन्ती में आने का आग्रह सेवित करते हैं। जब हम मालविकाग्नि-मित्र के युवक नाटककर्ता को विदिशा में कीर्ति प्राप्त करते देखते हैं और प्रौढावस्था में प्रथम विक्रम के शासन में समादृत होते अनुभव करते हैं, तथा उसकी प्रतिभा के वैभव को मालव-मही में ही विस्तारित विकसित देखते हैं तो किस आश में वह कहीं से आकर इस प्रदेश में आश्रय प्राप्त करता है!

कालिदास की परीक्षा !

आज से ११ वीं शताब्दी में होने वाला महाकवि राजशेखर हमें यह बतलाता है कि—

"श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्य-कार परीक्षा"
"इह कालिदास मेण्ठावत्रामररूप भारवयः।
"हरिश्चन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्।"

उज्जैन में कालिदास, मेण्ठ, अमर, रूप, भारवी, हरिश्चन्द्र, चन्द्रगुप्त आदि ने काव्यकार परीक्षा दी थी। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि का अध्ययन उज्जैन में हुआ था और उ ने यहीं परीक्षा भी दी थी, इस उल्लेख की केवल अनुमानों और शब्दों की खींचतान से उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि के वर्ण्य विषय की यथार्थता और प्रकृति-चित्रण की प्रवीणता से उसे किसी प्रदेश में उत्पन्न करवाने की कल्पना नहीं करना चाहिए, वह उसके यथार्थ वर्णन का कौशल ही है। वस्तुतः कवि का मालव-भूमि के प्रति अनुराग, उसका मार्मिक ज्ञान और पक्षपात पद-पद पर प्रतीत होरहा है। जो उसकी आत्मीयता और उत्पत्ति भूमि के प्रति मोह का ही प्रत्यक्ष प्रतीक है। अन्यथा उसे 'क्षिप्रावात' की अपेक्षा हिमश्रृंग या बंग-सागर पर ही कोई स्वतन्त्र रचना करने की प्रेरणा होती। वह मालविकाग्निमित्र और विदिशा में मुग्ध न बनता। सम्भव है 'तत्रस्कन्द' की 'देवगिरी' ने ही 'कुमार सम्भव' निर्माण को कवि को प्रेरणा दी होगी। जैसा कि डॉ० केदार के अ मानानुरूप उनकी जन्मभूमि होने का स्थान हो सकती है। जो भी हो, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र का लेखक कालिदास उज्जयिनी और मालव-भूमि के अनुराग में जितना तन्मय हुआ है, और जिसकी परीक्षा भी इसी भूमि पर होती है

वह कहीं बाहर से आकर नहीं बसता है। उसने अपनी भूमि और नगर को काव्य की मनोहर सृष्टि में स्थान देकर अमर बना दिया है। यह सिवा जन्म भूमि के मोह के और कुछ नहीं है। अन्य दिग्विजय वर्णनों और प्रवास प्राप्त भौगोलिक एवं प्राकृतिक वर्णनों की तरह मेघदूत का मालव अवन्ती वर्णन नहीं है; उसकी अपनी स्वतन्त्र विशेषता है। १५५ श्लोकों के लघु काव्य में ७ श्लोकों के द्वारा इस अवन्ती और अवन्ती मण्डल की महिमा उसके अन्तर में रहने वाली आत्मीयता की प्रतीक है, इसलिए सन्देह का कारण नहीं कि वह अवन्ती का अधिवासी नहीं था, यहीं शिप्रा के पावन पुलिन पर उसकी प्रतिभा का विकास हुआ है। इसी भूमि को उसने अपनी अमर कृतियों से धन्य और चिरंजीव बनाया है। मालव भूमि का यह महान् सरस्वती सुपुत्र मालवीय के रूप में ही विश्व में विख्यात है। कालिदास, विक्रम और अवन्ती इन तीनों की त्रिवेणी अभिन्नता लिए हुए हैं। मत-भेदों के रहते हुए भी जागतिक विद्वानों में अवन्ती कालिदास की भूमि के रूप में ही सन्मान प्राप्त किए हुए हैं, जिसे परम्परा भी समर्थन करती जारही है। कालिदास, विक्रम और अवन्ती से सम्बन्धित विशाल जैन पुरातन साहित्य उसी अभिन्नता और एकता का समर्थन करता है। जिसको जन-मन वाणी ने शतियों से सहज स्वीकार कर रखा है। विक्रम, अवंती और कालिदास की अभिन्नता अनेक मतभेदों-विवादों की परम्पराओं से टकराती हुई भी उसी रूप में अचल बनी हुई चली आरही है, मानों उसके उज्वल अतीत ने सत्य का साक्षात्कार कर रखा है। जिससे आज का युग अनजाने हो भ्रांत भटक रहा है। वैसे तो 'इलियड' के प्रणेता 'होमर' कवि के लिए भी सात-सात देशों ने उसके अपनाने का दावा किया है। यदि कालिदास के लिए भी हमारे महान् प्रदेश के कुछ भाग यह भावना रखे तो इसमें विस्मय का कारण नहीं, यह उसकी महानता और सर्व प्रियता का ही प्रमाण है। यह विवाद भी स्पृहणीय है। किंतु कवि के मालव-अवन्ती प्रेम से कैसे किसी को पराङ्मुख किया जा सकता है। यही उसको विवादों से ऊपर उठाए हुए है, और अवन्ती के अस्तित्व मानने के लिए विद्वानों को विवश बनाए हुए है। वैसे वह सर्व-प्रथम भारतीय है। हमारे महान् [illegible] की अमूल्य निधि है, और यह अपने महान् साहित्य की देन के कारण समस्त विश्व का है। सभी को उस पर समान अधिकार है किंतु उसके अवन्ती के अधिकार को कौन छीन सकता है ?

समुद्र के उस पार कवि कीर्ति !

यूरोप में सर्वप्रथम कालिदास के काव्य का प्रचार विलियम जोन्स ने किया। अर्थात् जब प्रथमतः ये भारतवर्ष में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हुए तो उस समय इन्हें हिन्दु-धर्मशास्त्र के समझने की आवश्यकता हुई और क्योंकि इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए संस्कृत-भाषा का ज्ञान अनिवार्य था, अतः उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी।

उसी समय उन्होंने अपनी मातृ-भाषा में शाकुन्तल का अनुवाद कर डाला। यद्यपि यह अनुवाद प्राथमिक प्रयास होने के कारण उतना उत्कृष्ट नहीं हो सका, तथापि जर्मन कवि 'गेटे' तो उसी को पढ़कर मुग्ध हो गए, और स्तुति में उन्होंने एक पद्य बनाया, जिसका भाव यह है—:

'यदि कोई वसन्त-ऋतु के कुसुम और शरद-ऋतु के फल प्राप्त करने का इच्छुक हो, यदि कोई मन को अपनी ओर आकर्षित करना चाहे, अर्थात् वशीकरण का प्रत्यक्ष प्रमाण देखने का इच्छुक हो, यदि कोई पृथ्वी और स्वर्ग को एक ही स्थल पर देखने की अभिलाषा रखता हो, तो एक बार अवश्य कवि सार्वभौम श्री कालिदास के शाकुन्तल को देखे।'

जब हमारा ध्यान जर्मन कवि 'गेटे' के इस पद्य की ओर जाता है, तब हमें मुक्त-कण्ठ से कहना पड़ता है कि स्वर्ग में पहुंच जाने पर भी जब महाकवियों की प्रचुरगुण-युक्त वाणी, तीनों लोक को मुग्ध किए बिना नहीं रहती। तो फिर वे कवि-जन क्यों न विश्ववन्द्य हों ? कवि 'गेटे' की उपर्युक्त प्रशंसात्मक पद्य रचना से कालिदास की कीर्ति यूरोप में एक दम चारों ओर फैल गई।

जब श्री० 'शेजी' ने फ्रेंच भाषा में शाकुन्तल का अनुवाद किया, तो दूसरे श्री 'आर पिश्चले' ने भी एक उत्तम आलोचनात्मक संस्करण सन १८७७ में प्रकाशित कर दिया। उसमें पाठ प्रणाली वही रखी गई जो बंगाल में प्रचलित थी। देवनागरी पाठ-प्रणाली का अनुसरण करते हुए शाकुन्तल नाटक के [illegible] कई संस्करण प्रकाशित होते गए।

उनमें एक तो श्री० 'आ. बॉटलिक' द्वारा प्रकाशित हुआ, दूसरा जर्मन-भाषा में रुकर्ट ने सन १८७६ में अनुवाद किया, उसी वर्ष 'फ्रीटस्' का भी अनुवाद निकल गया।

हां, तो प्रथमतः कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के पढ़ने से ही यूरोप के विद्वानों का ध्यान संस्कृत-भाषा की ओर विशेष आकृष्ट हुआ; फिर तो गीर्वाण-गिरा का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता ही चला। धीरे-धीरे कालिदास के अन्याय काव्य-नाटकों के अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे। सन १८५७ में मि० आर० पिश्चले ने विक्रमोर्वशीय नाटक को सम्पादन कर प्रकाशित किया।

डॉ० विलसन् और केविल, इन दोनों ने भी इसका अनुवाद किया, (मि० कॉवेल का अनुवाद सन् १८५१ में प्रसिद्ध हुआ।) इसी प्रकार क्रमशः सन १८८० में 'फ्रीटफ' ने लिपजिक से भी एक अनुवाद निकाला। मालविकाग्नि-मित्र का अनुवाद मि० सी. एच. टोनी ने १८६१ में किया। जर्मन-भाषा में मालविकाग्निमित्र का अनुवाद पहिले सन १८६५ में 'मि० ए. वेबर' द्वारा भी हो चुका था। शाकुन्तल का अनुवाद 'मि० मोलियर विलियम्स' ने भी किया है।

कालिदास के काव्यों में रघुवंश भी श्रेष्ठ काव्य माना जाता है, वास्तव में उसमें एक ऐसी विशेषता हैं कि जो अन्याय काव्यों में नहीं दिखाई देती। उसमें मुख्यपात्र बीच में ही लुप्त हो जाता है, किंतु फिर भी आश्चर्य यह है कि कथा की शृंखला अटूट और अखण्ड रही हैं; तथा उसका रस भी अक्षत रहा है। सन १८३२ में 'स्टेन्जलर' सा० ने रघुवंश का लेटिन-भाषा में अनुवाद किया; तथा १८२८ में कुमारसम्भव का भी लेटिन-भाषा में अनुवाद कर डाला। मि० ग्रीफिथ साहब का किया हुआ उक्त काव्य का अनुवाद अंग्रेजी-भाषा में सन १८७६ में प्रकाशित हुआ था।

कालिदास के काव्यों में मेघदूत उत्कृष्ट-कोटि का खण्ड काव्य है। जिस समय गेटे ने इसे पढ़ा तो वे सहसा आनन्द सागर में गोता मारने लगे। इसका भी अनुवाद 'स्टेन्जलर' ने सन १८७८ में किया था। डॉ० विल्सन ने तो इसका तत्सम अंग्रेजी भाषा में पद्यानुवाद ही कर डाला (१८६७) में प्रकाशित।

सन १८८२ में टी. क्लार्क का किया हुआ मेघदूत का अनुवाद लन्दन नगर में, तथा मेक्समूलर द्वारा मेघदूत का जर्मन-भाषा में किया हुआ अनुवाद १८४७ में, और रूक का १८५९ में तथा फ्रीटज का अनुवाद भी सन १८७६ में प्रकाशित हुआ था। इसके सिवा अनेक अनुवाद हुए हैं, एच. जी. रुक का श्रेष्ठ है, उस पर रवीन्द्रनाथ ने पद्य में भूमिका लिखी है।

'ऋतु-संहार' काव्य कालिदास की सबसे छोटी रचना है। सम्भव है कि यह कवि की प्राथमिक-कृति हो। कि प्रतिभा इसमें भी झलकती है। मुग्धानलाचार्य (मेक्डोनल) ने इस लघु-काव्य की बड़ी प्रशंसा की है। इसका अनुवाद भी लेटिन एवं जर्मन-भाषा में किया हुआ पी० वी० बोलन द्वारा लिपजिक में प्रकाशित हुआ था।

इसके पश्चात् भारतीय विद्वानों द्वारा भी कालिदास के काव्य अंग्रेजी में अनुवादित हुए, उनमें सर्व प्रथम महामना अरविंद घोष का किया हुआ विक्रमोर्वशीय नाटक का अंग्रेजी पद्यानुवाद अप्रतिम एवं अपूर्व माना गया। इससे यह अवश्य ज्ञात होता है कि संसार के सारे विश्व कवियों में कालिदास का जैसा स्थान है; वैसा ही उनके काव्यों का भी पूर्णरी आदर है।

मोनियर विलियम्स का कहना है कि—कल्पना-शक्ति की प्रबलता और मानवीय अन्तःकरण का उत्कृष्ट ज्ञान, तथा रचना-चातुर्य, आदि गुण कालिदास के इतने बढ़े-चढ़े हैं कि उन्हें संसार का एक मात्र महापुरुष, तथा भारत का शेक्स पीयर ही कहना चाहिए।

अनुवाद, अनुकरण !

भगवद्गीता की टीकाओं की तरह ही कालिदास के का की टीकाएँ भी अनेक हैं। अकेले मेघदूत की लगभग टीकाएँ उपलब्ध हैं. मेघदूत के अंग्रेजी आदि विदे भाषाओं के अनुवाद तो हैं ही, पर भारतीय भाषा में भी अनुवाद नहीं है। हिन्दी में लगभग ८ अनुवाद उपलब्ध हैं व्रजभाषा में भी एक हैं, और मालवी-भाषा का अनु मुद्रित है, इसी प्रकार उर्दू का अनुवाद भी विक्रम में रूप में छपा है, मराठी में कई अनुवाद प्राप्त हैं, विपुल

चिपलूनकर का उसमें उत्तम है। हमारे वित्तमंत्री सर चिन्तामणि देशमुख ने भी एक अनुवाद किया है। गुजराती भाषा में १२ अनुवाद उपलब्ध हैं, उनमें स्व० किलाभाई घनश्याम का अनुवाद अप्रतिम है। बंगला में भी ३ अनुवाद हमने देखे हैं। पता नहीं मद्रासी—तेलगू—कन्नड़ आदि भाषाओं में मेघदूत के अनुवाद कितने हैं? परन्तु कालिदास के साहित्य पर उस प्रदेश का अनुराग किसी से कम नहीं है। मेघदूत के अनुकरण में भी पचासों दूत-काव्यों का आविर्भाव हुआ है और उसके चरणों को लेकर जैन-कवियों ने सुन्दर रचनाएँ की हैं। इस प्रकार कालिदास के काव्य ने जैसी व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है शायद ही विश्व के किसी कवि को प्राप्त हुई हो।

कालिदास का साहित्यानुशीलन।

कालीदासीय साहित्य के अनुशीलन में महाराष्ट्र सदैव अग्रणी रहा है। आज भी विद्वानों में यह प्रवृत्ति वर्तमान है, हिन्दी में जितना अनुराग स्व० द्विवेदीजी ने सरस्वती-सम्पादन काल में लिया है, उतना शायद ही अन्य ने लिया हो, आज डॉ० वासुदेवशरण और पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी इस दिशा में मौलिक चिन्तन करते रहते हैं, मराठी में कालिदास के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक स्वरूप पर अनेक ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। गुजरात के विद्वानों ने भी मराठी के बाद पर्याप्त प्रयत्न किया है, उनमें स्व० ध्रुव, किलाभाई, रामनारायण पाठक, प्रो० बलवन्तराय ठाकुर, न्हानालाल का स्थान प्रमुख है। स्व० ध्रुव और स्व० किलाभाई के श्रम सर्वथा मौलिक महत्व रखते हैं, और कवि के सम्बन्ध में अनेक महत्व के विषयों पर प्रकाश डालते हैं। योगी अरविंद और महाकवि रवीन्द्र के सिवा बंगाल के स्व० म. म. हरप्रसादजी शास्त्री, म. म. विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रख्यात पुरातत्वविदों ने कवि के साहित्येतिहास पर विविध दृष्टिकोण से विचार किया है। विक्रम के द्वारा इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग ४-५ वर्ष विक्रम कालिदास की ओर प्रेरणा देने वाले साहित्य का प्रकाशन किया है। १९३७ के यूरोप भ्रमण में हमें जर्मनी, इटली और फ्रांस के विद्वानों के सम्पर्क में आने का अवसर उपलब्ध हुआ था, और कालिदास की अवंती के निवासी होने के कारण कालिदासीय स्मारक के सम्बन्ध में अनेक बार जिज्ञासा की गई है। वहां से वापस आते ही 'कालिदास-स्मृति-दिवस' मनाने की भावना जाग्रत हुई, तब से सतत प्रयत्न होता रहा है। उसके फल स्वरूप विक्रम और कालिदास की ओर जन-प्रवृत्ति भी पर्याप्त हुई है। बहुत से साहित्य का निर्माण भी हुआ है, अनेक पत्र-पत्रिका में कालिदास सम्बन्धी चर्चा भी निरन्तर हुई, और होती रहती है, देश के विभिन्न भागों में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन प्रतिवर्ष महाकवि की स्मृति मनाई जाती है।

हमारी राष्ट्रीय विभूति कालिदास उपेक्षित!

किंतु कालिदास के इस देश में उसे जैसा व्यापक स्वरूप राष्ट्रीय-रूप प्राप्त होना चाहिये वह अभी भी नहीं हुआ है। यूरोप में आज शेक्सपीयर जैसे महान् साहित्यकार को अनेक राष्ट्र-राष्ट्रीय-दृष्टि से अर्घ्य अर्पित करने में अपना कर्तव्य अनुभव करते हैं। वह भावना हमारे देश में अब भी जाग्रत नहीं हो पाई है, शासनों को कोई अनुराग प्रतीत नहीं होता, स्वतन्त्र देश हो जाने पर भी हमारी सांस्कृतिक भावना उद्बुद्ध नहीं बन रही है, यह बड़ी चिंता की बात है। हम विदेश की प्रगति पर दृष्टि रखते हैं किंतु उसकी शेक्सपीयर सम्बन्धी राष्ट्रीय-रूप प्राप्त करने वाली विभूति-पूजा की कैसे उपेक्षा करते हैं। जितना अनुराग विदेशियों ने कालिदास में लिया है, हम उनसे भी प्रेरणा प्राप्त नहीं करते। चाहिए तो यह था कि हमारी समस्त देशीय सांस्कृतिक और शिक्षण संस्थाएं महाकवि के प्रति एक दिन आदर व्यक्त करती, और शासन उन्हें प्रेरित करता। हमारे विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में कालिदासीय साहित्य के अन्वेषण, अनुशीलन-अध्ययन के लिए अभिनव दृष्टिकोण से अन्वेषित करने वाले विद्वानों को उपाधि देकर प्रोत्साहित-प्रेरित किया जा सकता है। दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जिस कवि का साहित्य अन्वेषक की प्रतिभा को नित्य-नवीन स्फूर्ति प्रदान करता है, वह हमारे विश्वविद्यालयों के ज्ञान-संवर्धन-अनुशीलन का विषय नहीं बन सकता है? स्वतन्त्र राष्ट्र में भी उसके राष्ट्रीय-सन्मान का भाजन कवि उपेक्षित रहने दिया जा सकता है? कितनी विचित्र बात है।

मतभेदों की परंपरा !

कालिदास के काल के विषय में मतभेद है। स्थल के विषय में मतभेद है। व्यक्तित्व के विषय में मतभेद है, और कृति के सम्बन्ध में भी। ये मत-भेद यद्यपि जीवन के लक्षण हैं। वैसे तो मेघदूत वर्णित रामगिरि, देवगिरि, अलका आदि स्थल संकेतों पर भी सन्देह स्थापित किया जाता है, किन्तु ये वाद-चर्चाएं प्रशंसनीय हैं, कवि की महत्ता की प्रतीक हैं।

स्मृतिदिन के संबन्ध में !

परन्तु महाकवि की स्मृति-पूजा के एक दिवस निश्चित करने के लिए भी मतभेद को अवसर दिया जाता है। अवश्य ही कतिपय बंगाली-बन्धुओं तथा कालिदासीय साहित्य से स्वल्प-परिचित-जनों को छोड़ 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' के अनुसार आषाढ़ मास में स्मृति मनाने का अनुरोध महत्व नहीं रखता; आज देश के अधिकांश भाग में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा ही स्वीकृत है। आरम्भ में हमें इस दिन की स्थापना के लिए विवाद-चर्चाओं का सामना करना पड़ा है, किंतु कालिदासीय साहित्य के कीर्ति लब्ध विद्वान महामहोपाध्याय श्री मिराशीजी एम० ए० ने अपने 'कुन्तलेश्वर दौत्य' वाले लेख में 'कार्तिक' का आरम्भ ही में जोरदार समर्थन किया है। विक्रम वर्षारम्भ के रूप में तथा कालिदास और विक्रम की एकता के अनुसार हम अवन्ती—विक्रम और कालिदास की इस त्रिपुटी को उचित रूप में कार्तिक-शुक्ल में ही स्मरण कर सकते हैं। जो लोग बंगाल के आन्दोलन से परिचित नहीं हैं, वे आषाढ़स्य प्रथम दिवसे की भावना में एक प्रांतीयता को अनजाने प्रेरित करते हैं। वस्तुतः कालिदास के नाम के साथ ही विक्रम की स्मृति सजग होती है, और विक्रम—कालिदास के युगल के साथ ही अवन्ती भी सहसा समन्वित हो जाती है। इन तीनों को एकत्रित करने वाला विक्रम का वह वर्षारम्भ है जिसमें उसकी स्मृति निहित है—वह कार्तिक शुक्ला ही है। यही समस्त गुजरात मालव एवं व्यापार-जग में व्याप्त है। मेघदूत के आरम्भ से तो हम विरह-व्यथित यक्ष की करुणा-धारा का आषाढ़ में स्मरण करते हैं, किंतु मेघदूत के ही माध्यम से कवि की स्मृति मनाने को उद्यत हों तब भी हमें उसके 'शापांतो मे भुजग शयना दुत्थिते शार्ङ्गपाणौ' शापांत हो जाने पर देवोत्थापन के मंगल-प्रसंग में विरहावस्था समाप्त हो जाने पर ही क्यों न मनाएँ। यह समय भी कार्तिक ही आएगा, और 'कार्तिक' ही विक्रम वर्षारम्भ होने के कारण महाकवि, उसके आश्रयदाता और अवन्ती तीनों को एक साथ स्मरण करा देता है। इसमें मतभेद का कहां अवकाश रहता है ? हम इतिहास और परम्परा को भी इस तरह समन्वित कर लेते हैं। आशा है कार्तिक-शुक्ला एकादशी को महाकवि की स्मृति-पूजा का सर्वत्र आयोजन होगा।

—:—

सरस्वती प्रेस का नवीन आयोजन जनवरी १९५४ से प्रकाशित

हिन्दी में कथा-साहित्य का अनुपम मासिक

क हा नी

जिसमें हिन्दी की उत्कृष्ट, सरस, सुरुचि-पूर्ण एवं प्रगतिशील कहानियों के साथ भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं की श्रेष्ठतम कहानियों के प्रामाणिक और धाराप्रवाह अनुवाद पढ़िये।

कहानी' के साथ सम्बन्धित 'पुस्तकालय' के द्वारा हिन्दी में प्रकाशित होने वाली समस्त पुस्तकों का विशद विवेचन और परिचय प्राप्त कीजिए।

एकप्रति का मूल्य चार आना : : : : वार्षिक चन्दा तीन रुपए

—वी० पी० नहीं भेजी जाती—

व्यवस्थापक : 'कहानी' कार्यालय,
सरस्वती प्रेस, ५, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहबाद—१

महाकवि चक्रवर्तिन छित्तप

डॉ० डी० सी० सिरकार एम. ए., पी. एच. डी.

संस्कृत ग्रन्थों में छित्तप नामक कवि रचित कितने ही पद पाए जाते हैं, यद्यपि उक्त कवि का कोई सम्पूर्ण ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है। कवि का नाम कभी-कभी चित्तप, छित्तिप, छिन्नम और छित्रम के रूप में भी उद्धृत होता है। श्री एफ० डब्लू० थॉमस द्वारा **कवीन्द्रवचन समुच्चय** (कलकत्ता १९१२ पृष्ठ ३७) की सुन्दर भूमिका में छित्तप कवि के काव्य प्रतीकों का संकलन किया गया है, जब कि उसका एक ही पद **कवीन्द्रवचन समुच्चय** में है जो 'ई० स० १२०० के बाद का नहीं' काल संकेत सहित भूषित है। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी श्रीधरदास ने अपने **सदुक्तिकर्णामृत** (ई० स० १२०५-०६ में संकलित) ❀ में छित्तप के उन पदों को संकलित किया है जिसमें **कवीन्द्रवचन समुच्चय** का पद भी सम्मिलित है। बाद के ग्रन्थों में छित्तप का प्रतिनिधित्व हरिकवि के **सुभाषितहारावलि** में एक पद से, **अलंकार कौस्तुभ** और **गणरत्नमहोदधि** में दो पदों से तथा जल्हण की **सुक्तिमुक्तावलि** में ७ पदों से किया गया हैं। यही सात पद भोज परमार के **सरस्वतीकण्ठाभरण** में भी उद्धृत हैं। इनमें के कितने ही पदांश **सुक्तिरत्नावलि** (विद्यानाथ) **सुभाषितावलि**, **सुभाषित संचय पद्यवेणी** (वेणीदत्त) **पद्यरचना**, **सारसंग्रह** (शम्भुदास), **सुभाषित-रत्नकोष** (भट्ट श्रीकृष्ण), **सारसंग्रह सुधार्णव** (भट्ट गोविंदजीत), **पद्यरत्नांगिरि** (वज्रनाथ) आदि। किंतु यह भी उल्लेखणीय है कि उन्हें कश्यप नामक किसी अनजाने कवि के अथवा सिंहदत्त, दाक्षिणात्य अकालजलद, और हेमन्त जैसे अनेक कवियों या **भोजप्रबन्ध** जैसे ग्रन्थ के नाम से घोषित किया जाता है।

सदुक्तिकर्णामृत में छित्तप का एक पद इस प्रकार उपलब्ध है—

वाल्मीक—कतमोसि कस्त्वमथवा व्यास्य येनेशभोः
श्लाघ्यः स्यात्तव भोज—भूपति—भुजा स्तम्भ स्तुता-
द्युमाः।
पगुः पर्वतमारुरुक्षसी विधु-स्पर्शं करन्मेहसे दोर्भ्यां साग-
रमुत्तितीर्षसि यदिभ्रमो किमत्रोत्तरम् ॥

इसमें सन्देह नहीं कि छित्तप भोज के समकालीन थे, कदाचित उनके राजकवि भी हों। उस काल के परमार राजाओं में भोज की गणना की जाती है। थॉमस ने लिखा है—"सरस्वतीकंठाभरण में कितने ही अंश समकालीनों के हैं।" छित्तप के लिए लिखा है—"भोज का समकालीन, दसवीं शताब्दी" जब कि अन्य स्थानों पर उसी ग्रन्थ में भोज परमार ११ वीं शताब्दी के अन्तर्गत उल्लेखित है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर विक्रम संवत १०७६ और ११०३ (सन १०२० और १०४७) के बीच भोज का समय निश्चित होता है। उसकी मृत्यु विक्रम संवत् ११११(सन १०५५.५६) में या इसके पूर्व हुई है, जब उसके बेटे और उत्तराधिकारी जयसिंह ने मान्धाता के सम्बन्ध में ताम्रपत्र प्रकाशित किया था, ऐसा विश्वास किया जाता है। परम्परा के अनुसार जैसा कि भोजप्रबन्ध में उल्लेख है, भोज ने ५५ वर्ष ६ महीने राज्य किया। हम साधारणतया भोज का राज्य-काल सन १०१०-५५ तक मान सकते हैं। भोज का समकालीन (कदाचित राजकवि) छित्तप ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ और मध्य ही अपने उत्कर्ष पर रहा होगा।

इस वर्ष के आरम्भ में मध्यभारत और राजस्थान के कुछ जिलों में अपनी यात्रा के समय मुझे जनवरी (१९५३) के तीसरे सप्ताह में भूतपूर्व गवालियर राज्य के भेलसा नामक स्थान के दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ। भेलसा के डाक बंगले में मैं ठहरा हुआ था। डाक बंगले के हाते में पड़े हुए शिला लेखों की जांच करने में मुझे बहुत प्रसन्नता हुई जो खुली हवा में स्थित म्युजियम की वस्तुओं की भांति थे। मुझे बताया गया कि वे स्थानीय उत्साही सज्जन श्री राजमल जैन द्वारा संग्रहित किए गए हैं, जब कि मध्यभारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने बहुत बाद में उन वस्तुओं के प्रति अपना कर्तव्य व्यक्त किया। वास्तव में यह खेद का प्रसंग है कि ये भग्नावशेष, जिनमें कुछ तो बहुत महत्व के हैं, बिना किसी सुरक्षित स्थान के खुली धूप और पानी में पड़े हैं। समय के प्रतिशोध से वे अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित थे जब कि वे धरती में दबे पड़े थे।

❀ १२ वीं शताब्दी में संकलित नहीं किया गया, जैसा कि थॉमस ने सूचित किया है।

डाक बंगले के खुले हुए म्युजियम में मुझे एक बड़े प्रस्तर के ऊपरीभाग पर, ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग के लक्षणों से आवृत्त नागरी ढंग की लिखत लिपि मिली। खुदे हुए इस प्रस्तर के सिरे का बांया भाग टूटा हुआ एवं लिखित लगभग अस्पष्ट है। किंतु कुछ मिनटों के प्रयत्न के बाद मुझे विश्वास होगया कि खुदे हुए अक्षरों की अन्तिम दो पंक्तियों में निम्न लिखित महत्व की बाते अंकित हैं:—

१ कृतिरियम् महाकविचक्रवर्त्ती—पंडित—श्री—चछि (छि) त्तपस्य;

२ कारिते—यम् दंडनायक—श्री—चन्द्रेन

प्रस्तर पर खुदी हुई सामग्री इस प्रकार छित्तप नामक कवि द्वारा लिखी गई प्रतीत होती है जो **महाकविचक्रवर्तिन** की उपाधि से विभूषित था और जो चन्द्र द्वारा खोदी गई जिसे शासकीय रूप से **'दंडनायक'** (सेना का उच्चाधिकारी) का पद प्राप्त था। उक्त लिखत को पढ़ते ही मुझे तत्काल यही सम्भावना हुई यह **महाकविचक्रवर्तिन** भोज परमार के दरबारी कवि के अतिरिक्त अन्य नहीं हो सकता। मैंने पूर्णरूपेण शिलालेख का महत्व समझ लिया, पर इसी बात का आश्चर्य हुआ कि इतनी महत्वपूर्ण इतिहास-सामग्री की ओर इतिहासज्ञों का ध्यान अब तक क्यों न गया। मुख्यतः इसका कारण मुझे समझ में न आया। गवालियर स्टेट (आजकल मध्यभारत) भारत के उन भागों में से है जिन्हें काफी अच्छी तरह खोजा जा चुका है और, अध्ययन मनन की सूचनाएँ तथा शिलालेखों की सामग्री समय-समय पर विद्वत्ता पूर्वक वार्षिक विवरणों में प्रकाशित की है (उत्साही श्री एम० बी० गर्दे, अवकाश प्राप्त भू० पू० गवालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के संचालक इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं।) खोजबीन करने पर यह ज्ञात हुआ कि छित्तप कवि रचित सामग्री के प्रति दुर्भाग्य पूर्ण उपेक्षा का कारण मध्यभारत के पुरातत्व विभाग के अफसरों की असफलता है जिनके कारण शिलालेख का पठन न हो सका तथा उसे प्रश्नवाचक ही बना रहने दिया।

गवालियर राज्य के पुरातत्व विभागीय विवरण के पृष्ठ २५ पर उपरोक्त शिलालेख के सम्बन्ध में लिखा गया है—दूसरा शिलालेख, अवशेषों में से प्राप्त खण्ड-मात्र, प्राचीन नागरीलिपि में है जो लिपि विज्ञान के आधार पर १२ वीं शताब्दी का प्रतीत होता हैं। यह ऊपर से बाईं ओर टूटा हुआ है। यह किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति कदाचित कोई राजा या मन्त्री, के गुणों का उल्लेख करने वाली प्रशस्ति है, जिसमें वह सूर्य के समान घोषित किया गया हैं, जिसे राहु अपने पंजों में नहीं ले सका। चूंकि शिलालेख बहुत ही बुरी अवस्था में है, उसका उद्देश्य ज्ञात नहीं किया जा सकता। दंडनायक श्री चन्द्र के उदाहरण के आधार पर उक्त प्रशस्ति का रचयिता महाकवि चक्रवर्ती श्री द्वित्प (?) है।" दुर्भाग्य से कवि का नाम बहुत ही स्पष्ट रूप से **छित्तप**, निश्चय ही द्वित्प नहीं जैसा कि रिपोर्ट में लिखा है। साथ ही शिलालेख में सूर्य की प्रशंसा है, न कि किसी राजा या मन्त्री की प्रशस्ति। इसी प्रकार गवालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के एक अन्य विवरण में भी उक्त शिलालेख के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण सूचना उपलब्ध है। **'गवालियर राज्य का अभिलेख'** (हरिनिवास द्विवेदी) के पृष्ठ ९२ पर अन्य भ्रमपूर्ण बातों के साथ ही कवि का नाम **द्वित्रय** लिखा गया है जो और भी अशुद्ध है।

प्राचीन विदिशा नगर (भिलसा के निकट बेतवा वेत्रवती) के दूसरी ओर स्थित वर्तमान बेस नगर ने जो कि आक या दशार्ण जनपद (उत्तरी मालवा) की राजधानी था, मध्य काल में भिलसा को समृद्ध बनाया। विश्वास किया जाता है कि भिलसा (भेलसा) शब्द 'भइलस्वामिन्' के नाम से नग के एक बड़े मन्दिर में पूजे जाने वाले सूर्य भगवान से सम्बन्धित हैं।

'भइलस्वामिन्' नगर का उल्लेख विक्रम संवत ११ ११३३ के एक शिलालेख में आया है। * उद (भिलसा जिला) के उदयेश्वर के मन्दिर के वि० सं० १२ (ई० स० ११७३) के शिलालेख में मुझे मन्दिर के आस मण्डल या जिले का नाम भइलस्वामिमहाद्वादशक (भइ स्वामिन १२) के रूप में मिला है। ‡ परन्तु यह नाम मण के प्रमुख नगर के नाम पर आधारित था। भिलसा में भइ स्वामिन सूर्य देव की पूजा की प्रामाणिकता निश्चित

---

* इण्डियन एन्टीक्वेरी, vol. xvi p. p. २०८। Ibid, vol. xviii, p. p. 347 H. E.

की जा सकती है परन्तु यह असम्भव नहीं है कि भास्वत जो कि मालव नदी (कदाचित वेत्रवती या बेतवा) के तीर पर स्थित था, जैसा कि विक्रम संवत १०११ के शिलालेख में उल्लेख, भेलसा ही हैं।* इस दृष्टि से भइलस्वामिन् ई० स० १० वीं शताब्दी में भास्वत के नाम से ही प्रख्यात् होगा।

नगर और आस-पास के क्षेत्रों से पाए गए परमारों के शिलालेखों से सिद्ध है कि भिलसा भोज के राज्य का भाग था (देखिए भांडारकर की सूची, क्रम० १६५७, १६५८, आदि) दण्डनायक चन्द्र, जैसा कि सम्बन्धित शिलालेख में उल्लेख है, कदाचित भोज के अधिकृत भिलसा का शासक था वह सूर्य का भक्त था। उसने सम्भवतः कवि छित्तप से सूर्य की प्रशस्ति लिखने के लिए प्रार्थना की होगी जिसे कि पत्थर पर खुदाकर सूर्य मन्दिर के दीवार में लगा दिया जाए। इस सचाई से संकेत मिलता है कि छित्तप भिलसा क्षेत्र का निवासी था। महाकवि चक्रवर्तिन की उपाधि उसे भोज परमार के द्वारा प्रदत्त की गई प्रतीत होती है। कदाचित् वह भोज के दरबार का मुख्य कवि भी हो।

छित्तप अनेक गुणों से विभूषित कवि था यह संस्कृत ग्रन्थों से ज्ञात होता है। किंतु जैसा ऊपर बताया गया उसका साहित्य उसके नाम के सही रूप से युक्त नहीं है। इतना ही नहीं छित्तप के नाम से प्राप्त कुछ छन्द अन्य ग्रन्थों में 'अज्ञात कवि' या अन्य नाम से प्राप्त होते हैं। विचाराधीन शिलालेख जो कि कदाचित् कवि के जीवन काल में ही खुदा है, अब तक के प्रमाणों के आधार पर छित्तप का खण्ड काव्य ही समझा जा सकता है। इस दृष्टि से उसका अपना महत्व भी है। सूर्य के प्रति उपलब्ध सम्पूर्ण प्रशस्ति, अनुष्टुप छन्द में लिखी गई है। जैसा कि ऊपर लिखा है कुछ अंश तो शिलालेख के पढ़े भी नहीं जा सकते। नीचे हम शिलालेख की प्रतिलिपि दे रहे हैं—

राहू स्त्वद-रोचिषे द्रुह्यंन्नहतास्तेनुजन्मना।
शिरोलुत्वापि दुष्टे रौ याचना कौशलंहितत् ॥
तजस्तवाद्रंमा=द्रेषु क्रूरं क्रूरेषु जृंभते।
भक्ता-भिप्राय-निघ्नस्य चन्द्रा + + + क्षते ॥
फंणा-मणिषु शेषस्य मुक्ता-मणिषु तोयधेः।
तारा-मणिषु चव्योम्न-स्तव रोचिर=विरोचते ॥
तव संक्रान्तमे=नांके चक्रवाले पयोमुचि।
द्यौतिर=ज्योत्स्नेति सन्ध्ये ति सुरधन्वे=ति गीयते ॥
………….लाक्षा, मद-रागम् कपोलयोः।
पयोधरस्त-तेत्=रेचिः प्रतिच्याः कुंकुम—द्रवः ॥
स्वर्भानु-स्त्वाम् गृह्णाति क्रीड़ालोलां कलावति ॥
अन्तरद्धस्त्से त्वम=ब्जिन्याः प्रेम्णो हिकुटिला गतिः ॥
न तथोन्निद्रमब्जास्या + + सी पद्मिनीम्।
नूनं विकथ्थनोर्थेन शब्देनत्वं विकर्त्तनः ॥
द्यामालिंगाब्जिनीं चम्त्रा अपापच्छिं व्रजोत्तराम्।
राजप्रच्छ्यां प्रतीच्यांवादिनश्रीस्त्वांन्नमुंच्यति।

+ + +

रुच्यमानं पुनः सात्वं अन्हामन्तेनुगच्छति।
पूर्वा मुत्थीयते प्रातः पश्चात् संविष्यतेनिशि ॥
अहो सुगृहिणी वृत्तिम् उपसा तेनुगृह्यते।

+ + ÷

करस्पर्शोर्पिते प्रापद्यौर्निमीलित तारका।
यासौ सर्वांग संक्रान्तानविभ्रद्वः किं करिष्यति।
… … चन्द्रतादङ्क प्राच्यांसन्ध्यांशुकम् दिवः।
ह्रीयते रोदुहारश्च पूर्णं पात्रं तवागमे ॥
प्राच्यांमुद्गच्छतोयातुः प्रतीचीं श्लिष्यतोदिवम्।
अवदन्नाथ बहीषु प्रतिनक्तिः प्रियासुते ॥
तमोभेत्तुं यथा बाह्यम् तथान्तर मपीष्यते।
तवद्रूपे यथा रात्रिस्तथा निद्रापि नश्यति ॥
इनोश्यकोंसि सूर्योसि पर्याप्तेत्येवते स्तुतिः।

यह देखा जा सकता है कि छित्तप की शैली सादी है और कुछ अंश उसे निश्चय ही महाकवि घोषित करते हैं। एक पद में वर्णित भावों के अनुसार चन्द्रिका केवल सूर्य रश्मियों का चन्द्र पर पड़ने वाले प्रकाश की प्रति प्रकाश है। यही भाव कालिदास के रघुवंश और आसाम हरजर वर्मा हयुंगथल ताम्रपत्र की २४-२५ वीं पंक्ति में भी मिलता है। मल्लिनाथ की रघुवंश की इन पंक्तियों पर टीका ध्यान देने

—शेष पृष्ठ ३६ पर

---

* Ep. Ind. vol. 1. p. p. 124.

राम राज्य, गीता और वेद

श्री० रणछोड़दास 'उद्धव'

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥
—अथर्ववेद १९·४१·१

'सुख और कल्याण को चाहते हुए स्वर्गीय जीवन वाले ऋषियों ने पहिले तप, और दीक्षा की शरण ली, फिर राष्ट्र, राष्ट्रीय बल एवं राष्ट्रीय ओज पैदा हुए। इसलिये हे विबुधो! इस राष्ट्रभाव, राष्ट्रीय बल और राष्ट्रीय ओज को प्राप्त करो, एवं एक होकर इसे नमस्कार करो।'

महात्मा गांधीजी की प्रबल इच्छा थी कि हमें फिर से रामराज्य की प्राप्ति हो। हमें यह विचार करना है कि जिस सर्वमानवप्रिय, आनंदप्रद रामराज्य की हम इच्छा करते हैं, उस राम राज्य का विधान शास्त्र क्या था। रामराज्य का सच्चा ऐतिहासिक स्वरूप वाल्मीकीय रामायण में मिलता है।

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में उस सुराज्य संपन्न स्वराज्य के विधान सूत्र सखा अर्जुन को सुनाये थे। उस विद्या को गीता में राजर्षि-विद्या कहा है, और अव्यययोग भी। उसकी परंपरा अति प्राचीन दिखलाई है। प्राचीनता के नाते सबसे पुराना विश्वग्रन्थ केवल वेद ही हैं। अतः हम गीता, रामराज्यप्रद वा० रामायण आदि ग्रन्थों का तथा विश्वविद्याओं के मूल--आधार वेद का परस्पर क्या संबंध है यह साररूप से दिखलाते हैं।

भारत में ही नहीं, अखिल विश्व में भगवान् कृष्ण से भी अधिक भगवद्गीता का प्रचार है। विश्व के विद्वानों ने गीता की ओर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखा है। किसी ने दार्शनिक दृष्टि से, किसी ने धार्मिक दृष्टि से और लोकमान्य तिलक आदि ने व्यावहारिक दृष्टि से भी इसका अवलोकन किया है। गीता की सैकड़ों टीकाएं देख कर साधारण साधक को भ्रम हो जाता है कि हमें किस अर्थ का अवलंबन करना चाहिए, यह भ्रमात्मक दशा तब से प्राप्त हुई है जब से वेदस्वाध्याय का लोप हुआ है, और लोगों ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों का ही आश्रय लिया है। आज यह दशा हो गई है कि आर्षग्रन्थों का रहस्यार्थ विद्वानों को भी आकलन करना कठिन हो गया है। कई विद्वान् तो आदर्श राम और कृष्णादि की कथाओं को भी कवि कल्पना ही समझने लग गये हैं! फिर रामराज्य के विधान का क्या संबंध! इस भ्रम होने का प्रधान हेतु यही है कि उन ऋषि-मुनियों ने जिस दृष्टि से उन ग्रंथों को लिखा था, उस दृष्टि से ग्रन्थ देखना बन्द हो गया। श्री व्यासदेव ने कहा है कि—

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।'

यानी महाभारत, रामायणादि इतिहासों के द्वारा और भागवतादि पुराणों के द्वारा वेदार्थ का विस्तार जान लेना चाहिये। आदि कवि महर्षि वाल्मीकिजी ने भी अपने आदि काव्य रामायण में कहा है कि—

'इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
—वा० रा० १।१।९८

अर्थात् 'जो मनुष्य शुद्धि के साधन, पापों के नष्ट करने वाले अतिपावन और वेद के तुल्य इस राम चरित्र को पढ़ेगा वह सब पापों से छूट जावेगा'। तथा—

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥
—वा० रा० १।४।६

अर्थात् 'पवित्र वाल्मीकि ने उन कुश-लव दोनों भ्राताओं को धारणावती बुद्धि वाले और चारों वेदों में निपुण देख कर वेदार्थ के प्रतिपादन रूप प्रयोजन के लिये उन्हें इस काव्य को ग्रहण करवाया।' स्वयं भगवान् कृष्ण ने भी कहा है कि—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥
—गीता १५।१५

अर्थात् 'सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों का जानने वाला मैं ही हूं।' भगवान् कृष्ण ने यह भी कहा है कि—

इस अविनाशी योग को मैंने सूर्य को कहा था और सूर्य ने मनु के प्रति कहा, मनु ने राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुए इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु हे अर्जुन ! वह योग बहुत काल से लोप हो गया था। (गीता ४।१-२)

इस कथन से ज्ञात होता है कि वह अव्यय योग वेद ही था जो गीता के रूप में अवतरित हुआ। वेद और गीता में अनन्यता है, इसी हेतु गीता की इतनी महिमा फैली है हमारे यहाँ केवल भगवान् के अवतार होने से ही उनके वचन प्रमाण नहीं होते किन्तु वेदार्थ प्रकाशक होने से प्रमाण होते हैं। हम गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन हृदय में अंकित कर सकते हैं कि—

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार॥

वेदार्थ प्रकाशक होने से ही भगवद् गीता को आचार्यों ने परस्पर वेदान्तप्रस्थानत्रयी में इसे रक्खा है। परन्तु आचार्यों में झगड़ा है। कोई इससे अद्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत, कोई द्वैताद्वैत और कोई द्वैत सिद्ध करते हैं। कोई गीता का प्रधान विषय ज्ञान मानते हैं, कोई कर्म, कोई भक्ति और कोई योग मानते हैं। स्व० श्रीमधुसूदनजी ओझा ने गीता में राजर्षिविद्या, सिद्धविद्या, राजविद्या और आर्ष विद्याएँ दिखलाई हैं। इन चारों विद्याओं में राजर्षि विद्या और राजविद्या भगवान को प्रिय है। राजर्षिविद्या तो भगवद्विद्या ही कही गयी है। पहले छः अध्यायों में राजर्षिविद्या, सातवें और आठवें अध्यायों में सिद्धविद्या ९ वें अध्याय से १२ वें अध्याय तक राजविद्या और इसके आगे छः अध्यायों में आर्षविद्या कही है। इन चारों विद्याओं के द्वारा गीता का सिद्धान्त बुद्धियोग दिखलाया है। भगवान् को अत्यंत प्रिय जो राजर्षिविद्या है, उसी में इस योग के अनुयायी राजाओं की परंपरा कही है। उसमें इक्ष्वाकुराजर्षि भी हैं, जिनके कुल में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र अवतरित हुए थे। परंपरा से उन्हें यह राजर्षिविद्या भी प्राप्त हुई थी एवं तदनुसार उन्होंने आदर्श राज्य करके दिखाया था, उसे ही हम सुराज्य और स्वराज्य या 'रामराज्य' कहते हैं।

गीता की राजनैतिक दृष्टि से आलोचनात्मक 'गीता का राजकीय तत्वालोचन' नामक पुस्तिका है। वह राजनीति के जानकारों के लिए सहायक हो सकती है।

स्व० 'ओझाजी' और श्री० 'सातवलेकरजी' की गीता-व्याख्याएँ पढ़ कर हम पं० श्री द्वारकाप्रसादजी मिश्र के के कथनानुसार कह सकते हैं कि "ज्यों ज्यों आज का विज्ञान कोरा भौतिक विज्ञान ही न रह कर मनोविज्ञान में परिणत होता जायगा, त्यों-त्यों गीता का ज्ञान फिलासफी मात्र न रह कर प्रयोगात्मक विज्ञान का तथ्य माना जाने लगेगा। वह दिन शायद बहुत दूर नहीं है जब भगवद्गीता धर्म विशेष का ग्रन्थ न रह कर मानव जाति मात्र को जीवन-विज्ञान सिखाने वाला ग्रन्थ माना जाने लगेगा।"

एक विद्वान् 'इमं विवस्वते योगं' की परंपरा दिखलाते हुए वेद के अत्यन्त प्राचीन काल का उल्लेख किया है १ तमोयुग, २ प्राणीयुग, ३ आदियुग, ४ मणिजायुग, ५ स्पर्द्धायुग, ६ देवयुग-आदि इतिहास खंडों में उसे विभक्त किया है। ये भारतीय-इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी विषय हैं। उनका स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है।

१ तमोयुग—

जिस युग के सम्बन्ध में हम कोई विचार नहीं कर सकते वही तमोयुग है। यही युग वेद में असद्युग नाम से संबोधित हुआ है—

१ तम आसीत् तमसा गूहमग्रे

(ऋग्वेद १०।१२९।३)

'आरम्भ में तम तम से ढका हुआ था अर्थात् हमारे लिये सर्वथा अविज्ञेय अतएव तमोमय सृष्टि प्रपंच उस युग में सचमुच तम से ही आवृत था।'

२ असदेवेदमग्र-आसीत् (तै० ब्रा० २।२।५)

'यह सब कुछ प्रपञ्च पहले असत् (अविज्ञात) था।'

३ इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीत्।

(तै. ब्रा. २।२।९)

'आज हम जो कुछ देख रहे हैं, वह पहले कुछ न था।'

४ देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत।

(ऋ० १०।७२१)

'देवों के पूर्वयुग में असत् से ही सत् का विकास हुआ'

५ आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः।
(मनु० १।५)

'यह व्यक्त प्रपञ्च किसी समय तमोभूत, अविज्ञात, लक्ष्यशून्य, तर्कशून्य अङ्गुलिनिर्देशरहित एवं सोता हुआसा था।'

६ असाम्प्रतमविज्ञातं ब्रह्माग्रे समवतत।
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम्॥
—वायु पु० १।२२

'ब्रह्म नाम का पदार्थ पहले वर्तमान स्थिति से भिन्न था, अविज्ञेय था। उसी ब्रह्मात्मा से यह कुल व्याप्त था। ब्रह्ममय यह प्रपञ्च उस समय तमोमय था।'

७ महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तमोमयम्।
प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थाणुचरिष्णुच॥
—मत्स्य पु० ३।२५

'महा प्रलय काल के अन्त में यह सब कुछ स्थावरजंगम प्रपञ्च तमोमय, प्रसुप्त, तर्कशून्य, अज्ञात, अलक्ष्य अविज्ञेय एवं ज्ञान सीमा से बहिर्भूत था।' "इदं वा अग्रे नैव मिकञ्चनासीत्, न द्यौरासीन्न पृथिवी, नान्तरिक्षम्।"
(तै० ब्रा० २।२।६)

इत्यादि वचन भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि कर रहे हैं। संसार की यह अज्ञात दशा कब रही होगी यह निर्णय करना कठिन है।

प्राणीयुग—

आगे जीव सर्ग का विकास हुआ। किसी अचिन्त्यशक्ति की मानस प्रेरणा से दाम्पत्य भाव द्वारा जड़रूप धातु एवं मूलजीव नाम के तीन सर्गों का विकास हुआ। इस युग के सभ्य प्राणी पशु ही माने गये। क्योंकि इस युग के मनुष्यों के गुरु ये पशु ही थे। इसी दृष्टि से इस युग को हम पशु युग भी कह सकते हैं। तत्कालीन मनुष्यों ने इन पशुधर्मों को ही अपनी जीवन यात्रा का साधन बनाया। गोरेला, शिम्पाञ्जी, वनमानुष, सिंह, व्याघ्र, वराह आदि हिंसक पशुओं से परिपूर्ण, महाभयावह दुस्तर उन अफ्रिका के जंगलों में रहने वाले, उच्छृङ्खल सर्वथा नग्न, पूर्ण असभ्य एवं नरमांसभक्षी जंगली मनुष्य आज भी उस युग की याद दिला रहे हैं।

आदियुग—

प्रकृतिदेवी की अनुकम्पा से आगे जाकर मनुष्य की बुद्धि में थोड़ा सा विकास हुआ। ज्यों-ज्यों इनकी बुद्धि विकसित होने लगी त्यों-त्यों इन्होंने अपने जीवन में क्रमिक सुधार करना प्रारम्भ किया। हजारों वर्षों तक इसी युग का प्राधान्य रहा। इस युग के स्मारक भी आज हमें जंगल प्रदेशों में प्रचुरमात्रा में उपलब्ध होते हैं।

मणिजायुग—

इस युग में मानव सभ्यता का एक प्रकार से विकास हुआ। ग्रामनिर्माण, कृषिकर्म, कपास-रेशम आदि के वस्त्रों का निर्माण,, पञ्चायती व्यवस्था, लोकसत्तात्मक शासन (प्रजातंत्र), वापी-कूप-तडागादि का निर्माण, उद्यान-उपवन आदि की व्यवस्था, गान्धर्व-विवाह-पद्धति, ज्ञान क्रिया अर्थ व शिल्प के आधार पर मानव समाज का चार भागों में विभाजन, विविध वैज्ञानिक आविष्कार आदि इस युग की प्रधान २ विशेषताएं हैं।

तत्कालीन मानव समाज की वे चारों श्रेणियां उस युग में क्रमशः साध्य, महाराजिक, आभास्वर और तुषित इन चार नामों से प्रसिद्ध थीं। देवयुग में आविष्कृत होने वाली वर्णव्यवस्था का मूल ये ही चार श्रेणियां थीं। इन चारों जातियों का नेतृत्व साध्यजाति के ही हाथों में था। अपनी अपूर्व प्रतिभा के बल से इसी साध्य जाति ने प्राकृतिक तत्वों की परीक्षा द्वारा सर्वप्रथम यज्ञविद्या (कर्मेष्टी) का आविष्कार किया था। इसी के आधार पर आगे चलकर (देवयुग में) भौम देवव्यवस्था के प्रवर्तक ब्रह्मा के आदेश से उनके ज्येष्ठ पुत्र अर्थवा ने ब्रह्म को मूल मानते हुए त्रिलोकी में यज्ञविद्या का प्रसार किया था। साध्य जाति का ईश्वर सत्ता पर विश्वास न था। यह केवल प्रकृतिसिद्ध क्षणिक विज्ञान के उपासक थे। जो स्थान आज क्षणिक विज्ञानवादी नास्तिकों को मिल रहा है, वही स्थान साध्यों का था वह मणिजायुग साध्ययुग नाम से प्रसिद्ध हुआ। मणिजा उस समय में मानव समाज की सामान्य संज्ञा थी। यज्ञविद्या में निष्णात, यज्ञ से ही यज्ञ कर्मों का संपादन करने वाली इसी साध्य जाति का स्वरूप बतलाती हुई यजुःश्रुति कहती है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वेसाध्याःसंतिदेवाः ।

देव युग में यज्ञ से ईश्वर का यजन किया जाता था। परन्तु साध्य लोग यज्ञ से यज्ञ का ही यजन करते थे। दूसरे शब्दों में वे विज्ञान से विज्ञान का ही प्रसार करते थे।

इनकी शासन प्रणाली में प्रजातंत्रात्मक गणतंत्र की ही प्रधानता थी। इस युग का प्रभुत्व पूर्व के युगों की अपेक्षा अधिक समय तक रहा।

बतलाया जा चुका है कि सभ्यता, संस्कृति एवं विज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए भी साध्य एकेश्वरवाद पर या ईश्वरसत्ता पर विश्वास नहीं रखते थे। इस अनीश्वरवाद प्रधान क्षणिक विज्ञानवाद की प्रबलता का आगे जाकर परिणाम यह हुवा कि इनका मतवाद इन्हीं के पारस्परिक विरोध का कारण बन गया। गणतन्त्रात्मिका शासनप्रणाली भी इस विरोध की उत्तेजिका बनी, फलतः सृष्टि के सम्बन्ध में १० अवान्तरमत प्रचलित हो गये। जो कलह आज सम्प्रदायों में देखा जाता है, वही कलह साध्ययुग में व्याप्त हो गया था। साध्यकालीन वे ही १० मत ऋक्‌संहिता में १ सद्वाद, २ असद्वाद, ३ सदसद्वाद, ४ व्योमवाद, ५ अपरवाद, ६ रजोवाद, ७ अम्भोवाद, ८ आवरणवाद, ९ अहोरात्रवाद और १० संशयवाद इन नामों से प्रसिद्ध है। सत्यसिद्धांत सदा एक होता है। नित्यविज्ञानमूलक सत्यसिद्धांत में विरोध का अवसर नहीं है। इधर साध्य १० मत मानते थे। परिणाम इसका यह हुआ कि इन विभिन्न मतवादों की कृपा से तत्कालीन मानव समाज में संघर्ष उत्पन्न हो गया। इस संघर्ष का मूल कारण अनीश्वरवादमूलक प्रजातन्त्र ही था। इस स्पर्धायुग को हम संघर्षयुग, विरोधयुग, अशान्तयुग, क्रांतियुग एवं विप्लवयुग इत्यादि, नामों से भी संबोधित कर सकते हैं। जैसा संकट अर्थलोलुप विज्ञानमदमत्त राष्ट्रों की कृपा से आज उपस्थित हो रहा है।

देवयुग—

शांति होती है क्षोभ उत्पन्न करने के लिये, क्षोभ होता होता है शांति सुधार के लिये। शांति क्रांति की जननी है, क्रांति शांति की जननी है। संयोग वियोग जनक है एवं वियोग संयोग का जनक है। इन प्राकृतिक सिद्धांतों के अनुसार साध्यों के अविवेक से फैले हुए मतवाद ने क्षोभ उत्पन्न किया। इस क्षोभ ने महाशांतिपरायण शिल्पोपजीवी तुषितों में भी संघर्ष उत्पन्न कर दिया। इसी तुषित जाति ने एक ऐसे महापुरुष को जन्म दिया जो, कि शांति का दूत बनकर आगे जाकर विश्वशांति का कारण बना।

उस महा पुरुष ने सबसे पहले प्रचलित विभिन्न दसवादों पर कुठाराघात करते हुए एकत्वमूलक ब्रह्मवाद की स्थापना की। इसी महापुरुष की कृपा से सबसे पहले एकेश्वरवाद मूलक राजतन्त्र की स्थापना हुई। उस विभूति ने यह घोषणा की कि यदि इन दसों मतों का कोई एक मूल-आधार नहीं माना जाता है तो ये सभी मत सर्वथा मिथ्या हैं। ईश्वरसत्ता के बिना इनकी प्रतिष्ठा किसी भी अवस्था में अक्षुण्ण नहीं रह सकती। इस मन्तव्य के आधार पर इसने दसों वादों की प्रतिद्वन्द्विता में सिद्धान्तवाद की स्थापना की। महा पुरुष के इसी प्राथमिक सुधार को लक्ष्य में रख कर मन्त्रश्रुति कहती है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्
अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥ २ ॥
तम आसीत्तमसा गूऌहमग्रे—
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वथा इदम्।
तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

(ऋक् सं० १०।१२९।१-२-३

इसी महापुरुष ने सर्वप्रथम ब्रह्मवाद की स्थापना की थी, अतएव तत्कालीन नियम के अनुसार यह " ब्रह्मा " की उपाधि से विभूषित किया गया। ये ही ब्रह्मा देवयुग आदि के प्रवर्तक माने गये जैसा कि निम्न सूक्ति से स्पष्ट है:—

" ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वकर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ "

(मुं० १।१।१)

उस युग में यह नियम था कि जो विद्वान् जिस तत्व की

सर्व प्रथम परीक्षा करता था, उसे उसी नाम से विभूषित किया जाता था। वसिष्ठ, अगस्त्य, मत्स्य , अत्रि, भृगु, अङ्गिरा आदि जितने नाम हैं वस्तुतः ये सब तत्वों के नाम हैं।

अवतार विज्ञान के अनुसार ब्रह्मा का जन्म अधिकारिक था—प्रकृति सिद्ध था, अतएव ये आदिब्रह्मा "स्वयम्भू" नाम से प्रसिद्ध हुए। एकेश्वरवाद की स्थापना के अनन्तर ब्रह्मा के प्रकृतिसिद्ध नित्य ब्रह्मा के अनुसार यहाँ भी चार प्रकार की सृष्टि संस्थाएँ प्रतिष्ठित हुई। **नित्यसिद्ध अपौरुषेय वेदतत्व के आधार पर वेदग्रन्थ प्रकट हुए, यही पहली वेदसृष्टि कहलाई**। नित्यसिद्ध त्रैलोक्य के अनुसार इसी पृथिवी पर लोकव्यवस्था की। पृथिवी को पद्म मानकर इसे आठ भागों में विभक्त किया गया। यही पार्थिवविभाग पुराणों में **"पाद्मभुवनकोश"** नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस विभाग में **देवत्रिलोकी** एवं आसुरत्रिलोकी नाम की दो संस्थाएँ बनाई गई; यही दूसरी **लोकसृष्टि** कहलाई। इसी प्रकार पञ्चक्षिति, पञ्चजन, पञ्चचर्षणी आदि रूप से **प्रजासृष्टि** की व्यवस्था की। **सर्वान्त में प्रकृतिसिद्ध नित्य वर्णधर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य धर्म को प्रकट किया गया।** इस प्रकार जैसे प्रकृतिसिद्ध नित्य ब्रह्मा के १ प्राणमुख से अपौरुषेय १ वेदसृष्टि, २ आपोमुख से २ लोकसृष्टि, ३ वाङ्मुख से ३ प्रजासृष्टि और ४ अन्नगर्भित अन्नादमुख से ४ धर्मसृष्टि हुई। उसी नियम के अनुसार **पुष्कर (बुखारा) में उत्पन्न** होने वाले इस स्वयम्भू ब्रह्मा **ने** भी १ मन्त्रात्मक वेदसृष्टि, २ देवत्रिलोकी—आसुर त्रिलोकी रूपा लोकसृष्टि ३ प्रजा विभाग रूपा प्रजासृष्टि एवं ४ प्रजा को प्रकृति के नियमानुसार चलाने के लिये धर्मसृष्टि की।

प्रकृतिवत् अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि भौम देवताओं का विकास किया गया। हैहय, कालकेय, दौहृद मौर्य, वृत्र, नमुचि, त्वष्टा, वृषाकपि आदि असुरों की व्यवस्था हुई। **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र** इन चार वर्णों का एवं **अन्त्यज, अन्त्यावसायी, दस्यु और म्लेच्छ** इन चार अवरवर्णों का विभाग किया। चातुर्वर्ण्य के साथ-साथ व्यक्ति का उपकार करने वाली **ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ** और **सन्यास** इन चार आश्रमों की व्यवस्था की गई।

६० अंशात्मक भारतवर्ष को देव त्रिलोकी का मनुष्य लोक माना गया। जिस भारतवर्ष की मध्यरेखा उज्जैन है। पूर्वीसीमा चीन समुद्र (यलोसी-पीत समुद्र) है, पश्चिम सीमा महीसागर (मेडिटेरियन्सी) है, दक्षिण सीमा निरक्षवृत्त स्थानीय लङ्का है और उत्तरसीमा शर्यणावत (शिवालय) पर्वत है. इस महाविशाल भारतवर्ष के सम्राट् वैवस्वतमनु बनाये गये। मनु के सम्बन्ध से ही यह लोक मनुष्यलोक एवं यहाँ की प्रजा मानव नाम से प्रसिद्ध हुई। अग्नि देवता यहाँ के अतिष्ठावा (अधिष्ठाता) शवसोनपात् (वायसराय) बनाये गये। मनुष्यलोक का भरण-पोषण करने के कारण ही अग्नि **"भारत"** कहलाई। जैसा कि:—

"अग्ने महांअसि ब्राह्मण भारतेति।" (यजुःसंहिता)

इत्यादि यजुर्मन्त्र से सिद्ध है। भारत-अग्निद्वारा शासित होने के ही कारण **भारतवर्ष** कहलाया था, और यहाँ की प्रजा भारतीय कहलाई।

शर्यणावत पर्वत को आरम्भ कर हिमालय तक का सारा प्रान्त भौमत्रिलोकीका अन्तरिक्ष लोक माना गया। वायु यहाँ के शवसोपानत् (वायसराय) बनाये गये। यहाँ की प्रजा यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, किन्नर आदि विभागों में विभक्त की गई। यही आन्तरिक्ष प्रजा तिर्यग्योनि कहलाई।

हिमालय प्रान्त एवं प्राग्मेरु (पामीर) यहाँ का स्वर्ग लोक हुआ। इन्द्र यहाँ के शवसोनपात् (वायसराय) बनाये गये। यहाँ की प्रजा देवता कहलाई। **ब्रह्ममूलक** राजतन्त्र को **राजा, सम्राट्, स्वाराट्** एवं **विराट्** भेद से चार श्रेणियों में विभक्त किया गया। प्रजातन्त्र का समूल विनाश किया गया।

इसी प्रकार **अफ्रिका, अमेरिका** और **योरोप** नाम के तीन महाप्रान्त असुरों को दिये गये। यही असुर त्रिलोकी कहलाई।

अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को त्रयी विद्या का पहला शि बनाया। अथर्वा ने सरस्वती नदी के समीप सर्व प्रथम य की स्थापना की।

सबसे बड़ी विशेषता उस युग की यह थी कि भारती प्रजा का कर्म देवेन्द्र की ओर से निर्धारित होता था। इन

प्रतिफल में भारतीय प्रजा की भोजन-आच्छादन व्यवस्था, चिकित्सा आदि आवश्यकताओं का भार राजतन्त्र पर था। अश्विनीकुमार यहाँ के प्रधान चिकित्सक थे। वामदेव अन्न (गल्ले) के अध्यक्ष थे। वसोर्धारा में तीन वर्ष के लिये तीनों लोकों में कश्यप, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, भरद्वाज, अत्रि आदि प्रमुख कुलपतियों की अध्यक्षता में ब्रह्मपर्षदें एवं महाशालाएँ सुव्यवस्थित थीं।

स्वयम्भू मनु के विवस्वान् नाम के पुत्र हुए। विवस्वान् के पुत्र एवं १ कन्या इला नाम से प्रसिद्ध हुई। ये ही दोनों क्रमशः सूर्यवंश एवं चन्द्रवंश के मूलप्रवर्तक हुए। इक्ष्वाकु ने अयोध्या नाम की राजधानी स्थापित की।

महाभारत युद्ध में सूर्यवंशीयों की ओर से अयोध्या के नरेश महाराज सुमित्र शामिल हुए थे। सुमित्रराज विवस्वान १२८ वीं पीढ़ी में माने गये हैं। भगवान् रामचन्द्र विवस्वान् से ६३ वी पीढ़ी के भारतीय सम्राट् थे।

(पृष्ठ ३३ का शेषांश)

योग्य है। "अत्र वराहसंहिता वचनं—सलिलमय शशिनी मंदिरास्यां—तर"—इति; यथा दर्पण—उदर प्रवेशिता कौशलेन ग्रहाभ्यांतरम् नीताश्च=रवि—दीधीतय स्तद—गतम् अन्धकारम् नाशयति—तथा स्वतः सलिलमये चन्द्रे ताः प्रतिफलिता नैशम् तमो घ्नन्तीति। अर्थः। खर दीधीतयो मूर्छित=स्तमो नैशम् क्षपयन्ति दर्पण—निहतेत्र किंतु दूसरा भाव कि इन्द्रधनुष सूर्य किरणों से उद्भूत होकर बादलों पर छा जाता है, संस्कृत कवियों में अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ, यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिकों की दृष्टि से उसका महत्व छिपा नहीं है।

टेन्डर नोटिस

इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन, रतलाम एवं देवास के नगरों में श्रम जीवियों के लिये भवन निर्माण हेतु कार्य जिनके लिये निरुपत धन राशी के अङ्क क्रमानुसार लगभग १४॥, ९॥, ६, व २॥, २॥, २॥ लाख हैं टेन्डर दिनाङ्क २२ जनवरी १९५४ को ३ बजे दिन एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर इन्चार्ज हाउसिंग चिमन बाग इन्दौर के कार्यालय में बुलाना निश्चित हुआ है टेन्डर्स संबंधी सविस्तार नोटिस व अन्य माहिती मध्य भारत शासन गजट या उक्त लिखित एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर सा० के कार्यालय में प्राप्त की जा सकती है।

सेनेटरी इन्जीनियर
पब्लिक हेल्थ इन्जीनियरिंग विभाग
मध्यभारत शासन ग्वालियर

भाड़े का वर

श्री 'मधुवन'

राजा भोज की धार के नगर सेठ के पुत्र की बारात उज्जैन जारही थी। तब न तो रेल गाड़ियां थीं और न मोटर कारें किंतु बैल गाड़ियों में ही बारातियों के लिए अच्छा प्रबन्ध किया गया था। उनकी एक लम्बी कतार एक तार चली जा रही थी। जब बैल दौड़ने लगते थे तो उनके गले में बँधी घंटियों की टुन-टुन अधिक तीव्र होकर एक अनुपम संगीत की सृष्टि करती थी। बरातियों में से कोई अपने अनुभव की विचित्र घटनाएँ सुनाकर दूसरों को हैरत में डाल रहे थे, कहीं पहेलियां बुझाई जा रही थीं, कहीं कोई मण्डली शतरंज और चौपड में डूबी हुई थी और कहीं कोई हँसौड़ अपने साथियों को हँसा-हँसा कर लोट-पोट कर रहा था। कोई गायन-वादन में तल्लीन विचित्र राग-रागनियों में उलझे थे और कोई जो कभी एक बार भी उज्जैन के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर चुका था वहां की विशेषताओं का उत्साह-पूर्वक वर्णन कर रहा था तथा कहीं-कहीं उज्जैन के अमर सम्राट विक्रम की दानवीरता, न्यायपटुता तथा पराक्रम की किम्वदंतियां दुहराई जा रही थीं ?

सब और प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था। आखिर नगर सेठ के पुत्र की बारात थी। बारात की सुव्यवस्था, नौकर चाकर तथा बाराती सब उसके पूर्णतया अनुरूप थे किंतु... एक अभाव सबको बुरी तरह खटक रहा था। जिसके पीछे यह सब हो रहा था वह—वह अयोग्य था। वर बोलते समय तुतलाता था, दिमाग के कुछ स्क्रू ढीले थे, चेहरे पर ओज नहीं था क्योंकि बेचारा कभी शीतला की कुदृष्टि से चेहरे की सुन्दरता के साथ ही एक आंख भी खो चुका था। फिर भी वह किसी ऐरे-गेरे नत्थू-खैरे टटपूंजे का बेटा तो था नहीं। उसका बाप नगर सेठ था जिसका व्यापार दूर—दूर देश में होता था। और विवाह के लिए वर की यही एक योग्यता क्या कम थी। फिर भी आंखों देखे कौन मक्खी निगलता है। कौन धन के प्राचुर्य के बदले में अपनी बेटी डुबोकर जीवनभर उसके अभिशाप सहने की हिम्मत करता, किंतु इस दुनिया में सभी कुछ संभव हैं, असम्भव कुछ नहीं। और फिर जहां प्रयत्न की प्रबलता होती है वहां कभी किसी भी अंश में सफलता मिलती ही है। यहां भी ऐसा ही हुआ। उज्जैन के एक प्रसिद्ध व्यापारी के यहां बात पक्की होगई किंतु लडके की विशेषताओं को गुप्त रखकर। एक बार बात तय होने पर कौन भला आदमी बदलता है और फिर उसमें उसकी स्वयं की भी तो बदनामी का डर रहता है।

पर˙˙˙अधिकतर बारातियों को भी वर की अयोग्यता खल रही थीं। वे सोच रहे थे कि उज्जैन की ऐतिहासिक नगरी में जब बारात धूमधाम से प्रवेश करेगी तो लोग प्रशंसा करते नहीं थकेंगे। आखिर धार की बारात है राजा भोज की धार की। पर...जब वर पर दृष्टि जायगी तो क्या सब अच्छाई पर पाला नहीं पड जायगा। वे यही तो कहने लगेंगे कि सब अच्छा है पर यदि वर ही अच्छा नहीं तो, इन सब से क्या ? वे बातें करेगें कि वर बारात के अनुरूप नहीं है। वह उज्जैन की लडकी से विवाह करने योग्य नहीं और फिर इतना होते हुए भी यदि किसी ने वर से बात करने की धृष्टता की और उसकी तोतली बोली से कुछ उटपटांग निकल गया तो क्या सब गुड-गोबर नहीं हो जायगा। शायद लोगों की ओर से कुछ विरोध भी हो, किंतु, किया भी तो क्या जा सकता है ! हां यदि एक मात्र उपाय हो सकता है तो वह है वर का परिवर्तन। किंतु...यह असम्भव था। नगर सेठ ने सब विवाह का व्यय किया था और उसके पुत्र के विवाह का प्रश्न था पर...

जब बारात के बाजे वालों की गाड़ी में से प्रभात की पुरवैयां में प्रभाती की तान बहने लगी तो गाडियां रुक गईं। बड़े बरगद की छाया में लोग स्नान-ध्यान से निवृत्त हो जायं। इसके पश्चात् अल्पाहार और फिर प्रस्थान।

गाड़ियां रुक गईं। प्रभात का पवन सबको मादक बना रहा था। प्रभाती का स्वर कानों में अमृत उंडेल रहा था और प्राची में—रक्ताभ साड़ी से शृंगार किए अतिरंजित है उषा सुन्दरी विश्व को जागरण का सन्देश देरही थी। पंछी रात-भर के विश्राम से ताजा होकर भगवान भास्कर की वन्दना में एक स्वर से जै—जैवन्ती की तान छेड़ रहे थे।

बाराती दैनिक कार्यों से निवृत्त हुए। स्नान-ध्यान के

पश्चात् वेश-भूषा कों भी संवारा और पुनः प्रस्थान की तैयारियां होने लगी। बस दोपहर तक उज्जैन पहुंच जाएँगे। सब गाड़ियों में बैठने लगे और एक--एक करके गाड़ियां रास्ते पर लगने लगी। पर कुछ भले लोगों का ध्यान उधर भी गया। अरे! यह एक साथ का व्यक्ति तो छूटा ही जाता है। यह कौन भगवत् चिंतन में लीन अबतक चबूतरे पर बैठा है! आखिर उसे भी तो निवृत्त हो लेने दो।

कुछ ही देर पश्चात् वह व्यक्ति उठा और अपना झोला सम्भालकर चलने लगा। तो शायद वह बारात का आदमी नहीं था। लोगों को अपनी त्रुटि प्रतीत हुई। किसी मनचले ने पूछ ही तो लिया-"क्यों भाई! कहां जारहे हो?"

" उज्जैन "

"कहां से आये थे?"

" ....से" उसने अपने गांव का नाम बताया।

"वहां क्या करते हो?" फिर प्रश्न हुआ।

"मैं एक वणिक की विधवा का पुत्र हूँ। नित्य प्रातः धन्धे की तलाश में निकलता हूं और नित्य सायंकाल कुछ कमाकर गांव लौट जाता हूँ।" उसने उत्तर दिया।

"अच्छा!" कहकर पूछने वाला चुप रह गया। गाड़ियां आगे बढ गईं। किन्तु, वह विधवा का वणिकपुत्र उसकी सौम्य बातचीत, सुन्दर गौरवर्ण शरीर, गोल भरा हुआ चेहरा आदि वह व्यक्ति नहीं भूल सका। कुछ देर बाद फिर वर पर चर्चा चली। उज्जैन समीप आती ही जारही थी और उन लोगों के दिल बैठते जा रहे थे।

"तो क्यों न उसी वणिक पुत्र को कुछ लालच देकर तीन-चार दिन के लिए वर बना दिया जाय। सब ऐब तो छिप जायेगी। दिखने में भी अच्छा है और शृंगार तथा उचित वेषभूषा तो उसे और भी आकर्षक बना देगी।" उसी व्यक्ति ने झिझकते हुए प्रस्ताव किया।

कुछ विरोध हुआ पर यह सोचकर कि तीन दिन ही की तो बात है......और वधु तो अपने साथ चलेगी ही। इस व्यक्ति को तीन दिन का भाडा देकर बिदा कर देंगे। सब निर्णय होगया। ठीक तो है वर भी बारात के अनुरूप हो जायगा और नीचा देखने की नौबत ही नहीं आने पाएगी। विवाह के बाद बिदा होने के बाद कौन पूछता है।

वह बुलाया गया। वह कुछ नहीं समझा, पर उसे कहीं तो भी काम तो ढूंढना ही था और फिर ये लोग तो उसे इतना देने को तैयार थे जितना वह दो महीनों में भी नहीं कमा सकता था। वह राजी हो गया। बात गुप्त रखी गई और अधिक नहीं फैलने दी गई।

+ + +

विवाह सम्पन्न हुआ। दो दिन तक पूरे नगर को भोज दिया गया। बारातियों ने खूब मौज लूटी पर सब अपने रागरंग में बेचारे भाड़े के वर को तो जैसे भूल ही गए थे। उसे किसी ने दो दिन से खाने तक को नहीं पूछा था। वह बेचारा यह सब क्या हो रहा है तथा इसमें कितना अनुचित था और कितना उचित इस सब पर विचार कर ही रहा था कि उसके लिए बुलौवा आ गया। बारात के एक प्रमुख व्यक्ति ने उसे एक ओर लेजाकर समझाया कि अभी उसे वधु के यहां जाना होगा और रात भी वहीं व्यतीत करना होगी किंतु साथ ही उसे कड़ी चेतावनी दे दी गई थी कि वह वधु से कोई बात न करे। उसे केवल विवाह के लिए अस्थायी रूप से लाया गया था। अब वधु तो उनकी हो ही चुकी है, क्योंकि सब व्यय वर पक्ष की ओर से उनका हुआ था किन्तु, वहां के रिवाज के अनुसार वर को तो भेजना ही पड़ेगा और वे नहीं चाहते कि कोई भी बात प्रकट हो जाय।

उसे जाना पडा। एक सुन्दर सजे हुए कमरे में उसे पहुंचाया गया जहां नववधु गुडिया-सी सजी सिमटी एक ओर बैठी थी। वह उससे कुछ भी नहीं बोला और चुपचाप पलंग पर लेट गया। नींद तो जैसे उससे रूठी हुई थी। और फिर गत दो दिन से तो रोटी का एक कौर भी उसके गले के नीचे नहीं उतरा था। सचमुच भूख प्राणी की सबसे बड़ी शत्रु है जो कभी नहीं हारती और उसे हराने में ही उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। भूखे रहकर न तो जीवित रहा जा सकता है और न कुछ और ही किया जा सकता है। पहले भूख की तृप्ति कीजिए तभी आप इहलोक और परलोक के लिए कुछ करने में समर्थ हो सकते हैं क्योंकि लोक और परलोक सुधारने का माध्यम देह है और वह भूख की तृप्ति के साथ चेतन रहती है।

(मेक्सिम गोर्की और लियो टालसटाय)

अबे देख जो ठाकर बा ने बोतल माय भराना
शूरवीर मिनकी से डरपे शेरसिंह 'ने हम जाना
दो बोतल को नशो बतावे पीवे नी बी एक पाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

३

पेला थां रचा करता था अब दीनां ने लूटे
बिगर काम से दीन दुखी ने रोज गड़ी में कूटे
पन या नी मालम के बड़ो पाप को भरइ जाय ने फूटे
ऊबा रइग्या अबे बंदीग्या कांगरेस का खूंटे
कद तक चाले सुनो ठाकर बा कागद की या नाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल लकड़ी का भाव

४

बाग बगीचा आम गाम सब एक जगे ऊबा रइग्या
कांगरेस का सांड छूट्या सो बागर तोड़ी के खइग्या
बकरा से है काम बैल की कंई इज्जत नी राखी
दुर्गा ने सब मुर्गा खाया तमने बोटी चाखी
बोटी तो सब खोटी हुईगी तम अबे दाल से खाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

५

बीसी बदली गई तमारी थोड़ा तो समझो दरबार
बक्स्यो बाबू बगदीमल भी फिरे मांगता आज जुवार
जमनी और जसोदा भागी भाग्यो भागी को भरतार
ठकरानी के ठगी ठगी ने भागीग्यो काल्यो कुमार
कून करे अब रोटी बोलो अपना हाथे करी खाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

६

मोटा मोटा राफा बांदी कम्मर में खोंसी तरवार
छोरा छोरी खाय जलेबी गिरवे है आखो घरबार
आगे चाले छड़ीदार ने पाछे रोवे करजदार
ठाकर बन्या बीच में चाले टूटया खेड़ी का सरदार
अनदाता अन से मेंगा है ढोली डूमड़ा आगा जाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

७

मेहनत करो खेत में हांको हल बक्खर ने नाई
मनखां ने मत को कमीन ई है अपना भाई
ऊंच नीच को भेद छोड़दो छोड़ो हांसी ठठ्ठा
सुकई सुकई ने कांटा हुइग्या तेल बिना ई लट्ठा
अपनी मेहनत अपनो खानो हिली मिली के खाव
अबे पड़ेगा मालम ठाकर लून, तेल, लकड़ी का भाव

परिचय-परामर्श

(पत्र-पत्रिकाएँ)

व्यापार-उद्योग पत्रिका—

व्यापार तथा उद्योग मन्त्रालय भारत सरकार की ओर से यह अत्यन्त उपयोगी पत्रिका प्रकाशित होने लगी है। पत्रिका में देश-विदेश के उद्योग-व्यापार की प्रामाणिक एवं उपयोगी जानकारी दी जाती है, तथ्य पूर्ण लेखों के सिवा अंकों में भी व्यापारी के लिए बहुत-सी आवश्यक सामग्री इनमें प्राप्त होती है। विदेशी व्यापार, उनके जयों की जानकारी भी प्राप्त होती है। यह पत्रिका हिन्दी में बहुत काम की है, उद्योग और व्यापार करने वालों के लिए बड़ी उपयोगी वस्तु है। वार्षिक मू. ६ रु. एक प्रति ८ आ., प्रत्येक व्यापारी के काम की वस्तु है।

अग्रवाल समाचार—

उक्त पत्र का आलोच्य अंक महासभा विशेषांक है। चमक दमक के साथ विज्ञापनों से भी दूर यह अंक अग्रवाल जाति के लिए उपयोगी है। मुरारका, भरतिया, भारतेन्दुजी के लेख के सिवा माखनलालजी और सुमनजी की कविता पठनीय है। अग्रवाल समाचार धर्मपेठ नागपुर से प्रकाशित

-प्रदीप—

(स्वाधीनता-विशेषांक)

पंजाब की राजधानी शिमला (२) से प्रकाशित यह सरकारी पत्र सुन्दर निकलता है। स्वाधीनता अंक सरकारी योजना, सफलता के संकेतों के साथ लेख, कविताओं से भी सुसज्जित है। यदि परिश्रम किया जावे तो सरकारी साधनों से निकलने वाला यह पत्र और भी आकर्षक एवं उपयोगी हो सकता है, इस अंक का मू. ४ आना।

ज्ञानोदय—

भारतीय ज्ञानपीठ बनारस से ज्ञानोदय नामक एक सुन्दर मासिक प्रकाशित होता है। इसी दीपावलि से यह अब सहारनपुर के सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री० क. ला. मिश्र प्रभाकरजी के संपादन में सर्वथा नवीन रूप-रंग और रुचि के साथ नव रूप लेकर प्रकाशित होने जारहा है, हमारे समक्ष नमूना-अंक के रूप में बड़ी सजधज के साथ आया है। इस नमूने को देखकर कहा जा सकता है कि हिन्दी में यह बड़ा आकर्षक-पत्र होगा। प्रभाकरजी सूझ के धनी हैं, उनके हाथों 'ज्ञानोदय' का उदय प्रकाश प्रसारित कर सकेगा। हम दीपावली अंक की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे।

ज्ञानोदय सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन समाचार—

दिल्ली के राजकमल प्रकाशन का नाम-काम हिन्दी जगत् में अपनी विशेषता प्राप्त कर गया है। यद्यपि 'विक्रम' को आलोचना (पत्रिका) के सिवा अन्य प्रकाशन की आलोचना का अवसर उपलब्ध नहीं हुआ है, परन्तु हाल ही में उक्त संस्था ने 'प्रकाशन-समाचार' नामक पत्रिका प्रकाशित की है, यह वास्तव में हिन्दी में सूझ-बूझ की वस्तु है। इसकी बड़ी आवश्यकता थी।

२॥ रु. मूल्य में यह समाचार पुस्तक प्रेमियों, नवप्रकाशन के प्रतीक्षकों के लिये अभिनव सूचना और प्रेरणा देने का काम करेगा, पुस्तक प्रचार-प्रसार में इससे बहुत सहायता मिलेगी। राजकमल के इस अभिनव प्रयास की हम सराहना करेंगे।

राजकमल प्रकाशन १ फैज बाजार दिल्ली

विन्ध्य शिक्षा—

शिक्षा-विभाग विन्ध्य प्रदेश शासन की ओर से सुन्दर पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसमें शिक्षण, कला, मनोविज्ञान, अनुशासन आदि विषयों पर उपयोगी साहित्य प्रकाशित हो रहा है। शिक्षा संस्थाओं, शिक्षा प्रेमियों के लिये उपयोगी वस्तु है।

वा० मू० ४), शिक्षा-विभाग रीवां (विन्ध्य)

अदिति—

अरविन्द आश्रम (पांडुचेरी) की यह पत्रिका विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुई है। इस अंक में आश्रम की माताजी के विचार, प्रवचन, और वाक्यों का सुंदर संकलन है, इसमें माताजी की कुछ अप्राप्य पुस्तकों के अंश भी दिए गए हैं, प्रवचनों के साथ स्फुट वचनों का संग्रह भी सुरुचि के साथ अदिति में सजों दिए गए हैं, आश्रम के प्रेमियों, माता के भक्तों को यह पत्रिका प्रेरक सिद्ध होगी। योगी अरविंद के पश्चात अब उस आश्रम की सर्वेसर्वा ये माताजी ही हैं, उनके भक्तों की संख्या भी कम नहीं है, अदिति उनके लिए लाभप्रद प्रकाशन है।

इस अंक का मूल्य १॥) वा० मू० ६)

चरित्र निर्माण—

श्री० रामचन्द्र शर्मा महारथी हिन्दी के पुराने सुरुचि-सम्पन्न सम्पादक लेखक और पारखी हैं, चरित्र निर्माण उनकी अनोखी विचार-पत्रिका पत्र-जगत् में नवीन रूप में उदित हुई है। चरित्र-निर्माण के लिए आज कितनी आवश्यकता है, यह कहने की बात नहीं। ऐसे समय यह उपयोगी पत्रिका प्रकाशित कर उन्होंने समय की मांग ही प्रस्तुत की है। हमें विश्वास है इसका स्वागत होगा। वा० मू० ६)

निर्माण कार्यालयः—**विज्ञान प्रेस, ऋषिकेश (देहरादून)**

ग्राम-सेवक—

N.P. ग्राम्य जीवन को लेकर इधर कई पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, ग्राम सेवक उनमें अपने ढ़ंग का उत्तम पत्र है। नामानुरूप साहित्य और उपयोगी जानकारी दी जाती है। शिक्षित ग्रामीणों और ग्राम प्रेमियों के लिए बहुत सी हितकर सामग्री इस पत्र में दी जाती है, इस दृष्टि से यह पत्र काम का है। वा० मू० ६) अधिक हो जाता है।

—**ग्राम सेवक पटना ३ से** प्राप्त

पाटीदार-लोक—

बघाना (नीमच) म. भा. से पाटीदार समाज की नव-चेतनाका प्रतीक यह पत्र है। पाटीदार जनता के लिए इसका संचालन-जीवन आवश्यक है, हम इसका स्वागत करते हैं। वा० मू० ५)

राजस्थान भारती—

श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च संस्था बीकानेर से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक संशोधन पत्रिका राजस्थान भारती श्री० बद्रीप्रशाद सांकरिया के सम्पादक मण्डल द्वारा प्रकाशित हो रही है। ३।४ अंक हमारे समक्ष है। राजस्थानी साहित्य संशोधन के क्षेत्र में इस सुन्दर पत्रिका का जन्म वास्तव में राजस्थानी के उज्वल भावी का सूचक है पत्रिका के सभी लेख सूचनाएं अध्ययन पूर्ण, विद्वानों द्वारा लिखित ज्ञान वर्धन करने वाली है। हम पत्रिका का स्वागत करते हैं, और दीर्घजीवन की कामना।

४ अंकों का मूल्य ८) संस्थाओं से ५)

सचित्र आयुर्वेद—

वैद्यनाथ संस्था आयुर्वेद जग में महत्वपूर्ण सेवा कर रही है। वह औषधि प्रचार और निर्माण द्वारा सक्रिय, औ साहित्य चर्चा अन्वेषण और प्रकाशन द्वारा नव-जीवन जाग का कार्य भी कर रही है। प्रस्तुत अंक परिषद् अंक है आयुर्वेद विद्वानों की परिषद् द्वारा-द्रव्य-गुण-रस-वीर्य आ विषयों पर देश के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा शास्त्रीय चर्चा हु थी। अंक में उसीका विवरण है, यह चर्चा आयुर्वेद के जानकारों, अनुरागियों के लिए बहुत महत्व की, एवं बोध प्रद है, चर्चित-विषय पर कुछ विद्वानों के विवेचनात्मक लेख भी हैं, जो मननीय हैं।

वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ३६ वाराणसी घोष स्ट्रीट कलकत्ता

प्रतिभा—

प्रतिभा प्रकाशन नागपुर से नवीन पत्रिका अवतरि हुई हैं। पत्रिका का आरम्भ अच्छा है, लेख कहानी, प्रहसन, कविता आदि का सुन्दर संकलन, सम्पादन हुआ है। पत्रि सुरुचिपूर्ण है। एक अंक का मू. ।||) है।

देशबन्धु

मथुरा से श्री. कृष्णदत्त वाजपेयी के संपादकत्व में य पत्रिका प्रकाशित हो रही है। प्रस्तुत अंक व्रज संस्कृति अं है। कुछ विद्वानों की रचनाएँ सुपाठ्य, और सुरुचिपूर्ण है। वा० मू० ४) रुपये।

नव-निर्माण—

जोधपुर कुमार परिषद् के श्री नेमीचन्द्रजी जैन भावु के संपादकत्व में यह त्रैमासिक नव-निर्माण आरम्भ हु है। पत्र गतिशील है, युवकों की प्रतिभा का स्पष्ट परि मिलता है। राजस्थान की जागृति का यह सन्देश वाहक है। प्रूफ की भूलों की ओर जरा अधिक ध्यान देने आवश्यकता है। पत्र संयमित-सुरुचिवर्धक होगा। वा० मू

मधुवन—

हजारीबाग (बिहार) से यह पत्र निकल रहा है। दो अंक देखे हैं, पत्र अच्छा है, किन्तु छपाई-ब प्रूफ आदि की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। मू. ४॥)

चाणाक्य—

चाणाक्य यद्यपि बहुत छोटा सा पत्र दिखाई देता किन्तु बड़ी चुभती चीज देकर बड़ों-बड़ों को अपनी आकर्षित करने की क्षमता रखता है। पत्र का अपना **स्थान है, और उसे साहित्य जग का सजग प्रहरी जाना चाहिये, चाणाक्य पढ़ने की चीज है, उसकी साहस और सराहनीय है। वा० मू० ३) चाणाक्य**

देवेन्द्रनाथ वेन, पटना ४ से प्राप्त।

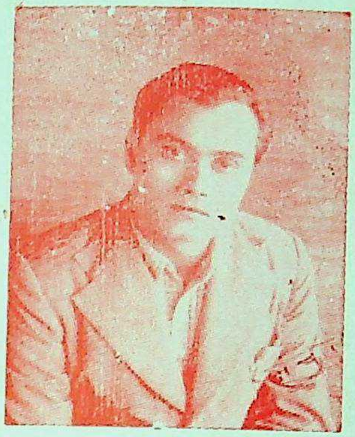

दीपक माला

इन दीपों से जलते झलमल मेरे मन के गीत अधूरे
इन दीपो से जलते मेरे स्वप्न हुए जो कभी न पूरे
केवल एक रात जलकर बुझ जायेगी यह दीपक माला
पर मरते दम तक न बुझेगा मुझमें तेरा रूप-उजाला

तेरी रूप-शिखा में मेरे अंधकार के क्षण जल जाते
तेरी सुधि के तारे मेरे जीवन को आकाश बनाते
आज बन गया हूं मैं इन दीपों का केवल तेरे नाते
आज बन गया हूं मैं इन गीतों का केवल तेरे नाते

श्री अंचल

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टेक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार; सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

१०.१०.'१९५३

आ
श्वि
न

विक्रम

२
०
१
०

3५0

गुरुकुल-पुस्तकालय,
गुरुकुल काँगड़ी

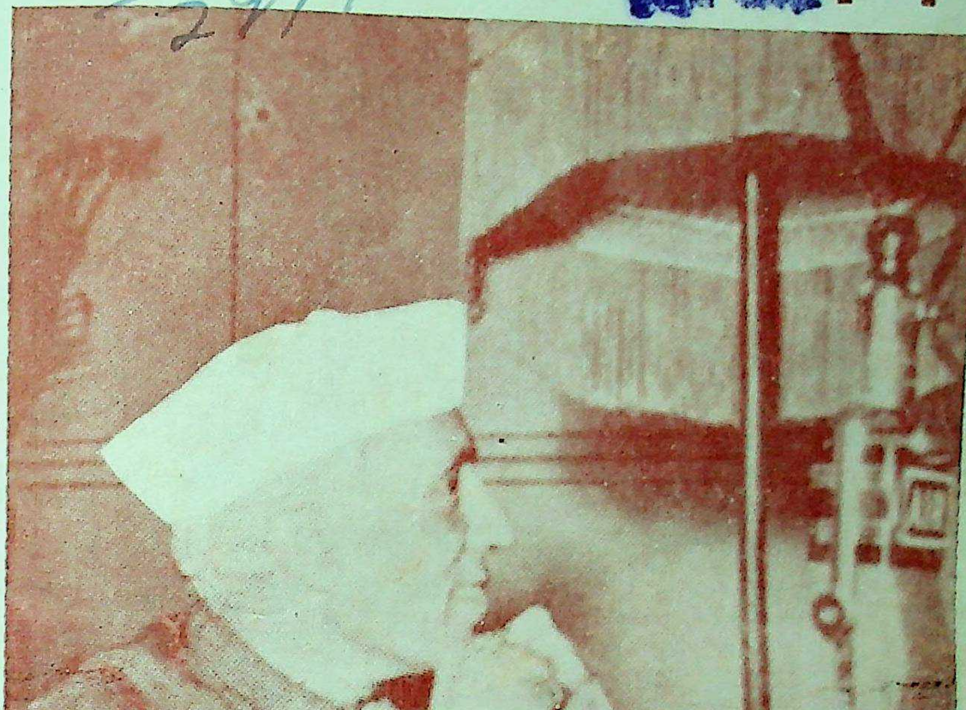

संचालक संपादक

सूर्यनारायण व्यास

गीत

सुश्री--विद्यावती मिश्र

भाग्य मनुज के निश्चय का ही एक नाम है !

जिसके साहस के आगे हिमगिरि भी हारा ;
सागर ने भी - सेतुबन्ध स्वीकार किया है,
स्वयं प्रकृति ने उसको जी भर प्यार किया है,
उसको स्वामी मान रहा जल थल नभ सारा ;
जिसके बल पर ध्रुव-धरणी चलती रहती है
कर्म--चक्र को कब क्षण भर मिलता विराम है !

चरण पटक दे यदि भू पर तो पानी निकले ;
हाथ उठा दे तो नभ उस पर आ झुक जाये,
बादल उसके कंधों पर आकर रुक जाये,
बढ़े सामने, लक्ष्य स्वयं आने को मचले ;
चलता है अति अथ इस सीमाहीन परिधि का
चलने वाले के हित होती नहीं शाम है !

भाग्य--कोष पर अंधकार का रहता ताला ;
उसमें क्या क्या है कब कोई जान सका है,
उसके वैभव को कब जग पहचान सका है,
शून्य भविष्यत् ने रक्षण का भार संभाला ;
किंतु कर्म की चाभी नर के हाथ सौंप कर
विधि श्रद्धा से नत मनु को करता प्रणाम है !

⁂

वार्षिक
६) रु.

एक अंक
।।=)

विक्रम

विषयानुक्रमणिका

		पृ. सं.
गीत	श्री० विद्यावती मिश्र	
व्यास-उवाच	,, संपादकीय	१-१६
विश्ववन्द्य कवि कालिदास	,, सूर्यनारायण व्यास	१७-२०
महाकवि चक्रवर्तिन छित्तप	,, डॉ. डी. सी. सिरकार एम. ए., पी. एच. डी.	३१-३३
राम राज्य, गीता और वेद	,, रणछोड़दास 'उद्धव'	३४-३९
भाड़े का वर	,, 'मधुवन'	४०-४४
काव्य-विहार	,, गयाप्रसाद शास्त्री, इकबाल बहादुर श्रीवास्तव	४५-४९
परिचय परामर्श		५०-५१

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड
स्थापना १९४२

Paid for capital:- Rs. 7,93 500
Assets exeed:- Rs. 25. Lacs
Claims paid
since inception:-over Rs. 4. Lacs

पेट्रन
ना. महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर राजप्रमुख सौराष्ट्र स्टेट

श्री कन्हैयालालजी चेटिया
रतलाम
मध्यभारत के चीफ एजेन्ट

राजस्थान और यू. पी. में चीफ एजेंसी देना है!

विशेष माहिती के लिए कृपया श्री एच. एन. आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क स्थापित करिये ।

पत्र व्यवहार का पता— " विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

बेनीपुरी-ग्रंथावली

दस खंडों में

पहला खराड प्रकाशित हो गया !

पृष्ठ सख्या—६२२ : चित्र संख्या १०७

मोनो की साफ-सुथरी छपाई : रेक्सिन की सुनहरी जिल्द : तिरंगा नयनाभिराम आवरण !

इस खंड में बेनीपुरीजी की ये छः अनुपम कृतियां संकलित हैं—

१. माटी की मूरतें २ गेहूं और गुलाब ३. पतितों के देश में ४. लाल तारा

५. चिता के फूल ६. कैदी की पत्नी !

सुन्दर चित्रों से आभूषित किए जाने के साथ ही इन पुस्तकों के पाठ और क्रम में भी मौलिक संशोधन किये गये हैं, जिस कारण इनके कलेवर ही बदल गये हैं !

[मंगाकर देखिये, तो !] प्रति खंड का मूल्य—१२॥)

पूरी ग्रंथावली का अग्रिम मूल्य ❀ १००)

बेनीपुरी—प्रकाशन, पटना ६

कृषि उत्पादन आयुक्त का कार्यालय, म. भा. शासन, ग्वालियर

—विज्ञप्ति—

मध्यभारत में छोटी छोटी सिंचाइ की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये ओव्हरसियर्स १६ (१००-२००) की आवश्यकता है:—-नियमानुसार मँहगाई भत्ता। इन स्थानों पर अस्थायी नियुक्तियां की जावेंगी एव नियुक्त व्यक्तियों को लोक सेवा आयोग के सम्मुख समय आने पर उपस्थित होना होगा। इन्हें मध्यभारत के किसी भी स्थान में भेजा जा सकता है, एवं कार्य के सन्तोष जनक नहीं होने पर किसी भी समय सूचना देकर कार्यभार से पृथक किया जा सकता है। प्रार्थी को सिविल इन्जीनियरिंग का डिप्लोमा तथा कम से कम दो वर्ष का सर्वेक्षण, निर्माण कार्य, एवं सिंचाई संबंधी ज्ञान होना आवश्यक है। यदि प्रार्थी को दस वर्ष या इससे अधिक समय का कार्यानुभव हो तो वह शैक्षणिक योग्यता के बंधन से मुक्त किया जा सकेगा।

आवेदन कर्ताओं की आयु २० वर्ष से कम एवं ५० वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिये। आवेदन पत्र प्रमाण-पत्रों सहित उपर्युक्त कार्यालय में दिनाङ्क २०-१२-५३ तक प्राप्त होना चाहिये।

कृषि उत्पादन आयुक्त

मध्य-भारत, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के [illegible] पाठशालाओं के लिए शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड २] आश्विन सं० २०१० वि०, नवम्बर सन् १९५३ [अंक १ पूर्ण सं० ७७

व्यास उवाच

शिक्षा का फलितार्थ !

शिक्षा का उद्देश्य मानव जीवन की प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत कर आत्म विकास के साथ जीवन संघर्ष के लिए सबल बनाना है। व्यक्तित्व और प्रतिभा के विकास के साथ-साथ मनोभावों को समुन्नत करना भी है। किन्तु आज की शिक्षा इस दिशा में कहां तक सक्षम है? अंग्रेजी शासन काल की शिक्षा ने जहां गुलामों को ढालने का कार्य किया है, वहां आज की शिक्षा ने अविश्वास, असंतोष और बेकारी बढाने में प्रगति की है, उच्छृंखलता को उत्साहित किया है, चरित्र को चौपट बनाया है। शिक्षा, आत्मोन्नति, चरित्र निर्माण शालीनता, विनय आदि की जननी है। पर जिस शिक्षा से आत्महृास हो, चरित्र हानि हो, शालीनता समाप्त हो। विनय-विवेक का दिवाला पिट जाता हो उसके दोषपूर्ण होने में कोई शंका नहीं रह जाती। शिक्षा को बेकारी हटाने का माध्यम कहा जाता है। इसका अर्थ यही है कि शिक्षा मनोविकास का साधन नहीं है, धंधे-रोजगार का माध्यम है। यह ठीक है कि शिक्षित व्यक्ति को यह योग्यता अवश्य प्राप्त होना चाहिए कि वह अपना भरण-पोषण कर सके, परावलंबन की पीडा न पा सके, पर शिक्षा केवल रोजगार के लिए प्राप्त करें यह अवश्य अनुचित है। आज की शिक्षा का हेतु केवल रोजगार हो रहा है। इस 'हेतु' के प्रधान पद प्राप्त कर लेने के कारण शिक्षा का 'स्तर' हीन होता जारहा है। ज्ञान-आत्मविकास की उपेक्षा कर; कारखानों में काम करने की प्रवृत्ति की प्रबलता से शिक्षा के 'हेतु' को कुचल रहा है। कोरे साहित्यिक, कोरे इतिहासज्ञ की तरह ही कोरे कारखानेदार का जीवन भी निरर्थक है। मूलतः आज के ज्ञान की दिशा ग़लत है। उसकी पद्धति और स्तर में मूलभूत कमी है। शिक्षा को मानव जीवन के साथ सामन्जस्य स्थापित करना

चाहिए। मानव जीवन का उद्देश्य केवल पेट भरना, परिवार पालना, धन्धे रोजगार कर लेना और मर जाना मात्र नहीं है, उसका जीवन उच्च उद्देश्य के लिए है। उसी प्रकार जब तक शिक्षा भी केवल कमाई, धन्धे, पेट पालने तक परिमित रहेगी वह अपने असली उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकती। मानव जीवन और शिक्षा के लक्ष्य में समानता स्थापित किये बिना उसकी सफलता सम्भव नहीं। जो शिक्षा पुरुषार्थ को प्रेरित नहीं करती उसका मानव को कोई उपयोग नहीं। मानव ही पुरूषार्थी प्राणी है। अज्ञान पशु भी पेट पालने, परिवार पोषित करने और आत्म रक्षा करने का ज्ञान रखता है। यदि मानव भी शिक्षा प्राप्त कर यही अपना दायरा बना लेता है तो उसकी शिक्षा और पशु के अज्ञान में कौन सी विभाजक रेखा खींची जा सकती है?

आज के शिक्षा शास्त्री ने इस पर विचार किया है? एक ओर हम बेकारों को स्कूल—कॉलेजों में निरन्तर ढालते जाते हैं। और उनकी समस्या को संकट बनाकर सस्ती सर्विसों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। जो जीवन में उलझन असन्तोष-अविश्वास बनकर मानव का विकास अवरुद्ध करती चली जाती है। न वह अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को ज्ञान-समझ पाता है, न शिक्षा के लक्ष्य को ही। जब तक इस स्थिति को समझकर सुलझाया न जायगा, तब तक शिक्षा के प्रचलित ढर्रे का चाहे जितना विस्तार किया जावे। चाहे जितना ही व्यय किया जावे न तो मानव का मनोविकास सम्भव है, न शिक्षा का फलितार्थ ही। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि—

"अर्जुन! तुम्हारा अपना कोई निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। अस्थिर बुद्धि वालों के कार्य, और उद्देश्य विभिन्न होते हैं।"

भारत में साधन स्त्रोतों की कमी नहीं है। किन्तु अपेक्षित-सद्भावना, सहयोग; उत्साह के बिना इन साधन स्त्रोतों का उपयोग किस प्रकार हो सकता है। बुद्धिवान् चाहे तो उसके लिए जीवन का मार्ग प्रशस्त है। खेद तो यह है कि हमारे बुद्धि जीवी शिक्षा-विज्ञों ने अपने देश की परम्पराओं प्रणालियों और आदर्शों की उपेक्षा करके भौतिकता के अनुगामियो का अन्धानुकरण आरम्भ कर दिया है। यही कारण है कि हमारा आत्मविकास—मनोविकास अवरुद्ध हो गया है। जो शिक्षा जीवन विकास, आदर्श उच्चता चरित्र विनय की जननी है वह आज पेट के प्रश्न पर परिमित हो बेकारी की परिधि पोषक हो गई है। शिक्षा का निरुद्देश्य विस्तार आज के समाज के लिए 'संतति-निग्रह' की समस्या की तरह बन गया है। उसके मनोवैज्ञानिक उपायों की अपेक्षा कृत्रिम उपायों की खोज की जाती है। उसके स्तर, आदर्श और उद्देश्य पर विचार नहीं किया जाता। फलतः शिक्षा का क्षेत्र-विस्तार हो रहा है। शिक्षित-जनों में गिरावट आती जारही है। शिक्षा में से चरित्र और नैतिकता निकल कर आत्म हीन ज्ञान दिनों दिन प्रगति कर रहा है। ऐसी स्थिति में ज्ञान का दिवालियापन देश को दयनीय स्थिति में लेजावे तो क्या आश्चर्य की बात होगी?

हामारे राष्ट्र की रीढ़, शिक्षा-मंत्रालय निराशा के निम्न स्तर पर खडा है। पांच वर्ष की प्रगति 'शून्य' के चारों ओर चक्कर काट रही है। जूते पर चढी हुई धूल की तरह हमें शिक्षामंत्रालय को पूरी तरह झाड-पोंछ कर साफ करना होगा, तभी केन्द्रीय-शासन से कुछ आशा की किरणें प्रकाश देने लगेंगी। आज भारतीय-ज्ञान तमोमय बन रहा है। विकास पथ अवरुद्ध होगया है। राष्ट्र की उन्नति का मानदण्ड ज्ञान विकास है। परन्तु मानव की आत्मा को विकसित प्रकाशित करने वाला वही ज्ञान-दीप प्रकाश को पानकर कज्जल की कालिमा प्रसूत करता हो, उसका अन्त आवश्यक है। ज्ञान का दीपक अज्ञान की अँधियारी दूर करने के लिए प्रकाशित किया जाता है। कज्जल-कालिमा द्वारा मति को मलिन बनाने के लिए नहीं।

हमारे राष्ट्र की शिक्षा का आदर्श 'विद्ययाऽमृतमश्नु रहा है। आज वह रोटी-रोजी बेकारी की राह में भटक रहा है। फिर आत्मोन्नति, जीवन की सफलता, मोक्ष, ध्येय-धर्म आदर्श, के पथ का उसे क्या पता होगा? जिस शिक्षा का ध्येय जीवन व्यवसाय मात्र बन गया हो, उससे मानवीय गुणों के विकास की कैसे अपेक्षा की जाय? जब तक हमारी शिक्षा ध्येय निष्ठ नहीं बन जाती, मानव-गुणों का विकास दुर्लभ है

भगवान् कृष्ण की वंश-परम्परा !

सौराष्ट्र में जामनगर, कच्छ आदि के राज—वंशीय जन यदुवंशीय-जाडेज़ा क्षत्रिय हैं, जो अपने को भगवान् श्रीकृष्ण के वंशज एवं उत्तराधिकार परम्परा में मान्यता रखते हैं। उनके गोत्र-प्रवर, और कुल-देवों के कारण भी उनकी इस मान्यता में तथ्य दिखाई देता है। पौराणिक कथा-गाथा के अनुसार श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब था, उसका विवाह शोणितपुर के बाणासुर के प्रधान कुभाण्ड की पुत्री रमा के साथ हुआ था और उससे उष्णिक् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह यादवी-युद्ध के समय कुभाण्ड के निकट होने के कारण सुरक्षित रह गया था, कहा जाता है कि उष्णिक् ने मिश्र देश में अपने शासन की स्थापना की थी, और साम्ब के वंशज साम्बा नाम से ज्ञापित हो गए थे, ये साम्ब-जन बहुत समय पश्चात् बलूचिस्तान के द्वारा सिन्ध में आए। वहाँ भी 'साम्ब' के नाम से ही परिचित हुए। सिन्ध में आज भी नगर 'ठट्ठा' नामक जो स्थान है, उसे साम्ब नाम से उन लोगों ने बसाया था, यही सिन्ध के साम्ब अपभ्रंश से 'जाम्ब' कहे गए, और इन्होंने ही १५३० सं० में सौराष्ट्र में आकर साम्ब नगर की तरह जाम्ब नगर की स्थापना की। जाम साहब उसी परम्परा के पुरुष हैं। श्रीकृष्ण के वंशजों की नियमानुसार वंशावलि के संग्रह करने का प्रयास किया गया है, और उसके अनुसार वर्तमान जाम साहब भगवान् श्रीकृष्ण से १३१ वीं, पीढ़ी में स्थिर होते हैं, यह वृत्त एक गुजराती पत्र में हाल ही में प्रकाश में आया है। यह स्पष्ट है कि सौराष्ट्र का पौराणिक इतिवृत्त श्रीकृष्ण के जीवनारंभ से आरम्भ होता है। और उनके अन्त के साथ अन्त होता है। द्वारका से सम्बन्धित होने के कारण श्रीकृष्ण का सौराष्ट्र केन्द्र रहा है। आज भी द्वारका जामनगर के अन्तर्गत रही है, जाम साहब अपने को वत्सवंशीय मानते हैं, उनकी गोत्र-देवी आशापूर्णा है, जिनका पुरातन स्थान जामनगर के सागरतट पर प्राचीनता की साक्षी में स्थित है। इस घटना की संगति लगाने वाली एक ज्ञात और बड़ी महत्वपूर्ण प्रतीत होती है, और वह यह कि इन पंक्तियों का लेखक भगवान् श्रीकृष्ण के विद्या-गुरु महर्षि-संदीपन के कुल से चला आता है। पांच हजार वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण उज्जैन में अध्ययन करने आए थे, यह पुराण-प्रसिद्ध घटना है। पांच हजार साल बीत जाने पर भी यह वंश आज इसी अवन्ती में उसके अस्तित्व को प्रमाणित कर रहा है, जैसे कि जामनगर में जाम सा. का कृष्ण वंश। संदीपन वत्सवंशीय थे, और उनकी भी कुल देवी आशापूर्णा थी हम लोगों के परिवार में अबतक भी यही पूज्य बनी हुई है। जबकि जाम सा. का वंश भी वत्स, और कुल देवी आशापूर्णा है। पुरातन जमाने में यह प्रथा रही है कि गुरु, या श्रेष्ठ जनों के वंश-गोत्र आदि को शिष्य जन ग्रहण कर उस परम्परा को स्वीकार करते थे। इसका यह प्रमाण भी मिल जाता है, अन्यथा एक ब्राह्मण वंश के गोत्र देवी आदि राजपुत्र के भी वही रहे, यह विस्मय जनक जरूर है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण वंश की वंशावलि का संग्रह कर जाम साहब १३१ वीं पीढ़ी में माने जाते हैं, उसी प्रकार संदीपन ऋषि की वंशावलि भी हम लोगों के पास क्रमशः चली आ रही है, और उसके अनुसार हमारा क्रम १४५ वीं पीढ़ी में संदीपन मुनि से प्राप्त होता है। इन दोनों वंशावलियों का पौराणिक और ऐतिहासिक परम्परा से सामंजस्य देखकर प्रमाणित बनाया जाना चाहिए, इनसे इतिहास की बड़ी गुत्थी सुलझ सकती है, और तथ्य का भी पता चल सकता है। कालक्रम वश श्रीकृष्ण और उनके गुरु संदीपन के वंश अपना अस्तित्व रख रहे हैं, सुदूर रहते हुए भी उनकी अनेक परम्पराओं में साम्य है। इतिहासानुशीलन के लिए यह महत्व का विषय हो सकता है।

पाकिस्तान-हिंदुस्तान-अमेरिका।

पाकिस्तान का निर्माण ही भ्रम, भय और शंका पर आधारित हुआ है। जिसकी नींव में भ्रम भरा हो, उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति 'भ्रम' को लेकर ही चलती है, आज पाकिस्तान इसी 'भ्रम' के कारण सारे एशिया को खतरे में डालने के लिए उद्यत हो रहा है, जहाँ ईरान, ईराक, इजिप्ट आदि पड़ौसी राष्ट्र, अंग्रेजी, अमेरिकी कूट नीति से क्रुद्ध हो उनकी चालों में फँसने से अपने को सतर्क बनाते जा रहे हैं; वहाँ पाकिस्तान पड़ौसी से सबक सीखना छोड़ सीधा अमेरिका के पंजे पड़ अपना आत्म-विक्रय करने जा रहा है। अनेक बहानेबाजी, टाल-टूल के बाद उसने इतना स्वीकार कर लिया है कि अमेरिका से वह सैनिक सहाय लेने जा रहा है। निःसंदेह

अमेरिका अपने जाल में जकड़ लेने में पाकिस्तान में सफल होगया है। जब तक लियाकत अली जिन्दा थे उसका जादू नहीं चल पाया था, और उनकी हत्या में भी ऐसा ही कोई रहस्य है। नाजिमुद्दीन के पतन के पीछे भी अवश्य प्रपंच रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि मुसद्दिक का पतन, शाह का उत्थान अभी हमारी आँखों के सामने ही है, जहाँ अमेरिका की चालें सफल हुई हैं। सम्भव है नेपाल की राणाशाही भी चुंगल में पहुँच गई होती, यदि महाराज त्रिभुवन ने भारत पलायन न किया होता, इस प्रकार एशिया में दीर्घकाल से अमेरिकी-षडयंत्र चलते आए हैं, अब वह पाकिस्तान में पनपते-पोषित होते दीख रहे हैं, इस पर भी पाकिस्तान 'सार्वभौम स्वतन्त्र'-सत्ता का दम्भ कहाँ तक सुरक्षित बनाए रख सकेगा, यह एक समस्या है। एक ओर उसी के हित में कही गई नेहरू जी की चेतावनी पाकिस्तान को अपनी प्रभु सत्ता में दखलन्दाजी दिखाई दे रही है अब उसकी प्रभुसत्ता खुलेआम अमेरिका के हाथ बिकने जा रही है, यह उसे सुझाने पर भी नहीं सूझ रहा है। आज सारा एशिया पाक के इस नापाक-गठ-बन्धन से चिन्तित हो उठा है। इजिप्ट, ईरान, ईराक, तुर्क आदि के पत्रों ने इसे हिकारत से देखा है। ब्रिटन के पत्र भी इसे भला नहीं समझ रहे हैं अमेरिका के कई पत्रों ने तो भण्डा फोड़कर 'नाना' कहते रहने पर भी पाकिस्तान को पाप-प्रकट करने को विवश बनाया है। स्वयं पाकिस्तान में बड़ा विरोध और भ्रम फैल चुका है, यदि पाकिस्तान का यह सैनिक सहाय समझौता-भय, भ्रम पर आधारित नहीं है तो उसमें इतना दबाव, छुपाव का क्या कारण रहता था? यह पर्दे पोशी ही उसके पापमय होने का प्रमाण है, जिसके प्रकाश में लादेने के कारण पाकिस्तानी प्रधानों में बौखलाहट हो गई है। कोई 'प्रभुसत्ता' पड़ौसी के पीड़ा का कारण बन सकती हो तो उसकी चिल्लाहट स्वाभाविक है। नेहरूजी, रूस, चीन, अफगान, पख्तून आदि का शंकित, सतर्क सावधान हो जाना स्वाभाविक है; परन्तु हमारा खयाल है पाकिस्तान इस की चिंता नहीं करेगा, और अमेरिका तो अपने स्वार्थवश ऐसा सुयोग क्यों हाथ से छोड़ेगा? जो भी हो, इस घटना से किसी रोज एशिया में 'कोरिया-काण्ड' की पुनरावृत्ति सम्भव हो सकती है, और पाकिस्तान का भ्रम उसे ही किसी रोज इस भय में भस्म हो जाने को विवश बना देगा। भारत के लिए अवश्य ही यह प्रश्न जटिल बन जाता है। उसे अत्यन्त सतर्क हो जाने की, और आन्तरिक एकता को सुदृढ बनाने की आवश्यकता है। चीन और रशिया से भारत के अच्छे सम्बन्ध हैं, यह शुभ-चिन्ह है, इस पाक-पाप-बन्धन के कारण और भी यह स्नेह सुदृढ़ बन जायगा, तथापि हमारी आन्तरिक-एकता ही हमारा बल है, हम तटस्थ रह कर भी इस बल पर सुरक्षित रह सकते है।

आज पाकिस्तान में अनेक मतभेद जागृत हो रहे हैं, वहाँ आर्थिक समस्या, अन्न-वस्त्र-समस्या भी विषम है, प्रधान मण्डल में भी एकसूत्रता उतनी नहीं है। उधर पाकिस्तानी नव-विधान को लेकर भी बहुत उलझनें उपस्थित हो रही हैं। इस्लामी-धार्मिक-आधार पर बनने वाले संकीर्ण विधान पर आलोचना भी हुई है। पण्डित नेहरू जी की स्पष्ट आलोचना को लेकर वहाँ के गवर्नर जनरल, और कानून मंत्री ने भी उत्तर देने का प्रयास किया है। वस्तुतः जब भारत वर्ष में मुसलमान २३ प्रतिशत थे तब उन्होंने अपने को अलग बनाकर पाकिस्तान बाटा था, वे 'भारत' में भारतीय होकर रहने को तत्पर नहीं थे, आज पाकिस्तान की कुल बस्ती में १५ प्रतिशत हिन्दू रहते हुए भी वही पाकिस्तान उन्हें इस्लाम-मजहबी शासन में अधिकार रहित रहने को विवश करना चाहता है। जो लोग भारत में समान अधिकार मांगने के लिए देश के टुकड़े करवाने को आमादा बने थे, वे अपने यहाँ १५ प्रतिशत (वह भी अकेले एक भाग में ही) को इस्लाम धर्मानुयायी शासन में रहने को बाध्य बनाना चाहते हैं, यह उनका 'लोकतन्त्र' है? जिस विधान में 'कुरान और सुन्नाह' के विपरीत कोई नियम निर्मित न हो सकने की योजना हो, राज्यधर्म 'इस्लाम' होगा, यह मजहबी रूप स्पष्ट हो, तब उन १५ प्रतिशत अन्य धर्मियों को या तो धर्मान्तरित होना पड़ेगा, या गुलाम बनकर अरक्षित अवस्था में रहना होगा। क्या व विधान लोकतांत्रिक कहा जा सकता है? वहाँ के करोड़ हिन्दू भय में पड़ जाते हैं, ऐसी अवस्था में वहाँ विषाद उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस पड़ौस की प्रवृत्ति का प्रत्याघात भारत पर पड़ना स्वाभाविक हो है। जब कि भारत में करो भी मुसलमान वैधानिक नागरिक मूलभूत अधिकार प्रा

है। तब भी पाकिस्तान में उनके लिए गलत प्रचार भड़काया जाता है। किंतु पाकिस्तान का स्वयं अनुदार-विधान चीखकर कह रहा है कि वहाँ के अल्पमत अधिकार हीन हो मजहबी तंत्र के तले कुचले जाने को है। ऐसी अनेक समस्याओं ने पाकिस्तान में आन्तरिक उलझनें बढ़ादी है। असत्य, भय, भ्रम, घृणा, और उस पर धर्मान्ध-संकीर्णता ने पाकिस्तानी शासन की जड़ में घुन तो लगा ही दी है; किन्तु सर्वोपरि अमेरिकन-सहयोग से उसने इस कमजोरी को दबाने के लिए जो बल प्राप्त करना चाहा है, वह उसके लिए अस्तित्व के खतरे का ही कारण बन जाएगा।

एकता से—अनेकता की ओर !

जिस प्रकार 'पाकिस्तान' की मांग ने देश में 'विष-विस्तार' कर प्रथकता को जन्म दिया उसी प्रकार भाषावार प्रांत का प्रपंच बुरी तरह पनपता जारहा है। यदि इसे पोषित किया, या प्रोत्साहित किया, तो देश की एकता-अनेकता में बँटती ही जाएगी। चाहे आज हम केवल विनोद तक ही सीमित क्यों न समझें, महिला-मण्डल द्वारा प्रथक-स्वतन्त्र महिला-शासन तन्त्र की मांग भी उसी महत्वाकांक्षा की प्रसूति-पीड़ा को प्रमाणित करती है, जो प्रथकता का प्रसव कर देश को दलित बनाने का आयोजन कर रही है।

अंग्रेजों के जाने के बाद जनता की आन्दोलन-प्रवृत्ति सही दिशा की ओर नहीं जारही है। जनता का नेतृत्व शासन में सम्मिलित हो जाने के बाद उसका स्थान अदूरदर्शी-महत्वाकांक्षियों के हाथों में पहुँच गया है। उसी का यह परिणाम है कि जनमनोवृत्ति अनियंत्रित प्रगति कर रही है। प्रांतों के प्रश्न, सीमा की समस्या अभी सुलझने को है। अनेक भोगौलिक और सांस्कृतिक उलझनों का सामना करना है। मानवता और नागरिकता की परिभाषाएँ हमें स्वाधीनता की स्थिति में सही समझना है। उसके पश्चात् हम जन-तन्त्रता का महत्व उचित अनुभव कर सकेंगे अभी हमें अन्य प्रथकतावादी प्रवृत्तियों को प्रेरित या पोषित होने से रोकना ही श्रेयस्कर है। बम्बई के श्री पाटिल ने ठीक ही कहा है कि भाषिक-प्रांत वाली चर्चा को १५ वर्ष के लिए रोक देना चाहिए, यही उचित भी है। आज हमें पाक-अमेरिकन संधि समस्या ने जिस नई चिंता में विचार करने की गंभीर स्थिति में खड़ा कर दिया है, यह और भी हमें बाध्य करता है कि हम इस समय देश की आंतरिक एकता और सुदृढता को विश्रृंखलित बनाने वाली किसी भी प्रवृत्ति को प्रगतिमय बनने न दें। हम चाहें बहुमत प्रणाली के कारण संख्या-बल को लेकर जनतन्त्र में कुछ भी प्रवृत्ति चला सकते हैं, किंतु उसका परिणाम विवेक एवं दूरदर्शिता की कसौटी पर कहां तक सही राष्ट्रहित-कर्त्ता हो सकता है यह समझ लेने की आवश्यकता है।

केवल बहुमत और संख्याबल के आधार को लेकर ही हम सोचने-और करने लगें तो १९५१ की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में महिला की संख्या आधी से थोड़ी ही कम है। तो इस अनुमान से शासन में महिलावर्ग का पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त किया जासकता है। और जिन, मद्रास त्रावनकोर-कोचीन, कच्छ, उडीसा आदि में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या अधिक हैं, सहज संपूर्ण सत्ता उनके अधिकार में पहुंच सकती है। ऐसी ही बातों को लेकर श्रीमती मुंशी ने महिला प्रदेश की मांग की थी, और विक्रम के इन्हीं स्तम्भों में हमने मनोरंजन का विषय बना लिया था, यही क्यों काश देश के बेकार या अपढों का सुदृढ संगठन बना लिया जावे, और उसे ठीक नेतृत्व प्राप्त हो जावे तो, इनका संख्या बल भी कुछ प्रांतों को प्रथक् बनवा लेने को बाध्य बना सकता है। अभीतक हम नहीं जानते थे कि ऐसे प्रांत का दावा कौन करेगा ? किंतु महज़ मजाक में ही क्यों न हो-दिल्ली के कांस्टीट्यूशन हाऊस में कुछ दिन पूर्व ही, अखिल भारतीय मूर्ख-मण्डल की, एक खास बैठक हुई थी, और उसने पाकिस्तान की तरह 'मूर्खस्तान' की मांग कर डाली है। यही नहीं उस बैठक में जम्मू-हिमाचल-प्रदेश, पंजाब तथा पेप्सू के प्रतिनिधियों ने निश्चित किया कि इन चार प्रांतों को मिलाकर एक विशाल प्रांत बना दिया जावे, क्योंकि भाषा, संस्कृति और मूर्खता में ये चारों समान है। यह 'मूर्खस्तान' कहलाने को तैयार है !! कोई आश्चर्य नहीं कि एक रोज यह मनोविनोद भी रंग पकड़ले, केवल संख्याबल ही तो सहायक बन सकता है। परन्तु राज्य-परिषद की सदस्या श्रीमती अरुण्डेल तो इससे भी कुछ आगे बढ जाती है, उन्होंने राजकोट के अपने भाषण में पशुओं को भी नागरिकता में परिगणित करने की प्रेरणा की है। बात वाजबी है। नगरों में रहने वाले नरों के निरन्तर

सहयोगी पशु जो कि 'नरों' को सब तरह पोषित करते हैं! उन्हें क्यों न नागरिक माना जाए, जब कि नर नागरिक बन सकता है तो उसका सहयोगी पशु उससे प्रथक् क्यों रहे? नगरपालिकाओं की भी यह बेईमानी है कि सीधी सडकों से वह इनको पकडवाकर कांजी हाऊस में मुंदवा देती है। काश श्रीमती अरुण्डेय के कुत्ते, गाय, भैंस, गधे, घोड़े; बकरी, भेड़ें आदि भी नागरिक बना लिये जावें तो नरों के साथ नर-पशुओं की और नारी के साथ नारी पशुओं की भारी संख्या वृद्धि हो सकती है। हमारा तो यह भी सुझाव है कि न केवल पशुओं को ही, उन पालतू पक्षियों को भी जो तोते, कबूतर, तीतर, मुर्गे, बाज, चिडियां आदि के रूप में मानव के संगी साथी बने हुए हैं, क्यों न नागरिक मान लिया जावे। सौराष्ट्र में कुछ समय पूर्व एक सज्जन ने अपने पालतू कुत्ते का नाम परिवार की सूचि में सम्मिलित कर 'राशन' की मांग भी की थी उसी सौराष्ट्र में श्रीमती अरुण्डेल ने यह नागरिकता की आवाज बुलंद की है। कोई आश्चर्य नहीं कि इस संख्या बल को लेकर किसी रोज एक ओर प्रथक्-प्रांत या शासन, मन्त्रीत्व आदि की नई मांग भी प्रस्तुत हो। जनतन्त्र के इस युग में यह विचारणीय बन जाता है।

शिक्षा मंत्रालय का षड्यंत्र !

राज्य परिषद् में यह सूचना सुन कर कि भारतीय विश्व-कोष 'हिन्दी' में तैयार हो गया है, जहां प्रसन्नता हुई, वहां यह जानकर अत्यन्त परिताप भी हुआ कि यह महान् कार्य दिल्ली के जामिया मिल्लिया कॉलेज के द्वारा सम्पन्न करवाया गया है। जामिया मिल्लया एक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था हैं, उसके प्रमुख डॉ जाकीरहुसेन प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री भी है। गांधीजी की नई तालीम में उनका योग है परन्तु हिन्दी से उनका और उक्त संस्था का क्या सम्बन्ध हो सकता है? इसके सिवा विश्व कोष जैसी महत्वपूर्ण वस्तु की रचना के लिए उक्त संस्था कितनी अधिकारिणी है यह प्रश्न बहुत गंभीर बनजाता है। तीन लाख की लम्बी रकम देकर भारत के शिक्षा मंत्रालय ने गुप चुप यह सांठ-गांठ कैसे करली, और कब करली यह भी कानों कान किसी को खबर तक न लगी? विश्वकोष (इन्सायक्लोपीडिया) की रचना साधारण काम नहीं, उसके लिए इस देश के पुरातनतम इतिहास, साहित्य-संस्कृति ज्ञान-विज्ञान का व्यापक ज्ञान, परिवर्तन, संस्कार आदि की सूझ की आवश्यकता है। मराठी में ज्ञान कोष इसी प्रकार की एक विशाल रचना है, जिसे स्व० डॉ. केतकर ने अपनी समस्त शक्ति और साधना के साथ निष्ठा पूर्वक अनेक विषय के प्रवीण पण्डितों के सहयोग से २३ भागों में अनेक वर्षों में सम्पूर्ण किया था, हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा ने इस दिशा में यत्न किया था, पर वह पूर्ण नहीं हो पाया, अत्यन्त व्यय, श्रम, ज्ञान साधना के सिवा तज्ञों के सहयोग से यह सहज सम्भव भी नहीं हो सकता था किन्तु जिन्हें भारतीय भाषा, साहित्य-संस्कृति, इतिहास, ज्ञान-विज्ञान का ज्ञान नहीं उस संस्था के द्वारा न जाने कैसे, और न जाने कब यह शिक्षा मंत्रालय ने कोष तैयार करवा लिया, और छपकर प्रकाश पाने की प्रसूति पीड़ा पा रहा है। इसी तरह कुछ समय पूर्व समाज शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का निर्माण भी इसी संस्था के द्वारा शिक्षा विभाग ने करवाया है। शिक्षा विभाग की यह जामिया मिल्लिया से मिल्लत अत्यंत खतरनाक ही नहीं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भयंकर हानिकारक तथा असांस्कृतिक है। देश में नागरी प्रचारिणी, सम्मेलन, भाण्डारकर संशोधन संस्था आदि के रहते हुए उनकी उपेक्षा कर जामिया मिल्लिया से एक राष्ट्रीय-ज्ञान-कोष का निर्माण करवा लेना अत्यन्त आपत्तिजनक, है अपमान जनक भी है। हिन्दी भाषी जनता की अवहेलना कर देश की संस्कृति से अपरिचित संस्था के द्वारा इस कोष के निर्माण कार्य का सर्वत्र विरोध आवश्यक है, देश में अनेक अधिकारी विद्वानों के रहते हुए लाखों की लागत का यह बड़ा भारी सौदा गुप-चुप अवांछनीय जनों के द्वारा सम्पन्न करवा लेना भारतीय शिक्षा मंत्रालय का खुला षड्यंत्र है, जो अक्षम्य होना चाहिए। परन्तु जबतक मौलाना का मंत्रालय, सैयदेन, हुमायू कबीर का कबीला ही उस पवित्र विभाग से मुक्ति मार्ग का पथिक नहीं बनादिया जाता, ऐसे अनर्थ अनवरत होते रहेंगे। राज्य परिषद् में इस विभाग को लेकर जो मिट्टी पलीद हुई है, मौलाना की मति यदि कायम है तो उन्हें स्वयं सरलता से मुक्त हो जाना चाहिए तभी देश का ज्ञान हित साध्य हो सकेगा। सरकार चाहे तो

उन्हें जीवन पर्यन्त सम्मान पूर्वक (सम्पन्नता के साथ) आराम के साधन समन्वितकर स्वतंत्र बनादे, पर शिक्षा विभाग से कलंक धुल जाना आवश्यक है ।

‘शासन की आवश्यकता’ या-अभिशाप !

‘शासन’ एक स्वतंत्र विज्ञान है । नियम और व्यवस्था का उस पर आधार है । परन्तु जो शासन रुक्ष-‘विज्ञान’ रह कर मनोविज्ञान की उपेक्षा करता है, उसकी सफलता संदिग्ध बन जाती है, अनेक बार अनुभव किया जाता है कि शासन की कुछ आवश्यकताएं होती हैं, परन्तु उससे विपरीत जनता की आवश्यकता होती है, जो शासन अपनी आवश्यकता को महत्व देकर जनता की आवश्यकता को उपेक्षित कर देना चाहता है, वह कठिनाई को आमंत्रित कर लेता है । कभी विपरीत स्थिति भी होती है, किन्तु वह बहुत कम अवसर पर होती है । जो शासन जनता की आवश्यकता को नहीं समझता, उसके हित को दुर्लक्ष्य करता है, और अपनी आवश्यकता को ही जनता के सिर पर थोपना चाहता है वह आपत्ति आमंत्रित किए बिना नहीं रहता, विशेषतः जनतंत्र-शासन में तो जनता की आवश्यकता को ही प्राथमिकता दी जाती है । अधिनायक-तंत्रों की स्थिति भलें ही इससे भिन्न हो । भारतीय जनतंत्र-शासन अवश्य ही नवीन प्रयोग है, और अनेक राज्यों में अनुभव हीनों के हाथ शासन तंत्र आ गया है, फलतः शासन-विज्ञान की जैसी खराबी हो रही है, उसीका परिणाम शासन का शैथिल्य, जनता में अविश्वास, और असंतोष की भावना भयानक रूप लेती जारही है । जनता के प्रतिनिधित्व का दावा रखने वाला व्यक्ति ही जनता की आवश्यकता को न समझ कर स्वयं अपने हाथों जनहित का मर्दन करने लगजाता है । परिणाम यह होता है कि उसका जन-प्रतिनिधित्व बलि चढ़ जाता है, शासन परिवर्तन-चक्र पर चढ़ कर चक्कर खाने लगता है, अपनी स्थिरता बना ही नहीं पाता, दलबन्दी की दुनाली का शिकार बन ‘अपनी-आवश्यकता’ तक खो बैठता है । जिस शासन में लोक प्रयता और जन-संपर्क के नाम पर ऑफिस की उपेक्षा हो जाती है । सभा-सभारंभ, सत्कार, सम्मान-यात्राएं, उद्घाटन का ओघ आजाता है, वहां जनता की आवश्यकता की कौन कीमत करने लगेगा ? भत्ते का भविष्य उज्वल बनाने के लिए भाग्य का सौदा होने लगता है ! फाईलें फूल कर दफ्तर की दराज में दाखिल होती जाती हैं, और जनता का भावी अंधकार में निरंतर बढ़ता जाता है । शासक अपनी ही आवश्यकता में उलझता जाता है, जिस प्रकार ‘असफलता’ शासक को परिवर्तन के चक्कर पर चढ़ाए रखती है, उसी प्रकार शासक अन्य महत्व की बातों का विचार छोड़ अधिकारियों को अविचार पूर्वक इधर से उधर घुमाता रहता है, किसी अधिकारी को अपनी स्थिरता का आधार अनुभव नहीं हो पाता, ऐसी अवस्था में क्या वह जनहित साध्य करे या शासन कार्य ही । काश कोई अधिकारी कुछ समय कहीं रह गया, और वह स्थिति का ज्ञान करने की अवस्था में पहुंच सका तो ठीक उसी समय उस पर शासन की ‘आवश्यकता’ परिवर्तन के लिए बाध्य बनाने को प्रस्तुत हो जाती है । इसके विपरीत दल-हित, पार्टी प्रभाव, नेतृत्व का नजला भी अधिकारी को उलट-फेर करता रहता है । अनेक पार्टियां, अनेक कार्यकर्ता, सीधे शासन से सम्बन्धित रहते हैं, उनके ‘मत’ का महत्व मंत्री तक को मजबूर करता रहता है, वे प्रत्येक साधारण अधिकारी को प्रभावित या पीड़ित करने में प्रयत्न शील रहते हैं, ऐसी हालत में किसी एक पक्ष से भी तटस्थ रहना दूसरे पक्ष की नाराजी का शिकार बनना होता है, तब न्याय, निष्पक्षता, शासन, व्यवस्था की क्या दशा हो सकती है, कल्पना की जाना चाहिए । न जनता की आवश्यकता का ही महत्व रहता है न शासन की । जनता की स्थिति-मनोवृत्ति समझे बिना कार्य में समरस हुए बिना सफलता संभव नहीं; किन्तु जनता से सम्पर्क स्थापित करने-या विश्वास सम्पादित करने से पूर्व, या सम्पादित करने की स्थिति में आते ही परिवर्तन का चक्र सहज घुमाव डालदेता है, और इसे “शासकीय-आवश्यकता” से ज्ञापित किया जाता है । इसका कहां तक औचित्य है यह शासक ही जान सकते हैं । हम तो इसे शासन का अभिशाप ही समझते हैं जो शासन को जर्जरित कर रहा है । समस्त शासन इस दुरवस्था का शिकार हो शिथिलता से जर्जर बने तो कोई विस्मय का विषय नहीं यह अवस्था अनेक नव-निर्मित राज्यों की है, मध्य भारत तो इस विकार से ग्रस्त ही है ।

"भारतीय आत्मा" की प्रेरणा—

"काव्य निश्चय ही सृष्टि का सृजनात्मक संगीत है, जिसमें मानवता के ओजस्वी स्वर ध्वनित होते हैं। परन्तु कविता को एकदम कल्पना-लोक की वस्तु भी नहीं होना चाहिए। वह भले ही आदर्श का स्तर रखे, किन्तु साथ ही धरती से सम्बन्ध बनाये रखे। प्रयोग-शीलता और प्रगतिशीलता के आज के युग में कविता कलात्मक होती जारही है, जब कि उसे विशुद्ध रूप से रागात्मक ही रहना चाहिए। वादों का विवाद राजनीति का विषय है, जहाँ बोल हृदय की आवाज नहीं होते किन्तु दिखावटी बन कर बकवास हो जाते हैं। भावोर्मियों के तटों के बीच बहने वाली काव्य-धारा अनुभूतियों का प्रभाव रखती है और उसकी समुज्ज्वलता में किरणों का वैभव कलात्मक चमत्कार की सृष्टि कर देता है। राजनीति यथार्थता से प्रारम्भ होती है और व्यवस्था तथा शासन-प्रणाली के तर्कों में समाप्त हो जाती है। जनतन्त्र भले ही राजनीतिक रूप से एक आदर्श हो परन्तु व्यक्तित्व का विकास तो चिरन्तन प्रतिभा से ही होता है। राजनेता और उनकी राजनीति निश्चय ही अमर है क्योंकि उसकी प्रेरणा युग-युगों तक मानव-हृदय को उच्छ्वसित करती है। इन्दौर में 'भारतीय आत्मा' (पं. माखनलाल चतुर्वेदी) ने तुलसी, सूर और मीरां जैसे सन्त-कवियों की वाणी की महत्ता बताते हुए ठीक ही कहा है कि प्रेम का अशेष प्रवाह कवियों से होना चाहिए जो रानीतिज्ञ में निःशेष होता जा रहा है। उन्होंने सलाह दी है कि अनेक रसों के साथ शृंगार पर भी कविता हो परन्तु वह ऐसी कि बेटियाँ और बहनें उन्हें साथ बैठकर सुन सकें। हाथ पर राखी बाँधकर ही कलम की नोक से शृंगार में भी आवश्यकतानुसार शुद्ध-सात्विक भावना लाई जा सकती है। साधक के रूप में कवि और बाधक के रूप में राजनेता आज समाज में अस्तित्व बनाये हुए है! पद-प्रभुता के समान कवि की श्रद्धा और उसका विश्वास सदा ही अडिग रहा है, वह न तो कभी सम्पत्तिवालों के सामने झुका है और न सत्तावालों के सम्मुख ही उसने हार मानी है। इन्द्रासन से जब बृहस्पति की मृगछाया सदा ऊँची रही है, जब आज भी कवि का आसन अनेक सिंहासनों कुर्सियों और गद्दियों से भी ऊँचा है और रहेगा। सरस्वती की कृपा के होते हुए कवि और कलाकार को लक्ष्मीपति के सामने हाथ पसारने की जरूरत भी नहीं है। प्रतिभा ने उसे अमरता का वरदान दिया है और उसकी प्रेरणा अपनी परम्परा से उसे दीर्घजीवी रखेगी।"

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

※ ※ ※

और २८ नवम्बर को उज्जैन में माधव महा विद्यालय में श्री चतुर्वेदी जी ने रस वर्षा करते हुए कहा था—

"नर्मदा की मंद मन्थर लहरियों को पारकर जब मैं विन्ध्या के प्रांगण में आ पहुँचता हूं तो स्वयं को भी इस भूमि के आंचल से बिंधा पाता हूं और मेरे हृदय की लहरियों पर विन्ध्या के एक-एक पत्थर से झांकने वाली महान विभूतियों की ध्वनियाँ हृदय को झकझोर देती है। कालिदास, भर्तृहरी, भवभूति, तथा विक्रम पुनः कल्पनालोक में आतुरित होते हैं।"

आगे आपने कहा—"जीवन एक धनुष्य है, और साँसें उसकी प्रत्यंचा है। जब लक्ष्य का तीर साधकर उसे खित

पीछे की ओर खींचा जावे वह उतनी ही दूरी पर, और गहराई पर असर करता है। अर्थात् आगे असर गहरा करने वाली प्रगतिशीलता का अतीत के साथ जितना गहरा सम्बन्ध होगा, उतना ही भावी पर सीधा परिणाम होगा।”

श्री माखनलालजी ने अपने भाषण में कहा कि आप सब अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित करके चलिये, और अपना ध्येय आसमान की तरह विस्तृत और नक्षत्रों के समान चित्रित और अडिग होना चाहिये, जिस प्रकार दस कदम चलकर हम अपने मकान को छोड़ देते हैं, १०० कदम पर पास पड़ौसियों को, ५०० कदम पर मोहल्लों को, ५ मील पर शहर को, ५० मील पर जिले को, और इस प्रकार देश भी छूट जाता है, किन्तु; आकाश और नक्षत्र मालाएँ ही ऐसी हैं जिन्हें हर एक स्थानों पर एक नाम से पुकारा जाता है, और एक रूप में दर्शन भी होते हैं। लक्ष्य एक हो और स्थाई हो।

“यदि रजबअलीखां सा. और पं. ओंकारनाथ ठाकुर एक स्थान पर एक स्वर में एक राग गायें तो कोई यह नहीं कह सकेगा कि यह हिन्दू और मुसलमानी राग हैं; क्योंकि वह गा रहा है। इसी कारण साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार, और अभिनेता का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि समाज से वह द्वैत को दूर करे, यह उत्तरदायित्व इन्हीं के सिर पर है।”

साहित्य की व्याख्या।

मराठी साहित्य सम्मेलन गवालियर में आचार्य अत्रे ने साहित्य की सरल व्याख्या करते हुए जो भाषण दिया उसका यह अंश मननीय है—

साहित्य की अत्यन्त सरल व्याख्या यह है कि ‘अमर शब्द’ ही साहित्य है। आज हजारों वर्ष से लोग गीता पढ़ते हैं क्योंकि उसमें अमर शब्दों का उल्लेख है, जो प्रत्येक समाज को हर काल में समान ही लागू होते हैं। साहित्य अमर वही हो सकता है, जैसा कि सन्त ज्ञानेश्वर ने कहा कि जिस साहित्य में रसोत्पत्ति होकर उसमें परमत्व का स्पर्श हो वही अमर साहित्य है। परमत्व का अर्थ आकाश में रहने वाला भगवान् नहीं है। ‘सर्व भूतोति परमेश्वर’ अर्थात् जहाँ-जहाँ चैतन्य है उसको ईश्वर का स्वरूप मान कर ही आत्मीयता से उसके कल्याण के लिये जो शब्द लिखे या कहे जावें वही साहित्य कहलायेगा और वह काल क्षय नहीं पावेंगे। सन्त ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास आदि का साहित्य जो हम सैकड़ों वर्षों से आज तक पढ़ते हैं उसका एकमात्र कारण है कि उसमें मानवता के हित के लिये आत्मीयता का दर्शन होता है। आपने कहा कि महाकवि कालिदास के शाकुन्तल को अमर साहित्य इसलिये मानते हैं कि उसमें पुरुष की गैर जिम्मेदारी वृत्ति और स्त्री की नैसर्गिक जिम्मेदारी इसका जो अनन्तकाल से संघर्ष रहा है उसका कलात्मक प्रतीक इसमें दिखाई देता है, स्त्री की कन्या, यौवना और माता इन तीन स्थितियों का जो काव्यमय वर्णन रस-परिपोष करके उसने किया है जिसको देश काल या जाति का बन्धन नहीं है, उसी कारण वह आज विश्व का अति उच्च कोटि का साहित्य माना जाता है। साहित्यिक कलाकृति उत्पन्न करने के लिए किसी तन्त्र की आवश्यकता है यह मैं स्वीकार करता हूँ; किन्तु तंत्र को बहुत ज्यादा महत्व दिया जा रहा है, यह गलत है, हड्डी मांस और चमड़े के शरीर को कितना ही सुशोभित क्यों न किया जाय यदि उसमें आत्मा नहीं है तो वह केवल जलाने के लायक ही रह जाता है, वैसा ही विचार शून्य साहित्य का है। साहित्य में मनुष्य मात्र की अमर भावना का सरस चित्र होना चाहिए और उसके साथ ही अच्छी भावनाओं का परिपोषण होकर बुरी या दुष्ट भावनाओं का नाश होना चाहिए।

साहित्य में यदि विचार न हों, और विचार में यदि मानवता का कल्याण करने की भावना न हों तो वह साहित्य नहीं हो सकता। हम मराठी भाषा के द्वारा भी मानवता की सेवा कर सकते हैं जैसा कि ईश्वर के अलग-अलग स्वरूप मानते हुए उस प्रतीक द्वारा ईश्वर की सेवा भक्त लोग करते हैं, उसमें अन्य भाषाओं का कोई आपसी झगड़ा नहीं होता, आपने कहा कि साहित्य महान् क्रांति कर सकता है सरकार केवल कानून बना कर शरीर पर अधिकार कर सकती है; किन्तु क्रांति का सम्बन्ध तो हृदय से ही होता है, इसी कारण कानून द्वारा ही क्रांति नहीं हो सकती, वह तो केवल साहित्य द्वारा ही हो सकती है, हृदय परिवर्तन करके क्रांति करने का महान् प्रयोग इस देश में महात्मा गांधी ने किया और उसी कार्य को आज सन्तवर आचार्य विनोबा भावे इस देश में

कर रहे हैं, विनोबाजी जैसा महापुरुष सैकड़ों वर्षों में भी पैदा होने वाला नहीं हैं। हृदय जीत कर क्रांति करने के इस प्रयोग में साहित्यकार एक बहुत बड़ा हिस्सा अदा कर सकते हैं और अखिल मानव जाति में समता ला सकते हैं। अन्त में आचार्य अत्रे ने कालिदास की उस कविता की ओर संकेत किया जिसमें कहा है कि शरीर पर किसी शासक का नियंत्रण रहे; हमारे मन और बुद्धि पर केवल विद्वान् का ही नियन्त्रण रहना चाहिये।

शेक्सपीयर का रहस्य !

जिस प्रकार हमारे देश में महाकवि कालिदास के काल, और स्थल को लेकर अनेक भ्रम धारणाएँ फैली हुई हैं, विद्वानों में विवाद का एक विषय बन गया है, उसी प्रकार पश्चिम के कई कवियों, नाटककारों के विषय में विवाद प्रचलित हैं। अनेक देश उनको अपना बनाने-कहने के लिए यत्नशील है। परन्तु शेक्सपीयर के विषय में ऐसी कोई बात प्रकाश में नहीं आई थी, उसके काल-स्थल को लेकर विवाद नहीं रहा है। शेक्सपीयर की भूमि, उसके साहित्य-साधन आज स्थल विशेष पर सुरक्षित है। वहां सन्मान अर्पित किया जाता है। यात्रा लगी रहती है। किंतु हाल ही में हमने निम्न लिखित समाचार नई सनसनी फैलाता हुआ देखा, जो शेक्सपीयर को असली लेखक ही नहीं कहने देता, उसके नाम पर निकली हुई कृतियों का लेखक एक 'मारलोव' नामक व्यक्ति था। यह सनसनी खेज समाचार सत्य से कहां तक सम्बन्धित है, यह तो समय ही बतलावेगा, परन्तु इस समाचार ने शेक्सपीयर-समस्या को भी एक रहस्य अवश्य बना दिया है। —पाठक स्वयं विचार करें—

शेक्सपीयर की कृतियों का लेखक मारलोव !

लेखक, नाटककार, समालोचक और कवि श्री कालविन हौफमैन ने एक प्रेस सम्मेलन में कहा कि क्रिस्टोफर मारलोव ने वे सभी कृतियां लिखीं, जिन्हें लोग गत ३०० वर्षों से विलियम शेक्सपीयर की समझते हैं। उक्त व्यक्ति ने १७ वर्षों के अनुसंधान के पश्चात कहा कि इंग्लैंड के केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में एक चित्र प्राप्त हुआ है, जिससे विलियम शेक्सपीयर का सभी दावा झूठा होता है। आपने सन १५८५ ई. में चित्रित चित्र के फोटो बताये जो २१ वर्षीय अज्ञात बालक का है। सन १६२३ में शेक्सपीयर के ग्रंथों के साथ प्रकाशित चित्र प्रस्तुत करते हुए श्री हौफमैन ने कहा कि दोनों चित्र मारलोव के हैं। आपने कहा कि उक्त चित्र कॉलेज के कमरे को साफ करते समय मिले थे और वही मेरे अनुसंधान का आधार हैं।

श्री होफमैन ने कहा कि मारलोव को लोग सन १५९३ ई. में मारा गया समझते हैं किंतु वास्तव में वह १६१६ ई. और १६२३ ई. के बीच प्राकृतिक मृत्यु से मरा। मारलोव को नास्तिक समझकर उसे जलाकर मार डालने का आदेश दिया गया था, किंतु उनके मित्र सर थामस वाल्सिंगम ने उसे बचाने के लिए दूसरे मारलोव की हत्या करायी। मारलोव फ्रांस भाग गया और पांच वर्षों बाद पुनः सर थामस के यहां आ गया। मारलोव ने कितने ही साहित्य रचे और सर थामस ने उनका नाटक प्रदर्शित करने के लिए एक अभिनेता शेक्सपीयर से 'सौदा' किया। शेक्सपीयर ने विद्यालय में अल्प शिक्षा ग्रहण की थी। फिर भी उसने मारलोव की कृतियों का लेखक होना स्वीकार किया।

(यू. प्रे. अ. तथा टाईम्स आफ इंडियां न्यूज सर्विस)

भारतीय प्रतिभा का तेजस्वी-तारक अस्त!

कानून और विधान-शास्त्र के मर्मज्ञ श्री० वेनिगल नरसिंह राव के अवसान से भारतीय-प्रतिभा के क्षेत्र से एक दैदीप्यमान नक्षत्र का लोप हो गया है, स्व० राव विदेशी शासन काल में भी इस देश में एक अधिकारी रहे हैं; परन्तु देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् उनकी तेजस्विता ने प्रतिभा का प्रकाश विस्तृत कर दिया था, वे भारत के विधान निर्माण के पश्चात् संयुक्त-राष्ट्र-संघ में इस देश के प्रतिनिधि होकर गए थे, वहाँ उनकी सेवाएँ इस देश के लिए अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध हुईं, उनकी योग्यता की छाप अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में चमक उठी। वे संघ में जिस प्रकार इस देश का योग्यता पूर्ण प्रतीनिधित्व करते रहे उससे भारत का मान बढ़ा है, और उनकी कीर्ति में चार चांद लगे हैं। इसके पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय न्ययालय में उन्हें जज चुनकर उनकी योग्यता और प्रतिभा का विदेशों ने भी सम्मान किया है। स्व० राव के इस सम्मान से भारत की प्रतिभा का समादर हुआ है, और देश का गौरव बढ़ा है। ऐसे प्रचण्ड प्रतिभा

महान् क्षति उठाना पड़ी है। अन्तरराष्ट्रीय राजनीति का एक मर्मज्ञ-प्रवक्ता, न्यायाधीश एवं विधान-विशेषज्ञ ही उठ गया है, स्व० राव की इस देश को अभी बहुत आवश्यकता थी, यह देश के दुर्भाग्य की बात है कि राव जैसा प्रवीण-प्रामाणिक, और पट्ट-पुरुष उसके बीच से असमय उठ गया है।

स्व० सदानंद

फ्री-प्रेस के सम्पादक तेजस्वी पत्रकार श्री. सदानन्द का स्वर्गवास हो गया है। स्व० सदानन्द जीवन भर उग्र, और संघर्ष-रत रहे, उन्होंने जहाँ विदेशी शासकों से टक्कर ली, वहाँ म० गांधीजी से विवाद करने में भी संकोच नहीं किया। वे विचार के पक्के धुन के सच्चे, निर्भीक पत्रकार थे, कष्टों को झेलते हुए भी जीवन भर जनता के लिए अपने पत्र की स्पष्टता, निर्भयता को कायम रखा, सदानंद के उठ जाने से पत्रकार जग से एक स्वतंत्र, तेजस्वी, निर्भीक कलम के धनी का अभाव हो गया, हम श्री० राव और सदानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

स्वर्ग से भाषण !

आगरा में राज्यपाल श्री मुन्शी की श्रोतामण्डली खिलखिला कर हँस पड़ी, जब कि श्री मुन्शी ने कहा कि आप एक ऐसे व्यक्ति का भाषण सुन रहे हैं, जो स्वर्ग पहुँच चुका है।

श्री मुन्शी कुलपति के शिविर का उद्घाटन करते हुए उत्तर-प्रदेश के विभिन्न स्थानों और विशेषतः लखनऊ में हुए विद्यार्थियों के आन्दोलन की, जिसमें उनके पुतले की अर्थी निकाल कर उसका दाह किया गया था, चर्चा कर रहे थे।

उन्होंने कहा—“मैं स्वर्ग में हूँ और आपके सामने एक आध्यात्मिक जगत् से बोल रहा हूं, क्योंकि मेरे पुतले अनेक बार जलाये जा चुके हैं और मेरी भस्मी प्रयाग के पावन त्रिवेणी संगम में प्रवाहित की जा चुकी है।”

(हिन्दुस्तान)

शिक्षा-संस्था, या बेकारी के अनाथाश्रम !

हाल ही में पंचवर्षीय-योजना विभाग ने देश में फैली हुई बेकारी के लिए बड़ी चिन्ता व्यक्त की है, और उसके उपायों पर भी विचार किया है। सर्व प्रथम उनकी दृष्टि देश के बेकारों को काम दिलाने की ओर गई है, और उन्होंने ८० हजार नए शिक्षक रखने की व्यवस्था की है, यह इस समस्या को सुलझाने का कहाँ तक सही तरीका है। गंभीर विचार की अपेक्षा रखता है, योजना विभाग की दृष्टि में जो बेकार हैं, वे शिक्षक का काम कर सकते हैं, अर्थात् शिक्षा का क्षेत्र बेकारों की भर्ती करने का भटियार-खाना है, अथवा शिक्षक का स्तर इतना नीचा सरकार समझती है कि उसमें बेकारों को सरलता से समाविष्ट किया जा सकता

श्रीमान् टंडनजी
आपकी अध्यक्षता में ग्वालियर में
हिन्दी साहित्य सभा की
स्वर्ण-जयन्ती हो
रही है।

है, एकबात और भी है, और वह यह प्रमाणित करती है कि आज की शिक्षा इतनी हीन हो गई है कि उन शिक्षा-क्षेत्रों से बेकार ही ढलकर निकलते हैं, यदि सरकार बेकारी हटाने के लिए ८० हजार बेकारों को शिक्षा क्षेत्र में प्रविष्ट करती है तो वह यह आज की शिक्षा कों प्रमाण पत्र देती है कि वे बेकारी बढ़ाने के कारखाने हैं; परन्तु जो लोग बेकार हैं, जिनको शिक्षा क्षेत्र में लिया जा सकता है, वे अवश्य ही पढ़ेलिखे का प्रमाण-प्रत्र अवश्य लिए होंगे तो यह स्पष्ट है कि जिस शिक्षा ने उन्हें बेकारी का ज्ञान दान दिया, क्या वे शिक्षक बन कर लाखों लोगों को ऐसा ज्ञान दे सकेंगे जिनसे उनका भविष्य अंधःकार मय न बन जावेगा? अथवा सरकार यह समझती है कि शिक्षा का क्षेत्र बेकारों का सदाव्रत है? क्या उन लोगों से देश के ज्ञान में वृद्धि होगी, स्तर बढ़ेगा? और बेकारी के हल का सरकार यह सही तरीका समझ कर अपनाती है तो हजारों लाखों शिक्षा संस्थाएँ प्रति वर्ष जिन लाखों लोगों को बेकारी की ट्रेनिंग देकर ढालती जाती है उनके प्रवाह को निरंतर रोक सकेगी? और बेकारी निवारण कर सकेगी? वस्तुतः जो शिक्षा बेकारों की जननी बन कर राष्ट्र का रोग बन गई उसका हटाना, सुधारना तो दूर रहा उसमें बेकारों को अवसर देना तो उस रोग को बुरी तरह फैलाना होगा। बेकारों को अध्यापक बना कर उस अध्यापक के आदर्श का भी अपमान करना है, और उसके स्तर को भी गिरा देना है। आमतौर पर जन धारणा ही यह हो गई है कि जो व्यक्ति किसी अन्य कार्य के योग्य नहीं होता, उसका स्थान शिक्षा-शाला में रहता है, शिक्षा के इस मूल्य को कभी सरकार ने कसौटी पर कसा है? यों तो प्रति वर्ष ८० हजार अध्यापक-बेकारों की परम्परा उसे निरन्तर मिलती ही जाएगी, और बेकारी की बाढ़ कभी कम होती हुई दिखाई न देगी। और एक समय ऐसा आएगा जब देश की समस्त शालाएँ बेकारों के अनाथाश्रम ही बने मिलेंगे। शिक्षा की इस दुरवस्था का इस प्रवृत्ति से तो कभी अन्त नहीं लाया जा सकता। न शिक्षा, और शिक्षक की हीनता का ही अन्त हो सकता है। सरकार द्वारा सोचा-गया बेकारी-निवारण का यह उपाय शिक्षा के उच्चादर्श का हीनतम अपमान है। देश की बेकारी बढ़ाने वाली इस शिक्षा का बजाय विस्तार के अंत करदेना अधिक आवश्यक है। जिस शिक्षा के क्षेत्र में आदर्श, विवेकवान्, संस्कारशील, विचार-विनय-सम्पन्न उच्च कल्पना के धनी ज्ञान-वैभव संपन्न, सुयोग्य, सुनिर्वाचित जनों को अवसर देकर देश के ज्ञान वैभव को सुसमृद्ध, और विकसित करना है, जिससे राष्ट्र की ज्ञानकर्म शक्ति विकसित हो, समुन्नत हो, निष्क्रियता नष्ट कर सके आदर्श की ओर प्रेरित कर सके, उस शिक्षा के भवन में बेकारी को प्रश्रय मिले, उस शिक्षा के आदर्श का भावी निःसन्देह अंधःकार मय है, देशका ज्ञान तिमिराच्छन्न ही दिखाई देता है।

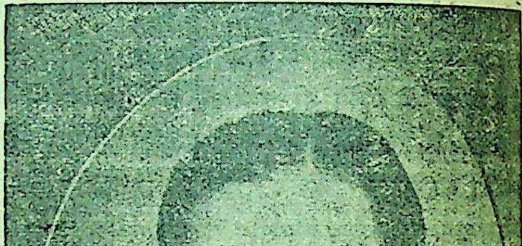

श्रीमंत राजप्रमुख, मध्य-भारत, ग्वालियर में आपने हिन्दी साहित्य सभा की स्वर्ण जयंती अधिवेशन का उद्घाटन किया।

स्वाधीनता सत्र की प्रथम शताब्दि।

सन् १८५७ का मई मास भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा, उसके महत्व से आज समस्त देशवासी परिचित हैं। उस दिन इस देश में विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह का सूत्रपात हुआ था। स्वाधीनता की भावना की दीप-शिखा प्रज्वलित हुई थी। इस घटना को आगामी १९५७ के मई मास में पूरे एक सौ वर्ष व्यतीत हो जाएँगे। हमारे लिए यह पवित्र और स्मरणीय इतिहास दिवस होगा। हम समस्त देशवासियों का यह मुख्य पर्व होगा। इस शताब्दि को सार्वदेशिक और सामूहिक रूप से समस्त उत्साह के साथ मनाया जाना चाहिए। संयोग वशात् ठीक १९५७ के उसी मई मास में उज्जैन में सिंहस्थ का महा-पर्व भी आ रहा है। देश भर के लाखों लोग अवंती नगरी में जुड़ेंगे। मानव का महामेला ही होगा। हम मध्य-भारतीयों को इस अवसर का लाभ लेकर इस स्वाधीनता यज्ञ के आरम्भ की शताब्दि का अपूर्व सप्ताह-समारंभ आयोजित करना चाहिए। राष्ट्र की विशिष्ट विभूतियों को इस पर्व पर आमंत्रित कर शताब्दि-उत्सव को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पर्व के रूप में संयोजित कर देना चाहिए। स्वाभाविक रूप में हमें यह सुयोग उपलब्ध हो रहा है। अभी दो वर्ष की देरी है अभी से हम व्यापक एवं सर्वांग सुन्दर योजना बनालें। सभी सार्वजनिक सभा संस्थाएं इस अवसर के लिए संगठित सामूहिक रूप में कार्यक्रम का निर्माण करें और भारतीय गणतंत्र की जननी मालवगणों की वीर-भूमि इस अवन्ती में सिंहस्थ के महा-मानव पर्व पर स्वतन्त्रता-शताब्दि-समारोह का सोत्साह आयोजन करेंगे। आशा है अवन्ती का यह सिंहस्थ-पर्व राष्ट्रीयता, सांस्कृतिकता और आध्यात्मिकता का त्रिवेणी-संगम बन जायेगा। ज्ञान-विज्ञान के इस महत्वपूर्ण पावन-प्रसंग पर हम राष्ट्र-ज्योति का आलोक प्रसारित करने में अभी से सयत्न बन जायेंगे और सार्वदेशिक आयोजन द्वारा समस्त राष्ट्र का अवंती को आकर्षण-केन्द्र बना देंगे।

जय जनवरी!

जनवरी से नवीन वर्ष आरम्भ हो रहा है और इस वर्ष का सर्वत्र स्वागत हो रहा है। यह 'ईसा' का वर्ष है, ईसाईयों का त्यौहार है। हमारा इससे कोई सम्बन्ध नहीं, हमारी संस्कृति से इसका कोई सरोकार नहीं, पर दो सदियों से यह हमारे सिर पर सवार है। हमारी स्वतंत्र सत्ता भी इसमें सिमटी हुई है। मानसिक पराधीनता इसे पकड़े हुए है। गुलामी की यह 'धरोहर' हमारा आज भी 'उत्सवदिन' बना हुआ है। हमारे अपने 'संवत्' का मूल्य इतिहास के आलेखन का विषय रह गया है, संवत्सर-प्रतिपदा चाहे हमारे राष्ट्र की परम्परा को ही वहन किये चली आरही हो, पर प्रगतिशील प्राणियों के लिए यह पुरातनवाद की प्रतीक मात्र है। ईसा के वैज्ञानिक-युग में विक्रम के विधान का और भारतीय तत्व ज्ञान का क्या मूल्य हो सकता है? यद्यपि संवत्सर प्रतिपदा के वर्षारंभ के साक्षी आकाश के तारे रहते हैं। उसकी प्रत्यक्ष वैज्ञानिकता प्रमाणित करने के लिए खगोल प्रस्तुत है। जब कि जनवरी का कोई लेखा-जोखा हमें कहीं नहीं जुड़ाता, पर जहां अपनों की उपेक्षा ही अपने पन की उन्नति का आधार बनता हो वहां तर्क और विज्ञान परम्परा की पुरानी-पेटी पर प्रतिक्रिया **की पूंजी में परिगणित होकर बट्टे के खाते में खो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ईसा भारत के शिष्य थे, तो अवश्य ही गुरु के गौरव गिरि पर चढ़कर आने वाले इस शिष्य के 'सन्' का सत्कार होना चाहिए! आइए, ईसा से 'ईसा' प्राप्त कर हमारे देश में पधारने वाली नई जनवरी, तुम्हारा स्वागत है। भाषण-भ्रष्टाचार का प्रचार संचार करती हुई नई मँहगाई, बेकारी और योजनाओं की योजना बढ़ाती हुई आओ, नये आचार विचार संचार-प्रचार की पूंजी पर पनपती हुई अपना नवीन पद-विन्यास करती हुई पधारो! प्रगतिशीलों के प्रयोगवादियों के लिए अपने पल्ले में नई प्रेरणा बांधती लाना, अपने मायके से पूंजी के साथ ही वे सड़े-गले संस्कार भी समेटती ही लाना जो यहां की योजना में योजित हो जमीन की उपज बढ़ाने के साथ उपयोगी बन सकें। और उनसे पोषित हो यहां के प्राणी तुम्हारा सतत् स्वागत करने को समुत्सुक बने रहें। पर अन्न की उपज के**

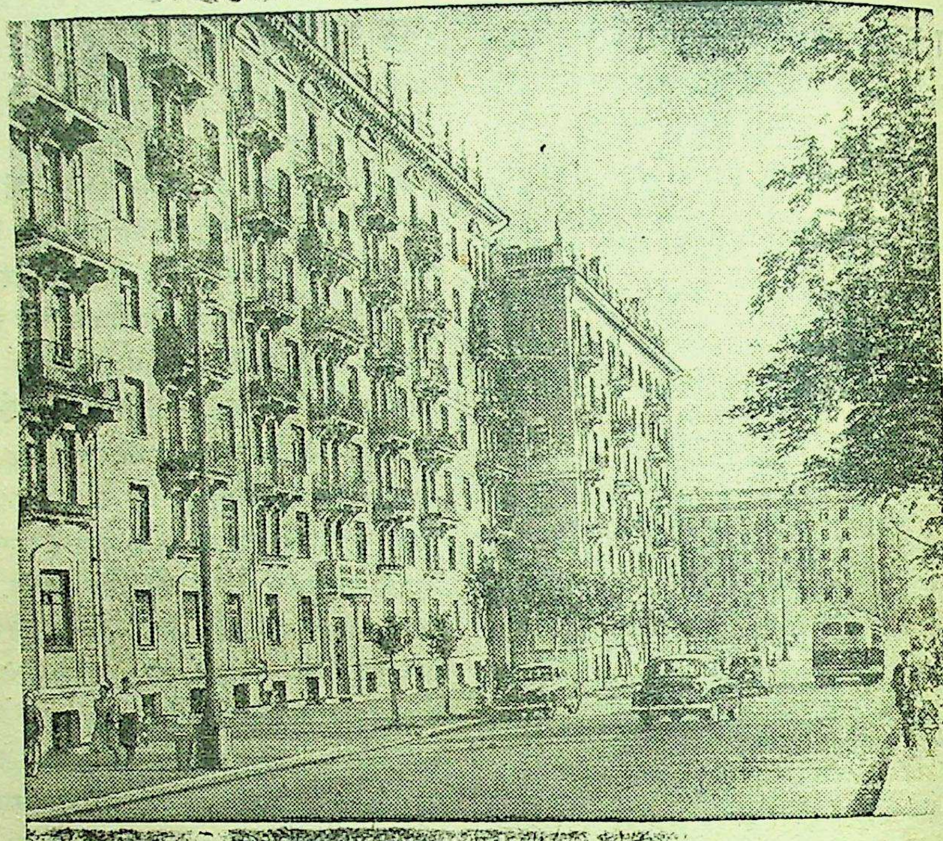

मास्को की नोवो-पेश्चान्या स्ट्रीट में नवनिर्मित भव्य अट्टालिकाओं का एक दृश्य—

साथ आबादी की उन्नति के खयाल को भुला न देना, यहां परिवार नियोजन के तुम्हारे उपासकों द्वारा आविष्कृत अनेक कृत्रिम-उपायों उपचारों का भी प्रचार पनपाना है। पुराने वर्ष के कोरिया-काण्ड की पुनरावृत्ति का प्रारम्भ तो तुम्हारे नए चरण-विन्यास के पूर्व ही पाकिस्तान में हो रहा है। उस प्रवृत्ति के पोषण से तुम भला, कैसे पराङ्मुख रह सकती हो? 'एटम की एनर्जी' को भी तो तुम्हें सर्जीह देना होगी। मास्को में बेरिया की बलि लेकर तुम नए साल का स्वागत लेने आई हो। कोरिया के काले कार्यों का दाग तो तुम्हारे दामन से क्यों छूटने लगा? तुम दग्ध-कालिमामय करों से नया स्वागत-सम्मान लेने आ पहुँची हो अवश्य ही देश के दो टुकड़े बना देने वाले-पंजाब-बंगाल के हत्याकांड से सने हाथों से पाक-प्रदेश नई सहायता पा तुम्हारा सहर्ष स्वागत करेगा। नये जोश-खरोश, उमं उमंग से तुम वहां नव-नर्तन करना। तुम्हारे स्वागत के निक्सन के सामने कई बेगम-बीबियों को पर्दे से पल्ला छु वाकर पहले ही नचवाया जा चुका है; भले ही मुल्का-मौलवी चीखते चिल्लाते रहें। अब-बम, गन, प्लेन का प्रसार प्रस-रित करती हुई पाक-भूमि पर प्रमुदित आओ!

तुम्हारे पिछले साल के अंचल में ब्रिटेन ने कई परि वर्तनों को समेटा है, शासन में अनेक संशोधन हुए हैं। अवश्य ही ब्रिटेन की धूर्तता ने क्रांति नहीं होने दी, अ टूटी ताकत को जोड़-तोड़ से जुड़ाए रखा है, इसी ढ स्टालिनवाद को तुमने रूस में समाप्त किया है। मिस्र

शाह को सड़क पर सरपट करते भटकता बनाया है, और डॉ. मुसद्दिक को मंत्री से मौत के बीच झुलाया है, और काल कोठरी के हवाले कर दिया है। उधर ज. नजीब भी सर्वोपरि नेता के आसन पर आसीन हो गया, ख्वाजा नाजिमुद्दीन पाक प्रधान से पटक दिये गए, और मुहम्मद अली को मलिक-ए-अजम बना दिया। जर्मन और जापान के आन्तरिक-कलहों की कालिमा तुम्हारे अतीत के दामन पर दाग की तरह लगी हुई है। आइजनहॉवर, और मेकार्थी ने अमेरिका की मिट्टी पलीद कर डाली है, इस तरह तुम्हारा पिछला साल संसार की अशांति के इतिहास का एक पृष्ठ ही तो हो गया है, इस पर भी अफ्रिका की जाति भेद नीति को नग्न रूप में नया रंग देती हुई, ब्रि०गायना से जगन को ठुकराती हुई, जोमो केन्याता को काल की चक्की में कुचलती हुई तुम नई दिशा में नए कदम बढ़ाती हुई चली आ रही हो, हे! नई सभ्यता और संस्कार की स्वामिनी! तुम्हारा स्वागत ही किया जाएगा। पोप की प्रेरणा को पल्ले में बांधकर तुम अपने पथ से चलती रहो। इस पुराने-पवित्र देश में भी 'केक' काटकर अपने संस्कार, और 'संवत्' की समाधि पर तुम्हारे नए 'सन्' का स्वागत करने के लिए नव-समाज-सत्ता सन्नद्ध है। यद्यपि तुम्हारा जन्म परदेश में आज से १९५४ साल पहिले हुआ है, और इस देश का संवत् तुमसे बड़ी उम्र रखता है, उसे विक्रम के नाम के साथ जुड़े २०१० साल बीत चुके हैं, पर तुम सत्ता पर सवार होकर यहाँ आई हो. चाहे वह सत्ता समाप्त हो गई, पर तुम्हारी सत्ता हमारी संस्कृति पर बराबर सवार है। तुम्हारे आगमन पर अब भी लोग अभिनन्दन के लिये आतुर हो उठते हैं। नाच-गाकर तुम्हारा स्वागत करते हैं, तुम धन्य हो!

जय जनवरी!!

बिहार का मूल्यवान् प्रकाशन!

बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् पटना के द्वारा प्रकाशित अभिनव पुस्तकों का संग्रह हाल ही में हमारे पास आया है। पुस्तकों में डॉ. वासुदेव जी का 'हर्ष-चरित', डॉ. मोतीचंदजी का सार्थवाह, श्री० सांवलिया बिहारी का 'विश्व धर्म दर्शन', स्व. म. महो. रामावतार पांडेय का 'यूरोपीय दर्शन', और डॉ. हजारीप्रसादजी का 'हिन्दी-साहित्य है'। दीर्घकाल से किसी एक प्रकाशन संस्था से ऐसे मौलिक-महत्वपूर्ण, और सुन्दर ग्रन्थों को प्रकाशित होते हुए हमने नहीं देखा। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने, सर्वथा मौलिक और महत्वपूर्ण साहित्य का एक साथ प्रकाशन कर राष्ट्र-भाषा के भाण्डार की मूल्यवान् वृद्धि की है। भारतीय सांस्कृतिक-साहित्य में उत्कृष्ट-ग्रन्थों का अभाव अबतक भी खटकता है। उक्त परिषद् का यह प्रकाशन उस दिशा में ठोस प्रगति का सूचक है। डॉ. वासुदेव शरण जी ने अपने 'हर्ष चरित' में बाणकाल की सातवीं-शति का जैसा मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया है' वह अद्भुत अभूतपूर्व, और हिन्दी ही नहीं, भारत की किसी भी भाषा के लिए सर्वथा मौलिक-दृष्टिकोण प्रदान करने वाला है, यदि इसी दृष्टिकोण से भारतीय पुरातन साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जावे तो साहित्य में नवीन-क्रांति ही होगी। यह पुस्तक प्रत्येक साहित्यिक सांस्कृतिक व्यक्ति के लिए अवश्य पठनीय है। हमारा विश्वास है संस्कृत, और हिन्दी के जानकार इस हर्ष चरित को पढ़कर मुग्ध बने बिना नहीं रहेंगे। उनके ज्ञान का विकास होगा इसी प्रकार डॉ. मोतीचन्दजी का 'सार्थवाह' भारत के पुरातन-तम काल से लेकर देश के गमनागमन, यातायात, जल-स्थल-प्रवास, और परिस्थिति का जो चित्र प्रस्तुत करता है, वह अपनी दिशा में सर्वथा मौलिक प्रयास ही है। ग्रन्थ बड़े अध्ययन श्रम, और साधना से प्रस्तुत है। हमारे देश की पुराकाल सम्बन्धी अनेक स्थिति परम्परा-व्यवस्था, और विकास-क्रम का इससे पता चलता है। पुस्तक की अध्ययनपूर्ण भूमिका डॉ. वासुदेव शरण जी ने लिखी है, जो अपने में स्वतन्त्र मौलिकता रखने वाली है।

'विश्व धर्म दर्शन' श्री० सांवलिया बिहारी जी की बड़ी सुन्दर, तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित करने वाली, दर्शनेतिहास सम्बन्धी महत्वपूर्ण रचना है। यह बृहत् पुस्तक अपने प्रकार की हिन्दी में नवीन है, और वास्तव में मूल्यवान् है। मराठी में म० म० काणे जी ने अवश्य इस दिशा में दीर्घकालीन श्रम-साधना द्वारा अद्भुत साहित्य प्रणयन किया है। परन्तु हिन्दी में ऐसी साधना सांवलिया बिहारी जी को छोड़ किसी ने इस विस्तार के साथ नहीं की है। स्वनामधन्य स्व० पांडेय रामावतारजी का यूरोपीय दर्शन उनके काल तक की दृष्टि से अपने आपमें एक विशिष्ट मौलिक प्रयास रहा है। और उसी दृष्टि से उसका महत्व आज भी अक्षुण्ण है, उसे प्रकाशित कर परिषद् ने वास्तव में प्रशंसनीयकार्य किया है। डॉ० हजारी प्रसाद जी का 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल" भी ऐसी ही मौलिक रचना है जो हिन्दी के अनेक भेदों और रहस्यों पर दृष्टिविशेष से मौलिक-प्रकाश डालती है। डॉ. द्विवेदी जी विद्वान् ही नहीं मौलिक-चिंतक भी हैं। उनका व्यापक ज्ञान इन पांच भाषणों में निर्झर की तरह प्रवाहित हुआ है। और जिस प्रकार वह अपनी मौलिकता लिए हुए है, हिन्दी-साहित्य में अपना स्वतन्त्र विचार और प्रेरणा देने वाला सिद्ध होगा।

निःसन्देह बिहार रा० भा० परिषद् ने एक से एक बढ़कर महत्वपूर्ण साहित्य भेंट कर साहित्य-श्री की वृद्धि की है। सर्वत्र ससम्मान इनका स्वागत होगा।

(हर्ष चरित–मू० ६।), सार्थवाह– मू०११) सजिल्द, विश्व धर्म दर्शन–मू०१३) सजिल्द, यूरोपीय दर्शन ३।) सजिल्द, हिन्दी साहित्य का आविष्कार–१।) रुपये।

प्रकृति का मज़ाक !

आदमी का मजाक महज मनोरंजन तक रह जाता है। पर जब प्रकृति मज़ाक पर उतारू हो जाती है तब आदमी पनाह मांग जाता है। पानी की बाढ़ आने पर प्रलय कह कर, भूकम्प के समय थोडे से जमीन के रोमांच हो जाने पर प्राणी मात्र प्रकम्पित हो जाते हैं। त्राहि-त्राहि मच जाती है। जब जरा अन्न की उपज में कमी हो जाती है। अनेकों को उपवास का आधार लेना पड़ता है। शासन परेशान हो उठता है विद्रोह का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। पर अन्न की समस्या से सावधानी कर आदमी आत्म समाधान मानने लगता है तब आदमी की उपज बढ़ाने का मजाक प्रकृति करने लगती है। वह संतति निग्रह, परिवार नियोजन के उपाय सोचता है। तब ढेर के ढेर संतान बढ़ा कर उसके समक्ष एक समस्या उत्पन्न कर दी जाती है। यह प्रकृति का मजाक नहीं तो क्या है? कभी एक की जगह दो और उससे अधिक बच्चे उत्पन्न होने लगते हैं। स्वभाविकता के विरुद्ध आदमी के घर बंदर, सांप, द्विमुख, बहुबाहु, विकृत शरीर दन्त सहित, ढोर जानवर, तक पैदा होने लगते हैं। शरीर विकृति के तो अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं। आदमी के साथ ही नहीं, गरीब जानवरों के साथ भी प्रकृति मज़ाक से नहीं चूकती, हमने नहीं देखा है, किन्तु देखने वालों से सुना है कि उज्जैन में एक गाय सौराष्ट्र से आई है, वह कभी प्रसूति हुई ही नहीं, किन्तु निरन्तर वह पयस्विनी बनी हुई है। जब कि अनेक बालकों की जननी को बूंद भी दूध नहीं आ पाता। उन्हें तो शायद इस दूध की जरूरत भी नहीं जो आया, या-धाय पर अपनी धरोहर सौंप कर सोशयल वर्क में संलग्न रहती है। काश प्रकृति इन सुन्दरियों से ऐसा मज़ाक भी करे तो हर्ज नहीं होता। पर जिन्हें बाहरी दूध नसीब नहीं। उनका दूध खींचकर प्रकृति क्रूर-मज़ाक ही कर देती है। आदमी और जानवर की तरह पेड़ पौधों से भी उसका मज़ाक होता है। आदमी कुछ पेड़ों को कलम लगा कर फल-फूल का मजा लेना चाहते हैं, पर प्रकृति रंग-रूप स्वाद में भी मनमाना फेरफार करती रहती है। बढ़िया फलों में कीड़े किलबिला देती है। जड़ों में जोड़ों में नए जोड़ जुड़ा देती है। अधिक धान्य उत्पन्न करने के आंदोलन ने जोर पकड़ा तो प्रकृति ने अनेक प्रान्तों में अकाल फैलाना शुरू किया। नदियों ने बाढ़ से खेत-खलिहान ही नहीं गांव के गांव बहा दिए। आंधी और तूफानों ने त्रास फैला दिया, संतति नियमन के आंदोलन को जनजन्म की बाढ़ ने फेल करना आरम्भ कर दिया। वेश्यावृत्ति उठाने का प्रयास शुरू हुआ तो दिखाई दिया कि अनेक प्रदेशों में पुरुषों से स्त्रियों की संख्या आधी भी नहीं रही है 'निरक्षरता दूर की जाने लगी, शिक्षा का विस्तार होने लगा तो बेकारी का राक्षस मुंह बाए खड़ा हो रहा है। लोगों को रहने के लिये सरकार मकान बढ़ाने लगी तो शरणार्थी की समस्या ने घर बार रखने वालों की मुसीबत खड़ी करदी। देश स्वतंत्र हुआ, व्यापार-उद्योग बढ़ाने की सुविधा प्राप्त हुई तो पैसा पनाह मांग गया, धन का धैर्य टूट गया, अविश्वास, असन्तोष का वातावरण बढ़ गया। जब इमानदारी की जरूरत पड़ी तो समाज में सरकार में ईमानदारी खोजने के लिए शायद रिचर्स-विभाग खोलने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाए! नैतिकता नाम की वस्तु भूले-भटके अखबारों में दिखाई भले ही दे जावे, 'सत्य' अनुसंधान का सबजेक्ट बनने जा रहा है, स्वतंत्र देश में जिन बातों की खास जरूरत होती है, वह मानो यहां से अंग्रेजों के साथ पश्चिम में चली गई! हमारे एक मित्र ने मजाक में बतलाया है—अंग्रेज गए उनके साथ ईमान, इंसाफ और इज्जत सीधी बिदा हो गई और वे जो यहां छोड़ गए उनमें–झोली-झंडा और झाड़ू खास थे। जिस पंच-सूत्री प्रोग्राम को हमारे सिर पर उन्होंने उदारता से छोड़ा–वे है-भ्रमण, भाषण, भत्ता, भोजन और भ्रष्टाचार!

प्रचार की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि वास्तविकता उसकी आंधी में कहीं भी पैर जमा हीं नहीं पाती। यह सब प्रकृति का भी मज़ाक नहीं तो क्या है? विज्ञान प्रकृति पर विजय पाने प्रयत्न शील है, पर उसके मजाक के आगे मस्तक टेक देने को मजबूर है।

विश्ववन्द्य कवि कालिदास !

[लेखक—श्री सूर्यनारायण व्यास]

भारतीयप्रतिभा के ज्योतिर्मय-नक्षत्र महाकवि—कालिदास ने अपनी प्रज्वलित प्रज्ञा के प्रकाश द्वारा न केवल इस भूतल को किन्तु समस्त-विश्व को आलोक पुलकाकुल बना दिया है। जगत् के समस्त सरस्वती-पुत्रों ने उसकी महत्ता के के मान में अपना गौरवोन्नत मस्तक सादर नत कर दिया है।

कालिदास महाकवि थे। दुनिया के विभिन्न-भागों में और भी अनेक महाकवि हुए हैं। व्यास और वाल्मीकि भी कवि रहे हैं, लाखों कविताएँ उन्होंने निर्मित की हैं। 'आदिकवि' का सन्मान भी उनको अर्पित हुआ है। विदेशों की उर्वरा भूमि ने भी विश्व-विदित' कवि-कोविदों को उत्पन्न किया है, किन्तु जो विश्व व्यापकता, विश्व-प्रियता और सार्वजनीन-सन्मान कालिदास ने प्राप्त किया है, वह सौभाग्य इस अवधि तक किसी ने प्राप्त नहीं किया। पर्वत और परमाणु में पदार्थ की एकता रहते हुए जो महदन्तर विद्यमान है, वही कालिदास में और इतर कवियों में है। कालिदास के एक 'मेघदूत' ने उसे जो स्थान दिया है, आज तक वह किसी सार्थवादी कवि के अनुसार—

'कनिष्ठिका सार्थवती बभूव' बना हुआ है।

कवि का 'मेघदूत' यदि केवल विरह-काव्य ही होता तो अनेक काव्य उसकी तुलना के लिए तत्पर बन जाते। किन्तु मेघदूत एक वैज्ञानिक-सत्य सृष्टि है। मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष उदाहरण है, भूगोल और इतिवृत्त, प्रकृत्ति और मानव का प्रत्यक्ष और सत्य चित्र प्रस्तुत करनेवाला असाधारण काव्य है। यही कारण है कि उसके समकक्ष आज तक कोई काव्य नहीं ठहर सका। भगवद् गीता की तरह दुनिया की सभी भाषाओं में उसके अनुवाद और अनुकरण भी हुए, पर वह अपने स्थान पर-यथापूर्व खड़ा है, और महाकवि की अप्रतिम प्रज्ञा के समक्ष नत-शिरस्क बना देता है। इससे अधिक उसकी लोक-प्रियता का और अधिक क्या प्रमाण चाहिए? रघुवंश और कुमार संभव तो कवि-कीर्ति के कलश बने ही हुए हैं।

शाकुंतल का अमर कलाकार !

किन्तु शाकुन्तल का अमर कलाकार कालिदास केवल महाकवि ही नहीं, महान् नाटककार भी है, उनकी एकमात्र कमनीय कृति 'शाकुन्तल' ने उन्हें विश्व-विजेता बना दिया है। शकुन्तला को पाकर जर्मन कवि गेटे जैसी पश्चिम की विभूति आनन्दोर्मिमाला में नर्तन कर उठी है। शकुन्तला ने पश्चिम प्रदेश में भारत के विषय में विस्तृत गहनतम अन्धःकार को चीरकर उज्वल प्रकाश प्रसारित कर दिया है। जिस समय दासत्व की शृंखला में आबद्ध भारतीयों की 'कीलित-जिह्वा' अपने अस्तित्व-मात्र के प्रदर्शन में भी बन्धनानुभव कर रही थी। उस कठिन काल में महाकवि की महामूल्यमयी-कृति शकुन्तला ने एक पाश्चिमात्य न्यायाधीश के हृदय में अनुराग की अग्नि-शिखा प्रज्वलित की और उसकी लपटों ने अनन्त-आकाश तक उठकर वहाँ विस्तृत अज्ञानांधः पटल को प्रकाश से पाट दिया, और भारतीय प्रज्ञा के प्रति प्रणमित होने को प्रेरित किया। जो कार्य प्रचुर पूंजी और प्रचार परम्परा से भी कठिन होता वह एक मात्र नाटक शकुन्तला ने दूषित वातावरण में विद्युत् प्रकाश रेखा की तरह सहस्त्रों सद्भाव जागृत कर सम्पन्न कर दिया !

राष्ट्र का आराध्य।

महाकवि कालिदास सरस्वतीका। श्री शृंगार ही नहीं। राष्ट्र का चेतना प्रेरक पुरुष भी है। विदलित देश का उद्धारक भी है। जीवित रहकर उसकी लेखनी ने जिस अमर-साहित्य की सृष्टि की है, उसके दिवंगत हो जाने पर भी उसकी अमर शब्द-सृष्टि ने हम समस्त भारतीयों का मस्तक गौरव से उन्नत किया है। आज हम महाकवि की पूंजी पर कुबेर का अक्षय भंडार लिए हुए हैं। किन्तु वह पूंजी भौतिक नहीं हैं, जिस का कोई व्यक्ति-नगर देश या राष्ट्र ही उत्तराधिकारी बन सके। इस ज्ञान वैभव की यही विशेषता है कि सभी उसका निर्बाध उपयोग कर अपने को समृद्ध-सम्पन्न समझते हैं। यही कारण है कि कालिदास जितना हमारा है, उतना ही विश्व का है, सभी उसकी साहित्य श्री से समृद्ध-समलंकृत हैं।

भारतीय ज्योतिर्मय ज्ञानदीप !

किन्तु उसके जन्म देने का सौभाग्य इस महान् सांस्कृतिक देश को ही है। इसलिए हमारा गर्व करना स्वाभाविक है। मध्य-भारत की वह अमर विभूति है। राष्ट्र की ज्ञान राशि का उन्नत नगाधिराज है। सरस्वती का सुन्दर शृंगार है। प्रतिभा की पावन प्रतिमा है। सर्वकालीन जीवित

साहित्य की अक्षय निधि है ! और वह अनंतकाल तक प्रदीप्त और ज्योतिर्मय बना रहनेवाला ज्ञान-दीप है, जिसका प्रकाश सदैव निर्मल आलोक प्रसार करता रहता है। आधुनिक युग के महाकवि श्री रवीन्द्र के शब्दों में—

"उत्सव के दिनों में मिट्टी की जो दीपमाला रची जाती है, उसे कोई दूसरे दिन के लिए नहीं उठा रखता। भारतवर्ष में उत्सव के दिनों में ऐसे ही अनेक मिट्टी के प्रदीप क्षणिक-साहित्य, रात्रि काल ही में अपने जीवन की शोभा दिखलाकर प्रातःकाल अनन्त विस्मृतिगर्भ में तिरोहित हो जाते हैं। किन्तु धातु का जो पहला प्रज्वलित दीप देखा गया वह महाकवि कालिदास का है। वह पैतृक-प्रदीप आज भी हमारे घरों में अपना प्रकाश फैला रहा है। पहिले वह हमारे उज्जयिनीवासी पितामह के प्रासाद-शिखरों पर प्रज्वलित हुआ था। वह आज भी ज्यों का त्यों है, उसमें कभी कोई कलंक-कालिमा नहीं लगती।"

विक्रम और कालिदास इतिहास की एक रहस्यमयी ग्रंथि--

यह विस्मय की बात है कि विश्व का आराध्य-कवि कालिदास अपने विषय में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं करता। कवि-जन्म, जन्मस्थान और रचनाकाल के विषय में इतिहास और कालिदास-साहित्य के अनुशीलन कर्त्ताओं में बड़ा मतभेद बना हुआ है, विक्रम और कालिदास इतिहास की उलझी हुई पहेली ही बने हुए हैं, अब तक अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने अनेक प्रयत्न किए हैं; परन्तु किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचा जा सका है। कालिदास के काव्य और नाटकों के वाक्यों को लेकर अनुमानों के उत्तुंग शैल-शिखर पर आरोहण करने के प्रयास भी हुए हैं। पर वे केवल उपहासास्पद ही सिद्ध हुए हैं, कुछ विद्वानों ने कवि प्रयुक्त 'गुप्त' शब्द को लेकर चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, और कुमारगुप्त तक खींच लाने का आयास किया है, कुछ ने 'विक्रम' शब्द मात्र को सुलभ पाकर विक्रमोर्वशीय की संगति लगा प्रथम शती के पूर्व-कालीन विक्रमादित्य से लेकर दशपुर के यशोधर्मन और हर्षवर्धन तक उसे जुड़ा दिया है। किन्तु किसी स्पष्ट-तथ्यवादी कवि के काव्य से कुछ शब्दों को लेकर उन्हें 'श्लिष्ट' समझ, व्यक्ति या विशेषता बोधक कल्पित करना और उन पर से अनुमानों का आधार प्राप्त करना कहाँ तक उचित एवं युक्ति युक्त हो सकता है?

अनुमान-तरंग !

जिस कवि ने अपने वर्ण्य-विषय में देश-काल परिस्थिति प्रकृति, भूगोल, ग्राम, नगर, नागरिक का यथातथ्य वर्णन करने में ख्याति अर्जित की है, और उनको कवि वर्णित रूप में अब तक भी यथावत् अनुभव किया जा सकता है, वह कवि क्यों श्लिष्ट-भाषा में किसी व्यक्ति या विषय का वर्णन करेगा? रघु की दिग्विजय से समुद्रगुप्त की विजय का आभास पाना, अथवा विक्रम से द्वितीय चन्द्रगुप्त की कल्पना लेना केवल कल्पना विलास के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि कुछ शब्दों से ही कल्पित इतिहास की सृष्टि की जा सकती है तो आजके युगानुरूप शब्दों विचारों और व्यक्तियों को रघुवंश, कुमारसंभव से प्राप्त किया जा सकेगा। क्या 'मालविकाग्निमित्र' के लेखक को अन्य व्यक्ति चित्र अंकित करने में कोई संकोच हो सकता था? वह रघु के ब्याज में समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त क्यों रखता, पुष्यमित्र के अश्वमेध की तरह ही वह स्पष्ट उक्त अश्वमेध का भव्य वर्णन कर सकता था, जो लोग कुमार संभव से स्कन्दगुप्त को खोजना चाहते हैं, या कुमारगुप्त की कल्पना लड़ाने का यत्न करते हैं वे भी अनुमान-लोक में संचार करते हैं।

बंगाल की कल्पना !

हमारे बंगाली-बन्धु 'ऋतु-संहार' के ऋतु-वर्णन को लेकर बंग-प्रदेश की प्रकृति से साम्य सोचते हैं, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि बंगाल में केवल चार ऋतु ही होती हैं, जबकि 'ऋतु-संहार' षड्ऋतु का प्रत्यक्ष चित्र अंकित करने वाला काव्य है, जो विशुद्ध मालव-प्रदेश का प्रतिनिधित्व करता है। इसी तरह मेघदूत के 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' को उठा कर बंगालियों का आग्रह है कि बंगाल के संवत्सरारम्भ का ही वह वर्णन होता है। तब वे यह भूल जाते हैं कि कालिदास जैसा तथ्यवादी कवि मेघ से दौत्यकर्म करवाने जा रहा है, जो वर्षा के सिवा संभव नहीं। यदि वह बंगाल के वर्षारम्भ या प्रकृति से सम्बन्धित भावना को लेकर इस काव्य की रचना करता तो एक शब्द में भी वह बंगाल का (चाहे वह श्लेष में ही क्यों न हो) अपने काव्य

में कहीं भी क्यों न उल्लेख करता ? फिर हमारे यहाँ ऋतुओं की गणना सदैव सौर मास से ही की जाती हैं । 'ऋतु-संहार' इसका सबल प्रमाण है, यहाँ बंग-वर्षारम्भ की कैसे संगति बैठेगी ? आश्चर्य तो यह है कि वर्तमान बंगला वर्षारम्भ तो सम्राट् अकबर का चलाया हुआ है। अकबर सं० १६१२ और हिजरी ९६३ में शासक बना था । यह हिजरी सन् चांद्र मास पर अवलम्बित होता है । अकबर की विशेष आज्ञा से ही सौर गणना होने लगी थी। ऐसी अनेक भ्रांतियों ने कालिदास की कृति और काल के विषय में आशंकाएँ उत्पन्न करदी हैं । आज भी इन्हीं भ्रांतियों में कालिदास का 'आविर्भाव काल' उलझा हुआ है। विदेशों के विद्वानों की विचार सरणी ने हमें और भी दिग्भ्रान्त बनाया है। हम उन्हीं के लिखे अपने इतिहास की काली-कसौटी पर अपने कवि को भी कसकर परखना चाहते हैं। शिलालेख और सिक्कों की सीमा में आधुनिकता के आधार पर पुरातनता की परख करना चाहते हैं, जबकि जिस काल की ये रचनाएँ हैं, उनकी परीक्षा परिधि उन्हीं में समाविष्ट बनी हुई है।

कवि के साहित्यानुशीलन की आवश्यकता !

कालिदास के साहित्य का निष्पक्ष बिना पूर्व ग्रह लिए सावधानी से अनुशीलन किया जाय तो कवि की आत्मा से साक्षात्कार किया जा सकता है। उसके निर्मित शब्द-शरीर के अन्तर में सूक्ष्मरूप में रहने वाली आत्मा अपना परिचय देने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। कवि ने ऐसे अनेक प्रसंग प्रस्तुत किए हैं, जिनके द्वारा हम उसके आविर्भाव काल में अपने को पहुँचा सकते हैं हमें इधर-उधर भटकने या भ्रांत होने की आवश्यकता नहीं है।

शुंगवंश और मालविकाग्निमित्र !

आरम्भ में हम मालविकाग्निमित्र को लेकर विदिशा के वैभव में विहार करें। शुंग शासन की प्रतिष्ठा स्थिति और उसके वातावरण को समझने का सावधानी से यत्न करें तो हमें कालिदास को प्राप्त करने में भी कठिनाई नहीं होगी। 'गुप्त-मूल' या कुमार शब्दों को लेकर उनमें 'श्लेष' शोधन करने की आवश्यकता नहीं। किसी व्यक्ति शासन या किसी काल को लेकर कवि की कोई रचना है तो वह अकेला मालविकाग्निमित्र नाटक ही है। हम काव्यों में ऋतु-संहार को छोड़ कर नाटकों में मालविकाग्निमित्र को ही कवि की आद्य कृति और यौवन काल की कृति समझते हैं। इसी कृति के द्वारा कवि समाज के समक्ष आने का सफल प्रयास साध्य करता है। वह अपने पूर्ववर्ती भास-सौमिल्ल जैसे ख्याति प्राप्त कवि–नाटककार की प्रतिष्ठा से प्रभावित है, और उनके कीर्ति-क्षेत्र में प्रविष्ट होते हुए संकोच अनुभव करता है, किन्तु वह उक्त नाटक को लेकर शुंग-शासन में प्रवेश करने का साहस करता है सहसा उसकी वाणी से पुरानी रचनाओं के विषय में यह उक्ति निकल पड़ती है कि 'पुराण मित्येव न साधु सर्वम्' वह भास की पुरातन-शैली की नाट्य-कृति के समक्ष, अपनी सामयिक घटना पर अवलम्बित शुंग-शासन की स्थिति को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने वाली नाट्य-कृति को समाज के सामने उपस्थित करता है। क्योंकि जनता और शासन के लिए वह सामयिक घटना को प्रत्यक्ष कर देता है। इसलिए भास की भाव भूमि को भूल कर जनता अपने 'काल' के वातावरण का प्रत्यक्ष चित्र देख कर प्रभावित हो जाती है। इस प्रकार कवि अपने पूर्ववर्तियों की कला पर–जनमानस पर अद्भुत प्रभाव डाल देता है। भास आदि के नाटकों पर नवीनता का प्रभाव नहीं पड़ा था। पौराणिक घटनाओं पर ही काव्य - नाट्यकला का कौशल प्रदर्शित होता था। कालिदास ही प्रथम व्यक्ति था जिसने एक ऐतिहासिक महत्व रखने वाली अपने समक्ष घटित (या अपने से कुछ ही काल पूर्व की) घटना को अपनी कला का माध्यम बनाया था। कालिदास का पात्र अग्निमित्र यद्यपि एक साधारण कोटि का है, उसका शासन भी महत्व का उतना नहीं है। फिर भी कवि को प्रभावित होने के लिए यही पर्याप्त था कि वह एक ब्राह्मण सत्ता का आविर्भाव था, और बौद्धों के विरुद्ध धार्मिक-शासन की स्थापना थी, अश्वमेध का पुनराविर्भाव था। इसी प्रकार की भावना कवि की कला को उत्प्रेरक बना सकी, और जनता के आकर्षण का विषय बन सकी। शुंगवंश के प्रथम सम्राट् का जीवन काल ही उन्होंने अपने नाट्य का विषय बनाया, और इस प्रकार कवि अपनी प्रतिष्ठा और कीर्ति को प्राप्त कर भास, सौमिल्ल आदि की स्थापित प्रतिष्ठा का अधिकारी हो गया। इसके पश्चात्-काल की किसी कृति में कवि ने किसी शासक या व्यक्ति को माध्यम बना कर कोई रचना नहीं की, केवल कला की आराधना ही की है। इससे स्पष्ट है कि वह शुंग काल का है।

शुंग कालीन मालव का मर्मज्ञ !

शुंग कालीन विदिशा और शेष मालवभूमि का वह जितना स्पृहणीय और प्रत्यक्ष वर्णन करता है उतना अन्य का नहीं। मेघदूत में भी वह इसी विदिशा-स्नेह से सिक्त होकर अपने मेघ को पहले विदिशा और वेत्रवती को चंचल लहरों से सिक्त समीर का स्पर्श करने के लिए प्रोत्साहित करता है, और उसी नगरी से वक्र-मार्ग होने पर अवन्ती को जाने के लिए प्रेरित करता है। अग्निमित्र के शासन की सूक्ष्म घटनाओं अन्तःपुर के भेद को भी वह जानता है। और जिस कौशल के साथ उसे वर्णित करता है वह बिना जाने देखें सम्भव नहीं। उस घटना का सिवा कवि के नाटक के अन्यत्र इतिहास में कहीं विशद वर्णन प्राप्त नहीं होता। यह प्रमाणित करता है कि कवि शुँग-काल को निकट से जानता है, बौद्धों के लिए वह काल प्रतिकूल था। कवि ने बौद्धों के प्रति अपनी कहीं सहानुभूति बतलाई नहीं है। बल्कि दिङ्नाग (यदि वह श्लिष्ट है) के लिए उपेक्षा का व्यवहार ही किया है। यदि अग्निमित्र के थोड़े ही समय के पश्चात्काल का मानें तो उसने भागभद्र के शासन में उध्वस्त शुंग-श्री को देखा है। जो लगभग ६० वर्ष के आसपास की स्थिति है। मेघदूत में विदिशा के विषय में—

'यः पण्यस्त्री रतिपरिमलोदगारिभिर्नागराणाम्‌
उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥'

यह जो चित्र चित्रित किया है। वह प्रकट करता है कि उसने देवभूति जैसे लम्पट शुंग शासक का रूप अंकित किया है। इसका प्रमाण 'कलियुग-वृत्तांत' में भी प्राप्त होता है।

विहाय पाटलीपुत्रं विदिशायां सुखस्थितः।
अन्यायेन पुरस्त्रीभिर्विहर्तुमुपचक्रमे ॥
अक्षैर्द्यूतैश्चकितवैर्नृ तोनर्तकगायकैः'।
सुरामांसाशनो मत्तो वारस्त्री संगलालसः॥

इससे शुंगों के पतन की पराकाष्ठा का पता चलता है, और विदिशा की स्थिति का भी। जो कवि उसे निकट से नहीं जानता वह इतना स्पष्ट कैसे अंकित कर सकता है? स्पष्ट ही मालविकाग्निमित्र की रचना इसी काल के सत्य स्वरूप प्रकट करने के लिए हुई। और विदिशा के शुंग-गौरव गिर जाने पर कवि ने अवन्ती में निवास किया। यह काल डॉ० केदार के अनुसार ७२ बी. सी. का है।

कला का चरम विकास-काल !

रघुवंश शाकुन्तल इसके पश्चात्काल की रचना है। जब कि कवि की कला 'चरमोत्कर्ष प्राप्त कर चुकी थी, यह विक्रम काल है। और यहां कवि प्रौढावस्था में 'प्रवेश करता है, उसकी कला व्यक्ति और शासन के वर्णन से विरक्त बन अपनी प्रांजलता-प्रगल्भता को ही प्राप्त करती है। और विक्रम-शासन उसे एक आदर भाजन मानकर सन्मान प्रदान करता है।

बौद्धों की उपेक्षा !

कवि की किसी रचना में बौद्ध संस्कृति के प्रति कोई इंगित नहीं है। उस पर वैदिक भावना की छाप ही दृष्टि गोचर होती है। जो कि शुंग और उसके परवर्ती शासन की विशेषता थी। जो कवि मालवे के सुन्दर-प्रमुख स्थानों जलाशयों, प्राकृतिक-सौन्दर्य और सामाजिक विशेषताओं को वर्णित करता है, वह विदिशा के पास रहने वाली उत्कृष्ट कलाकृति और पूर्ववर्ती सांची के स्तूप की सर्वथा उपेक्षा करता है और मालवे के अनेक भागों में अवस्थित स्तूपों चैत्यों-विहारों का कहीं नाममात्र भी नहीं लेता। वह अवश्य ही बौद्धों के प्रति सामयिक उपेक्षावृत्ति से प्रभावित होना चाहिए। वह अपने पूर्ववर्ती महान अशोक का भी कहीं भूल कर उल्लेख नहीं करता है, जो विदिशा में विवाहित हुआ था, उज्जैन में शासक बना हुआ था, और मालवे के विभिन्न भागों के स्तूपों का निर्माता भी था। इस उपेक्षाका अवश्य रहस्यहै। यही रहस्य कविको द्वितीयचन्द्र गुप्तस्यके काल में भी नहीं ले जा सकता क्योंकि वे बौद्धों का सन्मान करते थे। गुप्त सम्राटों के विषय में बौद्ध लेखकों को कोई शिकायत नहीं है। यदि कवि गुप्तकाल की उपज होता तो कदापि बुद्ध प्रशंसा से वंचित न रहता, किन्तु उस पर स्पष्ट छाप वैदिक धर्म, अश्वमेध आदि की है। इसी प्रकार शुंग के सम्राट पुष्यमित्र द्वारा बुद्धों पर किए गए अत्याचारों की भी लेशमात्र चर्चा नहीं की है। इसके विपरीत बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा राजकुमारियों कीं 'दूती' का कार्य करवाया गया है, इससे स्पष्ट है कि वह काल बुद्धानुयायी के पतन का था। अग्निमित्र के जीवन को इतनी निकट

से जानने वाला कवि यह न जानता हो संभव नहीं। किन्तु नवीन शासन, नवीन धर्म और ब्राह्मण-वंश का अभ्युदय एवं वैदिक शासन प्रतिष्ठा के प्रति उसकी अनुरक्ति ही जो कि स्वाभाविक है; उसे बौद्ध-अत्याचार-चित्रण से रोकती है। अतीत भारत के अश्वमेध आदि का आविर्भाव उसे प्रभावित किए हुए है, और यही कारण है कि साधारण श्रेणी के नायक अग्निमित्र को लेकर वह अपनी कला का प्रदर्शन करता है।

अश्वघोष !

कवि पर निकटवर्ती साहित्य परम्परा भी प्रभाव डालती है। भास की वासवदत्ता की तरह अग्निमित्र की मालविका उसकी कला का प्रतिपाद्य विषय बन जाती है, उसी प्रकार अश्वघोष का 'बुद्ध चरित' उसे रघुवंश और कुमारसंभव के लिए प्रेरित करते हैं। विद्वानों में थोड़ा यहाँ मतभेद है कि कालिदास पूर्ववर्ती है या अश्वघोष? यह जो भी हैं, पर एक-दूसरे के काव्य पर प्रभाव स्पष्ट है, चाहे कालिदास प्रभावित हुआ हो या अश्वघोष। प्रथम-शती का उतरार्द्ध या द्वितीय शती का पूर्वार्द्ध ही यह समय हो सकता है। अश्वघोष भी ब्राह्मण है, बाद में बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो जाता है, तथापि उस पर धर्म की अपेक्षा कवित्व का विशेष प्रभाव है, उसकी भाषा भी संस्कृत है। किन्तु कालिदास की भाषा, शैली और कहीं-कहीं वर्ण्य प्रकार में भी साम्य है। अवश्य ही उसकी रचना में श्रृंगार और शौर्य का अभाव है यह एक बौद्ध के लिए स्वाभाविक है। परन्तु कालिदास में सब रसों का सुन्दर समावेश है। शैली और भाषा के अनु-शीलन से एक-दूसरे में अधिक अन्तर से नहीं विदित होता, इस प्रकार भी कवि प्रथम शती में ही ठहरता है।

अश्वघोष यदि प्रथम है तो कवि पर बुद्ध-चरित का प्रभाव लक्षित नहीं होता। बौद्ध उपेक्षा ही रहती है और यदि पश्चात्-कालीन है तो यह विचारणीय हो जाता है कि उसके बाद भी 'बुद्ध-चरित' जैसी रचना हो और कालिदास अपनी किसी कृति में बुद्ध का स्पर्श भी न होने दे।

चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध जोडने का निरर्थक प्रयास !

जो विद्वान् चन्द्रगुप्त द्वितीय से कवि का नाता जुड़ाते हैं वे यह विचार करें कि द्वितीय चन्द्रगुप्त कभी उज्जैन का सम्राट् नहीं था। उसकी राजधानी पाटलीपुत्र ही थी। कवि ने पाटलीपुत्र में वह आकर्षण कहीं प्रकट नहीं किया जो उज्जैन मालव-प्रदेश के लिए किया है। वह कैसे राजकवि और राजमित्र—या राजसभा का पण्डित रहा हो। एक और बात कि दशपुर का शिलालेख जिस कलापूर्ण सूर्य-मन्दिर के निर्माण की चर्चा करता है, वह चन्द्रगुप्त के पूर्व की घटना है। दशपुर के महत्व को वर्णन करते हुए कवि उस सौन्दर्यराशि मन्दिर को कैसे भुला देता ? इसके सिवा केवल 'विक्रम' शब्द से यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध था। वह यदि हो भी सकता है तो प्रथम ई० स० पूर्व ५७ वाले विक्रम से ही हो सकता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त या यशोधर्मन से तो परपम्पराओं की भी सहज संगति न लगती। हाँ, शुँगवंश के अन्तिम काल का चित्र तो रघुवंश से प्राप्त किया जा सकता है। कालिदास ने अपने काव्यों में पाण्ड्यों का वर्णन विशेष-रूप से किया है, कहीं भी पल्लवों का नहीं और ये पाण्डय जब भारत में शासक थे, विस्तृत थे, वह काल ईसवी सन् की प्रथम-शती ही थी, जो कवि का काल हो सकता है। चन्द्रगुप्त-काल में कवि की खींचतान करने पर स्वयं विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रामाणिक पण्डित मानते हैं कि महाकवि इतने असमर्थ नहीं थे कि उन्हें रघुवंश में छपे शब्दों में कहने की आवश्यकता पडती। कालिदास ने 'उदयन कथा कोविदग्राम वृद्धान्' में उदयन और वासवदत्ता की प्रचलित कथा का उल्लेख कर अपने पूर्ववर्ती भास और उस घटना का ही निर्देश किया है जो उसके आविर्भाव के पूर्व घटित हुई थी यदि चन्द्रगुप्त के काल में कवि का आविर्भाव होता तो इतनी पुरातनतम-चर्चा को उज्जैन के ग्राम वृद्ध शायद ही स्मरण रख पाते और कवि को स्मृति दिलाने का कारण भी नहीं होता।

ध्रुवजी की सूझ !

गुजरात के स्व० विद्वान् केशवभाई ध्रुव ने कवि के ग्रन्थों का सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से विचार किया था। उन्होंने कविप्रयुक्त छन्द-परम्परा पर काल निर्णय करने का प्रयास किया और उनके ये तर्क भी कवि को सयुक्तिक प्रथम-शती में सहज रख देते हैं, इनमें सूझ है और तर्क की मौलिकता है।

ध्रुव महोदय ने पहिले भास, अश्वघोष, वसुबन्धु, पं-

जलि, सुबन्धु, भारवि, माघ, विशाखदत्त, श्रीहर्ष, भवभूति, आदि में से कई एक पुराने कवियों का समय-निरूपण किया है। फिर प्रत्येक के ग्रन्थों में प्रयुक्त वृत्तों पर विचार किया है और यह दिखाया है कि बहुत प्राचीनकाल में कौन कौन वृत्त अधिक प्रयुक्त होते थे और धीरे-धीरे परवर्त्ती कवियों ने किन-किन नए छन्दों का प्रयोग आरम्भ किया था प्रत्येक ग्रन्थ में प्रयुक्त अनुष्टुभ, गाथा, आर्य्या, आख्यानकी, उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा आदि छन्दों को गिन कर उनकी एक सूची उन्होंने प्रकाशित की है। यथास्थान यती का न होना और वर्ण विशेष की शिथिलता पर भी आपने विचार किया है। ऐसे स्थलों की भी सूची आपने दे दी है। फिर इन्हीं बातों का विचार आपने कालिदास के काव्यों और नाटकों के सम्बन्ध में किया है। आपने दिखाया है कि सबसे पुराने काव्यों में अनुष्टुभ और आख्यानकी (उपजाति) की ही अधिकता है। कालिदास के रघुवंश में १९ सर्ग हैं। उसमें अनुष्टुभ्, आख्यानकी, रथोद्धता, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित और वियोगिनी छन्द व्यापक हैं। प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, हरिणी, मालिनी, आदि एकदेशीय हैं। उन्नीस सर्गों में ६ सर्गमें अनुष्टभ् में हैं और ८ आख्यानकी में। शेष और छन्दों में। बुद्धचरित के केवल १३ सर्ग मिलते हैं। उनमें से ३ सर्ग अनुष्टभ में और ८ आख्यानकी में हैं। इन दोनों कवियों ने केवल सम और अर्द्धसम वृत्त लिखे हैं। पर उनके परवर्ती भारवि ने विषम और माघ ने जाति-श्रेणी के छन्दों का प्रयोग किया है। बहुत पुराने ज़माने के कवियों के काव्यों में इन छन्दों का प्रयोग नहीं देखा जाता। पहले दोनों कवियों के काव्यों में १२ अक्षरों से अधिक वाले एक भी व्यापक, और १७–१८ अक्षरों से अधिक वाले एक भी एक-देशीय छन्द नहीं। पर परवर्ती भारवि माघ के काव्यों में यह अक्षर-संख्या क्रम से १३—१५ से लेकर १७—२१ तक पहुंच गई है। अतएव सिद्ध है कि कालिदास भारवि के समय के कवि नहीं, किन्तु अश्वघोष के समय के हैं। अनुष्टुभ् आर्ष छन्द है, आख्यानकी उसके बाद का है। इन दोनों की अधिकता रघुवंश और बुद्धचरित में है। रघुवंश में माल्यभारिणी नामक वृत्त एकदेशीय है। अर्थात् किसी पूरे सर्ग की रचना उसमें नहीं की गई। फुटकर तौर पर यह छन्द आया है। पर यही एकदेशीय-छन्द बुद्धचरित में व्यापक-भाव से वर्तमान है। इसके सिवा रुचिरा और शिखरणी भी बुद्धचरित में व्यापक हैं। इससे साफ सूचित होता है कि बुद्धचरित रघुवंश के बाद का है बुद्धचरित के प्रणेता अश्वघोष सन् ईसवी के पहले शतक में विद्यमान थे। यह बात ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। अतएव, इससे यह भी सिद्ध समझिये कि अश्वघोष से कम से कम सौ वर्ष पहले कालिदास हुए होंगे। निष्कर्ष यह निकला कि जिस विक्रम के नाम से अपना संवत् प्रचलित है उसी के समय में, अर्थात् ईसवी सन् से ५६ वर्ष पहले, कालिदास का समय समझना चाहिए।

और विद्वान भी!

ध्रुवजी का तर्क सर्वथा मौलिक-महत्व का है। और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विदेशी विद्वानों में भी जैसे सर विलियम जोन्स, डॉ० पीटर्सन आदि ने कालिदास को प्रथम शती के विक्रम-काल का स्वीकार किया है। इसी तरह डॉ० नन्दर्गीकर ने अपना पक्ष बहुत योग्यता और प्रमाणों के सबल आधार पर स्थिर किया है कि वह पहली शताब्दी में विद्यमान थें। उनका स्पष्ट अभिमत है कि कालिदास के काव्यों को देखकर ही अश्वघोष ने अपनी रचना की है। अश्वघोष ने कवि के पदमात्र ही नहीं, श्लोक चरणों तक का उपयोग कर लिया है वे अश्वघोष को कवि का पश्चात्‌वर्ती ही मानते हैं। इन सब तर्कों और विवेचनों से हम यही निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि 'मालविकाग्निमित्र' के निर्माता कालिदास का काल शुंग-वंश और विदिशा के वैभव का काल है। वे अग्निमित्र या उसके [illegible] भग के काल में थे, जब लोगों को इस शासन के समय की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का पता था। अतएव कवि ई० स० पूर्व की प्रथम शती में विद्यमान थे, और वे मालवे में ही थे। शुंग-काल के पश्चात ही विक्रम-काल का आरंभ होता है। इसलिए उनका अवंती और विक्रम से निकट सम्बन्ध हो जाता है।

स्व० डॉ० केदार का मत।

कालिदास के विषय में सी. पी. के स्व० डॉ० केदार ने बहुत अनुशीलन किया है, और वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। उनका अभिमत सार रूप में इस प्रकार है।

(१) विदिशा द्वितीय शती बी. सी. और पांचवी शती ई. सन् के मध्य में शुंग-वंश के समय में राजकीय नगर में था।

(२) अग्निमित्र शुंग-वंश का प्रथम राजा था, और उसका राज्य-काल अल्पकालीन होने के कारण, और उसके पिता पुष्यमित्र की मृत्यु के पश्चात् कुछ भी महत्वपूर्ण घटना न होने के कारण, विदिशा उसके समय में राजकीय नगर के गौरव को प्राप्त न कर सका।

(३) शुंग वंश का एक मात्र सम्राट जिसका शासन दीर्घकाल था, और जिसके राज्य में वैदेशिक राजदूतावास के होने का ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध है, वह भागवत या भागभद्र था। ऐतिहासिक प्रमाण बतलाते हैं कि, शुंगों के राज्य के प्रति तीन या चार देशों ने अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की थी।

(४) कालिदास उस समय फले फूले जब विदिशा एक राजकीय नगर था। इसलिए वह भागवत के शासन-काल के शेष भाग में अवश्य हुए थे।

(५) विदिशा और उज्जैन की तत्कालीन सामाजिक-दशा का वर्णन घोर विलासी राजा देवहूति के शासन-काल से अक्षरशः मेल खाता है।

(६) कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में अग्निमित्र के जीवन की जिन घटनाओं का चित्रण किया है, शुंग-वंशीय राजाओं के आश्रित होने के प्रमाण हैं।

(७) अग्निवर्ण जो देवहूति के समान था, उस जीवन कथा का वर्णन कर एकाएक रघुवंश को समाप्त कर देना यह सिद्ध करता है कि, कालिदास शुंग वंशीय राजाओं के समकालीन थे।

(८) देवहूति की मृत्यु के पश्चात् विदिशा न राजधानी रह सका और न राजकीय नगर ही। और गुप्त-साम्राज्य के पतन के पूर्व यह पूर्व स्थिति प्राप्त न कर सका।

(९) अगर कालिदास गुप्त-काल में होते तो वे विदिशा को राजकीय नगर के नाम से वर्णन नहीं करते। कालिदास या किसी भी कवि से यह आशा करना एकदम ही स्वाभाविक है कि, अपनी कविता पुस्तक 'मेघदूत' में तात्कालीन घटना या भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक या राजनीतिक दशा का वर्णन करें। यह निर्विवाद है कि विदिशा जैसा था वैसा वर्णन कालिदास ने किया।

(१०) कालिदास 'मेघदूत' में पूर्णिमांत मास का वर्णन न कर, अमांत-मास का वर्णन करते हैं। अगर वे गुप्तकालीन राजाओं के समय होते तो उनके संवत् के अनुसार पूर्णिमांत--मास की ही चर्चा करते। गुप्त--सम्वत् उत्तरी भारत-प्रथा का अनुकरण करता है चूंकि यह गणना ५७ बी० संवत् के समय से वे मेल नहीं हो सकती है, अतः ५७ बी० सी० के पूर्व अवश्यमेव हुए। 'मेघदूत' की रचना भी ५७ बी० सी० के पूर्व ही हुई।

(११) परम्परागत कथाएं कालिदास को उज्जैन के राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित बतलाती हैं। ५७ बी० सी० वाला संवत् विक्रमादित्य का ही स्थापित किया हुआ है। विश्वास किया जाता है, जो "शकारि" भी कहलाता था। कोई भी गुप्त सम्राट् उज्जैन का राजा नहीं हुआ था। यद्यपि गुप्त-वंशीय सम्राट् वहां के अधिकारी थे, परन्तु उज्जैन में स्थायी दरबार के सिद्धांत के साथ उनका राजा होना असंगत है। गुप्तकाल में पाटलीपुत्र राजकीय नगर था।

(१२) इस परम्परागत कथा को तब और बल प्राप्त होता है, जब नवीं शती ई० सन् से ५७ बी० सी० संवत का नामकरण 'विक्रम संवत्' से हो जाता है। अगर नवीं शती ई० सन् में विक्रमादित्य को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार कर लिया गया, तो कोई कारण नहीं कि ग्यारहवीं शती बाद उसे स्वीकार करने में हम लोग असमंजस करें।

(१३) गुप्त-सम्राटों के अतिरिक्त जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। उज्जैन में एक दूसरा विक्रमादित्य हो गया है, जो 'हूणारि' के नाम से विख्यात है। लेकिन वह छठी शती ई० सन् में हुआ था। उसने सन् ५२८ ई० सन् में मिहरगुल को पराजित किया था, और अगर कालिदास उनके समकालीन थे तो वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन नहीं हो सकते, जो सन ५२८ ई० के ११३ वर्ष पूर्व मर चुका था।

(१४) कालिदास के किसी भी ग्रन्थ में गुप्तवंशीय राजाओं से कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया है बल्कि विदिशा और उज्जैन की दूषित प्रतीत सामाजिक दशा का वर्णन

चन्द्रगुप्त द्वितीय या कुमारगुप्त प्रथम के गौरवपूर्ण शासन के साथ पूर्ण असंगत दीख पड़ता है।

(१५) कालिदास विक्रमादित्य 'हूणारि' का समकालीन नहीं हो सकता है, क्योंकि वह और वर्णनों के साथ दशपुर (मन्दसौर) के सूर्य-मन्दिर की चर्चा कभी नहीं छोड़ता—जो सन् ४३७-३८ ई० में पूर्ण हुआ था।

गणना-क्रम से भी—

कालिदास के समय के विषय में जितने गहरे अध्ययन की आवश्यकता है उतने ही तथ्यों की प्राप्ति सम्भव है, ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जिस प्रकार प्रथम शती का प्रमाण सहज उपलब्ध हो सकता है, उसी प्रकार गणना-क्रम से भी काल स्थिति जानी जा सकती है। कालिदास ने अपने काव्यों में कई स्थलों पर ऐसे प्रयोग किए हैं, यथा 'प्रससादोदया' दम्भः 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे।' 'प्रत्यासन्ने नभसि' और 'शापान्तो मे भुजगशयनात्' आदि आषाढ़ मास, देवोत्थापन और नभो मास यह संगति सूर्य के पुष्य-नक्षत्र के प्रथम चरण में जाने पर कर्क संक्रांति के समय में सम्भव होती थी पर अब वह आर्द्रा के आरम्भ में होती है। यह नभो मास अब २८° ३१° अंश हटकर होता है और इस स्थिति के आने के लिए गणना-क्रम से लगभग २००० वर्ष का समय चाहिए। यही बात 'प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः' के अगस्त्योदय की भी है, इसलिए भी कालिदास को २००० वर्ष से नीचे नहीं लाया जा सकता। श्री सी० वी० वैद्य और म० वि० परांजपेजी जैसे अनुशीलनकर्त्ता पण्डित कालिदास को प्रथम-शती में ही स्थापित करते हैं और सबल प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

शाकुंतल की एक घटना।

शाकुन्तला नाटक के षष्ठ अंक में एक घटना प्राप्त होती है, उससे यह ज्ञात होता है कि कवि के काल में विधवा को अपने मृत पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं समझा जाता था। धर्म-ग्रन्थों में मनु-आपस्तम्ब, बौधायन, वसिष्ठ आदि स्मृतिकार विधवा को मृत पति की उत्तराधिकारिणी नहीं मानते हैं। और नारद, कात्यायन आदि केवल भरण-पोषण की अधिकारिणी समझते हैं, गौतम एवं बृहस्पति विधवा को एक भाग की अधिकारिणी बतलाते हैं, तथा शंख, लिखित एवं याज्ञवल्क्य संपूर्ण स्वामित्व सूचित करते हैं। इस प्रकार जितना समय जाता गया अधिकार वृद्धि होती गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनु-आपस्तम्ब, बौधायन, वशिष्ठ के पश्चात् तथा नारद, कात्यायन, गौतम आदि के पूर्व कालिदास का काल है, इतिहासज्ञ बृहस्पति काल को ईसा पूर्व मानते हैं, अतः कालिदास इससे भी पूर्ववर्ती होते हैं। इसी प्रकार हमारे स्नेही पं० गो. कृ. शास्त्री का मत है कि दुष्यन्त नाम से अंकित अंगूठी को धीवर के पास देखकर जब शासन द्वारा उसे 'प्राण-दण्ड' देने की बात कही जाती है, वह भी मनु, आपस्तम्ब, बौधायन आदि के मतानुसार 'राज-चोर' को प्राण-दण्ड देने की व्यवस्था थी, किन्तु बृहस्पति प्राण-दण्ड को कठोर मानते हैं। इसलिए स्पष्ट है कि य व्यवस्था भी बृहस्पति के विधान से पूर्व ही की है। और कालिदास इस विधान से भी प्रथम शती के ही सिद्ध होते हैं।

भाषा-प्रयोग की दृष्टि से।

कालीदासीय नाटकों में जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है, वह मागधी प्रचुर भाषा है। यह ई० सन् से पूर्व प्रथम शती की शैली है। उसके पश्चात की प्राकृत मागधी प्रचुर नहीं रही है।

विचार और शैली में साम्य।

भास और कालिदास की नाटकीय विशेषता को भी तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो एक विशेष समता प्रचुर रूप से प्राप्त होती है। जो भास से स्पष्ट प्रभावित प्रतीत होती है, यथा यौगंधरायण वासवदत्ता को पद्मावती के सुपुर्द करता है, और बाद में पद्मावती का राजा के साथ विवाह हो जाता है। राजा वासवदत्ता के विवाह का चित्रोल्लेख देखता है। महारानी पद्मावती राजा को सब कहती है कि वासवदत्ता की तरह ही कोई ब्राह्मण कुमारी हमारे अंतःपुर में भी है। इस प्रकार वासवदत्ता प्रकट होती है। राजा के साथ उसका मिलन होता है। यही प्रसंग थोड़े भिन्न प्रकार से और अधिक सुन्दरता से कालिदास ने अपनी प्रथम कृति मालविकाग्निमित्र में उतार लिया है। वहां मालविका को पटरानी के सुपुर्द किया जाता है।

मालविका संगीत सीखती है, वासवदत्ता वीणा सीखती है। मालविका को चित्र से अंकित देखकर तथा नृत्य मुद्रा में देखकर राजा अनुरक्त बन जाता है। जिस तरह वासवदत्ता को चित्र में देखकर राजा मुग्ध बन जाता है। मालविका और वासवदत्ता दोनों ही अन्तःपुर में रहती हैं। इसी प्रकार शकुंतला और वासवदत्ता में भी अनेक प्रकार साम्य प्रकट होता है। पद्मावती की शिरो वेदना, शकुंतला की काम वेदना, पल्लव-शयन, पुष्प-शयन दोनों के मिलने का वर्णन वासवदत्ता का तपोवन वर्णन, और शकुंतला का आश्रम वर्णन, वियोग में उदयन की स्थिति और दुष्यन्त की स्थिति वासवदत्ता के चतुर्थ अंक के प्रमद वन और विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र के प्रमद वन तथा दोनों वनों में दासी का विदूषक को खोजते आना, दोनों में वसंतक पात्र की समानता वासवदत्ता में भंवरा विदूषक को तंग करता है और यहां स्वयं शकुंतला को। इस तरह भास और कालिदास के नाटकों में अद्भुत साम्य है। न केवल पात्रों की किन्तु भाषा, शैली, विचार और प्रसंगों में भी विचित्र समानता है।

यह समानता कालिदास को भास से प्रभावित प्रकट करती है। और उनके काल को बहुत निकट ला देने वाली है। यह सिद्ध करती है कि कालिदास प्रथम शताब्दी के पूर्व काल में थे। जो लोग विदेशी विद्वानों के आधार पर अपने विचारों को भ्रांत बनाते हैं, और शब्दों के साथ व्यायाम कर मनमाना मोड़ देते हैं, वे यदि कवि के ग्रन्थों को ही सावधानी से तुलनात्मक और तर्क दृष्टि से परिशीलन करने का सतत परिश्रम करे तो वे महाकवि के काल स्थल परिस्थिति का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष दर्शन कर सकेंगे। कलिदास के काल निर्णय के विषय में बहुत कहा जा सकता है, और सप्रमाण भी। उसके लिये यहां न तो स्थल है न यह अवसर ही। यहां हम कवि की पुनीत स्मृति में केवल अपनी पुष्पांजलि ही अर्पित कर रहे हैं।

कालिदास का स्थल निर्णय।

कालिदास के काल निर्णय की तरह ही स्थल-निर्णय का विषय भी विवादास्पद बना हुआ है। कुछ विद्वानों की सम्मति में कालिदास काश्मीरी थे, कुछ बिहारी, कुछ बंगाली और कुछ हिमालय निवासी एवं विदर्भवासी भी बतलाते हैं। बंगाली बंधुओं ने एक नर मुण्ड भी प्राप्त कर लिया है, जिसे वे महाकवि की मूर्ति मानते हैं। हमने समय २ पर इस सम्बन्ध में विक्रम तथा अन्य पत्रों में पर्याप्त लिखा है। और ऐसे कुतर्कों या काव्य-विनोदों की चर्चा का सतर्क उत्तर भी दिया है। बंगाल की मेघदूत समिति ने जो भ्रांति विस्तारित की थी उसका सविस्तर, सप्रमाण उत्तर अस्तंगत 'माधुरी' में हमने बहुत समय पूर्व ही दिया है। बंगालियों की कृपा से मेघदूत का 'आषाढ़स्य प्रथम-दिवसे' बंगाली वर्षारम्भ भावना से प्रेरित बन कालिदास स्मरण दिन भी कुछ समय बना, किन्तु महामहोपाध्याय मिराशीजी जैसे कालिदास के अध्ययन-शील विद्वान और म० महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री (सी० आई० ई०) जैसों ने कवि की बंगीयता और आषाढ़ के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया। स्वयं बंगाली होते हुए भी म. महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और म. म. विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रौढ़ पुरातत्वज्ञों ने कवि का स्थल मालव-भूमि ही माना है, हरप्रसादजी शास्त्री तो कालिदास को अनेक प्रमाणों से मंदसौर (दशपुर) का ही मानते हैं। स्वयं विश्व कवि रविन्द्र और योगी अरविंद कालिदास को अवन्ती का स्वीकार करते हैं। कविवर रवीन्द्र ने अपनी एक सुन्दर भाव पूर्ण कविता में यह व्यक्त भी किया है कि यदि मैं कालिदास के काल में अवन्ती में उत्पन्न हुआ होता तो नवरत्नों की मालिका में मेरा भी कहीं स्थान होता। कालिदास के काव्य और नाटकों में मालव भूमि के प्रति जो पक्षपात प्रदर्शित होता है। जिस तरह वहां की छोटी से छोटी नदियों, टीलों, नगर-ग्रामों, प्रकृति पुंजों का वर्णन है, वह स्पष्ट कवि के आत्मीय भाव को प्रकट करता है। उज्जयिनी महाकाल और गन्धवती जैसे एक छोटे से जलाशय को भी वह वर्णित करता हैं। जब कि रघुवन्शकर्ता कालिदास मेघ को अयोध्या नहीं भेजता। यदि वह द्वितीय चंद्रगुप्त काल का होता तो वह अपने काव्य या नाटक के किसी पात्र को पाटलीपुत्र ही भेजता, वह विदिशा से अवन्ती तक मार्ग में पड़ने वाली वेत्रवती, सिंधु, निर्विन्ध्या, गम्भीर जैसी कृशकलेवरा नदियों को अवश्य स्मरण करता है। पूर्व मेघ का बहुत भाग तो वह विदिशा, दशार्ण, अवन्ती और विशेषतः उज्जैन पर ही

निर्भर कर देता है। स्व० म. म. हरप्रसाद शास्त्री तो ऐसे ही उल्लेखों से प्रेरित हो कवि को मन्दसौर दशापुर का सिद्ध करते हैं।

परन्तु स्व० डॉ० केदार इनसे भी आगे बढ़ गए हैं। उनका मत है कि कालिदास मालव के देवगिरी (देवडूंगरी) का निवासी था, क्योंकि उस एकांत-ग्राम पर स्थित 'स्कन्द' (कार्तिकेय) मन्दिर को वह विशेष रूप से प्रकाश में लाता है यह उसका जन्मभूमि प्रेम ही है। डॉ० परांजपे और इतिहासाचार्य सी. व्ही. वैद्य ने भी कवि की जन्मभूमि उज्जैन होना स्वीकार किया है। सरविलियम जोन्स जिसने शाकुन्तलका अनुवाद किया है। उनकी सम्मति में भी कालिदास का स्थान मालव ही रहता है। ये सब परम्परा और जन-श्रुतियों के भी अनुकूल है, जो विक्रम-कालिदास और अवन्ती को लेकर अनेक रूप में जन-जीवन में न जाने कब से प्रतिष्ठित हैं। कुछ विद्वानों ने अपने अनुकूल प्रकृति चित्रण प्राप्त कर कालिदास को काश्मीरी या हिमालयीन बनाने का यत्न किया है; किन्तु कालिदास ने जिन ऋतुओं का वर्णन किया, वे यथार्थ रूप में मालव प्रकृति में ही सार्थक होती है। ऋतु संहार की षड्ऋतुओं का रूप न तो बंगाल में ही रहता है न हिमालय में ही। बंगाल में केवल ४ ऋतु ही होती हैं, हिमालय में केवल २ ही रहती है कहीं-कहीं ३ भी। फिर शेष ऋतुओं की संगति कैसे जुड़ाई जा सकती है? यदि कवि बंगाली होता तो वह अपनी सर्वप्रथम कृति कही जाने वाली रचना ऋतुसंहार में क्यों नहीं वर्षारम्भ से संवत्सर प्रवृत्ति का संकेत करता है। मेघदूत का आषाढ़ मास तो शुद्ध 'मानसून' (वर्षागम) का सूचक है, जो उसका संदेश वाहक का काव्य माध्यम है। बंगाल में यदि ग्रीष्म समशीतोष्ण रहती है तो ऋतु-संहार के "प्रचण्ड सूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमा" से उसकी कैसे संगति जुड़ाई जा सकेगी? यही आपत्ति हिमालय और विदर्भ को रहेगी। किंतु कालिदास की कृति ही शब्दों में मालव-मोह लिए हुए हैं, जों अपनी जन्मभूमि के अनुराग की साक्षी है। इसके सिवा विदिशा के अग्निमित्र की राज-सभा में प्रवेश शाकुन्तल का अभिनय अवन्ती में किया जाना, ये ऐसी बातें हैं जो उसे अवन्ती में ही मुग्ध रखते हैं। सभी विद्वानों को यह तो मान्य है कि कवि का [illegible] भूमि रहा है, यही कारण है कि यहां के जल-स्थल नगर-समाज और प्रकृति एवं वातावरण से वह पूर्ण परिचय एवं समरस है, किंतु कवि को वे कहीं बाहर से मालवा या अवन्ती में आने का आग्रह सेवित करते हैं। जब हम मालविकाग्निमित्र के युवक नाटककर्ता को विदिशा में कीर्ति प्राप्त करते देखते हैं और प्रौढावस्था में प्रथम-विक्रम के शासन में समादृत होते अनुभव करते हैं, तथा उसकी प्रतिभा के वैभव को मालव-मही में ही विस्तारित विकसित देखते हैं तो किस आधार में वह कहीं से आकर इस प्रदेश में आश्रय प्राप्त करता है!

कालिदास की परीक्षा !

आज से ११ वीं शताब्दी में होने वाला महाकवि राजशेखर हमें यह बतलाता है कि—

> "श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्य-कार परीक्षा"
> "इह कालिदास मेण्ठावत्रामररूप भारवयः।
> "हरिश्चन्द्र चन्द्रगुप्तौ परीक्षितविह विशालायाम्।"

उज्जैन में कालिदास, मेण्ठ, अमर, रूप, भारवी, हरिश्चन्द्र, चन्द्रगुप्त आदि ने काव्यकार परीक्षा दी थी। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि का अध्ययन उज्जैन में हुआ था और उन्होंने यहीं परीक्षा भी दी थी, इस उल्लेख की केवल अनुमानों और शब्दों की खींचतान से उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि के वर्ण्य विषय को यथार्थता और प्रकृति-चित्रण की प्रवीणता से उसे किसी प्रदेश में उत्पन्न करवाने की कल्पना नहीं करना चाहिए, वह उसके यथार्थ वर्णन का कौशल ही है। वस्तुतः कवि का मालव-भूमि के प्रति अनुराग, उसका मार्मिक ज्ञान और पक्षपात पद-पद पर प्रतीत होरहा है। जो उसकी आत्मीयता और उत्पत्ति भूमि के प्रति मोह का ही प्रत्यक्ष प्रतीक है। अन्यथा उसे 'क्षिप्रावात' की अपेक्षा हिमश्रृंग या बंग-सागर पर ही कोई स्वतन्त्र रचना करने की प्रेरणा होती। वह मालविकाग्निमित्र और विदिशा में मुग्ध न बनता। सम्भव है 'तत्रस्कन्द' की 'देवगिरी' ने ही 'कुमार सम्भव' निर्माण की कवि को प्रेरणा दी होगी। जैसा कि डॉ० केदार के अनुमानानुरूप उनकी जन्मभूमि होने का स्थान हो सकती है। जो भी हो, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र का लेखक कालिदास उज्जयिनी और मालव-भूमि के अनुराग में जितना तन्मय हुआ है, और जिसकी परीक्षा भी इसी भूमि पर होती है

यह कहीं बाहर से आकर नहीं बसता है। उसने अपनी भूमि और नगर को काव्य की मनोहर सृष्टि में स्थान देकर अमर बना दिया है। यह सिवा जन्म भूमि के मोह के और कुछ नहीं है। अन्य दिग्विजय वर्णनों और प्रवास प्राप्त भौगोलिक एवं प्राकृतिक वर्णनों की तरह मेघदूत का मालव अवन्ती वर्णन नहीं है; उसकी अपनी स्वतन्त्र विशेषता है। १५५ श्लोकों के लघु काव्य में ७ श्लोकों के द्वारा इस अवन्ती और अवन्ती मण्डल की महिमा उसके अन्तर में रहने वाली आत्मीयता की प्रतीक है, इसलिए सन्देह का कारण नहीं कि वह अवन्ती का अधिवासी नहीं था, यहीं क्षिप्रा के पावन पुलिन पर उसकी प्रतिभा का विकास हुआ है। इसी भूमि को उसने अपनी अमर कृतियों से धन्य और चिरंजीव बनाया है। मालव भूमि का यह महान् सरस्वती सुपुत्र मालवीय के रूप में ही विश्व में विख्यात है। कालिदास, विक्रम और अवन्ती इन तीनों की त्रिवेणी अभिन्नता लिए हुए हैं। मतभेदों के रहते हुए भी जागतिक विद्वानों में अवन्ती कालिदास की भूमि के रूप में ही सन्मान प्राप्त किए हुए हैं, जिसे परम्परा भी समर्थन करती जारही है। कालिदास, विक्रम और अवन्ती से सम्बन्धित विशाल जैन पुरातन साहित्य उसी अभिन्नता और एकता का समर्थन करता है। जिसको जन-मन वाणी ने शतियों से सहज स्वीकार कर रखा है। विक्रम, अवंती और कालिदास की अभिन्नता अनेक मतभेदों-विवादों की परम्पराओं से टकराती हुई भी उसी रूप में अचल बनी हुई चली आरही है, मानों उसके उज्वल अतीत ने सत्य का साक्षात्कार कर रखा है। जिससे आज का युग अनजाने हो भ्रांत भटक रहा है। वैसे तो 'इलियड' के प्रणेता 'होमर' कवि के लिए भी सात-सात देशों ने उसके अपनाने का दावा किया है। यदि कालिदास के लिए भी हमारे महान् प्रदेश के कुछ भाग यह भावना रखे तो इसमें विस्मय का कारण नहीं, यह उसकी महानता और सर्व प्रियता का ही प्रमाण है। यह विवाद भी स्पृहणीय है। किंतु कवि के मालव-अवन्ती प्रेम से कैसे किसी को परांङ्मुख किया जा सकता है। यही उसको विवादों से ऊपर उठाए हुए है, और अवन्ती के अस्तित्व मानने के लिए विद्वानों को विवश बनाए हुए है। वैसे वह सर्व-प्रथम भारतीय है। हमारे महान सांस्कृतिक राष्ट्र की अमूल्य निधि है, और यह अपने महान् साहित्य की देन के कारण समस्त विश्व का है। सभी को उस पर समान अधिकार है किंतु उसके अवन्ती के अधिकार को कौन छीन सकता है ?

समुद्र के उस पार कवि कीर्ति !

यूरोप में सर्वप्रथम कालिदास के काव्य का प्रचार विलियम जोन्स ने किया। अर्थात् जब प्रथमतः ये भारतवर्ष में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हुए तो उस समय इन्हें हिन्दु-धर्मशास्त्र के समझने की आवश्यकता हुई और क्योंकि इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए संस्कृत-भाषा का ज्ञान अनिवार्य था, अतः उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी।

उसी समय उन्होंने अपनी मातृ-भाषा में शाकुन्तल का अनुवाद कर डाला। यद्यपि यह अनुवाद प्राथमिक प्रयास होने के कारण उतना उत्कृष्ट नहीं हो सका, तथापि जर्मन कवि 'गेटे' तो उसी को पढ़कर मुग्ध हो गए, और स्तुति में उन्होंने एक पद्य बनाया, जिसका भाव यह है—:

'यदि कोई वसन्त-ऋतु के कुसुम और शरद-ऋतु के फल प्राप्त करने का इच्छुक हो, यदि कोई मन को अपनी ओर आकर्षित करना चाहे, अर्थात् वशीकरण का प्रत्यक्ष प्रमाण देखने का इच्छुक हो, यदि कोई पृथ्वी और स्वर्ग को एक ही स्थल पर देखने की अभिलाषा रखता हो, तो एक बार अवश्य कवि सार्वभौम श्री कालिदास के शाकुन्तल को देखे।'

जब हमारा ध्यान जर्मन कवि 'गेटे' के इस पद्य की ओर जाता है, तब हमें मुक्त-कण्ठ से कहना पड़ता है कि स्वर्ग में पहुंच जाने पर भी जब महाकवियों की प्रचुरगुण-युक्त वाणी, तीनों लोक को मुग्ध किए बिना नहीं रहती। तो फिर वे कविजन क्यों न विश्ववन्द्य हों ? कवि 'गेटे' की उपर्युक्त प्रशंसात्मक पद्य रचना से कालिदास की कीर्ति यूरोप में एक दम चारों ओर फैल गई।

जब श्री० 'शेजी' ने फ्रेंच भाषा में शाकुन्तल का अनुवाद किया, तो दूसरे श्री 'आर पिश्चले' ने भी एक उत्तम आलोचनात्मक संस्करण सन १८७७ में प्रकाशित कर दिया। उसमें पाठ प्रणाली वही रखी गई जो बंगाल में प्रचलित थी। देवनागरी पाठ-प्रणाली का अनुसरण करते हुए शाकुन्तल नाटक के अन्य कई संस्करण प्रकाशित होते गए।

उनमें एक तो श्री० 'आ. बॉटलिंक' द्वारा प्रकाशित हुआ, दूसरा जर्मन-भाषा में रुकर्ट ने सन १८७६ में अनुवाद किया, उसी वर्ष 'फ्रीटस्' का भी अनुवाद निकल गया।

हां, तो प्रथमतः कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के पढ़ने से ही यूरोप के विद्वानों का ध्यान संस्कृत-भाषा की ओर विशेष आकृष्ट हुआ; फिर तो गीर्वाण-गिरा का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता ही चला। धीरे-धीरे कालिदास के अन्याय काव्य-नाटकों के अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे। सन १८५७ में मि० आर० पिश्चले ने विक्रमोर्वशीय नाटक को सम्पादन कर प्रकाशित किया।

डॉ० विलसन् और केविल, इन दोनों ने भी इसका अनुवाद किया, (मि० कॉवेल का अनुवाद सन् १८५१ में प्रसिद्ध हुआ।) इसी प्रकार क्रमशः सन १८८० में 'फ्रीटफ' ने लिपजिक से भी एक अनुवाद निकाला। मालविकाग्निमित्र का अनुवाद मि० सी. एच. टॉनी ने १८९१ में किया। जर्मन-भाषा में मालविकाग्निमित्र का अनुवाद पहिले सन १८६५ में 'मि० ए. वेवर' द्वारा भी हो चुका था। शाकुन्तल का अनुवाद 'मि० मोलियर विलियम्स' ने भी किया है।

कालिदास के काव्यों में रघुवंश भी श्रेष्ठ काव्य माना जाता है, वास्तव में उसमें एक ऐसी विशेषता हैं कि जो अन्याय काव्यों में नहीं दिखाई देती। उसमें मुख्यपात्र बीच में ही लुप्त हो जाता है, किंतु फिर भी आश्चर्य यह है कि कथा की शृंखला अटूट और अखण्ड रही हैं; तथा उसका रस भी अक्षत रहा है। सन १८३२ में 'स्टेन्जलर' सा० ने रघुवंश का लेटिन-भाषा में अनुवाद किया; तथा १८२८ में कुमारसम्भव का भी लेटिन-भाषा में अनुवाद कर डाला। मि० ग्रीफिथ साहब का किया हुआ उक्त काव्य का अनुवाद अंग्रेजी-भाषा में सन १८७९ में प्रकाशित हुआ था।

कालिदास के काव्यों में मेघदूत उत्कृष्ट-कोटि का खण्ड काव्य है। जिस जमय गेटे ने इसे पढ़ा तो वे सहसा आनन्द सागर में गोता मारने लगे। इसका भी अनुवाद 'स्टेन्जलर' ने सन १८७८ में किया था। डॉ० विल्सन ने तो इसका तत्सम अंग्रेजी भाषा में पद्यानुवाद ही कर डाला (१८६७) में प्रकाशित।

सन १८८२ में टी. क्लार्क का किया हुआ मेघदूत अनुवाद लन्दन नगर में, तथा मेक्समूलर द्वारा मेघदूत जर्मन-भाषा में किया हुआ अनुवाद १८४७ में, और का १८५९ में तथा फ्रीटज का अनुवाद भी सन १८ प्रकाशित हुआ था। इसके सिवा अनेक अनुवाद हुए एच. जी. रुक का श्रेष्ठ है; उस पर रवीन्द्रनाथ ने पत्र भूमिका लिखी है।

'ऋतु-संहार' काव्य कालिदास की सबसे छोटी रचना है। सम्भव है कि यह कवि की प्राथमिक-कृति हो। प्रतिभा इसमें भी झलकती है। मुग्धानलाचार्य (मेक्डोनल) ने इस लघु-काव्य की बड़ी प्रशंसा की है। इसका अनुवाद भी लेटिन एवं जर्मन-भाषा में किया हुआ पी० वी० द्वारा लिपजिक में प्रकाशित हुआ था।

इसके पश्चात् भारतीय विद्वानों द्वारा भी कालिदास के काव्य अंग्रेजी में अनुवादित हुए, उनमें सर्व प्रथम महाम अरविंद घोष का किया हुआ विक्रमोर्वशीय नाटक का अंग्रे पद्यानुवाद अप्रतिम एवं अपूर्व माना गया। इससे यह ज्ञात होता है कि संसार के सारे विश्व कवियों में कालिदा का जैसा स्थान है; वैसा ही उनके काव्यों का भी पूर्ण आदर है।

मोनियर विलियम्स का कहना है कि—कल्पना-शक्ति प्रबलता और मानवीय अन्तःकरण का उत्कृष्ट ज्ञान, त रचना-चातुर्य, आदि गुण कालिदास के इतने बढ़े-चढ़े हैं उन्हें संसार का एक मात्र महापुरुष, तथा भारत का शे पीयर ही कहना चाहिए।

अनुवाद, अनुकरण!

भगवद्गीता की टीकाओं की तरह ही कालिदास के का की टीकाएँ भी अनेक हैं। अकेले मेघदूत की लगभग टीकाएँ उपलब्ध है. मेघदूत के अंग्रेजी आदि विदे भाषाओं के अनुवाद तो हैं ही, पर भारतीय-भाषा में भी अनुवाद नहीं है। हिन्दी में लगभग ८ अनुवाद उपलब्ध व्रजभाषा में भी एक हैं, और मालवी-भाषा का अनु मुद्रित है, इसी प्रकार उर्दू का अनुवाद भी विक्रम में रूप में छपा है. मराठी में कई अनुवाद प्राप्त हैं, विष्णु

चिपलूनकर का उसमें उत्तम है। हमारे वित्तमंत्री सर चिन्तामणि देशमुख ने भी एक अनुवाद किया है। गुजराती भाषा में १२ अनुवाद उपलब्ध हैं, उनमें स्व० किलाभाई घनश्याम का अनुवाद अप्रतिम है। बंगला में भी ३ अनुवाद हमने देखे हैं। पता नहीं मद्रासी—तेलगू—कन्नड़ आदि भाषाओं में मेघदूत के अनुवाद कितने हैं? परन्तु कालिदास के साहित्य पर उस प्रदेश का अनुराग किसी से कम नहीं है। मेघदूत के अनुकरण में भी पचासों दूत-काव्यों का आविर्भाव हुआ है और उसके चरणों को लेकर जैन-कवियों ने सुन्दर रचनाएँ की हैं। इस प्रकार कालिदास के काव्य ने जैसी व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है शायद ही विश्व के किसी कवि को प्राप्त हुई हो।

कालिदास का साहित्यानुशीलन।

कालीदासीय साहित्य के अनुशीलन में महाराष्ट्र सदैव अग्रणी रहा है। आज भी विद्वानों में यह प्रवृत्ति वर्तमान है, हिन्दी में जितना अनुराग स्व० द्विवेदीजी ने सरस्वती-सम्पादन काल में लिया है, उतना शायद ही अन्य ने लिया हो, आज डॉ० वासुदेवशरण और पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी इस दिशा में मौलिक चिन्तन करते रहते हैं, मराठी में कालिदास के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक स्वरूप पर अनेक ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। गुजरात के विद्वानों ने भी मराठी के बाद पर्याप्त प्रयत्न किया है, उनमें स्व० ध्रुव, किलाभाई, रामनारायण पाठक, प्रो० बलवन्तराय ठाकुर, न्हानालाल का स्थान प्रमुख है। स्व० ध्रुव और स्व० किलाभाई के श्रम सर्वथा मौलिक महत्व रखते हैं, और कवि के सम्बन्ध में अनेक महत्व के विषयों पर प्रकाश डालते हैं। योगी अरविंद और महाकवि रवीन्द्र के सिवा बंगाल के स्व० म. म. हरप्रसादजी शास्त्री, म. म. विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे प्रख्यात पुरातत्वविदों ने कवि के साहित्येतिहास पर विविध दृष्टिकोण से विचार किया है। विक्रम के द्वारा इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग ४-५ वर्ष विक्रम कालिदास की ओर प्रेरणा देने वाले साहित्य का प्रकाशन किया है। १९३७ के यूरोप भ्रमण में हमें जर्मनी, इटली और फ्रांस के विद्वानों के सम्पर्क में आने का अवसर उपलब्ध हुआ था, और कालिदास की अवंती के निवासी होने के कारण कालिदासीय स्मारक के सम्बन्ध में अनेक बार जिज्ञासा की गई है। वहां से वापस आते ही 'कालिदास-स्मृति-दिवस' मनाने की भावना जागृत हुई, तब से सतत प्रयत्न होता रहा है। उसके फल स्वरूप विक्रम और कालिदास की ओर जन-प्रवृत्ति भी पर्याप्त हुई है। बहुत से साहित्य का निर्माण भी हुआ है, अनेक पत्र-पत्रिका में कालिदास सम्बन्धी चर्चा भी निरन्तर हुई, और होती रहती है, देश के विभिन्न भागों में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन प्रतिवर्ष महाकवि की स्मृति मनाई जाती है।

हमारी राष्ट्रीय विभूति कालिदास उपेक्षित!

किंतु कालिदास के इस देश में उसे जैसा व्यापक स्वरूप राष्ट्रीय-रूप प्राप्त होना चाहिये वह अभी भी नहीं हुआ है। यूरोप में आज शेक्सपीयर जैसे महान् साहित्यकार को अनेक राष्ट्र-राष्ट्रीय-दृष्टि से अर्घ्य अर्पित करने में अपना कर्तव्य अनुभव करते हैं। वह भावना हमारे देश में अब भी जागृत नहीं हो पाई है, शासनों को कोई अनुराग प्रतीत नहीं होता, स्वतन्त्र देश हो जाने पर भी हमारी सांस्कृतिक भावना उद्बुद्ध नहीं बन रही है, यह बड़ी चिंता की बात है। हम विदेश की प्रगति पर दृष्टि रखते हैं किंतु उसकी शेक्सपीयर सम्बन्धी राष्ट्रीय-रूप प्राप्त करने वाली विभूति-पूजा की कैसे उपेक्षा करते हैं। जितना अनुराग विदेशियों ने कालिदास में लिया है, हम उनसे भी प्रेरणा प्राप्त नहीं करते। चाहिए तो यह था कि हमारी समस्त देशीय सांस्कृतिक और शिक्षण संस्थाएं महाकवि के प्रति एक दिन आदर व्यक्त करती, और शासन उन्हें प्रेरित करता। हमारे विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में कालिदासीय साहित्य के अन्वेषण, अनुशीलन-अध्ययन के लिए अभिनव दृष्टिकोण से अन्वेषित करने वाले विद्वानों को उपाधि देकर प्रोत्साहित-प्रेरित किया जा सकता है। दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जिस कवि का साहित्य अन्वेषक की प्रतिभा को नित्य-नवीन स्फूर्ति प्रदान करता है, वह हमारे विश्वविद्यालयों के ज्ञान-संवर्धन-अनुशीलन का विषय नहीं बन सकता है? स्वतन्त्र राष्ट्र में भी उसके राष्ट्रीय-सन्मान का भाजन कवि उपेक्षित रहने दिया जा सकता है? कितनी विचित्र बात है।

मतभेदों की परंपरा !

कालिदास के काल के विषय में मतभेद है। स्थल के विषय में मतभेद है। व्यक्तित्व के विषय में मतभेद है, और कृति के सम्बन्ध में भी। ये मत-भेद यद्यपि जीवन के लक्षण हैं। वैसे तो मेघदूत वर्णित रामगिरि, देवगिरि, अलका आदि स्थल संकेतों पर भी सन्देह स्थापित किया जाता है, किन्तु ये वाद-चर्चाएं प्रशंसनीय हैं, कवि की महत्ता की प्रतीक हैं।

स्मृतिदिन के संबन्ध में !

परन्तु महाकवि की स्मृति-पूजा के एक दिवस निश्चित करने के लिए भी मतभेद को अवसर दिया जाता है। अवश्य ही कतिपय बंगाली-बन्धुओं तथा कालिदासीय साहित्य से स्वल्प-परिचित-जनों को छोड़ 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' के अनुसार आषाढ़ मास में स्मृति मनाने का अनुरोध महत्व नहीं रखता; आज देश के अधिकांश भाग में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा ही स्वीकृत है। आरम्भ में हमें इस दिन की स्थापना के लिए विवाद-चर्चाओं का सामना करना पडा है, किंतु कालिदासीय साहित्य के कीर्ति लब्ध विद्वान महामहोपाध्याय श्री मिराशीजी एम० ए० ने अपने 'कुन्तलेश्वर दौत्य' वाले लेख में 'कार्तिक' का आरम्भ ही में जोरदार समर्थन किया है। विक्रम वर्षारम्भ के रूप में तथा कालिदास और विक्रम की एकता के अनुसार हम अवन्ती—विक्रम और कालिदास की इस त्रिपुटी को उचित रूप में कार्तिक-शुक्ल में ही स्मरण कर सकते हैं। जो लोग बंगाल के आन्दोलन से परिचित नहीं हैं, वे आषाढ़स्य प्रथम दिवसे की भावना में एक प्रांतीयता को अनजाने प्रेरित करते हैं। वस्तुतः कालिदास के नाम के साथ ही विक्रम की स्मृति सजग होती है, और विक्रम—कालिदास के युगल के साथ ही अवन्ती भी सहसा समन्वित हो जाती है। इन तीनों को एकत्रित करने वाला विक्रम का वह वर्षा-रम्भ है जिसमें उसकी स्मृति निहित है—वह कार्तिक शुक्ला ही है। यही समस्त गुजरात मालव एवं व्यापार-जग में व्याप्त है। मेघदूत के आरम्भ से तो हम विरह-व्यथित यक्ष की करुणा-धारा का आषाढ़ में स्मरण करते हैं, किंतु मेघदूत के ही माध्यम से कवि की स्मृति मनाने को उद्यत हों तब भी हमें उसके 'शापांतो मे भुजग शयना दुत्थिते शार्ङ्गपाणौ' शापांत हो जाने पर देवोत्थापन के मंगल-प्रसंग में विरहावस्था समाप्त हो जाने पर ही क्यों न मनाएँ। यह समय भी कार्तिक ही आएगा, और 'कार्तिक' ही विक्रम वर्षारम्भ होने के कारण महाकवि, उसके आश्रयदाता और अवन्ती तीनों को एक साथ स्मरण करा देता है। इसमें मतभेद का कहां अवकाश रहता है ? हम इतिहास और परम्परा को भी इस तरह समन्वित कर लेते हैं। आशा है कार्तिक-शुक्ला एकादशी को महाकवि की स्मृति-पूजा का सर्वत्र आयोजन होगा।

—:—

सरस्वती प्रेस का नवीन आयोजन जनवरी १९५४ से प्रकाशित

हिन्दी में कथा-साहित्य का अनुपम मासिक

कहानी

जिसमें हिन्दी की उत्कृष्ट, सरस, सुरुचि-पूर्ण एवं प्रगतिशील कहानियों के साथ भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं की श्रेष्ठतम कहानियों के प्रामाणिक और धाराप्रवाह अनुवाद पढ़िये।

कहानी' के साथ सम्बन्धित 'पुस्तकालय' के द्वारा हिन्दी में प्रकाशित होने वाली समस्त पुस्तकों का विशद विवेचन और परिचय प्राप्त कीजिए।

एकप्रति का मूल्य चार आना : : : : वार्षिक चन्दा तीन रुपए

—वी० पी० नहीं भेजी जाती—

व्यवस्थापक : 'कहानी' कार्यालय,

सरस्वती प्रेस, ५, सरदार पटेल मार्ग, पो० बा० नं० २४, इलाहबाद—१

महाकवि चक्रवर्तिन छित्तप

डॉ० डी० सी० सिरकार एम. ए., पी. एच. डी.

संस्कृत ग्रन्थों में छित्तप नामक कवि रचित कितने ही पद पाए जाते हैं, यद्यपि उक्त कवि का कोई सम्पूर्ण ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है। कवि का नाम कभी-कभी चित्तप, छित्तिप, छिन्नम और छित्रम के रूप में भी उद्धृत होता है। श्री एफ० डब्लू० थॉमस द्वारा **कवीन्द्रवचन समुच्चय** (कलकत्ता १९१२ पृष्ठ ३७) की सुन्दर भूमिका में छित्तप कवि के काव्य प्रतीकों का संकलन किया गया है, जब कि उसका एक ही पद **कवीन्द्रवचन समुच्चय** में है जो 'ई० स० १२०० के बाद का नहीं' काल संकेत सहित सूचित है। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी श्रीधरदास ने अपने **सदुक्तिकर्णामृत** (ई० स० १२०५-०६ में संकलित) * में छित्तप के उन पदों को संकलित किया है जिसमें **कवीन्द्रवचन समुच्चय** का पद भी सम्मिलित है। बाद के ग्रन्थों में छित्तप का प्रतिनिधित्व हरिकवि के **सुभाषितहारावलि** में एक पद से, **अलंकार कौस्तुभ** और **गणरत्नमहोदधि** में दो पदों से तथा जल्हण की **सुक्तिमुक्तावलि** में ७ पदों से किया गया हैं। यही सात पद भोज परमार के **सरस्वतीकण्ठाभरण** में भी उद्धृत हैं। इनमें के कितने ही पदांश **सुक्तिरत्नावलि** (विद्यानाथ) **सुभाषितावलि**, **सुभाषित संचय पद्यवेणी** (वेणीदत्त) पद्यरचना, **सारसंग्रह** (शम्भुदास), **सुभाषित-रत्नकोष** (भट्ट श्रीकृष्ण), **सारसंग्रह सुधार्णव** (भट्ट गोविंदजीत), **पद्यरत्नांगिरि** (वजनाथ) आदि। किंतु यह भी उल्लेखणीय है कि उन्हें कश्यप नामक किसी अनजाने कवि के अथवा सिंहदत्त, दाक्षिणात्य अकालजलद, और हेमन्त जैसे अनेक कवियों या **भोजप्रबन्ध** जैसे ग्रन्थ के नाम से घोषित किया जाता है।

सदुक्तिकर्णामृत में छित्तप का एक पद इस प्रकार उपलब्ध है—

वाल्मीक—कतमोसि कस्त्वमथवा व्यास्य येनेशभोः
श्लाघ्यः स्यात्तव भोज—भूपति—भुजा स्तम्भ स्तुता-
चक्षुमाः।
पगुः पर्वतमारुरूक्षसी विधु-स्पर्शं करन्मेहसे दोर्भ्यां साग-
रसुक्तितीर्षसि यदिब्रु मो किमत्रोत्तरम् ॥

इसमें सन्देह नहीं कि छित्तप भोज के समकालीन थे, कदाचित उनके राजकवि भी हों। उस काल के परमार राजाओं में भोज की गणना की जाती है। थॉमस ने लिखा है—"सरस्वतीकंठाभरण में कितने ही अंश समकालीनों के हैं।" छित्तप के लिए लिखा है—"भोज का समकालीन, दसवीं शताब्दी" जब कि अन्य स्थानों पर उसी ग्रन्थ में भोज परमार ११ वीं शताब्दी के अन्तर्गत उल्लेखित है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर विक्रम संवत १०७६ और ११०३ (सन १०२० और १०४७) के बीच भोज का समय निश्चित होता है। उसकी मृत्यु विक्रम संवत् १११२ (सन १०५५-५६) में या इसके पूर्व हुई है, जब उसके बेटे और उत्तराधिकारी जयसिंह ने मान्धाता के सम्बन्ध में ताम्रपत्र प्रकाशित किया था, ऐसा विश्वास किया जाता है। परम्परा के अनुसार जैसा कि **भोजप्रबन्ध** में उल्लेख है, भोज ने ५५ वर्ष ९ महीने राज्य किया। हम साधारणतया भोज का राज्य-काल सन १०१०-५५ तक मान सकते हैं। भोज का समकालीन (कदाचित राजकवि) छित्तप ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ और मध्य ही अपने उत्कर्ष पर रहा होगा।

इस वर्ष के आरम्भ में मध्यभारत और राजस्थान के कुछ जिलों में अपनी यात्रा के समय मुझे जनवरी (१९५३) के तीसरे सप्ताह में भूतपूर्व गवालियर राज्य के भेलसा नामक स्थान के दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ। भेलसा के डाक बंगले में मैं ठहरा हुआ था। डाक बंगले के हाते में पड़े हुए शिला लेखों की जांच करने में मुझे बहुत प्रसन्नता हुई जो खुली हवा में स्थित म्युजियम की वस्तुओं की भांति थे। मुझे बताया गया कि वे स्थानीय उत्साही सज्जन श्री राजमल जैन द्वारा संग्रहित किए गए हैं, जब कि मध्यभारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने बहुत बाद में उन वस्तुओं के प्रति अपना कर्तव्य व्यक्त किया। वास्तव में यह खेद का प्रसंग है कि ये भग्नावशेष, जिनमें कुछ तो बहुत महत्व के हैं, बिना किसी सुरक्षित स्थान के खुली धूप और पानी में पड़े हैं। समय के प्रतिशोध से वे अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित थे जब कि वे धरती में दबे पड़े थे।

---

* १२ वीं शताब्दी में संकलित नहीं किया गया, जैसा कि थॉमस ने सूचित किया है।

डाक बंगले के खुले हुए म्युजियम में मुझे एक बड़े प्रस्तर के ऊपरीभाग पर, ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग के लक्षणों से आवृत्त नागरी ढंग की लिखत लिपि मिली। खुदे हुए इस प्रस्तर के सिरे का बांया भाग टूटा हुआ एवं लिखित लगभग अस्पष्ट है। किंतु कुछ मिनटों के प्रयत्न के बाद मुझे विश्वास होगया कि खुदे हुए अक्षरों की अन्तिम दो पंक्तियों में निम्न लिखित महत्व की बाते अंकित हैं:—

१ कृतिरियम् महाकविचक्रवर्त्ती—पंडित—श्री—चछि (छि) त्तपस्य;

२ कारिते—यम् दंडनायक—श्री—चन्द्रेन

प्रस्तर पर खुदी हुई सामग्री इस प्रकार छित्तप नामक कवि द्वारा लिखी गई प्रतीत होती है जो **महाकविचक्रवर्तिन** की उपाधि से विभूषित था और जो चन्द्र द्वारा खोदी गई जिसे शासकीय रूप से '**दंडनायक**' (सेना का उच्चाधिकारी) का पद प्राप्त था। उक्त लिखत को पढ़ते ही मुझे तत्काल यही सम्भावना हुई यह **महाकविचक्रवर्तिन** भोज परमार के दरबारी कवि के अतिरिक्त अन्य नहीं हो सकता। मैंने पूर्णरूपेण शिलालेख का महत्व समझ लिया, पर इसी बात का आश्चर्य हुआ कि इतनी महत्वपूर्ण इतिहास-सामग्री की ओर इतिहासज्ञों का ध्यान अब तक क्यों न गया। मुख्यतः इसका कारण मुझे समझ में न आया। गवालियर स्टेट (आजकल मध्यभारत) भारत के उन भागों में से है जिन्हें काफी अच्छी तरह खोजा जा चुका है और, अध्ययन मनन की सूचनाएँ तथा शिलालेखों की सामग्री समय-समय पर विद्वत्ता पूर्वक वार्षिक विवरणों में प्रकाशित की है (उत्साही श्री एम० बी० गर्दे, अवकाश प्राप्त भू० पू० गवालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के संचालक इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं।) खोजबीन करने पर यह ज्ञात हुआ कि छित्तप कवि रचित सामग्री के प्रति दुर्भाग्य पूर्ण उपेक्षा का कारण मध्यभारत के पुरातत्व विभाग के अफसरों की असफलता है जिनके कारण शिलालेख का पठन न हो सका तथा उसे प्रश्नवाचक ही बना रहने दिया।

गवालियर राज्य के पुरातत्व विभागीय विवरण के पृष्ठ २५ पर उपरोक्त शिलालेख के सम्बन्ध में लिखा गया है—"दूसरा शिलालेख, अवशेषों में से प्राप्त खण्ड-मात्र, प्राचीन नागरीलिपि में है जो लिपि विज्ञान के आधार पर १२ वीं शताब्दी का प्रतीत होता हैं। यह ऊपर से बाईं ओर टूटा हुआ है। यह किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति कदाचित कोई राजा या मन्त्री, के गुणों का उल्लेख करने वाली प्रशस्ति है, जिसमें वह सूर्य के समान घोषित किया गया हैं, जिसे राहु अपने पंजे में नहीं ले सका। चूंकि शिलालेख बहुत ही बुरी अवस्था में है, उसका उद्देश्य ज्ञात नहीं किया जा सकता। दंडनायक श्री चन्द्र के उदाहरण के आधार पर उक्त प्रशस्ति का रचयिता महाकवि चक्रवर्ती श्री द्वित्प (?) है।" दुर्भाग्य से कवि का नाम बहुत ही स्पष्ट रूप से **छित्तप**, निश्चय ही द्वित्प नहीं जैसा कि रिपोर्ट में लिखा है। साथ ही शिलालेख में सूर्य की प्रशंसा है, न कि किसी राजा या मन्त्री की प्रशस्ति। इसी प्रकार गवालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के एक अन्य विवरण में भी उक्त शिलालेख के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण सूचना उपलब्ध है। **'गवालियर राज्य का अभिलेख'** (हरिहर निवास द्विवेदी) के पृष्ठ ६२ पर अन्य भ्रमपूर्ण बातों के साथ ही कवि का नाम **द्वित्रय** लिखा गया है जो और भी अशुद्ध है।

प्राचीन विदिशा नगर (भिलसा के निकट बेतवा वेत्रवती) के दूसरी ओर स्थित वर्तमान बेस नगर ने जो कि आकर या दशार्ण जनपद (उत्तरी मालवा) की राजधानी था, मध्य काल में भिलसा को समृद्ध बनाया। विश्वास किया जाता है कि भिलसा (भेलसा) शब्द 'भइलस्वामिन्' के नाम से नगर के एक बड़े मन्दिर में पूजे जाने वाले सूर्य भगवान से सम्बन्धित हैं।

'भइलस्वामिन्' नगर का उल्लेख विक्रम संवत ११६ ११३३ के एक शिलालेख में आया है। * उदयपुर (भिलसा जिला) के उदयेश्वर के मन्दिर के वि० सं० १२२ (ई० स० ११७३) के शिलालेख में मुझे मन्दिर के आसपास मण्डल या जिले का नाम भइलस्वामिमहाद्वादशक (भइल स्वामिन १२) के रूप में मिला है। ‡ परन्तु यह नाम मण्डल के प्रमुख नगर के नाम पर आधारित था। भिलसा में भइल स्वामिन सूर्य देव की पूजा की प्रामाणिकता निश्चित

---

* इण्डियन एन्टीक्वेरी, vol. xvi p. p. २०८। **Ibid, vol. xviii, p. p. 347 H. E.**

की जा सकती है परन्तु यह असम्भव नहीं है कि भास्वत जो कि मालव नदी (कदाचित वेत्रवती या बेतवा) के तीर पर स्थित था, जैसा कि विक्रम संवत १०११ के शिलालेख में उल्लेख, भेलसा ही हैं। * इस दृष्टि से भइलस्वामिन् ई० स० १० वीं शताब्दी में भास्वत के नाम से ही प्रख्यात् होगा।

नगर और आस-पास के क्षेत्रों से पाए गए परमारों के शिलालेखों से सिद्ध है कि भिलसा भोज के राज्य का भाग था (देखिए भांडारकर की सूची, क्रम० १६५७, १६५८, आदि) दण्डनायक चन्द्र, जैसा कि सम्बन्धित शिलालेख में उल्लेख है, कदाचित भोज के अधिकृत भिलसा का शासक था वह सूर्य का भक्त था। उसने सम्भवतः कवि छित्तप से सूर्य की प्रशस्ति लिखने के लिए प्रार्थना की होगी जिसे कि पत्थर पर खुदाकर सूर्य मन्दिर के दीवार में लगा दिया जाए। इस सचाई से संकेत मिलता है कि छित्तप भिलसा क्षेत्र का निवासी था। महाकवि चक्रवर्तिन की उपाधि उसे भोज परमार के द्वारा प्रदत्त की गई प्रतीत होती है। कदाचित् वह भोज के दरबार का मुख्य कवि भी हो।

छित्तप अनेक गुणों से विभूषित कवि था यह संस्कृत ग्रन्थों से ज्ञात होता है। किंतु जैसा ऊपर बताया गया उसका साहित्य उसके नाम के सही रूप से युक्त नहीं है। इतना ही नहीं छित्तप के नाम से प्राप्त कुछ छन्द अन्य ग्रन्थों में 'अज्ञात कवि' या अन्य नाम से प्राप्त होते हैं। विचाराधीन शिलालेख जो कि कदाचित् कवि के जीवन काल में ही खुदा है, अब तक के प्रमाणों के आधार पर छित्तप का खण्ड काव्य ही समझा जा सकता है। इस दृष्टि से उसका अपना महत्व भी है। सूर्य के प्रति उपलब्ध सम्पूर्ण प्रशस्ति, अनुष्टुप छन्द में लिखी गई है। जैसा कि ऊपर लिखा है कुछ अंश तो शिलालेख के पढ़े भी नहीं जा सकते। नीचे हम शिलालेख की प्रतिलिपि दे रहे हैं—

राहू स्त्वद-रोचिषे द्रुह्यंन्नहतास्तेनुजन्मना ।
शिरोलुत्वापि दुष्टे रौ याचना कौशलंहितत् ॥
तजस्तवाद्रंभा=द्रेषु क्रूरं क्रूरेषु जृंभते ।
भक्ता-भिप्राय-निघ्नस्य चन्द्रा + + + क्षते ॥
फंणा-मणिषु शेषस्य मुक्ता-मणिषु तोयधेः ।
तारा-मणिषु चव्योम्न-स्तव रोचिर=विरोचते ॥
तव संक्रान्तमे=नांके चक्रवाले पयोमुचि ।
द्योतिर=ज्योत्स्नेति सन्ध्ये ति सुरधन्वे=ति गीयते ॥
……………लाक्षा, मद-रागम् कपोलयोः ।
पयोधरत-तेत्=रेचिः प्रतिच्याः कुंकुम—द्रवः ॥
स्वर्भानु-स्त्वाम् गृह्णाति क्रीड़ालोलां कलावति ॥
अन्तरद्धस्त्से त्वम=ज्जिन्याः प्रेम्णो हिकुटिला गतिः ॥
न तथोन्निद्रमब्जास्या + + सी पद्मिनीम् ।
नूनं विकथ्थनोर्थेन शब्देनत्वं विकर्त्तनः ॥
द्यामालिंगाब्जिनीं चम्चा अपापच्छिं व्रजोत्तराम् ।
राजप्रच्छ्यां प्रतीच्यांवादिनश्रीस्त्वांन्नमुंच्यति ।

+ + +

रुच्यमानं पुनः सात्वं अन्हामन्तेनुगच्छति ।
पूर्वा मुत्थीयते प्रातः पश्चात् संविष्यतेनिशि ॥
अहो सुग्रहिणी वृत्तिम् उपसा तेनुगृह्यते ।

+ + ÷

करस्पर्शोर्पिते प्रापद्यौर्निमीलित तारका ।
यासौ सर्वांग संक्रान्तानविभ्रद्वः किं करिष्यति ।
… … चन्द्रतादङ्क प्राच्यांसन्ध्यांशुकम् दिवः ।
ह्रीयते रोदुहारश्च पूर्णं पात्रं तवागमे ॥
प्राच्यांमुद्गच्छतोयातुः प्रतीचीं श्लिष्पतोदिवम् ।
अवदन्नाथ बहीषु प्रतिनत्तिः प्रियासुते ॥
तमोभेत्तुं यथा बाह्यम् तथान्तर मपीष्यते ।
तवद्रूपे यथा रात्रिस्तथा निद्रापि नष्यति ॥
इनोश्यकोंसि सूर्योसि पर्याप्तेत्येवते स्तुतिः ।

यह देखा जा सकता है कि छित्तप की शैली सादी है और कुछ अंश उसे निश्चय ही महाकवि घोषित करते हैं। एक पद में वर्णित भावों के अनुसार चन्द्रिका केवल सूर्य रश्मियों का चन्द्र पर पड़ने वाले प्रकाश की प्रति प्रकाश है। यही भाव कालिदास के रघुवंश और आसाम हरजर वर्मा ह्युंगथल ताम्रपत्र की २४-२५ वीं पंक्ति में भी मिलता है। मल्लिनाथ की रघुवंश की इन पंक्तियों पर टीका ध्यान देने

—शेष पृष्ठ ३६ पर

---

* Ep. Ind, vol. 1. p. p. 124.

राम राज्य, गीता और वेद

श्री० रणछोड़दास ' उद्धव '

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥

—अथर्ववेद १९·४१·१

'सुख और कल्याण को चाहते हुए स्वर्गीय जीवन वाले ऋषियों ने पहिले तप, और दीक्षा की शरण ली, फिर राष्ट्र, राष्ट्रीय बल एवं राष्ट्रीय ओज पैदा हुए। इसलिये हे विबुधो! इस राष्ट्रभाव, राष्ट्रीय बल और राष्ट्रीय ओज को प्राप्त करो, एवं एक होकर इसे नमस्कार करो।'

महात्मा गांधीजी की प्रबल इच्छा थी कि हमें फिर से रामराज्य की प्राप्ति हो। हमें यह विचार करना है कि जिस सर्वमानवप्रिय, आनंदमय रामराज्य की हम इच्छा करते हैं, उस राम राज्य का विधान शास्त्र क्या था। रामराज्य का सच्चा ऐतिहासिक स्वरूप वाल्मीकीय रामायण में मिलता है।

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में उस सुराज्य संपन्न स्वराज्य के विधान सूत्र सखा अर्जुन को सुनाये थे। उस विद्या को गीता में राजर्षि-विद्या कहा है, और अव्यययोग भी। उसकी परंपरा अति प्राचीन दिखलाई है। प्राचीनता के नाते सबसे पुराना 'विश्वग्रन्थ केवल वेद ही हैं। अतः हम गीता, रामराज्यप्रद वा० रामायण आदि ग्रन्थों का तथा विश्वविद्याओं के मूल--आधार वेद का परस्पर क्या संबंध है यह सारूप से दिखलाते हैं।

भारत में ही नहीं, अखिल विश्व में भगवान् कृष्ण से भी अधिक भगवद्गीता का प्रचार है। विश्व के विद्वानों ने गीता की ओर भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखा है। किसी ने दार्शनिक दृष्टि से, किसी ने धार्मिक दृष्टि से और लोकमान्य तिलक आदि ने व्यावहारिक दृष्टि से भी इसका अवलोकन किया है। गीता की सैकड़ों टीकाएं देख कर साधारण साधक को भ्रम हो जाता है कि हमें किस अर्थ का अवलंबन करना चाहिए, यह भ्रमात्मक दशा तब से प्राप्त हुई है जब से वेदस्वाध्याय का लोप हुआ है, और लोगों ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों का ही आश्रय लिया है। आज यह दशा हो गई है कि आर्षग्रन्थों का रहस्यार्थ विद्वानों को भी आकलन करना कठिन हो गया है। क विद्वान् तो आदर्श राम और कृष्णादि की कथाओं को भी कवि कल्पना ही समझने लग गये हैं! फिर रामराज्य के विधान का क्या संबंध! इस भ्रम होने का प्रधान हेतु यही है कि उन ऋषि-मुनियों ने जिस दृष्टि से उन ग्रंथों को लिखा था, उस दृष्टि से ग्रन्थ देखना बन्द हो गया। श्री व्यासदेव ने कहा है कि—

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।'

यानी महाभारत, रामायणादि इतिहासों के द्वारा और भागवतादि पुराणों के द्वारा वेदार्थ का विस्तार जान लेना चाहिये। आदि कवि महर्षि वाल्मीकिजी ने भी अपने आदि काव्य रामायण में कहा है कि—

'इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

—वा० रा० १।१।९८

अर्थात् 'जो मनुष्य शुद्धि के साधन, पापों के नष्ट करने वाले अतिपावन और वेद के तुल्य इस राम चरित्र को पढ़ेगा वह सब पापों से छूट जावेगा'। तथा—

सतु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥

—वा० रा० १।४।६

अर्थात् 'पवित्र वाल्मीकि ने उन कुश-लव दोनों भ्राताओं को धारणावती बुद्धि वाले और चारों वेदों में निपुण देख कर वेदार्थ के प्रतिपादन रूप प्रयोजन के लिये उन्हें इस काव्य को ग्रहण करवाया।' स्वयं भगवान् कृष्ण ने भी कहा है कि—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

—गीता १५।१५

अर्थात् 'सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं तथा वेदा का कर्ता और वेदों का जानने वाला मैं ही हूं।' वेद भगवान् कृष्ण ने यह भी कहा है कि—

इस अविनाशी योग को मैंने सूर्य को कहा था और सूर्य ने मनु के प्रति कहा, मनु ने राजा इक्ष्वाकु के प्रति कहा। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुए इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु हे अर्जुन ! वह योग बहुत काल से लोप हो गया था। (गीता ४।१-२)

इस कथन से ज्ञात होता है कि वह अव्यय योग वेद ही था जो गीता के रूप में अवतरित हुआ। वेद और गीता में अनन्यता है, इसी हेतु गीता की इतनी महिमा फैली है हमारे यहाँ केवल भगवान् के अवतार होने से ही उनके वचन प्रमाण नहीं होते किन्तु वेदार्थ प्रकाशक होने से प्रमाण होते हैं। हम गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन हृदय में अंकित कर सकते हैं कि—

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार॥

वेदार्थ प्रकाशक होने से ही भगवद् गीता को आचार्यों ने परस्पर वेदान्तप्रस्थानत्रयी में इसे रक्खा है। परन्तु आचार्यों में झगड़ा है। कोई इससे अद्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत, कोई द्वैताद्वैत और कोई द्वैत सिद्ध करते हैं। कोई गीता का प्रधान विषय ज्ञान मानते हैं, कोई कर्म, कोई भक्ति और कोई योग मानते हैं। स्व० श्रीमधुसूदनजी ओझा ने गीता में राजर्षिविद्या, सिद्धविद्या, राजविद्या और आर्ष विद्याएँ दिखलाई हैं। इन चारों विद्याओं में राजर्षिविद्या और राजविद्या भगवान को प्रिय है। राजर्षिविद्या तो भगवद्विद्या ही कही गयी है। पहले छः अध्यायों में राजर्षिविद्या, सातवें और आठवें अध्यायों में सिद्धविद्या ९ वें अध्याय से १२ वें अध्याय तक राजविद्या और इसके आगे छः अध्यायों में आर्षविद्या कही है। इन चारों विद्याओं के द्वारा गीता का सिद्धान्त बुद्धियोग दिखलाया है। भगवान् को अत्यंत प्रिय जो राजर्षिविद्या है, उसी में इस योग के अनुयायी राजाओं की परंपरा कही है। उसमें इक्ष्वाकुराजर्षि भी हैं, जिनके कुल में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र अवतरित हुए थे। परंपरा से उन्हें यह राजर्षिविद्या भी प्राप्त हुई थी एवं तदनुसार उन्होंने आदर्श राज्य करके दिखाया था, उसे ही हम सुराज्य और स्वराज्य या 'रामराज्य' कहते हैं।

गीता की राजनैतिक दृष्टि से आलोचनात्मक 'गीता का राजकीय तत्वालोचन' नामक पुस्तिका है। वह राजनीति के जानकारों के लिए सहायक हो सकती है।

स्व० 'ओझाजी' और श्री० 'सातवलेकरजी' की गीता-व्याख्याएँ पढ़ कर हम पं० श्री द्वारकाप्रसादजी मिश्र के के कथनानुसार कह सकते हैं कि "ज्यों ज्यों आज का विज्ञान कोरा भौतिक विज्ञान ही न रह कर मनोविज्ञान में परिणत होता जायगा, त्यों-त्यों गीता का ज्ञान फिलासफी मात्र न रह कर प्रयोगात्मक विज्ञान का तथ्य माना जाने लगेगा। वह दिन शायद बहुत दूर नहीं है जब भगवद्गीता धर्म विशेष का ग्रन्थ न रह कर मानव जाति मात्र को जीवन-विज्ञान सिखाने वाला ग्रन्थ माना जाने लगेगा।"

एक विद्वान् 'इमं विवस्वते योगं' की परंपरा दिखलाते हुए वेद के अत्यन्त प्राचीन काल का उल्लेख किया है १ तमोयुग, २ प्राणीयुग, ३ आदियुग, ४ मणिजायुग, ५ स्पर्द्धायुग, ६ देवयुग-आदि इतिहास खंडों में उसे विभक्त किया है। यें भारतीय-इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी विषय हैं। उनका स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है।

१ तमोयुग—

जिस युग के सम्बन्ध में हम कोई विचार नहीं कर सकते वही तमोयुग है। यही युग वेद में असद्युग नाम से संबोधित हुआ है—

१ तम आसीत् तमसा गूहमग्रे

(ऋग्वेद १०।१२९।३)

'आरम्भ में तम तम से ढका हुआ था अर्थात् हमारे लिये सर्वथा अविज्ञेय अतएव तमोमय सृष्टि प्रपंच उस युग में सचमुच तम से ही आवृत था।'

२ असदेवेदमग्र-आसीत् (तै० ब्रा० २।२।५)

'यह सब कुछ प्रपञ्च पहले असत् (अविज्ञात) था।'

३ इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीत्।

(तै. ब्रा. २।२।९)

'आज हम जो कुछ देख रहे हैं, वह पहले कुछ न था।'

४ देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत।

(ऋ० १०।७२१)

'देवों के पूर्वयुग में असत् से ही सत् का विकास हुआ'

५ आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः।
(मनु० १। ५)

'यह व्यक्त प्रपञ्च किसी समय तमोभूत, अविज्ञात, लक्ष्यशून्य, तर्कशून्य अङ्गुलिनिर्देशरहित एवं सोता हुआसा था।'

६ असाम्प्रतमविज्ञातं ब्रह्माग्रे समवतत।
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ॥
—वायु पु० ११२२

'ब्रह्म नाम का पदार्थ पहले वर्तमान स्थिति से भिन्न था, अविज्ञेय था। उसी ब्रह्मात्मा से यह कुल व्याप्त था। ब्रह्ममय यह प्रपञ्च उस समय तमोमय था।'

७ महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तामोमयम्।
प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलत्तणम्।
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थाणुचरिष्णुच ॥
—मत्स्य पु० ३। २५

'महा प्रलय काल के अन्त में यह सब कुछ स्थावरजंगम प्रपञ्च तमोमय, प्रसुप्त, तर्कशून्य, अज्ञात, अलक्ष्य अविज्ञेय एवं ज्ञान सीमा से बहिर्भूत था।' "इदं वा अग्रे नैव मिकञ्चनासीत्, न द्यौरासीन्न पृथिवी, नान्तरित्तम्।"
(तै० ब्रा० २।२।६)

इत्यादि वचन भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि कर रहे हैं। संसार की यह अज्ञात दशा कब रही होगी यह निर्णय करना कठिन है।

प्राणीयुग—

आगे जीव सर्ग का विकास हुआ। किसी अचिन्त्यशक्ति की मानस प्रेरणा से दाम्पत्य भाव द्वारा जड़रूप धातु एवं मूलजीव नाम के तीन सर्गों का विकास हुआ। इस युग के सभ्य प्राणी पशु ही माने गये। क्योंकि इस युग के मनुष्यों के गुरु ये पशु ही थे। इसी दृष्टि से इस युग को हम पशु युग भी कह सकते हैं। तात्कालीन मनुष्यों ने इन पशुधर्मों को ही अपनी जीवन यात्रा का साधन बनाया। गोरेला, शिम्पाञ्जी, वनमानुष, सिंह, व्याघ्र, वराह आदि हिंसक पशुओं से परिपूर्ण, महाभयावह दुस्तर उन अफ्रिका के जंगलों में रहने वाले, उक्तलक्ष्य सर्वथा नग्न, पूर्ण असभ्य एवं नरमांसभक्षी जंगली मनुष्य [illegible] रहे हैं।

आदियुग—

प्रकृतिदेवी की अनुकम्पा से आगे जाकर मनुष्य की बुद्धि में थोड़ा सा विकास हुआ। ज्यों-ज्यों इनकी बुद्धि विकसित होने लगी त्यों-त्यों इन्होंने अपने जीवन में अधिक सुधार करना आरम्भ किया। हजारों वर्षों तक इसी युग का प्राधान्य रहा। इस युग के स्मारक भी आज हमें जंगल प्रदेशों में प्रचुरमात्रा में उपलब्ध होते हैं।

मणिजायुग—

इस युग में मानव सभ्यता का एक प्रकार से विकास हुआ। ग्रामनिर्माण, कृषिकर्म, कपास-रेशम आदि के वस्त्रों का निर्माण,, पञ्चायती व्यवस्था, लोकसत्तात्मक शासन (प्रजातंत्र), वापी-कूप-तडागादि का निर्माण, उद्यान-उपवन आदि की व्यवस्था, गान्धर्व-विवाह-पद्धति, ज्ञान क्रिया अर्थ व शिल्प के आधार पर मानव समाज का चार भागों में विभाजन, विविध वैज्ञानिक आविष्कार आदि इस युग की प्रधान २ विशेषताएं हैं।

तत्कालीन मानव समाज की वे चारों श्रेणियां उस युग में क्रमशः साध्य, महाराजिक, आभास्वर और तुषित इन चार नामों से प्रसिद्ध थीं। देवयुग में आविष्कृत होने वाली वर्णव्यवस्था का मूल ये ही चार श्रेणियां थीं। इन चारों जातियों का नेतृत्व साध्यजाति के ही हाथों में था। अपनी अपूर्व प्रतिभा के बल से इसी साध्य जाति ने प्राकृतिक तत्वों की परीक्षा द्वारा सर्वप्रथम यज्ञविद्या (कमेस्ट्री) का आविष्कार किया था। इसी के आधार पर आगे चलकर (देवयुग में) भौम देवव्यवस्था के प्रवर्तक ब्रह्मा के प्रादेश से उनके ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा ने ब्रह्म को मूल मानते हुए त्रिलोकी में यज्ञविद्या का प्रसार किया था। साध्य जाति का ईश्वर सत्ता पर विश्वास न था। यह केवल प्रकृति सिद्ध क्षणिक विज्ञान के उपासक थे। जो स्थान आज क्षणिक विज्ञानवादी नास्तिकों को मिल रहा है, वही स्थान साध्य का था वह मणिजायुग साध्ययुग नाम से प्रसिद्ध हुआ। मणिजा उस समय में मानव समाज की सामान्य संज्ञा थी। यज्ञविद्या में निष्णात, यज्ञ से ही यज्ञ कर्मों का दन करने वाली इसी साध्य जाति का स्वरूप बतलाती [illegible] करती है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वेसाध्याःसंतिदेवाः।

देव युग में यज्ञ से ईश्वर का यजन किया जाता था। परन्तु साध्य लोग यज्ञ से यज्ञ का ही यजन करते थे। दूसरे शब्दों में वे विज्ञान से विज्ञान का ही प्रसार करते थे।

इनकी शासन प्रणाली में प्रजातंत्रात्मक गणतंत्र की ही प्रधानता थी। इस युग का प्रभुत्व पूर्व के युगों की अपेक्षा अधिक समय तक रहा।

बतलाया जा चुका है कि सभ्यता, संस्कृति एवं विज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए भी साध्य एकेश्वरवाद पर या ईश्वरसत्ता पर विश्वास नहीं रखते थे। इस अनीश्वरवाद प्रधान क्षणिक विज्ञानवाद की प्रबलता का आगे जाकर परिणाम यह हुआ कि **इनका मतवाद इन्हीं के पारस्परिक विरोध का कारण बन गया**। गणतन्त्रात्मिका शासन-प्रणाली भी इस विरोध की उत्तेजिका बनी, फलतः सृष्टि के सम्बन्ध में १० अवान्तरमत प्रचलित हो गये। जो कलह आज सम्प्रदायों में देखा जाता है, वही कलह साध्ययुग में व्याप्त हो गया था। साध्यकालीन वे ही १० मत ऋक्-संहिता में १ सद्वाद, २ असद्वाद, ३ सदसद्वाद, ४ व्योमवाद, ५ अपरवाद, ६ रजोवाद, ७ अम्भोवाद, ८ आवरणवाद, ९ अहोरात्रवाद और १० संशयवाद इन नामों से प्रसिद्ध है। सत्यसिद्धांत सदा एक होता है। नित्यविज्ञानमूलक सत्यसिद्धांत में विरोध का अवसर नहीं है। इधर साध्य १० मत मानते थे। परिणाम इसका यह हुआ कि इन विभिन्न मतवादों की कृपा से तत्कालीन मानव समाज में संघर्ष उत्पन्न हो गया। इस **संघर्ष का मूल कारण अनीश्वर-वादमूलक प्रजातन्त्र ही था**। इस स्पर्धायुग को हम **संघर्ष-युग, विरोधयुग, अशान्तयुग, क्रांतियुग एवं विप्लवयुग** इत्यादि, नामों से भी संबोधित कर सकते हैं। जैसा संकट अर्थलोलुप विज्ञानमदमत्त राष्ट्रों की कृपा से आज उपस्थित हो रहा है।

देवयुग--

शांति होती है क्षोभ उत्पन्न करने के लिये, क्षोभ होता होता है शांति सुधार के लिये। शांति क्रांति की जननी है, क्रांति शांति की जननी है। संयोग वियोग जनक है एवं वियोग संयोग का जनक है। इन प्राकृतिक सिद्धांतों के अनुसार साध्यों के अविवेक से फैले हुए मतवाद ने क्षोभ उत्पन्न किया। इस क्षोभ ने महाशांतिपरायण शिल्पोपजीवी तुषितों में भी संघर्ष उत्पन्न कर दिया। इसी तुषित जाति ने एक ऐसे महापुरुष को जन्म दिया जो, कि शांति का दूत बनकर आगे जाकर विश्वशांति का कारण बना।

उस महा पुरुष ने सबसे पहले प्रचलित विभिन्न दसवादों पर कुठाराघात करते हुए एकत्वमूलक ब्रह्मवाद की स्थापना की। इसी महापुरुष की कृपा से सबसे पहले **एकेश्वरवाद मूलक राजतन्त्र की स्थापना हुई**। उस विभूति ने यह घोषणा की कि यदि इन दसों मतों का कोई एक मूल-आधार नहीं माना जाता है तो ये सभी मत सर्वथा मिथ्या हैं। ईश्वरसत्ता के बिना इनकी प्रतिष्ठा किसी भी अवस्था में अक्षुण्ण नहीं रह सकती। इस मन्तव्य के आधार पर इसने दसों वादों की प्रतिद्वन्द्विता में सिद्धान्तवाद की स्थापना की। महा पुरुष के इसी प्राथमिक सुधार को लक्ष्य में रख कर मन्त्रश्रुति कहती है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्
अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥ २ ॥
तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे—
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वथा इदम्।
तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

(ऋक् सं० १०।१२९।१-२-३

इसी महापुरुष ने सर्वप्रथम ब्रह्मवाद की स्थापना की थी, अतएव तत्कालीन नियम के अनुसार यह " ब्रह्मा " की उपाधि से विभूषित किया गया। ये ही ब्रह्मा देवयुग आदि के प्रवर्तक माने गये जैसा कि निम्न सूक्ति से स्पष्ट है—

" ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वकर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ "

(मुँ० १।१।१)

उस युग में यह नियम था कि जो विद्वान् जिस तत्व की

सर्व प्रथम परीक्षा करता था, उसे उसी नाम से विभूषित किया जाता था। वसिष्ठ, अगस्त्य, मत्स्य , अत्रि, भृगु, अङ्गिरा आदि जितने नाम हैं वस्तुतः ये सब तत्वों के नाम हैं।

अवतार विज्ञान के अनुसार ब्रह्मा का जन्म अधिकारिक था—प्रकृति सिद्ध था, अतएव ये आदिब्रह्मा "स्वयम्भू" नाम से प्रसिद्ध हुए। एकेश्वरवाद की स्थापना के अनन्तर ब्रह्मा के प्रकृतिसिद्ध नित्य ब्रह्मा के अनुसार यहाँ भी चार प्रकार की सृष्टि संस्थाएँ प्रतिष्ठित हुई। **नित्यसिद्ध अपौरुषेय वेदतत्व के आधार पर वेदग्रन्थ प्रकट हुए, यही पहली वेदसृष्टि** कहलाई। नित्यसिद्ध त्रैलोक्य के अनुसार इसी पृथिवी पर लोकव्यवस्था की। पृथिवी को पद्म मानकर इसे आठ भागों में विभक्त किया गया। यही पार्थिवविभाग पुराणों में **"पाद्मभुवनकोश"** नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस विभाग में **देवत्रिलोकी** एवं आसुरत्रिलोकी नाम की दो संस्थाएँ बनाई गईं; यही दूसरी **लोकसृष्टि** कहलाई। इसी प्रकार पञ्चक्षिति, पञ्चजन, पञ्चचर्षणी आदि रूप से **प्रजासृष्टि** की व्यवस्था की। **सर्वान्त में प्रकृतिसिद्ध नित्य वर्णधर्म के अनुसार चातुर्वर्ण्य धर्म को प्रकट किया गया।** इस प्रकार जैसे प्रकृतिसिद्ध नित्य ब्रह्मा के १ प्राणमुख से अपौरुषेय १ वेदसृष्टि, २ आपोमुख से २ लोकसृष्टि, ३ वाङ्मुख से ३ प्रजासृष्टि और ४ अन्नगर्भित अन्नादमुख से ४ धर्मसृष्टि हुई। उसी नियम के अनुसार **पुष्कर (बुखारा) में उत्पन्न** होने वाले इस स्वयम्भू ब्रह्मा ने भी १ मन्त्रात्मक वेदसृष्टि, २ देवत्रिलोकी—आसुर त्रिलोकी रूपा लोकसृष्टि ३ प्रजा विभाग रूपा प्रजासृष्टि एवं ४ प्रजा को प्रकृति के नियमानुसार चलाने के लिये धर्मसृष्टि की।

प्रकृतिवत् अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि भौम देवताओं का विकास किया गया। हैहय, कालकेय, दौहृद मौर्य, वृत्र, नमुचि, त्वष्टा, वृषाकपि आदि असुरों की व्यवस्था हुई। **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र** इन चार वर्णों का एवं **अन्त्यज, अन्त्यावसायी, दस्यु और म्लेच्छ** इन चार अवरवर्णों का विभाग किया। चातुर्वर्ण्य के साथ-साथ व्यक्ति का उपकार करने वाली **ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास** इन चार आश्रमों की व्यवस्था की गई।

६० अंशात्मक भारतवर्ष को देव त्रिलोकी का मनुष्य लोक माना गया। जिस भारतवर्ष की मध्यरेखा उज्जैन है। पूर्वीसीमा चीन समुद्र (यलोसी-पीत समुद्र) है, पश्चिम सीमा महीसागर (मेडिटेरियन्सी) है, दक्षिण सीमा निरक्षवृत्त स्थानीय लङ्का है और उत्तरसीमा शर्यणावत (शिवालय) पर्वत है. इस महाविशाल भारतवर्ष के सम्राट् वैवस्वतमनु बनाये गये। मनु के सम्बन्ध से ही यह लोक मनुष्यलोक एवं यहाँ की प्रजा मानव नाम से प्रसिद्ध हुई। अग्नि देवता यहाँ के अतिष्ठावा (अधिष्ठाता) शवसोनपात् (वायसराय) बनाये गये। मनुष्यलोक का भरण-पोषण करने के कारण ही अग्नि **"भारत"** कहलाई। जैसा कि:—

"अग्ने महांअसि ब्राह्मण भारतेति।" (यजुःसंहिता)

इत्यादि यजुर्मन्त्र से सिद्ध है। भारत-अग्निद्वारा शासित होने के ही कारण **भारतवर्ष** कहलाया था, और यहाँ की प्रजा भारतीय कहलाई।

शर्यणावत पर्वत को आरम्भ कर हिमालय तक का सारा प्रान्त भौमत्रिलोकीका अन्तरिक्ष लोक माना गया। वायु यहाँ के शवसोपानत् (वायसराय) बनाये गये। यहाँ की प्रजा यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध. किन्नर आदि विभागों में विभक्त की गई। यही आन्तरिक्ष प्रजा तिर्यग्योनि कहलाई।

हिमालय प्रान्त एवं प्राग्मेरु (पामीर) यहाँ का स्वर्ग लोक हुआ। इन्द्र यहाँ के शवसोनपात् (वायसराय) बनाये गये। यहाँ की प्रजा देवता कहलाई। ब्रह्ममूलक राजतन्त्र को **राजा, सम्राट्, स्वाराट्** एवं **विराट्** भेद से चार श्रेणियों में विभक्त किया गया। प्रजातन्त्र का समूल विनाश किया गया।

इसी प्रकार **अफ्रिका, अमेरिका और योरोप** नाम के तीन महाप्रान्त असुरों को दिये गये। यही असुर त्रिलोकी कहलाई।

अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को त्रयी विद्या का पहला शिष्य बनाया। अथर्वा ने सरस्वती नदी के समीप सर्व प्रथम यज्ञ की स्थापना की।

सबसे बड़ी विशेषता उस युग की यह थी कि भारतीय प्रजा का कर्म देवेन्द्र की ओर से निर्धारित होता था। इसके

प्रतिफल में भारतीय प्रजा की भोजन-आच्छादन व्यवस्था, चिकित्सा आदि आवश्यकताओं का भार राजतन्त्र पर था। अश्विनीकुमार यहाँ के प्रधान चिकित्सक थे। वामदेव अन्न (गल्ले) के अध्यक्ष थे। वसोर्धारा में तीन वर्ष के लिये तीनों लोकों में कश्यप, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, भरद्वाज, अत्रि आदि प्रमुख कुलपतियों की अध्यक्षता में ब्रह्मपर्षदें एवं महाशालाएँ सुव्यवस्थित थीं।

स्वयम्भू मनु के विवस्वान् नाम के पुत्र हुए। विवस्वान् के पुत्र एवं १ कन्या इला नाम से प्रसिद्ध हुई। ये ही दोनों क्रमशः सूर्यवंश एवं चन्द्रवंश के मूलप्रवर्तक हुए। इक्ष्वाकु ने अयोध्या नाम की राजधानी स्थापित की।

महाभारत युद्ध में सूर्यवंशीयों की ओर से अयोध्या के नरेश महाराज सुमित्र शामिल हुए थे। सुमित्रराज विवस्वान १२८ वीं पीढ़ी में माने गये हैं। **भगवान् रामचन्द्र विवस्वान्** से ६३ वी पीढ़ी के भारतीय सम्राट् थे।

(पृष्ठ ३३ का शेषांश)

योग्य है। "अत्र वराहसंहिता वचनं—सलिलमय शर्शिनी मंदिरास्यां—तर"—इति; यथा दर्पण—उदर प्रवेशिता कौशलेन ग्रहाभ्यांतरम् नीताश्च=रवि—दीधीतय स्तद—गतम् अन्धकारम् नाशयति—तथा स्वतः सलिलमये चन्द्रे ताः प्रतिफलिता नैशम् तमो घ्नन्तीति। अर्थः। खर दीधीतयो मूर्छित=स्तमो नैशम् चपयन्ति दर्पण—निहतेत्र किंतु दूसरा भाव कि इन्द्रधनुष सूर्य किरणों से उद्भूत होकर बादलों पर छा जाता है, संस्कृत कवियों में अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ, यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिकों की दृष्टि से उसका महत्व छिपा नहीं है।

टेन्डर नोटिस

इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन, रतलाम एवं देवास के नगरों में श्रम जीवियों के लिये भवन निर्माण हेतु कार्य जिनके लिये निरुपत धन राशी के अङ्क क्रमानुसार लगभग १४॥, ९॥, ६, व २॥, २॥, २॥ लाख हैं टेन्डर दिनाङ्क २२ जनवरी १९५४ को ३ बजे दिन एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर इन्चार्ज हाउसिंग चिमन बाग इन्दौर के कार्यालय में बुलाना निश्चित हुआ है टेन्डर्स संबंधी सविस्तार नोटिस व अन्य माहिती मध्य भारत शासन गजट या उक्त लिखित एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर सा० के कार्यालय में प्राप्त की जा सकती है।

सेनेटरी इन्जीनियर
पब्लिक हेल्थ इन्जीनियरिंग विभाग
मध्यभारत शासन ग्वालियर

भाड़े का वर

श्री 'मधुबन'

राजा भोज की धार के नगर सेठ के पुत्र की बारात उज्जैन जारही थी। तब न तो रेल गाड़ियां थीं और न मोटर कारें किंतु बैल गाड़ियों में ही बारातियों के लिए अच्छा प्रबन्ध किया गया था। उनकी एक लम्बी कतार एक तार चली जा रही थी। जब बैल दौड़ने लगते थे तो उनके गले में बँधी घंटियों की टुन-टुन अधिक तीव्र होकर एक अनुपम संगीत की सृष्टि करती थी। बरातियों में से कोई अपने अनुभव की विचित्र घटनाएँ सुनाकर दूसरों को हैरत में डाल रहे थे, कहीं पहेलियां बुझाई जा रही थीं, कहीं कोई मण्डली शतरंज और चौपड में डूबी हुई थी और कहीं कोई हँसौड़ अपने साथियों को हँसा-हँसा कर लोट-पोट कर रहा था। कोई गायन-वादन में तल्लीन विचित्र राग-रागनियों में उलझे थे और कोई जो कभी एक बार भी उज्जैन के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर चुका था वहां की विशेषताओं का उत्साह-पूर्वक वर्णन कर रहा था तथा कहीं-कहीं उज्जैन के अमर सम्राट विक्रम की दानवीरता, न्यायपटुता तथा पराक्रम की किम्वदंतियां दुहराई जा रही थीं ?

सब और प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था। आखिर नगर सेठ के पुत्र की बारात थी। बारात की सुव्यवस्था, नौकर चाकर तथा बाराती सब उसके पूर्णतया अनुरूप थे किंतु... एक अभाव सबको बुरी तरह खटक रहा था। जिसके पीछे यह सब हो रहा था वह—वह अयोग्य था। वर बोलते समय तुतलाता था, दिमाग के कुछ स्क्रू ढीले थे, चेहरे पर ओज नहीं था क्योंकि बेचारा कभी शीतला की कुदृष्टि से चेहरे की सुन्दरता के साथ ही एक आंख भी खो चुका था। फिर भी वह किसी ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे टटपूंजे का बेटा तो था नहीं। उसका बाप नगर सेठ था जिसका व्यापार दूर—दूर देश में होता था। और विवाह के लिए वर की यही एक योग्यता क्या कम थी। फिर भी आंखों देखे कौन मक्खी निगलता है। कौन धन के प्राचुर्य के बदले में अपनी बेटी डुबोकर जीवनभर उसके अभिशाप सहने की हिम्मत करता, किंतु इस दुनिया में सभी कुछ संभव हैं, असम्भव कुछ नहीं। और फिर जहां प्रयत्न की प्रबलता होती है वहां कभी किसी भी अंश में सफलता मिलती ही है। यहां भी ऐसा ही हुआ। उज्जैन के एक प्रसिद्ध व्यापारी के यहां बात पक्की होगई किंतु लडके की विशेषताओं को गुप्त रखकर। एक बार बात तय होने पर कौन भला आदमी बदलता है और फिर उसमें उसकी स्वयं की भी तो बदनामी का डर रहता है।

पर···अधिकतर बारातियों को भी वर की अयोग्यता खल रही थीं। वे सोच रहे थे कि उज्जैन की ऐतिहासिक नगरी में जब बारात धूमधाम से प्रवेश करेगी तो लोग प्रशंसा करते नहीं थकेंगे। आखिर धार की बारात है राजा भोज की धार की। पर...जब वर पर दृष्टि जायगी तो क्या सब अच्छाई पर पाला नहीं पड जायगा। वे यही तो कहने लगेंगे कि सब अच्छा है पर यदि वर ही अच्छा नहीं तो, इन सब से क्या ? वे बातें करेगें कि वर बारात के अनुरूप नहीं है। वह उज्जैन की लडकी से विवाह करने योग्य नहीं और फिर इतना होते हुए भी यदि किसी ने वर से बात करने की धृष्टता की और उसकी तोतली बोली से कुछ उटपटांग निकल गया तो क्या सब गुड-गोबर नहीं हो जायगा। शायद लोगों की ओर से कुछ विरोध भी हो, किंतु, किया भी तो क्या जा सकता है! हां यदि एक मात्र उपाय हो सकता है तो वह है वर का परिवर्तन। किंतु...यह असम्भव था। नगर सेठ ने सब विवाह का व्यय किया था और उसके पुत्र के विवाह का प्रश्न था पर...

जब बारात के बाजे वालों की गाड़ी में से प्रभात की पुरवैयां में प्रभाती की तान बहने लगी तो गाडियां रुक गईं। बड़े बरगद की छाया में लोग स्नान-ध्यान से निवृत्त हो जाय। इसके पश्चात् अल्पाहार और फिर प्रस्थान।

गाड़ियां रुक गईं। प्रभात का पवन सबको मादक बना रहा था। प्रभाती का स्वर कानों में अमृत उंडेल रहा था और प्राची में—रक्ताभ साड़ी से शृंगार किए अतिरंजित हो उषा सुन्दरी विश्व को जागरण का सन्देश देरही थी। पंछी रात-भर के विश्राम से ताजा होकर भगवान भास्कर की वन्दना में एक स्वर से जै—जैवन्ती की तान छेड़ रहे थे।

बाराती दैनिक कार्यों से निवृत्त हुए। स्नान-ध्यान

पश्चात् वेश-भूषा कों भी संवारा और पुनः प्रस्थान की तैयारियां होने लगी। बस दोपहर तक उज्जैन पहुंच जाएँगे। सब गाड़ियों में बैठने लगे और एक--एक करके गाडियां रास्ते पर लगने लगी। पर कुछ भले लोगों का ध्यान उधर भी गया। अरे! यह एक साथ का व्यक्ति तो छूटा ही जाता है। यह कौन भगवत् चिंतन में लीन अबतक चबूतरे पर बैठा है! आखिर उसे भी तो निवृत्त हो लेने दो।

कुछ ही देर पश्चात् वह व्यक्ति उठा और अपना झोला सम्भालकर चलने लगा। तो शायद वह बारात का आदमी नहीं था। लोगों को अपनी त्रुटि प्रतीत हुई। किसी मनचले ने पूछ ही तो लिया-"क्यों भाई! कहां जारहे हो?"

"उज्जैन"

"कहां से आये थे?"

"………से" उसने अपने गांव का नाम बताया।

"वहां क्या करते हो?" फिर प्रश्न हुआ।

"मैं एक वणिक की विधवा का पुत्र हूँ। नित्य प्रातः धन्धे की तलाश में निकलता हूं और नित्य सायंकाल कुछ कमाकर गांव लौट जाता हूँ।" उसने उत्तर दिया।

"अच्छा!" कहकर पूछने वाला चुप रह गया। गाड़ियां आगे बढ गई। किन्तु, वह विधवा का वणिकपुत्र उसकी सौम्य बातचीत, सुन्दर गौरवर्ण शरीर, गोल भरा हुआ चेहरा आदि वह व्यक्ति नहीं भूल सका। कुछ देर बाद फिर वर पर चर्चा चली। उज्जैन समीप आती ही जारही थी और उन लोगों के दिल बैठते जा रहे थे।

"तो क्यों न उसी वणिक पुत्र को कुछ लालच देकर तीन-चार दिन के लिए वर बना दिया जाय। सब ऐब तो छिप जायेगी। दिखने में भी अच्छा है और शृंगार तथा उचित वेषभूषा तो उसे और भी आकर्षक बना देगी।" उसी व्यक्ति ने झिझकते हुए प्रस्ताव किया।

कुछ विरोध हुआ पर यह सोचकर कि तीन दिन ही की तो बात है……और वधु तो अपने साथ चलेगी ही। इस व्यक्ति को तीन दिन का भाडा देकर बिदा कर देंगे। सब निर्णय होगया। ठीक तो है वर भी बारात के अनुरूप हो जायगा और नीचा देखने की नौबत ही नहीं आने पाएगी। विवाह के बाद बिदा होने के बाद कौन पूछता है।

वह बुलाया गया। वह कुछ नहीं समझा, पर उसे कहीं तो भी काम तो ढूंढना ही था और फिर ये लोग तो उसे इतना देने को तैयार थे जितना वह दो महीनों में भी नहीं कमा सकता था। वह राजी हो गया। बात गुप्त रखी गई और अधिक नहीं फैलने दी गई।

+ + +

विवाह सम्पन्न हुआ। दो दिन तक पूरे नगर को भोज दिया गया। बारातियों ने खूब मौज लूटी पर सब अपने राग-रंग में बेचारे भाड़े के वर को तो जैसे भूल ही गए थे। उसे किसी ने दो दिन से खाने तक की नहीं पूछा था। वह बेचारा यह सब क्या हो रहा है तथा इसमें कितना अनुचित था और कितना उचित इस सब पर विचार कर ही रहा था कि उसके लिए बुलौवा आ गया। बारात के एक प्रमुख व्यक्ति ने उसे एक ओर लेजाकर समझाया कि अभी उसे वधु के यहां जाना होगा और रात भी वहीं व्यतीत करना होगी किंतु साथ ही उसे कड़ी चेतावनी दे दी गई थी कि वह वधु से कोई बात न करे। उसे केवल विवाह के लिए अस्थायी रूप से लाया गया था। अब वधु तो उनकी हो ही चुकी है, क्योंकि सब व्यय वर पक्ष की ओर से उनका हुआ था किन्तु, वहां के रिवाज के अनुसार वर को तो भेजना ही पड़ेगा और वे नहीं चाहते कि कोई भी बात प्रकट हो जाय।

उसे जाना पडा। एक सुन्दर सजे हुए कमरे में उसे पहुंचाया गया जहां नववधु गुडिया-सी सजी सिमटी एक ओर बैठी थी। वह उससे कुछ भी नहीं बोला और चुपचाप पलंग पर लेट गया। नींद तो जैसे उससे रूठी हुई थी। और फिर गत दो दिन से तो रोटी का एक कौर भी उसके गले के नीचे नहीं उतरा था। सचमुच भूख प्राणी की सबसे बडी शत्रु है जो कभी नहीं हारती और उसे हराने में ही उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। भूखे रहकर न तो जीवित रहा जा सकता है और न कुछ और ही किया जा सकता है। पहले भूख की तृप्ति कीजिए तभी आप इहलोक और परलोक के लिए कुछ करने में समर्थ हो सकते हैं क्योंकि लोक और परलोक सुधारने का माध्यम देह है और वह भूख की तृप्ति के साथ चेतन रहती है।

भाड़े का वर

श्री 'मधुबन'

राजा भोज की धार के नगर सेठ के पुत्र की बारात उज्जैन जारही थी। तब न तो रेल गाड़ियां थीं और न मोटर कारें किंतु बैल गाड़ियों में ही बारातियों के लिए अच्छा प्रबन्ध किया गया था। उनकी एक लम्बी कतार एक तार चली जा रही थी। जब बैल दौड़ने लगते थे तो उनके गले में बँधी घंटियों की टुन-टुन अधिक तीव्र होकर एक अनुपम संगीत की सृष्टि करती थी। बरातियों में से कोई अपने अनुभव की विचित्र घटनाएँ सुनाकर दूसरों को हैरत में डाल रहे थे, कहीं पहेलियां बुझाई जा रही थीं, कहीं कोई मण्डली शतरंज और चौपड में डूबी हुई थी और कहीं कोई हँसौड़ अपने साथियों को हँसा-हँसा कर लोट-पोट कर रहा था। कोई गायन-बादन में तल्लीन विचित्र राग-रागनियों में उलझे थे और कोई जो कभी एक बार भी उज्जैन के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर चुका था वहां की विशेषताओं का उत्साह-पूर्वक वर्णन कर रहा था तथा कहीं-कहीं उज्जैन के अमर सम्राट विक्रम की दानवीरता, न्यायपटुता तथा पराक्रम की किम्वदंतियां दुहराई जा रही थीं?

सब और प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था। आखिर नगर सेठ के पुत्र की बारात थी। बारात की सुव्यवस्था, नौकर चाकर तथा बाराती सब उसके पूर्णतया अनुरूप थे किंतु... एक अभाव सबको बुरी तरह खटक रहा था। जिसके पीछे यह सब हो रहा था वह—वह अयोग्य था। वर बोलते समय तुतलाता था, दिमाग के कुछ स्क्रू ढीले थे, चेहरे पर ओज नहीं था क्योंकि बेचारा कभी शीतला की कुदृष्टि से चेहरे की सुन्दरता के साथ ही एक आंख भी खो चुका था। फिर भी वह किसी ऐरे-गेरे नत्थू-खैरे टटपूंजे का बेटा तो था नहीं। उसका बाप नगर सेठ था जिसका व्यापार दूर—दूर देश में होता था। और विवाह के लिए वर की यही एक योग्यता क्या कम थी। फिर भी आंखों देखे कौन मक्खी निगलता है। कौन धन के प्राचुर्य के बदले में अपनी बेटी डुबोकर जीवनभर उसके अभिशाप सहने की हिम्मत करता, किंतु इस दुनिया में सभी कुछ संभव हैं, असम्भव कुछ नहीं। और फिर जहां प्रयत्न की प्रबलता होती है वहां कभी किसी भी अंश में सफलता मिलती ही है। यहां भी ऐसा ही हुआ। उज्जैन के एक प्रसिद्ध व्यापारी के यहां बात पक्की होगई किंतु लड़के की विशेषताओं को गुप्त रखकर। एक बार बात तय होने पर कौन भला आदमी बदलता है और फिर उसमें उसकी स्वयं की भी तो बदनामी का डर रहता है।

पर...अधिकतर बारातियों को भी वर की अयोग्यता खल रही थीं। वे सोच रहे थे कि उज्जैन की ऐतिहासिक नगरी में जब बारात धूमधाम से प्रवेश करेगी तो लोग प्रशंसा करते नहीं थकेंगे। आखिर धार की बारात है राजा भोज की धार की। पर...जब वर पर दृष्टि जायगी तो क्या सब अच्छाई पर पाला नहीं पड जायगा। वे यही तो कहने लगेंगे कि सब अच्छा है पर यदि वर ही अच्छा नहीं तो, इन सब से क्या? वे बातें करेगें कि वर बारात के अनुरूप नहीं है। वह उज्जैन की लडकी से विवाह करने योग्य नहीं और फिर इतना होते हुए भी यदि किसी ने वर से बात करने की धृष्टता की और उसकी तोतली बोली से कुछ उटपटांग निकल गया तो क्या सब गुड-गोबर नहीं हो जायगा। शायद लोगों की ओर से कुछ विरोध भी हो, किंतु, किया भी तो क्या जा सकता है! हां यदि एक मात्र उपाय हो सकता है तो वह है वर का परिवर्तन। किंतु...यह असम्भव था। नगर सेठ ने सब विवाह का व्यय किया था और उसके पुत्र के विवाह का प्रश्न था पर...

जब बारात के बाजे वालों की गाड़ी में से प्रभात की पुरवैयां में प्रभाती की तान बहने लगी तो गाडियां रुक गई। बड़े बरगद की छाया में लोग स्नान-ध्यान से निवृत्त हो जाय। इसके पश्चात् अल्पाहार और फिर प्रस्थान।

गाड़ियां रुक गईं। प्रभात का पवन सबको मादक बना रहा था। प्रभाती का स्वर कानों में अमृत उंडेल रहा था और प्राची में—रक्ताभ साड़ी से शृंगार किए अतिरंजित है उषा सुन्दरी विश्व को जागरण का सन्देश देरही थी। रात-भर के विश्राम से ताजा होकर भगवान भास्कर वन्दना में एक स्वर से जै—जैवन्ती की तान छेड़ रहे थे।

बाराती दैनिक कार्यों से निवृत्त हुए। स्नान-ध्यान

पश्चात् वेश-भूषा को भी संवारा और पुनः प्रस्थान की तैयारियां होने लगी। बस दोपहर तक उज्जैन पहुंच जाएँगे। सब गाड़ियों में बैठने लगे और एक--एक करके गाड़ियां रास्ते पर लगने लगी। पर कुछ भले लोगों का ध्यान उधर भी गया। अरे! यह एक साथ का व्यक्ति तो छूटा ही जाता है। यह कौन भगवत् चिंतन में लीन अबतक चबूतरे पर बैठा है! आखिर उसे भी तो निवृत्त हो लेने दो।

कुछ ही देर पश्चात् वह व्यक्ति उठा और अपना झोला सम्भालकर चलने लगा। तो शायद वह बारात का आदमी नहीं था। लोगों को अपनी त्रुटि प्रतीत हुई। किसी मनचले ने पूछ ही तो लिया-"क्यों भाई! कहां जारहे हो?"

" उज्जैन "

"कहां से आये थे?"

" ....से" उसने अपने गांव का नाम बताया।

"वहां क्या करते हो?" फिर प्रश्न हुआ।

"मैं एक वणिक की विधवा का पुत्र हूँ। नित्य प्रातः धन्धे की तलाश में निकलता हूं और नित्य सायंकाल कुछ कमाकर गांव लौट जाता हूँ।" उसने उत्तर दिया।

"अच्छा!" कहकर पूछने वाला चुप रह गया। गाड़ियां आगे बढ गई। किन्तु, वह विधवा का वणिकपुत्र उसकी सौम्य बातचीत, सुन्दर गौरवर्ण शरीर, गोल भरा हुआ चेहरा आदि वह व्यक्ति नहीं भूल सका। कुछ देर बाद फिर वर पर चर्चा चली। उज्जैन समीप आती ही जारही थी और उन लोगों के दिल बैठते जा रहे थे।

"तो क्यों न उसी वणिक पुत्र को कुछ लालच देकर तीन-चार दिन के लिए वर बना दिया जाय। सब ऐब तो छिप जायेगी। दिखने में भी अच्छा है और श्रृंगार तथा उचित वेषभूषा तो उसे और भी आकर्षक बना देगी।" उसी व्यक्ति ने झिझकते हुए प्रस्ताव किया।

कुछ विरोध हुआ पर यह सोचकर कि तीन दिन ही की तो बात है......और वधु तो अपने साथ चलेगी ही। इस व्यक्ति को तीन दिन का भाडा देकर बिदा कर देंगे। सब निर्णय होगया। ठीक तो है वर भी बारात के अनुरूप हो जायगा और नीचा देखने की नौबत ही नहीं आने पाएगी। विवाह के बाद विदा होने के बाद कौन पूछता है।

वह बुलाया गया। वह कुछ नहीं समझा, पर उसे कहीं तो भी काम तो ढूंढना ही था और फिर ये लोग तो उसे इतना देने को तैयार थे जितना वह दो महीनों में भी नहीं कमा सकता था। वह राजी हो गया। बात गुप्त रखी गई और अधिक नहीं फैलने दी गई।

+ + +

विवाह सम्पन्न हुआ। दो दिन तक पूरे नगर को भोज दिया गया। बारातियों ने खूब मौज लूटी पर सब अपने राग-रंग में बेचारे भाड़े के वर को तो जैसे भूल ही गए थे। उसे किसी ने दो दिन से खाने तक को नहीं पूछा था। वह बेचारा यह सब क्या हो रहा है तथा इसमें कितना अनुचित था और कितना उचित इस सब पर विचार कर ही रहा था कि उसके लिए बुलौवा आ गया। बारात के एक प्रमुख व्यक्ति ने उसे एक ओर लेजाकर समझाया कि अभी उसे वधु के यहां जाना होगा और रात भी वहीं व्यतीत करना होगी किंतु साथ ही उसे कड़ी चेतावनी दे दी गई थी कि वह वधु से कोई बात न करे। उसे केवल विवाह के लिए अस्थायी रूप से लाया गया था। अब वधु तो उनकी हो ही चुकी है, क्योंकि सब व्यय वर पक्ष की ओर से उनका हुआ था किन्तु, वहां के रिवाज के अनुसार वर को तो भेजना ही पड़ेगा और वे नहीं चाहते कि कोई भी बात प्रकट हो जाय।

उसे जाना पडा। एक सुन्दर सजे हुए कमरे में उसे पहुंचाया गया जहां नववधु गुड़िया-सी सजी सिमटी एक ओर बैठी थी। वह उससे कुछ भी नहीं बोला और चुपचाप पलंग पर लेट गया। नींद तो जैसे उससे रूठी हुई थी। और फिर गत दो दिन से तो रोटी का एक कौर भी उसके गले के नीचे नहीं उतरा था। सचमुच भूख प्राणी की सबसे बडी शत्रु है जो कभी नहीं हारती और उसे हराने में ही उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। भूखे रहकर न तो जीवित रहा जा सकता है और न कुछ और ही किया जा सकता है। पहले भूख की तृप्ति कीजिए तभी आप इहलोक और परलोक के लिए कुछ करने में समर्थ हो सकते हैं क्योंकि लोक और परलोक सुधारने का माध्यम देह है और वह भूख की तृप्ति के साथ चेतन रहती है।

भूख की अधिकता ने उसे व्याकुल कर दिया था। शायद उसे अपने किये पर पछतावा हो रहा था कि कहाँ मुसीबत में आ फंसा। वह दर्द से कुछ कराहा।

नववधु संकोच छोड़कर उठी। पूछा—"क्या कष्ट है आपको?" उसकी अस्पष्ट मधुरिम वाणी में कंपन था, चिन्ता थी। पर वह...... कुछ भी नहीं बोला।

वधु ने अपना कोमल हाथ उसके सिर पर रखा और एक बार फिर पूछा। बर्फ से ठंडे कोमल हाथ का स्पर्श उसे अच्छा लगा। गोल-गोल सोने की आभा लिये हुए उसकी कलाई बड़ी सुन्दर थी। वह कुछ और कहना चाहता था पर केवल दो शब्द उसके मुख से निकल सके—"भूख लगी है!"

वधु ने मिठाई की थाली सामने करदी। इतनी सहानुभूति और स्नेह से कभी उसका काम नहीं पड़ा था। वह सोचने लगा खाये या नहीं। कहीं यह उसके मालिक के साथ अन्याय या विश्वास घात तो नहीं होगा जिन्होंने उसे पैसा देकर तीन-दिन के लिए खरीद लिया है। वह मौन था। वह भी मौन थी। रात में सब कुछ मौन था। पर······कुछ तो उसे कहना ही था। वह बोला—"देखिये मैं खा तो सकता हूँ पर ऐसे नहीं। यदि चांदी के चूल्हे पर, स्वर्ण पात्र में इलायची और लौंग जलाकर बिना पानी कोरे दाखों-पिश्तों की खिचड़ी पकाई जाय और उसे उस चांदी की थाली में परोसा जाय जिसमें सोने की मेख लगी हो। तभी मैं खा सकता हूँ।"

बड़ी विचित्र समस्या थी। वधू ने कुछ सोचा फिर बोली—"बस! इतनी सी बात! अच्छा···" कहकर उसने पैर की झांझर खोली उसमें इलायची लौंग भरे और उसे नागर बेल के पान से ढंक दिया गया। ऊपर हाथ का स्वर्ण कंकण रखकर उसमें दाखें और पिश्ते भर दिये। फिर चांदी की छोटी सी थाली में अपने एक स्वर्णभूषण की मेख निकाल कर डालदी और दाखें-पिश्ते उसमें निकाल कर भर दियें। चांदी की झांझर ने चूल्हे का काम दिया था और स्वर्ण-भूषण ने पात्र का। सब कुछ तैयार था। कहा—"लीजिये!"

वह चकित होकर सब देख रहा था। उसने सोचा यहाँ पार पाना कठिन है। लड़की सुन्दर तो है ही साथ ही चतुर भी। वह उसे भा गई। उसने खाते हुए पूछा—"तुम्हारा नाम?"

"पद्मा!"

"सचमुच जैसा सुन्दर नाम है वैसी ही सुन्दर भी हो और चतुर भी।"

बड़ी-बड़ी कमल की पंखुड़ियों-सी आंखे शर्म से झुक गई। साथ ही पीपल के नये पत्ते से सुकोमल रक्ताभ अधरों पर एक हलकी सी मुस्कराहट धीरे से प्रकट होकर लोप होगई। "सो जाइये आपकी तबियत ठीक नहीं है।" उसने कहा। और वह जैसे सचमुच आंखे बन्द करके सोने का बहाना करने लगा। पद्मा उसके पैर दाबने लगी। अनिच्छा होते हुए भी वह उसे रोक नहीं सका और कुछ देर बाद दो-एक उबासियां लेने के बाद वह उसके पैताने ही सो गई। पर, वह नहीं सो सका। उसके मन में भयंकर संघर्ष मचा हुआ था। काश! यह सोने-सी रूपसी हमेशा उसके पास रह सकती। काश! वह नगर सेठ का पुत्र होता और सचमुच में उसका विवाह इसके साथ हुआ होता! तो वह हमेशा-हमेशा इसकी बंशी के स्वर-सी मादक वाणी का रस लिया करता और देखा करता एक-टक इस स्वर्गीय देव-दुर्लभ सौन्दर्य को। वह उठ बैठा। उसने उसके सिर को सहलाया। रेशमी लच्छों जैसी मरव केशराशि से निकलने वाली मादक सुगन्ध ने उसे मादक बना दिया। कमान-सी तिरछी भौहे, पतले-पतले पलकों में निद्रा में लीन कमनीय नेत्र, भरा हुआ गोल स्वर्णिम मुख, संगमरमर-सी स्निग्ध किन्तु कोमल त्वचा, सुगंधित श्वास··· उठी हुई नासिका, पतले-पतले गुलाबी अधर···वह देखता रहा आत्मविस्मृत होकर। जी में आया उसे अंक में भर ले। पर···उसे एकाएक अपने मालिक का ध्यान आया। उनकी समझाई हुई बातें याद आई और वह सहम गया।

रात जा रही थी। कदाचित् यह इस रूपसी से मिलने की अन्तिम रात होगी। वह उठा। जल्दी से एक पत्र पर दो एक पंक्तियां लिखीं और उसके दुकूल के छोर से बांध कर चुपचाप कक्ष से बाहर निकल गया। तब भी रात शेष थी। उसे लगा मानों तारे उसकी दशा पर हंस

दे। अंधकार उसे वीभत्स लगा मानो कह रहा हो तुम पशु हो। तुम निष्ठुर राजा नल की तरह बेचारी दमयन्ती को असहाय अवस्था में नियति के भरोसे छोड़कर भागे जा रहे हो! वह नहीं रुका। वह बिना वर के डेरे पर लौटे ही अपने गाँव भाग आया।

दूसरे दिन फिर रागरंग की धूम रही। बारातियों को उज्जैन बहुत पसन्द आई थी। उस दिन शाम को क्षिप्रा में कई बजरें तैरते हुए दिखाई दिये। मशालों के प्रकाश में नदी में विहार हो रहा था। नदी का दृश्य तो देखते नहीं बनता था। झरोखों से स्त्रियाँ देखने में लगी थीं। पर वधू···! वह खोई-खोई सी एकान्त में पड़ी थी। उसकी आंखे लाल थी, मन में तूफान था। दिनभर उसने कुछ भी नहीं खाया था। सबने समझा माँ-बाप की लाड़ली है, पहली बार पिता का घर छोड़कर जा रही है अतएव उदास होना स्वाभाविक ही है। वह किसी से विशेष बोली भी नहीं। उसके मस्तिष्क में केवल गत रात्रि को वर की लिखी गई दो-चार पंक्तियाँ घूम रही थी—"पद्मा! तुमसे विवाह करने का अपराधी अवश्य हूँ पर मुझे तो लोभ देकर अस्थायी वर बनाकर लाया गया था। असली वर एक आँख से काना, तोतला और कुरूप होने के साथ ही मूर्ख भी है। दुःख है तो इतना ही कि तुम-सी चतुर और असाधारण सुन्दरी को उसके साथ विदा होकर जाना पड़ेगा। मुझे तुम्हारे दुःख के प्रति सहानुभूति है ईश्वर तुमको साहस दें। —माधव'! धोखा हुआ है उसके साथ। न्याय-वीर विक्रम की नगरी में उसी की एक बेटी के साथ अन्याय हुआ है। इस अन्याय का परिणाम उसे आजीवन भुगतना पड़ेगा। ओह! क्या है हम लड़कियों का जीवन भी। हर प्रकार से अवश और पंगु बनाकर यह समाज हमारे ऊपर वंश की मर्यादा का, सुशीलता का, पातिव्रत्य का उत्तरदायित्व थोंप देता है तथा हमें इस गति को पहुँचा देता है कि हम सत्य को सत्य होते हुए भी नहीं कह सकती। और इस निर्बलता का लाभ उठाते हैं ये पुरुष धोखे से और हर बात में समर्थ होने का दम भरते हैं किन्तु नहीं सोचते कि उनको समर्थ बनाने में कितना बड़ा हाथ स्त्री जाति का है।

उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह अन्याय का प्रतीकार करेगी। वह नहीं जायगी बारात के साथ विदा होकर। आर्य कन्या का स्पर्श करने का वही पुरुष अधिकारी है जिसने अग्नि की साक्षी में उसके साथ पाणिग्रहण किया हो। उसने देवाधिदेव महाकाल का ध्यान किया 'प्रभु! शक्ति दो। यदि आपने अपनी पुत्री को अयोग्य वर के गले बंधने से बचाया है तो आगे भी उसका पथ निर्देश करो। वह मर जायगी किन्तु धर्म से नहीं डिगेगी।'

बारात विदा होने वाली थी। किन्तु वधू···उसने न जाने क्या खा लिया था वह बिस्तर पर अचेत पड़ी थी वैद्य उपचार में लीन थे। उधर बारात के बुलौवे पर बुलौवे आ रहे थे पर वह तो उठने तक में असमर्थ थी। बारात लाचार होकर दो दिन और रुकी रही किन्तु वधू की दशा बिगड़ती ही जा रही थी। आखिर बाराती कब तक रुक सकते थे। बारात तो केवल दो चार दिन की मौज के लिए होती है, उन को अपने कारबार भी तो सम्हालने थे। सबने यही कहा—"बाद में बुलवा ली जायगी बहू!"

और बारात बिना वधू ही चली गई।

* * * * * *

पद्मा स्वस्थ हुई। उसे अपने निर्मोही वर पर क्रोध आ रहा था। तो क्या वे अब कभी नहीं मिलेंगे। एक रात की वार्ता में ही वह उससे काफी प्रभावित हुई थी। उन्होंने यह क्यों नहीं सोचा कि विवाह भी कहीं अस्थायी होता है! यह तो दो जीवन की सफलता—असफलता का सौदा है।

आखिर कब तक वह बहाने बनाकर टालती रहेगी? उसे एक दिन तो पिता का घर छोड़ना ही पडेगा। किन्तु··· स्त्री के लिए पति ही सबसे बड़ा धन है, शील है, सबसे बड़ा गौरव है। वह कभी नहीं जायगी उस धनाधिपति नगरसेठ के यहाँ। माना कि उसके यहाँ धन है। सब आमोद प्रमोद की सुविधायें हैं किन्तु यह सब बेकार है उसके लिए। धन के लिए वेश्यायें मरती हैं कुलवधुएं नहीं।

और, एक दिन उसने पिता के सामने प्रस्ताव रखा कि वह काशी जाना चाहती है बाबा विश्वनाथ के दर्शन को। उसने बीमारी में मनोती की थी कि स्वस्थ होने पर उनके दर्शन करके ही सुसराल जायगी। पिता ने बाधा नहीं दी वरन् पूर्ण प्रबन्ध के साथ ही उसके भाई को भी साथ कर दिया।

वास्तव में तीर्थयात्रा तो बहाना मात्र थी। विशेष प्रयोजन तो माधव की खोज करना था। गांव-गांव में ये लोग भटकते रहे। जिस गांव में भी पहुंचते यह कहला दिया जाता कि एक दूर देश की स्त्री आई है। उसे बातें सुनने का बहुत शौक है और बात कहने वाले को बात के अनुसार तांबे, चांदी या सोने का टका भी पारितोषिक दिया जाता हैं। कई लोगों को टके मिले पर वह नहीं मिल सका। निराश होकर लगभग सात महिने पश्चात वे फिर लौटने लगे।

भाग्यवश उसी गांव में उनका पडाव लगा जहां माधव अपनी विधवा मां के साथ रहता था।

कई लोगों को टके कमाते देख माधव भी बात सुनाने पहुंचा। वह परदे के अन्दर बैठी थी। माधव ने पूछा—
"बात आपबीती सुनेंगे या परबीती?"
उत्तर मिला—"आपबीती।"

माधव ने आदि से अन्त तक अपने विवाह की घटना सुनाई। उसे सोने का टका मिला। साथ ही दूसरे दिन आने का आदेश भी।

पद्मा का प्रयास सफल होगया था, फिर भी वह पूरी तरह शंका का समाधान किए बिना आगे नहीं बढना चाहती थी। उसने गुप्त रूप से सब जानकारी प्राप्त की। सन्देह सत्य होता जारहा था फिर भी एक परीक्षा लेना और आवश्यक थी।

दूसरे दिन माधव फिर आया। उससे पूछा गया—
"तुमने उस लडकी को अच्छी तरह देखा है?"

"हां! केवल एक बार और अन्तिम बार। मैं उसके चेहरे को बडी देर तक देखता रहा था। तब वह सोई हुई थी।"

"क्या अब भी तुम्हें वह याद आती है?"

"बहुत। उसकी याद में मैं सब कुछ भूल गया हूँ।"

"वह पत्नी तो तुम्हारी ही है क्योंकि विवाह तुम्हारे साथ ही हुआ था फिर उसकी खबर क्यों नहीं लेते? उसने पूछा —।

हैं तो। सब जिसने भी सुना ऐसा ही कहते हैं। पर हम निर्धन हैं और डरते हैं कि यदि सेठ ने विवाह का व्यय पूरा करने को ही कहा तो क्या करेंगे? बौना होकर चांद छूने का प्रयास व्यर्थ है।" कहकर उसने निःश्वास भरी।

"और यदि पद्मा खुद ही तुम्हारे घर चली आये तो?" प्रश्न बडा विचित्र था।

"तो मैं अपने भाग्य को सराहूंगा। पर वह भली लडकी ऐसा कैसे कर सकती है।" उसे सन्देह हुआ। आखिर ऐसे प्रश्न क्यों किए जा रहे हैं? कहीं—

"यदि तुम उसे देखो तो देखते ही पहचान जाओगे?" फिर प्रश्न हुआ।

"हां अच्छी तरह। मैं उसे जीवन में कभी नहीं भूलूंगा। उसने उत्तर दिया।

"तो देखो अन्दर आओ। वह बैठी है तुम्हारी बहू।" आदेश हुआ।

हिम्मत करके वह बढा पर विश्वास नहीं आ रहा था।

"नहीं वह यह नहीं है। वह इससे कई गुना अधिक सुन्दर है। उसकी आंखे इससे बडी है, दाहिने गाल पर तिल है।" कहता हुआ वह पीछे हटा।

"अब पहचानों।" पद्मा घूंघट हटाकर खडी होगई।

"पद्मा!" कहकर उसने उसे बाहों में भर लिया।" फिर यह मजाक मुझसे क्यों की गई? यह लडकी कौन है?" उसने पूछा।

"वास्तविकता का पता लगाने के हेतु यह सब किया गया था। इस भली लडकी को पास के गांव से आज ही बुलवाया गया था।" उसने कहा।

"किंतु, तुम यहां तक आई कैसे?" माधव ने पूंछा।

"तुम्हारी खोज में।" कहते हुए उसने कहा—"यह लो।" और उसने एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ उसे दी एवं वचन दिया कि वह लग्न पर गौना लेने अवश्य आएगा। पद्मा उसकी मां से भी मिली और पुनः वह उज्जैन लौट गई।

गौने पर दोनों वर आये। झगडा हुआ। पंचायतें हुई, मामला राज सभा तक पहुंचा। किंतु सबने यही निर्णय दिया कि "पत्नी उसी की है जिसके साथ भांवर हुए हैं। वही उसका अधिकारी है। वर को भाड़े पर लाना मूर्खता ही नहीं महान् अपराध है।" बुद्धू वर जुर्माना देकर फिर धार लौट गया।

जिन लोगों को वास्तविकता का पता लगा सबने यही कहा कि ईश्वर की लीला अपरम्पार है। विक्रम की नगरी है जाने या अनजाने कभी किसी के साथ अन्याय हो ही नहीं सकता। काश! आज भी लोग ऐसा कह सकते।

काव्य-विहार

उषा

(कविराज श्री० गयाप्रसाद शास्त्री " श्रीहरि ")

(१)
नव नील निचोल के घूंघट का पट खोल घटा छहरा रही है ।
मुखचन्द्र की चन्द्रिका से क्षिति में निज रूप सुधा बरसा रही है ।
अलिपुंज के गुञ्जन के मिष से मधु मादक गान सुना रही है ।
अलबेली अकेली नवेली यहां, यह कौन सी रूपसी आ रही है ॥

(२)
कल हंस बने नवनूपुर की ध्वनि अंग-उमंग दुराती चली ।
अलसाते सिराते सुतारों की चूनरी ओढ़ जनों को भुराती चली ।
सुषमा से सनी, सुवधू सी बनी सुख-साज-समाज जुराती चली ।
मनमोहनी मोहना सी मनको मुनियों गुनियों के चुराती चली ॥

(३)
मुख मंजुल लाल गुलाल लगा मधु पीके हुई पल में मदमाती ।
मद ने उर में किरणावलि-हार सुहासिनी रूप छटा छहराती ।
रवि मुग्ध हुआ है मुखच्छवि देख, जहां कवि की प्रतिभा सकुचाती ।
प्रिय-प्रेम-पगी, नवरंग-रंगी, यह आती उषा जग को हरषाती ॥

(४)
अनुराग-उमंग भरे गुनगीतियां प्रेमी विहंगम गा रहे हैं ।
मधु माधवी-मालती की कलियां पदपङ्कज लाके लुटा रहे हैं ।
सजनी रजनी मुख मोड़ चली नव मित्र यहां अब आ रहे हैं ।
रवि-अंक में आज उषा मुखचन्द्र को देख सभी सुख पा रहे हैं ॥

(५)
शुचि सुन्दर स्वर्णलता सी बनी सुर सुन्दरी देख जिसे सकुचाती ।
हंसती-रसती, हिलती मिलती, रुकती-झुकती प्रिय के ढिग जाती ।
जल में थल में, वन में, मन में, नित शीतल शांति सुधा सरसाती ।
छवि की प्रतिमा, कवि की प्रतिभा बनी रानी उषा जग-आँगन आती ॥

अवन्तिका से

(श्री० इक़बाल बहादुर श्रीवास्तव-'देवसरे')

(१)
गोधूली की इस बेला में, आई किसकी याद अवन्ती ?
सिसक-सिसक कर रोती है तू यह कैसा संताप अवन्ती ?

(२)
सिहर उठी हैं रोमावलियां, छूट रहा क्यों धीरज तेरा ?
कौन प्रलोभन ने, किस युग के इस वृद्धापन को आ घेरा ?

(३)
अरी ! आँसुओं के जल से क्या नियति अंक धुल जायेंगे ?
सोये सपने जाग उठेंगे या बीते दिन फिर आयेंगे ?

(४)
किसकी है कैसी याद बता जिससे अतीत की चाह जगी ?
जिससे छाती में शूल गड़े जिससे उर अन्तर आह जगी ?

(५)
कानों में तेरे गूंज उठी भूली-सी वे स्वर ध्वनियां क्यों ?
आँखों में तेरे नाच गयी पिछले जीवन की घड़ियां क्यों ?

(६)
याद आगयीं आज तुझे किस स्वप्न लोक की वे दिन रातें ?
अरी ! विलासिनि सोच रही तू किस बीते वैभव की बातें ?

(७)
बिखरी आशाएं खोज रही इन कूलों और कछारों में ?
मिट्टी कंकर के ढेरों में टूटी-फूटी दीवारों में ।

(८)
क्या इतनी लम्बी अवधि में हो न सकी सब साधें पूरी,
जिन के हित रो-रो कर तूने, करलीं हैं आंखे अंगूरी !

(९)
देख-देख वह लुढक रहा है, तेरे यौवन का मधुप्याला !
खून-पसीने से अंकित है, जीवन का इतिहास निराला !

(१०)
भूल गई क्या वे दिन अपने जब थी स्वर्गों को ठुकराती !
प्रतिदिन के सुख शृंगारों से, दुनियां के मन को ललचाती !

(११)
सुना कभी तेरे आँगन में, वृन्दावन का वंशी वाला !
लिखने-पढ़ने को आया था, है तेरा सौभाग्य निराला !
(१२)
धर्मविवेक प्रवाहित होता था, कैसा तब तेरे वन में ?
कैसी शांति प्राप्त होती थी महाकाल के शुभ दर्शन में ?
(१३)
मोक्षमंत्र वह बोधि सत्व का गूंज रहा क्या कानों में है ?
छिपा हुआ वह दया धाम, क्या वहीं यहीं पाषाणों में है ?
(१४)
तूने अपनी आँखों देखे, कितने स्वर्ण-विहान सयानी ?
कितने राजवंश तुझ पर हो, गये बता बलिदान सयानी ?

(१५)
जिनकी छाया में दिन दूना, तेरा हुआ निखार सजीली !
बनी रूपिणी रही भाल पर, लेकर सुख सुहाग गर्वीली ?
(१६)
कितने चक्रवर्ति दिग्विजयी, खेले तेरे आँगन में हैं ?
कितनों की जय ध्वनि सुन पड़ती, चिप्रा के कल-क्रन्दन में हैं ?

(१७)
तेरे सम्मुख लौट गये सब, एक-एक कर वे मतवाले ।
टूट गई वे सबल भुजाएं, कौन शीश पर छत्र संभाले !
(१८)
मूक हो गई हैं रण भेरी, झन-झन ध्वनि उन तलवारों की !
आज बज रही है शहनाई, सुन झींगुर के झनकारों की ।

(१९)
तेरे उस अतीत की गाथा, छिपी इन्हीं झनकारों में है ?
गूंज रही जिसकी ही प्रतिध्वनि, कूलों और कछारों में है !
(२०)
सच कहना क्या आज तुझे उस, मौर्य महत्ता की सुधि आयी ?
चन्द्रगुप्त या प्रियदर्शन की, याद अश्रु बन कर झर लायी ?

(२१)
उनके उस महान् वैभव ने, आज तुझे पागल कर डाला !
सुप्त व्यथाएं जगा जगा कर, सुलगायी प्रलयंकर ज्वाला ?
(२२)
अरी ! बता प्रद्योतवंश की, कितनी तीखी थीं तलवारें ?
कैसी वत्सराज उदयन की, बन्दीग्रह में थीं मनुहारें ?

(२३)
राजकुमारी वासवदत्ता, कभी याद आती दीवानी ?
शून्यभित्त पर अब तक तेरे, अंकित है वह प्रेम कहानी ?
(२४)
दिग्विजयी वह वीर विक्रमादित्य कहाँ है वैभवशाली ?
जिसके नव रत्नों से होती, नित्य सभा में थी दीवाली ?

(२५)
जगती के कोने-कोने में, जिसका यश है गाया जाता !
जिसका शाश्वत तेज आज भी, विक्रम-शाका है कहलाता ।
(२६)
नियति नटी से पूछ कहाँ, तूने उसका कंकाल दबाया ?
वह बत्तीस पुतलियों वाला, सिंहासन है. कहां छिपाया !

(२७)
बैठ मंच के जिस टीले पर, चरवाहे बालक सुख पाते;
खेल-खेल में राज्यासन पर. सत्य न्याय का रूप दिखाते !
(२८)
क्या उसको ही खोज रही है, बूढ़ी आंखें गड़ा-गड़ा कर ?
हुई बावली, क्या कर लेगी, इस युग में तू उसको पाकर !

(२९)
देख आज के राज्यासन को, जहाँ न्याय की तुला लटकती !
जहाँ विवशता चीखा करती, जहाँ सत्यता शीश पटकती ।
(३०)
दबा पड़ा रहने दे उसको, मिट्टी कंकर के ढेरों में ;
खड़ी नियति हंस रही व्यंग से, उलझ रही तू किन फेरों में !

(३१)
भोजदेव की स्मृति मत कर, जब होती तेरी थीं मनुहारें;
हंसवाहिनी की वीणा की, सुन पड़तीं घर-घर झनकारें !
(३२)
बरस रही साहित्य सुधा थी, शाश्वत रूप लिये जीवन में;
विहग शास्त्र चर्चा करते थे, सुना कभी तेरे आँगन में ?

(३३)
पाया था सरस्वती-सुवन भी, कालिदास-सा विद्या भूषण;
जिसकी कृतियो पर अवलम्बित, है तेरा यश गान पुरातन।
(३४)
लिपट-लिपट कालिया महल से, तेरी शिप्रा क्यों रोती है ?
लहर-लहर किसकी तलाश में, द्वार-द्वार पर बलि होती है ?

(३५)
उसके ही कल-क्रन्दन से क्यों, तूने भी निज कंठ मिलाया !
दुनियां के सब राग छोड़ कर, तुझे मर्सिया है क्यों भाया ?
(३६)
वर्तमान से घबरा कर तू क्यों अतीत की ओर चली है ?
क्या इस तड़क भड़क से धुंधली, रेखाएं लग रहीं भली है ?
(३८)
नवयुग के इस कोलाहल में, गतयुग की भेरी मतवाली !
तू ही फूंक, और सुन तू ही, री ! अतीत पर मरने वाली !
(३७)
भावुक मन पाया है तूने, सोच-सोच धीरज खोती है;
कितनी ही तेरी सहचरियां, अपनी किस्मत पर रोती है ?
(३९)
त्याग-त्याग बीते दिवसों की, ममता अब इस वृद्धापन में !
रहे-सहे दिन गवां रही क्यों, पगली युग-युग के चिन्तन में !
(४०)
वह सभ्यता संस्कृति तेरी, बूढ़ी वे चौंसठ विद्याएं;
जीर्ण-शीर्ण हो गईं देख अब, नये समय की नयी कलाएं ।
(४१)
ये विज्ञान; विवेक देख प्रति, दिन के आविष्कार निराले;
ये संहार नाश के कारण, ये प्राणों के कठिन कसाले।
(४२)
दुनिया तो लट्टू है इन पर, तू झूठे स्वप्नों पर मरती ?
अरी ! सयानी कैसे भोलेपन की हैं ये बातें करती !
(४३)
अस्त-व्यस्त निज अंग देखकर, तुझको करुणा व्याप रही है;
या युग के इस आडम्बर पर, कर तू पश्चाताप रही है ।
(४४)
तू जिसको आडम्बर कहती, वही आज जग को है प्यारा;
है सब समय-समय की बातें, मन में इतना नहीं विचारा ।
(४५)
करले हृदय वज्र का अपना, रखले छाती पर सिल-पत्थर ?
वे दिन हंस-हंस कर खोये हैं बिता इन्हें आंसू पी-पी कर !
(४६)
खोज आज मिट जाय भले ही, किंतु समझ लेना यह मन में !
स्वर्ण अक्षरों से अंकित है, कीर्ति यहां तेरी कण-कण में !

—०—०—

परिचय परामर्श

दीपावलि साहित्य ।

गुजरात प्रदेश में दीपावलि को नव वर्ष प्रवेश के उत्सव के रूप में सम्पन्न किया जाता है, यही कारण है कि इस समय गुजरात के पत्रों नवीन सज-धज के साथ प्रकाशित किया जाता है, उनका प्रभाव व्यापारिक क्षेत्र के मराठी, और हिन्दी पत्रों पर भी पडा है, और अब यह विस्तृत होकर अन्य प्रान्तों के पत्रों पर भी पडा है । तदनुसार बम्बई का--

नवनीत

दीपावलि पर बडी सजधज के साथ आया है । नवनीत ने गत दो वर्षों में अपना एक स्वतंत्र स्थान बना लिया है, मासिकों में वह उत्कृष्ट है, कई बार अंग्रेजी डायजेस्ट को भी वह अपनी कला, साहित्य, और सुरुचि में पीछे छोड जाता है, नवनीत की इस विशेषता से हिन्दी के सामजिक साहित्य की श्री-वृद्धि हुई है, हम नवनीत के मध्य भारतीय संपादक को उनकी सफलता के लिए बधाई देते हैं। नवनीत हिन्दी का 'नवनीत' है, दीपावलि अंक तो हर दृष्टि से उत्कृष्ट बन गया है , वा० मू० १०) ३५१ तारदेव बम्बई ७।

लोकमान्य

कलकत्ता, नागपुर से समान रूप से प्रकाशित होने वाले लोक मान्य-दैनिक का दीपावलि अंक दलदार है, सजावट में भी सुन्दर है, किन्तु साहित्य की दृष्टि से साधारण रहगया है, भर्ती अधिक हो गई है । फिर भी वह सुन्दर है ।

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय के 'डमी' को देखकर हमने जो आशा की थी वह उसके वास्तविक स्वरूप से स्थिर नहीं रहपाई, वैसे यह अंक दीपावलि की शोभा से अलंकृत है, लेख कविता, कहानीं स्केच सुपाठ्य है । तथापि नमूने की चका चौंध ने, सुरुचि ने हमें जिस आशा रखने को प्रोत्साहित किया था वह इससे पूर्ण नहीं हुई । प्रभाकर जी की सूझ-सुरुचि के सांमजस्य कों पाकर यह पत्र हिन्दी में सुन्दर ही कहा जायगा । अनेकों मासिकों में यह उत्कृष्ट तो है ही । वा० मू० ८) इस अंक का मू० १।।) सहारनपुर से सुलभ ।

जागरण

इंदौर के दैनिक जागरण का दीपावलि अंक सुन्दर है, संपादकीय श्रम, और सुरुचि का परिचायक है, ४ आने में ५६ पृष्टों का साहित्य सुपाठ्य, सम्पत, और स्वस्थ है ।

ऊषा

धार की ऊषा ने ६४ पृष्टों में अपने सीमित साधनों में इस अंक को दीपावलि पर्व पर समुचित रुचि और श्रमसे सजाया है । अंक का साहित्य भी सुन्दर है । सुपाठ्य है ।

किर्लोस्कर

किलोस्कर वाडी महाराष्ट्र से प्रकाशित होने वाले इस सर्वांग सुन्दर पत्र का यह दीपावलि अंक अपनी कीर्ति, प्रतिष्ठा के सर्वथा अनुरूप है । पत्र साहित्य सुरुचि और कला से सम्पन्न है, पत्र का मू०१।।) उसके साहित्य को देखते हुए उचित है ।

मराठी में यह अपनी विशेषता से विख्यात ही है ।

नवयुग

मराठी के प्रख्यात कलाकार, साहित्यकार विनोदी लेखक-आचार्य अत्रे का यह पत्र दीपावलि पर साज-सज्जा के साथ नयनाभिराम रूप में प्रकाशित हुआ है, आरम्भ में उनकी नवीन कादम्बरी विस्तार पूर्वक प्रकाशित हुई है । अन्य परिचय कविता, लेख आदि उत्तम है; इस सुन्दर अंक का मूल्य २।।) ।

(३५)
उसके ही कल-क्रन्दन से क्यों, तूने भी निज कंठ मिलाया !
दुनियां के सब राग छोड़ कर, तुझे मर्सिया है क्यों भाया ?
(३६)
वर्तमान से घबरा कर तू क्यों अतीत की ओर चली है ?
क्या इस तड़क भड़क से धुंधली, रेखाएं लग रहीं भली हैं ?
(३८)
नवयुग के इस कोलाहल में, गतयुग की भेरी मतवाली !
तू ही फूंक, और सुन तू ही, री ! अतीत पर मरने वाली!
(३७)
भावुक मन पाया है तूने, सोच-सोच धीरज खोती है;
कितनी ही तेरी सहचरियां, अपनी किस्मत पर रोती है ?
(३९)
त्याग-त्याग बीते दिवसो की, ममता अब इस वृद्धापन में !
रहे-सहे दिन गवां रही क्यों, पगली युग-युग के चिन्तन में !
(४०)
वह सभ्यता संस्कृति तेरी, बूढ़ी वे चौंसठ विद्याएं;
जीर्ण-शीर्ण हो गईं देख अब, नये समय की नयी कलाएं।
(४१)
ये विज्ञान, विवेक देख प्रति, दिन के आविष्कार निराले;
ये संहार नाश के कारण, ये प्राणों के कठिन कसाले।
(४२)
दुनिया तो लट्टू है इन पर, तू झूठे स्वप्नों पर मरती ?
अरी ! सयानी कैसे भोलेपन की हैं ये बातें करती !
(४३)
अस्त-व्यस्त निज अंग देखकर, तुझको करुणा व्याप रही है;
या युग के इस आडम्बर पर, कर तू पश्चाताप रही है।
(४४)
तू जिसको आडम्बर कहती, वही आज जग को है प्यारा;
है सब समय-समय की बातें, मन में इतना नहीं विचारा।
(४५)
करले हृदय वज्र का अपना, रखले छाती पर सिल-पत्थर ?
वे दिन हंस-हंस कर खोये हैं विता इन्हें आंसू पी-पी कर!
(४६)
खोज आज मिट जाय भले ही, किंतु समझ लेना यह मन में !
स्वर्ण अक्षरों से अंकित है, कीर्ति यहां तेरी कण-कण में !

—०—०—

परिचय परामर्श

दीपावलि साहित्य ।

गुजरात प्रदेश में दीपावलि को नव वर्ष प्रवेश के उत्सव के रूप में सम्पन्न किया जाता है, यही कारण है कि इस समय गुजरात के पत्रों नवीन सज-धज के साथ प्रकाशित किया जाता है, उनका प्रभाव व्यापारिक क्षेत्र,के मराठी, और हिन्दी पत्रों पर भी पडा है, और अब यह विस्तृत होकर अन्य प्रान्तों के पत्रों पर भी पडा है । तदनुसार बम्बई का--

नवनीत

दीपावलि पर बडी सजधज के साथ आया है । नवनीत ने गत दो वर्षों में अपना एक स्वतंत्र स्थान बना लिया है, मासिकों में वह उत्कृष्ट है, कई बार अंग्रेजी डायजेस्ट को भी वह अपनी कला, साहित्य, और सुरुचि में पीछे छोड जाता है, नवनीत की इस विशेषता से हिन्दी के सामजिक साहित्य की श्री-वृद्धि हुई है, हम नवनीत के मध्य भारतीय संपादक को उनकी सफलता के लिए बधाई देते हैं। नवनीत हिन्दी का 'नवनीत' है, दीपावलि अंक तो हर दृष्टि से उत्कृष्ट बन गया है , वा० मू० १०) ३४१ तारदेव बम्बई ७।

लोकमान्य

कलकत्ता, नागपुर से समान रूप से प्रकाशित होने वाले लोक मान्य-दैनिक का दीपावलि अंक दलदार है, सजावट में भी सुन्दर है, किन्तु साहित्य की दृष्टि से साधारण रहगया है, भर्ती अधिक हो गई है । फिर भी वह सुन्दर है ।

ज्ञानोदय

ज्ञानोदय के 'डमी' को देखकर हमने जो आशा की थी वह उसके वास्तविक स्वरूप से स्थिर नहीं रहपाई, वैसे यह अंक दीपावलि की शोभा से अलंकृत है, लेख कविता, कहानीं स्केच सुपाठ्य है। तथापि नमूने की चका चौंध ने, सुरुचि ने हमें जिस आशा रखने को प्रोत्साहित किया था वह इससे पूर्ण नहीं हुई। प्रभाकर जी की सूझ-सुरुचि के सामंजस्य कों पाकर यह पत्र हिन्दी में सुन्दर ही कहा जायगा । अनेकों मासिकों में यह उत्कृष्ट तो है ही। वा० मू० ८) इस अंक का मू० १।।) सहारनपुर से सुलभ ।

जागरण

इंदौर के दैनिक जागरण का दीपावलि अंक सुन्दर है, संपादकीय श्रम, और सुरुचि का परिचायक है, ४ आने में ५६ पृष्ठों का साहित्य सुपाठ्य, सम्पत, और स्वस्थ है ।

ऊषा

धार की ऊषा ने ६४ पृष्ठों में अपने सीमित साधनों में इस अंक को दीपावलि पर्व पर समुचित रुचि और श्रमसे सजाया है । अंक का साहित्य भी सुन्दर है । सुपाठ्य है ।

किर्लोस्कर

किर्लोस्कर वाडी महाराष्ट्र से प्रकाशित होने वाले इस सर्वांग सुन्दर पत्र का यह दीपावलि अंक अपनी कीर्ति, प्रतिष्ठा के सर्वथा अनुरूप है। पत्र साहित्य सुरुचि और कला से सम्पन्न है, पत्र का मू०१।।) उसके साहित्य को देखते हुए उचित है ।

मराठी में यह अपनी विशेषता से विख्यात ही है।

नवयुग

मराठी के प्रख्यात कलाकार, साहित्यकार विनोदी लेखक-आचार्य अत्रे का यह पत्र दीपावलि पर साज-सज्जा के साथ नयनाभिराम रूप में प्रकाशित हुआ है। आरम्भ में उनकी नवीन कादम्बरी विस्तार पूर्वक प्रकाशित हुई है । अन्य परिचय कविता, लेख आदि उत्तम है; इस सुन्दर अंक का मूल्य २।)।

नवप्रभात

ग्वालियर, इंदौर, भोपाल, उज्जैन से प्रकाशित होने वाले दैनिक नवप्रभात का दीपावलि अंक अन्य कई हिन्दी पत्रों से उत्तम निकला है। उसका साहित्यिक स्तर साधारण होते हुए भी वह सुरुचि लिए हुए है।

हिन्दुस्तान

दैनिक और साप्ताहिक हिन्दुस्तान का दीपावलि अङ्क अवश्य हिंदी की शोभाकी वस्तु है। साहित्य और कलाकी दृष्टिसे यह अङ्क समृद्ध है संग्रहणीय भी है हिन्दुस्तान हिन्दी में अपनी विशेषता की छाप जमाए हुए है हिन्दी को इसपत्र पर गर्व होना चाहिए। सूझ सुरुचि, साहित्य, और सजावट में यह सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वांग सुन्दर है

रमकडु

गुजराती का यह पत्र 'बालसाहित्य, का अग्रणी है। श्री गांधीजी बाल रुचि के उपयुक्त उसे बहुत आकर्षक रूपमें प्रकाशित कर रहे हैं। दीपावलि अङ्क तो और भी अपनी विशेष आकर्षकता लिए हुए प्रकाशित हुआ है। अवश्य ही विज्ञापनों के विस्तार ने उसके आकार को पुष्टि प्रदान की है। परन्तु सजावट और साहित्य में भी वह अपनी सीमा में सुन्दर हैं। मू० ३) अवश्य अधिक है।

पांचजन्य (राजनीति अंक)

शिव-राज्याभिषेक के अवसर पर यह अङ्क बहुत सजाकर निकाला गया है। अङ्क में कुछ लेख अध्ययन पूर्ण है, सुरुचि भी रखते हैं, यद्यपि पत्र के दृष्टिकोण में स्पष्ट ही विशेष संघ की छाप दिखलाइ पडती है, किन्तु यह विशेषांक उपयोगी बन पडा है इस का मू० १) राष्ट्र धर्म-कार्यालय सदर बाजार लखनऊ से प्राप्त।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य.---- लेखक—डा० कमल कुलश्रेष्ठ, प्रकाशक—चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर, मूल्य ७।।)

डा० कमलकुल श्रेष्ठ लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ लगभग आठ वर्ष पूर्व प्रयाग विश्व विद्यालय के लिए एक थिसिस के रुप में प्रस्तुत किया गया था। लेखक ने हिन्दी प्रेमकाव्य की समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग करतेहुए मौलिक तथ्यों सहित सम्यक निरुपण किया है। प्रारम्भ में सूफी धर्म की उत्पत्ति और विकास को यथोचित विस्तार के साथ प्रस्तुत करते हुए हिन्दी प्रेम काव्य पर उसके प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। भारतीय आख्यानों ने भी किस प्रकार प्रेम काव्य को प्रभावित किया इसका भी वर्णन लेखक ने किया है। साहित्यिक द्रष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ न केवल पठनीय वस्तु है किन्तु खोज में रुचि रखनेवाले जिज्ञासुओं के लिए यह संग्रहणीय एवं हिन्दी अलोचना के स्तर को आगे बढाने वाली सामग्री है।

प्रगतिवाद की रूपरेखा—लेखक मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,मूल्य ७)

पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिवाद' को लेकर काफी बखेडा हुआ। अनेक द्रष्टियों से लेखकों और आलोचकों ने सोचा। पर गंभीरता का अंश अत्यल्प पाया गया। प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने विभिन्न पहलुओं के साथ ही उसके मूल श्रोतों तक जाने की चेष्टा की है। साहित्य को एक बडे दायरे में लेखक ने समझा है। उसने भारतीय संस्कृति की 'शवपरीक्षा' के साथ 'सबार उपरे मानुष सत्यताहर उपरे नाई को विशेष आग्रह के साथ प्रयुक्त किया है।

पुस्तक में भिन्न भिन्न विषयों पर ३७ लेखों का संकलन किया गया है। हिन्दी की वर्तमान प्रवृत्तियों के अतिरिक्त 'रविन्द्रनाथ का गोरा, शरतचन्द्र के उपन्यास, 'आधुनिक बंगला उपन्यास' विश्व साहित्य पर एक सरसरी द्रष्टि, उदयशंकर की कल्पना, 'आंद्रे-जिन्द, आदि विषयों पर भी उत्तम निबन्ध इस ग्रन्थ में देकर लेखक ने भारतीय विचार धारा को प्रगट करने का प्रयास किया है। पुस्तक छपाइ-सफाई की द्रष्टि से उत्तम है यह संग्रहनीय ग्रन्थ है।

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टेक्सटाइल मशीनरी पार्ट्स, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

विक्रम

28.66

कार्तिक

२०१०

सञ्चालक-सम्पादक

सूर्यनारायण व्यास

टेलिफोन—६००४५-४६ तार—श्रीनिवास बम्बई

श्रीनिवास कॉटन मिल्स

लिमिटेड, बम्बई

श्रीनिवास हाऊस, बाडवी रोड, फोर्ट, बम्बई. १

सुन्दर, कलापूर्ण तथा
टिकाऊ
कपड़ा, धोती, साड़ी, मलमल, लट्ठा,
पॉपलिन, वायल, चेक आदि बढ़िया माल !

हमारा 'नरेन्द्र छाप' भव्य लट्ठा पहिनें

श्री निवास मिल्स
में हर प्रकार का कपड़ा बनता है। कोरा, धुला हुआ, छपा हुआ, रंगा हुआ। सर्व प्रकार का माल विशेषता से बनाया जाता है।

बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली
कानपुर तथा अमृतसर
की मंडियों में श्रीनिवास के कपड़े की भारी मांग है।

मैनेजिंग एजन्ट्स
दि मारवाड़ टैक्सटाइल्स [एजन्सी] लि० बम्बई।

वार्षिक ६)

—:विक्रम:—

एक अङ्क ॥=)

विषयानुक्रमणिका

				पृ.सं.
व्यास उवाच	...	...	संपादकीय	१-१६
बसन्त-वन्दना	...	...	श्री मदनलाल वर्मा 'साहित्यरत्न'	
युग-प्रवर्तक महाकवि निराला !	...	...	श्री मोहनलाल गुप्त 'करुणेश'	
नगाधिराज की नम्रता	...	...		१७
यूनेस्को का भारतीय आयोग	...	...	श्रीयुत मौलाना आजाद	१८
अवंतिका के कवि गुलाबखां--रचित सुखसार ग्रन्थ	...	...	श्री अगरचन्द नाहटा	१९-२३
ऋतु-संहार	...	...	श्री मदनलाल जोशी साहित्य रत्न	२४
होलिकागीतम्	...	....	श्री कमलेश मिश्र,	२५
वसन्तोत्सव	...	...	श्री 'हरि'	
आकाश टूटा	...	...	श्री 'रावी'	२६-२७
आधुनिक कविता की भाषा	...	...	श्री प्रो. भगवंत शरण जौहरी	२८-३२
कलाकार कौन है ?	...	...	श्री रामचंद्र शुक्ल एम. एड. पी.	३३-३५
गीता और वेद	...	...	श्री रणछोडदास जी उद्धव	३६-३७
गरबरा गरबरी	...	...	श्री विश्वेन्द्र	३८-४०
परिचय परामर्श	...	...		४१-४४
काव्य विहार	...	...	श्री राजमाता शिवकुंवरी देवी	
"	...	...	कुमारी विद्यावती 'मालविका'	
"	...	...	श्री शक्र, नागेश मेहता	४५-४८

पत्र व्यवहार का पता— } " विक्रम"-कार्यालय उज्जैन [मालवा]

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड

स्थापना १९४१

केवल १,५०,००० की पूंजी से प्रारम्भ की गई कम्पनी के पास आज २७, लाख से ऊपर के असेटस हैं।

क्लेमस पेड—५ लाख के ऊपर

पॉलिसी की शर्तें उदार हैं

संरक्षक

हिज़हाईनेस महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर

मध्यभारत के लिये चीफ एजेंटों की आवश्यकता है !

धननूर सरफिरोज़शाह मेहता रोड
फोर्ट, बाम्बे।

विषेश जानकारी के लिए-श्री एच. एन.-
आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क
स्थापित करिये।

बेनीपुरी-ग्रंथावली

दस खंडों में

पहला खण्ड प्रकाशित हो गया !

पृष्ठ संख्या—६२२ : चित्र संख्या १०७

मोनो की साफ-सुथरी छपाई : रेक्सिन की सुनहरी जिल्द : तिरंगा नयनाभिराम आवरण !

इस खंड में बेनीपुरीजी की ये छः अनुपम कृतियां संकलित हैं—

१. माटी की मूरतें २. गेहूं और गुलाब ३. पतितों के देश में ४. लाल तारा

५. चिता के फूल ६. कैदी की पत्नी !

सुन्दर चित्रों से आभूषित किए जाने के साथ ही इन पुस्तकों के पाठ और क्रम में भी मौलिक संशोधन किये गये हैं, जिस कारण इनके कलेवर ही बदल गये हैं !

[मंगाकर देखिये, तो !] प्रति खंड का मूल्य—१२॥)

पूरी ग्रंथावली का अग्रिम मूल्य ❁ १००)

बेनीपुरी—प्रकाशन, पटना ६

संस्कृत कला, शिक्षा, ग्रामसेवा तथा समाज-विकास की संदेश-वाहिका

मासिक पत्रिका

सम्पूर्ण भारत के विचारकों, राजनीतिज्ञों, समाज सेवकों के आशीर्वाद से अभिषिक्त

—: भारती :—

प्रधान सपादक—हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

प्रबन्ध संपादक—हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान तथा हिन्दी के प्रसिद्ध सेवक श्री हरिहर निवास द्विवेदी

स्वतंत्रता दिवस २६, जनवरी १९५४ से प्रकाशित हो चुकी है

हमारे कुछ लेखक एवं कवि राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त, कन्हैयालाल मुंशी, डा० केसकर, डा० राधाकृष्णन, राजगोपालाचार्य, बालकृष्ण नवीन, रामाधारीसिंह दिनकर, राहुलसांकृत्यायन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, जे० सी० कुमारप्पा, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० मोतीचन्द, रायकृष्णदास, श्री सियाराम शरण गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, हरिकृष्ण प्रेमी, प्रो० रंगा, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, रामवृक्ष बेनीपुरी, मिश्रीलाल मंगलाल, सीताराम जाजू, श्यामलाल पांडवीय, डा० बूलचन्द श्रीप्रकाश, कुंजीलाल दुबे, आचार्य क्षितिमोहन सेन, उपेन्द्रनाथ अश्क, सूर्यनारायण व्यास, नरसिंह राव दीक्षित, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, प्रो० रामचरण, वीरेन्द्रकुमार जैन, आदि आदि।

कुछ विशेषताएँ

- ❁ उच्च कोटि के लेख
- ❁ हृदयग्राही कवितायें
- ❁ श्रेष्ठ कहानियां
- ❁ सुन्दर चित्र
- ❁ अत्यन्त श्रेष्ठ संपादन

† एजेन्सी के लिए आज ही लिखें—

† विज्ञापन के लिए लिखापढ़ी करें—

† वार्षिक मूल्य भेजकर ग्राहक बनें—

वार्षिक मूल्य ६) एक अंक ।।।)

व्यवस्थापक
भारती, नवप्रभात प्रेस, ग्वालियर

मध्यभारत, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षाविभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड २] कार्तिक सं० २०१० वि०, दिसम्बर सन् १९५३ [अंक २ पूर्ण सं० ७८

व्यास उवाच

नेहरूजी का नेतृत्व

निःसन्देह नेहरूजी नेता हैं, उनके प्रति जनता की अपरिमित श्रद्धा है, प्रेम है। वे झिड़कते हैं, आवेश के वश हो जाते हैं तब भी उनके इस रोष-आवेश को जनता दुलार करती है, उनका आदर करती है, लोगों को उनके हृदय की निर्मलता में असाधारण विश्वास है, उनकी ईमानदारी में आस्था है, उनके कार्य, उनकी निष्ठा में पूरा भरोसा है। नेहरूजी महान् हैं, विश्व की श्रेष्ट विभूति हैं, इसमें किसी को सन्देह नहीं। नेहरूजी की नीति में भी आशंका का अवसर नहीं, वे भारत के प्रतीक हैं, एशिया के आशा केन्द्र हैं। जग उनकी ओर निहारता है, उनके कथन में, उनकी कृति में उनकी सचाई में, उनकी मानवता में दुनिया तथ्य तोलती है। उनकी ऊँचाई में, निर्मलता में, उनकी ध्येय निष्ठा में कोई सन्देह नहीं करता, वे अथक परिश्रमी' हैं। उनके विद्युत् वेग, और कार्य-शक्ति को देख जनता उनके वार्धक्य पर आश्चर्य चकित बन जाती है, साथी थक कर चूर हो जाते हैं। वे कविवर रवीन्द्र के गीत के अनुसार 'एकला चलोरे' के उदाहरण हैं। एकाकी भी वे राष्ट्र के निर्माता, नव-भारत के सूत्रधार और सर्वस्व होते हुए भी मानव के निर्माता, कार्यकर्ता के निर्माता, नेता निर्माता नहीं हैं।

और गांधीजी

जिस प्रकार एक गांधी सच्चे शब्दों में भारत के निर्माता थे, उन्होंने हर प्रांत में हर नगर में ईमानदार, त्याग निष्ट, सेवा भावी कार्यकर्ता,-श्रमशील, कष्ट सहिष्णु, सच्चे लोगों को उत्पन्न किया, लाखों नेता, कार्यकर्ता

सैनिक, शासक उन्होंने बनाए और वे उनसे काम लेकर अपने को समरस रखते हुए, सूत्रधार बनाए हुए भी निर्लिप्त विरक्त रहे। हर क्षेत्र में, हर विषय में, हर दशा में उन्होंने मानव-मण्डली तैयार की, वे सहस्त्र बाहु ही नहीं अनेक कोटि चरण वाले थे, नेहरू जी के पीछे मानव प्रवाह बहने लगता है, लहरों की तरह लोगों का दिल उमंग में भर जाता है; किन्तु नेहरूजी को आत्म निष्ठा अपनी कर्तृत्व शक्ति में इतना विश्वास है कि वे अन्य पर अवलंबित नहीं रहना चाहते। फलतः सारे कार्य, सारी शक्तियाँ उन्हीं में केन्द्रित हो जाती हैं, और कार्यकर्ता अकर्मण्य, या बेफिक्र बन जाते हैं। यह दशा कांग्रेस में, शासन में सर्वत्र हो गई है। वे पार्टी में, पक्ष में-दलों में विश्वास नहीं रखते, इस कारण नेहरू निर्मल, निष्पक्ष अवश्य हैं, किन्तु इसीलिए नेहरू अकेले पड़ जाते हैं। वे अपने हाथों हजारों कार्यकर्ता, सफल नेता, शासक नहीं बना पाते। गांधी द्वारा निर्मित जनों में से ही अब तक उनको अपने सहायक निर्वाचित करना पड़ता है। इसी कारण देश में आज योग्य नेता-प्रमुख कार्यकर्ताओं का अभाव अनुभव होता है। जहाँ गांधीजी ने कुछ काल में देश के हर कोने में हर तरह के लोगों को बनाया, सिखाया, तैयार किया था और नेतृत्व सुपुर्द कर दिया था। स्वतः वे द्रष्टा-पथ-स्रष्टा और दर्शक बन कर तटस्थ हो जाते थे। वहाँ नेहरूजी स्वयं कर्म-कर्ता हो जाने के कारण वे किसी के निर्माण में अक्षम रहे हैं, यही कारण है कि आज उनके पास पुरानों की पूर्ति हो जाने पर नव निर्मित नीतिमान् जनों का अभाव अनुभव होने लगा है। सारा बोझ उन्हीं पर आ जाता है (जिसे उठाने में उन्हें आनन्द भी मिलता है) पुराने तपे हुए सच्चे लोग आज खुट से रहे हैं। मोतीलालजी नहीं, देशबन्धु नहीं, मालवीयजी नहीं, सरदार नहीं, और इधर ऐसे कोई उत्पन्न भी नहीं हुए, या निर्मित ही हुए कि पुरानों की सूझ, और शक्ति में समकक्षता कर सके, या देश का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर उठाने का साहस कर सके। यह समस्या लोगों की चिन्ता और विचार का विषय बन रही है, एक प्रकार से यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर है।

विकेन्द्रीकरण आवश्यक।

जब सारी शक्तियाँ एक स्थान पर केन्द्रित बन जाती हैं, उस केन्द्र के किसी प्रमुख पुर्जे के कमजोर हो जाने पर शेष सभी स्वाभाविक शिथिल बन जाते हैं। नगरों में लगे हुए लाखों लट्टू एक पावर हाऊस पर निर्भर रहते हैं, उसके फेल होने पर सर्वत्र अन्धःकार ही फैल जाता है, इसलिए शक्ति संग्रह को एक स्थान से विकेन्द्रित कर, अनेक क्षेत्रों में सशक्त, सक्षम बना देने की आवश्यकता है। पण्डितजी का आत्म विश्वास उनकी सर्वांगीण क्षमता की भावना (एवं शक्ति भी) इस व्यवहारिक-तथ्य की उपेक्षा कर, स्वयं में शक्ति-समुच्चय लिए अनेक शक्ति स्रोतों के निर्माण विकास में (प्रकाश में) रुकावट बन रही है। गांधींजी ने हर स्थान से तेजस्विता को खोज निकाला था, सवाँरा था, विकसित किया, और उपयोगी बनाया था, जिसके उदाहरण स्वयं पण्डितजी भी हैं, जिन्हें अपने समक्ष समस्त राजनैतिक उत्तराधिकार सुपुर्द कर सन्तोष समाधान की श्वास ली थी, किन्तु पण्डितजी के समक्ष आज यही प्रश्न प्रस्तुत है। उन्हें अपना भरोसा, दूसरे के भरोसे की भावना को भव्यता प्रदान नहीं कर पाता। इसलिए वह चक्कर काट कर उन्हीं के लिए भारभूत बन जाता है। वे हमारे लिए-समस्त राष्ट्र के लिए महान् हैं, किन्तु राष्ट्र के महान भावी के लिए उन्होंने कितने सक्षम-भविष्य-द्रष्टाओं (निर्माताओं) का निर्माण किया है? यह समस्या है। यह ठीक है कि हमारे यहाँ हर समय, उसके अनुरूप एक युग-पुरुष जन्म लेता रहा है, और वह मार्ग-दर्शन देता रहा है। समय आने पर सम्भव है ऐसीकोई शक्ति प्राप्त हो, और हमारी समस्या सहज सुलझ जावे, किन्तु आजतो हमारी चिंता मानव-सुलभ एवं स्वाभाविक है। हमें भावी के लिए कोई आशा केन्द्र दिखाई नहीं देता। अनेक विशाल योजनाएँ हैं बन रही हैं, निर्माण कार्य हो रहे हैं, मानव के सुख-समाधान उन्नति के लिए अधिक यत्न होरहे हैं, किन्तु उन सभी में नेहरूजी ही दिखाई दे रहे हैं, एक भी सरदार नहीं दिखाई देता, राजाजी नहीं दीख पड़ते। हम अवश्य लोक तंत्र के नागरिक हैं। हमारा विधान जनतांत्रिक है, पर क्या उस पर नेहरूजी के प्रभावशाली-व्यक्तित्व का "एकतंत्र" आरूढ़ नहीं है? इस व्यक्तितंत्र को आज अवश्य

हितकर, आवश्यक एवं श्रेयस्कर भी मानते हैं, किन्तु यही हमारे भविष्य के लिए चिन्ता का विषय भी बन जाता है, जब उसकी उचित पूर्ति के पथ में किसी सुयोग्य अधिकारी को आगे आता-बढ़ता नहीं देखते। अन्धःकार में प्रकाश की रेखा उदित होती दिखलाई नहीं पड़ती। व्यक्ति तंत्र में अन्य व्यक्ति-शक्तियों का विलय हो जाता है। जिस प्रकार भारतीय केन्द्र में राज्य सत्ताओं के विलय हो जाने से केन्द्र-शक्ति बलवत्तर बन गई, किन्तु उन विलीन सत्ताओं की समस्त शक्ति-सामर्थ्य केन्द्र में जाकर केन्द्रित हो गयी। इसी तरह व्यक्तियों की स्वतन्त्र शक्ति का नेतृत्व नेहरूजी की प्रचंड-शक्तिमें केन्द्रित हो जाना व्यक्तिके अस्तित्वका विलयन ही तो है। विकास का अवसर तो तभी प्राप्त हो सकता है जब उस शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाए, उपयोगिता को स्वीकार किया जाए और विकसित किया जाए।

जय-गणतन्त्र !

भारत के स्वतंत्र होंने के ६ वर्ष बाद गणतंत्र-दिवस के पंचम-वर्ष के आरंभ में २६ जनवरी को जो उत्सव समारंभ, उत्साह दृष्टि गोचर हुआ उसके पूर्व नहीं हुआ था, अवश्य ही यह समाधान की बात है। जन मानस के इस परिवर्तन में अपने राष्ट्र की प्रगति में आस्था की भावना के दर्शन होते हैं, निराशा की तमिस्रा में आशा के अरुणोदय को हम भावी का शुभ लक्षण अनुभव करते हैं। अवश्य ही हमने अभी तक स्वाधीनता के वास्तविक स्वरूप को सामूहिक रूप से नहीं समझा है। शासन की शिथिलता के कारण उसके अस्तित्व और महत्व का उचित अनुभव नहीं किया है। भ्रष्टाचार की भीषणता ने हमें भयग्रस्त बनाया है। पक्षपात प्रपंच, और पार्टी बंदी ने हमें पीड़ितभीकियाहै क्षुद्र-भावनाको ऊपर उठते देख विवेक विकार ग्रस्त बना है। व्यापार, व्यवहार में विवशता व्याप्त हुई है। असन्तोष अविश्वास ने सूझ समझदारी समंजसता को सिमटाया है। बेकारी की करालता ने बुद्धि को भ्रमित किया है। ज्ञान-विस्तार के प्रचार ने अज्ञानता-अविवेक, और उच्छृंखलता को उत्साहित किया, यही कारण है कि हमने स्वाधीनता को स्वच्छंदता में सिमटा कर सुख-समाधान के साधनों को साध्य करने में शिथिलता की है। यह भी सत्य है कि हमारा नेतृत्व जनता से दूर पड़ गया। और उसके असन्तोष का मनोवैज्ञानिक विवेचन वह वास्तविक रूप से कर नहीं पाया। वह वाणी विस्तार, प्रचुर-प्रचार स्वागत समारम्भों में सीमित हो, शासन के वास्तविक-धर्म-कर्म से भी दूर पड़ गया, इसी तरह जितना यश, कीर्त्ति, प्रतिष्ठा हमने विदेशों में, विदेश-नीति में प्राप्त करने में अपनी शक्ति को व्यय किया। उतना अपने आन्तरिक असन्तोष को समझने में नहीं किया, निःसन्देह हमने करोड़ों-अरबों की योजनाएँ स्वीकृत कीं, उन पर कार्य भी किया, किन्तु उसका तात्कालिक-लाभ सुलभ न होने से केवल भविष्य की आशा में प्रस्तुत-पीड़ा को कैसे निवृत्त किया जा सकता है ? तथापि हमने इन ६ वर्षों में अनेक संकटों, संघर्षों में, आन्तरिक और बाह्य विपत्तियों में अपने को समझदारी से सुरक्षित बनाए रखा है। प्रकृति के प्रहारों में भी 'बंगाल के-अकाल' की पुनरावृत्ति नहीं होने दी है। लाखों प्रताड़ित-पुरुषार्थियों को अपरिमित धन राशि व्यय करके सुरक्षित सुव्यवस्थित बनाने में सीमोत्तर-साहस का परिचय दिया है। अनेक आन्तरिक-विषमताएँ जो स्वाधीनता को समेटने का साहस-संचय कर रही थी, उन्हें समाप्त किया है। अनेक सीमाओं, सामन्तों में विभक्त-विवश भू-भागों को सूझ और शक्ति से एक सूत्र में ग्रथित किया है, अपनी अर्थ व्यवस्था को सन्तुलित बनाया, अनेक निर्माणकारी कार्य आरम्भ किए, बहुत-सी गवेषणा शालाओं का नव-निर्माण हुआ, सैनिक वैमानिक-यांत्रिक साधनों की समृद्धि और निर्माण में प्रगति हुई, देश के विभिन्न-भागों की विविध समस्याओं, संकटों, संघर्षों पर विजय प्राप्त की। इन्हें स्वल्प समझना या उपेक्षित करना सम्भव नहीं। ये असाधारण सफलताएँ हैं। हम सुदूर चीन की सफलता को, रूस की प्रगति को दूर बैठकर सराहते हैं, वे जादू के देश नहीं है, सम्भव है १५० वर्ष की पराधीनता ने हमारी आत्मा को कुचलकर मनोबल में कमी की हो, परमुखापेक्षिता प्रेरित की हो, परन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि चीन-रूस के शासन तन्त्रों में एकाधिकार का वर्चस्व है, अंकुश है आतंक है, और हमारा आरम्भ सर्वथा सामूहिक-जनतंत्र से है। यह अन्तर असाधारण है, इस अन्तर को समझनेवाले चीन-रूस भारत के तंत्रों की सफलता-विफलता शिथिलता का तौल

कर परखे-निरखें तो वास्तविकता को प्राप्त कर सकेंगे, यह हम स्वीकार करते हैं कि हमारी दलगत-राजनीति ने केन्द्र और कतिपय प्रांतों को छोड़ कर अन्य राज्यों में बुद्धिवाद को उपेक्षित कर, जिस अनुभव हीनता और अज्ञानता को अधिकार का अवसर दिया, उसने असन्तोष और अविश्वास को अधिक भड़कादिया है। अयोग्यता को प्रश्रय दिए जाने के कारण अल्पमत-योग्योंका असंतोष अशांति का अधिक कारण बन जाता है। इस अल्प-मत की उपेक्षा ने शासन-क्षेत्र में असफलता को आमंत्रित किया है। इस मनोवैज्ञानिक असंतोष को अबतक न तो केन्द्र ने अनुभव किया है, न नेतृत्व ही ने। इस स्थिति के रहते हुए भी गणतंत्र के इस पंचमाब्द समारम्भ में जनता ने, विभिन्न प्रांतों ने जो उत्साह, आनन्द की अभिव्यक्ति की है, वह वास्तव में शुभचिन्ह हैं! दिल्ली बम्बई का उत्सव-उत्साह 'प्रेरणा प्रद रहा है, और भागों में भी जनमनोवृत्ति के मंगलमय परिवर्तन के दर्शन हुए हैं, यह स्वागत योग्य है। उज्वल भविष्य के सूचक हैं। हमारे इस महान् राष्ट्र के लिए स्वतन्त्रता दिवस,-गणतन्त्र दिवस का महत्व दशहरे दीपमालिका की परम्परा की तरह पर्व प्रसंग है। यह विपत्ति में भी हमारे लिऐ उत्साह प्रेरक बन जाना चाहिए। इस राष्ट्रीय-पर्व पर हमारी आपत्ति के आंसू आँखों से क्यों न बरसे, पर अधरों पर आनन्द की अभि-व्यक्ति आवश्यक है।

उज्जैन में—

उस रोज हमने उज्जैन में अनुभव किया कि जनता ने उत्साहपूर्वक इस पर्व को मनाया, अनेक आयोजन हुए, नगर में आनन्द का वातावरण बना। अनेक सभा-संस्थाओं ने इसमें योग लिया, अवश्य ही उस रोज समस्त शिक्षण-संस्थाओं ने सामूहिक रूप से एकत्रित हो एक स्थल पर अपना अभिनन्दन-उत्सव-सम्पन्न किया, यह सूझ की बात थी। हम 'शिक्षा अधिकारियों की इस सूझ की सराहना करते हैं। रात्रि को महाराजबाड़ा विद्यालय में सफल सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ, विशेष रूप से कामायनी के मनु और श्रद्धा का रूपक, और साकेत के राम-वनवास का दृश्य जो गम्भीर, गूढ़ और उच्च साहित्यिक होते हुए भी इतनी सरलता, सरसता और भाव प्रदर्शन के साथ प्रस्तुत किया कि जनसाधारण भी उसके परिणाम से प्रभावित हुई, वस्तुतः कन्या विद्यालय की बालिकाएँ विशेष रूप से जुशी बालिकाएँ, इस सफल अभिनय के लिए अभिनन्दन की अधिकारिणी हैं, ग्वालियर में भी शिक्षा विभाग ने जो ऐतिहासिक दृश्य प्रस्तुत किए वे आकर्षक और महत्वपूर्ण ही नहीं सुरुचि प्रेरक भी हुए हैं, उसी प्रकार देश के अनेक भागोंमें आयोजन उत्साहवर्धक हुए हैं, कई नगरोंमें दीपमालाओंसे, ध्वजापताकाओं से आनन्द व्यक्त हुआ, परन्तु ये दीपमालाएँ मानवके मुर्झाए हुए मनको ज्योतिर्मय बनाए, हृदय को हर्षोल्लास से भरदे तभी वास्तविक स्वतन्त्रता का उद्देश्य पूर्ण होगा। परंतु यह केवल आलोचना से, या अनेकता से सम्भव नहीं, हमें अपने महान् राष्ट्र की संस्कृति परम्परा के अनुरूप, सत्य-संकल्प के साथ महान् ध्येय की पूर्ति के लिए, सर्वांगीण विकास के लिए, रागद्वेष, भेद-भाव रहित हो कर्मनिष्ठ होना पड़ेगा। तभी हम सुखी, स्वस्थ, समृद्ध बन संसार में समुन्नत हो सकेंगे।

जय गणतन्त्र ! जय भारत !!

और ३० जनवरी !

जहां २६ जनवरी हर्ष, उत्सव, और राष्ट्रीय पर्व का ऐतिहासिक दिन है, वहां ३० जनवरी हमारे लिए प्रायश्चित्त का स्मृति दिन है। उस दिन हमने भारत के हृदय में अपने ही हाथों गोली से गहरा छेद कर अपने सिर पर अमिट कलंक लगा लिया है। गांधी जैसी विभूति को खोकर भारत के गणतंत्रके गौरव को गिरा दिया है किन्तु क्या गांधी मर सकता है ? गांधी तो अमर हो गया है, जिस गांधी ने ईशोपनिषद् को आत्मसात् किया, गीता की स्थित-प्रज्ञता को अपना आदर्श बनाया वह आत्मा अमरताको पहुँच जाती है, स्थित प्रज्ञ की परिभाषा का दुनिया में शायद दूसरा कोई उदाहरण मिले जैसा गांधी है, वहगांधी किसी भी योगी, और महा मानव से किसी प्रकार कम नहीं। ऐसी विभूतियां पंच-भौतिक नाशवान्

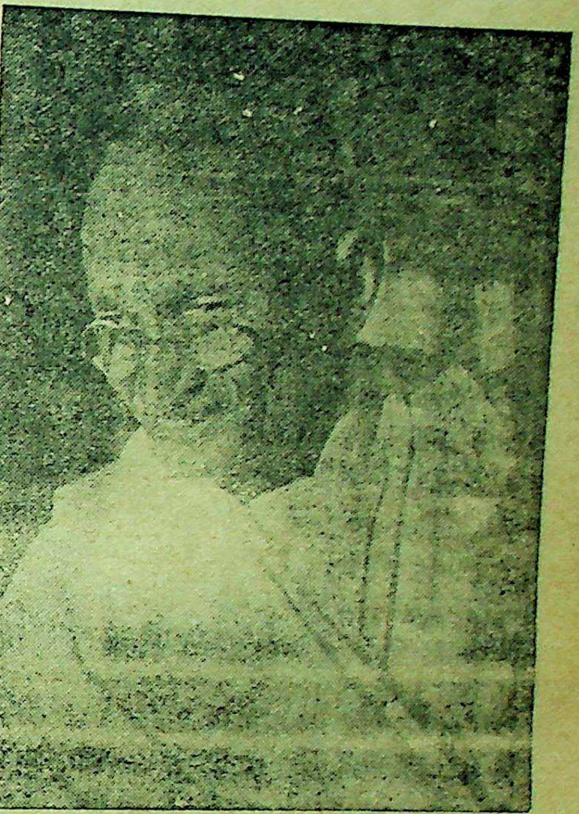

राष्ट्रपिता बापू; जिनका कि ३० जनवरी को निधन हुआ

शरीर से चाहे हमारे समक्ष दिखाई न दे पर वह यशः शरीर से कोटि-कोटि जनोंके पथ को प्रकाशमय बनाती रहती है, राष्ट्र की प्रत्येक आत्मा में उसका आवास रहता है, कुछ लोगों ने ३०जनवरीको गांधीकी‘बरसी’ कही है, यह अनुचित है। बरसी शब्द अपने आपमें बहुत निम्न स्तर का है, ऐसे वीर, विरक्त महाकाय मानव के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाता। राम कृष्ण बुद्ध के लिए यह उपयोग में नहीं लिया जाता, ‘महानिर्वाण-दिवस’ अवश्य उचित है, जो जीवित रह कर मृतः प्राय मानवतामें प्राणप्रेरित करता रहे उसको मृत्यु स्पर्शकर स्वयं मर जाती है, और वह स्वयं अपनी अंतिम-ज्योतिसे भी शतियों तक मानवताको मृत्यु से बचाता रहता है। अपने प्रकाशसे जग को दीप्तिमय, ज्योतिर्मय बनाता रहता है। जो ज्योति गांधीके जीवन में केन्द्रित रही, वह उसके अभाव में प्रत्येक के जीवन में उस में स्वयं व्यापक विस्तृत हो जन जनकी आत्माको आलोकित करने वाली बनगई है। देह को जरा-यौवन होता है,यह स्वाभाविक धर्म है, पर देहांतर प्राप्ति की क्षमता रखने वाली आत्मा अमर रहती है,। गांधी तो चिरअमर, चिर वंदनीय विभूति बन गया है, देहांतर प्राप्ति का दिन हमारे लिए पवित्र पर्व पूजा का दिन है आत्मावलोकन चिंतनका दिन है,सदियों के घिरे अंधःकार ने हमारे अंतर में ऐसी कालिमा फैलादी है कि हमें अपनी आत्मा का रूप भी ठीक दिखाई नहीं दे रहा है। उस तमिस्रा में ज्योतिर्मय गांधी की दी हुई एक किरण अपने रूप को समझने में सहायक बन जाती है, उस प्रभा-पुंज को चाहे हम उचित नहीं पहचान पाए हों, पर उसके प्रकाश से अपने को विश्व में आलोकित पाकर हम अपनी धन्यता अनुभव कर रहे हैं। वह दीपक आज हमारे समक्ष नहीं है, परन्तु उस की दिव्य ज्योति हमें जीवन दर्शन दे रही है, देती रहेगी, हम उस ज्योति को सादर अभिवादन करते हैं।

नेहरू जी का प्रेरक-प्रवचन !

कल्याणी-कांग्रेस के प्रस्तुत अधिवेशन के समय राष्ट्र प्रधान पं नेहरूजी ने जो प्रवचन किया है। वास्तव में इसदेश के लिये ही नहीं विश्व के समस्त राष्ट्रों के लिये प्रेरक एवं राजनैतिक महत्व का है, अवश्य हमारे देश की समस्याओं पर उनकी प्रेरणा हम तक ही सीमित रहती है, किंतु उसका नैतिक महत्व अन्य देशों के लिए भी है। और जब वे विदेश नीति और अन्तरराष्ट्रीय राजकारण पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं, तब वह एक खुले दीमाग और निर्मल हृदय के व्यक्ति का स्पष्ट और उचित मार्ग दर्शन ही हो जाता है। यद्यपि हम उनके विचारों से मतभेद रख सकते हैं, सर्वांश में चाहे सहमत न हों, आलोचना का भी अधिकार रखते हैं, तथापि उनके विचारों की विमलता, पृथक्करणों की स्पष्टता, निर्भयता और स्थिति का सही संतुलन हमारे लिए ही नहीं, दुनियां के लिए अवश्य मनन करने को विवश बना देता है। क्योंकि उनका व्यापक ज्ञान, दीर्घ अनुभव,

संतुलित दृष्टि, और सक्रिय-उत्तरदायित्व निर्वाह करते हुए प्राप्त दूरदर्शी विचार शांति और व्यवस्था की तीव्र भावना, सभी के लिए उपादेय एवं हितकर ही हो सकता है, उन्होंने भावी खतरे की ओर संकेत कर जो सूत्र रूप में सूचना, और सावधानी का संकेत किया है। वह विश्व की आंतरिक-स्थिति के एक सूक्ष्म-निरीक्षक का भविष्य कथन है, इसे हमें गंभीरता से समझ लेने की आवश्यकता है। इसी तरह पाकिस्तान और अमेरिका की कथित संधि के परिणामों के विषय में भी उन्होंने एक विपक्षी, या पूर्व ग्रह-दूषित व्यक्ति की तरह नहीं, ईमानदार मित्र, और भयानुभव करने वाले सच्चे तटस्थ निरीक्षक की तरह जो स्पष्ट अभिमत व्यक्त किया है ? वह यदि अमेरिका, और पाकिस्तान सही स्वरूप में समझने का प्रयास करें तो उसके लिए ही अधिक उपयोगी होगा क्योंकि पंडितजी ने विश्व की राजनीति पर विषय विवेचना करते हुए बतलाया है कि किस प्रकार सारा विश्व दो शक्ति शाली विरोधी गुटों में विभाजित होता जारहा है। और लोकतंत्र की रक्षा के नामपर उसी की जड में कुठाराघात करने वाला सिद्ध हो सकता है। इसी कारण पंडितजी ने भारत की जिस तटस्थ नीति को निभाया है, और निभाते जा रहे हैं वह अपने में असाधारण महत्व रखती है। इस नीति की क्षमता और शक्ति के महत्व को राजनीतिज्ञों को मानने को विवश होना पड़ा है। पडितजी की इस नीति ने कुछ सफलता भी प्राप्त की है। अपनी स्वतंत्र-महत्ता स्थापित की है। कोरिया युद्ध के सीमित बनादेने, समझौते के समीप लादेने में इसी नीति ने विश्व संकट को फिर तुलते हुए रोका है। जो देश सुसगठित, और अपने बल पर ही खड़ा रहता है वह अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रख सकता है। उसे अमेरिका के पूंजीवाद या, रूस के साम्यवाद पर अवलंबित बन कर अपनी स्वतत्रता को खतरे में नहीं डालना चाहिए पंडितजी ने राष्ट्रीय एकता की परिभाषा समझाते हुए कहा है कि राष्ट्रीय शक्तियों का विकास करना ही उसकी एकता है। हमें अपनी ताकत के बल पर ही अपनी शक्तियों को विकसित करना है दूसरों पर आधार रखनेकी आवश्यकता नहीं परावलंबन सब दृष्टि से अनिच्छनीय है। उन्होंने धारा सभा के सदस्यों के उत्तर दायित्व पर संकेत करते हुए कहा- ये प्रजा के हितों के प्रहरी हैं, लोगों की आवाज के उद्घोषक है, वह जब निर्वाचित होकर धारा सभा में आता है, तब वह अपने मत प्राप्त विभाग के केवल एक पक्ष का ही नहीं सभी मतदाताओं का, अपने राज्यका और राष्ट्र का प्रतिनिधि बनजाता है इसलिए उसका उत्तरदायित्व बहुत बढ जाता है। काश, पंडित जी के विचारों का ये सदस्य वर्ग सही अनुकरण करें और समझ सकें तो आज जो हमारी दुर्दशा है उसका एक दिन अंत आसकता है। पंडितजी ने लोक-जीवन के स्तर को ऊपर उठाने, समानता, और सामाजिक न्याय के विकास साध्य करते, बहुत कुछ करने की सूचना करते हुए, अणुयुग में जीवित रहने वाले लोगों को, उनपर इतिहास, और भूगोल ने जो महान उत्तर दायित्व डाल दिया है, याद दिलाते हुए कहा है कि-हम भूगोल की उपेक्षा नहीं कर सकते, न उसे पलट ही सकते हैं, दक्षिण-एशिया में भारत का जो स्थान-भौगोलिक दृष्टि से बना हुआ है, और उसने

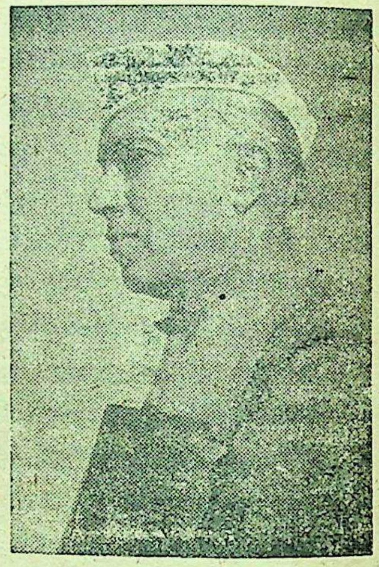

जो जबावदारी हम पर डाली है, उससे हम कर्तव्य बद्ध हैं, उसे निर्वाह करना ही होगा। उन्होंने बतलाया कि हमारा देश लोकतांत्रिक है। इस ध्येय की सिद्धि में हमें साधनों की पवित्रता को विस्मृत नहीं करना चाहिए। यदि उसे भुला दिया तो कठिनाई के बीज उसमें प्रच्छन्न हैं। हम भय के बीच जीना नहीं सीखे हैं। किसी भी देश की ओर से आक्रमण हो सकता है, इस भय से हम डरेंगें नहीं। यदि दुर्भाग्य से ऐसा कोई आक्रमण हो ही गया तो हम अपनी समस्त शक्ति से उसका सामना करेंगें।

एशिया के बहुत से भागों से उपनिवेशवाद क्रमशः उठता जा रहा है। यह प्रवाह समस्त उपनिवेशों के अंत करने पर ही रुकेगा, पर हाल ही में इन ऐतिहासिक प्रवाहों को पलटने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। यह प्रतिगामी प्रवृत्ति बडी भयंकर विनाश सर्जित कर सकती है।

इस प्रकार पंडितजी का समस्त प्रवचन अत्यन्त विचार प्रेरक और सामयिक है। हमें विश्वास है, कल्याणी की यह प्रेरणा विश्व के राजनीतिज्ञों को क्षण भर अंतर टटोलने को विवश करेगी।

ज्ञान की दुर्दशा!

हाल ही में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने अपनी पंच-वर्षीय प्रगति का लंबा लेखा-जोखा प्रकाशित-प्रचारित किया है। और अपनी सफलता के लिए अपने ही हाथों पीठ ठोंक ली है। इसके विपरीत स्वतन्त्रता के पश्चात् बीते-पांच वर्षों में शिक्षा की जो दुर्दशा हुई है, जितनी अनुशासन हीनता उच्छृंखलता और अज्ञानता बढ़ी है, उतनी पिछले कई वर्षों में देखी नहीं गई, अवश्य ही संख्या वृद्धि के लिए फैलाव बढ़ गया है, व्यय विस्तार भी हो गया, है, और बेकारों की भर्ती भी हो गई है, किन्तु शिक्षा के वास्तविक हेतु की प्राप्ति की ओर रत्तीभर भी प्रगति हुई प्रतीत नहीं होती। मानों ज्ञान का विकास अवरुद्ध हो गया है, निरंकुशता की अनुदिन अभिवृद्धि हो रही है। अज्ञान का अंधेरा हीं फैलता जा रहा है। पंचवर्षीय योजना में एक अरब की रकम रखी गई है। उसमें लाखों जामिया-मिल्लिया के लिए अवश्य सुरक्षित होंगे ज्ञान कोष की तरह कोई अज्ञान सागर संभव है नवनिर्मित हो। जिस शिक्षा विभाग के लिए पार्लमेंट में पुकार लगरही हो, राज्य परिषद् में असंतोष व्यक्त हो रहा हो, और देश भर में उसकी असफलता का आक्रोश मचरहा हो, वह यदि अपनी सफलता का ढिंढोरा पीटकर उस असंतोष पर अज्ञान का आवरण डालने का प्रयासकरता हो तो उसका क्या महत्व या मूल्य माना जा सकता है। पांच वर्ष में शिक्षा के किस क्षेत्र में स्तर बदला है? कौनसा ठोस परिवर्तन साध्य किया गया है। कितनी भारतीयता को शिक्षा में प्रवेश पाने का अवसर मिला है? अवश्य ही प्रतिवर्ष शिक्षितों के परीक्षण के समय होने वाली अज्ञानता की पराकाष्ठा ने उसकी सारी 'प्रगति' की अवगति को प्रकाश में लाकर रखदिया है। हालही का उदाहरण है, मद्रास के पब्लिक सर्विस कमीशन के समक्ष अनेक शिक्षित कहे माने जाने वाले लोगों ने अपने ज्ञान का दयनीय दीवाला प्रकटकिया है। स्वयं कमीशन ने अपने प्रतिवेदन में उन ज्ञानियों की मूर्खता पर प्रकाश डाला है जिसके नमूने इस प्रकार हैं।

१. रणजी ट्राफी-सिर पर पहनने का एक वस्त्र है। जिसे किसी राज्य का शासक पहनता है।

२. सुब्रह्मण्यम्-भारती-एक सुप्रसिद्ध महिला है।

३. एनी बेसेंट—दुनिया का सबसे बड़ा गिरजा है।

४. एडल्ट फ्रेंचाईज (वयस्क मताधिकार) मिश्र का राजा था।

५. वयस्क मताधिकार-वृक्षारोपण की एक प्रणाली

६. नैनीताल-आफ्रीका में है।

७. शान्ति निकेतन—पूना में हैं, उसके संस्थापक महात्मा गांधी थे।

जिस शिक्षा का यह ज्ञान परिणाम हो, योग्यता की ऐसी दीवालिया-दशा हो, उस ज्ञान के देने वाली शाला, शिक्षक और उसके संचालन पर गर्व करने वाले अधिकारी यदि सफलता का ढिंढोरा पीटे तो लज्जा की और बात क्या हो सकती है? धिक्कार किसे दिया जाना चाहिए! यही ज्ञान है जिसे आज का शासन गर्व से प्रसार कर रहा है। बढ़ावा दे रहा है और धडल्ले से इसी की शाखा प्रशाखा बढ़ाए

कविवर निराला, जिनका हाल ही में देशभर में सोत्साह जन्मदिवस मनाया गया।

जा रहा है। न तो विचार का विकास होता है न स्पष्ट अभिव्यक्ति की शक्ति सुलभ हो पाती है इस प्रणाली से हमारे राष्ट्र की ज्ञान-शक्ति का कैसे उन्नयन होगा, कैसे मनोविकास होगा, कैसे आत्मोन्नति साध्य होगी? क्या हम इसी स्तर के ज्ञान पर गर्व करने का दम्भ कर रहे हैं? इसका उत्तरदायित्व किस पर है? यदि यह हमारी ज्ञानोन्नति है, तो अधोगति की परिभाषा क्या की जायगी? पंचवर्षीय ज्ञानोन्नति (?) का यह प्रदर्शन इस बात का प्रमाण है कि हमारे राष्ट्रीय ज्ञान की दुर्दशा किस सीमातक हो गई है। स्वयं केन्द्रीय शासन के एक जुम्मेदार उपमन्त्री डा० केसकर ने अभी कलकत्ता की युवक कांग्रेस के अधिवेशन पर देश के युवकों में छाए हुए निरुत्साह का कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बतलाया है। यह शिक्षा मंत्रालय को उसी शासन के एक अंग द्वारा उपयुक्त प्रमाण पत्र (?) ही है। आज की शिक्षा के विषय में उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्री मुंशी जी ने अपने दिल्ली ब्राडकास्ट भाषण में बतलाया था कि न कोई योजना है, न रूप रेखा न दिशा निर्धारण, न निर्देश या नेतृत्व न कोई निश्चित लक्ष्य, जहां शिक्षा का यह हाल हो कि लक्ष्यहीन, निरुद्देश्य नैतिकता से दूर, वहां क्या आशा की जा सकती है? आज की शिक्षा डिग्री देने वाली संस्था है, जहां से जिस किसी प्रकार डिग्री पाकर नौकरी पाने के 'माध्यम' को लेकर एक अविकसित पठित मूर्ख छात्र दर-दर भटकने को मुक्त बन निकल पड़ता है। उसके ज्ञान के स्तर का कोई मूल्य नहीं होता, परीक्षा प्रणाली का इतना पतन हो गया है कि वहां मानव का मूल्य डिग्रियों की दौड़ में पराजित होकर कौडी की कीमत का बन गया है। जिस शिक्षा से भारतीय संस्कृतिका पुनर्जागरण न हो, नैतिकता की भावना न जग सके, मर्यादा का मूल्य न मिल सके उस शिक्षा के व्यर्थ विस्तार से अपव्यय तो बढ़ता जाएगा, पर राष्ट्र का भावी कभी उज्वल नहीं बन सकेगा।

शिक्षा मंत्रालय का नया भ्रमजाल !

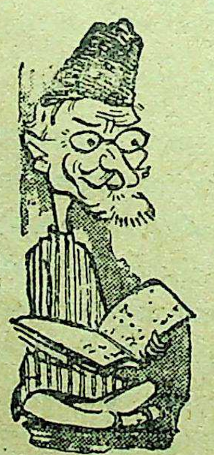

भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालय के विरुद्ध जब-जब आवाज उठती है तब उस आवाज को दबाने के लिए एकाध आकर्षक विज्ञप्ति प्रकाश में आजाती है, और जनता उससे भ्रमित होजाती है। बहुतसमय समय हुआ एक साहित्य-एकेडेमीकी स्थापना की घोषणा की गई थी। उस घोषणा के बाद आजतक उसके किसी स्वरूपकी कल्पना प्रकाश में नहीं आई, कार्य का तो फिर प्रश्न ही क्या हो सकता है, इसी प्रकार दूसरी बार उत्कृष्ट हिन्दी-ग्रंथों, अनुवादों के लिये बड़े-बड़े पुरस्कारों की घोषणा की गई, परन्तु हमने अभी तक नहीं सुना कि इनमें से कौनसा पुरस्कार किसी को मिला है! न कोई कमेटी की सूचि ही देखने सुनने को मिली है। अभी जब राज्य परिषद, और लोक सभा में शिक्षा मंत्रालय के

विरुद्ध तीव्र आलोचनाएं हुईं, असफलता का अभियोग लगा तब, हाल ही में लोकप्रिय साहित्य सृजन के लिए सरकार द्वारा प्रोत्साहन देने की एक और आकर्षक घोषणा प्रसारित हो गई है। इसमें उत्तम साहित्य लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए उनकी रचनाको सरकार खरीदेगी, तथा प्रथम वर्ष २० पुरस्कार भी प्रदान करेगी, इसी प्रकार प्रादेशिक भाषाओं की पुस्तकों के अनुवादों आदि पर पुरस्कार भी दिया जावेगा। ऐसी कईबातें इस विज्ञप्ति में बतलाई गई हैं, और इस योजना की देखभाल के लिये प्रो० हुमायूँ कबीर की नियुक्ति की गई है, उनके साथ वित्तमन्त्रालय, सूचना प्रसार मन्त्रालय, तथा सामूहिक योजना प्रशासक के प्रतिनिधि होंगे, और तीन गैर सरकारी सदस्य भी रहेंगे; लेखकों को प्रकाशित अपनी पुस्तकों की ४-४ प्रतियां, तथा हस्तलिखित पांडुलिपियों की ३-३ प्रतियां भेजना पडेगी, इतना ही नहीं दक्षिणा स्वरूप प्रकाशित रचना के साथ ५ रू. और लिखित रचना से साथ ३ रू. की खजाने की रसीद भी जुड़ाना पड़ेगी। इतना सब कुछ करना पड़ेगा केवल ३२ या अधिक से अधिक ४८ पृष्ठों की पुस्तक के लिए। जिन की श्रेष्ठता विशेषता, उपयोगिता का निर्णय करेंगे —हुमायुँ-कबीर के वर्चस्व में कार्य करने वाले सदस्य? काश, और योजनाओं की तरह यह कागजों में दबी न रही, तो स्वस्थ, साहित्य के लिए इसकी आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। किंतु उसका कार्य हो, उसमें निष्पक्ष पातिता रहे उपयुक्त निर्वाचन हो, सत्साहित्य का निर्माण हो तभी इस योजना का उपयोग एवं, महत्व हो सकता है।

हम शिक्षा मंत्रालय की पिछली घोषणाओं का स्वागत कर चुके हैं, परंतु फिर कहीं उसका नाम-काम नहीं सुना, उसी स्वर में यदि स्वागत कर इस नई घोषणा के भविष्य के लिए भ्रांत बनने का अवसर आया तो मनस्ताप के सिवा क्या होगा शिक्षा मंत्रालय की असफल परम्परा ही इस भ्रम का कारण है, उसकी कई घोषणा हुई है, योजना बनी है, और प्रो० हुमायू कबीर के कबीले में कहीं, गायब होकर ही रहगई है। फिर अर्सेके बाद एकाध प्रकट हुई है, तो वह जामिया मिल्लिया के जनान खाने से जिन्होने लाखों की लागत लेकर विश्व कोष जैसी विशाल वस्तु कों किराए के हिन्दी लेखकों को लेकर नजाने कैसे, कब तैयार तक करदी, और हिन्दी के प्रख्यात-पुरुषों को कानों कान खबर भी नहीं पडी। इसी तरह एकेडेमी, पुरस्कार घोषणा आदि मंत्रालय के कागजों में दबी होगी और एक रोज उसका भी कोई विकृत स्वरूप सामने आजाएगा। फिर चाहे जनता में असंतोष हो, अफसोस हो। किन्तु यह असफल मौलाना का मंत्रालय, और उनका सहायक मण्डल समय समय पर ऐसे भ्रमजाल फैलाकर जनता कों आकर्षित, भ्रमित बनाकर मौन अवलंबन कर लेता है। यही उसकी अभी तक की परम्परा है। हम यह यहाँ स्पष्ट करदेना आवश्यक समझते हैं कि हमारे मन में मौलाना आजाद के प्रति सद्भाव है, आस्था है, उनकी सेवा, योग्यता राष्ट्र के प्रति बलिदान भावना का हमारे मन में आदर है। उनकी तेजस्विता, कर्तव्य निष्ठा और कठिन काल में किए हुए सफल नेतृत्त्व को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। परंतु वे शिक्षा मंत्रालय के असफल मंत्री सिद्ध हुए हैं, उनका सहकारी मण्डल असंतोष का कारण बना है, वे अपने इस लंबे कार्य काल में कोई प्रगति नहीं कर सके हैं, हमारी आलोचना इसी सीमातक सीमित है, उनके प्रति आदर रखते हुए भी हमें दुर्भाग्य वश उनकी असफलता की आलोचना करने को बाध्य बनना पडा है। शिक्षा-विभाग को लेकर वे तेजस्विता खोरहे हैं। इससे उत्तम यही है कि वें इस मंत्रालय से अपने को मुक्त करलें, राष्ट्र और राष्ट्र की शिक्षा के लिए ही नहीं, उन के व्यक्तित्व के लिए भी यही हितकर होगा।

घाघ-भड्डरी की उक्तियां कसौटी पर—

दीर्घ काल से इस देश में घाघ और भड्डरी नामक लोक-भाषा के पंडितों की उक्तियां जनसाधारण में विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक प्रचलित हैं, किसानों के हृदय में इन उक्तियों ने घर-बनालिया है। और वे उनके जीवन में उपयोगी बनी हुई है। भड्डरी के कथन का आधार वराहमिहिर जैसे आचार्य का संहिता ग्रन्थ है। और उन पर अनुभव की छाप भी। कृषि-वर्षा, अनाज की उपज, लाभ-हानि संबंधी उक्त उक्तियां ज्योतिष के सिद्धांतों पर आधारित हैं, और वे प्रयोग में सत्य सिद्ध होने के कारण ही किसानों की कण्ठ हार बन गई हैं।

ये लोक भाषा में होने के कारण हिन्दी-गुजराती, राजस्थानी प्रदेश में गांव-गांव में समान रूप से प्रचलित हैं। किसानों को इसमें आस्था रही है। दीर्घकाल से चली आने वाली इन उक्तियों में यदि सत्य का समावेश न होता तो ये कभी की नष्ट हो गई होतीं। किन्तु इनमें सूझ से भरे हुए संकेत हैं, निश्चयात्मक वाणी में प्रतिपादित सिद्धांत हैं। और उनका आधार ग्रह नक्षत्र वातावरण, शकुन, आदि तो है ही, परंतु लंबे समय से उनके प्रमाणित होते रहने के कारण उनका विशिष्ट महत्व भी है। घाघभड्डरी ने सहज-सरल-भाषा में सूचक संकेत दिये हैं, कृषिकारों ने अनुभव कर उनको सही माना है। जनसाधारण का यही अनुभव भी उसकी जीवन परम्परा में चला आया है। संभव है कुछ पद्य उनमें नये जुड़ गए हों, भाषा में तत्सम होंने के कारण वे परखे न जासके हों। इसलिए उनके प्रयोग-परीक्षण की बड़ी आवश्यकता है। हमें यह जानकर बड़ा समाधान हुआ कि उत्तर-प्रदेश की सरकार ने घाघ-भड्डरी के कथन की परीक्षा का प्रयास आरंभ किया है, यह परीक्षा राज्य के आधे दर्जन सरकारी फॉर्मों पर की जायगी। सरकार ने इसके लिए आवश्यक व्यय की व्यवस्था करदी है। इस प्रयोगमें उक्तसंकेत सही सिद्ध हुए तो उन प्रमाणित उक्तियों को कृषि शिक्षा में सम्मीलित कर लिया जाएगा। इस प्रकार वर्षा, ऋतुमान, हवामान (वायु परीक्षण), भूमि-परीक्षा, कूप-खनन, कृषि-संबन्धी अनेक आवश्यक, उपयोगी, और महत्वपूर्ण बातें वर्ष प्रबोध वृहत्संहिता आदि में हैं, इनकी छान-बीन की जानी चाहिए, और उन्हें सरल भाषा में स्वतंत्ररूप से प्रचरित की जानी चाहिए. ये आचार्यों के लिए अनुभव और अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप निश्चित सिद्धांत है, जो आजके वायुशास्त्री, कृषि पंडित और शासन के सलाहकारों के नए अनुभव-अनुसंधान की अपेक्षा ठोंस, एवं सनातन है शासन को अपने विकास की प्रगति के लिए इनको आधार बनाना चाहिए। इन सिद्धांतों के पीछे जहाँ दीर्घ परंपरा है। वहाँ, वैज्ञानिक-खगोलीय-आधार भी हैं।

विश्व-शांति के लिए, नग्न साधुओं का नवीन सुझाव !

लंडन-(नाफेन)- जगत् की जटिल समस्याओं का शांतिमय निराकरण किस प्रकार प्राप्त हो, ताकि एटम और उद्रजन बम के युग में भी दुनिया शांति से जीवन निर्वाह कर सके। इस समस्या का विचार करते हुए भारत के नागा-बाबाओं के मन में यह उपरति हुई कि युद्ध से तो दूसरा युद्ध भडकता है, इस प्रकार युद्धों की परम्परा से सारा जग विनष्ट हो जाएगा। इसलिए युद्ध के बजाय जग के महानुभाव आपस में मिलकर मंत्रणा करे तो अवश्य कोई उपाय हाथ आ-सकता है। पर जग के इन महानुभावोंको कहां, और किस प्रकार मिलना चाहिए यह प्रश्न खडा होता है। इसका मौलिक, और अद्भुत निराकरण भारत के नंगे साधुओं ने खोजकर निकाला है। उनका कहना है कि राष्ट्रपति आयजन होवर, मालनकोव, चर्चिल, और माओत्सुंग, इन चारों महानुभावों को श्री नेहरू जी की प्रमुखता में, शरीर पर रेशम, या सूती वस्त्र न पहनते हुए केवल दिगम्बर वेष में आपस में मिलना चाहिए। पंडित नेहरूजी को भी इन चारों की तरह मंत्रणा के समय पूरे दिगम्बर रहना चाहिए। इस सूचना पर मेंचेस्टर गार्जियन, अपने अग्रलेख में विनोद करते हुए लिखता है कि-" नंगे बाबाओं की यह सूचना वास्तव में विचार के योग्य है। क्योंकि पांचों बडे व्यक्ति यदि संपूर्ण दिगम्बर वेष में मिलें तो पांचोंमें से एक भी व्यक्ति एक दूसरे से कुछभी छुपा न सकेंगें। यद्यपि सर चर्चिल ने दिल्ली के वायसराय महल में केवल लंगोंटी लगाए महात्मा गांधी के प्रवेश पर उन्हें 'नंगा फकीर' कह कर बाधा उत्पन्न की थी, पर यह पंच-परिषद् कदाचित् दुर्भाग्य से असफल होकर भंग हो जाए तो दुनिया की निराशा को, "इन पांचों में से कौनसा महानुभाव सर्व प्रथम हिमालय के शिखर पर जा पहुँचा," इसी सवाल को उग्र चर्चास्पद बनाकर आश्वस्त किया जा सकेगा।

लंदन का यह सनसनी खेज समाचार, और उस पर मेंचेस्टर गार्जियन का मनोरंजक मत क्षण भर मनोविनोद का विषय अवश्य हो सकता है। परंतु प्रश्न यह है कि भारत के दिगम्बर साधुओं में से कहां, कब, और किसने यह सूझ संचारित की, और इसदेश में प्रचारित होने से पूर्व यह ठेठ समुद्र पार पश्चिम में कैसे पहुँचगई, पता तक नहीं चल पाया। कह नहीं सकते कि यह लंदन के किसी सनकी की सूझ है, या स्वप्न। वैसे नंगे साधुओं का सम्प्रदाय भारत में अवश्य है, हिन्दू साधु, और जैन दिगंबरों में भी वे इंद्रिय दमन कर दुनिया से विरक्त हो वीत राग बन एकांत साधना निरत रहते हैं, शायद ही उन्हें पांचों बडों के सम्मेलन के सुझाव की कल्पना या चिंता हो, उनका आत्म चिंतन इस प्रकार व्यर्थ विचारों के लिए विवश नहीं बनाता परंतु पश्चिम में तो नग्न वादियों का एक ऐसा सम्प्रदाय ही है जो शोकिया प्रकृति पूजक बन नग्नता की उपासना करता है, और प्रदर्शन भी। काश इस पक्ष के पुरोधाकी कोई सूझ मजाकिया 'मेंचेस्टर' ने प्रचारित की होती तो उसका क्षण भर मनोरजंक परिणाम भी होता पर भारत के दिगम्बर साधुओंके नाम पर गढकर बिना आधार-प्रमाण की इस सनक का मजाक उड़ाने में 'गार्जियन' ने कौनसा हित साध्य किया है वह जाने।

अन्धःकार में प्रकाश की खोज !

आशा के अरुणोदय के साथ ही एशिया के आस-पास काले कुहरे ने अपना अञ्चल फैलाना आरम्भ किया है। सुदूर अमेरिका से उठी हुई काली घटा एशिया के आसमान को कालिमा-मय बना देने को आतुर है, भारत का एक विभक्त-खण्ड उस कालिमा का स्वागत कर अपने पाप पर पर्दा डालने और पड़ौसियों को पंकिल बना देने को उत्सुक हो रहा है। अवश्य ही जवाहर की क्रूर किरणों ने उस कुहरे को काटने का प्रयास किया है, उधर नजीब ने भी अरब महा-सागर पर उतरने से रोक की है। रूस के राहू की दृष्टि भी चौकसी बन गई है, पर पूँजी का पक्षा पाक-प्रदेश को अपनी ओर प्रेम से अञ्चल में लिपटा लेने को आमंत्रित कर रहा है। देखना है इस मोह जाल में उलझ कर पाक-दामन भी दाग से दग्ध बन जाता है या नहीं। यदि उलझ गया तो इसकी छाया अनेक पड़ौसियों के मन को मलिन बनाए बिना न रहेगी। यह मलिनता कहीं आगे चल कर देश की दुर्दशा का कारण न बन जावे। इस चिन्ता से चिंतकों में बेचैनी बढ़ गई है और उधर अमेरिका भी उलझन में पड़ गया है। उसकी सुरक्षा-योजना असमंजस की आंधी में इधर पैर टिकाने का ठौर नहीं पा रही है। विश्व से साम्राज्यवाद सिमिटता जा रहा है, समाप्ति की सांस ले रहा है, पर अमेरिका की वर्चस्व भावना डालर-देवता की दया से अपना दायरा बढ़ाने, दूसरों की स्वतन्त्रता को खरीद कर पद-दलित बनाने का निरन्तर प्रयास कर रही है। कोरिया में सर्वनाश को निमंत्रण देकर दानवी-हाथों ने मानवों के रक्त से हाल ही में हाथ धोए हैं, किन्तु एटम् की अग्नि में महानाश का नग्न नृत्य होना शेष रहा है। कह नहीं सकते किस अभागी भूमि में वह ताण्डव हो जावे। जल्लादों के जालिम हाथ खुजला रहे हैं, पर दया के द्वार अभी बन्द नहीं हुए हैं। शांति के उपासकों की निःशस्त्र-शक्ति, उन काल की दाढ़ों को खुलने से रोकती जा रही है। सन् ५३ तो इस तरह बीत गया, अब ५४ चलने लगा है, इसका आरम्भ भी कोरिया में शुभ नहीं हुआ है। पर आश्चर्य नहीं कि सन् ५६ तक ऐसे ही उधेड़-बुन में बीत जाए, अवश्य ही सन् ५७ का साल सन-सनी भरा हुआ प्रतीत होता है। कहीं इस दबी जारही ज्वाला-मुखी का वहाँ भीषण विस्फोट न हो जावे ? सामूहिक विनाश सर्जित न हो जावे ! क्योंकि उस समय हमें अपने इस महाराष्ट्र को सुरक्षित रखने वाली शक्ति विलुप्त हो जाती दीख रही है। एशिया महाद्वीप तिमिरावरण में प्रच्छन्न होता दीख रहा है। काल की गति विचित्र है। सम्भव है कोई नई आशा की किरणें प्रकट हो और अमानिशा के निविडान्धकार में आलोक प्रसारित करदे।

अश्वमेध स्थल का अनुसंधान !

भारतवर्ष में अश्वमेध-यज्ञ की परम्परा वैदिक-काल से चली आ रही है। अनेक ग्रन्थों में इनके वर्णन, विधान आदि प्राप्त हैं, बौद्ध-काल में इस विधि का लोप हो गया था,

और शुंग वंश के ब्राह्मण-शासक पुष्यमित्र को प्रसिद्ध-वैयाकरणी पातंजलि ने पुनः विदिशा में (भेलसा-मालवा) इस यज्ञ विधि का आरम्भ करवाया है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। हाल ही में उत्तर-प्रदेश में ऐसे ही स्थानों में अन्वेषण का कार्य आरम्भ किया है, जहाँ अश्वमेध का विधान करने की सम्भावना समझी गई है। इन अनुसंधानों में देहरादून के निकट हिम-उपत्यका में एक स्थल पर कुछ महत्त्व के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। राजगृही के शिल्प के अनुरूप एक सुपर्ण पक्षी पंख-फैलाया हुआ प्राप्त हुआ है, और कुछ ईंटें मिली हैं जिनपर तीसरी शताब्दी की ब्राह्मी-लिपि में अंकित संस्कृत श्लोक हैं। अनुष्टुप छन्द के ये पद्य महत्वपूर्ण हैं, इनसे अश्वमेध याजी राजा शील वर्मा के व्यक्तित्व पर प्रकाश प्राप्त होता है। उक्त पद्यों में शील वर्मा के लिए वर्षगण्य, युगेश एवं युगशैलाधिपति के विरुद का उपयोग किया गया है। वर्षगण्य शब्द से जानकारों का यह अनुमान है कि संभवतः पाणिनी की अष्टाध्यायी में जो 'वृषगण' गोत्र का उल्लेख है, उससे सम्बन्ध हो, अभी खुदाई चल रही है। जब अन्य साधन भी उपलब्ध हो जाएँगे, उस समय इस विषय पर, तथा अन्य साधनों के समवेत अध्ययन से इतिहास, भारतीय वंश-विज्ञान एवं कर्म-काण्ड पर विशेष प्रकाश प्राप्त हो सकेगा। हम श्लोकों के प्रकाशन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे।

विदेशों में मध्यभारत के पञ्चरत्न !

भारतीय बिदेश-विभाग में प्रवेश पाने के लिए जिस योग्यता, प्रामाणिकता, और पटुता की आवश्यकता होती है, उसमें बहुत कड़ी-कसौटी पर कसकर अवसर उपलब्ध होता है। आज विदेशी दूतावासों में ऐसी ही प्रतिभा को प्रवेश प्राप्त है; और उन्होंने अपने देश की कीर्ति को सुरक्षित रखा है। डा० राधाकृष्णन्, सर्दार पनिक्कर, बी० एन० राव, राजेश्वर दयाल, श्रीमती पंडित, कृष्णमेनन् आदि राजदूतों भारतीय प्रतिनिधियों ने भारतीय प्रतिष्ठा के अनुरूप प्रतिनिधित्व कर अपने देश की राजनीति को गौरवान्वित बनाया है। मध्य भारतीयों के लिए यह प्रसन्नता की बात है कि उनके बन्धुओं में से भी पांच व्यक्ति आज विदेशी दूतावासों में प्रविष्ट हैं, और प्रतिष्ठित पद पर आसीन हो अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सहयोगी बन रहे हैं। आस्ट्रिया के भारतीय हाई कमिश्नर के सचिव श्री रावराजा राजवाडे गवालियर के स्व० जनरल राजवाडे सा० के सुपुत्र हैं, वे तेजस्वी प्रतिभा सम्पन्न सरल एवं योग्य व्यक्ति हैं। आस्ट्रिया में ही मिसेज़ रत्नम् नामक महिला भी हैं, जिनके पति हाईकमिश्नर होकर कार्य करते रहे हैं, श्रीमती रत्नम् ग्वालियर में प्राध्यापिका रही हैं; अँग्रेजी और संस्कृत की योग्य विदुषी हैं, इजिप्ट में रहते हुए उन्होंने संस्कृत में शाकुंतल का सफल अभिनय प्रस्तुत कर दर्शकों को मुग्ध कर दिया था, ये तेजस्विनी महिला हैं। सीतामऊ के राजकुमार श्री रघुनाथसिंह जी बहुत समय तक पाकिस्तान हाईकमिश्नर के सचिव, ट्रेड कमिश्नर के पद पर रहकर कार्य करते रहे, कुछ समय पूर्व ही वे इजिप्ट अलेक्झेंड्रिया में कौंसल जनरल के पद पर नियुक्त हुए हैं, बड़े सरल, चतुर, श्रमशील, और योग्य-युवक हैं, राज़परिवार में उत्पन्न होकर भी जन साधारण की तरह सादगी का जीवन, और विविध-विषयों में निरन्तर अध्ययन की प्रवृत्ति है, श्री कुं० रामपाल सिंह जी राजगढ (व्यावरा) के राज पारिवारिक प्रतिष्ठित जागीरदार के सुपुत्र (उज्जैन के वर्तमान कलक्टर बैरिस्टर श्री नारायणसिंह जी के छोटेबन्धु) है, यह किला जागीर परिवार साराही सुशिक्षा सम्पन्न, और सुयोग्य है। श्री रामपाल सिंह जी बडेही सज्जन, विनीत, सरल, किन्तु तेजस्वी तरुण हैं। कुछ समय पूर्व ये पाकिस्तान में द्वितीय मन्त्री के रूप में हाई कमिश्नर के कार्यालय में कार्य करते रहे हैं, थोडा समय हुआ स्विटजरलैंड के दूतावास में द्वितीय-सेक्रेटरी के पदपर इनका परिवर्तन हुआ है। इसी प्रकार बिहार का एक सौम्य और सीधा साधा तरुण दार्जिलिंग से चलकर उज्जैन में ज्ञानार्जन की भावना से बहुत दिनों पूर्व पहुँचा था। यहां आकर ज्ञानार्जन के साथ ही 'विक्रम' मेंभी कुछसमय कार्य किया, हिन्दी अंग्रेजी संस्कृत ज्योतिष की योग्यता प्राप्त होते हुए भी यह अमेरिका जाकर शिक्षा ग्रहण करने की महत्वाकांक्षा अन्तरमें छुपाए हुए था। किसी को भी पता न चलाकि यह महत्वाकांक्षी युवक कब किसप्रकार सहसा मौन अज्ञात रूपेण अमेरिका पहुंच गया, और कठोर शारीरिक श्रम द्वारा निर्वाह के साधन जुटाकर अने-

लिजम् में एम० ए० पास की, तब हमें सफलता के साथ सूचना दी। आज यह युवक अमेरिका के भारतीय दूतावास में दो वर्षों से कार्य कर रहा है, इस श्रम शील, सौम्य, अध्यवसाय निरत प्रामाणिक एवं भावुक का नाम भागवत-प्रसाद है। ये पँचरत्न मध्यभारत का नाम उज्वल कर विदेशों में देश सेवा कर रहे हैं। मध्य भारतीयों को अपने इन तरुणों पर गर्व होना स्वाभाविक है। इन पंच प्रगतिशील युवकों को विदेशी दूतावासों में सुयोग्य राजनीति विशारदों के सहयोग संसर्ग में रहकर प्रवीणता पाने-सीखने-समझने अनुभव उपलब्ध करने का जो सुयोग सुलभ हो रहा है, वह इनके उज्जल भावीका सूचक है, हम इनकी सफलता की क़ामना करते हैं।

पाकिस्तानी गधे बर्मा में

पाकिस्तान की प्रसिद्धि जहां जग में जनाब जफरुल्ला के कारण है, वहां सिंध के बालुकामय प्रदेश के कारण गधों के गौरव से भी है। अरब और इजिप्ट आदि में गधे का महत्व आजभी है, वहां गधे के सिवा गति नहीं। ईसा और मुहम्मद का वह सहारा बन अपनी अमरता मनवा चुका है, यहीकारण है कि पाकिस्तान में उसका सहारा आवश्यक हुआ, पाकिस्तान की प्रगति में इस निरीह-गधे की गति का बड़ा योग है। सारे शासन का भार चाहे वहां के नेताओं के कंधे पर लदा हो किन्तु उन नेताओं का भार वही वहन कर उनकों सद् गति प्रदान करता रहता है। पाकिस्तान में अनेक प्राणी हैं, पर गधे को गरिमा कों अन्य नहीं प्राप्त कर सकते। बालुकामय प्रदेश में गधे की परम्परा का इतिहास पुराना है। जिस प्रकार सिंध के कैकय प्रदेश के कुत्ते प्रख्यात रहे हैं, उसी प्रकार गधे भी। भगवान रामके भाई भरत जी जब मामा कैकय-राज से मिलने गए थे, तो मामा ने कीमती कुलीन-कुत्ते उन्हें भेंट में दिए थे, इसी तरह गधे ने सिंधु-सभ्यता से इजिप्शियन संस्कृति का समन्वय साध्य करने में बहुत सहायता की है। दीर्घकाल के बाद ही सही पाकिस्तान बन जाने के कारण इसी महाप्राण गधे के माध्यम से ये दो सभ्यताएँ एक सम्प्रदाय-धर्म में दीक्षित सम्बन्धित बन गई हैं। यही कारण है। कि यहां का गधा भी उतना ही महत्व रखता है जितना राजनीति में जफरुल्ला-प्राणियों में गधे की क्षमता और राजनीति में जफरुल्ला की समता दूसरा नहीं कर सकता। समय ने जिस प्रकार पलटा खाया है, देश-काल-स्थिति समाज साहित्य ने भी उससे प्रभावित हो अपना स्वरूप पलटा है, जिस प्रकार मौलवी और मुल्ला की परिभाषा पुराने शब्द कोषों में प्रचलित रही है उसे आज के पाकिस्तान ने पलट दिया है, उसी प्रकार गधों का जो हीन-स्वरूप समाज में स्वीकृत था, वह अब नहीं रहा, आज गधा प्रतिष्ठित-प्राणी है। हमारे यहां भी हजारों साल पहिले उसे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, तभी वह राक्षस-राज रावण के सिरपर चढ़ बैठा था। कहानी सुनते हैं कि किसी मौलवी के मकतब में गधा पलट कर मानव रूप धारण कर गया था। अगर डार्विन् के सिद्धांत में सत्य हो तो आश्चर्य नहीं कि इस प्राणी ने भी परिवर्तन साध्य कर सदियों बाद आदमी में समन्वय कर लिया हो प्राणि-शास्त्रज्ञ सिंध प्रदेश में शोध करें तो शायद पता पड़े कि किस वर्ग समाज की किस श्रेणी में उसकी सत्ता या सत्व समाविष्ट हो गया है जो भी हो आज भी सिन्ध के गधे की गणना प्रमुखता से की जाती है, उसकी ख्याति देश से लेकर विदेशों तक है, यह ख्याति जब से विदेश-विभाग जफरुल्लाखाँ के हाथ आया है, तबसे बाहर बढ़ी ही है, हाल ही कीबात है-बर्मा में कुछ गधों की आवश्यकता अनुभव हुई, तब बड़ी खोज-बीन के बाद अभी ही पत्रों में पढ़ा कि उन्होंने पाकिस्तान से चुन कर पूरे २० गधे मंगवाए हैं। बर्मा ने अपने इस निर्वाचन द्वारा पाकिस्तानकी प्रतिष्ठा ही नहीं, विदेश विभाग का गौरव भी बढ़ाया है। क्योंकि पाकिस्तानी विदेशी-विभाग की सलाह, स्वीकृति, सिलेक्शन के सिवा यह सौदा संभव नहीं हो सकता था। यहां के 'एक्सपर्ट' की सम्मति से ही एक्सपोर्ट होकर वे २० गधे बर्मा पहुंचाए गए होंगे। अब इन गधों के गुणों का बर्मा की गति विधि पर, कार्य भार पर कितना गहरा असर पड़ता है। पाकिस्तान के और लोगों के गुणों की गणना में कमी-वेशी भले ही हो पर गधे की गुण गणना अपनी पिछली परम्परा लिए चली आरही है, इस कारण वह समाज-सभ्यता और समय पर प्रभावित रह कर, सर्वकाल का भार वहन कर निरंतर-प्रगतिशील है। बर्मा में पहुंचने के बाद अवश्य वहाँ प्रगति होगी, और पाकिस्तान की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

मुल्ला की परिभाषा !

मुल्ला का क्या अर्थ है ? संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में मुल्ला का अर्थ लिखा है-धर्म के मामलों और धार्मिक नियमों का ज्ञाता, विद्वान् व्यक्ति। परन्तु पाकिस्तान में जो विश्व का सबसे बड़ा इस्लामी राष्ट्र होने का दावेदार है, मुल्ला का अर्थ कुछ और ही है। पंजाब के हाल के ही उपद्रवों की जांच-अदालत में यह प्रश्न अनेक बार उपस्थित हुआ। पंजाब सरकार के गृह विभाग के सचिव श्री एस. गयासुद्दीन अहमद ने मुल्ला शब्द की व्याख्या इस प्रकार की-"पांडित्य का दावा करने वाला मजहबी ढोंगी जिसका ज्ञान सीमित है, और दृष्टिकोण संकुचित है।"

पंजाब सरकार के भूतपूर्व मुख्य सचिव का भी मत इसी प्रकार है:-"मेरी राय में मुल्ला वह व्यक्ति है जिसका धार्मिक ज्ञान कम है परन्तु जनता के सामने ज्ञानी बनने का ढोंग करता है और पाकिस्तान जैसे राष्ट्र की प्रगति के सभी विचारों का विरोधी है।"

'हिन्दुस्तान'

नागरी-प्रचारिणी-सभा की हीरक जयन्ती !

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी के साहित्यिक, और हिन्दी भाषा जनता का एक तीर्थ-स्थान बन-गया है, उसका एक उज्वल इतिहास है। पवित्रता और निष्ठा पूर्वक की हुई सेवा की परम्परा उसके पीछे है। भारतेंदु की भव्य भूमि, सुधाकर द्विवेदी, महामना मालवीयजी, शुक्लजी, बाबूजी, मिश्रजी की कर्मभूमि इस सभा ने, हिन्दी का जो हित किया है, उसकी जैसी साहित्य श्री-वृद्धि की है वह हमारी राष्ट्र भाषा के उज्वल इतिहास में सुवर्ण वर्णों से अंकित रहेगी। निरंतर ६० वर्ष, ५ युगों तक की हुई सभा की सतत साधना अपनी उज्वल परम्परा को लिए हुए है। उसने एक आदर्श की प्रतिष्ठा की है। आज हिन्दी को जो स्थान प्राप्त हुआ है, उसका अधिकांश श्रेय, सभा और सम्मेलन को ही है, संस्थाओं में विकार हो सकते हैं। मतभेद का अवसर आ सकता है। किन्तु यह वैयक्तिक रहता है, संस्था के उद्देश्य की पवित्रता, और आदर्श में उससे कोई विकार का कारण नहीं। हमें उसकी प्रतिष्ठा, परम्परा, कार्य, उद्देश्य, और निष्ठा का महत्व स्वीकार करना होगा, सभा की सेवा का उज्वल इतिवृत्त है। उसने अपने उद्देश्य को मूर्त रूप दिया है। स्वस्थ साहित्य से सरस्वती के भण्डार की पूर्ति की है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन करवाने में सतत साधना की है, प्रेरणा दी है। नागरीलिपि, और राष्ट्र भाषा के लिए अनेक संघर्ष किए हैं, एक उत्कृष्ट पुस्तकालय संचालित कर, नष्ट होने वाले साहित्य की रक्षा में यत्न शील रह कर, पत्रिका, प्रकाशन, शब्द कोष, खोज, कला भवन, आदि में यश संपादित कर हिन्दी की जो सेवा की है, वह सदैव अविस्मरणीय रहेगी। हम सभाकी इस महान् हीरक-जयन्ती के प्रसंग पर उसका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। उसकी उत्तरोत्तर उन्नति की कामना करते हैं, और उसकी साधना के समक्ष अपना मस्तक नत करते हैं।

महापर्व कुम्भ, एवं करुण-घटना !

प्रयाग के महा पर्व के प्रसंग पर सरकारी सूचना के अनुसार चालीस लाख से ऊपर मानव समूह ने संगम पर एकत्रित हो अपनी परम्परा के अनुरूप भाव विभोर हो पर्व स्नान किया। इस समय इतनी बड़ी मानव मेदिनी के लिए शासन ने सुंदर व्यवस्था भी की थी। स्वतन्त्र-भारत में इतना बड़ा समारोह प्रथम ही हुआ, और इस समारोह की सुख-सुविधा के लिए शासन ने शक्ति भर सब कुछ किया, किन्तु मौनी अमावास्या के दिन केवल कुछ ही क्षणों में जनसमूह के विश्रृङ्खलित-अव्यवस्थित बन जाने के कारण सैकड़ों को सहसा समाप्त कर देने वाली जो कारुणिक घटना घट गई, उसने शासन की सारी सुंदर-व्यवस्था को सहज कालिमा लगादी है। यह सहज है कि ऐसे जन-संपर्द में जरासी भी अव्यवस्था, हजारों को हताहत कर, सैकड़ों की बलि ले कर उत्कृष्ट व्यवस्था को भी रोंद कर रख देती है। किन्तु इसका दोष जन प्रवाह, या यात्री समूह को नहीं दिया जा सकता।

इसके लिए व्यवस्था ही।जुम्मेदार रहती है, उसकी सावधानी सुविधा कर सकती है। और उसकी शिथिलता नाश को निमंत्रित कर देती है। प्रयाग में जो हुआ, उसके कारण चाहे कुछ भी हो, व्यवस्था में जो क्षणिक त्रुटि हुई उसी ने सारे प्रयत्नों को कलुषित कर डाला है। जन महासागर की एक विक्षुब्ध लहर ने विनाश सर्जित कर दिया। उत्साह, और आनन्द के वातावरण को शोकमय चीत्कार-मय बना दिया।

शासन ने अपनी व्यवस्था की श्रेष्ठताका जैसा प्रचार किया उसने और अधिक जनता को पर्व पर पहुंचने को आकर्षित किया है। यही कारण है कि प्रयाग में इसबार इतनी भारी भीड़ हो गई! निःसंदेह उनकी व्यवस्था में कुछ भी शासन ने उठा नहीं रखा। केन्द्र ने भी और प्रांत ने भी शक्ति भर सब कुछ किया, पर उस महानाश के क्षणमें अवश्य ही ऐसी अवांछनीय त्रुटि, या निर्बलता हो गई कि उस गर्व की व्यवस्था को बुरी तरह गिरजाने का अवसर आ गया। अभी उसकी जांच आरम्भ है कारणों का पता लगेगा ही किन्तु हमें इससे बहुत कुछ शिक्षा लेना चाहिए कार्य कीअपेक्षा प्रचार की पीड़ाऔर परिणाम को समझ लेना चाहिए। हमारे सामने और भी ऐसे प्रसंग आयेंगे, आते ही रहते हैं, उस समय हमें इससे सावधानी सीखना चाहिए।

कालिदास सम्बन्धी अनुसंधान।

"कालिदास जैसे विश्व विख्यात साहित्यकार की जन्म व कर्म भूमि में कालिदास सम्बन्धी अवशेष, खोज और अनुसंधान कार्य न होना हमारे लिए लज्जा की बात है।

विश्व विद्यालय उज्जैन का अधिकार

" अवंतिका जैसी प्राचीन नगरी में विश्व-विद्यालय होना अनिवार्य है! और यह इसका ही हक़ है। उज्जैन एक ऐसा सांस्कृतिक केन्द्र बने, जो मध्यभारत का ही नहीं; वरन् समस्त संसार में एक आदर्श हो, मुझे खुशी है कि मध्यभारत सरकार ने एक निश्चित धन-राशि इस कार्य के लिए स्वीकृत करली है, और विधान सभा के अगले अधिवेशन में आपकी भावना पूरी होगी।

— श्रीमन्नारायण अग्रवाल —
महा मंत्री—अ. भा. कांग्रेस
उज्जैन के
भाषण से
१२।२।५४

उज्जैन में यही पर्व !

३ साल बाद इसी पर्व की पुनरावृत्ति अवन्ती नगरी में होने को है। लाखों यात्रियों का जमघट होगा, हजारों साधु महीनों पूर्व शिप्रातट पर आसनासीन बन जाएंगे। ग्वालियर राज्य सिंहस्थ के ३ वर्ष पूर्व ही व्यवस्था आरम्भ कर देता रहा है क्योंकि उज्जैन का यह पर्व ग्रीष्म में होता है। पानी का प्रबन्ध, सफाई आदि की व्यवस्था सावधानी पूर्वक हो तो ऐसे विशाल समूह को संक्रामक रोगों से सुरक्षित रखा जा सकता है। कह नहीं सकते म० भा० शासन ने इस दिशा में कोई यत्न आरम्भ किया या नहीं। प्रयाग में अपने प्रतिनिधियों को भेज कर वहां की व्यवस्था देखने समझने का अवसर दिया या नहीं। किन्तु और प्रांत के सतर्क-सावधान रहने पर भी जब ऐसी घटना घट गई तो उससे मध्यभारत को सीखने समझने की और भावी की व्यवस्था में सुविधा प्राप्त करने की अत्यंत आवश्यकता है। अभी तो महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वस्तुतः उज्जैन का यह पर्व किस वर्ष हो? क्योंकि बृहस्पति की गति विधि के कारण जिस सिंह राशि पर उसे पर्व प्रसंग पर वैशाख पूर्णिमा को स्थित होना चाहिए, वह इस बार उलझन का विषय बन गया है। यह स्थिति १५० वर्षों में हो जाना स्वाभाविक है। शासन को इसके निश्चय के लिए जानकारों से श्रम व्यय करके अभीसे ठीक निर्णय प्राप्त करना चाहिए। जिससे व्यवस्था में सुविधा हो सके, यह भाषणका नहीं, टेकनिकल प्रश्न है। जिस समय वैशाखी पूर्णिमाको सिंह का गुरु प्राप्त होगा तभी यह पर्व मन सकेगा, फिर वह ११वें वर्ष में हो या १२वें में। शासन को ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

स्वागतम्-उपराष्ट्रपति !

मध्यभारत में यह बड़े सुयोग की बात है कि हमारे संपूर्ण प्रभुसत्ता-सम्पन्न महान्-राष्ट्र के उप प्रधान अध्यक्ष विश्वविख्यात् विद्वद्वर मा सर्व पल्ली राधाकृष्णन् पधारे हैं, वसंत के इस सुरभिमय वातावरण में ज्ञान विज्ञान का सौरभ संचारित करते हुए इस महान् सरस्वती पुत्र ने विक्रम और कालिदास की पवित्र ज्ञान भूमि में प्रथम बार पदार्पण किया है, वास्तव में सर्व पल्ली महोदय विश्व की सन्माननीय विभूति हैं, उनकी विविध ज्ञान गरिमा के समक्ष जगती के बुद्धिजीवियों ने सादर मस्तक अवनत किया है, तत्व चिंतक, और अध्यात्म-विद्या के पारदर्शी पुरुष डॉ राधाकृष्णन्, वेदांतवादी ही नहीं: शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका स्थान सर्वोपरि है। विश्व के अनेक विद्यालयों ने उनके ज्ञान की अर्चना की है, उन्हें आदर अर्पित कर अपना सन्मान बढ़ाया है, वेदान्त वित् और शिक्षा शास्त्री के साथ ही वे साहित्य-कला के आचार्य, और राजनीति विज्ञान में अपनी पटुता प्रकट कर भारत के गौरव को बढाने में सफल हुए हैं, प्रतिभा और लेखनी का यह धनी अपने वाग्वैभव से मानव को मंत्र मुग्ध बनादेने की क्षमता रखता हैं, मध्य भारत इस अद्भुत प्रतिभाशाली पुरुष का अपनी ऐतिहासिक भूमि पर स्वागत-एवं अभिनदंन करने का अवसर प्राप्त कर गर्वानुभव करता है। अवंतिका को इस प्रसंग पर विशेष हर्ष है, क्यों कि आज से ११ वर्ष पूर्व विक्रम विश्व विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। ग्वालियर में स्व. सर मनुभाई महता की अध्यक्षता में विश्व विद्यालय योजना समिति में सर राधाकृष्णन् तथा डॉ० अमरनाथ झा आदि ने मिलकर उज्जैन के विश्व विद्यालय की रूपरेखा और योजना का निर्माण किया था। यद्यपि उस महत्व पूर्ण योजना को पक्षपात की प्रचण्ड आँधी ने (मध्य भारत में) प्रच्छन्न कर दिया; परंतु सर राधाकृष्णन् की वह योजना उन्हें उज्जैन के प्रस्तावित विश्व-विद्यालय से सम्बन्धित बनाए हुए है, क्योंकि उन्हीं के यशस्वी हाथों से उसका सूत्रपात हुआ है, अवंती वासी उसी स्मृति सम्बन्ध के साथ उनके प्रति अधिक कृतज्ञता की भावानुभूति रखते हैं। उस समय स्थल-निर्वाचन के लिए उनकी संभावित उज्जैन-यात्रा यद्यपि काल गति वश रुक गई, पर उज्जैन उनके उस मधुर सम्बन्ध को अपनी स्मृतिकी धरोहर बना संचित किए हुए है। उस समय उपकुलपति राधाकृष्णन् का चाहे हम स्वागत सौभाग्य प्राप्त न कर सके पर अब हम अपने स्वतंत्र राष्ट्र के विद्वान् एवं जगन्मान्य उपाध्यक्ष के रूप में स्वागत समभ्यर्चना कर विशेष गौरव एवं हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। वे जिस अध्यात्मविद्या के विश्व विश्रुत आचार्य हैं। उज्जैन को उनके अभिनन्दन करते हुए इसलिए और भी अधिक आत्मानन्द हुआ है कि इसी पवित्र भूमि में विश्व के महान् तत्वदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञान साधनाकर जगको गीता जैसी अप्रतिम अमर प्रेरणा प्रदान की है। उसी तत्व ज्ञान के सफल चिन्तक मर्मज्ञ के रूप में इस महिमामयी भूमि के संस्कारों से राधाकृष्णन् का सतत सम्बन्ध बना हुआ है। इस कारण भी यह नगरी उनमें स्वीय संस्कार भावना का अनुभव करती हुई उनका शत-शत अभिनन्दन एवं हर्ष विभोर हो स्वागत करती है।

दो वर्ष पूर्व राष्ट्रपति महोदय ने उज्जैन को महान् सांस्कृतिक केन्द्र विश्वविद्या का आदर्श निकेतन बनाने की प्रेरणा की थी, हमें विश्वास है विद्वान् उपराष्ट्रपति के आगमन से उसे साकार स्वरूप सुलभ होगा, (यह संकेत भी मिला है।) उपराष्ट्रपति का इस नगरी में शुभागमन अवन्ती के उज्ज्वल भावी का सूचक बने, इस भव्य-कामना के सा। हमने इस पृथ्वी के महान् प्रतिभा पुत्र का हार्दिक अभिनन्दन किया है।

बसन्त-वन्दना

श्री मदनलाल वर्मा 'साहित्यरत्न'

बंद उर के द्वार खोलो !
हे अजर-सुषमा-निकेतन !
रुचिर स्वप्न-विहार खोलो !

प्यार सौरभ से शमित हो ! —
नव-उषा से राग रंजित,
सुरभिमय मृदु कमल स्मित हो !
रश्मि वलयित, रवि प्रभासित,
किरण-वन्दनवार खोलो !

स्नेह के शत कुसुम फूले,
स्वर्ण के मृदु डाल पल्लव .
मंजु मरकत राशि झूले !
कर चयन सुकुमार कर से
विश्व छवि साकार खोलो !
आज युग के मुक्त-पथ पर,
अधखिले कलि-मुकुल सुन्दर
सजल ! उतरो मृदु चरण धर !
आज नूतन चेतना से,

विश्व के तम-स्फार खोलो !
हे अजर सुषमा निकेतन !
रुचिर नव-सिंगार खोलो !
शीस पर धर प्रिय वरद कर,
शाप में, वरदान में,
ज्योतित करो नीहार मंथर !
कोकिला के गीत, गुञ्जन राग अपरम्पार खोलो !
हे अजर सुषमा निकेतन,
बंद उर के द्वार खोलो !

युग-प्रवर्तक महाकवि-निराला !

श्री मोहनलाल गुप्त 'करुणेश'

तुम ऋतुराज महाकवि तुम पर, शत मधु ऋतु न्यौछावर ।
बलि होते हैं कोटि-कोटि कंदर्प तुम्हारी छवि पर ।।
अहो भाग्य माना वसन्त ने प्रतिपल तुमको पाकर ।
हुलसित है धरती का कण-कण, पुलकित नीला अम्बर ।।

तुमने खींचा श्वांस, मच गई, एक निराली हलचल ।
तुमने छोड़ा श्वास बिछ गया, सुरभित भीना परिमल ।।
तुम मुसकाये विहंस उठे शत-शत मानस में शतदल ।
नयन खुले तम हुआ तिरोहित, फैली आभा उज्वल ।।

उमड़-घुमड़ कर बादल गरजे, मानो जब तुम बोले ।
शेषनाग के हिले सहसफण, जब तुम झूमे डोले ।।
सूर्य-सोम हो गये अचंभित, उभय नेत्र जब खोले ।
अरे जिष्णु भी कहां बिचारा, कैसे गरिमा तोले ।।

तुमने गाया, राग-रागिनी भूली सुध-बुध सारी ।
तन्मय होकर वीणा-वादिनी, निज सुत पर बलिहारी ।।
तुलसी प्रमुदित अवनीतल पर, आया कवि अवतारी ।
उपमा बनी निरुपमा, हारी शोडषकला विचारी ।।

तुम को लख कर गगनोन्नत-नग, लगता है गर्वीला ।
उसी गर्व से भारत का है उज्वल अञ्चल गीला ।।
उतरे शिव कैलाश-शृंग से, करने अभिनव लीला ।
या आये हैं कृष्ण जननि का, करने बन्धन ढीला ।।

महाकाव्य खुल गया जगत् का, जब तुम भू पर आये ।
दसों दिशा ने स्वागत करने, गीत विरुद के गाये ।।
जीर्ण पत्र झड़ गये, तरुण-तरु नव-दल साज सजाये ।
कली खिली, सुरभित सुमनों पर मत्त-भ्रमर मँडराये ।।

हटा श्याम-पट, राका का, ऊषा ने घूँघट खोला ।
फूल झड़े, खग उड़े, नभो मण्डल में हुआ उजेला ।।
भव्य भाल चमका भारति का, नभ में रवि का गोला ।
जाग्रति का उद्घोष हुआ, वसुधा का कण-कण डोला ।।

भारतीय संस्कृति की फिर से पुण्य-पताका फहरी ।
पौरुषेय—वाणी ले जागा, मानवता का प्रहरी ।।
युग-युग से अक्षुण्ण प्रवाहित, मंगल धारा लहरी ।
वेदों की, गीता, दर्शन की, पूत वाणी फिर घहरी ।।

तोड़-फोड़ झर-झर ज्यों बहती, मन्दाकिनि की धारा ।
गीत तुम्हारे फूट चले बस, तोड़ छन्द की कारा ।।
भावों के सम्राट्! विभव पर है अधिकार तुम्हारा ।
हे युग-कवि ! जय हो !! अभिनन्दन बारम्बार हमारा ।।

नगाधिराज की नम्रता !

पुरुष, और प्रकृति का सदा से ही द्वन्द्व चलता आया है, और पुरुष ने ही विजय पाई है, इसी प्रकार हिमालय प्रकृति की सबसे बड़ी चुनौती थी, जिसे पुरुष ने स्वीकार कर तेनसिंग के रूप में उस पर विजय प्राप्त करली है । आकाश को चूमने वाली चोंटी ने मानव के चरण चूम कर अपने वैभव की महानता को एक कुली के करों में समर्पित कर दिया ! अनेक केप्टन, कर्नल-जनरलों ने अपनी शक्ति और साहस के द्वारा गिरिश्रृंग के गौरव को अपहरण करने का प्रयास किया, अनेकों ने प्राणों की बाजी भी लगादी, किन्तु पर्वत-राज ने प्रयत्नों की परम्परा देखकर मानव के साहस को और दूसरों के समक्ष पराभव मान लेने की अपेक्षा अपने पर्वत-पुत्र को ही मस्तक पर आरोहण करने के लिए सहर्ष अपना मस्तक झुँका दिया ! शास्त्रों में इस प्रकार पराजय प्राप्त करने की सहर्ष कामना भी की गई है, 'पुत्रात्-शिष्यादिच्छेत्पराजयम् ।' तदनुसार पर्वत-पुत्र-शेरपा तेनसिंग को निरन्तर साहस करते देख पहाड़ पसीज उठा, और अपना मस्तक झुँका कर उसके चरण चूम लिए । वैभव-शिखर ने एक अकिंचन मानव से हार मानली, किन्तु यह मानव उसी प्रकृति की सन्तान है, जो गिरि-शिखरों की गोद में पलता-खेलता रहा है, जिस पर्वत ने सारी दुनिया को अपनी ऊँचाई के कारण आकर्षित किया, आमंत्रित किया, आज उसके सिर पर चढ़कर भी, उसी की सन्तान (पर्वत-पुत्र) दुनिया का गौरव-भाजन बन रहा है, और पर्वत की तरह ही पर्वत-पुत्र भी पुरुष को चुनौती दे रहा है । इसमें भी पर्वतराज की ही विजय है, अन्य आरोहियों की विजय में भी पराजय प्रच्छन्न है ! अपने अंचल में पालित-पोषित होने वाले अकिंचन कुली को गौरव देकर, विजय का सेहरा सिर पर बाँधकर गिरिराज ने साधन-सम्पन्न-परदेशियों को चेलेंज ही तो दिया है । आज गगनोन्नत-गिरि को इस पराजय में भी गर्व है, क्योंकि उसने अपनी ही सन्तान को सहारा देकर सिर पर सहर्ष बिठलाया है । अपना लड़का यदि हमारे सिर पर सवार होकर खेले-कूदे तो हम हीनता अनुभव नहीं करते, बल्कि हाथ का सहारा देकर ही उसे सम्हालते हैं । यह बेटे की विजय यदि सम्मान का विषय बन जावे तो बाप की पराजय भी कम गर्व करने की चीज नहीं होती । तेनसिंग की विजय में एवरेस्ट का महत्व ही है, उसने अपनी सन्तान के समक्ष सिर झुँकाकर अपनी नम्रता से गौरव ही बढ़ा लिया है । केवल कोई विदेशी उसके सिर पर चढ़ कर पद-चाप लगा जाता तो उसकी पराजय थी, परन्तु अपने ही पर्वत-पुत्र के साथ पराए को भी खेलने की सुविधा देकर उसने उदार वात्सल्य का ही प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिस प्रकार विश्व के सर्वोन्नत नगाधिराज ने अपने शेरपा को सफलता प्रदान की, उसी तरह अगम्य पंचचूली पर्वत ने भी भारतीय पर्वतारोहियों को विजय का सेहरा बाँधकर अपने पुत्रों को प्रसन्न किया है ! शेरपा तेनसिंग ने असाधारण विजय पाकर भी अपनी नम्रता को बनाए रखा, पर्वत राज की पूजा की, प्रणाम किया है, हाँ, केवल पर्वत राज की ऊँचाई नाप कर ही मि. एवरेस्ट ने अपना नाम पर्वत के सिर पर अंकित करने का प्रयास कर डाला था, और हमारी पराधीनता ने अबतक उसे स्वीकार करने को परवश बनाया, स्वतन्त्र-राष्ट्र के पर्वत राज के सिर से हमें 'एवरेस्ट' का आवरण उतार कर फेंकदेना चाहिए, परन्तु यह भी आवश्यक नहीं कि 'डेडी हेराल्ड' की तरह हम उसे 'माउण्टेन एलिजाबेथ' बनाएँ, अब इन कल्पनाओं को तों हमारे मन में अवकाश भी नहीं मिलना चाहिए । शायद खोजने पर हमें इन पर्वतों की पूर्व परम्परा का नाम ही उपलब्ध होजाए, अवश्य उसका नाम होगा, और वह मिलेगा भी । इतनी जल्द बाजी में हमें कोई नया नाम जमा देने की आवश्यकता नहीं है, बहुत से लोगों ने वीर-नर तेनसिंग के नाम से पर्वत राज को प्रसिद्ध करने की सूचना भी की है, किन्तु तेनसिंग के नाम देदेने से हमारी भावुकता भले ही सन्तोष मानलें, जिस तरह अनेक सड़कों बाजारों को 'जवाहर रोड़' बना कर हम सस्ता समाधान मान लेते हैं, वस्तुतः तेनसिंह के इस नाम से पर्वत को प्रसिद्धि देकर तेनसिंग की विनम्रता को हम हल्की बनादेंगे, तेनसिंग ने तो अपना स्वयं इतिहास बना लिया है, और वह अपने

—शेष पृष्ठ २७ पर

यूनेस्को का भारतीय आयोग

[श्रीयुत मौलाना आजाद]

श्रीयुत आजाद

शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति का प्रचार 'यूनेस्को' का उद्देश्य है। कुछ ही साल पहले मूल शिक्षा के संबंध में 'यूनेस्को' ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम स्वीकार किया था। एशियायी तथा अफ्रीकी देशों को आशा हो चली थी कि इससे साक्षरता का प्रसार होगा और संसार के कम उन्नत प्रदेशों में रहन-सहन का स्तर ऊंचा होगा। किन्तु खेद है कि दक्षिण अमेरिका तथा मिश्र में एक-एक केन्द्र खोलने के बाद यह कार्यक्रम छोड़ दिया गया।

तथा-कथित 'अंतर्राष्ट्रीय संस्थाए'

एशियायी तथा अफ्रीकी राष्ट्रों की इस भावना का कि उनकी आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता, एक और भी कारण है। वह है अनेक तथा-कथित 'अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं' के प्रति यूनेस्को के रुख का। सही अर्थों में ये संस्थाएं 'अन्तर्राष्ट्रीय' नहीं कही जा सकतीं। प्रायः उनकी गतिविधि यूरोप तक ही और कभी-कभी यूरोप के भी कुछ ही देशों तक सीमित होती है। इसीलिये भारत ने सुझाया था कि 'यूनेस्को' को किसी भी ऐसी संस्था को 'अन्तर्राष्ट्रीय' न मानना चाहिये, जब तक कि उस संस्था का काम कम से कम तीन महाद्वीपों में न फैला हुआ हो और ऐसे हर महाद्वीप के कम से कम पांच राज्य उसके सदस्य न हों। किन्तु यह सुझाव अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है। इसका फल यह हो रहा है कि अनेक ऐसी संस्थाएं जो अन्तर्राष्ट्रीय कहलाने की अधिकारिणी नहीं. 'यूनेस्को' के धन का अच्छा खासा भाग उड़ाये जा रही हैं।

बजट-व्यवस्था

मैं समझता हूं कि इस वर्ष के लिए 'यूनेस्को' के बजट में ९० लाख डालर की रकम रखी गयी है। इसमें से दो-तिहाई से अधिक भाग यानी ६३ लाख डालर की रकम प्रशासन के लिए दिखायी गयी है और केवल २० लाख डालर की रकम कार्यक्रम क्रियान्वित करने के लिए रखी गयी है। इसके अलावा ४,८८,६५० डालर की रकम अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की आर्थिक सहायता के लिए है।

मेरा सुझाव है कि यूनेस्को के कार्य का विकेंद्रीकरण होना चाहिये और एशिया तथा अफ्रीका में प्रादेशिक केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिएँ। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लयू. एच॰ ओ॰) की भांति, 'यूनेस्को' को भी अपने प्रादेशिक कार्यालय खोलने चाहियें, और इन कार्यालयों का कार्य इन प्रदेशों के ही लोगों को संभालना चाहिये।

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका उल्लेख किये बिना मैं यह कथन समाप्त करना नहीं चाहता यह प्रश्न है, विभिन्न देशों के आर्थिक, अथवा राजनीतिक विश्वासों या पद का खयाल किए बिना उन सभी के लिये 'यूनेस्को' का द्वार खोल देने का। मैं समझता हूँ कि जब तक कई ऐसे देश, जो अभी यूनेस्को से बाहर हैं, उसमें सम्मिलित नहीं होते, वह अपना कार्य यथार्थ रूप से सम्पादित नहीं कर सकता रूस और चीनी जन-गणराज्य यूनेस्को के सदस्य नहीं हैं, किन्तु फिर भी संसार की जन संख्या का एक बड़ा भाग उनमें निवास करता है। जब तक ये लोग भी यूनेस्को के शिक्षा, विज्ञान एवं सांस्कृतिक संबंधी संदेश में भागी नहीं होते तब तक किस प्रकार से यूनेस्को अपना कार्य पूरा कर सकता है? यूनेस्को का कर्तव्य है कि वह इन्हें अपनी भ्रातृ भावना में सम्मीलित करने के लिए आमंत्रित करे। यदि वे यह निमंत्रण अस्वीकार करते हैं, तो इसकी जिम्मेदारी उन्हीं पर होगी।

——:o:——

अवन्तिका के कवि गुलाबखां रचित सुखसार ग्रन्थ

[श्री अगरचन्द नाहटा]

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। पर उसके साहित्य की शोध अभी उन सभी स्थानों में नहीं की गई इसलिए बहुत से महत्वपूर्ण हिन्दी ग्रन्थ और अनेकों नवीन तथ्य अभी प्रकाश में नहीं आये। अब राष्ट्र भाषा का पद हिन्दी को प्राप्त हो गया है तो इसकी प्राचीन साहित्य की शोध की भी प्रगति तेजी से होनी चाहिये। नव निर्माण के साथ प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी लक्ष्य देना परमावश्यक है। जिन प्रान्तों में प्राचीन हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज नहीं हुई है उनमें शीघ्र ही कुछ विद्वानों को नियुक्त कर शोध कार्य का प्रारंभ तुरन्त ही कर देना वांछनीय है क्योंकि हस्तलिखित प्रतियां हमारी उपेक्षा और उनके महत्व की अजानकारी के कारण दिनों दिन अधिकाधिक संख्या में नष्ट हो रही हैं। इनको किसी भी तरह बचा लेना बड़ा पुण्य का काम होगा और अपने पूर्वजों के महान् श्रम को नष्ट न होने देना हरेक सपूत का कर्तव्य ही है। सरकार इस कार्य की ओर ध्यान दे ही पर उसी के भरोसे पर बैठे रहना उचित नहीं है। हर भारतीय साहित्य के प्रेमी का कर्तव्य है कि वह अपने पूर्वजों से विरासत में प्राप्त महद् ज्ञान संपत्ति की शोध, सुरक्षा व प्रकाशन करे तभी हम अपने पूर्वजों के ऋण से कुछ मुक्त हो सकेंगे।

मालव प्रदेश भारत का गौरवशाली प्रदेश है। इसके साहित्य और इतिहास की अभीतक बड़ी उपेक्षा हुई है। जहां तक मुझे ज्ञात है ग्वालियर में तो कुछ प्रयत्न हुआ है पर उज्जैन-इंदौर आदि से उल्लेखनीय प्रगति हुई नजर नहीं आई मालव प्रदेश के अनेक प्राचीन स्थान विविध दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है पर उनके महत्व को प्रकाशित करने वाले कोई भी ग्रन्थ हमारे अवलोकन में नहीं आये। उज्जैन को ही लीजिये। इसका प्राचीन इतिहास सुव्यवस्थित रूप से लिखा हुआ अभी तक मेरे अवलोकन में नहीं आया। फुटकर लेखों के रूप में कुछ प्रयत्न अवश्य हुआ है पर उसे संतोषजनक नहीं कह सकते। इसी प्रकार धार और मांडवगढ़ के प्राचीन समृद्धि काल को जानने के लिए कोई भी अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ मेरी जानकारी में नहीं है। गत वर्ष मैं मालव के कुछ स्थानों में घूमा था। कई जैन तीर्थों की यात्रा की थी जिनका विशेष विवरण मैंने अपने 'मालव-यात्रा' नामक निबन्ध में दिया है जो 'जैन जगत' में प्रकाशनार्थ भेजा है। इसी यात्रा में उज्जैन के सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट के हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रहालय को भी देखा उसके क्यूरेटर से विदित हुआ कि थोड़ी सी सुविधाएं मिलें तो वे हजारों हस्तलिखित प्रतियें शीघ्र ही संग्रह कर सकते हैं। इसी प्रकार इन्दौर का म्युजियम देखा और उसके क्यूरेटर श्री हरिहरजी द्विवेदी से बातचीत हुई तो पता चला कि पुरातत्व की अनेक सामग्री और सैकड़ों मूर्तियें इधर उधर बिखरी पड़ी हैं उनके संग्रह का कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। मुझे ये बातें बड़ी ही दुःखद लगीं। स्वतन्त्र भारत में हमें अपने प्राचीन सांस्कृतिक उपादानों का जिस तरह संग्रह और सुरक्षा का प्रयत्न करना आवश्यक होता है, हमने उस कर्तव्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इधर कुछ वर्षों में ही काफी महत्वपूर्ण सामग्री नष्ट भ्रष्ट हो चुकी है। यदि अब भी हमारी वैसी ही उपेक्षा बनी रही तो अवश्य ही हम बड़े दुर्भागी हैं जो अपने पूर्वजों की बड़े ही श्रम एवं लगन से अर्जित ज्ञान संपत्ति को सदा के लिये हाथ से खो बैठेंगे।

जहां तक प्राचीन साहित्य का सम्बन्ध है मालव प्रदेश में संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी में बहुत बड़ा साहित्य निर्माण हुआ है। महाराजा भोज जैसे विद्यारसिक जिस प्रदेश में शासक रहे हैं उस प्रदेश की ज्ञान-गरिमा अवश्य

ही उल्लेखनीय होनी चाहिये। पर खेद है कि अभीतक इस प्रदेश में निर्मित साहित्य की जानकारी हमें बहुत सीमित है। मालव के लोकसाहित्य की चर्चा तो इन दिनों श्याम परमार आदि के प्रयत्न से अच्छी हो रही है पर प्राचीन साहित्य की शोध का कार्य तो ठप्पसा ही लगता है मालव के साहित्य प्रेमियों से मेरा नम्र निवेदन है कि इस कमी की पूर्ति के लिए वे शीघ्र ही प्रयत्न शील हों। मालव के प्रत्येक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति के लिए तो थिसिस का विषय मालव का प्राचीन इतिहास पुरातत्व मुद्राएं, शिल्प स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला[*] और संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी में लिखित ग्रन्थों का इतिहास ही होना चाहिये।

मालव प्रदेश में निर्मित हिन्दी साहित्य की जानकारी तो हमें बहुत ही थोड़ी है। विक्रम की पुरानी फाइलों में मैंने एक विद्वान का लेख पढ़ा था जिसमें मालव में निर्मित एक विशिष्ट हिन्दी ग्रन्थ का उल्लेख किया गया था। मैंने उस ग्रन्थ का विशेष परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न भी किया पर सफलता न मिल सकी। गत वर्ष अपनी पुत्रवधू को पीहर से लाने के लिए लश्कर जाना हुआ तो वहां के सूरजमलजी धाड़ीवालके हस्तलिखित संग्रह को देखनेका कुछ अवसर मिला उसमें ग्वालियर नामा एक हिन्दीका ऐतिहासिक काव्य देखने में आया। मैंने उसकी हस्तलिखित प्रति अपने साथ लाकर प्रति-लिपि करवाके मेरे मित्र डा० दशरथ शर्मा को अवलोकनार्थ भेजी। इस ग्रन्थ में इससे पूर्ववर्त्ती इतिहास का एक ऐसा ही अन्य ग्रन्थ खड़ग कवि के द्वारा रचे जाने का निर्देश है। सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीटयूट में मैंने इस ग्रंथकी भी प्रति देखी। ग्वालियर के इतिहास सम्बन्धी इन ऐतिहासिक काव्यों की एक शृंखलाबद्ध परम्परा पाकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इंस्टीटयूट के क्यूरेटर से विदित हुआ कि इन ग्वालियर नामा ग्रन्थत्रय की प्रेस कापी बहुत वर्षों पूर्व विद्वद्वर भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने की थी और वे उसके प्रकाशन के प्रयत्न में भी हैं। उन्होंने इन ग्रन्थों के आधार से कई लेख भी लिखे हैं पर वे मेरे अवलोकन में नहीं आये मैंने श्रीयुत् भालेरावजी को उन लेखों के रिप्रिन्टस भेजने और उनकी प्रेसकापी को अवलोकनार्थ भेजने को पत्र दिया उनका उत्तर भी आया पर सामग्री प्राप्त करने में अभी सफलता नहीं मिली। मुझे यह ऐतिहासिक काव्य बड़े महत्व पूर्ण लगे और इनका हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लेख तक न होना अखरा। पर यह तो एक उदाहरण मात्र है। ऐसे ग्रन्थ और भी अनेकों मिलेंगे जो महत्वपूर्ण होने पर भी अज्ञात अवस्था में पड़े हैं। ग्वालियर तो किसी समय हिंदी भाषा का प्रधान क्षेत्र रहा है। वहां की ग्वालेरी हिन्दी भाषा विशेष उल्लेखनीय रही है। हितोपदेश की ग्वालेरी भाषा टीका मेरे संग्रह में है। अन्य कई ग्रंथों में ही ग्वालेरी हिंदी भाषा का निर्देश देखने में आया पर अभी तक उसका विशेष साहित्य जानकारी में नहीं है। मेरे ख्याल से इस भाषा में काफी ग्रंथ लिखे गये होंगे जिनकी खोज आवश्यक है।

ग्वालियर में १५ वीं शताब्दी के अन्त व १६ वीं के प्रारम्भ में कुछ नृपति गण बहुत उदार और कलाप्रेमी हुए हैं। ग्वालियर के किले की जैन मूर्तियां उसी समय की हैं इसी समय अपभ्रंश का सुकवि रईधु वहां हुआ है। जिसके २०-२५ अपभ्रंश ग्रंथ प्राप्त हैं। ग्वालियर व उसके आसपास के दिं० जैन ज्ञान भंडारों का भलीभांति अवलोकन करने पर उधर के अन्य अपभ्रंश और हिंदी के कई जैन कवियों व उनके ग्रन्थों का पता चलेगा। जैन समाज का मैं इस ओर ध्यान आकृष्ट करता हूं।

संस्कृत भाषा का तो इस प्रदेश में बहुत अच्छा प्रचार रहा है। अनेकों संस्कृतज्ञ इधर हुए हैं जिनके विशाल ग्रन्थ राशि से हम अभी तक अपरिचित हैं। ब्राह्मण घरानों में खोज करने पर इस प्रदेश में निर्मित ही नहीं अन्यत्र के विद्वानों के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का पता चलेगा, जिनकी प्रतियाँ अन्यत्र कहीं नहीं है।

इतनी उपर्युक्त प्रासंगिक चर्चा कर देने के पश्चात् मैं अपने मूल विषय पर आता हूं। हिन्दी भाषा में इस प्रदेश

---

[*] सिन्धिया ओरिएन्टल इन्स्टीटयूट में मैंने मालव की चित्रकला की परिचायक एक हस्तलिखित प्रति देखी। अभी तक इस सम्बन्ध में हमारी जानकारी कुछ भी नहीं है, पर खोज करने पर वहां की चित्र समृद्धि का पता चलने की संभावना है ही। अतः खोज आवश्यक है।

में निर्मित अनेक अज्ञात ग्रन्थ मिलने की जो सम्भावना मैंने व्यक्त की है वह बहुत कुछ अनुभव के आधार से ही है। कुछ वर्ष हुए मेरी प्रेरणा से बीकानेर के श्री मोतीचन्दजी खजानजी ने हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का थोड़ा सा प्रयत्न किया। उनके इस संग्रह में मुझे एक ऐसा ग्रन्थ प्राप्त हुआ जो हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ मालव के प्रधान प्राचीन नगर अवन्तिका में ही निर्मित हुआ है। इस ग्रन्थके निर्माता एक मुसलमान कवि होने से इस ग्रन्थ का महत्व बढ़ जाता है; पर विशेष उल्लेखनीय एक और भी बात है जिसके कारण हमारा ध्यान इस ग्रन्थ की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। कवि मुसलमान होनेपर भी पक्का हिन्दू संस्कृति का प्रेमी भी था। उसने मंगलाचरण में गणपति, शारदा, शिवजी और राधाकृष्ण, शक्ति और गंगा की स्तवना की है। मुसलमानों के उपास्य मोहम्मद आदि का नामोल्लेख तक नहीं किया जाना ग्रन्थकार की हिंदू संस्कृति में रंगे रहने की विशिष्ट सूचना देता है। यह ग्रन्थ एक नीति ग्रन्थ है, अतः विषय की दृष्टि से भी सारा हिन्दू ग्रन्थों पर ही आधारित है। यदि ग्रन्थकार ने अन्तिम प्रशस्ति में अपने पूर्वजों का नामोल्लेख नहीं किया होता तो यह एक मुसलमान कवि की कृति है। इसका आभास तक किसी को नहीं मिल सकता था। मालूम होता है कि जिस प्रकार राजस्थान में कायमखानी वंश मुसलमान होने पर भी हिन्दू संस्कृति में रंगा रहा है, अपने पूर्वकालीन चौहानवंश का उन्हें गौरव रहा है और वैवाहिक रीति-रिवाज भी हिंदुओं के जैसे ही इस वंश में अनेक संस्कार शताब्दियों तक रहे हैं। यद्यपि इधर कुछ बाहरी मुसलमानों के प्रभाव में आकर कुछ कट्टरता में आने लगे हैं। इस कायमखानी वंश का करीब तीन सौ वर्षों तक फतहपुर, झूंझनू आदि में शासन रहा है इस वंश के नवाब अलीफखाँ के पुत्र न्यामतखाँ जिसने अपना उपनाम स्वररचित ग्रन्थों में सर्वत्र जान कवि ही दिया है, इसके बनाये हुए ७५ से अधिक हिन्दी ग्रन्थ की जानकारी मैं अपने राजस्थान भारती में प्रकाशित लेख में एवं अपने सम्पादित जान कवि के क्यामखाँरासा की भूमिका, में दे चुका हूँ। यह क्यामखाँरासा नामक ऐतिहासिक काव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। राजस्थान-पुरातत्व-मन्दिर, जयपुर से यह हाल ही में प्रकाशित हो चुका है। इस जानकवि ने यद्यपि अनेकों भारतीय कहानियों और हिंदू संस्कृत ग्रन्थों के आधार से रीति ग्रन्थ व कामशास्त्र आदि बनाए हैं, पर मंगलाचरण में महमद, नबी आदि को स्मरण किया है पर अवन्तिका में रचे हुए जिस ग्रन्थ का परिचय इस लेख में दिया जा रहा है उसने तो वैसा भी नहीं किया। ताज कवयित्री जिस प्रकार मुसलमान होते हुए भी हिन्दू संस्कृति में रंगी हुई कृष्ण की परमभक्त थी उसी प्रकार गुलाब कवि भी हिंदू देवताओं के उपास्य रूप में मानने वाला प्रतीत होता है उनके ग्रन्थ का नाम 'सुखसार' है सं. १८२२ के पौष सुदी १५ बुधवार को इस ग्रन्थ की रचना अवंति में हुई है। इस ग्रन्थ में १४ उल्लास हैं। जिनके नामों की तालिका नीचे दी जा रही है इससे ग्रंथ के विषय का पाठकों को भलीभांति ज्ञान हो जायगा।

१. कवि स्वभाव प्रतिवर्ण दग्धाक्षर गुरू लघु, गनागन विचार,
२. कवित्त दूषण वर्णन,
३. कवि नेंम काव्यरीत साचीवात शत्रु दोष, मित्रगुण मिथ्यावाद वर्णन आदि,
४. वर्ण अलंङ्कार
५. शीतल वर्णन तीक्ष्ण कठोर चंचल आवरन मधुर आदि वर्णन।
६. भूषण वर्णन-भूपति मन्त्री रानी राजपुत्र गुरु हय गजदूत आखेट स्वयंवर आदि वर्णन
७. देश नगर आश्रम वन बाग गिरि ताल सरिता चंद्रोदय सागर षटऋतु वर्णन
८. बारह मास वर्णन
९. जात्यादि अलंकार वर्णन
१०. प्रेमालंकार वर्णन
११. नवरस वर्णन
१२. क्रमालंकार वर्णन
१३. उपमालंकर वर्णन
१४. चित्रालंकार वर्णन

अब ग्रन्थ का कुछ प्रारंभिक व अंत का अंश दिया जा रहा है:-

मंगलाचरण

गुरू गनपति विध सारदा श्री मंगल हेत ।
कवि गुलाब वन्दत चरण शिवजू शिवा समेत ॥

इसके पश्चात् गणेश, सरस्वती, राधाकृष्ण, शिवशक्ति, गंगा के नमस्कार के कवित्त हैं। फिर ग्रन्थ रचना काल का सूचक दोहा इस प्रकार हैः—

संवत् जुगजुग गज ससी,
पौष पुण्यौ बुधवार ।
शुभदिन शोधि गुलाब कवि,
कियो ग्रन्थ सुखसार ॥ ७ ॥
सरल भांति जाणे सबै,
कठिन जो रीत कवित्त ।
जो देखें सुखसार को,
कवि गुलाब दे चित्त ॥ ८ ॥

फिर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख करते हुए हरि के गुण वर्णन करने वाले कवि को ही उत्तम कहा है। कवि ने वेद व्यास, बालमीक, शुकदेव, जयदेव, सूरदास, नाभा को रामकृष्ण के गुणगानेवाले उत्तम कवि और मनुष्यों के गुण गाने वाले को मध्यम और गाली देने वाले को निकृष्ट कवि बतलाया है। ग्रन्थ में आगे भी रामचन्द्र और कृष्ण को कई स्थानों में स्मरण और कीर्तित किया है।

सातवें उल्लास में कवि ने अपने मालव देश अवन्तिका नगरी और उसके आश्रम आदि का वर्णन किया है। उनमें से केवल उज्जैन के वर्णन वाला कवित्त ही यहां दिया जाता हैः—

सात हूं पुरी ते अधिक अति बखानी वेद।
सब सुखदानी शुभ सुषमां को धाम है॥
दरस परस हू ते पतित पवित्र होत,
प्रेम सों प्रदछिनां दे पूरे मन कामु है।
चार हूं वर्ण बसें धर्म कर्म रत,
सदा दान दया करें ऐसे अभिरामु है॥
गुण गण अगरि बसति ऐसी नगरी।
सुप्रकट अवन्तिका, उज्जैन जाकुं नाम है॥

अन्त में कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा हैः—
दोहाः—

गुनकम अपने वंश को कैसें कहौ प्रमाण
नाम रहत है ग्रन्थ में यांते करौ बखाण ॥ १ ॥
दिल्लीपत अकबर वलि, राख्यो जिनकौ मान
ऐसे कुल दीपक भये कुल में बकसन खान ॥ २ ॥
बकसनखां के सुत भये लड्डू खांन सुजांण
सुत सुजाण जू के भये लायक भाई खांन ॥ ३ ॥
लाडखांन के सुत प्रगट चार चारू गुन भौंन।
चांदखान जुंनेदखां राजू बाजीदखान ॥ ४ ॥
चांदखांन के सुत उभै, आनि कुंदन खांन ।
जिनके गुन और लायकी जानत सकल जहांन ॥ ५ ॥
कुंदनखां के तीन सुत जेठे काले खांन।
तिनकी राजा रक सौं रही एकसी वान ॥ ६ ॥

लघुबन्धौ तिनके सुमति, मगन खांन गुन गेय
वंश भगीरथ भरत सौं, सदा रख्यौ है नेह ॥ ७ ॥

कवि गुलाब सब नें लघु कवि कुलाही को दास
किरपा सीताराम तें करत अवन्ति वास ॥ ८ ॥

श्री राधा बाधा हरण मोहन मदन मुरार
प्रकट करयौ निज प्रीत सुं, कवि गुलाब सुखसार ॥ ९ ॥

विनती सुनो गुलाब की कविता दीन दयाल
जहां जहां जो भूल हैं, लीजै आप सम्हाल ॥ १० ॥

इति सुखसार ग्रन्थे चित्रालंकार वर्णनम् नाम चतुर्दश उल्लास ॥ १४ ॥ संपूर्णम् मास सावन विदि १२ वार बुध स्थान अवन्तिका

प्रति पुस्तकाकार है। साइज ९...६॥ इंच। पत्र संख्या ७८ है। प्रति शुद्ध रूप में लिखित है। अक्षर सुन्दर और जमे हुए तो नहीं हैं पर सुवाच्य हैं। लिपि में स्थानीय व जाति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ग्रन्थ अवन्तिका में निर्मित है और प्रति भी वहीं पर लिखी गई है। कागज की स्थिति देखते हुए रचना समय की लिखी हुई जान पड़ती है।

कवि गुलाब का कविता पर अच्छा अधिकार प्रतीत होता है। उसको देखते हुए इस कवि के कुछ और भी हिन्दी काव्य अवश्य मिलने चाहिएं। संभव है कवि का वंशज भी खोज करने पर अवन्तिका में कोई मिल जाय और उनके पास कवि के अन्य ग्रन्थों की भी प्रतियें प्राप्त हो जायें। मैं श्रीयुत् सूर्यनारायणजी व्यास एवं अन्य मालव के साहित्य प्रेमियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं कि वे कवि एवं उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में विशेष जानकारी शीघ्र ही प्रकाश में लावें।

जैसा कि मैं अपने पूर्व वक्तव्य में लिख चुका हूं मालव प्रदेश के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संग्रह के लिए शीघ्र ही कोई कदम उठाना चाहिए इस प्रदेश में निर्मित हिन्दी साहित्य की जानकारी तो अधिकाधिक प्रकाश में आनी आवश्यक है।

मेरे ख्याल से सिन्धिया ओरीएन्टल इन्स्टीटयूट के द्वारा यह कार्य उत्तमता से सम्पन्न हो सकता है। उसमें अभी दसहजार हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह है ही, सुविधाएं मिलने पर इतनी ही प्रतियें कुछ ही वर्षों में और संग्रहित हो सकती हैं। इस इन्स्टीटयूट को विशेष कार्यक्षम बनाने के लिए सरकार इसकी ग्रान्ट बढ़ादे और ५ ४ रिसर्च स्कोलर इसी काम के लिए नियुक्त करदे कि वे अन्यत्र अप्राप्त ग्रन्थों की जानकारी शीघ्र ही प्रकाश में लावें। विशेषतः मालव में निर्मित साहित्य का एक इतिहास ग्रन्थ तैयार करे जिसमें प्रसिद्धाप्रसिद्ध संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी आदि के साहित्य का पूरा परिचय हो। इस प्रदेश के जैन भंडारों को भी भली भांति निरीक्षण कर उपयोग किया जाय।

——:o:——

महाकवि कालिदास रचित–

ऋतुसंहार

(अनुबादक—श्रीमदनलाल जोशी साहित्यरत्न)

प्रिये ! सुविकसित सुखद आम्र की मंजरियों के लेकर प्राण !
भ्रमरपंक्ति की डोर चढ़ा, निज धनु पर, अतुलित शोभाबान ।।
सुखमय सुरति सुरत रसिकों के, हृदय बेधने आया आज ।
बन कर सैनिक वीर मनोहर, नवल वसन्त सुखद ऋतुराज !!
सुमन सहित ये चंचल तरुवर, सकमल जल शीतल गुणवान,
रतिपति सहित ललित ललनाएँ, सौरभमय पावन पवमान ।
प्रकृति पुञ्ज परिशोभित सुखदा सन्ध्या, दिवस नयन अविराम ।
प्रिये सकल जग सुन्दर होता, आता जब कि वसन्त ललाम ॥
वापी का यह सुखमय निर्मल मधुर सलिल जन गण मनप्राण,
कटि राजित मणि खचित मेखला; सुखद चन्द्रिका हर्ष निधान ।
चन्द्रमुखी सुन्दर ललनाएँ मृदुल मुदित मृदुकमल समान ।
वर वसन्त में रुचिकर होते, आम्रवृक्ष सुखकर प्रियगान
प्रिये ! सुभग इन कामिनियों ने निज नितम्ब बिम्बों पर आज,
इन कुसुम्भ सुमनों से रंजित, वसन सजाये लख ऋतुराज ।
और सजाये केशरिया रंगीन कंचुकी से वक्षोज,
सुस्मित सुन्दर नवपराग से राजित हो ज्यों पीत सरोज ।
प्रमदाओं के सुन्दर मृदुतर श्रवणों में चंचल गतिमान ।
ये कनेर के सुमन सजीले, लगे हुए आभरण समान ।
इन अशोक के सुमनों से ये चंचल अलकें घुंघराली,
कलियों से लगती अति सुन्दर, नागिन-सी काली काली ॥
प्रिय वसन्त में मन्मथवश, पीडित मन में आतुरता धार,
कामिंनियों ने कुच पर पहिन। चंदनमय मुक्ता का हार ।
मृदुकिसलय-से कर कमलों में मणिमय स्वर्ण खचित कंगन,
सजा रखी है सुमणि मेखला जघनों के ऊपर अनुक्षण ॥
स्वर्ण वर्ण वर्णित मदुमर-सिज सदृश सुशोभित चित्रागार-,
कामिनियों के मुखमण्डल पर, व्याप्त स्वेद के बिंदु अपार ।
अवलोकन में ऐसे सुन्दर रुचिकर होते हैं उस काल,
ज्यों रत्नों के मध्य चमकती हो सुन्दर मोती की माल ॥

होलिका गीतम्

(महाकवि श्री कमलेश मिश्र, बासटाँडा)

नाऽऽगतो हा प्रियो माधवो मे,
याति वृथा सुख--समय ऋते प्रिय मालि ! विषादि मनो मे;
केन समं रस—रङ्ग-सुकेलिज—साधु—सुखानुभवो मे ।
गृहे सखि ! नो सुखदो मे ॥ १ ॥
भावि ममाऽऽगमनं निकटे तव पूर्व मवधि—दिनतो मे ;
इत्थ मिहोक्तवतोऽपि कुतो न समागमनं सुहृदो मे।
वृथा समयो महतो मे ॥ २ ॥
प्रीतिमये दामनि सिन आलि ! कयाचिदसौ दयितो मे ;
किं किमु मा सखि ! विस्मृतवानथवा विधि रेव ननो मे—ऽ
थवा कुपितो रसिको मे ॥ ३ ॥
विध्यति हृदि खरतर—विशिखै रिह प्राणहरो मदनो मे ;
कोऽवति मात मृते मधुसूदन मदय, कदाऽऽलि ! वरो मे—
समेष्यति चेतसि यो मे ॥ ४ ॥
गीत मिदं कमलेश—गिरा रचितं वितनोतु मुदो मे,
येन हरे रखिलप्रद—पाद—सरोज-युग--स्मृतयो मे ।
सदा सुख मेव यतो मे ॥ ५ ॥

वसन्तोत्सव

‘श्री हरि’

मंजुल रसाल नव मंजरी पुनीत पीत,
नीर पूर्ण हेम घट द्वार पै धराएंगीं ।
“श्रीहरि” वसन्त को शुभागम विलोकि आज,
मंजु कंज- केसर सुमांग को भराएंगीं ॥

पीत देह, पीत गेह, पीत नेह, पीत सेज,
पीत फूल-जाल सों सुवेनी हहराएंगीं ।
पीत माल, पीत भाल, पीत मन, पीत पट,
पीत पटवारे के सुप्रेम में कराएंगीं ॥

लघु-कथा

आकाश टूटा

[श्री रावी]

किसी गांव में तीन मूर्ख रहते थे। उन तीनों की सुसराल उनके गांव से दो मंजिल की दूरी पर एक ही गांव में थी।

एक बार उनकी सुसराल के गांव से-उस गांव का नाम भी भोजगांव था—उनके पास ब्रह्म भोज का न्यौता आया। उस गांव के बहुत धनी बनिये ने यह ब्रह्म-भोज रचाया था और अपना सारा धन—चाँदी, सोना, जवाहरात सभी कुछ—इस भोज में दान करके उसने सन्यास लेने का निश्चय किया था। अपने गांव की सभी लड़कियों के सुसराल वालों को उसने विशेष रूप से निमन्त्रित किया था, क्योंकि वे उस गांव वालों के 'मान' होने के नाते विशेष दान के अधिकारी थे।

ये तीनों मूर्ख दान-दक्षिणा के बड़े-बड़े मन्सूबे बाँधते हुए एक साथ सुसराल की ओर चल दिये। राह में एक मूर्ख ने बताया कि उसके घर से निकलते समय उसे पानी से भरा घड़ा लिये एक पनिहारिन मिली थी; इस शकुन से जान पड़ता है कि बहुत बड़ा माल उसके हाथ लगेगा। दूसरे ने कहा कि उसके घर से निकलते समय एक पड़ौसी ने छींक दिया था; इससे जान पड़ता है कि इसमें कुछ विघ्न पड़ेगा। तीसरे ने कहा कि उसके घर से निकलते समय एक बिल्ली रास्ता काट गई थी; इससे जान पड़ता है कि कोई बड़ी मुसीबत आयेगी।

होते करते एक मंजिल निर्विघ्न समाप्त हो गई और रात को तीनों भोजनादि से निवृत्त होकर एक वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए ठहर गये।

तड़के जब उन तीनों की आँख खुली तो उन्होंने देखा कि चारों ओर घना अन्धःकार छाया हुआ है और धरती-आकाश की किसी भी दिशा में दो चार कदम से आगे कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देती। इस अनदेखी दशा को देखकर तीसरे मूर्ख ने कहाः—

"देखो भाई, मेरा असगुन ही सबसे अधिक सच्चा और बलवान निकला। शास्त्रों में लिखा है कि मार्ग के विघ्न तीन प्रकार के होते हैं—वज्रपात हो उल्कापात हो या आकाश टूट पड़े। सो हो न हो यह हम लोगों पर आकाश ही टूट पड़ा है। जब आकाश टूट पड़े तब जग-प्रलय को समीप ही समझना चाहिये।" यह कह कर और अपने घर वालों की याद करके यह मूर्ख फूट फूट कर रोने लगा और प्रलय से पहले अपने घर वालों को एक बार देख लेने की उतावली में पीठ फेर कर गिरता पड़ता अपने गांव की ओर भाग चला।

इस मूर्ख की बात पर दूसरे दोनों मूर्खों को भी विश्वास हो गया। वे भी बड़ी चिन्ता में पड़ गये। कुछ देर बाद पहले मूर्ख को ध्यान आया कि उसने घर से निकलते समय जो पानी से भरा घड़ा देखा था उसका भी तो कुछ न कुछ शुभ परिणाम होना चाहिए। उसने मन ही मन में तर्क किया।

"यह तो आकाश हम लोगों पर टूट पड़ा है यह पर्वत से भी अधिक भारी और दुर्भेद्य जान पड़ता है, लेकिन मेरे ऊपर इसका कोई बोझ नहीं मालूम होता और हर ओर चार-चार हाथ की दूरी तक का दृश्य भी मुझे कुछ न कुछ सुझाई ही देता है। हो सकता है शकुन के प्रताप से मेरे ऊपर के आकाश में आठ-दस हाथ लम्बा चौड़ा छेद हो गया हो। मैं भोजगांव की ओर चलकर देखूँ, अगर यह छेद मेरे साथ साथ बढ़ता गया तो मैं चलता जाऊँगा अगर न बढ़ा तो जो हो सकेगा देखा जायगा।"

यह मूर्ख भोजगांव की ओर चल दिया और उसने देखा कि आकाश का यह छेद सचमुच उसके साथ साथ चल रहा है। दोपहर चढ़ते ही उसने देखा कि आकाश धीरे धीरे कम हो रहा है और तीसरा पहर होते होते वह अपने

ठीक स्थान पर पहुँच गया । वह हँसी खुशी शाम से पहले ही भोजगांव में पहुँच गया और भोज के मधुर पकवानों से तृप्त होकर यथेच्छ दान-दक्षिणा भी पा गया ।

उधर तीसरे मूर्ख ने सोचा "मुझे छींक का अपशकुन हुआ था उसके शमन के लिए मुझे भगवान का नाम लेना चहिये।" और वह वहीं बैठकर राम राम जपने लगा । तीसरे पहर जब उसने देखा कि आकाश ऊपर को उठने लगा है तब सोच विचार कर वह उठा और भोजगांव की ओर चल दिया आधी रात बीते वह भोजगांव में पहुँच गया । बचे खुचे घरातियों की अंतिम पंगत उसी समय खाने बैठी थी। वह उसमें सम्मिलित हो गया लेकिन उसे दान-दक्षिणा कुछ नहीं मिल सकी क्योंकि बनिया सूर्यास्त से पहले ही अपना सर्वस्व दान कर चुका था ।

मेरे कथा गुरु का कहना है कि दूसरे और तीसरे मूर्खों की संतानें ही आज कल इस लोक में निन्नानवे हजार नौ सौ निन्नानवे प्रति लक्ष जनता के रूप में पृथ्वी पर बसी हुई है । और अपनी पैतृक सम्पत्ति से पूर्ण संतुष्ट है; और यद्यपि वे अब घने कुहरे को टूटा हुआ आकाश नहीं मानती हैं फिर भी अपने तर्कनाशील मस्तिष्कों से उपजाये हुए भ्रमों को दुर्भेद्य विपत्तियाँ मान कर पीछे भागने या राह में बैठ रहने का क्रम उनका बराबर चल रहा है । कथा गुरु का यह भी संकेत है कि पहले मूर्ख का जो बहुत छोटा सा वंश इस भूतल पर चल रहा है उसके लोगों को अब मूर्ख नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका वह आदिम पितामह अपनी प्रगति साधना द्वारा पहले ही बुद्धिमत्ता को प्राप्त कर चुका था ।

--:o:--

(पृष्ठ १७ का शेषांश)

नाम पर स्वयं अमर बन गया है । पर्वत को तो उसकी पूर्व परम्परा के अनुकूल ही वास्तविक नाम से निर्दिष्ट किया जाना चाहिए, खोज से यह असम्भव नहीं । कुछ लोगों ने 'कैलाश' नाम भी सुझाया है, यह नाम भी एक विशेष पर्वत का है, और वहाँ लोग पहुँचते हैं, यदि नया नाम ही देना पड़े तो हमारी स्वल्प सम्मति में उसे 'स्वर्ग शिखर' कहना अधिक उपयुक्त होगा । उसकी समस्त उपत्यका को 'तेनसिंग' के नाम से ज्ञापित किया जा सकता है अथवा 'सिंह शिखर' कह कर हम दोनों नामों को साथ-साथ रख सकते हैं, परन्तु 'एवरेस्ट' नाम का प्रयोग तो सदा के लिए हमें समेट ही देना चाहिए । नगाधिराज को पराए नाम से कलंकित नहीं बनाना चाहिए । जिस प्रकार हम विदेशी नाम को विनष्ट करना चाहते हैं, उसी तरह अपने नाम को भी आरोपित करने की प्रवृत्ति न करें, पर्वत को अपने ही वास्तविक नाम से ज्ञापित कर उसका परम्परागत गौरव अक्षुण्ण बनाए रखें । मानव की नम्रता विजय में भी प्रच्छन्न पराजय की प्रतीक रहती है, जबकि अजेय पर्वत हार कर भी अपना गौरवोन्नत मस्तक उठाए हुए रहेगा ।

--:o:--

—: आधुनिक कविता की भाषा :—

[प्रो० भगवंतशरण जौहरी]

बराय पाकिए लफ्जे शबे बरोज़ आरन्द।
कि मुग़ माही बाशन्द खुफ़ता ऊबेदार॥

"कवि एक शब्द को परिष्कृत करने के लिये उस रात्रि को जाग कर दिन में परिणत करता है, जिसको चिडियां और मछलियां तक निद्रादेवी के शान्तिमय अंक में शिर रखकर व्यतीत करती है" यदि कवि कर्म इतना कठोर न होता तो कवि-कुल-गुरू कालिदास जैसे असाधारण विद्वान और विद्या बुद्धि निधान 'त्रयम्बकम् संयमिनं ददर्श' इस श्लोक खण्ड में 'त्र्यम्बकम्' के स्थान पर 'त्रयम्बकम्' न लिख जाते, जो कि त्र्यम्बकम् का अशुद्ध रूप है। यदि इस त्र्यम्बकम् के स्थान पर वह 'त्रिलोचनम' लिखते तो कविता सर्वथा निर्दोष होती, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया जिससे यह सिद्ध होता है कि कविता लिखने के समय बहुत चेष्टा करने पर भी उनको यह शुद्ध और कोमल शब्द स्मरण नहीं आया, और इसी से उन्होंने एक ऐसे शब्द का प्रयोग किया जो च्युत-दोष से दूषित है। कवि किसी भाषा हीन शब्द को यथा शक्ति तो रखता नहीं, जब रखता है तो विवश होकर रखता है। जिस की रचना चुभती हुई तथा आकर्षक है, जिसके भाव लोक विमुग्धकर और उपकारक हैं। उसकी रचना में सहृदय पाठक प्रायः दृष्टिपात नहीं करते क्योंकि—

जड चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिंपय, परिहरि वारि विकार॥

सब भाषाओं में गद्य की भाषा से पद्य की भाषा में कुछ अन्तर होता है। कारण यह है कि छन्द के नियम में बन्ध जाने से ऐसी अवस्था प्रायः उपस्थित हो जाती है कि जब उसमें शब्दों को तोड मरोड कर रखना पड़ता है या उसमें सुविधा के लिये कुछ ऐसे शब्द रख देने पडते हैं जो गद्य में व्यवहृत नहीं होते। कभी २ ऐसा होता है कि उन शब्दों के पर्यायवाची लाख चेष्टा करने पर भी कवि को समय पर स्मरण नहीं आते। कभी ऐसे शब्दों के स्थान पर दस शब्द रखने से भी काम नहीं चलता। कवि-कर्म बहुत ही दुरुह है। जब कवि कविता के एक चरण के निर्माण में तन्मय हो जाता है तब उसे बहुत ही दुर्गम और संकीर्ण मार्ग में होकर चलना पड़ता है। छन्द की गिनी हुई मात्राएं अथवा वर्ण भावनाओं के प्रवाह को उस सीमित व जकड़ी हुई परिधि में प्रकट करना स्पष्ट वाच्यार्थ, श्रुति-कटु होने से मुक्ति, च्युत-दोष एवं अश्लीलता से बचना आदि कई प्रकाश स्तम्भ उसे उद्विग्न और चिंतित करते रहते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है इस मूर्ति विधान के लिये वह भाषा की लक्षणा शक्ति से काम लेती है। लक्षणा द्वारा स्पष्ट और सजीव आकार-प्रदान का विधान प्रायः सब देशों के कवि-कर्म में पाया जाता है। यथा पद्माकर की पंक्तिः—

हां तो श्याम रंग में चोराय, चित चोरा चोरी
बोरत तो बोरयों पैं निचोरत बनैं नहीं।

वस्तु या तथ्य के पूर्ण प्रत्यक्षीकरण तथा भाव या मार्मिक अन्तर्वृत्ति के अनुरूप व्यंजना के लिये लक्षणा का बहुत कुछ सहारा कवि को लेना पड़ता है।

भावना को मूर्त्त रूप में रखने की आवश्यकता के कारण कविता की भाषा में दूसरी विशेषता यह रहती है कि उसमें जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष रूप से व्यापार सूचक शब्द अधिक रहते हैं। बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनसे एक का नहीं बल्कि बहुत से रूपों या व्यापारों का एक साथ चलता सा अर्थ ग्रहण हो जाता है। ऐसे शब्दों को हम जाति संकेत कह सकते हैं। ये मूर्त्त विधान के प्रयोजन के नहीं होते हैं। हमारे यहां के आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को 'अप्रतीतत्व' दोष माना है। पर दोष स्पष्ट होते हुए

भी चमत्कार के प्रेमी कब मान सकते हैं। प्राणी आयु भर प्रयास करके भी कभी वास्तविक सुख शांति प्राप्त नहीं करता, इस बात को गोस्वामीजी यों सामने रखते हैं।

'डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोये।'' अंग्रेज कवि पोप ने भी भविष्य के अज्ञान का यही मार्मिक चित्र लिया है।

"आगम का अज्ञान ईश का परम अनुग्रह"+
तीसरी विशेषता कविता की भाषा में वर्ण विन्यास की है। जिस प्रकार से मूर्तविधान के लिये कविता चित्र विद्या प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद-सौष्ठव के लिये वह संगीत का कुछ कुछ सहारा लेती है। जो अन्त्यानुप्रास को फालतू समझते हैं वे लय में ही लीन होने का प्रयास करते हैं।

हमारी काव्यभाषा की चौथी विशेषता (जो संस्कृत से ही आई है) कहीं कहीं व्यक्तियों में नामों के स्थान पर उनके रूप-गुण या कार्य बोधक शब्दों का व्यवहार किया जाना। सच पूछिये तो यह बात कृत्रिमता बचाने के लिये की जाती है।

'आधुनिक कविता की भाषा' नामक ग्रन्थ में जिसके लेखक न्यायमूर्ति श्री बृजकिशोर चतुर्वेदी बार एट लॉ हैं। आधुनिक खड़ी बोली के लोक प्रिय तीस काव्य ग्रन्थों की समीक्षा है। पुस्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुण्य स्मृति में समर्पित की गई है। सन् १९४२ में लेखमाला के रूप में वर्ष भर 'वीणा' में जो लेख प्रकाशित होतें रहे वे प्रथम भाग में, १९४४-४५ में 'तरुण' के १४·१५ अंकों में प्रकाशित लेख दूसरे भाग में तथा १९४३ से १९४७ तक विक्रम, हिमालय, राष्ट्र धर्म हिन्दुस्थान नवयुग न नवभारत में प्रकाशित लेख (कामायनी पर लिखे निबन्ध को छोड़कर) तृतीय भाग में संग्रहीत हैं। अपने विषय की यह प्रथम और अद्वितीय पुस्तक है जिसके लेखक व प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

'कवि उस रथी के सदृश होता है जो रथ में जुते हुए घोड़ों को समगति से चलाने का प्रयत्न करता है। उसको सडक का भी विचार करना पडता है। और गन्तव्य स्थान का भी एतदर्थ सुकुमार-हृदय कवियों पर आक्षेप और आलोचनाएं लिखना कम साहस का कार्य नहीं। पर जहां प्रतिभा के प्रकाश से अन्य सब चका चौंध में आ जाते हैं, वहां मार्ग दर्शन के हेतु यथार्थ की ओर इंगित करना किसी मनीषी की साधना का ही फल हो सकता है। कवियों की रचनाओं को कई बार पढकर उनका जो प्रभाव लेखक के अन्तर पर पडता है उसे वैसे ही व्यक्त करने का प्रयास इन लेखों में किया गया है। कवि को मुख्यतः भाषा की कसौटी पर ही परखने का प्रयत्न किया है। पर यथा स्थान साहित्य शास्त्र, युद्ध शास्त्र, उपनिषद्, दर्शन, मनो-विज्ञान एवं प्रकृति पर्यवेक्षण का भी सहारा लिया गया है। विशेषतः भाषा पक्ष पर इतनी तीव्र दृष्टि अन्य किसी आलोचक की नहीं गई एतदर्थ इस पुस्तक का आलोचना क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रहेगा।

कवि की अनुभूति को ठीक ठीक व्यक्त करने के लिये कविता में शुद्ध, स्पष्ट एवं सुगठित भाषा का होना आवश्यक है इसलिये "प्रतीक वादी" अस्पष्ट भाषा का रसास्वादन तब तक नहीं हो सकता जब तक कि कवि यह न बतलाने की कृपा करें अमुक शब्द अमुक भाव का प्रतीक है। किसी कवि ने 'फूल' को प्रेम का प्रतीक माना तो दूसरे ने हृदय का और पंखुरियां भावों की प्रतीक बन गईं।

अंग्रेजी साहित्य के टी० एस० ईलियट व ब्लेक सरीखे कवियों की भांति छायावादी कवियों की भाषा एक अत्यन्त संकुचित क्षेत्र के अनुभव को लिये हुए कवि की अस्पष्ट व्यक्तिगत भाषा होने के कारण केवल थोड़े से विशिष्ट जनों को ही उस उलझन का रसास्वादन करा सकती है। यों भी जहां भाषा का प्रवाह

+The blindness to the future kindly given — Essay on Man.

बिगड जाता है अथवा कवि की असावधानी से बड़े २ शब्द अथवा अर्थ-दोष कविता में आ जाते हैं वहां रस की प्रतीति रुक जाती है और कवि का संवेध निष्फल हो जाता है। साहित्यिक प्रासाद के ऊपर पहुंचने के लिये भाषा का प्रथम सोपान है। जहां इस प्राथमिक परीक्षा में कवि खरा नहीं उतरता वहां रहस्य वाद प्रगतिवाद अभिव्यंजनावाद और मनो विश्लेषण-वाद के प्रश्नों को उठाना कहां तक समीचीन हो सकता है।

कवि भावना के क्षेत्र में विचरता है पर यदि वह बुद्धि से सहायता लेता है तो उसे सर्वमान्य तर्क सिद्धांतों की अवहेलना करने का अधिकार नहीं। यही पर्याप्त नहीं की भाषा शुद्ध है। वह विषय और प्रसंग के भी अनुकूल होनी चाहिए। 'बंगदर्शन' की छायावादी भाषा विषय के साथ न्याय न कर सकी। कवि किसी भी शैली को अपनावे पर वह स्वाभाविकता की रक्षा करने में कहां तक सफल हुआ है यही लेखक का उद्देश्य है। भाषा की एक रूपता अत्यावश्यक है। संस्कृत फारसी ब्रज और ग्रामीण की खिचड़ी अच्छी नहीं यथा दिनकर का कुरुक्षेत्र देखिए--

शीश पर आदेश कर अवधार्य ।
प्रकृति के सब तत्व करते हैं मनुज के कार्य
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश
और करता शब्द गुण अम्बर वहन सन्देश

यदि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है तो कविता में अवश्य भाषा प्रवाह सुन्दर रहेगा चाहे विषय इतिवृत्तात्मक हो अथवा चिन्तन प्रधान। एक औंस प्रतिभा और निन्यानवे औंस परिश्रम का यही अभिप्राय है कि परिश्रम ही प्रतिभा है एतदर्थ कला के मन्दिर में धैर्य पूर्वक यदि कविगण भाषा की स्पष्टता एक रूपता, पात्रानुरूपता, ध्वनियोजना शब्द स्थापना व प्रौढ़ विचार शक्ति पर ध्यान देकर कविता को प्रसाद गुण तथा अर्थ गौरव से अलंकृत कर सके तो हम उन पर अधिक गर्व कर सकेंगे।

कला मनुष्य के संस्कृत हृदय की उपज है। मनोभावों को व्यक्त करने की अदम्य लालसा ही कलाओं की जननी है। काव्य का एक एक अक्षर एक चित्र उपस्थित कर सकता है। जैसे--

संध्या का झुटपुट, बांसों का झुरमुट
चिडियां करती टी वी टी टुट टुट (पंत)

पुस्तक के प्रथम भाग में गुप्तजी की यशोधरा, श्री बच्चन का निशा निमन्त्रण श्री प्रसाद की कामायनी श्री पंत का गुंजन, श्री निराला का तुलसीदास तथा सुश्री महादेवी वर्मा की यामा पर निबन्ध हैं। लेखक के शब्दों में यामा में १०० बार से अधिक अवगुंठन शब्द का प्रयोग हुआ है। निराला, पंत और बच्चन ने भी इसका इतना ही प्रयोग किया है कि छायावाद का प्रणव यही हो। बच्चनजी ने तो घूंघट के साथ साथ ही अवगुंठन को भी लिख डाला यथा—

देख रात है कितनी काली।
आज सितारे भी हैं सोए
बादल की चादर में खोये
एक बार भी नहीं उठाती घूंघट अवगुंठन वाली।

यशोधरा में गुप्तजी के तुकों के दुराग्रह पर समालोचक का कविहृदय जो व्यंग करता है वह आकर्षक है :—

भू भूकम्प हलावेगा ही
दुमुख दाल दलावेगा ही
गाडी बैल चलावेगा ही
मिट जाने को देह बना।

एक अंग्रेजी समालोचक के अनुसार यदि वर्ड्स्वर्थ अपनी ¾ कविताएं नष्ट कर देता तो विश्व साहित्य में सब से बडा कवि माना जाता। आधुनिक कवि समाज भी यदि अपनी कृतियां दुबारा तिबारा पढ़ें तो साहित्य कूड़े-कर्कट से मुक्त हो सकेगा। "कामायनी' के संघर्ष सर्ग में ग्रामीण भाषा का भद्दा प्रयोग है:—

मायविनि बस पाली तुमने ऐसी छुट्टी।
लड़के जैसे खेलों में करलेते खुट्टी॥

जहां कामायनी के चतुर्थांश में कल्पना की ऊंची उड़ान विलास और ऐश्वर्य की सुन्दर झांकी रहस्य की मादकता के साथ आध्यात्मिक भूमि के उच्चतम धरातल का रमणीक वर्णन मिलता है। वहां उसका तीन चौथाई भाग भाषा-दोष, व्याकरण दोष, प्रान्तीय प्रयोग, अस्पष्ट प्रयोग विभक्ति लोप एवं अनुचित मुहावरों से भरा है।

डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में "पंतजी के समान भाषा का इतना बड़ा विधायक हिन्दी में कोई नहीं है"। उनका भी एक प्रयोग देखिये:--

रह रह कर मिथ्या पीड़ा से।
दुखता दुखता मेरा मन॥

लेखक की इन पंक्तियों से भाषा का यह शाश्वत स्वरूप पंतजी के कर कमलों में फलता फूलता रहे।

इस शाश्वत साही कवि का क्रम
शाश्वत इस कविता का उद्गम
शाश्वत उन्मन, शाश्वत गुंजन
शाश्वत हृत्तंत्री का कंपन
शाश्वत युग, युग भाषा हिन्दी
हिन्दी सिर शाश्वत की बिन्दी
शाश्वत शाश्वत गुंजार दिया
भाषा का पुनरुद्धार किया।

तुलसीदास में खड़ी बोली फिरसे पूर्व काल के अनस्थिरता भंवर में इधर उधर बुरी तरह भटकने लगीथी। यामा में छायावाद के बेसिक शब्दों को बारबार दुहराया गया है। उसमें यदि कोई वस्तु अचल है तो वह शब्द "चल" ही है।

पुस्तक के द्वितीय भाग में माखनलाल चतुर्वेदी की हिम किरीटिनी, इलाचंद जोशी की विजनवती, के० प्र० मिश्र के मेघदूत का पद्यानुवाद, दिनकर के द्वन्द्वगीत और रसवन्ती, श्री नरेन्द्र शर्मा की पांच रचनाएं, श्री श्याम नारायण पांडेय की हल्दी घाटी. ठा० गोपाल शरणसिंह की संचिता और ज्योतिष्मती.गुरुभक्तसिंह जी की नूरजहां, सो० ला० द्विवदी की भैरवी और बंगदर्शन पर निबन्ध हैं।

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी की निम्न पंक्तियां पढ़कर: —
हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआ।
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड का कूआ॥
समालोचक की यह 'पेरोडा' भी उपयुक्त प्रतीत होती है।

हिन्दी कविता में बडा भला यह हूआ,
'तुम अब लिख सकते 'धूआ' 'दूआ' सूआ'
जोशीजी ने:—

उच्छल फेनिल जलधि विलोड़ित,
पुरवैया का सजल उसास।

में संस्कृत गर्भित भाषा में पुरवैया ठूंस दिया हैं।
द्वन्द्वगीत और रसवन्ती में भाषा शैथिल्य के साथ॥
तन्मयता का अभाव प्रतीत होना है। देखिये:—

खिल पाए तो कुसुम खिलाओ
नहीं करो पतझाड इसे।
या तो बांधो हृदय फूल से
या कि इसे आजाद करो॥

आलोचक का कवि यहां भी मुखरित हो उठा है:—

हुँकार रेणुका को लिख कर
मैं अपना भार उतार चला।
रसवंती द्वन्द्व गीत में अब
करने कृत्रिम मनुहार चला।
डांडों की दे दे मार चला
तम से घबडा कवि हार चला
दिनकर भी कन्धा डार चला।

श्री नरेन्द्र शर्मा ने भी देहाती शब्द खोज खोज कर रक्खे हैं। पांडेयजी ने सूरज मयंक सोए थे अपने अपने बंगलों में लिख नया रंग उपस्थित किया है

खुट खुट करने वाले साहित्यिकों के दल में ठाकुर साहब का नाम प्रमुख हैं । 'उनने एक स्थान पर लिखा हैं:—

मन अब लगता है, हा कहीं भी न मेरा।
दृग युग-गृह में है अश्रु धारा- बसेरा ॥

भाषा की दृष्टि से प्रबन्ध काव्यों में नूरजहां का स्थान अद्वितीय है भक्तजी भी तुकाग्रह से जकड़े है:—

यह कम्पा ले जाओ मुझ पर न लगेगा लासा।
दृढता जल में गल जावेगा तेरा जाल बतासा ॥

सोहनलाल जी उज्जैन और अवन्ती को दो जानते हैं।

ये मगध अयोध्या ऋषिपत्तन
उज्जैन अवन्ती के प्रांगण ।

पुस्तक के तृतीय और अन्तिम भाग में साकेत प्रिय प्रवास श्री सियारामशरण का बापू श्री वियोगी का आर्यावर्त्त श्री अंचल के करील और लाल चूनर तथा श्री सुमन के प्रलय सृजन पर निबन्ध हैं। अंत में साहित्य-समीक्षा और सजीव कविता पर लेख हैं।

साकेत की तुक बन्दी देखिए:—

अवसर न खो निठल्ली
बढ़जा बढ़जा विटप निकट बल्ली
अब छोड़ना न लल्ली
कदम्ब अवलम्ब तू मल्ली

प्रियप्रवास क्लिष्ट शब्दावली एवं संश्लिष्ट पदावली के हेतु प्रसिद्ध है। बापू की भाषा पर यह कटाक्ष देखिए:--

बापू पढ़कर देखी
हिन्दी की यह बोली खड़ी खड़ी
कूट जटिल संदिग्ध पदों से
अथ से इति तक कड़ी कड़ी ॥

आर्यावर्त भी भाषा दोष से मुक्त नहीं यथा:—

(१) अर्धमृत अश्वों का रंभना।
(२) श्रृगालों का कूकना।

'अंचलजी' ने कुत्सित दृश्य समाज पर लादे हैं देखिए:—

मैं मौन पडा छत के ऊपर
तब भैंकू का कुछ नशा घटा,
वह चला गया घर से बाहर।
रह गई अकेली वह,
आधा शिशु बाहर था आधा अंदर ॥

श्री सुमन में भी शब्द साम्य का अभाव है—

घनन घनन घन बादल गरजे
घहर घहर घन तोपें।

घनन घनन घंटे बजते हैं बादल नहीं गरजते ।

प्रसिद्ध शिल्पी माइकैल इंजिलों के अनुसार "जितना ही संगमरमर कट-छट कर खराब होगा उतना ही मूर्ति भव्य बनेगी" (The more the marble wasted the better the statue) ये शब्द साहित्य रचना के लिए भी उतने ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

५२८ पृष्ठ का यह ग्रन्थ हिन्दी कवियों और आलोचकों को नए दृष्टिकोण से विचार करने का अवसर प्रदान करेगा। लेखक ने अत्यंत औदार्य व विनय के साथ राष्ट्र भाषा के हित को दृष्टि में रखकर अभावों की ओर संकेत किया है लेखक हास्य रस के प्रसिद्ध कवि हैं तथा उनके 'श्रीमती बनाम श्रीमता व 'पेरोडयावली' दो संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तक में भी प्रायः हर कवि पर उपयुक्त पेरोडी भी लिख कर यथा स्थान रखना उनकी अपनी सूझ है। आशा है हर पुस्तकालय व हिन्दी प्रेमी की आवश्यक पुस्तकों में इसे स्थान मिलेगा !

'आधुनिक कविता की भाषा' लेखक श्री बृजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-ला, प्रकाशक गयाप्रसाद एंड संस आगरा। मूल्य ६)

कलाकार कौन है?

[श्री रामचन्द्र शुक्ल एम०एड० पी०]

मनुष्य ने बर्तन बनाये जिसका कार्य वस्तु को अपने अन्दर रक्खे रहना है। घर बनाये जिसका कार्य उसके अन्दर रहने वाली वस्तुओं को धूप, पानी, हवा इत्यादि हानिकारक वस्तुओं से बचाना है। रथ या सवारी बनी जो मनुष्य को, वस्तुओं को एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। इसी प्रकार बड़ी बड़ी मशीनें, मोटर, इंजन, वायुयान, पानी का जहाज इत्यादि मनुष्य के लिये कार्य करने को बनाए गए। अर्थात मनुष्य ने जितनी वस्तुओंका निर्माण किया सभी मनुष्य का कार्य करती हैं। यह सभी वस्तुएँ मनुष्य ने अपने आनन्द तथा सुविधा के लिए बनाई, इन सबका आधार मनुष्य की क्रियात्मक प्रवृत्ति है। मनुष्य हर समय कुछ न कुछ कार्य किया करता है जब तक वह जागृत अवस्था में रहता है। हम कह सकते हैं, मनुष्य का कार्य, कार्य करना है अर्थात् कार्य करने वाले मानसिक जीव को हम मनुष्य कहते हैं। जो कार्य करता है वही मनुष्य है। जिस प्रकार मनुष्य की बनाई वस्तुएँ अपना अपना कार्य करती हैं उसी प्रकार प्रकृति की बनाई हुई वस्तुएँ अपना-अपना कार्य करती हैं, मनुष्य भी प्रकृति की एक वस्तु है और वह भी प्रकृति, सृष्टि के लिए कार्य करता है। जिस प्रकार मनुष्य की बनाई वस्तुएं मनुष्य का कार्य करती हैं। उसी प्रकार प्रकृति की वस्तुएं जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित है, प्रकृति का कार्य करती है।

मनुष्य कार्य को करके कलाकार कहलाता है उसी प्रकार प्रकृति भी अपना कार्य कलाकार की भांति करती है। सँसार की जो भी वस्तु कार्य करती है वह कलाकार का कार्य करती है। मधुमक्खी अपने हजारों छिद्र वाले सुन्दर छत्ते बनाती हैं जो मनुष्य की कला से किसी प्रकार भी कम नहीं। फूलों से रस चुन-चुन कर शहद बनाती हैं, क्या वह किसी चीनी के मिल से कम महत्वपूर्ण कार्य करती हैं? इसी भांति प्रकृति की सभी वस्तुएँ सुन्दरता के साथ अपना कार्य करती जाती हैं, और ये सभी वस्तुएं कला का कार्य करती हैं।

कलाकार शब्द मनुष्य का बनाया हुआ है, वह कलाकार के अर्थ में उस व्यक्ति को समझता है जो कला का कार्य करता है इसमें केवल मनुष्य आता है, प्रकृति के अन्य कलाकार नहीं। यही नहीं, मनुष्य में भी साधारणतया हम सभी को कलाकार नहीं कहते। कलाकार हम उसे कहते हैं जो कोई विलक्षण रचना करता है, जैसा सभी व्यक्ति नहीं करते, जैसे संगीत का कार्य, चित्र का कार्य, नृत्य का कार्य, मूर्ति का कार्य, काव्य का कार्य, साहित्य का कार्य इत्यादि। इतने से हम संतुष्ट नहीं होते और कलाकार का अर्थ हम संकुचित करते हैं। उसी को कलाकार समझते हैं जो सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् का ज्ञाता होता है। सबसे सूक्ष्म कलाकार हम परमात्मा या ईश्वर को समझते हैं। यह हमारे मानसिक बाजीगरी (Mental gymnastic) का स्वरूप है। कलाकार तो सम्पूर्ण मनुष्य जाति है, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु है। अर्जुन को श्रीकृष्ण ने महाभारत में अपना विराट्रूप दिखाया, जिसमें समस्त भूमण्डल तथा त्रिलोक सम्मिलित था। इस दृष्टिकोण से कलाकार ईश्वर ही नहीं त्रिलोक है, अर्थात् त्रिलोक की प्रत्येक वस्तु कलाकार है, प्रत्येक मनुष्य कलाकार है।

गीता में कर्म को जीवन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कर्म करना मनुष्य का धर्म बताया गया है। कर्म करने वाला ही कलाकार हो सकता है। जो भी कर्म करता है वह कलाकार है, अर्थात् कला का कार्य करना ही मनुष्यत्व है। प्रत्येक मनुष्यके लिए कलाका कार्य करना आवश्यक है। कला का कार्य करने का अधिकार केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियों के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानसजाति के लिए है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य कलाकार बनना है। मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार में कलावृत्ति आवश्यक है; मनुष्य की सुकृति, विकास, प्रगति तथा जीवन सभी कला पर आधारित है। संसार की प्रत्येक जाति का उत्थान कला के कार्य पर आधारित है।

Nehru :—

What constitutes the greatness of a people or a nation is not merely something which is achieved by political menoeuvring, not even something achieved by force of arms itself, but ultimately by the creative energy of the nation and the vitality of the nation which expressess itself in creative works. One finds when ever a nation is great or the people are great, they are creative Whenever their greatness passes .their creative instict passes away.

I want a sense of beauty and appreciation of beauty to be developed in India. I am sorry to confess we have become sody like shody things and cannot appreciate beauty. People who cannot appreciate beauty are apt to reflect this in life.

प्राचीन भारत, चीन, रोम तथा तथा ग्रीस का उत्थान उनकी कला पर आधारित था। कोई देश या जाति कला का निरादर नहीं कर सकती। किसी देश या जाति का जब प्रत्येक व्यक्ति कलाकार की भांति कार्य करता है तभी उस जाति या सभ्यता का विकास होता है, उत्थान होता है।

प्राचीन भारत में कलाकार शब्द के स्थान पर शिल्पी शब्द प्राप्त होता है। आज भी शिल्पी शब्द प्रचलित है। साधारणतया हम शिल्पी के अर्थ में केवल मूर्तिकार तथा भवन निर्माणकार को समझते हैं। परन्तु प्राचीन भारत में शिल्पी सम्पूर्ण विद्याओं का द्योतक था।

श्री गोविन्द कृष्ण पिंल्लई अपनी पुस्तक 'शिल्पी का कार्य' में लिखते हैं:—

"प्राचीन समय में जब कलाकार में तथा दस्तकार में भेद नहीं था, हिन्दू जाति शिल्पी शब्द का व्यवहार कलाकार, भवन निर्माणकार तथा मूर्तिकार को सम्बोधित करने के लिये करती थी, जिसके कार्य की परिधि विज्ञान जैसे गणितशास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र तक पहुँचती थी।"

"अक्सर शिल्पी शब्द का भाषान्तर करते हुए इसको मूर्तिकार या भवन निर्माणकार के रूप में व्यवहार किया जाता है यह इन शिल्पियों के साथ अन्याय है। शिल्पी शब्द इतना व्यापक है जितना शिल्प शास्त्र और दोनों को अभेद्य स्थान प्राप्त हैं।"

"निश्चित ही शिल्पी को भारत में बहुत उच्च स्थान प्राप्त था। मानसार के अनुसार ज्ञात होता है कि शिल्पी के लिए वेदों तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना सबसे प्रारम्भिक कार्य था।"

मानसार के अनुसार चार प्रकार के शिल्पी बताये गये हैं, स्तपति, सूत्रग्रही, वर्धकी तथा तक्षक। स्तपति शिल्पी सबसे उत्तम समझता जाता था। ऐसे शिल्पी के लिए प्रत्येक शास्त्र तथा वेद का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। अर्थात् उसका ज्ञान सम्पूर्ण होना आवश्यक था वह संपूर्ण ज्ञान का आचार्य समझा जाता था। वह अन्य शिल्पियों का आचार्य था।

सूत्रग्रही भी सभी वेदों तथा शास्त्रों का पण्डित होता था और रचना तथा अलंकरण में दक्ष होता था। वर्धकी शिल्पी भी वेदों तथा शास्त्रों का ज्ञाता था। वह प्रमाण शास्त्र 'Science of measurement में दक्ष होता था। वह कुशल चित्रकार तथा निपुण गुणग्राही होता था।

तक्षक शिल्पी को भी वेदों तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। उसे अपने कार्य में कुशल होने के अतिरिक्त सामाजिक, विश्वासी तथा दयालु होना पड़ता था सभी शारीरिक तथा मानसिक कार्यों में दक्ष होना आवश्यक था। वह काष्ठ कला, वास्तुकला, मूर्तिकला, लोह कला तथा चित्रकला में कुशल होता था।

इसी प्रकार विष्णु धर्म्मोत्तर पुराण में मार्कण्डेय ऋषि तथा वज्र के कला सम्बन्धी वार्तालाप में कुशल चित्रकार या कलाकार उसे माना गया है जो मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, संगीत कला, सभी का अध्ययन भलीभांति किये हो और [illegible] शब्द इतना व्यापक है कि इसमें मनुष्य के

सभी कार्य आ जाते हैं। शिल्पी को धर्मशील होना पड़ता था।

शुक्र नीतिसार में चौसठ कलाओं का वर्णन है, तथा बत्तीस विज्ञानों का और यह सभी वेदों तथा शास्त्रों में निहित है। इन सभी का ज्ञान प्राप्त करना शिल्पी के लिए आवश्यक था। यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के उस समय कितने शिल्पी थे या यह केवल एक आदर्श ही था परन्तु यदि केवल आदर्श भी रहा हो तो बहुत ही सुदृढ़, सुन्दर तथा अनुमोदक है। ऐसे शिल्पी आधुनिक समय में तो शायद ही कहीं हों परन्तु आज हमारी कल्पना में भी ऐसा शिल्पी नहीं आता, जिस प्रकार आज हमारी कल्पना में यह नहीं आता कि, प्राचीन विशाल तथा भव्य मन्दिर जो आज भी भारत की शिल्पकला का गौरव बचाये हुए है, किस प्रकार निर्मित हुए होंगे।

हम प्राचीन अजन्ता तथा बाग इत्यादि की चित्रकला देखकर अपने प्राचीन कलाकारों पर आश्चर्य प्रगट करते हैं मीनाक्षी, मदुरा, खजुराहो, भुवनेश्वर के भव्य मन्दिर, आगरे का ताजमहल देखकर हमारे आधुनिक कलाकार तथा इंजीनियर दांतों तले अंगुली दबाते हैं। इनकी कला उनके सामने एक पहेली सी दीखती है। इनका अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि वे कलाकार या शिल्पी महान् थे और यह भी अनुमान करना पड़ता है कि इन शिल्पियों का ज्ञान कितना व्यापक था। जो कुछ भी प्राचीन उदाहरण प्राप्त हैं, वे हमारी आंख खोलने के लिये पर्याप्त हैं।

यहां हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि आज हम भी वेदों शास्त्रों तथा तमाम विद्याओं के पण्डित होकर कला का कार्य करें, परन्तु यह अवश्य है कि हम आंख मूंदकर बिना पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किए कला का कार्य कर ही नहीं सकते जिस भांति संसार के अन्य व्यक्तियों के लिए ज्ञान आवश्यक है, उसी भांति कलाकार के लिए। कलाकार संसार के व्यक्तियों से न्यून नहीं है। उसकी भी वही आवश्यकताएं हैं जो औरों की। जिस प्रकार शिक्षा औरों के लिए आवश्यक है, वैसे ही कलाकार के लिए। कलाकार को भी पूर्ण शिक्षित होना चाहिए। कलाकार को भी बहुमुखी ज्ञान की आवश्यकता है। उसका व्यक्तित्व सामंजस्य पूर्ण होना चाहिए। उसमें भी मस्तिष्क, हृदय तथा कार्य कुशलता के सभी गुण होने चाहियें। वह केवल चित्र बनाने वाला, गाने वाला, या नाचने वाला नहीं होना चाहिये। जो ज्ञानी है, शिक्षित है, सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व वाला है, जो रचना का कार्य करता है वही कलाकार है।

आधुनिक समय में भारतीय कलाकार वे ही अधिकतर हैं जो किसी कारणवश शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, इसका पूर्ण अवसर उन्हें प्राप्त नहीं हो सका, जिनका शिक्षा की ओर मन नहीं लगता था, जो मस्तिष्क के प्रयोग से डरते थे और कोई भी मानसिक तथा शारीरिक कार्य करने में असमर्थ थे, वे ही हारकर कलाओं के पथ पर अग्रसर होते थे, यह समझकर कि वह हाथ का काम कुछ कर सकते हैं अर्थात् (technical) ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और किसी प्रकार जीवन निर्वाह करनेके लिए कोई न कोई इस प्रकार की कला सीखते थे। परिणाम यह है कि आज का कलाकार केवल वह है जो रंगों से चित्र बना सकता है, गले से गा सकता है, या मिट्टी के पुतले बना सकता है।

आधुनिक भारत में अभी ऐसे बहुत से कलाकार हैं। आधुनिक उन्नतोन्मुखी भारत के उत्थान में इनका क्या योग हो सकता है यह विचारणीय है। आज हमें चित्रकार या गाने वाले तथा नाचने वाले युवक नहीं चाहियें बल्कि ऐसे कलाकार चाहियें जिन्होंने सुन्दर जीवन की कल्पना की है और जो भारतीय समाज को सुन्दरता प्रदान कर सकते हैं। जो अपनी कला के आधार पर एक सुन्दर, सुदृढ़ प्रगतिशील भारत की कल्पना कर सकते हैं जो मस्तिष्क, हृदय तथा शरीर के गुणों से सम्पन्न हैं।

—:o:—

गीता और वेद

[श्री रणछोडदासजी उद्धव]

भगवान् ने कहा है कि -"मैंने सबसे पहिले विवस्वान् को इस योग का उपदेश दिया था। विवस्वान् ने मनु और मनु ने इक्ष्वाकु, को, इस प्रकार परम्परा से यह योग चला आरहा था, परंतु कालदोष से यह लुप्त होगया, उसी विलुप्तयोग का रहस्य तुझे बतला रहा हूं।" यह स्मरण रखना चाहिये कि सम्पूर्ण गीताशास्त्र भगवान् का अपना उपदेश नहीं है। भगवान् का मत आरम्भ के ६ अध्यायों में प्रतिपादित केवल राजर्षिविद्या है। सिद्धविद्या, राजविद्या और आर्षविद्या इन तीनों का संशोधित रूप भगवान् ने गीता में समाविष्ट कर लिया है। ऐसी दशा में हम भगवान की मूलगीता केवल राजर्षिविद्या को ही कह सकते हैं। 'एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः' से भी यही ध्वनि निकलती है।

"अवश्य ही अपने किसी अन्य शरीर से यह महानात्मा देवयुग के आरम्भ में विद्यमान होगा एवं विवस्वान् ने इसका शिष्यत्व स्वीकृत करते हुए उस अलौकिक गीतायोग का उपदेश लिया होगा।" ❀

इसी साम्ययोग के उपदेशक के नाम-पते की खोज और लोगोंने भीकी है। श्री सातवलेकरजी ने "गीताका राजकीय तत्वालोचन"में लिखा है। "यहाँ विवस्वान् को उपदेश देनेवाला 'मैं' कौन था, इसका पता नहीं चलता। अर्जुन को उपदेश देने वाला 'मैं' भगवान् श्रीकृष्ण है, इसमें संदेह नहीं है, परंतु विवस्वान् से बड़ा उपदेशक 'मैं' कौन था, इसका निर्देश यहाँ (गीता में) नहीं है। इसका पता वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों से ही मिलेगा।

अष्टौ पुत्रासो अदितेः' (ऋ. १० । ७२।८)

अदिति के आठपुत्रों का वर्णन ऋग्वेद करता है। अध्वर्यु ब्राह्मण में इन आठ पुत्रों के नाम ये दिये हैं -- '(१) विष्णु, (२) मित्र, (३) वरुण, (४)धाता, (५) अर्यमा, (६) अंश, (७) भग एवं (८) विवस्वान्.' इनमें पहला 'विष्णु' है और आठवाँ विवस्वान्' है। विष्णु सबसे बड़ा भाई है और विवस्वान् सबसे छोटा है. इस कारण यह संभव है कि सबसे बड़े भाई ने सबसे छोटे भाई को उस साम्ययोग का उपदेश किया होगा, छोटा भाई बड़े भाई की बात मानेगा। भगवान् श्रीकृष्ण विष्णुका अवतार हैं। इस वैदिक वचन से और वैदिक परंपरा से। विवस्वान् को उपदेश करनेवाला कौन था, यह पता चल सकता है।

ऊपर कथित मंत्र 'बृहस्पति' का है। इस बृहस्पति का वर्णन गीता में (१०।२४) 'पुरोधसां च मुख्यं ...... बृहस्पतिं' आदर के साथ किया गया है। क्योंकि विष्णु और विवस्वान् की माता का वर्णन करने वाला यह देवपुरोहित है।

मनुर्वैवस्वतो राजा' (शत० ब्रा० १३। ४। ३। ३)

विवस्वान् का पुत्र मनु है, अतः विवस्वान् ने मनु को साम्य धर्म का उपदेश किया, इसी तरह मनु का पुत्र इक्ष्वाकु है अतः मनु ने इक्ष्वाकु को यह ज्ञान दिया यों वैदिक परंपरा से 'अहं (विष्णु)' विवस्वान्, मनु एवं इक्ष्वाकु' इन चारों का ठीक ज्ञान होता है।'

एक और भी स्पष्ट प्रमाण हमें भगवद्गीता के छाया रूप गणेशपुराणान्तर्गत गणेश गीता में मिलता है। उसमें श्री गजानन वरेण्य-राजा को कहते हैं कि—

पुरा सर्गादिसमये त्रैगुण्यं त्रितनूरहम्।
निर्माय चैनमवदं विष्णवे योगमुत्तमम्॥ (३।१)

" प्रथम सृष्टि उत्पन्न करने के समय त्रया रूप वाले मैंने इस त्रिगुणरूप उत्तम योग को उत्पन्न कर विष्णु को कहा था।"

अर्यम्णे सो ऽब्रवीत्सोऽपि मनवे निजसूनवे।
ततः परम्परायातं विदुरेनं महर्षयः॥ (३।२)

'विष्णु ने यही योग सूर्य से कहा, सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को महर्षि ज्ञात करते रहे।"

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि-यह अव्यययोग वेद ही था। क्योंकि स्वयं वेदरूपी गजानन ने श्री विष्णु

❀ पं मोतीलाल शर्मा

को उपदेश किया था, अतएव वेद का उपदेश वेदरूप ही होता है। हाँ इसका संक्षेप-विस्तार हो सकता है। वेदव्यास ने वेदों का विस्तार से भाष्य १८ पुराण एवं महाभारत में किया है और महाभारत का सारांश ही भगवद्गीता में कथन किया, किन्तु सबका मूल वेद ही है एवं उसीमें राजर्षिविद्या है।

मनु और वेद

पुराणों से भी प्राचीन धर्म शास्त्रों में मनुस्मृति की स्थिति है, इसीलिये महाभारत में जहाँ "सर्वशास्त्रमयी गीता" कहा है, वहाँ "सर्व वेदमयो मनुः" कहकर इसका गौरव किया है तथा भगवान् ने भी राजर्षियों की परंपरा में मनु का नाम दिया है, अतएव राजर्षिविद्या उन्हें प्राप्त थी ही। मनुस्मृति में (अध्याय १२ श्लोक-१००) कहा है कि—

सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्व मेवच
सर्व लोकाधिपत्यंच वेदशास्त्र विदर्हति

[सेनापतिका कार्य, राज्य चलाने का कार्य, दंडदेने, न्यायाधीश आदिका कार्य तथा सब लोगोंके ऊपर आधिपत्य वेद शास्त्रका ज्ञाता ही कर सकता है. यही श्लोक गीता महा भारतादि के बाद रचित, श्रीवेद व्यास की अंतिमकृति श्रीमद्भागवत में भी (स्कन्ध ४ अध्याय २२ श्लोक ४५) है। फलतःराजर्षि मनुका भी राज्यविधान शास्त्र वेद ही रहा है।

भगवान् अपने पिछले जन्मों को जानते हैं, यह अर्जुन को कहा भी है, फिर अपने पिछले जन्म के 'रामराज्य' को कैसे भूल सकते हैं, अतः उसकी प्रतिध्वनि गीता में प्राप्त होती है सातवलेकर जी ने इमं विवस्वते, आदि श्लोकों की व्याख्या करते हुए लिखा है सूर्य वंशी राजाओं ने भारतवर्ष में और भारतवर्ष के बाहर के देशों में भी अपना यश कमाया था। श्रीरामचन्द्रजी ने लंकाद्वीप के विदेशी रावण का नाश करके भारतवर्षीय जनता को और त्रिविष्टप के ३३ करोड देववीरों को रावण के बंदिवास से मुक्त करवाया था। इसी कारण त्रिविष्टप, तिब्बत, भारतवर्ष और पाताल तक के भूभाग पर सूर्यवंशीय राजाओं का प्रताप सर्व मान्य हुआ था, इस समय तक (रामराज्य) की प्रसिद्धि का भी यही कारण परम्परा का है। विभूतियोग (अ. १०) में भी जहाँ प्रत्येक जाति का उल्लेख करके उस जाति के मुख्य विभूति का नाम लिया है, वहाँ वृष्णियों में वासुदेव, पांडवों में धनंजय ये दो नाम चन्द्रवंशियों के बतलाए हैं। सूर्यवंशीय वीर रामचन्द्र का जिस समय उल्लेख किया है वहाँ :—

रामः शस्त्र भृतामहम् (गीता १०। ३१)

"संपूर्ण शस्त्र धारी वीरों में श्रीरामचन्द्र जैसे श्रेष्ठ हैं वैसा मैं हूं" कहा है। यह नहीं कहा कि सूर्यवंशियों में राम मैं हूं, परंतु यह बतलाया है कि जगत में जितने भी शस्त्र धारण करने वाले वीर हैं, उन सबमें दाशरथी राम सबसे श्रेष्ठ है, वह मैं हूं।"

* * *

गरबरा गरबरी

[श्री विश्वेन्द्र]

"भिक्षु अश्व पर भिक्षा मांगने नहीं आता ! लाखा कहदो, यदि उसे जीविकाकी आवश्यकता है-तो काम दे सकते हैं। हम ऐसे व्यक्ति को भिक्षा देकर भिक्षु जाति का अपमान नहीं होने देंगे।"

"वह कक्ष के समीप ही है, राजकुमारी। यदि उसने हमारा वार्तालाप सुन लिया तो...?"

"तो समझ जायगा कि गरबरी राज्य में छद्म-वेषियों की दाल नहीं गलती। शक्ति और सत्य के सहारे नारी भी न्याय कर सकती है।"

'पर्वत' ने बाग मोड दी। द्रुत गति से वायु को चीरता हुआ अश्व घाटी में जा ठपका। उसे झील से छू छू कर आने वाली शीतल पवन, तीर-सी चुभने लगी। दूर तक फैली हुई हरी हरी दूब, सूखी घांस-सी नजर आने लगी। जल में स्वयं का प्रतिबिम्ब, भूत-सा दिखाई दिया प्रतीत होता था—शरीर की समस्त शक्ति को, उंगलियों में बटोरकर, वह अपने केश नोंच लेगा।

उसने समझा था, भिक्षुवेष में, गत सौलह वर्षों से मध्य-आर्यावर्त में फैले हुए, राजकन्या के सौन्दर्य को देख लेने का लाभ उठा सकेगा। किन्तु अश्व पर चढ़ा ले जाने वाली उसकी बुद्धि ने उसे धोखा दे दिया। 'पाटा' का राजकुमार एक नारी से परास्त होगया। संसार की मान्य शक्तियों को चुनौती दे दे कर परास्त करने वाला पर्वत सिंह, आज स्वयं पराजित है।

❀ ❀ ❀ ❀

'बुरा हुआ राजकुमारी, तुम्हारा बाण उसके पैर को छेद चुका है—वही जो प्रातः अश्व पर भिक्षार्थ आया था; किसी कच्चे गुरु का दीक्षित शिष्य। हमारी राज्य-कन्या की दया से वंचित भिक्षु।...यदि अनुमति हो तो...'

"तो तुम उसके रक्त-रंजित पद को जाकर चूमलो—अपने मूक नयनों की भाषा में यह बतलादो कि इस राज्य की राजकुमारी निष्ठुर है। निर्मम है। नहीं लाखा...तुम भूलती हो मेरे बाण से मर्माहत व्यक्ति इस समय भिक्षु नहीं एक पीड़ित प्राणी है—उसकी सेवा करना मेरा धर्म है।...... अश्वों सहित बिना आहट किये, यदि तुम लौट सको तो उत्तम है। पीडित को वैभव नहीं सहानुभूति चाहिए—जाओ।"

पुरुष, प्रकृति, एकान्त कुमारी के कपोल अरुण हो उठे। श्वासों की तीव्र गति से, वक्ष थिरकने लगा। धरा पर पडते हुए पैरों की ध्वनि विलीन हो गई। शरीर का रक्त नाच उठा। मटमैले ग्रामीण वस्त्रों ने भी बढते हुऐ यौवन को रोकने का प्रयास नहीं किया—लगा बरसात में बाढ आगई है। वह जानती थी—आगन्तुक, भिक्षु नहीं—कहीं का राजकुमार है। अपने सौंदर्य की प्रसिद्धि से भी, वह अनभिज्ञ नहीं थी। ऐसे कितने ही राजकुमार बहरुपियों का वेष धर, उसके प्रासाद के चक्कर काट चुके थे। पर—यहां तो उसे उसका कर्तव्य लिये जा रहा है, फिर पैर आगे क्यों नहीं बढते ? पुरुष है तो क्या ? नारी है तो क्या ? एकान्त है तो क्या ? कर्तव्य तो इन सब से बढ़कर है। राजकुमारी को बढ़ना ही चाहिये। वह बढ़ी। कुमार के असह्य पीडा से विकीर्ण मुख ने, आह' को दबाये रखने वाले, भिंचे ओठों ने, घाव पर उँगली रखने के लिये—झुके हुए शरीर ने और सब से बढ़कर लाल लाल बहते हुऐ रक्त ने—राजकुमारी की दया को जगा दिया।

"ओह...भिक्षु तुम्हें किस निर्मम ने घायल किया है ?"

"मुझे पशुवत् समझने वाले किसी शिकारी ने।"

"तो तुम किसी के शिकार हो ?"

"जीहां, प्रत्यक्ष है। शिकारी अपने शिकार की टोह में आता ही होगा। मुझे डर है कहीं शिकार को तुम्हारा दहेज बनकर न जाना पडे।"

"क्या तात्पर्य ? मैं समझी नही ?"

"सुन्दरी हो न"

"अच्छा...। और यदि शिकारी-कोई युवती हुई तो ?"

"तो...तुम्हें। निराश होना पड़ेगा, 'बाला'। शिकार

अभी मरा नहीं, घायल हुआ, वह अपने शिकारी पर प्रहार करेगा।"

"कोई बात नहीं भिक्षु, इधर आने वाले सब शिकारी मेरे मित्र हैं। न तुम्हें मेरा दहेज बनना पड़ेगा और न मुझे उसकी पत्नि। हाँ प्रहार करने के अधिकारी तुम हो वह मुझ पर भी कर सकते हो"

संध्या की लौटती पवन कुमारी के कुन्तलों से खेल गई। मद-मस्त कुन्तलों की थपकियों से आनन लाल हो गया। गगन की बहुरंगी आभा झील में उतर आई। 'पर्वत' ने देखा उसके होठ फड़क रहे हैं, उसकी भुजा में कंपन है। शरीर में गर्म-गर्म रक्त है, उसके हृदय में प्यार है—वह भूत नहीं है।

युग ही नहीं क्षण क्षण परिवर्तन शील है। कुछ ही समय पहले, राजकुमारी के सौन्दर्य पर लट्टू होने वाला हृदय, सुन्दरी ग्रामीण बाला की एक मुस्कान पर उतर आया है। सोचता है पाटा के विशाल प्रासाद भी इसके लिये कम हैं, नई योजना से नूतन प्रासादों का निर्माण होगा। नये-नये उद्यान होंगे—जिनमें गुलाब, मोगरा और चम्पा के साथ टेसू के फूलों की प्रधानता होगी। विचारों के प्रवाह में डूबते देर नहीं लगती। राज कन्या घाव पर झुकी हुई थी...उंगलियों से कुमार ने कुन्तल छू लिये—कन्या का मस्तक अपने आप घाव पर जा टिका। वहां दर्द नहीं था—कसक नहीं थी, शान्ति थी, प्यार का साम्राज्य था। —तो प्यार की पहुँच कर्तव्य से भी बढ़ कर है?

"भिक्षु तुम्हारा अश्व?"

"तुम्हें क्या पता कि मैं अश्व पर आया था।"

"मुझे पता है। तुम पहुँचे हुए भिक्षु हो न? अतएव अश्व पर ही भिक्षार्थ जाया करते हो। वह (अश्व) यहीं कहीं होगा—जरा पुकारो तो..."

क्रमशः धीरे धीरे ऊँची आवाज में पर्वत ने अश्व को पुकारा। झील के पास की हरी दूब ने उसे नई शक्ति दी थी। पुकार से अश्व आ खड़ा हुआ। पर्वत का हृदय उछल रहा था।

"कितना अच्छा होता यदि तुम राजकन्या होती?"

"और भिक्षु...तुम"

काठी पर जमते हुए पर्वत के मुँह से निकल ही पड़ा—
"कुन्ठित न होओ 'बाले' मैं भिक्षु नहीं राजकुमार ही हूँ!"

अश्व ने गति पकड़ ली, क्षितिज पर डूबते हुए दिनकर की ओर जाने के लिये।

* * * *

"कुमार! कोई दूत है..."

"क्या चाहता है?"

"यवन आक्रमण से आतंकित गरबरी राज्य का उद्धार। साथ में एक पत्रिका भी है ...आज्ञा हो?"

"अस्तबल में भेजो, हम वहीं जा रहे हैं।"

रेशमी वस्त्र पर अंकित राजानुरोध को कुमार ने पढ़ा—

'राज्य यवनों से घिरा पड़ा है। केवल उत्तर-उत्तर पूर्व की राह—सरवनी वाली घाटी, अभी छूटी है। हम सोचते हैं पुराने भाई चारे को निभाते हुए, पाटा राज्य हमारा सहायक होगा। अमावस्या के तीसरे प्रहर में हम यवनों पर, बायें से आक्रमण करेंगे आशा है तब तक घाटी आपके अधिकार में होगी।'

विनीत
राजकुमारी
गरबरी

"सेनापति!"

"आज्ञा...राजकुमार!"

"सशस्त्र चुने हुए सैनिकों के साथ आज रात्रि में हम गरबरी की ओर प्रस्थान करेंगे। हमें ऐसे सैनिकों की आवश्यकता है जो जीवन का मूल्य युद्ध में ही आंकना जानते हों। दूत...तुम हमारे साथ रहोगे। अभी दो प्रहर बाकी है कुछ विश्राम करलो।"

नारी के शब्दों ने पुरुष को चौगुनी शक्ति दे दी। सिंह की तरह राजकुमार घाटी की ओर बढ़ गया। दौड़ते हुए अश्वों की घड़-घड़ाती टॉपों से धरती चिल्ला उठी। यवन सतर्क थे 'पर्वत' ने सेनापति से कहा:—

"घाटी में कुछ खाली अश्व दौड़ा दो। हम चट्टान की ओट से आक्रमण करेंगे। याद रहे घाटी में कोई जाने न पाये। हाँ, कुछ सैनिक यहीं ठहर जावें, हम आगे से मुँह बन्द करते हैं। विश्वास है सवेरा होते-होते घाटी यवन-शवों से आच्छादित हो जायगी।"

प्रातः रवि की नवीन किरणों में, सैनिकों ने घाटी को देखा—सैंकड़ों यवन अपनी जिन्दगी की अन्तिम सांसें ले रहे थे। खुदा से शरीर को जन्नत में भेजने के लिये दुआ माँग रहे थे। 'पर्वत' इन सब को कुछ नहीं देख रहा था। उसकी दृष्टि में दो लक्ष्य थे। एक कुमारी का धवल प्रसाद और दूसरा दूर तक फैली सुन्दर झील। उसका मन युद्ध के बस्त्रों से उचट गयाः-

"लौ सैनिक! इन्हें हमारे तम्बू में रख दो, वहीं काषाय वस्त्र रखे होंगे उन्हें ले आना"

पाटा की सेना के स्वागत के लिए आये हुए गरबरी राज्य के सैनिकों में से एक ने, पर्वत को-वेष बदले झील की ओर जाते देख लिया—"भिक्षु है?" उसने भी अपना अश्व दौड़ा दिया। समीप पहुंचते पहुंचते कहाः

"इतना न दौड़ाओ भिक्षु, जरा मुड़कर भी देख लिया करो कि तुम्हारे साथ चलने के लिए कोई कितना आतुर है?

"ओ सैनिक! मेरा अश्व अधिक प्यासा है! झील की ओर जा रहा हूं आओ तुम भी साथ हो लो!"

कुमारी ने शिरस्त्राण हाथ में लेते हुए कहाः--

'प्यासे तो तुम हो भिक्षु, अश्व का केवल नाम है।"

"बाला? तुम?? सैनिक वेष में???

'क्यों? क्या मुझे अश्व पर बैठने का अधिकार नहीं??

"है बाला! अवश्य है। इतना ही नहीं चाहने पर तुम्हें राजरानी तक बनने का अधिकार है।"

"राजकुमार"

"सुन्दरी"

हरी दूब पर, दोनों एक दूसरे के सहारे झील के निकट जा खड़े हुए। दोनों हृदयों में विछोह की कल्पना भी अब नहीं थी। पावस में चुभने वाला ठंडा पवन उनके गरम श्वासों से ऊष्ण हो चला था।—अब तो मिलन की प्यार की संकल्प की वेला थी राजकुमारी ने मुस्करा कर कहाः—

"आओ भिक्षु हम दोनों उस झील के निर्मल जल को हाथ में लेकर आजीवन एक बने रहने का प्रण करें"

राह पर जाते किसी योगी ने कुमारी के शब्द सुने। "संसार की समस्त स्त्रियाँ तुम्हारे लिए भगिनी के समान हैं भिक्षु! तुमने एक भारी पाप किया है। मेरा श्राप है कि तुम दोनों पर्वत बन जाओ।"

शीघ्रता से पर्वत ने राजकुमारी का हाथ पकड़ा। मुँह से एक शब्द भी निकाले बगैर एक क्षण में आँखों ही आंखों में लुटते प्यार को समेट लिया। हमेशा-हमेशा के लिये वे अब पहाड़ बन गये थे।

आज भी एक योगी की भारी भूल के प्रतीक दो प्रेमी योगियों की समाधि के रूप में गरबरा गरबरी की पहाड़ियां दूर से आते हुए सन्यासी को भी प्रेम की महत्ता का दिग्दर्शन करा ही देती हैं।

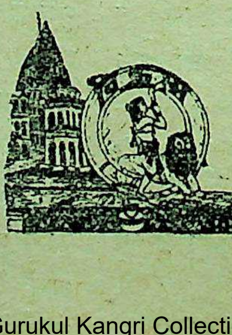

परिचय-परामर्श

अमरबेल

सुप्रसिद्ध कथा शिल्पी श्री. वृन्दावनलालजी वर्मा की यह विस्तृत रचना है, इसमें जमीदार काश्तकार के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर ग्रामीण समस्या का सजीव चित्रण किया गया है, देश की सामयिक स्थिति को लेकर जमींदारी उन्मूलन के कारण उत्पन्न स्थिति का विश्लेषण, और सहकारी कृषि के महत्व का प्रतिपादन कथा द्वारा बड़े रोचक ढंग से किया गया है। उपन्यास में देशराज, टहल, डा० सनेही, बटोले, छदम्मी, दमरु, अञ्जना घाटीवाली, राजदुलारी, हरकुंवर का चित्र बड़ा सुन्दर अंकित हुआ है, देशराज जैसे बड़े जमींदार का वर्णन जमींदारोंके समझने के लायक है। उसके जैसा जमींदार किस तरह समय का अनुसरण कर अपने को स्थिति के साथ ढाल लेता है, और अपना अधिकार किसानों के सहकार में सुरक्षित बना लेता है, यह वास्तव में जमींदारों के लिए अनुकरणीय है, परन्तु टहल, जनक, छदम्मी, विक्रम, वनमाली के रहते हुए भी हर गांव में यदि डा० सनेही का सहयोग मिल जाए, और राजदुलारी का दुलार तो अनेक समस्याएं सुलझ सकती हैं। आरम्भ में अञ्जना, नाहरगढ के राजा बाघराज एवं डाकू कालीसिंह के चंगुल में चढ़कर देशराज बहकता है, पर सनेही के स्नेह सहयोग से वह समाज के साथ अपने को परिवर्तित स्थिति में पलट लेता है—और बाघराज, कालीसिंह को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अमर वेल में सनेही का चरित्र उज्वल है। उसके कारण टहल भी सम्हल जाता है। जनक भी जम जाता है। और सुहाना ग्राम बागुर्दन के साथ अपनी सहकारी भावना से समयानुरूप बन उन्नति-पथ पर अग्रगामी बनता जाता है। वर्माजी की यह रचना जहां देश के कार्यकर्ता, जमींदार किसानों के लिए पथ-प्रदर्शक है वहाँ शासन के लिए भी समझने की वस्तु है अमरबेल की रचना सर्वथा सामयिक है, और रोचक होने के साथ ही उपादेय है, सहकारी-समस्या पर बर्माजी ने पारस्परिक वाद-विवाद में अनेक ग्रन्थियों को सरलता से सुलझा कर जहाँ योग्य वकील का कार्य किया है। वहाँ कथा के रस को अक्षुण्ण रखते हुए उसकी रोचकता में उपादेय तत्वों का चातुर्य से सम्मिश्रण कर दिया है। 'अमरबेल' का सर्वत्र-सहर्ष स्वागत होगा। हम वर्माजी को इस नवीन सफल कृति पर बधाई देते हैं। मू० ५) मयूर प्रकाशन झांसी से प्राप्त।

सतपुडा की सभ्यता

विद्वान् पं० प्रयागदत्तजी शुक्ल ने बरार केसरी श्री बियाणीजी के अभिनन्दन में यह इतिहास पुस्तक प्रकाशित की है। मध्यप्रदेश के इतिहास की बिखरी हुई सामग्री का इसमें सुसम्बद्ध संकलन किया गया है। और विचार भी। अवश्य ही इसमें मतभेद का अवसर रह सकता है; और अन्वेषणों के सहयोग के बिना सन्देह की गुञ्जाइश भी है। तथापि यह ग्रन्थ नए इतिहास लेखकों के लिए आधार का काम देगा, शुक्लजी ने इसमें पर्याप्त श्रम किया है, मौर्य कालीन शासन में शुंग वंश, गुप्त शासन, हूणों के आक्रमण, हैहय वंश आदि में मतभेद की काफी गुञ्जाइश रह गई है। पुस्तक पठनीय और विचारणीय है। मूल्य ५) महा कौशल गजेटियर समिति माऊंट रोड, नागपुर १ से प्राप्त।

शब्द-प्रकाश

मध्यभारत शासन के न्याय विभाग द्वारा प्रकाशित यह 'कोश' (?) शासकीय कार्यों में उपयुक्त होने वाले शब्दों के पर्याय जानने लिए सहायक होगा। इसमें लगभग ९ हजार शब्दों का चयन हुआ है, इनमें ट्राम टेलीफून, गीयर सीमेंट, टायर, बायलर आदि को प्रचलित रूपों में ही स्वीकार किया गया है उनके स्थान पर कथित क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। यदि इसी आधार पर शब्द चयन हुआ होता तो इसकी उपादेयता और सरलता प्रशंसनीय हो जाती किन्तु बहुत से शब्दों में नवप्रयुक्त पर्याय दुरूह बन गए हैं जो प्रचलित नहीं बन सकेंगे।

Above defined का अर्थ उपर्परिभाषित किया गया है यह कृत्रिम लगता है। और अशुद्ध भी है। 'उपर्परी' प्रयोग नहीं होता। ऐसे ही एक्शनेबल रांग का अर्थ अभियोग्य दोष सरल नहीं, न यथावत् सार्थक ही बन पाता है। अभियोग योग्य अपराध सरल हो सकता था। MYTH का अर्थ किया गया है. पुराणकथा या कल्पित गाथा, वस्तुतः यह किंवदन्ति से अधिक सार्थक सरल हो सकता था, नेकेट डिबेंचर को 'नग्नऋण पत्र' कहा गया है, इसे कोरा ऋण पत्र कहना अधिक सरल होता। शब्दानुवाद में नग्नता आ गई है ऐसे अनेकशब्द आए हैं जिनका प्रचलित पर्याय ठीक बन नहीं पायाहै कृत्रिमता भासितहोती है और अर्थ स्पष्टता भी नहीं हो पाती, तथापि यह प्रयत्न श्लाध्य है। और प्रेरक होगा। हां, इसमें 'कोष' शब्दका प्रयोग कोश के रूप में किया गया है यह विचारणीय है। प्राचीन कोष ग्रन्थों को 'कोश' नहीं कहा गया है। कोष को छोड़ यह 'कोश' क्यों रखा गया शब्द प्रकाशकार जाने स्वयं न्याय विभाग के श्री मित्तल सा० ने पुस्तक के साथ पत्र प्रेषित किया है उसमें 'कोष' का प्रयोग ही किया गया है, जो भी हो मध्यभारत के न्याय विभाग का यह शब्द संग्रह उपयोगी है और प्रशंसा योग्य है। किंतु जिस प्रकार पंडित नेहरु जी ने अपने नागपुर के एक भाषण में इंपीरियल प्रिफरेन्स के शाहीपसंदगी अनुवाद का मखौल उड़ाया था, शब्द प्रकाशक के अनेक पर्यायों को यदि वे देखें तो (जैसे नेकेडडिबेंचर-नग्न ऋण पत्र) वह यहां भी सार्थक होगा।

लालचीन

लालचीन की नवीन प्रगति का संक्षिप्त किन्तु सर्वाङ्गीण चित्र श्री भगवतशरण उपाध्यायजी ने इस छोटीसी पुस्तिका में जिस पटुता से दिया है, वह पाठकोंको आकर्षित किए बिना नहीं रहता। अवश्य ही इस चित्र में उनके चीन के नव प्रयोग के प्रति ममत्व झलकता है तथापि तथ्य के जानने में उनकी यह पुस्तिका चीन के दर्शन और प्रगति में आकर्षक अनुभव करवाने में अवश्य सहायक होती है। चीन के उत्थान में जनता का सहयोग वास्तव में हार्दिक प्रतीत होता है लेखक ने यह स्वयं अपनी आंखों देखा, और अनुभव किया है। वहां की कला संस्कृति, और भारतीयता की छाप को लेखक ने प्रत्यक्ष अनुभव किया है 'लालचीन' चीन यात्रा का ही नहीं उसके इतिहास कला विज्ञान संस्कृति का संक्षिप्त किन्तु सरल सुन्दर परिचय है पुस्तक रोचक है। मू० ३॥ (बहार पब्लिकेशन ९३ चक इलाहाबाद ३)

साहित्यिक जीवन के अनुभव

पंडित किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री की अपनी एक लेखन शैली है, वे किसी भी विषय की पुस्तक लिखें आलोचना और आक्षेपों की उसमें कमी नहीं रहती, इसे वे निर्भीकता, स्पष्टता समझते हों पर उसमें विषय दब कर रह जाता है, और उनकी वैयक्तिक असंतोष भावना उभर आती है। 'साहित्यिक जीवन के अनुभव, पुस्तक में यह भावना हर जगह स्पष्ट प्रकट हो रही है। उन्हें अपने जीवन में इस उग्रता बनाम अव्यवहारिकता ने उत्थान में बाधाएं दी हैं, और आपत्तिग्रस्त बना भटकाया भी है। केवल सिद्धांत के नम्र-स्वाभिमान संघर्ष में मानव की प्रतिष्ठा बढ़ती है, किन्तु जिस उग्रता ने वाजपेयी को उत्तेजित किया है, उसने इनको भटका दिया है, सारी पुस्तक उन के इसी प्रकार सँघर्ष की कहानी है, और अवश्य ही वह स्पष्टता के साथ उन्होंने प्रकट की है। दो रुपये देकर जो पाठक इस कथा को पढ़ना चाहें उन्हें हिमाचल एजेंसी कनखलसे मंगवा लेना चाहिए। शास्त्रीजीविद्वान हैं वे यदि संयम पूर्वक विषय तक सीमितरहकर रचना करें तो साहित्यिकों को उनसे बहुत आशा हो सकती है। किन्तु 'स्वभावो दुरतिक्रमः'

साहित्यसुधा

श्रीसत्यपाल चुघ, एम० ए० की यह निबन्ध पुस्तक ५७ निबंधों की चर्चा में सीमित है जिसमें,

हिन्दी की प्रचलित प्रवृत्तियोंपर विचार किया है । यथा यथार्थ वाद, साहित्यिक राजनीति, प्रगति वाद वीरकाव्य आदि, विवेचना में उनके तर्क-समीक्षण में संतुलन है । मतभेद रहना स्वाभाविक है, परन्तु छात्रों के लिए उपयोगी है मू० ३) रु० अधिक है भाषा प्रकाशन नई दिल्ली ५ से प्राप्त ।

पारिजात मञ्जरी

राजाभोज के वंशज—अर्जुन वर्मदेव के सम सामयिक सुप्रसिद्ध सरस कवि मदन की उक्त रचना धारा नगरी की भोजशाला में शिलाखण्डों पर अंकित उपलब्ध है । विधर्मियों ने इस शिलांकित नाटिका को उलट कर दीवाल में पाट दिया था, किन्तु सौभाग्य से यह अमर रचना अन्वेषकों की आंखों में आ गई और इसका पुनरुद्धार होगया । प्रस्तुत पुस्तक में वही नाटिका सानुवाद प्रकाशित हुई है भोजप्रकाशनधार के कार्यकर्त्ता और अनुवादक श्री अ० वा० वाकणकर जी अवश्य इस सत्कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं । इसमें गांगेयदेव को जीतकर राजा भोज ने जो विजय श्री का वरण किया था उसका सरस सुन्दर वर्णन है इसी प्रकार अर्जुन वर्मदेव द्वारा गुर्जर पति जयसिंह के विजय का भी वर्णन है । वर्णन बहुत ही कला पूर्ण और रसालंकार पूर्ण है । इस नाटक में परमार विजय की समर कथा का एक प्रकार से इतिहास है, मुद्रण दोष से इस सुंदर रचनामें थोड़ी बाधा आ गई है । और अनुवादकीय भाषाभी सरल शुद्धनहीं होसकी है । यह इसमें खटकता है । तथापि साहित्य इतिहास एवं नाटक प्रेमियों को यह अवश्य रुचिकर होगी मू० १) रुपया भोज प्रकाशन धारको ऐसी महत्व पूर्ण कृति कों प्रकाश में लाने के लिये बधाई, हमें आशा है अगले संस्करण में इसे निर्दोष बना दिया जावेगा । हम चाहते हैं कि संस्कृत और हिन्दी में यह नाटिका धार, तथा मध्यभारत में खेली जायेगी और परमार युग की प्रेरणा से जन मन अनुप्राणित किया जावेगा !

पञ्चरत्न

श्री श्यामसुन्दर व्यासजी ने हिन्दी के पांच प्रमुख कवियों की संक्षिप्त सारपूर्ण एवं सरल समीक्षा प्रस्तुत कर छात्रों के लिए यह उपयोगी रचना की है । छात्र इससे लाभ उठावेंगे । मू० आठ आना अधिक लगाया है । (विनय प्रकाशन मन्दिर ४ महारानी रोड़ इंदौर)

पहिली पञ्चवर्षीय योजना

योजना कमीशन राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली से प्रकाशित यह सुन्दर पुस्तिका योजनाओं के सम्बन्ध में प्रश्न और उनके उत्तर के रूप में प्रचारित की है । अंकों और तर्कों के आधार पर योजना को समझाने और जन साधारण में संदेह निरसन के लिए निःसंदेह यह उपयोगी पुस्तिका है । ४ आने में लेकर इसे अवश्य पढ़ना चाहिये ।

पत्र-पत्रिकाएँ

आलोचना

राज कमल प्रकाशन से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका का यह विशेषांक आलोचना सम्बन्धी एक सुन्दर प्रयास है । नवीन सपादक मण्डल के परिवर्तन के बाद यह अंक अपने ठोस पन से 'स्तर' को कायम रखने वाला बन गया है । आलोचना के विविध अंगों पर विद्वानों ने अध्ययन पूर्ण लेख लिखे हैं, रसतत्व की समीक्षा में देशी और विदेशी विचारों का सुन्दर सम्मिश्रण है । इसी प्रकार हिन्दी के भूत वतमान समीक्षकों के विषय में भी उचित विश्लेषण किया है अन्त में प्रतीकवाद और अतियथार्थ वाद पर भी प्रकाश डाला है । आलोचना का यह अंक संग्रहणीय और पठनीय है । हम संपादकों को उनकी सफलता पर बधाई देते हुए हैं । मू० ५) इस अंक का अवश्य अधिक हो जाता है ।फैजबाजार दिल्ली से प्राप्त ।

अवन्तिका

आलोचना के विशेषांक के साथ ही अवंतिका का काव्यालोचनांक भी पटने से बहुत सुन्दर, सुदृढ़ और सुपाठ्य प्रकाशित हुआ है। काव्यालोचन सम्बन्धी अधिकांश साहित्य गंभीर अध्ययन पूर्ण है। काव्य के लक्षण से आरंभ कर उसकी आलोचना के दार्शनिक आधार अलंकार में साम्प्रदायिक चिंतन, पारस्परिक भेद, साधर्म्य तथा उपमा, काव्यवृत्ति रससिद्धांक का विवेचन वक्रोक्ति से लेकर, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, और प्रपद्यवाद तथा कला पर विवेचन के सिवा पश्चिमीय साहित्यिकों के काव्यालोचन सिद्धांत समीक्षा आदिपर समुचित प्रकाश डालने में अवंतिका सफल हुई है। यह अंक ठोस, नयनाभिराम और अपना मानदण्ड स्थापित करने वाला सर्वथा संग्रहणीय बन गया है। सम्पादक की सुरुचि और सफलता प्रशंसनीय है।

लोक-कला

भारतीय लोक कला मण्डल के त्रैमासिक रूप में यह नवीन पत्र प्रकाशित हुआ है। पत्र बहुत सामयिक उत्तम और सुपाठ्य है। वा० मू० ६) है। साधारण अंक१।) लोककला मण्डल उदयपुर राजस्थान

कल्याण

कल्याण का नारद विष्णु पुराण अंक विशेषांक के रूपमें प्रकाशित हुआ है, अपनी ख्याति के अनुरूप ही यह अंक विस्तृत, और दोनों पुराणों के सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। नारद पुराण का धार्मिक कथा भाग स्वतंत्र रहते हुए भी उसमें शब्द साहित्य का जो अंश है वह प्रत्येक समझदार साहित्यिक को एक बार पढ़ लेने की वस्तु है। अन्य विशेषांकों की तरह ही यह अंक भी सर्वथा संग्रहणीय है। कल्याण कार्यालय गोरखपुर से प्राप्त।

गुरुदेव

श्री सूर्यदत्त शास्त्रीके संपादकत्वमें इस नवीन पत्रका गुरु नानक अंक आलोचनार्थ प्रस्तुत है। पत्र का आरंभ सदुद्देश्य से प्रेरित है अतः उसके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं वा. मूल्य ५) विनोद कुटीर धर्मशाला घाट पटना ८।

आयुर्वेद रहस्य

गोंडलकी रसायन शालासे यह नवीन पत्र आयुर्वेदोन्नति के लिए निकला है, गुजराती संस्कृत इंग्लिश तीनों में रचनाएँ संग्रहीत हैं। पत्र अच्छा है वा मृ.५) गोंडल सौराष्ट्र से सुलभ।

जागृति

इंदौर से नवीन प्रकाशित जागृति पत्रिका छात्रों के लिए उपयोगी और सुन्दर सुरुचिपूर्ण है, हम इस पत्रिका की उन्नति, और दीर्घ जीवन की कामना करते हैं। वा मू- १।। में अत्यंत सुलभ, रागीना हाउस संयोगिता गंज इंदौर।

पुस्तकालय-संदेश

बिहार से पुस्तकालयों की प्रगति के लिए इस नये मासिक का प्रकाशन हुआ है, पत्र उपयोगी है, पुस्तकालय प्रवृत्ति को इससे प्रोत्साहन प्राप्त होगा. हम इस पत्र का स्वागत करते हैं वा-मू. ३) (पो० पटना विश्व विद्यालय पटना ४)

मार्तण्ड पञ्चाङ्ग तथा विश्व विजय पञ्चाङ्ग

दोनों पंचांग अपनी-अपनी पद्धति के उपयोगी, धर्म शास्त्र, और समाज के लिए हितकारक, सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर हैं।

(१) मार्तण्ड विजय पंचांग मोती लाल बनारसीदास पो बौ. ७५ बनारस, तथा विश्व विजय पंचांग

(२) गोयल ब्रदर्स, दरीबा कलां, देहली से प्राप्त।

काव्य-विहार

देहली हंस रही है

[श्रीमती हर हाइनेस राजमाता शिवकुवँरी देवी 'राष्ट्रवर']

:: १ ::

हंसत हुलास भरे-हृदय :समात नहीं-आनंद विभोर मन देहली चमक रही है ।
आये आये रिझे खिझे-विश्व के विधाता भाग्य-अतुलित बाले गिरे दिल्ली हँस रही है,
खण्ड खण्ड खण्ड हर कबन्ध के देह सम देख देख तिन घृणा से हँस रही है,
देहली के दीवाने हैं,-विश्व के विजयी महा भोज की मुस्कान भरे, देहली हंस रही है,

:: २ ::

दौड़त थकत नहीं-कार पलच्छण एक-पथ अवरुद्ध होत-दिल्ली ठुमुक रही है,
थिरकत है कार यूं-दुकान दुकान पर- कनाट के सर्कस पे-देहली घूप रही है।
लक्ष्मी के लाल खड़े,'लोभिनलुभाय हाय धनि धन लूट, लख देहली खिलरही है,
ताल हीन स्वर पर-कार के निनाद पर-घूमघूम मटकती-देहली हंस रही है।

:: ३ ::

उठ रहे आकास पें करते निनाद तीव्र भयकारी गर्जन पै देहली उड़ रही है,
स्वागत है स्वागत है- शत सहस्र स्वागत भक्तन के आदर से देहली ऊब रही है,
अचल है अटल है सौभाग्य से; गर्वित है-विजेता विजित कर देहली ऐंठ रही है;
गान्डीव टंकार सुनी-तेमूर से लूटी गयी अड़िग आसन दृढ़-देहली हँस रही है,

:: ४ ::

विद्युत के प्रकाश से-लाल निली हरी पीली-अलकावली-विद्युत से दिल्ली दमक रही है
सारंग स्वर तान पै मधुर संगीत रस रेडियो के स्टेशन पै-दिल्ली धमक रही है।
होटल के सुस्वाद पै मदकी मादकता को-छाति से लिपटाय हाय दिल्ली निखर रही है।
सोलह शृंगार से अनुपम शोभा कसे, वालन की मोढ़ पर देहली उलझ रही है।

:: ५ ::

सजाय के साह गये, साहन के साह गये, रहे पत्थर बुत पै देहली घूर रही है,
खड़े हैं वितान ऊँचे चहुँ ओर राजन के मुंह पर वस्त्र ढंक देहली-हँस रही है ।
अड्डा है, बड़ा ही, यह राजनीति दंगल का-रंगमंच नाटिका पे देहली नांच रही है,
उदीयमान भाग्य का-भंगियों की बस्ति मंह-सफल निर्माण पर-दिल्ली चहक रही है।

मालव जननी !

[कुमारी विद्यावती 'मालविका']

शस्य-श्यामला-मालव धरणी संस्कृतियों की रानी !
युग-युग वंदित सुषमा मंडित, गौरव मयि कल्याणी !!
शीतल शिप्रा, चंचल चम्बल, सदा अर्चना करती ।
अर्घ्य चढ़ाती, वेत्रवती है, मानव का श्रम हरती ।
विंध्या का आँचल शोभित है, लेकर सुषमागार ।
पावन सलिला रेवा नित ही, नव-जीवन है भरती ॥
गीति-काव्य की प्रेरक मंजुल, कण-कण लिये निशानी ।
शस्य श्यामला मालव जननी संस्कृतियों की रानी
चित्रकला, सौंदर्य शिल्प के, हैं अद्भुत आगार ।
विदिशा उज्जयिनी साँची के, मंदिर तोरण द्वार ।
वैदिक, जैन, बौद्ध संस्कृति के, अभिनव दर्शन धारे ।
बाग उदयगिरि के अंचल में, मूर्तिकला साकार ॥
मानो कला सजीव कह रही, मंजुल भाव कहानी ।
मंगलमयि है मालव जननी ! संस्कृतियों की रानी ॥
निज संवत् निर्माता विक्रम, शौर्य पराक्रम शाली ।
तीन शतक रच भर्तृहरी ने, कठिन साधना पाली ॥
यहीं हुए थे कवि-कुल गुरु भी, वाणी वाग विलासी ।
मेघदूत शाकुंतल जिनकी, मधुर भावना वाली ॥
है सजीव साकार कल्पना, सुनी सभी ने जानी ।
मृदुल-भाव मयि मालव जननी, संस्कृतियों की रानी !
रूपा के महलों में सोई, मुस्लिम युग की याद ।
मांडव दुर्ग मौन हो जैसे, करता हो फरियाद ।
जहाँ कभी संगीत निगुंजन, था अनुपम उल्लास ।
आज बने भग्नावशेष हैं रूपमती प्रासाद ॥
उस युग की है याद दिलाता, महल हिंडोला मानी ।
त्याग मयी है मालव जननी, संस्कृतियों की रानी ॥
वासवदत्ता की वीणा को, क्या भूलेगा इतिहास ॥
आज ग्वालियर में शोभित है, मृगनयनी आवास ।
रानी लक्ष्मी की समाधि में, शत-शत सुमन चढ़ाकर ।
मानव की भावुकता पाती, चिर नवीन उल्लास ॥
यहीं हुए थे तानसेन से, ध्रुपद राग के ज्ञानी ।
कलित कलामयि मालव जननी, संस्कृतियों की रानी ॥

—: पावस गीत :—

श्री 'शक्र'

पावस की यह रात तुम्हारी याद लिए आई !

१

काले-काले मेघ नहीं, ये घुंघराली अलकें,
रिमझिम पड़ें फुहार मधुर, झिप-झिप जातीं पलकें !
चमक गई बिजली, जैसे तुम मुसकाई उस रात,
मीठी पुरवैया कुछ अन्तर्नाद लिए आई;
पावस की यह रात तुम्हारी याद लिए आई !

२

गरज, उठे बादल, या नभ में गूंजी वाणी वह,
उमड़ चली बरसात याकि मद-मस्त जवानी वह !
बून्दें गिरें, कसकती रह-रह प्रणय-कथा सुकुमार,
यह भीगी अधरात मधुर फरियाद लिए आई;
पावस की यह रात तुम्हारी याद लिए आई !

३

छिपा निकल कर चाँद, पुनः तुम आंख मिचौनी खेलो
हर सिंगार की सुरभि झांक इस वातायन से लेलो !
लिखूं मेघ का गीत या कि इस अंगड़ाई की बात
विकल चातकी की पुकार अवसाद लिए आई।
पावस की यह रात तुम्हारी याद लिए आई ?

धरती का मानव

श्री नागेश मेहता

हट जाओ पथ के शूल अरे,
मैं फूल सजाने आया हूं।
अरमानों की बांधे गठरी
मैं कूल खजाने लाया हूं।

विधि की रचना दूर रही है
श्रम के बल चलने आया हूं।
नैराश्य निशा के आंगन में
दीपक बन जलने आया हूं।

युग युग से पथ चलने वालों
मैं युग का नाम बदलता हूं।
संघर्ष भरे निर्माणों के पथ
मैं जीवन संग मचलता हूं।

"अपनी राहें, अपने डग हैं
अपने अपने चलना है।"
कहता जग ऐसा क्यों रे
मैं कहता हूं-सबने चलना है।

बन कर कोई बादल आता
कोई बन कर विद्युत-धारा।
बन कर मैं मानव आता
जो धरा धाम को अति प्यारा।

नयन बाण से हुआ न आहत
रे, आँसू से मैं गल न सका।
अपनी आशा के आसव में रत
पर आशा पर पल न सका।

मैं नभ का इच्छुक बना नहीं हूं
नहीं स्वर्ग का विश्वासी।
मैं उस धरती का मानव हूं
जिस पर आते नभ के वासी।

मदहोश बने मानव को
नव राह सुझाने आया हूं
जहरीली उठती ज्वाला में
मधुसार बनाने आया हूं।

हट-जाओ पथ के शूल अरे
मैं फूल सजाने आया हूं।
अरमानों की बांधे गठरी
मैं कूल-खजाने लाया हूं।

टेलीफोन नम्बर ११

तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी विनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टैक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी. आई. पाईप्स, व स्पेशलस इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,

भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

विनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

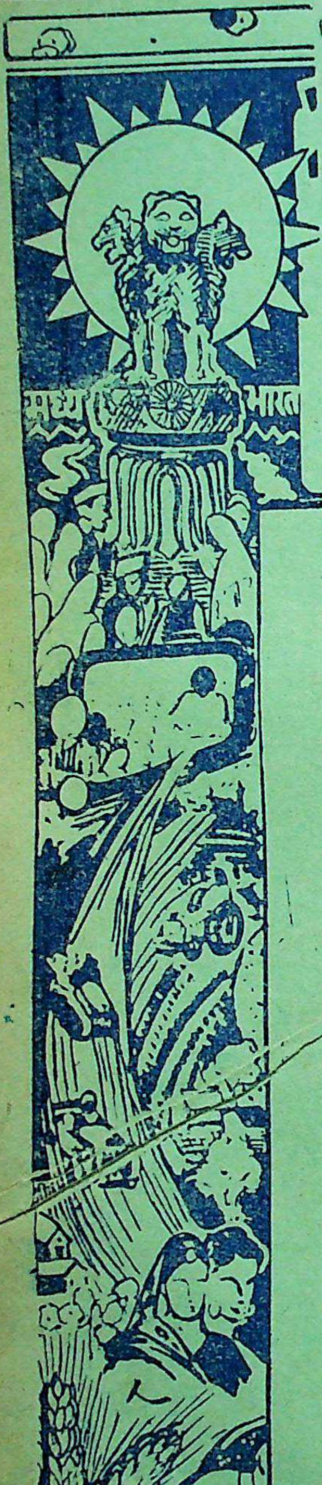

२६ जनवरी

गणतंत्र-दिवस

४७,००० वर्गमील में विस्तृत तथा लगभग ८०,००,००० स्वाधीन नागरिकों का निवासस्थान मध्य-भारत भारतीय-गणराज्य का सुदृढ़ अंग है।

इसके प्राचीन गौरव से देश का इतिहास गौरवान्वित है और इसका भविष्य देश को नई समृद्धि प्रदान करने वाला है। कृषि विकास, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में उन्नति, यातायात के विस्तार, बड़े और छोटे उद्योगों की प्रगति आदि कार्यों के साथ-साथ मध्यभारत पंचवर्षीय योजना को पूरा करने में दृढ़ता से संलग्न है। चम्बल घाटी विकास योजना की पूर्ति से मध्यभारत की ६ लाख एकड़ भूमि लहलहा उठेगी और यहां के उद्योग धंधे ६०,००० किलोवाट बिजली पाकर विद्युत गति से प्रगति करेंगे।

समस्त देश की आशाओं और अभिलाषाओं के अनुरूप यह नवोदित-राज्य भारतीय-गणराज्य के अन्य अंगों के साथ उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है।

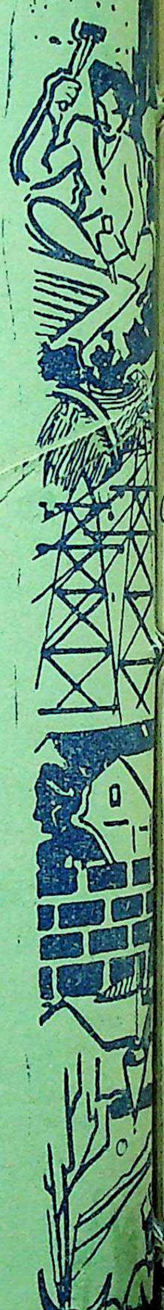

सूचना विभाग मध्य भारत

प्रकाशक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, मुद्रक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

मार्गशीर्ष ★ पौष

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

२०१०

जनवरी १९५४

(स्व. श्री. हृदय जी जिनकी स्मृति पूजा का दिन २३ मार्च है)

विक्रम

सञ्चालक-सम्पादक

सूर्यनारायण व्यास

टेलिफोन—६००४५-४६ तार—श्रीनिवास बम्बई

श्रीनिवास कॉटन मिल्स

लिमिटेड, बम्बई

श्रीनिवास हाऊस, बाडवी रोड, फोर्ट, बम्बई. १

सुन्दर, कलापूर्ण तथा
टिकाऊ
कपड़ा, धोती, साड़ी, मलमल, लट्ठा,
पॉपलिन, वायल, चेक आदि बढ़िया माल !

हमारा 'नरेन्द्र छाप' भव्य लट्ठा पहिनें

श्री निवास मिल्स
में हर प्रकार का कपड़ा बनता है।
कोरा, धुला हुआ, छपा हुआ,
रंगा हुआ। सर्व प्रकार का
माल विशेषता से बनाया
जाता है।

बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली
कानपुर तथा अमृतसर
की मंडियों में श्रीनिवास के कपड़े
की भारी मांग है।

मैनेजिंग एजन्ट्स
दि मारवाड़ टैक्सटाइल्स [एजन्सी] लि० बम्बई।

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
।।=)

विषयानुक्रमणिका

			पृ. सं.
१	उत्तिष्ठत जाग्रत	श्री ब्यौहार राजेन्द्रसिंहजी	
२	व्यास-उवाच	सम्पादकीय	१-१६
३	संस्कृति समन्वय	श्री डॉ० भगवानदासजी	१७-१९
४	वसन्त मंजरी	श्री रवीन्द्रनाथ टागोर	२०-२४
५	सारंगपुर	श्री कृ० गं० कवचाले	२५-३४
६	वह कवि होगया सरकार	श्री रामनारायण उपाध्याय	३४
७	महा-मालव की साहित्य-साधना	श्री रतनलाल परमार	३५-३८
८	काव्य-विहार	श्री मदनमोहन व्यास, श्री करील	३९-४२
९	परिचय परामर्श		४३-४६
१०	मालवी होली	श्री मदनमोहन व्यास	

पत्र व्यवहार का पता— } " विक्रम"–कार्यालय उज्जैन [मालवा]

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड
स्थापना १९४१
केवल १,५०,००० की पूंजी से प्रारम्भ की गई कम्पनी के पास आज २७, लाख से ऊपर के असेटस हैं।
क्लेमस पेड—५ लाख के ऊपर
पॉलिसी की शर्तें उदार हैं
संरक्षक
हिज़हाईनेस महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर

मध्यभारत के लिये चीफ एजेंटों की आवश्यकता है!
धननूर सरफिरोज़शाह मेहता रोड
फोर्ट, बाम्बे।

विशेष जानकारी के लिए–श्री एच. एन.-
आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क
स्थापित करिये।

उत्तिष्ठत जाग्रत

[व्यौहार राजेन्द्र सिंह]

उत्तिष्ठत जाग्रत ! प्रभात वेला में तो ईश्वरीय आलोक स्वतः आकर हमारी निद्रा भंग कर देता है। समस्त रात्रि की गंभीर मुद्रा एक मुहूर्त में ही भंग हो जाती है। किन्तु सान्ध्य वेला के मोह को कौन भंग करेगा। समस्त दीर्घ दिन की चिन्ता और कर्म से उत्क्षिप्त है। एक माया रूपी आवेष्टन, इसके भीतर से चित्त को निर्मल उदार शान्ति के बीच किस तरह बाहर लाँऊ ? समस्त दिन ने एक मकड़ी के समान जाल के ऊपर जाल का विस्तार करके हमको विविध दिशाओं से जकड़ लिया है। चिरन्तन को सर्व व्यापी को, बिल्कुल आवेष्टित कर दिया है। इस समस्त जाल को काट कर चेतना को अनंत के बीच किस प्रकार जाग्रत करूँ ? और उत्तिष्ठित। जाग्रत।

जब नाना कर्म, नाना चिन्ता, नाना प्रवृत्तियों के रूप में एक एक आवर्त हमारे चारों ओर घिरता रहता है। विश्व और हमारी आत्मा के बीच एक आवरण का निर्माण करता रहता है। उस समय यदि बीच २ में हम अपनी चेतना को सतर्क न करते रहें।

उत्तिष्ठित जाग्रत यह जागरण मंत्र क्षण २ में दिन के समस्त व्यापारों के बीच हमारी अंतरात्मा से ध्वनित होकर न उठता रहा तो आवर्त पर आवर्त उठकर पाश पर पाश जकड़ कर अन्त में हम अनुभूति शून्य हो जायेगें। तब जड़ता से स्वतः को खींचकर बाहर लाने की इच्छा भी नहीं होगी।

अपने चारों ओर के आवेष्टन (परिधि घेरे) को ही हम अत्यंत सत्य समझने लगते हैं। इसके परे जो उन्मुक्त, विशुद्ध, शाश्वत सत्य है उसके प्रति हमारा विश्वास ही नहीं रहता, साथ ही उसके प्रति संशय करने की सचेष्टा भी हमसे चली जाती है। अतएव समस्त दिन जब नाना व्यापारों की कल ध्वनि हो, तब मन की गंभीरता के बीच एक तारा यंत्र में बजता रहे। अरे उत्तिष्ठत जाग्रत। "उठो जागो"

मध्यभारत, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के वाचनालयों एवं पुस्तकालयों के लिये शिक्षाविभाग द्वारा स्वीकृत

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खंड २] मार्गशीर्ष-पौष सं० २०१० वि०, जनवरी सन् १९५४ [अंक ३ पूर्ण सं० ७१

व्यास उवाच

हमारा कवि !

कवि के विषय में बहुत कुछ लिखा गया, और लिखा जा रहा है। किंतु कवियों का कारखाना सतत चलता ही जा रहा है, उसमें न तो फेक्टरी-एक्ट, या कारखाना कानून लगता है, न उसमें समय की भी मर्यादा है, न विषय का प्रतिबन्ध ही, न वय की मर्यादा। प्रत्येक को इस कारखाने में हर समय, हर तरह, हर चीज के बनाने बिगाड़ने की स्वतंत्रता है। 'निरंकुशाः कवयः' के कानून से उन्हें सब तरह की स्वतंत्रता ही नहीं स्वच्छन्दता भी है। यही कारण है कि कवियों के कारखाने में पूरी तरह अराजकता का राज्य है, संतुलन रहित घड़ी के लट्टू की तरह वे कभी इधर कभी उधर कल्पना के दोल पर आंदोलित होते रहते हैं। 'बम' वर्षा की आशंका से जिस तरह पथ-भ्रांत जनता आश्रय की खोज में इतस्ततः घूमती है, यही दशा आजकी कविता की हो रही है। राजनीति में जिस प्रकार पार्टियों का प्रभुत्व बढ़ता जाता है, दल के दल-दल बनते जाते हैं, उसी तरह काव्य के क्षेत्र में 'वादों' का विवाद चल रहा है।

इस समय का युग हर विषय में सिद्धांतों को आधार लेकर चलता है, पर उनमें स्पष्टता नहीं हो पाती। ठीक यही स्थिति कविता के क्षेत्र में हो रही है। उस पर युग का प्रभाव पड़ा है, और उसने कविता के स्वावलंबन को समेट लिया है। कवि अगम्य बनने की ओर प्रवृत्ति करता जा रहा है। उसमें कलामय स्त्रैण भावना भररही है। और अहं का आवास हो रहा है। उसे अध्यात्म का स्पर्श पसंद नहीं, कला की कामना नहीं, यथार्थ का योग कर वह प्रयोग की प्रगति में समाज और साहित्य के लिए समस्या बनता जा रहा है। उसे पश्चिम

की अगम्यता प्रवाहित करती जा रही है. इसलिए उसकी कृति का सम्बन्ध हृदय से छूटकर मस्तक में समाविष्ट हो गया है। और वह केवल बौद्धिक व्यायाम के अतिरिक्त कुछ नहीं रह पाया। फलतः भाव, और रस तो भाप बन कर उड गए, कोरी कल्पना की उडान व्योमविहार कर वापस आ जाती है। अपना वातवरण नहीं बना पाती। कविता का स्वरूप भले ही साहित्य के कणों का संचय करे, पर उसका अंतर, रस और भावना से भरा हुआ होना चाहिये, पर आज की कविता न तो रूप की दासी है, न लाखों तारोंकी ओढनी ओढ़कर जगमग ही करती है। वह चाहे स्वर्गीय सौन्दर्य की अनुभूति भी न करे, न वह सूर्य की सुनहली किरणों को लेकर हिमालय के शिखर से फिसले किन्तु वह जनता के घर में तो सरलता से जाकर क्षणिक विश्रान्ति ले! उनके हृदय को तो स्पर्श करे, पर उसमें न तो ठंड के कारण गरीबी की ठिठुरन है, न कंपन ही, न करुणा की आर्द्रता है,न आँसू का खारापन ही, न दर्द है, न दया। वह वादों के वातावरण में व्यर्थ विहार कर वैचारिक-भ्रांति के सिरदर्द से पीडित बन रही है। निराला और नजरुल जब समाज से संत्रस्त हो मनो-विकृति अनुभव करे, तब उनकी कृति में स्वास्थ्य की संभावना करना 'शशशृंगवत्' होगा आज उनसे तुलसी के तप की आशा करना व्यर्थ है,वह युग व्यतीत हो गया। सृष्टा और सम्पत्ति-साधना में इस देश में सतत संघर्ष चलता आया है, अपनी ही नौका में विहारकर मस्ती अनुभव करने वाला समर सेट माम, रोज रायल्टी को रुनझुन सुनने वाला 'शा', या निरन्तर सागर तट के सौन्दर्य का सेवन करने वाला इटेली का साहित्यकार इस देश में नहीं हो सकता। यहाँ कालिदास, का काल समाप्त हुए शतियाँ बीत चुकी हैं। वाल्मिकी की मर्मव्यथा का कोई महत्व नहीं, जो निषाद के एक बाण से आहत. क्रौंच युगल की मनोवेदना को अनुभव कर सके। चाहे बंगाल में लाखों तडफ कर भूख से भस्म बन जावें, या प्रयाग के कुम्भ में कुचलकर कर्दम में सदा के लिए सोजावें किन्तु यहां करुणा की चिर-निद्रा करवट लेने की कल्पना से कोसों दूर निकल गई है।

आज कोई नव सृष्टा विश्वामित्र दिखाई नहीं देता, जो तामस प्रवृत्ति से राजस में चढ़ कर क्षात्र-तेज अनुभव कर रहा हो, चाहे उसे मेनका से तपोभ्रष्ट होने का प्रसंग क्यों न प्रस्तुत हो। वह मानवीय निर्बलता को रखते हुए भी नव सृष्टि निर्माता का ओज रखता है। वह मन्त्र-द्रष्टा स्रष्टा बन कर सर्वकाल के लिये परमावश्यक एवं प्रेरक गायत्री मन्त्र की देन हमें दे जाता है, जिसे अनेक कोटि जनों ने अपने हृदय का हार बना रखा है।—

"सविता का वरेण्य भर्ग हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे"

पर हमारे कवि, या निर्माता में आज जन-जन में संस्कार प्रेरित करने की कोई शक्ति, या प्रगति नहीं दिखाई देती। पुराने संस्कारों के सौंदर्य, और नवीन के 'बल' को परख कर आत्मसात् करने का सामर्थ्य भी दिखाई नहीं पड़ता। किसी विभिन्न भाषी विद्वान् ने ठीक कहा है कि सृष्टा जूने संस्कारों की निर्मलता को संग्रह करता है, और नए संस्कार साधनों से परखकर ओजस एकत्रित करता है और दोनों को लेकर नव-जीवन के निर्माण के लिए मन्थन करता है।

विश्वामित्रने गायत्री प्रदान की, उस पर शतियां युगान्तरों का समय फिसल कर व्यतीत हो गया, पर उसकी यह एक ही महत्वपूर्ण देन काल-चक्रों पर चढ कर भी यथावत् उसी स्वरूप में सजीव है। क्या हमारे कवि, सृष्टा, ने कभी इस पर विचार किया है?

जैन-साहित्य में तथ्यान्वेषण!

जैन-साहित्य भारतवर्ष में समृद्ध, और सुरक्षित है। उसमें भारतीय-इतिहास और लोक कथा का बहुत बड़ा साधन सुरक्षित एवं संग्रहीत है। अनेक ग्रन्थागार जब इस देश में विनष्ट हो गए, विदेशों में निकल कर खाली पड़ गए तब जैन ग्रन्थों के भांडार व्यवस्थित और रक्षित रहे। पाली प्राकृत संस्कृत का जितना सुन्दर साहित्य इन भण्डारों में मिलता है, अन्यत्र नहीं। अवश्य ही कुछ जैन-विद्वानों, साधुओं ने उनका परिशीलन किया है, प्रकाशन भी किया है, किन्तु अभी उनके अध्ययन, अनुशीलन की अत्यंत आवश्यकता बनी हुई है। जैन साहित्य के अनेक ग्रन्थों में इस देश का बहुमूल्य इतिहास भरा हुआ है, साहित्य के विभिन्न स्वरूप सुलभ होते हैं। उन इतिहास-ग्रन्थों, और लोककथा प्रबन्धों पर जो धार्मिक रंग चढ़ गया है, (जो कि स्वाभाविक

था) उनके परिष्करण और सत्य संशोधनकी आवश्यकताहै। अकेले जैन साहित्यमें शक विजेता विक्रमादित्य पर ५५ से ऊपर ग्रंथउपलब्ध होते हैं, उनमें कथा किम्वदंतियाँ भी हैं। धार्मिक-रंग भी चढ़ा हुआ है, परंतु इन साधनों को लेकर यदि तटस्थ संशोधक विद्वानों का एक मण्डल छानबीन करे तो इतिहास की बहुत बड़ी गुत्थी सुलझना सम्भव हो सकता है। अन्य भाषा में विक्रम पर इतना अधिक लिखित साहित्य सुलभ नहीं है, ऐसी स्थिति में विद्वानों को चाहिए कि विशेष रूप से उक्त साहित्य का संशोधन कर किसी निर्णय पर पहुंचने का प्रयास करे। इसी प्रकार अन्य अनेक विषय हैं जिन पर जैन ग्रंथों में विपुल-साधन विद्यमान हैं। उनके समस्त भाण्डारों की छान-बीन की जाना, इतिहास, और साहित्यानुशीलन की दृष्टि से भी परमावश्यक है। जैन और जैनेतर विद्वान्-वर्ग, इस विस्तृत और विशाल साहित्य समृद्धि की छानबीन कर तथ्यान्वेषण का कार्य करे तो देश की बहुत बड़ी साहित्येतिहास सेवा करेंगे। सत्यान्वेषण की दृष्टि रख कर इतिहास की कसौटी पर कसे जाने के कारण उस पर साम्प्रदायिक और रूपकों के आवरण सहज हट जायेंगे, और तथ्य प्रकट होकर अपने वास्तविक स्वरूप में समक्ष सुरक्षित बन आएगा। आज इसकी अत्यंत आवश्यकता है।

रुद्रसागर की रक्षा आवश्यक !

उज्जैन के महाकालेश्वर और हरसिद्धी देवी के मध्य में पुराणों में प्रसिद्ध पवित्र स्थान के रूप में सम्मानित रुद्रसागर तालाब है। आज यह यद्यपि जल विहीन सूखा सर है। परन्तु कुछ ही वर्षों पूर्व यह नगर के मध्य का एक सुरम्य मनोहारी जल-मयसागर था। हजारों कमल के कुसुम इसमें खिले रहते थे, सैकड़ों कुमुदनियाँ उनके संग सौरभ बिखेर कर अलिकुलों को आंदोलनानुरंजित बनाए रखती थी। लाखों यात्री इसकी शोभा से मुग्ध बन प्रातः सायं विहार के लिए मंडराया करते थे। जिस समय नवरात्र-काल में देवी हरिसिद्धी जी के सामने खड़ी दीप मालाएँ झल-मला उठती थीं, उनके प्रतिबिम्ब को अपने सरल-तरल अंचल पर अंकित कर लोल लहरें झुलाती रहती थीं, और अपार आंखें उस आनन्द को पलकों में समेट कर भाव विभोर बन जाती थी। किन्तु दुर्भाग्यवश कहीं से उस जल में कोई कंजी का कूड़ा प्रवाहित हो आया, और मच्छरों ने उन्हें आच्छादित कर लिया तब सुधार के साधनों का भार वहन करने वाले मानवों के मलिन-मन ने अपना मैलापन इस सुन्दर सागर में समाविष्ट किया, और पानी को निकाल बाहर कर दिया, और उस सागर सौंदर्य को सहमा सुधार की समाधि पर समेट कर रख दिया। अब तो संहारलीला सीमा लाँघ चुकी है; इस रमणीय तालाब को सारे शहर के गंदे-कूडे-कचरों की गाडियां वेग के साथ पाटती जा रही हैं, हरे पत्तों के कुछ महीने टिकने वाले मच्छरों से मलेरिया का भय मानने वाली मति ने निरंतर कूडों के ढेर, और गंदगी का गंदा वातावरण निर्माण कर मलेरिया के मच्छरों का स्थायी निवास बना डाला है। हजारों हस्ताक्षरों की उपेक्षा, और जनमत को ठुकरा कर अनेक धार्मिक हृदयों पर आघात कर इस सुन्दर पवित्र सागर का संहार किया जा रहा है। जिस सागर का अनेक पुराणों में सादर वर्णन हुआ है, जिसे 'रुद्रसागर' स्वीकारकर प्रत्येक अधिक मास में स्नान का आरम्भ किया जाता है, आज भी उसके तट पर बने हुए पुराने पुख्ता घांट उसकी पौराणिकता को प्रमाणित कर रहे हैं, जिसके लिए "सर्वतीर्थं च श्रेष्ठं नाम्ना रुद्रसरं स्मृतम्" (अ० ६६ अवंती खण्ड)" स्नात्वा रुद्रसरे नित्यं महापातक नाशनम्" (श्लो ६४) आदि सन्मान वाक्य पुराणों में पवित्रता के प्रतीक बने हुए हैं, उसका सर्वनाशी संहार बराबर किया जा रहा है। नगर के मध्य के इस मनोरंजक, और पवित्र जलाशय को नष्ट कर सुधार का दम्भ किया जा रहा है। जहां नष्टःप्राय जलाशयों को निर्माण कर जल सुविधा के लिए नई व्यवस्था सोची जा रही है, रुपया बहाया जाता है। वहां उज्जैन के नगर मध्य का यह जल विहार नष्ट भ्रष्ट कर गंदगी से भरा जा रहा है। उज्जैन में वैसे सात सागर रहे हैं, विभिन्न भागों में उनके जल से जनता सब तरह लाभ उठाती रही है और जलाशयों का सौंदर्य भी अनुभव करती थी वहां आज कई तालाब पाट कर सुधार का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। रुद्रसागर के कारण जहां दोनों पवित्र स्थानों के मध्य में एक शोभा का मनोहारी केन्द्र रहा है, वहां पड़ौस की भूमि में सिंचाई की सुविधा भी थी, और हरसिद्धी महाकाल के बीच में तालाब के कारण

एक बड़ी सुरक्षा स्वाभाविक बनी हुई थी जिससे बदमाशों का मार्ग अवरुद्ध रहा करता था। अब तालाब के जल हीन होते ही सारा उजाड़ भाग गुण्डों की आत्मरक्षा का सरल पथ बन गया है। पास पड़ौस अरक्षित हो गया है। जनता अत्यंत उद्विग्न है। अनेक प्रयास भी हुए, स्वयं मन्त्री महोदय (इस विभाग से सम्बन्धित) भी तालाब के जल मय बनाए रखने, और उसकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाने की बात को स्वीकार कर चुके हैं, (जिसका साक्षी इन पक्तियों का लेखक और जिला कलेक्टर भी हैं) परन्तु यह पवित्र, पुराण प्रसिद्ध, सात सागरों में प्रमुख रुद्र सागर तालाब गंदी गटरें और कूडा गाड़ी के निरन्तर प्रवाहों से पाटा ही जा रहा है। तालाब के पाटे जाने के कारण सुंदर सागर का संहार तो हो ही रहा है, पर अनेक सहस्त्र मानवों की भावना को क्रूरता से कुचल कर उस पर प्रहार भी किया जा रहा है। हम सम्बन्धित जनों, उच्चाधिकारियों और शासन से अनुरोध करते हैं कि इस सागर संहार को रोके और उसे पुनः जलमय बनाकर उसके सौंदर्य को रक्षित करे। जनता की भावना को ठोकर मारकर मर्दित न करे। रुद्रसागर की रक्षा आवश्यक है। उसके अन्तर में कमल खिलने की भावना को कुचला न जावे। तुरन्त उसके पाटने की पापमय प्रवृत्ति को रोका जावे। 'अनल-प्रकट चंदन ते होई' को विस्मृत न किया जाए शासकों से फिर यही अनुरोध है, रुद्रसागर जलाशय ही रहे। उसका सुधार पुनरुद्धार और पवित्र-जलागार ही रखना आवश्यक है।

शिक्षा में-संस्कृत की अनिर्वार्यता आवश्यक !

संस्कृत-भाषा भारतीयों की अपनी वस्तु है, किसी समय इस देश में उसका अपना अधिकार था, वह राज्य भाषा ही नहीं, जन भाषा भी रही है। इसका प्रमाण सारा, वह साहित्य है. जो अत्यन्त समृद्ध, और विश्व की संस्कृतियों को चेतना देने का काम करता आ रहा है। संस्कृत का महत्व मध्ययुग में तो रहा ही था, किन्तु मुगलों की अनेक मुद्राओं पर भी उसका अंकित होना प्रमाणित करता है कि उसे पीछे तक शासकीय प्रतिष्ठा प्राप्त होती रही है। अंग्रेजी शासन काल ने उसे अवश्य बाधा दी अवहेलना और उपेक्षिता बनाने के आयोजन किये, फलतः

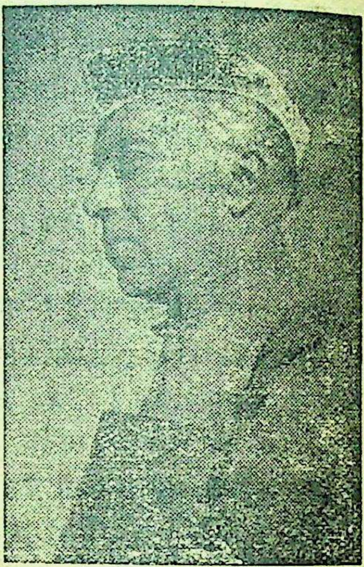

संस्कृत को मृत भाषा कहने का दुस्साहस किया गया, जबकि उससे उत्पन्न भाषायें अपना अस्तित्व रख रही हैं। वस्तुतः परतंत्रता का अभिशाप है कि आज संस्कृत का स्थान विदेशी अंग्रेजी भाषा ने ग्रहण कर लिया है, राष्ट्र भाषा हिन्दी के घोषित कर दिये जाने पर भी अंग्रेजी का असर उसके भक्तों पर भूत की तरह सवार है। उसे 'पैतृक-विरासत' बतलाने तक के तर्क किए जाते हैं। जबकि इस देश की भाषा-संस्कृत को वही लोग 'मृत्त भाषा' कहने का दुस्साहस कहने से नहीं चूकते। एक ओर डा० काटजू जैसे व्यक्ति संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने की बात कहा करते हैं। इन दोनों असंगतियों के चलते रहने के बावजूद यह निर्विवाद है कि यदि भारत को भारतीय संस्कृति से सम्पन्न बनाना है, और उसके पूर्व गौरव की प्रतिष्ठ करना है तो देश भर में संस्कृत के साहित्य से जन को परिचित एवं प्रवीण करवाने की आवश्यक है। दुनियां की किसी भी भाषा में इतना समृद्ध सा

त्व अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। संस्कृत से अनभिज्ञ व्यक्ति को भारतीय कहलाने का अधिकार नहीं है। हाल ही में दिल्ली में भारतीय पुनर्जागरण समिति के तत्वावधान में संस्कृत-विद्वानों का एक सम्मेलन हुआ था, उसमें अध्यक्ष श्री० अनंतशयनम् आयंगर ने शिक्षा में संस्कृत की अनिवार्यता पर जोर दिया था। इस अवसर पर प्रधान मंत्री श्री नेहरूजी ने भाषण देते हुए कहा था कि संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए उचित सुविधा दी जाना चाहिये। हम उनके इस विचार से सहमत हैं कि संस्कृत के सामूहिक शिक्षण प्रदान करने के बजाय उसके आलोचनात्मक अध्ययन पर बल दिया जाना चाहिए। संस्कृत के ज्ञान भण्डार को व्यापक-दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति दिए बिना उसके मर्म, और महत्व को समझना सम्भव नहीं। परन्तु हम पण्डितजी के इस विचार से सहमत नहीं है कि 'संस्कृत अध्ययन का भार जबरन नहीं लादा जाना चाहिए।' जब तक इस ओर प्रवृत्त करने के लिए संस्कृत ज्ञान आवश्यक नहीं बनाया जाता लोक रुचि को आलोचनात्मक अध्ययन की ओर किस प्रकार प्रेरित किया जा सकता है। सम्मेलन के निर्णयानुसार यदि माध्यमिक-मेट्रिक-शिक्षा में संस्कृत को आवश्यक बनाया जाए तो इस ओर जाग्रति की संभावना हो सकेगी। हाई स्कूलों में संस्कृत की अनिवार्यता स्वीकृत कर लेने के पश्चात् यह आशा की जा सकती है कि नई पीढ़ी में इस महान् ज्ञान के प्रति रुचि बढती जाएगी। आज डाक्टरेट के लिए निबन्ध में संस्कृत के अज्ञान के कारण जो अपूर्णत्व और संकुचितता बढ़ रही है उसका क्षेत्र भी संस्कृत ज्ञान की रुचि के कारण विस्तृत हो जाएगा। विश्व विद्यालयों में इसलिए संस्कृत की चेअर प्रतिष्ठित किया जाना आवश्यक है। जिस प्रकार पिछले देशी राज्यों में प्रायः सर्वत्र संस्कृत प्रसार का प्रयत्न होता रहा है, उसे पोषित कर सुविधा, और नव-दृष्टि दी जाना चाहिए। भविष्य में अपने देश, और उसकी महान् सस्कृति के प्रति निष्ठा बढाना है तो संस्कृत ही उसका महत्व-पूर्ण माध्यम हो सकता है। अन्य भाषा या साहित्य में वह सामर्थ्य नहीं है। गुरुओं के प्रति समादर, देश के प्रति सद्भावना, छात्रों में शील, चरित्र, अनुशासन की प्रतिष्ठा के लिए संस्कृत की सहायता के बिना —"नान्यः पन्था विद्यते यनाय।"

'निराला' की दशा का दायित्व !

निराला निश्चय ही हमारी निधि है, उसकी ज्ञान गरिमा, काव्य कला, और दार्शनिक विचार धारा की गूढता को हमने बहुत देर से समझने का प्रयत्न किया। उसके प्रभावशाली प्रयासों के आरम्भ या प्रयोगावस्था में ही हमने उसके मर्म पर प्रहार कर दिए। प्रोत्साहन, या प्रशंसा की अपेक्षा के समय इन प्रहारों ने कवि के कोमल अन्तर को कुचलने का काम किया। उसके कोमल भावों की उभरती हुई मन्जरी मन्द मलयानिल के स्पर्श पाने के विपरीत असमय की आंधी में जर्जर बनने लगी थी। कवि की भाषा को लेकर, भावों को लेकर, बंगाल में उस समय अनावश्यक बवंडर उठाया गया, जब उसकी जुही की कली सुरभि-संचार करने

के लिए विकास की ओर बढ़ रही थी। उस उपद्रव ने सहसा उसके विकास पथ में अवरोध किया, प्रगति में बाधा दी, संभव है कवि के कोमल मनोभावों को उससे ठेस लगी हो, और अन्तर के भावों की मधुर-सुरभि धारा के वेग ने आघात अनुभव किया हो। कवि का वह प्रच्छन्न प्रत्याघात यौवन-रथ पर चढ़ राजमार्ग पर चाहे जोश के साथ बढ़ता गया हो, परन्तु वार्धक्य के मोड पर आकर उसने अन्तर्मन को प्रक्षुब्ध, दुष्प्रभावित, व्यथित कर डाला हो। हमतो निराला की प्रस्तुत दशा का दायित्व इसी पर डालते हैं, हमारे इस आरोप का दूसरा आधार भी है,—श्री उग्रजी! उग्रजी की जिस जादू भरी, जीवित भाषा ने उसी बंगाल के मतवाला-मण्डल में 'चन्द हसीनों के खतूत' की रसमयी-सृष्टि की, जहां निराला की जुही की कली ने जन्म लिया था, पर एक 'चाक लेट' को लेकर जो घृणित घासलेटी-आंदोलन उठाया गया था, क्या उसने हिन्दी के रस सिद्ध-कलम के धनी के मम को व्यथित नहीं बनाया? फिर कितने लम्बे समय तक हमें उग्र की प्रतिभा के चमत्कार पाने से वंचित रहना पडा है? उग्रजी की मस्ती, और बेपर्वाही ने उनको इन आघातों में भी ऊपर बनाए रखा पर भावुक-कवि निराला की मार्मिक चोंट अवस्था के उत्तर काल में उसे आत्मविस्मृत बना कर ही छोड़ सकी हो, और उस दार्शनिक को दीवाना समझने को बाध्य बना गई है।

कला-मूर्ति श्री फडकेजी का अभिनंदन!

महान् कला शिल्पी श्रीमान् फडके साहब इस वर्ष अपनी वयके७० वर्ष पूर्ण कर रहे हैं; हम उनकी ७१वीं वर्ष-ग्रंथि के अवसर पर उनका अभिनंदन करते हैं।

श्री फडके साहब बम्बई के निकट उत्पन्न हुए, बम्बई में उनकी कला-साधना हुई, और लगभग दो दशकों से वे मालव प्रदेश के ऐतिहासिक नगर धार में निवास कर रहे हैं। यह हमारे प्रदेश का सौभाग्य है कि श्री फडके जी जैसा महान् कलाकार उसके बीच अपनी कला साधना कर रहा है।

श्री फडके सा. की शिल्प कला कृतियों ने इस राष्ट्र का गौरव बढ़ाया है। देश के विभिन्न भागों में उनकी निर्मित मनोहर मूर्तियां जनता का आदर अभिनंदन प्राप्त कर रही हैं। बम्बई के चोपाटी पर प्रतिष्ठित राष्ट्र निर्माता लोकमान्य की मूर्ति श्री फडके जी के कौशल का मूर्तिमंत प्रमाण है। करोडों लोगों ने उसके प्रति अपना आदर अर्पित किया है। यह आदर लोक मान्य की मूर्ति का तो है ही, पर साथ ही उस मूर्ति के यथार्थ शिल्प सौंदर्य का भी है, इसलिए यह सहज ही मूर्तिकार का भी हो जाता है, जिस मूर्ति के आकर्षण ने लोकाभिराम उत्पन्न किया, यह उसके निर्माता की कुशलता, और यशस्विता को ही श्रेय है। इसी प्रकार पूना में प्रतिष्ठापित छत्रपति शिवाजी की प्रतिमा भी, श्री फडके सा. के कुशल शिल्प की साक्षी है।

धार देवास, इंदोर आदि नगरों में श्री फडके जी द्वारा निर्मित अनेक मूर्तियां जनता के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है, किन्तु श्री फडके जी देश और विदेशों में विश्रुत मूर्तिकार ही नहीं, उनकी लेखनी भी शिल्प सौंदर्य की तरह साहित्य सृजन में सफल हुई है। वे मराठी भाषा के सफल शब्द शिल्पी, और ओजस्वी आलोचक हैं, उनके व्यंग बाण छैनी की तरह ही वेधक-शक्ति रखते हैं। मराठी नाट्य-साहित्य की आलोचना करते हुए उन्होंने अपनी रचना 'नाट्य परामर्श' में जो शब्दच्छटा बतलाई है, वह उनकी कलम की करामात का कायल बनादेने के लिए काफी है। व्यंग और विनोद पर उनका अद्भुत अधिकार है, नीरस पाषाण पर छैनी चलाकर मधुर मनोहर मूर्ति निर्माण करदेने की क्षमता रखने वाला कलाकार निरा नीरस नहीं, उसकी सरसता इस जराजीर्ण शरीर में भी इस सीमा तक रस-मय है कि श्री फडके जी के वातावरण में निरंतर नवजीवन प्रवाहित होता रहता है। वे कवि भी हैं, शायद उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं होसका है, पर अनेक कविताएँ पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। इसी प्रकार श्री फडके जी संगीत के मर्मज्ञ हैं तबला वादन में तो वे प्रसिद्ध हैं ही, साहित्य-संगीत

कला की त्रिवेणी का सुंदर संगम श्री फडके जी में होगया है, यही कारण है कि वे स्वयं मूर्तिमान्- कला बन गए हैं, उनकी साधना वास्तविक तपस्वी की है, उनका स्वाभिमान कलाकार के सन्मानके अनुरूप ही है। मध्य भारत को उनपर गर्व होना चाहिए कि फडके जी जैसी कला-विभूति उसके मध्य में है, भोज की भूमि में उनकी साधना एक सुयोग ही कहना होगा। हम इस कला मूर्ति की वर्ष ग्रंथी के प्रसंग पर अपना हार्दिक एवं सादर अभिनंदन करते हैं, और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि श्री फडके सा. को पूर्ण शतायु प्रदान करे।

उर्दू के अधिकार की मांग !

अन्जुमने तरक्किए उर्दू का एक प्रतिनिधि-मण्डल डॉ. जाकीर हुसेन के नेतृत्व में भारत के राष्ट्रपति से मिला था। और उसने राष्ट्रपति के समक्ष अपनी मांग प्रस्तुत की कि उर्दू को उत्तर प्रदेश में राज्यभाषा (प्रादेशिक) के रूप में स्वीकार कर लिया जावे। इस स्मृति-पत्र में १९५० से लेकर अब तक की भाषा सम्बन्धी निर्णयों की प्रभावशाली ढंग से चर्चा की हैं और ११ मांगें पेश की है। इस प्रतिनिधि मंडल में मुस्लिम सदस्यों के सिवा हिन्दू सदस्य भी सम्मिलित थे जिनमें श्री हृदयनाथ कुंजरू और पण्डित सुन्दरलालजी का समावेश होता है। डा० जाकीर हुसेन भारत के माने हुए शिक्षा शास्त्री हैं, और राष्ट्वादी के रूप में उनकी प्रसिद्धी है! बुनियादी शिक्षा के घटकों में उनका स्थान रहा है, और गांधीजी के साथ निकट सम्पर्क भी। हमें उनकी इस प्रवृत्ति पर वास्तव में आश्चर्य हुआ, क्योंकि राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकार करने के पश्चात् एक राष्ट्रवादी मुसलमान उर्दू को किसी प्रदेश की राज्यभाषा मनवाने के लिए बड़े लम्बे प्रयास के साथ राष्ट्रपति के द्वार पर पहुंचने का साहस करे, उनके इस प्रयास में हमें तो सम्प्रदाय की गन्ध छुपी हुई दिखाई देती है। इस स्मृति पत्र में कहा गया है कि २०लाख हस्ताक्षर हैं, जिसमें बहुत बड़ी संख्या में अंगूठे की निशानी भी है। उनकी मांग है कि उर्दू के माध्यम द्वारा पढ़े हुए पर्याप्त शिक्षक तैयार किए जावें, पाठ्य-पुस्तकें उर्दू में तैयार करवाई जावे, आर्थिक सहायता भी दी जावे, और उत्तरप्रदेश में एक ऐसा विश्वविद्यालय हो जहाँ शिक्षा का माध्यम उर्दू बन जावे। जबकि उस्मानिया जैसी हैदराबाद की शिक्षा संस्था आज अपना रूप पलट रही है, तब उर्दू के माध्यम को लेकर विश्वविद्यालय की मांग करना डा० जाकीर को कैसे सूझ सकता है, यह विचार का विषय है।

हमें उर्दू के अभ्युदय से आपत्ति नहीं, उर्दू प्रेमियों को उसमें ज्ञानार्जन, साहित्य सृजन करने का अधिकार है, उसके सौंदर्य को सुरक्षित रखने की सुविधा भी है। परन्तु प्रदेश की भाषा मनवा लेने के लिए कौनसी मनोवृत्ति काम कर रही है, यह समझने में असमर्थ हैं। डा० जाकीर प्रभृति उर्दू-प्रेमी जन यदि सरकार से उर्दू के उन्नयन में सहयोग कामना करते, उसके साहित्य को प्रोत्साहित करने की सहायता चाहते, तो शायद किसी को आपत्ति नहीं होती, पर जब ये प्रदेश में राज्यभाषा के रूप में उसे प्रविष्ट कराने का प्रयास करने की बात करते हैं तो उनके राष्ट्रभाषा-द्रोही रूप का प्रदर्शन ही होता है। उत्तरप्रदेश में जहाँ हिन्दी का गढ़ है, उर्दू को एक भाषा स्वीकार करवाना उनकी विवेक बुद्धि पर आशंका उत्पन्न करता है। उन्होंने २० लाख हस्ताक्षर करवा लिए उसमें आश्चर्य नहीं, अंगूठा छाप सम्मतियों का मूल्य चाहे कितना ही बड़ा बन जावे, किसी राज्य की भाषा बनवाने में समर्थ नहीं बन सकता। यदि अवधी या अन्य भाषा-भाषी जन ऐसा ही प्रयास आरम्भ करे तो अवश्य इन सम्मतियों से दुगनी सहज सुलभ हो सकती है। काश यह प्रतिनिधि मण्डल उर्दू को नागरी लिपि में लिखने का आग्रह लेकर शासन से उसके समर्थन के लिए माँग पेश करता तो हमें विश्वास होता है; उसमें उन्हें सफलता भी मिलने में सरलता होती, किन्तु राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने और उत्तरप्रदेश में उसके विकसित होने पर भी उर्दू को अधिकार दिलाने की बात बढ़ाना अपनी राष्ट्रीयता में भी सन्देह का अवसर देना है। हमें डा० जाकीर की विवेक बुद्धि पर आशंका होती है कि वे राष्ट्रीयता के आवरण में बुद्धि-भेद को जन्म देकर अपनी प्रतिष्ठा की पूंजी पर पानी फिरा लेंगे।

और अंग्रेजी !

डा० जाकीर का उर्दू-प्रेम तो क्षण भर समझ में आ सकता है। जबकि प्रदेश की भाषा को बनवा लेने की माँग महज एक सनक।

किन्तु उसी उत्तरप्रदेशके राज्यपाल श्रीमुन्शीजीकी बहकके अनुसार 'अंग्रेजी को हमारी" मान कर "उसकी उपेक्षा" को 'अपराध' स्वीकार कर लिया तो–राष्ट्रभाषा के स्थान पर हिंदी की प्रतिष्ठा केवल प्रदर्शन या प्रचार-मात्र ही रह जावेगा। मा॰ मुन्शीजी अंग्रेजी को अपनी "पैतृक-सम्पत्ति" के रूप में घोषित करते हैं, क्योंकि वह हमें अंग्रेज द्वारा उत्तराधिकार में मिली है। उनका कहना है कि यदि इसकी उपेक्षा की तो 'भविष्य के साथ विश्वासघात होगा।' 'अंग्रेज बाहरी' थे, पर 'अंग्रेजी हमारी' बन गई है। उसके द्वारा हम समस्त संसार पर असर डाल सकते हैं।" मालूम होता मुन्शी जी का कहानीकार कभी कभी उनकी कल्पना पर सवार हो उन्हें औपन्यासिक वातावरण में विहार करने को बहका देता है। इसी भावना में अंग्रेजी जैसी दूसरों की वस्तु को हमारी कहने का साहस कर लेते हैं, उनके स्वभावानुसार भले ही यह स्वाभाविक लगे, पर क्या वे रूसको भुला देंगे, जहाँ अंग्रेजीके न होते हुए भी रूसी भाषाकी शक्ति सारे विश्व पर अपना असर डालती रहती है। तुलसीदास ने उर्दू के शासन काल में रामायण रच कर मुगलों के उत्तराधिकार को (उर्दू को) अस्वीकार किया था, और अपनी भाषा में रामायण रची थी। उसकी शक्ति के प्रभाव को विदेशों को नहीं मानना पड़ा है? आज रूस, यूरोप आदि में उसके अनुवाद रामायण की शक्ति को स्वीकार करने को बाध्य बने हैं, अपनी भाषा को निर्वीर्य समझना तो बड़े खेद की बात है। यह मनोवृत्ति हमारे देश की की भाषा किसी कैसे पुष्ट या सशक्त बनने देगी?

यदि आज मुन्शीजी अंग्रेजी को पैतृक सम्पत्ति कह कर उसके अधिकार को वहन करने का आग्रह करते हैं, मुगल कालकी उर्दू पर्शियन को जो अंग्रेजों से पूर्व की है, पैतृक समझने को विवश होना पड़ेगा परन्तु मुगलों के काल में उर्दू और अंग्रेजी के 'पैतृक अधिकार' को सारे देश में बहुत थोड़े कर्मचारियों, परभाषा प्रेमियों ने ही अपनाया था, जो मुश्किल से देश भर में 'दाल में नमक' के बराबर होंगे, यदि वे अपने पितृओं के अधिकार के लिए परेशान हो तो हर्ज नहीं। लेकिन करोड़ों के बहुमत ने ऐसी पराई पूंजी को कभी अपना पैतृक-सन्मान प्रदान नहीं किया है। इसलिए न तो उर्दू न अंग्रेजी ही हमारी राष्ट्रभाषा के अधिकार पर सौत बनने का साहस बतला सकती है। यदि हमारे राष्ट्र का महत्व स्वतन्त्र रूप में बढ़ता गया, और उसके कार्य जग को आकर्षित कर सके तो चाहे वह हमारी ग्रामीण भाषा ही में क्यों न हो उसकी शक्ति और सत्ता को मानने के लिए विश्व को विवश होना पड़ेगा। दूसरों को हमारे राष्ट्र की भाषा सीखने समझने को बाध्य बनना पड़ेगा। अंग्रेजी को गौरव के गिरी पर चढ़ा कर हमें अपनी राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा को नीचे नहीं गिराना है। मुन्शीजी के उपदेश का महत्व अब समाप्त हो चुका है। देश में जब तक उनके जैसे अंग्रेजी के भक्तों का अल्पमत महत्व प्राप्त किए हुए है, उतना समय ही उनके विचार-विहार का है। उस अल्पमत की अवधि के साथ ही अंग्रेजी का रहा-सहा प्रभाव भी इस राष्ट्र से विलीन हो जाएगा। और वे अपनी इस पैतृक-निधि (अंग्रेजी) को अपने साथ ही समेट कर ले जावेंगे। उसका उत्तरदायित्व स्वीकार करने को भी शायद कोई सपात्र (?) सुलभ न होगा।

साधु समाज का शासन में सहयोग!

विगत चैत्र (२०१०) के विक्रम में हमने संपादकी में पृ० १५ पर एक टिप्पणि—"साधुसमाज क सहयोग भी लीजिये।" लिखी थी इसमें बतलाया था कि देश में साधुओं की बडी संख्या है उनमें अनेक जन विरक्त विद्वान विवेक शील, प्रभाव शाली पुरुष हैं। उनके अनेक संस्थान हैं, साधन हैं समाज में उनके अनुकरणशील भावुक जनों कीबडी संख्याभी हैं। सरकार को चाहिये कि उनका स्नेह-सहयोग प्राप्त कर समाजोपयोगी कार्य में उनका साथ ले। शासन यदि आलोचना और उपेक्षा वृत्ति छोड इन उदार निस्पृह संयम शील एवं सेवाभावी साधुओं का सहयोग साध्य करे तो शासन की अनेक समस्याएँ जो श्रम–और सम्पत्ति के सहाय से सुलभ होती हैं, वे साधु-स्नेह से सहज सुविधा से सम्पन्न होसकती है। यों भी देश के विभिन्न भागों में साधुओं के हजारों आश्रम हैं। वहां उनके द्वारा उपदेश होता रहता है। सम्पन्न साधुओं के अनेक ज्ञान-प्रचार-संस्थाएँ–क्षेत्र आदि भी हैं।

साधु-जन अपने अपने प्रभाव-क्षेत्र में समाज से सहयोग लेकर ज्ञान केन्द्रों का संचालन सुलभ करने लगे। तो सहज ही शतशः शिक्षा-संस्थाएँ सुविधा से चलने लगें। आज गोस्वामी गणेशदत्तजी, स्वामी गंगेश्वरानंदजी, विद्यानंदजी, कृष्णानंदजी आदि की अनेक संस्थाएँ ज्ञान-केन्द्रों का संचालन करती हैं। यदि शासन उन्हें अपनी योजना के अनुरूप चलाने के लिये सहयोगी बना सकें, और सहायक बन सकें तो शासन की शक्ति भी बच सकती है, और सहज साध्य भी हो सकती है। अनेक उदाहरण, और इतिहास की साक्ष्य है कि साधुओं के सुधी समाज ने शासन के अनेक कार्यों में; सशस्त्र सैनिक सहयोग के द्वारा भी समय-समय पर सम्पूर्ण सहयोग दिया है, और कोई कामना नहीं की है। उनके प्रति आदर-भावना का ही प्रतिफल शासन को सुलभ होता रहा है।

यह भिन्न बात है कि शासन ने उनके संस्थानों की सुरक्षा की है, उन्हें सन्मान और सुविधाएँ प्रदान की हैं। यही कारण है कि यह साधु-संस्था संतुष्ट रही, स्थिर रही, और समाज से समरस रही। आज हमने इनके प्रभाव की व्यापकता का ठीक अंदाज नहीं लगाया। उनकी संस्था में घुसे हुए विकारों का स्वरूप समझ कर सारे समाज की उपेक्षा और आलोचना की।

फलतः साधु समाज क्षुब्ध बना, और वह शासन से विमुख बन अपने अनुकरण कर्ता समाज में आलोचक बन बैठा। समाज के भावुक-वर्ग से उसका निकट सहयोग होने के कारण शासन के प्रति उसकी आलोचना अधिक निराशा, अविश्वास और उपेक्षा की उत्पादक बन शासन के लिये बाधक ही बनती गई है। साधु-समाज में विकार नहीं है, यह नहीं समझते, उस विरक्त-निस्पृह त्यागी समाज की प्रभाव-प्रतिष्ठा को देखकर धूर्त-कुटिलों ने भी उसमें समावेश पालिया, परन्तु समाज उनको पहचान लेने की क्षमता रखता है। जिस प्रकार कांग्रेस के त्याग-तप-निस्पृह-निष्ठावान को पहचान कर आदर करता है, और उसमें प्रविष्ट अधिकांश अवसरवादियों को भी। जिस प्रकार इस महान् संस्था को स्वार्थियों की टोली ने कलुषित किया है, उसी प्रकार साधु-समाज को भी। किन्तु साधु-समाज का स्वार्थ सीमित है। उसे अधिक अनर्थ करने का अवसर उस तरह उपलब्ध नहीं होता, जिस प्रकार शासन और सत्ता के द्वारा स्वार्थ, और अनर्थ संभव होता है। किन्तु इतने पर भी कांग्रेस जैसी महती संस्था को नष्ट नहीं किया जासकता। उसके निर्मल बनाने के उपायों का गंभीरता से विचार करना आवश्यक है, उसी प्रकार साधु-समाज की स्थिति है। कांग्रेस की वर्तमान विकृत स्थिति को समाज पर थोपा जाता है, शासन के कारण बाध्य बनाया जाता हो, पर साधुओं का भार समाज स्वयं सादर आस्था से उठाता है। इस अंतर का अर्थ समझा जाना आवश्यक है। शासन की अज्ञात उपेक्षा से, साधु-समाज का समाज में समादर कम नहीं होजाता, इसके विपरीत उनके प्रभाव क्षेत्र में शासन कार्यपथ कठिन, या कंटकाकीर्ण अवश्य होजाता है। इस उपेक्षा; और हानि का अनुमान कर यदि शासन इस समाज का सहयोग साध्य करे तो उसका हित, सफलता विशेष सुलभ हो सकती है। हमने इसीलिये साधु-समाज के सहयोग प्राप्त करने के लिए ठीक ११ मास पूर्व विक्रम द्वारा शासन को संकेत किया था। प्रयाग के कुम्भ-महा-पर्व के प्रसंग पर संभवतः शासन के अनेक विशिष्ट-व्यक्तियों ने, (स्वतः प्रधानामात्य ने भी) इस साधुओं के प्रचण्ड प्रभाव को प्रत्यक्ष परखा होगा। चालीस लाख की भीड़ में उनके प्रति असाधारण आस्था का अनुभव किया होगा। यही कारण है कि भारत सरकार शायद यह विचार करने को विवश बन रही है कि राष्ट्र-निर्माणकारी-कार्यों में इस प्रचण्ड शक्ति का कैसे उपयोग प्राप्त किया जाए। जिस प्रकार नदी की प्रचण्ड धारा को बाँधकर समाजोपयोगी सिंचन, और विद्युत-शक्ति ली जासकती है, उसी प्रकार इस विशाल चेतन समुदाय का सहयोग भी लिया जाए, परन्तु जहां नदी के बाँधों में श्रम-सम्पत्ति और सहयोग की आवश्यकता है, वहां साधु-समाज का सहयोग केवल स्नेह-सद्भाव और समादर

से ही सुलभ हो सकता है। सुना है मध्य-प्रदेश के सन्त तुकड़ोजी के साथ राष्ट्रपति ने इस विषय में चर्चा की है। निकट भविष्य में (मार्च-अप्रेल में) साधु-समाज के प्रमुख प्रतिनिधियों की एक आध्यात्मिक परिषद् का आयोजन भी किया जावे। स्वयं राष्ट्रपति इस परिषद् का शुभारंभ करें। यह विचार स्वागत योग्य है। साधु-समाज के प्रज्ञा चक्षु किन्तु प्रभाव और प्रतिभाशाली विद्वान उदार मना मण्डलेश्वर श्री गंगेश्वरानंदजी महाराज, और श्री सर्वानदजी के सहयोग से शासन लाभ ले तो हमें आशा है यह प्रचण्ड शक्ति राष्ट्र के लिये बहुत बड़ा हितसाध्य करने में समर्थ बन सकती है। शासन की इस सद्बुद्धि-प्रेरणा के लिये हम बधाई देते हैं।

ईमानदारी का दीवाला !

स्वतन्त्रता के बाद भारत में जहाँ जमीन ने अन्न की उपज में कमी की, उर्वरा-भूमि ने उजाड़ उद्घोषित किया, वहां नैतिक-पतन, और भ्रष्टाचार की भीषण बाढ़ आ गई है। जिस देश में अनैतिकता, और बेईमानी 'पाप' की परिभाषा में परिगणित होती थी, लोग इससे ईश्वर का भय मानते थे, अपने संस्कार, और कुलीनता के विरुद्ध समझते थे, वहाँ आज इस देश में ईमानदारों की खोज आवश्यक हो गई है। नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह गया है। ऐसी अवस्था में भ्रष्टाचार अपना भीषण स्वरूप लेले तो विस्मय नहीं। कोई भी विभाग शायद ही इससे अछूता रहा हो जहाँ बहती भ्रष्टाचार वाहिनी में अवगाहन करने का पुण्य (?) मलिन मानव ने न कमाया हो। अपने हाथों को दग्ध न किया हो। कुछ विभाग तो उनमें नम्बर मार ले गये हैं। वास्तविक व्यापारी का व्यापार चाहे चौपट हो गया हो, पर वह सरकारी ऑफिसों में अधिकारी और क्लर्कों के हाथों में जाकर ब्लेक का रूप लेकर बुरी तरह बढ़ गया है। मूल व्यापारी इन कर्मचारियों का केवल दलाल-मात्र रह गया है। न्यायालय के विषय में कुछ ईमानदार, संस्कार शील न्यायदाता अधिकारियों को छोड़ न्याय की तुला उसी ओर झुकती है, जहाँ वजन की वस्तु तौल बढ़ा रही हो, फिर भी उसमें समय की सीमा नहीं, अदालत की खाक छानते हुए दिवाला पिट जावे पीढ़ियां गुजर जाए, और-पूजा पत्री में प्रतिष्ठा और पूंजी ही पानी क्यों न बन जावे। अदालतें सत्यको समझते हुए भी कागज की कसौटी पर उसे परखती हैं, उस कसौटी पर न्याय के दल्लालों की दया खरी खोटी की रेखा बनाती बिगाड़ती रहती है, यदि पैसा पनाह न मांग गया हो तो परिणाम पलटने में उसकी ताकत न्यायको तमाशा बनाकर बाजार में अपना बल बतला देती है। जिस देश के न्यायालयों की (अपवाद छोड़कर) यह दुर्दशा हो वहाँ इस नाटक के पात्र बनने की अपेक्षा दूर रहना ही श्रेयस्कर होगा। किन्तु विवशता अन्धेरे में भी प्रकाश की रेखा खोजने को मजबूर बना देती है। न्यायालयों के विषय में जनता की धारणा स्पष्ट है। उससे समाधान नहीं, किन्तु दुर्भाग्यवश वही न्याय का माध्यम है। जनता की धारणा को शासक उपेक्षा से देखते हैं। क्योंकि उस ढाँचे-ढर्रे को बदलने-बचने की क्षमता नहीं पाते। पर न्यायालयों की नैतिकता (?) के पटियाला संघ के प्रमुख न्यायाधीश ने जो प्रमाण प प्रदान किया है, वह इतना अधिक महत्व रखता है कि उसके लिए किसी अन्य आलोचना की अपेक्षा नहीं।

कपूरथला की बार असोसियेशन के द्वारा हाल ही में पटियाला संघ के प्रमुख न्यायाधीश को मान पत्र अर्पित किया गया था, उसका उत्तर देते हुए मुख्य न्यायाधीश ने कहा "अदालतों के मजिस्ट्रेटों में ६५ प्रतिशत तो निःसंदेह सुदक्ष, और दृढ़ चरित्र वाले हैं। परन्तु उनके अधीन काम करने वाले कर्मचारी पूर्णतः भ्रष्ट हैं। मैं उनसे संतुष्ट नहीं उनमें ऐसा व्यक्ति शायद एक भी नहीं जिसमें ईमान का गुण विद्यमान हो।"

—(हिन्दुस्तान)

पटियाला संघ के प्रमुख न्यायाधीश का अपने प्रदेश के विषय में जो स्पष्ट अभिमत है, वह न्यूनाधिक रूप से अन्य प्रदेशों पर भी घटित होता है। परन्तु जानते हुए भी इस प्रकार निर्भीक स्पष्ट आलोचना कहीं सुनने में नहीं आई। जिस प्रदेश में मुख्य न्यायाधीश के मतानुरूप एक भी ईमानदार कर्मचारी न्यायालय में न हो, वहाँ न्याय के नाटक का कैसा वीभत्स प्रदर्शन होता होगा, यह कल्पना करने का है

विषय है। ९५ प्रतिशत दक्ष न्यायाधीशों के रहते हुए भी कर्मचारी की ईमानदारी के अभाव में न्याय की आशा रखना ही निरर्थक है। जिस प्रदेश का यह हाल हो वहाँ न्याय का नाटक, दिवालिये के साथ दौलत का दिन में व्यापार बन गया है।

कुम्भ का करुण-काण्ड, और कृपलानी का कटाक्ष !

कुंभ के करुणान्त के कारण करोड़ों के कोमल अन्तःकरण हिलगए हैं, किसी ने सरकार पर प्रहार किया है, किसी ने व्यवस्था पर, किसी ने विशिष्ट व्यक्तियों के इन्तजाम पर तो किसी ने उन नांगा साधुओं पर। इस प्रकार केन्द्रसे लेकर प्रांतीय सभा गृहों ने अपना क्रोध प्रकट किया है, अनेक पत्रों में ऐसे महोत्सव-पर्वों की भर्त्सना की है। धार्मिक भावना को धिक्कारा है, और बन्द कर देने की भी सहज सलाह दे डाली है, यह सब आवेशवश ही हुआ प्रतीत होता है। उसमें विचार विवेचन का क्रोध में कम ही अवसर मिला है। अन्यथा जो लोग केवल कुंभ के धार्मिक मेले की आलोचना कर इतने बड़े जन समूह के आने पर रोक लगाने की राह बतलाते हैं, वे स्वयं कांग्रेस के विशाल अधिवेशनों पर लाखों लगाकर अनेक वाहन व्यवहारों की सुविधा देकर अपने प्रचार के लिए जनता को आकर्षित आमंत्रित करते हैं। अनेक सभा, सम्मेलन विशाल जन समूह में सम्पन्न होने की कामना करते हैं। घुड दौड़, क्रिकेट टीम के शौकीनों की भी संख्या कम नहीं होती, तब न जाने कितनी सदियों पुरानी धार्मिक परम्परा के पर्वों पर जुड़ने वाली जनता से ही नाराजी क्यों होना चाहिये ? कुम्भ तो असाधारण घटना है, जब जीवन मरण का मोह छोड़ धर्म-भावना से अभिभूत हो लाखों लोग अनिमंत्रित आकर्षित होते हैं धर्म और आध्यात्मिक भावना की प्रेरणा उन्हें तीर्थ और साधु संगम के लिए आव्हान देती है, प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, नासिक के इन महापर्वों में कईबार रोग-उपद्रवों ने प्रताडित किया है फिर भी उनकी परम्परा प्रभावित किये हुए रहेगी। क्योंकि इसके पीछे भारत की पवित्र परम्परा, संस्कार, धर्म, अध्यात्म भावना है। हमें यह जानकर खेद हुआ कि कृपलानी जैसे कर्मठ पुरुष ने इन धार्मिक परम्पराओं की कठोर आलोचना की उन्होंने कहा "कांग्रेस ऐसी पौराणिक एवं प्राचीन धार्मिक परम्पराओं को सजीवन कर जनता पर अपनी ढीली पड़ी पकड़ को मजबूत बनाना चाहती है।" संभवतः कांग्रेस की पकड़ जनता पर से अब ढीली पड़ी होगी, किन्तु ये धार्मिक महा पर्व राजनीतिक पकड़ को लेकर पनपते नहीं है। कांग्रेस ने अपने शासन काल में आने के कारण ही उसकी व्यवस्था का उत्तरदायित्व अनुभव किया होगा, जो कांग्रेस अनेक उर्स, जियारतों के लिए आनेवाली जनता को सहूलियत देती है, उसका यह कर्तव्य था कि विश्व की श्रेष्ठ इस सबसे बड़ी यात्रा की व्यवस्था करे, उसमें उसकी पकड़ का प्रश्न महत्व नहीं रखता, पर हमें तो कृपलानी जी के इस कटाक्ष पर आश्चर्य ही हुआ कि "गंगा स्नान करने से पाप का क्षालन हो जाता है, इस पुराने बहम को प्रोत्साहन देकर कांग्रेस ने देश को मध्य युग की ओर ले जाने का प्रयास किया है।" कृपलानी जी कांग्रेस पर लांछन लगाने के अवसर ढूंढ लेते हैं, पर यहां आक्षेप लगाते समय वह भूल जाते हैं कि यह मेला किसी कांग्रेस ने नहीं बुलवाया था कि उसके प्रोत्साहन का प्रश्न प्रस्तुत हो। गंगा की पाप-नाशन भावना पर जो प्रहार कृपलानी जी ने किया है वह उनकी ऊंचाई के अनुरूप अवश्य ही नहीं था। इस पर संसद के उप प्रधान ने उन्हें रोकते हुए कहा भी कि सदस्य को धार्मिक बातों पर टीका-प्रहार कर लाखों लोगों की भावना को नहीं दुखोना चाहिए और, लोक सभा के गौरव के अनुरूप न समझ इन आलोचनाओं को उन्होंने उस दिन की कार्यवाही से काट भी दिया।

कृपलानी जी जैसे नेता की यह निन्दा ही पर्याप्त हो गई है। तथापि "भूतकाल में ब्रिटिश शासकों के प्रति जो साधु वफादारी बतलाते रहे हैं, उन्होंने कांग्रेस के प्रति वफादारी बतलाई है," कृपलानी जी ने इस आक्षेप में जो अविचार पूर्वक साधु समाज की निन्दा की है वह वास्तव में दुःख की बात है। राजनीति में अनेक पार्टियां भूतकाल में ब्रिटिशों के साथ रही है, और इलेक्शन के अवसर साधने के लिए कृपलानी जी को शायद उनमें से कुछ के साथ हाथ मिलाना पड़ा है। परन्तु साधुओं को किसी भी सत्ताधारी से क्या स्वार्थ और सम्बन्ध ? साधुसमाज में कुछ लोग स्वार्थवश फंसकर

सत्ता से सौदा पटाने वाले हो सकते हैं, जैसे कांग्रेस, या कृपलानी जी के दल में भी फंस गए होंगे। उन कतिपय लोगों से साधु समाज, या सारी कांग्रेस और उसके नि स्वार्थ सूत्रधार कलंकित नहीं माने जा सकते। ऐसी स्थिति में सारे साधु समाज को, ब्रिटिश के वफादार बतलाकर कृपलानी जी ने अपनी विवेक शीलता का परिचय नहीं दिया। सारी आलोचना ही उनके असंयम असंतोष, और पक्ष पीडित दुराग्रह वश हीन हो गई, वे कुंभ की करुण घटना को लेकर कांग्रेस धर्म, गंगा, साधु, और परम्परा तक पर अनावश्यक अवांछनीय प्रहार कर गए। जो कृपलानी जी के गौरव के अनुरूप तो नहीं ही कही जा सकती, बल्कि उनके गौरव को गिराने में सहायक हो सकती है।

पंडितजी की पंडिता पर नाराजी !

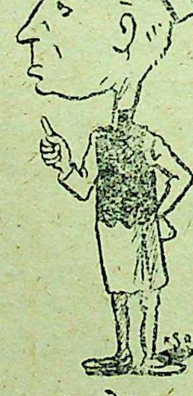

प्रधानमन्त्री पं० नेहरूजी को ज्योतिषियों पर नाराज होने की सनक सवार हो गई है। कारण हो या न हो, वे अनावश्यक आक्रमण कर-तर्कहीन बातें बोल जाते हैं। उनके भाषणों में आई ऐसी आलोचनाओंका हमने बाहर और 'विक्रम' में भी उत्तर देने का-यथासम्भव प्रयास किया है। हाल ही की बात है--भारतीय संसद में 'कुम्भ काण्ड' पर कठोर आलोचना हुई, कृपलानीजी ने तीखे प्रहार किएपंडितजी उनका उत्तर दे रहे थे कि उनको ज्योतिषियों का स्मरण हो आया। कृपलानीजी ने काँग्रेस पर अन्ध-श्रद्धा को बढ़ावा देने का आरोप लगाया था। पण्डितजी कहते हैं--'गंगा में पाप धोने के लिए जाने की भावना को प्रोत्साहन न दिया जावे। मैं किसी की भावना को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता,' परन्तु धार्मिक जनों और ज्योतिषियों की भावना को उसी क्षण ठेस पहुँचाते हुए आपने कहा—'लेकिन इतना अवश्य कहूंगा कि ज्योतिषी गलत रास्ते पर ले जाने वाले लोग होते हैं। वे देश को हानि पहुंचाते हैं।' पण्डितजी के प्रमाणपत्र की प्रामाणिकता को हम नहीं समझ सके हैं, क्या ज्योतिषियों ने अपने पंचागों में कुम्भ के ग्रह-योगों, पर्व के महत्व को बतला कर देश को उतनी हानि पहुँचाई है जितनी सरकार के प्रचार विभाग ने अपनी पचास लाख मानवों की उत्कृष्ट व्यवस्था का निरन्तर ढिंढोरा पीटकर, उचित उत्तरदायित्व का निर्वाह न करके की है ? ज्योतिषी हर कुम्भ के पर्व प्रसंगों पर उचित शास्त्रीय कारणों को केवल पंचाग में प्रकाशित करता आया है, वह सदियों से करता आया है। क्या कारण है कि और समय, या पिछले वर्षों में ऐसा मानव समूह प्रयाग में नहीं उमड़ा जितना सरकारी आकर्षण के कारण आकर्षित होकर पहुंचा है। ज्योतिषी के कारण ही वह पीछे भी कुम्भ पर जाता रहा है, जबकि ऐसी भीषण जन-हानि नहीं हुई और इस बार ही हुई है। यदि ज्योतिषी के कारण ही जिनके पास सरकार की तरह प्रचार के प्रबलसाधन नहीं है—जन प्रवाह उमड़ पड़ता है तो स्वयं पण्डितजी, ज्योतिषी के असाधारण प्रभाव को स्वीकार करलेते हैं। परन्तु हमें आश्चर्य होता है कि पण्डितजी पंतजी आदि प्रमुख लोग भी पण्डितों के बहकाए में आकर आखिर वहाँ क्यों पहुंच जाते हैं ? पण्डितजी कहते हैं कि वे ऐसे अवसरों पर (जो बकौल पण्डितजी के पण्डितों के कारण प्राप्त हो जाते हैं) बहुत अधिक लोक एकत्र होते हैं। उन्हें देखने, तथा मिलने के लिए जाता हूं।" पण्डितजी के इस मिलन की उत्सुकता को शमन करने के लिए ही सही पण्डित लोग यदि ग्रह योग बतला कर लोगों की भीड़ जुड़ा देने की सामर्थ्य रखते हैं तो उसमें क्या बुराई कर देते हैं ? पण्डिजी के समक्ष ऐसे अवसर पर "अन्ध विश्वास नहीं लेकिन सारा इतिहास मेरे सामने आजाता है," तो पण्डितजी यह अविश्वास औरों के विषय में कैसे समझ लेते हैं कि—उनके सामने "सारा इतिहास" न आकर केवल 'अन्धविश्वास" ही उपस्थित होता होगा ! जिस पावन प्रसंग पर, पुरुषों के प्रचण्ड समागम के समय एक परम्परा में सारा इतिहास सामने आ जाए, उस योग का अपने पञ्चाङ्गों में केवल संकेत कर देना ही 'देश को हानि पहुँचाने का कारण बन सकता है, यह पण्डितजी का तर्क कितना महत्व रख सकता है ? सरकार अपनी अक्षमता से ऐसे प्रसंग पर जो 'नरमेध' निर्माण कर गई, उसका अपराध पंडितों के सिर पर थोप कर उन्हें 'गलत रास्ते पर

जाने वाले' बतला कर अपने अपराध को भले ही दूसरे के सिर पर डालने का प्रयास करे; किन्तु ज्योतिषी आज से नहीं, लम्बी परम्परा से जनता को सही मार्ग प्रदर्शन देता आया है और ऐसी असफलता उसके पल्ले नहीं पड़ी। नवीन शासन को 'सिर मुँडाते ही ओले पड़ गए' इसके लिए वह बेचारा क्या करे? वास्तव में ज्योतिषी ने पंचांग में कुम्भ के योगों की एक कोने में सूचना प्रकाशित कर जनता को गलत मार्ग पर नहीं उतारा है, जितना सक्षम, साधन सैन्य-सम्पत्ति सुव्यवस्था समन्वित सरकार ने प्रचार विभाग की पूरी पूंजी फैलाकर फुसला कर जनता को प्रयाग के मार्ग पर ही नहीं, मौत के मार्ग पर ही पहुँचाने का पुण्य (!) संचित किया है। जनता स्वयं विवेक करे कि गलत मार्ग पर ले जाने वाला साधन हीन, शासन हीन ज्योतिषी है, या व्यवस्था का धुंआधार ढिंढोरा पीट कर प्रयाग की ओर अनावश्यक आकर्षित कर आफत उतारने वाली साधन सम्पन्न-समर्थ सरकार! अंधःश्रद्धा की ओर उन्मुख बना देने के लिए केवल कोने में ग्रह योगों का इशारा-मात्र कर देना ही पर्याप्त होता है तो पंडितजी समझ लें कि बिना विशेष प्रचार के भी पंडित लोग लाखों लोगों को इशारे से एकत्र कर ले सकते हैं; परन्तु बात इससे ठीक विपरीत है, वस्तुतः सरकार ने स्वयं 'ज्योतिषी' का प्रतिनिधि-बन कर मेले के पूर्व ही पचास लाख लोगों के आने की भविष्यवाणी भाषित करदी थी और इतना ही नहीं, स्वयं सरकार ने (जी हाँ, ज्योतिषी ने नहीं) एक 'प्रयाग-दर्शन' पुस्तक इस प्रसंग के लिए विशेष रूप से प्रकाशित की थी, जिसमें "१४४ वर्ष में एक बार आने वाले इस कुम्भ पर स्नान के सात पर्वों का प्रसंग आने का खुल कर खूब प्रचार किया था। पंडितजी ज्योतिषी पर नाराज होने के पूर्व, अपने शासन के प्रचार-विभाग की 'गलत राह' बतलाने वाली प्रवृत्ति की परख लेते तो सहज समझ में आजाता कि जो काम किसी पंडित के पंचांग में बतलाए हुए ग्रहयोगों के संकेत ने उतना नहीं किया, वह प्रचण्ड-प्रचार 'प्रयाग-दर्शन' के सात पर्वों की पुण्य लूटने की बात ने बतंगड़ बना कर जनता को प्रेरित किया है। काश पंडितजी इस प्रचार पर प्रकोप करते तो उनके पुण्य प्रकोप का औचित्य भी होता; किन्तु इन बातों को उपेक्षित कर ज्योतिषी पर अकारण कोप करना, उन्हें, अवांछित एवं देश के लिए 'हानि कारक' कहने तक का दुस्साहस कर डालना, उनकी असंतुलित असंयमित-विवेक-भावना और बहक का ही प्रमाण-परिचायक हो जाता है। जिस प्रचार विभाग ने भावुक जनता को आकर्षित करने के लिए उचित व्यवस्था का निरंतर प्रचुर-प्रचार किया (और जिसे वह आज अंधश्रद्धा घोषित करती है) तथा अंधःश्रद्धा के लिए जनता को प्रेरित, उत्साहित किया, इस पर पर्दा डालने के लिए पंडितजी ज्योतिषी पर 'गलत मार्ग पर ले जाने' का आरोप लगाएँ तो यह अनावश्यक, अविचार और अविवेक-पूर्ण भी है। ज्योतिषियों ने यदि 'गलत मार्ग' पर जनता को चलाने का काम किया होता, और 'देश को हानि पहुँचाई' होती तो आज से अनेक सदियों पूर्व देश-द्रोहियों की काली-सूची में अंकित बन समाप्त हो गये होते। उसका अस्तित्व समाज पर चले आने वाले उसके प्रभाव और प्रतिष्ठा और सही मार्ग दर्शन ने ही उसे अनेक-इतिहास विश्रुत शासनों का पथ-प्रदर्शक, समाज का हितैषी माना है। पंडितजी उस विज्ञान से अज्ञान रखकर, भले ही समय-असमय आवेश-वश अनुचित आलोचना कर बैठे और भावना के साथ एक ऋषि प्रणीत विज्ञान की अवहेलना कर दें; किन्तु यह उनकी अनाधिकार चेष्टा ही है। कुम्भ कांड को लेकर पंडितजी की यह अनावश्यक आलोचना तो केवल 'अपनी बला दूसरों पर' डाल देने जैसी ही निरर्थक है। जब कि वे स्वयं और अनेक विशिष्ट-व्यक्ति उसी पर्व पर किसी भी कारण क्यों न सही पहुँच जाते हैं और उस महा पर्व के महत्व में योग दान देते हैं।

पंडितजी के प्रति हम अत्यंत आदर रखते हुए यह कहना चाहते हैं कि पंडितों के प्रति इस तरह निरर्थक, अनावश्यक और अज्ञान पूर्ण आक्रमण तथ्य और तर्क हीन तो है ही, पर स्वयं पंडितजी की ऊँचाई के अनुरूप भी नहीं है। भारत जैसे महान् राष्ट्र के नायक के मुँह से, भारतीय आचार्यों द्वारा प्रथित-प्रणीत एक विशिष्ट विज्ञान के विषय में ऐसी उत्तरदायित्व हीन आलोचना होना सर्वथा अनुचित एवं अवांछनीय है।

काश्मीर विलयन, और उसके पश्चात् !

काश्मीर की संविधान-सभा ने यह निर्णय बडे साहस के साथ कर दिया कि काश्मीर भारत का ही अंग है, और भारत का ही रहेगा। जिस समय अमेरिका पाकिस्तान को सैनिक बल से पुष्ट कर रहा हो, और इस बल से सम्पन्न होजाने पर काश्मीर की समस्या सहज होजाने की पाक-प्रधान कल्पना कर रहे हों, उस समय काश्मीर की संविधान-सभा का काश्मीर को भारत में विलीन कर देने का निर्णय वास्तव में पाकिस्तान को साहसपूर्ण सीधा सक्रिय उत्तर ही है। इस निर्णय की प्रतिक्रिया में पाकिस्तान के प्रधानों के तवेले में तूफान आगया है । प्रधान, और विदेश मंत्री के जोशीले बयान बाहर निकल पडे हैं, और पंडित जी से अनुरोध किया गया है कि वे काश्मीर के इस निर्णय को स्वीकार न करें। किंतु पंडित जी ने पाक-अमेरिकन सैनिक समझौते के विरुद्ध जो बल बतलाया है, और विरोधी स्वर से एशिया के राष्ट्रों को चेतना प्रदान की है, उसी तरह पंडित जी ने काश्मीर के विलयन विचार को काश्मीरी जनता का अधिकार बतलाकर पाक-प्रार्थना को ठुकरा दिया है यह सर्वथा उचित ही है, परन्तु हम यह नहीं समझते कि जब काश्मीर की जन-प्रतिनिधि संस्था ने काश्मीर को भारत में मिलाना स्वीकार कर अपनी शासकीय मुहर उस पर अंकित करदी, तब वहाँ अब जनमत लेने का सवाल ही कब उठ सकता है ? वह बचन तो काश्मीरी जनता ने अपने सर्वानुमत निर्णय से पूर्ण कर दिया है, ऐसी अवस्था में काश्मीर के जनमत लेने का प्रश्न ही क्यों उठना चाहिए। अबतो संयुक्त राष्ट्र मण्डल से भी काश्मीर का प्रश्न उठा लेना चाहिए, और पाकिस्तान ने जिस काश्मीरी भू-भाग पर अधिकार जमा रखा है उसे वापिस लेने का प्रयास आरंभ होना चाहिए। संविधान सभा के स्पष्ट घोषित कर देने के पश्चात् उस भूमि पर पाकिस्तान का अनधिकार प्रवेश अवांछनीय है। किन्तु पाकिस्तान जो कि काश्मीर पर आक्रमण कर अनावश्यक दावेदार बन बैठा है, यह सहज या सरल उस खण्ड की पक छोडेगा नहीं, जो अपने अधिकार में लिए बैठा है चूंकि वह प्रदेश ही अन्तर-राष्ट्रीय महत्व रखता है इसलिए सिक्यूरिटी कौंसिल उस विवाद को सुलझा में कहाँ तक निष्पक्ष निर्लिप्त रहकर विचार करती है, यह विचारणीय है। भारत के लिए यह प्रश्न महत्व पूर्ण, एवं उलझन उत्पन्न करने वाला बना हुआ है। देखना है, अब कौनसा नया मार्ग निकाला जाता है पाक-अमेरिकन, सैनिक समझौते की संभावना ने य और भी कठिन बना दिया है, मतभेद की दुलं दीवारें बीच में खडी करदी हैं।

कोटों के कबीलों में कुहराम !

लगभग डेढ़सो वर्ष की पराधीनता में हमारा दे अपनी राष्ट्रीय-वेष भूषा को विस्मृत कर विदेशी-वे भूषा का भक्त बन गया। अधिकारी और कर्मचा विदेशी–वेष में अपने महत्व अनुभव करते, देशी से उनका मन विरक्ती करने लगा, हमारी स्वतन्त्रता इन विचारों का प्रभाव अभी बना हुआ है। को कालर-टाई-पतलून को वे प्रतिष्ठा का प्रतीक बनाए है, इधर बुश शर्ट ने भी कम शान नहीं बनाई है, अधिकारियों पर, आफिसरों पर बुरी तरह अ करता चला गया, ऐसे समय पण्डितजी ने एक 'प पत्र' निकाल कर अधिकारियों पर, उनके सुन्दर-'क के कोटों पर एकदम आफत ही उतार दी है। बेच 'टाई' को भी बिदाई, देने का आदेश दे दिया है। इस आदेश से देश भर के कोटों के कबीलों में सह कुहराम मच गया है। अनेक करामाती 'कट' के काले साहबों के कण्ठ से लिपट कर करुणा का को हल मचाने लगे हैं, दर्जी के दौलत खाने का दीवा पिटने का प्रसंग आ गया है। टाई-बाई, जो अ सुन्दरता के सलोने-पन से कोटों की कला में कमनी ला देती थीं, काले–कलूटों के कण्ठ में पड़ पोजी बढाती रहती थी। पतलूनों के पट्टों की जगह से मनाह मांगने लगी है। पंडितजी के एक परिपत्र-

से कोट के कुटुम्ब में कलह उत्पन्न हो गया है। कोटों की प्यारी-पत्नि पतलून के पट्टे ढीले हो गए हैं, वह कटे-कोटों को तलाक देकर पजामें से 'कोर्टशिप' करने के प्रयत्न में है। उधर मुक्त-वायु से विहार करने वाला पजामा भी सुकड़ कर अपने प्रेमियों के पैरों से चिपकता जा रहा है। उसे शक सवार हो गया है कि कहीं पतलून की तरह उसे भी पराया न बना दिया जाय! इधर बटन-बहनें अवश्य उत्साह अनुभव करने लगी हैं। जिन कोटों ने तिकडम करके तेरह की जगह तीन बटनों को त्रिशंकु की तरह बीच में लटका रखा था, और पराई टाई-बाई ने अपनी सगी बटन-बहनों को कोट-भाई के कण्ठ के निकट से निकाल कर बाहर कर दिया था, उन्हें अब यह अवसर सुलभ हो जाएगा कि भैया-कोट के पूरे कलेवर पर विशेषाधिकार करले। कोट के द्वारा सौ टाई के तलाक दे देने पर ही फिर भाई के हृदय पर बटन-बहनों को अधिकार प्राप्त हुआ है। निश्चय ही वे अपने को स्नेह-सूत्र में पिरोकर भाई के हृदय पर किसी तितली के अधिकार को अब नहीं जमाने देंगी। कोट को भी अपने पर की गई कैंचीकी कठोर काट-छांट पर कम कष्ट नहीं हुआ है। किन्तु टाई, और उसके मफलर भाई ने सनहर कर पराधीन बना जैसा नाच नचाया, नचना पड़ा। अपनी सगी बहन बटन को भी निम्नस्तर पर स्थान देने को बाध्य होना पड़ा था। भला हो पंडितजी के नये परिपत्र का जिसने परायों से पल्ला छुड़बाकर काट-छांट की जिन्दगी से बचा लिया। आज जब कोटों को यह स्मरण हो आता है कि सौन्दर्य समाराधना के नाम पर नासमझी में फेशन के फेर में डाल कर किस कुशलता से उनके कण्ठ काटे गए, और उन्हें इंग्लिश-कट, अमेरिकन कट, फ्रेंच कट कहकर उनके परिवार को चौपट बनाया गया, तथा अपनी बटन-बहनों को बुरी तरह हृदय से दूर छटका लटका दिया गया, तो उनका हृदय उस कठोर काट-क्रिया की स्मृति से सहसा सिहर उठता है। इसी प्रकार कोट को इस बात से भी कम कष्ट नहीं कि अपना अंग भंग करवा कर बुश शर्ट ने भी उसके कुल में प्रवेश करने का प्रपंच रच रखा है। परन्तु यह जानकर समाधान होता है कि उसके प्रयत्न को जल्दी से पहचान लिया गया है। अवश्य ही कुशल कारीगरी से कटे कण्ठों के कोटों को अबतक मान-सन्मान-प्रतिष्ठा दीगई थी उनका कष्ट अकथनीय बन गया है, इन्होंने डेढ़ सदी तक सामन्ती सुख का उपभोग किया है। जनता के वर्ग विशेष को अपने सौन्दर्य-वैभव से अलंकृत-आवृत बनाया है। जिन प्रधानामात्य पंडितजी ने आज सहसा उनको नाराज होकर तिरस्कृत कर डाला है, -लंबे समय तक उनके शरीर की यूरोप से लेकर यहां तक रक्षा की है, शोभा बढ़ाई है। खेद यहीं होता है कि पडितजी ने इनकी पिछली सेवाओं को भी ठुकरा दिया, इन्हें अराष्ट्रीय कहकर अपमानित कर दिया है। आश्चर्य हैं कि जिनको पहन कर पंडितजी ने अपने शरीर की शोभा बढ़ाई थी, और शर्म हटाई थी, आज जमाने ने कैसा पलटा खाया है कि उनको देखने मात्र से अब पंडितजी का सिर शर्मसे झुक जाता है। इंग्लिश-कट के कोट इस पलटती हुई हवा से बुरी तरह परेशान हैं। अपने आश्रय की खोज में आतुर हो उठे हैं। पंडितजी ने क्षणभर की सनक में उसके राष्ट्रीय-महत्व को मसल कर मलिन बना डाला है। वह अपने समूह का संग्रह-संगठन कर साहबों के सदनों में शान रखने में सयत्न रहेगा। राष्ट्रीय पर्व-प्रसंगों पर उसकी पोजीशन गिराकर पंडितजी ने वास्तव में अपने पुराने साथी या सेवक का अपमान कर डाला है।

कौन कह सकता है कि विनोबा जैसे व्यक्ति सभी कपड़े की काठ छांट को किसी रोज 'हिंसा' घोषित कर लंगोटी लगाने के लिए मानव को मजबूर बना डाले? और 'वस्त्रदान' का कोई नया नारा बुलंद करदे तो यह रहा-सहा बंद गले का कोट भी विदाई की बाट पर जाने लगे!

वस्तुतः जिस कमनीय कट के 'कोट' को पंडितजी ने 'अराष्ट्रीय' कह कर अपमानित किया है, वह पंडित-

जी से कहीं अधिक अंतर-राष्ट्रीय महत्व रखता है, वह साम्राज्यवाद के साथ भले ही रहा हो। किन्तु कौनसा ऐसा प्रजातंत्र है; जहाँ उसका यथेष्ट सन्मान नहीं है ? उसपर किसी 'इज्म' का भी असर नहीं सभी दल, सभी धर्म, सभी गुटों पर असर बना हुआ है इसलिए सर्व समन्वय वादी और विश्व-वेष-भूषा में उसका सन्मान सुरक्षित है। वह राजतंत्र-प्रजातत्र; अधिनायकतंत्र, सैनिक तंत्र सभी में समान विश्वास प्राप्त है। जिस बंद गले को पंडितजी ने राष्ट्रीय पोजिशन प्रदान की है, दर असल में वह प्रतिक्रिया वादियों का प्रतीक है। वह 'गुरुडम' के गढ़ में पोषित होता आया है। प्रगतिशील राष्ट्र का वह प्रतीक बने, यह तो उस अंतर-राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त कोट का बड़ा अपमान ही है। पंडितजी ने इसकी परम्परा, और प्रस्तुत प्रतिष्ठा का पर्याप्त विचार नहीं किया, ऐसे ही कारणों से कोटों के कुल में कुहराम छागया है।

स्वागतम् सीमांत गांधी !

भारतीय स्वतंत्रता—संघर्ष के वीर सेनानी खान अब्दुल गफ्फार खांन (सीमांत-गांधी) को लगातार ६ वर्ष की नजर बन्दी के पश्चात् पाकिस्तान ने गत ६ जनवरी को सशर्त रिहा कर दिया है। इस समाचार से भारत, पाकिस्तान और अफगानिस्तान में जिस प्रकार प्रसन्नता प्रकटकी गई है वह स्वाभाविक ही है। खान साहब न केवल भारतीय या पाकिस्तानी नागरिकों के आदर भाजन पुरुष हैं, बल्कि वे मानव जाति के सच्चे सेवक, और साधुमना-मानव हैं। पाक सरकार ने उनके जैसी उदात्त विभूति को ६ साल तक नजर बन्द कर मानव जाति का और स्वयं अपना ही अपमान कि है। पाक सरकार को संभवतः इस समय किसी विवश स्थि में ही उन्हें मुक्त करने को बाध्य बनना पड़ा होगा। या अमेरिका के साथ सैनिक-संधि के विरोधी वातावरण दबाने के लिए इस 'एटमिक बम' को मुक्त वायु में छोड़ दिया है, या फिर खान साहब के स्वास्थ्य के साथ वह लम्बे समय तक खिलवाड़ करना खतरनाक समझने लगी हो जो हो खान साहब को छोड़ कर पाकिस्तान ने सुबुद्धि का प चय दिया है, खेद और असंतोष है तो यही है कि मुक्ति में भी एक शर्त के अनुसार खान सा० पश्चि पाकिस्तान तक ही मुक्त रहेंगे। वे अपने प्रदेश में भी पहुं में असमर्थ बन जाते हैं। इसे मुक्त हृदय की उदारता कहा सकता, पाक की पंकिल प्रथा का प्रमाण ही म जाएगा। अब भी पाक-शासन का मन शुद्ध नहीं है खान सा० अपने प्रदेश में जाकर पाक को पीड़ा सकेंगे।

हमने सुना था कि जब भारत के प्रधान मन्त्री पंडित करांची गए थे, पाक प्रधान का विचार सद्भावना बढ़ा ने लिए सीमांत गांधी को उसी समय मुक्त बना देने का किंतु सीमांत शासन के प्रभावश वे तब वैसा न कर थे, किन्तु पता चलता है कि पंडित जी ने पाक प्रधान उस समय खान सा० के मुक्त कर देने की बात चीत की थी। देर से सही, पर पाक सरकार ने खान सा० जैसे उ पुरुष को बन्धन से मुक्त कर किसी भी कारण क्यों न प्रशंसनीय कार्य किया है।

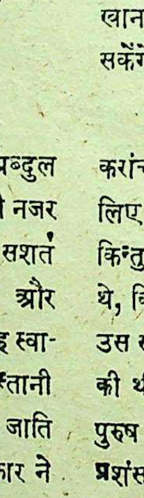

संस्कृति समन्वय

[श्री डॉ. भगवानदासजी]

"संस्कृति-सभ्यता-शिष्टता के लिए आवश्यक है कि सुनिश्चित सद्ज्ञान हो, सद्इच्छा हो, अच्छे लक्ष्यों की शुभकामना हो, धर्म से अर्जित अर्थ से परिष्कृत काम सुख की आकांक्षा हो, और सद्-आचार हो"

"सम्यक् करणं संस्कृतिः" प्रकृति की दी हुई वस्तु को अधिक सुन्दर बनाना, संवारना, सिंगारना, अधिक उपयोगी बनाना यही उसकी संस्कृति है, और बनाने वाले की भी।

मानव संस्कृति दो प्रकार की है, एक व्यष्टि की, व्यक्ति की, दूसरी समष्टि की, समाज की। व्यक्ति और समाज परस्पर सहायक हैं। यदि सब नहीं तो अधिकतर व्यक्ति सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सदाचारी, सात्विक हों, तो समाज दिनों-दिन सब अंगों में उन्नति करेगा; यदि समाज सु-ग्रंथित, सु-संगृहीत, सु-व्यूढ़ हो, तो सब व्यक्तियों को अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार, शिक्षा, रक्षा, भरण-पोषण, जीविका साधक कार्य, और जीविका मिलेगी। व्यक्ति की संस्कृति के दो अंग हैं, एक बाह्य, एक आभ्यंतर। बाह्य तो अन्न-वस्त्र, वेश-भूषा, गृह-आराम, विनोद की सामग्री आदि; आभ्यंतर, चित्त का संस्कार, जिसके तीन अंग, ज्ञानांग, इच्छांग, क्रियांग। बाह्य संस्कृति भी इन्हीं आभ्यंतर अंगों की संस्कृति का अनुसरण करती है। यदि ये तीन सात्विक हैं तो अन्न-वस्त्रादि भी वैसे ही होंगे; यदि राजस-तामस, तो वे भी वैसे। आहार शुद्ध होने से बुद्धि-सत्व शुद्ध होती है; तब स्मृति स्थिर और निःशंक हो जाती है; सब कार्य-कारण-परम्परा विस्पष्ट देख पड़ती है, जिन कारणों से जीव, जन्म जन्मांतर में बहुतेरे शरीरों के बन्धन में पड़ता रहा है; तब, अन्त में, जीव को देह में बांध रखने वाली सब हृदय को वासना-इच्छा रूप ग्रंथियां खुल जाती हैं, और वह जीवात्मा, परमात्मा से अपनी एकता पहिचान कर, उसमें लीन होकर, मुक्त हो जाता है।

चाह गई, चिंता मिटी, मनवा बे परवाह,
जिनको कुछ नहिं चाहिए वे ही शाहनशाह।

भारतीय संस्कृति के उद्धार के लिए, राजस-तामस आहार, शराब-कबाब की कमी करना आवश्यक है। समान वस्त्र (यूनीफार्म) भारतीय संस्कृति के उद्धार का आवश्यक अंग है। सारे दिन नहीं तो विशेष अवसरों पर तो अवश्य ही। गांधी टोपी और खादी के वस्त्र ने देश को जागृति और स्वराज्य के प्राप्ति में जो काम किया है वह किसको विदित नहीं।

"कर्मणा वर्णः, वयसा आश्रमः", के सिद्धांत के अनुसार सु व्यूढ़, सु-संघटित, सु-संग्रथित समाज में ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए, अपनी योग्यता के अनुसार चारों पुरुषार्थ साधन का अवसर मिल सकता है। 'वरणाद् वर्णः' मनुष्य, अपने लिए, जिस जीविकोपाय का 'वरण' करे, जिसको वह चुन ले, तदनुसार उसका 'वर्ण' होता है; यदि विद्योपजीवी हो तो ब्राह्मण, शस्त्रोपजीवी तो क्षत्रिय, विविध वार्तोपजीवी तो वैश्य, यदि सेवोपजीवी तो शूद्र।

स्त्रियों का आदर

बहुओं, बेटियों, बहिनों पत्नियों का सदा आदर करना, और उनको आभूषण देना, यह पिता भाई पति देवर आदि का आवश्यक कर्त्तव्य है। सती स्त्रियां घर की दीपक हैं; इनसे घर उजाला, उज्ज्वल रहता है, इन्हीं से संतति है। ऐसी स्त्री, और साक्षात् श्री लक्ष्मी, में कोई भेद नहीं है। इनका आदर करना परम कर्तव्य है।

कन्या और युवा का शील स्वभाव जांच कर, ऐनों का परस्पर परिणय करना चाहिये, जिनके परस्पर संतुष्ट रहने की संभावना अच्छी है। 'समान शील व्यसनेषु सख्यम्' जिनका शील और व्यसन समान हैं, वा अविरोधी है, उन्हीं की मित्रता, प्रीति, चिरस्थायी

होती है घटती मिटती नहीं। निष्कर्ष यह कि जिनका शील, स्वभाव, व्यसन, (शौक-जौक), बुद्धि, विद्या, श्रुत, धर्म-कर्म, जीविकोपाय आदि मिलता हो, वा अन्योअन्य-विरोधी न हो, वे ही स्त्री-पुरुष सच्चे 'सवर्ण' हैं; जिनका ऐसा न हो वे ही 'अ-सवर्ण' हैं, नाम मात्र एक होने से सवर्ण नहीं।

जनसंख्या वृद्धि

सबसे घोर समस्या अन्न-वस्त्र तथा अन्य आवश्यकीय वस्तुओं की नितांत कमी की है। इस कमी और महँगी के कई कारण हैं परन्तु एक मुख्य कारण जनसंख्या की अतिवृद्धि है, जिसकी ओर लोगों का ध्यान कम है। मनु का आदेश इस विषय में यह है यस्मिन् ऋणं सनयति, येनचअतत्वं अश्नुते स एव धर्मजः पुत्रः कामान् इतरान् विदुः तात्पर्य ज्येष्ठ पुत्र ही धर्मज है, अन्य सब कामजात हैं। संख्या-वृद्धि तो महारोग है। केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि विशेषज्ञ वैज्ञानिकों की एक समिति से निश्चय कराके एक विधान बना दे, जिससे विवाहित दम्पतियों को दो अथवा तीन तक, संतति हो जाने पर, पति के लिए शल्यकर्म करा लेना अनिवार्य हो। जो न करावे और तीन से अधिक संतान उत्पन्न करे, उसको धन-दन्ड या कारा-दन्ड या अन्य दन्ड दिया जाय।

व्यापक भ्रष्टाचार

दूसरी जटिल समस्या उस घोर भ्रष्टाचार की है जो समस्त जनता में और सरकारी भृत्यों, अधिकारियों में व्याप्त हो रही है। यह अंग्रेजी राज में भी रही, भृत्यों और अधिकारियों में। पर तब से अब अधिक जान पड़ती है। क्षुद्र स्वार्थपरता बहुत बढ़ गई है। व्यापारियों में चोरबाजारी, भृत्यों और अधिकारियों में उत्कोच, घूसखोरी। स्व-राज के 'स्व' का अर्थ सबने अपना देहात्मक अधम 'स्व' समझ लिया; सर्व जनता में व्याप्त उत्तम स्व' परमात्मास्वरूप नहीं समझा। देश के नेताओं ने अपने अनुयायियों को यह समझाने का यत्न कभी नहीं किया। एक स्मृति में ठीक लिखा है 'प्रजा की रक्षा के लिए नियुक्त अधिकारी प्रायः रक्षक से भक्षक हो जाते हैं, प्रजा को लूटते हैं। राजा को चाहिए कि ऐसों को सर्वस्व मोचन करकेउन्हें अपने देश से निकाल दें।

सद्धर्म-शिक्षा

इस देशप्राप्त दुष्ट भाव और भ्रष्टाचार को कम करने का यदि कोई उपाय है तो यही कि बचपन से ही आरम्भ करके, सब स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों पाठशालाओं, मदरसों में साधारण धर्म, शाश्वत धर्म, सार-धर्म, अस्ल मजहब की शिक्षा दी जाय, और विशेष धर्मों की भी मुख्य मुख्य बातें बताई जाये। जिसमें सब धर्मों, मजहबों के विद्यार्थियों को एक दूसरे के विशेष विश्वासों और आचारों का कुछ ज्ञान हो जाय, और मुख्य धर्म की शिक्षा के बल से इन गौण आचारों का भी परस्पर सम्मर्षण, रवादारी, सहन-शक्ति (टालरेशन), प्रसन्न मन से करें, और उन विशेष आचारों का वर्जन करें जिनसे दूसरों को कष्ट होता हो, और जो विज्ञान के भी विरुद्ध हों, जैसे ईसाइयों, यहूदियों, मुसलमानों, को गोवध नहीं करना चाहिए, एवं हिंदुओं को ईसाई मुसलमानों पर, होली के दिनों में, रंग फेंकना नहीं चाहिए, न अभद्र गाली बकना।

सरकार का 'सेक्युलर' बनना बडी भूल

स्वराज, सरकार ने अपने को 'सेक्युलर' अर्थात 'धर्म से तटस्थ' राज घोषित किया है। यह बड़ी भूल है। पाकिस्तान में इस्लाम की शिक्षा सब मदरसों और दारुल-उलूमों में मुल्लाओं द्वारा, दी जाती है, और हिंदू धर्म और हिंदुओं का विरोध भी सिखाया और किया जाता है। भारत में हमको किसी धर्म और धर्मों का विरोध नहीं करना वा सिखाना है, प्रत्युत सबका मेल बढ़ाना है, जिसके लिए सार-धर्म की शिक्षा को छोड़ कोई उपाय नहीं है।

अंग्रेजी राज, विशेष कारणों से भारतीयों के लिए सेक्युलर था। पर अपने लिए वह भी ईसाई धर्म मानता था। करोड़ों रुपए के बहुत सुन्दर सुन्दर गिर्जाघर उसने भारत में बनवाए, और करोड़ों रुपए साल ऊंचे-नीचे दर्जों के पादरियों पर व्यय करता। और भी, यदि भारत-स्व-राज 'सेक्युलर' है तो उसने हिंदू कोड बिल क्यों उपस्थित किया? यदि किया तो केवल वही क्यों? ईसाई, मुस्लिम, पारसी, आदि कोडबिल भी क्यों नहीं? इस हिंदू कोड बिल का समग्र भारत ने विरोध किया है, जिसका यह फल हुआ कि उसके प्रस्तोता अम्बेड़कर महाशय, बम्बई में चुनाव में हार गए। और श्री जवाहरलाल जी ने भी काशी में सार्वजनिक सभा में कहा कि उस बिल में बहुत परिवर्तन करना होगा, जनता जिन अंशों के विरुद्ध है वे छोड़ दिये जायेंगे। एवं श्री कैलाशनाथ काटजू ने, जो अम्बेड़कर महाशय के स्थान पर न्याय मंत्री थे, प्रयाग में जन-समूह के सामने कहा कि यदि यह बिल सर्वथा छोड़ नहीं दिया गया तो बहुत परिवर्तित रूप में पुनः प्रस्तुत होगा। बिल के विद्यमान रूप के भी कुछ अंश, विवाह विषयक, अच्छे हैं। विवाह विच्छेद संबंधी अच्छे नहीं हैं। और दाय-भाग विषयक तो बहुत ही निकृष्ट हैं। यदि बरते जाँये तो हिन्दू समाज नितरां अधरोत्तर हो जायगा, किसी कुल में दो पीढ़ी तक भी सम्पन्नता नहीं रहेगी, सभी शीघ्र दरिद्र हो जायेंगे, और घर-घर में कलह मचेगा।

हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा।

भारत में संस्कृत-निष्ठ हिन्दी ही जनता की बोली हो सकती है। इसका अर्थ यह नहीं कि जो फारसी, अरबी अंग्रेजी शब्द, सैंकड़ों वर्ष के सम्पर्क के कारण हिंदी में घुल मिल गए हैं, (यहां तक कि तुलसीदास जी ने कुछ का रामायण में प्रयोग किया है), उनका बहिष्कार किया जाय, उनको तो रखना ही होगा, और नयों को भी, विशेष कर पाश्चात्य विज्ञान के सांकेतिक शब्दों को अपनाना होगा। संभव है कि हिंदी में शुद्ध संस्कृत शब्दों का मेल अधिकाधिक होते-होते पचास वर्ष में संस्कृत ही सर्वसाधारण के व्यवहार में आजाये, जैसा महाभारत काल में। पर यह कुछ कठिन है; अल्पकाल में नहीं हो सकता। हां, संस्कृत का व्याकरण जो इस समय बहुत क्लिष्ट है कई प्रकार से सरल किया जा सकता है। यदि यह किया जाय, और पाठशाला आदि में संस्कृत सिखाने का वह प्रकार-अपनाया जाय जिससे नई पीढ़ी अपनी मातृभाषा सीखती है, तो पचास साठ वर्ष का काम स्यात् पच्चीस तीस में ही हो जाय; अर्थात् बालक बालिकाओं के साथ उसी भाषा में बोलने से। संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति का एक प्रधान अंग है क्योंकि इसमें लिखे बहु-विध शास्त्र विद्यमान हैं जो भारतीय सस्कृति के आधार-मूल हैं।

वसन्त-मञ्जरी !

[श्री रवीन्द्रनाथ टागोर]

राजकुमारी का नाम अपराजिता है, उदय नारायण के सभा-कवि शेखर ने अपनी आँखों से राजकुमारीको कभी देखा नहीं था, पर जब भी उसने नए काव्य का निर्माण कर सभा में राजा के समक्ष सुनाया है, तब राज महल के झरोखे पर बैठी हुई अदृष्ट रमणियों के कान तक उसकी काव्य-धारा पहुंची है।

उसकी दृष्टि के समक्ष कभी किसी रमणी की छाया दिखाई पड़ जाती है। कई बार उसके पायल की झंकार सुनाई दे जाती है। वह अकेले में सोचता रहता है कैसे होंगे इस रमणी के चरण-कमल जिन पर ये नूपुर बँधे होंगे? इस के गुलाबी गोरे पैर कितने सौभाग्य शाली होंगे, कितना प्रेम, और कितनी करुणा झरती होगी, और धरणी को धन्य करती होगी। वह राज सभा में जब भी प्रवेश करता अपने हृदय में उन कोमल चरणों की स्थापना कर के आता, उन पायलों की झंकार उसके कानों में पड़ती, और वह अपना मधुर गीत गा उठता, किन्तु जो छाया उसने देखी है वह किस की होगी? जिन पायलों की झंकार उसने सुनी है, वह किसके चरणों में बंधी होगी, ये तर्क वितर्क उसके भावुक हृदय में कभी न उठे थे?

राज कुमारी की दासी मंजरी जिस पथ से नदी पर जाया करती थी, वह शेखर के घर पर से ही जाता था, पानी भरने के लिए जब मंजरी जाती थी, तब कई बार कवि से वह बातें भी करती, एकांत पाने पर कभी सुबह, कभी शाम को कवि के घर पर भी बैठ जाती थी, जब वह घांट के रास्ते निकलती, तब कौन जाने वह घांट के लिए ही निकलती थी, या...? यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह बिना काम के कहीं भटकने जाती थी। पर जब वह उधर निकलती तब वह सुन्दर रंगीन साड़ी, और कानों में आम्र-मंजरी अवश्य पहनती थी, किन्तु उसका क्या प्रयोजन था, यह अब तक जाना नहीं जा सका था।

लोग हँसी उड़ाते निंदा भी करते, लोगों का क्या दोष? मंजरी को देख कर कवि को विशेष आनन्द होता था और यह उसने कभी छुपाया भी न था।

उसका नाम तो मंजरी ही था, किन्तु शेखर उसमें कविता देखा करता था। इसलिए वह वसंत-मंजरी कहा करता था, लोग यह सब सुनते, अपना ओठ काट कर कहते 'सर्वनाश!'

कवि के वसंत वर्णनों में 'मंजुल-वंजुल-मंजरी' जैसे अनुप्रास जहाँ-तहाँ प्रयुक्त होते। यह बात कब तक छुपती, धीरे धीरे राजा के कानों तक जा पहुँची।

कवि की रसिकता देख राजा प्रसन्न हुआ, इस बात पर वह विनोद भी करता। और शेखर भी उसमें अपना सा मिला देता।

राजा हँस कर पूछ लेता क्या भ्रमर, वसंत की रा सभा में ही गूँजता रहेगा?

कवि उत्तर देता 'जी, पुष्प-मंजरी के मधु का भी उसे में आस्वाद जो मिलता है।'

यह विनोद चलता ही रहता, उधर अंतःपुर में रा कुमारी अपराजिता भी कई बार मंजरी की मीठी छेड़छा कर देती थी, पर मंजरी को यह बुरा नहीं लगता।

कवि के गीतों का विषय था राधा, और कृष्ण, यही चि न्तन नर, यही चिरन्तन नारी, यही अनादि दुःख, और यही अ सुख। इन गीतों में उसके वास्तविक जीवन की गाथा भी गई इन गीतों की धड़कन उस नगर के राजा से लेकर वहाँ प्रजा के हृदय में भी स्पंदित हो उठी, सभी की वाणी उसके गीतों का जादू बोलने लगा था, जब चांदनी रही हो, दक्षिण की हवा लहरें लेने लगी हो, तब उपवनों नदी तट पर, नौकाओं में, प्रासादों के झरोखों में और में शेखर के प्रेम गीतों के स्वर सुनाई देने लगते थे, की कीर्ति सभी दिशाओं में फैल गई थी!

कई दिन बीतते चले गए; शेखर की कविता बनती और राजा सुनता था, राज सभा के लोग प्रशंसा करते थे, मंजरी घांट पर जाती है, और कई बार झरोखे

छाया बाहर पड़ जाती है। पायल की झंकार भी प्रायः सुनाई दे जाती है।

० ० ०

एक बार दक्षिण का निवासी दिग्विजय-कवि राज सभा में आया उसने शार्दूल विक्रीडित छंद में राजा की प्रशंसा का गान किया, उस कवि ने दक्षिण से चलते हुए रास्ते के सभी कवियों को पराजित कर दिया था, यहां राजा ने उसे स्वागत पूर्वक स्थान दिया; आइए, आइए!

कवि पुण्डरीक ने दाम्भिक स्वर में 'युद्ध देही' का स्वर उच्चारित किया, राजा को अपने सम्मान को रक्षा करना आवश्यक था, पर युद्ध का आमन्त्रण भी स्वीकार करना था पर यह तो वाक्-युद्ध था।

शेखर को इस युद्ध का ठीक अनुभव नहीं था; इसलिये उसका चेहरा चिंता से व्यग्र बन गया, रात को नींद भी नहीं आई, उसके सामने विजयी पुण्डरीक का मस्त शरीर, उसकी तीखी, और टेढ़ी नाक, और उसका उद्धत मस्तक घूम गया!

प्रातः काल हुआ, वह अपने धड़कते हुए दिल से सभा गृह में पहुँचा, बड़ी सुबह से सारा सभाभवन खचाखच भर गया था, लोगों के कोलाहल की सीमा न थी। नगर का सारा काम काज रुक गया था।

कवि शेखर के चेहरे पर बड़ी कठिनाई से थोड़ी सी मुसकान आई, उसने कवि पुण्डरीक को नमस्कार किया, पुण्डरीक ने केवल संकेत से ही उसके नमस्कार का उत्तर दिया, और उसने प्रशंसकों और अनुयाइयों की ओर देखकर अट्टहास्य किया।

शेखर ने एक बार अन्तःपुर की ओर कटाक्ष दृष्टि फेंकी वह समझ गया कि झरोखे में खड़ी हुई अनेक कामिनियाँ कुतूहल के साथ व्यग्र दृष्टि से सभागृह पर निगाह गडाए हुए हैं। उसने एकाग्र भाव से ऊर्ध्व लोक पर दृष्टि डाली और अपनी जय लक्ष्मी की वंदना की। वह मन ही मन बड़-बड़ाया जो आज मुझे विजय प्राप्त हुई तो हे देवी, हे अपराजिता, उसकी सार्थकता तेरे नाम के कारण ही होगी।

तुरी, और भेरी के स्वर गूँज उठे और जय ध्वनि का स्वर करती हुई सारी सभा उठ कर खड़ी हो गई, शरद ऋतु के श्वेत मेघों जैसे वस्त्रों में सज्जित हो राजा उदय नारायण ने मन्द गति के साथ सभा में प्रवेश किया। वे सिंहासन पर आकर विराज गए, पुण्डरीक उठकर सिंहासन के समीप आ गया, सारी सभा स्तब्ध हो रही थी।

प्रचण्ड-शरीर धारी पुण्डरीक ने छाती फुला कर अभिमान के साथ धीर गंभीर स्वर में राजा की स्तुति की। उसकी ध्वनि के वेगसे मानव समुदाय की छाती धड़कने लगी, कवि की रचनामें कितना कौशल था, कितनी बेधकता भरी हुई थी! राजा उदय नारायण के नाम की अनेक व्याख्याएँ उनके नामान्तरों के कई विन्यास, और अनुप्रास की अपूर्व छटा थी। पुण्डरीक ने अपनी स्तुति रचना पूरी की, थोड़ी देर तक सारा सभा खण्ड आश्चर्य मुग्ध बन सहस्त्रों मूक प्रशंसा से व्याप्त हो गया था, दूर दूर के आए हुए पंडित गण अपना बांय हाथ ऊंचा कर उमंग से साधु-साधु कह रहे थे!

अब सिंहासन से राजा ने शेखर की ओर नजर फेंकी, शेखर ने भक्ति, विनय और संकोच के साथ राजा की ओर देखा, और धीरे से उठकर खड़ा हो गया! पुण्डरीक सिंह की तरह खड़ा था, और शेखर शिकारी से घिरे हुए हरिण की तरह हो रहा था, वह युवक था, उसके मुख पर मुग्धा की तरह लज्जा, स्नेह की कोमलता छाई हुई थी। अत्यन्त मृदु-स्वर के साथ अपना कथन आरम्भ किया, शायद प्रथम श्लोक कोई ने ठीक सुना भी न हो, अब उसने गीत लहरी को जमाना आरम्भ किया, राज सभा को उसकी स्वर लहरी ने अभिषिंचित कर दिया, लोग किसी अलौकिक सृष्टि में रम रहे थे, कवि का स्वर धीरे-धीरे मदिर गति से उज्वल-अग्नि शिखा की तरह ऊपर बढ़ता जा रहा था। आरम्भ में राजा के चन्द्रवंशी-आद्य-पुरुषों की कथा कह कर, अनेक युद्धों, वीरता, दान-परायणता, यज्ञ, आदि की विरुदावलि का गान किया, वर्तमान काल में प्रवेश किया, अब राजा की ओर दृष्टि देकर गौरव के साथ राजा-प्रजा के अद्भुत प्रेम का वर्णन कर सारी सभा को मधुर-छंद में नहलाते हुए कविता को मूर्ति मति बना दिया। सारा भवन गूंज उठा, महल की

एक-एक ईंट जाग्रत बन एक दूसरी को स्नेह स्पर्श करने लगी, अन्तः पुर की सुन्दरियों को उस का स्वर स्पर्श कर राजा के पास लौट आया, राजा ने उस काव्य निर्झरिणी में स्नानकिया और अन्त में कवि बोला—

महाराज! वाक्यों में मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूं। पर भक्ति में मुझे पराजित करने का किसी में सामर्थ नहीं है। यह कह कर वह बैठ गया, कवि की आर्द्र वाणी से गद्-गद् हो, प्रजाजन ने मुक्त हृदय से उसका जय-जय किया!

धिक्कार-सहित उन्मत्त हास्य कर पुण्डरीक ने सभा पर एक दृष्टि डाली, कहने लगा—वाक्य से ऊपर कोई वस्तु नहीं हो सकती!

सभा एक क्षण के लिए स्तब्ध हो गई थी। अब वह अनेक छंदों के आधार पर पांडित्यपूर्ण भाषा में वेद-वेदांत, एवं अगम-निगम के द्वारा वाक्य की श्रेष्ठता सिद्ध करने लगा, वाक्य ही सर्व श्रेष्ठ है, वाक्य ही ब्रह्म है, वाक्य ही सत्य है, ब्रह्म-विष्णु-महेश वाक्य के अधीन है, स्वयं ब्रह्मदेव भी चारों मुंह से बोलकर भी वाक्य का अन्त पा न सके थे, और पंचानन पांचों मुख से वाक्य को अनन्त मानकर अन्त में समाधि में लीन हो वाक्य की शोध में निकल पड़े थे, शास्त्रों के प्रमाणों की परम्परा खड़ी कर, पुण्डरीक ने एक गगन-चुम्बी सिंहासन बनाया और वाक्य को मृत्यु लोक से उठाकर स्वर्ग में ले जाकर बिठला दिया, और गर्जना करते हुए पूँछा "कहिए वाक्य की अपेक्षा क्या और कोई श्रेष्ठ वस्तु है?"

चारों ओर छाती फुला कर निगाह फेरी, पर किसी ने उत्तर नहीं दिया, धीरे धीरे वह अपने आसन पर आ बैठ गया, पंडितों ने साधु-साधु, धन्य-धन्य कहा, राजा आश्चर्य में था, कवि शेखर इस विपुल-पांडित्य के समक्ष अपनी क्षुद्रता अनुभव कर रहा था, आज की सभा इस तरह समाप्त हो गई!

° ° °

दूसरे दिन कवि शेखर ने सभा में अपना गीत गायन आरम्भ किया, वृन्दावन में जब पहिले पहल बंसी की तान निकली थी तब गोपियों को यह पता नहीं चला था कि बं किसने, कहां बजाई है। एक बार लगा कि उत्तर ओर खड़े गोवर्धन-पर्वत के शिखर से यह स्वर प्रवाहित रहा है, और दूसरे क्षण समझा कि यह स्वर दक्षिण के पवन के साथ बहता आ रहा है, तीसरी बार मालूम हुआ जैसे उदयाचल पर खड़ होकर कोई पुरुष उन्हें मिलने के लिए आतुर बन बुला रहा है और फिर शंका हुई कि अस्ताचल पर बैठ कर कोई विरह की वेदना बहा रहा है। कभी यह लगता कि यमुना की एक एक तरंग पर बन्सी के सुर थिरक रहे हैं, आकाश के ये सारे तारे मानों बन्सी के छिद्र की तरह हो, पर अन्त में इस बन्सी के स्वर प्रत्येक कुंज में, वा में, और घांट में, हर फूल में, जल-स्थल में, ऊपर और नीचे अन्दर और बाहर सर्वत्र व्यापक बन गए थे। भगवान ने उसमें क्या गाया यह कोई समझ न सका, और बंसी के स्वर के उत्तर में हृदय क्या कहना चाहता है, यह भी कोई ठीक जान न पाया, पर आँखों से आँसुओं की निर्झरिणी बहने लग गई, और सुंदर-श्याम के दर्शनों के लिए प्राण आतुर उत्कण्ठित हो उठे।

सभा खण्ड को विस्मृत कर आत्म पक्ष, प्रति पक्ष, की पर्वाह किए बिना, यश, अपयश एवं उत्तर-प्रत्युत्तर से प बन, शेखर अपने प्रशांत हृदय कुंज में अकेला खड़ा हुआ वह अपनी बंसी का गान अलापता जा रहा था, उसके हृदय में एक ज्योतिर्मयी मानस-मूर्ति की स्मृति जाग्रत उठी थी, कानों में केवल दो चरणों के नूपुरों की ध्वनि गूं रही थी। कवि, अचानक अपना गान पूरा कर सहसा बै गया, सारा-सभा भवन, विरह-व्यथा की व्याकुलता में रहा था। किसी को साधु-साधु कहने की सुध न रह गई थी।

इस वातावरण की मूर्च्छा के हटते ही पुण्डरीक ने सिंहासन के पास जाकर प्रश्न किया—

"—यह राधा कौन है, कृष्ण कौन है? जानते आप??" उसने चारों तरफ नज़र फेंकी अपने शिष्यों की ओर स्मित करते हुए फिर यही पूछा और प्रत्युत्तर देना आरम्भ किया।

"राधा प्रणय है, ॐ कार है, कृष्ण ध्यान है, है।" उसने इडा, सुषुम्ना पिंगला, नाभिचक्र, हृत्पद्म,

रन्ध् आदि की चर्चा कर के अपने पांडित्य को प्रकाशित किया, 'रा' के अर्थ और 'धा' के अर्थ की व्याख्या की, कृष्ण शब्द के 'क' से लेकर 'ण' तक के प्रत्येक अक्षर में कितने भिन्न २ अर्थों का समावेश होता है, इनकी सूक्ष्म विवेचना की, कृष्ण को यज्ञ, राधिका को अग्नि, कृष्ण को वेद, राधिका को षड् दर्शन तथा कृष्ण शिक्षा है तो दीक्षा राधिका है, राधिका तर्क है तो कृष्ण मीमांसा, राधिका-उत्तर प्रत्युत्तर है तो कृष्ण जय और लाभ है, आदि। पुण्डरीक ने शान से राजा की तरफ, सभा की तरफ और तिरस्कार की तीखी निगाह से शेखर की ओर देखा और अभिमान पूर्वक अपनी जगह आ बैठा।

राजा पुण्डरीक के ज्ञान पर मुग्ध हो गया। पण्डितों के विस्मय का पार नहीं था।

राधा कृष्ण की नवीन व्याख्याओं में बंसी की तान, यमुना की लोल लहरें और प्रेम की अलौकिकता धुल गई, मानों पृथ्वी पर से बसंत की रमणीय हरियाली के रंग को उतार कर उस पर गोबर लीप दिया हो। शेखर ने अब तक जिन गीतों को अमूल्य समझा था, वह अब उन्हें निरर्थक मानने लगा, अब गीत गाने की उसमें शक्ति नहीं रही, इस दिन सभा विसर्जित हो गई!

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन पुण्डरीक ने व्यस्त, समस्त-द्वि-व्यस्त, द्वि-समस्तक वृत्त, तार्क्ष्य, सौत्र-चक्र, पद्म, काकपद, आद्युत्तर, मध्योत्तर, अन्त्योत्तर, वाक्योत्तर, वचनगुप्त, मात्राच्युतक, च्युतदत्ताक्षर, अर्थगूढ़, स्तुति-निन्दा, अपन्हुति, शुद्धापभ्रंश, शाब्दी, कालसार, प्रहेलिका आदि के प्रयोग कर अद्भुत कौशल दिखलाया, यह सुन कर सभा-जन आश्चर्य में डूब गए।

शेखर की रचना तो बहुत सरल थी, उसके गीतों को लोग सुख-दुःख में, आनन्द उत्सव में गाते रहते थे; पर आज लोगों को उसकी रचना में कोई आकर्षण दिखाई न दिया। लोग समझते थे कि ऐसी रचनाएँ तो वे चाहे जब स्वयं कर सकते हैं और इनसे संसार को कोई ज्ञान नहीं मिल सकता, या कोई लाभ भी नहीं मिलता। पुण्डरीक की वाणी में विद्वत्ता थी, ज्ञान भरा हुआ था। पुण्डरीक की तुलना में लोगों को शेखर बहुत हल्का प्रतीत हुआ।

मछली की पूँछ के आघात से जिस प्रकार पानी में अनेक तरंगे उठती हैं। और उसके आघात-प्रत्याघात से सरोवर का कमल मुरझा जाता है। उसी तरह शेखर अपने आस-पास की जनता के भावान्दोलन से अनुभव कर रहा था।

आज अन्तिम-दिन था, जय-पराजय का आज निर्णय होने वाला था, राजा ने अपने कवि की ओर देखा, इसका यह आशय था कि आज नम्रता से काम लेने की बात नहीं है। आज तो उसे अपने अन्तर की सारी शक्ति का उपयोग कर संघर्ष कर लेना है।

शेखर खड़ा हुआ, आज उसे अधिक कुछ नहीं कहना था, वह इतना ही बोला—"वीणापाणि, श्वेत वसना देवी, आज तू कमल-वन को सूना बना कर मल्ल-भूमि पर आ गई है, यह देखकर तेरे अमृत-रस के प्यासे भक्त जनों का हृदय कितनी वेदना से पीड़ित हो रहा होगा?' थोड़ी देर मौन रहा, और आर्त-स्वर में कहने लगा 'मानों अन्तःपुर के झरोखे से नीची दृष्टि डाल कर शुभ्र-वसना वीणापाणि, यह सब देख रही है!'

पुण्डरीक उठा, पहिले तो वह खूब हँसा, फिर शेखर के शब्द के पिछले अक्षरों को लेकर धारा-प्रवाह श्लोक बनता चला गया, 'पञ्चानन के साथ 'खर' का क्या सम्बन्ध? संगीत की चर्चा करने के बाद भी इस प्राणि (खर) को क्या लाभ होने वाला था? सरस्वती का आवास तो पुण्डरीक (श्वेत कमल) में ही रहता है। महाराज के राज्य में सरस्वती ने ऐसा कौनसा अपराध किया है कि उसे खर-वाहन देकर देवी को अपमानित बनाया गया?

यह सुनकर पण्डित लोग खूब हँसे और सभा-जन भी हँसते रहे।

इस क्रूर-मज़ाक का शेखर उत्तर देगा, यह मानकर राजा ने उसकी ओर नज़र फेंकी, पर शेखर ने उस पर ध्यान नहीं दिया, वह चुप-चाप बैठा रहा, यह देख राजा नाराज़ हो गया, सहसा सिंहासन से उतर कर अपने गले में पड़े मोती के हार को उतार कर राजा ने पुण्डरीक के गले में

पहना दिया ! सभा में चारों ओर 'धन्य-धन्य' की ध्वनि गूँज उठी। अन्तःपुर से भी कंगन और नूपुरों की झनकार हुई। शेखर शून्य मन बन कर धीरे-धीरे सभा भवन से बाहर चल दिया।

❀ ❀ ❀

कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि, चारों ओर घोर अन्धेरा छा रहा है। दक्षिण से चलने वाला मन्द-पवन, सुमनों की सुरभि लेकर विश्व-वात्सल्य फैलाता हुआ नगर और एक-एक घर में प्रवेश कर रहा था।

अपने घर में अकेला शेखर इधर-उधर पड़ी हुई अनेक पोथियों को समेट रहा था, अपनी रचनाओं को उनमें से छांटकर अलग हटाता जा रहा था। जीवन-भर लिखे हुए अनेक ग्रन्थों में कई को तो वह भूल चुका था, उनके पन्ने उलटता जाता और रचनाओं का रस लेता जा रहा था, पर आज उसे ये सब नीरस प्रतीत हो रहे थे।

शेखर ने दीर्घ-निश्वास खींचा, मन ही मन बोला 'सारे जीवन का बस यही संयम ! थोड़े ही शब्द और थोड़े ही छन्द ! थोड़ी ही पंक्तियाँ, थोड़े ही प्रासानुप्रास !

आज इन सब में कोई भी सौंदर्य हृदय का कोई भी चिरन्तन-आनन्द, विश्व-संगीत की कोई भी प्रतिध्वनि, या हृदय का कोई आत्मप्रकाश प्रतीत नहीं हुआ। जिस प्रकार रोगी को किसी भी भोजन में रुचि नहीं रह जाती, मुंह में ग्रास लेते ही बाहर निकाल देने को जी कर उठता है। ठीक इसी तरह वह जो पुस्तक हाथ में उठाता है, ठीक इसी तरह वह तिरस्कार से पटक देता जाता था, राज्य की प्रशंसा, हृदय की आशा और कल्पना के कलरव आज इस घोर अन्धेरी रात में केवल विड़म्बना मात्र लग रहे थे ! और वह एक अपनी कृतिकों उठाकर सामने पड़ी आग की अंगीठी में डालता जा रहा था। जो रचनाएं उसे सत्कार दिलवाती रही, धन्य-धन्य सुनाया करती थी वे आज लपटों में पड़कर धूँ-धूँ जल रही थी।

उस आग की लपटों के साथ वह अपने हाथ घुमाता जा रहा था, और बोल रहा था—'हे देवी, हे सुन्दरी, हे अग्नि शिखे यह सब तुझे समर्पित कर रहा हूं। तुझे,...... तुझे आज तक मैं अनेक आहुतियाँ देता आया हूं। आज जो बाकी रहा है वह सब एक साथ तेरे हवाले कर रहा हूँ। बहुत दिनों से तू मेरे हृदय में आग सुलगा रही थी। हे मोहिनी, हे बहु रूपिणी, जो मैं सोना होता तो तुझ में पड़ कर और उज्ज्वल बन जाता, पर मैं तो एक तृण के समान हूं, इसी लिए आज तुझमें जल कर खाक हो रहा हूं।'

बड़ी रात बीत गई थी, उसने घर की सभी खिड़कियों को खोल दिया, उसे जिन-जिन फूलों से प्रेम था, उन सबको शाम के वक्त ही तोड़ कर एकत्रित कर लिया था, जुही, गुलाब, गन्धराज मुट्ठी में भर कर वह अपने बिछौने पर रखे रहा है। घर की सभी दिशाओं में दीये जला रहा है। थोड़ी देर के बाद मधुर पेय का पात्र उठा लाया, उसमें जहर घो कर गट गट पी गया ! पर उसके चेहरे पर चिन्ता की ए भी रेखा प्रकट नहीं हुई, धीरे-धीरे चल कर अपनी पुष्पश पर आकर पड़ गया ! शरीर की संधियां शिथिल होने लगीं आँखें मिचती जा रहीं थीं।

सहसा घर में नूपुरों की ध्वनि गूंजने लगी। सुरभि पवन की मस्ती के साथ केश कलाप से सुगन्ध फैलाती हु सुन्दरी ने प्रवेश किया।

कवि ने बन्द आँखों से ही कहा—आखिर भक्त पर कृ करने देवी आ रही है ? कितने समय के बाद आज तेरे दर्श हो रहे हैं ?

मधुर-कण्ठ से कोमल ध्वनि गूंजी,—'कवि मैं आ गई हूं'

शेखर ने ढल रही आँखों की शिथिल पलकें उठा क देखा ! सामने एक अपूर्व सुन्दरी की मोहनी मूर्ति खड़ी हु थी।

मृत्यु के मुँह में जारहे कवि की धुँधली निगाह में अपना सूझ नहीं रहा था, उसे लगा—मानों उसके अन्तर में बढ़ने वाली छायामयी प्रतिमा प्रकट हो आई है, और उसकी मृत्यु को स्थिर-नयनों से निरख रही है।

सुन्दरी ने कहा—मैं राजकुमारी अपराजिता हूँ। रा ने जो कुछ किया वह विचारपूर्वक नहीं किया है, वि तुम्हारी ही हुई है, कवि इसीलिए तो मैं यहाँ तक चलकर आ माला पहनाने को आई हूँ।

राजकुमारी ने अपने हाथों गूँथी हुई एक पुष्पमा कवि के कण्ठ में पहनादी।

मृत्यु के पाश से बंधा हुआ कवि शय्या पर ढल गया

मालवे के लैला-मजनू की प्रेममयी आत्माएँ जहां रमीं-गमीं और महीन कपड़े की एक नई तर्ज
जहां पैदा हुई वह इस्लामी ढंग का किन्तु हिन्दू नाम का ऐतिहासिक नगर

सारंगपुर

श्री० कृ० गं० कवचाले

मध्यभारत के ऐतिहासिक नगरों में सारंगपुर अपना एक स्वतंत्र स्थान रखता है। इस समय तो यह नगर प्रायः उजाड़-सा हो रहा है; किन्तु मुस्लिम युग में महल, इमारतें, मसजिदें, मकबरें, बगीचे वगैरह से यह सचमुच ही बड़ा खुशनुमा मालूम होता था और सब दूर इसका बड़ा नाम था। मालवे के सुलतानों की इस पर अक़सर मेहर नजर रहती थी। मध्यभारत की वर्तमान ग्रीष्मकालीन राजधानी इन्दौर से ८० मील, देवास से ५७ मील तथा भोपाल-उज्जैन रेलवे लाइन के मकसी स्टेशन से ३० मील दूर बाम्बे-आग्रा रोड़ के किनारे यह नगर बसा है और इसकी पश्चिमी सीमा से काली सिन्ध नदी बहती हुई आगे निकल गई है।

तवारिखों में सारंगपुर सम्बन्धी कतिपय उल्लेख पाये जाते हैं। उसमें लिखा है कि यह एक पुराना नगर है। पहिले यह एक मामूली गाँव था और इसका नाम भी कुछ और था जिसका पता नहीं चलता। सन् १२-९८ ई० में किसी सारंगसिंग खीची[*] ने यहाँ की बस्ती को बढ़ाकर निजी नामानुसार इसको 'सारंगपुर' नाम दे दिया। इतिहास में सारंगपुर प्रायः मुसलमानों के समय से ही चमकने लगा और माँडू के सुलतान हर-साल अपने आराम के दिन यहाँ बिताते रहने के कारण इस नगरी की सहसा उन्नति होती रही। परन्तु वास्तव में इसका सितारा कब तेजी पर था और कब फीका पड़ गया, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता, क्योंकि पुरानी बस्ती के बहुत कम खँडहर आज वहाँ दीख पड़ते हैं।

लेखकः

कहा जाता है कि मालवे के अन्तिम स्वाधीन हिन्दू राजा गोगादेव के समय से सारंगपुर तरक्की करने लगा था। सन् १३०५ ई० में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने अपने सरदार ऐनुलमुल्क को मालवा फ़तह

---

[*] इसी सारंगसिंग खीची ने असारटा (सारंगपुर से कुछ मील दूर) गाँव के एक राजपूत ठाकुर की कन्या से विवाह करना चाहा था; परन्तु कन्या का पिता उससे सहमत न होने के कारण करज (भूतपूर्व ग्वालियर-राज्य का गाँव) में घमासन लड़ाई हुई। परिणाम स्वरूप दोनों पक्ष के बहुत से वीर मारे गये। जनश्रुति है कि इस लड़ाई में खेत रहे वीरों की वीर पत्नियाँ सती हो गईं, जिनकी संख्या साढ़े सातसौ के लगभग थी। आज भी करज गाँव के चहुं-गिर्द कितनी ही सती शिलाएँ विद्यमान हैं।—देवास स्टेट गज़ेटीयर, पृ० ६८

करने के लिए भेजा। उसने गोगादेव को परास्त कर मालवे पर कब्जा कर लिया। तभी से आगे लगभग ४०० वर्ष तक मालवा बराबर मुसलमानों के ही अधिकार में रहा। सन् १३८७ ई० में दिल्ली के बादशाह फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ ने अपने एक सरदार अमीदशाह दाऊद को मालवे का सबेदार नियुक्त किया। यही सरदार आगे जाकर सन् १४०१ ई० में जाकर दिलावरखाँ ग़ोरी के नाम से मालवे का पहिला सुलतान बन बैठा। इसने अपनी राजधानी धार क़ायम की थी, किन्तु गरमी के दिनों में वह माँडू में और जाड़े के दिनों में सारंगपुर में रहा करता था। इसके पुत्र सुलतान होशंगशाह ने भी इसी तरीक़े को कायम रखा था। सन् १४२२ ई० में गुजरात के सुलतान अहमदशाह ने होशंगशाह पर चढ़ाई की तब सारगपुर में ही घनघोर संग्राम हुआ जिसका जिक्र 'तारीख़ अल्फ़ी' और 'मीरात-ए-सिक़न्दरी' में पाया जाता है। सन् १४३५ ई० में गोरी वंश के पतन के बाद मालवा में महमूद ख़िलजी का नया शासन आरंभ हो गया। इसके कार्यकाल में सारंगपुर उन्नति पर रहा। सन् १४४० ई० में चित्तौड़ के महाराणा कुंभा ने महमूद ख़िलजी पर आक्रमण किया, तब सारंगपुर के पास भयंकर संग्राम हुआ और उसमें महमूद की हार हुई। वह सारंगपुर से भाग गया। इस संग्राम का वर्णन महेश कवि ने कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में निम्न प्रकार किया है:-

त्यक्त्वा दीना दीनदीनाधिनाथा
दीना बध्दा येन सारंगपुर्याम्।
योषाः प्रौढा; पारसीकाधिपानाम्
ताः संख्यातुं नैव शक्नोति कोऽपि ॥२६८॥
महा मदो युक्ततरो न चेपः
स्वस्त्रामिघातेन धनार्जनात्र (०र्जनत्वात्)
इतीव सारगपुरं विलोड्य
महंमदं त्याजितवान् महमदः ॥२६९॥
एतद्दग्धपुराप्रियाऽ वमसौ
यन्मालवाम्भोनिधिं
क्षोणीशः पिबती स्वखड्गचुलुके-
स्तस्मादगस्त्यः स्फुटम् ॥२७०॥

अर्थात् महाराणा कुंभा ने सारगपुर की अगणित मुसलमान युवतियों को क़ैद किया। महंमद (महमू का महा मद चूर्ण कर डाला। सारंगपुर को आग लग दी और अगस्ति की भाँति अपने खडगरूपी चुल्ल से समस्त मालव रूपी समुद्र का प्राशन किया।

सन् १५१६ ई० में रायसेन (भूतपूर्व भोपाल-राज्य में स्वाधीन राज्य स्थापन करने वाले सलहदी नाम एक तुंवर राजपूत वीर ने भेलसा से उज्जैन तक मुल्क पर अपना अधिकार जमा लिया था। यह सल हदी चित्तौड़ के महाराणा सांगा का जामाता था, पर आगे जाकर इसने इस्लाम धर्म ग्रहण कर माँडू के सल नत की सरदारी प्राप्त की थी। स्वामी द्रोह कर इसने सारंगपुर पर कब्जा किया तो माँडू के सुलता महमूद ख़िलजी (दूसरा) ने उसे मालवे से खदेड़ दिया सन् १५२६ ई में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह मालवा जीता और सुलतान महमूद को, बाल बच् सहित, दाहोद में मरवा डाला। इस गड़बड़ में मह राणा साँगा ने सारंगपुर झपट लिया। उपरान्त म खाँ ने, जोकि प्रथम ख़िलजी सुलतानों का गुलाम और चन्देरी का सूबेदार बनाया गया था, सन् १५ ई० में कादिरके नाम से मालवे का सुलतान बन बै उसके अधीन मालवे का काफी हिस्सा था, जिस सारंगपुर भी शामिल था। अनन्तर दिल्ली की सल्तन शेरशाह सूर के कब्जे में जाने पर उसने सन् १५४३ ई में सुलतान कादिर को परास्त कर मालवे को दिल्ली अमलदारी में दाखिल किया और अपने सरदा शुजावलखाँ (या शुजातखाँ) को मालवे का हाकि बनाया। शुजावलखाँ ने मालवा में अपनी अच्छी धा जमाई। सारंगपुर पर उसकी मेहर नजर रही औ उसके पास उसने अपने नाम से शुजावलपुर गाँ बसाया, जिसे आजकल लोग शुजालपुर के नाम पुकारते हैं। सूरवंश के अन्तिम सुलतान मोहम्मदशा

के समय में जब दिल्ली की पठान सत्ता लड़-खड़ाने लगी तब शुजावलखाँ मालवे का स्वतंत्र सुलतान बन बैठा और राजधानी माँडू को छोड़कर सारंगपुर रहने लगा।

सन् १५५४ ई० में शुजावलखाँ की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र बायज़ीद, बाज़बहादुर नाम धारण कर, उसका उत्तराधिकारी बना। बाज़बहादुर ने अपने कार्य-काल के कुछ आरंभिक दिन सारंगपुर में ही बिताये थे, तथा अपने नाम का नया सिक्का भी यहाँ से चलाया था। गढ़कटंगा के युद्ध में गढ़ामण्डला की राणी दुर्गावती से बुरी तरह परास्त होकर वह बड़ी कठिनाई से सारंगपुर भाग आया और बाद में माँडू गया। यह सुलतान पराक्रमी होने के बज़ाय अत्यन्त विलासी, कला-प्रेमी और मृगयाकुशल था। इसकी राणी रूपमती सारंगपुर ही की निवासिनी थी। सर जान मालकन ने उसे सारंगपुर की पातुर (नर्तकी) लिखा है, तो दूसरे एक अँग्रेज लेखक ने उसका मण्डलेश्वर (भूतपूर्व होलकर-राज्य का गाँव) के किसी राजपूत की लड़कीहोना बताया है। और एक किंवदन्ति के अनुसार उसका धरमपुर (भूतपूर्व धार-राज्य का गाँव) के ठाकुर की पुत्री होना प्रकट होता है। कुछ भी हो, रूपमती और बाज़बहादुर का पारस्परिक प्रेम अलौकिक था। लैला-मजनू की प्रेमकथाओं के सदृश इस प्रणयीयुग्म की भी प्रेमकथाएँ सर्व-प्रसिद्ध हैं। रूपमती अपने नामानुसार रूपसम्पन्ना तो थी ही; परन्तु उसके अतिरिक्त वह निपुण गायिका एवं प्रतिभावती कवयित्री भी थी। भूप कल्याण राग की सृष्टि उसी की ही बतलाई जाती है। अपने प्रेमनिधान बाज़बहादुर को लक्ष्य कर उसने बहुत सी कविताएँ रची थी, जिनका तरजुमा जनरल कनिंगहम ने अँग्रेजी में किया है। दूसरे भी एक अँग्रेज लेखक ने रूपमती-बाज़बहादुर की अलौकिक प्रणयकथा से प्रभावित होकर उस पर एक सुन्दर नाटक लिख डाला है। स्वयं बाज़बहादुर भी खूबसूरत और गायन कला-विशारद था। इसने ख्यालगायन की अपनी एक नई तर्ज़ निकाली, जो उसके नाम पर बाज़खानी’ कहलाती है। बाज़बहादुर और रूपमती अक्सर माँडू और सारंगपुर में ही रहा करते थे। शायद सारंगपुर रूपमती की जन्मभूमि होने के कारण ही इस प्रणयीयुग्म का सारंगपुर के प्रति विशेष प्रेम रहा होगा और उस समय सारंगपुर के भाग्य की पूर्ण मासी खिली होगी।

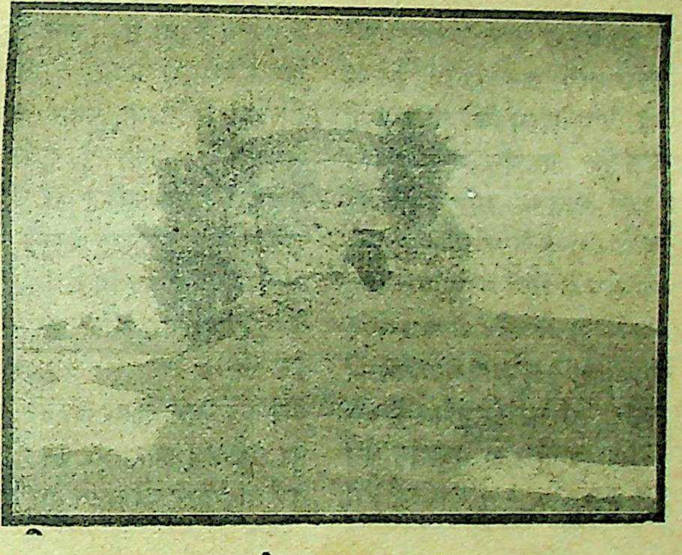

रूपमती का गुम्बज, सारंगपुर।

सन् १५६१ ई० में मुगल सम्राट् अकबर ने अपने सरदार अदमखाँ (अहमदखाँ कोका) को बाज़बहादुर पर हमला करने के लिए भेजा। उस समय सारंगपुर में मुगल सेना से बाज़बहादुर की सेना प्राणों की बाजी लगा कर लड़ी; किन्तु मुगलों की प्रचण्ड सेना के सन्मुख बाज़बहादुर को इनीगिनी सेना कब तक मुकाबला कर सकती थी? अन्त में बाज़बहादुर रणक्षेत्र को छोड़ बुरहानपुर की ओर भाग गया और रूपमती आदमखाँ के हाथों पड़ी। उसके अलौकिक

रूप को देख कर आदमखाँ मोहित हो उठा। उसने रूपमती को वश करने के लिए अनेक चेष्टाएँ की; किन्तु बाज़बहादुर के बिछोह में रूपमती ने शीघ्र ही प्राण विसर्जन कर दिये। 'आइने अक़बरी' के अनुसार रूपमती की कब्र उज्जैन में होना चाहिये; परन्तु सारंगपुर के लोगों में यह अनुश्रुति परम्परा से प्रचलित है कि उपर्युक्त घटना सारंगपुर ही के 'रूपमती गुम्बज' में घटी थी।

बाज़बहादुर की हार के पश्चात् मालवा मुग़ल साम्राज्य का सूबा बनाया गया। मालवे के पहिले मुगल सूबेदार ज़ाकोलीखाँ ने सारंगपुर ही अपना सदर मुकाम रखा था; किन्तु दूसरे सूबेदार 'अब्दुलख़ाँ ने माँडू को पसन्द किया था। सन् १५६४ ई० में मुग़ल-साम्राट् अकबर को पता चला कि अब्दुलखाँ ने दिल्ली दरबार के खिलाफ़ कुछ षड्यँत्र रचा है, तब उसे दण्ड करने के लिए स्वयं अकबर माँडू जाने को निकला। बरसात के दिन थे। रास्ते में काली सिंध नदी की बाढ़ ने सम्राट् को एक दिन के लिए सारंगपुर रुक जाने को बाध्य किया। सन् १५७३ ई० में सारंगपुर गुजरात के पदभ्रष्ट (Deposed) सूबेदार मुजफ्फरखाँ को जागीर में मिला और उसी की खानदान में वह बहुत दिनों तक टिका रहा। रामपुरे के इस्लाम धर्म ग्रहण करने वाले राजपुत्र रतनसिंह (मुस्लिमखाँ) ने अपने पिता गोपालसिंह के विरुद्ध विद्रोह किया और रामपुरे का राज्य पिता से ज़बरन छीन लिया। उसका साहस इतना बढ़ गया कि अल्पावधि में ही उसने मालवे के एक बड़े भारी हिस्से पर कब्जा कर लिया, जिसमें उज्जैन से लेकर सारंगपुर तक का मुल्क शामिल था। जब मालवे का सूबेदारी पर मुगल दरबार की आज्ञा से अमानतख़ाँ की नियुक्ति हुई तब इस नये सूबेदार ने थानेदार रहीमबेग को रतनसिंह पर हमला करने के लिए भेजा। रहीमबेग और रतनसिंह की सारंगपुर में ही मुठभेड़ हो गई। रतनसिंह ने रहीमबेग को हरा कर भगा दिया। पश्चात् स्वयं अमानतखाँ बड़ी भारी फौज लेकर आया। उसका मुक़ाबला सारंगपुर से १० मील दूर सुनेरा नामक स्थान पर हुआ, जिसमें रतनसिंह मारा गया और अमानतखाँ की पूर्ण जीत रही। इस लड़ाई के पश्चात् शीघ्र ही ता० ६ जनवरी सन् १७१३ ई० को डच यात्री केटोलार सुनेरा के पास से संयोगवश निकला था। उसने अपने यात्रा-विवरण में इस ताजी लड़ाई का हाल लिखा है। सन् १७२२ ई० में गुजरात का सूबेदार हैदरकुलीखाँ ने बड़ा ऊधम मचाया तब उसे पदच्युत करने के उद्देश्य से निज़ाम (जो कि उस समय बादशाह का वजीर था) दिल्ली से गुजरात जाने को निकला। मालवा में से गुजरते समय ता. ३० दिसम्बर सन् १७२२ ई० को उसने सारंगपुर में मुकाम किया था। सन् १७२६ ई० में पेशवा बाजीराव (प्रथम) के भाई चिमाजी आप्पा की अधीनता में होल्कर, सिन्धिया, पवार आदि मराठा सरदारों की सेनाओं ने मालवे के मुगल सूबेदार राजा गिरधर बहादुर पर आक्रमण कर उसे खास सारंगपुर में ही परास्त किया; परन्तु मराठे यहाँ अधिक ठहरे नहीं, लूटमार करते हुए आगे निकल गये। इसके बाद उन के सारंगपुर पर और तीन बार हमले हुए। सन् १७२९ ई० की १८ जनवरी को चिमाजी आप्पा, मराठों का एक दल साथ लेकर उज्जैन, शाजापुर होते हुए सारंगपुर पहुँचा। सारंगपुर का फ़ौजदार डरकर भाग गया, तब सारंगपुर को लूटते हुए मराठों का यह दल सिरोंज, अहीर वाड़ा की ओर निकल गया। पश्चात् सन् १७३१ की १६ जनवरी और ४ जून को मराठों ने सारंगपुर पर फिर से आक्रमण किया, किन्तु दोनों ही बार सूबेदार मुहम्मद खाँ बंगश ने उनका तगड़ा सामना किया, जिससे मराठों के ये दोनों हमले बेकार रहे। इसके बाद सन् १७३२ ई० की २२ जुलाई को मराठों ने तिरलाकी लड़ाई में विजय पाकर समस्त मालवा हस्तगत किया। तब मालवे के मुल्क़ की बटनी होल्कर, सिन्धिया और पवार (धार और देवास) इन सरदारों में की गई, जिसमें सारंगपुर देवास के पवारों को मिला और वह तबसे सन् १९४८ ई० में नई 'मध्य-भारत सरकार' बनने तक पवारों के ही अधिकार में रहा। बीच

में सन् १८०६ से १८०९ ई० तक इसे यशवन्तराव होल्कर ने दबा लिया था और करीमखाँ पिण्डारी को जागीर में देदिया था। सन् १८१४ ई० में दौलतराव सिन्धिया ने उसे करीमखां से छीन कर अपने कब्जे में रखना चाहा था, किन्तु शीघ्र ही यह फिर देवास के पँवारों को मिल गया। सन् १८८८ ई० तक देवास के बड़ी और छोटी पांती के नरेशों का संयुक्त अधिकार सारंगपुर पर रहा था। पश्चात इसकी बटनी होकर देवास राजधानी के समान यह भी दोनों पांतियों के सारंगपुर नाम के ही अलग-अलग परगनों का एकजाई सदर मुक़ाम रहा था। अन्त में सन १९४० ई० में देवास बड़ी पांती की सरकार ने, बदले में दूसरा मुल्क लेकर, सारंगपुर का अपना हिस्सा चूकता देवास छोटी पांती की सरकार को सौंप दिया था।

अस्तु। यहां तक सारंगपुर का ऐतिहासिक वृत्त-परिचय प्रस्तुत किया गया अब आगे यहां के ऐतिहासिक स्थानों की ओर बढ़ेंगे।

प्रारम्भ में ही हम कह चुके हैं कि इस समय सारंगपुर प्रायः उजाड़ सा हो रहा है, परन्तु यहां के पुरानी इमारतों के भग्नावशेषों को देख कर दर्शक सहसा अनुमान कर सकता है कि किसी जमाने में यह नगर बहुत बड़ा और सुन्दर रहा होगा। इसके भाग्य ने अवनति की ओर कब करवट बदली इसका पता नहीं चलता, परन्तु टिपेन्थलर तथा मैलेट और फोर्बस इन तीनों यूरोपीय यात्रियों ने क्रमशः सन् १७५० ई० और सन् १७८२ ई० में सारंगपुर आकर यहां का आँखों देखा हाल अपने-अपने ग्रन्थों में लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय भी सारंगपुर की दशा बिगड़ी हुई थी। अनुमान है कि मराठों के बारम्बार किये गये हमलों ने सारंगपुर की शुरू में बरबादी की होगी और बादमें इसकी तरक्की की ओर पँवार सरकार का उचित ध्यान न रहा होगा।

वास्तव में सारंगपुर ने अच्छे दिन तभी देखे होंगे जब कि मालवा में मुसलमानों की तूती बोलती थी और उनका प्रताप-रवि मध्यान्ह की ओर अग्रसर हो रहा था। शुजावलखां और बाजबहादुर इन पिता-पुत्रों ने सारंगपुर की प्रगति में यथावत् सहायता की थी। उनके समय में हाजीपुर, सय्यदाबाद, किसनपुरा, कीड़ी, नजीबाबाद आदि सारंगपुर के अगल बगल के गांव खास सारंगपुर शहर के ही मोहल्ले रहे थे। सारंगपुर में शेख सैयद, मुगल और पठान इन चारों फिरकों के मुसलमानों की बस्ती अधिक प्रमाण में होकर हिन्दू लोगों की बस्ती बहुत कम है। वैसे ही यहांकी पुरानी इमारतों के अवशेषों में मुसलमानी इमारतों के ही अवशेष ज्यादा पाये जाते हैं। इस समय भी यहां ऐसे कई पुराने मुसलमान खानदान मौजूद हैं जिनके बुजुर्गों ने भोपाल, गवालियर, इन्दौर, धार देवास, नरसिंहगढ़, राजगढ़ आदि रियासतों में वफादारी और बहादुरी के काम करने के कारण जागीरी पाई हैं। शीया पंथी काजी लोगों की भी सारंगपुर में पहिले काफी बस्ती थी, जिनका किसी जमाने से काजीवाड़ा नाम का एक अलग मोहल्ला ही यहां बसा है।

इतिहासों में और जनश्रुतियों में बाजबहादुर-रूपमती के नाम जितने मांडू के साथ जुड़े हुए हैं उतने ही सारंगपुर के साथ भी जुड़े हुए हैं; परन्तु इस समय सारंगपुर में उनके शाही महल का कहीं नाम निशान भी नहीं रहा है। सिर्फ—

रूपमती का गुम्बज

जो गांव के पूर्वी सीमान्त पर एक छोटी-सी तलैया के बीच गई गुजरी हालत में खड़ा है। सारंगपुर के लोग कहते हैं कि बाजबहादुर का वियोग-दुःख असह्य होकर रूपमती ने इसी स्थान पर देहत्याग किया था। इस इमारत का गुम्बज नष्ट हो गया है। इसके चारों दिशाओं में चार द्वार हैं। पूरब की ओर एक छोटा सायबान है। इसका पार्श्व भाग पत्थर का

बनाया गया है, शेष ईंट और चूने का तैयार किया हुआ है। एक स्मारक होने के अतिरिक्त अब इसमें और कोई विशेषता नहीं रह पाई है।

रूपमती के गुम्बज के समान यहाँ पर और भी ७-८ गुम्बज हैं जिनमें से एक

पहलवान का गुम्बज

रूपमती के गुम्बज से कुछ दूरी पर गांव के बाहर खड़ा है। यहाँ के अन्य गुम्बजों की तरह ही इसकी बनावट है। इसका सदर दरवाजा दक्षिण की ओर है। इसकी दीवाल में सन् ८९९ हि० (सन् १४९६ ई०) का एक फारसी शिलालेख है, जिससे पता चलता है कि मालवे के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी के कार्यकाल में पाठशाला के लिए इस इमारत का खास तौर पर निर्माण हुआ था। सारंगपुर के लोग अभी भी इसे 'महमूद का मदरसा' के नाम से पुकारते हैं। उक्त लेखकी इबारत का तर्जुमा किसी बोहरा जाति के कवि ने इस प्रकार किया है:—

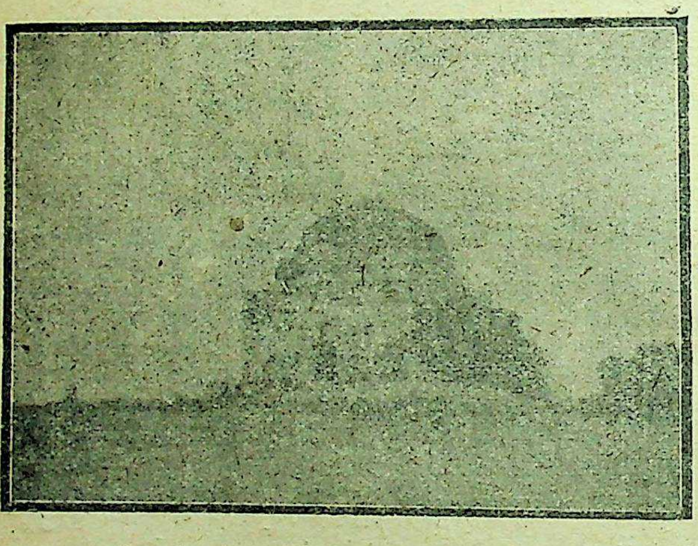

पहलवान का गुम्बज, सारगपुर

व एबाहदे शाह गयासुद्दीन खिलजी
शुदाई मद्रसा तयारो महज्मे
सिमाने सायता तिसआ बतीसई
ज ज़ाले हिजन्ते शाहे दो अलम।

पीर धुसमखाँ का गुम्बज

रूपमती के गुम्बज से लगभग १ मील दूर है। इसका निर्माण पठान-शिलपशैली के अनुसार वर्गाकार कियागया है। इसकी चारों ओर मेहराबें हैं। इस समय तो यह इमारत बिलकुल गिरी हुई अवस्था में है

पीर माक्षम का गुम्बज

रूपमती का गुम्बज और पहलवानका गुम्बज़ इन दोनोंके बीच तिरछी लाइन में यह गुम्बज़ खड़ा है। इसकीहालत इतनी बिगड़ चुकी है कि अब वह दुरुस्ती के लायक भी नहीं रहा है।

सय्यद चाँद का गुम्बज

यह गुम्बज रूपमतीके गुम्बज से कुछ फासले पर एक तरफ है। सय्यद चाँद मालवे का एक मुगल-हाकिम था। उसकी यादगार में यह गुम्बज बनवाया गया है।

छनहारी-पनहारी के गुम्बज

ये दोनों गुम्बज किन्ही लाड़ली बहिनों के समान

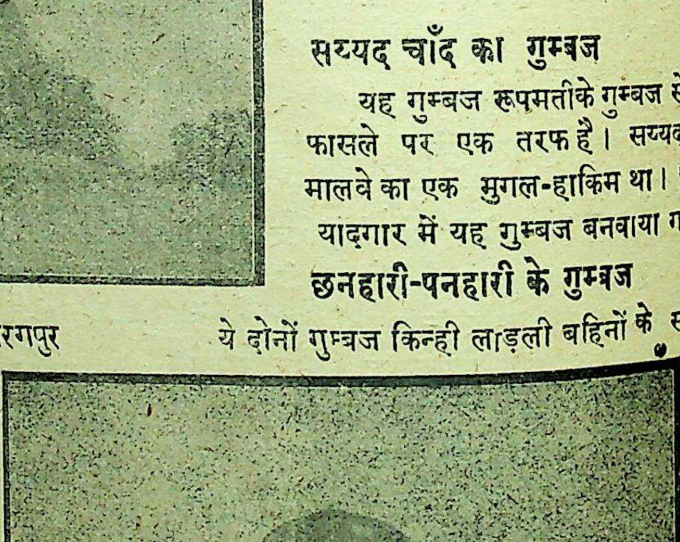

छनिहारी का गुम्बज

पास-पास काली सिन्ध नदी के किनारे खड़ी हैं। बाम्बे आग्रा रोड से इनका दर्शन बराबर होता है। इनकी कारीगरी एकसी है और उसमें पठान शिल्प शैली की झलक है। छनहारी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह एक बड़ी धार्मिक धोसन थी और उसने कण्डे बेचकर जो धन इकट्ठा किया था वह उसके मरने पर इस गुम्बजके बनाने में उसकी इच्छानुसार लगाया गया। ऐसा ही किस्सा पनिहारी के विषय में भी सुनाया जाता है। पनहारी एक भिस्तिन थी। उसने पखाल से पानी भरने के धन्धे में जो धन कमाया था वह सब उसके पश्चात् उसकी यादगार में इस गुम्बज खड़े करने में व्यय किया गया।

पीर मिट्ठनशा का गुम्बज

यह गुम्बज छनहारी-पनहारी गुम्बजों के पासही है। मिट्ठनशा सारंगपुर के एक अवलिया थे। सूबेदार शुजावलखाँ की इनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। इस गुम्बज के पास एक और गुम्बज है जो--

पीर ढोकले का गुम्बज

क़हलाता है। सुना है कि गुम्बज सारंगपुर के एक हाजी अब्दुल्लाशा की यादगार में निर्माण किया गया है। ढोकला अब्दुल्लाशा के ख़ास अफगान ख़ानदान की पदवी थी।

इन गुम्बजों के अलावा और कुछ टूटे-फूटे गुम्बज गाँव के आसपास दिखाई देते हैं, परन्तु न तो उन्हें कोई जानता है न पहचानता है। इनके सिवा मुस्लिम जमाने के महत्व के और तीन स्थान हैं—पीरझैनखाँ की भट्टी, लाल हजिरा और जामा मसजिद।

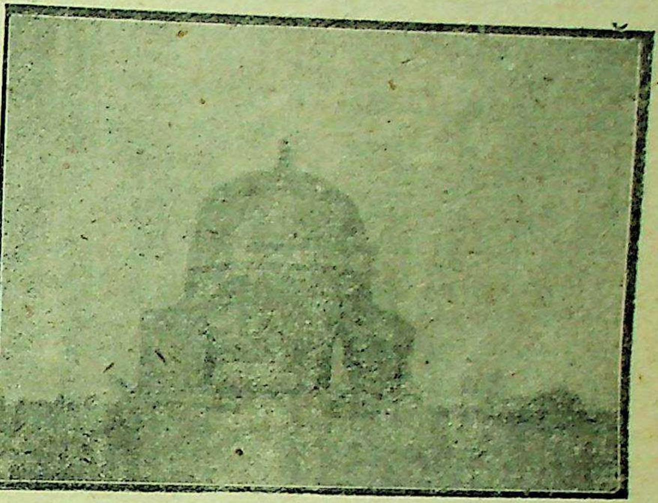

पनिहारी का गुम्बज, सारङ्गपुर

पीर झैनखाँ की भट्टी

यह स्थान गाँव के बाहर दक्षिण-पश्चिम कोण में

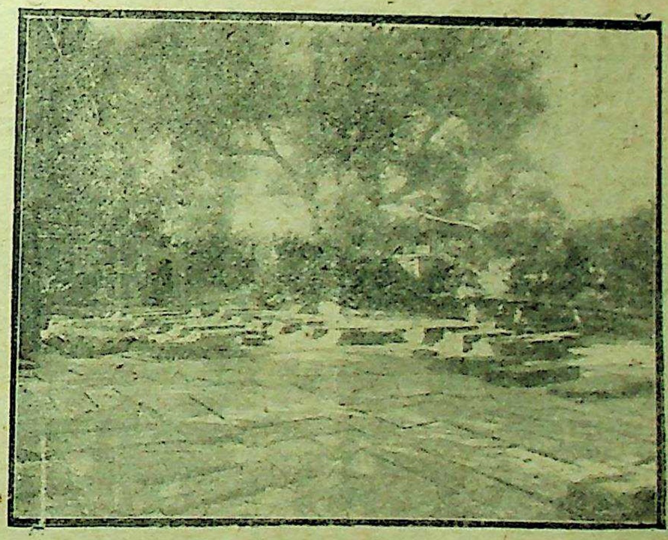

पीर झैनखाँ की भट्टी

है इसका 'भट्टी' कहलाने से क्या मतलब है, नहीं मालूम। लेकिन यहाँ की कब्रें और झैनखाँ नाम से यह अवश्य जाना जासकताहै कि किसी एक झैनखां नामके पीर और उनके खानदान के लोगों का यह खास कब्रस्तान था। सारंगपुर का यह एक अजीब स्थान होते

हुए भी मुद्दतों से बेगौर हालत में है। इसके बाहर और भीतर जंगल उग गया है।

इसके लगभग ७०×९० फीट लम्बे-चौड़े आंगन में की सभी कब्रें टूट-फूट गई हैं। आंगन के पीछे खुली मसजिद है, उसके भी अंग-भंग हो गये हैं। इस स्थान की दीवार में उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व के कोने के गुम्बज नहीं रहे हैं। इसी प्रकार दक्षिणोत्तर दीवार के बीच में का गुम्बज भी नष्ट हो गया है। इस स्थान के भीतरी आँगन में जाने का दरवाजा बहुत बढ़िया है। उसके तीन मञ्जिल हैं। दरवाजे के खम्भे, जालीदार खिड़कियाँ, बगल की कोठरियों के ऊपर का चबूतरा, तीसरे मञ्जिल तक जाने की सीढ़ियाँ, पूर्व और पश्चिम का मेहराबदार सायबान (जिस पर गुम्बज खड़ा है) देखने योग्य हैं। कहते हैं कि इस स्थान पर एक शिलालेख था, परन्तु उसे कोई उठा ले गया।

लाल हजिरा

यह इमारत काली सिन्धनदी के पास छनहारी- पनहारी के गुम्बजों के पीछे है, और बाम्बे-आग्रा रोड से साफ दिखाई देती है। किस मतलब से इसका नाम 'लाल हजिरा' रक्खा गया है, नहीं मालूम। यद्यपि इस समय यह इमारत मसजिद के रूप में खड़ी है; किन्तु कहा जाता है कि यह मूल में शाही हमाम खाना या हवामहल था। यह किसका बनाया हुआ है पता नहीं। इसके सामने एक आंगन है, जहां प्रवेश करने के लिए एक गुम्बज वाला द्वार ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। इस गुम्बज की छत १६ खम्भों पर आधारित है। ये खम्भे एक पांती से चार-चार करके आमने-सामने खड़े किए हुए हैं। मसजिद के पीछे भी दो गुम्बज खम्भों पर स्थित है।

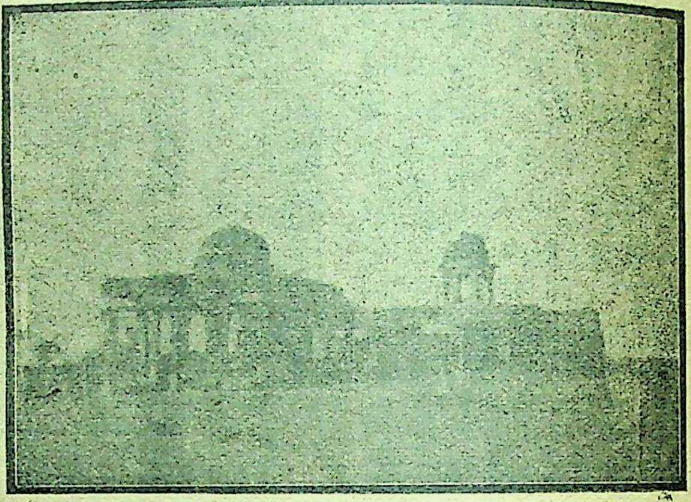

लाल हाजरा, सारङ्गपुर

जामा मसजिद

यह इमारत सारंगपुर की पुरानी इमारतों में से एक है और गांव के मध्य में स्थित है। सम्पूर्ण काले पत्थर की बनी हुई होने के कारण यह 'काली-मसजिद'

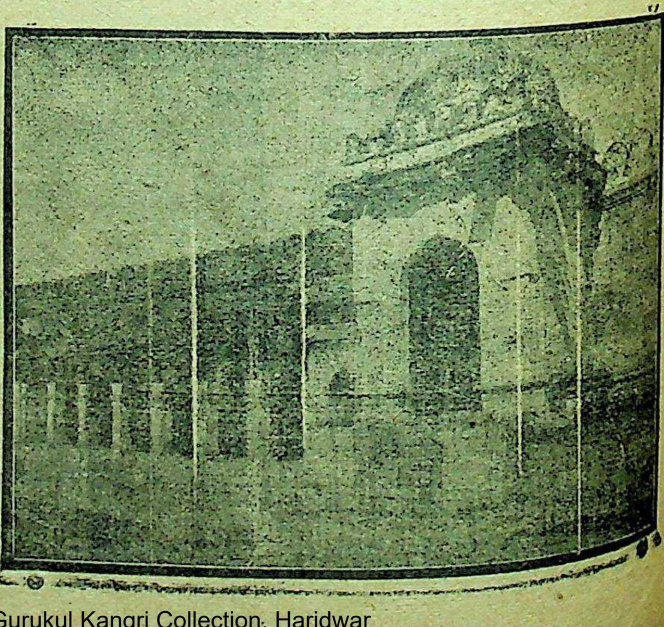

भी कहलाती है। सूबेदार जाकोलीखां के समय में इसका निर्माण कराया गया था। इसमें सन् १०४३ हि० (सन् १६४० ई०) का एक फारसी शिलालेख है; परन्तु इसकी लिपि घिस जाने के कारण यह पढ़ा नहीं जा सकता। मसज़िद के चारों ओर कँगोरेदार विशाल एवं सुदृढ़ दीवार बनी हुई है। दीवार में तीन ओर गुम्बजदार दरवाजें हैं, जिनमें से दक्षिण का दरवाजा अच्छी हालत में है। कुछ समय पहिले सारंगपुर के मुसलमानों ने चन्दा इकट्ठा कर इस मसजिद की मरम्मत करवाई थी, जिसके कारण यह अभी भी मजबूत दिखाई देती है।

हिंदू एवं जैन धर्म-स्थान

अस्तु! अब सारंगपुरके हिन्दू एवं जैन धर्मस्थानों का निरीक्षण करेंगे। हिन्दू स्थानों में नीलकण्ठेश्वर, तिलभाण्डेश्वर एव कपिलेश्वर ऐसे तीन शिवालय और देवी तथा मारुती के पुराने स्थान यहां पर हैं और ये सब बिलकुल मामूली बने हुए हैं। नीलकण्ठेश्वर तथा तिल भाण्डेश्वर गाँव के उत्तर-पूर्व सीमान्त पर हैं और वे ३००-३५० वर्ष के पुराने मालूम होते हैं। कपिलेश्वर का मन्दिर लगभग २०० वर्ष पहिले कालीसिन्ध नदी की धारा के बीचोबीच देवास (जूनियर) राज्य के आदि पुरुष श्रीमन्त जीवाजीराव (प्रथम, पँवार का निर्माण किया हुआ है। देवी और मारुती के मन्दिर काली सिन्ध नदी के किनारे एक टीले पर बने हुए हैं। जो उपर्युक्त शिवालयों के समकालीन होना चाहियें।

सारंगपुर में श्रीशीलनाथ महाराज की धूनी भी एक अर्वाचीन दर्शनीय स्थान है। यह धूनी कालीसिन्ध नदी के किनारे एक ऊँचे स्थान पर है। श्रीशीलनाथ महाराज अभी-अभी एक बड़े तपस्वी और सिद्ध पुरुष हो गये हैं। मालवे में सब दूर इनकी बड़ी ख्याति है! धूनी से नदी का पात्र और चतुर्दिक दृश्य देखते ही बनता है।

सारंगपुर में जैनों का एक भी पुराना मन्दिर नहीं है; परन्तु यहाँ पर दो सुन्दर अखण्ड तीर्थंकरों की प्राचीन प्रतिमाएँ पाई गई हैं, जो एक नये जैन मन्दिर में सुरक्षित और प्रतिष्ठित हैं। इनमें से एक प्रतिमा पर सम्वत् ११७८ (सन् ११२१ ई०) और दूसरी पर सम्वत् १३१९ (सन् १२६२ ई०) खुदा है।

गाँव के उत्तर में बाम्बे-आग्रा रोड़ के पास (नजीबाबाद में) मोडों का 'दूध तलाई' नामक एक प्राचीन स्थान बतलाया जाता है। कहते हैं कि पहिले किसी समय में सारंगपुर में मोडों की अच्छी बस्ती थी और 'दूध तलाई' के सम्मुख उनका एक बड़ा भारी मन्दिर था। परन्तु इस समय वहाँ पर न तो कोई 'दूध तलाई' का निशान है, न मन्दिर का।

सारंगपुर में पहिले मुसलमानों के समय का एक छोटासा क़िला था और शहरपनाह भी थी। इन दोनों के कुछ चिन्ह अभी भी विद्यमान हैं। किले का पश्चिमी दरवाज़ा अपने भग्नांश को सम्भालता हुआ जैसे-तैसे खड़ा है। दरवाज़े पर एक शिलालेख है, जिसमें इसकी मरम्मत सन् १५७८ ई० में की जाने का हाल लिखा है। क़िला विशेष सुदृढ़ न होने के कारण इस पर होने वाले हर एक हमले के वक्त वह ख़िज़ा होता रहा और सन् १८५७ ई० के बाद केवल उसका यह पश्चिमी दरवाज़ा छोड़कर वह सारा का सारा धूल में मिल गया। शहरपनाह की हालत भी उसी तरह बिगड़ती गई और अब तो उसके बहुत कम चिन्ह दिखाई देते है। कहते हैं कि क़िला औह शहरपनाह के निर्माण में जो मालमसाला उपयोग में लिया गया था वह सारंगपुर से कुछ दूरी पर स्थित तिंगजपुर (भूतपूर्व होलकर-राज्य का गाँव) के मन्दिरों और हवेलियों को तोड़-फोड़ कर यहाँ लाया गया था।

सारंगपुर में मालवे के सुलतानों और दिल्ली के बादशाहों के सिक्के बहुत पाये गये हैं। बाजबहादुर के समय में और मुगल अमलदारी में यहाँ पर टकसाल भी थी। परन्तु इसके बहुत पेश्तर के ईसा पूर्व १००० से लेकर ई० स० ५०० तक के चलन के कई हिन्दू और अन्य शासकों के सिक्के भी यहाँ प्राप्त हुए हैं। कहा जाता है

कि लगभग ७५ वर्ष-पूर्व यहाँ के एक मुसलमान के पास, जोकि पुरानी लिपियों का और सिक्कों का स्वयं अच्छा जानकार था, प्राचीन सिक्कों का बहुत भारी संग्रह था। हरसाल बरसात के दिनों में वह काली सिन्ध नदी के समीप वाले टीलों के पास जालें डालकर सिक्के इकट्ठा किया करता था। लगातार १५-२० साल के इस उद्योग में उसका किया गया हुआ सिक्कों का संग्रह कई अँग्रेज और भारतीय पुरातत्व प्रेमी अपनी-अपनी रुचिअनुसार उससे खरीद ले गये।

सारंगपुर महीन और सफाईदार पोत के सूती कपड़े के लिए मुद्दतों से विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ की पगड़ियों, साडियों तथा दुपट्टे की भारत भर में खपत थी। अँग्रेज पर्यटक फोर्बस ने सन् १७८५ ई० में सारंगपुर का ऊँचा और सुन्दर कपड़ा अल्प मूल्य में मिलने का हाल अपनी पुस्तक में लिखा है। जनश्रुति है कि सारंगपुर के किसी जुलाहे ने एक पगड़ी आम की गुठली के भीतर रखकर पेशवा सरकार को भेंट की थी। २० वीं सदी के आरंभ से ही यहाँ के जुलाहों का धन्धा शनैः शनैः डूबने लगा और वर्तमान युग की यंत्रकला ने तो उस धन्धे के पैर ही उखाड़ दिये; परन्तु अब स्वतंत्र भारत में सारंगपुर के इस अपने पुराने धन्धे का पुनरुज्जीवन होना नितान्त आवश्यक ही नहीं, अभीष्ट भी है।

अन्त में हमें यहाँ पर एक बात का बड़ा आश्चर्य मालूम होता है कि सारंगपुर पर लगभग ४०० वर्ष तक मुसलमानों का अधिकार बराबर जारी रहा। इस लम्बे अर्से में इसका हिन्दू रूप पलट कर वह पूरी तौर से इस्लामी ढंग का बन गया, किन्तु इसका 'सारंगपुर' नाम जैसा का तैसा कायम रहा। मुसलमानों के द्वारा इस नाम के प्रति पराया भाव क्यों नहीं बरता गया यह खुदा या भगवान् ही जाने। अस्तु। वैभव और कला की गोद में एक जमाने में पली हुई इस नगरी की वर्तमान दुर्दशाको देखकर शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो अपने हृदयमें दो-चार आहें भरते हुए दुःख से सहसा बोल नहीं उठेगा—

"कालाय तस्मै नमः।"

वह कवि हो गया सरकार !

[श्री रामनारायण उपाध्याय]

एक साहित्यिक मित्र के यहां, पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त और निराला जी आदि को चाय के लिए बुलाया गया था और साहित्यिक चर्चा चल रही थी।

इसी बीच उनका नौकर चाय की ट्रे लेकर कमरे में दाखिल हुआ, तो पन्त जी ने उसकी ओर मुखातिब हो गहरी आत्मीयता लिए हुए पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है भाई ?"

बोला—"मैकू, सरकार।"

परिचय को गाढ़ा करते हुए उन्होंने पूछा—"क्या तुम अकेले ही हो मैकू ?"

केतली से चाय उंडेलते हुए उसने कहा—'नहीं सरकार, एक मां है, एक बिटिया है सयानी उमर की और दो भाई हैं।"

पूछा पन्त जी ने—"कमाने वाले तुम अकेले ही हो क्या ?"

कहा उसने—"बड़ा भाई खेती में हाथ बटाता है और छोटा हुआ-न-हुआ बराबर है सरकार।"

सबने अनुभव किया कि मैकू का छोटा भाई आवार हो गया है; फिर भी पन्तजी ने पूछा—"क्यों क्या बात है मैकू भाई ?"

सहज भाव से मैकू ने कहा "—अरे सरकार, वह तो कवि हो गया।"

सुनते ही जो ठहाके उठे, तो सारा हाल गूँज गया और निराला जी ने अपनी कुरसी से उचक कर एक हाथ से अपनी छाती और दूसरे हाथ से उसकी पीठ ठोकते हुए कहा—"शाबाश बेटा !"

मैकू भौंचक था कि मैंने क्या कह दिया और सब हँस रहे थे, रुक-रुक कर हँसे जा रहे थे।

वर्षों हुए मेरे मित्र गोपाल बाबू ने यह संस्मरण सुनाय था। आज भी यह याद आता है, तो मैं हँस पड़ता हूं।

'नयाजीवन'

"महामालव की साहित्य-साधना"

श्री ० रतनलाल परमार

महामालव, देश का हृदय

मालव प्रदेश, देश के केन्द्र में स्थित है, अतः, वह भारतवर्ष का हृदय माना जाता है। हृदय, उद्दाम भावनाओं, मर्म स्पर्शी संवेदनाओं और रसात्मक अनुभूतियों का महान् केन्द्र स्थल है। शरीर में जिस प्रकार से जीवन के लिये हृदय का महत्वपूर्ण स्थान है उसी प्रकार से देश की गौरव महिमा के लिए महामालव की महत्ता भी स्वीकार करना श्रेयस्कर है।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब

साहित्य, देश-काल और समाज का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य की दृष्टि से यदि हम महामालव की समीक्षा करें, तो यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि, वह अतीत काल में दीन-हीन अथवा दरिद्री नहीं था! महामालव ने अपनी तपस्या, प्रतिभा और साधनाके बल पर 'न केवल भारतवर्ष को ही, किन्तु, सम्पूर्ण विश्व को अत्यन्त महत्वपूर्ण साहित्य, महान गवेषणापूर्ण विज्ञान और भक्तिभाव पूर्ण शाश्वत ज्ञान की राशि प्रदान की है।

महामालव का सपूत कालिदास

महामालव अपने उन सपूत साहित्यकारों और कलाकारों को कदापि विस्मरण नहीं कर सकता जिन्होंने मालव मेदिनी को अपनी असीम साधना से कृतार्थ कर दिया है। महामालव को निस्सीम गर्व है अपने कवि-कुल शिरोमणि रस-सम्राट महाकवि श्री कालिदास पर, जिन्होंने विश्व साहित्य में अभिज्ञान शाकुन्तल जैसा नाट्य ग्रन्थ प्रस्तुत किया।

ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर

ऐसा कौन मालवीय होगा जिसको अपने महान् ज्योतिषाचार्य श्री वराह मिहिर पर गौरव का अनुभव नहीं होता होगा। वराह मिहिर ने विश्व विज्ञान में एक ऐसी देन दी है जो चिरकाल तक जगत कल्याण करती रहेगी! राजर्षि श्री भर्तृहरि का पुनीत नाम श्रवण करते ही किस मालवीय नागरिक का वक्षस्थल विस्तीर्ण नहीं हो जाता होगा। जिन्होंने ज्ञान शतक, वैराग्य शतक, नीति शतक और श्रंगार शतक जैसे जटिल जीवन की महान अनुभूतियों से परिपूर्ण विचार और भाव-ग्रन्थ जगत को प्रदान किये हैं।

लेखक

साहित्य मर्मज्ञ नृपति

महा मालव को जितने गर्व और गौरव का अनुभव साहित्यकारों, कलाकारों और रस-सम्राट कवीश्वरों पर होता है उससे किंचित् भी न्यून भावनाओं का अनुभव अपने साहित्य मर्मज्ञ नृपतियों पर नहीं होता, जिनके आलम्बन से साहित्य, संस्कृति और कला ने परम उन्नति और चरम विकास साध्य किया। धारा नगरी के महामना, साहित्य और शिक्षा प्रेमी राजा भोज और महान् कला मर्मज्ञ राजामुंज का कौन गुणगान नहीं करेगा जिनके समस्त राज्य में अनिवार्य शिक्षा प्रचलित थी और कवियों तथा साहित्यकारों का जहां अतुलित मान-सन्मान होता था। प्रातः स्मरणीय "पर दुख

भंजन" महान पराक्रमी और परम परोपकारी महाराजा विक्रमादित्य को महामालव 'यावद्चन्द्र दिवाकरौ', भक्ति भाव से भजता रहेगा जिनके सुखद और उदार आश्रय में साहित्य, संस्कृति और कला ने सखाद उर्वरा भूमि में स्नेह सिंचित लता वितान जैसा चरमोत्कर्ष प्राप्त किया था।

ज्ञात-अज्ञात कवि

महामालव में ऐसे ही और भी अनेक ज्ञात-अज्ञात रस-सम्राट कवि, सरस साहित्यकार, और ज्ञान-विज्ञान के महान आचार्यों ने जन्म धारण किया था जिनको पाकर कोई भी धरा-धाम कृत्य-कृत्य हो जाता है। यह मालव के लिए दुर्भाग्य का ही विषय है कि, सदैव, विस्मरणीय कुटिलकाल ने हमारे सन्मुख कोई क्रमबद्ध और लिपिबद्ध स्मृति प्रस्तुत नहीं रखी।

महामालव और राजस्थान

महामालव जिस प्रकार से अनेक छोटे-छोटे राज्यों और इकाइयों में शताब्दियों से विभाजित रहा उसी प्रकार से राजस्थान भी अनेक राज्यों में भाजित होता रहा किन्तु इस विषय में राजस्थान और महामालव में प्रायः यह अंतर रहा कि राजस्थान के राज्यों के शासक तद्देशीय रहे और महामालव के शासक विधर्मी, विभाषी और इतर प्रान्तीय रहे, परम पराक्रमी और परोपकारी परमारों के शासन के पश्चात इस महामालव के लिए साहित्य, संस्कृति और कला की दृष्टि से महान अन्धकार का ही युग रहा है परमारों के एतद्देशीय शासन के पश्चात ज्योंही विधर्मी और विदेशी शासन स्थापित हुआ, त्योंही मालव की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का ह्रास प्रारम्भ हो गया था! विभाषी यवन शासकों ने मालव संस्कृति की उपेक्षा की और यवन संस्कृति की स्थापना के प्रयत्न किये। मुस्लिम शासकों ने मालवीय साहित्य और कला की भी बुरी तरह से अवमानना की और मुस्लिम कला को प्रदेश में सर्वाङ्ग प्रोत्साहन दिया। इसी प्रकार से मुस्लिम शासन काल में अन्य देशों की ही भांति महामालव की राज भाषा भी अरबी, फारसी अथवा उर्दू ही रही जहां तक उल्लेख किया जाय मुस्लिम शासन काल में मालवीय साहित्य, संस्कृति और कला की उनके प्रत्येक क्षेत्र में घोर अवनति हुई और उनका स्थान लेती रही वे अवांछनीय प्रथाएं और वे कलाएं जो हमारे अपनत्व और ममत्व की अभिव्यक्ति के लिये प्रतिकूल थी।

भारतीय संस्कृति का उदार पृष्ट

मुस्लिम शासन काल में जिस साहित्य, संस्कृति और कला की उन्नति हुई है उसको यद्यपि मैं महामालव की उन्नति की दृष्टि से अनपेक्षित मानता हूँ, किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि, उस काल में जो कुछ सृजन हुआ है वह हमारे इतिहास का एक महान् अंग और परम उदार भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पृष्ठ है।

मराठा शासन काल

मुस्लिम शासन के पतन के पश्चात् महामालव पर मराठों ने अपना आधिपत्य जमा लिया था। महामालव के साहित्य, संस्कृति और कला के लिए जिस प्रकार से मुस्लिम सत्ता विनाशक सिद्ध हुई उसी प्रकार से मराठा शासन काल भी अभिशाप के ही रूप में लिखा जावेगा। जिस प्रकार से अल्प संख्यक मुस्लिम शासकों ने अपनी राजकाज की भाषा बहुसंख्यक मालवीयों की उपेक्षा करके अरबी, फारसी और उर्दू रखी थी। उसी प्रकार से मराठा लोगों की भी, अपनी राजकाज की भाषा मराठी और मोड़ी लिपि थी। मराठी लोगों के शासन ने चाहे हमारे धार्मिक भावनाओं को कोई हानि नहीं पहुँचाई हो, भारतीय संस्कृति को भी मराठा शासन से कोई ठेस नहीं पहुंची हो, किन्तु यह निश्चित कहा जा सकता है कि मराठा काल ने भी मालवीय, साहित्य, संस्कृति और कला के उन्नयन के लिए कोई प्रयास नहीं किया। अपितु इनकी उपेक्षा और हानि ही की!

राजस्थान का सौभाग्य

छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित रहते हुए भी राजस्थान का यह सौभाग्य ही था कि वहाँ के राजा लोग तद्देशीय थे और वे राजस्थानी साहित्य, संस्कृति तथा कला से पूर्णतया प्रभावित थे। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्य, संस्कृति

और कला की राजस्थान में चाहे परम उन्नति नहीं हुई हो किन्तु, फिर भी वहाँ के शासकों ने उनकी उपेक्षा नहीं की और मन्द प्रयत्नों से भी वे राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और कला को कुछ न कुछ प्रश्रय देते ही रहे। इस दृष्टिकोण से मरु देश होते हुए भी आज राजस्थान साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में जितना सम्पन्न है उतनी शस्य-श्यामला और उर्वरा मालव मेदिनी नहीं है। यह दुःख का विषय है किन्तु है ऐतिहासिक और कटु-सत्य ही!

महामालव में प्रतिभा

महामालव में ऐसा क्षेत्र और ऐसे तत्व प्रचुरता से विद्यमान हैं कि, यदि उनको समुचित रूप से संगठित किया जाय, सम्यक प्रोत्साहन दिया जाय और अनुकूल प्रश्रय दिया जाय तो मालवीय संस्कृति के उन्नायक, मालवीय कला के पुजारी और मालवीय साहित्य के सर्जक ऐसे भावों और विचारों की राशि ज्ञान-दान में दे सकते हैं, जो न केवल इस प्रान्त और देश की ही गौरव-गरिमा के अनुरूप होगी वरन् समस्त विश्व के लिए भी वह गर्व की वस्तु होगी।

मालवी भाषा का पत्र

मालवीय भाषा और साहित्य के उत्कर्ष के लिए उसका मौलिक इतिहास लिखा जाना चाहिए। मालवी भाषा का एक सुन्दर और विशाल शब्द कोष प्रणयन किया जाना चाहिये और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये मालवी भाषा का एक सुन्दर और सुरुचिपूर्ण शासकीय पत्र भी प्रकाशित किया जाना चाहिये। यदि शासन अभी कोई नया पत्र प्रकाशित करने में असमर्थ हो तो प्राचीन पत्र "मध्य-भारत सन्देश" को ही मालवीय पत्र के रूप में परिवर्तन कर देना चाहिये। यह भी अनिवार्य और आवश्यक है कि मालवीय साहित्य के उत्कर्ष के लिये मालवी भाषा का व्याकरण लिपिबद्ध किया जाना चाहिए और मालवी साहित्य का तथा उसके मुहावरों का बृहत् संकलन भी तैयार किया जाना चाहिए। शासन का यह महान् नैतिक और अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह साहित्य, संस्कृति और कला के उन्नयन के लिये हार्दिक और ठोस प्रयत्न करे।

महामालव का सौभाग्य

यह महा मालव का सौभाग्य ही है कि शताब्दियों के पश्चात् विजातीय और विभाषीय शासन से अब उसको मुक्ति प्राप्त हुई है। आज महामालव का शासन पूर्णतया मालवीयों के आधिपत्य में है, अतः यदि मालवीय सपूत चाहे तो अपने साहित्य, संस्कृति और कला के उत्थान में ऐतिहासिक और उल्लेखनीय भाग अदा कर सकते हैं। मालवीय अपनी संस्कृति और कला की उन्नति के लिए प्रयत्न नहीं करें यह स्वाभाविक नहीं माना जा सकता।

महान् भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति और कला, मालवीय संस्कृति और कला से पूर्णतया संश्लिष्ट है और इसीलिए वे परस्पर पृष्ठ-पोषक भी हैं।

हमारी प्रान्तीय भाषाएँ और उनका साहित्य, प्रादेशिक वातावरण एवं भावनाओं से ओत-प्रोत कला के सृजन तथा देश काल के अनुसार स्थानीय, रीति, नीति और उनके संस्कार ये सब भारतीय संस्कृति के ही अंग हैं। भारतीय संस्कृति ऐसे ही अनेक अंगों उपायों से महान्, सहिष्णु और परम उदार बनी हुई है। प्रादेशिक साहित्य, संस्कृति और कला के उन्नयन का यह अर्थ और आशय कदापि नहीं है कि हम प्रादेशिक, संकुचित किंवा संकीर्ण वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं; अपितु सदाशय यह है कि हम अपने अंगो-उपांगों को पुष्ट, बलवान और समर्थ बना कर अपनी मूल संस्कृति को ही महा-मृत्युञ्जयी विश्व संस्कृति और शाश्वत मालव संस्कृति के रूप में जगत् में प्रस्थापित करना चाहते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति, अपनी उदारता और सहिष्णुता के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से अद्यावधि महामालव संस्कृति के रूप में ही संसार में प्रभावित रही है; किन्तु अंगों उपांगों की दुर्बलता ने ही उसको संकट काल में किंचित लुप्त प्रभाव वाली बना दिया था। मैं आज इस अंग की दुर्बलता को निकाल कर भारतीय संस्कृति को जगत भर में प्रभावशाली बनाने के लिये ही प्रादेशिक साहित्य,

संस्कृति और कला की उन्नति के लिये अपने विचार और भाव व्यक्त कर रहा हूँ ।

सनातन संस्कृति और शाश्वत् साहित्य

साहित्य संस्कृति और कला का कदापि अवसान नहीं होता काल क्रम की गति और परिस्थितियों के कारण यह हो सकता है कि, कभी उनकी धारा प्रबल वेग से प्रभावित हो और कभी मन्द रूप से । कभी यह भी सम्भव हो सकता है कि, मानव की इन उच्चतम और सात्विक प्रवृत्तियों के रूपों में यत्किंचित् परिवर्तन एवं अन्तर भी आ जाय । महा मालव के अपने शासन काल में साहित्य, संस्कृति और कला ने परमोत्कर्ष प्राप्त किया था तो मुस्लिम और मराठा शासन काल में तथा आंग्ल प्रभाव में साहित्य और कला की अजस्र धारा मन्द-मन्द ही प्रभावित होती रही; किन्तु वह मृत्यु-मुख को प्राप्त नहीं हुई । साहित्य, संस्कृति और कला का वास्तविक क्षेत्र जन-मन-मानस और उसका हृदय होता है, अतः ये शाश्वत रहे हैं और संसार तथा मानव वंश के साथ ये अजर अमर ही रहेगें ।

मालवीय कला ग्रामों में जीवित

विजातीय, विदेशीय और विभाषीय शासन काल में हमारी संस्कृति और हमारी कला का जो ह्रास हुआ है वह अधिकांश में नगरों और कस्बों में ही संभव हो सका था ! मालवीय संस्कृति, साहित्य और कला प्रछन्न रूप से ग्रामों में जीवित और विद्यमान ही रही । नगरों में नवीन रीति-नीतियों का जन्म हुआ और जनता उससे प्रभावित भी हुई । किन्तु ग्रामीणों ने आजतक भी अपने आपको उन परिवर्तनों से अछूता ही रखा । ग्रामों में आज भी मालवी भाषा बोलते हुए ग्रामीणों में, मालवी भाषा के लोक गीत गाती हुई ग्रामीण नारियों में सुन्दर मालवीय मुहावरों और अनोखे मालवी शब्दों में, आप मालवी साहित्य के दर्शन कर सकते हैं । सीधी साधी मालवी वेश-भूषा में और आडम्ब हीन रीतिनीतियों में आप मालवी संस्कृति का भली भांति परिचय प्राप्त कर सकते हैं । इसी प्रकार से ग्रामों में भित्ती के चित्रों, मृतिका की कलात्मक मूर्तियों एवं रंग बिरंगी रेखाओं में सुन्दर मालवी कला की आत्मा भी देखी जा सकती है ।

साहित्य साधना

साहित्य, साधना का विषय है, साधना तपस्या से परिपूर्ण होती है, अतः वह कष्ट दायक भी रहती है । महामालव में अतीत का में जो साहित्य साधना हुई है, वह तो गौरव पूर्ण है ही किन्तु फाकाकशी करते हुए, बिना किसी आश्रय के प्रान्त में तथा प्रान्त से दूर रहते हुए भी महा मालव के सपूत साहित्यकारों, कवियों और कलाकारों ने जो साहित्य साधना वर्तमान में की है और कर भी रहे हैं वह भी गर्व करने के लिये पर्याप्त से भी अधिक है ।

कुटीर में कलाओं का जन्म

लोक साहित्य, लोक संस्कृति और लोक कला राज्याश्रय के बिना जीवित ही नहीं रह सकती-यह बात नहीं है । साहित्य, संस्कृति और कलाएं राज प्रासादों में नहीं, अपितु कुटीरों में ही जन्म धारण करती हैं और वहीं उनकी आत्मा का सुन्दर विकास भी होता है । किन्तु इस विचार का यह आशय और अर्थ भी नहीं है कि राज्य और श्री का आश्रय इन महान् प्रवृत्तियों के लिए सदैव घातक ही सिद्ध होता है यदि साहित्य, संस्कृति और कला को राजा और श्री का पर्याप्त आश्रय मिल जाता है तो उस आलम्बन से मानव की इन उच्चतम और सुन्दर अभिव्यक्तियों की साज सज्जा, रू लावण्य का निखार एवं शृंगार की समुचित व्यवस्था की जा सकती है ।

—:०-:—

काव्य-विहार

मालवी कविता

हम लोग

श्री मदनमोहन व्यास

सूदा-सादा लोग गाँव का, अबतक हम चुप बैठा था,
कोई कँइ भी करतो रेवे, हम कोई से कँइ नी केता था.
नी समजा था राज रियासत, नी अपणा हक पेचाण्या,
"अपणी ताकत कितरी कँइ है ?" या भी था हम नी जाण्या.

मोटा शहर नाम भी मोटा, हम देखी ने डरता था-
मोटापण की आड़-आड़ में, तम मन-मानी करता था.
हमके भेद बतायो, ईना प्रजा राज की हिकमत ने,
भोत बरस में जोर लगायो, हम जनता की किसमत ने.

अब नाड़ी पकड़ीली हमने, राज-समाज-हुकूमत की-
हम जाणाँ हाँ कँइँ कीमत है ? "वोट" नाम अपणा मत की.
अब जनता को राज देसमें, नोबत याज झड़ीगी है
अब तक नी समजा था, पण अब हमके समझ पड़ीगी है ।

* * * *

"जिनने कदी खेत नी देख्या !" वी कँइँ अधिक अन्न उपजाय ?
"कितना बड़ा झाड़ गेहूँ का ?"यूँ पूछे ने हँसी कराय ।
इमली की जड़ कितनी घेरी ? यूँ पूछेने झाड़ लगाय-
आज बतई दांगा हम उनके, किस्तर घर में लछ्मी आय ।

धरती कोई कागद नी, जींपे लिखी कलम से उगड़ेगा,
याँतो हल से रेख मँडेगी, जभीज बिगड़ी सुधरेगा ।
अब छलिया पण छोड़ी दो, हम नकल-असल सब पेचाणां-
ढोर-मनखके, चोर-मोर के, ऊकी चाल से हम जाणां ।

करणे को कोइ काम होयतो, हाथ कुदाली लइ आवो
खोदो, दो-दो हाथ साथमें, फिर पीछे से समजावो.

वा तो चोटों हमारी थी जो-खूंटी सभी गड़ीगी है-
अब तक नी समजा था, पण अब हमके समझ पड़ीगी है।

* * * *

सड़क तमारी, रेल तमारी सब कानून तमारा है-
चल्या जाव भर्राटा करता, हमतो सब बेचारा है.

शहर गाँव में गिट-पिट करता, बड़ा रेड़िया में बोलो-
क्यों जी! कितना बोया? कितना ऊगा? कुड़छी पे बैठा तोलो?

कँइ जाणो है? बाट कोणसी? या भी जो नी जाणे है-
वी हांकीया ढोर सरीखा, अपणी-अपणी ताणे है.

या तो सब चतरइ "बाबूजी," हम भाँपीग्या देखीने
के तमने माथे टोपी धरली, हेट-वेट सब फेंकीने

पण अबे ठगाणे वाला नीहां, डर-भय छोड़ी द्यो हमने-
झूठो सरम-भरम को फ़न्दो, आगो तोड़ी द्यो हमने

तम सूदा चालो यूँ मत टालो, ताला की कूंची दइदो -
ने "कितरा दिन से खाओ मुफ्त की?" या हमके सांची कइदो.
बात बनाओ मत कोरी, स्कीम तमारी समजी ग्या-
अब गड़-गड़ती अइ माथापे, या हम तम के सम जइ या.

अब हम चुप नी बैठांगा, वी चुप की घड़ी टलीगी है-
अब तक नी समजा था, पण अब हमके समझ पड़ीगी है।

* * * *

योतो प्रजा-राज्य नी, जीमें दीन प्रजा ठोकर खावे
"घर का बेटा घट्टीचाटे," चोर, लफंगा माल उड़ावे.

प्रजातंत्र की बात करो तो, राज प्रजा के करणे दो-
की के मारो, की के तारो, रय्यत से पूछी तो लो

भ्रष्टाचारी, अन्यायी से, हम, अधिकार छुड़ावांगा.
अपणी मर्जी से पूरा का पूरा, काम चलावांगा।

अपणा देस की री-भली को, निपटारो करणों हमके-
सब कानून हमारे दइदो, या सांची कइ दी तमके
अब हमके अपणा हक मालम, आज पड़ीग्या सांचा-
हमने भणी लिखी ने, जूना-नवा लेख सब बांचा
नवी पार्टी, नवा पैंतरा, नवी-नवी जोड़ी जम्मात-
लालचका आन्दोलन उपजे, नवी-नवी होवे कुचमात
कोई, कोई की नी सुणे, "ढोलकी अपणी अपणी सभी वजइ र्‌या"
या कैसी कँइ राजनीति है ? अपणा-अपणा मूंडे जइर्‌या।
"नइ की बणी बरात, सभी ठाकुर हुइग्या तम बराती—
आँदो अलग आरती गावे, बेरो गइर्‌यो परबाती"
रस्ता की कोई बात करे नी, उल्टी उल्टी सोचेगा -
इस्तर तो यो संग कदीनी बदरीनाथ तक पोंचेगा
अरे, रास पिराणा खैंचासे तो, गाड़ी आज अड़ेगा -
अब तक नी समजाथा, पण अब हमके समझ पड़ीगी है।

○ ○ ○ ●

नवा नवा झण्डा रोपीदया, नवी नवी टोपी पेरीली-
माँ तो घर में मांदी ने, तमने अपणो गाड़ी घेरीली
"बक्खर", "चक्कर", "झाड़-झोंपड़ी" सभी हमारा "जूड़ी-बेल"
"दियो" हमारा गारा को है, ऊमे बले हमारो तेल
क्यों पोमइर्‌या हो "पंचमजी" निवराथा नेता हुइग्या-
"तुर्रमजी" हुइग्या मन में, तम दिल्ली से पाछा अइग्या.
तम बात फालतू मत फांको सामे देखो अँइँ वँइँ मत झाँको-
तम ईंट-पत्थर की बात करो! यां घर में है आटा को फांको."
पेलां रोटी-कपड़ो पांवाँ ऐसी कोइ बात चलावो रीत-
छोरा-छोरी भूका नीरे याज तमारी पेहली जीत
घरमें से आवाज उठीरी, ऊके सुणलो दइने कान-

कोइ की जान आज जइरी है - ऊका घर में नी है धान.

मेहल-अटारी पे बेठा, तम सरग-नरक की पोथी वांचो
"मनख प्रेम को भूखो है', तम ऊकी सांची पीड़ा जाँचो
बम-गोला-बारूद लड़इ की बात करो मत भइया-
मोटो खाओ मोटो पेहरो, जदी बचेगी माता गइया.
अलग-अलग मत राग उगेरो, हिली-मिली ने काम करो-
मेहनत पेलाँ करो प्रेम से, फिर पीछे से नाम करो
सब झूंठा जंजाल मिटेगा, जनता आज बढ़ीगी है-
अबतक नी समजाथा, पण अब हमके समझ पड़ीगो है।

वसन्त श्री

श्री करील

१

ऋतुराज के आगम की निधियाँ वसुधा में सुधा बरसाने लगीं।
नव-यौवन की छबि से भरी चारु दिशाएं सभी मुसकाने लगीं॥
मधु की मृदुता ले गुमान भरी मधुपावलियां मँडराने लगीं।
दिल में ले वियोग की व्याकुलता पगली पिकें कूक मचाने लगीं॥

२

निज प्यार का दिव्य प्रसाद लिये रुकती झुकती जरठाई चली।
नव यौवन की शुचिता से भरी महिमावती हो तरुणाई चली॥
मचले हृदयों को मनाती किशोर-किशोरियों की सुघराई चली।
मनमाने विकास के स्वागत को शिशुओं की सलोनी लुनाई चली॥

३

प्रेम का पुण्य-प्रदर्शन सा हिलती विटपावलियां करने लगीं।
चाह की राह की दिव्यता को बन बावली वल्लरियां वरने लगीं॥
जीवन की कसकीली व्यथा उड़ती विहगावलियां हरने लगीं।
मंजु सुगन्ध की माधुरी से कुसुमावलियां गलियां भरने लगीं॥

४

खेल रहीं रवि की किरणें मिल सुन्दर स्वच्छ समुज्ज्वल नीरसे।
रूप की राशि बिखेर रही कविता मिलती हुई रंग अबीर से॥
फूल से गीत व्यथा से भरे हृदयों में अरे चुभने लगे तीर से।
मादकता कुछ लेकर के मृदुता बही मन्द सुगन्ध समीर से॥

५

अपनी गुरुता की महानता से कुछ गौरव पाकर विस्तृता हो।
कुछ मंजु विकास के वैभव के अनुरूप स्वरूप से संस्कृता हो॥
ऋतुराज के मोद भरे अभिषेक में सुन्दरता से पुरस्कृता हो।
अनुराग जगाती विरागियों में भी नवीनता आज अलंकृता हो॥

६

भ्रमरों के लिये सुमनों ने लुटा अपना मधु और पराग दिया।
नदियों ने पयोधि के संगल में ममता का अलौकिक त्याग किया॥
कमनीय विकास से पूर्ण वनों में अतीत ने आज विराग लिया।
अपने प्रिय के चरणों में चढ़ा कवि ने अपना अनुराग दिया॥

परिचय-परामर्श

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य

लेखकः—डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ,
प्रकाशक—चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर;
मूल्य ७॥)

डा० कमल कुलश्रेष्ठ लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ लगभग आठ वर्ष पूर्व प्रयाग विश्व विद्यालय के लिए एक थिसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था। लेखक ने हिन्दी प्रेमकाव्य की समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग करते हुए, मौलिक तथ्यों सहित सम्यक् निरूपण किया है। प्रारम्भ में सूफी धर्म की उत्पत्ति और विकास को यथोचित विस्तार के साथ प्रस्तुत करते हुए हिन्दी प्रेम काव्य पर उसके प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। भारतीय आख्यानों ने भी किस प्रकार प्रेम काव्य को प्रभावित किया इसका भी वर्णन लेखक ने किया है। साहित्यिक दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ न केवल पठनीय वस्तु है किन्तु खोज में रुचि रखने वाले जिज्ञासुओं के लिए यह संग्रहणीय एवं हिन्दी आलोचना के स्तर को आगे बढ़ाने वाली सामग्री है।

आचार्य शुक्ल और चिन्तामणि

लेखकः—श्रीलाल 'भानु'; प्रकाशक शारदा प्रकाशन, कोलारस; पृष्ठ ३८; मूल्य-चौदह आने।

प्रस्तुत पुस्तिका में आचार्य शुक्ल के निबन्ध संग्रह 'चिन्तामणि' के निबन्धों पर आलोचनात्मक निर्णयों सहित परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से लिखित सामग्री संकलित है। विद्वान् लेखक ने हिन्दी के प्रति बढ़ती हुई रुचि का ध्यान रखकर विद्यार्थियों के उपयोग में आने वाली सभी बातें दी हैं, यद्यपि सभी निबन्धों के प्रति लेखक सामग्री न दे सका है। पुस्तक संकलन के योग्य है।

घूंघट

लेखक—श्री भगवत; प्रकाशक—बसन्त कुमार जैन, एत्मादपुर; मूल्य चार आने।

'घूंघट' सामाजिक हास्यपूर्ण प्रहसन है। सस्ती रुचि के द्योतक साहित्य की श्रेणी में 'घूंघट' का स्थान है। कथानक के प्रति यद्यपि लेखक की ईमानदारी को स्वीकार करते हुए भी शैली, भाषा का हल्कापन और प्रशंसाभिव्यक्ति की रूढ़ परम्परा का पालन 'घूंघट' की महत्ता को कम कर देते हैं।

प्रगतिवाद की रूपरेखा

लेखकः—मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, मूल्य--सात रुपये।

पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिवाद' को लेकर काफी बखेड़ा हुआ। अनेक दृष्टियों से लेखकों और आलोचकों ने सोचा, पर गम्भीरता का अंश अत्यल्प पाया गया। प्रस्तुत ग्रंथ में लेखक ने विभिन्न पहलुओं के साथ ही उसके मूल स्रोतों तक जाने की चेष्टा की है। साहित्य को एक बड़े दायरे में लेखक ने समझा है। उसने 'भारतीय संस्कृति की शवपरीक्षा' के साथ 'सबार उपरे मानुष सत्य, ताहर ऊपरे नाई' को विशेष आग्रह के साथ प्रयुक्त किया है।

पुस्तक में भिन्न-भिन्न विषयों पर ३७ लेखों का संकलन किया गया है। हिन्दी की वर्तमान प्रवृत्तियों के अतिरिक्त 'रवीन्द्रनाथ का गोरा', 'शरदचन्द्र के उपन्यास', 'आधुनिक बंगला उपन्यास', 'विश्व साहित्य पर एक सरसरी दृष्टि', उदयशंकर की कल्पना', 'आंद्रे जिंद', आदि विषयों पर भी उत्तम निबन्ध इस ग्रन्थ में देकर लेखक ने भारतीय विचार धारा को प्रगट करने का प्रयास किया है। पुस्तक छपाई-सफाई की दृष्टि से उत्तम है। यह संग्रहणीय ग्रन्थ है।

"सन्धि सन्देश"

रचयिताः- स्व. श्री दामोदर सहायसिंह "कवि किंकर"
प्रकाशकः-हिन्दी मन्दिर शीतलपुर, बरेजा सारन, (विहार) मूल्य-डेढ़ रुपया

"सन्धि सन्देश" पांच सर्गों का प्रबन्ध काव्य हिन्दी के तपोपूत-साहित्य-सेवी, स्वर्गीय श्री दामोदर सहाय सिंह 'कवि-किंकर' बिहार प्रदेश ने लिखा है। प्रबन्ध का विषय 'शान्ति के अग्रदूत भगवान् कृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि

प्रस्ताव लेकर कौरवों की सभा में जाना और प्रस्ताव के ठुकराने पर महाभारत की घोषणा वहीं पर करके वापस आना है। यों तो भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के वर्णन में भक्ति कालीन और रीति कालीन काव्यों ने ग्रन्थों के विशाल भण्डार भर रखे हैं किंतु प्रस्तुत विषय पर श्री कविकिंकर जी ने ही कृष्ण के विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन कराया है। पुस्तक का निर्माण काल सन् १९२९ रहा है, जब कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रपिता महात्मागांधी द्वारा अहिंसात्मक सत्याग्रह जन-मन में स्थान पा रहा था। ठीक ऐसे समय में स्व० कविकिंकर जी ने श्रीकृष्ण को शान्ति के सन्देश वाहक के रूप में अपने काव्य का नायक बनाया है।

श्री कवि किंकरजी ने लगभग ३ दर्जन पुस्तकें लिखीं तथा आधा-दर्जन पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन किया। उक्त साहित्य में बालोपयोगी साहित्य भी काफी मात्रा में प्रकाशित होता रहा। आपकी भाषा सरल, बोधगम्य, चित्ताकर्षक उक्तियों से लदी हुई तथा काव्य में भाव प्रवणता, स्वाभाविकता और सरसता समागई है। पुस्तक का गेट-अप जिल्द, और छपाई सुन्दर है।

शैवालिनी

लेखकः—कोमलसिंह सोलंकी, प्रकाशकः— भोज प्रकाशन-धार; मूल्य-दो रुपये।

आज का युग 'कविता' का युग नहीं, कहानी और उपन्यासों का युग माना जाता है और हिन्दी साहित्य के विशाल भण्डार को हमारे कहानी व उपन्यास लेखक दिनों दिन समृद्ध बनाते जा रहे हैं। "शैवालिनी" श्री कोमलसिंह सोलंकी का दूसरा उपन्यास है जिसे वे मौलिक व मनोवैज्ञानिक मानते हैं, किन्तु मेरी दृष्टि में तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि या तो लेखक अपने आपको सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों में उलझा चुका है या वह स्वयं उन गुत्थियों को समझने में असमर्थ है। उपन्यास के प्रारम्भ होते ही पाठकों के सामने कई ऐसे प्रश्न वाचक चिन्ह खड़े होते हैं, जो लेखक की साधारण समझ के द्योतक हैं, और पात्रों को जान बूझ कर उलझाते हैं। उदाहरणार्थ उपन्यास के प्रारम्भ में ही पृष्ठ १० से १५ के बीच में प्रकाश द्वारा लिखे गये एक पत्र में "स्त्री आकर्षण" "आत्मिक और लौकिक प्रेम की परिभाषा" "प्रेम की परिणीती विवाह" 'सामाजिक कुप्रथाओं को कोसते हुए उनको जीवन में स्वीकार करना'।

वैसे स्वयं लेखक ने 'अपनी बात' नामक उपन्यास परिचय में लिखा है कि··घटनाओं के द्वारा अपनी मान्यताओं को सिद्ध करने के पीछे मैं नहीं पड़ना चाहता—हाँ, सब बातें शैवालिनी में आना चाहिये मैं इस पक्ष में नहीं ज्ञात होता है कि लेखक लिखता कुछ और है और करता कुछ और।

उपन्यास का प्रकाशन धार से हुआ है। पृष्ठ संख्या दो सौ के लगभग है, किन्तु अशुद्धियों की बहार इसप्रकार आगई है कि पाठकों को अपनी कलम एक बार खोलने के बाद बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रथम पन्द्रह पृष्ठ में लगभग पचास से अधिक गलतियाँ हैं जो कि अक्षम्य हैं वैसे व्यापारिक दृष्टिकोण से पृष्ठ की चमक-दमक और चित्र पाठकों को आकर्षित कर सकता है किंतु मूल्य और छपाई सफाई तथा कागज-आदि देखकर पाठकों को एक बार विचार अवश्य करना पड़ता है। वैसे श्री सोलंकी का यह दूसरा प्रयास है और यदि धीरे धीरे वे सोच समझ कर आगे बढ़ें तो हिन्दी साहित्य की वर्तमान क्षतिपूर्ति में सफल हो सकते हैं।

मधुवन

रचयिताः—श्री गयाप्रसाद द्विवेदी 'प्रसाद'
प्रकाशकः—भारतीय अरुणोदय कार्यालय
६०२ दारागंज प्रयाग
मूल्य पाँच रुपये।

श्रीयुत गयाप्रसादजी द्विवेदी "प्रसाद" द्वारा रचित "मधुबन" नामक प्रबन्ध-काव्य हिन्दी साहित्य में युग की भारी कमी को तो पूर्ण कर ही रहा है; किन्तु 'प्रिय-प्रवास' व 'कृष्णायन' के पश्चात् 'मधुबन' ही एक ऐसी कृति हमारे सामने आती है जिसकी कथा वस्तु, अर्थ-गांभीर्य और लेखक की प्रकाण्ड विद्वत्ता का आभास होता है। इकीस सर्गों में विभाजित यह प्रबन्ध भगवान् कृष्ण के जन्म और उसके पूर्व क्रूरकर्मा-कंस के कुकृत्यों से भाराक्रांत पृथ्वी के भीषण

स्वरूप का वर्णन से लेकर बाल लीला, वात्सल्य प्रेम मथुरा गमन अक्रूर वध, कंस वध, उद्धव की अनुरागमयी तन्मयता, विरहिणी बृजांगनाओं का भ्रमर सन्देश, शान्ति-सिद्धि, प्रजातन्त्र व्यवस्था, पंचायती राज्य की स्थापना तथा प्रभु के चरणों में सुमनाञ्जली तक का सम्पूर्ण वर्णन लगभग ३० से अधिक प्रकार के छन्दों में किया गया है।

'प्राक्कथन' के लेखक व हिन्दी काव्य के प्रेमी श्री गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश" ने कहा है कि "यह हिन्दी का पहिला प्रबन्ध काव्य है जिसमें आद्यन्त तक अन्त्यानुप्रास को रखते हुए संस्कृत के वर्ण वृत्तों को निभाया है।" राधाकृष्ण का प्रणय चित्र लेखक के लिये उतना महत्व नहीं दिया जितना वे श्री कृष्ण के—'गो-ब्राह्मण-सुर धरणि-प्रतिपालक स्वरूप को अधिक परिलक्षित कराया है। अलंकारों का बाहुल्य न होने पर भी भाषा सरल और सीधी तथा शब्द चयन, पद-विन्यास, सुन्दर एवं सरस है। श्री प्रसाद जी ने कई नये-नये शब्दों को अपने ढंग से ढाल कर उनका स्वस्थ प्रयोग किया है ताकि भारती का शब्द भण्डार भरपूर हो सके।

पुस्तक के अन्त में दस गीतों का एक संकलन भगवान कृष्ण व राधा के दसविभिन्न स्वरूपों का भावात्मक वर्णन है जो काव्य की सुषमा से परिलाविज है।

पुस्तक की सुन्दरता उसके कथानक व साहित्य में तो है ही परन्तु मुद्रण व जिल्द से भी उसका सौन्दर्य बढ़ गया है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी काव्य प्रेमी इसे अपना समझ कर अपनाएंगे।

भौतिक साम्यवाद

निबन्ध गीत संग्रह

लेखक—श्री गोविन्दप्रसाद त्रिपाठी 'अचल' एम० ए० सा० र०

प्रकाशक—राष्ट्रभाषा प्रकाशन, मथना, कानपुर

मूल्य--एक रुपया बारह आना।

'अनल साहित्य' के नाम से "भौतिक समन्वयवाद, दर्शन विज्ञान, मैं कवि बन गया, सात निबन्ध और पन्द्रह प्रमुखगीत" नामक पुस्तक श्री त्रिपाठी जी ने 'स्वान्तः सुखाय' लिखी है, ऐसा प्रतीत होता है मौतिक-समन्वयवाद व दर्शन विज्ञान पर महा-पंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने एक विषद ग्रन्थ लिखा है और वर्तमान युग में पैदा होने वाले कई छोटे मोटे वाद-अपवाद और प्रतिवादों की बाढ़ को लांघकर भौतिक समन्वयवाद दर्शन विज्ञान के सिद्धांतों को सही कसौटी पर कसकर उनकी विस्तृत परिभाषा की है। उसके पठन के पश्चात पाठक को श्री त्रिपाठी का "मौतिक समन्वयवाद व दर्शन विज्ञान" घुटनों के बल खड़े रहने वाले बालक जैसा प्रतीत होता है। मैं कवि बन गया तथा अन्य सात संक्षिप्त निबन्धों में लेखक ने कहीं-कहीं स्वप्रशस्ति में "अपने मुंह अपनी बड़ाई शोभा" नहीं देती वाली कहावत को चरितार्थ की है। अपने कवि बनने के पश्चात श्री त्रिपाठी जी ने अपने काव्य साहित्य को जिस सैद्धान्तिक कसौटी पर कसने का प्रयास किया है और विभिन्न वादों के मार्गसे उन्हें निकालना चाहा है इससे वे स्वयं ही कहां तक सहमत हैं? एक बार अपने लिखे हुए को फिर पढ़ और निर्णय करें? अन्य सात संक्षिप्त निबन्धों के विषयों से ही यह प्रतीत होता है कि श्री त्रिपाठी जी को अपनी सर्वतोमुखी-प्रतिभा पर या तो विश्वास नहीं है या फिर जैसे साहित्य के द्वार आज ही बन्द हुए जा रहे हों। सात दिशाओं में अपना अपना मुँह लिए ये सातों निबन्ध या तो किसी जाति की प्रशंसा में लिखे गये हैं या फिर लोककला व लोकसाहित्य में भी अपना अधिकार सिद्ध कर रहे हैं। अब रही कविताओं की बात सो उसका कहना ही क्या? ऐसा जान पड़ता है कि श्री अनलजी ने सर्वप्रथम कविता के विषयों की एक लिस्ट बनाली हो और पश्चात् उन पर काव्य निर्माण हुआ हो।

प्रकाशक महोदय भी अपने वक्तव्य में एक स्थान पर लिखते हैं वैसे उक्त विषय पर पहिले एक दो लेखकों ने लिखा भी है, पर एक वाद के रूप में इसका वैज्ञानिक विवेचन पहिली बार किया जा रहा है।' इससे प्रकाशक महोदय की अध्ययन शीलता प्रतीत होती है। फिर भी पुस्तक का स्वरूप देखकर अंग्रेजी साहित्य के 'पाकेट सिरीज' का भान होने लगता है। यदि प्रकाशक उक्त कलेवर में योग्य सामग्री रखकर हिन्दी साहित्य संसार के समक्ष रखेगा, तो साहित्य प्रेमियों द्वारा स्वागत किया सकता है।

युग प्रवर्तक गाँधी

रचयिता—राधेश्यामः-द्विवेदी

प्रकाशकः-केशव साहित्य कुटीर, करेरा (म. भा.)

मूल्य-बारह आने

प्रस्तुत पुस्तक का समर्पण कवि ने राष्ट्रकवि मैथिली बाबू के चरणों में किया है। उक्त संग्रह में कवि ने एक ही प्रकार के छन्द में रचित १८ अट्ठारह कविताओं में राष्ट्रपिता बापू के जन्म से मरण तक की अट्ठारह विभिन्न घटनाओं पर प्रकाश डाला है। आफ्रिका सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन, आमरण अनशन, अछूतोद्धार, बा, महादेवभाई का निधन, नौआखाली, व महामानव का निर्वाण—सबकी सब घटनाएँ कवि-कल्पना के सहारे छन्दों में ढलकर साकार हो उठी हैं।

भाषा की सरलता, भावनाओं का सीधापन और कल्पना की हल्की सी उड़ान ने संग्रह को इस योग्य अवश्य बना दिया है कि बालकों के लिये सरल, सहज और सुबोध हो जाए। लेखक का उक्त प्रयास सराहनीय अवश्य है।

अपने गाँव

मूल्य-१॥)

श्री द्विवेदी की यह द्वितीय रचना भी उपरोक्त प्रकाशन द्वारा प्रकाशित अट्ठारह निबन्धों का संग्रह है। पुस्तक के पूर्वार्ध्द में ११ निबन्धों का संग्रह है जिसमें ग्रामीण जीवन के व्यवहारिक अंग को छुआ है। विशेष रुप से वर्तमान में गाँवों की दशा, उनका रहन-सहन, सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा उनके विभिन्न साधनों पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, और शासन द्वारा दी जाने वाली राहतों को भी दृष्टिगत रखा गया है। उत्तरार्ध्द में केवल सात निबंध हैं जिनमें कृषि, पशु, न्याय, कर्ज, गृह-उद्योग, सहकारिता और अपराध-रोक थाम आदि विषयों पर सुधारात्मक दृष्टिकोण बतलाया गया है। लेखक का ग्रामीण जीवन पर विस्तृत अध्ययन है और वह स्वयं भी किसी ग्राम का रहने वाला ज्ञात होता है। ग्राम वासियों के लिये उक्त प्रयास सुन्दर है।

साथी

लेखकः-श्री रमानाथ पाठक "प्रणयी"

प्रकाशकः-साहित्य-कला-मन्दिर, कचौड़ी गली, काशी

मूल्य-दो रुपया

'साथी' में श्री प्रणयी के हिन्दी में लिखे गयेउन सौ सरस गीतों का संग्रह है जिनमें स्वयं कवि जीवन-मरण तथा सुख-दुख की सीमाओं को लाँघ कर जीवन को सत्य की ओर तथा सुख को सौन्दर्य की ओर ले जाता है, और वेदना, पीड़ा और मरण को अपने रूप में इस प्रकार अभिव्यक्त करता है:-

"मानव मर कर ही जीता है,
मिट्टी में खोकर अपना तन-
बीज हँसा करता अंकुर बन
बिंध बिंध कर तीखे काँटों से-
अलि गुलाब का रस पीता है।"

अथवा—

"विष घट पीकर हुए अमर, हर।"

"उस शरीर में प्राण नहीं है,
जो शरीर म्रियमाण नहीं है।"

कवि ने एक और जीवर की रहस्यमय भावना को सुदूर तक फैली हुई क्षितिज रेखाओं में देखा है तथा दूसरी ओर जब उसने अपने आप को भय, विस्मय और आलस्य में पाया तो अनूठे आदर्शों को कविता में स्थान दिया, जिसमें वे प्राणवान भी बन गई। कवि ने सत्य को असख्य रूपों में चित्रित किया है। जीवन कई गत्याविरोधों से विश्राम लेना चाहता है, परन्तु कवि अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ता, वह संघर्ष करना भी जानता है:-

"सब दिन चलते ही रहना है
साथी, पथ असीम जीवन का।"

"रुक-रुक चलने की जिनकी गति,
उनकी हो न सकेगी उन्नति।"

पुस्तक की छपाई सुन्दर है और हमारी कामना है कि श्री प्रणयी अपनी अविराम गति से उन्नति के पथ पर अग्रसर हों।

मालवी-फाग

अब होली आई, फाग रचाओ रसिया-
अब होली आई।
रंग-गुलाल उड़े घर-घर में-
सुख का साज सजाओ, रसिया।

* * *

धरती-मां ने धान उगायो,
सब मिलीने खाओ-खिलाओ, रसिया।

* * *

"गउँ" ने "कपास-" चणा" भी आया,
चलो नाचो-गाओ मौज मनाओ रसिया।

* * *

मेहनत से जो आवे पसीनो-
उना गंगा-जल में न्हावो रसिया।

* * *

दो दिन ठहरे रूप-जवानी,
अपणो रंग जमाओ रसिया।

* * *

जाणां उलझण है, आफत है-
पण आजतो होली गाओ रसिया।

* * *

मन की मजबूरी को कचरो-
होली में राख बनाओ रसिया।

* * *

"जय भारत" जय "महाकाल की,"-
चारी देश गुँजाओ रसिया।
अब होली आई फाग रचाओ रसिया॥

* * *

—श्री मदनमोहन व्यास

Phone No 48 Regd. No J93

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टैक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाईंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

प्रकाशक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, मुद्रक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन।

जनवरी ५४

विक्रम

माघ २०१०

3638

सञ्चालक--सम्पादक--सूर्यनारायण व्यास

जय चम्बल !

चम्बल घाटी विकास योजना मध्यभारत की क्रान्तिकारी योजना है। देश के नवनिर्माण में इस योजना का महत्वपूर्ण स्थान है । इस योजना के कार्यान्वित होने पर कृषि तथा उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में आशातीत परिवर्तन होंगे। खेत उन्नत फसलों से लहलहा उठेंगे। नवीन उद्योग धन्धों और कारखानों का उदय होगा । जनसाधारण का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा और सदियों से उपेक्षित हमारे ग्राम एक बार पुनः आकर्षण और साधनों के केन्द्र बन जायेंगे ।

चम्बल की चञ्चल धारा में अपार शक्ति है। इसके द्वारा गांधी-सागर बांध के जल विद्युत-यन्त्र से ६० हजार किलोवाट विद्युत-शक्ति प्राप्त होगी और नहरों द्वारा की जाने वाली सिंचाई का लाभ मध्यभारत की ६ लाख एकड भूमि को प्राप्त होगा।

मध्यभारत में चम्बल घाटी विकास सम्बन्धी निर्माण-कार्य द्रुत गति से चल रहा है और शासन एवम् जनता के सहयोग से यह सफलता की ओर अग्रसर हो रहा है। चम्बल के वरदान की सिद्धि के इस पुनीत कार्य में आपकी शुभ कामनाओं की अपेक्षा है।

जय चम्बल ! जय मध्यभारत !!

सूचना विभाग मध्य भारत

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
।।=)

विषयानुक्रमणिका

पृ. सं.
१. अभिनवाब्द पदन्यासे शुभाशंसनम् ... श्री शैलेन्द्र सिद्धनाथ पाठक
२. व्यास-उवाच ... ... सम्पादकीय १–१६
३. सौर परिवार का प्रभाव ... ... श्री सूर्यनारायण व्यास १७–२०
४. साहित्य और साहित्यकार ... ... श्री रतनलाल परमार २१–२४
५. लोक-साहित्य की मीरा 'चन्द्रसखी' ... श्री चिन्तामणि उपाध्याय एम. ए. सा. रत्न २५–३३
६. बाल-शिक्षण के अचूकतथ्य ... ... विद्यावारिधि पं. रामनिवास शर्मा ३४–३८
७. कालिदास ... ... श्रीजगन्नाथ प्रसाद मिलिंद ३८
८. स्वर्ग में स्वाधीनता-संवाद ... ... श्री संपादक ३९–४२
९. अध्यापक और अधिकारी ... ... श्री उदयसूर्य ४३–४६
१०. सुन्दर काण्ड का आध्यात्मिक महत्व ... श्री रामचन्द्र गौड़ एम. ए. बी. टी. विज्ञान रत्न ४७–५२

पत्र व्यवहार का पता— } "विक्रम"–कार्यालय उज्जैन [मालवा]

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड
स्थापना १९४१
केवल १,५० ००० की पूंजी से प्रारम्भ की गई कम्पनी के पास आज २७, लाख से ऊपर के असेट्रस हैं।
क्लेम्स पेड—५ लाख के ऊपर
पॉलिसी की शर्तें उदार हैं
संरक्षक
हिज़हाईनेस महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर
मध्यभारत के लिये चीफ एजेंटों की आवश्यकता है!
धननूर सरफिरोज़शाह मेहता रोड
फोर्ट, बाम्बे।
विशेष जानकारी के लिए–श्री एच. एन.–
आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क
स्थापित करिये।

अभिनवान्द पदन्यासे शुभाशंसनम्

श्री शैलेन्द्र सिद्धनाथ पाठक

विद्यावधू भुवन दीपक मुल्लसन्तं—
सारस्वतैक कुल-जीवनदं हसन्तम् ।
विद्युद्विभासित ऋषि-प्रतिभा वसन्तं—
वन्दामहे कमपि वेदगिरा वतंसम् ॥

◆ ◆ ◆

काव्यारविन्द मधुमत्तमनो मदीयं
सारस्वती रस-विभूति विभासितं स्यात् ।
सा कल्पना धृत चमत्कृत माधुरीयं--
भूया मदीय हृदये सततं प्रसन्नाः ॥

◆ ◆ ◆

ईश ! त्वयाद्य मम भारत देश एषः
स्वीय प्रसन्न-हृदयेन निभालनीयः ।
लक्ष्मी विलासवसतिः प्रबलात्म शक्ते
र्मूर्तिः समुल्लसतु भू--तिलकायमाना ॥

◆ ◆ ◆

वीर प्रताप! भुवि भारत-वीरनायाः
सर्वाङ्ग सुन्दर वरोऽसि गतोऽमरत्वम् !
त्वां संस्मरत्-स्वपुलकाञ्चित गात्रसारः—
पूतो ममाञ्जलि रयं भवते ऽर्पितो यत् ॥

◆ ◆ ◆

इयं शिक्षावल्ली प्रवचन सुधामोद-मधुरा-
सतां सूक्तैः शश्वद् गुणगण सुपुष्प प्रसविनी ।
विकासं पुष्यन्तीं भरतवसुधा वालहृदये--
"तमस्तो मा ज्योतिर्गमय" शिव भावं विदधतु ॥

मध्यभारत, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के [illegible] पाठशालाओं के लिए शिक्षाविभाग द्वारा स्वीकृत

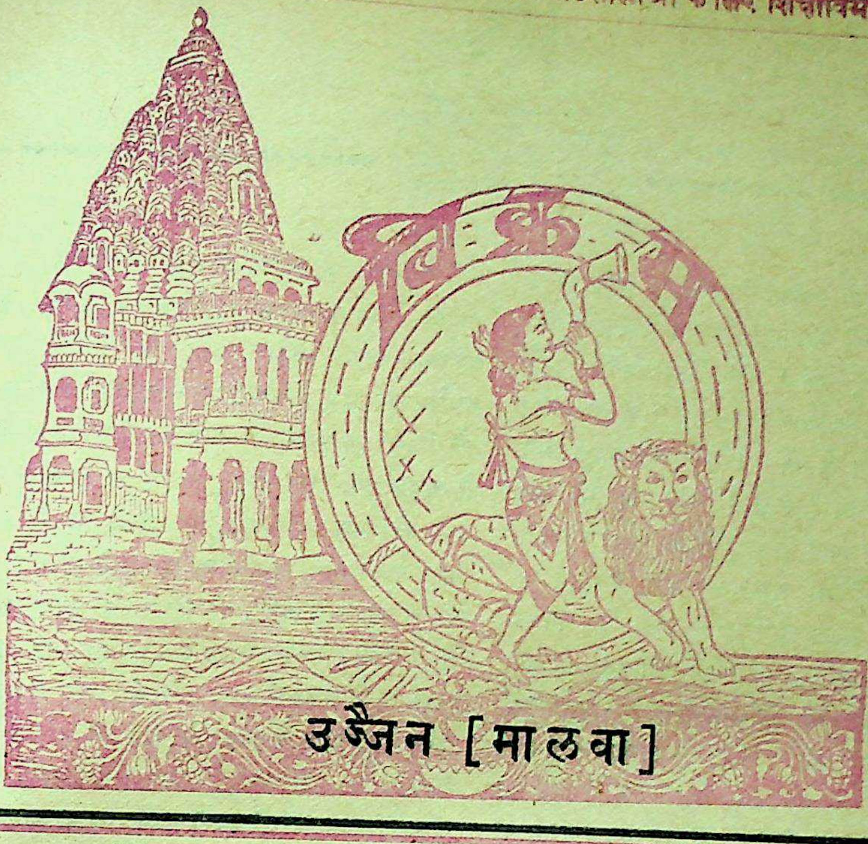

उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खण्ड २] माघ सं० २०१० वि०, फरवरी सन् १९५४ [अंक ४ पूर्ण सं० ८०

व्यास उवाच

पत्रकार की प्रतिष्ठा-परिभाषा !

पत्रकार का स्थान बहुत महत्व का है । वह समाज, और शासन का पथ-प्रदर्शक है । उसकी शक्ति बहुत बड़ी है, वह शासन को पलट सकता है , निर्मित कर सकता है । समाज को सही या गलत दिशा में ले जा सकता है । उसकी स्वतंत्र सत्ता है, विचार का उसके पास विपुल वैभव है । यह वैभव मुद्रा के मूल्य पर नहीं आँका जा सकता , न खरीदा जा सकता है । भौतिक वैभव से पत्रकार चाहे असम्पन्न क्यों न हो, किन्तु उसका विचार-वैभव अनेक सम्पन्नों को अपनी शरण दे सकता है । इसलिए पत्रकार का सामर्थ्य किसी सत्ताधीश या सम्पन्न से अधिक ही रहता है, पर ऐसे पत्रकारों की संख्या परिमित ही होती है । समाज एवं सत्ता के सत्पथ प्रदर्शक निर्लिप्त-निर्विकार, "समंजस-ज्ञान-धन" सम्पन्न विचार विवेक-विचक्षण अपना उच्च-पवित्र चरित्र, और व्यक्तित्व रखने वाले पत्रकार यदि तटस्थ, संतुलित नीति से किसी राष्ट्र का वैचारिक-रथ संचालित करे तो यह उस देश समाज या सत्ता का सौभाग्य ही समझना चाहिए । हमारे यहाँ आज तो पत्रों की बाढ़ है, हर एक व्यक्ति पत्रकार की प्रतिष्ठा पाने को प्रवृत्तिमय है, किन्तु स्व० मभ्रुवाला का महत्व किसे प्राप्त है पराडकर जी की प्रतिष्ठा किसने प्राप्त की है । पत्रों की बाढ़ में विचारों की दूकान का 'दीवाला' दिखलाने वाला भी उस महत्त्व पर आसीन अनुभव कर लेता है । आज पत्रकार की परिभाषा भी बहुत पलट गई है, पिल-पिली बन गई है, २५ शब्दों का समाचार देने वाला (जिसकी २५ लाइन में से १५ लाइन कलम की नोक पर बलि चढ़ जाती हो) भी पत्र"—

कार है। और परिश्रम से प्रतिभा से प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला भी उसकी श्रेणी में परिगणित हो जाता है। साधक और सडक पर सरपट भागने वाले में कोई विभाजक-रेखा नहीं खींची जा सकती। पराडकरजी की पत्रकारिता की समकक्षता में वह भी पेठ पा लेता है, जो २५ शब्दों का सम्वाद समेट कर १५ गलती का गौरव पा लेता है! और वह भी उसी परम्परा में प्रविष्ट बन जाता है।जो पूंजीपति और प्रतिष्ठित जनों के प्रच्छन्न-व्रणों को खुजलाकर उन्हें प्रचारित कर ब्लेक बाजारी द्वारा अपना स्वार्थ साधन करता है। पत्रों के परम्परा-प्रवाह ने पत्रकारित्व का स्तर भी संतुलित नहीं रखा है। प्रतिदिन पत्रों का जिस तरह जन्म होता है। उसी तरह उनका सहज अवसान भी। किन्तु अवतरण-अवसान भी प्रतिदिन दो पत्रकार पैदा कर जाता है। चाहे उसकी भूत भविष्य—वर्तमान के काल भेदों में ही कल्पना क्यों न की जावे, और अपरमित कागज, कलम की कालिमा लगाकर क्यों न ज्ञान के दल-दल में दयनीय-दशा प्राप्त कर ले! वाणी और लेखन स्वातंत्र्य का यह सदुपयोग समझा जाए तो दुरुपयोग की परिभाषा पलटना पडेगी। अन्यान्य क्षेत्रों में जिस तरह ज्ञान की समर्घता ने मौलिकता और मनीषिता को मलिन बनाया है, उसके महत्व को मसलकर रख दिया है, डिग्री के दम्भ में अपने को दीवालिया सिद्ध करवा लिया है, उसी तरह पत्रकारित्व की परमोन्नत प्रतिष्ठा भी पद-पद पर गौरव से गिरती दिखाई दे रही है। पत्रों का कलेवर जिस भाषा, भाव, विचार, प्रचार, समाचार को समेटकर संचरित होता है, उनका विवेचन वर्गीकरण ही किया जावे तो उसके प्रकाशन, मुद्रण, श्रम, व्यय, की निरर्थकता समय के अपव्यय के साथ हमारे लिए संकोच, और शर्म का ही विषय बन जाएगी। बहुत परिमित प्रकाशन ही ऐसे होंगे जिन से समाज सत्पथ प्राप्त करता होगा। समय का सद्व्यय स्वीकार करता होगा, और श्रम, व्यय और विचारों की सार्थकता अनुभव करता होगा। फिरभी पत्र पैदा होते ही हैं पत्रकारिता के स्तर का प्रश्न नहीं, और उसकी परिभाषा की व्यापकता ने 'श्वानं युवानं मघवान माहुः' की तरह उसके स्तर की प्रतिष्ठा को पथ-भ्रांत बना दिया है। आज यह स्वतन्त्र सत्ताधारी निर्भर वैभव का वर्चस्व रखने वाला पत्रकार अपने गौरव-गिरि से गिरकर श्रम-जीवी की जाति में जुडने जा रहा है। भौतिक- वैभव के सम्पन्नों का सेवक बन उनके विचारों के वाहन पर अपनी मौलिक मति को लादकर भार-वाहिता सार्थक कर रहा है। जिसकी उच्च-आत्मा, ओजस्विता, कलम की तीक्ष्ण 'असिधारा' के पानी को परखकर, असीम सामर्थ्य से साशंक बन, शक्ति सम्पन्न सत्ताएँ सिर झुकाकर शरणागत बनने को विवश बन जाए, वह आज अपने विचारों को विक्रय पाकर ज्ञान का दीवाला दिखलाने जा रहा है, आत्म रूप का भान भूल कलम की कीमत के लिए अपनी कला को कालिमा लगाना चाहता है। पत्रकार का आदर्श वह व्यास है, जो संजय के समाचारों को सही सम्पादित कर, अनेक शताब्दियों के समाज के लिए अपनी अमर-सत्ता, एवं अस्तित्व का ऐसा अद्भुत उपहार छोड़जाता है, जिसे पाकर न जाने कितनी, पीढ़ियाँ अपनी अपने, राष्ट्र की, समाज की, सत्ता की प्रतिष्ठा, गौरवका अनुभव करतीरहे, और पथ प्रकाशमय पाती रहे। उस अमर लेखनी के धनी महान् पत्रकार सम्पादक की परम्परा, और गौरव का उत्तराधिकार वहन करने वाले हम अपने 'पत्रकार' के आत्मरूप को पहचानने का प्रयास करेंगे?

राजनीति में राजाजी का व्यक्तित्व!

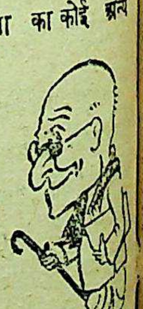

राजाजी राजनीति के एक विशिष्ट व्यक्ति हैं, भारत में उनकी प्रतिभा, ओजस्विता और अप्रतिमता का कोई अन्य उदाहरण नहीं मिल सकता। विदेशियों ने भी उनकी विद्वत्ता विवेचकता, विलक्षणता का लोहा माना है कूटनीतिज्ञता के कारण उन्हे यहाँ चाणक्य मानाजाता है। वे रामायण, महा-भारत के मर्मज्ञहैं, वेदांत दर्शन के मनीषी हैं, कहानी-कला के दक्ष हैं, और साथ ही शासन- शास्त्र के समर्थ सुधी हैं। पांडित्य प्रतिभा, और ज्ञान का ऐसा विरल समन्वय शायद अन्य में हो, परंतु राजाजी उतने ही विनीत व्यक्ति हैं। अर और साधुता उनकासौंदर्य है, और क्षमता उनकी शक्ति! रा का 'साहित्यिक' जितना सजग है, 'राजनीतिज्ञ' भी वि

प्रकार कम नहीं ! वे गवर्नर से गृह-मंत्री जितने सफल रहे, प्रधानामात्य भी उतने ही। मद्रास की राजनीति का सूत्र यदि राजाजी न होते तो साम्यवादियों के हाथ अवश्य चला जाता। किंतु यह राजाजी का ही सामर्थ्य था कि-उनके गढ़ में अपना गौरव स्थापित कर, यह साहस पूर्वक घोषित करे कि साम्यवादियों के नं. १ के शत्रु हैं ! आज मद्रास के साम्यवादियों का यह १ नं. का शत्रु सफल सिद्ध हुआ है। राजाजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि-वे 'अर्थशास्त्र नहीं जानते, न कभी जाना, न जानने की इच्छा ही है। पर कौन कह सकता है कि राजाजी के शासन की अर्थनीति सफल नहीं हुई, नियंत्रण को सर्व प्रथम मद्रास से विदा देकर, बाढ और आँधी के विध्वंस में भी शासन के अर्थ तंत्र को टिकाए रखना उनके सफल 'अर्थ-तांत्रिक' का ही साहस नहीं है ! फिर भी राजाजी 'अर्थ शास्त्री' नहीं है, यह सही है। क्योंकि उन्होंने अर्थ के तंत्र का अपने लिए उपयोग नहीं जाना, उनकी निःस्वार्थता उनके अर्थ तंत्र के अज्ञान का प्रमाण है। परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि मद्रास के अर्थतंत्र का असंतुलन ही साम्यवाद को सफल बना रहा था। उसे संतुलित करके ही राजाजी ने साम्यवादी-वर्चस्व को असफल बना दिया है। यह यदि उनका आर्थिक अज्ञान होता हो तो ज्ञान की परिभाषा पलटना पड़ेगी ! राजाजी वय में वृद्ध हैं, शरीर से शिथिल हैं, परन्तु उनकी प्रतिभा की पकड़, और पौरुष उनके बौद्धिक-यौवन की प्रतीक बनी हुई है। शरीर की शिथिलता पर मन की मंजुलता-निर्मलता, शक्ति की स्निग्धता सुरक्षित बनाए हुए है। वे पौराणिक-विचार धारा रखते हुए प्रतिक्रिया वादी नहीं। और नवयुग में समरस रहते हुए भी भौतिक भावना वश नहीं है, वे तत्वज्ञानी होकर भी कर्मयोग के कायल हैं, विचारक होकर भी व्यवहारवादी हैं। उनकी काले चश्मों से ढँकी आँखे भी अत्यंत सूक्ष्म ग्राही शक्ति रखती हैं, और वेधक दृष्टि भी। उनका जीवन सादा है, किंतु कार्यों में कला, और सौंदर्य का समावेश है। राजाजी की एक निश्चित एवं-सरल वेष भूषा है, पर उनकी परख पैनी है पकड़ पुख़्ता है। राजाजी-भारत की प्रतिष्ठा, और प्रतिभा हैं। वास्तव में राजाजी राजनीति के 'राजा' हैं, मद्रास जैसा प्रदेश भारत में है; इसका श्रेय राजाजी के प्रचण्ड-पौराणिक व्यक्तित्व को ही है ! आज वे अस्वस्थ हैं, अवकाश ग्रहण कर रहे हैं, भगवान दीर्घजीवी करे।

मध्यभारत की प्रगति !

निःसंदेह नव निर्मित राज्यों में मध्यभारत का स्थान महत्वपूर्ण है, यह उर्वर प्रदेश है, प्रकृति की इस पर कृपा है, और यहाँ की जनता भी उद्योग शील, श्रमशील, सरल और सहृदय है। अन्न और जल की दृष्टि से यह इस राष्ट्र का भाण्डार है, यद्यपि देशी राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् नई व्यवस्था नव शासन के कारण कुछ अटपटापन आया, पार्टी प्रपंच में पीड़ाएँ भी हुई, पांच-पांच चार शासन में परिवर्तन होने के कारण कुछ अस्थिरता भी रही, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दूसरे नवीन राज्यों की अपेक्षा मध्यभारत ने प्रगति की है। धीरे धीरे सही वह उन्नति की ओर अग्रसर बना है, अनेक दिशा में उसने जनहितकारी कार्य किए हैं। हाल ही में विधान सभा के षष्ठाधिवेशन के अवसर पर राज्य के प्रमुख श्रीमन्त महाराजा सिंधिया ने अपने शासन का जो लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है वह आशा-

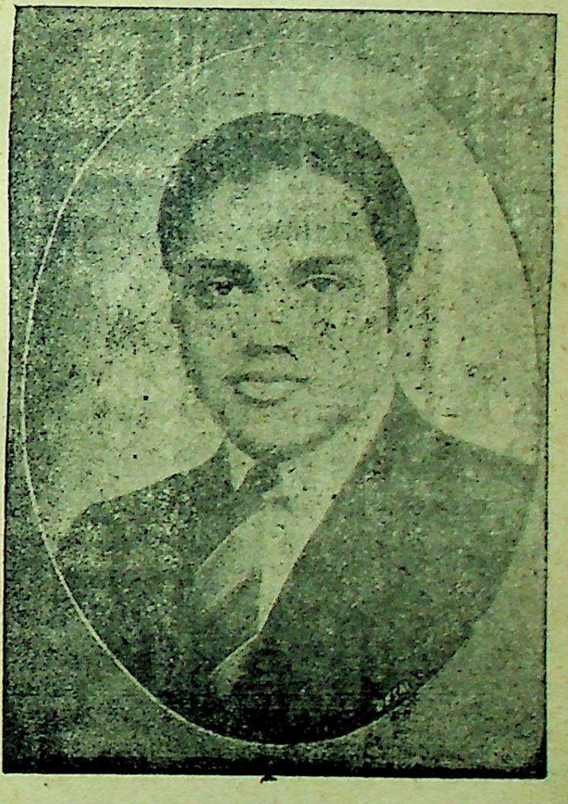

जनक ही है। शासन के विकास की ओर संकेत करते हुए राजप्रमुख ने शासकीय प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है, ग्रामोद्योग, सिंचन, परिवहन, विद्युत, ज्ञान प्रसार के क्षेत्र में शासन ने जो कार्य किया है, वह असंतोष का विषय नहीं हो सकता। राज्य की चम्बल योजना सर्वाधिक महत्त्व की है, और सबसे बड़ी भी। उसे केन्द्रने भी अपने पंचवर्षीय कार्यक्रम में सम्मीलित कर लिया है, यह राजस्थान, और मध्यभारत दोनों के लिए जीवन दायिनी है। अभी ही इसका शुभारंभ मा० पंडित नेहरू जी के हाथों हुआ है। मध्यभारत ने अनेक प्रांतों की अपेक्षा इसमें विशेष अनुराग लिया है, सक्रिय सहयोग भी दिया है, और गृहमन्त्री श्री काटजू का तो यह प्रिय विषय ही बन गया है। स्वयं प्रधानामात्य नेहरू जी ने उन्हें 'चम्बलवाला' नाम से सम्बोधित किया है। वास्तव में चम्बल योजना पूर्ण हो जाने पर वह इस प्रदेश के लिए कामधेनु बन जायगी, इसी प्रकार मध्यभारत अपने प्रदेश के विभिन्न भागों को यातायात योग्य बना परिवहन में प्रगति कर रहा है। यह समाज की समुन्नति के लिए स्वागत का विषय है। परन्तु मन्त्री या अधिकारी अपने निर्वाचन क्षेत्रों तक ही परिमित न रखकर इसका व्यापक विस्तार करे तो मध्यभारत अनेक दिशा में प्रगति प्राप्त कर सकता है। जहां तक शिक्षा क्षेत्र के विस्तार का सम्बन्ध है, शासन ने अवश्य ही संख्यावृद्धि में प्रगति की है। ६०० ग्रामों में अनिवार्य शिक्षा की शालाएँ आरम्भ हो गई हैं, १७ सामाजिक शिक्षा के केन्द्रों का कार्य चल रहा है और शिक्षितों की बेकारी हटाने के लिए शासन ने ३ करोड़ की योजना भी की है। किन्तु अभी तक शिक्षा के स्तर पर विचार नहीं किया गया है, संख्या वृद्धि से शिक्षित बेकारों को भले ही धंदा मिल गया हो परन्तु जिस शिक्षा से शिक्षित बेकार बना घूमता हो, उस शिक्षा के रूप में परिवर्तन किए बिना, शाला शिक्षा की संख्या वृद्धि केवल बेकारों के अनाथाश्रम ही बन कर रहजाते हैं। हमें योजना पूर्वक यथाक्रम शिक्षा का रूप, स्तर सुधार कर ही उसका विस्तार करना चाहिए, जिस शिक्षा-शिक्षक के कारण छात्र स्वावलंबन न सीख सके, और बेकारों की तादाद में बाढ़ लाता रहे, उसकी वृद्धि अब वांछनीय नहीं है। राज्य के इस विवरण में विश्वविद्यालय का विवरण नहीं है। पांच वर्ष बीत जाने पर भी उसे विवादास्पद स्थिति में डाल रखा है। अवश्य ही राज्य के मुख्य मन्त्री ने विधान सभा में जो आश्वान दिया है, वह संतोष के लिए सहारा हो सकता है, किन्तु अभी भी समय की सीमा में उसे समेटा नहीं जा सका है, सिलेक्ट कमेटी के सूत्र में वह इस समय भी अधर में लटकता रह जाता है।

शासन ने अभावों के अवसर पर उन क्षेत्रों की सराहनीय सहायता की है, तथापि अभाव की आशंका के उत्पन्न होते ही उन्हें उपेक्षित नहीं किया जाता तो जो सहायता संकट हो जाने के बाद दी गई, वह शायद संकट को सीमित बना देने में अधिक उपादेय बन सकती थी। राज्य के अपराधों की स्थिति थोड़ी सुधरी जरूर है, पर प्रश्न यह है कि डाकू लुटेरों पर शासन का आतंक हो सका है? यह सच है कि आज पत्रों में चोरी लूट-डाकों के जितने अधिक समाचार प्रकाशित होते हैं उतने पहिलें नहीं होते थे, किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि उस समय शासन का आतंक जितना पर्याप्त था, और दस्यु दल का दर्प-दलन सहज संभव हो जाता था वह आज कहां है? शासन की शिथिलता, और प्रचार का प्रोत्साहन आज तो उन्हें अवसर दे रहा है। संख्या की कमी का उतना मूल्य नहीं जितने आतंक की अधिकता से आशंका है। इसके उपाय की ओर शासन को सतर्कता पूर्वक विचार करना चाहिए। तथापि मध्यभारत जो दूसरे क्षेत्रों में प्रगति कर रहा है, वह उत्साह जनक है। यह समाधान की बात है कि शासन का नवीन बजट संतुलित है, उसमें घाटा नहीं है, और न नए कर आदि का बोझ ही जनता पर डाला गया है। शासन अपने मूल संचित कोष से धनराशि व्यय करता जा रहा है, यह अवश्य चिन्ता की बात है। यह तो हुई शासन की बात, अब थोड़ी शासकों की गति प्रगति पर भी विहंगावलोकन आवश्यक है। शासकों में जन सम्पर्क साधने की भावना जितनी तीव्र बनी दिखाई देती है उतनी जनता के असंतोष को समझने की नहीं है। वह जनता के निकट जाकर भी जन मनोविज्ञान को समझने का उचित कष्ट नहीं करते। शासकों की जो आलोचना होती है उसे वे सही समझें, और सुधार का प्रयास करें तो यह सम्पर्क-साधन

हितकारी हो सकता है। शासकों के दौरे उद्देश्य, और निरुद्देश्य बहुत होते हैं, उद्घाटन, स्वागत-समारंभ भी अपनी सीमा से बाहर हो रहे हैं, जनता पर इसका बहुत दुष्प्रभाव तो होता ही है, पर शासन-कार्य की जो हानि होती है, वह उससे कम कष्टप्रद, चिन्ताप्रद नहीं बनती। इस दौरे की दौड़, और उद्घाटनों की आकांक्षा पर आवश्यक अंकुश की अपेक्षा है। पांच वर्ष बीत जाने पर भी शासन में समस्त मध्यभारतीय एकता या आत्मीयता का उतना असर नहीं हुआ, जितना क्षेत्रीय भावना का विकार पोषित हुआ है। यह विकार नीचे से उठकर ऊपर तक संक्रामक बना हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। विधान सभा के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर हमारा शासक वर्ग जिस प्रकार अपनी प्रगति का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है, उसी तरह आत्म निरीक्षण, और आत्मालोचन का विवरण रखकर विवेचन किया करे तो उत्तम हो। शासन ने चाहे किसी दिशा में प्रगति का प्रयास किया हो, पर शासकों में क्षेत्रीय भावना पोषित होकर जो प्रांत की अपार हानि कर रही है, उसका अन्त आना आवश्यक है। वास्तविक प्रगति तभी होगी जब हमारे जन सेवकों की अन्तर भावना विमल हो, संकुचितता समाप्त हो जाए, और समस्त मध्यभारत की सर्वांगीण उन्नति में समरसता साध्य की जा सके। पार्टी-पक्ष-प्रपंचों से ऊपर उठकर समस्त प्रदेश की कल्याण की कामना की जाए। सौभाग्य से अन्य प्रदेशों की तरह यहां विकृत-वातावरण नहीं है। समझदार और सभ्य समाज का सहयोग है। विकृतियां कहां नहीं होती, किन्तु मध्यभारत में उसका स्वरूप विषम नहीं है। जो भी साधारण हैं उन्हें हमारे ही पक्ष-भेद, या संकीर्णता ने पोषित किया है। तथापि वह सुखसाध्य है, शासन के मार्ग में कण्टकरूप नहीं, ऐसे सुन्दर, सरल, सफल शस्य श्यामल प्रदेश की यदि हम साम्य भाव से सेवा करें, उसके विकास का निर्विकार विचार करें तो हमें विश्वास है, यह आदर्श उपस्थित कर सकता है। देश का यह हृदय-खण्ड सुखी, स्वस्थ, संतुष्ट, सम्पन्न होकर राष्ट्र-शरीर को प्रफुल्लित बना सकता है।

श्री महादेवीजी की सूक्तियां

श्रीमती महादेवी वर्मा साहित्य की सफल साधिका हैं। उनकी वाणी से जो सुन्दर सूत्र-सूक्तियाँ निकलती हैं, वे अपने अर्थगांभीर्य से स्वतन्त्र महत्व रखने वाली होती हैं। वे बहुत कम बोलती हैं। किंतु जब भी वे कहती हैं, उनकी अर्थ प्रचुरता विचार का विषय बन जाती है। उनकी वाणी, और विचार में ओज होता है। उत्तर प्रदेश की विधान-सभा में कुछ दिन हुए उनका भाषण हुआ था, उसमें उन्होंने जो संतुलित और समंजस रूप में आलोचना की थी, वह सरकार और समाज के लिए समान रूप में समझने की वस्तु है। उनकी आलोचना का स्तर ऊँचा है, वे सूत्र रूप में सूक्तियाँ बन गई हैं। पाठक उनके आवश्यक अंशों के उद्-

रथा से अनुमान लगा सकते हैं, और गहराई में गोते लगा सकते हैं:—

"अंकों की वर्णमाला जीवन की अपूर्णतम संकेत-लिपि है। जब हम उसे अतीत की उपलब्धि, वर्तमान की आवश्यकता एवं भविष्य की रूपरेखा के साथ रखकर देखते हैं तभी हमें अर्थबोध प्राप्त होता है।"

"जनता शासनतन्त्र को करों के रूप में कुछ अर्थ ही देती है, परन्तु प्रतिदान में वह ऐसे साधन और उपकरण चाहती है जो उसके समग्र जीवन को स्पर्श कर उसे विकास दे सकें।"

• • •

"कोई भी सरकार और किसी प्रकार का भी शासनतन्त्र खाद्य को तो महत्व देगा ही। माता अपने बालक को भोजन देती है और इक्केवाला अपने टट्टू की भी व्यवस्था करता है। परन्तु दोनों के लक्ष्य में अन्तर है। मां बालक में अपनी आत्मा का अवतार देखना चाहती है। उसमें अपने स्वप्नों को साकारता देती है, जबकि पशु-पालक अपने पशु से केवल भार-वहन का कार्य लेना चाहते हैं।"

• • •

"मनुष्य केवल समूहजीवी नहीं है। वह ऐसे समाज का अङ्ग है कि जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थ को समष्टि के स्वार्थ की छाया में चलना पड़ता है। अतः मनुष्य के हृदय और बुद्धि को ऐसे परिष्कार की आवश्यकता होती है जिससे वह सहयोग को सामंजस्यपूर्ण बना सके।"

• • •

"विदेशी शासन हमें अपनी सत्ता की स्थिरता के लिए जीवित रखना चाहता था, परन्तु आज हम अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए जीवित रहना चाहते हैं। स्वतन्त्रता के इतने वर्षों में हम अपने नैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक धरातल को ऐसा नहीं बना सके कि हम विवेकशील मानव कहे जा सकें।"

• • •

"हमारे शासनतन्त्र की दृष्टि में शिक्षा प्राथमिक आवश्यकता नहीं, दूसरी भी नहीं, तीसरी भी नहीं है। शिक्षा का हमारे जीवन में कहां और कौनसा स्थान है यह कहना कठिन है।"

• • •

"गत कुछ वर्षों में हमारे जीवन का स्तर निम्न से निम्नतर हुआ। और बुद्धिजीवी वर्ग एक ऐसी स्थिति में पहुंच गया है कि जिसे बनाए रखकर हम एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते और सम्भव है कि यह स्थिति परिणाम में हमारे लिए दुःखद ही सिद्ध हो।"

• • •

"साहित्य के माध्यम से संस्कृति का विकास होता है, किन्तु आज साहित्यकार के लिए न समाज में कोई महत्वपूर्ण स्थान है और न शासन-तन्त्र में ही।"

• • •

"दो खम्भे नहीं मिल सकते, परन्तु जल की दो धाराएँ मिल सकती हैं और उन धाराओं से बननेवाली नदी समुद्र में मिल सकती है। जीवन में ऐसी ही तरलता गतिशील होती है। शासन और शासित दोनों मिलकर एक ऐसी नदी बन जायँ कि जो जीवन को विकास के महान् समुद्र तक पहुंचा सकें।"

भारत में विदेशी वंचकवर्ग !

यों तो सारे एशिया में विदेशियों का जाल फैला हुआ है, और जो निरन्तर उथल-पुथल हो रही है, उसके अंदर यही विदेशी शक्ति काम कर रही है। ईरान, ईराक, इजिप्ट, सूडान, सीरिया, मोरक्को, बर्मा, इन्डोनेशिया आदि में जो परिवर्तन चक्र चल रहा है, वह विदेशी वंचकों का माया-जाल प्रपंच ही है। परन्तु भारत में भी यह जाल जम रहा है, नागा प्रदेश में मिशनरी के रूप में, काश्मीर में प्रेक्षक की प्रतिष्ठा पाकर जिस तरह यह विदेशी-वंचक वर्ग कुटिलता कर रहे हैं, वह कम खतरनाक नहीं है। पाकिस्तान में इनका मायाजाल

कालीन के कारखानों से लेकर काश्मीर की कन्दरा तक फैल चुका है, वहां उनके अड्डे बनने जा रहे हैं। पाक प्रधान उनके पाश में पड़ चुके हैं, सहायता का फन्दा उनके गले में पड़ गया है, यह फन्दा पास पड़ौस के स्वतन्त्र देशों के लिए गंभीर चिंता का विषय भी हो गया है। अब समाचार आ रहे हैं कि इन प्रवृत्तियों ने एकांत पर्वत प्रदेश में बसे हुए नेपाल में प्रसार-पनपाना आरम्भ किया है। सीलोन से चलकर सीधे सैर-सपाटे के लिए वहां के अमेरिकन प्रतिनिधि नेपाल पहुँचे हैं, और ठीक उसी अवसर का लाभ लेकर भारत-स्थित अमेरिकन प्रतिनिधि भी वहां उपस्थित हो गये! यह सुयोग सरल नहीं, शंका, और संदेह के लिए पर्याप्त है। नेपाल में होने वाली ये विदेशी-प्रवृत्तियाँ न केवल सीमावर्ती नेपाल के लिए किन्तु समस्त भारत के लिए भी अत्यंत सावधानी के योग्य है। नेपाल का शासन चक्र अब भी अस्थिर है, वहां असंतुष्ट-राणाशाही विदेशियों के स्नेह-सम्पर्क में रही है। आंतरिक-मतभेदों के खाई-खन्दक भी उस पर्वत की उपत्यका में पर्याप्त हैं, जहाँ विदेशी-विकार सरलता से दब कर पनप सकते हैं। ऐसी स्थिति में दो-दो विदेशी राजदूतों का सहज-समान समय दौरे पर दौड जाना साधारण बात नहीं है। काश्मीर में भी शेख-शासन-काल में अमेरिकन यात्रियों का यातायात बढ़ गया था। यदि शेख शासन समयपूर्व ही समेटा न जाता तो विदेशी-कूटनीति उसे कहाँ पहुंचा देती कहना कठिन है। नेपाल ने काश्मीर से यदि सबक न लिया, और आपस में उलझकर अपनी एकता की शक्ति को विदेशियों के जाल में जुड़ाकर छिन्न-भिन्ना बना डाला तो नेपाल का स्वतन्त्र अस्तित्व अन्धकार में चलाही जाएगा। साथ ही पास पड़ौस के लिए गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाएगी! सारे एशिया में विदेशियों की पाप प्रवृत्तियाँ संदिग्ध स्वरूप में बराबर बढ़ती जा रही हैं। इन के प्रतिकार की उपाय-योजना आवश्यक है! पाकिस्तान पर विदेशी-पाश पड जाने के पश्चात् भारत में विदेशी-प्रवृत्तियों के प्रति पहले से अधिक सतर्कता आवश्यक हो गई है। पंडित जी का एशिया पर बढ़ता हुआ प्रभाव भी उन विदेशियों के लिए असह्य होना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में पंडित जी की सुरक्षा का प्रश्न भी अधिक सावधानी की अपेक्षा रखता है। मध्यपूर्वकी घटनाएँ उत्थान पतन, हमारे समक्ष प्रश्न रूप में प्रस्तुत है हमें विश्वास ,है भारत विदेशी-वंचक वर्ग से सावधान रहेगा।

१९५७ का सूचक वर्ष!

सन् १८५७ में भारत में विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न हुआ था। १९५७ में उसकी शताब्दि पूर्ण होने जा रही है, इस पर जनता में अनेक अनुमान लगाए जा रहे हैं, भय-भावनाएँ की जा रही हैं। इन भावनाओं के पीछे केवल विद्रोह की परम्परा का वृत्त है, क्योंकि १७५७ में भारत पर विदेशी शासन स्थापित हुआ, १८५७ में उसके विरुद्ध विद्रोह का आरम्भ हुआ, इसलिए १९५७ में भी कुछ विशेष बात होना चाहिए। यह धारणा जन-साधारण में होना तो स्वाभाविक है, किन्तु कुछ विशेष क्षेत्रों से भी इसको पुष्ट करने वाली धारणा-व्यक्त की जा रही है। हाल ही में श्री चमनलाल ने पांडेचेरी के अरविन्दाश्रम की माता जी से कुछ प्रश्न पूँछे थे, उनके उत्तर में माताजी ने जो व्यक्त किया है, वह उसी धारणा को पोषित करता है। उन्होंने कहा पिछले दो ५७ सन् जिस प्रकार सूचक बने हैं, १९५७ भी वैसा ही सूचक होगा। १९५७ में पाकिस्तान सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगा और भारत को लेकर रूस एवं अमेरिका में सङ्घर्ष जगने की गम्भीर सम्भावना होगी। भारत के विषय में उन्होंने कहा--इस देश का भावी अवश्य उज्ज्वल है, यह विश्व का गुरु बन कर बढ़ेगा। श्री अरविन्द भी यही मत रखते थे। श्री माताजी और अरविन्द के अनुमानों का आधार आध्यात्मिक प्रेरणा है, भावी दर्शन की शक्ति है, जो साधकों को सुलभ है। इनके परिणामों का प्रत्यक्षदर्शन तो अवसर पर ही प्राप्त होगा, परन्तु इन अनुमानों के आधार देखने के लिए आज घटनाएँ अवश्य घटने लगी हैं। विचारशील व्यक्ति, जो विश्व के विकृत-वातावरण में विवेक दृष्टि से देखता है वह कल्पना कर सकता है कि पाकिस्तान ने जो अमेरिका से अपना नया नाता-जुड़ाया है, वह आज नहीं, आगे चल कर अवश्य विनाशकारी बन सकता है। यह पाकिस्तान के लिए तो खतरा है ही, पर भारत, एवं पास-पड़ौस के लिए भी कम प्रभावकारी नहीं होगा। भारतपर इसका क्या परिणाम पड़ेगा आज कहना कठिन है।

तथापि उसे अग्नि-परीक्षा से अवश्य गुजरना पड़ेगा। जीवन-मरण की समस्या सुलझाने का अवसर उपस्थित होगा। एशिया भर में राजनैतिक उथल-पुथल और क्रांति होना निश्चित है। आज एशिया में जहाँ-तहाँ उलझनें खड़ी हो रही हैं, शासन में अनिश्चितता आ रही है। उत्थान-पतन चल रहे हैं, उसके पीछे अमेरिका की राजनीति ही है। और वह एशिया को एक रोज अवश्य ज्वालामुखी के निकट लेजा कर छोड़ेगी। उसमें पाकिस्तान तो प्रधान रूप से विस्फोटक होगा ही, और उस विस्फोट का आघात भारत को भी अनुभव करना पड़ेगा। इन अनुमान, और आध्यात्मिक धारणा के साथ प्रत्यक्ष निर्मित होने वाले वातावरण के विवेचन से जो परिणाम प्रतीत होता है, उसी को खगोलीय-ग्रहगति भी समर्थन कर रही है। हमारा मत तो यह है कि पाकिस्तान की समाप्ति के पूर्व ही उसका बंगाल वाला प्रदेश उससे पृथक हो जाएगा, और अमेरिका से प्राप्त सैनिक साधन भी इसमें उसे सहायक न हो सकेंगे। इसी प्रकार आगे चलकर सीमाप्रांत से वर्चस्व कम हो जाएगा, और पाकिस्तान का आन्तरिक विषाद उसका अंग-भंग कर देगा। इधर भारत का भविष्य भी हमें तो ५७ या उसके आसपास ही अंधेरे में पड़ता दिखाई दे रहा है। पं० नेहरू की कुण्डलि के योगों से यह आशंका अन्यत्र भी व्यक्त की है। देश की स्थिति को देखते हम इस पर कुछ कहना इस समय ठीक नहीं समझते, इसी-लिए हमारे संकेत पर उत्पन्न विवाद को बढ़ाना उचित नहीं समझा है। किन्तु यह स्पष्ट है कि सन् ५६ के पश्चात् ही भारत में अनेक उलझनें, अशांति और अस्थिरताएँ उत्पन्न होना सम्भव हैं। शासन में नया रूप-नया विचार, नई प्रणालिकाएँ प्रविष्ट होंगी, और आस पास विषम वातावरण उत्पन्न होगा, जिससे अपने को अलग रखना सम्भव न होगा। यह क्रांतिकाल ही सिद्ध होगा। यह हम स्पष्ट कहने का साहस कर सकते हैं कि आगामी १० वर्षों में अमेरिका अपना वर्चस्व खो देगा, उसकी स्थिति दयनीय हो जाएगी, आज जिस डालर देवता की दया पर वह दुनिया को डौला रहा है, वह डालर उससे रूठ जाएगा। कोई आश्चर्य नहीं कि विश्व की यह बड़ी शक्ति इंग्लैंड की तरह तीसरी श्रेणी में पहुंच जाए सारे एशिया में बहुत बड़े फेर-फार होंगे और शासन के तन्त्र, रूप सब कुछ पलट जाएँगे। अनेक सीमाएँ सिमिट जाएँगी, नई रेखाएँ खिंच जाएँगी। इस प्रकार समस्त एशिया का पुनर्जागरण पुनर्जन्म ही होगा। योगायोग की बात है कि इसी परिवर्तन चक्र के चलने के समय क्रान्ति के जन्मदाता १८५७ की शताब्दी भी आ रही है।

यह समझौता ? यह सहायता ? यह सिद्धान्त ?

बहुत दिनों से जिस पाक-अमेरिकी समझौते का शोर सुनते थे, वह हो गया है। इस समझौते के साथ ही पाकिस्तान चाहे कुछ कहे, उसकी स्वाधीनता अमेरिका के पास रहन चली गई है। नेहरू जी के संपूर्ण विरोध करने पर भी अमेरिका ने अपनी रक्षा-व्यवस्था का एक नया मार्ग मुक्त कर सारे एशियाई देशों को उलझन में डाल दिया है। यद्यपि अमेरिका के अध्यक्ष ने समझौते के साथ ही भारत को अपनी मैत्री सुदृढ़ बनाने एवं सैनिक सहायता से उस पर कोई विपरीत प्रतिक्रिया न होने के आश्वासन दिलाए हैं, और अवसर पड़नेपर अपने समस्त वैधानिक अधिकार का उपयोग कर उसके प्रतिकार करने का भी विश्वास दिलाया है। किन्तु इसका क्या महत्व है ? जिस पाकिस्तान ने काश्मीर पर हमला कर भारत को आपत्ति के लिए उन्मुख बना दिया था, उसके विपरीत आंतक अमेरिका ने अपना एक स्वर भी नहीं निकाला, उसे अपराधी या आक्रमक बतलाने का साहस नहीं किया। बल्कि अमेरिकन प्रेक्षकों के विरुद्ध आशंका उठने पर भी कोई-कार्यवाही नहीं की, तथा काश्मीर समस्या को असीम समय तक सुरक्षा परिषद में भी उलझाए रखा। इस अमेरिका के इन आश्वासनों का क्या विश्वास, और क्या मूल्य किया जा सकता है! पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री ने इसी सैनिक सहायता मिलने पर काश्मीर समस्या सहज सुलझने की बात बतला कर जिस नई आशंका को भारत के लिए भ्रम का विषय बना दिया है, स्वयं पाक प्रधानने ही उसका उचित स्पष्टीकरण न किया, न अमेरिका के प्रधान ने ही उस पर प्रकाश डाला है। ऐसी हालत में अमेरिका के अध्यक्ष का यह कहना कि 'अमेरिका पाकिस्तान को जो देना चाहता है, और पाकिस्तान

जिसे स्वीकार करने को तत्पर है, वह किसी भी प्रकार भारत के विरोध या मुकाबले के लिए नहीं होगा' क्या महत्व रख सकता है। इसके विपरीत हमारे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जिस च्यांगकाई शेक को फार्मोसा में अमेरिका ने सहायता दी है, उसके सहायता प्राप्त सैनिक बर्मा में घुसकर जो विद्रोह कर रहे हैं, और हिन्द चीन में फ्रांस के सैनिक जो कर रहे, हैं, उन पर अमेरिका कौनसा अंकुश रख सका है ? क्या यह उसकी इच्छा के अनुरूप हो रहा है ? क्या यह अमेरिकी सहायता का बल ही वहाँ काम नहीं कर रहा है ? ऐसी स्थिति में आक्रमण और सहायता के दुरुपयोग के लिए कौनसी परिभाषा बनाई जाएगी ? पाकिस्तान अपनी सैनिक शक्ति, और शस्त्र साधनों को भारत, या काश्मीर के विरोध में लगा कर अमेरिकी साधनों से अपना बल स्वतन्त्र बनाए रखे यह सम्भव नहीं हो सकता है ? ऐसी स्थिति में अमेरिका उसका क्या और कैसे प्रतीकार कर सकता है ? और एक बार हमला हो जाने पर उस प्रतीकार के प्रयास का क्या परिणाम हो सकता है ? उदाहरणार्थ पाकिस्तान का पिछला आक्रमण हमारे सामने है, जिसे काश्मीर में उसने तायफे वालों की आड़ में किया, और अपने को अलग-अलग बतलाता रहा। अन्त में सीधे अपने सैनिकों को उसमें जुड़ा कर हमलावर बन बैठा, और लम्बे समय तक सुरक्षा परिषद में भी अपनीं ईमानदारी का इजहार कर अंत में अपने को आक्रांता बतलाने को बाध्य बना। यह स्थिति अमेरिका से अज्ञात नहीं है, यह जानते हुए भी अध्यक्ष जो आश्वासन देने का साहस कर रहे हैं, वह अपने आपमें कितना मूल्य रख सकता है ? क्या भारत इस पर विश्वास करके धोखे में आ जावे ? वस्तुतः अमेरिकी सहायता भारत के विरुद्ध नहीं है, वह रूस और चीन के विरुद्ध मोर्चा है। किन्तु यही मोर्चा पाकिस्तान को 'बलि' का पशु बना कर भारत, और एशिया के लिए भयङ्कर खतरा बढ़ाने वाला बन जाता है। भावी आपत्ति के बादल इस सहायता से भारत की भूमि पर मंडराने लग जाते हैं। इस दृष्टि से भी यह चीज अत्यन्त चिन्ता का विषय बन जाती है, भारत पाकिस्तान का कोई मुकाबला नहीं। भारत से संघर्ष लेकर पाकिस्तान कभी पनप नहीं सकता। भारत में यद्यपि अनेकपक्ष भेद हैं, पर समय आने पर ये एकता के साथ "वयंपंच शताधिकम्" बन जायेंगे। तथापि पाकिस्तान अपनी आपत्ति टालने के लिए ही क्यों न हो, अपने प्रदेश में जिस मजहबी जोश को जीवित रखकर उसके प्रवाह को भारत के विरुद्ध मोड़देता रहता है, उसे इस सहायता से प्रोत्साहन मिलेगा, और उसकी पाशवी-प्रवृत्ति कोई आश्चर्य नहीं कि सीमोल्लंघन कर संघर्ष का दुस्साहस कर बैठे ? अमेरिकी अध्यक्ष पाक प्रजा की मनोदशा का उचित विश्लेषण कर सकते तो ठीक होता, वे डालर-देवता की रक्षा के लिए इतने आतुर हैं कि मोर्चा पालेने की प्रसन्नता में मित्रों की आपत्ति को परखने का विवेक भी खो बैठे हैं। फलतः प्रचण्ड-विरोध की पर्वाह न कर, आश्वासन के असमर्थ-आवरण में लपेट कर विस्फोटक वस्तुओं को वानरों के विस्तीर्ण वातावरण में वितरित कर रहे हैं। जो उन्हें तो आफत में फंसाही न देगी। किन्तु पास पड़ौस की शांति पर पलीता फैंक देगी भारत ने अपने पर पाकिस्तानी भय छा जाने की दृष्टि से नहीं, किन्तु कोरिया से उठकर एशिया पर जिस भय की भूमिका के छाजाने की भीषण आशंका उपस्थित हो गई है, उसीसे बुलन्द आवाजमें विरोध व्यक्तकिया है, जिस कोरिया से अमेरिकाकी पराजय को प्रच्छन्न बना मध्य मार्ग द्वारा भारत ने अमेरिकी प्रतिष्ठा की रक्षाकी है, वही अमेरिका पड़ौसी-पाकिस्तान को प्रहारक साधन देकर भारत के उपकार का बदला उसके पास आग सुलगाकर देने जा रहा है। अमेरिकी अध्यक्ष ने भारत को भी ऐसे ही उपहार देने की उदारता व्यक्त की है। आश्चर्य है कि जो भारत दूसरे के दिए जाने वाले शस्त्रास्त्रों में विश्व-शांति के भय की आशंका लेकर अपना उग्र विरोध उद्घोषित करता है उसे भी उसी पंक्ति में आ जाने का आमंत्रण देकर उसका ही नहीं, उसके उच्च सिद्धांत का आदर्श का भी उपहास करना है। डालर की दुनिया का यही विवेक है तो चाहे वह कितना ही अर्थ-प्रवाह बहाता रहे, उसका भावी निःसंदेह अंधेरे में चला जा रहा है।

किसी के 'हमले' से नहीं, 'हमल' से हैरानी !

पाकिस्तान ने अमेरिकी सैनिक सहायता लेने का निश्चय कर लिया है। इससे भारत में ही नहीं, सारे

एशिया में खलबली मच गई है। पाकिस्तान लाख कहता है कि भारत पर उसकी आक्रमण की इच्छा नहीं। अमेरिका बतलाता है कि हम भारत को विश्वास दिलाते हैं कि उनकी दी हुई युद्ध सामग्री का भारत के विरुद्ध उपयोग नहीं होगा, और कदाचित हुआ तो अपनी पूरी वैधानिक शक्ति लगा कर उसका प्रतीकार किया जाएगा, किन्तु देखते हैं कि पाकिस्तान और अमेरिका की आवाज का इस पर कोई असर नहीं हो रहा है। पाकिस्तान ने चीन और रूस को भी ऐसे ही जबाव दिये हैं, तो यह समस्या बन जाती है कि यदि पाकिस्तान को भारत पर हमला नहीं करना है, और चीन-रूस के साथ कोई तनाव नहीं तो यह सैनिक शक्ति बढ़ाने, और किस हमले से रक्षा करने के लिये उसने अमेरिका 'से शस्त्रास्त्र लेने का संकल्प किया है ? अवश्य ही यह रहस्य है, जिसे हमें गहराई में उतर कर समझना 'चाहिये'। क्योंकि पाकिस्तान को पड़ौसी से दोस्ती रखना है, तो हो न हो उसे घर में ही कोई खतरा दिखलाई देने लगा है, जिससे भयभीत होकर वह अपनी ताकत बढ़ाना चाहता है। यह तो स्पष्ट है कि पाकिस्तान का अंग्रेजों और अमेरिकनों से गहरा स्नेह-सम्बन्ध है। उसे खतरा हो सकता है तो सिर्फ साम्यवाद से, किन्तु पड़ौसी चीन और रूस को भी यही आश्वासन देता है तो मालूम होता है पड़ौसी साम्यवादी सल्तनत से भी उसे शक शुबह नहीं है। फिर निश्चय ही इसे अपने घर में कहीं पनपने वाले साम्यवाद से चिन्ता होगई है। आदमी घर की बात पर्दे में रखकर ही बात करता है। अपनी जाँघ खुली कर शर्म बढ़ाना संभव नहीं होता। फिर पाकिस्तान की दुनिया में पाक-इज्जत है। वह इसे खोलकर अपनी बेपर्दगी कैसे करे ? हालही में हमें पाक-प्रचार-विभाग की गलती से कहिए या कुछ एक बड़ा महत्व का समाचार मिला है। यह समाचार ऊपर से दिखने में भले ही साधा दिखाई दे, पर हमने बहुत गंभीरता से इसे लिया है। बात यह है कि—पाकिस्तान में बहावलपुर नगर है। वहां के विक्टोरिया हॉस्पिटल में एक २५ साल का नौजवान दाखिल हुआ। उसे पेट में बहुत पीड़ा होरही थी। डाक्टरों ने बड़ी दिलचस्पी से उसकी देखभाल की, पर पीड़ा का कारण खाक समझ में नहीं आया। मजबूर हो, उसके पेट में आपरेशन करना पड़ा। पेट के पट खुलते ही डाक्टरों की बुद्धि हैरत में आगई। वहां एक बालक बैठा हुआ था, जिसके हाथ, पैर, सिर के बाल साफ दिखाई दे रहे थे। तब तो डाक्टरों ने पेट को फिर पैबन्द लगाया, और उस पीड़ित जवान को जच्चा-खाने में इलाज के लिये रखा। शायद अब यह समाचार आने ही वाला है कि इस पुरुष के पेट से कोई सन्तान उत्पन्न हो ! जनसाधारण के लिए शायद यह समाचार केवल आश्चर्य का विषय हो, प्रकृति का मज़ाक मालूम पड़े, किन्तु बारीकी से देखा जाए तो यह पाकिस्तान के लिये अत्यन्त चिंताजनक पोलिटिकल-प्रश्न हो जाता है। वहाँ पर्दे में रहने वाली बीबीयों में कुहराम मच गया है कि यह मर्द उनके अधिकार को हड़पने जारहा है ! काश पाकिस्तान में मर्द बच्चे देने लगे तो बीबी और बाबुओं में फर्क कौनसा रह जाएगा ? और बीबीयाँ क्या पर्दे में हाथ पर हाथ धरे बैठी रहेंगी ? शरीयत के मुताबिक उन्हें बेपर्द होने की इजाजत नहीं। आदमी उनका काम (मोनोपाली) भी लेलेता है तो उन्हें पर्दे से क्या सरोकार रहेगा ? इस तरह एक रोज बीबीयां आदमी का काम करने पर्दे से बाहर निकलने लगेंगी, फिर औरत और मर्द में क्या फर्क रह जाएगा ? यही तो साम्यवाद होगा, जिससे पाकिस्तान को ख़तरा है। बहावलपुर के इस पुरुष की प्रसूति-पीड़ा ने सारे पाकिस्तान की बेगमात में इन्कलाब लादिया है। इस घरू आफत से हैरान होकर मिया मुहम्मद अली ने अपने काका अमेरिका से इस्लाह चाही होगी, और अमेरिका ने अनुभव किया होगा कि अवश्य ही पाकिस्तान में यह ख़तरा घरू साम्यवाद को प्रेरित कर सकता है, पनपा सकता है, और प्रचण्ड बना सकता है। इससे निबटने के लिये ही उसने सैनिक बल

बढ़ाने की सलाह दी होगी। यही कारण है कि पाकिस्तान कहता है—उसे बाहरी हमले से डर नहीं है, न उसने किसी पर हमला करने की नीयत से सैनिक-बल बढ़ाने की जरूरत समझी है। वास्तव में पाकिस्तान को आज की हालत में किसी बाहरी हमले का डर नहीं भी है तो अवश्य ही इस (बहावलपुर वाले) हमल से उसकी हिम्मत परत पड़ गई होगी। वर्ना वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र है। उसे इस समझौते को इतना पर्दे में दबाने छुपाने की क्या आवश्यकता हो सकती थी ? पर जब यह भीतरी 'हमल' उसकी हालत, और हैंसियत पर ही हमलावर बन जाने की हिमाकत करने लग जाए तो उसे अपनी ताकत बढ़ाकर उसकी रोकथाम करने के सिवा क्या चारा रह जाता है। यही कारण है कि उसने अपनी कमजोरी को तुरंत पहचान कर आने वाले इन अंदरूनी "हमलों' से बचने के लिए अमेरिका से ताकत की दवाएँ लेना मंजूर कर लिया है। एशिया पर ऐसी कौनसी आफत आ पड़ी है कि वह पाकिस्तान के इन अंदरूनी मामलों में दखलन्दाजी कर बद-अमनी और बदनामी कर अपने पड़ौसी की प्रतिष्ठा पर से पर्दा उठाने का पाप करे ? जब खुद पाकिस्तान कह रहा है कि यह उसका घरेलू मामला है, तो पड़ौसियों को उसके घर पर पड़ा पर्दा उठा कर बदनाम नहीं करना चाहिए। कौन जाने आज एक बहावलपुर का मर्द बच्चा दे रहा है तो कल कराची में यही काण्ड न हो जावे। संक्रामक रोग की तरह यह सनक और मिया लोगों में फैली तो बाहरी साम्यवाद का हमला कहीं रुका रह जाएगा, और अंदरूनी हमलों से ही सारा पाकिस्तान सहज साम्यवादी बन जाएगा। भारत और एशिया के अन्य विरोधी-मुल्कों को पाकिस्तान की इस असली कमजोरी को सही समझने की कोशिश करना चाहिए, और सहानुभूति से व्यवहार करना चाहिए। कैसा विपरीत जमाना आगया है कि पड़ौसी की प्रतिष्ठा पर भी कोई विचार नहीं किया जाता !

मध्यभारत की महिलाओं की मांग !

मध्यभारत की महिलाओं ने डॉ० काटजू के समक्ष एक सदस्य मण्डल द्वारा यह मांग रखी कि—उनके प्रतिनिधि को शासन में मंत्रीपद दिया जावे। डॉ० काटजू ने इसे सहानुभूति पूर्वक विचार करने, और शासन से परामर्श करने का आश्वासन दिया है।

वास्तव में मध्यभारत में महिलाएँ चाहे बम्बई की तरह प्रगतिशील न हों, (यद्यपि बम्बई में कोई महिला-मंत्री नहीं है) तथापि अनेक महिलाएँ ऐसी योग्य अवश्य हैं कि अनेक पुरुषों की अपेक्षा उचित रूप से शासन-सूत्र सम्हाल सके। श्रीमती कमला बाई कीबे की योग्यता में संदेह का कारण नहीं। वे कार्य, और भाषण में पटु हैं, योग्य विदुषी हैं। इसी तरह श्रीमती चंद्रकला सहाय के विषय में कहा जा सकता है। वे तो प्रधान मंत्री पद तक का कार्य सुयोग्यता से संचालित कर सकती हैं। उनका ज्ञान बहुमुखी है, कार्य करने की क्षमता भी है। राजनीति ज्ञान के विषय में जिन लोगों ने विलीनीकरण के समय श्री वी० पी० मेनन के समक्ष उनकी दलीलें सुनी हैं, वे उनकी तर्क पटुता के, और अंतर-राष्ट्रीय राजनीति ज्ञान के कायल हुए होंगे।

वे अत्यन्त व्यवहार कुशल, चतुर, और कर्मण्य हैं, इसी प्रकार राणी राजवाड़े जैसी देवी भी अपनी सानी नहीं रखतीं, किन्तु दुर्भाग्यवश इन्हें कांग्रेस के टिकिट नहीं दिए जासके, और इन नारी-रत्नों को उपेक्षित किया गया। आज अपनी पार्टी, पक्ष प्रपंच के समक्ष जिस प्रकार मध्यभारत के अनेक योग्यतम पुरुषों की अवहेलना कर अनधिकारियों का अवसर आगया है, उसी प्रकार इन देवियोंको कौन पूंछने लगा। दलगत शासन की राजनीति ने जितना अयोग्यों को अवसर देकर ऊपर उठाया है, उतना ही योग्यों का तिरस्कार किया गया है। परिणाम स्वरूप हम अपने, और अन्य शासनों के मजाक का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। शासन-विज्ञान सर्वथा स्वतंत्र वस्तु है। वह नारेबाजी, और किसी संस्था की छाप लगाने से किसी के पल्ले नहीं पड़ जाता, उसके लिये जिस ज्ञान, अनुभव, योग्यता, दक्षता, —

क्षमता, परिपक्कता की आवश्यकता है, वह केवल त्याग के तौल पर चढ़कर सफेद अंचल में ही उतर नहीं आती। किन्तु दलगत-शासन पद्धति ने यही रुख रखकर सारी शासन पद्धति का मखौल उड़ा दिया है। और यही कारण है कि आज जनता शासन से क्षुब्ध है, त्रस्त है, उसका विश्वास उठ गया है, और शासन के अस्तित्व का लोगों को भान भी नहीं होता।

प्रचार की पोली पूंजी पर उद्घाटन, स्वागत समारंभ की सीमा लांघकर, वास्तविक कार्य की जैसी मिट्टी पलीद की जारही है वह शासन-तंत्रों के इतिहास में अपनी सानी नहीं रखती। ऐसी दशा में हम नहीं समझते कि कोई योग्य या अनुभवी शासक शासन के क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस भी करना चाहेगा। चिर शालीन, और सुयोग्य महिलाओं की कौन कहे? हाँ, मध्यभारत में चुनकर आई हुई देवियों में से किसी को 'पद' का दान देकर भले ही कोई प्रसन्नता प्रकट करलेना चाहे, किन्तु यह भी एक मनोविनोद तक ही रह जाएगा।

नीमाड का नया स्वर !

बहुत दिनों से सुना जारहा था कि—मालव के नीमाड़ विभाग में एक प्रच्छन्न-प्रवृत्ति प्रचलित है कि नीमाड़ी बोली वाले खण्ड की एक स्वतन्त्र इकाई बन जावे। हम सहसा इस पर विश्वास नहीं कर सके थे; किन्तु हाल में पत्रों में पढ़ा कि नीमाड़-लोक-साहित्य परिषद् द्वारा आयोजित एक 'बैठक' में यह चर्चा हुई है, और वह प्रचारित भी हुई कि—'नीमाड़ी भाषा बोलने वाले २० लाख व्यक्ति हैं। जो मध्य-प्रदेश, इन्दौर-भोपाल, ग्वालियर, सैलाना, बढ़वानी आदि विभिन्न भागों में विभाजित हैं; और प्राकृतिक सीमा से यह स्थान (?) १७०४७ वर्ग मील होता है। इन २० लाख व्यक्तियों की बोली प्राकृतिक परिस्थिति-संस्कृति सब एक सी है। इनका संगठन एक इकाई के रूप में होना आवश्यक है। 'बैठकमें केन्द्रीय-सरकार से प्रार्थना भी की है कि —इस इकाई को खण्डित न होने दे और जब भाषावार प्रांत रचना की जावे तब इस इकाई को किसी भी हिन्दी भाषी प्रांत में मिलादी जावे।' हमें इस सूझ पर अवश्य आश्चर्य ही हुआ, यदि इस प्रकार नीमाड़ी जनता की स्वतंत्र इकाई की मांग हो सकती है तो रतलाम के पास-पड़ौस की भाषा बोलने वालों और शाजापुर के आस-पास की भाषा के बोलने वालों की भी जो ठेठ उम्मटवाड़ी तक है और भेलसा से उत्तरीप्रदेश तक के खण्ड की एक-एक इकाई बनाने का प्रयास भी हो सकता है। इस तरह सारा मध्य-भारत अनेक खण्डों में विभाजित हो सकता है और अपनी—अपनी पृथक् संस्कृति, भाषा, प्रकृति की बात सहज उठाई जा सकती है। नीमाड़ी-भाषी सज्जनों को यह विस्मृत नहीं कर देना चाहिए कि उनकी बोली मालवी ही है। जो केवल दक्षिण-भाग के प्रकृति-स्पर्श से प्रभावित है, संस्कारों से समन्वित है। उसकी एक स्वतन्त्रसंस्कृति,प्रकृति मानना तो भ्रम ही होगा। नीमाड़ी में मालवी से ऐसा कौनसा विशेष अन्तर है जो उसकी पृथक्ता को पोषित करे। वस्तुतः हमारी मांग तो यह होना चाहिए कि मालवे से बाहर 'जो नीमाडी प्रदेश का खण्ड विभक्त हो गया है, उसे भी मालवे के अन्तर्गत मिला दिया जाए। खण्डवा जो कि महाभारत कालीन खाण्डव प्रस्थ है, मालवे का ही अंग है उसके भाषा संस्कार-सीमा आदि इसीसे सम्बन्धित बने हुए हैं। नीमाड की जनता को ऐसी विभक्त-भावना वाले विचारों को पनपने नहीं देना चाहिए, उन्हें तो अपने आत्मीय निमाड़ी भाषीजनों को निकट खींचकर लाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसी संस्कृतियों की समस्याएँ उत्पन्न कर स्वतन्त्र बनाने की भावना भी पथ-भ्रांत बनाने वाली हो सकती है। यदि नीमाडी की तरह मंदसोर भेलसा या शाजापुर की जनता अपने सहभाषियों की स्वतंत्र संस्कृत के स्वर में सोचने लगे तो इस देश में ही नहीं, छोटे छोटे प्रदेशों में भी अनेक संस्कृतियाँ उत्पन्न होने लगेगी, और उनकी इकाइयों की आवाज उन प्रदेशों को भी खण्ड खण्ड कर डालेगी। एकता की परमावश्यकता के इस युग में अनेकता बढ़ाने वाली प्रवृत्तियों को पोषित नहीं होने दिया जाना चाहिए। नीमाड की जलवायु-प्रकृति-विचार भाषा भावना-संस्कार सभी मालवीय है। सीमावर्ती संस्कारों के कारण साधारण भेदों का आना-रहना स्वाभाविक ही होता है इससे उनकी अलग अस्तित्व की कल्पना अस्वाभाविक एवं असंगत भी है।

मानवेन्द्र की मृत्यु !

प्रसिद्ध क्रांतिकारी, और विश्व विख्यात् प्रतिभाशाली व्यक्ति मानवेन्द्र नाथ राय, (एम्. एन्. राय के नाम से प्रसिद्ध) का निधन हो गया है। बौद्धिक जग से एक महान् विचारक चल बसा, भारत की प्रतिभा के क्षेत्र में यह अपूरणीय क्षति हो गई है। अवश्य ही श्री राय अपने जीवन में अनेक महत्व पूर्ण स्थानों पर पहुंच गए थे, उनकी योग्यता का सन्मान कर महान् लेनिन, स्टेलिन, ट्राटस्की जैसी विश्व वर्चस्व की विभूतियों ने श्री राय को अपना विश्वस्त और सहकारी भी बनाया, रशिया में उच्चपद पर आसीन भी किया, किन्तु राय अपने स्वतन्त्र मत के कारण साथ न रह सके, उन्हें रूस से हटना पड़ा, अनेक देशों में भटकना पड़ा भारत में वे साहस पूर्वक रहस्य मय जीवन बिताने को भी बाध्य बने। कम्युनिस्ट पार्टी की तरह अज्ञात वास जेल जीवन से मुक्त होने पर कांग्रेस में सम्मीलित होकर भी वे थोड़े समय के बाद ही पृथक हो गए। इस प्रकार एक महान् क्रांतिकारी विचारक, चिन्तक, लेखक राय का जीवन असफल बना रहा। वे अनेक भाषाओं के पंडित थे, कई भाषाओं में उनकी मौलिक महत्व की रचनाएँ प्रकाश में आई हैं, और प्रतिष्ठा भी मिली है, पर वे किसी क्षेत्र में जमकर नहीं रह सके, राजनीति में वह रम न सके, फलतः जन्मभर जग में भटक कर विविध क्षेत्रों में काम करके भी असफलता के साथ इस महान् मनीषी का अवसान हो गया, और अनेक बार क्षणिक चमक दिखला कर यह देदीप्यमान तारा सहसा तिरोहित हो गया। निःसंदेह मानवेन्द्रनाथ राय अपने ढंग के अद्भुत अद्वितीय व्यक्ति थे, भारत उनकी प्रतिभा का लाभ न पा सका !

नये पञ्चाङ्ग का प्रयोग !

वैज्ञानिक गवेषणा परिषद् के द्वारा आयोजित भारतीय पंचांग सुधारणा समिति ने एक ऐसे भारतीय पंचांग के प्रकाशन का निश्चय किया है जिसमें ग्रह-नक्षत्रों की उचित स्थिति का विवरण हो। सुना है कि यह पंचांग इसी वर्ष मार्च से आरम्भ होगा इसमें वर्षारम्भ २२ मार्च से होना स्वीकार किया गया है। क्योंकि उनका मत है कि सौर वर्ष में जो २३-२४ रोज की भूल रह जाती है। वह इससे दूर हो सकेगी। इस समिति ने संवत् के स्थान पर शक प्रधानता दी है, यद्यपि शक गणना दक्षिण भारत में ही प्रचलित है। समिति के सदस्यों का बहुमत ही संभवतः इसका प्रेरक होगा। अभी तो परीक्षार्थ यह पंचांग प्रकट होगा, देखना है उसका स्वरूप क्या होता है ? प्रत्यक्ष आनेपर वह चर्चा का विषय बन सकेगा। हम इतना ही कह सकते हैं कि यह समिति एकांगी है, उसमें अंग्रेजी के अनुकरणशील जनोंका ही समावेश है। भारतीय पंचांग कर्ताओं का प्रतिनिधित्व नहीं है यह स्पष्ट है कि आज भारतीय धर्म-कर्म एवं विविध संस्कारों पर इन्हीं परम्परा के पंचांगों का संपूर्ण प्रभुत्व है, जब तक उनको सहयोगी बनाकर सहमत न किया जाएगा, कोई भी ऐसी सरकारी योजना जनता पर प्रभावक नहीं बन सकेगी। अवहेलना कर दिए जाने वाले प्रयासों का क्या परिणाम हो सकता है यह तो सरकार के नव निर्मित पंचांग के प्रत्यक्ष हो जाने पर ही प्रतीत होगा।

राज्य-शासन ध्यान दे !

हमारी शिक्षा का कैसा विकृत-स्वरूप आज बन गया है उस पर विक्रम में पीछे पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। विद्यार्थी साधारण ज्ञान भी आज की शिक्षा में प्राप्त नहीं कर पाता। इसमें छात्रों का ही दोष नहीं है। अध्यापक की अनुभूति और अपरिपक्वता भी उसका कारण है। जब शिक्षित होकर बेकार रहने वाला व्यक्ति इस पद पर पहुँचता है तो स्पष्ट है कि उसकी शिक्षा अधूरी—अपरिपक्व ही रही है। हाल में एक छात्र ने विनोबा को 'सिनेमा स्टार' बतलाकर अपनी योग्यता का दीवाला दिखलाया है, जिसका उल्लेख बम्बई की धारा-सभा में भी किया गया था। इसके तथ्यों की जाँच होनी चाहिये, और ऐसी योजना की जाना चाहिये कि हमारी शालाओं में, शासन में, संस्था में, साधारण ज्ञान का विकास साध्य किया जा सके। कुछ समय हुआ हमने पढ़ा था कि अमेरिका से 'अटलान्टिक' नामक एक सुन्दर मासिक प्रकाशित होता है, उसने अपना एक विशेष-अंक प्रकाशित किया था, उसका नाम था 'भारत-दर्शन'! इसमें भारत की विविध भाषाओं के विद्वान्, विवेचक, लेखक-कवि कलाकारों, उनकी कृतियों, साहित्य, संगीत आदि का परिचय संग्रहित किया गया था, तथा भारतीय संस्कृति पर भी अधिकार पूर्वक चर्चा की गई थी। इस पूर्ति की स्वतंत्र-रूप से ५० लाख प्रतियां प्रकाशित की गई थी, और अमेरिका की समस्त शाला संस्थाओं में, कालेज, विश्वविद्यालयों, चर्चा मण्डलों, साहित्य संस्थाओं में वितरित किया गया था। वास्तव में यह बहुत सुन्दर योजना थी। आगे यही पत्र विभिन्न देशों पर इसी प्रकार की पत्रिकाएँ प्रकाशित करने का विचार कर रहा है। क्या ही उत्तम हो कि हमारे शासन द्वारा ऐसी योजना की जावे। विभिन्न राज्य अपने प्रदेशों से प्रकाशन-विभाग द्वारा अपनी एक पत्रिका प्रकाशित करती ही है। वे अपना एक अंक अपने प्रदेश के सम्पूर्ण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, शैक्षणिक आदि प्रवृत्तियों के परिचय सहित प्रकाशित करे। उसमें अपने प्रान्त की प्रगति, प्रवृत्ति, योजनाओं का परिचय हो, साहित्य-संगीत-कला प्रवृत्तियों का,

व्यक्तियों का, उनकी कृतियों का विस्तृत विवरण हो, और यह पत्रिका अन्य प्रदेशों में 'अटलान्टिक' की पूर्ति की तरह ही सर्वत्र शिक्षण संस्थाओं में, सभा-सम्मेलन-संस्थाओं में वितरित-प्रचारित करे। यदि हर राज्य से ऐसी पुस्तिकाएँ पत्रिकाएँ दूसरे राज्यों में प्रचारित की जाए तो हमारे ज्ञान-क्षेत्र में एक दूसरे से सम्पर्क भी बढ़ेगा, परिचय भी प्राप्त होगा, और एक दूसरे के विषय में अज्ञान भी निरस्त होगा। प्रतिदिन हमारी प्रचार प्रवृत्तियों में अनवरत काम तो होता ही है, किन्तु इन प्रकाशनों में पिष्टपेषण, प्रतिष्ठा-प्रचार आत्म स्तुति के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं होता। काश ! ऊपर सूचित चर्चाओं में व्यय किया जावे और उपयोगी विषयों पर प्रकाश डाला जावे तो हमारे ज्ञान का भी विकास होगा। अज्ञान का भी आवरण हटेगा, चाहे तो एक शासन अन्य शासनों से इसका व्यय भी वसूल करले और उसके प्रकाशन के लिए अपनी ओर से भी देवे तो यह प्रवृत्ति मँहगी भी न होगी। पारस्परिक व्यय के आदान-प्रदान से उसकी पूर्ति भी होगी, यह साहित्य सर्वत्र एक रिफरेंस की तरह उपयोगी होगा। सहकार सम्बन्ध में सहायक भी होगा। एक दूसरे के निकट-परिचय लाने में उपकारक सिद्ध होगा। हमें विदेशी परिचयों की आरम्भ में उतनी आवश्यकतानहीं, जितना अपने ही देश में अंतः प्रांतीय परिचय-सम्बन्ध सहयोग समझने-समझाने की आवश्यकता है। आशा है हमारे शासन इस ओर अवश्य ध्यान देंगे, प्रवृत्तिमय बनेंगे।

साहित्य एकेडेमी !

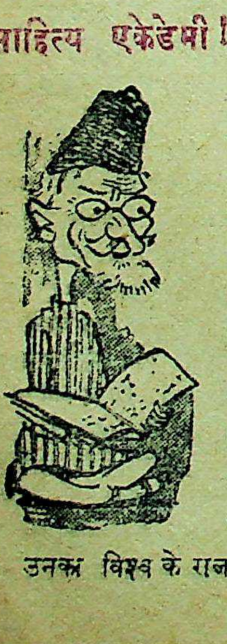

भारत-सरकार ने साहित्य और संगीत एकेडेमी की स्थापना की है, इन दोनों संस्थाओंका महत्व है। साहित्यके सृजन, पुनरुज्जीवन और सम्मान के लिए एकेडेमी की आवश्यकता है। हाल ही में सरकार ने विधिवत् इसकी प्रथम बैठक का आरंभ किया है। इसके अध्यक्ष स्थान पर पं० नेहरूजी की वरणी की गई है, जो सर्वथा उचित ही है। अवश्य ही पंडितजी राजनीतिज्ञ हैं उनका विश्व के राजकारण में अप्रतिम स्थान है, किन्तु वे राजनीतिज्ञ न भी होते तो उनकी साहित्य-कृतियों के कारण भी वे साहित्यिक जग में अपना विशिष्ट स्थान ले सकते थे। यद्यपि पंडितजी ने भारतीय भाषा में कुछ नहीं लिखा है। यह अभाव हमारे लिए खटकने वाला है, तथापि उनके विशिष्ट साहित्यिक होने में किसी को संदेह का अवसर नहीं है।

अतएव एकेडेमी की अध्यक्षता के लिए उनसे अधिक सुयोग्य व्यक्ति नहीं हो सकता था। जिस सरकारी संस्था के प्रधान पंडितजी हों और प्रधानामात्य भी हो, यह उसके उन्नत भावी का सूचक ही होगा। अवश्य ही पंडितजी अत्यन्त सुरुचि और परिमार्जित मति सम्पन्न साहित्यिक हैं। उनकी अध्यक्षतामें एकेडेमी अपना स्तर उन्नत ही बनाए रखेगी मौलाना आज़ाद ने अपने उद्घाटन भाषण में यही कामना भी की है, उन्होंने फ्रेंच एकेडेमी का उदाहरण देते हुए बतलाया कि वहां ४० सदस्य ही अवसर उपलब्ध कर सके थे, यद्यपि फ्रांस में अनेक असाधारण प्रतिभा सम्पन्न साहित्यिक रहे, परन्तु वे उस संस्था की सदस्यता का सन्मान नहीं पा सके। संस्था ने अपना स्तर सदैव उन्नत बनाये रखा। भारत सरकार ने अपनी एकेडेमी के लिए २१ सदस्यों की योजना ही की है, और उसका उच्चधोरण कायम रखने का निश्चय व्यक्त किया हैं। तथापि २१ संख्या अंतिम नहीं है। उसमें क्षय, वृद्धि की जा सकती है, परन्तु सदस्यों के अतिरिक्त उक्त संस्था में फेलो रखने का भी निश्चय किया है, जिससे विद्वानों को प्रवेशाधिकार सुलभ हो जाएगा। भारतीय संविधान में ग्रहीत १४ भाषाओं के प्रतिनिधियों को इसमें समाविष्ट किया जाएगा। राज्यों, विश्व विद्यालयों, एवं भारत सरकार के प्रतिनिधियों को प्रवेश प्राप्त होगा। इनके अतिरिक्त शिक्षा विभाग के द्वारा ८ प्रतिनिधियों का नाम निर्देश किया जावेगा। संस्था के द्वारा संविधान में सूचित १४ भाषा में से प्रत्येक की विशिष्ट कृतियों के लिए प्रतिवर्ष ५ पुरस्कार प्रदान किए जायेंगे। अकादमी की प्रथम बैठक का प्रारम्भ पं० नेहरू जी की अस्वस्थता के कारण उपराष्ट्रपति डॉ० राधा-

कृष्णन् के द्वारा संपन्न किया गया। इस अवसर पर सदैव की भांति सर सर्वपल्ली ने अपना अत्यन्त-ओजस्वी एवं सारगर्भित भाषण दिया। साहित्य की महत्ता, उपयोगिता, और उसके सौष्ठव पर आपने प्रेरक प्रवचन किया। उस संस्था का शुभारम्भ अभिनन्दन का विषय है। हम इसकी प्रवृत्ति, और प्रगति देखने को उत्सुक हैं।

एशियाई सभ्यता-संस्कृति से सम्बन्ध!

हमने लगभग ६ मास पूर्व विक्रम में एक सूचना इन्हीं स्तम्भों में की थी कि भारत में एशिया के प्रमुख देशों की भाषा के शिक्षण की व्यवस्था की जावे। एशियाई सहयोग सम्बन्ध के लिए यह परमोपयोगी होगा। हम फ्रेंच, रशियन् इंग्लिश भाषा के अध्ययन की व्यवस्था करते हैं, यह ठीक है, पर आज एशियाई भाषाओं के साथ निकट सम्पर्क बढ़ाने सीखने समझने की आवश्यकता अधिक होगई है। भारत का ज्यों ज्यों एशियाई सम्पर्क बढ़ता जाता है, वर्चस्व हो रहा है, उसके लिए उन देशो के भाषा-संस्कृति और समाज में सम्पर्क स्थापित करना विशेष रूप से आवश्यक हो गयाहै। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विक्रम की इस सूचना पर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ है, और वह इसका महत्व समझ इस दिशा में प्रयत्नशील है। हम चाहते हैं कि भारत के विभिन्न-विश्वविद्यालयों में ऐसी शिक्षण व्यवस्था सहज आरम्भ की जा सकती है, और वह स्वागत योग्य हो सकेगी। सरकार केन्द्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसा स्वतन्त्र कालेज भी खोल सकती है। जहां चुने हुए एशियाई राष्ट्रों के सहयोग से उन राष्ट्रों की भाषा-संस्कृति-सभ्यता का अध्ययन हो, इसके लिए छात्रों को प्रोत्साहित किया जाए, उन्हें उन उन राष्ट्रों में प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण के लिए भी भेजा जाए, और कुछ काल तक उन्हें वहां ज्ञान के अतिरिक्त संस्कृति सभ्यता, इतिहास, भूगोल, संस्कारों आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान देने की सुविधा की जाए, और इसी प्रकार एशियाई छात्रों को अपने यहां आमंत्रित कर, प्रेरित कर; छात्रवृत्ति देकर हमारी सभ्यता, संस्कृति को सीखने के लिए आकर्षित किया जाए। मलाया, जावा, स्याम, सुमात्रा, इंडोनेशिया, ईरान, ईराक, सीरिया, इजिप्ट आदि राष्ट्रों से इस प्रकार परस्पर निकट सम्बन्ध स्थापित किया जाए। हमारा विश्वास है, यह ज्ञान का आदान-प्रदान हमारे राष्ट्र के लिए भविष्य में बहुत उपकार सिद्ध होगा। हम भारत सरकार का ध्यान इस ओर पुनः आकर्षित करना चाहते हैं।

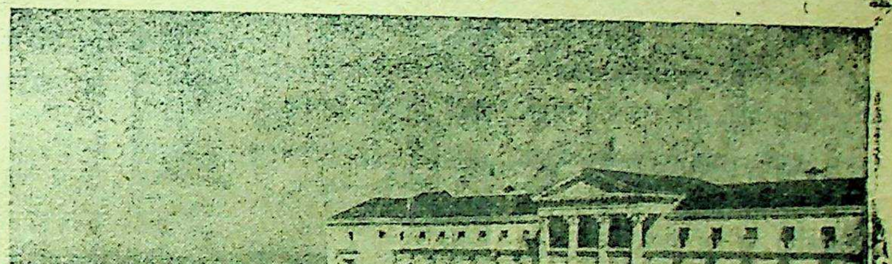

स्वास्थ्य केन्द्र—सोवियत रूस के खान मजदूरों का एक भव्य सेनोटोरियम

नर्मदा-तट वासी परशुराम !

वस्तुतः परशुराम नर्मदातटीय ही थे। उनका स्थान जामदग्न्य-पर्वत (जनापाव पर्वत) आज भी मध्यभारत में महू से कुछ दूरी पर विद्यमान है। यहां जमदग्नि ने तपश्चरण किया था। पुराणों में अनेक स्थल पर इसकी साक्षी मिलती है। यह सभी जानते हैं कि जामदग्न्य-परशुराम ने २१ बार पृथ्वी निःक्षत्र की थी। क्षत्रियों के साथ परशुराम का समर प्रसिद्ध रहा है। अथर्व वेद के पंचम सूक्त से लेकर महाभारत तक भार्गव और वशिष्ट आंगिरस के युद्ध की कहानी भरी पड़ी है। जिन सहस्रार्जुन-हैहयों से इनका समर हुआ था वे मध्यभारतके माहिष्मती(महेश्वर) के ही थे। हैहयों का पराक्रम अनतिम हो गया था। भारत के उत्तरभाग के बहुत बड़े भाग पर अधिकार था। इस अधिकार से विचलित भार्गव परशुराम ने इनसे संघर्ष छेड़ा था, हैहयों की शक्ति प्रबल थी, तथापि कुछ क्षेत्रों पर भार्गवों का अधिकार हो गया था परन्तु, अन्त में भार्गवों को परास्त होना पडाहै। कुछ लोगों ने व्रज में परशुराम की जो चर्चा की है, वह इस समरकाल में विभिन्न स्थलों पर परशुराम की संघर्ष परम्परा से संबंधित हो सकती है, क्योंकि विभिन्न स्थलों पर संघर्षका अवसर आया है। किन्तु इससे परशुराम के स्थान के विषय में शंका लेने का कारण नहीं। वह तो नर्मदा तटवर्ती ही रहे हैं, और हैहयों के पड़ौसी भी। समर काल में शक्ति संतुलन के लिए, सहयोग के लिए भ्रमण किया है। चर्चा उस हद तक कई स्थानों पर सुलभ होना स्वाभाविक है। वस्तुतः वह नार्मद थे, पुराण महाभारत-वर्णन-विश्लेषण से यह स्पष्ट है। सहस्रार्जुन-कार्तिवीर्य का स्थल महिष्मती है। और जनापाव नर्मदा-जामदग्न्याश्रम के रूप में आज भी विद्यमान है, धर्मशास्त्र के इतिहास लेखक श्री काणे ने भी यही स्वीकार किया है।

कलामूर्ति श्री फड़केजी
धार (म०भा०) के अन्तर्राष्ट्रीय, ख्याति प्राप्त कलाकार, जिन्होंने अपने सफल जीवन के ७१वें वर्ष में प्रवेश किया है।

प्राचीन ग्रीक नागरिक की शपथ !

१. मैं इस अपने नगर को किसी भी कायरता या बेईमानी की कृति से लांछित नहीं करूंगा।

२. मैं नगर के आदर्शों और पवित्र सत्वों को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने सह-नागरिकों के साथ-साथ (और जरूरत पड़ने पर) अकेला लड़ूंगा।

३. मैं नगर के नियमों का सम्मान और पालन करूंगा यदि कभी मेरे आसपास के लोगों में नियमों की अवहेलना की वृत्ति दिखेगी, तो प्राणपण से उनके मन में भी मेरे सदृश आस्था उत्पन्न करनेकी कोशिश करूंगा।

४. जन-मन को सदा नागरिक-कर्तव्यों के प्रति जागृत रखने में मैं सतत सचेष्ट रहूँगा।

५. मैं प्रार्थना करता हूँ कि यह नगर रोज रोज अधिकाधिक भव्य और शिव और सुन्दर होता चले तथा मैं उसके नागरिक जीवन में अपने कर्तव्यों को औचित्य और उपयुक्तता के साथ निभाता रहूँ।

—०—०—

सौर परिवार का प्रभाव

श्री सूर्यनारायण व्यास

विज्ञान की यह मान्यता है कि प्रत्येक वस्तु आन्दोलित अवस्था में रहती है। उन आन्दोलनों की गतिविधि के अनुसार ही समस्त जड़-चैतन्यों पर न्यूनाधिक रूप में प्रभाव पड़ता रहता है। उसी प्रकार आकाश-संचारी ज्योतिष्पिण्डों का भूतल सञ्चारण करनेवालों पर यथाक्रम परिणाम होता है। सारा विश्व इस बात को एक स्वर से स्वीकार करता है कि समस्त-जग पर सूर्य का ही प्रभाव सर्वाधिक है। प्राणिमात्र के स्वास्थ्य-सन्तुलन के लिये जड़-चैतन्यों को अपनी अवस्था में रहने के लिये, जिस प्रकार सूर्यातप की आवश्यकता है, उतनी अन्य की नहीं। यह पृथ्वी, जिसपर हम रहते हैं, जिसपर वृक्ष-वनौषधियाँ उत्पन्न होती—पोषित होती हैं, वह सूर्यातप का परिणाम ही है। पृथ्वी स्वयं एक ग्रह है। यह सौरमण्डलीय अंश ही है। परन्तु आरंभ में जिस तरलता में यह रही है, हिमयुग की जिस स्थिति की ऐतिह्य-रचना की जाती है, उससे वर्तमान रूप में परिवर्तित अस्तित्व बनाये रखने का कारण भी सूर्य ही है। उस 'हिमांश' के शोषण हो जाने पर ही वह जीव एवं वनौषधियों की सामर्थ्य पासकी है। आज भी दक्षिण-ध्रुव-प्रदेश के भू-खण्ड को पर्याप्त तापमान न मिलने के कारण, जैसी अगम्य हिम-मयता विद्यमान है, वहां प्राणियों का पहुँचना ही प्रश्न बना हुआ है। और आज वर्तमान युग के वैज्ञानिकों का यह भ्रम बढ़ता जा रहा है कि यथाक्रम सूर्य से तेजो-ह्रास होता जा रहा है, इसलिये आश्चर्य नहीं कि किसी काल में उचित ताप-मात्रा के मिलने के अभाव में यह पृथ्वी अपनी संचित-आकर्षण-शक्ति खो बैठे, जो कि इसके अस्तित्व का कारण है—अन्यथा यह आज की आन्दोलितावस्था से हट कर प्रलय सृजन कर बैठेगी! पृथ्वीग्रह के सौर-ताप मानानुरूप अन्य ग्रहों में इन तत्वों के अभाव के कारण ही वे सृष्टि-सामर्थ्य-सेवित नहीं कर सके हैं।

सूर्य की तरह चंद्र आदि अन्य ग्रह-गणों की स्थिति भी है। चंद्र सूर्य से ही प्रकाश ग्रहण करता है। परंतु वह प्रकाश के बदले में रस-परिपोषण प्रदान करता है। आधुनिकतम वैज्ञानिकों ने यह माना है कि चंद्र पृथ्वी का 'हिममय' एक खण्ड है, जो सूर्य के ताप से ऊपर उठकर अधरावलंबित बन गया है। इसी धारणा को पुराने विद्वानों ने भी चंद्र को 'हिमांशुश्चंद्रमा', 'शीतकर' आदि कहकर पहले ही स्वीकार किया है। चद्र का पारिवारिक सम्बन्ध आज भी सागर से इसीलिये बना हुआ है कि वह उसी का हिममय अंश है। यही कारण है कि अपने पारिवारिक प्रफुल्लता-क्षीणता को निजत्व में लेकर वह ज्वार-भाटे के रूप में अपने भावों का चढ़ाव-उतार प्रकट करता रहता है। चंद्र का फलद्रुम, वृक्ष-वनौषधियों पर, स्निग्ध, सरस, और दुग्ध-प्रचुर वृक्षों पर सहज-स्वाभाविक परिणाम पड़ता रहता है। सभी के अनुभव की बात है कि जितने सरस, स्निग्ध सदुग्ध वृक्ष होते हैं, वे चंद्र-प्रभाव को पाकर ही दुग्ध-स्रवित करते हैं। अनेक वनौषधियों को परिपूर्ण रस-संचार करने में शारदी-पूर्णिमा सहायक बनती है। उदुम्बर-वृक्ष के दुग्ध की धारा सूर्य-ताप का प्रभाव बढ़ने के पहिले ही निर्गत होती है। दिन-मान के बढ़ने पर स्निग्धता सूखने लग जाती है। और यथाक्रम वह धवल-रस ताप-तप्त होकर रक्तिम-रूप लेने लग जाता है। यह प्रभावशाली ज्योतिर्मय ग्रहों का प्रभाव है; परन्तु अनेक छोटे-बड़े ग्रह-तारक पिण्ड भी हैं, जो या तो सौरप्रभाव से आवृत होकर कक्षा-क्रम के अनुरूप पृथ्वी तक अपनी संपूर्ण शक्ति नहीं प्रदान कर पाते, या सारे मण्डल की सीमा में रहकर अपनी सीमित-प्रभा पहुंचा पाते हैं। तथापि वे अपना न्यूनाधिक प्रभाव स्थलज पदार्थों—वस्तुजातों पर अवश्य छोड़ते रहते हैं। केवल स्वाति-नक्षत्र की जल-बिन्दुओं के लिये सीपी अपनी

संपुट खोले रहती है, और उसे पाकर द्युतिमय मुक्ताकण से अपने अंतर को अलंकृत कर लेती हैं। कुछ वनौषधियां केवल चित्रा की कला का पानकर फलित-पुष्पित बनती है। रोहिणी की रश्मि पाकर ही अनेक धान्य अपने को पुष्ट एवं नीरोग बनाया करते हैं और हस्त की किरणों का विषधर सर्प के दाँतों पर वह प्रभाव पड़ता है कि वर्ष भर वह अपनी विषाक्त-भावना को पोषित करता रहता है। मृग और आर्द्रा के रस-बिन्दुओं की प्रतीक्षा किसान-समुदाय बहुत उत्सुकता से वर्ष भर किया करते हैं। आयुर्विज्ञान के विद्वानों को ही नहीं, वात्स्यायन एवं चाणक्य को भी यह स्वीकार है कि प्रतिमास की एक निश्चित समय की चांद्री-कला ही ऋतुमति के ऋतुस्राव के लिये सहायक बनती है। इसी विभिन्न तारकों का स्वतंत्र एवं संयुक्त प्रभाव स्थल-जीवियों पर निरन्तर पड़ा करता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। ज्योतिःशास्त्र की रचना इसी आधार पर निर्भर है। जो मानव जिस नक्षत्र-ग्रह वातावरण के तत्व-प्रभाव विशेष में उत्पन्न-पोषित होता है, उसमें उसी तत्त्व की विशेषता रहती है। अन्य तत्त्वों का तत्कालीन ग्रह, स्थिति प्रभावानुकूल न्यूनाधिक प्रभाव रहता है। ग्रीष्म की प्रचण्ड उष्णता में दिल्ली में जन्म लेनेवाला प्राणी, और उसी समय उष्ण-प्रभाव से हीन मसूरी-शिमला-काश्मीर में उत्पन्न होनेवाला प्राणी एक ही अवसर में जन्म लेकर भी वातावरण की भिन्नता के कारण भिन्न प्रकृति से पोषित होता है। सम-सामयिक होते हुए भी सूर्यातप की विभिन्न प्रभाव-स्थिति का उसके निर्माण पर पर्याप्त परिणाम हुए बिना नहीं रह सकता। और इसी प्रभाव के अनुरूप उसकी रूपाकृति, स्वभाव, शरीरावयव-रचना होगी। ठीक यही स्थिति वन्य स्थलज, उद्भिज आदि की भी होगी। दिल्ली की रजतबालुकामय प्रदेश के तीव्र ताप में उत्पन्न होनेवाला ज्येष्ठ मास का एक वृक्ष जहाँ जर्जर-नीरस, झुलसे लता पल्लवोंवाला होगा, वहाँ मसूरी-शिमला में उसी समय वह वृक्ष अपने सरस-रम्य हरित लता-पल्लवों की शोभा से तन मन को मुग्ध करता रहेगा।

विवाह-सम्बन्धों के अवसर पर जिस मेलन पद्धति का प्रयोग परम्परा से किया जाता है, उसका भी अवलंबन यही है। अमुक योग-नक्षत्र-वर्ण-प्रभावोत्पन्न पुरुष का शरीर-प्रकृति-स्वभाव तत्त्व का अमुक प्रकार के नक्षत्र, ग्रह, योग प्रभावोत्पन्न नारी के साथ सहयोग-सम्बन्ध किया जाना उचित बतलाया जाता है तो उसमें तात्त्विक-साम्य का विचार ही मूल में रहता है; अथवा प्रभाव-शामक सामंजस्य शक्ति से सहयोग होने पर अनुकूलता रहती है। अविचार-पूर्ण विभिन्न तत्त्व-प्रभावोत्पन्न नारी-पुरुष का सम्बन्ध, प्रतिकूल तत्त्व-प्रभावोत्पन्न नारी-पुरुष में कदापि समानता में सहयोग- परिणत नहीं कर सकता। प्रतिकूल प्रभाव-तत्त्वों का सहयोग विषम होना स्वाभाविक है। इस 'मेलन' को जो भावुकता से वैधव्य-दीर्घजीवन आदि के साथ जुड़ाकर उपेक्षा करते हैं, वे इस मेलन-पद्धति की वैज्ञानिक-परिणति से सर्वथा अनभिज्ञ होकर ही ऐसा करते हैं। यदि प्रयोग-कर्त्ता के प्रभाव-परीक्षण की अक्षमता के कारण परिणामों की विषमता प्रकट होती है तो उस पद्धति की अवैज्ञानिकता मान लेने का कोई कारण नहीं। इसी तरह प्रवास-मुहूर्त आदि के विधानों की भी धर्म-प्रधान व्यवस्था है। उसमें अन्ध श्रद्धा और विश्वास-भावना को कोई स्थान नहीं है। वह गगन-गामी ग्रह-नक्षत्रों के वातावरणीय प्रभाव से सर्वथा सुसंगत अथवा वैज्ञानिक है। मानव ही नहीं, प्रत्येक स्थलज-वस्तुजात पर अपनी स्थिति-तत्त्वानुरूप सौर-साम्राज्य का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता ही है।

चैतन्यों की तरह जड़-जगत् पर भी सौरमण्डलीय वातावरण का प्रभाव पड़ता है। पत्थरों के रंग-रूप आकार-प्रकार, सबलता-निर्बलता आदि पर जल-वायु-प्रकृति प्रभावित है। पत्थरों की प्रत्येक खानें रत्न-राशि उत्पन्न नहीं करती। वह भी जिस ग्रह, नक्षत्र के ताप तीक्ष्ण-मृदुल-तेजस्वी रश्मि के प्रभाव में पोषित होती है, उसी तरह के रूप-रंग और परिणाम भी प्रदान करती है, और पत्थर जिस प्रकार के प्रभाव-वातावरण में उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार के वातावरण-प्रभाव-स्वभाव के मानव की प्रकृति परीक्षा के साथ योजित किये जावें

तो उचित-परिणाम भी देते हैं । प्रतिकूल प्रभाव के मानव का विपरीत स्वभावोत्पन्न रत्न से सम्बन्ध जुड़ा दिया जावे तो वह विषम हो जाता है । स्वभावानुरूप किरणांदोलित प्रभाव-परीक्षण के पश्चात तात्त्विक साम्य हो जाने पर सहज ही लाभप्रद हो जाता है ।

जो मानव कृष्ण पक्ष के क्षीण चंद्र के काल में जन्म लेता है, उसकी शारीरिक सरसता, स्नायविक स्निग्धता और अस्थियों में जिस प्रकार के मौलिक प्रभाव-केल्शियम -चूने की प्रचुरता अपेक्षित है, वह पर्याप्त नहीं उपलब्ध हो पाती । इस कारण उसके मन की स्नायु पर दुष्परिणाम पड़ता है । फलतः वह रुक्ष विमनस्क, नीरस, पित्त-प्रभावित-ओज-प्रभाव की अल्पता-युक्त बन जाता है । उसका शारीरिक विकास, चांद्री-कला विहीन, इतर तारक-किरण-प्रेरित-तत्त्वों के पोषण से प्रभावित होगा।

ऐसी अवस्था में उसके मानसिक संतुलन और मनः स्वास्थ्य की अनुकूल आवश्यकता के अनुरूप यदि उसी प्रकार के स्वभाव-शक्ति की मात्रा रखने-वाले चंद्र प्रभाव-जन्य मौक्तिक की योजना कर दी जावे तो स्वाभाविक है कि नक्षत्र-प्रभाव-हीन स्नायविक-दौर्बल्य को वह दूर करने में सहायक सिद्ध हो । किन्तु चंद्र का प्रभाव किस मात्रा में कम प्राप्त हुआ है, किस वातावरण के कारण यह मात्रा अनुकूल एवं प्रतिकूल हो सकती है, यह ज्ञान चंद्र की गतिविधि-रश्मि-प्रसार और गगन संचार की खगोलीय योग्यता से ही जानी जा सकती है और उसके पश्चात् ही उस मौक्तिक की उसी प्रकार स्वभाव-परीक्षा भी, जिसके उस तत्त्व के अभाव में स्वभावानुरूप जुड़ाने की आवश्यकता है। यह कितने गंभीर और वैज्ञानिक अनुशीलन एवं अभ्यास का विषय होना चाहिए, कहने की आवश्यकता नहीं। दो विभिन्न विषयों की तात्त्विक परीक्षा पर यह निर्भर है । एक ओर मानव-विकास का किरणान्दोलित विज्ञान और दूसरी ओर रत्न-जन्म एवं विकास-विज्ञान प्रभाव है । कौनसा मानव, किस ग्रह के कितने अंश (डिग्री) के प्रभाव में उत्पन्न है, और उसपर किन अन्य ग्रहों के तत्वों ने उसकी रचना में प्रभाव डाला है—यह तात्त्विक विश्लेषण करने की जिसमें क्षमता हो, उसके द्वारा ही रत्न के तात्त्विक विश्लेषण के पश्चात् स्वभाव-प्रकृति के अनुरूप योजना संभव हो सकती है । केवल चंद्र-प्रभाव-हीन मानव के लिए, चंद्र-प्रभाव-पोषित 'मोती' की सहज योजना ही उतनी लाभप्रद नहीं हो सकती। तात्त्विक और मात्रा के पृथक्करण पर योजना की अनुकूलता निर्भर रहती है ।

मोती आदि रत्नों की अनेक जातियाँ होती हैं। वे विभिन्न किरण-प्रभावों से उत्पन्न होकर अपने रूप-रंग पानी और मूल्य में न्यूनाधिक परिणाम सूचक समझी जाती हैं। इनकी उत्पत्ति, स्थल, और वातावरण भी उनके महत्त्व के मान में (व्यापार में भी) परीक्षा के (प्रभात के) विषय समझे जाते हैं। चन्द्र के उचित किरण-प्रभाव के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने की अवस्था में जिसका जन्म होता है, तो उसके विपरीत तत्वों के सौर-मण्डलीय ग्रहों के प्रभाव-वातावरण के उपस्थित होने पर विषम ज्वर, क्षय, मानसिक वातोन्माद, अपस्मार, स्नायु-दौर्बल्य, रक्त-क्षीणता, प्रलाप-प्रवृत्ति, वावदूकता (नर्वस ब्रेक-डाउन), पागलपन आदि विकार तक सहज संभव हो जाते हैं। परन्तु इसका विवेक-विचार भी अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण की अपेक्षा रखता है । क्योंकि, चंद्र किरणों के विपरीत किस किरण से किस तत्व के प्रभाव बढ़ जाने पर कौनसी बीमारी विकास करेगी, यह जानना आवश्यक है, और इस ज्ञान पर चिकित्सा निर्भर हो तो उपचार की यथार्थ योजना भी हो सकती है। यद्यपि चन्द्र (केल्शियम) के अल्प प्रभाव से मौक्तिक का प्रयोग किया जाता है; पर यदि उसके साथ ही मंगल का तत्व भी अल्प या अनुपलब्ध हो तो रक्ताभिसरण भी रुक जायेगा। अतएव, योजना में प्रवाल (मूंगा) की भी आवश्यकता होगी। और उसी तरह मोती के साथ मूंगा भी धारण करवाया जाये तो शरीर के अन्योपलब्ध तत्व को पोषित करने में—आकर्षित करनेमें सहायताकरेगा। पृथ्वीकी शरीर-रचनामें जिस तरह विभिन्न धातुओं का स्थान है, मानव-शरीर-

रचना में भी उसी प्रकार विभिन्न धातु-तत्वों की स्थिति है। भौमिक धातु-तत्वों को जिस प्रकार तेजस्वी तारक-वृन्द प्रभावित—पोषित करते हैं, ठीक उसी प्रकार शरीर-गत धातु-द्रव्यों के साथ इन किरणों का भी सीधा सम्बन्ध है। इसीलिए भूमी के अंतर में रहने वाली धातु विशेष के प्रभाव से पोषित रत्न वनौषियों की, उसके सजातिय मानवशरीर के अंतर्गत धातु-तत्व से योजना की जाय तो यह स्वाभाविक सिद्ध है कि उसका लाभ मिलना सहज बन जाता है। किसी मानव के जन्म के अवसर में शनि की गतिविधि के वक्र मार्ग के कारण जिस प्रकार के लोहतत्व को उसके निर्माण में आवश्यकता है, न मिले तो उस मानव की पावन-शक्ति क्षीण बन जाती है। थोड़े विपरीत आहार विहार में वह रक्त-शोष (एनीमिया) आदि का शिकार भी बन जा सकता है। उस हालत में यदि वह टमाटो, पालक, या लोह-सम्बन्धित तत्व-प्रेरक शाक-पात-उपचार प्राप्त करता रहे तो उसी धातु का पोषण पा सकता है। पालक-टमाटो की खाद में लोह-प्रेरक शक्ति होती है। उस तत्व की विशेषता से वह पनपती है। फलतः उस लोह-तत्वहीन मानव के स्नायुओं को सामर्थ्य प्रदान करने लग जाती है।

आकाश में शनि बहुत तेजस्वी और विशाल प्रभाववाला ग्रह है। उसकी परिधि सूर्य से कई हजार गुणा अधिक बड़ी है। परन्तु वह सूर्य-कक्षा से बहुत दूर होने के कारण बहुत ही छोटा, किन्तु तीव्र दिखाई देता है। हमें उसकी यह लघुता शंका का कारण बन जाती है। किंतु हम सभी जानते हैं कि सूर्य की विशालता हमें तब तक नहीं मालूम होती, जब तक हम किसी आई ग्लास (Eye Glass) में उसकी तीव्रता को केन्द्रित कर सूक्ष्म रूप में नहीं बना लेते। यह आई ग्लास में बन जाने वाला सूर्य का सूक्ष्म रूप उसकी तीव्रता इतनी बढ़ा देता है कि वह जिस वस्त्र या कागज पर केन्द्रित हो जाए वहाँ उसकी तीव्रता सहज आग उत्पन्न कर देती है, इसी प्रकार शनि का वह सुदूर से दिखाई पड़नेवाला सूक्ष्म, किंतु तीव्र रूप, शक्ति (लोहत्व) संचार करने में पर्याप्त सहायक बन जाता है। मानव के शरीर-यंत्र में अपेक्षित मात्रा में जो लोह आवश्यक है, वह अपनी किरण से प्रेरित करता है, और मानव की तरह ही समस्त जग के जड़ चैतन्यों में शक्ति-तरंगों को सजग बनाये रखता है। उसके प्रभाव-विशेष से उत्पन्न कोई भी पदार्थ शक्ति-पुंज बन जाए तो आश्चर्य का कारण नहीं।

आकर्षण के नियमानुसार मानव-शरीर में जो धातु विकृत हो जाय, उसके पोषित करने, स्थिर करने और व्यवस्थित रखने के लिए जिन-जिन पदार्थों, रत्नों, औषधियों की योजना उपयोगी हो, करनी चाहिए। वे ही पदार्थ, वनौषधि, या रत्न-उपचार में परिणाम दे सकते हैं आयुर्वेद या डॉक्टरी का विधान भी यही है कि एक प्रकार का विकार ही विभिन्न प्रकृति-पोषित-शरीर में विविध उपचार-योजना का कारण हो सकता है। उसका कारण केवल यही है कि जिन तत्त्व-प्रभावों के वातावरण में शरीर-निर्माण होता है, उसमें अनुकूल-तत्त्व-प्रकृति की वस्तुएँ ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। रत्नों के विषय में भी यही हाल है।

जिस प्रकार शरीर की मुद्रा और नाड़ी की गतिविधि जानकर सफल चिकित्सक विकार-विज्ञान कर लेता है, उसी प्रकार सफल ज्योतिर्विद् भी ग्रह-नक्षत्रों की गति विधि, किरण-प्रभाव की परीक्षा करके परिणाम प्रदर्शन करने में सफल बन सकता है। ग्रहों का विपरीत होना, शरीर-गत तदीय प्रभावोत्पन्न धातु या तत्त्व के विकार का सूचक होता है। इसलिए उस-प्रकृति-तत्त्व के समान वस्तु उपयोगी बन जाती है और वे ही प्रभाव-पूर्ति करने वाले रत्न भी तुरंत परिणामकारक बन सकते हैं। मूल्यवान् मणियों का स्थान, उनके रचना-सौष्ठव, पुरातनता और रूप-रंग प्रभाव पर निर्भर करता है। वैज्ञानिक मान्यता है कि जिस समय पृथ्वी कम अंश में प्रवाही अवस्था में थी, तब ऑक्सीजन

—शेष पृष्ठ २४ पर

साहित्य और साहित्यकार

श्री रतनलाल परमार

विश्व के अनेक उद्भट विद्वानों ने सरस साहित्यकारों ने तथा विदग्ध कवियों ने समय-समय पर "साहित्य" को नाना परिभाषाओं में आबद्ध करने के असंख्य प्रयत्न किए हैं, किंतु आदि-अन्तहीन साहित्य नगाधिराज हिम नग की भांति सदैव अलंघ्य एवं प्रशान्त महासागर की भांति सदा अथाह ही रहा है—उसकी महत् महत्ता को अद्यावधिपूर्ण रूपेण कौन ज्ञात कर सका है और उसकी गुरु गम्भीरता की आज तक कौन थाह ले सकता है ?

साहित्य अनन्त तो है ही—वह ईश्वर का स्वरूप भी हो सकता है। गीता में कहा गया है कि "नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"—संसार में ज्ञान के समान अन्य कोई भी वस्तु पवित्र नहीं है। हम सब गुणों की पराकाष्ठा केवल परब्रह्म परमेश्वर में ही सन्निहित सम्भव मानते आए हैं। इस कसौटी के अनुसार पवित्रतम गुण के आधार पर 'ज्ञान' ईश्वर का स्वरूप हो जाता है; किन्तु यह उसका निराकार स्वरूप हुआ। ज्ञान का साकार रूप साहित्य में अवतरित होता है अतः 'ज्ञानस्वरूप निराकार ईश्वर का "साहित्य साकार रूप" सिद्ध माना जा सकता है।

"साहित्य, साहित्य नहीं है, वह शून्य नहीं है। वह तो है—"सहितस्यभावः साहित्यं"—भावों और भावनाओं के सहित जो कुछ अभिव्यञ्जित है, वह सब साहित्य के अन्तर्गत है।

किसी भाव अथवा भावना के बिना कोई भी रचना साहित्य की निधि नहीं बन सकती; किन्तु केवल भाव और भावनाएँ ही साहित्य का सम्पूर्ण आधार नहीं है—यद्यपि, भाव और भावनाएँ साहित्य में एक विशिष्ट महत्वका स्थानरखती है। वाङ्मय का आधार अनेक तत्वों का सम्मिश्रण है; क्योंकि साहित्य एकांगी और व्यक्तिगत वस्तु नहीं है—अपितु, है वह सामूहिक, सामुदायिक और समाजोपयोगी भी। साहित्य के अन्तर्गत ऐसा कुछ नहीं आ सकता—वाङ्मय में ऐसे कुछ का समावेश नहीं होना चाहिए—जो सारहीन हो, जो भाररूप हो, जो व्यर्थ हो, जो असत् हो, जो अशिव हो और जो असुंदर हो; क्योंकि साहित्य सत्यं शिवं सुन्दरं, अद्वैतं, आनन्दं और चैतन्यम् का स्वरूप है—इन पवित्र तत्त्वों की उद्दाम अभिव्यक्ति है।

लेखक

वाङ्मय के जिन अध्यायों में अभद्रता और अश्लीलता क्षुद्रता, हीनता अथवा निम्न कोटि की भावनाओं का व्यक्तिकरण किया जाता है—मैं उनको "साहित्य" के अन्तर्गत मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ—चाहे वे और कुछ भले ही हों। मैं इस विषय को रुचिकर नहीं मानता कि साहित्य जैसे महान तत्व को क्षुद्रहीन, अश्लील, अभद्र (घाँसलेटी) तथा निम्न आदि शब्दों के विभूषणों से विभूषित किया जाय। साहित्य, क्षुद्रता की नहीं; महत् की साधना है—वह महत् जो मानवता से भी उच्च और महान् है। क्षुद्रता और

हीनता तो निम्नाभिमुख जल की भांति मानवीय-दुर्बलताओं के लिए स्वाभाविक ही है—उनमें कोई महत्ता नहीं है कोई आदर्श नहीं है।

साहित्य में सदैव प्रेम, ज्ञान, सत्य, सुन्दरता, चैतन्य और आनन्द की ही सृष्टि की जाती है; अतः साहित्य कभी अशिव, अमङ्गल अथवा अकल्याणकर नहीं रहा। साहित्य ने सदा असत् पर सत् की विजय करने का प्रयास किया है। साहित्य का यह निरन्तर प्रयत्न है कि वह, जगत् को चिरकाल के लिये अन्धकार से ज्ञान के आलोक की ओर ले जाए और यह भी साहित्य की चिर कामना है कि, असार संसार अमरों के एक सुन्दर आवास में ही परिप्रणित हो जाए।

साहित्य एक सृष्टि है और उसका स्रष्टा है साहित्यकार। पूर्व-प्राचीन और उपलब्ध साहित्य के पारायण-अध्ययन से नवीन साहित्यकार कुछ ज्ञान और प्रेरणा प्राप्त करते हैं और प्रतिफल में कुछ साहित्य का सृजन करके—साहित्य को साहित्य में अन्तर्लीन करके--वे इस संसार से प्रयाण कर जाते हैं। यह साहित्य की और साहित्यकार की एक ही जैसी परम्परा है। साहित्य और साहित्यकार चन्द्रमा की भांति क्षय और वृद्धि के भूले में भूलते हुए भी सनातन हैं—शाश्वत हैं।

साहित्य और साहित्यकार का सम्बन्ध पिता और पुत्र की भांति है; किन्तु कौन यह जानता है कि कौनसा पिता कितनी बार अपने पुत्र का पुत्र होकर जन्म ले चुका है तथा कौनसापुत्र कितनी बार अपने पिता का जनक रह चुका है? यही स्थिति साहित्य और साहित्यकार की है। साहित्य (प्रायः) साहित्यकारों को उत्पन्न करता है और साहित्यकार साहित्य की सृष्टि करते हैं। बीज और वृक्ष की भांति यह विषय अन्तिम रूप से निर्णीत नहीं किया जा सकता कि प्रथम उत्पत्ति किसकी हुई? सृष्टि का और सभ्यता—संस्कृति का यह क्रम अनादि काल से इसी प्रकार चलता आ रहा है तथा सृष्टि के अस्तित्व पर्यन्त भी यह क्रम भंग नहीं हो सकेगा।

एक सच्चा कवि, ('कवि' ईश्वर का भी एक नाम है) लेखक अथवा साहित्यकार जलते हुए दीपक की भांति लोक मङ्गल के लिए अपना जीवन व्यतीत करता है। वह इस संसार से कुछ याचना नहीं चाहता। साहित्यकार संसार का एक द्रष्टा होता है--दर्शक (केवल साक्षीभूत) होता है। वह जगत् में जो कुछ देखता है; सुनता है और अनुभव करता है, उन सब अनुभूतियों को अपने हृदय की शक्ति अपने जीवन के दर्शन और अपनी सरस रागात्मक प्रवृत्तियों के बल के साथ पुनः संसार को सब कुछ साहित्य के रूप में प्रदान कर देता है।

एक सच्चा साहित्यकार सदैव सत्य की उपासना ही करेगा क्योंकि, साहित्य का उद्देश्य जगत् का सतत् कल्याण करना है। एक साहित्यकार निरन्तर सुन्दरता की सृष्टि में वृद्धि करेगा और जहाँ-जहाँ अन्धकार का आधिपत्य होगा, वहाँ वह प्रकाश का प्रखर साम्राज्य प्रस्थापित करेगा; विश्व में जहाँ दुःख, दैन्य और दरिद्रता का राज्य होगा वहाँ साहित्यकार सौख्य, सम्पत्ति एवं सम्पन्नता की अभिवृद्धि करेगा। मानव समाज में जहाँ मृत्यु और निराशा का अधिकार होगा वहाँ वह उल्लसित किरण जाल विकीर्ण करेगा। साहित्यकार कभी भी क्षुद्रता एवं हीनता पर ध्यान नहीं देगा; क्योंकि वह उसका मार्ग ही नहीं है; अपितु, साहित्यकार का कर्तव्य होना चाहिए कि, वह ज्वलित मशाल हाथ में लेकर आगे आगे चले और मानव समाज तथा संसार का मार्ग दर्शन करे।

संस्कृति और सभ्यता का मुख्य आधार साहित्य है; अपितु, यह भी कह दिया जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी कि मानव संसार की स्थिति साहित्य पर ही अवलम्बित है। राजनीति का भी साहित्य बहुत बड़ा आधार है। भारत के तथा अन्य देशों के स्वतन्त्रता के संग्रामों में प्राण फूंक देने वाला परम तत्व साहित्य ही था। आज तक संसार में कोई भी महान् कार्य साहित्य की सहायता के बिना (साहित्य का आशय भौतिक अर्थों में भी लिया जाना चाहिए) सम्पन्न नहीं हो सका है; अतः साहित्य पर आधारित सब 'वाद' 'दल', एवं 'विषय' आदि उतने मुख्य नहीं हैं जितना कि, सनातन साहित्य तथा उसके शाश्वत सिद्धान्त।

आज पर्यन्त विश्व में असंख्य राजा, महाराजा और सम्राट् उत्पन्न हुए और नियत काल तक खद्योत के समान अपनी आभा प्रकट करके चले गए। आज उनका नामलेवा

और पानी देवा भी कौन है? उन राजा-महाराजाओं का आज क्या अस्तित्व शेष है और उनका कौनसा स्मृति चिन्ह विद्यमान है? आज ब्रिटेन के सम्राट् पञ्चम जार्ज को कौन आदर-भक्ति के साथ स्मरण करता है? किन्तु कई वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी क्या कोई कवीन्द्र रवीन्द्र को विस्मरण कर सका है, अपितु, ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता है कवीन्द्र की महत्ता में वृद्धि ही होती चली जा रही है। जब-जब कवीन्द्र की अमर-कृतियाँ एक सुज्ञ पाठक के सम्मुख जगत् के रहस्यों का उद्घाटन करती है तब-तब विश्व के जन मानस में कवीन्द्र रवीन्द्र के पावन दर्शन उत्फुल्ल हो जाते हैं और उनकी प्रखर प्रतिभा संसार को अधिक प्रभावित प्रकाशित करने लगती है।

यदि, कोई महापुरुष आज भी संसार में पूजनीय स्थान पर सुशोभित है तो वह साहित्य और साहित्यकारों के बल बूते पर ही। यदि, जगत् में आदिकवि वाल्मीकि, महाभारत के रचयिता महर्षि वेद व्यास, रससम्राट कविवर भवभूति, कवि सम्राट गोस्वामी तुलसीदास और भक्त प्रवर सूरदास उत्पन्न नहीं हुए होते और उन्होंने अपनी अमर कृतियों के द्वारा राम और कृष्ण को चिर स्मरणीय नहीं बना दिया होता तो राम और कृष्ण का कौनसा स्थान समाज में चिर-काल तक अवशेष रह पाता?

संसार, असार और क्षण भंगुर है, इसमें मनुष्य आते हैं और चले जाते हैं, किन्तु, यहां वे प्राणी अजर अमर रहते हैं जो अपने यशःशरीर के द्वारा संसार को कृतार्थ कर जाते हैं। महात्मा भर्तृहरि ने गाया है कि,:—

साहित्यकार महान् है। अमर है। जब तक संसार में साहित्य का अस्तित्व रहेगा। उसकी आवश्यकता प्रतीत होती रहेगी और जब तक साहित्य के समझने की क्षमता मानव हृदय में विद्यमान रहेगी तब तक साहित्यकार भी इस विश्व में विद्यमान रहेगा। चाहे वह साहित्यकार प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन। साहित्यकार विश्व में चिरकाल तक विद्यमान ही नहीं रहेगा अपितु; अपनी सनातन प्रतिभा से वह संसार का कल्याण भी करता रहेगा।

इस प्रसंग पर कविवर 'भूषण' का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा:—

कविवर 'भूषण मुगल दरबार के एक चमकते हुए हीरक थे। मुगल दरबार में कवि का सदैव यथोचित मान सम्मान होता था, किन्तु जब कवि ने यह देखा कि, काव्य के आदर्श और उद्देश्य के विरुद्ध मुगल दरबार में सत्य को प्रकट करना अपराध मान लिया जाएगा तो उन्होंने मुगल दरबार को छोड़ देने का निश्चय कर लिया। कवि ने अपनी काव्य साधना को तिलांजलि नहीं दी, अपितु, सम्मान, सम्पत्ति एवं प्राणों का भी भय त्याग कर कविवर भूषण ने मुगल दरबार में सत्य का उद्घाटन किया और 'तत्काल वहां से चले भी गये। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि मुगल दरबार तत्कालीन समाज में अपनी सम्पन्नता का वैभव का और समृद्धि का एक अद्वितीय उपमान था। यह कवि का आदर्शवाद था साहित्य का आदर्श था कि, कवि ने सत्य की पूजा के लिए समृद्धि और वैभव को लात मार दी। कवि के सत्य को हिरण्यमय पात्र अप्रकट करने में नितान्त असमर्थ ही सिद्ध हुआ।

छत्रपति शिवाजी एक वीर पुरुष थे, वे महान् भी थे, किन्तु, वे ईश्वर के पूर्ण अवतार तो नहीं थे। स्वभावतः सम्भव है कि, छत्रपति में भी किसी अंश में कोई मानवीय दुर्बलता रही होगी, किन्तु, कवि ने सदैव शिवाजी की अच्छाइयों को ही (गुण-ग्राहकता) देखा, उनके गुणों का वर्णन किया और उनकी वीरता तथा सिद्धान्त निष्ठा की दाद दी, सराहना की। यदि कवि चाहता तो अपनी शक्ति और प्रतिभा का दुरुपयोग (दुख है आज कल के अनेक अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग कर रहे हैं) करते हुए शिवाजी के सम्बन्ध में हीन और क्षुद्र बातों की सृष्टि भी कर सकता था जैसी कि, बाद में मुस्लिम और अंग्रेज इतिहासकारों ने वीर शिवाजी को एक पहाड़ी चूहा अथवा पहाड़ी लुटेरा मात्र कहकर सम्बोधित किया था। यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि कवि ने उदारता पूर्वक छत्रपति शिवाजी 'के सद्गुणों का विस्तृत वर्णन किया है खुशामद नहीं। यह बात अन्य विषय की है कि, कवि ने शिवाजी के गुणों की उच्चतम कल्पना कर ली हो (ऐसा करना कवि का स्वभाव अथवा प्रकृति ही रहती है 'जहां न पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि') और काव्य की भाषा में अतिशयोक्ति के रूप में भी उनका वर्णन किया

हो। यह भी सम्भव हो सकता है कि उस समय शिवाजी के गुणों की अत्यधिक प्रशंसा करना ही कवि को समाज के लिए कल्याण कर प्रतीत हुआ हो और शिव की साधना के लिए ही कवि ने स्यात् अतिशयोक्ति का भी आश्रय लिया हो।

कवि की-साहित्यकार की गुण ग्राहकता का एक और सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करना भी यहां अनुपयुक्त नहीं होगा:—

कविवर भूषण शिवाजी के दरबार से परिव्रज्या करते हुए बुन्देल खण्ड के वीरवर राजा छत्रसाल के दरबार में पहुंचे। बुन्देल केसरी राजा छत्रसाल ने भारतीय संस्कृति की महत्ता को समाज में संस्थापित करते हुए कविवर के स्वागतार्थ स्वयं ही उनकी पालकी को अपने स्कन्धों पर उठा लिया। कवि भी अपनी कला की अति विनम्र पूजा से आह्लादित हो गया और तत्काल कवि ने पालकी से कूद कर राजा छत्रसाल की आभार पूर्वक चरण-पूजा की। उस समय कवि का हृदय विवश होकर गा उठा:—

'शिवा को सराहूं कि, सराहूं छत्रसाल को"?

कवि की काव्य कला की एक और पूजा हुई थी। ५२ हाथी और ५२ लाख रुपयों की बड़ी धन-राशि तथा अतुलित मान सम्मान से तो दूसरी ओर साहित्यकार की आराधना हुई आत्म-समर्पण से!

यदि कवि भूषण चाहते तो छत्र साल में कोई न कोई अवगुण अवश्य देख सकते थे। कवि छत्रसाल के और शिवाजी के गुणों में ऐसी तुलना भी कर सकता था जिनमें दो में से एक किन्चित लघु हो और दूसरा अपेक्षा कृत महान् हो, किन्तु, साहित्य की सत्य साधना वाङ्मय की पवित्र पूजा और काव्य की सुन्दर आराधना का वास्तविक मार्ग भूषण को (कवि के हृदय को) ऐसा करने से रोकता था।

साहित्यकारों को सदैव भूषण जैसे सहृदय कवियों पर इसलिए, गौरव और गर्व का अनुभव करना चाहिए कि उन्होंने साहित्य साधना और काव्य-कला को कभी कलंकित ही नहीं होने दिया, अपितु उन्होंने आदर्श की पूजा करते हुए साहित्य-संसार में ऐसे सुन्दर और स्वर्णिम उदाहरण प्रस्तुत किये कि, जिनको अपने दृष्टि कोण में रख कर सच्चे साहित्यकार अपने आदर्श की सतत् पूजा कर सकेंगे और समाज का शाश्वत कल्याण भी कर सकेंगे।

— जय भारत-जय भारती —

—:०:—

(पृष्ठ २० का शेषांश)

और पानी के साथ कुछ धातुएँ आक्साइड के सघर्ष में आकर रासायनिक क्रिया से पाषाण में परिणत हो गयीं। प्लेटो का कथन है कि मूल्यवान पत्थर तथा रत्नों का प्रादुर्भाव ऐसी ही स्थिति में ग्रह-किरणों के प्रभाववश ही हो सका है। विशेष प्रकार के आन्दोलन से उनपर ग्रहों का प्रभाव पड़ता रहता है। हीरा, नीलम, वैदूर्य आदि रत्नों के प्रभाव के विषय में अनेक भली-बुरी किम्वदन्तियाँ जग विश्रुत हैं। जौहरी भी अनेक रत्नों के प्रभाव के विषय में सतर्क ग्राहकों का अनुभव करने के पश्चात् स्वीकार करने की अनुमति देते हैं। नीलम की बात ही लें। यह शनि का रत्न माना जाता है। उसका वर्ण, स्वभाव, प्रभाव शनि ग्रह से पोषित है। फिर शनि के नाम से वैसे ही अनेक भय-भावनाएँ भावुकों में ही नहीं, समझदारों में भी फैली हैं। और इसमें भी, नीलम शनि-किरण के केन्द्रित हो जाने से जन्म लेता है—यह जानकर यदि साधारण समाज भली-बुरी कल्पना कर ले तो आश्चर्य नहीं। यही कारण है कि वह सावधानी और संशय की वस्तु बन गया है। शनि के प्रभाव से उत्पन्न यह सबल रत्न विपरीत प्रकृति के साथ संबंधित हो जाने पर साधारण मृदुल परिणामप्रद रत्नों या धातुओं पर छा जाता है। फलतः, अस्थिक्षय, स्नायुक्षीणता, लीवर की खराबी, फेफड़ों की क्षीणता आदि सहज ही कर सकता है—उग्र ग्रह की तीव्र किरण में जन्म लेनेवाले पदार्थ प्रतिकूल प्रकृति के साथ जुड़ जाएँ तो विषम प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते। इसलिए गगनगामी ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न-विशेष प्रभावित है उसका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मानव पर सावधानी से प्रयोग किया जाय तो अवश्य ही उस धातु-तत्व अथवा प्रकृति को उचित पोषण देनेवाला सिद्ध होगा।

लोक-साहित्य की मीरा—'चन्द्रसखी'

श्री चिन्तामणि उपाध्याय एम० ए०, साहित्यरत्न

लोक-साहित्य में अभिरुचि रखने वाले विद्वानों के लिए 'चन्द्रसखी' एक आकर्षणकी वस्तु है। राजस्थानके कुछ विद्वान् चन्द्रसखी को राजस्थान की 'मरू-कोकिला'[1] एवं सुप्रसिद्ध भजनकार[2] मान बैठे हैं। श्री मोतीलाल मेनरिया ने चन्द्रसखी के कुछ गीतों के आधार पर उसे मालवी माना है[3]। मालव की स्त्रियों में चन्द्रसखी के गीतों का अधिक प्रचार देख कर मेरी भी यह धारणा थी कि चन्द्रसखी मालव की 'मीरा' हैं। किन्तु मध्यप्रदेश के कुछ ग्रामों में, व्रज एवं भदावर (भिण्ड मध्यभारत) के क्षेत्र में चन्द्रसखी के सरस-गीतों को सुन कर उक्त धारणा पर विचार करना आवश्यक है।

चन्द्रसखी स्त्री थी अथवा पुरुष? इस सम्बन्ध में मतविभेद हैं। वैसे ईकारान्त शब्द होने के कारण 'चन्द्रसखी' को स्त्री मान लेना सामान्य व्यक्ति के लिए अस्वाभाविक भी नहीं है, किन्तु कुछ विद्वान् उसे पुरुष मानते हैं। मिश्र-बन्धुओं ने चन्द्रसखी नाम के दो कवियों का उल्लेख किया है[4]। एक को वे जयपुर निवासी मानते हैं और दूसरेको व्रजवासी। मिश्रबन्धुविनोद के अनुसार इनका समय सम्वत् १६६८-१६०० के मध्य ठहरता है। श्री मोतीलाल मेनरिया के अनुमान से चंद्र सखी का सम्वत् १८८० है[5]। श्री अगरचन्द नाहटा ने छानबीन करके जो तर्क उपस्थित किए हैं, उसके अनुसार चन्द्रसखी का समय सम्वत् १७०० के लगभग मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु चन्द्रसखी को हम केवल 'राजस्थान की 'कोकिला' या 'लोक भजनकार' के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

चन्द्रसखी के गीतों का प्रसार हिंदी-भाषी चार प्रदेशों में पाया जाता है। व्रज, राजस्थान, मालव और मध्यप्रदेश में। चन्द्रसखी का लोकगीतों के क्षेत्र में इतना व्यापक प्रभाव है कि हम उसे एक प्रदेश विशेष की सम्पत्ति नहीं मान सकते। मैं इन गीतों को देख कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि चन्द्रसखी को दो रूपों में स्वीकार करना होगा।

१ भक्त कवि के रूप में

२ लोक गीतकार के रूप में

चन्द्रसखी मूलरूप में एक व्रजवासी कवि है, जिसके काव्य का स्रोत कृष्ण—भक्ति के भावनामय अन्तरालसे प्रकट हुआ था उसके काव्य की प्रेरणा का मूल 'व्रज' और कृष्ण का चरित्र था और यह प्रवृत्ति मध्ययुग के राधावल्लभीय सम्प्रदाय के सभी भक्त-कवियों में पाई जाती है। श्रीकृष्ण की 'लीला' का गान इनका प्रमुख लक्ष्य था। दानलीला, मानलीला, माखन चोरी, पनघट की छेड़छाड़, रास, मिलन आदि के अनेक ऐसे प्रसङ्ग हैं, जो चन्द्रसखी को केवल परम्परा का निर्वाह करने के लिए लिखना पड़े। सूर आदि अष्ट-छाप के कवियों एवं चन्द्रसखी के पदों में हमें कथावस्तु, शैली और भावना की दृष्टि से कोई स्थूल अन्तर दिखाई नहीं पड़ता। भक्ति के आवेश में लिखी कथा-प्रसङ्गों, वे ही चिर-परिचित पुनरावृत्तियाँ जो कृष्ण काव्य के कवियों में पाई जाती हैं, चन्द्रसखी के गीतों में भी देखने को मिलेंगी। मदावर क्षेत्र में लोकगीतों का सङ्कलन करते समय मेरे विद्यार्थी श्री रामदत्तसिंह कुशवाह के द्वारा उनके ग्राम से चन्द्रसखी के पन्द्रह गीत

---

[1] हिंदुस्तान साप्ताहिक १२ जुलाई ५३ श्री कैलाशचंद्र माथुर का लेख, पृष्ठ २३

[2] विक्रम, मार्गशीर्ष सं. २००६ श्री नाहटाजी का लेख –'लोककवि चंद्रसखी के समय सम्बन्धी विचारणा, पृष्ठ२३.

[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ११

[4] मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग; पृष्ठ ३७०

[5] राजस्थानी भाषा-साहित्य, पृष्ठ २१२

[6] विक्रम-मार्ग, २००६ नाहटाजी का लेख, पृष्ठ २४

प्राप्त हुए हैं। इन गीतों में भी उपरोक्त प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होती है—

❀ कृष्ण पिया मोरी रंग दे चुनरिया,
ऐसी जो रंग नारंग नाहिं छूटै हो........
धोबी धोवै अपनी सारी उमरिया।

इस गीत में कृष्ण के प्रति अनन्य एवं उद्दाम प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ ही मिलन शृङ्गार और भक्त के आत्मार्पण की भावना व्यञ्जित हुई है इसी प्रकार—

❀ ब्रज में लगी है प्रेम बजरिया,
कृष्ण की लगी है मोहे नजरिया,
कृष्ण कन्हैया, मोरो वर रे साँवरिया,
❀ मोहन मोरी गगरी उठाते जइयो,
❀ दूध बेचन जाने ब्रजनारी।
❀ आज मैं गोकुल नेक गई,
❀ भले से गिरधारी हमरे घर अइय्यो।

आदि पंक्तियों में जो भी सूर एवं नन्ददास की भावुकता एवं साहित्यिकता नहीं है परन्तु अभिव्यक्ति की मधुरता एवं जनरुचि के अनुकूल सरलता अवश्य है।

कहीं-कहीं पर सूर के अनुकरण पर वात्सल्यमयी भावना प्रकट करने की चेष्टा भी की गई है--

❀ जसोदा लेति लला को कनियाँ,
अपने लला को जामा सिलावै,
आठ कली नौ तनियाँ।

❀ मैया मोहि ब्रजनारी सतावै.........
....
सान घागरो सुरंग चुनरिया, मोहि को पहिरावै।

सूर जैसी कूट-क्लिष्टता में भी चन्द्रसखी निपुण है—

'दधसुत के सुत, तासुत के सुत की भगिनी;
भगिनी सुता के सुत तासुत
जा सुत की कठनी............।
धरम-अधरम दसौ दिस धामन
बिरज गोपिन रजनी !
किसन किसन कर नचै राधका
टूटत तड़क तनी !

ना बिरमा (ब्रह्मा) ना बेद बिदुरे
जा बे करम ठनी !
कदक खम्ब से कमर बिराजै
फिर मानो चढ़ी कनी !
तीन लोक की लै छब बैठि
ब्रज-बाहन बसनी !
चन्द्रसखी भज बाल कृस्ण छब
फिर बाढ़त प्रीत घनी ! [1]

उपरोक्त गीतों में चन्द्रसखी के नाम की छाप तीन प्रकार से मिलती है—

१ चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि
२ चन्द्रसखी यों कहती
३ चन्द्रसखी...............

मालव और राजस्थान में—

❀ चन्द्रसखी भज बाल की शोभा
❀ चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि
❀ चन्द्रसखी की करूँ बिनति

आदि छाप मिलती हैं। ब्रज और मध्यप्रदेश में प्रचलित चन्द्रसखी के गीतों को गायन की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ रसिया
२ दादरा

कथावस्तु की दृष्टि से भी ये पद दो श्रेणी में विभक्त होंगे—

❀ भदावर (भिण्ड से प्राप्त चंद्रसखी के गीतों की प्रथम पंक्ति।

[1] श्री श्यामलाल ग्रा·र बुआरो, परगना लहार (भिण्ड) से प्राप्त।

१ भक्ति के वे पद, जिनमें 'लीला' गान का शुद्ध रूप है।

२ वे गीत जिनमें गृहस्थ जीवन की अनुभूति के चित्र अङ्कित किए गए हैं।

दूसरी श्रेणी के गीत लोकगीतों की कोटि में आते हैं और इनका सृजन किसी कवि विशेष द्वारा न होकर प्रदेश-विशेष की महिलाओं के द्वारा निसृत किए गए हैं जिसमें सास-ससुर, ननद आदि के कठोर, क्रूर व्यवहार, गृहस्थ जीवन की कठिनाइयाँ एवं दबी हुई अतृप्त मनोकामनाओं का विस्तृत एवं अमर्यादित उल्लेख हुआ है। कुछ गीतों में धर्म के सामान्य आचरण पर भी 'नारी बुद्धि' के अनुसार सरल अभिव्यक्ति हुई। ये प्रवृत्तियां मालव में प्रचलित चन्द्रसखी के लोकगीत में अनुपम ढङ्ग से प्रकटहुई हैं। लोकगीतों की चंद्रसखी का यह स्वरूप अधिक व्यापक है। मिश्र-बन्धुओं ने; चन्द्रसखी नाम के जिस कवि का उल्लेख किया है, वह तो पुरुष ही होना चाहिए। गोपी-भावेन उपासना करके कृष्ण की अनन्य आसक्ता चन्द्रावलि की तरह भगवान का सामीप्य प्राप्त करने की कामना से उसने अपना नाम भले ही 'चन्द्रसखी' रख लिया हो; किन्तु उसके पदों में मीरा की भांति नारी हृदय की कोमल एवं मार्मिक अनुभूति का यत्किञ्चित् आभास भी नहीं मिल पाता। मिलन और छेड़छाड़ के प्रसङ्गों का वर्णन करने में भी पुरुष की मनोवृत्ति ही प्रकट हुई है।

माधुर्य भाव से उपासना करने वाले व्रज के पुरुष कवि चन्द्रसखी के 'लीलागान' के प्रसङ्गों को छोड़ कर उसके सरल-सरस रूप को जन-सामान्य ने ग्रहण किया और अपने प्रादेशिक वातावरण की अनुकूलता एवं भाषा-माधुर्य के आवरण में लोकगीतों में ढालते हुए परम्परा की एक अमर वस्तु बना दिया है।

मालव प्रदेश में चन्द्रसखी के लोकगीत मधुरिमा एवं भाव सौन्दर्य की दृष्टि से अपना विशेष आकर्षण रखते हैं। व्रज एवं भदावर में प्रचलित गीतों की तरह न तो उनमें सूर की कूट क्लिष्टता ही है और न परम्परागत कृष्ण कथा का उल्लेख। ये गीत अपनी मौलिक विशेषताओं को लेकर जीवन की सरलता एवं यथार्थता के अधिक निकट हैं। मालव में चन्द्रसखी के गीत, राम-कृष्ण, दोनों की जीवन गाथाओं के सरस और मार्मिक प्रसङ्गों को लेकर चलते हैं। इन गीतों का कथावस्तु एवं विषय चयन की दृष्टि से विश्लेषण इस प्रकार होगा—

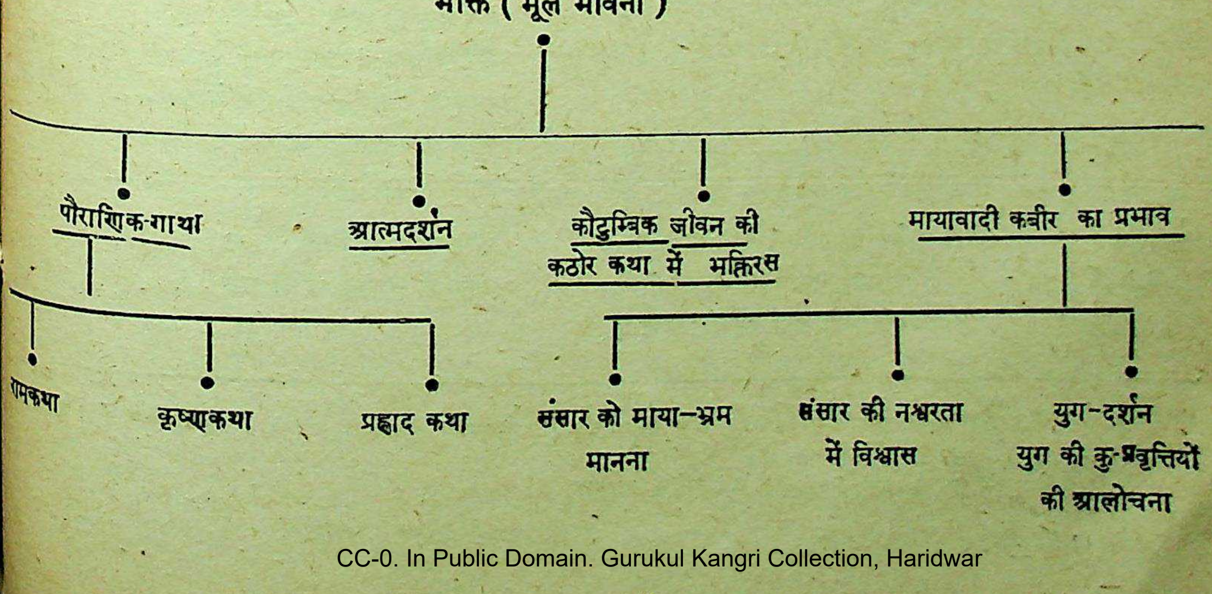
भक्ति (मूल भावना)
पौराणिक-गाथा
आत्मदर्शन
कौटुम्बिक जीवन की कठोर कथा में भक्तिरस
मायावादी कबीर का प्रभाव
रामकथा
कृष्णकथा
प्रह्लाद कथा
संसार को माया-भ्रम मानना
संसार की नश्वरता में विश्वास
युग-दर्शन युग की कु-प्रवृत्तियों की आलोचना

सन्त काव्य के प्रणेताओं ने राम और कृष्ण के चरित्रों को लेकर अनेक गीतों में भक्ति की पावन मन्दाकिनी को अपने कल-कण्ठों से प्रवाहित किया है। सङ्गीत की उस स्वर-माधुरी से जन–मानस अपरिचित नहीं है, और आज भी संतों के अनुकरण पर मालव की महिलाओं द्वारा उद्भावित गीत प्रति सायं-प्रातः वाणी पर तैरते नजर आते हैं। राम–वन गमन के प्रसङ्ग को लेकर महाकवि तुलसी ने गीतावलि में करुणासिक्त एवं हृदय-द्रावी अनेक गीत लिखे हैं किन्तु नारी के हृदय की पीड़ा को नारी ही पहिचान सकती है। सीता की उस अकल्पित अनुभूति को चन्द्रसखी के इस लोकगीत में परखिए—

[1] धीरे चलो मैं हारी, ओ सियाबर !
धीरे चलो मैं हारी,
रात दिनों का चलना बुरा है
कङ्कर लगे अति भारी—ओ सियाबर !
पाँवों की पींजन,[2] तप गई लछमन,
धूप पड़े अतिभारी—ओ सियाबर !
सासू के कंई को[3] ? कंई रे बिगाड़यो ?
दुःखड़ो दियो अतिभारी—ओ सियाबर !
राजा जनक घरे जनम लियो है,
जन्म्या[4] से क्यों नी[5] मारी—ओ सियाबर
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि
हरिचरणा बलिहारी—ओ सियाबर !
धीरे चलो मैं हारी !

तुलसीदास की सीता के सामने तो आदर्श और मर्यादा की एक सीमा रेखा थी। सास या श्वसुरालय के अन्यायों के प्रतिरोध में कुछ भी कहना वर्जित था। किन्तु सास के अत्याचारों से पीड़ित महिलाओं ने (सम्भवतः वधुवर्ग ने) सीताकी आत्म-व्यथासे तन्मयता स्थापित कर उस सास को कोस ही दिया जिसने देश-निकाला 'वनवास' दिया था, और साथ ही जनक जैसे पिताके प्रति भी यह भावना प्रकट कर ही दी—कि कर्कशा सास के परिवार में ब्याहने की अपेक्षा उसे जन्म लेते ही समाप्त क्यों न कर दिया। वास्तव में लोकगीतों में भावनाओं पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता और कुण्ठाएँ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षतः फूट ही पड़ती हैं।

कृष्ण-चरित्र की गाथाओं के वर्णन में भी कुछ अभूतपूर्व मौलिकता है। अपनी प्रियतमा से सामीप्य प्राप्त करने के लिए श्रीकृष्ण को नकली बेद (वैद्य) बनना पड़ा और बीमारी का अभिनय करने वाली मिलन कामी उस प्रेयसी की धृष्टता तो देखिए कि वैद्य को शुल्क (फीस) के रूप में एक अच्छी सी साड़ी देती है—

[6] बन गयो बेद.[7] लाड़लो गिरधारी,
बन गयो बेद, साँवलो गिरधारी !
ब्रिन्दावन की कुञ्ज गली में
देखत-फिरत नारी.........बन गयो बेद......।
एक गुवालन नई उठ बोली
देखत जाओ लालजी, नबज हमारी !
बन गयो बेद......

नबज पकड़ के कहे साँवरो,
'सरद–गरम' है भारी।
एक दवा तो असी[8] दऊँगा
मिट जायगी री गुवालन—
सरद * तुमारी—बन गयो बेद......
आज साँवरा जावा नी दऊँगा
खातेर[9] करूँ तुमारी

खीर-खाँड का भोजन दऊँगा
सोवा ने लालजी ऊँची अटारी !
बन गयो बेद.......

---

१. उज्जैन-रतलाम से प्राप्त गीत २.-३. क्या कहा जाय ? (विवशता सूचक भावना) ४. जन्म लेते ही। ५.नहीं।
६. उज्जैन बड़नगर से प्राप्त। ७. वैद्य, ८. ऐसी, ९ सत्कार,

हरिचरणा बलिहारी........
दखणा[1] में दऊँगा लालजी
आछी सी साड़ी—बन गयो बेद........ ।

श्रीकृष्ण चरित की अन्य गाथाओं के समावेश में निम्नलिखित प्रसङ्ग अधिक महत्वपूर्ण है--

१ विदुर कथा

'आदर और प्रेम से समर्पित अकिंचन वस्तु भी श्रेयस्कर है,' इस सिद्धांत का विदुर कथा में सरसता के साथ प्रतिपादन किया गया है।'हरि आये विदुर घरे पावणाँ--हरि आया गरीब घरे पावणाँ' पंक्तियों में आतिथ्य करने वाले के हृदयोल्लास को प्रकट किया गया है।[2]

२ बाल शोभा

श्री कृष्ण के मुकुट की सुन्दरता का वर्णन करते हुए अन्य सुन्दर वस्तुओं को अपने ढंग से परखने की चेष्टा की गई है। अभिव्यक्ति सरल है—

"मुकट पर वारी जाऊं ओ नागरनन्द !
सब पाड़न में हिमाचल बड़ो है,
सब तीरथ में गंग।
सब देवन में सुरज बड़ो है,
और तारा में चन्द।
सब सकियन में राधा बड़ी है
सब ग्वालन में बाल गुबिन्द।
चन्द्रसखी भज बाल की शोभा
हरि की सेवा में बड़ो अनन्द।
प्रभु की सेवा में बड़ो अनन्द !

३ कुब्जा प्रसंग

परकीया के प्रति स्वकीया नायिका की द्रोह ईर्ष्या भावना कुब्जा को लेकर प्रकट की गई है। श्रीकृष्ण अपनी ओर से लाख स्पष्टीकरण देने की चेष्टा करें किंतु निम्न लिखित प्रमाण उनकी चोरी को स्पष्ट कर देते हैं—

अधरों पर पान की लाली
आंखों का सुरमा

बन्शी का भूल आना
हाथों की अंगूठी खो देना

परकीया को हाथों की अंगूठी प्रदान कर देने की कल्पना सूर आदि भक्त कवियों के युग की वस्तु नहीं हो सकती! गीत की अन्तिम पंक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं—

'कुब्जा को रूप घणो है ?
हूं कँई तन की काली ?'[3]

प्रह्लाद-कथा में ईश्वर भक्त प्रह्लाद की दृढ़ता के साथ युग के उन अनाड़ी गुरुओं का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है, जो 'ज्ञान दान' के लिए शिष्य की पिटाई को आवश्यक मानते हुए, 'छड़ी पड़े छम-छम, विद्या आवे धम-धम' के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं।[4]

मालव में चन्द्रसखी के लोकगीतों में मध्य-युगीन अनेक सन्तों की प्रवृत्तियों की छाया या प्रतिबिम्ब देखकर यह निश्चय करना कठिन नहीं है कि लोक मानस ने अपनी जिस रसिकता, भावुकता और संगीतप्रियता का जो परिचय दिया है उसमें मीरा की माधुरी एवं तन्मयता,[5] तुलसी जैसी आत्म चिन्तन की भावना एवं कबीर जैसी युग की स्पष्ट आलोचना और मायावाद आदि के कुछ हल्के किन्तु अमिट छींटे दिये हैं, वे ब्रज के मूल कवि 'चन्द्रसखी' की रचना में भी दुर्लभ हैं।

'तुलसी' ने विनय-पत्रिका में मन की चंचलता को आत्म निवेदन के रूप में स्वीकार कर मन को अनेक उपदेश दिए हैं। आत्म-दर्शन एवं आत्म उद्धार की प्रवृत्ति चन्द्रसखी के गीतों में भी अधिक सजग है। चोरी, चुगली, परनिन्दा आदि को

---

[1] दखिणा
[2] संलग्न गीत कमांक १ देखिये। [3-4] संलग्न गीत कमांक २ एवं ३ देखिये। [5] संलग्न गीत क्रमांक ४ देखिये

छोड़ कर 'हरि के दुआरे' चलने की प्रेरणा दी गई है। मन-पागल मन (मन 'गेला') यदि हरि का भजन कर 'धरम के बेड़े' और सत की नाव' का आश्रय ग्रहण करेगा तो भव सागर से पार हो सकेगा।[1]

मायावादी कबीर की तरह इन लोकगीतों में भी संसार को माया जाल एवं जीवन को अस्थिर माना है। संसार की नश्वरता के लिये कुछ मौलिक रूपक दिये गये हैं। यौवन की गर्व गुमान भरी प्रवृत्ति को छोड़ने का विशेष आग्रह किया गया है—

नई नई रे भरोसो जिन्दगानी को,
तू मत कर जोर जुवानी को!

संसार की नश्वरता या क्षणिकता एवं मायामयी उलझन के लिए निम्न लिखित रूपक उल्लेखनीय हैं—

यो संसार हाट को मेलो, रामा!
लख आवत लख जावत है……
यो संसार ओस को मोती, रामा
पवन लगे ढुल जावत है……
यो संसार बोर[2] की झाड़ी रामा!
माया जाल रचावत है… ..
यों संसार माय—दौलत को रामा!
चोर पड़े लुट जावत है……

स्पष्टवादी कबीर की तरह कुछ गीतों में युग की आलोचना भी निर्भीकता से प्रकट हुई। मूर्ख राजा का राज, पण्डित का भिखमंगापन, विधवा के हास विलास, पतिव्रता की दुर्दशा का केवल उल्लेख मात्र किया है। इस पद में 'कबीर' की पूरी अनुकृति दृष्टित होती है।

'नागर बेल फूलाँ से तरसे

गेंदा फूले हजारी……., उक्ति में युग की असाम्य स्थिति एवं अयोग्य लोगों के वैभव विलास पर मार्मिक व्यंग है।[3]

गृहस्थ जीवन का एक मनोरम चित्र भी देखिये! सास ननन्द, देवरानी जेठानी आदि का एक वधू के प्रति कितना कठोर और अमानवीय व्यवहार होता है? उसके प्रतिकार की भावना भक्ति के आवरण में कितने सुन्दर एवं कलात्मक ढंग से व्यक्त हुई है—

'ले 'लोट्यो बड[4] न्हावा चाली,
सासू मुँ[5] मच कोड्योजी,
रामनाम सिरी कृष्ण जी …..!
थें सासूजी रात जगे जाजो,
म्हैं मन्दरिये जावाँजी,
रामनाम……… !
थें सासूजी लापसी जीमो,
म्हैं हरि-परसादाँ[6] पावाँजी,
रामनाम………..!
थें सासूजी गंगाजल पीवो,
म्हैं हरि चरनामृत पीवाँजी,
रामनाम………..!

इस लोकगीत में एक भक्त कुल-वधू की कथ का अंकन है। वधू प्रातः उठते ही लोटा ताम्र पात्र लेक गंगा स्नान के लिए चल पड़ती है। पावन क्षेत्र उज्जै के लिये तो यह दृष्य दैनिक जीवन चर्य्या का एक अंग है सास के लिए यह असह्य हो जाता है कि उसकी 'वधू' भक्ति करे! जैसे ही 'बड' गंगा स्नान के लिए चलने का उपक्रम करती है सास मुँह को विकृत कर अपना रोष और असन्तोष प्रकट कर देती है। वधू के लिए सम्पूर्ण मिष्ठान्न एवं गंगा का पवित्र जल भी भगवान के 'प्रसाद' एवं चरणा मृत के सन्मुख कुछ महत्व नहीं रखते!

सास निराश होकर अपने सुपुत्र से वधू के अवांछनीय आचरण के सम्बन्ध में शिकायत करती है—

'सुण सुण रे म्हारा पूत-सपूता,
थारी बड़ मन्दर जावेजी,

---

[1] संलग्न गीत क्रमांक ५ देखें। [2] झड़बेरी।
[3] संलग्न गीत क्रमांक ६ देखें। [4] वधू. [5] मुँह. [6] प्रसाद शब्द का बहुवचन।

रामनाम...........!
सुण सुण रे म्हारी माय-सपूती,
करनी पार उतरनी जी,
रामनाम...........!

अन्त में भक्त वधू की धर्मशीलता एवं सत्याचरण के कारण उसे स्वर्ग में ले जाने के लिए भगवान की ओर से एक विमान आता है। लोकगीतों का यह 'बेवाण' विमान शायद एक उड़न खटोला है जिसके पलंग के समान चार 'पाये' होते हैं। वधू की उपेक्षा और भर्त्सना करने वाले परिवार के व्यक्ति स्वर्ग के विमान का पाया पकड़ कर अब वधू से अनुनय करते हैं कि उन्हें भी स्वर्ग में साथ ले जाया जाय! किन्तु स्वर्ग में जाने का 'पारपत्र' तो भक्तजनों को ही प्राप्त हो सकता है। वधू उन सब को संसार के मायाजाल में छोड़कर 'करनी' का फल भुगतने को कहती है। सास और ननन्द के प्रति तो व्यंग अधिक कठोर हो उठा है—

'बैकुण्ठाँ से बेमान[2] आया,
बउ बैकुण्ठा चाली जी,[1]
रामनाम...........!
पेलो पायो सासु ने सारयो,
बडवड़ मोय ले चालोजी,
रामनाम...........!
थैं सासुजी बड़[3] का बागल,
सिद्धनाथ[4] में ऊँदे माथे[5] भूलोजो,
रामनाम...........!
दूजो पायो देराणी सारयो,
भावज मौय ले चालोजी,
रामनाम...........!
थैं भाभीजी लंकलड़ावन,
लंक लड़ाता रीजोजी,
रामनाम...........!
अगण्यो[6] पायो नणदल सारयो,
भावज मोय ले चालोजी,
रामनाम...........!
थैं बाईजी चुगली खोरा,
चुगली करता रीजोजी,
रामनाम...........!

सास को चमगीदड़ बनाकर वट वृक्ष पर भुलादिया, झगड़ा कराने की कला में कुशल देवरानी और चुगलखोर ननन्द को। पश्चात् अन्तिम और चौथा पाया पकड़ कर भक्त वधू के पति ने भी अपनी पत्नी के साथ स्वर्ग में जाने की आकांक्षा प्रकट की—

'चोथो पायो सायब सारये,
गौरी! मोय ले चालोजी,
रामनाम...........!
थैं सायबजी नगरी के राजा,
राज करन्ता रीजोजी,
रामनाम...........!
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि,
बड बैकुंण्ठा बिराजौजी,
रामनाम श्री कृष्णजी...!

अन्तिम पंक्तियों में वधू के द्वारा दिया गया उत्तर कितना करुण एवं मार्मिक है? मिलन वियोग के इस विचित्र प्रसंग पर गाते समय महिलाओं के कण्ठ करुणा और प्रेम भावना के कारण अवरुद्ध होने लगते हैं एवं बुझती हुई सी आवाज में गीत का अवसान होता है।

* * *

१

हरि आया बिदुर घरे पावणाँ[7],
हरि आया गरीब घरे पावणाँ।
कूरा-सा भात गवाँ का फुलका,
बिन आदर कँई काम का?

---

[1] गीत उज्जैन से प्राप्त।
[2] विमान
[3] वटवृक्ष
[4] उज्जैन में शिप्रा तट स्थित एक तीर्थ
[5] उलटे सिर
[6] तीसरा।
[7] अतिथि

पतली सी दाल, बेजड़ की रोटी,
रूच रूच भोग लगावना
हरि आया.........पावणाँ।
ऊँचा ऊँचा मेंल[१], हिंगलू का ढोल्या[२]
बिन आदर कँई काम का ?
टूटी सी खटली ने फूस की टपरी
प्रेम सहित हरि पोढ़नः
हरि आया......पावणाँ।
चन्द्र सखी भज बाल की शोभा
हरक[३] निरख गुण गावणा
हरि आया विदुर घरे पावणाँ !

२

साँचा बोलो जी कुँज बिहारी !
थाने किन बिलमाया ब्रजनारी।
बिड़िया तो चाबी ने होठ रचाया
नैना में सुरमा सारयोजी,
बन्सी तो तम काँ भूली आया ?
मुरली तो तम काँ भूली आया ?
हाताँ की खोई रे अगूँठी।
साँचा...............

उलटा रे सुलटा कुण्डल पेरया,
लटिया बिखर गई सारी,
जामा का तो कसना ढीला,
बाजूबन्द की रे लड़ टूटी।
सांचा...............

कुब्जा को कँई रूप घणो है ?
हूं कँई तन की काली ?
तम हो लालजी, अन्तर का कपटी
मैं हूँ मन की भोली।
साँचा...........
हमने दुहाई बाबा नन्द मोहन की,
तुम हो प्राण की प्यारी—
चंद्रसखी भज बालकृष्ण छबि
प्रभु चरणा बलिहारी—
सांचा...........

३

क्या करूँ मेरी मातारी
पंडित के घर जायके ?
पेले तो मेरे गुरूजी मारे
लड़कन संग बुलाय के,
मारमार मेरी चाम हिड़ावे
सारा बदन उगाड़ के !
क्या...........

माता जो मेरी घणी पियारी
लड्डू दिये जेर[४] के,
वा तो मुझको मारन बैठी
साय[५] करी भगवान ने।
क्या...............

भुआ तो मेरी नाम होलका
ले बैठी आग की गोद में
वा तो मुझको जलाने बैठी
साय[५] करी भगवान ने।
क्या.........
मैं तो बाँचू ज्ञान की पोथी
पंडित नइ पढ़ाय के,
रामनाम तो कबी[६] नी भूलूँ
नइ भूलूँ भगवान ने।
क्या...........

इस नगरी में कदी[७] नी[८] रैना
पिता में बैर बसाय के,
चन्द्रसखी की करूँ बिनति
राम ही राम पुकार के,
क्या..............

---

१ महल २ पर्यंक (पलंग) ३ हर्ष होकर। ४ जहर ५ सहाय्य ६-७ कभी ८ नहीं

४

सखि ! आज तो आनन्द भयो कृष्ण आये पावणाँ
कृष्ण आये पावणा, गोपाल आये पावणा—
चाँद का उजास जैसा, दीप का संजोवणा,
सूरज सामी[१] उगिया, सब जगत को जगावणा,
फूलन की तो सेज बिछाई; फूलन का बिछावणा
फूलन फूलन हो रह में आंगण लगे सुआवना
सखि !..................
बिंद्रावन में रास रच्यो है, गोपिया बुलावणा,
काली दे में नाग नाथ्यो, निरत[२] तो करावणा,
लाड्डू पेड़ा सरस जलेबी, घेवरिया छुटावणा,
ताता-ताता[३] मालपुआ भोग तो लगावणा,
सखि..............

चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि,
हरि के चरण चित्त लावना

५

मन गेला[४]! संजा सुमरन करले...
साँज् सवेरे और दुफेरे[५]
तीन बखत हरि को भजरे,
मन............
चोरी चुगली ने परनिन्द्या[६]
तीनों को तू तज रे
जो तू चावे मुगति आपणी
हरि के दुआरे चलरे,
मन ....
काय की नाँव ? कायका बेड़ा,
कौन लगावे बेड़ा पार रे ?
सत की नाँव, धरम का बेड़ा,
हरि लगावे, बेड़ा पार रे !
चरण कमल में लियो आसरो, चरणों में सीस नमावणा
सखि................
मन................
काय को दिवलो ? काय की बाती ?
काय को घिरत संजोयो ?
सोना का दिवलो, रूपा की बाती,
माटी को दिवलो रामजी,
गैय्या को घिरत संजोयो !
मन............
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि
हरि के चरण बलिहार रे
मन गेला, प्रभु के चरण बलिहार रे
संजा सुमरन करले.........

६

कैसे लिखूँ मुरारी........ !
मूरख राजा राज करत है,
पंडत फिरे भिकारी !
कैसे............
नागर बेल फूल बिन तरसे,
गैंदा फूले हजारी !
कैसे............
विधवा ओढ़े साल-दुसाला,
पतिबरताँ नार उघाड़ी !
कैसे............
पतिबरताँ नार पुत्र बिन तरसे,
मूरख जण जण हारी !
कैसे............
चन्द्रसखी भज बाल की सोभा
हरि चरणाँ बलिहारी
कैसे............

—:०:—

---

[१] स्वामी [२] नृत्य [३] गरम-गरम। [४] पागल, [५] दोपहर में, [६] परनिन्दा

बाल शिक्षण के अचूक तथ्य

विद्यावारिधि पं० रामनिवास शर्मा

यहां बाल-शिक्षण पर कुछ लिखते हुए यह समझ कर हर्ष की सीमा नहीं रहती कि हमारे बालक उसदेव-स्तुत्य और बिश्व-प्रसिद्ध भारतके पुत्र हैं जिसने सर्व-प्रथम अपने प्राङ्गण में मानव को जन्म दिया, जगत् को सभ्यता की ज्योति से आलोकित किया एवं जिसकी सांस्कृतिक परंपराएँ और शिक्षाएं इस क्षण भी विश्व की वस्तु बनी हुई हैं।

विशेषतः जिसने बाल-शिक्षा के लिये ब्रह्मचर्याश्रम की नींव डाली, वेदान्त-वन्द्य बाल-कृष्ण को नन्द के आंगन में खेलते देखा, ध्रुव और प्रह्लाद-जैसे भगवद्भक्त और क्रान्तिकारी बालकों को जन्म दिया, धर्म-प्राण हुतात्मा हकीकतराय को पैदा किया और शिशु-सारल्य के मूर्त-रूप महान् प्रतापी और पुण्यात्मा अपने गांधी के यशः सौरभ से इस गन्ध-हीन संसार-किंशुक को सुरभित होते देखा।

परन्तु दुःख है कि आज वही विश्व-वन्द्य महान् भारत अपने कुल-दीप और राष्ट्र-आशा-तन्तु बालक के धर्म और विज्ञान-सम्मत शिक्षण-मूलक तथ्यों को भूल सा रहा है। यहां हम उन्हीं पर कुछ उपशीर्षकों के प्रश्रय में प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे। वे इस प्रकार हैं:—

१. विवाह-मूलक
२. वंश-संस्कार-मूलक
३. वर्ण-व्यवस्था-मूलक
४. गर्भ-प्रभाव-मूलक
५. मातृ-अंक-मूलक
६. स्वाभाविक-प्रवृत्ति-मूलक
७. आदत निर्माण मूलक
८. सत्संग वातावरण मूलक
९. सम्मान श्रद्धा मूलक
१०. व्यक्ति-समाज मूलक

१. विवाह-मूलक

आज का मनुष्य अशान्त और दुःखी है। उसमें अन्याय, क्रूरता, द्वेष और हिंसा का बोलबाला है। निर्दोष प्रेम, सहानुभूति, न्याय, दया और अहिंसा शायद ही कहीं देखने को मिले।

परन्तु आश्चर्य यह है कि कल का बालक-मानव आज का ऐसा निंद्य-मनुष्य कैसे बन गया? बाल-शिक्षण-मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका सदुत्तर यही है कि माता-पिता के अज्ञान और दोष-पूर्ण व्यवहार से बालक में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और वही उसे विद्रोही और नृशंस तक बना छोड़ती है।

ऐसी दशा में विवाह की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों का कर्तव्य है कि यदि वे समाज व राष्ट्र का भला चाहते हैं तो विवाह से पहिले अपने-आपको आदर्श व्यक्ति बनावें और बाल-शिक्षण-मनोविज्ञान का भी ज्ञान प्राप्त करें अन्यथा उनकी सन्तान राष्ट्र-सेवक बनने के स्थान में राष्ट्र-कलंक भी बन सकती है।[1]

२. वंश-संस्कार-मूलक

यद्यपि माता-पिता बाल-निर्माण के कारण हैं तद्यपि बालक के अनेक सँस्कार वंश क्रमागत होते हैं। उन्हीं

---

[1] :-श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करना सबसे उच्च श्रेणी का काम है। हम हेरेट होम्सर की प्रशंसा के पुल बांध देते हैं जिसने कि जेनूविया के पत्थर की मूर्ति घड़ी है परन्तु उस पुरुष और स्त्री की जितनी प्रशंसा करें उतनी ही थोड़ी है जो कि श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करते हैं। डा होलविरुक एम. डी. अमेरिका।

से बालक का सांस्कृतिक व्यक्तित्व पुष्ट और दृढ़ होता है। इस सत्य को आज के विदेशी विद्वान् भी मानते हैं:—

क. गुण-विकास में हम सब अपने पितृ-पुरुषों के वाहन स्वरूप हैं।

—Dr. Oli ver Wendell Holmer.

ख. मनुष्य-जाति तथा व्यवस्थित: विश्व का यही इतिहास है कि इसमें परंपरा से नवीन गुणों का विकास हुआ करता है और इन गुणों के संस्कार केवल पितृ पुरुषों से प्राप्त होते हैं। Dr. Bakey.

ग. जातीय प्रकृति और जातीय चरित्र की रक्षा के लिये परंपरा की विशेषतया आवश्यकता होती है केवल व्यक्तिगत अभ्यास के बदलने से सफलता नहीं मिलती। W. Cecil Dampeer Weithem.

घ. प्रत्येक मनुष्य के अवयव तथा स्वभाव में ऐसे अनेक गुण मिलते हैं जो जन्म-जन्मान्तर के पितृ-पुरुषों द्वारा प्राप्त हुए हैं। Artic Mac Blackburn.

ङ हमारे जीवन में अपने पूर्वजों के गुण, कर्म और स्वभाव विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं। ज्ञान-शक्ति की स्फूर्ति में अपने व्यक्तिगत पुरुषार्थ की अपेक्षा पूर्वजों से प्राप्त गुणों का ही अधिक प्रकाश रहता है। Ed Carpenter [१]

३. वर्ण-व्यवस्था मूलक

चाहे माता-पिता गुणों के पुञ्ज हों और उनके वंश-क्रमागत गुण भी अपार हों परन्तु इस गुण-माला को जब तक जन्म-क्रमागत वर्ण-व्यवस्था का रूप नहीं मिलता तब तक वह पुष्ट, दृढ़ उपयोगी और स्वाभाविक नहीं बन पाती और न उस में वर्णोचित अन्यान्य गुणों का ही समावेश हो पाता है। किन्तु यह लाभ हिन्दू-जाति को प्राप्त है। उसकी वर्ण-व्यवस्था न केवल अनादिकालीन प्रत्युत अकाट्य भी है। यही कारण है कि विविध और विभिन्न विघ्नों और आपत्तियों की चक्की में पिसकर भी यह जाति अभी तक जीवित है।

कौन नहीं जानता यह जन्मगत वर्ण-व्यवस्था का ही विश्व-दुर्लभ परिणाम है कि आज का ब्राह्मण अपने वर्णोचित गुण-कर्म-स्वभाव में अनन्वयालंकार का विषय बना हुआ है, क्षत्रिय अपनी वर्णोचित आनबान में पूरा है, बेपढ़ा मारवाड़ी वैश्य विश्व-व्यापार-क्षेत्र में जमा हुआ है और निरक्षर श्रमिक (शूद्र) अपने कला-कौशल से समाज का काम चला रहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय बात है कि वर्ण-व्यवस्था की इस महनीय विशेषता को अब विदेशी विद्वान् भी समझने लगे हैं, उनका कथन है कि:—

क्ष. अनेक आघात लगने पर भी हिन्दू-जाति जो सहस्रों वर्षों से जीवित है और उसकी जातीय भित्ती मज़बूत है तथा उसमें शांति है इसका एक-मात्र कारण वर्ण व्यवस्था ही है।

—Mr. Sidney Low

त्र. यह बात मिथ्या है कि वर्ण-व्यवस्था के द्वारा हिंदू सामाजिक जीवन में अनेक दुःखों का उदय हुआ है प्रत्युत् प्राचीन समय में इसने जाति की बड़ी सेवा की है और अब भी इसी के द्वारा सामाजिक जीवन में शृंखला तथा संगठन बना हुआ है।

—Sir, Henry Cotton

ज्ञ. भारतवर्ष में वर्ण-धर्म का नाश नहीं हो सकता और नयह उठाया ही जा सकता है। वर्ण-धर्म भारत वर्ष में अनन्त काल तक रहेगा, क्योंकि यह भारतीय प्रकृति के अनुकूल है।

—V.A Smith

---

[१] धर्म विज्ञान

गर्भ-प्रभाव--मूलक

हिंदू-शास्त्रों के मत से बाल-शिक्षण गर्भ-संपृक्त वस्तु है। यह वस्तुतः गर्भ-काल से ही शुरू होती है। अभिमन्यु ने गर्भ में ही अपने पिता अर्जुन से चक्र-व्यूह-भेदन की विद्या सीखी थी। परंतु माता का उत्तर-दायित्व इस दिशा में विशेष महत्व-पूर्ण और कारगर होता है। माता के आचार-विचार से गर्भस्थ बालक समधिक प्रभावित रहता है। उसके आहार-विहार का भी उस पर असर पड़ता है। १

कारण यह है कि गर्भ-गत बालक का अनन्त-शक्ति-सम्पन्न और प्रभाव-ग्राहक प्रसुप्त मन माता के व्यक्तित्वसे अनुप्राणित रहता है। यह भारत का घर-आंगन का सत्य है। कुलीन गृहस्थ इस समय भी इसे जानते-मानते और इससे लाभ उठाते हैं।

मातृ-अंक-मूलक

माता की अंक-शाला विश्व-पाठशाला-विनिन्दक वस्तु है। इस शाला से लाभ उठाने वाले बालक निःसन्देह अन्यतम होते हैं। इस शाला की अधिष्ठात्री माता अपनी गोद और झूले में बातों और सूक्तियों द्वारा बालक पर जो प्रभाव डालती है उसकी तुलना दूसरे किसी गुरु से नहीं की जा सकती।

इस शाला की प्रधान-अध्यापिका माता अपनी स्नेह-स्निग्ध गोद में पीयूष-वर्षिणी-वाणी से बालक के कान में शिक्षा की दृष्टि से जो भी डाल देती है वह जीवन में पल्लवित होकर सहस्त्र गुना फलता-फूलता और कारगर होता है।

फिर इसमें हर्बर्ट स्पैन्सर के कथनानुसार बालक के लिए दण्ड और पुरस्कार का काम माता का प्रेम ही करता है। कौन नहीं जानता माता जरासी झूठ-मूट रूठी नहीं कि बालक बेहाल हो जाता है और प्रसन्न हुई नहीं कि वह अपने आपको पुरस्कृत समझने लगता है।

सच तो यह है कि जो कुछ दिया जाता है और सिखाया जाता है वह स्वतः ही बालक के व्यक्तित्व में आत्मसात् हो जाता है उसके लिए बालक को कुछ प्रयास नहीं करना पड़ता। साथ ही माता की दुलार-पूर्ण-दृष्टि और थपकी जाग्रत् और निद्रा दोनों अवस्थाओं में प्राण-शक्ति और विकास-प्रक्रिया की पोषक बनी हुई बालक के अन्तःसुप्त नैतिक और आध्यात्मिक तत्त्वों को अज्ञात रूप में बल प्रदान करती रहती है। इस शाला के विशेष संस्मरण, प्रसाद और प्रदान इस प्रकार हैं:—

अ. संगीत मय आलाप
ब मसता मय निर्देश
स. संस्कृतिमय प्रदर्शन

६ स्वाभाविक-प्रवृत्ति मूलक

बालक की अनेक जन्म जात स्वाभाविक प्रवृत्तियां भी होती हैं। इनके विकास-प्रकाश से बालक अनन्त लाभों को प्राप्त करता है और जीवन संग्राम में योग्यतम भी सिद्ध होता है उनमें अन्यतम शक्तियाँ यह हैं:—

अ. अनुकरण-शक्ति
आ स्पर्द्धा-शक्ति

अनुकरण शक्ति बाल स्वभाव की अद्भुत जन्म जात शक्ति है। इसके द्वारा बालक पूर्वजों के अनन्त गुणों और अभ्यासों को आत्मसात् करता है। यदि बालक में यह शक्ति न होती तो एक विद्वान् के कथनानुसार वह रीढ़दार प्राणियों में बड़ा ही अभागा जीव होता।

स्पर्द्धा-शक्ति चाहे अनुकरण-शक्ति के समान इतनी व्यापक न हो किन्तु जीवन-संग्राम की दृष्टि से बाल-शिक्षा में इसका स्थान अत्युच्च है। इस दिशा में

---

१. चरक-संहिता,शरीर स्थान, अध्याय ८ सूत्र-४१, ४२, ४३, ४४, ४६

तो यह वस्तुतः दिव्यास्त्र का ही काम देती है। किन्तु यह अनुकरण-मूलक है, अनुकरण-शक्ति की आनुपातिक मात्रा कम होने पर यह ईर्ष्या में परिणत हो जाती है। इसलिए अभिभावकों का कर्तव्य है कि बाल-प्रतियोगिता में इसकी आनुपातिक मात्रा का ध्यान रखें अन्यथा बालक स्पर्द्धालु होने के स्थान में ईर्ष्यालु बन जावेगा और उसे स्पर्द्धा के अलभ्य लाभों से भी वंचित रहना पड़ेगा।

७ आदत निर्माण मूलक

भले ही कोई सत्य बोले परन्तु 'सत्य' जब तक आदत की वस्तु नहीं हो जाती प्रायः धोखा ही रहता है। यही बात अन्य गुणों की भी है। यदि हम चाहते हैं कि बालक अच्छा बालक बने तो हम उसकी प्रत्येक अच्छी बात को आदत की टकसाल में ढालें।

यह एक स्पष्ट बात है कि जिस काम के करने में पहली बार हम कतराते हैं किन्तु यदि उसको दो-चार बार करलें तो फिर उतनी कायरता नहीं रहती। परन्तु इसी तरह यदि उसे बराबर करते रहें तो फिर उसका करना आसान हो जाता है किन्तु यह भी सत्य है कि निरन्तर समान-भाव से यदि उसे सदैव करते रहें तो वह आदत की वस्तु हो जाने से हमें रोचक प्रतीत होने लगता है और उसके करने को मन उत्सुक भी रहता है।।

सारांश यह है कि व्यक्तिगत और सामाजिक बातों में बालक को आदत के ढाँचे में ढालना चाहिए। चरित्र-निर्माण की यही सच्ची साधना है। इसी से मनुष्य सच्चा, पक्का और खरा बनता है

८ सत्संग-वातावरण-मूलक

सत्संग और वातावरण का बाल-शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें प्रवेश कर बालक द्विजन्मा हो जाता है। नमक की खान में पड़कर सभी वस्तुएँ नमक बन जाती हैं। सत्संग और वातावरण के प्रभाव से प्रौढ़ व्यक्ति भी प्रभावित होता है किन्तु सत्संग जितना दुर्लभ है वातावरण उससे कहीं अधिक दुर्लभ। फिर ऐसे वातावरण का मिलन तो और भी कठिन है जो सभी प्रकार से बालोपयोगी हो।

प्राचीन काल में बालक गुरुकुलों के सर्वतोभद्र वातावरण में रखे जाते थे, वहां उन्हें अच्छे वातावरण के सभी लाभ प्राप्त होते थे। यही कारण है कि वे सच्चे द्विजन्मा बन जाते थे। वर्णोचित सभी लाभ उन्हें प्राप्त हो जाते थे। किन्तु आज वैसे सर्वतोभद्र वातावरण का लाभ बालकों को कहां प्राप्त है? विदेशों का वातावरण तो हिन्दू-संस्कृति की दृष्टि से समधिक घातक है। ऐसी दशा में जब तक निर्दोष वातावरण प्राप्त न हो सत्संग को ही ईश्वरीय देन समझना चाहिए यदि इसमें चूक हुई तो फिर बालक के अधःपात के सहस्त्रों द्वार खुल सकते हैं।

९ सम्मान-श्रद्धा-मूलक

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि यदि हम किसी को अपने व्यवहार से तुच्छ, नगण्य और दीन होने का विश्वास दिलावें तो एक दिन वह स्वयं भी अपने आप को दीन समझने लगेगा। अज्ञ और कोमल-हृदय बालक पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति और माता-पिता का कर्तव्य है कि वे दीनता-उत्पादक व्यवहार से बालक को सदैव मुक्त रखें।

परन्तु इसका सरल उपाय तो यह है कि बालक के प्रति सम्मान-श्रद्धा का व्यवहार किया जावे। इससे न केवल बालक को अपने श्रेष्ठ बनने की प्रेरणा मिलेगी अपितु हमारा भविष्य-राष्ट्र भी सम्मानास्पद और श्रद्धास्पद बन सकेगा; क्योंकि आज का बालक ही तो कल का राष्ट्र होगा। वैसे न्याय की दृष्टि से भी बालक सबका सम्मान-श्रद्धा का पात्र होना चाहिए; इसलिए कि:—

य. वह बाल गोविन्द का सखा-साथी है

र सरलता और पवित्रता का मूर्त-रूप है

ल. नई बात सीखने की योग्यता उसमें अपेक्षाकृत अधिक है।

व. वह उस जाति का अंश है जिसने प्रातः स्मरणीय ऋषि-मुनियों विद्वद्वरों और लोकोत्तर कलाकारों को उत्पन्न किया है।

माता-पिता की दृष्टि से तो बालक सब कुछ है क्योंकिः-

च. वह उनका आशा-स्थल है।

छ. आनन्द का स्रोत है।

ज. वंश-वृक्ष का त्राता है।

झ. उनके मानसिक भावों और आत्मिक सफलताओं का रक्षक है।

ञ. उन्हें स्वार्थ परता और कठोरता की कैद से मुक्त कर पर-सेवा, न्याय और कोमलता के भावों का पाठ पढ़ाता है।

१० व्यक्ति-समाज-मूलक है।

१० व्यक्ति-समाज-मूलक

आज का बालक कल का समाज-निर्माता होगा। ऐसी दशा में बाल-निर्माण समाज-निर्माण का ही कार्य है, परन्तु इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तो माता-पिता और गुरु जनों के सिर पर है इसलिए इन सज्जन महानुभावों को अपने उपदेशों मुख्यतः आचरणों द्वारा व्यक्ति-समाज-विषयक इन बातों में बालक को शिक्षित करने का भरसक प्रयत्न करना चाहियेः-

१. ईश्वर-विश्वास
२. धर्म-भीरुता
३. सांस्कृतिक जीवन
४. समय का पालन
५. नागरिकता का बोध
६. आपस के मित्रोचित सम्बन्ध
७ परोपकार का भाव
८ प्रजा सत्तात्मक वातावरण
९. सामाजिक योजनाओं का सहयोग

कालिदास

श्रीजगन्नाथप्रसाद मिलिंद

१

हे मेरे मन के कालिदास,
जनज के नमन के कालिदास;
संस्कृति के, रस के हे प्रतीक,
हे भावमेघ के चिराकाश!

२

मानव बन जब तुम प्रकट हुए,
उसके पहले भी तुम थे ही,
तुम केवल व्यक्ति नहीं, तुम हो
साकार वेदना, अश्रु, हास।

३

हे कलामूर्ति, हे कलाकार,
मानव आत्मा के हे शिल्पी,
कर पूर्ण चिरंतन भावांकन,
तुमने जब अंतिम लिया श्वास,

४

इस महामरण क्षण के जितने
अनुगामी क्षण अब तक आए,
उन सबमें तुम जीवित, जाग्रत
जनजन में बनकर रसोल्लास।

५

मालव-प्रासादों का वैभव
बंदी तुमको कब कर पाया?
मन मुक्त गगन के मेघ सदृश
करता ही रहता था प्रवास।

६

सुख की सीमा के रुद्ध नयन
कब देख सके वह आलोड़न,
जो व्यथा, विरह पर प्राणों में
अनुभव कर तुम होते उदास।

७

जनता में वितरित और निहित
सत्ता का विक्रम इस युग में,
इस पर पुलकित जनजन व्यापक
हो रहे कला के कालिदास।

८

जन संस्कृति के स्तर की उन्नति
प्रतिपद जयघोष तुम्हारा है,
जनजन के मानस का विकास
अब, सुकवि, तुम्हारा है विकास।

स्वर्ग में स्वाधीनता-संवाद (व्यंग)

[सम्पादक]

[नारद जी का काम, 'स्वर्गीय समाचार ब्यूरो' को नियमित रिपोर्ट देना है, वर्षा की विपुलता के कारण, तथा आकाश-गंगा में बड़ी बाढ़ आ जाने से वे कहीं बाहर न जा सके थे, जब उनके दूतों ने याद दिलाया कि भारत में काश्मीर जैसे स्वर्गीय-खण्ड में प्रलय के बादल छा गये थे, और करणसिंह के प्रयास से बिना जान माल की हानि के वे काले बादल छंट गये, तो उनकी इच्छा इस अचरज को अपनी आंखों से देख लेने की हुई। साथ ही स्वाधीनता पर्व भी पास आगया था, सो वे दिल्ली में जाकर सुरा-सुंदरी के सौन्दर्य और मद को उछलता देखना चाहते थे। पाक-भारत प्रधानों की परिषद के समाचारों को भी स्वयं समेट लाना चाहते थे, सो सहसा भारत की सैर के लिए चल पड़े। सप्ताह भर के समारोहों को स्वयं देखा और अनेक प्रदेशों की सैर कर वे बहुत से समाचार और सामान समेट सीधे स्वर्ग की ओर चल पड़े।]

स्वर्ग में प्रातःकाल का सुहावना समय था, लता-पल्लवों से लिपट कर मन्द समीरण बह रहा था, सर्वत्र सुमनों की सुरभि से वातावरण प्रफुल्लित बन रहा था, देवांगनाएँ स्वर्गपति के द्वार पर सजीहुई, पट खुलने की प्रतीक्षा कर रही थीं, नारद जी ने इसके पूर्व ही द्वार पर पहुंच चौबदारों से अन्दर प्रवेश की अनुमति प्राप्त की। भला, रात-दिन आने जाने वालों को चौबदार कैसे रोकते? वे ज्योंही पट से प्रवेश कर प्रधान-कक्ष में प्रविष्ट हुए, भगवान् पोशाख पहनकर दरबार में जाते हुए मार्ग में ही मिल गये, नारद जी को सहसा बड़ी सुबह, पीठ पर बड़ा थैला, और झोले में बड़ा पुलिंदा लिए सामने आते देख सहम गए, और वहीं राह में रुक कर चकित बन पूंछने लगे।

भगवान्—आज तो नारदजी आप बड़ी सुबह ही पहुंच गए, सब कुशल तो है? कहां से चले आ रहे हो, और यह पीठ पर इतना वजन क्या रख छोड़ा है? भारत से कोई माल ताल लिवा लाए हो? यह हाथ के झोले में भी आज तो बड़ा भारी पुलिंदा उठा लाए हो?

नारद—महाराज, आप तो अन्तर्यामी हो सब जानते ही हो, मैं इस सप्ताह भर भारत की सैर कर आया हूँ। बहुत सी नई चीजें और बहुत से नये समाचार संग्रह करके लाया हूँ। जरा आप बैठें तो सुनाऊँ-बतलाऊँ!

भगवान् पड़ौस में पड़ी कालीन पर तुरन्त बैठ गए, और नारद को भी अपने पास बैठ जाने का संकेत किया, इतने में एक दूत ने आकर नम्रता पूर्वक प्रणाम कर निवेदन किया, कि महाराज! देवांगनाएँ द्वार पर सुसज्जित हो सेवा में उपस्थित होने के लिए विनय करती हैं।

भगवान् ने द्वारपाल से कहा कि-आज हम जरूरी काम के आजाने से इस समय कोई अन्य आयोजन नहीं कर सकेंगे, जब तक हम नई सूचना स्वयं न दें किसी को अन्दर मत आने देना। द्वारपाल आदेश पाकर वापस हो गया, देवांगनाएँ भी चली गईं। अब पुनः भगवान् ने स्वस्थ-चित्त हो नारदजी से कहा—

भगवान्—हाँ, नारद, अब तुम अपनी यात्रा की पूरी कथा सुनाओ, अब कोई बाधा नहीं रहेगी।

नारद—भगवन्! मैं अपने ब्यूरो के अर्जन्ट वर्क से, स्वर्ग से सीधा चलकर काश्मीर गया था, मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला था कि भू-स्वर्ग-काश्मीर पर विपत्ति के काले बादल उमड़-घुमड़ कर छा गए हैं, और प्रलय मचा देने वाले ही थे कि वहां के नये-नौजवान 'सदरे रियासत' ने अपनी कुशलता, और भारत के भाग्य के सहारे उन्हें चतुराई से, और साहस पूर्वक छँटादिया और बादलों की कड़ी कड़क को पहिचान कर राजनीति विज्ञान के 'कूट-कार्यों के सहारे तुरन्त रातों-रात समेट कर प्रलय की पुकार करने वाले तत्वों को समेट कर सहज सींखचों में बन्द कर दिया।

भगवान्—नारद, वास्तव में यह आश्चर्य ही हुआ, सदरे रियासत की सूझ का मैं स्वागत करता हूँ। बड़ा उत्तम हुआ कि ये प्रलय के काले बादल काश्मीर पर कड़क कर ही रह गए, यदि बरस पड़ते तो बड़ा अनर्थ हो जाता, पर क्यों नारद? वे मेघ नष्ट हो गए, या कहीं अन्यत्र चले गये?

नारद—प्रभो! वे मेघ, काश काश्मीर पर टूट पड़ते तो गिरि-कन्दराओं और खाई खन्दकों में भयानक उत्पात मचा देते, स्वर्ग शांति में सर्वनाश का ताण्डव हो जाता किन्तु 'कूट-कला' की करामत से ज्योंही वे काले बादल काश्मीर से जी छोड़कर भागे सीधे पाक भू-खण्ड पर वे छाने लगे, और वहाँ उन्होंने जनता में आतंक छाना आरम्भ कर दिया, अभी वे पूरी तरह कड़के नहीं, मूसलाधार बरसे भी नहीं, पर जनता में घबराहट फैल गई, कुहराम मच गया।

भगवान्—यह 'कूट-कला' जिसका तुमने अभी अभी संकेत किया, नारद यह क्या वस्तु है? क्या तुम कुछ जान पाये हो? अजीब है भई यह तो, जो प्रलयघटा को भी आसानी से हटा सके!

नारद—महाराज! यह स्वर्ग के समझने की चीज ही नहीं, सात्विक वातावरण में इस कला को न तो कोई सीख सकता है, न समझ ही सकता है। यह 'कूट-कला' भारत के लिए भी बाहरी वस्तु रही है। परन्तु १५० वर्ष की पराधीनता के कारण देश में निरन्तर बाहर से आयात हो कर अब यह पनप गई है, और परिणामकारी हो गई है।

भगवान्—पर क्यों नारद! चाणक्य-कौटिल्य की कला भी तो भारत में विकसित हुई थी, क्या यह कूट-कला उससे कोई अलग चीज है?

नारद—जी, महाराज! कौटिल्य की कला तो 'नीति' के अनुसार ही थी, और अपने ढंग की अवश्य अद्भुत भी थी, पर यह कूट-कला तो भारत के लिए विदेशी वस्तु है। जिसे वहाँ, और बाहर 'डिपलोमेसी' कहते हैं। और राजनीति में इसे प्रमुख स्थान मिल गया है, इसके बड़े-बड़े कार्यालय, व्यापार, देश विदेशों में आज अर्से से खुल गए हैं, और सारा कारोबार इसी पर चलने लगा है। इसका अलग लंबा इतिहास विस्तार है।

भगवान्—छोड़ो भी हमें क्या करना है, जब अपने यहाँ उसकी कोई उपयोगिता नहीं, आवश्यकता नहीं तो नाहक की सिर पच्ची से क्या लाभ? हाँ तो, कूट कला की करामात से काश्मीर तो इस समय सम्हल गया, चलो अभी तो चिंता मिटी और फिर क्या देखा?

नारद—महाराज! अवश्य ही इस क्षण तो चिन्ता मिटी, पर पाक-प्रदेश में जो मेघमण्डल छा रहे हैं, बिजली कड़कने लगी है, वह बहुत दूरी पर नहीं है, यदि भारत की कूट-कला काम दे गई तो भले ही पाक के बादल तुरंत न बरसे। कहीं वे गरजते-गरजते बरसने भी लगे तो काश्मीर और उससे आगे भी उत्पात बढ़ सकता है।

भगवान्—तो क्या, भारत में 'कूट कला' का आपत्ति निवारण के लिए प्रयास हो रहा है न?

नारद—जी, भारत में तो हो ही रहा है, पर उधर पाक प्रधान भी घबड़ा कर भागे-भागे भारत पहुंच गए थे, दोनों खण्ड मिल-जुडकर इस आकस्मिक आपत्ति के निवारण का उपाय सोचने में लग गए थे।

भगवान्—तो क्या कुछ मार्ग मिल रहा है?

नारद—महाराज! मुझे तो अधिक अवकाश नहीं था, यहां भी बहुत काम पड़ा था, और मैंने समझा यह प्रलय-घटा हवाकी तरह बढ़ती ही जाए तो कौन नई आफत में गिरे, आकाश मेघाच्छन्न हो जाने पर मेरे आने का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता, मैं तो बातचीत बीच में ही छोड़ चल दिया!

भगवान्—ठीक किया, नारद, समझदारों के सयानेपन और सोच विचार के प्रयासों में शायद कोई राह मिल ही जाएगी।

नारद—पर महाराज! सयानों की ही बात हो, सम्मीलित प्रयास हो तो कौनसी बात कठिन है, किन्तु पाक-खण्ड में असत्य का वातावरण बढ़ गया है, और पाक प्रधान के साथ इस कठिन काल में ऐसे ही एक असत्यवादी-हरिश्चंद्र भारत पहुंचे थे। यह लक्षण कुछ भले नहीं लगे, आगे क्या भावी है—यह तो आप ही जानें।

भगवान्—जाने भी दो, तुम इस 'भावी' की गहराई में मत उतरो, हां, यह गँठरी क्या उठालाए हो? इसे तो तुमने खोला ही नहीं?

नारद—प्रभो, मैं तो काश्मीर की चर्चा में ही उलझ रहा, वास्तव में आपको बतलाने के लिए मैं इस गँठरी में बड़ी अजीब और नवीन चीजें लाया हूँ, जो स्वर्ग में कोई स्वप्न में भी नहीं जानता होगा।

भगवान्—पहेलियाँ न बुझावो, जरा गँठरी खोलकर बतलाओ तो सही कि क्या तोहफा ले आये हो।

नारद—(गँठरी खोल कर भगवान् के सामने चीजें फैलाते हैं) देखिए महाराज; यह बड़ा मौलिक और अस्वर्गीय पदार्थ है, इसके निर्माण की कला स्वर्ग के लिए स्वप्नवत्-दुर्लभ ही समझें, सारे भारत में भी बहुत ही कम, और कुछ विशेषज्ञ-विदेशी लोग ही इसका निर्माण कर पाते हैं, यह भी एक कला है जिसे आपकी ६४ कलाओं में कोई जानता तक नहीं।

भगवान्—लेकिन, यह है क्या? इसका उपयोग क्या? क्या यह खाने पीने की चीज है, या शोभा की?

नारद—महाराज! मैं यही तो बतला रहाहूँ। देखिए, है न नई, आप भी इसका महत्व या उपयोग नहीं जान पाए हैं!

भगवान्—यह तो सच है, मैंने तो आज ही देखा है, भला, इसको क्या कहा जाता है?

नारद—श्रीमान्, इसका नाम 'केक' है, यह वैसे तो विदेशी भोजनालयों, पेयालयों में खाने में ही काम आता है, पर उत्सव प्रसंगों, शादी ब्याहों, जन्मोत्सवों पर इसका निर्माण बहुत ही कलापूर्ण ढंग से होता है। और साज सजावट के साथ समारोह में इसे खास अदा, नाज और अन्दाज के साथ काटा जाता है, इसे उत्सव पर्व में एक धार्मिक संस्कार का महत्व प्राप्त है।

भगवान्—पर क्यों नारद, इसके पूर्व तुमने भारत में सैकड़ोंबार यात्रा की है, तुम आज तक कभी यह केक पदार्थ अपने साथ न तो लाए, न इसके बारे में कभी कोई चर्चा ही की है।

नारद—कैसे लाता प्रभु! १५० साल से भारत पर दूसरे लोग शासन करते थे। उनके रीति-रिवाजों, धर्म पर्व उत्सव-समारंभों से मुझे क्या मतलब था। मैं कभी उनके आयोजनों में न तो आमंत्रित हुआ न सम्मीलित हुआ, इसी तरह जब मुगलों का अधिकार था, तब भी ऐसा अवसर नहीं आया, आता भी तो उनके इन पदार्थों को स्वर्ग में लाने की आवश्यकता भी क्या पड़ती?

भगवान्—पर अब तो भारत स्वतंत्र हो गया है न?

नारद—जी, तभी तो मैं भी स्वाधीनता-पर्व प्रसंग पर सरकारी समारोह में सम्मिलित हो सका था।

भगवान्—किंतु........किन्तु क्या स्वाधीन भारत में यह 'केक' भारतीय-संस्कारों की वस्तु है? वहाँ तो पुराने नीति नियम सब अलग ही रहे हैं न?

नारद—महाराज आप प्रगतिशील विज्ञान युग की हवा को क्या जाने? भारत स्वाधीन जरूर हुआ है, पर उसके संस्कारों में रीति-रिवाजों में परदेशों का पूरा प्रभाव है। शायद आप भूल गए कि वह 'धर्म-निरपेक्ष' राज्य बना है।

भगवान्—किन्तु यह 'केक' धर्म-निरपेक्ष पदार्थ है?

नारद—जी नहीं, भारत अपने देश के विभिन्न-धर्मों से 'निरपेक्ष' है, यह तो विदेशी वस्तु है, और वहाँ की धर्म परम्परा में ग्रहीत-पदार्थ है, इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति थोड़े ही है; विदेशी भाषा, विदेशी-अंक, विदेशी सन् समय, इनका अब भी वहाँ सन्मान है।

भगवान्—अच्छा ..! स्वतन्त्र हो जाने पर भी भारत अपनी परम्परा, या संस्कार नहीं अपना पाया है.! पर नारद, जब अत्यंत प्रगति शील विलायत में भी रानी का राज्याभिषेक हुआ तब तुम जानते हो न, कि वहाँ पोपों ने ही सभी

संस्कार किये थे, वे भी अपने देश के संस्कार, परम्परा के प्रति कितने रूढ़िग्रस्त हैं, पर भारत तो अपनी महान् संस्कृति की थाती रखता है, उसे इन 'केकों' की भला क्या जरूरत थी? 'वाइसरीगल लॉज' राष्ट्रपति भवन भले ही बन गया, पर यह 'केक' अभी उस सर्कल से बाहर नहीं जा सका। खैर, तो यह उसी 'केक' का खण्ड तुम ले आये हो।

नारद—हाँ, महाराज, उस समारोह में मैं गया था, तो मैंने समझा कि प्रभु को भी बतलाने के लिए यह ले चलूँ, सो वहाँ से जब पंडित जी ने पूरे 'केक' को काटा तो एक खण्ड उठाकर आँख बचाकर ले आया!

भगवान्—ठीक किया, मुझे स्मरण आता है, दो रोज़ पूर्व ही संजय ने दिल्ली के किसी समाचार-पत्र से शायद यही फोटो देखा था, वह भी इसी का जिक्र कर रहा था।

नारद—ठीक है, मैंने भी दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' के १७ अगस्त के अंक में यही फोटो छपा देखा था। जिसमें स्वाधीनता पर्व पर पंडित जी 'केक' काट रहे थे।

भगवान्—भला, भारत की परम्परा को उपेक्षित कर पंडित जी जैसा समझदार आदमी यह विदेशी परम्परा से क्यों प्रेम करता है। समझ में नहीं आता, खैर तुम यह 'केक' यहां उठालाए ही हो तो खूब छुपाकर रख देना कहीं स्वर्ग में इसका किसी को स्वाद न लग जावे, हाँ अभी तुम्हारी गँठरी में तो बहुत सा सामान बिखरा पड़ा है। समाचार भी बहुत से साथ लाए ही हो तो जरा शांति से सब सुनेंगे।

अच्छा, नारद, थक गए होगे, बहुत दूर से चल कर आए हो, अब निबट कर कुछ नाश्ता कर लो, फिर और बातें करेंगे। तब तक मैं भी आवश्यक फाइलें देख जाऊँ और ऑफिस का काम काज निबटा लूँ।

———

'आस' ★

श्री० आनन्द मिश्र

आज के झरे, खिलेंगे कभी,
यही है एक आस मन में!
समय की आँधी में अज्ञात,
झर गए उर-तरुवर के पात,
अकिंचन मधुवन, मौन नला-
हँस गए भीषण-झंझावात,
किन्तु कब तक ऐसे आघात,
कभी तो आएगी बरसात,
कोकिला कूकेगी वन में!
यही है एक आस मन में!
जानता हूं, निष्ठुर संसार,
जीत कर भी; मिलती है हार,
चषक सोने का, विष की धार,
उलझनों का ऊपर गुरु-भार,
ढह रहे ऊंचे श्रृंग, कगार
नाव भी मेरी बे-पतवार,
किन्तु, युग का विधान-क्षण में।
यही है एक आस मन में।
बताओ कब चाहा सम्बल,
एक धुन, केवल चल बस चल,
झूमने दे, जितने झूमें,
चुनौती दे कर तम को, जल,
न एकाकी, सब को ले चल,
जमा की तकदीर बदल
न थक, रुक मत रे जीवन में।
यही है एक आस मन में।

अध्यापक और अधिकारी

श्री "उदयसूर्य"

रामचन्द्र बी. ए. बी. टी. हाथ में थैली लिये घरसे निकला ।"ज़रा ठहरो अभी मैं आता हूँ" पीछेसे आवाज़आई। राम चन्द्र ने पीछे मुड़कर देखा । वहाँ कृष्णमूर्ति अपने मोटे शरीर को परिश्रम से सम्हालता हुआ तेज़ीसे आ रहा था । उसके केश हीन सिर पर सुरज चम-चम चमक रहा था ।

वह रामचन्द्र के स्कूल का साथी और मित्र था। दोनों एक दूसरे को बहुत वर्ष पहले से ही जानते थे। आरंभिक श्रेणी से लेकर बी. ए. तक वे एक साथ ही पढ़े थे। बी. ए. पास होकर रामचन्द्र बी. टी. के लिये शिक्षक शाला में भरती हुआ था, बी. टी. की सनद पाकर वह वहाँ से लौटा। कृष्णमूर्ति का कोई रिश्तेदार उन दिनों सरकार में बड़ा अफ़सर था । उसकी सिफ़ारिश से कृष्णमूर्ति ने एक अच्छे विभाग में प्रवेश पा लिया था। बड़े ओहदे वाले की सिफारिश हो, तो इस दुनियाँ में क्या नहीं बन जाता ! अब कृष्णमूर्ति उस विभाग का एक प्रमुख था । बड़ा अधिकारी बन जाने पर उसकी तोंद भी निकल आई थी ।

"किधर निकले, रामचन्द्र ?"

"देखलो तुम्हीं, इतनी सुबह हाथ में थैली लिये, मार्केट को छोड़ और कहाँ जाऊँ ?'

"अरे, यह तो आश्चर्य की बात है। तुम भी मार्केट में फल सब्जी खरीदकर ही खाते हो ?"-कृष्णमूर्ति ने व्यंग्य से पूछा।

"अभी इस महीने का आरंभ ही हुआ है न ? शायद तुम नहीं जानते, महीने के आरंभ के कुछ दिनों तक यह सब चलेगा ही।"

"ओ हो, अभी तीसरी तारीख है; इसीलिये तुम आज मार्केट जाते हो, वर्ना यहाँ तुम क्यों दिखाई देते ?"-कृष्णमूर्ति के स्वर में दिल्लगी थी।

"यह बात छोड़ो; तुम तो बड़े अफ़सर हो; तुम्हारे कई नौकर चाकर होंगे । उनमें से किसी को भेजकर तुम क्यों न घर पर ही सब मंगवालेते ? अफ़सर खुद बाज़ार में क्यों निकले ?"

"तुम्हारे मार्केट जाने के इस अद्भुत दृश्य देखने के लिए ही मैं निकल आया हूँ !"

"मैं तो कम से कम हर महीने की पहली दस पन्द्रह तारीख तक मार्केट जाता ही रहता हूँ; तुम वह भी नहीं।"

"मैं खुद जाऊँ या चपरासी से खरीदवा लूँ, दोनों बराबर हैं। आखिर मैं रोज़ तरकारियाँ खाता हूँ, तुम एक तिहाई मास तक ही फल वगैरह खाते हो।"

"आज तुम्हारे चपरासी ने भला क्यों अपने अफ़सर को ही बाजार भेज दिया ? शायद इस विचार से तो नहीं, कि एक न एक दिन अफ़सर नौकर का काम करेगा ही।"

"नहीं, मैं यों निकला कि एक दिन मैं खुद क्यों न जाऊँ ?"

"कितनी अच्छी है तुम्हारी अफ़सरी ?"

"कृष्णमूर्ति साधारणतः रामचन्द्र की ओर मज़ाकसे देखनेवाला था; पर वह रामचन्द्र की हँसी उड़ाने के मूड में आगया ।

"रामचन्द्र, मैं अपने दिल की बात तुम्हें बतलाता हूँ; बुरा मत मानना।"

'बात क्या है ?'

"मैं कहूँगा; सुनकर तुम यह न समझना कि यह क्यों कहता है ? बी. ए पास करके तुम अध्यापक क्यों बने ? आखिर तुम्हें इतनी बड़ी दुनियाँ में यही पेशा मिला ? और कोई नौकरी कहीं मिली ही नहीं ?"

रामचन्द्र चुप सुनता रहा।

"बी. ए. भी मामूली बी. ए नहीं, साथ बी. टी. भी, दो सनद पाने पर भी आखिर तुम्हें अध्यापकी ही मिली? और कोई अच्छा काम तुम्हें प्राप्त नहीं हुआ?"

रामचन्द्र कुछ जवाब नहीं दे सका।

"बीस साल से नौकरी करते हो; पर तुमने कोई प्रमोशन भी पाया? उद्योग में एक भी तरक्की नहीं हुई बल्कि तुम्हारे पास कल और परसों तक जो लड़के पढ़ते रहे वे सब आज बड़े २ अफ़सर हैं। एक मैनेजर है, दूसरा इंजिनियर है, तीसरा और कोई सरकारी अफ़सर, इत्यादि। पर तुम्हें कोई कभी मिला या नहीं?'

'पर मैंने इतने लोगों को आगे बढाया शिक्षित बनाया। यह कोई मामूली कार्य तो नहीं हुआ?"

"ऊहुँ, यह मैं नहीं मानता। बतलाओ, इतने वर्षों की नौकरी के फल स्वरूप तुम्हें क्या मिला है? जिस स्थान में तुम थे, उससे ज़रा भी हिले हो? वही अध्यापक, वही श्रेणी, वही उद्योग, वही वेतन, वही रामचन्द्र बी. ए. बी. टी.। तनिक भी तुम्हारी हैसियत में सुधार नहीं हुआ है; पर जो कल तुम्हारे चेले थे, वे सब आज बड़े बडे प्रमुख बन गए हैं न?"

"क्या वह हमारे लिए खुशी की बात नहीं है? मुझे अवश्य यह थोड़ा गर्व है कि मैं हर साल चालीस चालीस अच्छे विद्यार्थियों को तैयार करता हूँ। कल मैं वैसे ही कहीं जा रहा था; रास्ते में एक व्यक्ति से भेंट हुई। मुझे मालूम नहीं, वह कौन है। पर उसने अपना परिचय दिया। बहुत दिनों के पहले मेरा विद्यार्थी था और अब उत्तर में एक नामी कंपनी में मैनेजर है। 'क्योंजी, आप उत्तर की ओर कभी नहीं आते! गरमी की छुट्टी में वहाँ आइये, एक राऊंड। आपके कई भूतपूर्व विद्यार्थी मिलेंगे।" उसके इन शब्दों को सुनकर, जानते हो मैं कितना प्रसन्न हो गया?"

"इसमें बड़ी खुशी की क्या बात है? आखिर वह अपने आचार्य जैसा बुध्दू नहीं था; पढ़ाई समाप्त करके, अगर वह अध्यापक बन गया होता, तो उस बेचारे की आज कैसी दशा हुई होती? या मेरी तरह तुम ने भी बी. ए. पास करने के बाद किसी आफ़िस में प्रवेश पा लिया होता, तो आज अवश्य एक बडे अफ़सर बन गये होते। अभी इस महायुद्ध के पहले जो जिला दफ़्तर में गुमाश्ते थे, उनमें से कितने ही लोग आज तहसीलदार और डेपुटी कलैक्टर बन गये हैं!"

"हाँ, मेरा एक विद्यार्थी भी तहसीलदार बन गया है। वह परसों ही 'ट्रांसफ़र' होकर यहाँ आया है। अचानक उसकी भेंट होने पर मैं भ्रम में पड़ गया। मैं परीक्षा के उत्तरपत्रों को लेकर घर जा रहा था। तब उसने सिर झुकाकर अभिवादन किया। मैं पहचान न पाया उसने पूछा-'जी, आप अभी यहीं पर हैं?' शायद वह नहीं जानता था कि अध्यापक लोगों की प्रगति के लिए इस दुनियाँ में जगह नहीं है। खैर, अपने किसी विद्यार्थी को बड़े २ ओहदों पर गए देख अध्यापकों के दिल में बडी खुशी पैदा होती है। कोई अध्यापक यह देख कर पछताता नहीं कि:-

"अगर मैं भी इस विभाग में शामिल हुआ होता तो आज कितना खुश रहता? मैं ने क्यों अध्यापकों का काम चुन लिया?" आदि। विद्यार्थियों की अच्छी हालत देख अध्यापकों कोईर्ष्या नहीं होती।'

"यह सब ऊपरी बातें हैं, मुँह से निकलने वाले बाहरी वचन ही। पर दिल की गहराई के विचार नहीं। अध्यापक बन जाने के बाद अब क्या किया जाय! तुम इसी तरह अपने मन को सान्त्वना दे लेते हो।"

बातों में ही अब मार्केट आ गया; कृष्णमूर्ति ने बातें बंद कीं "कौन कौनसी तरकारियाँ हैं?" दोनों के मुँह से सहसा एक ही वाक्य निकल पड़ा "फूल-गोभियाँ अच्छी दीखती हैं"-कहता हुआ वह आफ़ीसर-'अंग्रेजी वेजीटबल' की ओर बढा, और 'अध्यापक' के मन को 'बैंगन हरी और नयी" दिखाई दी। वह बैंगन की ढेरी की तरफ चल पड़ा!

बी. ए. पास करने बाद दोनों ने जैसी अलग २ राह ली थी, उसी तरह आज तरकारियों को देखते ही जुदा जुदा हो चल पडे ! कृष्णमूर्ति ने अंग्रेजी फल, खरीद लिए ।

भिंडियाँ देखने में आकर्षक थीं, हरी और नई । देशी फल-फलियों में भिंडी ही उसे अच्छी लगती थी । वह उधर बढ़ा । वहाँ खरीदने वालों की बड़ी भीड़ लगी थी। एक छोटा लड़का दुकानदार बन कर, बेच रहा था। उतना छोटा छोकरा उस बड़ी भीड़ को सम्हाल रहा था।

"जी, बार बार चुनते न रहिये । हाथ में जो आये, उसे ले लीजिये"-उसने एक से कहा ।

"देखो, भैया, आठ ली हैं गिन लो ।"

"नहीं जी, आठ नहीं मिलेंगी । एक आने में आठ भिंड़ियाँ कैसे आयेंगी ?"

"तुमने कहा, सात, तो सिर्फ एक ज्यादा मांगता हूँ ।"

"नहीं नहीं, इसी भाव में हम खरीद लाते हैं तो, आपको हम उसी दाम पर कैसे दे सकेंगे ? सौ भिंडियाँ बारह आने में हमीं को मिलती हैं. आपको भी उसी कीमत पर दें, तो ? हमारा धंदा कैसे चले ?"

बीच में एक दूसरा बोला-"यहीं देख लो. मैं ने भी पन्द्रह ली हैं, दो आने की ।"

"जी, बुरा न मानिये । आखिर हम गरीब लोगों को भी दिन काटना है । हम थोडे से लाभ के वास्ते ही व्यापार करते हैं । "

दुकान वाले लड़के की कडाई देख कर कृष्णमूर्ति वहाँ से खरीद करने से हिचका । पर उसकी निगाह में वह ताजी सब्जी चढ गई थी, पर उसे खरीद का ढंग मालूम नहीं था, हर महीने में एक या दो दिन ही वह मार्केट की ओर आता था । उतनी बड़ी भीड़ के बीच जाकर व्यापार करने की लज्जा से वह थोड़ी देर एक ओर अलग जाकर खड़ा रहा, भीड़ जब कुछ छटी। तब वहाँ पहुँचा ।

"भिंडी क्या भाव दीं भैया ?"

"अब तक एक आने की छः देता था, पर आप के लिये सात दूँगा । आपको कितनी चाहिये ?"

"जरा ठीक लेने देने की बात करो,"

"मैं तो कह चुका, आप कहिये क्या देना है ?

'आठ नहीं दोगे क्या ?"

"जी नहीं, अगर आप जैसे अमीर लोग ही ऐसी बात कहें तो हम बेचारों की क्या हालत होगी ?"

कृष्णमूर्ति बोला-"मैं तो कोई अमीर नहीं हूँ, तुम जैसा गरीब ही हूँ ।"

"अच्छा, गरीब हैं तो आप जरूर हम लोगों की दुर्दशा जानते होंगे । आप ही कहिये, जब और सभी चीजों के दाम बढ़ गए हैं तो सिर्फ भिंडी सस्ती कैसे हो सकती है ?"

"मुझे दो आने की चाहिये तुम्हीं चुन कर देदो ।"

"लीजिये पन्द्रह !"

"अच्छी होंगी न ?"

"हमारी दुकान में बुरी चीजें आती ही नहीं। अगर एक बार यहाँ कोई फल शाक ले गया तो,हमेशा के लिये यहीं आयेगा समझिए ।'

कृष्णमूर्ति भिंडियों की थैली लेकर चला गया । कई दुकानें देखने के बाद रामचद्र अब इधर आया । वह भिंडी वाले के पास गया । दुकान पर और कोई नहीं था ।

"भिंडीका दाम क्या है ?"

"एक आने की सात,दो आने की लोगे, तो पन्द्रह मिलेंगी ।" उस लड़के ने सिर ऊपर किए बिना ही लापरवाही से यह जवाब दिया । अचानक रामचन्द्र का स्वर सुना तो कृष्णमूर्तिने मुड़कर देखा : हाँ, वहाँ वही खड़ा था । उसको खडे खडे वहीं से देखने लगा, उसने जानना चाहा कि उसका मित्र व्यापार में कितना होशियार निकलता है ?

"भैया, जरा ठीक बताओ, दाम क्या है ?"

लड़के ने सिर ऊपर किया,

"अरे, आप हैं जी?"-उसने अचरज से पूछा ।

"अरे, तुम्हीं हो ?"-रामचन्द्र ने पूछा ।

"माफ कीजिये । मैं ने और कोई समझकर ऐसा जवाब दे दिया ।"

"चिंता नहीं, पहले दाम बताओ।"

उस लड़के ने जल्दी से पच्चीस भिंड़ियों को चुना और उन्हें रामचन्द्र के आगे बढ़ा दिया।

"यह क्यों ?"-रामचन्द्र ने पूछा ।

"आपको पच्चीस काफी हैं या और एक पच्चीस दूँ ?"

"पहले बताओ, कीमत कितनी ?"

"बेचता तो, आने को सात ही, पर मैं आप से व्यापार नहीं करता हूँ ."

"क्यों भाई ?"

"मैं आपको बेचता नहीं, स्नेह से देता हूँ ।"

"यह नहीं होगा, मैं भी दो आने की १५ ही लूँगा '

'जी नहीं, मैं आप से पैसा नहीं लूँगा ."

यह दृश्य कृष्णमूर्ति अपनी आँखों से देख रहा था । वह विश्वास कर नहीं सका कि यह वही लड़का है, जिसने अपने साथ उतना कड़ा व्यवहार किया था । वह ध्यान से सुन रहा था।

"अगर पैसा लेकर दोगे, तो लूँगा . वर्ना रख लो अपनी भिन्डियों को ।"

"नहीं नहीं ।" वह उठ कर खडा हो गया और जबरदस्ती थैली में भिन्डी डालदी ।

"अपने आग्रह पर मत जमे रहो, जरा मेरी बात सुनो। अगर तुम्हें पसन्द हो, तो जरा कम कीमत पर दे दो मैं ले लूंगा । पर मुफ्त में नहीं नहीं लूंगा ।"

"मैं आपसे एक कौड़ी भी स्वीकार कर नहीं सकता !"

"तो मैं भी एक भिण्डी नहीं लूंगा ।"

"यह क्यों जी ? मैं कोई सोना या चांदी तो देता नहीं । अपने अध्यापक को थोड़ी सी तरकारियाँ भी देने का मुझ विद्यार्थी को हक नहीं है ? इसे भी आप नहीं लेंगे क्या ?" लड़के के स्वर में विनीत प्रार्थना का भाव भरा था । रामचन्द्र चुप रहा ।

'अब ले लीजिये, सिर्फ बीस हैं, मैं पाँच रख लेता हूं

क्लास में बड़ी से बड़ी गलती करके, अध्यापक के दण्ड से बचने के लिये भी उसने रामचन्द्र से कभी इतनी नम्रता से प्रार्थना नहीं की थी । मजबूरन रामचन्द्र को भिंडी स्वीकार करना पड़ी, और वहां से चल दिया कृष्णमूर्ति अपने मित्र की ओर बढ़ा । दोनों मित्र घर की ओर चल पड़े ।

"वह भिंडीवाला छोकरा कौन है ?"—कृष्णमूर्ति ने पूछा ।

रामचन्द्र बोला:—

'वह मेरा एक स्टूडन्ट है । जब कभी मैं मार्केट आता हूँ तो हमेशा यही हाल होता है । वह हठ से मुझे विवश कर देता है । कोई न कोई तरकारी मुझे दे ही देता है और मेरे लेने के बाद ही वह जाने देता है । इससे डरकर मैं अक्सर उसकी दुकान के पास ही नहीं जाता हूँ, पर आज भिंडियों के आकर्षण से चला गया और फंस गया । तुमने उसका प्रेम देखा न ? तुमने पुत्र-वांछा, मातृ-वात्सल्य, भ्रातृभाव, पतिभक्ति आदि के बारे में बहुत कुछ सुना होगा; पर विद्यार्थी की अपने अध्यापक के प्रति कैसी भक्ति होती है, शायद नहीं जानते । वह सिर्फ अध्यापकों को ही प्राप्त है, वही जान सकते हैं । तुम भी बड़े अफसर हो; पर अपनी आफिसरी में तुम्हें कहीं इस तरह का स्नेह देखने का अवसर मिला है ? उस लड़के का मुझ पर कितना पितृ-स्नेह है ? आखिर मैं कोई त्याग या सेवा नहीं करता हूँ; वेतन लेकर ही सिखाता हूँ; पर वह बिना पैसे लिये, तरकारियां दिये बिना नहीं छोड़ता। तुम्हीं बतलाओ यह स्नेह भाव तुम्हें भी कहीं दिखाई पड़ा है ?'

कृष्णमूर्ति—चुप था ।

"सुन्दर काण्ड का आध्यात्मिक महत्व"

श्री रामचन्द्र गौड एम० ए०, बी० टी०, विज्ञानरत्न

रामायण एक विस्तृत तथा अद्वितीय उपमा अलंकार का उदाहरण है भगवान राम के इतिहास का सहारा लेकर आदि शक्ति की सांसारिक लीला का वर्णन मनोरंजक रूप से किया गया है। वही आदि शक्ति अपने आंशिक रूप में मानव संसार की सृष्टि करती है। वही पुरुष तथा स्त्री होकर भौतिक संसार की नश्वरता को सीमित स्थायित्व प्रदान करती है। रामायण उसी आदि शक्ति की सांसारिक लीला है। रामायण उसके जीवन के अनुभवों का उल्लेख है। रामायण मानवी संसार के धोखे का स्पष्टीकरण है। रामायण भौतिक संसार के सत्य की परख है। रामायण " मैं कौन हूं " इसका क्रमबद्ध वर्णन है। वह शारीरिक मनोभावों का सात्विक वृत्तियों के सम्मुख महाभारत है। उसकी विजय आज भी विजयादशमी के नाम से प्रसिद्ध है। यह आदिशक्ति के आंशिक रूप आत्मा का पूर्ण परिचय है। यह दुःखियों का सहारा है। यह रोते हुवों को हंसाने वाला एक अनंत ज्ञान भंडार है। यह निर्बलों की अनन्त शक्ति है। यह विपत्ति के समय आदर्श मित्र है। यह मानवों को देवता बनानेवाला एक सरल तथा विस्तीर्ण पथ है। यह मानवता का स्वच्छ दर्पण है यह प्रेम का प्रशस्त मार्ग है। यह आदि शक्ति की सफल खोज यात्रा है। यह जीवन का मर्म है, उसका उद्देश्य है। ऐसे महत्व पूर्ण प्रंथ के सुन्दर कांड के सौन्दर्य का उल्लेख करना इस लेख का हेतु है।

सब से पहिले हमें लंका के रहस्य का उद्घाटन करना है। प्रत्येक मानव शरीर ही लंका है। यह भवसागर में स्थित लंका की स्वर्णमयी झलक इस शरीर की कांति है। लंका के द्वार इस शरीर के द्वार हैं। नसों ने राजमार्गों का स्थान प्रहण किया। लाल तथा सफेद कीटाणु राक्षसों की सेना है। अशोक वाटिका मानव हृदय है। हृदय को यथार्थ रूप से समझने वाले शोक से परे हैं। यही अशोक वृक्षों की पंक्ति है। उसमें निवास करने वाली सीता आत्मा है। उसका कारावास आत्मा का सांसारिक बंधन है। लंका के भव्य भवन इस शरीर के महत्वपूर्ण भाग हैं। अब हमें यह विचार करना है रावण का वंश किस प्रकार इस शरीर में रहता है।

रावण इस शरीर का मन है। यह मानव से दानव बनाता है। इस मन की करामात ने ही ब्राह्मण रावण को राक्षसी रूप प्रदान किया। रावण के दश सिर तथा बीस भुजाओं का चित्र भारतीय चित्रकारों का भाव प्रदर्शन क्षेत्र में अद्वितीय चित्रण है। उसके दस शिर दसों इन्द्रियों की मादकता की प्रथक प्रथक अभिव्यक्तियां हैं। उसकी बीस भुजायें पाप कृत्यों का स्पष्टीकरण हैं। यही कारण है मन रूपी रावण शरीर रूपी लंका का राजा हुआ। मन के संकल्प संसार को बना कर बिगाड़ने की शक्ति से संपन्न है। यही कारण है कि रावण ने समस्त देवताओं को अपने वश में कर लिया था। पर आदि शक्ति का आंशिक रूप मूल शक्ति से पार न पासका। वह पार न पा सका आदि शक्ति के पूर्ण उपासकों से भी क्योंकि राम का प्रत्येक भक्त वास्तविकता के नाते राम होता है। यही कारण है कि वह श्वेत दीप की निवासी स्त्रियों से हार कर लौटा था। यही कारण है कि उसे कपिल मुनि के आश्रम में घोड़ों के स्थान पर बांध दिया था।

मानव कार्यों की संचालन शक्ति का निवास मस्तक है। यही कारण है कि लंका का मुख्य भाग

थड रूपी पर्वत के ऊपर बताया गया है। यह रावण का राजमहल है, उसका राजसिंहासन है, उसके मंत्रियों का निवास है। विभीषण मानव संसार की सद्बुद्धि है। मेघनाथ कुबुद्धि की सांसारिक तथा मायावी लीला है। प्रत्येक कार्य मानव मस्तिष्क पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। ये एकत्रित होते रहते हैं। वर्षों सोते हैं न जाने कब ज्वालामुखी का विस्फोट करने के लिये। यही मानव मस्तिष्क का कुम्भकरण है। इसकी निद्रा तथा कार्यों की भयंकरता सर्व प्रसिद्ध है।

संसार भवसागर है। यही लंका का पयोनिधि है। पर मनुष्यों को तो कोई समुद्र दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐसा क्यों? भारतीय चित्रकला के आधार पर पानी विचारों का द्योतक है। अतएव यह सिद्ध हुआ मानव शरीर रूपी लंका विचार सागर का टापू है। संसार अनन्त कल्पनाओं का नाटक है। सागर अपार लहरों का विलास है। सागर के अगणित जीवों की लीला तथा मानव सृष्टि का चलता फिरता चित्रपट है। मच्छली को बड़ी मच्छी खा जाती है। उन्हें घढियाल खा जाते हैं। उनका काल कोई और है। अर्थात् सबल निर्बलों के भक्षक हैं। सागर के जीव जंतुओं का निवास स्थल निर्णय करना कठिन है। समस्त समुद्र ही उनका निवास है। मनुष्य भी इसी स्थिति में है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" मानव सिद्धांत हैं। जल की अपार राशी विचारों की गहनता है। सागर का बाह्य दृश्य भौतिक संसार का मूक नाटक है। निर्दयी किनारे की चट्टानों पर सुन्दर लहरें टकरा कर माथा पटक पटक कर नष्ट होती हैं। फिर बनतीं हैं, फिर खेलती हैं और फिर विनाश को प्राप्त होती हैं। यही क्रम मानव विचार वीथियों का है। यही क्रम मानव जीवन के जन्म जन्मांतरों का है। यही क्रम मानवी अवस्थाओं का है। यही भिखारी के सिर पर ताज का रहस्य है। यही महान शक्तियों के पतन की घोषणा हैं। यह मानव-शरीर का अंतरनाद है। समुद्र के ज्वार भाटे यहां चंद्रमुखियों के दुःखान्त नाटक हैं। महान लहरों की टक्करें यहां साम्प्रदायिकता का तांडव नृत्य है। संसार की निःसारता नदीश के जल की कटुता है, उसका खारापन है। समुद्र के किनारे की सुखद दुनियाँ उसी समय तक हरीभरी हैं। जब तक हम समुद्र में नहीं पड़ते। बालकों का स्वाग यौवनावस्था की मस्तानी राग अधेड़ होने पर न जाने कहां चली जाती है। समुद्र नदीश कहलाता है।

सागर का ऊपरी भाग संसार का वाह्य नाटक है। उसका मध्य भाग संसार की वास्तविकता है। उसकी तलेहटी रत्नों से परिपूर्ण है। हम संसार की दैनिक घटनाओं को देखते हैं। उन पर विचार करते हैं तो हमें उनकी विषमता का पता लग जाता है। यौवनावस्था में हम सागर के मध्य भाग में रहते हैं। दुःखी, छटपटाते, पश्चाताप से पूर्ण मानव की अवस्था उसकी अधेड़ आयु में प्राप्त होती है। संसार की ठोकरें उसे संसार में वैराग्य भाव प्राप्त होते हैं। इसके पश्चात भी वह पथभ्रष्ट हो जाता है। सतत प्रयत्नों पर उसे भक्तों के दर्शन होते हैं। उनके सहारे वह अंतरमुखी होकर आत्मा की ओर अग्रसर होता है। यही क्रम रामायण का है।

बालकांड आत्मा के जन्म, बालविनोद, क्रीडा तथा विवाह तक सीमित है। अयोध्याकांड यौवनावस्था की किलोल है। संसार की भयंकरता है। उसके मोह का दिग्दर्शन है। ममता का बंधन है। सत्य का भजन है, असत्य का त्याग है। अरण्यकांड मानव की वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सांसारिक टक्करों से हताश हो जाता है। आशाओं का अंत निराशाओं में होता है। दुःख का अपार सागर दृष्टिगोचर होता है। फिर वह कहने लगता है कि संसार असार है। उसका जीवन तटस्थ वृत्ति स्वीकार करता है। उसकी आशाओं का हराभरा बाग नष्ट होकर रूखेपन का स्वरूप अपना लेता है। यही अरण्यकांड है। इस निराशा का अंत भक्तों की प्राप्ति में होता है। उनकी सहायता प्राप्त होती है। मनुष्य स्वार्थ की बुद्धि कम हो जाती है। वह परमार्थ का भक्त हो जाता है।

उपर्युक्त अवस्था तक मनुष्य पूर्ण सांसारिक है। वह संसार में रहता है। सांसारिक द्वन्द्वों का भाजन बनता है। इसी अवस्था में एक समय ऐसा आता है कि समस्त संसार उनका साथ छोड़ देता है। केवल शक्ति के अभाव उनके स्वार्थों की न्यूनता के कारण। मित्र शत्रु में बदल जाते हैं। जाति वाले प्रतिशोध के मतवाले बन जाते हैं। अपने पराये हो जाते हैं। सेवकों में लुटेरे छिपे रहते हैं। संतानों में इच्छाओं का मतवालापन रहता है।

समाज भी दुधारी तलवार के वार सामाजिक कार्यों के समय बताता है। कहीं विज्ञापनों का जोर है। कहीं अपमान की घोषणा पर भाग जाने का आतंक ही है। कहीं पुराने खबीसों की अपमानित करने की गुप्त तथा असामयिक योजनायें हैं। कहीं अपना सम्मान सदैव के लिये जमाने के लिये सामयिक आर्थिक सहायता है। पर शेष जीवन भर चुप रहना उसका एक मात्र मंत्र है। कहीं दहेज का भयंकर स्वार्थ है। कहीं भोजन की लालसा में व्यक्तिगत विनाश है। ऐसी बातों से मनुष्य ऊब जाता है। वह संसार से विमुख है। यही आध्यात्मवाद का श्रीगणेश है। बस यहीं से सुन्दर कांड प्रारंभ होता है। वह भक्त की आत्मिक खोज है। भक्त हनुमान हैं। उनको सीता की खोज है। वह शाब्दिक प्रेरणाओं का अन्त है। वह अनुभूति का प्रारंभ है। गूंगे के गुड स्वाद की आत्मिक अभिव्यक्ति है।

रामचन्द्र जी आदि शक्ति हैं। वे नारायण रूप हैं। यह सर्व मान्य सत्य है। सांसारिक प्रलोभनों के तीव्र आकर्षण के सम्मुख मानव बुद्धि परास्त हो जाती है। वह वर्तमान सौन्दर्य की पुजारिन है। भविष्य का उसे पता तक नहीं। वह व्यक्ति गत सीमा तक सीमित है। उसका क्षेत्र इन चर्म चक्षुओं का प्रमाद तक निहित है। वह सांसारिक, घटनाओं के अनुभूति पर भविष्य का सीमित निर्माण है। ईश्वर घटनायें उसकी शक्ति के परे हैं। वह प्रतिक्षण इस नश्वर काया में होने वाले परिवर्तनों से अपरिचित है। वह संसार तूफानों के विश्लेषण में कुंठित है। वह मानवी सांसारिक मृदुता के परे कटुता को संूघने में असमर्थ है। वह संसार की भूल भूलैयाँ में अपने सच्चे मार्ग का पता लगाने में विफल है। यहीं मानवी लीला का अन्त है। यही निराशा का अन्तिम छोर है। यही दुःख सागर का एक किनारा है। यही सांसारिक सफलताओं का अनंत विलाप है। इसके आगे जाना मानवी शक्तियों के परे हैं। इस सागर में मल्लाह की आवश्यकता है। उसका मार्ग निर्देश सच्चे मार्ग का संकेत है। वह मल्लाह, वह नाविक, वह खिबैया रामचन्द्र की कृपा में तिल की ओट पहाड के रूप में छिपा है। तुलसी ने राम कृपा की दुहाई अनेकों स्थान पर दी है। राम कृपा ही भक्त का सर्वस्व है। वही उसकी खोजका प्रारंभ है। कहा भी है। "बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता" ॥ यही कारण है कि हनुमान जी को रामचन्द्र जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उन्हें अँगूठी दी गई। यह हृदय का निवास है। उसका आकार है। अशोक वाटिका का स्वरूप है। उसमें राम नाम संसार के सन्चालन करने वाली महान शक्ति का आदेश है। आत्मा को महान परमात्मा का परिचय है। संसार की भंयकरता में निर्भयता अमिट आदेश है। इस आदेश का पालन ही सुन्दरकांड की विभूति है।

हरि कृपा से हनुमान परिपूर्ण हैं क्यों? वे वानरों से क्यों युक्त हैं? वे सर्व श्रेष्ठ क्यों हैं? इन प्रश्नों का विवेचन इस स्थान पर आवश्यक है। नर के अर्थ में समस्त संसार के मनुष्यों का समावेश है। वा शब्द विशेषता से सम्पन्न है अतएव वानर शब्द का अर्थ उन मनुष्यों से है जो साधारण मानवी सांसारिकता से परे हैं। अतएव वानर वे मनुष्य हैं जो स्वार्थ से परे हैं। वानर वे हैं जो मानव शरीर के बंधनों से मुक्त हैं। वे मानव शरीर के नाते पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग से बाहर है। वे ममता के भयंकर पाश के लिए कुठाराघात हैं। वे अहंकार के बादलों के लिये वायु का तीव्र वेग हैं। वे अज्ञानांधकार के सूर्य हैं। वे संसार के निर्लेप खाती हैं। सत्य के पुजारी हैं। यही कारण है उन्हें मनुष्य

रूप न बतलाकर वानर रूप दिया गया है । यह तो वानर शब्द की व्याख्या हुई पर पशुओं में वानर और रींछ ही क्यों बनाया। सांसारिक मानवता का तिरस्कार है।

माया समस्त संसार को नचाती है। तुलसी तीन प्रकार के नाच प्रिय हैं। उसमें मर्कट का नाच प्रसिद्ध है। बंदर में अनेक प्रकार के दुर्गुण होते हुए भी वह स्वामी भक्त होता है। यही उसका गुण है। इस प्रकार वानर सुग्रीव के साथी हैं उनका स्वर्ण संसार लुट चुका है। उनका राज्य नष्ट हो चुका है उनके नेता अपनी स्त्री से वंचित हो चुका है । सुग्रीव का ममत्व समाप्त हो चुका है । वह प्रेम की रीति को साक्षात अपनी आंखों से देख चुका । है। वह और उसके साथी संसार से विमुख हो निराश्रय होकर शाप सम्पन्न स्थान में सुरक्षित हैं । राम भी सीता के वियोग में त्रस्त हैं। सुग्रीव मिलन दुःखियों का मेल है संसार की वास्तविकता का भन्डाफोड है। आत्मा के खोजियों का सलाप है। इन बानरों में हनुमान को क्यों सर्व श्रेष्ठ माना गया ? हनुमान शब्द में दो शब्द हैं- हनु, और मान। इनका अर्थ यह है कि हनुमान वे हैं जिन्होंने अपने मान को जडा मूल से उखाड कर फेंक दियाहै। ये "विद्या ददाति विनयं"केविनीत्तम रूप हैं। यहाँ पर गीता के "मानापमानयो स्तुल्यो" अर्थात मान और अपमान में समान रहने का अकाटय आदेश का ज्वलंत उदाहरण है। जो मनुष्य इस श्रेणी में पहुंच सकते हों वे हनुमान जी का साक्षातकार हैं।

वानरों का सांसारिक रूप बाली के समुदाय में बतलाया गया है। राजा का दर्शन प्रजा का वर्णन होता है। इंद्रिय लोलुपता तारा के ग्रहण में छिपी है। अहंकार की गहनता बाली के बल वर्णन में स्पष्ट है। उसका राज्य ममता का राज्य है। माया का खेल है। अहंकार का स्वराज्य है। व्यक्ति गत बल की अभिव्यक्ति है। रावण जैसे राक्षस की विजय में दर्प का संदेश है रावण को कांख रखने में मन की राक्षसी लीलाओं का हाथों द्वारा संक्रमण है। यही कारण है कि असत्य, अथवा क्षण भंगुर बाली का विनाश हुआ। सुग्रीव की मित्रता हुई।

हनुमानजी सीताजी की खोज में बानरों के साथ प्रस्थान करते हैं। यही संतों का समागम है। इन हजारों संतों में राम का आदर्श भक्त एकाध ही होता है। श्रवण, कीर्तन इत्यादि सब होते हैं पर वास्तविकता किसी ही व्यक्ति के भाग्य में होती है। ये भी जीभ के स्वाद में पथ भ्रष्ट होते हैं। शरीर के भक्त होकर मौत से डरते हैं। उसको चिरस्थायी बनाने का विफल प्रयत्न करते हैं। आनंद प्राप्त होते हैं। पर असली व्यक्ति तो राम से मिलाकर मुक्ति का लाभ लेते हैं। नकली फिर भी गीध रूपी काल से डरते हैं। समुद्र के किनारे अपने सांसारिक हानि लाभ पर विचार करते हैं। मृत्यु से डरते हैं। यह समुद्र किनारे का दृश्य है।

इतने बंदरों में केवल हनुमानजी समुद्र लांघने को तैयार होते हैं। वह राम नाम का स्मरण कर राम के प्रताप के सहारे। मैं कह चुका हूं कि सागर भव सागर है। अब इसे पार करना है। हनुमान जी तैयार हैं। प्रस्थान के समय "सुरसा" नाम की नागों की माता इन की परीक्षा के लिये आती है। कथा भाग में यह बताया गया है जितना मुख सुरसा ने बनाया उससे दुगना मुख हनुमान जी ने बनाया। अंत में मच्छर बनकर निकल गये। परिणाम में उनको प्रमाण पत्र मिला:"……… । मैंने तेरी बुद्धि का पता लगा लिया। तू अपने कार्य में सफल होगा" इस अचंभे को हमें समझना है। यहां हनुमान जी भक्त के रूप में प्रस्तुत हैं वे आत्मा के खोजने में तत्पर हैं-भवसागर पार करने के लिये आतुर हैं। देवता भी ऐसे मूर्ख नहीं जो भक्तों को बिना परीक्षा के अपनालें। यात्रा के श्रीगणेश में ही हनुमान जी की परीक्षा होती है-अहं भाव से परे होना ही भक्ति अथवा ज्ञान मार्ग की प्रथम सीढी है। हनुमान जी तथा सुरसा ने लम्बे चौडे मुंह बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य इस संसार में अपने को कर्ता मानता ही और कर्तृत्व के अभिमान से

युक्त है उसे संसार में सदैव हार ही खाकर अपमानित होना पड़ेगा-अपार पश्चात्तापका पात्र बननापड़ेगा, क्योंकि इस संसार में सेर का सवा सेर की प्रणाली आदि काल से चली आई है। यदि इस संसार से मुक्त होना हो, यदि इस संसार में सुखपूर्वक रहना हो तो मनुष्य मात्र को यह चाहिये कि वह अपनी क्षणभंगुर वास्तविकता को भूलकर अपने को एक छोटा व्यक्ति मान कर चले। यही हनुमान जी के मच्छर बनकर निकल जाने का हेतु है। जिस प्रकार हनुमान जी अपने वानर रूप को भूल गये उसी प्रकार मनुष्यों को अपने स्त्री तथा पुरुष रूप से परे हो जाना चाहिये। उन्हें सांसारिक द्वन्दों में समानता प्राप्त होना चाहिये। वे अपने सूक्ष्मतम रूप आत्मा के भक्त होने चाहिये। उसका लाभ ही लाभ है। उसकी हानि ही सब प्रकार की हानि है। उसपर ही सांसारिक समस्त हानि लाभ न्यौछावर है।

इसके पश्चात् हनुमानजी भवसागर को पार करना प्रारंभ करते हैं। अर्थात् भक्त संसार को छोड़कर ईश्वरभक्ति में लीन होना चाहता है। ऐसा करने में जो बाधायें उपस्थित होसकती हैं उनका दिग्दर्शन हनुमान जी की समुद्रयात्रा में किया गया है। इन परीक्षाओं का अब हम क्रमशः वर्णन करेंगें।

सर्व प्रथम हमे सिंहगांका नाम की राक्षसी के दर्शन होते हैं। इसमें विशेषता यह है कि यह आकाश में उड़ते हुवे जीव पक्षियों, तथा अन्य जीवों को समुद्र में पड़ी २ पकड़ लिया करती थी। उसके हाथों का भी पता नहीं लगता था और वह दिखाई भी नहीं देती थी। यह इस बात का प्रतीक है कि स्त्री का सांसारिक रूप इस महान यात्रा में सबसे बडी बाधा है। स्त्री ममता रूपी वृक्ष का बीज है। स्त्री इन्द्रिय लोलुपता के लिये तीव्र आकर्षण की एक शक्ति है। स्त्री संसार रूपी जाल की एक मकडी है वह संसार के बंधन रूपी स्वर्ण की बेडियों का श्री गणेश है। इसके बंधन में एक विशेषता यह है कि यह आदि में सुखपूर्ण, मध्य में विकलता, तथा अन्त में दुखदाई होता है। मनुष्य प्रायः इस बंधन से मुक्त होने में कभी कभी अपने कर्त्तव्यों का भास लेकर भी इस बंधन में पड़ा रहता है। वह विचारता है कि मेरे अभाव में इनका क्या होगा। इस प्रश्न का उत्तर यही है कि तुम जब संसार में नहीं थे अथवा तुम्हारे देहावसान हो जाने के पश्चात् संसार की स्थिति क्या थी। वह अपनी निर्धारित गति से भूत काल में चलता रहा, अब चल रहा है, और भविष्य में चलता रहेगा। उसके चलने में किसी व्यक्ति का कोई महत्व नहीं। इस वार्ता में छाया शब्द भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वह स्त्री की आकर्षण शक्ति का द्योतक है। इनके सौन्दर्य की मादकता दूर से ही मनुष्यों को आकर्षित कर लेती है। कुछ वस्तुओं के खाने से मादकता प्राप्त होती है। अन्य वस्तुओं के ग्रहण करने से मनुष्य की बुद्धि विचलित होती है। शेष वस्तुएं दर्शन मात्र से मनुष्य को पथ भ्रष्ट कर देती है। पर यह अवस्था क्षण-भंगुर रहती है। इसके विपरीत यह सौंदर्य उपासना स्मरण मात्र में भी आंधी के प्रभाव से कम नहीं। यहां तक कि इसकी गति स्वप्न की सीमा में भी अपनी भयंकर मादकता के कारण मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट करके उसे कामान्ध बना कर ही छोडती है। यही मंगलामुखीयों के रूप में होकर संसार के पतन का कारण हुई। यही अप्सराओं के रूप में अनेकों तपस्वियों की तपस्या का आधार बनी। यही विमाता के रूप में अनेकों कोमल किशोर रूपी फूलों के लिये तुषारापात बनी। यही आज कलियुग के जमाने में (Promation) पाने की पतित लोगों के दिलों में एक युक्ति बनी। अतएव इस स्त्री संबंधी मोह को नष्ट करते हुए हमें आगे बढना है।

इसके पश्चात् समुद्र की आज्ञानुसार मेनाक पर्वत् अपने मोहक रूप में हनुमान जी को विश्रान्ति लेने की प्रार्थना करता है। हनुमान जी उसकी प्रार्थना को ठुकरा देते हैं। राम के भक्त में जल के समान अपने इष्टदेव समुद्र रूपी आत्मा से मिलने की व्याकुलता होनी चाहिये। उसके दौडने का यही रहस्य है, उसके पाला फोडने का यही लक्ष्य है; उसके तूफानकी भंयकरता का यही उद्देश्य है, उसकी पवित्रता का यही आधार है। ठीक यही बात भक्त के लिये भी है। राम के भक्त को संसार में विश्राम कहां ? दारिद्रय के पहाड से टकराने में

अपना अहोभाग्य समझता है। दारिद्र्य के अभिशापों में अपने आध्यात्म मार्ग पर दृढ रहने की आवश्यक सामग्री मानता है। संसार का कोई आराम उसे खींच नहीं सकता। यहां तक कि इस शरीर की थकान भी इस दौड में महत्वहीन रहती है। शारीरिक सुख पतन के कारण हैं। ऐसा समझकर वह उनका पूर्ण परित्याग करता है। संपत्ति का आकर्षण ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार चूहे को मारने के लिये बिल्ली फिक्र में पडी रहती है। भोग रोग के कारण हैं। भोग इच्छा के रूप में जन्म जन्मान्तर के ब्रह्मा है स्थावर संपत्ति सामयिक उलझनों का कारण है- बुढापे में गले का हार है- भयंकर लोभ के आवेश में वह संसार का विनाश है। मनुष्यत्व का संपूर्ण ह्रास है अतएव हनुमानजी मेनाक पर्वत की प्रार्थना को अस्वीकार कर आगे बढे और समुद्र पार हो गये। अर्थात् मनुष्य के इन चर्म चक्षुओं से जो बाह्य जगत हमें दिखाई पडता है उससे हमारे भक्त अब विमुख होगये हैं और उनकी बहिर्चक्षुस का अन्त होगया है। वे अब केवल संसार के दर्शक-साक्षी रह गये हैं।

अब हनुमानजी अन्तर्मुखी होकर अपने शरीर में आत्मा की खोज प्रारम्भ करते हैं। लंका रूपी संसार की गलियो में घूमें, इस बहाने उन्होंने अपने शारीरिक बल को नापा और यह पता लगाया कि मनुष्य का पाशविक बल तरुणावस्था की एक आंधी है, भोगों का आमंत्रण है। अपार अहंकार की सृष्टि है, निर्बलों पर बलात्कार है

सांसारिक सुखों की भी छीना झपटी है· शारीरिक शक्तियों का पूर्ण प्रदर्शन है- मानसिक शक्तियों का संपूर्ण दिवाला है- कलह की रमणस्थली है· इससे आगे बढे तो वहां अनेकों राक्षसों को देखा-यह शरीर के दुर्गुण हैं- इनसे भी ये मोहित न हुवे। अब रावण के मन्दिर को देखा, उसकी भव्यता का अनुभव किया मन के सुन्दर संकल्पों का भव्य रूप देखा, कल्पनाओं के सुन्दर मन्दिर देखे। विलासिता की समस्त सामग्रियां देखी मनकी अपूर्व शक्ति का अनुभव किया। वरुण देव की दासता देखी, अग्नि देव की करबद्ध सेवा देखी। काल की, रावण की तीव्र भृकुटियों के परिवर्तन पर इच्छा पूर्वक आकर्षण देखा-पर इससे भी वे मोहित न हुवे। घूमते घामते विभीषण से मिले और वहां कुछ उन्हें विश्वास प्राप्त हुआ। अर्थात् सदबुद्धि द्वारा उन्हें विश्रान्ति प्राप्त हुई। भगवद्भक्तों से मिलकर उनके छलनी बने हुवे हृदय को उपयुक्त औषधि की प्राप्ति हुई। ससार की विषमता के कारण हृदय की गरम गरम ज्वालाओं में अपनी तीव्रता को त्याग कर अब शान्ति प्राप्त की। सच भी है कि भगवद्भक्त भगवान से भी बडे होते हैं। इसी कारण सज्जनों की संगति का आदेश भगवान राम ने स्वयं किया है। रामचन्द्रजी स्वयं सज्जनों की परिभाषा देते हुवे कहते हैं कि—

साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः।
दान्ताः प्रशान्ता-स्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलं कामना।

अर्थात संसार में साधुसंग ही मोक्ष का मुख्य कारण कहा गया है। संसार में जो लोग सम्पद्, विपद् में समान चित्त, स्पृहारहित, पुत्र वित्तादि की ईषणाओं से रहित, इंन्द्रियों का दमन करने वाले, शान्तचित्त आपके भक्त, संपूर्ण कामनाओं से शून्य, इष्ट तथा अनिष्ट की प्राप्ति में समान रहने वाले, संगहीन, समस्त कर्मों का त्याग करने वाले, सर्वदा ब्रह्मपरायण रहने वाले, यम आदि गुणों से संपन्न तथा जो कुछ मिल जाय उसी में संतुष्ट रहने वाले होते हैं वेही साधु कहलाते हैं। जिस समय ऐसे साधु पुरुषों का साथ होता है तो आपके कथा श्रवण में प्रेम हो जाता है। हे राम तदनन्तर आप सनातन पुरुष में भक्ति हो जाती है, तथा आपकी भक्ति हो जाने पर आपका स्फुट तथा प्रचुर ज्ञान प्राप्त होता है। यही चतुर जन सेवित मुक्ति का आद्यमार्ग है। अतः हे राघव ! आपमें मेरी सदा प्रेम लक्षणा बनी रहे और हे हरे ! मुझे अधिकतर आपके भक्तों का संग प्राप्त हो। इस प्रकार हनुमानजी ने सीता रूपी आत्मा का पता विभीषण से प्राप्त कर लिया।

[चुनाव का बाद मन्त्री बणणे की झूटी आशा लगाणे वाला एक सज्जन से
उनकी पत्नी पूछी री है:—]

बनाजी थोड़ी तनखा तो लइदो....

काँगरेस की जीत हुई जि कई बणी अपणी सरकार...
देस में बणी अपणी सरकार,

एल्या गेल्या चढइ गया ने तमज रिया बेकार ॥
बनाजी तमज रिया बेकार...

जेल तो तम बी जाता था,
खादी बी सदा वपरता था,

फिर मन्त्री बणणे को सपनो क्यों नी हुओ साकार ?
बात तो भोत फाँकता था,
डींग बी भारी हाँकता था,

फिर क्यों अबीतक छकड़ो जइने नी अइ मोटरकार ?
काल से चुलो नी बाळयो,
भूक से बुरो पड्यो पालो,

पियर से पैसा मँगइ मँगइ ने कदतक करूं संसार ?
बनाजी थोड़ी तनखा तो लइदो,
घान ने कपड़ो मँगवइ दो,

पेलाँ याँ को गाड़ो चलइ ने फिर करो देस उद्धार !
बनाजी, एसो करो संसार !

श्रीनिवास जोशी

मनोरंजन तथा व्यापार के लिये
मध्यभारत का पर्यटन कीजिये !

ऐतिहासिक स्थान—

ग्वालियर, उज्जैन, उदयगिरि, चन्देरी, महेश्वर, मांडू, धार, बाग, मन्दसौर,

सौन्दर्य स्थल—

शिवपुरी, इन्दौर, पातालपानी, महेश्वर, हरसी, मंडलेश्वर

चम्बल घाटी योजना—

सिंचन तथा विद्युत उत्पादन की बहुमुखी योजना जिसके द्वारा राज्य में सुख और समृद्धि की वृद्धि होगी। इस महत्वपूर्ण योजना को सफल बनाने के लिये अल्प बचत योजना में अपना सहयोग प्रदान कीजिये।

सामुदायिक तथा अन्य योजनाए
राजपुर, हरसी तथा आंतरी

उद्योग—

ग्वालियर चीनी कारखाना, ग्वालियर लेदर फेक्टरी, ग्वालियर इन्जीनियरिंग वर्क्स: जहां की बनी हुई वस्तुएं अपने टिकाऊ पन के लिये प्रसिद्ध हैं।

गृह उद्योग—

आकर्षक तथा मनोहर चन्देरी और महेश्वर की साड़ियां, चमड़े के मनोहर खिलौने और रंग बिरंगी लकड़ी की बनी चीजें,

इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन, महू, खरगौन, शिवपुरी, भेलसा रतलाम में स्थित एम्पोरियमों से सुन्दर और उपयोगी स्वदेशी वस्तुएं क्रय करके-

गृह उद्योग को संरक्षण प्रदान कीजिए !

टेलीफोन नम्बर ११
तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी विनोद मिल्स कम्पनी लि॰]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टैक्सटाइल मशीनरी पार्टस् आइल एन्जिनस, कृषि सम्बन्धी औजार, सी॰ आई॰ पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाइंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
विनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

Phone No. 48 Regd. No. J 93

महत्वपूर्ण सम्मतियां

"मैं विक्रम में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण ऐतिहासिक लेखों को बड़े चाव से पढ़ता हूँ। उनसे मेरी ज्ञानवृद्धि होती है। मेरा विश्वास है कि विक्रम अपने ढंग का अकेला मासिक है। आप उसके द्वारा हिन्दी के पाठकों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक-चेतना उद्बुद्ध करने का स्तुत्य प्रयत्न कर रहे हैं।"

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

* * *

"विक्रम अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं प्रगतिशील विचारधारा के लिए पत्र-जगत् में अपना विशेष स्थान रखता है। उसकी सम्पादकीय टिप्पणियों की स्पष्टता और विविधता उसकी अपनी चीज है।"

—'भारती' नागपुर

* * *

"आप जिस हृदयग्राही रूप में 'विक्रम' निकाल रहे हैं। उससे मैं आकर्षित होता हूं।"

—(डॉ०) वासुदेवशरण अग्रवाल

* * *

"जिसने भी विक्रम की संपादकीय टिप्पणियां पढ़ी हैं, वह इनकी स्पष्टवादिता और विद्वत्ता से प्रभावित हुए बिना न रहेगा। लेखों का चयन एवं संपादन भी उत्तम है जो पत्रिका को उच्च कोटि की पत्रिकाओं में अग्रणी स्थान दिला देते हैं।"

—'आजकल' दिल्ली

"विक्रम सांस्कृतिक स्तर पर सुन्दर ढंग से निकल रहा है, सम्पादकीय टिप्पणियाँ तो बड़ी विचारोत्तेजक होती हैं।"

राजबहादुरसिंह भू. पू. सम्पादक नवभारत टाइम

* * *

'विक्रम अपने विशेष सांस्कृतिक दृष्टिकोण, गवेषणात्मक एवं खोजपूर्ण लेखों तथा निर्भीक-विचारों के कारण हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के संसार में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। व्यास-उवाच में श्री व्यासजी की विविध समस्याओं पर प्रस्फुटित गंभीर-वाणी मननीय एवं कल्याण कारिणी हैं। उसमें सच्चाई है, ओज है, और है मर्म को स्पर्श करने की शक्ति।"

'वीणा' इन्दौर

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर उज्जैन।

५० ३८२६
२२/२११

विक्रम

गुरुकुल-पत्रिका

फाल्गुन २०१०

मा. १९५४

संचालक-सम्पादक
सूर्यनारायण व्यास

स्व० श्री गणेश शंकर 'विद्यार्थी'

२८ मई १९५४

मध्यभारत स्थापना दिवस

योजना ऋण में अपना भाग देकर राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति में भागीदार बनिये

सूचना विभाग मध्य भारत

शीघ्र ही प्रदर्शित होगी

अमर-ज्योत पिक्चर्स की

अनेक प्रसिद्ध कलाकारों से युक्त महान धार्मिक संगीत कलाकृति ।

★ महापूजा ★

अर्थात्, श्री सत्यनारायण की कथा

दिग्दर्शक	केमरा	गीत
शांतिकुमार	बाल जोगलेकर	रमेश गुप्त

संगीत—शंकरराव व्यास ★ अविनाश व्यास ★ मन्ना डे

कलाकारः-- रत्नमाला, अमीर कर्नाटकी, शशीकपूर, अनन्त मराठे, प्रेमअदीब, और नये सितारे— नैना व प्रेम प्रकाश

प्रादेशिक अधिकार के लिये लिखिये--

अमर ज्योत पिक्चर्स ३६१ वी. पी. रोड बम्बई ४

वार्षिक
६) रु.

विक्रम

एक अंक
॥=)

विषयानुक्रमणिका

		पृ. सं.
१ आई यह अरुणा सुकुमारी …	… श्री॰ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	
२ व्यास उवाच … …	… सम्पादकीय	… १–१६
३ सिद्धराज जयसिंह का न्याय …	… श्री वृन्दावनलालजी वर्मा	… १७–१९
४ अहिंसा की व्यावहारिक मान्यताएँ	… श्री पांडेय जगन्नाथ प्रसादसिंह	… १९–२१
५ कैलास मानसरोवर यात्रा …	… श्री ॐनारायण जी	… २२–२४
५ एक विक्रम कथा की फारस-यात्रा …	… श्री अगर चन्द नाहटा	… २५–२९
७ आगर के स्वर्गीय विनोदी कवि …	… श्री गणेशदत्त 'इन्द्र'	… ३०–३१
८ संत या श्रमिक से संत …	… श्री गुरु शरण भाई बी. ए.	… ३३–३३
९ दक्षिण मध्यभारत के आदिवासी के नृत्य गीत …	श्री इन्द्रजीत शर्मा	… ३४–३५
१० सुन्दर काण्ड का आध्यात्मिकरूप …	… श्री रामचंद्र गौड़ एम. ए. बी. टी विज्ञान रत्न	३६–४०
११ परिचय प्रवाह … …	…	… ४१–४४

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड

स्थापना १९४१

केवल १,५०,००० की पूंजी से प्रारम्भ की गई कम्पनी के पास आज २७, लाख से ऊपर के असेट्स हैं।

क्लेम्स पेड—५ लाख के ऊपर

पॉलिसी की शर्तें उदार हैं

संरक्षक

हिज़हाईनेस महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर

मध्यभारत के लिये चीफ एजेंटों की आवश्यकता है!

धननूर सरफिरोजशाह मेहता रोड
फोर्ट, बाम्बे।

विशेष जानकारी के लिए—श्री एच. एन.-
आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क
स्थापित करिये।

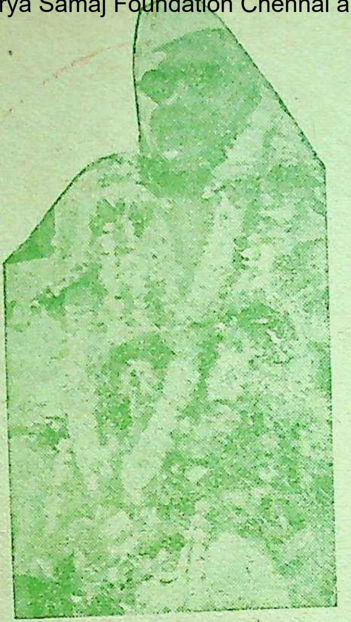

आई यह अरुणा सुकुमारी....!

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

रुन-झुन गुन गुन, रुन झुन गुन-गुन,
भ्रमरी पांजनियां गुंजारी।
तम-मन-प्राण-श्रवण ध्वनि नंदित,
आई यह अरुणा सुकुमारी।
वन-बन में कम्पन निष्पंदन,
भर-भर विचरा सनन् समीरण,
वंश-अवलियों के अन्तर से,
गूंजे नव-नव स्वागत के स्वन.
सिहर उठे जग के रज कण-कण,
पुलकित प्राण, खिल उठा चेतन.
जलज खिले, मानों अरुणाने
अपनी अँखियां सलज उघारी,
बजी भृंग-पाजनियां, आई,
ठुमुक-ठुमुक अरुणा सुकुमारी !
किरण मार्जनी से मृदुला ने
दूर किया वह नभ दुर्दम घन !
अरुण-अरुण निज कोमल कर से,
चमकाया अम्बर का आँगन !
लुप्त होचले ग्रह, तारक-गण
विहँसी सकल दिशाएँ मुद-मन,
अम्बर से अवनी तक लहरी,
अरुणा की सत रंगी सारी,
गगन-अटा से हँस मुसकाती
उतरी नव बाला सुकुमारी !
हसी मेदिनी; हँसे शैलगण,
तरुलतिकाएँ हँसी अकारण,
कलियाँ हंसी पर्ण, तृण हुलसे
गान कर उठे सब द्विज-चारण,
गूंजा मंत्र-छन्द-उच्चारण
पूर्ण हुआ तम-मौन निवारण
अनहद नाद मगन नभ-मण्डल,
नाद मगन सब गगन-विहारी,
तन मन-श्रवण निनादित करती,
आई यह अरुणा सुकुमारी !

मध्यभारत, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के [illegible] एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षाविभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम
उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खण्ड २] फाल्गुन सं० २०१० वि०, मार्च सन् १९५४ [अंक ५ पूर्ण सं० ८१

व्यास उवाच

मातृभाषा और राष्ट्रभाषा—

हम अपनी प्रिय सरिता-शिप्रा के प्रियतम-समीर से अनुप्राणित होते हैं, उसकी तरंगों से अपनी आत्मा को अनुरंजित आंदोलित अनुभव करते हैं, तो हमारी आत्मा गंगा के गौरव के प्रति अल्प नहीं होती, यमुना के पावन-प्रभाव को विस्मृत या उपेक्षित नहीं करती, न महासागर के सान्निध्य में जाकर उसकी महत्ता को अमान्य कर सकती है। माता के समादर, महत्व और प्रेम का मूल्य पत्नि की आत्मीयता और प्रीति से कम नहीं कूता जासकता।

हम राष्ट्रीय महत्व मानने वाले हैं, उसकी सर्वांगीण एकता के उपासक हैं, परन्तु इससे हमारी मातृभाषा मालवी के माधुर्य को उपेक्षित नहीं कर सकते। हमारी मातृ-भाषा का मोह राष्ट्र-भाषा के आदर को उत्कृष्ट बनाता है, प्रत्येक जन की अपनी माता के प्रति भक्ति उसकी मातृ-भूमि की भक्ति की कसौटी है। जो एक जननी का स्नेह-समादर नहीं संचित कर सकता वह जगज्जननी का किस बूते सन्मान साध्य कर सकता है। जो परिवार की सेवा-स्नेह-सद्भावना प्राप्त नहीं कर सकता, वह नगर प्रांत या देश को अपना मान कर कैसे स्नेह सद्भाव सेवा साध्य कर सकेगा? जो अपनों के प्रति ईमानदार नहीं, वह देश के प्रति ईमानदार नहीं रह सकता। घर वालों का गला घोटने वाला, पड़ोसी का पोषण नहीं कर सकता। अपनी सभ्यता, संस्कृति परंपरा से पराङ्मुख राष्ट्रीय सभ्यता-संस्कृति परंपरा का पालक बनने का दावा करें तो यह उसका निरा दम्भ है। यह ठीक है कि आत्म गौरव के लिए राष्ट्रीय-गौरव को रहन धर देने वाला मानव, मानव नहीं, मातृभाषा के झूँठे मोह में पड़ कर राष्ट्रभाषा और उसकी एकता को भंग करने वाला द्रोही है। किंतु अपनी

मातृभाषा के प्रति उचित ममत्व रख कर, राष्ट्र-भाषा को उचित सन्मान देना, उसे अपनी भाषा की शब्द-शक्ति से सशक्त-समृद्ध बनाना राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की योग्य से सेवा ही है। मातृभाषा पारिवारिक प्रेम की तरह मधुर है, तो राष्ट्रभाषा बहुधा विभक्त कुटुम्ब की स्थिर एकता का प्रतीक है। जो लोग मातृभाषा की सेवा प्रगति-प्रतिष्ठा से चौंक कर राष्ट्रभाषा के अहित की आशंका करते हैं, वे भ्रम में है। आत्मा को बिना जाने परमात्मा के पास पहुंचना चाहते हैं। मातृभाषा हमारे प्रांत का पावन तीर्थ है तो, राष्ट्रभाषा देश-गंगा की पवित्र धारा है, किसी प्रदेश को राजधानी, या शासन की उन्नति प्रतिष्ठा प्रगति से केन्द्र की ही उन्नति समृद्धि सूचित होती है। प्रांत की प्रगति को दबाकर, या साशंक दृष्टि से देख कर केन्द्र कैसे अपने को समुन्नत सोच सकता है? राष्ट्रभाषा महा सागर है तो प्रादेशिक भाषाएँ उसकी पूरक सरिताएँ हैं, जो उसमें मिल कर उसकी महानता और आत्मैक्यता की भावना की प्रतीक हो जाती है। सागर सरिता-संगम के कारण विशाल है, और सरिताएँ सागर से सुदूर स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी उसी की चिर संगिनी है, एक दूसरे से सम्पन्न समृद्ध है। सरिताएँ अपने प्रदेश का समस्त वारि-विस्तार समेट कर सादर सागर को (समर्पित कर) महानता प्रदान करती है, सागर को सरिता की श्री समृद्धि से क्यों आशंका का उद्भव हो?

यही स्थिति राष्ट्रभाषा और मातृभाषा की है। एक दूसरे की पूरक है, सम्बल है, मातृ भाषा स्नेहमयी माता की ममता की तरह मधुर है, और राष्ट्र भाषा पिता के प्रेम की तरह निर्मल। एक स्नेह दूसरे का पूरक है, जो जन गणना में राष्ट्र भाषा को अपनी बतलाते हैं, ये पारिवारिक एकता की सूचना देते है, किंतु उससे उनका मातृभाषा सम्बन्धी पारिवारिक मोह निरस्त नहीं होजाता। वास्तव में मातृभाषा मां की भाषा है, वह पिता की व्यावहारिक, भाषा के पलटने पर भी परिवार से प्रथक नहीं बनती। पिता व्यावहारिक प्राणी होने के कारण वह राष्ट्र-भाषा भाषी होकर भी मातृभाषा से मुंह नहीं मोड सकता। मातृ-भाषा के महत्व में ही राष्ट्र भाषा का गौरव है, मातृ भाषा राष्ट्र भाषा का बल है। माता ही पिता का गौरव बढ़ा सकती है, माता के साम्मान से ही पिता का मान है।

कुछ अज्ञात कवियों के अभिलेख।

जिन विद्वान कविकोविदों ने ग्रन्थ रचना कर इस देश में साहित्य-श्री की वृद्धि की है, उनमें से अधिकांश विद्वानों ने अपनी नम्रता और प्रचार पराङ्मुखता के कारण अपना नामोल्लेख नहीं किया, इस कारण हम उनसे अब तक अपरिचित बने रहे हैं। भारतीय प्राचीन शालीनता और परम्परा की यह विशेषता आज के युग में अपने निर्माताओं से हमें अज्ञ बनाए हुए हैं। चाहे हम कालिदास, भास, बाण, भोज, भर्तृहरि आदि से परिचित हैं, परन्तु ऐसे अनेक अज्ञात नामा कवि कोविद हैं जिनकी केवल रचनाएँ ही हमें मुग्ध बनाकर कालिदास की रस-माधुरी का पान करवाती रहती हैं। अनेक शिला-लेखों, और ताम्रपत्रोंके काव्य-सौंदर्य से हमें उनकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है, जिनको हम नाम-धाम से जानते भी नहीं हैं। परमार वंश के अनेक ताम्र-शासन उपलब्ध हैं, और उनकी रचना-सौष्ठव से हमारा मन आनन्दित हो उठता हैं, किन्तु उनके निर्माता को जानने के लिए हमारे मन की उत्सुकता शमन नहीं हो पाती, न तो उनकी ग्रन्थाकार रचना अन्यत्र उपलब्ध है, न यह जानने का साधन ही कि जिनकी यह रचना है, वही ताम्र या शिलोत्कीर्ण कला का कवि है। देश में यत्र-तत्र ऐसा प्रस्तरांकित या, ताम्र शासनोंल्लिखित-साहित्य बिखरा पड़ा है। उन पर किसी शासक या दाता का ही उल्लेख है, निर्माता का नहीं। मन्दसोर, चित्तोड़ या भोजशाला के शिलोत्कीर्ण साहित्य के निर्माताओं ने अवश्य अपने नाम दिये हैं, उनसे उनकी प्रौढ़ता और सामर्थ्य का पता चल पाता है। उनके कोई स्वतन्त्र-ग्रन्थ नहीं है, उन शिलोत्कर्ण रचनाओं को पढ़कर यह अनुभव होता है कि वे किसी भास, बाण भवभूति से कम कुशल नहीं थे, किंतु क्या ये कवि इतनी ही रचना कर रह गए होंगे? वत्सभट्टि, वासुल, मदन आदि की और रचना या तो है नहीं या काल के कराल गाल में कहीं समा गई है।

हाल ही में नागरी-प्रचारणी में अभिलेखों के काव्य-सौंदर्य पर प्रसिद्ध पुरातत्व विद् श्री वाजपेयीजी ने प्रकाश डाला है। कुछ सुन्दर-उत्कृष्ट रचनाओं के उदाहरण भी उद्धृत किए हैं। उन्होंने मन्दसोर के वत्सभट्टि (सं० ५२६) के २४ श्लोकों वाले एक विस्तृत शिलालेख से मन्दसोर-निवासियों के परिचय

प्रकृति चित्रण वाला श्लोक भी उद्धृत किया है, उसमें मन्दसोर-दशपुर का परिचय देते हुए कवि ने काव्यमय सुन्दरता से बतलाया है—

'उस दशपुर में स्थान-स्थान पर सरोवर थे, जिनमें उठी हुई चंचल लहरें कमल पुष्पों को हिला-डुला देती थी, जिससे कमल पुष्पों का पीत-पराग सरोवर में तैरने वाले श्वेत हंसों की पंखों पर लगजाता था। हंसों को पीला कर देता था। किसी तालाब में अपने पराग भार से कमलिनियाँ झुकी जा रही थी, उस नगर के उपवन फूलों से लदे हुए पादपों से सुशोभित हो रहे थे, जिन पर मत्त-मधुकर गुंजन कर रहे थे। नगर की वनिताएँ इन उपवनों में विविध प्रकार के गीत गायन कर रही थी, उस दशपुर में विशाल भवन थे, जिन पर पताकाएँ फहरा रही थीं, उन्नत शुभ्र अट्टालिकाओं पर सुन्दरियां बैठी हुई थीं, मानों बिजली से युक्त श्वेत मेघमालाएँ हो।'

दशपुर रेशम के काम के लिए अत्यंत प्रसिद्ध रहा है, इसी शिलालेख में उन रेशम वालों की कारीगरी का ऐसा सुन्दर वर्णन किया गया है कि आधुनिक विज्ञापन कला भी दंग रह जाए—

'यौवन और सौंदर्य से संपन्न-महिलाएँ चाहे वे सोने के हार या ताम्बुल और फूलों से ही क्यों न अलंकृत हो वे अपने शृंगार को अपूर्ण मानकर तब तक प्रिय के निकट जाने से सकुचाती है जब तक उनके पास दशपुर का बना रंगीन रेशमी वस्त्र युगल न हो।'

एक और श्लोक में उन वस्त्रों के महीनपन, और लोक प्रियता प्रकट हुई है।

"ये वस्त्र छूने में मुलायम, विविध रंग वैचित्र्य से युक्त हैं आँखों को आनन्द देते हैं, यह सारी पृथ्वी इन रेशमी वस्त्रों से अलंकृत है।"

उदाहरणार्थ—१ श्लोक उद्धृत करते हैं:—

विलोल वीची चलितारविंद पतद्रजः पिंजरितैश्च हंसैः॥
स्वकेसरोदार भराव भुग्नैः कचि त्सरास्यम्बुरुहैश्च भांति।

प्रशांत भी अशांत होगया। !

प्रशांत महासागर यद्यपि युद्ध पोतों को अपने ऊपर तैराता रहा, सब-मेरीनों को पेट में छुपाकर घुमाता रहा, पर उसने अपने नाम को सार्थक कर अशांति को अब तक उत्पन्न नहीं किया था, बल्कि अनेक अशांत बनाने वाले वातावरणों को अपनी शांत समीरण में सुलझाने का माध्यम बनाकर समझौते का स्वरूप देता रहा है। उसकी शांति भी अब भंग हो गई है। उसके अन्तर और बाहर असीम ऊष्मा ने विस्फोट का रूप लेकर शान्ति को चेलैंज दे डाला है। हाल ही में अमेरिका ने अपने अत्यन्त शक्ति-शाली महानाश सर्जक शस्त्र हेड्रोजन-बम्ब का उसकी छाती पर सहसा बिस्फोट कर विश्व शान्ति को भयभीत बना दिया है। इस बम के विस्फोट के जो विवरण प्रकाशित हो रहे हैं, वे समस्त मानवता को प्रकंपित बना देने वाले हैं। उसकी ऊष्णता ने सूर्य की गर्मी की समानता को समेट लिया है, उसके विस्फोट ने आकाश के निकट धूम्र पटल, प्रकाश और तीव्रता को प्रसारित किया है। कहा गया है कि उसका प्रयोग पलक मारते ही प्रलय प्रस्तुत कर सकता है, सर्वनाश सर्जित कर सकता है। मानवता को मसल कर रख सकता है, अनेक नगरों-प्राणियों को धूलि धूसरित, नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। कुछ समय पूर्व इसके केवल एक यन्त्र के प्रयोग ने ही एक उत्तुंग-द्वीप को अदृश्य बना डाला था, तब स्वयं बम्ब तो प्रकंपित करदेने वाली अकल्पनीय परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है। आज उसके एकांत सागर तल में किए गए प्रयोग की भीषणता की कल्पना मात्र से जगत् भयभीत बन गया है, शांति के लिए खतरा खड़ा हो गया है। सागर तल में जाकर उस बम ने जो आग उगली है, उसने सारे प्रशांत को प्रकंपित-अशांत ही कर छोड़ा है। सैंकड़ों मील दूर तरंगित होने वाले मछुओं ने अपने को अरक्षित अनुभव किया। क्षत-विक्षत अवस्था में केवल उसकी रज के रंच मात्र स्पर्श से पाया है। महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाईन जैसे मनीषी भी इस बम से मानव एवं जीव मात्र के जीवन के लिए चिंता अनुभव करते हैं। पहली मार्च के विस्फोट की भीषणता समस्त जग की मानवता के अन्तर को हिलादेने वाली बन गई है। मानव तो ठीक जीव जन्तु तक को जीवन का खतरा बन गया है, पता नहीं उसका विषाक्त परिणाम कितने विस्तार के वातावरण को दूषित कर छोड़ेगा? और कब तक उसका असर कहाँ तक होता रहेगा। जल के अन्तराल में जाकर

उससे न जाने कितना आतंक अंतर में उत्पन्न किया होगा। न जाने कितने जीवों को जीवन से मुक्त किया होगा, जब कि उसके ऊपर से उठे हुए रजोवलयों ने भी सुदूर प्रदेशों में फैल-कर दग्ध किया है, हमारा तो अनुमान हो रहा है कि इन बम के गुप्त-प्रकट प्रयोगों ने सागर तल को ही प्रकंपित नहीं बनाया, ठीक उसी समय बहुत दूर प्रदेशों के भूमितल में भी कम्पन किया है। हाल ही में आए हुए भूकम्प के भीषण झटके उसी विस्फोट की प्रतिक्रिया हो सकती है, सुनते हैं, बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता भी इस सर्वनाशी आविष्कार के प्रयोग से चौंक-चमक उठे हैं, पर अमेरिका अन्य प्रयोगों के लिए प्रस्तुत हो रहा है! मालूम होता है मानव अपनी सर्व ग्रासी वर्चस्व-भावना की प्रसूति पीड़ा से प्रमत्त बन महानाश को न्यौतने जारहा है। कह नहीं सकते कि इस बिनाशास्त्र का परिणाम खगोल स्थित तत्वों को स्पर्श कर सौर मण्डल के नक्षत्रों से निकलने वाली किरणों के साथ जुड कोई अकल्पित प्रतिक्रिया कर बैठे, अथवा जगती के जलतल में जाकर भौमिक केन्द्र च्युतिका कारण बन जाए, और महा प्रलय प्रस्तुत कर डाले। अभी तो उसका आविष्कारक भी उसकी प्रतिक्रिया से पूरी तरह परिचित न होकर भी प्रयोग का प्रमाद करता जारहा है। प्रथम प्रयोग ने ही सारे प्रशांत को अशांत बनादिया है, और जग भर की शांति को संतप्त-सजग बनादिया है। मालूम होता है मानव की महत्वाकांक्षा उसे महानाश के निकट ले जारही है।

सीमा- समस्या, और मध्य-भारत का क्षेत्र-विस्तार !

विदेशियों ने देश का विभाजन जिस प्रकार किया था, वह वास्तविक नहीं है, वस्तुतः भौगोलिक और प्राकृतिक दृष्टि से भारत के विभिन्न प्रदेशों की सीमाएँ स्वाभाविक बनी हुई थी, उसे मनमाने तौड़-मरोड़ कर आज जिन प्रदेशों को बनाया गया है उनका पुनर्निर्माण स्वाभाविक रूप में किया जाना आवश्यक है। भारत सरकार ने इसी उद्देश्य से सीमा कमीशन की नियुक्ति की है उसके समक्ष आज की स्थिति में अत्यन्त कठिन कार्य है। अप्राकृतिक सीमाओं से स्वाभाविक-रूप की छान-बीन करना सरल कार्य नहीं है, एक प्रकार से यह ऐतिहासिक समस्या है। भारत के पूर्वेतिहास, भूगोल और प्रकृति संस्कृति के गंभीर ज्ञान के आधार पर वास्तविक स्थिति को समझने की आवश्यकता है। हमारे मध्य-भारत की भी स्थिति इसी प्रकार है, आज का मध्य-भारत देशी राज्यों में विभाजित होकर अपनी स्वाभाविक सीमा खो चुका है और संकीर्ण बना हुआ है। इतिहास साक्षी है कि समस्त मध्य-भारत का क्षेत्र बहुत व्यापक और विस्तृत रहा है, जिस प्रदेश के चार भागों में विभिन्न कालों में सारे भारत की साम्राज्य सत्ता रही है वह कदापि इतना संकड़ा नहीं रहा माहेश्वर-माहिष्मती की विशाल शक्ति मालव-गणों की रही है। जिन्होंने दक्षिण और उत्तर प्रदेश पर अपना व्यापक वर्चस्व स्थापित किया था, क्या आज के सीमित प्रदेश तक रही होगी? उसका क्षेत्र सारे नर्मदा की सीमा-विभाजक रेखा से घिरा हुआ था, नीमाड़ी भाषा का समस्त-प्रदेश उसका क्षेत्र रहा है, जिसमें वर्तमान खण्डवा (खाण्डव-प्रस्थ) भी संयुक्त रहा है, जिसकी भाषा, संस्कृति-प्रकृति आज भी एकता की साक्षी दे रही है। इसका विस्तार होशंगाबाद तक (नर्मदा तटीय-प्रदेश तक) व्यापक बना हुआ है, सीवनी के साथ 'मालवा' नाम जुड़ा हुआ प्रमाणित करता है कि यह समस्त खण्ड मालवा का है। इधर रतलाम से लगे हुए जिस प्रदेश को बम्बई शासन के गुर्जर-अंग के रूप में सूचित किया जा रहा है—वह भी बागड़ (पुरातन वाग्जड़) प्रदेश तक म भा. का ही भाग है, स्वयं 'दोहद' दो-हद की सूचना की साक्षी दे रहा है, दोहद से आगे का भाग आनर्त या लाट (वर्तमान गुजरात) से सम्बन्धित है, किन्तु उस सीमा तक प्राकृतिक विभाजन मध्य-भारत का ही है। इधर विदिशा की राजधानी विन्ध्य विभाजित रूप में इसी प्रदेश की वस्तु है, जिसमें आधुनिक विन्ध्य का बहुत भाग समाविष्ट हो जाता है, वेतृवती अपनी विभाजक रेखा बनाकर निर्विन्ध्या (विन्ध्य-रहित भाग) को जुडाकर चली जाती है जिसे मालव खण्ड की सीमारेखा का स्वीकार किया गया है, और दशपुर मन्दसौर का विस्तार ठेट अरावलि-पर्वत शृंखला तक चला जाता है, जिसे बूँदी के पार्वत्य प्रदेश ने स्वयं पृथक् प्रदेश के रूप में विभाजित कर दिया है। चर्मण्वती की धारा मालवाधिपति रन्तिदेव की कीर्ति को लिए अपने अधिकार-क्षेत्र का स्वयं

प्रमाण प्रस्तुत कर रही है, अरावलि के पूर्व भाग तक सीधा मध्य-भारत विस्तृत है, यही पर्वत शृंखला राजस्थान को पृथक् कर देती है। फलतः प्रतापगढ़, झालावाड़ आदि भाग भाषा, संस्कृति, प्रकृति की दृष्टि से मालव का खण्ड बना हुआ है। हमारी नदियाँ और पर्वत-शृंखला स्वयं प्रदेशों की सीमा बना कर अड़े खड़े हैं, उनकी उपेक्षा कर अप्राकृतिक सीमा-समस्याएँ उत्पन्न करना न तो स्वाभाविक है, न सुसंगत ही। महा-भारत से लेकर राजशेखर और अल्बेरूनी ने जिस प्रकार सदियों पूर्व इस देश की स्वाभाविक-सीमाओं का पर्वत-नदी, प्रकृति-भूगोल, भाषा-संस्कृति, स्वभाव आदि की सीमाएँ निर्धारित की है वह समझने की वस्तु है। आर्थिक समता की दृष्टि रखना आवश्यक तो है, पर केवल इसी दृष्टि से प्रकृति और भूगोल की स्वाभाविकता को उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। सी. पी. में प्रविष्ट प्रदेश, राजस्थान और गुजरात एवं विन्ध्य में जुड़े हुए बड़े भूखण्ड मालव के हैं, उनको मिला कर बृहन्मालव अथवा मध्य-भारत का विस्तार किया जाना उचित और आवश्यक है। १ जून को भोपाल की संधि भी समाप्त होने जा रही है, अब वह सीमा कमीशन के निर्णय की प्रतीक्षा में रहेगा, परन्तु इस बीच अनेक प्रवृत्तियाँ अपने हितों को लेकर प्रगत्तिशील बन रही है, लोग बृहत्-भोपाल का स्वप्न भी सोचने लगे हैं; किन्तु भोपाल सदैव मालव का खण्ड रहा है। धाराधीश भोजदेव की वह भूमि है, पड़ौसी विदिशा भी उसे इसी खण्ड में जुडाए हुए हैं, उसे सभी दृष्टि से मध्य-भारत में ही मिलना चाहिए। नर्मदा संलग्न प्रदेश जो विन्ध्य और मध्य प्रदेश से स्पर्श करते हैं और भाषा-संस्कृति से एकता प्रदर्शित करते हैं, उन्हें उन भागों में मिलाकर मालव-संस्कृति के अंशों को इसी मध्य-भारत में मिला देना चाहिए। राजस्थान की मन्दसौर—नीमच की मांग तो हास्यास्पद है, जबकि यशोधर्मन् का जागृत इतिहास अरावलि तक अपने अधिकार को सूचित कर रहा है। बूँदी-पर्वत माला तक उसे मध्य-भारत में ही आना चाहिए स्वयं पर्वत माला ने सीमा-विभाजन कर रखा है। आज के प्रतापगढ़-झालावाड़ राजस्थान में मिलकर भी मालव की एकता को पुकार कर अपनी संस्कृति का समर्थन कर रहे हैं। मालव-मध्य-भारत को अपनी संस्कृति-प्रकृति भूगोल के अनुरूप विशाल-रूप मिलना चाहिए, इसके लिए उसके पूर्वेतिहास, माहिष्मती, दशपुर, विदिशा के व्यापक रूप और महा भारत—बृहत्संहिता, वात्स्यायन, राजशेखर, हुएनत्संग, अल्बेरूनी का क्षेत्र विस्तार का व्यवस्थित अवलोकन करना चाहिए,—तभी इस खण्ड के वास्तविक स्वरूप, व्यापक क्षेत्र और संस्कृति-समन्वय का उचित भान होगा। अन्यथा यह समस्या भी पुनः संघर्ष का विषय बन कर रह जाएगी।

पार्लियामेंट में पद्य-प्रसंग !

भारत सरकार के वित्तमंत्री श्री सर चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख महोदय वित्त-विषय के विश्व-विदित-विद्वान् हैं, यह सर्वमान्य विषय है। किंतु विक्रम में हम कुछ समय पूर्व प्रकट कर चुके हैं कि वे मराठी और संस्कृत के सरस-सुकवि भी हैं, वे प्रायः पत्र व्यवहार संस्कृत श्लोकों में करते रहते हैं, हम पर उनका स्नेह है। प्रायः पत्र-व्यवहार चलता रहता है. उसी क्रम के अनुसार भारत सरकार के नवीन बजट के अवसर पर जब सुपारी जैसी छोटी, गरीबों के विश्राम काल के आश्रय और भारतीय परिवारों के आतिथ्य सन्मान के माध्यम

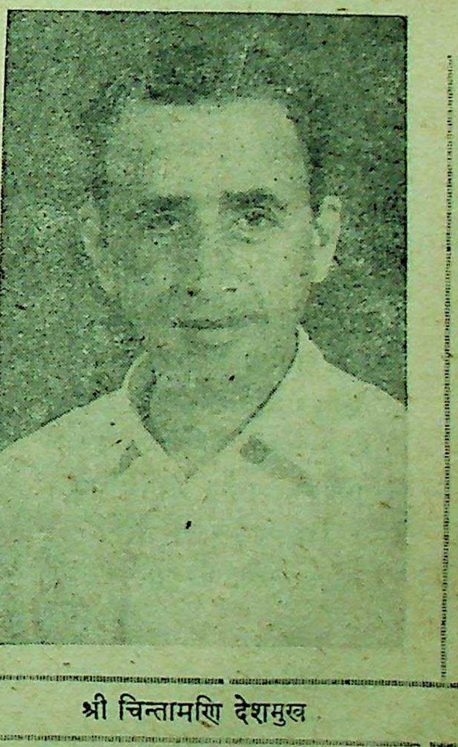

श्री चिन्तामणि देशमुख

पर कर की योजना की गई तो हमने सहज ही उनसे व्यक्तिगत आग्रह के रूप में कुछ पद्यों में कर के विरुद्ध निवेदन किया, वे श्लोक इस प्रकार हैं:—

श्रमितां दुर्बलानांच
क्षणं संतोष दायकम्।
मध्य वित्तजनानांच
स्वागतार्थं सहायकम्।
निर्धनानांच नारीणाम्
एकमेवाश्रयंमहत्
पूगीफलं न-चैवान्यत्
फलं जगतिविद्यते।
नाऽधुनाक्रय शक्तिश्च
कठिनं जन जीवनम्
पूगीफल प्रसादोपि
महर्घो दुर्लभोऽभवत्।
कृपया करुणां कृत्वा
मुक्तं पूगी फलं कुरु
वित्ताधिप, महाभाग
इति सम्प्रार्थयाम्यहम्।

सू. ना. व्यास

माननीय वित्त-मंत्रीजी ने बजट के विवाद का उत्तर देते हुए भारतीय पार्लियामेंट में उक्त श्लोकों का उल्लेख किया, और अपना उत्तर भी अपने निम्नलिखित श्लोकों में प्रकट किया:

अभ्यर्थना या भवताऽयधापि
पूगीफलायात करः प्रसंगे।
नाहन्ततां पूरयितुं क्षमोस्मि
क्षमस्व मोघानुनयीपिसूरे।
यथावकाशं द्रविणेश्वरेभ्यो
विकास कार्याय कराभिलाषः।
दरिद्रनारायण तोपि देशे
करावलम्बोऽपरिहार्य कल्पः।

—चिं० द्वा० देशमुख

इस प्रकार मंत्री महोदय ने अपने सुपारी पर कर लगाने का आग्रह बतलाया कि जब धनिकों से भी विकास कार्य के लिए कर लिया जाता है तो दरिद्र जनों से भी देश कार्य के लिए भाग लेना अपरिहार्य हो जाता है। ये श्लोक मंत्री महोदय ने कृपा कर हमें भी निजी रूप में लिख भेजे। हमने इन श्लोकों का उत्तर पुनः उनके निकट भेजा है, किंतु अब संसद् के श्रोताओं को और वर्तमान पत्रों द्वारा रसिक जनों को शायद इन्हें सुनने का अवसर न मिले, इसलिए वित्त मंत्रीजी को प्रत्युत्तर में हमारे भेजे गए श्लोक हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:—

१

सन्माननीयैर्यदनुग्रहेण
पत्रंप्रदत्तं मुदितो जनोऽयम्।
अनुग्रहीतोस्मि विशेषतश्च
संसत्सु सौभाग्य मिदंप्रदत्तम्।

२

यदुत्तरं पूग करः प्रसंगे
दत्तंभवद्भिर्नहि तुष्यते मनः।
कराल काले कठिनंहि जीवनम्
त्रस्तो महर्घेण निपीडितो जनः

३

द्रविणेशैर्धनतो प्रदीयते
मतिभिर्मान्थ मनीषिभिः स्वभागम्।
कर भारावनतैर्महर्घ मूल्ये
श्रमतीशं हि जनैश्च वित्तहीनैः।

४

नतु शासनतोप्यपेक्षने
सरलं जीवन यापनं सुखंच
बत, बुध्वापि महन्महर्घताम्
करभाराक्रमणः प्रयुज्यते।

५

कठिनं जनजीवनं न शक्ति
र्नधनंकिंकथयामि दुर्दशाम्।
विहिते परमाग्रहेपि मन्ये
कृत लोकादर एवचेत्यलम्।

पुनश्च—

आत्मावलोकन रतः पश्यामि जनजीवनम्।
कल्पयामिच काठिन्यम् करभारस्तथोपरि।

नोद्योगो न च विश्वासः
नधनं दुर्गमः पथः।
महर्घतातु चरमं
स्पर्शत्येवहि का कथा!
शासकाः शोषण रताः
जनास्तु तिमिरावृताः
अन्धन्तमः समायातः
को जाने का गतिर्भवेत्।
ज्योतिर्विदोहं जानामि
शतशोथ सहस्त्रशः
जनानां दुर्गतिः कीदृग्
प्रदर्शयितु मक्षमः
जीवनं नच मुक्तिश्च
मध्यवित्तास्तु ये मृताः।
शासकाः बहुशो हीनाः
भ्रष्टाचारस्तु भीषणः।
पक्षपात प्रपंचश्च
पराकाष्टां गतः किल,
स्थितिरेषा भवन्तोपि
जानन्त्येव नवचम्यहम्।
पूगीफल प्रसंगेन
यन्मया लिखितं पुरा,
निमित्तं तत्तु सर्वासां
वस्तूना मीद्रशीगतिः।
स्वल्पीयसी न सुलभा
मूल्यमाकाश मध्यगम्।
विनष्टो व्यवसायश्च
नोत्साहो लक्ष्यते क्वचित्।
अणुरुद्रजनै र्व्योत्पं
महानाशभयं महत्
मूढःसन् मानवोभ्रांतः।
किं करोमि कयामिच।

कालस्यच करस्यैव परमा कुटिला गतिः
द्वयोर्मध्येतु दौर्भाग्यान् मानवो याति दुर्गतिम्।

--सु० ना० व्यास

भारतीय-संसद की तरह संयोग की बात है कि राज्य-परिषद् में भी काव्य मय चर्चा इसी प्रसंग पर प्रस्तुत हो गई थी। राष्ट्र कवि-मैथिली शरणजी गुप्त ने वहाँ अपनी एक हिन्दी कविता में करों की चर्चा की-वह पद्य बड़ा मार्मिक एवं मधुर है। कविता—

कुशल पत्र पाऊंगा दूंगा अबकी आशा थी ऐसी।
किंतु अड़ी है डाकडाकिनी अब भी वैसी की वैसी!
सरस्वती ने सोचा अब फिर भारत में चल करूँ विहार,
सहसा हँस, परंतु बीचका निर्जल वातावरण निहार,
बोला वह मां! एक डाकही कर कसती है मरुपथ पार,
पर भाड़े की जटिल समस्या, सुलझ न पाई किसी प्रकार!
कहते हैं कुछ वर्षों ही में दुगनी होगी अपनी आय,
इसका क्या विश्वास चौगुना हो न जायगा कर समुदाय?
छूटे पान सुपारी भी अब, सुलभ नहीं लेली, खाली,
फिर भी प्रभु से यही विनय है रहे देशमुख की लाली!

माननीय देशमुखजी ने इसका उत्तर परिषद् में अपने एक हिन्दी पद्य में दिया— वह इस प्रकार है-

'यह दुगना कर आय बढ़ावे, दुनिया का यह न्याय!
कर-समुदाय मैथिलीशरण का, वानर-समुदाय सहाय!

ठीक इसी प्रकार श्री दिनकरजी ने अपना भाषण एक उर्दू-शेर से शुरू किया था,

"जो चुप रहें तो हवा कौम की बिगड़ती है,
जो सिर उठाएँ तो कोड़ों की मार पड़ती है।

मंत्रीजी ने भी अपने भाषण में निम्नलिखित शेर से अपना उत्तर दिया-

हवा जहाँ तेज थी. वहाँ चिरागे वफा जलाया,
शिकायत नहीं है किसी की इसमें, शिकार हूं अपनी-
सादगीका!

इस प्रकार वित्तमंत्री ने दोनों सदनों में पद्य-मय वातावरण से बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हुए सदस्यों में रस-संचरित कर दिया।

❀ ❀ ❀ ❀

उडीसा के संसद-सदस्य श्री प्रफुल्लचन्द्र भंजदेव संस्कृत के विद्वान हैं, उन्होंने जब यह कहा कि "इस कागज़ की डग-

मगाती नैया से वित्त-मंत्री तप्त वैतरिणी कैसे पार करेंगे ?” तब विद्वान वित्त-मंत्री ने कहा कि “विद्वान् वक्ता को कालिदास का वह श्लोक स्मरण होगा जब उन्होंने सूर्यवंश की महानता और अपनी अल्पज्ञता को लक्ष्य करते हुए कहा था—

“तितीर्षुं दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।”

कालिदास कागज़ की नाव से महासागर पार करने में समर्थ हो गए तो मुझे भी आशा है कि शायद मैं भी सफल हो जाऊँ !

गणेशजी का पुण्य-स्मरण !

महाकवि निराला
जिनके स्वास्थ्य की चिन्ता ने देश का ध्यान आकर्षित किया है, हम कवि की दीर्घायुष्य की कामना करते हैं

गणेशजी भारत की अप्रतिम विभूति थे, उन्होंने बलिदान देकर अपने को अमर-महामानवों की मणि-माला में मिला लिया, आज उनकी स्मृति हमें अतीत की उज्वलता का स्मरण दिलाने वाली बन जाती है, उनका 'प्रताप' देश का प्रताप था, द्विवेदीयुग के पत्रकारों में गणेशजी ने जो आदर्श की प्रतिष्ठा की वह आज के युग में भी हमारे लिए पथ-प्रदर्शक बनी हुई है। गणेशजी जैसा तेजस्वी लेखक, कलम का धनी पत्रकार हिन्दी जग का गौरव ही था, वे केवल पत्र-कार ही नहीं त्यागी, तेजस्वी, कार्य-कर्ता भी थे, जन्म भर संघर्ष-रत रह कर अन्त में भी संघर्ष में वीरगति प्राप्त की। हमें गणेशजी को निकट से देखने का सौभाग्य मिला है, उनकी महानता उदारता और ओजस्विताने हमें प्रभावित किया है। वे जहाँ कट्टर राष्ट्रवादी, गांधी भक्त थे, वहां क्रांतिकारियों के भी आदर भाजन थे, हमें उनकी आज्ञा से एक ऐसे ही क्रांतिकारी फरार-अभियुक्त की रक्षा का भार लेने का प्रसंग आया है, जिसका जीवन गणेशजी बहुमूल्य समझते थे। अनेक ऐसे क्रांतिकारियों का हमें पता है जो गणेशजी के प्रति असीम आदर रखते रहे हैं। गणेशजी के यद्यपि साधारण दो ही हाथ थे, पर अवसर पडने पर वे सहस्रबाहु बनजाते थे। मध्यभारत में उत्पन्न हो कर भी वे उत्तर प्रदेश के हृदय पर राज्य करते थे। एक बार हमने उन्हें पत्र में 'आदरणीय' सम्बोधन के साथ 'नमस्कार' लिख दिया तो उन्होंने तुरन्त लिखा कि 'मैं तो अब्राह्मण हुं। यह आप क्यों मुझे कांटे में घसीट रहे हैं।

हमने निवेदन किया 'आप बुद्धि जीवी हैं, मैं तो आपको ब्राह्मण ही मानता हूँ और उसी तरह आदर करता हूँ।' इस पर गणेशजी ने जिस नम्रता शालीनता का उत्तर दिया वह उनकी महानता का ही द्योतक था।

प्रताप उन दिनों ऐसा पत्र था जिसकी जोड़ अब तक नहीं है। उनके अग्र-लेखों को पढ़कर आत्मा आनन्द अनुभव करती थी। वह ओज आज कहीं नहीं दिखाई देता, परन्तु आज तक हमने प्रताप के उन अग्रलेखों का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं किया। चाहिए तो यह था कि प्रताप के उन समस्त लेखों को संग्रहीत कर विशेष रूप से पत्रकारिता के पाठ्य-ग्रन्थों में स्थान देते किंतु हम गणेशजी के आदर करने वाले कितने कृतघ्न बनगए हैं ? गणेशजी की क्षमता और समता का आज देश में हमें तो कोई त्यागी, तेजस्वी, कर्मठ, निस्पृह पत्रकार' आदर्श मानव दिखलाई नहीं देता। गणेशजी की दुर्बलदेह में कितनी बड़ी सबल आत्मा निवास करती थी! गांधीजी की तरह ही गणेशजी ने न जाने कितने मानवों को गढ़ा है निर्माण किया है। कई ने उनके चरणों में बैठकर पत्रकारिताका पाठ पढ़ा है, आज उन से अनुप्राणित होने वालों की कमी नहीं है। परन्तु अब तक हम केवल वर्ष में एक दिन केवल कण्ठ से स्मृति का प्रदर्शन कर, हृदय से उसका

पुण्य स्पर्श नहीं होने देते, कितने कष्ट की बात है। कोई संस्मरण-ग्रन्थ, अथवा जीवनी भी हम प्रस्तुत न कर सके हम क्षुद्र-मानवों ने गणेशजी जैसे महामानव के प्रति अपनी आंतरिक कृतज्ञता भी अर्पित नहीं की है। किसी पत्रकारिता के कालेज को उनके नाम से अंकित नहीं बनाया। जिसने न जाने कितनों की गौरव रक्षा की, और अपने को आपत्ति में डाला हम उसकी गौरव गाथा को भी प्रकट न कर सके। काश ! गणेशजी विदेश में उत्पन्न हुए होते तो अवश्य ही उनके बलिदान को वकील मि० एण्ड्रूज-क्रांईस्ट की तहर पूजा जाता। अवश्य ही उस महान् आत्मा के संपर्क में क्षण भर के लिए आने वाला उन्हें कभी भुला नहीं सकता था, पर हमने उसे ही भुलाने में कमाल कर दिया है। हमारी कृतघ्नता हमारे लिए चाहे लज्जा का विषय बन जावे, पर गणेशजी की गरिमा में उससे क्या अंतर आसकता है ? गणेशजी अपने जीवन में महान् हो गए और बलिदान देकर अमर बन गए। उनका जीवन सार्थक था, हम उनके इस स्मरण-पर्वपर अपना आदर अर्पित करते हैं।

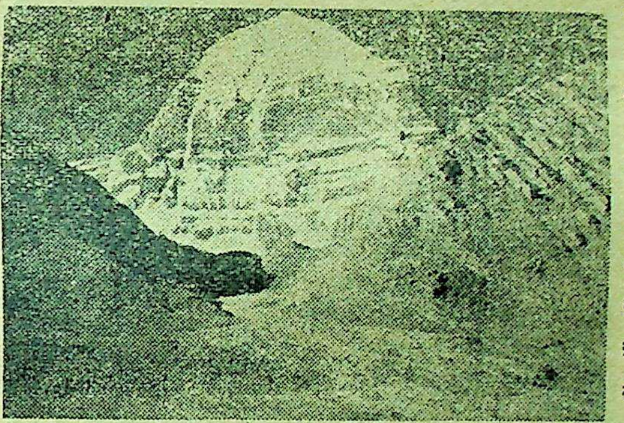

कैलास मानसरोवर शृंग
इस दुर्गम पर्वत की यात्रा का वर्णन अन्यत्र इसी अङ्क में जा रहा है।

अकादमी का उदय और आशंका !

हम भारत सरकार द्वारा नव-निर्मित अंकादमी पर इन्हीं स्तम्भों में चर्चा कर चुके हैं। जिस 'अकादमी' शब्द के लिए माननीय मौलाना ने अनेक तर्क दिए, महत्व प्रतिपादित किया और ममत्व बतलाया उससे लगता है मौलाना का अंग्रेजी के प्रति विशेष मोह है, यह तब और भी प्रमाणित हो जाता है जब भारत की १४ भाषाओं के समावेश से सन्तुष्ट न हो कर वे अपनी अकादमी में अंग्रेजी को भी अपनाने का आग्रह करते हैं। मौलाना स्वयं अंग्रेजी के पण्डित नहीं हैं, परन्तु वे अकादमी में गांधी, टैगोर, अरविंद, नेहरू आदि के साहित्य की दुहाई देकर, आड़ लेकर अंग्रेजी को उक्त संस्था में पीछे से चतुराई के साथ प्रविष्ट करवाना चाहते हैं, जब कि वह इस राष्ट्र की भाषा नहीं, संविधान में उसकी समाप्ति की सीमा बाँध दी गई है, तब उसके प्रति मौलाना का मोह क्या मानी रखता है, समझना मुश्किल है। हम तो यह भी समझने में असमर्थ हैं कि इस संस्था को 'अकादमी' के नाम से क्यों ज्ञापित किया जाय ? हमारे देश में हमारी भाषा में इसके गौरव के अनुरूप कोई शब्द, या संज्ञा सुलभ नहीं होती ! कुछ लोगों ने 'संगम' नाम की सूचना भी की है। परन्तु मौलाना को यह कैसे मान्य हो सकता है ? जो मौलाना मध्य प्रदेश में स्थापित 'विद्यामन्दिर' नाम के प्रति तिरस्कार प्रकट कर सकते थे, 'मन्दिर' शब्द में 'हिन्दुत्व' की भावना का भय अनुभव कर सकते थे, और जिस पर म. प्र. के मुख्य प्रधान के तर्क उनके गले के नीचे नहीं उतर सके, यहां तक कि त्याग पत्र देने तक की नौबत आसकती थी, वे असम्प्रदायिक मौलाना 'अकादमी' को 'संगम' कैसे स्वीकार कर लेते ? सुना है कि अकादमी-शब्द पर उसके उच्चारण और अंग्रेजी-अक्षरों पर भी बहुत संघर्ष हुआ है, 'डमी-ड्रेमी, दमी' कौनसा उच्चारण माना जाए इस पर भी विवाद रहा, अन्त गें साहित्य शब्द के साथ 'अकादमी' का अन्तर्जातीय ही नहीं, अन्तराष्ट्रीय-सम्बन्ध स्थापित हो गया ! महर्षि-मौलाना ने भारतीय-'साहित्य' के साथ 'अकादमी' का आदर्श (!) विवाह कर सरकार के सिर पर उसकी गृहस्थी लाद दी ? जो मौलाना किसी विदेशी के साथ अंग्रेजी में बात करने में अपना अपमान अनुभव करते रहे हैं, वे ही मौलाना भारतीय भाषाओं की साहित्य संस्था में अंग्रेजी को विशेष अवसर उदारता-पूर्वक प्रदान करते हैं, और 'अकादमी' शब्द के साथ अनुचित-सम्बन्ध-कराने का आग्रह करते हैं। इस अकादमी में १४ भाषाओं को जिस प्रकार प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया उसी प्रकार राष्ट्र की राष्ट्रीय-भाषा हिन्दी को भी उतना ही अवसर दिया है। अधिक नहीं। शायद संविधान को ताक पर

रख कर हिन्दी प्रादेशिक भाषा समझली गई हो! क्योंकि पुरस्कारों में जहाँ हिन्दी को ५००० देने का विचार हुआ है, वहाँ उर्दू भी उतना ही अवसर प्राप्त कर लेती है। यूनेस्को के साहित्य-संपर्क के लिए जो समिति निर्मित की गई है उसमें भी हिन्दी का प्रतिनिधित्व नहीं रखा गया है। संभवतः हिन्दी को वे इतनी उच्च या अधिकारिणी भाषा न मानते हों। 'अकादमी' की प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर मौलाना का भाषण भी इस बात को प्रमाणित करता है कि उनकी फारसी के अदब से दबी हुई-उर्दू राष्ट्र-भाषा हिन्दी के महत्व को अभी तक स्वीकार नहीं कर रही है। म. प्र. के मुख्य मंत्री ने नागरी प्र० सभा के हीरक जयन्ती उत्सव पर ठीक ही कहा है कि–

'इस अकादमी में हिन्दी राष्ट्र-भाषा के विकास और विस्तार के कार्य को समुचित स्थान नहीं दिया गया है ?"

जिन मौलाना के हाथ में इस राष्ट्र का शिक्षा-विभाग है, राष्ट्र-भाषा हिन्दी के विकास विस्तार का यह स्वरूप हिन्दी के भविष्य को संदेह में डाल देने वाला है। उस पर भी महर्षि-मौलाना की अंग्रेजी की हिमायत और भी चिंता-आशंका की उत्पादिका है। उक्त अकादमी की कार्य-कारिणी बन गई हैं, समिति के नियमादि निश्चित हो जाने के बाद उसके लिए 'फेलो' को फंसाने का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

स्वामी चैतन्यानन्दजी
जिन्होंने कैलास पर्वत की कठिन यात्रा गत वर्षों में दो बार सफलता से की है।

यह दिल्ली-रेडियो है।

रेडियो-विभाग के मन्त्री श्री० डॉ० केसकर महाराष्ट्रीय है, उनकी संगीत में अभिरुचि होना स्वाभाविक है। सुरुचि भी रहना चाहिए। महाराष्ट्रीय-संगीत में रस है, आकर्षण है, माधुर्य है, मनोहारिता है। अनेक महाराष्ट्रीय-स्त्री-पुरुष संगीत के आचार्य हैं, उनकी अपनी स्वतन्त्र-शैली भी है। इसलिए मन्त्री महोदय संगीत-सुधार के प्रति सतर्क हों, चिंतित हों यह स्वाभाविक भी है, उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा है, परन्तु खेद तो यह है कि अभी तक दिल्ली-रेडियो-स्टेशन का ढर्रा जरा भी बदला नहीं है। विशेष रूप से वहाँ का संगीत इतना गिरा हुआ, कर्णकटु, बेसुरा और बेढंगा है कि–सुनकर —जहाँ मन मयूर को नाच उठना चाहिये वहाँ व्यथा का अनुभव होता है। संगीत की दृष्टि से बम्बई और लखनऊ अब भी श्रेष्ठ है, वहाँ और भी सुधार हुआ है, परन्तु सुधार का स्वर तीव्र होते हुए भी दिल्ली में जो दरिद्रता दिखाई देती है, वह उसके विशेष विकार का ही प्रतीक है। मालूम होता चुन-चुन कर कटु-कण्ठों को जुड़ाया जाता है। सड़े स्वरों को संचारित किया जाता है। एक ही गाने को बुरी तरह रुदन-रागिणी से अनेक बार गाया जाता है, कुछ अगेय-गीतों को जो कवियों को कीमत देकर कान में जबरन उतारने के लिए रेडियो पर गाया जाता है, वे कहने वाले को तो समझ में आते ही नहीं, इसलिए सुनने वालों को सीमोत्तर कष्ट धारक बन जाएँ तो आश्चर्य ही क्या ? सभी गीत संगीत का विषय नहीं बनते। न उनके राग ही हो पाते हैं। गानेवाला उन्हें मन-माने तौर पर तान लगाकर टाँगे तोड़ता है और वह शब्दों की शकल बिगाड़ कर स्वर की समाधि बना देता है और सुनने वालों को सुनने के लिए मजबूर करता है। ये रद्दी-राग, कठोर कण्ठों से बुरी तरह, बेसुरेपन से अनेक बार सुनवाए जाते हैं। पता नहीं कुछ पेटेन्ट गायक कहे

जाने वाले जंगली लोगों को रेडियो पर रुदन करने के लिए लायसेंस दे दिया गया है, या स्थाई रूप से रख लिया गया है कि ये श्रोता जनों के कानों को इस प्रकार विकृत बनादे कि संगीत से उनकी विरक्ति ही हो जावे। दिल्ली ज्यादातर कवियों के गीत सुनाने का प्रयास करती है और उन गीतों में ९८ प्रतिशत, गला फाड़कर, बुरी तरह बेसुरेपन से गाए जाते हैं जिनका न तो स्वर होता है, न तान, न राग, या रस रंग ही। गाने वाले को गीत के शब्दों का कोई तुक नहीं जमता, बिना फुल-स्टाप, कामा के वह शब्दों को भोंडेपन से, भावों की भट्टी झोंककर ऐसी खींचतान के साथ रगड़-पट्टी करता है सुनकर सिर सन्नाटे में आजाता है। गनीमत होती कि वह एक ही बार होता, पर कई बार उन्हें न जाने क्या समझकर पुनः गवाया जाता है। तुलसी-सूर के सुन्दर गीतों को भी ऐसे ही स्वर समेट कर मन माने मोड़ा जाता है, गन्देपन से गवाया जाता है। न रागों का भान है, न समय की समझ ही। प्रातःकाल, या सायंकाल सड़े पड़े गीतों को गला फाड़ कर गवाया जाता है। दिल्ली जैसी संगीत की दुर्दशा शायद ही कहीं होती है। सरकार की नाक के नीचे, कान के पास यह कूड़ा पनप रहा है, परोसा जा रहा है और मन्त्री महोदय संगीत के सुधार के लिए शक्तिभर प्रयास कर रहे हैं, वहीं सामने दिल्ली उस संगीत-सौन्दर्य का श्राद्ध कर रही है, सुधार की अपेक्षा अधिक बिगाड़ होता जा रहा है। दिल्ली की यह दशा देख सुन कर दर्द होता है, कान कराह उठते हैं मन मसोस कर रह जाना पड़ता है।

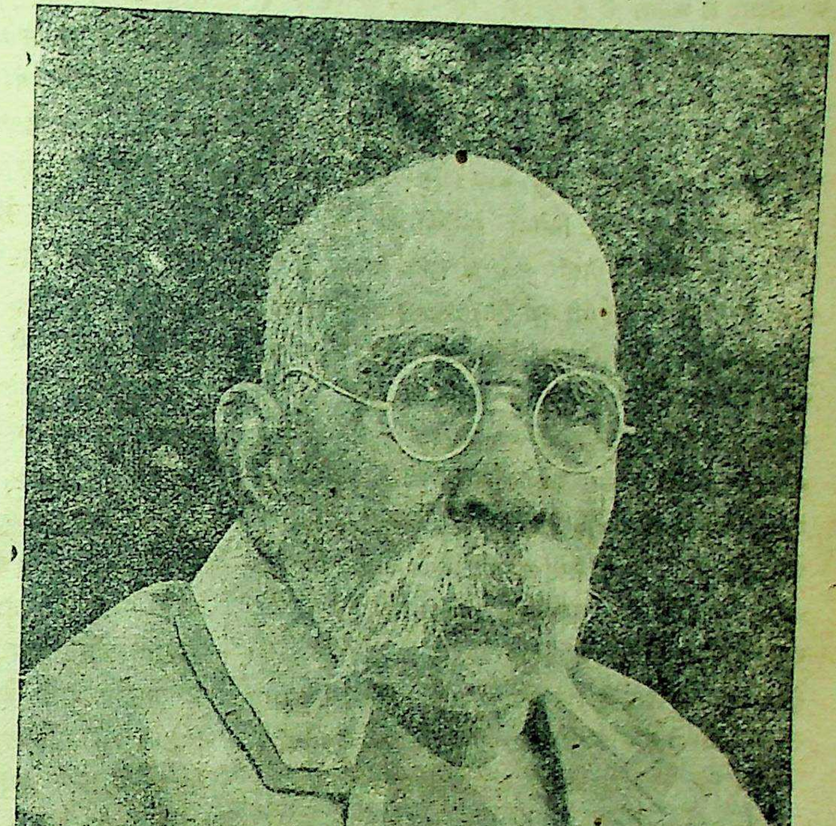

हिन्दी के भीष्म पितामह, आचार्य प्रवर पं महावीरप्रसादजी द्विवेदी जिनकी पवित्र स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित की गई है।

'यह दिल्ली है' की आवाज सुनते ही यह संशय होने लग जाता है कि पता नहीं कौनसा कटु कण्ठ संगीत स्वर-सौन्दर्य का श्राद्ध करने तत्पर हो आया है।

दिल्ली की इस दशा को सुधार के लिए हम समझते हैं—पूरे रेडियो स्टेशन की गायक मण्डली, व्यवस्था विभाग, उसके वर्तमान रूप रंग का काया कल्प करना पड़ेगा, तभी संगीत की रक्षा हो सकेगी, यदि न किया तो इस गंदगी

के विस्तार से जनता की संगीत की रही-सही अभिरुचि ही नष्ट-विकृत हो जाएगी। सावधान !

अभी अभी दिल्ली से नव प्रकाशित सुन्दर 'समाज' में श्रीयुत उग्रजी के विचारों में भी रेडियो-संगीत पर स्पष्ट आलोचना पढ़ी उन्होंने भी यही कहा है कि "सन्तों के गीतों में पुण्य होंगे, पाप होंगे सिनेमा संगीतों में, पर, आज रेडियो पर अक्सर जो निर्जीव साहित्य गाया बजाया, सुनाया जाता है उसमें तो कुछ भी नहीं होता। मुलाहजे से डमरुजी ने समरुजी का गीत प्रसारित करा दिया, तो समरुजी ने डमरुजी का गीत प्रसारित कराना सनातन धर्म माना और फिर तो डमरु और डमरु ने आपस में सलाह कर चमरु तक का गीत आ. इ. रे. पर गवा दिया। सिनेमा के गीत बुरे हों, पर वे सावधानी से बुरे बनाए गए होते हैं। रेडियो के नव-गीत अच्छे हों, पर वे अच्छी तरह बनाए, या बनवाए नहीं जा रहे हैं। इन गीतों में जन-व्यापी शक्ति नहीं, प्रायः नए रचना-कारों के गीतों को सुनते हुए कवित्व, या भाषा सौष्ठव का सुख दुर्लभ ही रहता है। संगीत में अक्सर सजीव सुकुमार स्वर मृत शब्दों की 'अरथी' ढोते बोझिल मालूम पड़ते हैं।"

स्वास्थ्य मंत्राणी के अस्वस्थ विचार !

भारत के केन्द्रीय-शासन में जैसी अभारतीय-मनोवृत्ति का समावेश हुआ है, वह भारत की परम्परा, संस्कृति, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान के लिये बहुत ही बाधक बन गया है। भारत के अन्न-जल वायु से इनके शरीर अवश्य बने हैं, परन्तु इनके अंतर का विकास विदेशी विकारों से दूषित होकर हुआ है। इस कारण जैसी अपने राष्ट्र की, अपने ज्ञान-विज्ञान की, परम्परा और इतिहास की प्रतिष्ठा होनी चाहिये वह दुराशा मात्र बन कर रह जाती है। स्वयं प्रधानामात्य अनेक बार निरर्थक-अनुचित और तर्कहीन तरीके से भारतीय ज्ञान की अवहेलना करते रहते हैं। वे उनके महत्व से अपरिचित रहकर मौन रहें तो अधिक उत्तम हो, पर अनुचित आलोचना करके भारतीय संस्कृतिं का अपमान तक कर देते हैं। यह बड़े खेद की बात है। इधर हमारे शिक्षा मंत्री मौलाना के विषय में जितना कहा जाए उतना ही कम होगा। वे राष्ट्रवादी हैं, नेता हैं, यह ठीक है। उनके इस रूप का हम आदर करते हैं, पर वे भारत की शिक्षा के सूत्रधार हैं। यह सर्वथा भारत का अपमान है। वे इस स्थान के योग्य नहीं; वे हिन्दी, भारतीय-संस्कृति के विरोधी हैं, उनका कार्य और मंत्रालय पक्षपात का केन्द्र है। भारत सरकार चाहे तो उन्हें दिल्ली की जामा मस्जिद में बिठला कर पूजा करे, पर शिक्षा को सर्वनाश से बचाने के लिए उन्हें उस पद से प्रेमपूर्वक हटालें !

शिक्षा मंत्रीजी की तरह ही देश की स्वास्थ्य मंत्राणी राजकुमारी अमृतकौर हैं, जो चिकित्सा क्षेत्र में अंग्रेजी की एजेंसी लिए डॉक्टरी को गांव गांव में फैला देना चाहती हैं, और दवाइयों की करोड़ों की रकम विदेश भिजवाने का सङ्कल्प लिए शासन में सत्ताधारी बनी हुई हैं। उन्हें देश की सर्वमान्य, श्रेष्ठ, सरल, सुलभ, सस्ती आयुर्वेदिक, या यूनानी चिकित्सा पद्धति में विश्वास नहीं, अनुभव नहीं, योग्यता नहीं। जिस आयुर्वेद ने इस राष्ट्र में जन्म लेकर अपनी गंभीर गवेषणा द्वारा असाधारण सिद्धियां प्राप्त की हैं, सिद्धांत निश्चित किए हैं, गहरी छानबीन के बाद शास्त्र-ग्रंथों का निर्माण किया है, उनके प्रति अज्ञान वश उपेक्षा कर स्वास्थ्य मंत्राणी जो मनोवृत्ति प्रकट करती रहती हैं, वह वास्तव में उनके अज्ञान और अयोग्यता का ही प्रमाण है। उन्हें मालूम नहीं कि चिकित्सा में चरक की जोड़ में दुनिया में कोई उत्कृष्ट विज्ञान नहीं। आयुर्वेद ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, जैसी गहराई से उतर कर सूक्ष्मावलोकन किया है, तत्वान्वेषण किया है, विकार-विवेचन और निदान में नैपुण्य उपलब्ध किया है, वैसा डाक्टरी ने अब तक समस्त-सुविधा उपलब्ध करके भी नहीं किया। वह केवल प्रयोगशील विज्ञान ही रहा है, परन्तु उसकी महत्ता, उपयोगिता, विशेषता, और वैज्ञानिकता से अनभिज्ञ रहकर ही स्वास्थ्य मंत्राणी यह कहने का दुःसाहस कर सकती हैं कि— "आयुर्वेद में चाहे जैसे गुण हों उसे अपनाकर मैं देश को पीछे नहीं लेजाना चाहती।" जिस देश की स्वास्थ्य मंत्राणी अपने देश के महान् विज्ञान के विषय में ऐसे विचार रख सकती हैं, वास्तव में उन्हें उस पद पर रहने का इस देश में कोई अधिकार नहीं रहना चाहिये। यह भारत और उसके विज्ञान का दुर्भाग्य है कि उसे अपनी ही भूमि पर अपने ही व्यक्ति से अवहेलना प्राप्त हो। जहां तक हम समझते हैं स्वास्थ्य मंत्राणी न तो डाक्टरी-विज्ञान से परिचित हैं न भारतीय

किसी विज्ञान से ही। वे जिस वर्ग से सम्बन्धित हैं, उसके संस्कार सर्वथा अभारतीय ही हैं, परन्तु राष्ट्रीय चोले में उनके अन्दर रहने वाला अभारतीय संस्कार उनकी खादी में आवृत होकर मंत्री पद तक पहुंच गया है, परन्तु हम यह उत्तम समझते हैं कि उन्होंने हमारे देशवासियों को पांच वर्ष बाद ही सही अंधेरे में नहीं रखा है। उनका अंतर्विकार स्पष्ट प्रकट हो गया है। आयुर्वेद विज्ञान वेत्ताओं को बहुत दिनों से मंत्राणी की कृतियों ने तो सतर्क बना दिया था, अब उनकी स्पष्ट वाणी ने सावधानी की सूचना देदी है। अब हमारा मार्ग सरल और खुला है। हमें शासन से किसी प्रकार आशा नहीं करनी चाहिए। अपने पथ पर अपने पुरुषार्थ पर ही प्रगति कर अपने विज्ञान को ऊपर लाना होगा, यदि राजकुमारी की साधारण भी सहयोग-भावना रही होती तो वे इन बीते पांच वर्षों में आयुर्वेद की प्रगति के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान की कोई सुविधा देती, और डाक्टरों के अनुपात में वैद्यों को भी उनके प्रयोग कर चिकित्सा चमत्कार प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करती। आज डाक्टरों, विदेशी दवाइयों, उनके निर्माण के लिए जो सरकार बेहद धनराशि लुटाती है, उसने आयुर्वेद के लिए कौनसा उल्लेखनीय कार्य किया, प्रोत्साहित किया या अनुसंधान का अवसर दिया? इसीसे उसकी उपेक्षा-वृत्ति अपने देश की चिकित्सा-पद्धति के लिए प्रकट होजाती है।

हम देश के विद्वान सुयोग्य चिकित्सक वैद्यों से अनुरोध करेंगे कि वे राजकुमारी को दिखलायें कि आयुर्वेद ही भारत के लिए हितकर है। जनता उसे सम्मान से ही नहीं देखती, प्रेम से अपनाती भी है। हमें सम्पूर्ण विश्वास है हमारा यह शास्त्र विशुद्ध विज्ञान है, आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी यह खरा उतरेगा। स्वास्थ्य मंत्राणी का यह कहना कि "किस उपचार पद्धति को स्वीकार करना यह लोगों के अधिकार की बात है।" इसे हम सिद्ध कर देंगे कि लोग देशी उपचार को ही पसन्द करते हैं।

यद्यपि डाक्टरी उपचार को सरकारी सहायता है, परंतु यह स्पष्ट है कि आज इस पद्धति की मंहगाई, प्रयोगशीलता, उपचारकों के व्यवहार ने जनता में इसका महत्व घटा दिया है। धीरे धीरे वैद्यकीय उपचार की ओर उसकी अभिरुचि बढ़ रही है। वह डाक्टरी से सस्ता, सुलभ भी है। इसका लाभ लेकर आयुर्वेद विज्ञों को जनता के निकट अधिकाधिक पहुंचने, और अधिकार करने का प्रयास करना चाहिए। इधर आयुर्वेद के विद्वानों में जागृति हो रही है। वे अपने क्षेत्र में व्यापक प्रगति भी कर रहे हैं। हमें विश्वास है कुछही समय में राजकुमारी के उन्मत्त मस्तक को आयुर्वेद के चरणों में झुकने को विवश होना पड़ेगा।

म. भा. की जनगणना के तथ्य की समीक्षा !

म. भा. में १९५१ में जनगणना हुई थी, उसके तथ्यों के अध्ययन-पूर्ण परिणामों के रूप में शासन ने एक ८ पेजी पुस्तिका प्रकाशित की है। इस पुस्तिका से जहाँ कुछ तथ्य प्रकाश में आए हैं, वहाँ शासन की कमजोरी भी समझ में आती है। पुस्तिका के तथ्यों से यह पता चलता है कि हमारे प्रदेश का क्षेत्रफल समस्त भारत के अनुपात में केवल ४ प्रतिशत है और जनता २ प्रतिशत के निकट है। इससे स्पष्ट है कि देश में इस प्रदेश की स्थिति अत्यन्त साधारण है। अवश्य ही विगत दसवर्ष में जनसंख्या में ११ प्रतिशत की वृद्धि हुई हुई है, यह प्रगति उसके पूर्व के दस वर्ष से सहसा अधिक है, किन्तु यह किन कारणों से और किन परिस्थितियों में हुई इस पर कहीं प्रकाश नहीं डाला गया है। तो इस प्रगति से यह चिन्ता प्रस्तुत हो जाती है कि शासन जो उद्योग एवं कृषि-विस्तार कर रहा है उससे होने वाला परिणाम इस प्रगति से निरर्थक बन जाता है, राज्य के इस तथ्य को समक्ष रखकर कृषि-उद्योग का विस्तार करना चाहिए। आज की स्थिति यथेष्ट नहीं हो सकती। बेकारी और जीवन स्तर की गिरावट को लक्ष्य में रखते हुए शासन ने सावधानी न रखी और प्रगति साध्य न की तो अत्यन्त चिन्ता-जनक-स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वस्तुतः जन संख्या वृद्धि के अन्य चाहे जो भी कारण खोजे जावे और उसके नियंत्रण के लिए कृत्रिम उपाय भी किए जावें, परन्तु बेकारी, आर्थिक विषमता, पोषक तत्वों का अभाव, अन्न नियंत्रण, अपर्याप्त साधन ही मानव की वासना को जागृत कर प्रजनन की प्रेरणा करने वाला बनता है। सुकाल और सुस्थिति में हम स्पष्ट देखते हैं कि श्रमशील जन-जातियों और अपर्याप्त अपोषक तत्व के खाद्यान्नों के सेवन करने वालों में ही संतति

संख्या वृद्धि होती है। स्वस्थ, सुखी और पोषक पदार्थ सेवियों की पाशविक प्रवृत्ति दमित रह कर प्रजनन परिमित बन जाता है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार दरिद्र को बहुप्रजा होना माना गया है। पर्याप्त पोषक-पदार्थ प्राप्त होने पर स्वाभाविक सन्तानोत्पत्ति सीमित बन जाती है। इसके मूलको खोजे बिना (संख्या वृद्धि के कारणों को जाने बिना) उसके कृत्रिम-उपायों कीओर भागने में तथ्य कम है। विगत दशक में देश की जो दुर्दशा खाद्यान्न और पोषक तत्वों के सम्बन्ध में हुई है, तथा बेकारी बढ़ी है, उसने मानव की सुप्त वासना को जागृत बनाया है और संख्या वृद्धि हुई है। इस स्थिति को उपेक्षित कर, संख्या वृद्धि-सीमित बनाने के साधनों की शोध में चक्कर लगाने में तथ्य नहीं है, परंतु विगत दशाब्दी में हुई ११ प्रतिशत वृद्धि के लिए शासन ने केवल दो परिवार नियोजन केन्द्र खोले हैं और उनका उपयोग कितनों ने किया है यह न जानना ही श्रेयस्कर है। इसका यह अर्थ है कि शासन इस दिशा में अंधेरे में भटक रहा है और अनुकरण मात्र कर रहा है।

पुस्तिका में कृषि-कर्म पर निर्भर रहने वालों की संख्या ७२ प्रतिशत बतलाई गई है, यह कई प्रदेशों से अधिक है, पर इसमें नए नियमों, कानूनों के कारण जो पारस्परिक संघर्ष, असंतोष बढ़ा है और अनेक कृषिजीवी परिवार उलझ गए हैं, वह कम चिन्ता की चीज नहीं है। हर गांव कोर्ट-कचहरी के बुरी तरह शिकार हैं। एक नियम का निपटारा पूरी तरह नहीं हुआ, कि दूसरे नियम को लागू करके दुहरी आपत्ति को बढ़ा दिया गया हैं यह गंभीर समस्या बन गई है।

मध्य-भारत में भी पुरुषों की तादाद महिलाओं से अधिक बतलाई गई है। ठीक इसी तरह अविवाहित आदमी की संख्या भी अविवाहित स्त्रियों से अधिक है, और उधर विधवाएँ विधुरों से विशेष हैं। इसके सन्तुलन और समाधान का शासन क्या उपाय सोच रहा है, यह पता नहीं। यदि कुछ मार्ग खोजकर स्त्रियों के आयात का मार्ग मुक्त कर दिया जाता है तो शायद सुविधा संभव होजाए, और विधुरों की तथा विधवाओं की समस्या भी कुछ सुलझ सकती है, किन्तु यह संतुलन सन्तान-संख्या वृद्धि में और भी सहायक ही हो जाएगा। एक समस्या को सुलझाने में अन्य उलझनें उत्पन्न होती हैं यह विचारणीय है।

इस प्रदेश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री-शिक्षा अत्यल्प प्रतीत होती है। इसमें शासन को चाहिए कि जहां पुरुषों को अध्यापक बनाने की प्रवृत्ति बढ़ादी गई है, वहाँ स्त्रियों का अनुपात अधिक कर दिया जाये। हमारा खयाल है कि प्राथमिक शालाओं और अनिवार्य शालाओं में आज अधिकांश बेकारों की भर्ती की जारही है, उनसे शाला संख्या में भलेही वृद्धि हो, शिक्षण-प्रवृत्ति, और स्तर गिर गए हैं। पुरुष जीविका के साधन का माध्यम बनाकर इस दिशा में अन्य प्रवृत्ति रखते हुए प्रविष्ट होता है। उसको उचित प्रवृत्ति नहीं है, न वह परिपक्व ही है। ऐसी अवस्था में यदि इन शालाओं में अधिकतर स्त्रियों को अवसर दिया जावे तो उनकी केन्द्रित प्रवृत्ति लाभप्रद, परिणामप्रद भी होगी, और स्त्री-शिक्षा में प्रोत्साहन भी मिलेगा। स्त्री-शिक्षा के सिवा यह प्रगति सहज संभव भी नहीं है।

जन-संख्या की इस पुस्तिका ने जिन तथ्यों को निकाला है, उनमें परिणाम तक पहुंचने में प्रायः वे असमर्थ रहे हैं। कुछ असंगत बातें भी होगई हैं, जैसे भाषा के प्रश्न पर उनके परिणाम भ्रामक होगए हैं। उन्होंने सारे प्रदेश में बोली जाने वाली भाषाओं, बोलियों की संख्या ७६ बतलाई है। हम समझ नहीं सके कि वे भाषा, और बोली में कौनसी विभाजक रेखा खींचकर वे तथ्य निकाल सके हैं? वस्तुतः बोली तो हर १२ कोस पर थोड़ी पलट जाती है, पर भाषा का विभाजन किस प्रकार किया गया है? यह प्रश्न वैज्ञानिक है, और गंभीर भी। जन गणना के तथ्यों के संग्रह-मात्र से यह प्रश्न सुलझाना सम्भव नहीं। संग्रहकर्ताओं ने मालवी-बोली को अलग कर दिया है जबकि भीली-निमाड़ी, रतलामी, मंदसौरी, शाजापुरी आदि कई बोलियां मालवी के ही रूप हैं। वस्तुतः हिन्दी केवल नगरों की भाषा है, व्यवहार की भाषा है, जबकि नगरों में भी अधिकांश ६० या ७० प्रतिशत परिवारों में मालवी का ही प्रयोग होता है, और ग्रामों में तो हिन्दी की अपेक्षा मालवी ही प्रमुखता से प्रयुक्त होती है। यदि सही संकलन-संशोधन किया जावे तो ७६ लाख मध्य-भारतीयों में ३५ से ४० लाख की भाषा विभिन्न भेदों में मालवी ही प्राप्त होगी। संकलनकर्ताओं ने ७६ लाख मध्य-भारतीयों की ७६ भाषा (भाषा – बोली) बतलाकर प्रति एक लाख एक बोली को बांट दिया है, तथा संकलनकर्ताओं

के इन आंकड़ों के अनुसार ही देखें तो एक लाख व्यक्ति के लिए एक भाषा बंट जाती है, फिर तो हिन्दी के बोलने वाले भी एक लाख रह जाएंगे। मालवी, नीमाड़ी, भीली एक प्रकार से हिन्दी ही है, और ये हिन्दी को पुष्ट करने वाली हैं, शब्द-शक्ति और समृद्धि देने वाली हैं, किन्तु मालवी को हिन्दी, और भीली से भी कम बतलाकर अपने संकलन की निरर्थकता ही प्रमाणित कीगई है। जब ७२ प्रतिशत 'कृषि-जीवी'—मध्य भारत है तो उसकी भाषा या बोली ५० प्रतिशत अपनी निजी मालवी है, चाहे वह कितने ही संस्कार भेदों, सीमांत-संस्कारों से संयुक्त हो। उत्तर मध्य-भारत में ही थोड़ा अंतर किया जासकता है। भारत सरकार की अपनी जन-गणना रिपोर्ट में म० भा० के १६ जिलों की जो भाषा का ब्यौरा प्रकाशित किया है, उसके अनुसार विदित होता है कि उन्होंने हिन्दी के उपभेदों को भी हिन्दी में ही परिगणित किया है। जैसे भिण्ड की जनता की ९८ प्रतिशत हिन्दी भाषा बतलाई गई है, यदि भिण्ड की स्थानीय या मातृभाषा का विचार किया जाए तो क्या भिण्ड की भाषा प्रचलित हिन्दी कही जा सकेगी? प्रायः मालव या नीमाड़, रतलाम, मन्दसौर, धार आदि की जनता मालवी भाषी होते हुए भी अपनी भाषा को हिन्दी से प्रथक् नहीं मानती, फलतः वे अपनीभाषा लिखवादेंतो विस्मय नहीं; किन्तु उससे मालवी बोलने वालों की संख्या को भिलाली से कम आँकना तो सर्वथा भ्रांत एवं आपत्ति जनक भी है। समस्त दक्षिण मध्य-भारत (और उत्तर के एक खास भाग तक) की सर्वाधिक संख्यक जनता की भाषा मालवी (अपने सीमाभेदों संस्कारों के साथ) ही है, जिसमें भिलाली, नीमाड़ी आदि संयुक्त है, और यह हिन्दी का ही रूप है। संकलनकर्त्ताओं का अङ्क-विभाजन तो भाषा-भेद और भ्रम फैलाने वाला बन गया है।

वयोवृद्ध साहित्यकार स्वर्गीय !

प्रयाग ने अपने तीर्थ गौरव के अनुरूप जिन साहित्यकारों को उत्पन्न किया, वे भी उसकी कीर्ति के अनुरूप ही रहे हैं। हाल ही में जिन वयोवृद्ध विद्वान श्री द्वारका प्रसादजी चतुर्वेदी का शरीरान्त होगया, वे भी प्रयाग के उन पुरुषों में रहे हैं, जिन्होंने स्वाभिमान पूर्वक सर्विस को त्यागकर जीवनके अंतिम चरण पर्यन्त एक मात्र सरस्वती सेवाकर साहित्य-सृजन द्वारा राष्ट्र भाषा की सतत श्री वृद्धि की है। उनकी अनेक रचनाएँ देश भर में अनेक परिवारों में आदर पूर्वक पढ़ी गई हैं। उनका शब्दकोष साहित्यिकों की निधि है, और बाल साहित्य का विस्तृत-संग्रह तो वास्तव में हिन्दी में अनूठा ही माना गया है। महाभारत और रामायण के अनुवाद ने सर्वत्र सम्मान प्राप्त किया है, छोटी बड़ी रचनाओं की संख्या लगभग दो सौ है, जिन्होंने चतुर्वेदीजी को अमर कर दिया है, अब भी उनकी कुछ रचनाएँ अप्रकाशित हैं, जिनमें ब्रज भाषा का विशाल कोष प्रमुख है, चतुर्वेदीजी हिन्दी के निर्माताओं में से रहे हैं। वे मालवीयजी, द्विवेदी जी के युग के अवशेष थे, जिन्होंने जीवन भर साहित्य का सृजन निष्ठा पूर्वक किया है, और हिन्दी का भण्डार भरने को अपना लक्ष्य बनाया था, चतुर्वेदीजी आदर्श चरित्र, पवित्र जीवन, और धर्म-नीति के उदाहरण थे। उनकी अवस्था भी अन्तिम समय में ८० के निकट थी, वे वास्तव में भाग्यशाली थे, पुत्र-पौत्र कुल शील की दृष्टि से भी उनका जीवन आदर्श रहा है। सौभाग्य से उन्हें श्री० श्रीनारायणजी चतुर्वेदीजी श्रीवर (डायरेक्टर शिक्षा विभाग म. भा.) जैसे उच्चकोटि के चरित्रशील विद्वान्, साहित्यिक, विवेकशील और शिक्षा-शास्त्री सुपुत्र प्राप्त हुए हैं। उसरोज हम श्री० श्रीवरजी के निकट ही थे, जब उन्होंने अपने पितृ-चरण के अवसान का संवाद सुना, हमने उनकी पितृभक्ति की भावना का और उस आघात से उत्पन्न विषाद का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ऐसे विद्वान्, साधक और ऋषिकल्प-पिता के निधन से कौन सहृदय पुत्र विकल न हो उठेगा; किन्तु श्रीवरजी जैसे जिन्दा-दिल व्यक्ति से हमें यह आशा करना चाहिए कि वे बड़े धैर्य के साथ इस आघात को सहने का प्रयास करेंगे।

हमने प्रत्यक्ष देखा है कि अपने विरुद्ध होने वाले प्रचण्ड प्रहारों पर भी वे विचलित नहीं हुए हैं, उनके कार्यकाल की अवधि आजाने पर भी कभी उन्हें चिन्तित, या प्रयत्नशील नहीं पाया। सदैव की भांति निर्लिप्त एवं किसी भी स्थिति के लिए अपने को तत्पर पाया है। ऐसे उदार, स्थितधी व्यक्ति इस पितृ-छाया के सहसा उठ जाने पर भी धैर्य-च्युत न होंगे। श्री० श्रीवरजी के पितृपाद का अवसान सारे हिन्दी जग की हानि है। उनके इस दुःख में सारा हिन्दी जग उनके साथ सम दुःखी है, निःसन्देह ऐसे पुरुष का श्री० [illegible] स्थायी स्मारक बनाना चाहिए।

एक मनोरंजक पत्र, समस्या !

विश्व के विधुर-समाज और पत्नी पीड़ित-पुरुषों की समस्या पर अभी तक लोगों का, शासनों का, चाहिए उतना ध्यान नहीं गया है। यह विश्व-व्यापी विकार है, यदि यह विद्रोही बन गया तो विश्व में विषमता उत्पन्न हो सकती है। विश्व के विधुरों का संगठन हो जाए तो दुनिया का सारा शासन इनके हाथ आ सकता है। विवाहितों को विवश हो जाना पड़ेगा, इनका नेतृत्व विश्व-विश्रुत-व्यक्ति पं. जवाहरलालजी के हाथ सहज ही चला जावेगा। इसी प्रकार पत्नी द्वारा पीड़ित-पुरुषों का प्रश्न भी है। अवश्य ही यह विधुरों की तरह उतना व्यापक नहीं; परन्तु अबलाश्रम, अनाथाश्रम बनाने वाले पुरुषों के लिए विचारणीय अवश्य है। हाँ, पूर्व में इस पीड़ा ने इतनी प्रगति नहीं की है, जितनी पश्चिम में हमने व्यापक प्रकाश डालते हुए हुए विधुरों और पत्नी-पीड़ितों के प्रश्न की होली के (दैनिक) हिन्दुस्तान में चर्चा की थी, हमें इस विषय में अनेक विधुरों और पत्नी-पीड़ितों के प्रेम पूर्ण पत्र प्राप्त हुए हैं। हमें हर्ष है कि उन्होंने हमारी सेवा और सूझ को सराहा है, हमारी सच्ची सहानुभूति को समझा है। विधुर जीवन का लम्बा अनुभव रखने के कारण (यद्यपि अब हम इस जीवन से मुक्त बन साधारण स्थिति में आगए हैं) हमें विधुरों की व्यथा-कथा का वैयक्तिक अनुभव है; परन्तु पत्नी-पीड़ित पुरुषों की पीड़ा को सुनते समझते रहने के कारण हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक है। अवश्य ही हमारा ध्यान इन दोनों के बीच के वर्ग की ओर नहीं गया, क्योंकि हमारा कोई खास अनुभव भी नहीं। समाज के इस उपेक्षित वर्ग की गतिविधि स्थिति समझने का सु (या कु) अवसर भी सुलभ नहीं हुआ, हम जैसों के लिए वह एक प्रकार से दुर्लभ ही समझना चाहिए; परन्तु समाज में इस उपेक्षित-अंग के प्रति सहानुभूति, स्नेह रखने वाले कुछ सदस्य भी हैं, यह जान कर समाधान होता है। यही कारण है कि ये उपेक्षित-जन जीवित बने हुए हैं, ऐसे ही एक सदस्य ने हमें पत्र लिखकर इस ओर हमारा ध्यान भी आकर्षित करने का प्रयास किया है। हमारे पास एक पत्र आया है, उसे हम यहाँ दे रहे हैं—

पत्र

धुलेंडी-पर्व,

सादर नमस्ते !

आपका लेख 'हिन्दुस्तान' में पढ़ कर खुशी हुई, शीर्षक भी बड़ा सुन्दर है। 'विधुर मण्डल, तथा पत्नी पीड़ित-परिषद्' और साथ ही अपने इस लेख में विश्व-समस्या पर व्यापक दृष्टि-कोण अपनाया है। इसलिए आपके बहुत आभारी हैं, इस सुयोग्य कार्य का आन्दोलन सिर्फ आपके ही नेतृत्व में होतो अधिक अच्छा, आपको दोनों प्रकार के जीवन का खासा अनुभव भी है और आप सरीखे विद्वान् तथा अनुभवी का नेतृत्व ही आवश्यक है।

परन्तु एक बात और इन दोनों से सताए जाने वाले —'बीच के लोग' उनका क्या भविष्य होगा ? इस पर अवश्य भविष्य वाणी करें तो इन बेचारों को भी कहीं कुछ मिल जाए और आपका गुणानुवाद गाया करें।

पत्र प्रेषक सज्जन ने अपना नाम - धाम - गांव अता-पता सभी संकोचवश छुपाया है। यह स्वाभाविक भी है। जिस वर्ग के लिए उन्होंने अनुरोध अभिव्यक्त किया, सहानुभूति चाही है वह समस्या ही संकोच वाली है, क्योंकि उस समाज (वर्ग) के प्रगट जनों की अपेक्षा, अप्रगट भी उनके वर्ग के अनेक लोग हैं, – जो सहज संकोच से आत्मरूप को छुपाए दूसरे वर्गों में मिल-जुड़कर बने रहते हैं। वेशभूषा में विभेद विदित नहीं होने देते उन्हें योग्य प्रतिनिधित्व या नेतृत्व अभाव भी प्रगति में प्रेरक नहीं बन पाता। यह समाधान की बात है कि जिन अज्ञात-अनाम-सज्जन ने इस उपेक्षित-अल्पमत-वर्ग की करुणा की है, वह उनके उज्वल-भावी की सूचक ही होगी। आज किसी सेवा कार्य का 'सेवा' की अपेक्षा अधिक प्रचार होता है। पत्र लेखक सज्जन प्रचार-पराङ्मुख प्रतीत होते हैं, वे वास्तविक सेवा कर सकते हैं। हम उन्हें उनके कार्य में इतनी ही अपनी सूझ की सहायता कर सकते हैं कि वे उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्रीमान् मुंशीजी की श्रीमतीजी से अवश्य मिललें, उन्होंने कुछ दिनों पूर्व राज्य-परिषद में एक प्रस्ताव इसी आशय का रखा था कि इस बिचले समाज की संख्या बढ़ जावे। सो उनसे पता पड़ जावेगा कि अब इस समाज की सदस्य-संख्या कितनी बढ़ी है। 'बल' तो इस समाज में सम्भव नहीं, संख्या का ही सहारा रहता है। यदि कोई सहानुभूति रखने वाले सज्जन समाज में से संशोधन करने का काम उठाले तो अवश्य बड़ी जमात जुड़ जाएगी, और पत्नि-पीड़ितों के प्रश्न पर भी पर्याप्त प्रकाश प्राप्त हो सकेगा।

विधुर-मंडल के लिए पत्र लेखक-सज्जन ने हमें नेतृत्व करने के लिए स्नेहपूर्ण-अनुरोध किया है। हम उनके अत्यंत आभारी हैं, परन्तु खेद है कि इधर हम उस वर्ग से विलग पड़ गए हैं, और दूसरी संस्था के सदस्य भी, इसलिए ईमानदारी से किसी एक संस्था की सेवा ही कर सकें तो सार्थकता समझेंगे। रहा विधुर-वर्ग का सवाल, सो उनको विश्व के विधुरों के सरताज पं० नेहरु का नेतृत्व सहज सुलभ होसकता है। वे आत्म विस्मृत हो गए हों तो उन्हें आत्मरूप का भान करवाया जाए तो निःसंदेह यह विधुरों की संस्था सारे विश्व पर वर्चस्व स्थापित करलेगी।

सिद्धराज जयसिंह का न्याय

श्री॰ वृन्दावनलालजी वर्मा

सिद्धराज जयसिंह गुजरात के राजा (११००—११४५) थे। राजधानी गुजरात के उत्तर में अनहिलपाटन थी जो आज भी पाटन के नाम से प्रसिद्ध है। खम्बात का नगर और बन्दरगाह गुजरात के राज्य में था। खम्बात में पारसी, हिन्दू और मुसलमानों की आबादी थी। हिन्दुओं और पारसियों के मन्दिरों के साथ साथ वहां मुसलमानों की मसजिदें भी थीं। इनमें एक सबसे बड़ी थी जिसका प्रधान मुल्ला ख़ातिब अली था। एक दिन हिन्दू, पारसी और मुसलमानों के आपसी मतभेद को झगड़े के कारण बाढ़सी मिल गई हिन्दू और पारसी एक ओर और मुसलमान दूसरी ओर। इतनी लड़ाई हुई कि अस्सी मुसलमान मारे गये। हिन्दुओं और पारसियों ने खातिब अली वाली मसज़िद ढा दी।

खातिब अली बचकर भाग निकला और किसी तरह अनहिलपाटन पहुंचा। हिन्दुओं और पारसियों के मुखिया भी जापहुंचे। जयसिंह के दरबारियों ने खातिब अली की एक न सुनी। खातिब अली जयसिंह तक पहुंच नहीं सकता था।

एक दिन जयसिंह शिकार खेलने के लिये जंगल की ओर गये। खातिब पहले से ही उनके मार्ग में खड़े एक पेड़ के पीछे जा छिपा।

जयसिंह हाथी पर चढ़े उस पेड़ के पास जैसे ही आये मुल्ला उनके हाथी के सामने जाखड़ा हुवा। नम्रता के साथ गिड़गिड़ाया,—'मेरी एक फ़रियाद सुनली जावे, महाराज।'

सिद्धराज ने हाथी खड़ा करदिया।

मुल्ला ने राजा के हाथ में हिन्दी में लिखा हुआ एक 'क़सीदा' पेश किया। कविता में मुल्ला ने अपनी पूरी व्यथा विस्तार के साथ लिखदी थी।

जयसिंह ने अपने निजी सचिव को, जो साथ में था, आदेश दिया,—'ख़ातिब अली को पूरी सावधानी के साथ अपने पास रखना। इसको किसी तरह का भी कष्ट न होने पावे। जब मैं कहूँ तब इसे मेरे सामने हाज़िर कर देना। बात फैलने न पावे।'

ख़ातिब अली को सचिव ने अपनी रक्षा में लेलिया।

सिद्धराज जयसिंह बहुत शीघ्र शिकार से लौट पड़े।

(२)

शिकार से लौटकर उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री से कहा, 'तीन दिन के लिये मैं राजकाज से पूरी छुट्टी लेकर अपने अन्तःपुर में आराम करूंगा। किसी भी काम के लिये कोई भी मेरे पास न आवे।'

मन्त्री को काम सौंपकर जयसिंह अन्तःपुर में चले आये और जैसे ही रात लगी एक तेज ऊंट पर सवार होकर खम्बात की ओर चलदिये। पाटन से खम्बात लगभग साठ कोस की दूरी पर था।

लगभग २१ घंटे लगातार चलकर जयसिंह खम्बात नगर के बाहर सूर्यास्त के पहले आगये और सेठ साहूकार का वेश धर के नगर में गये।

उन्होंने बाज़ार के कई प्रमुख स्थानों में बड़े ढंग से ख़ातिब वाली दुर्घटना की खोजबीन की। घटना के तथ्य उन्हें मालूम होगये। ख़ातिब अली की फ़रियाद सच्ची निकली। वे तुरन्त पाटन की ओर लौट पड़े।

परन्तु लौटने के पहले उन्होंने समुद्र के खारी जल को एक बर्तन में भरवा लिया। इसे वे अपने साथ लेते गये।

उन्होंने फिर उसी तेज़ी और लगन के साथ यात्रा की, परन्तु पाटन में प्रवेश रात के समय किया। किसी ने नहीं पहिचान पाया।

जयसिंह ने दूसरे दिन दरबार किया। उन्हें विश्वास था कि 'न्याय को देर में करे तो ढेर में मिलजाता है।' इसीलिये ज़रा भी देर नहीं लगाई।

दरबार में अन्य फ़रियादियों के साथ ख़ातिब

अली को भी बुलवाया गया।

खातिब अली ने विस्तार के साथ अपनी फ़रियाद सुनाई।

एक मन्त्री ने बीच में रोक कर खातिब को धमकाया. 'तुमारी बात झूठ निकली तो गर्दन पर सिर नहीं रहेगा।'

खम्बात के कुछ अन्य पक्ष वाले भी जो पाटन में ठहरे हुए थे, उस समय दरबार में थे। उन्होंने अपने पक्ष की बात बड़े ही दृढ़ स्वर में सुनाई।

परन्तु सिद्धराज ने खातिब की पूरी बात सुनी और अपने एक सेवक द्वारा वह बर्तन मँगवाया जिसमें वे खम्बात से समुद्र का पानी भर लाये थे।

वह पानी सभी को थोड़ा थोड़ासा दिया गया। पीते ही सभी ने कहा, 'यह तो समुद्र का पानी है! बहुत ही खारी !!'

किसी की भी समझ में नहीं आरहा था कि राजा ने समुद्र का पानी कहां से और किसके हाथों मंगवाया और भरे दरबार में क्यों थोड़ासा उन सब को चखाया।

सिद्धराज जयसिंह ने बतलाया,—'मुझे तुम लोगों में से किसी पर भी विश्वास नहीं था, क्योंकि धर्म से सम्बन्ध रखने वाले लड़ाई झगड़ों में सब पक्ष अपनी अपनी बात को ऊपर उठाने और उसका समर्थन करने में कभी कोई कसर नहीं लगाते। इसलिये मैं स्वयं खम्बात गया और वहां मामले की छानबीन की।

छानबीन किस तरह की इसे उन्होंने ब्यौरे के साथ सुनाया।

फिर बोले, 'मैंने खातिब अली की फरियाद सच्ची पाई। हमारा धर्म है कि प्रजा के प्रत्येक जन की रक्षा की जावे और सब के साथ एकसा बर्ताव किया जावे जिससे सब लोग शान्ति के साथ अपना अपना काम कर सकें।"

फिर अपराधियों को दण्ड देने की बात आई।

प्रधान अपराधियों का पता उघड़ने में विलम्ब नहीं हुआ।

राजा ने उन सब को पकड़ कर कठोर दण्ड दिया और खातिब अली तथा उसके साथियों को एक लाख रुपया मसजिद को फिर से बनवाने के लिये दान किया।

और, खातिब अली को चार कपड़े भेंट करके विदा किया।

टिप्पणी—

कहानी ऐतिहासिक है। आधार अल्तमश (१२१० ई०) के दरबारी मुल्ला उफ़ी की फ़ारसी पुस्तक 'जमियुल हिकायात' है। उफी सुल्तान अल्तमश का इतिहास लेखक भी था। उसकी पुस्तक का अनुवाद Eliliot & Dowson ने अपनी पुस्तकमाला History of India as told by its own historians. के दूसरे खंड में किया है। अन्य इतिहास लेखकों ने भी जयसिंह के इस न्याय का वर्णन किया है।—लेखक

* * *

पृष्ठ २१ का शेष

दर्शन की ऊँची उड़ान नहीं है?" परन्तु स्वामी विवेकानंद के इन शब्दों को याद कीजिये-'मनुष्य के स्वभाव की ख्याति को कभी मत भूलो। मैं सर्वश्रेष्ठ देवता हूँ-ऐसा महान देवता जैसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। क्राइस्ट और बुद्ध अनंत समुद्र की तरगों के समान हैं, और वह अनंत समुद्र मैं हूँ।'

मैं यह मानता हूँ कि स्वतंत्र भारत में इस प्रकार का वातावरण पैदा करने में समय लगेगा। परन्तु मैं ब्राउनिंग के शब्दों में यह कहना चाहता हूँ कि "जीवन एक अनंत और दुष्कर घटना है; वह विकास की एक असीम कृपा है जिसमें हम सुधार की लड़ाई लड़ने में घबड़ा जाते हैं, ऊँचे चढ़ने की कोशिश में घुटने टेक देते हैं।"

अहिंसा की व्यावहारिक मान्यताएँ

श्री० पांडेय जगन्नाथप्रसाद सिंह

यह भौतिकवाद का युग है। सब लोग शक्ति की उपासना में लीन हैं; आध्यात्मिक शक्ति नहीं, बल्कि भौतिक शक्ति। अणु-शक्ति के इस युग में जब कि हवाई जहाज, बम, टैंक आदि विप्लव करने की दिशा में अग्रसर हैं, हमने देखा कि ढाई पसलियों का एक दुबला-पतला मनुष्य हाल तक अपने अहिंसा के सिद्धांत का प्रचार कर रहा था,–उस सिद्धांत का प्रचार जिसे शताब्दियों पहले जैन और बौद्ध दार्शनिकों ने किया था।

अहिंसा है क्या? अब तक साधारण लोगों ने संक्षेप में किसी भी जीव को किसी प्रकार सताने, मारने या नुकसान पहुँचाने से बचाने को अहिंसा समझा है। हम देखें कि जैन और बौद्ध दार्शनिकों ने किस रूप में अहिंसा का प्रचार किया था।

जीव-मीमांसा

जैनियों की दृष्टि में जितने चलते फिरते जन्तु इस संसार में हैं, उतने ही जीव हैं। सिर्फ जानवरों आदि में ही जीव नहीं हैं, बल्कि वनस्पतियों में भी हैं और यहाँ तक कि धूल के प्रत्येक कण में भी जीव मौजूद हैं। उनका विश्वास है कि प्रत्येक जीव असीम ज्ञान, शक्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति करने की क्षमता रखता है; इन गुणों के बीज हर जीव में वर्तमान हैं। ऐसी दशा में प्रत्येक जीव चाहे वह सम्प्रति जितना भी छोटा हो, किसी बड़े से बड़े जीव के मुकाबले में बड़ा बन जा सकता है। इसलिए प्रत्येक जीव की कीमत और उसका अधिकार हमें उतना ही समझना चाहिए जितना अपना। इस प्रकार जैन दार्शनिकों का मुख्य सिद्धान्त 'जीव मात्र पर दया' है। जीवन के प्रत्येक पल में एक जैन इस सिद्धांत के पालन करने की चेष्टा करता है। परन्तु अहिंसा का पूर्ण रूपेण पालन करना असम्भव है। महाभारत में लिखा है कि—'संसार जीवों से आच्छादित है और हमारी पलकों के एक बार खुलने और बन्द होने के परिणाम-स्वरूप हजारों जीवों की मृत्यु हो जाती है।' भगवद्गीता में लिखा है, कि जीवन जीवन का जीवन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अहिंसा के विषय में जैनियों के सिद्धांत बहुत कष्टप्रद और अव्यावहारिक हैं।

गौतम बुद्ध ने भी अहिंसा के सिद्धांत का प्रचार किया था। परन्तु उनके सिद्धांत कष्टप्रद और अव्यावहारिक नहीं थे।

एक नय प्रयोग

अहिंसा के इतिहास का एक नया अध्याय महात्मा गांधी से प्रारम्भ होता है। गांधीजी की अहिंसा पूर्ण-रूपेण व्यावहारिक और लाभदायक है। उनके सिद्धांत का सदुपयोग हम अपने जीवन में आसानी से कर सकते हैं। गांधीजी की अहिंसा केवल सिद्धांत ही नहीं बल्कि उनके जीवन का अंग हो गई थी। उनका संपूर्ण जीवन अहिंसा पर ही आधारित था। गांधीजी की खूबी यह थी कि अपने सिद्धांत का प्रयोग उन्होंने स्वयं किया था और काफी सफलता भी प्राप्त की थी। राजनीति में अहिंसा की प्रतिष्ठा कर गांधीजी ने संसार को एक नई चीज दी। राजनीति को उन्होंने अहिंसा की भित्ती पर खड़ा किया था। उनका कहना था कि अहिंसा का प्रयोग शब्दों में ही नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक काम में करने की जरूरत है।

इन सब बातों को समझते हुए अब हमें विचार करना है कि स्वतन्त्र भारत में अहिंसा को हम कौन सा स्थान दे सकते हैं।

राजनीति में अहिंसा का समावेश

सबसे पहिले हम इस बात को समझें कि गांधीजी ने राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा के सिद्धांत का समावेश क्यों किया। बहुत लोग इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दे सकते हैं:—महात्माजी बहुत चतुर राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने देखा कि भारत एक गुलाम देश है और बहुत

कमजोर भी है। यहां के लोग बहुत गरीब हैं। लड़ने के लिये हमारे पास साधन नहीं है। एरोप्लेन, बम, बन्दूक आदि घातक हथियारों के सामने हमारी लाठी और तलवार नहीं ठहर सकती। इसलिये गांधीजी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ने के लिये अहिंसा को ही अपना हथियार बनाया। उन्होंने सोचा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये भारत को शाति-पूर्वक अहिंसात्मक लड़ाई ही लड़ना लाभप्रद हो सकेगा। उन्होंने दुश्मन पर विजय प्राप्त करने के लिये क्राइस्ट का अनुसरण किया; जिन्होंने कहा था कि यदि कोई तुम्हारे बायें गाल पर एक चपत जमा दे तो उसके सामने दाहिना गाल भी कर दो।

यह उस समय की बात है जब भारतवर्ष गुलामी में जकड़ा हुआ था। परन्तु आज, जब कि देश स्वतंत्र हो चुका है, हमें अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन करने की जरूरत है। इसी विचार से प्रेरित होकर कांग्रेस ने यह तय किया कि अहिंसा एक सिद्धान्त के रूप में रहेगा और समयानुसार उसका रूप बदलता रहेगा। परन्तु गांधीजी इस परिवर्तन के पक्ष में नहीं थे। उनके लिये अहिंसा अस्थायी अस्त्र नहीं था। उनका सम्पूर्ण जीवन ही अहिंसा के आधार पर निर्मित था। वे अहिंसा को मानव-समाज के लिये स्थायी नीति मानते थे।

कांग्रेस ने अहिंसा की नीति में जो परिवर्तन स्वीकार किया था, उससे बहुत से गांधीवादी सहमत नहीं हैं। उनकी राय में कांग्रेस का यह निर्णय जल्दीबाजी में हुआ है।

अहिंसा के विभिन्न पहलू

हम इस समस्या पर जरा ऊँचे स्तर से विचार करें। हम मनुष्य हैं और मनुष्य होने के नाते हम बुद्धिमान हैं, विवेकशील हैं। हममें दो तरह की अनुभूतियां हैं—कर्मेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने वाली और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने वाली। कर्मेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभूति हमें एक-दूसरे से अलग होने की प्रेरणा देती है, हममें से प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करता है, और ऐसा समझने लगता है कि मैं स्वयं ही पूर्ण हूँ, किसी के सहयोग की आवश्यकता मुझे नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से दुराव का अनुभव करता है और सोचने लगता है कि यह मेरा है और यह तुम्हारा या किसी दूसरे का। परन्तु ज्ञानेन्द्रियों की यह अनुभूति हमें एकता के सूत्र में बाँधती है। समूचे मनुष्य समाज को हम अपना समझने लगते हैं, एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदारी का अनुभव करने लगते हैं। ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूति हमें एकता का पाठ पढ़ाती है।

मनुष्य होने के नाते हमारे कर्तव्य महान और अपरिमित हैं। हमारी जबाबदेहियां अपने ही प्रति नहीं, वरन् समूचे देश के प्रति, और यदि ठीक से सोच देखें, तो समूचे संसार के प्रति है। हमें यह जानना चाहिये कि हमारे कार्यों का असर समूचे संसार पर पड़ता है। इसलिये हमें अपनी निगरानी खुद ही करनी है। हमें अपने विचारों, वक्तव्यों और कार्यों को काबू में रखने की नितान्त आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्य यदि अपने को ही समझे तो अवश्य ही अनुभव करेगा कि प्रत्येक जीव बराबर है, प्रत्येक जीव उच्च से उच्च होने की क्षमता रखता है, चाहे वह सम्प्रति छोटा ही क्यों न हो। प्रत्येक जीव की कीमत है। इसलिये हमें सबों को तरक्की करने का मौका देना चाहिये. चाहे वह किसी भी दशा में क्यों न हो। यही हमारा कर्तव्य है।

सार्वभौमिक प्रेम

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे जीवन का सारभूत सिद्धान्त है सार्वलौकिक प्रेम। इसलिये जीवात्मा पर प्रेम प्रदर्शित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। हमें दूसरों को कष्ट देने के पहिले यह सोचना चाहिये कि उसी प्रकार का दुःख हमें भी भुगतना पड़े तो हमारी दशा कैसी हो जायगी। इस सार्वलौकिक प्रेम वाले सिद्धान्त के अन्तर्गत हमारा अहिंसा का सिद्धान्त है। उन मनुष्यों को जो तर्क और ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूति से शासित होते हैं,

और जिनके दिलों में आवश्यकताओं और लालसाओं का स्थान गौण है, अहिंसा को अपने जीवन का अंग बना लेना चाहिये, परन्तु जो लोग मनुष्य की इस परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते, मैं समझता हूँ, उनके लिये अहिंसा एक मजाक की चीज है।

अब तक हमने इस विषय पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया है। परन्तु इसके साथ राजनीति भी तो है। राजनीति दर्शन का सहायक है। मनुष्य पहले एक चेतन प्राणी, उसके बाद सामाजिक और राजनीतिक जीव है। राजनीति, समाज और अन्य चीजें मनुष्य को अपनी प्रकृति के समझने में सहायक मात्र हैं। अपनी उच्चतम भलाई की प्राप्ति के लिये ही हमें राजनीतिक संस्थाओं की जरूरत पड़ती है। वह उच्चतम भलाई है क्या? वह भलाई आत्म-साधन के सिवा और कुछ नहीं है। यदि राज्य व्यक्ति को आत्म-चिंतन में सहायता देता है, तो वह अच्छा और लाभदायक होता है। इसलिये राजनीति स्वयं कोई लक्ष्य नहीं है, बल्कि आत्मा की उन्नति का साधन-मात्र है। किसी भी राजनीतिक संस्था का रूप इस भाँति होना चाहिये जिसमें मनुष्य की उच्चतम भलाई को हृदयंगम करने में सहायक हो सके। वह उच्चतम लाभ क्या है? मनुष्य क्या है? वह कहाँ से आया है और कहाँ जायगा? इन प्रश्नों का उत्तर आपको दर्शन ही दे सकता है, राजनीति नहीं। राजनीति मनुष्य को किसी खास लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक हो सकती है। वह स्वयं उस लक्ष्य का निर्माण नहीं कर सकती। मनुष्य के सामने सुन्दर लक्ष्य रखने का काम दर्शन का है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति दर्शन का अनुचर मात्र है।

अब अगर स्वतंत्र भारत महान और आदर्श बनना चाहता है, अगर वह प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है, यदि आज के भौतिकवाद में अग्रगण्य और आध्यात्मवाद में पिछड़े हुवे संसार के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करना चाहता है, तो उसे महात्मा गांधी का अनुसरण करना चाहिये, उसे अहिंसा और सत्य की नींव पर ही अपनी राजनीति का निर्माण करना चाहिये। कुछ लोगों की नजरों में राजनीति को अहिंसा की भित्ति पर प्रतिष्ठित करना एक असंभव कल्पना हो सकती है, कुछ लोग इसे यूरोपियन आदर्श भी कह सकते हैं। परन्तु मैं एक ऐसे पूर्ण भारत का स्वप्न देखता हूँ, जहाँ बराबरी, स्वाधीनता और भ्रातृभाव की प्रधानता रहेगी और उस भारत में जो अब अधिक दूर नहीं है, अहिंसा का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण रहेगा।

अब हम इस बात पर विचार करें कि भारत की वर्तमान समस्याओं का समाधान अहिंसा द्वारा क्योंकर होगा; दंगा, बलात्कार, जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन आदि को हम कैसे दूर कर सकेंगे। तो क्या हम हथियारबंद पुलिस द्वारा दंगों को रोक सकेंगे? क्या हम टैंकों और परमाणु-बम द्वारा शांति की स्थापना कर लेंगे? हरगिज नहीं। हथियारों के बल से हम इन दंगों को दबा भर सकेंगे, उसे एकदम बंद नहीं कर सकते। पंजाब का दंगा हम दबावेंगे, परन्तु भारत के अन्य भागों में फिर दंगे हो जा सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हम हथियारों के बल से भारत की वर्तमान ज्वलंत समस्याओं का समाधान कभी नहीं कर सकते। इसके लिये तो हमें जन-साधारण की दंगा-फसाद करनेवाली मनोवृत्ति को ही बदलना होगा। उन्हें दूसरे ही दृष्टिकोण से शिक्षित करने की जरूरत है। उन्हें यह बतलाने की जरूरत है कि प्रेम द्वारा हम घृणा पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं।

सशस्त्र सैनिकों के स्थान में अहिंसक सैनिक होने चाहिये। हमें परिस्थिति पर प्रेम, मनुष्यता, हिम्मत, अडिग सत्य, ताकत, विवेक, आत्म-संयम, दया और क्षमा से विजय पाना चाहिए। ये ही सब गुण अहिंसक सेना के हथियार होने चाहिये; और तभी वह सेना सफलता-पूर्वक काम कर सकेगी। अहिंसा की कीमत आँकने के लिये स्वतंत्र भारत को एकता के सिद्धांत पर अमल करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को बापू, बुद्ध और ईसामसीह के समान ऊँचा बनने की कोशिश करनी चाहिए। यहाँ पर कुछ लोग शंका कर सकते हैं। 'क्या यह कभी संभव और व्यावहारिक है? क्या यह

—शेष पृष्ठ १८ पर

कैलास मानसरोवर की यात्रा

श्री ॐ नारायणजी

वास्तव में कैलास भगवान शंकर का निवास स्थान है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव तो उन्हीं को होता है जो कैलास-मानसरोवर की यात्रा करते हैं। भारत के प्राचीन साहित्य और काव्य ग्रन्थ इसकी महिमा के गान से ओत प्रोत हैं। परन्तु स्वल्प बुद्धि के कारण हमारी समझ में न्यूनताही रहती है भगवद् भक्तों को तो विराट पुरुष दिगंबर शंकर का साक्षात् दर्शन वहां होता ही है परन्तु सर्व साधारण को भी शंकर तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव यहां आने से हो ही जाता है। अर्थात "शं करोतीति शंकरः" श्रेय अर्थात "अशान्तस्य कुतः सुखम्" शान्ति जिसके पास नहीं है उसे सुख कहां? इस शान्ति को प्राप्त करने का प्रथम सुअवसर बिना योग साधना के ही कैलास की परिक्रमा मात्र से मिल जाता है। वर्तमान संसार के भीषण संघर्षमय भौतिक युग में भी कैलास में परिपूर्ण शान्ति का निवास है। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के द्योतक प्रणव यहां अमरनाद के प्रवाह रूप में सुनाई पड़ते हैं। उस अज, अद्वैत, अखण्ड, शिव की ज्योति, शक्ति के ऊपर लगभग ३०० फीट की ऊंचाई से क्षितिज तक फैली हुई क्षीर-धवल हिमानी में दृष्टिगोचर होती है। यहां पहुंचने पर ज्ञान और कर्म की स्वतः एकता हो जाती है। कैलास की भूमि में पवित्रता कैसे अखण्ड रूप से निवास करती है, इसका वर्णन वाणी अथवा लेखनी से नहीं हो सकता। लोकजीवन की अपवित्रता तथा संसार की अधोगति के मूल कारणभूत काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि का इस शान्तिसागर की गहराई में विलीनीकरण हो जाता है। उज्वल हिमाच्छादित शिखरों से प्रवाहित शीतल वायु, नानाप्रकार के वनौषधियों की जो सुगन्धि फैलाती है उसमें रोग और उनके कीटाणुओं का सर्वनाश हो जाता है। ये सुगंध भरे पवन मानव-स्वास्थ्य के विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। कुछ यात्रीगण बद्रिकाश्रम को कैलास - मानसरोवर से अधिक अलौकिक गुणों से सम्पन्न बताते हैं परन्तु बद्रिकाश्रम के यात्री लौटते समय पेचिश बीमारी के शिकार हो जाते हैं, जिससे वहां की अलौकिकता के भाव को अनायास ही एक गहरा धक्का लगता है। सत्य तो यह है कि बद्रिकाश्रम वास्तविक हिमालय से दक्षिण-मध्यम पर्वत पर स्थित है। अतः कैलास की सी आबहवा यहां की नहीं है। बद्रिकाश्रम की यात्रा में हिमालय का पूरा भ्रमण भी नहीं हो पाता। यहां के यात्रियों को अनभिज्ञता के कारण हिम तथा रेत मिला जल पीना पड़ता है और इन लोगों का संयम भी ठीक नहीं रहने पाता, अतः रुग्ण होना स्वाभाविक है। लेकिन कैलास-मानसरोवर की यात्रा में हिमालय की पूरी परिक्रमा करनी पडती है तथा तिब्बत के १४,००० फीट ऊंचे मैदान में १९-२० दिन तक भ्रमण करने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है। इसीलिये यहां के यात्रियों के स्वास्थ्य में एक विशेष प्रकार का तेज झलकता रहता है। तिब्बत प्रदेश के पशु, घोड़े, बकरी, याक (बैल) आदि भी इतने हृष्ट-पुष्ट होते हैं कि चार-चार मन भार आसानी से वहन कर सकते हैं। बहुत समय से हमारी इच्छा थी कि इस स्वर्ग खण्ड की यात्रा की जाए। अन्त में भगवान की कृपा से वह सुयोग आया, और श्री मुनिजी, और हम दिनांक १३ जून १९४८ को उज्जैन से निकल कर रेल और मोटर के जरिए काठ गोदाम पहुँचे। यही रेलवे का आखरी स्टेशन है! अभी सुबह के आठ बजे थे। सामने कई बसें खड़ी थीं। देखते ही देखते मैदान खाली हो गया। हमने स्थान रिजर्व करा लिया था, अतः निश्चिन्त होकर हमने मूंह हाथ धोया और अपने स्थान पर आकर बैठ गये। ज्यों ही बस चली हमें प्रसन्नता का भास हुआ। काठगोदाम के मध्य में से होते हुए हम गाँव के बाहर आगये। पर्वतीय प्रदेश की रमणीयता हमारी आँखों को सुख देने लगी। यहीं से हमारी बस टेढ़ी-तिरछी, ऊंची नीची घाटियों और पर्वतश्रेणियों पर से होती हुई आगे बढ़ती है। मैदान दीखना अब बंद हो चुका था। नीचे घाटियों में हरे वृक्षों से भरे वन दीख पड़ते थे। किन्तु ऐसे दृश्यों को कहां तक निहारा जाये, अन्त में आँखें थकने लगीं। गाड़ी दौड़ते हुए किसी मोड़ पर मुड़ती तो शरीर का सम्पूर्ण वजन पड़ोसी पर आ पड़ता था। एक विशाल दरी ने मुनी महाराज का ध्यान आकर्षित किया। बीचो-बीच चाँदी की पट्टी की तरह चमकने वाली सरिता की शोभा सचमुच लुभाने वाली थी। कैलाश की यही पहली

सीढ़ी है। यही यक्षों की भूमि है। पर्वतीय सौन्दर्य गायों के हरे मैदानों पर चरने वाले झुण्डों से और भी निखर रहा था।

लो, रानीखेत आ पहुंचे। अधिक समय हमें रुकना नहीं पड़ा। चार-पाँच मील ऊपर चढ़ाई के बाद रानीखेत की बसाहट और भी सुन्दर दीख पड़ती है। थोड़ा आगे बढ़ते ही अल्मोड़ा दीखने लगा। ड्रायवर ने बस रोककर यात्रियों से 'पोलटेक्स' लिया और फिर चले।

अल्मोड़ा में—

अल्मोड़ा १०–१५ हजार की बस्ती है। पर्वतीय प्रदेश में यह सबसे बड़ा शहर माना जाता है। नगर में अच्छी व्यवस्था है। पानी की कमी ग्रीष्म में प्रतीत होती है। यहाँ भी शरणार्थी पुरुषार्थ कर धन कमाते हैं और दिन काटते हैं। हमारे पास एक दूकानदार के नाम का पत्र था। धर्मशाला में ठहर कर, स्नान, आदि से निवृत्त हो हम बाहर निकले। दूकानदार ने प्रेम से हमारा स्वागत किया और बताया कि एक महात्मा कैलाश जाने वाले हैं। हमें उनसे बातचीत करके साथ जाना चाहिये। महात्मा का पता एक दुकान पर से मिल सकता था। निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने पर दुकानदार सज्जन ने हमें महात्माजी का पता बताया। सच तो यह था कि वह स्वयं महात्माजी का बड़ा भक्त था और अल्मोड़ा का माना हुआ धनाढ्य था।

महात्मा मद्रासी थे, पढ़े लिखे और प्रभाव शाली। नाम था-प्रणवानन्द एम.ए। शरीर दुबला, पक्का रंग, ५०-५५ वर्ष की उम्र स्वाभिमानी और किंचित चिड़ चिड़ा स्वभाव। हमने नमस्कार किया। उन्होंने कहा, "मुझे समय नहीं, जल्दी कहो क्या चाहते हो"

"भगवन, मैंने सुना है आप कैलाश जा रहे हैं।" नारायण ने पूछा।

"हां, तुम्हें क्या चाहिये।"

नारायण ने हृदय की बात कही। महात्माजी ने पूछा "तुम्हारे पास कितना रुपया है।"

"३०० तीनसौ।"

"इतने से क्या होगा" और एक पुस्तक हमारी ओर फैंकते हुए कहने लगे-"तुम दोनों के बीच कमसे कम ८०० चाहिए। मरना हो तो हमारे साथ मत चलो।"

रुपयों की व्यवस्था के लिये प्रयत्न आरम्भ हुआ। खैर, अंत में वह समस्या हल भी हुई।

उस दिन अल्मोड़ा में महात्मा गांधी की अस्थियाँ आने वाली थी, ता. २१ को उन्हें वहाँ से बागेश्वरी ले जाने की व्यवस्था की गई थी। अतः काफी चहल पहल थी। महात्मा गांधी की जय से वातावरण ध्वनित हो रहा था। रास्ता तंग था; पर दुकानों पर लोगों की भीड़ जमी हुई थी। ठाट-बाट के साथ अस्थियाँ लाकर कांग्रेस भवन में रख दी गई।

दोनों दिन हमने आवश्यक सामान जुटाने में खर्च किये। चलने की तैयारी हुई। उस दिन सौभाग्य से सरोजिनी नायडू भी वहाँ आगई। उनके दर्शन हुए। इधर कुली काफी प्रतीक्षा के पश्चात् आया। हमने टट्टुओं पर अपना सामान बाँधा और पैदल यात्रा आरम्भ की। कुछ मील ऊँचाई पर चढ़ने के पश्चात् अंधकार बढ़ने लगा। सम्पूर्ण सृष्टि सौन्दर्य मानों अंधकार में विलीन होगया। रास्ता स्पष्ट दीखना बंद होगया। कहीं ऊँचे कहीं नीचे कदम गिरते जा रहे थे। आषाढ़ की द्वितीया थी। चन्द्रमा ने थोड़ा विलम्ब कर उदयाचल को प्रकाशित किया। सचमुच अन्धकार के इन क्षणों में यह भास होगया कि भगवान् भास्कर के बिना सब जीव कितने पंगु हैं।

"देखो प्रतापसिंग," स्वामीजी ने कुली से कहा, "यहीं बारीचिना में हमें मुकाम करना है बात की बात में हम आठ मील आगये। गाँव के इस ओर विजयसिंग की दुकान है, वहीं ठहरेंगे। गांव में खटमल का बड़ा त्रास है।"

यात्रा का यह पहला दिन था। विजयसिंह की दुकान पर जाकर सबने अपना सामान ठीक किया। महात्माजी के साथ और लोग भी आये थे। परिचय हो जाने से सभी बातचीत करके अपने श्रम को मिटाने लगे। अधिक थके होने से नींद जल्दी आगई। महात्माजी के आदेश हम पर डिक्टेटर से कम न थे। सामान बाँधा। मार्च का आदेश हुआ और आगे बढ़े। प्रातःकाल की मंद वायु मन को प्रसन्न करने लगी। चीड़ के वृक्षों से लदी पर्वत घाटियां अनुपम शान्ति और पावित्र्य के भावों को मन में जाग्रत करने की सामर्थ्य रखती है। मन निर्मल होकर प्रकृति के विराट सौन्दर्य में रमा जा रहा था।

महात्माजी बीस वर्षों से इन्हीं पर्वतों में घूमते रहे हैं। उन्हें चलने का अभ्यास था। रास्ता छोड़ कर पगडंडी पर चलते हुए उन्होंने सचेत किया कि "देखो मेरे अनुसार कहीं तुम लोग आम रास्ते से अलग न होजाना। मैं पहली बार एक पगडंडी पर सामने से घूमकर आने वाली सड़क का लक्ष्य कर चला था। वह पगडंडी नीचे कंदरा में उतर गई। बड़े कष्ट से मैं सारे दिन भटकता रहा।"

धूप में चलने का अभ्यास हमें कम था प्यास के मारे परेशानी होने लगी। चट्टानों के बीच कंठ रुद्ध होने लगा। महात्माजी की ओर से सुझाव दिये जाने पर भी रास्ता बदल चुका था। सरयू वहाँ से दो-तीन मील दूर उतार पर थी। पर भाग्य की बात है नीचे दीखने वाले झोपड़ों के समीप एक व्यक्ति ने पानी से झारी भर दी।

आगे बढ़ते हुए सेरा घाट का पुल लगा। सरयू अब अपनी क्षीण धारा में बहती नज़र आई मुख का पसीना पोंछ कर सामने दृष्टी फेंकी। आगे बढ़ने पर पर्वतों के बीच सरयू का श्वेत जल और वैसे ही उसकी तलहटी मे बिछे हुए बड़े-बड़े भूरे भूरे टोल दृष्टि को मनोरम भासते थे, मानों सरयू माता की सेवा में आसपास हरित वस्त्र धारण किये हुए परिचारकगण पुष्पांजलि लिए उपस्थित हों।

गणाई पहुंचने पर हमें त्रिलोचन महाराज के निवास स्थान पर पहुंचना था। एक दुकानदार के कथनानुसार हम जिस मार्ग से गये वह विकट था। सड़क आगे जाकर टूट गई, पर महात्माजी का कहना था कि सड़क नहीं छोड़ना चाहिए। मजबूर था। वह रास्ता टूट कर एक अगम कंदरा बन गई थी। दो पर्वतीय स्त्रियाँ कुछ बोली, पर उनकी भाषा दोनों के समझ में न आई। कंदरा का मुँह और भी खुला हुआ सामने था। रास्ता अब समझ में न आने जैसा बन गया। बड़ी कठिनाई से चढ़ाई की ओर रास्ते पर लगे स्त्रियाँ अब हँस रही थी। तपोवन आगया। त्रिलोचन महाशय हुक्के की नली हाथ लिये विराजमान था वहीं हमने भोजन बनाया।

राम गंगा! सरयु जैसी विशाल तो न थी। पर उसका शृंगार विशेष था। वह बड़ी शान्त से बह रही थी। न कोई ध्वनि और न गति का आभास। हमने श्रद्धापूर्वक उसको नमन किया। गंगा में सैकड़ों जल प्रवाह आकर मिल गये थे। चढ़ाई के खत्म होने पर झंडियाँ दिखाई पड़ती हैं।

२६ जून को आकाश धूम धूसरित था। वायु ठंडी थी। रास्ता हाथी की पीठ की तरह ढालू था। दक्षिण की ओर की घाँटी ६-७ मील चौड़ी और ८-१० मील लम्बी थी चारों ओर उपजाऊ खेत और सामने एक नदी बहकर सामने पास ही दिखने वाले पहाड़ को विभाजित कर रही थी। इस घांटी में घने जंगल दीख पड़ते थे जिनमें बनेले जीव जन्तु वास करते थे। तीन मील तक उस पर्वत मस्तक पर से गुजरने में कुछ समय न लगा। रमणीयता चारों ओर बिखरी पड़ी थी। असकोट पहुंचे। पहले यहाँ राजधानी थी। तीन मील आगे गोरी-गंगा का पुल मिला। पानी क्या था बर्फ ही था। बर्फ के बारिक कण जल को गोर वर्ण बना रहे थे। इसलिये इस गंगा का नाम गौरी गंगा पड़ा होगा। सरिता के तट पर भांग के पोधे दृष्टिगोचर हो रहे थे। सुन्दर-सुन्दर विशाल चीड़ों के वन गौरी गंगा के दोनों ओर शोभित हो रहे थे।

रास्ता इसी गंगा के किनारे ऊपर तक जाता था। कैलाश यात्रा जो ठहरी। कष्ट को सहते हुए जाना। बलवा कोट पहुंचते-पहुंचते दोपहर हो आई। एक बंद मकान के बरान्डे में मुकाम किया। साथी यात्री भी आ पहुँचे।

आगे दूसरे दिन जाना था। महात्माजी ने बताया कि यहाँ यात्रियों के साथ पालतू कुत्ते होते हैं। उनसे बचने के लिये लाठी रखना जरूरी है। तीब्बत जाने वाले हुनिये लोग नगद रुपये मांगते हैं अतः नोट के बदले कुछ रुपये जरूरी है।

२९ जून को प्रातः काल उठे तो वर्षा हो रही थी। ११ बजे के लगभग पानी थमा और निकल पड़े। आगे रास्ता कठिन था कुलियों के लिये यह बात अभ्यास में मामुली थी। कैलाश की जिज्ञासा हमें आगे बढ़ा रही। यौंदास गाव में चाय दूध न मिला, फिर भी आराम के लिये कुछ देर अवश्य रुकना था। जब सोसा पहुंचे तो एक घटना हो गई। एक मद्रासी सद् गृहस्थ को कुत्ते ने काट खाया बिचारे आलू लेने जा रहे थे। बड़ी हलचल मची। पर मद्रासी कोई कम न था। उसने धमकी बताकर कुत्ते के मालिक दुकानदार से पाँच रुपये वसूल कर ही लिये।

एक विक्रम कथा की फारस यात्रा

श्री अगरचन्दजी नाहटा

प्राणी मात्र का जीवन ही एक कहानी है। पर अपने जीवन की घटनायें मनुष्य को इतनी आकर्षक नहीं लगती जितनी कि दूसरी जातियों की घटनायें। कहानी सहित्य में प्रायः इस तरह से आरंभ होता है कि "कह चकवा सुण चकवी। कह बात कटे रात। चकवा चकवी से पूछता है कि कैसी कहानी कहूँ। घर बीती या पर बीती। तो चकवी कहती है कि घर बीती बातें तो रोज ही हुआ करती हैं, आज तो पर बीती कहानी सुनाओ"। इससे हमें लोक मानस की रुचि व जिज्ञासा का पता चलता है कि लोगों को पराई बातों के सुनने में ही आश्चर्य अधिक होता है।

कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्य है। मनुष्यों ने तो जब से बोलने व कुछ समझ सकने की योग्यता प्राप्त की, कहानी सुनने की उत्सुकता तभी से बताई जाती है। बालक से लगाकर वृद्ध तक सभी कहानियों में रस लेते हैं। हां रुचि की भिन्नता अवश्य होती है। बहुतसी कहानियां जो बहुत आकर्षक होती हैं उनका प्रचार बहुत व्यापक नजर आता है, एक ही कहानी सामान्य हेरफेर के साथ आप विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रचलित भी पा सकते हैं। वहां प्रान्त और देश भेद बाधक नहीं होता। युक्ति के साथ और आज तो पुस्तकों व रेडियों द्वारा इनका प्रचार बहुत सुलभ हो गया है। प्राचीन्ता की दृष्टि में भी बहुत सी कहानियां सैकड़ों और हजारों वर्षों से प्रचलित पाई जाती हैं। इनकी परम्परा का पता लगाना भी कठिन कार्य है। बस कहानी को किस देश के व्यक्ति ने गढ़ा इसकी छानबीन बहुत रसप्रद होने पर भी बहुत कठिन है, और निर्णय तो असंभव प्रायः है।

भारत की अनेक कहानियां शताब्दियों पूर्व विदेशों में बिखर गई हैं। पञ्चतन्त्र की कहानियों का प्रसार आप विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक पायेंगे। भारत से वे पहिले कहां पहुँची और वहां से कैसे फिर किन किन स्थानों में गई और प्रसिद्धि पाई, इसका कुछ इतिहास हमें जानने को मिलता है। इसी प्रकार बौद्ध कुलजातकों की कहानियां और जैन आगमों की कई कहानियां बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई दृष्टिगोचर होती है। डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने "ढाई हजार वर्ष पुरानी कहानियां" नामक अपने ग्रन्थ में इसकी कुछ चर्चा की है। कुछ वर्ष हुए सस्ता साहित्य मण्डल से सं० १९४२ में प्रकाशित फारस के प्रसिद्ध महाकवि मौलाना जलालुद्दीन रूमी के मसनवी के कुछ कहानियों का ही अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ का नाम है "रूमी की कहानियां" और अनुवादक हैं - चौधरी शिवनाथसिंह शाण्डिल्य। इस ग्रन्थ में रूमी का जीवन परिचय भी दिया है जिसके अनुसार उसका जन्म फारस के बलख नगर में हिजरी सन ६०४ में हुआ था। और ६८ वर्ष की उम्र में हिजरी सन ६७२ में उनका देहान्त हुआ था, अर्थात ये विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध व चौदहवीं के प्रारंभ में विद्यमान थे। ३-४ वर्ष हुए मेरा भ्रातृ-पुत्र भंवरलाल, जैन कवि व कथाकार शुभशील गणि का संवत् १४९८ में रचित संस्कृत पद्यमय विक्रम चरित्र पढ़ रहा था। पढ़ते पढ़ते इस ग्रन्थ के आठवें सर्ग के अंत में चार निग्रह की कहानी उसके पढ़ने में आई और थोड़े दिनों बाद ही उपर्युक्त "रूमी की कहानियां" ग्रन्थ को उसने योंही देखना शुरू किया तो इस ग्रन्थ की पहली कहानी "चोर बादशाह" को पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि दोनों कहानियां एक ही हैं। एक विक्रम कथा के प्रसंग को फारस में लगभग उसी रूप में प्रसिद्ध देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक था। उसने वह दोनों कथाएँ मुझे दिखाई तो मैंने संस्कृत्त कथा का सार हिन्दी में लिख कर दोनों कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में एक लेख तैयार कर देने का निर्देश किया। उसने शीघ्र ही उसे तैयार कर दिया। मैंने उसे नागपुर से उस समय ऋषिकेश शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाली "भारती" नामक पत्र में प्रकाशनार्थ भेज दिया। शर्माजी का पत्र भी मिला कि वह शीघ्र ही प्रकाशित कर दिया जायगा। पर किसी कारणवश वैसा न हो सका और पत्रिका का प्रकाशन कुछ महीनों बाद ही बन्द हो गया। अतः वह लेख अप्रकाशित ही रह गया। शर्माजी से वापिस मांगा पर कोई उत्तर नहीं मिला और अन्त में कई पत्रों के उत्तर में "मिल नहीं रहा है" सूचना मिली। वह कहानी मुझे बहुत आकर्षक लगी, अतः

उसका प्रकाशित करना आवश्यक समझ कर प्रस्तुत लेख दुबारा तैयार किया ।

पहले संस्कृत के विक्रम चरित्र की कहानी का सार दिया जाता है । फिर 'रुमी की कहानियां' पुस्तक से 'चोर बादशाह' की कहानी उद्धृत की जायगी । पाठक दोनों ग्रन्थों की कहानियों को पढ़कर उनकी सामनता व एकता पर स्वयं विचार करलें । यद्यपि जिस विक्रम चरित्र से यहां उक्त कहानी दी जाती है उससे भी मसनवी की रचना पुरानी है । पर विक्रम चरित्र में उक्त प्रसंग किसी प्राचीन आधार से ही लिखा होना चाहिये जिसका अन्वेषण आवश्यक है ।

विक्रम चरित्र के अष्टम सर्ग के पद्यांश १३२६ से १४३३ तक विक्रमादित्य द्वारा चार चोरों के निग्रह का वृत्तांत इस प्रकार मिलता है ।

नगर में चोरों का उत्पात बहुत अधिक बढ़ गया । उसकी पुकार राजा के पास पहुंची । राजा ने कोटवाल को चोरों को पकड़ने के लिये विशेष रूप से हिदायत की । उसने भी अपनी तरफ से कोई कसर नहीं रखी । बड़ी सावधानी से चारों ओर अपने सिपाहियों को चोरों को पकड़ने के लिये नियुक्त किया । पर चोर ऐसे विलक्षण थे कि उनकी पकड़ में न आये । अन्त में यह कार्य राजा को स्वयं ही उठाना पड़ा । वे रात्रि के समय साधारण वेशभूषा धारण कर माणक चौक में चारों ओर अपनी पैनी दृष्टि फैलाते हुए चोरों की प्रतीक्षा करने लगे । कुछ समय बाद ही चार ओधरे से व्यक्ति उनकी नजर में आये । उनकी चालढाल को गंभीरता से देखने पर राजा को, वे चोर नहीं होना चाहिये, ऐसा कुछ आभास हुआ । राजा ने उनका भेद लेने के लिये जिसप्रकार चोर लोग परस्पर में संज्ञाएँ कहते हैं वैसी संज्ञा की । इससे उन चोरों ने अनुमान किया कि यह कोई हमारा भाई-बंध चोर ही है । राजा ने पूछा कहो भाईयों आज का धावा कहां का है । उन्होंने कहा कि परदेस से एक श्रेष्ठी बहुत धन कमा के आया है । आज उसी के मकान में जाकर चोरी करेंगे । पर तुम कौन हो और एकाकी कैसे खड़े हो ? राजा ने कहा, मैं तुम्हारा ही साथी हूं । एकाकी होने के कारण ही तुम्हारी बाट देख रहा था । उन्होंने कहा तुम्हारा नाम ? उन्होंने कहा—प्रजापाल । राजा ने पूछा तुम्हारा आज कहां (माल हथियाने को) जाने का विचार है ? हमारे साथ चलो न । प्रजापाल ने कहा मैं तो भाई तेल मिरची बेचकर पैसा इकट्ठा करने वाले बनियों को लूटने में कोई पराक्रम नहीं मानता । माल हथियाना है तो राजा के यहां चला जाय । चोरों ने कहा बात तो ठीक है, राजा के यहां तो असंख्य धन है, उसमें से कुछ चोरी होजाने पर भी राजा को क्या दुःख होने वाला है । पर भाई राज महल में प्रवेश करना बड़ा कठिन काम है न ? प्रजापाल ने कहा इसकी चिन्ता तुम्हें करने की आवश्यकता नहीं, मैं सब उपाय जानता हूँ । व्यवस्था कर लूंगा । पर तुम मुझे क्या भाग दोगे । चोरों ने कहा कि जो कुछ हाथ लगेगा अपन-सब बराबर बांट लेंगे । प्रजापाल ने कहा अच्छी बात है । आज राज-कोष से रतनों की पेटीयाँ चुरा ली जांयगी । सब एक एक पेटी उठा लेना । बस बटवारे की दिक्कत नहीं रहेगी । पर इससे पहिले अपने में से किस किस व्यक्ति में क्या विशेषता है ; यह जान लेना जरूरी है ताकि उस व्यक्ति से वैसा ही काम लिया जा सके । तब चारों चोरों में से एकने कहा कि जिस घर में जो वस्तु है उसे मैं गंध के द्वारा ही बता सकता हूं । दूसरे ने कहा—मेरे हाथ के स्पर्शमात्र से सांकल ताले अपने आप खुल पड़ते हैं । तीसरे ने कहा—मैं एक बार जिसका शब्द सुन लेता हूँ वर्षों बाद भी शब्द के द्वारा उस व्यक्ति को पहिचान सकता हूँ । चौथे ने कहा मैं सब पशु-पक्षियों की भाषा का जानकार हूँ । अब प्रजापाल की बारी आई । उससे पूछा गया कि तुम्हारी शक्ति भी तो बतलाओ । प्रजापाल ने कहा-मेरी तो आप बात ही छोड़ दो, मेरे पास तो ऐसी शक्ति है कि जिनके साथ मैं होता हूँ उसका राजा भी बाल बांका नहीं कर सकता । यह सुनकर चारों चोरों ने बड़े आनन्द से कहा कि हमें तो भाई राजा का ही डर लग रहा था । अब तुम साथ हो तो भय काहे का, चलो तुम आगेवान बनो हम तुम्हारा साथ देंगे ।

पाचों व्यक्ति राजमहल के किल्ले को कूद कर भीतर जा पहुंचे । राजकोष के पास जाकर प्रजापाल ने, गंध से भीतरी वस्तु की परीक्षा करने वाले को पूछा कहो भाई ! इन पास के कोठारों में से किस किस में क्या चीज है । उसने कोठार के पास जाकर गंध के द्वारा निर्णय करके बतलाया कि इस ओरडे में जवाहिरात हैं, दूसरे में चांदी, तीसरे में सोना और

चौथे में रत्न भरे हैं। प्रजापाल ने कहा हमें तो भाइयों रत्न ही लेने हैं। कर स्पर्श से ताला उद्घाटन करने वाला भाई अब अपनी कला दिखाये। इतना सुनते ही उसने रत्न भंडार के ताले को स्पर्श किया और ताला खुल गया। पांचों व्यक्ति भण्डार में जाकर रत्नों की पेटीयां उठाने लगे। इतने ही में एक सियाल का शब्द सुनाई दिया। पशुभाषा विशारद ने कहा, ठहरो ठहरो, सियाल कह रहा है कि मालिक तुम्हें देख रहा है, चोरी कैसे कर रहे हो। अभी चोरी करना विपदजनक है। मेरी राय में तो वापिस चले जाना चाहिये। प्रजापाल ने कहा अच्छा यार तुम भी खूब बातें बनाते हो। भंडार का मालिक तो राजा है। वह सातवीं भूतिका पर सो रहा है। सियाल के शब्द पर ध्यान न दो, अन्यथा हाथ आये हुए माल से वंचित रहोगे। दूसरे साथियों ने भी कहा, अब जब प्रजापाल साथ है तो राजा का भय काहेका। चलो, आये हैं तो एक एक पेटी रत्नों की ले चलें। प्रजापाल यदि साथ में न होता तो अपन को यहां आने की हिम्मत भी नहीं होती। पांचों ने एक एक पेटी उठाली। जब वे बाहर आने लगे सियाल ने फिर शब्द किया तो शब्दज्ञानी बोला सियाल ने कुत्ती से संकेत किया है कि राजा का अन्न खाकर उसके भण्डार में चोरी होने पर भी चुप क्यों हो? कुत्ती उत्तर दे रही है कि मैं क्या करूं? मालिक खुद भी तो देख रहा है। शब्द ज्ञानी ने पेटीयों को ले जाने को फिर मना किया, पर अन्य चारों एक राय थे। इसलिये उसकी दाल न गली। प्रजापाल ने कहा कि यह शब्द ज्ञानी अध कचरा है। चलोजी हाथ आये माल को क्यों छोड़ते हो, मैं साथ में हूं, डर किस बात का है। सभी ने पेटीयें उठाई और माणक चौक पर आकर चारों ने प्रजापाल से राम राम किया। आज तो भाई तुम्हारी विलक्षणता से ही ऐसा गहरा माल हाथ लगा। प्रजापाल ने कहा एक दूसरे के सहयोग से ही काम बना करते हैं। अच्छा अब कल का क्या प्रोग्राम रखा जाय। तुम किस समय यहां पहुंच रहे हो, और इतनी भीड़ में तुम्हारा पता कैसे लगेगा? चोरों ने कहा कल संध्या समय हमें यहीं फिरते पावोगे। हम चारों के हाथ में बिजोरा रहेगा। यही संकेत हैं। प्रजापाल ने कहा, अच्छी बात है कल कोई और बढ़िया माल हथियायेंगे।

राजा विक्रम अपने हिस्से की एक रत्न पेटी को लेकर कहीं गुप्त स्थान में उसे रखकर निश्चिंत राज महल में जाकर सो गया। प्रातः काल हुआ तो बंदी जनों के मांगलिक शब्दों को सुनकर जाग उठा और नित्य के कार्य में लग गया।

प्रातः काल राज भंडारी आकर जब भंडार देखने लगा तो रत्न भंडार का ताला खुला हुआ पाया। उसे बडा आश्चर्य हुआ कि चारों ओर इतना जबरदस्त पहरा लग रहा है। फिर ताला टूटा हुआ कैसे पड़ा है। भीतर देखने पर पांच रत्न पेटीकायें गायब ज्ञात हुई उसने सोचा कोई विद्या सिद्ध चोर पहुंच गये हैं। अन्यथा यहां से पेटीयों को ले जाना संभव नहीं। उसके मन में एक दुर्मति जागी। कि चलो पांच पेटीयाँ चोरों ने ली हैं। तो एक पेटी में भी हतियालूं पांच की इत्तला न कर छै की कर दी जायगी। ऐसा मौका चूकना उचित नहीं। भंडारी ने वैसा ही किया। एकरत्न पेटी वहां से हटा कर हो हल्ला मचाया। कि देखो कैसा उपद्रव हो गया है भंडार खुला पडा है। छै पेटीयों की चोरी हो गयी। चारों ओर पहरा है। राजा को इसकी खबर दी गई। उसने कोतवाल को बुलाकर धमकाया कि इतने दिन तो शहर के सेठ साहुकारों के ही चोरी होती थी। अब तो राज भंडार की भी बारी आगई, तुम क्या खाक निगरानी रखते हो। कोतवाल बडे असमंजस में पड गया। जबाव दे तो क्या? उसकी अकल काम नहीं कर रही थी। राजा ने और अधिक धमकाया कि या तो इसका पता लगाओ नहीं तो चोरों का दण्ड तुम्हें मिलेगा। कोतवाल के प्राणों की बाजी लग गई उसने बड़ी तत्परता से चारों ओर खोज की पर कुछ कामयाबी नहीं मिली। बड़ा उदास होकर घर गया। तो उसकी पत्नी ने चिन्ता का कारण पूछा उसने कहा क्या बताऊँ। मौत आ गई, और सारा वृतांत कह सुनाया, कोतवाल की पत्नी ने कहा चिंता से तो कुछ होने का नहीं। राजा न्यायी है। जहां अपने वश की बात नहीं। वहां राजा अन्याय थोड़ा ही करेगा। जाईये राजा को सारा हाल कह सुनाईये।

कोतवाल ने राजा से जाकर बडी विनम्रता से कहा महाराज मैं हैरान हूं, अनेक चोरों को पकडा है पर इन चोरों की करामात को मैं भी पहुंच नहीं पाया, अपनी सारी शक्ति और बुद्धि लगादी पर चोरों का कुछ पता ही नहीं चल रहा है, अब आपकी मर्जी हो कीजिये। इस सेवक की गर्दन आपके चरणों में झुकी है। मारिये या उबारिये।

राजा ने बड़े मीठे शब्दों में उसे आश्वासन देते हुए कहा, अच्छा, एक काम करो। आज संध्या समक मानिक चौक में चार उचक्के साधारण वेश में बीजोरे का फल हाथ में लिये हुए मिलें, उन्हें पकड़कर हाजिर करो। कोतवाल को इस आज्ञा में कुछ रहस्य लगा। बडी तत्परता से माणिकचौक के चारों ओर अपने गुप्त वेशधारी व्यक्ति तैनात कर दिये। और स्वय बडीं तेज निगाह से प्रतीक्षा करने लगा। निश्चित समय पर चारों चोर आये ही। कोतवाल ने उन्हें तुरन्त पकड कर राजा के पास हाजिर किये। राजा ने चोरों से कहा, रत्नों की ६ पेटीयें मेरे भंडार से चोरी गई बतलाते हैं। उन्हें लाके उपस्थित करो। नहीं तो फांसी तैयार है। चोरों ने कहा महाराज हमें कुछ मालूम नहीं। राजा ने उनको फांसी का हुक्म दे दिया। रास्ते में जाते हुए तीसरे चोर ने कहा कि रात हमारा साथी था उसकी आवाज और राजा की आवाज एक ही है। तब सब की हिम्मत हुई। चोरों ने एक मत किया कि राजा के पास वापिस चला जाय। और चारों पेटीयें देने का कह-कर उनके दिये हुए रात के वचन को सत्य कर दिखाने का कहा जाय। उन्होंने वैसा ही किया। जाकर कहा महाराज। आपने वचन दिया था कि जिनके साथ मैं हूँ उसे राजा का कोई डर नहीं तो हमारे साथ तो आप थे ही। अपने वचन द्वारा हमारी रक्षा कीजिये। राजा ने भंडारी से भी धमका कर ६ ठी पेटी प्राप्त करली। चोरों को भविष्य में चोरी छोड़ देने की प्रतिज्ञा दिला कर उन्हें सौ सौ गांवों का अधिपति बना दिया। इस प्रकार विक्रम ने चोरों का निग्रह कर सब प्रजा को आनंदित किया।

बादशाह महमूद का नियम था कि रात को भेष बदलकर राज की गलियों में घूमा करता था। एक रात को उसे आदमी छिप छिप कर चलते दिखाई दिये। वह भी उनकी तरफ बढ़ा चोरों ने उसे देखा तो वे ठहर गये और उससे पूछने लगे कि भाई तुम कौन हो? और रात के समय किस लिये घूम रहे हो। बादशाह ने कहा-मैं भी तुम्हारा भाई हूं और आजीविका की तलाश में निकला हूं। चोर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तूने बडा अच्छा किया जो हमारे साथ आ मिला। जितने आदमी अधिक हों उतनी ही अधिक सफलता मिलती है। चलो, किसी साहुकार के घर चोरी करें। जब वे लोग चलने लगे तो उनमें से एक ने कहा पहले यह निश्चित होना चाहिये कि कौन आदमी किस काम को अच्छी तरह कर सकता है जिससे हम एक दूसरे के गुणों को जानजांय और ज्यादा हुनरमन्द हो उसको नेता बनायें।

यह सुनकर हरएक ने अपनी अपनी खूबियां बतलायीं। एक बोला कि "मैं कुत्तों की बोली पहिचानता हूँ। वे जो कुछ कहें उसे अच्छी तरह से समझलेता हूँ। हमारे काम में कुत्तों से बड़ी अड़चन पडती है। हम यदि उनकी बोली जान लें, तो हमारा खतरा कम हो सकता है और मैं इस काम को अच्छी तरह कर सकता हूँ।"

दूसरा कहने लगा-"मेरी आँखों में ऐसी शक्ति है कि जिसे अंधेरे में देखलूं उसे फिर कभी नहीं भूल सकता। और दिन के देखे को अंधेरी रात में पहचान सकता हूँ। बहुत से लोग हमें पहिचान कर पकडवा दिया करते हैं। ऐसे लोगों को तुरन्त भांप लेता हूं। और अपने साथियों को तुरन्त सावधान कर देता हूँ। इस तरह हमारी रक्षा हो जाती है।"

तीसरा बोला-"मुझ में ऐसी शक्ति है कि मजबूत से मजबूत दीवार में भी सेंध निकाल सकता हूँ। और यह काम ऐसी फुर्ती और सफाई से करता हूँ। कि सोने वाले की आँखें नहीं खुल सकती। और घण्टों का काम मिनटों में हो जाता है।"

चौथा बोला "मेरे में सूंघने की ऐसी शक्ति है कि जमीन में गडे हुए धन को वहां की मिट्टी सूंघकर बता सकता हूँ। मैंने इस काम में इतनी योग्यता प्राप्त की है कि शत्रु भी सराहना करते हैं। प्रायः धन को धरती में ही गाड कर रखते हैं। उस वक्त यह हुनर बडा काम देता है। मैं इस विद्या का पूरा पंडित हूँ मेरे लिये यह काम बडा सरल है।"

पांचवें ने कहा "मेरे हाथ में ऐसी शक्ति है कि ऊंचे से ऊंचे महलों पर बिना सीढी से चढ़ सकता हूँ और ऊपर पहुंचकर अपने साथियों कों भी चढ़ा सकता हूँ। तुममें से तो कोई ऐसा न होगा जो यह कर सके।"

इस तरह जब सब लोग अपने अपने गुण बता चुके तो नये चोर से बोले कि तुम भी अपना कमाल जाहिर करो, जिससे हमें अन्दाज होगा कि तुम हमारे काम में कितनी सहायता कर सकते हो। बादशाह ने जब यह सुना तो खुश होकर कहने लगा "मुझ में ऐसा गुण है कि तुम में किसी में भी नहीं और वह गुण यह कि मैं अपराधियों को क्षमा करा सकता हूँ। अगर हम लोग चोरी करते पकडे भी जायें तो अवश्य सजा

पायेगें। परन्तु मेरी दाढ़ी में यह खूबी है कि तुम चोरी कर के भी साफ बच सकते हो। देखो कैसी बडी ताकत है मेरे हाथ में।"

बादशाह की यह बात सुनकर सबने एक स्वर से कहा भाई तूँ ही हमारा नेता है। हम सब ही तेरी अधीनता में काम करेंगे ताकि कहीं पकडें जांय तो बख्शे जा सकें। हमारा सौभाग्य है कि तुम जैसा बड़ा शक्तिशाली मिलगया। इस तरह सलाह करके वहां से वे लोग चले। जब बादशाह के महल के पास पहुंचे तो कुत्ता भूंका। वह कह रहा था कि बादशाह देख रहा है (शब्द ज्ञानी) चोर ने कुत्ते की बोली पहिचानकर साथियों से कहा कि बादशाह है इसीलिये सावधान होकर चलना-चाहिये। मगर किसी ने नहीं मानी। जब नेता आगे बढ़ता चला गया तो दूसरों ने भी उसके संकेत की कोई परवाह नहीं की। बादशाह के महल के नीचे उतर कर सब रुक गये। और वहीं चोरी करने का इरादा किया। दूसरा चोर उछलकर महल में चढ़ गया और फिर उसने दूसरे चोरों को भी खींच लिया। महल के भीतर घुस कर सेंध लगाई और खूब लूट हुई। जिसके जो हाथ लगा समेटता गया। जब लूट चुके तो चलने की तैयारी हुई। जल्दी जल्दी नीचे उतरे और अपना अपना रास्ता लिया। बादशाह ने सबका नाम धाम पूछलिया था। चोर माल असबाब लेकर चंपत हो गये।

बादशाह ने मंत्री को आज्ञा दी कि तुम अमुक स्थान में सिपाही भेजो और फलां फलां लोगों को मेरे सामने लाकर हाजिर करो। मंत्री ने फौरन सिपाही भेज दिये। चोर पकडे गये और बादशाह के सामने पेश किये गये। जब इन लोगों ने बादशाह को देखा तो दूसरे चोर ने कहा, "बड़ा गजब हो गया। रात चोरी में जो हमारे साथ था यह वही नया चोर था जिसने कहा था कि मेरी दाढ़ी में वह शक्ति है कि जिसके हिलते ही अपराधी क्षमा हो जाते हैं।"

सब लोग साहस करके आगे बढ़े और बादशाह को अभिनन्दन किया। बादशाह ने पूछा कि तुमने चोरी की है? सबने एक स्वर में जबाब दिया कि "हां हुजूर यह अपराध हमसे ही हुआ है।" बादशाह ने पूछा कि "तुम लोग कितने थे?" चोरों ने कहा "हम कुल छै थे।"

बादशाह ने पूछा कि छठा कहां है ? चोरों ने कहा- "अन्नदाता, गुस्ताखी माफ हो। छठे आप ही थे।" चोरों की यह बात सुनकर सब दरबारी अचम्भे में पड गये। इतने में बादशाह ने चोरों से फिर पूछा 'अच्छा अब तुम क्या चाहते हो?'

चोरों ने कहा- "अन्नदाता हममेंसे हरएक ने अपना काम कर दिखाया। अब छठे की बारी है। हुजूर ने फरमाया था कि मेरी दाढ़ी में पापों को क्षमा कराने की शक्ति है। इसलिये अब आप इतना हुनर दिखायें जिससे हम अपराधियों की जान बचे।"

यह सुनकर बादशाह मुसकराया और बोला—"अच्छा। तुमको माफ किया जाता है। आगे से ऐसा काम मत करना।"

संसार का बादशाह परमेश्वर तुम्हारे आचरणों को देखने के लिये सदैव तुम्हारे साथ रहता है। उसको साथ समझकर तुम्हें सदैव उससे डरते रहना चाहिये और बुरे कामों की ओर कभी ध्यान नहीं देना चाहिये।

पाठक देखेंगे कि दोनों कहानियों का मूलएक ही है। विक्रम चरित्र में चोरों की संख्या ४ है। तो रूमी की कहानियां में ५ ही है। अन्य अन्तर बहुत ही साधारण है। वैसे अन्तर तो एक ही कहानी भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा कहे जाने पर भी हो ही जाया करता है। विक्रम चरित्र में चोर भंडारी को बतला दिया है।

जैसा कि पहले कहा गया है विक्रम चरित्र रूमी मसनवी से पीछे का रचित होने से यह भी संभावना की जा सकती है। कि यह कहानी फारस से भारत में आई प्रसिद्ध हुई। पर लगता ऐसा है कि विक्रम चरित्र के कथाकार शुभशील ने इसे किसी अन्य प्राचीन आधार से ही लिखा होगा। खोजने पर अवश्य ही कोई प्राचीन उल्लेख मिल जायगा। जिन विद्वानों की नजर में वह आवे प्रकाश में लाने की कृपा करेंगे, ऐसी आशा है।

शुभशील एक बहुत बडे लोक कथाओं के संग्राहक थे। उनके अन्य ग्रन्थों में भी छोटी बडी सैकडों कहानिया संग्रहीत हुई है। उनका एक ग्रन्थ "पंच शती प्रबंध संग्रह" है। जिसमें छोटे छोटे ५०० प्रसंग संग्रहीत मिलते हैं। इनमें से अनेक प्रबंध ऐतिहासिक दृष्टि से भी बडे ही महत्व के हैं। अर्थ ऐतिहासिक पौराणिक और लोक कहानियों का भी यह ग्रन्थ अपूर्व भंडार है। खेद है कि अभी तक वह अप्रकाशित है। हमारे संग्रह में इसकी एक अपूर्ण प्रति है। बडौदा व पूना आदि में पूर्ण प्रतियां भी प्राप्त हैं। मैंने कुछ वर्ष पूर्व

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

आगर के स्वर्गीय विनोदी कवि

श्री गणेशदत्त 'इन्द्र'

वैसे तो आगर में कवियों की एक अविलग परम्परा शताब्दियों से चली आरही है। आज तक अनेक कवियों के सम्बन्ध में खोजपूर्ण बातें तथा उनका काव्य प्राप्त किया जा चुका है। फिर भी ऐसे बहुतेरे काव्योपासक यहां पैदा हुए और चले गये—जिनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकना आज असंभव हो गया है। भविष्य में भी आशा को कोई गुँजायश नहीं कि वह सफलता प्राप्त करने में समर्थ हो। यहां के सबसे पुराने कवियों का नाम जो हमें अभी तक प्राप्त हो सका है-धनीराम है। इनका जन्म सन् १७४३ ई० का कहा जाता है। वे पूरे नब्बे वर्ष तक जिए थे। दूसरे कवि भैरूगुरु हुए हैं। आपका जन्म सन् १७६५ ई० में हुआ और १८६३ में स्वर्गवासी हुए। सन् १८१३ में बलदेव कवि पैदा हुए। ये धनीराम के पुत्र थे। सन् १८२३ ई० में कवि मंगलखां का जन्म हुआ। आप बड़े ही विनोदी स्वभाव के थे। आपके काव्य में विनोद की प्रचुर मात्रा रहा करती थी।

आगर में ब्रिटिश सेना का मुकाम था। छावनी सीमा में आने जाने वाली वस्तुओं पर चुंगी या अन्य कोई टेक्स नहीं था। कवि मंगलखां शहर में रहते थे। एक दिन छावनी से एक रुपये के गेहूं लेकर आप चले आ रहे थे। छावनी दर्वाजे से आप शहर में घुसने लगे तो नाकेदार ने उनसे गेहूओं का टेक्स मांगा। कवि महाशय ने नाकेदार को बहुत कुछ समझाया परन्तु वह नहीं माना। उसने मंगलखाँजी से डेढ पैसा कस्टमटेक्स ले ही लिया। डेढ़ पैसा देकर कवि का आत्मा तिलमिला उठा-उसके मुहँ से निकल पड़ाः-

"देसी होय तो जाने भैया, परदेसी क्या जाने ढेड़।
नाकेदार कुत्ते के मूतने, पैसा ले लिया मुझसे डेढ ॥

नाकेदार आगर का होता तो शायद वह कवि को छोड़ देता, परन्तु वह परदेसी था, अतएव कवि विवश था।

कवि मंगलखां के समय में कवियों की एक बाढ़ सी आगई थी। जो देखो वही कवि बनने की धुन में था। आगर के हाटपुरा मोहल्ले में तो कवियों का ढेर था। कवि मंगलखाँ के व्यंग हास्य-पूर्ण शब्दों में सुनिये-

"पिपलौन में तो फजल मोहम्मद, बड़ौद में रहते काज़ी।
हाट पुरे में घुसी शायरी, घर-घर में हो गए पाज़ी॥"

अर्थात्-पिपलौन नामक गाँव में फजल मोहम्मद और बड़ोद गाँव में कांजी अच्छे शायर माने जाते हैं, किन्तु आगर के हाटपुरे में तो शायरी मुजस्सिम घुस गई कि घर घर में कवि क्या, पाजी पैदा हो गये हैं जो शायरी का मजाक बना रहे हैं।

आगर के दूसरे विनोदी कवि थे हरिदास जी बाबा। आप सन् १८४३ में पैदा हुए थे। आगर के नाना बाजार स्थित लक्ष्मीनारायणजी के मंदिर की आप पूजा करते थे। आपकी नव्वे प्रतिशत रचनाएं विनोद पूर्ण होती थीं। आप जन्मजात विनोदी थे। नाना बाजार "रातडियातालाब" के पास ऊपर ही है। आपको इस तालाब पर फख था। बडातालाब जो रातड़िया से लगभग छः गुणा बड़ा है, उसकी आपने मीठी खिल्ली उड़ाई है। देखिए :-

"सूखो सागर[1], रातढ़िया भरपूर भरो है सागर बांको।
लाल़ गुलाबी पानी सदा, हरिदास पटेल बनो है जहाँको॥
फौज रिसाला कइ एक पल्टन, दिल्ली दक्खन को है नाको।
छोटो सो एक घाट बन्यो है, दीन सराफा को मोटो काको॥

रातड़िया के लाल पानी पर आप बहुत ही मुग्ध थे और इसके सामने बड़े तालब तुच्छ मानते थे एक अन्य रचना देखिये-

"छोटे से रातड़िया पै. तलाव कई वार डारौं-
खंजर [2] को वार डारौं नाके की नाल [3] पै।
कबेलू के रंगपै फोफ[4]ल्या बार डारौं-
पत्थर को वार डारौं ईंटें चौसालपै।
कुम्हार का मूँडापै बरगूँडा[5] वारडारौं-
खच्चर को बार डारौं गध्दे की चालपै-
कहे 'हरीदास' और देखें आस पास-
बड़े तलाब को बार डारौं छोटे की पालपै।

१- मोतीसागर (बड़ातालाब) २ आग में अधिक पककर जली हुई ईंट या कवेलू, जो रातड़िया में बनती हैं। ३ रातड़िया के नाके की मोरी। ४ गेरू या हिरमिच। ५ एक जाति विशेष जो डलिया टोकरी बनाती तथा सुअर पालती है।

लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर के पड़ौस में बल्देवजी गामोठ रहते थे। आप भी बड़े विनोदी थे। वे कवि नहीं थे, कथावाचक थे। बल्देवजी के ही छोटे पुत्र, स्वामी नित्यानन्द (बड़े बापजी) के शिष्य जयनारायणजी (छोटे बापजी) थे। बल्देवजी " अफीम की भाजी " से चिढ़ते थे। उन्हीं को लक्ष्य करके कवि हरिदास ने कहा था:--

" 'आफू'[1] की भाजी यह खाने में ताजी—
इसको तो काकाजी चम्पाजी[2] करता।
यह तेरी है भाजी क्यों करता नाराजी —
तू इससे रह राजी, है दिल में क्यों डरता।
लड़के और बच्चे, जो लड़ने में कच्चे
हैं सीधे और सच्चे जा उनसे तू भिड़ता।
कहैं 'हरिदाजी' सुन बल्देवा पाजी,
तू आफू की भाजी से नाहक क्यों चिढ़ता॥ "

सन १८५७ ई० के विप्लव को भी कवि ने अपने हास्य का जामा पहनाया है। आगर की ब्रिटिश फौज के सैनिक विप्लव करके महारानी लक्ष्मीबाई के झण्डे के नीचे पहुँचने को यहां से चल दिये थे। कुछ दिन बाद विप्लवकारियों के दमनार्थ हैदराबाद की सेना यहां आपहुंची और गुफाबरड़ा नामक स्थान के पास शिविर डाला। उसके विषय में बाबा हरिदास कहते हैं:—

" कानड़ से चली तोप[3] आगर में दई थोप[4]
भेले सब भए लोग, देखन को जात हैं।
थी माह सुदी छट्ठ, बैल जोड़ी बासट्ठ —
खच्चर पूरे छियासठ, चट्ट पट्ट जुत जात हैं —
हते[5] हाथी बाईस, जा चलते थे तोपें घींस
थे गोरे बहुतेरे तोपों के साथ में।
कहैं 'हरेदास' सुनो मम्मदखा दादा बात —
रसद[6] अब करो त्यार, नहीं तो पिटे जात हैं।

बाबा हरिदास की अनेक हास्य कविताएँ अप्राप्य हैं और कई अधूरी मिल पाई हैं।

तीसरे हंसोड़ कवि थे गैन्दालाल " लाठ "। आपका जन्म सन १८६७ ई० में देसावल वैश्य कुल में हुआ था। आप सभा, जल्से, इत्रपान, टी पार्टी आदि में हास्य के प्रमुख प्रतीक माने जाते थे। कभी कभी तत्काल सामयिक रचना करके लोगों पर हास्यरस उंडेलने में आप बड़े निपुण थे।

एक दिन की बात है आपका एक अभियोग तहसीलदार के इजलास में था। तहसीलदार ने लाठ साहब से पूछा " आपके वकील कौन हैं ? " लाठ साहब ने कहा " एक नहीं तीन हैं। " तहसीलदार ने पूछा -- "कौन कौन हैं ?" उन्होंने बताया। " संकर्षणदास " (छोटू भैया), चतुर्भुजदास (बेटू भैया) और पुरुषोत्तमदास (तोता भैया) "। तहसीलदार ने कहा -- " बुला लीजिए किसी को भी।" लाठ साहब बड़े दुःखी थे। बेचारे, वकीलों की गैरहाजिरी से परेशान थे। उन्होंने हँसते हुए कहा:—

" छोटू भैया घर धन्धे में
पूजा में है तोता —
बेटू कहे मैं कहां कहां लेटूं
गेंदा फिरता रोता।

इस पद्य को सुनकर तहसीलदार, और इजलास में उपस्थित सभी हंस पडे। हंसते हंसते तहसीलदार ने मुकदमे की तारीख बढ़ादी। यह सन १९४६ ई० की बात है। लाठसा० का, ८३ वर्ष की उम्र पाकर सन १९५० में स्वर्गवास होगया। आज आगर के ये तीनों हंसोड़ विनोद प्रिय कवि इस लोक में नहीं हैं किन्तु उनका काव्य उन्हें अमर बनाए हुए है। और जब तक काव्य रसिक रहेंगे वे चिर भविष्य तक रसनासनासीन अमर रहेंगे।

---

१. अफीम। २. बल्देवजी के पिता। ३. तोपखाना। ४. ठहरना। ५. थे। ६. खाद्य सामग्री।

(पृष्ठ २६ का शेष)

भंडार कर ओरिएंटिल इंस्टीयूट की प्रति मंगवाकर आवश्यक नोट लिए थे।

शुभशील का दूसरा कथा संग्रह "भरतेश्वर बाहुबली सझाय" की टीका के रूप में है। मूल सझाय प्राकृत भाषा में बहुत छोटी सी है। कुल १३ पद्य की ही। इसके उपर शुभशील ने संवत् १५०६ में बहुत बड़ी वृत्ति बनाकर उसमें सैकड़ों कथायें दे दी हैं। शुभशील के अन्य भी कई ग्रन्थ देखने में आये हैं। जिनमें काफी कथायें हैं। अतः अपने समय के वे बहुत बड़े कथाकार व संग्राहक सिद्ध होते हैं, उनके संग्रहित समस्त कहानियों का अध्ययन करने पर अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों के साथ लोक कथाओं की विशद जानकारी मिलेगी। अतः विद्वानों को उनसे लाभ उठाना चाहिये।

संत या श्रमिक से संत

श्री गुरुशरणभाई बी. ए.

आज सभी लोग विनोबाजी को श्रद्धा की दृष्टि से देख रहे हैं। अहिंसा से काम न चले तो हिंसक साधनों को अपनाना वैध है ऐसा मानने वाले भी आज विनोबा जी की संगति से पूर्ण अहिंसावादी हो गए हैं और अपनी भूल मानकर कहते हैं कि पुण्य भूमि भारत में हिंसा और मारकाट से शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। जो लोग विनोबा जी के सिद्धान्तों के कट्टर विरोधी हैं वह भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हैं और कहते हैं हिन्दुस्तान के संस्कार मिटे नहीं हैं और अब भी लोग संतों का आदर करते हैं जब कि इन्हीं सन्तों, पण्डितों और धर्म के ठेकेदारों ने उन्हें रसातल में पहुँचाया है। एक कामरेड कहने लगे कि दान इत्यादि से समाज-रचना में परिवर्तन नहीं हो सकता और न जमीन का मसला ही हल होने का। हिन्दुस्तान में तो सन्त महात्मा होना ख्याति पाने का एक नुस्खा है।

कामरेड की बात तीर सी चुभ गई। राम को जो मर्यादा पुरुषोत्तम की संज्ञा प्राप्त हुई और लोगों ने भगवान करके माना वह उनकी सत्यनिष्ठा के कारण। कृष्ण को जो ईश्वरत्व प्रदान किया वह उनकी लोक-सेवा के कारण। बुद्ध को जो प्रसिद्धि मिली वह उनकी भूतदया के कारण। उसके कारण जिसके लिये वह राजसी वैभव छोड़कर वर्षों मारे मारे फिरे थे। गांधीजी को जो आज हम महात्मा कहते हैं उसमें उनकी जीवन साधना और सत्य अहिंसा के प्रयोग सन्निहित हैं। विनोबाजी की जो ख्याति देश में ही नहीं वरन विदेशों में भी फैल रही है उसका कारण कोई पूजा भक्ति ही नहीं है। हम उनके जीवन तथा विचारों पर थोड़ा ध्यान देने के वाद सोचेंगे कि वे श्रमिक हैं या सन्त।

विनोबाजी ने जब घर छोड़ा और अपने सभी सार्टीफिकिट अग्नि के हवाले कर दिये तो फिर वे आश्रम में आकर कोरा राम नाम नहीं जपने लगे वरन कताई और बुनाई करते। पाख़ाना साफ़ करने से लेकर उन्होंने रसोई तक का काम किया। जहाँ तक बाहरी हलचल की बात आती है तो वे प्रथम सत्याग्रही भी बने। जब एक बार क सज्जन उनसे आश्रम में मिलने आए तो उन्होंने आने का कारण दर्शन बतलाया। विनोबाजी खेत पर काम कर रहे थे, उन्होंने १ मिनट को सर ऊपर उठाया और अपने काम में लग गये। यह भी कहा ' दर्शन होगये बस '

साबरमती आश्रम से लेकर मगनवाड़ी महिलाश्रम नालवाड़ी और परमधाम आश्रम पवनार तक का इतिहास बताता है कि उनकी श्रम प्रधान साधना रही है। परमधाम आश्रम में पहुँच कर ऋषि खेती के प्रयोग में घंटों कुदाले चलाना तो उनके कर्मी व्यक्तित्व को स्पष्ट प्रकट करता है।

आचार के साथ साथ उनके निम्नांकित विचार भी उनकी श्रमनिष्ठा की कहानी कहते हैं।

आप गरीबों के हाथों में सत्ता देना चाहते हैं न? तब तो उनके हाथों का खूब उपयोग होने दीजिए। बचपन में हम एक श्लोक पढ़ा करते थे 'कराग्रे वसति लक्ष्मी' - अंगुलियों के अग्र भाग में लक्ष्मी निवास करती है। तो फिर बताइये क्या इन अंगुलियों का ठीक ठीक उपयोग होना आवश्यक नहीं है? क्या उनमें उत्तम कला-कौशल आना जरूरी नहीं है?

❀ ❀ ❀

देहात के लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं— ' महाराज हम लोगों का बुरा हाल है। घर में चार खाने वाले मुंह हैं ....तुम्हारे घर ;चार खाने वाले मुंह हैं, यह तो तुम्हारा वैभव है। उनका तुम्हें भार क्यों हो रहा है। भगवान ने आदमी को अगर एक मुंह दिया है तो उसके साथ साथ दो हाथ भी दिए हैं। अगर कहीं एक समूचा मुंह और आधा ही हाथ देता तो अलबत्ता मुश्किल बात थी।

❀ ❀ ❀

रोटी के लिये हर आदमी का मजदूरी करना, हाथ पैर हिलाना ईश्वरीय नियम है।

* * *

जब से स्वराज्य आया है लोग आलसी बने हैं। उनको लगता है कि पहले बारिश से पानी गिरता था, वैसे अब स्वराज्य में बारिश से सब कुछ गिरेगा—मृग नक्षत्र में केले गिरेंगे, आर्द्रा में आलू गिरेंगे, पुनर्वसु में अनाज और हथिया में कपड़े गिरेंगे। इस तरह सोचेंगे और हाथ पर हाथ देकर बैठेंगे तो कैसे होगा ?

* * *

हिन्दुस्तान का आज का सबसे मुख्य रोग है-आलस। उसे महारोग भी कह सकते हैं। इसकी रामबाण औषध है उद्योगी मनुष्य का जीता जागता उदाहरण और संगति.........इसलिये (१) उद्योग चाहिये (२) वह निरन्तर चाहिये (३) हमारे जीवन में घुल मिल जाना चाहिये (४) उसी पर हमारे जीवन का आधार होना चाहिये (५) सारे बाहरी आधार का त्याग करना चाहिये (६) उद्योग व्यवस्थित चाहिये, और (७) उसकी सफलता सिद्ध होनी चाहिये

इसके साथ ही साथ श्रम से बचकर बौद्धिकता का नाम लेने वालों को विनोबा जी कैसी व्यंगयुक्त भाषा में श्रम की प्रतिष्ठा का भान कराते हैं:—

एक पण्डित ने लिखा है। 'काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'। श्रीमान् लोगों का समय काव्यशास्त्र विनोद में कटता है। मानो उनका समय कटता ही नहीं। मानो वह उन्हें खाने के लिये उनके दरवाजे पर खड़ा है। काल तो जाने ही वाला है। उसके जाने की चिन्ता क्यों करते हो ? वह सार्थक कैसे होगा यह देखो। शरीर श्रम को दुःख क्यों मान लिया है ? यही मेरी समझ में नहीं आता।

* * *

शरीर-परिश्रम के फलस्वरूप जड़ता पैदा होने का डर मुझे नहीं है। विचारों की भाफ जब अन्दर ही अन्दर बन्द रहती है, तो चिन्तन के लिये यथेष्ट अवकाश मिलता रहने के कारण उलटे तीव्रता बढ़ती है।

* * *

आज तो श्रम की प्रतिष्ठा केवल वाङ्मय साहित्य में है। उससे कोई फायदा नहीं। श्रम का अधिक मूल्य देना ही उसकी वास्तविक प्रतिष्ठा बढ़ाना है। और इसका आप हम सबको मिलकर करना है।

* * *

संसार की रोटी स्वादिष्ट बनाने के लिये स्वार्थ के आटे में थोड़ा सा पदार्थ का नमक भी मिलाना ज़रूरी हो जाता है।

* * *

एक भी छिद्र घड़े में है, तो वह पानी भरने के लिये बेकार ही है। ठीक उसी तरह जीवन का हाल है। जीवन में एक भी छिद्र नहीं रहना चाहिये।

अब विनोबा जी की श्रमनिष्ठा भगवत्‌चिन्तन के सम्बन्ध में भी देख लीजिये और आप की बुद्धि फिर यही कहेगी कि विनोबा जी को आज संत और महात्मा कहते हैं वह उनकी श्रमनिष्ठा के कारण।

जिस देश में करोड़ों आदमी भूख से व्याकुल रहते हों उनकी तरफ आपका और मेरा ध्यान न जाता हो तो हमारा तत्वज्ञान किस काम का है ? हमारा हृदय सूखे पत्तल की तरह कोरा रह जायगा। जब आपके हाथ कुदाल लेकर खोदने लगेंगे तो हृदय में करुणा उमड़ पड़ेगी और बुद्धि में नया प्रकाश दिखाई देगा।

* *

मन भर चर्चा की अपेक्षा कण-भर अर्चा श्रेष्ठ है। "उठ भोर राम का चिन्तन कीजै' इस वाक्य के लिखने का यह उद्देश्य नहीं है कि इसे घोखता बैठे।

* * *

हम लोग परमेश्वर का नाम लेते हैं लेकिन उसका काम नहीं करते हैं परमेश्वर के सामने दुख, दारिद्र्य दीनता दोष टिक नहीं सकते लेकिन हिन्दुस्तान में ये सब हैं इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान में अभी सच्ची भक्ति का उदय नहीं हुआ है। (शेष पृष्ठ ४० पर)

* * *

दक्षिण मध्य-भारत के आदिवासी के नृत्य, गीत

श्री इन्द्रजीत शर्मा

ग्राम गीत, कथा कहानी और नृत्य जन-हृदय की विशुद्ध भावना के प्रतिबिम्ब है। यह किसी भी राष्ट्र की अमूल्य सांस्कृतिक निधि है। भारत वर्ष की यह विशेष महत्वपूर्ण एवं गौरव पूर्ण निधि आज भी ग्रामों में विद्यमान है। इन ग्रामों के लोक गीत, कथा कहानी नृत्य और चित्र कला आदि साहित्य हृदयों को स्पन्दित करते और नित्य नई प्रेरणा प्रदान करते हैं।

हमारी मध्यभारत की भूमि पर गुंजरित ऐसे गीतों का अभाव नहीं है। ये ग्राम-गीत ग्राम-वासियों के ही मुख से उनकी लय में हृदय को झंकृत कर देने वाले कोमल और करुणा मिश्रित स्वर में गाये जाते हैं। किन्तु दक्षिण मध्यभारत के आदिवासी क्षेत्र में गीतों से भी अधिक महत्त्व उनके नृत्यों का है, जो 'भील-नृत्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस नृत्य-कला का सामान्य परिचय दिए बिना आदिवासियों की संस्कृति के विषय में कुछ कहना एक अधूरी ही बात होगी। इस आदिवासी क्षेत्र में नृत्य प्रमुख रूप से दो रूपों में प्रचलित हैं—

१. दाँतिया (घेर) — दाँतिया पुरुषों द्वारा खेला जाता है। इसमें वे गोलाकार घूमते हैं और दोनों हाथों में छड़िया लेकर अपने सामने के व्यक्ति की छड़ियों में कौशल से मारते हैं। यह क्रिया ढोल की ताल पर चलती है। इसमें पग एक साथ गतिशील होते हैं।

२. गरबा — यह इस क्षेत्र का एक विशेष नृत्य है। सौराष्ट्र में यह नृत्य केवल स्त्रियों द्वारा खेला जाता है, किन्तु इधर इसमें पुरुष और स्त्रियों की आमने सामने अलग २ दो मंडलियां होती हैं। इसमें वे गाते और नृत्य करते हैं। आगे और पीछे कदम करते हुए सामने वाले साथी की गर्दन को सीधे हाथ से और कलाई को बायें हाथ से थामते हैं। वकेल पैर ताल के साथ २ आगे पीछे होकर गतिशील होते हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरों — जैसे विवाह, और होली आदि पर अन्य प्रकार के नृत्य भी इन आदिवासियों में पाये जाते हैं। बाग की गुफाओं और ग्वालियर फोर्ट के गुजरी महल में इन नृत्यों के चित्र तथा लेख पत्थर पर खुदे हुए मिलते हैं।

आगे यहां झाबुआ और धार मन्डलों के आदिवासियों की एक गौरव पूर्ण कला का परिचय उनके एक लोकगीत द्वारा प्रस्तुत किया जारहा है।

गीत की भूमिका इस प्रकार है कि माही नदी को भील लोग एक गुजरिन का अवतार मानते हैं। वर्तमान काल में भी जहां कहीं गूजर लोग रहते हैं, वे अधिकतर गाय और भैंस पालते हैं। ठीक यही बात माही के लिये भी थी।

माही नदी का उद्गम मध्य भारत के धार मण्डल के अमझेरा के निकट हातौद भिन्डा ग्रामों से है। आज भी वहांपर उपर्युक्त सभी चिन्ह पत्थरों के विद्यमान हैं।

गीत है—

कालूड़ी ने भूरी धवेड़ावे वो गुजरेड़ी।
कालूड़ी ने भूरी धवेड़ावे।

हाडड़ी ने बावड़ी पाणी साल्याँ वो गुजरेड़ी।
हाडड़ी ने बवड़ी पाणी साल्याँ।

काँखाँ में लीदां है रूपा बेडा वो गुजरेड़ी।
हाथों में लीदा है सूना सुमेली।

बेडुल्याँ तो मेल्यां सरवर पाले वो गुजरेड़ी।
सुमेली मेली है, सम्पा डाले

बेड़ूलां भरी ने पांसां फस्या वो गुजरेड़ी।
बेडूला भरी ने पासां फस्या।

बेडूला मेला है सूआ पलेड़ी वो गुजरेड़ी।
बेडूलां मेल्या है सूआ पलेड़ी।

गायां ना वेड़ा मां गोला घूमे वो गुजरेड़ी।
गायां ना वेड़ा मां गाला घूमे।
ससरोजी आंणा लेवा आया वो गुजरेड़ी।
ससरोजी आणां लेवा आया।
लीदी बावलिया नो वेह वो गुजरेड़ी।
लीदी बावलिया ने वेह।
वड़ा बड़ा परवत फोडी नाख्या वो गुजरेड़ी।
वड़ा बड़ा परवत फोडी नाख्या।
अईड़या ने बईडा आड़ा फेरया वो गुजरेड़ी।
जाई तो कांणा खारा समन्दर।

अर्थ है—

एक समय माही अपने पीहर में थी। प्रति दिन वह अपनी काली और भूरी गायों का दूध निकालती थी। एक दिन उसकी सास उसको लेने के लिए वहां आ गई। माही दूध आदि कार्यों से निवृत्त होकर अपनी सास के साथ सोने की चूमली और चाँदी के पानी भरने के वर्तन लेकर निकट के तालाब में पानी भरने के लिए गई। पानी के बर्तनों को उस तालाब के तट पर तथा सोने की चूमलियों को चम्पावृक्ष की एक डाल पर उन्होंने रख दिया। फिर पानी भर कर घर लौटी। पानी के बर्तन सोने की बनी हुई परेंड़ी पर रख कर माही एकाग्र चित्र से छाछ बिलोने लगी। उस अवसर पर उसके सिर का लूगड़ा (ओढ़ना) सरक गया, जिसकी ओर स्वभावतः उसने ध्यान भी नहीं दिया। इधर श्वसुर ने देखा कि सास-बहू दोनों को बहुत दिन हो गए हैं। आई नहीं है। तो लाने का विचार करके वह चल दिया। संयोगवश माही का श्वसुर उसी समय वहाँ आ पहुंचा, जब वह छाछ कर रही थी। माही ने जब अपने श्वसुर को देखा और उधर उसे अपने अर्ध नग्न शरीर का ध्यान किया तो यह सोच कर कि उसका अध खुला शरीर श्वसुर ने देख लिया है। तो लज्जा के मारे वह छाछ बनाने के बर्तन में कूद पड़ी। और नदी का रूप धारण कर लिया। उसे रोकने के लिए मार्ग में बड़े बड़े पर्वत और नदियाँ उससे मिली किन्तु माही अबाध गति से चल कर समुद्र में जा मिली। विशेष— इस गीत में नारी का वह लज्जाशील रूप प्रतिबिम्बित है, जिसका हमारी संस्कृति से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। हमारे देश की सभी नदियों को "देवी" का रूप दिया गया है यहाँ आदिवासी जीवन पर भी इसकी छाया स्पष्ट है। दूसरी ओर जीवन की स्वाभाविकता का भी कितना सुरुचि पूर्ण कला युक्त वर्णन इस गीत में है, जो निस्सन्देह स्पृहणीय है। नारी का सोने चाँदी का मोह आदिवासी नारियों में भी अछूता नहीं रहा है। इस गीत में माही के पीहर के चाँदी के वर्तन, सोने की चूमली और सोने की ही परेंड़ी इसका प्रमाण हैं। आदिवासियों की जो पारिवारिक विशेषता है, वह इस गीत में बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से व्यक्त की गई है। आदिवासियों में नारी और पुरुष के अधिकार समान हैं और अंग्रेजों की भांति वे नारियों का अधिक आदर करते हैं। घर और बाहर, खेत और बाजार हाट में, रास-रंग और विवाह-शादी में एक आदिवासी सभी जगह बहुधा अपनी भीलनी (मैम) को साथ रखता है।

टिप्पणी-- आदिवासी भाषा में 'स' का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है। कहीं 'स' के स्थान पर 'ह', जैसे सासू को हाऊ, कहीं 'च' के स्थान पर 'स' जैसे चम्पा को सम्पा और चाल्यां को साल्यां और कहीं कहीं 'छ' के स्थान पर भी 'स' प्रयुक्त करते हैं, जैसे पाछाँ को पासाँ इत्यादि। मोटी दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा और सौराष्ट्र के बीच में होने के कारण उनकी भाषा इन दो भाषाओं का सम्मिश्रण है। अलबत्ता उच्चारण में भेद के कारण कुछ शब्द उनके स्वयं के से जान पड़ते हैं।

सुन्दर काण्ड का आध्यात्मिक रूप

श्री रामचन्द्र गौड एम० ए० बी० टी० विज्ञान रत्न

हनुमानजी अशोक वाटिका में पहुंच जाते हैं जहां पर सीताजी कैद हैं और अनेकों राक्षसियां उन्हें दुःख दे रही हैं। वे पत्तों की आडमें बैठकर आत्मा रूपी सीता के कारावास का तमाशा देखते हैं। रावण मन है उसकी आज्ञा से अनेकों राक्षसियां आत्मा को कष्ट दे रही हैं। अर्थात् मन सांसारिक संकल्पों से युक्त है और उसने अपने संकल्पों द्वारा आत्मिक शक्तियों पर पर्दा डाल दिया है। आत्मा को आच्छादित कर दिया है उसके कृत्यों के कुपरिणामों से आत्मा पर एक प्रकार की चादर ढक गई है। जब इन राक्षसियों का वश नहीं चलता तो रावण स्वयं अविकारी आत्मा को सांसारिक विकारों से युक्त होने का प्रलोभन देता है पर आत्मा उन सब प्रलोभनों को तिनके के समान निकृष्ट बतलाकर उनका अपमान करती है यही वार्तालाप में तिनका रखने का अर्थ है अथवा यह रावण को संकेत है कि चर्म चक्षुओं के वायु-दृष्टि के परिणाम तिनके समान मूल्य हीन हैं। अन्तर्चक्षुओं से अपने शरीर को देखें तो तिनके की ओट में आत्मा की समस्त शक्तियां छिपी हैं। रावण इस संकेत को नहीं समझा और आत्मा को मारने के लिये तैयार हो गया।

ठीक यही हाल इस समय संसार का है। संसार मन की सरस तथा दुःखान्त कल्पनाओं पर चल रहा है। मनुष्य जब कुमार्ग पर जाता है, तो मानव मस्तिष्क में कुबुद्धि और सुबुद्धि का युद्ध होता है।

सुबुद्धि की आन्तरिक प्रेरणायें मनुष्य को कुमार्ग पर जाने से रोकती हैं। यही कारण है कि चोर अपनी प्राथमिक अवस्था में चोरी करते समय विचलित होता है, उसका शरीर काँपने लगता है, वह कुछ समय के लिये किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है पर कुबुद्धि की विजय होती है और वह चोरी कर लेता है। यही घटना कई बार होती है और सुबुद्धि की प्रेरणाओं का बल क्रमशः क्षीण होता चला जाता है। अन्त में ये प्रेरणाएँ बन्द हो जाती हैं। मनुष्य बड़े २ पाप करने में तनिक भी आगा-पीछा नहीं देखता। किंचित मात्र बंधन उसपर नहीं रहता, पाप उसकी रग-रग में समा जाता है। उसे अर्थ अनर्थ का भास नहीं होता। उसे भविष्य के पश्चात्ताप तथा अपने निर्बलता का ज्ञान नहीं रहता। वह आँखें होते हुवे भी मदान्ध, कामान्ध, धनान्ध, गर्वान्ध इत्यादि अनेक प्रकार का अंधा बन जाता है। यही मानव ये दानव का रूप है यही रावण का साम्राज्य है। वर्तमान काल का काला बाजार, आधुनिक घूस, बीसवीं सदी की संपत्ति का मतवाला-पन तथा — इस समय की पद-लोलुपता एवं वर्तमान अधिकारियों का दर्प-पूर्ण व्यवहार तथा कपट नीति उनकी थोथी उपदेश कुशलता आज रावण साम्राज्य के साक्षात प्रतीक हैं। हम नाम मात्र के स्वतंत्र है अभी रावण की लडाई और रामायण का लंका-कांड बाकी है। सच्चा युद्ध वही है प्रत्येक मनुष्य को अपने महाभारत को समाप्त करना है वह भी बाह्यदृष्टि से नहीं अन्तर्दृष्टि से तभी सच्चा सुख प्राप्त होगा। हमें उत्तेजित होने वाली आधुनिक शिक्षा का विरोध करना है उसके दासत्व तथा संपत्ति लोलुपता के घातक लक्षों का अन्त करके आत्म निरीक्षण की ओर उसे मोड़ना है। हमें मनुष्य की भेडिया की अटूट हिंसा वृत्तियों का अन्त करना है। शिक्षा में आत्म निरीक्षण के सरल मार्ग का समावेश करना है। चिल्लाना हमारा कर्त्तव्य है आदर्श रखना हमारा ध्येय है संभव है इससे कुछ मनुष्य मार्ग पर आजाँय नहीं तो ईश्वरीय कोप महा प्रलय तथा भंयकर बीमारियां, महान रक्तपात ही दानवता पर कटिबद्ध मनुष्य रूपी दानव का एक मात्र इलाज है। यही कारण है सीतारूपी आत्मा ने रावण और उसके साम्राज्य का पूर्ण रूपेण तिरस्कार किया और उसे विमुख होकर भागना पडा।

अपनी इच्छाओं की प्राप्ति के अभाव में क्रोध की उत्पत्ति होती है। रावण सीता को मारने को तैयार है पर सीता को दो मास की अवधि देदी जाती है और उसके बाद विनाश का आयोजन होता है। यह मन की चेतावती मन को है। यहां दो मास दो अवस्थाओं के रूप हैं। बात यथार्थ है। बाल्यावस्था नादानी से परिपूर्ण है। पर शिक्षा उसी अवस्था में मनुष्य के दिमाग में उन अंकुरों को उत्पन्न कर देती है कि

जो यौवनावस्था रूपी मस्त हाथी के लिये अंकुश का काम देते हैं। इस अवस्था में आंखों में प्रमाद अपार रहता है। हजारों में से कोई विरला ही अपने रास्ते से भ्रष्ट होने में बचा होगा। वृद्धावस्था में निर्बलता का साम्राज्य है। पराधीनता का बोलबाला है। मृत्यु रूपी सिंह की गर्जना है। रोगों का प्राबल्य है ऐसी अवस्था में बाल्यकाल तथा यौवनावस्था ही आत्मोद्धार के साधन हैं। उनके व्यतीत होने पर मन का साम्राज्य सुदृढ़ हो जाता है। फिर संभलना कठिन है। जन्म जन्म का फेरा प्रारंभ होकर अनिश्चित समय के लिये चल पड़ता है।

कटु वचनों का घाव अपनी असीमित क्षति के लिये प्रसिद्ध है। आत्मा मन के अभिशापों से संतप्त होकर अपने अंत की प्रतीक्षा करती है। उसी समय त्रिजटा नाम की राक्षसी उन्हें धैर्य बंधाती है। आत्मा का चिर शक्ति से संबंध जाग्रत होता है। हनुमानजी गुप्त रूप से रामचन्द्रजी का गुणगान करते हैं। हरिगुण श्रवण से शांति प्राप्त होती है। आत्मा का दर्शन भक्त पाता है। वह कृतार्थ हो जाता है। वह मुक्त होकर परम हंस वृत्तियों को प्राप्त करता है। उसकी सांसारिक भावनायें नष्ट हो जाती हैं। यही सुंदर कांड में अशोक वाटिका का विनाश है।

आत्मा के कारागार से दुःखी होकर भक्त उसे मुक्त करने का प्रयास करता है। युद्ध होता है। यही अशोक वाटिका की निंदाई है। उसके अनर्गल तथा अनावश्यक उपज का निर्मूल करना है। यही उसके आदर्श का प्रोत्साहन है। इस प्रयत्न में उसका कुबुद्धि रूपी मेघनाथ से युद्ध होता है और स्वयं बंध कर मन को उपदेश द्वारा शुद्ध करने का प्रयत्न करता है विफलता स्वाभाविक है। मन के साम्राज्य में विरोधी को कड़ी सजा मिलनी चाहिये। यही कारण है कि हनुमान की पूंछ में घी तेल तथा कपडा लगाकर जलानेका आयोजन होता है। प्रहलाद के विरोध में हिरण्यकश्यप राक्षस का यही दावा था। श्रीकृष्ण के समक्ष कंस की यही प्रतिज्ञा थी। पांडवों के विपरीत कौरवों का यही जाल था। हुआ क्या?

"कपि की ममता पूंछ पर" कह कर तुलसीदास जी ने सांसारिक ममता का नाश स्थापित कर दिया है। साक्षात अग्नि में न जलना बतलाकर उन्होंने भक्तों को शरीर भाव से परे बताया है। उनकी आत्मा स्थिर है। वह परिवर्तन से परे है। अग्नि उसका नाश नहीं कर सकती। अपने जीवन की समस्त घटनायें उसके राम की इच्छा है। उन्हें प्रसन्नता पूर्वक सहन करना भक्तों का कर्त्तव्य है। यही कारण है हनुमानजी ने इस प्रकार के दंड पर कोई आपत्ति प्रकट न की। बलवान होते हुए अपने बल का प्रयोग नहीं किया।

प्रत्येक कार्य की प्रतिक्रिया होती है। इस मन के अत्याचार ने भक्त को आत्मदर्शन तथा आत्मचिंतन में और भी अधिक दृढ़ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि भक्त ने शरीर को जड़ समझा जड संसार का श्रीगणेश माना। उसे ममता की जड़ स्वीकार किया। उसे कर्म का साधन माना। उसे सुख तथा दुःख का आधार निश्चित किया। उसे अहंकार का तांडव-नृत्य ठहराया। परिणाम यह हुआ कि शरीर भाव का विनाश हुआ। यही लंका दहन है। इसका यह संदेश है कि शरीर क्षणभंगुर है। उसका सौन्दर्य सामयिक तथा विनाशवान है। वह षटरिपुओं का घर है। वह राक्षसों का मंदिर है। उसकी शक्ति का अंत है। उसके आगे कोई और शक्ति है जो संसार का संचालन कर रही है। इन्द्रियों के निर्णय वर्तमान निश्चयों से सम्पन्न हैं, उनमें भविष्य का कोई ध्यान नहीं। वे व्यक्ति तक सीमित हैं उनमें किसी "वसुधैव कुटुम्बकं" का कोई आधार नहीं। अतएव हमें शरीर भाव से परे होकर भगवान का भजन करना चाहिये। हम कर्ताभाव से परे हैं। कर्ता केवल ईश्वर है ऐसा समझना ही नहीं वरन उसे कार्यरूप में लाना ही सुन्दरकांड का मुख्य हेतु है। यही कारण है कि हनुमानजी ने रावण को स्वयं नहीं मारा। यही कारण है सीताजी ने उन्हें मना किया। यही कारण है कि विश्वामित्र ने मारीच तथा सुबाहू को स्वयं नहीं मारा। वे रामचंद्रजी को लाये।

लंका-दहन के पश्चात् हनुमानजी समुद्र में कूद कर अपनी पूंछ बुझा लेते हैं। समुद्र को भवसागर बताया है। उसे दुःख का समुद्र माना है। उसे मृगतृष्णा का भटकने का स्थल बताया है। फिर उसमें शांति कैसी? संसार एक विचित्र सृष्टि है। उसमें स्वतंत्र गुण कुछ नहीं है। वह शिलावत है। न वह किसी की मृत्यु से रोता है और न किसी के सुख में आनंद मनाता है। कवि के अनुसार कभी तारे

अंगारे हो जाते हैं और कभी वे आनंद के प्रतीक, पर वास्तव में वे कुछ नहीं हैं। उसमें विचारों के तूफान आते हैं चले जाते हैं। वह परिवर्तन से परे है। वह हमारे जन्म से पहिले था और मृत्यु के बाद में रहेगा। केवल प्रलय ही उसका काल्पनिक अंत माना जाता है। यही हाल भवसागर का है। ऊपर उथल पुथल है, दीवानापन है, विनाश है और भयंकरता है। बीच में शांत है। तलहेटी में रत्न हैं। पानी विचार का द्योतक है। जो ऊपर के दृष्य में रहे वे विफल हुए, पागल हुए, पथभ्रष्ट रहे और अपने आप ही उन्होंने भयंकर लहरों को सुन्दर समझ कर अपनाया और वे जन्म जन्मान्तर के महान दुःख को प्राप्त हुए। जिन्होंने संसार की असारता को प्रमाणित कर लिया चाहे अपने अनुभव से अथवा दूसरों के उदाहरणों से उसे आत्मा रूपी रत्न प्राप्त हो गया और समुद्र के रत्नों की संख्या के समान उसे संसार के प्रत्येक प्राणी में अपने ही ईश्वर के दर्शन होने लगे। इसी आधार पर स्वामी शंकराचार्य ने कहा भी—

को दीर्घ रोगो ? भव एव साधो।
किम् औषधँ तस्य ? विचार एव।

यहाँ कौनसा बड़ा रोग है ? सन्तों ! संसार ही बड़ा रोग है। उसकी औषध क्या है ? केवल विचार।

भवसागर की भंयकरता उस समय तक है जब तक अपने शरीर से मोह है। शरीर भाव से परे व्यक्ति को ये चीजें कोई महत्त्व नहीं रखतीं। संसार में दुःख की जड़ शरीर भाव में है, स्वार्थ में तथा अपने कर्मों के फल में है। जब कर्ता ईश्वर को मान लिया तो कर्मों के फलों का लक्ष्य ईश्वर हो गया। जब स्वार्थ तो सांसारिकता की टक्करें समाप्त हुई। जब शरीर भाव छोड़ा तो मनुष्य केवल आत्मा रूप रह गया। न ये दृष्टिकोण से संसार भी आत्म स्वरूप हो गया। समस्त अशांति शांति में परिणित हो गई। भवसागर का दावानल हमारे लिये शीतल हो गया। यही कारण है कि हनुमानजी के नये दृष्टि कोण ने दुःख समुद्र को सुखद तथा शांतिप्रद बना दिया। उनकी पूंछ बुझ गई।

पर पूंछ जल तो नहीं गई। वह नष्ट तो नहीं होगई। यहाँ ममता पूंछ है। सांसारिक वस्तुओं के स्वामित्व की भावना को ममता कहते हैं। यही मेरे और तेरे का विचार है। अब यहां ममता तो रही पर दूसरे दृष्टिकोण से। मैं एक व्यक्ति हूँ। जितनी चीजें मेरे पास हैं वे सब ईश्वर की धरोहर हैं। उनकी रक्षा मेरे लिये उपयुक्त है क्योंकि धरोहर खो जाने पर पास से पूरी करनी पड़ती है। ये समस्त चीजें हमारे पास स्थायी रूप से टिकने वाली नहीं है। जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु है, जहाँ मृत्यु है वहाँ जन्म है। ईश्वर की सरकार में कर्मचारियों का स्थानान्तर किया जाता है। मृत्यु ऐसा ही एक स्थानान्तर है। अतएव हमें उनके प्राप्त होने पर सुखी नहीं होना चाहिये तथा उनके नष्ट होने से संतप्त नहीं होना चाहिये। इसी भाव को लेकर तुलसी ने कहा है कि:—

तुलसी ममता राम से, समता सब संसार।
राग द्वेष बिनु जीयबो, दास भये भव पार॥

पूंछ बुझा कर हनुमानजी सीताजी के पास बिदा मांगने गये। उस समय हनुमानजी ने कहा था कि मैं चाहूँ तो सारी लंका को नष्ट करके तुम्हें अभी ले जाऊं और राम से मिला दूं। यह भक्त का प्रयत्न है आत्मा को मुक्त करने का प्रारब्ध से कौन बचा सकता है। वह तो भोगना ही पड़ेगा। उसमें शीघ्रता करने से कोई लाभ नहीं। भक्त को कर्त्तापने से दूर रक्खा है। उसे 'मा फलेषु कदाचन' का आदेश है। ऐसी दशा में रावण जैसे भंयकर राक्षसों की लीला चलने देता है। केवल इसलिये कि केवल लीलाधर ही अपनी माया को समेट सकते हैं। मनुष्य तो केवल चलती फिरती शक्ति का एक नमूना है। अतएव प्रति दिन हमें ईश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमारी आशाओं को नष्ट करें। वह हमें यह शक्ति दे कि जिसके आधार पर काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा झूठ को जीत कर बड़े भारी शूरवीर बनें। कहा भी

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति कोवा।
मनोज बाणैः व्यथितो न यस्तु॥
प्राज्ञो ऽथ धीरश्च समस्त को वा।
प्राप्तो न मोहं न ललना कटाक्षः॥

शूरवीरों में सर्वश्रेष्ट शूरवीर कौन ? जो काम देव के बाणों से पीडित न हो। बुद्धिमान, धैर्यवान, समभाव को प्राप्त हुआ कौनसा व्यक्ति है जो सुंदरियों के कटाक्षों से मोहित न हो जावे।

सीताजीने हनुमानजी को अपने गले का हार चिन्हस्वरूप दिया। इसका अर्थ यह मैं अपने जीवन का चिंतन नहीं करती। मुझे चाहे गरदंन कटवाना क्यों न पडे पर मैं अब पराई नहीं हो सकती। अब तक मुझे मन रूपी रावण ने आक्रान्त कर रखा था। अब तक मुझे मनमाने नाच नचाता रहा। मुझे अनेकों कष्ट भोगना पडे। अब तक संसार का वास्तविकता का मुझे भास नहीं था। मैं अपनी समस्त शक्तियों को भूल गई थी। पता नहीं था मैं कौन हूँ? मेरी क्या शक्तियां हैं? अब बरसों से मन के आधीन थी पराधीनता मुझे जकडे है। मैं अब उसे समाप्ति करने के लिये क्रांति का आवाहन करती हूं। इस समय से मेरा यह कर्तव्य होगा कि मन रूपी रावण के साम्राज्य को जड मूल से उखाड कर फेंक दूं। चाहे इसमें मेरा सर्वस्व (शरीर मात्र) भी नष्ट हो जाय तो कोई हानि नहीं। इतना अवश्य है कि मेरी जीत आप की सहायता बिना नहीं हो सकती अतएव आप मेरी सहायता को पधारिये।

हनुमानजी सीताजी से विदा लेकर वापस लौटते हैं। वे इस समय समुद्र को गोपद के समान उलांघ करके दूसरे तट पर पहुंच जाते हैं। आत्मनिष्ठ हनुमानजी के उपदेश से सर्व वानर आत्मानंद के सागर में पूर्णतया मग्न हो जाते हैं। वे सब बानर लौटते हैं। मार्ग में मधुवाटिका के समस्त फल खाये, अमृत पिया तथा अनेकों वृक्ष उखाड दिये। इससे यह ध्वनि अवश्य है कि सुग्रीव की ममता इस वाटिका पर अत्यंत बढी हुई थी। इसका विनाश सुग्रीव की ममता का जड से उन्मूलन है। इसकी हानि में सांसारिक सुखों की क्षणभंगुरता उसका दुःख से जल पंकवत संबंध की घोषणा है, उसका तिरस्कार है उनका परित्याग है। उनमें समता का आदेश है

हनुमानजी रामचंद्रजी से मिलते हैं। सीताजी के दुःखों के मिस यह प्रदर्शित करते हैं कि आत्मा कैद हो चुकी है। मन रूपी रावण ने उसे वश में कर लिया है। मन रूपी रावण ने स्वर्ग की मादकता रूपी मारीच के द्वारा उसे वशीभूत किया है। मन की वृत्तियां राक्षसियाँ बनकर उसे घेरे हुए हैं। दिन रात उसे सता रही हैं। मन के शासन के कारण आत्मा का लोप हो गया है। सीताजी की शरीर कृशता तथा उनकी मुखाकृति की विकृति वास्तविक रूप में आत्मा की निर्बलता उसकी उदासीनता तथा उसकी दीनता है।

हनुमानजी ने रावण की सभा तथा उसमें होने वाले संवाद की चर्चा की है। उसमें भक्त हनुमानजी यह प्रकट कर रहे हैं कि मैंने मन रूपी रावण को खूब उपदेश किया है। उसके समक्ष मैंने उसकी भलाई तथा बुराईयाँ समस्त प्रकट की हैं। पर समस्त प्रयत्न निष्फल रहे। यहां भक्त ईश्वर को शक्तिशाली मानता है मानव उसकी दृष्टि में अपूर्ण है। बात ठीक भी है। यह संसार यदि मनुष्य के वश में होता तो उसे अपनी इच्छा के विपरीत घटनाओं का सामना न करना पडता। साम्राज्यों को पतन का अनुभव न होता। जातियों के उत्थान पतन को अवसर न प्राप्त होता। काल-चक्र की महानता का कोई प्रमाण ही नहीं रहता। संभव है मनुष्य को अपनी अपूर्णता का परिचय भी न होता। अतएव मनुष्य की अपूर्णता का अनुभव करके भक्त अपनी सहायता के लिये पूर्ण ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है। यही श्री रामचन्द्रजी के पास सीता की मुक्ति का आयोजन है।

हनुमान शब्द की व्याख्या करते हुए हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि वही सच्चा भक्त है जिसने अपने अपमान पर विजय प्राप्त कर लिया है। उन्होंने स्वयं लंकादहन के आधार पर अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं की। न उन्होंने ब्रह्मपाश के बंधन संबंधी अपयश की अभिव्यक्ति की। महान कार्यों की सफलता उन्हें अभिमान की ओर न लेजा सकी। इसका कारण उनका अहंभाव से दूर रहना है। उनकी यश तथा अपयश की समानता है। दूसरे शब्दों में वे द्वंद्वों से परे थे।

इसके पश्चात सेना लंका पहुंच कर रावण से युद्ध का श्रीगणेश करती है। वह कोई इस बात का समर्थक है कि शरीर के शत्रुओं को पहचान कर उनसे किस भांति लड़ना चाहिये। यह अगले लेख का विषय रहेगा।

अन्त में सुन्दर-कांड का महत्व मानव शरीर के शत्रुओं की पहचान है। उनके प्रमाद की अभिव्यक्ति है। मन की अनेक लीलाओं का स्पष्टीकरण है। आत्मा का परिचय है। उसके बंधन की अभिव्यक्ति है। भक्त का मन को समझाने का प्रयास है। मन तथा आत्मा के घोर संघर्ष का उल्लेख है। अहंभाव से परे होने का आदेश है। स्वनिरीक्षण का सर्वोत्तम प्रयास है। ममता त्याग के आधार दुःखदायी समुद्र के खारेपन का लोप है। संसार "राममय" गुण से सम्पन्न

नवीन दृष्टि कोण है। जीवन में सतत आनंद की सफल खोज है। सुमति की उत्पत्ति, उसका प्रसाद तथा उसके विकास का उत्तम चित्रण है। यह सांसारिक सौंदर्य से मानव-राममय संसार को आदर्श सौंदर्य की ओर ले जाने की सुगम तथा सफल युक्ति है। मन रूपी रावण को जीतने का दृढ निश्चय है। मानवों की शक्तियों की अपूर्णता है। ईश्वरीय पूर्णता का आधार सम्पन्न सम्पादन है। उसकी सहायता से युद्ध में विजयी बनने का दृढ़निश्चय है। उस पर असीम विश्वास का मूलाधार है। यह ईश्वरीय शक्तियों के प्रति आत्म समर्पण है। कर्तापने का लोप है। संसार की समस्त समस्याओं का चिर-स्थाई तथा अमिट हल है। उनमें समता का संदेश है। यह सत्संगति का अद्भुत वर्णन है।

(पृष्ठ ३३ का शेष)

चांदनी बिल्कुल आटे जैसी सफेद भले ही हो परन्तु उसकी रोटियां नहीं बन सकतीं।...... जीवन का आनन्द खो बैठोगे और तो कुछ नहीं।

* * *

अन्त में मैं विनोबा जी के ही शब्दों में कहना चाहूँगा कि उनकी ख्याति और प्रतिष्ठा से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए वरन उनके आचार और विचार का अनुकरण करना चाहिए ताकि हम भी कुछ अच्छे वन सकें।

मनुष्य ईश्वर की लिखी हुई एक मिट्टी है, एक संदेश है। मिट्टी का मजमून देखना चाहिये। उसकी लम्बाई- चौडाई और वज़न देखने का मतलब नहीं है।

ग्रामोद्योग पर ही देश की समृद्धि निर्भर

अपने दैनिक व्यवहार के लिये मध्य भारत में बनी हुई वस्तुओं का उपयोग कीजिये !

- चन्देरी-महेश्वर की जरी की साडियां।
- मन्दसौर-मनासा के सुन्दर कम्बल, मफलर और आसन।
- गवालियर पाटरीज के आकर्षक बर्तन तथा गवालियर लेदर फेक्टरी का चमडे का सामान
- कुटीरोद्योगों के चमड़े तथा कागज के खिलौने।
- दैनिक उपयोग के लिये स्वादिष्ट मुरब्बे, चटनी, पापड तथा सुगन्धित तेल।
- धूप और वर्षा से बचाने वाले मजबूत छाते, तेज चाकू तथा सुन्दर लेखन सामग्री

मिलने का स्थान—

दि आर्टस् एन्ड क्राफ्टस् एम्पोरियम

इन्दौर-गवालियर-उज्जैन-रतलाम-महू-शिवपुरी

★ परिचय-प्रवाह ★

समाज—

दिल्ली से 'समाज' नामक एक सुन्दर पत्र (मासिक) प्रकाशित होने लगा है, उसके सम्पादक हैं श्री महावीर अधिकारी, पत्र वास्तव में अन्दर और बाहर दोनों दृष्टि से चमक रखता है। पहिले अंक के बाद उसकी सुन्दरता दिनदूनी बढ़ती सी है उपजी की लेखनी का चमत्कार भी उसमें दिखाई देने लगा है, हर दृष्टि से 'समाज' हिन्दी का श्रेष्ठ पत्र है, हम श्री अधिकारीजी को उनकी सफलता पर बधाई देते हैं।

ज्ञानोदय—

'ज्ञानोदय' भी सहारनपुर से संचालित हो सुरुचिपूर्ण साहित्य द्वारा समाज की सुन्दर सेवा कर रहा है, समाज और ज्ञानोदय का आकार प्रकार, साज-सज्जा आकर्षक है, और विषय वस्तु भी मनोहर, दोनों पत्र हिन्दी के लिये उज्वल भावों के सूचक हैं। मासिक-साहित्य में आज हिन्दी देश की सभी भाषाओं में नम्बर मार जाती है, ऐसे सुरुचिपूर्ण, ठोस सुन्दर सजीले मासिक दूसरी भारतीय भाषा में नहीं हैं, हम ज्ञानोदय संपादक प्रभाकरजी की सूझ-सुरुचि की प्रशंसा करना चाहते हैं।

मालव साहित्य—

मराठी का मालव-साहित्य बहुत समयपूर्व इन्दौर से सुन्दर रूप में निकल रहा था परन्तु बीच में बंद हो गया था, हाल ही में उसने अपना शरदोत्सव-अंक प्रकट किया है, हम अपने इस मराठी सहयोगी का स्वागत करते हैं, यह अंक अच्छा निकलता है श्री डांगे और श्री कवचालेजी के लेख सुन्दर हैं श्री खांडेकरजी की 'कैफियत' भी सुपाठ्य है, परन्तु मराठी में 'कैफियत' का प्रयोग हमें नहीं जंचा।

वा० मू० २) महाराष्ट्र साहित्य-सभा इन्दौर से प्राप्त

अंतर महाविद्यालय पत्रिका—

गुना (म० भा०) से प्रकाशित अन्तर महाविद्यालय की यह पत्रिका सुन्दर निकली है। हिन्दी, अंग्रेजी संस्कृत उर्दू में गद्य-पद्यों के समावेश हैं। क्या ही उत्तम होता कि उर्दू के चयन को नागरी में छापा जाता। उर्दू लिपि का जन साधारण को कोई उपयोग नहीं। तथापि पत्रिका सुन्दर है।

मेघदूत—

राजकमल प्रकाशन दिल्ली से अमर साहित्य-माला के क्रम में मेघदूत का प्रकाशन हुआ है। आरंभ में मेघदूत पर उसके विद्वान-अनुवादक वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने मेघदूत के कुछ अंशों पर बड़ी अध्ययन पूर्ण, विद्वत्ता प्रचुर चर्चा की है। यह विचारोत्तेजक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। बाद में मूल और अनुवाद भी सरल भाषा में दिया है। अंत में कुछ नोटस बड़े मार्के के हैं। मेघ सम्बन्धी वैज्ञानिक विवेचन भी उद्धृत है, परन्तु मेघ-मार्ग (मानसून) का भी वैज्ञानिक-क्रम प्रस्तुत कर दिया होता तो उत्तम होता, क्योंकि कवि का दूत – मेघ आज तक प्रचलित मानसून-मार्ग के क्रम से ही चलता है, जो कवि के वैज्ञानिक ज्ञान का परिचायक भी है। हमारा आग्रह है कि यह मेघदूत सभी लोगों को संग्रह करना चाहिये। सचित्र और ऐसें सुन्दर-प्रकाशन के लिये राजकमल की प्रशंसा की जाएगी।

मू० ४) रु० अधिक अवश्य है।

विजय की मुसकान—

ले० श्यामसुन्दर व्यास। यह कहानी संग्रह है। लेखक की ११ रोचक, आकर्षक कहानियां इसमें संग्रहित हुई हैं। कहानियों में दर्द की तस्वीरें हैं, संवेदना है। मानव की मार्मिक अनुभूतियां हैं, और विषमता पर करारी चोट भी। पाठक पर उनका सीधा असर होता है। मध्यभारत के इस तरुण कलाकार की सफलता पर हम बधाई देते हैं।

दीनानाथ बुक डीपो, इन्दौर से १) रु० दो आने में प्राप्तव्य।

सम्पदा (वस्त्र-उद्योग अंक)

सम्पादक- कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, अशोक प्रकाशन मंदिर, दिल्ली।

अर्थशास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगों पर समुचित रूप से प्रकाश डालने व वर्तमान उद्योगों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करने के लिए 'सम्पदा' का प्रकाशन उपयोगी सिद्ध हुआ है। अंग्रेजी पत्र 'दी इस्टर्न इकानामिस्ट' की राय से हम पूरी तरह सहमत हैं जिसमें कहा गया है कि प्रस्तुत पत्र का प्रकाशन हिन्दी पत्र जगत में एक साहसपूर्ण कदम है। पिछले कुछ अंकों के सम्बन्ध में 'सम्पदा' को समुचित यश प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत वस्त्र-उद्योग अंक में लगभग १०० पृष्ठों की महत्वपूर्ण सामग्री दी गई है। भारत की वस्त्र-उद्योग सम्बन्धी परम्परा, नये प्रयोग, प्रान्तीय उद्योगों की प्रगति, सूती और रेशमी वस्त्रों के आर्थिक पहलू आदि विषयों पर सम्पादकीय सहित ३१ अधिकृत लेख उल्लेखनीय हैं। मूल्य— सवा रूपया।

प्रतिष्ठान (मासिक)

सम्पादक- जयकिशोर नारायणसिंह, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सहयोगी 'प्रतिष्ठान' मासिक का प्रथम अंक समीक्षार्थ हमारे सामने है। नाम के अनुरूप ही प्रस्तुत मासिक में विचारपूर्ण, मर्मस्पर्शी एवं समस्याओं पर गम्भीर सामग्री संचित है। 'प्रतिष्ठान' के कुछ संकल्प निश्चय ही अपने ढंग के हैं, फिर भी जीवन और साहित्य, तथा उल्लास और अनुभव की एकता में विश्वास रखते हुए साहित्य की महत्ता को प्रतिष्ठापित करने का संकल्प उल्लेखनीय है। 'जीवन की किसी गहरी ध्वनि का संकेत और प्रेरक निबंधों के प्रति आग्रह और 'प्रेरणा', 'गति', 'समस्या', तथा 'चिंता' नामक चार स्तम्भों के अनुकूल सामग्री के चयन की योजना प्रारंभिक अंक से ही सार्थक सिद्ध हुई है। इस विचार प्रधान मासिक के प्रकाशन के लिये हार्दिक बधाई! अंक की छपाई सुन्दर और सम्पादन उत्तम है। वार्षिक मूल्य चार रुपया और एक प्रति का मूल्य छः आना है।

कहानी (मासिक)

सम्पादक- श्रीपतराय और श्यामू सन्यासी, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।

'कहानी' मासिक का प्रकाशन १९३८ में हुआ था और १९४२ के संकटग्रस्त दिनों में वह बंद हो गया। कहानी-साहित्य की परम्परा को उन्नत करने और हिन्दी के पाठकों और लेखकों को उचित मार्ग दर्शन करने में 'कहानी' की सेवाएँ नयी नही हैं। प्रस्तुत अंक टूटी हुई कड़ियों को पुनः जोड़ने और उसे आगे बढ़ाने का प्रयास है। अभी तक दो अंकों को देखने पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है, प्रथम अंक में हिन्दी, मराठी, बंगला और पंजाबी की अनुदित की कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। दूसरे अंक में प्रेमचन्द की अप्रकाशित कहानी 'बीमार का इलाज' पहली बार प्रकाश में आई है। 'कहानी' के साथ पाठकों के लिए पुस्तकालय स्तम्भ भी दिया जाता है जो सराहनीय है। 'कहानी' के प्रकाशन से हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति होगी। एक प्रति का मूल्य चार आने है।

विद्यालय-पत्रिकाएँ—

मध्य-भारत के विद्यालयों की पत्रिकाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास तभी सम्भव हो सकता है जब कि समस्त पत्रिकाएँ हमारे सन्मुख हों। पिछले दिनों देवास के नारायण विद्यामन्दिर, शुजालपुर के श्री शारदा विद्यालय, इन्दौर के बालोदय समाज और उज्जैन के दौलतगंज मा० पाठशाला की पत्रिकाएँ आलोचनार्थ प्राप्त हुई हैं। विद्यार्थी जगत के मनोधारा को जानने उनके साहित्यिक स्तर को पहचानने का एक मात्र साधन यही वार्षिक पत्रिकाएँ होती हैं। शुजालपुर की पत्रिका उक्त सभी पत्रिकाओं में श्रेष्ठ है। सामग्री का चयन और संपादन किसी भी अच्छे मासिक के अनुरूप है। विद्यार्थियों ने युद्ध और शांति, संगीत और साहित्य, स्वास्थ्य आदि विषयों पर अच्छे लेख लिखे

हैं। मालवी गीत और कविताएँ भी उत्तम हैं। देवास नारायण विद्यामन्दिर की पत्रिका में हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी विभाग हैं। हिन्दी विभाग की सामग्री में हास्य प्रधान रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इस पत्रिका की महत्वपूर्ण वस्तु विद्यार्थियों द्वारा बनाये गये चित्र हैं। मुख पृष्ठ में रेखाओं का सबल घुमाव और 'जीवन सगिनी चंचल हिलोर' का वातावरण निस्सन्देह प्रशंसनीय है। दौलतगंज मा० पाठशाला की पत्रिका ने सामग्री के साथ विद्यार्थी लेखकों के चित्र देकर नई परम्परा का आरम्भ किया है। सामग्री सुन्दर है। अन्त में बालोदय समाज इन्दौर की पत्रिका समाज के विस्तृत परिचय के साथ बालकों की कविताएँ आदि से पूर्ण छोटीसी पत्रिका है। बालकों के जीवन में साहित्य की हिलोर किस तरह उठ कर अभिव्यक्ति पाती है उसका ज्ञान उक्त पत्रिका से हो जाता है। मध्य-भारत के अन्य विद्यालयों की पत्रिकाएँ प्रायः मार्च के अन्त में प्रकाशित होती हैं। कभी-कभी किसी वर्ष न भी प्रकाशित हो पाती हैं और कुछ विद्यालयों में तो ऐसे प्रकाशन की कोई योजना ही नहीं है। अन्त में मध्य-भारत के विद्यार्थी जगत की उक्त पत्रिकाओं की सराहना करते हुए हमारा आग्रह है कि इस दिशा में संयत और नियमित होने की आवश्यकता है।

माधव महाविद्यालय पत्रिका—

माधव महाविद्यालय उज्जैन की पत्रिका इस वर्ष सजधज के साथ प्रकाशित हुई है। श्री नारायण प्रसाद त्रिवेदी और दुर्गाप्रसाद झाला का कुशल सम्पादन प्रशंसनीय है। हिन्दी विभाग की सामग्री सुन्दर है। अन्य विभागों में मराठी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेजी के विभाग हैं जिनमें मराठी और अंग्रेजी के लेख उत्तम हैं। विद्यालयों की समितियों के चित्र और वर्ष भर की गतिविधियों की जानकारी सहित प्रस्तुत पत्रिका पठनीय है।

वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन—ने हाल ही में दो महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया है। ये पुस्तकें जनसाधारण की चिकित्सा करने वालों के लिए बहुत उपयोगी बन सकती हैं।

यूनानी चिकित्सा सार —

पुस्तक हिन्दी में नवीन वस्तु है। एक समय था जब इस चिकित्सा पद्धति ने इस देश में भी बड़ी उन्नति की है, परन्तु यह विज्ञान अरबी-फारसी में होने के कारण सभी चिकित्सालयों के लिए उपयोगी नहीं बन सका था। डा० दलजीतसिंहजी ने उक्त पुस्तक को हिन्दी में लिखकर, तथा वैद्यनाथ कार्यालय ने प्रकाशित कर बहुत उपयोगी कार्य किया है।

पुस्तक लेखक महाशय अरबी-फारसी के पंडित हैं, साथ ही संस्कृत, हिन्दी और यूनानी चिकित्सा के तथा आयुर्वेद-विज्ञान के भी पंडित हैं। अतः ये अधिकारी विद्वान हैं। उन्होंने उक्त ग्रंथ में यूनानी चिकित्सा के समस्त शारीरिक अंगों के विकारों का सरल, संक्षिप्त परिचय एवं उपचार का वर्णन किया है। ग्रंथ प्रणयन में शब्दों की परिभाषा आदि में वास्तव में बहुत श्रम किया गया है। पुस्तक चिकित्सा प्रेमियों के लिये अत्यंत उपयोगी है। मू० ४॥)

दूसरी पुस्तक—

संक्रामक रोग-विज्ञान

इसमें सक्रामक रोगों का तुलनात्मक निदान और चिकित्सा का विस्तृत व्यावहारिक वर्णन है। रोगों के आधुनिक रूप परिचय, उपचार और विवेचन में विद्वान लेखक ने निःसंदेह बहुत संतुलित और सांगोपांग विचार किया है। जिन रोगों के विषय में आधुनिक डॉक्टरों को ठीक कल्पना भी नहीं थी उनका रूप और उपचार आयुर्वेद शासन ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में हजार से ऊपर विकारों का जो वर्णन दिया गया है, और उसकी वर्तमान रूप से तुलना की गई है वह आधुनिकों के लिए आँखें खोल देने वाली है। उपचार-विधि तो साधारण समाज के लिए भी हितकारक होगी, हम इस सुन्दर विशाल ग्रन्थ के प्रणयन के लिये अयुर्वेदाचार्य पं० बालकरामजी शुक्ल, तथा

प्रकाशन के लिए वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (१४ क्रास लेन कलकत्ता ६) की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। मूल्य ६) रु०।

'त्रण प्राचीन गुजराती कविओ'

जैन साहित्य की तीन प्राचीन दुर्लभ कृतियों का संग्रह कर जैन और गुर्जर साहित्य की विदुषी डॉ० कौम्फे ने उनका श्रमपूर्वक संपादन किया है। इसमें मूलकृति, उसमें पाठभेद, और संकेतों पर प्रकाश डाला है। आरंभ में अध्ययन पूर्ण भूमिका दी है, जिसमें कवि परिचय कृति का महत्व भी बतलाया है। वस्तुतः मूल वस्तु साधारण है। उसमें कोई पुरातत्व गाथा, या साहित्यिक वैशिष्टय नहीं, किन्तु पुरातन भाषा शैली और साहित्य की दृष्टि से उनका अध्ययन उपयोगी हो सकता है। डॉ० कौम्फे ने इस साधारण रचना में यही महत्व बतलाया है।

उक्त पुस्तक में संग्रहित तीन जैन-रचनाएँ उज्जैन सिंधिया प्राच्य ग्रन्थालय में रहते हुए संस्था. की क्यूरेटर डॉ० कौम्फे ने प्राप्त की और उनका संपादन किया, परन्तु आश्चर्य है कि उक्त संस्था को इन पुस्तकों का प्रकाशन गुजरात विद्यासभा अमदाबाद ने किया है,! क्या सिं० प्रा० ग्रन्थालय अपनी संग्रह की वस्तु बाहर प्रकाशित करने की सुविधा प्रदान करता है ? पुस्तक में संपादक, या प्रकाशक ने संस्था की आज्ञा या उपकार का कहीं उल्लेख नहीं किया है। मूल्य १) रुपया।

ANCIENT JAIN HYMNS

यह पुस्तक भी डॉ० कौम्फे ने संपादित की है। और उज्जैन के प्राच्य-ग्रन्थालय ने प्रकाशित की है। इसमें ७ जैन स्तोत्रों को संपादित कर उनकी महत्ता प्रतिपादित कर नोट्स के साथ प्रकाशित किया गया है। संस्था में जहां तक हमें पता है लगभग १० हजार ग्रन्थों का संग्रह है, उनमें से इन जैन-स्तोत्रों को महत्व देकर प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है यह अवश्य विचित्र है। कह नहीं सकते कि यह प्रकाशन जन साधारण के लिये कितना उपयोगी हो सकता है। हाँ, संस्था पर प्राप्त अधिकार का 'मनोवांछित प्रकाशन' दुरुपयोग अवश्य है। ५) रु० में लेकर जैन स्तोत्र पढने वाले कितने पाठक मिलेंगे ?

शास्त्र तत्व निर्णयः

सिंधिया प्राच्य ग्रन्थालय उज्जैन से श्री नीलकण्ठ शास्त्री कृत उक्त संस्कृत ग्रन्थ का प्रकाशन संस्था की प्रतिष्ठा के अनुरूप हुआ है, यह प्रौढ और सामयिक वस्तु है, संग्रहालय ने इस मूल्यवान् पुरातन रचना को प्रकाशित कर उपयोगी कार्य किया है, इसका संपादन श्री कालेजी ने श्रम और योग्यता-पूर्वक किया है, मू० ५)

स्वप्न और सत्य

मध्य-भारत के तरुण कवि श्री भगवंतशरणजी जौहरी का यह तीसरा काव्य संग्रह है। कवि के स्वर में सरलता सरसता है, वहां बल भी है, वेदना की अनुभूति उनके शब्दों में सस्वर हो उठी है, प्रवाह और ओजमयी इन रचनाओं का स्वागत होगा, म. भा. का यह कवि संयतभाव से साधना कर रहा है, और प्रदेश में अपना स्थान बना रहा है,

संग्रह का मूल्य ३) रु० प्राप्तिस्थान— गयाप्रसाद एण्ड सन्स बांके विलास, आगरा

*

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "विनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स

उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी विनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टेक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाइंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मेनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

Phone No. 48 Regd. No. J 93

राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद का मध्य-भारत स्थापना दिवस पर सन्देश

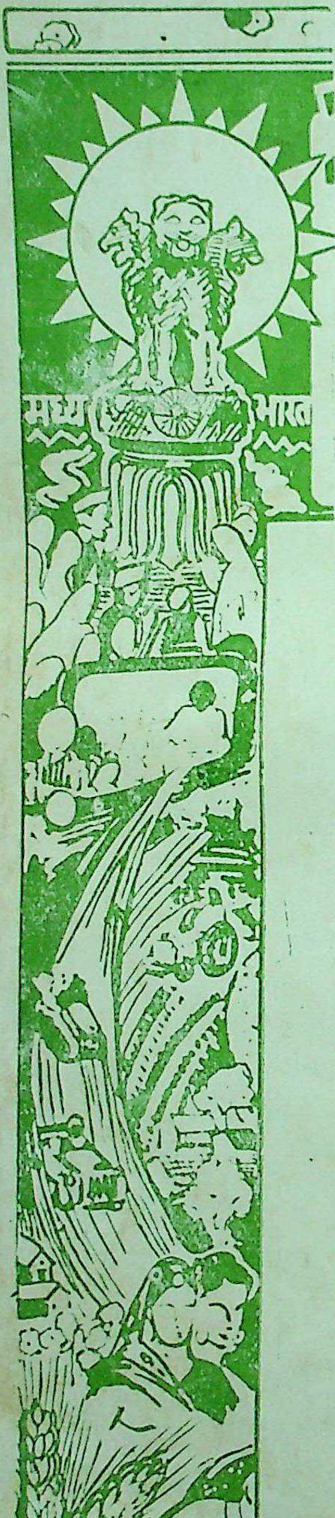

"मध्य-भारत दिवस सम्बन्धी समारोह के अवसर पर मैं उस राज्य के सभी लोगों को अपनी शुभ कामनाएँ भेजता हूँ और यह प्रार्थना करता हूँ कि नई शासन व्यवस्था के अन्तर्गत, जिसकी वर्ष-गांठ आज मनाई जा रही है, वहां के सभी लोग सम्पन्न हों और सुख का जीवन व्यतीत करें।

"आज हमारे दिलों में सहसा उस महान् भारतीय, सरदार वल्लभभाई पटेल की याद आ जाती है जिनकी दूरदर्शिता और शासनप्रवीणता के फलस्वरूप भूतपूर्व रजवाडों का विलय और नये राज्यों का निर्माण सम्भव हुआ था। इस अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना असंगत न होगा। प्राचीन काल में मालव का इतिहास बड़ा गौरवमय रहा है। आज के मध्य-भारत की सीमाएँ लगभग वही हैं जो पहले मालव प्रदेश की थीं। मुझे आशा है कि आपके राज्य में सभी नर नारी अपने प्रदेश के प्राचीन गौरव से प्रेरणा ग्रहण करेंगे और निजी हित में वर्तमान को उन्नत करते हुए भारतीय गणराज्य का नाम उज्ज्वल करेंगे।"

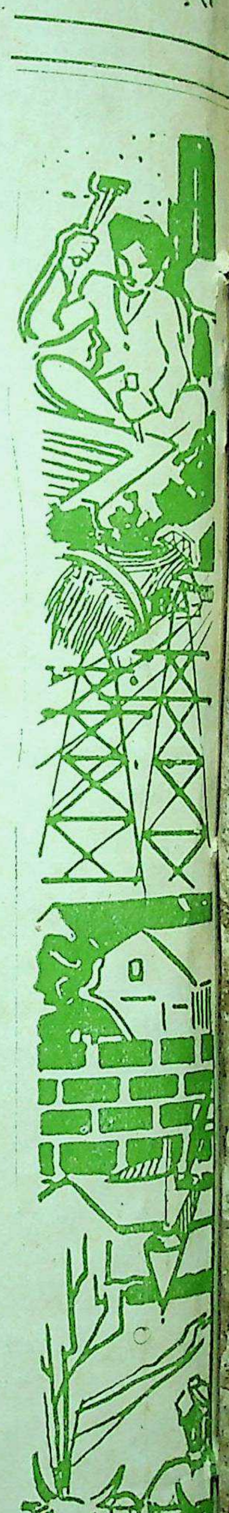

सूचना विभाग मध्य भारत

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक मोहन प्रिंटिंग प्रेस माधवनगर उज्जैन।

४०२६
6-8-99 ९-०

[illegible]-पत्रिका

विक्रम

संचालक-सम्पादक
सूर्यनारायण व्यास

चैत्र २०११
अप्रैल १९५४

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

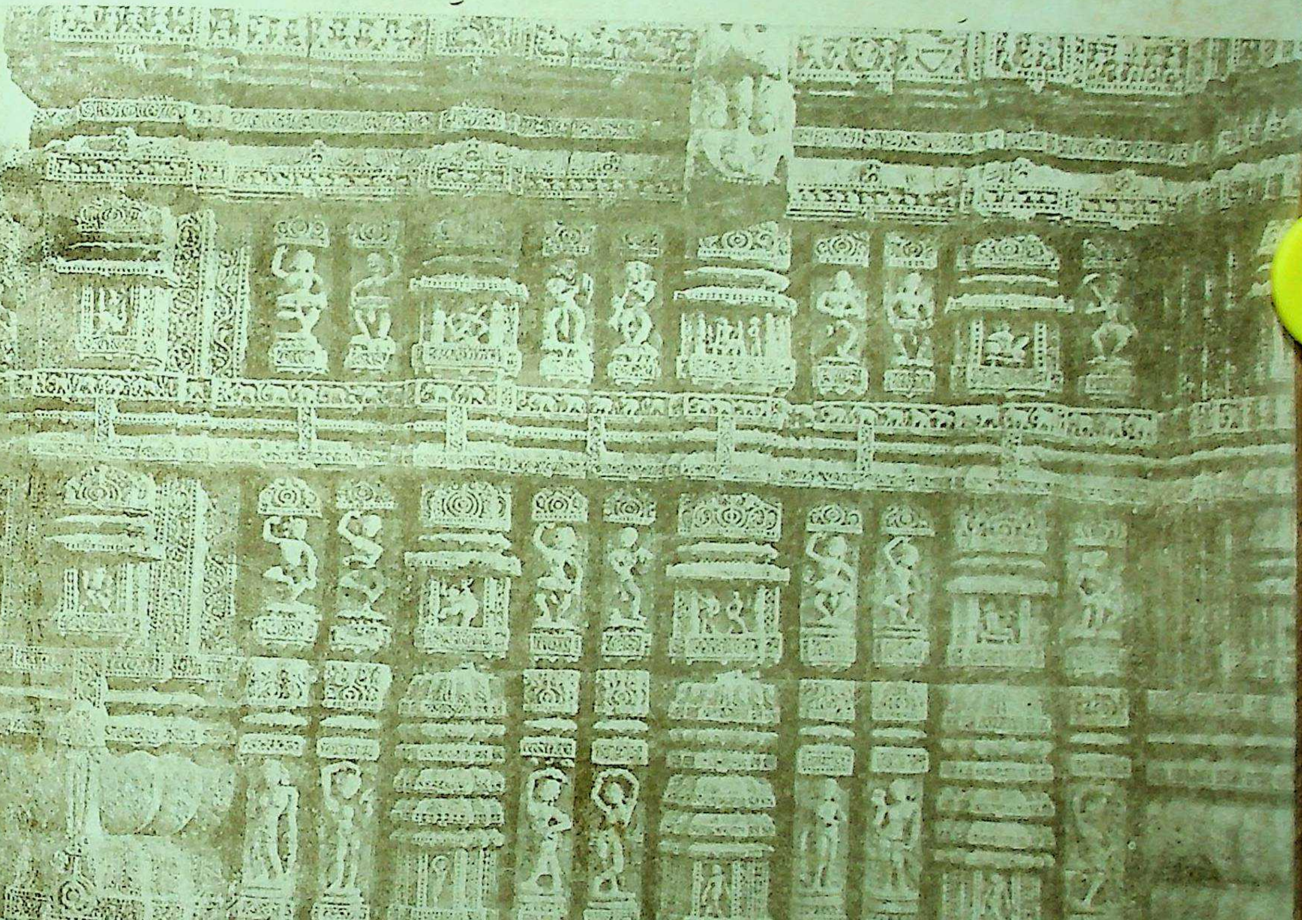

रत्नदीप पिक्चर्स प्रस्तुत करते हैं।

भारतवर्ष के महान् संत कवि की जीवनी

श्यामा • महीपाल • दुलारी • रमेश सिंहा • सुंदर

वार्ता संवाद : पं. गिरिश
गीत : जी. एस. नेपाली
संगीत : चित्रगुप्त
कला : एम. व्ही. दुभाषी
दिग्दर्शक : बालचंद्र शुक्ल • हरसुख भट्ट

जिन्होंने अपना जीवन भगवान् रामचन्द्र की भक्ति और प्रेम के लिए अर्पण कर दिया।

शीघ्र ही प्रदर्शित होने जा रहा है।

वितरक—

बम्बई— एम. बी. बिलीमोरीया एण्ड सन
उत्तर— वाडिया पेरामाउन्ट पिक्चर्स
बङ्गाल— बिलीमोरिया एण्ड लालजी
सी. पी. सी. आई. राजश्री पिक्चर्स
दक्षिण— लक्ष्मी फिल्मस
विदेश— एक्सेलशियर फिल्म एक्सचेंज

ग्रामोद्योग पर ही देश की समृद्धि निर्भर है।

अपने दैनिक व्यवहार के लिये मध्य भारत में बनी हुई वस्तुओं का उपयोग कीजिये!

- चन्देरी-महेश्वर की जरी की साडियां, दुपट्टे, साफे।
- मन्दसौर मनासा के सुन्दर कम्बल, मफलर और आसन।
- ग्वालियर पाटरीज के आकर्षक बर्तन तथा ग्वालियर लेदर फेक्टरी का चमडे का सामान
- कुटीरोद्योगों के चमड़े तथा कागज के खिलौने।
- दैनिक उपयोग के लिये स्वादिष्ट मुरब्बे, चटनी, पापड तथा सुगंधित तेल।
- धूप और वर्षा से बचाने वाले मजबूत छाते, तेज चाकू तथा सुन्दर लेखन सामग्री

मिलने का स्थान—

दि आर्टस् एन्ड क्राफ्टस् एम्पोरियम

इन्दौर-ग्वालियर-उज्जैन-
रतलाम-महू-शिवपुरी
भेलसा-खरगोन

वार्षिक रु. ६

विक्रम

एक अंक ।।=)

गुरुकुल-पत्रिका

विषयानुक्रमणिका

			पृ. सं.
१.	मालवे की रात	श्री रमेश 'मुक्त'	...
२.	व्यास-उवाच	सम्पादकीय	१-१६
३.	संस्कृत-साहित्य में वर्णित शब्दोच्चारण के नियम	श्री रामशंकर भट्टाचार्य	१७-२०
४.	भारत का प्राचीन कथा-साहित्य	,, महेश प्रसाद सिन्हा	२१-२४
५.	प्राचीन 'अवन्तिजा' और आज की मालवी	,, श्याम परमार एम. ए. एल. टी.	२५-२७
६.	कनिंघम का मालव-भूगोल	...	२८-२९
७.	गीतों की जन्म कथा	,, मदनलाल वर्मा साहित्य रत्न	३०
८.	वृज-बाला	,, महेश कुमार व्यास 'राजा'	३१
९.	साहित्यकारों से	,, रमेशचन्द्र 'मुक्त'	३२
१०.	शिव—ताण्डव	,, श्रीनिधि द्विवेदी	३३-३४
११.	पुल्कोवो वेधशाला	,, प्रत्यक्षदर्शी	३५-३६
१२.	धरती का मानव	,, श्याम मोयल	३७-३९
१३.	'नवीन' और उनकी कविताएँ	,, श्याम परमार एम. ए. एल. टी.	४०-४३
१४.	बुद्ध को जनम	,, नारायण प्रसाद 'भूषण'	४४
१५.	पर यो नामज एसो हे	,, सुरेन्द्र व्यास	४५
१६.	परिचय-परामर्श	,, श्याम परमार	४६-४८
१७.	फ्रांस के वह दिन	,, अनन्त कुमार 'पाषाण'	...

श्री दिग्वीजय इन्श्युरंस कंपनी लिमिटेड

स्थापना १९४१

केवल १,५० ००० की पूंजी से प्रारम्भ की गई कम्पनी के पास आज २७, लाख से ऊपर के असेट्र्स हैं।

क्लेम्स पेड—५ लाख के ऊपर

पॉलिसी की शर्तें उदार हैं

संरक्षक

हिज़हाईनेस महाराजा जाम साहेब दिग्वीजयसिंहजी बहादुर

मध्यभारत के लिये चीफ एजेंटों की आवश्यकता है!

धननूर सर फिरोजशाह मेहता रोड
फोर्ट, बाम्बे।

विशेष जानकारी के लिए—श्री एच. एन.-
आशर मेनेजिंग डायरेक्टर से सम्पर्क
स्थापित करिये।

मालवे की रात

श्री रमेश 'मुक्त'

स्वर्ग सी सुन्दर, सुहानी मालवे की रात,
चन्द्र मुस्काता गगन में, झिल मिलाते दीप ।
श्वेत चाँदी से चमकते, सरि—किनारे सीप ॥
मस्त बहता है समीरण, काँपते द्रुम-पात !!
स्वर्ग सी सुन्दर, सुहाली मालवे की रात !!
यह निशा करती प्रवाहित, प्राण में नव प्यार ।
इस निशा की स्वच्छता पर, मुग्ध है संसार ॥
मर्त्य का होता यहां पर नित्य पुलकित गात !
स्वर्ग सी सुन्दर, सुहानी मालवे की रात !!
उर यहाँ होता प्रफुल्लित, सुन झरों का नाद ।
कुञ्ज उपवन के, छिपाये, एक मीठी याद ॥
कौन बोलो, सह न सकता यह सुखद आघात ?
स्वर्ग सी सुन्दर, सुहानी मालवे की रात !
साँझ आती है, सजाती नव सुमन की सेज ।
है अलौकिक सा दिखाती, है हमें वह तेज ॥
और विहगों के स्वरों के साथ आता प्रात: !
स्वर्ग सी सुन्दर, सुहानी मालवे की रात !!
दुग्ध सी नव-ज्योत्सना में, झिल-मिलाता नीर ।
देख, लहरों की चपलता, छूटता है धीर ॥
पर्वतों से हो रही है प्यार की बरसात !
स्वर्ग सी सुन्दर, सुहानी मालवे की रात

मध्यभारत, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान के वाचनालयों एवं पाठशालाओं के लिए शिक्षाविभाग द्वारा स्वीकृत

विक्रम
उज्जैन [मालवा]

वर्ष ७ खण्ड २] चैत्र सं० २०११ वि०, अप्रेल सन् १९५४ [अंक ६ पूर्ण सं० ८२

व्यास उवाच

मध्य-भारत में अनुसंधान की उपेक्षा !

मध्य-भारत की भूमि ऐतिहासिक दृष्टि से रत्नगर्भा है। देशभर में पुरातत्व के लिए यहाँ का महत्व अत्यन्त अधिक है। संशोधन के लिए इतने अधिक भू-भाग यहाँ उपलब्ध हैं कि उनका उत्खनन् किया जावे तो इतिहास की अनेक उलझी हुई ग्रन्थियाँ सुलझ सकती हैं, किन्तु यहाँ पुरातत्व विभाग को कोई महत्व प्राप्त नहीं। वह एक अनावश्यक, एवं उपेक्षित-विभाग समझा जाता है। सहज उपलब्ध सामग्रियों की भी उपेक्षा होती है, एक भी केन्द्रीय-संग्रहालय जैसा स्थान नहीं है जहाँ प्राप्त साधन सामग्रियों को सुरक्षित रखा जावे, और उनके अध्ययन की सुविधा हो, हजारों मूर्तियाँ जहाँ तहाँ बिखरी हुई उपेक्षित पड़ी हैं। प्रतिदिन महत्व की मुद्राएँ, एवं अन्य साहित्य परदेशी लोगों के पास चला जाता है। अनेकों के पास मूल्यवान् सामग्री बिखरी पड़ी है, उन्हें संग्रहीत या सुरक्षित करने की कोई सुविधा नहीं है, राज्य के पुरातत्व-विभाग का सूत्र-केन्द्र के हाथों में चले जाने के बाद और भी पुरातत्व-साधनों की ही नहीं, विभाग की भी उपेक्षा हो गई है। शासन अपने विभाग, और अपने अधिकारी जनों के महत्व को उपेक्षित कर,— बाहर के लोगों को निरर्थक महत्व देकर अपने ही हाथों अपना अपमान कर रहा है। पिछले दिनों महेश्वर में खुदाई हुई थी। म० भा० की सहायता भी उसमें थी, किन्तु वह बाहर के विद्वानों के द्वारा होने के कारण सारा महत्व-पूर्ण प्राप्त-साहित्य यहाँ से उठकर बाहर चला गया। यदि यह कार्य स्थानीय विभाग के तत्वावधान में संपन्न होता और यहाँ की सामग्री सुरक्षित रहती तो मध्य-भारत के लिए कितने गौरव की बात हो सकती थी। आज हमारी मूल्यवान् निधि पूने में

पहुँची है। कुछ वर्षों के बाद शायद हमें उसका कुछ अंश उपलब्ध हो जाए। उज्जैन की इतिहास संशोधन सभा ने उज्जैन की खुदाई के लिए प्रयास आरम्भ किया है, शासन से सहयोग देने की भी कामना की है। किन्तु वह विचाराधीन ही है कि बीच में बाहर के लोगों को सर्वे करने के लिए सहज शासकीय सहायता प्रदान हो जाती है। आश्चर्य होता है कि अभिनव, अज्ञात स्थल पर सहसा बाहरी लोग (चाहे वे कितने ही प्रवीण हो) क्या सहज सर्वे कर जावेंगे ? जिस इतिहास समिति ने १६३८ की खुदाई के पूर्व उज्जैन के अनेक स्थानों के पर्यवेक्षण-परीक्षण के पश्चात् उत्खनन्-स्थलों का निर्णय किया था, उनके परामर्श की पर्वाह न कर परकीयों के प्रवेश को पसन्द किया जावे, सहज सहयोग सुलभ कर दिये जावे यह अपनों की उपेक्षा ही नहीं, अपमान का भी विषय है। अपना ही शासन अपनों के प्रति यह उपेक्षा प्रवृत्ति रखे और परकीयों की प्रतिष्ठा करना पसन्द करे और अपने विभाग के भी महत्व को गिराना चाहे तो उसकी गति-विधि-परख पर सहसा सन्देह होना स्वाभाविक होता है। आज इसी उपेक्षा-वृत्ति के कारण पुरातत्व सम्बन्धी कार्य गति हीन, शिथिल बन रहा है। साधन नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। डॉ० काटजू की प्रेरणा पाकर केन्द्र का पुरातत्व विभाग गन्धावल की मूर्तियों का निरीक्षण कर उनके लिए विचार करे, किन्तु जिस शासन के आधीन यह स्थल हो, उसकी उस ओर निगाह भी न जावे, महेश्वर का महत्व पूना में प्रतिष्ठित हो यह कितने खेद और आश्चर्य की बात है। हमें ज्ञात है कि जुम्मेदार अधिकारी लोग (जो बाहर से आ कर हमारे प्रदेश में प्रतिष्ठित हो जाते हैं) अपने इस प्रदेश को गौरव देने वाली साधन सामग्रियों को सरलता से बाहर निकलवा देने में महत्व मानते हैं। शासन का अपने प्रान्त के जनों, कार्य-कर्त्ताओं, प्रवीणों, अपने विभागों के लोगों के प्रति यह उपेक्षा भाव है, वह हानि-कारक है।

हम चाहते हैं कि शासन अपने प्रदेश की, पुरातत्व की बहुमूल्य साधन सामग्री के प्रवाह को रोके, नष्ट होने से बचावें, सुरक्षित और संग्रहीत करने के लिए सहयोग दे। शीघ्र ही उज्जैन में एक केन्द्रीय संग्रहालय का निर्माण किया जावे और उसमें हजारों बिखरी पुरातत्व सामग्री को सुरक्षित किया जावे। वह अपने विभाग को गति-शील, कर्मण्य बनाने में सहयोग दे और अपने लोगों के द्वारा खुदाई के क्रम और अनुसंधान की प्रवृत्ति का प्रारम्भ करे।

उज्जैन, ऊन, भेलसा, मन्दसौर, महितपुर, गन्धावल की क्रमशः खुदाई की जाना चाहिए, प्रति वर्ष एक क्रम बन जाना चाहिए, और संशोधन, उत्खनन के लिए एक निश्चित राशि स्वीकृत की जाना चाहिए। यह कार्य मध्यभारत के पुरातत्व विभाग, और अपने प्रान्त के प्रवीणों के सहयोग से सम्पन्न किया जावे। हमें विश्वास है यहाँ इतनी अधिक पुरातत्व सामग्री प्राप्त होगी कि मध्य-भारत का गौरव सर्वत्र बढ़ेगा, इतिहास में भी नवीन प्रकाश प्राप्त होगा। १६३८ की तरह उज्जैन में लगातार पांच वर्ष तक क्रमबद्ध योजना के अनुरूप महत्व-पूर्ण स्थानों पर खुदाई की जाना चाहिए। हमें विश्वास है यहाँ चकित कर देने वाली वस्तुओं का पता लगेगा, जिस प्रकार २३ सौ वर्ष पूर्व के ४२ मानव शवों ने १६३८ में इसी जमीन से प्रकट हो कर इतिहासज्ञों को विस्मय-विमुग्ध बना दिया था, उसी प्रकार उज्जैन के अनेक स्थल प्राक्-ऐतिहासिक काल के अवशेषों को अपने अँचल में दबाए हुए पड़े हैं, वे अपना आवरण उठा कर प्रकाश प्रसारित कर देंगे।

हक़ की हक़ तलफ़ी !

पाकिस्तानी-बंगाल में मुस्लिम-लीग की हार से पाकिस्तान की नींव डगमगा गई थी, फज़लुल हक़ जैसे पुराने राजनीति के खिलाडी के प्रभाव शाली बन जाते ही अली-मंत्री मण्डल की निद्रा भंग हो गई थी, उनका अमेरिकी-समझौते का स्वप्न संदेह की स्थिति सेवित करने लग गया था, उधर अमेरिका की चिंता भी बढ़ गई थी कि किस विरोध, बदनामी और प्रवाह-संदेह के बाद अली के शासन में आश्रय की गली प्राप्त की थी, वह भी 'हक़' के कारण बेहक न हो जाए। इसी बीच नारायण गंज के आदमजी मिल में सहसा एक भीषण-संघर्ष उत्पन्न हो जाता है, और अनेकों की जीवनी बलि चढ़ जाती है इस पर मि० हक़ का भविष्य कसौटी पर चढ़ा दिया जाता है हक़ का यह कहना कि इस दंगे को ज्ञान बूझ कर केन्द्र में कर वाया है। और केन्द्रका यह

आरोप इसकी जड़ में साम्यवाद का हाथ है। इस समस्या पर केन्द्र और हक़ का संघर्ष शुरू हो गया। परिणाम प्रकट है कि लीग के हाथ से गया हुआ पूर्वी बंगाल, हक़ की हक़ तलफी के बाद पुनः केन्द्र के कब्जे में पहुँचगया, लीग की हार का कलंक केन्द्र ने बड़ी करामात के साथ इतनी जल्दी पोंछ लिया कि उनकी की हुई करामात पर पड़ा हुआ पर्दा भी उसी के साथ सहसा उठ जाता है। शायद कुछ समय और हक का हक़ जमा रहता तो इस प्रकार शंका संदेह का अवसर उत्पन्न नहीं होता किंतु केन्द्र को शायद भय रहता कि हक़ का बल अली की गद्दी खिसकाने का कारण न बन जावें। उधर अमेरिका की नीदं भंग हो गई ही थी, सिंध के मंत्री-मण्डल में भी इसी समय गतिरोध उत्पन्न हो गया, उधर-पंजाब में भी लीग की लीक मिटती दिखाई पड़ने लगी, तो स्पष्ट था कि अली साहब का आसन हिल उठा, और उन्हें अपने अमेरिकन आका की आशा आकांक्षा के समक्ष किसी भी कार गुजारी के साथ हक़ साहब को यथा संभव शीघ्र बेहक़ बना देने को विवश हो जाना पड़ा ! अवश्य ही अली महाशय ने आदमजी मिल-संघर्ष की गली से गुजर कर अपनी मिनिस्टरी का मैदान मार लिया, और हक को अपनी प्रचण्ड विजय के बावज़ूद अपने मकान में ही नज़र बंद बना दिया, किंतु पाकिस्तान के प्रजातंत्र का नग्न-नमूना हैं, जहां प्रचण्ड बहुमत की भी बलि चढ़ सकती हैं। संभव था कि हक़ का हक जमा रहता तो बंगाल से पाकिस्तान को पनाह मांग लेना पड़ती, और किसी दिन लीग की समाधि पर संयुक्त मोर्चा आसन जमाने की आजमाईश करता, इस या किसी भय ने ही जिस प्रकार जनाब लियाकत अली की जानली, नाजिमुद्दीन की नस दबा दी, उसी कार गुजारी ने हक के हक में शासन आया न आया कि उन्हें बेहक कर दिया गया ! आज पूर्वी बंगाल में सैनिक शासन है। पकड़ा धकड़ी का दौर दौरा है। कह नहीं सकते कि इस आतंक से लीग की हार को कुचला जा सकेगा या नहीं। पर यह स्पष्ट है कि बंगाल के इस पूर्वी-भाग में जो ज्वाला मुखी फूटने जा रहा था— उस के मुंह पर रोड़े रखे जा रहे हैं। अवश्य ही मि० हक ने भी बहुत जल्द बाजी कर डाली थी, उन्होंने बंगाल के बयानों से स्वतंत्रता का संदेह समय से और शक्ति प्राप्त करने के पूर्व फैला दिया, और विदेश-विभाग स्थापित कर केन्द्र को भ्रांत, चौकन्ना कर दिया, काश वे थोड़ी प्रतीक्षा और शांति के साथ अपने हाथों को सक्षम, सशक्त बना कर केन्द्र को चौंकाते तो शायद इतनी जल्दी यह पराभव देखना नहीं पड़ता, उन्हें बूढ़े मुसद्दिक का उदाहरण ध्यान में रखना चाहिए था ! आज हक़ नजर बंद है, किंतु सुहरावर्दी का मौन संदेह का विषय है, पूर्वी बंगाल का यह विषय हम नहीं समझते कि केन्द्र की सैनिक कार्यवाही से दब जाएगा। अवश्य ही यह भीषण काण्ड है, और इसका विस्फोटक परिणाम हो सकता है, पाकिस्तान के लिए यह सांप छछून्दर का खेल बन जाए तो विस्मयका विषय नहीं। अमेरिकी संधि के पश्चात् अली के शासन को सर्वत्र साम्य वाद का संदेह सवार होने लगा है, पर यह संदेह पाकिस्तान की जड़ में घुन की तरह घुंस गया है, जिस बंगाल की बंगाली को कुचल कर उर्दू को आसीन करवाया गया है, लीग की प्रचण्ड-पराजय को सैनिक संघर्ष के साथ विजय में परिवर्तित किया गया है, उसकी जनता को सैनिक सुन्नत से सहजलीमी नहीं बनाया जा सकता। हक़ की हक़ तलफी बेशक करदी गई हो, किंतु यह 'अली' की गली में गरल बन कर समस्त पाकिस्तान के जीवन के लिए जहरसाबित हो सकती हैं।

भारत के प्रभाव पर आघात !

भारत के तीव्र-विरोध के होते हुए भी अमेरिका ने पाकिस्तान से सैनिक-संधि करके एशिया में बढ़ती हुई भारतीय प्रतिष्ठा पर जबर्दस्त आघात किया है। इस आघात से पंडित नेहरू के प्रभुत्व को चुनौती दी गई है, और एशिया में फूट को फैलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया गया है। हम बतला चुके हैं कि इस समय एशिया में जो उथल पुथल हो रही है, शासन बनते-बिगड़ते हैं, नेतृत्व उठता और गिरता जा रहा है, उसके पीछे अमेरिका की राजनीति ही कारण है। उधर चीन में माओ का महत्व है, रूस में साइबीरिया तक साम्यवादी प्रभुत्व बना हुआ है, इजिप्ट का नेतृत्व नजीब के हाथों में फिर आगया है। टर्की, ईराक आदि में अमेरिकन शक्तियाँ सफल बनती जा रही हैं, लंका में भारत का ऐसा कोई वजन नहीं। अवश्य ही बर्मा में नेहरू-नेतृत्व को स्थान मिल रहा है। ऐसी स्थिति में एशिया में फूट डाल कर नेहरूजी के नेतृत्व को नीचा दिखलाने

का अमेरिकी-प्रयत्न प्रभाव-शील हो रहा है। अमेरिका के राजनीतिज्ञ भारत की स्वाधीनता को केवल पांच वर्ष का बालक समझ रहे हैं। वे समझते हैं कि पण्डितजी का प्रभुत्व वाग्वीरता पर परिमित है। भारत की जनता भी आपत्ति के अवसर पर और कोई प्रतिकार करने का सामर्थ्य संग्रहीत करे या न करे प्रचण्ड प्रवचन प्रचार अवश्य कर सकती है, तब संघर्ष सैनिक सीमा तक ही सिमिट कर रह जाता है। सैनिकों के साधन भी अभी हमारे यहां कितने उत्पन्न होते हैं, मशीनों के लिए अब हम परमुखा पेक्षी हैं, फिर जो साधन सुलभ हो सकते हैं, उनका महत्व आज के वैज्ञानिक युग में कितना है? जिन विमानों, क्रूजरों, विध्वंसकों पर हम नाविक गर्व अनुभव करते हैं, वे जिस तेल पर अवलंबन रखते हैं, वह भी हमारे पास नहीं। समय आने पर तेल की सुविधा विनष्ट हो गई तो इन विध्वंसकों का गर्व-प्रदर्शन किस मूल्य का रह जाएगा? अमेरिका आदि देश यह जानते हैं कि जिस तरह कोरिया में चीन-रूस की सीमा सटी हुई थी, वह भारत में नहीं हैं, रूस-चीन के सद्भाव से हमें ऐसा सहयोग सरल-सुलभ नहीं कि सीमाओं के समेट देने पर हमारी शक्ति संकुचित न की जा सके, ऐसी स्थिति में पाकिस्तान द्वारा इस देश पर हमला हो जाए तो हमारे लिए जटिल-समस्या उत्पन्न हो सकती है। इन सब बातों को देखते हुए पाक-अमेरिका सैनिक सम्बन्ध हमारे लिए वास्तव में अत्यंत चिंता का विषय बन जाता है, और पण्डितजी के मनोरथों पर प्रभुत्व पर एक उग्र आघात स्वरूप हो जाता है; हमने वर्तमान पत्रों में बतलाया कि १९५३ के साथ पंडितजी के प्रभाव-काल की परिधि समाप्त हो जाती है, इसे उस समय शायद ठीक न समझा पाया हो किंतु कोई भी समझदार राजनीति का विचक्षण यह सहज मान सकेगा कि पाक-सैनिक-संधि पण्डितजी के प्रभाव पर असाधारण आघात है। जिसने ग्रहयोगों के पलटते ही परिणाम प्रकट किया है। हमें इस 'संधि-समस्या' ने और भी संदेहों के लिए कारण उपस्थित कर दिए हैं। इजिप्ट, इराक की घटनाएँ हमारे समक्ष सोचने के लिए साधन प्रस्तुत कर रही हैं, निःसंदेह हमारी फूट और जरासी गलती भी हमें सहज गहरे में उतार सकती है, और सामने अंधकार उपस्थित कर सकती है, जिसकी धुँधली छाया इस संधि ने सन्मुख प्रस्तुत करदी है। पण्डितजी या अन्य जन प्रतीति करें, या न करें, योगों की महत्ता को, वैज्ञानिक संगति को स्वीकार न भी करें, किंतु घटना क्रम उसी ओर ले जा रहा है, और यह सैनिक-संधि उसी का अशुभ आरंभ है। जो भारत के बढ़ते हुए प्रभाव को पण्डिजी के प्रभुत्व को ठेस पहुंचाने के लिए प्रस्तुत है।

महर्षी मौलाना !

पुराने जमाने में कठिन तपश्चर्या और साधना के बाद मानव महर्षी बना करता था, यह पद प्राप्त करना सरल नहीं था, विश्वामित्र की कठोर साधना भी उन्हें राजर्षि बना सकी थी, महर्षि बनने के लिए सतत संघर्ष करना पड़ा है, किंतु आज का युग बड़ी द्रुतगति से भाग रहा है, यहां साधारण साधना से भी सहज सिद्धि सुलभ होती है, शिफारिस हो तो सहज ही सुयोग सुलभ हो जाता है, यही स्थिति हमारे शिक्षा मंत्री मा० मौलाना की है, वे अपने मान्य ग्रन्थों के मर्मज्ञ होने के कारण मौलाना तो हो ही गए थे, देश भक्ति ने उन्हें और भी ऊपर उठाया और दर्शनीय बना दिया, किन्तु मंत्री पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद देश की संस्कृति और शिक्षा का जैसा संविधान श्राद्ध-कर्म आरंभ किया, राष्ट्र-भाषा की रचना में जो राजसूय-यज्ञ रचा है, उसने पिछले पांच सालों में अपने पद प्रतिष्ठा से उन्हें अधिक ऊपर उठा दिया है। उन्हीं के अनुग्रह से पिछले कई महर्षि 'मौलाना' के मान से सम्मानित हो गए हैं, महर्षियों की स्वर्गस्थ-आत्मा भी यह पद पाकर बड़ी प्रसन्न हुई होगी, क्योंकि वे इस धर्म-निरपेक्ष राज्य में असाम्प्रदायिक समझ लिए गए यही क्या कम है? ऐसी स्थिति में हमारे मौलाना को भी 'महर्षी' माना कहा जाए तो किसी को आपत्ति नहीं होगी। उनकी देश भक्ति कसौटी पर खूब कसी जा सकती है, उनकी असाम्प्रदायिकता का इससे अधिक क्या प्रमाण चाहिए कि भाषा को भी उन्होंने असाम्प्रदायिक बनाने के लिए शिबली-एकेडेमी, और हिन्दुस्तान कल्चर सोसायटी के सहारे सम्हाल-सुधार सँवार दिया है। और इसको हमारे-'बिच बिन्दी खोली' के 'पछुआ' ने भी सहर्ष समझ लिया है। मौलाना के मत से समर्थित

शब्दों का संस्कार शासकीय शक्ति सम्पन्न बन जनता के मस्तक पर मढ़ा जाता है, इसलिए उन्हें स्रष्टा, 'ब्रह्म' का स्थान सहज उपलब्ध है। हमारे आचार्यों ने स्वयं शब्दों को 'शब्द ब्रह्म'. माना है, तब उसके स्रष्टा को विधाता महर्षि मान लेने में क्यों आपत्ति हो सकती है? महर्षि मौलाना के कारखाने से अभी शब्दों की ढलाई जारी है, केवल कुछ 'अगबोल' (भूमिका-प्राक्कथन) से ही यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उनका क्या महत्व होगा, और राष्ट्र-भाषा के शब्द-कोष के लिए वे कितने समृद्धि देने वाले साबित होंगे। इस नई असांप्रदायिक-धर्मनिरपेक्ष-राष्ट्रभाषा को पहिली बार सुनकर, समझ कर हमारे राष्ट्र कवि मै. श. गुप्तजी ने भगवान् से सादर प्रार्थना की है—

हे भगवान्! मुक्ति दो इसको, यह भी सुन्दर बोली है!
जिसकी खोली में बिच बिन्दी, बिच बिन्दी में खोली है।
अरे पहलुआ! सुधि ले इसकी, ये भी कौन ठिठौली है।
दीन प्रजा की झोली में जो ऐसी जलती होली है!

भाषा और बोलियों का भ्रमजाल!

भारत जैसे विशाल राष्ट्र में भाषा, और बोलियों का विविध विस्तार होना स्वाभाविक है। भारतीय जनगणना के समय इस दिशा में जो अनुमान लगाया गया है, उसके अनुसार इन भाषा और बोलियों की संख्या लगभग ७२० है; परन्तु इनमें कितनी बोली है और कितनी भाषाएँ हैं तथा किसको भाषा कहा जाय, किसको बोली समझा जाय, और उनकी कसौटी क्या होना चाहिए? इसके अतिरिक्त कौनसी भाषा की कौनसी बोली है, और उसके भेद, उपभेद कौनसे हैं, क्यों हैं? यह विषय बहुत विवादास्पद, उलझनों से भरा हुआ, एवं अध्ययन, अनुसंधान का विषय है, यह जनगणना विभाग के सामर्थ्य का नहीं। इस पर भाषा विज्ञान शास्त्रियों के अध्ययन-प्रयास की आवश्यकता है। हमारे यहाँ कर्नल टॉड, और ग्रीयर्सन के सिवा बहुत कम लोगों ने इस ओर यत्न किया है। जो हुआ है, वह भी बहुत अपूर्ण है, अभी उसमें बहुत खोज, विचार-विवेचन की आवश्यकता है। अनेक भ्रांतियां उनमें रह गई हैं, और भ्रम विस्तार को अवसर मिला है, ऐसी स्थिति में केवल जनगणना के अङ्कों के आधार पर भाषा, एवं बोलियों का विवेचन करना, और तथ्य मानना युक्ति संगत न होगा। जन-गणना के समय अनेक उलझनों, आशंकाओं के आ जाने के कारण लोगों ने जो भी भाषा या बोली को अंकित करवाया, लिख लिया गया है, यह विभाग ने स्पष्ट स्वीकार भी किया है, उन्हें ऐसे अवसर भी मिले हैं कि किसी भाषा या बोली के बोलने वाले की संख्या केवल एक ही थी। जैसे—अग्रवाली, अम्भानी, बनारी आदि। कुछ विदेशी भाषा बोलने वाले भारतीय भी उन्हें मिले हैं, जिन्होंने उनको अपनी मातृ-भाषा बतलाया है। कुछ स्थानीय बोलियों को भी मातृ-भाषा के रूप में बतलाया गया है। स्वयम् जनगणना विभाग को यह उलझन भी उपस्थित हुई है कि किसको भाषा माने, और किसको बोली, तथा किस भाषा की वह बोली है आदि। उन्हें बिहारी, और राजस्थानी जैसी बहुत प्रचलित बोली के लिए भी यह प्रश्न प्रस्तुत हुआ कि क्या यह कोई भाषा है? इसी प्रकार भीली को बोली माने या भाषा? वस्तुतः जबकि उनकी कोई अपनी लिपि स्वतन्त्र नहीं है। एक 'हलवी' है, जिसे समझना कठिन है कि वह हिन्दी या मराठी की बोली है? इसी तरह यदि बांगड़-प्रदेश की बोली को लिया जावे तो यह निर्णय करना कठिन होगा कि वह गुजराती है या मालवी। निमाड़ी की भी कुछ अंशों में यही स्थिति होगी, वस्तुतः अभी भारत-शासन ने जिन १५ भाषाओं को संविधान में स्वीकार किया है, उनके लिए भी यही प्रश्न उलझन का है, उनमें काश्मीरी को स्वीकार किया गया है, जो बोली है पर लिपि के अभाव में उसे स्वतंत्र भाषा समझना कठिन है, यदि काश्मीरी भाषा स्वीकृत की गई है तो मालवी क्यों नहीं? उसके उपयोग करने वालों की संख्या काश्मीरी से कहीं अधिक ही होगी, जबकि भ्रमवश जनगणना में उसे भीली से कम कहा-माना गया है और भीली को उससे अलग अधिक बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त दिल्ली, पंजाब, पेप्सू, हिमालय, बिलासपुर की भाषाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद है, उनके आँकड़े जुड़ा दिए गए हैं, जिनमें कई बोलियों की विविधता, और मिश्रण है। चाहिये तो यह कि सरकार हर प्रदेश में

भाषा विज्ञान-वेत्ताओं की एक कमेटी बनाए, और इनकी भाषा और बोली का अनुसंधान करे, उनके भेदों, उपभेदों की छान-बीन करे, ताकि यह सही ज्ञात हो कि कौनसी भाषा है। कौनसी बोली है, और किस भाषा या-बोली के कौनसे भेद-उपभेद हैं, किन पर सीमा-संस्कार हुए हैं, और वे किस कुल से उत्पन्न हुई है? फिर उनके लिखने बोलने वालों की कितनी संख्या है? यह जानकारी प्राप्त की जावे, तभी यह निर्णय हो सकेगा, उसीको आधार मानकर विचार किया जाए, जन-गणना का आधार भ्रामक होगा, बहुधा मातृ-भाषा की जगह व्यवहार-भाषा लिखवादी जाती है! यह स्थिति प्रायः मालवे में हुई है। यही कारण है कि मालवी के सही अंक मिल नहीं सके हैं, भाषिक सर्वेक्षण किया जाना आवश्यक है।

“ पुरफरेब तख़ैय्युल ! ”

उस रोज संसद् में मा. टंडनजी की हिन्दी विषयक स्पष्ट और निर्भीक वाणी से मा० मौलाना बहुत विचलित हो गये थे, जब उनपर शिवली एकेडेमी, और हिन्दुस्तान कल्चरल सोसायटी को धन दान देने पर रोष प्रकट किया गया तो वे अपने संयम का भी बाँध तोडकर आवेश में वह कह गए, उन्होंने मा० टंडनजी के प्रति 'पुरफरेब तख़ैय्युल” शब्द का प्रयोग किया, जिसका अर्थ 'चालाकी से भरा हुआ ख़याल' करना होता है, यद्यपि इस शब्द को संसद ने स्वीकार नहीं किया, और विवश होकर मौलाना को मलिन-मन से इसे वापिस लेना पड़ा, तथापि इस शब्द ने संसद में प्रकट होकर मौलाना की मलिनता को अवश्य प्रकाश में ला दिया। इस रोष की आड में वे शिवली एकेडेमी के अनुदान की बात का उत्तर सहज उड़ा गए, और 'कल्चरल सोसायटी' के अनुदान को राष्ट्रपति के नाम के पर्दे में प्रच्छन्न कर गए। परंतु इस पर्दे में से यह तथ्य निकल ही पड़ा कि क्या शासन किसी भी बड़े आदमी की शिफारिस पर अपने सरकारी खजाने से जनता की पूंजी इस तरह विवेक विहीनता से दान में लुटा सकता है? यदि शिफारिसों पर जनता के धन को कोई जुम्मेदार व्यक्ति गलत बाँट सकता है तो उसे शासन में रहने का कोई अधिकार नहीं है। हाल ही में शिवली एकेडेमी के कारनामों का कच्चा चिट्ठा डॉ० हरदेव बाहरी ने 'हिन्दुस्तान' में प्रकट किया है, उसे पढ़कर यही समझ में आता है कि या तो शिक्षा मंत्रालय के महर्षि-मौलाना ने यह सब जान बूझकर किया है, अथवा वे अज्ञान थे तो ऐसे व्यक्ति को जुम्मेदारी के पद पर रहने का कोई अधिकार नहीं है। और जो व्यक्ति टंडनजी जैसी त्याग-तपः पूत विभूति के लिये 'पुरफरेब-तख़ैय्युल' का इस्तेमाल कर सकता है उसका जीवन चाहे जैसा राष्ट्र-निष्ठ रहा हो, उसका अंतर असंयमित और हल्का है, उसे शिक्षा-संस्कृति जैसे विशाल विभाग पर सर्वाधिकारी रखना तो उचित नहीं होगा।

ईमानदारी का अन्त !

आदमी तो ईमानदारी कभी से छोड़ चुका है। उसकी नियत में नैतिकता नमूने के लिए भी नहीं मिलपाती। चारों ओर आदमी के कारण ही भ्रष्टाचार फैल रहा है, ईमानदारी खोजने पर भी मिलना मुश्किल हो रहा है, ऐसे समय (या युग में) यदि किसी में भूले-भटके बची हुई ईमानदारी के दर्शन हो जाएँ तो वास्तव में उसका प्रचार होता है, उसकी प्रतिष्ठा होने लगती है। पर आदमी में आज यह गुण बहुत ही दुर्लभ हो गया है, हाँ उन जीवों में यह ईमानदारी विद्यमान है, जो नगर में रहकर भी नागरिक चमक-दमक, आचार-विचार से अछूते रहते हैं! विदेशी हवा उनको स्पर्श नहीं करपाई है, जो निरन्तर गतिशील रह कर भी प्रगतिशील नहीं बने हैं, जो केवल पेट-पूर्ति करके ही त्याग के साथ कर्म करना धर्म समझते हैं, जिन्हें कोई महत्वाकांक्षा नहीं, जो सर्वोदय की साधना करते हुए भी अपने 'उदय' के प्रति उदासीन रहते हैं। ऐसे जीवों में ईमानदारी रहे तो विस्मय का विषय नहीं। हाल में एक ऐसे ही स-मूल्य होते हुए भी अमूल्य-प्राणी का पर-लोक-वास हो गया है, यह प्राणी परभणी जिले में एक रजक-राज (धोबी) के साथ रहता था। जीवन भर उसने बड़ी निष्ठा, नीति और ईमानदारी के साथ सेवा-धर्म का पालन किया, उसने अपने मालिक का ही नहीं, सारे गांव की जनता का मन मोह लिया था। वह यद्यपि कहीं 'मन्त्री' बनने को बावला नहीं बना था, पर वास्तव में वह लोकप्रिय (मंत्री से भी अधिक ही) था। उसका प्रमाण यह है कि जब उसका अकाल अवसान हुआ तो गांव भर

के गण्य-मान्य-जन उसकी अर्थी के साथ गए, जो स्नेह, सम्मान पूर्वक सजाकर निकाली गई थी और जब उसको समाधि में सुलाया गया, अनेकों की आँखें साद्र अवश्य हो गई थी, सार्वजनिक रूप से उसका अन्तिम संस्कार हुआ, और उसकी ईमानदारी का यशोगान उसकी जाति के जीवों ने ही नहीं द्विपद मानवों ने भी उच्चस्वर में किया। इस समाचार को समाचार पत्रों ने भी सम्मान सहित (बॉर्डर देकर) प्रकाशित कर अपनी ओर से आदर की अञ्जलि अर्पित की। कलम को धन्य बनाया, स्याही भी सार्थक बन गई ! प्रेस, ट्रस्ट, या किसी समाचार-संस्था ने यह अभी तक नहीं बतलाया कि कहीं विशाल शोक सभा हुई थी या नहीं, पर यह अवश्य ही जाना गया कि अर्थी के साथ जाने वालों ने मौन रह कर उसकी सद्गति के लिए प्रार्थना की थी। एक बार लखनऊ में किसी बन्दर के मर जाने पर भी उसकी अर्थी नगर में निकाली गई थी।

कुछ दिन हुए ऐसे ही एक बेल का अन्तिम संस्कार भी सार्वजनिक रूप में किया गया था, अनेक साहबों के स्वामिभक्त श्वानों की बनी हुई समाधियाँ इसकी प्रमाण हैं कि उनमें ईमानदारी आदमी से अधिक रही है, जिसे स्वयं आदमी ने भी समाधि बना कर अन्तिम समय में (सहर्ष नहीं) सखेद स्वीकार किया है।

फिर परभणी के धोबी ने इस बेईमान जमाने में अपने गधे की ईमानदारी पर मुग्ध हो उसकी मृत्यु पर मान प्रदान किया, यह तो स्वाभाविक घटना ही है। आज जब कि आदमी भी ईमानदार नहीं मिलता, तब उसे अपना साथी एक गधा ही क्यों न हो, ईमानदार मिला था, यह क्या कम सौभाग्य की बात हो सकती थी ? सुनते हैं—वह गधा खाली-रूखा ईमानदार ही नहीं, हृदय का कोमल और वात्सल्य-स्नेह रखने वाला था। गांव भर के किशोर उसके संग समोद, स्नेह सम्बन्ध बनाए हुए रहते थे। अवश्य ही उन किशोरों को यह वियोग बड़ी वेदना देने वाला बन गया होगा, वह गधा केवल गधा ही नहीं, गांव का गौरव था, ईमानदरी का अवतार था, स्नेह का सहोदर साथी था। उसके अवसान से परभणी के उस अकेले धोबी की ही नहीं, और परभणी गांव की ही नहीं, सारे देश की हानि हो गई है। क्योंकि इस बेईमान युग में वह ईमानदारी का प्रतीक था ! परभणी के इस सपूत प्राणी के प्रिय परिजनों के प्रति सभी की सहानुभूति होना स्वाभाविक है। परभणी के धोबी का प्रिय प्राणी गधा ईमानदार था इसलिए यह मृत्यु उस गधे की नहीं, ईमानदारी की हुई है। गधे तो रोज ही मरते हैं, चाहे असली हो, या गुण से गौरवान्वित आदमी के रूप में। उनका कौन अफसोस इतना करता है ? पर जो गुण आदमी में भी आज दुर्लभ है उस गुण को इस प्राणी ने संचित कर अपने को सम्मान-भाजन बना लिया था, इसीलिए उसके गधे-पन में भी उस अपूर्व गुण की पूजा हुई है। परभणी में उसे इसीलिए प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, खेद यही है कि उस गधे के साथ उसका गुण (गुन्नी नहीं) भी समाधिस्थ हो गया। परभणी के लोगों ने उसके गुण की पूजा की है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—

> "गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।"

उज्जैन का असन्तोष !

हम हड़ताल को चाहे वह भूख हड़ताल हो, या सामूहिक 'समस्त प्रयासों के पश्चात् अन्तिम अस्त्र की तरह प्रयोग करने का विषय मानते हैं। हर बात और हर चीज़ को लेकर उसके प्रयोग का औचित्य नहीं समझते। मध्य-भारत स्थापना दिवस २८ मई पर नगर में प्रचण्ड हड़ताल हो गई। यह हड़ताल नगर सभा द्वारा कुछ प्रस्तावित करों को लेकर हुई, वस्तुतः ये कर लगे नहीं थे, किन्तु नगर-विकास को लक्ष्य में रख कर इन करों को लगाने का प्रस्ताव हुआ था, और जनमत के लिए वे प्रचारित हुए थे, इन करों से जनता में असन्तोष और रोष जाग्रत हुआ, अथवा किया गया; फलतः प्रचण्ड हड़ताल हो गई। नागरिक-विकास के लिये करों की आवश्यकता होती है यह सही है, और जनता कर बोझ उठाती भी है, परन्तु उज्जैन की स्थिति का गम्भीरता और सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाना चाहिए। इस नगर का व्यापार-व्यवसाय चौपट-सा हो रहा है, उसके उद्योगों की दशा ठीक नहीं है। मँहगाई ने लोगों की क्रय-शक्ति को तोड़ दिया है, प्रगति के साधनों का अभाव है। शासन द्वारा हर दिशा में यह नगर उपेक्षित हो रहा है। क्रमशः जन-जीवन ह्रास की ओर जा रहा है। आय के साधन नष्ट होते जा रहे हैं। व्यय वृद्धि में कोई अन्तर नहीं है, जनता में,

व्यापारी में, धंदे में विश्वास का अभाव है, भ्रष्टाचार, पक्षपात पराकाष्ठा को पहुंचे हुए हैं, इस पर जनता का शोषण तो होता ही रहता है। इन्कमटेक्स, सेल्सटेक्स, आकट्राय, कस्टम् ये लगे ही जा रहे हैं! वैसे ही उद्योग हीन निराश मन में बेकारी, मँहगाई ने चतुर्दिक् असन्तोष उत्पन्न कर रखा है। ऐसी स्थिति में जब अनेक कर हीन साधारण वस्तुओं पर भी नई कर व्यवस्था की जावे तो जन साधारण में असन्तोष-रोष व्याप्त हो जाना स्वाभाविक है। इस असन्तोष के पीछे आर्थिक कारण तो है ही किन्तु राजनीतिक भी है। उज्जैन की दुर्दशा, उपेक्षा की निर्बल नाडी को शासन ने इस क्षण तक सही समझने का कहां प्रयास किया है। ऐसी हालत में यहां छोटी-सी चिनगारी भी सामूहिक अग्निकांड का सहज आयोजन करसकती है फिर उसका निमित्त कोई भी उचित या अनुचित क्यों न बन जावे। केवल यह प्रस्तावित कर ही इस हड़ताल के लिए अन्तिम कारण नहीं है। यह तो निमित्त है और स्वाभाविक भी क्योंकि आज की स्थिति में जनता साधारण बोझ उठाने की क्षमता नहीं रख पाती है, कारणों की वैसे परम्परा है। उज्जैन की सहिष्णु-भावना को ठुँकराया गया है। उसे प्रत्येक स्थिति में उपेक्षित रखा गया है। उस असन्तोष में साधारण घटनाभी उकसाने से सहायक हो सकती है। फिर चाहे उसका लाभ यश कोई प्राप्त करले। अवश्य हम स्वीकार करते हैं कि— नगर की राजनीति भी कलुषित हो गई है, वाणी और विचार का स्तर गिरा है, अवांछित-निहित-स्वार्थ और पर प्रेरित तत्वों ने इसमें प्रविष्ट हो अपने अभ्युदय-उत्थान के लिए नगर की उन्नति को बलि पर चढ़ाया है। पारस्परिक-संघर्ष और पक्ष प्रेरणा ने नागरिक एकता को भंग कर दिया है, सर्वोदय के अन्दर निहित आत्मोदय ने उज्जैन की उन्नति को, चेतना को कुचला है, इससे नगर के हित को बहुत हानि हुई है, पार्टी-पक्ष प्रपंचों ने नगरोन्नति को भी अपने सौदे का साधन बनाकर हमारे सामूहिक-हित में विभेद का विष विस्तारित किया है। हम अपने नागरिक-उत्थान में भी एकात्म भाव नहीं रख पाते। मतभेदों के रहते हुए भी सार्वजनिक या सार्वत्रिक समस्या पर सामूहिक स्वर के बल की आवश्यकता रहती रहती है। परन्तु उसमें भी हमारी विभिन्नता हमारे पक्ष में बाधक बनी हुई है। दुर्भाग्यवश सारे मध्य-भारत में ही आज समंजस सुलझे हुए प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव हो गया है, वहां उज्जैन का नेतृत्व तो विनष्ट हो गया है, पथ-प्रदर्शक के अभाव में अवन्ती की राजनीति पथ भ्रष्ट बन गई है, हडताल का असन्तोष वास्तविकता लिए था, तथापि प्रदर्शन और प्रचार में जिस असंयम, अविवेक का विकार विकसित दिखाई दे रहा था वह अवन्ती की परम्परा के प्रतिकूल ही कहा जाएगा। हम यहां शासन को भी एक शब्द कहना आवश्यक समझते हैं, उसने हडताल के पश्चात् जिस कर वृद्धि को निरस्त किया वह यदि समय से पूर्व करता तो विवेक संगत होता। किन्तु उसने परिस्थितियों-रोग को ठीक समय परखा नहीं; और पश्चात् पद लेकर संघर्ष को स्वीकार किया है, यह असन्तोष प्रवृत्ति को प्रोत्साहन ही दिया है।

दक्षिण में कवि-लेखक-पत्रकार त्रिवेणी-संगम !

कुछ समय हुआ दक्षिण भारत के चिदंम्बरम् (अन्नामलाई) में जहाँ नटराज-शिव ने अपनी कला के लालित्य से साहित्य में सौन्दर्य का आविर्भाव किया था, भारतीय कवि-कोविद कलाकारों का एक सम्मेलन सम्पन्न हो गया। इसका महत्व इससे और भी बढ़गया कि स्वयं राष्ट्र के अग्रदूत पं० नेहरूजी और उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने इसमें भाग लिया था। राज-नीति से दूर, साहित्य की सुरम्य-सरिता के तट पर इन दोनों विश्व-विभूतियों ने जिस प्रकार अपने अन्तर की भाव सुमनाञ्जलि समर्पित की, वह अत्यन्त सौरभ-मय है। कलाकार, कवि-कोविद की शक्ति महान् है, वह राष्ट्र की रीढ़ है, अपनी कला और कृति के माध्यम से वह राष्ट्र ही नहीं, विश्व की विचार-धारा पर अपरिमित रूप से अप्रत्यक्ष परिणाम-प्रभाव डालता है। वह मनोनीत मोड़ देसकता है। राजनीति ने राज्य क्रांतियाँ की हैं, पर साहित्य ने अनेक विचार क्रांतियाँ की हैं। और उसका स्थाई परिणाम हुआ है। विचार और विवेक ही तो मानव की सामर्थ्य है, सत्साहित्य ने सद्विचार और सद्विवेक का सदैव ही संचार किया है। दुष्कृति ने दुर्विचार का प्रचार। सद्विचार ने संसार को सुख-समाधान सद्भावना प्रदान की है और दुर्विचार ने अहम् घृणा, भय और विषमता का विस्तार किया है। सद्विचार ने

आत्मा को अमरत्व की ओर प्रेरित किया है, दुर्विचार ने सर्वनाश की सम्भावनाएँ सर्जित की हैं, आज उसी आत्मा और अहम् का संघर्ष हमारे समक्ष है, और विनाश का आमन्त्रण किया जा रहा है। हमारी प्रज्ञा पर जो तिमिरावरण छा रहा है वही इस संघर्ष का कारण है। उस आवरण को उठा कर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का दर्शन करवाने के लिए सजग-साहित्य स्रष्टा को सन्नद्ध होना पड़ेगा, वही एक आशा का आस्पद है, शक्ति का स्रोत है। हम जिस भय के भ्रमजाल में उलझ कर विवेक को विवाद का विषय बना सद्भाव और शान्ति की समाधिपर खडे हो, उज्वल भावी के उदय की आकांक्षा रखते हैं, वह तो विनाश का विकास है। अणु और उद्रजन उसी के प्रादुर्भाव के प्रतीक हैं। विनाश के भय को उपस्थित कर विश्व-शान्ति की आशा सेवित करना तो केवल मूर्खता ही है। इसका प्रतीकार, व्यापक मूर्खता, संघर्ष और विनाशकारी वातावरण में केवल साहित्य के सौन्दर्य की सृष्टि से शिवत्व की ओर प्रेरित करने में कवि-कोविद कलाकार ही सक्षम हो सकता है। इसीलिए डॉ. राधाकृष्णन् ने इन्हीं को उद्देश्य कर जो महत्व-पूर्ण, मौलिक और मार्मिक प्रवचन किया है, वह हृदयंगम करने योग्य है।

राधाकृष्णन्-उवाच !

उन्होंने अध्यक्ष स्थान से कहा—

"घटनाओं से यह आभास होता है कि या तो मानव इतिहास का अन्त आ गया है अथवा वह नई करवट लेने को है। यह चेतावनी हमें अग्नि के अक्षर दे रहे हैं। या तो हम नैतिक नियंत्रण पुनः प्राप्त कर लेंगे और आध्यात्मिक जीवन की ओर लौट पड़ेंगे, अथवा जैसे संसार से अनेक प्रकार के प्राणियों का लोप हो गया, मानव जाति भी अन्तर्धान हो जाएगी। अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए हमें अपने जीवन की भावना बदलनी होगी। जब तक प्रकाश शेष है, उस परिवर्तन को लाने के लिए हम जुट जाएँ।"

उपराष्ट्रपति ने कहा—"मानव सभ्यता को जो खतरा आज पैदा हो गया है उसका सामना केवल 'चेतना के गहरे स्तरों' पर किया जा सकता है। शक्ति और आत्मा के बीच जो द्वन्द छिड़ गया है यदि हम उसे शान्त नहीं कर पाते हैं तो हमें वह शक्ति ही नष्ट कर देगी जिसकी रचना का तो हमें ज्ञान है लेकिन जिसका नियन्त्रण करने की हममें बुद्धिमत्ता नहीं। इस दिशा में नए प्रयत्न के लिए हमारे भीतर धार्मिक भावना होनी चाहिए।"

* * *

"जबकि सरकारें घटनाओं को मनमाना रूप देने के लिए शक्ति और प्रतिबन्धों का उपयोग करती है, हम समझाने-बुझाने से काम लेते हैं, मनुष्य के विचारों और भावनाओं को प्रभावित करते हैं तथा बोले गए अथवा लिखित शब्दों से भविष्य का स्वरूप गढ़ते हैं। हम किसी राष्ट्र, मत या विचारधारा के अनुयायी नहीं। हमारा ध्येय है मानवता तथा शान्ति का हित हमारे लिए सर्वोपरि है"

* * *

"आज हमएक कगार के सिरे पर खड़े हैं, अणुबम और उद्जन बम के खतरे हमारे मन को घेरे हुए हैं तथा हमारी चेतना को परेशान किए हुए हैं। अमरीका के एक महान् अणु-वैज्ञानिक ने कहा है कि जब दुनिया को हिला देने वाला प्रथम अग्नि का गोला और बादल न्यू मेक्सिको के आकाश में उठा तो उन्हें भगवद्गीता का स्मरण हो आया। उन्होंने इस श्लोक का उद्धरण दिया—'यदि सहस्रों सूर्य आकाश में एक साथ फट पड़ें तो उनसे सर्व-शक्तिमान के तेज के समान ज्योति विकीर्ण होगी……मैं महाकाल हूँ, सृष्टियों का संहारकर्त्ता।"

उन्होंने कहा—उद्जन बम के प्रभाव तो और भी अधिक विनाशकारी हैं। हम सोचते हैं कि इनकी अकल्पनीय विध्वंसक शक्ति युद्ध को हतोत्साह करने वाली होगी। लेकिन असीम भय की इन धमकियों से हम मनुष्य निकृष्ट भावनाओं भय, घृणा और लालच को उकसाते हैं। मनुष्यों की सब भावनाओं में भय की भावना ऐसी है जो स्वतन्त्रता से बेमेल है हम और मनुष्यों को गिराने वाली है। और मनुष्यों के हृदय में भयानक भय भर रहे हैं। ऐसा करके हम उनको नैतिक दृष्टि से भ्रष्ट कर रहे हैं और उनकी विचार शक्ति नष्ट कर रहे हैं।

* * *

"उन्होंने कहा-गौरव युद्ध में नहीं, समझौते में है। क्यों कि संसार की कोई सरकार मानवता का विनाश नहीं चाहती, हमें

समझौते का प्रयत्न करना चाहिए। यदि समझौता असम्भव है तो शान्ति भी असम्भव है। शान्ति का अर्थ शत्रु के आगे झुकना नहीं है। समझौता वार्ता करना तुष्टिकरण नहीं है, और न बमों की धमकी देना राजनीतिज्ञता है। दुनिया एक दम जादू के जोर से नहीं बदली जा सकती। धीरज खोने या हतोत्साह होने की जरूरत नहीं।"

डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा–"बुद्धि-जीवियों को अपने मिशन के प्रति जागृत होना चाहिए। उन्हें एक सार्वभौम समाज बनाना है जो वस्तुतः स्वतन्त्र और जनतन्त्री हो तथा मानव आत्मा की पावनता पर आधारित हो हम भाग्य के बंदी नहीं हैं, मानवता को पीड़ित करने वाले भयों का अन्त करने और संसार को विनाश से बचाने की शक्ति हम में हैं।"

डॉ० राधाकृष्णन् के प्रवचन के पूर्व राष्ट्र नेता पण्डितजी ने इस समारंभ का उद्घाटन किया। जहां डॉ. सर्वपल्ली ने प्रज्ञा को प्रेरित करने के लिए विश्व के वातावरण का आभास देकर कवि-कोविदों को सजग होने को इंगित किया, वहाँ पण्डितजी ने प्रतिभा पुत्रों को सहज स्वाभाविक व्यावहारिक स्थिति की ओर इंगित कर प्रस्तुत प्रश्नों के प्रति उचित ध्यान देने के लिए प्रेरणा की, और उन्हें आत्म-रूप एवं अपनी शक्ति का भान करवाया।

पंडितजी का प्रवचन !

पण्डितजी ने कहा—कि भारतीय लेखकों को विश्व पर सोच-विचारने की आदत से अधिकाधिक दूर होने के विरुद्ध, जैसा कि इस समय है, प्रभाव डालने का महान् व महत्व-पूर्ण कार्य करना है। उन्हें ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिसमें दुनिया के सवालों को हल करने में केवल शक्ति व हिंसा की दृष्टि से न सोचा जाय जैसा कि इस समय है।

नेहरूजी ने इस वातावरण के महत्व पर बल दिया जिसमें साहित्य का निर्माण होता है और कहा कि साहित्य का भी कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। उन्होंने कहा–मानवीय सम्बन्धों में भी बुद्धिमान लोग अप्रत्यक्ष तरीके अपनाते हैं क्योंकि उनसे संघर्ष टल जाते हैं। मुझे संघर्षों पर कोई आपत्ति नहीं क्योंकि वे विचार-धाराओं का द्वन्द्वभाग होते हैं। लेकिन अक्सर जैसा कि अन्त उसीका राजनीति में हम देखते हैं, यह संघर्ष एक दूसरे के प्रति गाली-गलौज में बदल जाता है और जो लोग दूसरों से सहमत नहीं होते वे धूर्त और बदमाश समझे जाते हैं। यह संसार की आज पराजय है कि इन समस्याओं का हल भय शक्ति और हिंसा के जरिए सोचा जाता है।

प्रधान मंत्री ने कहा—मेरे लिए यह कहना तो कठिन है कि हिंसा और सैन्य बल से भूतकाल में कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। लेकिन यह मेरा पक्का विश्वास है कि हिंसा और सैन्यबल से अन्ततः अधिक सफलता प्राप्त नहीं होती। अन्य तत्वों का, जैसे कि मानवीय तत्वों का भी महत्व होता है। इस क्षेत्र में ही कवि और लेखक योग दे सकते हैं।

नेहरूजी ने कहा—एक शान्त वातावरण में, जो संघर्ष से विक्षुब्ध न हो, लेखक तटस्थता और शान्तचित्त से से लिख सकते हैं और अपनी रचनाओं के बारे में अन्य व्यक्तियों को भी शान्ति-पूर्वक विचार करने के लिए विवश कर सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में जहाँ भावनाएँ उभड़ी हुई होती हैं लेखक महान् भूमिका का सम्पादन कर सकते हैं। चाहे जिस दृष्टि से देखिए श्रेष्ठ लेखक की, जिसका अन्ततः अर्थ होता है श्रेष्ठ विचारक की महत्व-पूर्ण भूमिका होती है।

प्रधान मंत्री ने कहा—आजकल बहुत कुछ लेखन-कार्य, खासतौर से पत्रकारिता के कारण और रोजमर्रा की घटनाओं पर टिप्पणी करने की आवश्यकता के कारण, जल्दी में होता है। यह उस जीवन पद्धति का परिणाम है जो दुनिया अपनाने लगी है। हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहाँ अधिकाधिक बातें हिंसा और सैन्यबल की सिखाई जाती हैं न कि विवेक, तर्क या विचार की। लोगों की प्रवृत्ति पाशविक विचारों से हटाने में ही लेखक एक महत्व-पूर्ण भूमिका का सम्पादन कर सकते हैं।

नेहरूजी ने कहा—इस क्षेत्र में लेखकों के सामने बहुत बड़ा काम है। भारतीय साहित्य के विकास में उन्हें योग देना है तथा साथ ही भारत की विभिन्न महान भाषाओं के साहित्य के विकास में भी। लेकिन इससे भी अधिक महत्व-पूर्ण कार्य है—उन्हें अपनी दुनिया को अधिकाधिक विचारों के क्षेत्र में ले जाना है।

नेहरूजी ने बताया की भारत शिक्षा, शिक्षा के माध्यम इत्यादि जैसे कई मामलों में संक्रमण काल में से गुजर रहा

है। हमारे सामने समस्या केवल यही नहीं है कि हम स्वयं अपनी महान भाषाओं का विकास किस प्रकार करें बल्कि उन्हें एक दूसरे के निकट किस प्रकार लायें। मैं समझता हूं कि कवि, निबन्धकार तथा उपन्यासकार संघ का मुख्य कार्य यह ही है। साहित्य अकादमी का जिसे भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने स्थापित किया है, उद्देश्य भी ऐसा ही है।

प्रधान मंत्री ने कहा कि भाषा एक ऐसी चीज है जिस पर सभी उत्तेजित हो जाते हैं। दुर्भाग्य से हमने भाषा को राजनीति में घसीट लिया है। जो किसी के लिए भी भलाई की चीज नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि लोग भाषाओं के प्रश्न पर उत्तेजित क्यों होते हैं? इससे यह पता चलता है कि वे किस प्रकार भाषा को अपने जीवन का एक अंग मानते हैं।

हमें कुछ सामान्य चीजों का विकास करने का प्रयास करना चाहिए जिससे हम ऐसी चीज का विकास कर सकें जो भारतीय साहित्य कहला सके। सवाल यह है कि ऐसा कैसे किया जा सकता है। प्रस्ताव पास करके ऐसा नहीं किया जा सकता। हमें यह महसूस करना चाहिए कि भाषाएँ ऐसी चीज हैं जो सजीव व उत्तरोत्तर बढ़ने वाली होती हैं व उनमें स्पन्दन होता है। बहुत से देशों में, विशेषतः भारत जैसे देश में जो अपने को नया रूप देने का प्रयास कर रहा है, भाषा का यह पहलू बहुत महत्व-पूर्ण है। मैं स्वयं लेखों को इतना महत्व नहीं देता जितना इस बात को महत्व देता हूं कि उन लेखों के पीछे क्या छिपा है। शब्दों के पीछे जो भावना व शक्ति होती है वह ही महत्व-पूर्ण होती है। भारत को महान होने के लिए उस शक्ति व भावना की जरूरत है। लेखकों के लिए देश की सेवा-भावना से ऐसा करना जरूरी है।"

पण्डितजी का समस्त भाषण विचार-व्यवहार की दृष्टि से लेखकों के लिए मननीय है। हम श्रीमती सोफिया वाडिया को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने अपनी संगठित संस्था **P. E. N.** के तत्वावधान में इन प्रेरक विचारों के प्रसार का अवसर दिया।

राजस्थान के अमर सेनानी का स्वर्गवास!

राजस्थान के स्वाधीनता संघर्ष के सृष्टा श्री विजयसिंहजी पथिक का अभी स्वर्गवास होगया है, और इस प्रकार राजस्थान के एक इतिहास का महत्वपूर्ण घटक हमारे बीच से गुप चुप चला गया! पथिकजी के नाम से एक समय था राजस्थान का समस्त शासन कंपित हो उठता था, और जनता का ठेठ ग्रामीण वासी भी उनके गीतों को गाकर स्फूर्ति ग्रहण करता था। पथिकजी का बेगू सत्याग्रह स्वातंत्र्य समर का एक आरंभिक और उज्वल किन्तु सफल प्रयोग था। भारत का यह सत्याग्रह अन्य संघर्षों के लिए प्रेरणा प्रद बना है। बारडोली का सत्याग्रह दूसरा प्रयोग था, पर पथिकजी ही पहले सफल प्रयोक्ता थे। हमने पथिकजी के अजमेर के राजस्थान सेवा-संघ के दर्शन किए हैं, उनकी गति-विधि को देखा है, और प्रेरणा प्राप्त की है। पथिकजी की सहृदयता के साथ निर्भयता अहिंसा के साथ वीरता, अप्रतिम रही है पथिकजी का नाम ही राजस्थान की 'क्रांति' कहा जा सकता है। उनके त्याग, कष्ट, सहन और सेवा परायणता की कहानी बहुत लंबी है। वे चाहे आज कहीं मिनिस्टरी के फेर में न पडे, पर आज के अनेक मिनिस्टरों के निर्माण में पथिकजी की प्रेरणा रही है। राजस्थान की जागृति में पथिकजी का प्रबल हाथ रहा है, पथिकजी केवल नेता, कार्य कर्ता, वीर, त्यागी, तेजस्वी, क्रांतिकारी ही नहीं थे, वे सुकवि, गीतकार, सशक्त लेखक, सफल पत्रकार और राजस्थान के साहित्य के मर्मज्ञ भी थे। बहुत कम लोगों को पता होगा कि वे बहुत बडे मौलिक विचारक और चिंतक भी थे। इतिहास की अनेक गुत्थियों को उन्होंने अपनी प्रचण्ड प्रज्ञा, और सतत अध्ययन शीलता से सुलझाया था। आर्यों के आगमन, सृष्टि के आरंभ प्रलय के काल पर पुराणों और इतिहास ग्रन्थों से बड़े ही मौलिक तथ्यों का अन्वेषण किया था, उन्होंने सैंकडों पृष्ठ इस सांस्कृतिक अध्ययन अन्वेषण पर लिखे हैं, जो वास्तव में अत्यन्त महत्व के हैं। प्रकाशन और प्रचार पीड़ा से परांङ्मुख प्रवृत्ति के कारण उनका यह महत्व पूर्ण एवं विस्तृत साहित्य अप्रकाशित रूप में पडा है। हमने ८-१० वर्ष पूर्व उनके मथुरा के निवास स्थान पर उन्हें पुराणों की खोज करते देखा है, और सैंकडों पृष्ठों को लिखित

रूप में अवलोकन किया है। अभी कुछ मास पूर्व ही वे जब उज्जैन आए थे, उनसे चर्चा हुई थी, उन्होंने बतलाया था कि लगभग १२०० पृष्ठों में उन्होंने अपना यह संशोधन लिख डाला है। ऐसे मौलिक तथ्यान्वेषी विद्वान् का सहसा अवसान देश की बहुत बड़ी क्षति है। आपाधापी के इस स्वार्थी शासन और समाज में उनके त्याग, तप और शौर्य का शायद ही स्मरण किया गया हो, और उनकी एकांत साधना को शायद ही कुछ लोगों ने समझा—देखा हो। पथिकजी घोर स्वभिमानी थे, वे आन बान-शान के प्रचण्ड पुरुष थे, उनका निधन केवल राजस्थानी क्रांति के विधाता, बेगू के उद्धारक अथवा राजस्थानी जनता के जागृति-दूत का ही नहीं, सारे देश के प्रतिष्ठित पत्रकार, नेता, कवि, साहित्यकार और प्रचण्ड पुरातत्वान्वेषी का निधन है। मध्य-भारत की जागृति में पथिकजी का बहुत बड़ा सहयोग रहा है। इसलिए पथिक का अवसान हमारी भी क्षति ही हुई है। हम उन प्रचण्ड पुरुष, नेता, साहित्यकार के प्रति अपनी निवापांजलि सादर अर्पित करते हैं।

साथ ही राजस्थान, अजमेर और मध्य भारत शासन से अनुरोध करते हैं कि ये तीनों शासन मिल कर एक ऐसी निधि निश्चित् करें जिससे पथिकजी का काव्य, साहित्य संशोधन प्रकाश में आये, और उनकी उचित स्मृति रक्षा हो।

संगीताचार्य रज्जबअलीखाँ !

संगीताचार्य रज्जबअलीखां मध्य-भारत के अद्वितीय रत्न हैं। शास्त्रीय-संगीत के क्षेत्र में, भारत में वे अपनी शैली परम्परा और विशिष्टता के कारण स्वतन्त्र स्थान रखते हैं। उनकी स्वर-साधना का इतिहास है, अनेक राज्यों ने उनकी कला का आदर किया है, वे यद्यपि देवास के निवासी हैं, परन्तु संगीत-जग में रज्जबअली सर्व-भारतीय रूप से विख्यात हैं। अवश्य ही वे लोक-रंजन की सस्ती-कला के साधक नहीं, शायद सर्व साधारण उनके स्वर में अनरंजक कला को न पासके; परन्तु उनकी साधना शास्त्रीय संगीत के मर्म को स्पर्श करने वाली है, उसके मर्मज्ञ चुने हुए लोग ही हो सकते हैं। संगीतज्ञों की सभा उनकी कला के समक्ष सिर झुँकाने को विवश बन जाती है। रज्जबअलीखाँ ने देश की अनेक मजलिसों में मान पाया है, कीर्ति प्राप्त की है और कला की कुशलता बतला कर श्रेष्ठ कलावन्तों की कोटि में अपने को आसीन कर लिया है। हाल ही में नृत्य-नाटक अकादमी की ओर से भारत सरकार ने राष्ट्रपति के करों से इनकी कला की पूजा की है, यह उस्ताद रज्जबअलीखाँ का तो सर्व श्रेष्ठ सम्मान हुआ ही है साथ ही मध्य-भारत का मान भी बढ़ा है, इसके पूर्व ही ग्वालियर के उस्ताद हाफिजअली यह सम्मान पाकर इस प्रदेश का गौरव बढ़ा चुके हैं, मध्य-भारत को यह दूसरा बहुमान प्राप्त हुआ है। उस्ताद रज्जबअली वयोवृद्ध हैं, उनका जीवन स्वर-साधक का जीवन रहा है। उस रोज राष्ट्रपति के समक्ष शिव कल्याण जैसे उपेक्षित और विस्मृत राग को जो तानसेन की साधना का प्रतीक बना हुआ है—नए रूप में प्रस्तुत कर तथा उसमें राष्ट्रपति का अभिनन्दन कर जो स्वर-सौन्दर्य प्रकट किया, वह अविस्मरणीय रहेगा। हम मध्य-भारत के इन वयोवृद्ध संगीताचार्य का इस सम्मान पाने और अपने प्रदेश का गौरव बढ़ाने के उपलक्ष्य में हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

विश्वामित्र की सृष्टि का आरंभ !

पुराणों में कथा है कि जब विश्वामित्र को बहुत त्याग-तपस्या करने पर भी ब्रह्मर्षि मानने को मुनि-मण्डल तैयार नहीं हुआ, और उनका सन्मान स्वीकार नहीं किया, तो विश्वामित्र को बड़ा आघात अनुभव हुआ, उन्हें अपनी साधना और सिद्धि पर गर्व था, उन्होंने ब्रह्म देव के विरुद्ध विद्रोह करने की ठानली, ब्रह्मदेव का सृष्टिक्रम प्रकृति पुरुष से सम्बन्धित हो कर चल रहा था। तब विश्वामित्र ने पेड़ों से मानव निर्माण करने का प्रयास किया। गौ के महत्व को भैंस बनाकर बिगाड़ना चाह, कहते हैं कि नारियल का निर्माण ही मानव को पेड़ से उत्पन्न करने के लिए किया गया था, आज भी नारियल की खोपरी में आँख, नाक आदि के चिन्ह उसके अवशेष बने हुए हैं, किन्तु ब्रह्मदेव ने समय से पूर्व ही अपनी प्रतिष्ठा बचाली। विश्वामित्र को महत्व देकर, उनका वर्चस्व स्वीकार कर मानव निर्माण की अपनी 'मोनोपोली' को सदैव के लिए सुरक्षित करवा लिया, वर्ना आदमी, औरत की आवश्यकता नहीं रहती। पेड़ों पर पुरुष पैदा होकर लटकते दिखाई देते, पकते ही वे जमीन पर टपक पड़ते, चलते

फिरते दिखाई देते ! किन्तु यह सब धरा रह गया। मन के मनोरथ मुनि विश्वामित्र के पूरे नहीं हुए, 'मालूम होता है विश्वामित्र के व्यवहार और वर्चस्व से प्रकृति तभी से मन में ईर्षालु बन गई है। उसे पुरुष के प्रति स्पर्धा रही है, पर उस प्रतिक्रिया वादी युग में पुरातनता की मर्यादा में मन मार कर वह पुरुष के साथ रहने लगी, अपने मनो भावों को दबाती घुलती रही है। ज्यों ही प्रगति शील युग का आरंभ हुआ, समानता के लिए संघर्ष की शुरुआत हुई, धीरे धीरे प्रकृति ने अपने बदले की भावना को प्रकट करना आरंभ कर दिया, उसने पुरुष के प्रति विद्रोह बतलाना और अपनी शक्ति का सही स्वरूप समझाना शुरू कर दिया। पुरुष का घमण्ड न जाने कब कुचलने को वह उद्यत बन जाती है, सही साकार संपूर्ण आदमी को वह औरत बना देने लगी, और औरत को मन चाहा तो मर्द बना दिया। चिन्हों को चौपट कर देना उसके लिए एक खेल हो गया, आदमी का यह भरोसा टूटने लगा कि न जाने कब वह मर्द से औरत बन-जाए, यह गनीमत समझिए कि वह पैड़ों पर पैदा नहीं हो रहा है। अपने असली चोले से ही पलट कर रह जाता है। आदमी तो ठीक कोई प्राणी भी यह गर्व या विश्वास नहीं कर सकता कि आज तक जिस प्रकार सृष्टि क्रम में समानता का सिद्धान्त माना-जाना चला आरहा है, वह भी कायम कभी रह सकेगा ? आदमी के घर जानवर भी जन्म लेसकता है, जानवर की जननी से आदमी भी अवतार लेसकता है, आदमी को आदमी ही हो, जानवर को जानवर जन्मे, यह परम्परा प्रगति शील युग में पुराने ढंग से पोषित नहीं रह सकेगी। उदाहरण के लिए प्रथा-परम्परा पर प्रचण्ड चोंट उस आदमी ने लगादी है जिसने अपने पेट में प्रसूत करने के लिए बच्चा पाल रखा है, और पाकिस्तान में वह शीघ्र ही प्रकट हो, पुरुष के पौरुष को चुनौती देकर प्रकृति विद्रोह को प्रदर्शित कर देगा। ट्यूब और पावडर से प्रसव का प्रयोग तो प्रसिद्ध हो ही गया है। कोई आश्चर्य नहीं कि एक रोज नाचीज-मच्छर मानवको उत्पन्न कर बैठे ? बड़े छोटे का भेद अब बाधक नहीं रह सकेगा, हाल ही में थाना-ताजगंज में ही एक कुतिया के ४ सन्तानें उत्पन्न हुईं, उनमें तीन ने अपने माता-पिता और कुल-परम्परा को कायम रखा और एक ने विशाल-भारी भरकम हाथी का गर्व गोबर बना कर रख दिया। उसने कुतिया के पेट से पैदा होकर भी प्रकृति विद्रोह के प्रतीक-रूप में हाथी की सूरत-शकल पलट ली थी, स्पष्ट है कि एक कुतिया भी हाथी पैदा कर सकती है, गधिया शेर उत्पन्न करने लगेगी, आदमी के घर पर बन्दर, चूहे, कुत्ते तो कई बार पैदा हो चुके हैं। लोगों ने उन्हें अपनी आदत के अनुसार 'अस्वाभाविक' समझा। वह प्रकृति के विद्रोह का आंशिक प्रदर्शन ही था, फलतः यह अपमान न सह कर वे शरीर छोड़ कर शीघ्र ही चल देते रहे हैं, किन्तु अब युग परिवर्तन हो गया है, प्रगतिशीलता पूरी तरह पनप रही है। जो वर्षों में कभी सुनाई नहीं देता था, वह रोजाना स्पष्ट रूप लेकर प्रकट होता जा रहा है। कुछ ही समय में अनेक मर्द औरत बन गए हैं। अनेक औरतें मर्द बन चुकी हैं। आदमी अण्डा ही नहीं, पेट में बच्चा तक पनपाने लगा है। प्रसूति पीडा अनुभव करने लगा है तो स्पष्ट है कि समय आ गया है, प्रकृति का विद्रोह खुल कर प्रकाश में आ रहा है, अब किसी के पास यह 'मोनो-पोली' नहीं रह सकेगी कि वह अपनी अनुकूलता, अनुरूपता का अधिकार कायम बना कर सृष्टिक्रम में सामन्त या साम्राज्य-वाद बनाए रख सकेगा। यह हर प्राणी को स्वतन्त्रता रहेगी कि वह अपनी पसन्दगी के अनुरूप सृजन-क्रम स्वीकार करले। आदमी ही आदमी का उत्पादन-क्रम चलाए, यह प्राणि-मात्र की समानता की प्रतिष्ठा-परम्परा के प्रतिकूल भी है। आज के युग में समस्त प्राणियों की समानता स्वीकार करने के समय इस प्रकार अपने अपने स्वार्थ या एकाधिकार को धकाया नहीं जा सकता। अब आदमी की डिक्टेटरशिप् भी नहीं चल सकेगी कि वही मानव का उत्पादन करने का ठेका बनाए रखे, समानाधिकार के समय में यह साम्राज्यवाद सहन नहीं किया जा सकता। अवश्य ही यह प्रश्न प्रस्तुत हो सकता है कि जन-संख्यावृद्धि के नियंत्रण के लिए जब सरकार सोच रही है, तब यह समानाधिकार आदमी के अलावा भी अन्य प्राणियों से पुरुष पैदा करने का प्रयत्न करेगा, और स्त्री के सिवा पुरुष भी सन्तान देने लगेगा तो समस्या सुलझने के बजाय अधिक उलझ जाएगी, इसके लिए प्राणिमात्र के प्रॉडक्शन-प्रतिबन्धक प्रयोग पर विचार करने की आवश्यकता होगी।

पाकिस्तानी पुरुष के प्रसव के पश्चात् किसी स्पेशलिस्ट की प्रयोगशाला में इस प्रश्न पर गम्भीर अनुसन्धान होना चाहिए, सम्भव हो तो यह प्रश्न यू. एन. ओ. में भी विचारणीय बन जाना चाहिए, यह अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। मानवाधिकार का प्रश्न है क्योंकि यह समस्या सेक्स-भेद की भावना पर आघात पहुंचाने वाली है। 'सेक्स' को लेकर जो सहूलियतें विशेष रूप से दी जाती रही हैं या सिद्धान्त स्वीकार किए गए हैं, उनको अब समाप्त कर देना होगा। क्योंकि न जाने कब किसका सेक्स बदल जाए। और बिना बदले भी सन्तान तक उत्पन्न हो सकती है तो यह सेक्स-समस्या क्या मूल्य या महत्व रख सकती है? सेक्स, और सृजन का भी सम्बन्ध नहीं, 'ट्यू ब'-प्रणाली ने इस सम्बन्ध को भी समाप्त कर दिया है। समय जिस तरह अपना मान, और मूल्य पलट रहा है। उसी प्रकार अन्य भेदों की दीवारें भी बीच से गिरती जा रही है। आदमी से अधिक प्रकृति साम्यवादी होती जा रही है, यह रशिया के लिए उज्वल भावी का सूचक ही है।

दस हजार वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेष बंगाल में

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग को दुर्गापुर (बंगाल) में १०,००० वर्ष पुरानी संस्कृति के पाषाण उपकरण मिले हैं। ये उस काल के हैं जब गंगा के मैदान में मनुष्य-जाति नहीं बसती थी।

दामोदर घाटी योजना निगम के अधिकारियों से अनुमति लेकर पुरातत्व-विभाग की पूर्वी शाखा ने हाल ही में यहां खुदाई काम शुरू किया था। वहां के प्राप्त उपकरण कई प्रकार के हैं। इनमें फल, अर्ध चन्द्राकार फल, बादाम की शक्ल के तीर की नोक, सूजे, गोल और दांतेदार खुरचने के औजार छोटी कुल्हाडियां आदि हैं। जैसा कि यूरोप, अफ्रीका, पश्चिमी एशिया आदि की इसी प्रकार की संस्कृतियों के अवशेषों से पता चलता है, ये नोक और फल लकडी आदि के बेंटों में लगा कर काम में लाये जाते थे। अर्ध चन्द्रकार फलो और नोकों को लगाकर बर्छी, परशु आदि हथियार बनाये जाते थे। दांतेदार औजारों से मारे हुए जानवरों की खाल खुरची जाती थी, और सूजे से खाल में छेद किया जाता था। छोटी कुल्हाडियों पर लकडी अथवा सींग की बेंट लगाई जाती थी, बेंट को औजार से खुरच कर चिकना कर लिया जाता था। रुखानी के किस्म के औजार से गुफाओं की दीवारों और पत्थरों पर चित्रादि खोदे जाते थे।

उस काल के लोग पशु पक्षियों और आस पास आसानी से मिल जाने वाले खाद्य। (कन्द-मूल) पर ही निर्भर थे। खेती करने और मिट्टी के बर्तन बनाने से वे सर्वथा अनभिज्ञ थे।

ये औजार लोहा मिश्रित धूल और पत्थरों के टुकडों की पांच फुट मोटी सतह पर पाये गये। इस सतह को देख कर अनुमान लगाया जाता है कि ये औजार लगभग १०,००० वर्ष पुराने हैं। इन औजारों के ऊपर रेतीली चिकनी मिट्टी की तीन फुट ऊँची तह जमी हुई थी। कालान्तर में यह मिट्टी लाल हो गयी है, जिससे उसकी प्राचीनता का पता लगता है।

और मास्को में!

ईसा से तीन शताब्दि पहले के उपलब्ध एक शिलालेख की विशेषता यह है कि इस पर आदेश देने वाले का नाम अशोक लिखा हुआ है, जब कि दूसरे शिलालेखों में सम्राट का नाम 'पियदस्सि' अंकित है। यह स्थान मस्की नदी के दाएं किनारे पर है और हैदराबाद राज्य में रायचूर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग ५० मील दूर है।

हैदराबाद के पुरातत्व विभागने १९३५—३७ में भी यहां खुदाई कराई थी और तब भी बहुत सी सामग्री मिली थी, लेकिन सांस्कृतिक विषयों पर क्रमानुसार प्रकाश डालने वाला कोई प्रमाण नहीं मिला था। अतः इस खुदाई का मुख्य उद्देश्य वही क्रमागत सामग्री की खोज करना था।

वर्तमान खुदाई यद्यपि बड़े पैमाने पर नहीं की गई है, लेकिन इससे यह पता चलता है कि इस स्थान पर सब से पहले बसने वाले व्यक्तियों का सांस्कृतिक साज-सामान ताम्रयुगी न था, क्योंकि प्राप्त वस्तुओं में अधिकांश तांबे की हैं। पत्थर की बनी बहुत-सी वस्तुएँ भी मिली हैं। जो मिट्टी के बर्तन मिले हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उनमें से कुछ आग में पकाकर भी बनाए गए हैं, और कुछ की मिट्टी में अभरक

मिला हुआ है। इनके अतिरिक्त कुछ पतले बर्तनों के चित्रित टुकड़े भी मिले हैं।

लोहे की वस्तुओं और मिट्टी के काले काले लाल बर्तनों से यह पता चलता है कि बाद में बसने वाले पाषाण युग के थे। उनकी संस्कृतिपर प्रकाश डालने वाली एक महत्व पूर्ण बात— मुर्दों को दफ़नाने का उनका खास तरीका है। खुदाई में इस तरह की दस कब्रें मिली हैं। उनमें एक के अतिरिक्त बाकी सब में मृतकों के सिर उत्तर की तरफ हैं। अब तक की खोज में यह एक नई बात है।

इनके बाद के बसने वाले आंध्रकाल के लोग थे, जिसका प्रमाण सातवाहन मुद्राएं तथा लाल और भूरे रंग में चित्रित मिट्टी के बर्तन हैं। चालुक्य राजाओं के शिला-लेखों तथा मुस्लिम काल की मुद्राओं से पता चलता है कि इस स्थान पर मध्य काल में भी लोग रहे थे।

तीसरे महा-विग्रह का परिणाम-परीक्षण, या विश्व शान्ति का अट्टहास !

विश्व विश्रुत तत्व चिंतक बर्ट्राण्ड रसेल ने अमेरिका के हेड्रोजन बम्ब के प्रयोग करने के पश्चात् चिन्तत होकर एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए कहा है कि 'तृतीय विश्व-विग्रह का क्या परिणाम हो सकेगा, इसकी भारत को निष्पक्ष जांच करना चाहिए।" रसेल साहब विचारक हैं विवेक शील हैं, और विद्वान् हैं। उनके समक्ष दो-दो विश्व-युद्ध हो चुके हैं, और दोनों के परिणाम प्रत्यक्ष हैं, एक विश्व-युद्ध ने दूसरे विश्व-युद्ध को जन्म दिया है, अतुलित धन-राशि और जन समूह का नाश किया है, फिर भी उन नाशक तत्वों को उत्पन्न किया है जिनसे महानाश की परम्परा पनपती रहे, जिन समस्याओं ने इन समरों को प्रेरित किया है, वे सर्वनाश करके भी यथावत् बनी रही है। आज उन्हीं के कारण तीसरे महा समर की प्रसूति-पीड़ा भी पनप रही है, पिछले दो महा-समरों में जिन महा-नाशक साधनों का सृजन नहीं हुआ था, आज उन साधनों को भी मानव ने सुलभ कर लिया है। ऐसी स्थिति में कौनसी जांच की आवश्यकता उत्पन्न होती है कि इनका क्या परिणाम आ सकेगा ? क्या आज यह सोचने को रह जाता है कि यदि इन सर्वनाशी साधनों को लेकर समर शुरू होगा तो दो दलों दो पक्षों में से कोई भी यह जानने-समझने के लिए भी सुरक्षित रहेगा कि कौन जीता या कौन हारा है। चाहे अमेरिका हो, या रशिया। दोनों में ही यातना, विनाश और सर्व-व्यापी संहार की छाया छा जावेगी। जिस समय खिंचाव की सीमा चरम को स्पर्श कर लेगी तब प्रतीक्षा के पूर्व ही अचानक सर्वनाशी आक्रमण हो जाएगा और वह प्रलय ही प्रस्तुत कर देगा। किसी को सावधान होने का समय भी शायद सुलभ हो सकेगा। परिणाम तो प्रत्यक्ष हैं ही उनके कारणों की समीक्षा, या युद्ध की निरर्थकता के लिए कौनसी जांच क्या होगी ? युद्ध, केवल विनाश ही सर्जित करता है, और उसकी सन्तान घृणा और भय के रूप में फैलती रहती है, फिर जिस हेड्रोजन के प्रयोग ने ही व्यपाक विनाश की आशंका उत्पन्न कर, उनके सृष्टाओं को भी आतंकित कर दिया है, वे कौनसे समाधान का माध्यम समुस्थित करेंगे ? यह स्पष्ट है कि दो दो विश्व विग्रहों से निकल कर आज की मानवता किसी समर को स्वीकार नहीं कर सकती, परन्तु परिस्थिति इससे विपरीत है। समाज के कुछ सूत्रधार निरन्तर महा नाश के साधन संचित करते जा रहे हैं। उनकी महत्वाकांक्षाएँ समर को समीप लाने के लिए आतुर है, चाहे वह महत्वाकांक्षा शासन के विस्तार वर्चस्व की हो या आर्थिक लाभ के वशीभूत हो, युद्धोद्योग के स्वार्थकर श्रीमन्त बनने की। परन्तु इस युग ने ऐसे शस्त्रास्त्रों को सुलुभ बना दिया है कि उनकी महत्वाकांक्षाएँ सफल हुई या विफल यह सोचने-समझने को भी कोई शेष रहेगा या नहीं यही शंका है। पिछले किसी समर ने किसी भी समस्या को सुलझाया नहीं है, बल्कि इतना अधिक उलझाया है कि आज उन समस्याओं के साथ बड़े समाज की समाधि बनाने की भी संधि सुलभ होगी या नहीं, यह आशंका हो गई है। जब पानी में पड़ने वाला बम अपने विस्फोट से जग को प्रकंपित कर देता है तो उससे लड़ा जाने वाला समर किस प्रकार सर्वनाश कर डालेगा यह कल्पना भी रोमांचित कर देने वाली है। इन शस्त्रों के निर्माताओं को भी यह चिन्ता है कि इनसे संरक्षण का कोई उपाय नहीं है। तब ये अस्त्र अकेले अमेरिका के पास ही नहीं है, उसकी स्पर्धा में रशिया ने भी निर्माण किये हैं, दो महान्-राष्ट्रों की यह महानाश कारी स्पर्धा पृथ्वी पर किसी समय भी आकस्मिक प्रलय उपस्थित

कर देगी। पूंजीवादी और साम्यवादी का यह संघर्ष कोई आश्चर्य नहीं कि अपने वादों के साथ समस्त विश्व के विशाल समुदाय को समाप्त कर प्रलय काल की कंपन कारी कल्पना को साकार कर डाले! संभव है तब विश्व-शांति, श्मशान-शांति का रूप लेकर खण्डहरों पर छाजावे! जिसे जड़-जगत अनुभव भी न कर सके। आज विचारों की विषमता में पूंजी का प्रवाह शांति की शीतलधारा खोज रहा है। अणु और उद्रजन उसके प्रहरी बन हिमालय का अभिनय कर रहे हैं। ज्वालामुखी में जीवन की बस्ती बसाई जाने को है। चिताओं की लपटों पर फूंस की झोपडियों का निर्माण किया जाएगा, विश्व-शांति के भगीरथों का यह कैसा निर्लज्जक्रूर अट्टहास है

भारत के उपराष्ट्रपति ने उचित ही कहा है—

"बिना मूल्य चुकाए शांति प्राप्त नहीं हो सकती। मूल्य वही चुका सकता है जिसके पास देने को कुछ हो। जिसके पास शक्ति और धन हो उन्हें चाहिए कि वे शक्ति का उपयोग लोगों पर प्रभुत्व जमाने के लिए न करें और धन का उपयोग लोगों को भ्रष्ट करने के लिए न करें। अन्तर्राष्ट्रीय और विचारधारा के संघर्ष में फौजी हल नहीं, एक स्थायी मानवीय हल खोजना चाहिए। किसी राष्ट्र को यह नहीं सोचना चाहिये कि उसे भगवान् ने सृष्टि का प्रभु अथवा मानव जाति का नेता बना दिया है। यदि हमारे से भिन्न विचार के कुछ लोग हों तो हमारा कर्तव्य उनसे लड़ाई करना नहीं, उनके विचार बदलना, उनकी आंखें खोलना है, उनके कार्यक्रमों की व्यर्थता उन्हें प्रदर्शित करना है तथा मानव आत्मा की भव्यता के उन्हें दर्शन कराना है।"

स्व० सुधीन्द्र!

यह जान कर अपार वेदना होती है कि हिन्दी के सुकवि और सहृदय डॉ० सुधींद्र का अल्पावस्था में ही अकाल अवसान हो गया। डॉ० सुधींद्र बहुत मिलनसार और मधुर व्यक्ति थे, उनका भोलापन बहुत ही भला लगता था, उन्होंने अल्प वय से ही अपनी प्रतिभा प्रकट की थी, जब वे बी. ए. थे, तभी रवीन्द्र की गीतांजलि का मधुर पद्यानुवाद कर डाला था, हमें यह अनुवाद उनके मुख से सुनने का अवसर मिला है, और इस के साथ ही एक बड़ी मनोरंजक घटना घट गई थी, वह न तो सुधीन्द्र भुला सके, न हम ही। वर्षों पूर्व की बात है, उन दिनों मध्यभारत के कवि हृदय प्रो० रमाशंकरजी शुक्ल जीवित थे। भारती भवन में शाम के समय मनो-विनोद चल रहा था सहसा सुधीन्द्र आए, वे हम लोगों से अपरिचित थे, लौट से लगे हुए प्रसन्न वदन शुक्लजी को गद्दी पर देखा और प्रणाम कर इस प्रकार बातें की मानों 'व्यासजी' (हमें) समझ रहे हैं, शुक्लजी ने भी पूरी तरह 'व्यासजी' का अभिनय कर डाला, और उन्हें अन्दाज भी नहीं होने दिया कि वे शुक्लजी से ही बातें कर रहे हैं। जब सुधीन्द्रजी ने कहा कि मुझे प्रो० शुक्ला सा० से मिलना है तब व्यास-रूप धारी शुक्लजी ने हमारी ओर संकेत कर दिया कि ये ही तो हैं 'शुक्लाजी', अब हमारी बारी थी कि उन्हें शुक्लजी का सफल अभिनय दिख लावें, घण्टों गप्-शप् मनोरंजन चलता रहा, पर बेचारे भोले सुधीन्द्र असली व्यास और असली शुक्ल को नहीं पहचान पाए, दूसरे रोज वे श्री हरीभाऊजी उपाध्याय के साथ फिर भारती भवन आए, उनके समक्ष भी हम लोगों ने वही पूर्व रूप कायम रखा, और बातें होती रही, श्री हरीभाऊजी मुसकाते रहे, और मनोरंजन में बराबर योग देते रहे, जब देर के बाद वापिस होने का अवसर आया और श्री हरीभाऊजी ने सुधीन्द्रजी से पूछा कि 'व्यासजी' और 'शुक्लजी' को पहचान लिया न? भुला न देना?" तब सुधीन्द्र को सन्देह हुआ कि कोई गड़-बड़ हो गई है, जब ठीक पहचान हुई तब बहुत ही मनोरञ्जन हुआ। वर्षों के बाद जब प्रो शुक्लजी का सहसा अवसान होगया तो सुधीन्द्र जी ने यही मनोरंजक संस्मरण प्रकाशित किया था। आज हमें यह लिखते हुए अत्यन्त कष्ट हो रहा है कि उन्हीं तरुण-अरुण, प्रतिभाशाली भावुक कवि के निधन की चर्चा करने का दुःखद अवसर आया है। सुधीन्द्र राजस्थान के थे, पर उन्होंने अपनी प्रतिभा-योग्यता, और विशेषता के कारण हिन्दी जग का स्नेह-सम्मान पात्र बना लिया था, वे अभी युवक ही थे थोड़ी ही वय में उन्होंने बहुत कुछ लिखा, और अपना स्वतन्त्र स्थान एवं लोक प्रेम प्राप्त कर लिया था, वे नहीं रहे, परन्तु हमारी आँखों के समक्ष अब भी उनकी सांवली-सलोनी मुसकाती मधुर मूर्ति सहसा आ रही है। कौन जानता था कि इस छोटी सी जीवनी, को छोड़कर अकस्मात इस जग से वे उठ जावेंगे। किन्तु सहसा यह प्रतिभा का प्रकाश हिन्दी-गगन से नक्षत्र की तरह नष्ट हो गया! हृदय को धक्का लगता है कि भाई सुधीन्द्र नहीं रहे। दैव गति!

संस्कृत-साहित्य में वर्णित शब्दोच्चारण के नियम

श्री रामशंकर भट्टाचार्य

ग्रन्थों का पाठ किस प्रकार से करना चाहिए— इस विषय में अनेक नियम प्रातिशाख्य, शिक्षा तथा व्याकरण आदि शास्त्रों में वर्णित हैं। इस निबन्ध में उन विधि-निषेधों की संक्षिप्त में आलोचना की जायगी, साथ-साथ पठन क्रिया के आनुषङ्गिक विषयों का विवरण भी दिया जायगा। पाठ क्रिया एक उच्चारण-विशेष है, अतः वर्णोच्चारण संबन्धी अनुशासनों का संकलन ही इसमें किया जायगा। आशा है कि इन नियमों का सफल प्रयोग हिन्दी के उच्चारण में किया जायगा।

(१) वर्ण का उच्चारण अव्यक्त नहीं होना चाहिए। अव्यक्त का तात्पर्य यह है कि श्रोता को यह बोध हो जाय कि श्रुत शब्द मृदंग आदि की ध्वनि की तरह नहीं है, प्रत्युत वर्ण है। वर्ण=जो ध्वनि तालु आदि स्थान में बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयत्न से जिह्वा के स्थान-विशेष के आघात से उत्पन्न होता है। प्रयत्न यदि ठीक नहीं होगा, तो जो ध्वनि निकलेगी, वह अव्यक्त होगी। इसका परिहार होना चाहिए, क्योंकि ऐसे उच्चारण से यथार्थ अर्थ बोध दुर्घट होता है।

(२) **अपीडितः**-वर्णोच्चारण करना वागिन्द्रिय का स्वाभाविक कर्म है, अतः वागिन्द्रिय की यह सहज क्रिया है, जैसा देखना चक्षु की सहज क्रिया है। अस्वाभाविक रूप से जब वर्णों का उच्चारण किया जाता है। तब वह 'पीड़ित' पदवाच्य होता है, जो वर्जनीय है, क्योंकि उससे ऐन्द्रियिक स्फूर्ति नष्ट हो जाती है; ठीक जैसे जोर (Stress) देकर पढने से कुछ दिनों के बाद चक्षु की शक्ति क्षीण हो जाती है। वागिंद्रिय के पीड़न का अनुभव स्थिर चित्त से हम कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी वृत्ति को संयत कर तथा शरीर को सात्त्विक आहार तथा व्यायाम से पुष्ट कर वर्णोच्चारणकालीन अनुभव के बाद में अपने को विकृत कर वर्णोच्चारणकालीन प्रयत्न भेद जनित अनुभव से तुलना करें तो 'पीडित' तथा 'अपीडित' उच्चारण का भेद स्पष्ट ज्ञात होगा। आज-कल यद्यपि शरीर और मन की निकृष्टता के कारण इस प्रकार के अनुभव वैशद्य के लिये कुछ भी प्रयास नहीं किया जाता, पर प्राचीन काल में अपीडित वर्णोच्चारण करने का ही उपदेश दिया जाता था— ऐसा जान लेना चाहिए। आज-कल की अशक्ति से प्राचीन काल की सूक्ष्मशक्ति का बोध नहीं करना चाहिए।

(३) **अगीतः**— गीतकाल में स्वरोच्चारण काल को बढ़ाया (या घटाया) जाता है, पर साधारण पाठ में ऐसा नहीं होना चाहिए। जैसे अर्ध एकार का उच्चारण राणायनीय संप्रदाय में रीति विशेष में होता था,[1] पर उससे अर्ध एकार कोई स्वतन्त्र वर्ण नहीं हो गया, नहीं गीतवत् उसका उच्चारण अन्यत्र भी कर्तव्य हो गया। सम्यक् पाठ में स्वर काल में व्यत्यास नहीं करना चाहिए।

(४) **अशीघ्रः**— एक वर्ण से अन्य वर्ण के उच्चारण में अर्धमात्रा-काल का व्यवधान होना चाहिए ऐसा आचार्य पतञ्जलि का मत है (द्र० १।४।१०६ सूत्र का महाभाष्य)। पर यदि उससे भी कम समय में प्रथक-प्रथक वर्णों का उच्चारण किया जाय, तो उससे वर्णों के ज्ञान में विपर्यय होगा, अतः शीघ्रोच्चारण अकर्तव्य है। एक पद से अन्य पद के उच्चारण में कितना समय लगाना चाहिए,इसका कोई अनुशासन मिलता नहीं है।

---

(१) देखो पतञ्जलि का महाभाष्य, आह्निक २।

(५) **असंवृतः**—जिस वर्ण के लिये जो आन्तर प्रयत्न[1] निश्चित है, उससे पृथक प्रयत्न से उच्चारण करने से अन्य वर्ण की प्रतीति होने लगती है, अतः शास्त्रानुसार आभ्यन्तर प्रयत्न का यथार्थ प्रयोग करना 'असंवृत' उच्चारण का लक्षण है।

(६) **अकलः**— जैसे शास्त्रविहित प्रयत्न के उल्लंघन करने से दोष होता है, वैसा जिस वर्ण के लिये जो स्थान (तालु, ओष्ठ आदि) निश्चित है उसको अन्यथा कर उच्चारण करने से 'कल' रूप दोष होता है, जैसे मूर्धा से यदि इ वर्ण का उच्चारण किया जाय, तो वह दुष्टोच्चारण होगा। शास्त्रीय स्थान के अनुसार करने से 'अकल' नामक यथार्थ उच्चारण होता है।

(७) **अध्मातः**— यदि शारीरिक दुर्बलता या मानसिक उत्तेजना के कारण श्वास-क्रिया की अधिकता होने पर वर्णोच्चारण किया जाय, तो श्वासाधिक्य के कारण ह्रस्व का उच्चारण दीर्घ की तरह सुनाई पड़ेगा, ऐसे उच्चारण को 'ध्मात' कहा जाता है। जब चित्तस्थैर्य के कारण यह दोष अपगत होता है, तब उस सम्यक् उच्चारण को 'अध्मात' कहा जाता है।

(८) **अविशिष्टः**— जब ऐसा उच्चारण किया जाता है कि यह स्पष्ट-बोध न हो कि यह वर्ण 'ए' है, या 'ओ', तब इस प्रकार अविशिष्ट उच्चारण का प्राचीन नाम 'एणीकृत' था। कभी-कभी इस प्रकार के उच्चारण में वक्ता की दुरभिसन्धि भी रहती है, अर्थात् श्रोता को वर्णान्तर का बोध हो, जिससे वह मेरे विवक्षित अर्थ को न समझ सके। कभी-कभी अपने वर्णोच्चारण सम्बन्धी अज्ञान को छिपाने के लिये भी इस प्रकार 'एणीकृत' उच्चारण किया जाता है।

(९) **अनम्बूकृतः**— रुद्ध ओष्ठाधर से उच्चारण करना दोष है, और इस स्थिति में उच्चारण करने से मुख से जल-बिन्दु निकलता है, अतः अर्थबोध तथा स्वच्छता इन दोनों दृष्टि में 'अम्बूकृत' उच्चारण परित्याज्य है, सुतरां अनम्बूकृत उच्चारण ही करना चाहिए।

(१०) **अनर्धकः**— पहले यह दिखाया गया था कि शारीरिक विकलता के कारण ह्रस्वोच्चारण दीर्घ की तरह सुनाई दे सकता है; उसी प्रकार दीर्घ भी ह्रस्व की तरह हो सकता है, यदि उच्चारण साधक प्रयत्न में कमी हो जाय। ऐसे दुष्ट उच्चारण को 'अर्धक' कहा जाता है। यह दोष न होने से अनर्धक रूप यथार्थ उच्चारण होगा।

(११) **अग्रस्तः**—जब वर्णोच्चारण के समय जिह्वा के मूल में ही उच्चारण-प्रयत्न निगृहीत हो जाता है, तब वह 'ग्रस्त' कहलाता है। श्वासनाली (Bronical Tube) की अक्षमता (रोगादि के कारण) ही इसका प्रमुख कारण है। इससे एक वर्ण के उच्चारण के स्थान पर उसी वर्ण का बार-बार आधा-आधा उच्चारण होता है।

(१२) **अनिरस्तः**— 'निरस्त' उस उच्चारण दोष का नाम है, जब खींच कर वर्णोच्चारण किया जाता है, जैसे कि वर्णों को मुख के बाहर फेंका जा रहा है। यह ग्रस्तोच्चारण का प्रायः विपरीत है। इससे क्रोध का आवेश भान पड़ता है, जो सर्वथा त्याज्य है। आज-

---

(१) आन्तर या आभ्यन्तर प्रयत्न शिक्षा शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है, अतः संक्षेप में उसका अर्थ दिखाया जा रहा है:- आभ्यन्तर प्रयत्न ४ या मतान्तर में ५ हैं, इनका नाम है- स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत तथा संवृत। वर्णोत्पत्ति के पहले ही ये उत्पन्न होते हैं, और इनके बल से ध्वनि की उत्पत्ति होती है। नाभि प्रदेश से प्रयत्न प्रेरित वायु ऊर्ध्वाभिमुखी होकर उरः आदि स्थानों में आघात करता है, तब ध्वनि की उत्पत्ति होती है। वर्णोत्पत्ति के पहले जिह्वा का अग्र, उपाग्र, मध्य तथा मूलांश, तालु आदि स्थान को जब सम्यक् रूप से आघात करता है, तब उसको स्पृष्ट प्रयत्न कहा जाता है। ईषत् छूने पर ईषत् स्पृष्ट, समीपावस्थान होने से संवृत तथा दूर होने से विवृत।

कल राजनैतिक नेताओं के भाषणों में यह दोष बहुल मात्रा में दीख पड़ता है। इस दोष का कारण कुछ अंश तक मानसिक है।

(१३) अनुपगीतः- पहले दिखाया गया है कि 'गीत' एक उच्चारण दोष है। उससे मिलता-जुलता दोष 'उपगीत' भी है, जिसका लक्षण है- 'समीपवर्णान्तर गीत्यनुरक्ति' अर्थात् जब कोई वर्ण गीत की तरह नियमानुसार उच्चारित होता है, तब यदि उसका समीपस्थ वर्ण भी अनवधान से गीत की तरह उच्चारित हो, तो 'उपगीत' दोष होता है, वैसा नहीं होना ही 'अनुपगीत' का लक्षण है।

(१४) अद्विराणः— द्विराराव का अर्थ कम्प है, अतः कम्पनहीन उच्चारण अद्विराण होगा। अत्यधिक आवेग से जब उच्चारण किया जाता है, तब स्वर कम्पित होता है, और चूँकि यह शारीरिक विकलता से उत्पन्न होता है (आवेगकालीन कम्पन में शरीर में अधिक Tosein उत्पन्न होता है) अतः यह उच्चारण दोष है।

(१५) अरोमशः- कण्ठ विवर को फुलाकर उच्चारण करने से जो गांभीर्यात्मक स्वर निकलता है, वह 'रोमश' है। यह दोष है, अतः अरोमश उच्चारण उपादेय है। यह द्विराण और रोमश उच्चारण परस्पर विपरीत धर्मा है-ऐसा प्रतीत होता है।

(१६) अनविलम्बितः- पहले शीघ्रोच्चारण रूप एक दोष दिखाया गया था, जिसका लक्षण था-एक वर्ण से अन्य वर्ण के उच्चारण के लिये जितना समय लगना चाहिए उससे कम समय देना; यह भी उसी प्रकार का ही है। पर शायद यह उससे कुछ विशिष्ट हो, अर्थात् इसमें वर्ण अव्यवहित पर वर्ण से मिलित होकर उच्चारित होता है। अविलम्बित में यह मिलन अति निबिड है, और 'शीघ्री' में उतना निविड नहीं है-ऐसा कहा जा सकता है; पर दोनों एक ही हैं—ऐसा कहना असंगत नहीं होगा।

(१७) अहतः—उच्चारण में कार्कश्य होना 'हत' का लक्षण है। कार्कश्य और गाम्भीर्य में भेद है, और यह भेद आज भी स्पष्ट है। यह दोष नहीं होना अहत का लक्षण है।

(१८) अविकीर्णः-'विकीर्ण' का अर्थ है- 'अन्य वर्ण में प्रसृत' अर्थात् जब किसी वर्ण का उच्चारण अन्य वर्ण में प्रसृत हो जाता है। पर यह लक्षण सब आचार्यों का अनुमत नहीं है, क्योंकि अन्य दोषों में इस दोष की गणना हो चुकी है, अतः 'विकीर्ण' का दूसरा लक्षण है- एकोऽप्यनेक निर्भासी' = एक होता हुआ भी अनेक की तरह प्रतिभासमान। उच्चारण वैकल्य से जब कोई वर्ण अपने स्वरूप को दृढ रूप से प्राप्त नहीं होता, तभी इस प्रकार विपर्यय ज्ञान संभव है।

(१९) अर्थयुक्त पाठः—भारत वर्ष में दो प्रकार की पठनक्रिया अति प्राचीन काल से प्रचलित थी। उनमें अर्थयुक्त पाठ मुख्य है। अर्थशून्यपाठ बाद में वर्णित होगा। इन पाठों में उच्चारण संबंधी कोई विशेष नहीं है,। जब केवल अर्थ की ओर ही ध्यान दिया जाता है, शब्द क्रम जब मुख्य नहीं होता, तब उसको अर्थयुक्तपाठ कहा जाता है।

(२०) शाब्दिक पाठः—भारत में इस पाठ की महत्ता कम नहीं है, इसका प्राचीन नाम 'अध्ययन' है, जिसका लक्षण है-'गुरुमुखादक्षरानुपूर्वीज्ञानम् (अध्वरमीमांसाकुतूहलवृत्ति) प्राचीन आचार्य वेद को 'शब्द-स्वरूपात्मक' समझाते थे (अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा, आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः महाभा० शान्ति० २३१) अतः अर्थ न जानकर केवल शब्दोच्चारण करना भी पाठविशेष था। निरुक्त में इस पाठ का अन्य नाम 'निगदपाठ' कहा गया है। निरुक्तकार ने इस पाठ की निन्दा की है, क्योंकि ग्रन्थ संरक्षण में इस पाठ की उपयोगिता होने पर भी इससे विद्यार्थी का कुछ भी मानसिक उपकार नहीं होता। इस अर्थ निरपेक्ष स्वाध्याय का एक अन्य नाम भी प्राचीन ग्रन्थ में दृष्ट होता है, जो वैदिक वाङ्मय

में 'संपाठ' नाम से प्रसिद्ध है, जिसका लक्षण है-- 'अर्थनिरपेक्षः स्वाध्यायः' (उद्योत ४ । २ । ५९) ।

(२१) अदुष्ट स्वर — संस्कृत शब्दों का पूर्ण उच्चारण तभी होता है, जब उसके साथ उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित का भी उच्चारण किया जाय। यह नियम केवल वेद के लिये है- ऐसी बात नहीं है। लौकिक शब्दों में भी स्वर का उच्चारण अनिवार्य है;[1] यद्यपि दीर्घकाल से इस नियम की अवहेला की जा रही है। स्वरोच्चारण में भ्रम होने से बहुत बड़ा अनिष्ट होता है, और अभीष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं होती है। अतः पाठ के-लिये यह भी एक नियम है कि यथार्थ स्वर का भी उच्चारण किया जाय।

(२२) अदुष्ट वर्णः— कुछ ऐसे वर्ण हैं, जिनके उच्चारण प्रायः समान होते हैं, और कभी-कभी एक के स्थान पर अन्य का उच्चारण थोडी सी अनवधानता से हो जाता है। आचार्यों का अनुशासन है कि ऐसा होना बहुत बडा दोष है, क्योंकि इससे विवक्षितअर्थ का बोध नहीं होता। इसका कारण कुछ अंश तक शारीरिक है, क्योंकि जिस वर्ण का उच्चारण तत्सदृश वर्ण के उच्चारण की अपेक्षा सहज है, उसका उच्चारण इष्टवर्ण के स्थान से प्रायः हो ही जाता है। अनुभव से कहा जा सकता है कि 'ल' की अपेक्षा 'र' का उच्चारण कुछ कठिन है अतः अविद्वान् व्यक्ति अनवधान से र के स्थान पर 'ल' का उच्चारण करता है और वैदिक वाङमय में इसका प्रसिद्ध उदाहरण है[2]। यह वर्णदोष अशक्तिज है, और इसीलिये इसका प्रयोग अभ्यास से निवारणीय है।

इन नियमों को देखने से पता चलता है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष की प्रजा शब्दव्यवहार में कितनी सावधानता रखती थी। मनु ने कहा है कि शब्दव्यवहार में किसी प्रकार की कमी होना चोरी के समान है (वाच्यार्थाः निहिताः सर्वे वाङमूला, वाग्विनिसृताः तस्माद् यस्तेनयेद् वाचं स सर्वस्तेयकृन् नरः) और इसीलिये आचार्य-गण बार-बार कहते हैं कि विचारपूर्वक आलस्यादि दोष से शून्य होकर शब्दों का उच्चारण करना चाहिए, क्योंकि शब्द जब तक सुप्रयुक्त नहीं होगा, तब तक शब्द प्रयोग का उद्देश्य कुछ न कुछ व्याहत होगा ही। आजकल शब्दोच्चारण में उछृंखलता बहुलमात्रा में दीख पड़ती है, पर हम आशा करते हैं कि सम्यक् उच्चारण का प्रयोजन कर लोग उसके अनुशीलन के लिये यथाशक्ति यत्नवान् होंगे।

---

(१) उदात्त आदि स्वरों का प्रयोग वेद की तरह लौकिक-संस्कृत में भी समान रूप से होता था, जिसका निरूपण मैंने अन्यत्र किया है।

(२) वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ में कहा गया है कि असुर लोग 'र' के स्थान पर 'ल' का उच्चारण कर पराजित हुए थे (शतपथ ब्राह्मण ३ । २ । १ । २३) आचार्य पतञ्जलि ने महाभाष्य में अनुरूप मत दिखाया है (पस्पशाह्निक)।

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य

श्री महेश प्रसाद सिन्हा

भारतीय साहित्य में कथा या आख्यायिका का एक विशिष्ट स्थान है। यहां सनातन काल से विषय को समझाने के लिए दृष्टांतों का आश्रय लेने की परिपाटी चली आ रही है। वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र पाये जाते हैं जिनके अर्थ के विषय में लोगों का मत है कि वे किसी आख्यायिका की ओर संकेत करते हैं। वे आख्यायिकाएँ बहुधा देव, ऋषि-मुनी या प्राकृतिक दृश्यों के विषय में हुआ करतीं। यह भी कहा जाता है कि पुराणों और उपनिषदों में वर्णित उपाख्यानों का आधार वे वैदिक उपाख्यान ही हैं। प्राकृतिक दृश्यों का एक ऐतिहासिक कथा का रूप में भी वर्णन पाया जाता है। उपनिषदों में गहन दार्शनिक तत्व समझाने के लिए भी आख्यानों का उपयोग किया गया है; जैसे शुनःशेप की कथा, श्वेतकेतु का चरित अथवा नचिकेता उपाख्यान। इसी तरह पुराणों में नीति, धर्म, न्याय समझाने के लिए दृष्टान्तों, कथा-कहानियों की भरमार है। यही हाल रामायण, महाभारत का है। बौद्ध—जैन साहित्य ने भी इसी पद्धति का अनुगमन किया है। विषय को सरल तथा जन-रुचि के अनुकूल बनाने के लिए बौद्ध दार्शनिक साहित्य में इनका प्रचुर उपयोग किया गया है। जातक कथामाला बौद्ध-साहित्य का एक प्रमुख ग्रन्थ है जिसमें बुद्धदेव के अनेक जन्मों की कथा वर्णित है। इस मिस उसमें नीति, धर्म का उपदेश भराहुआ है। बौद्धकथा-साहित्य पर महाभारत की छाप पड़ी है।

भारतीय कथा-साहित्य, विषय और उद्देश्य की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है—उपदेशपरक और विनोदपरक

उपदेशपरक कथाओं का उद्देश्य है धर्मनीति सम्बन्धी उपदेश। भिन्न-भिन्न जीवों को पात्र बना कर कल्पित कहानियों द्वारा जनता को बुद्धिमान बनाने की यह रीति सभी देशों में मानी गयी है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे स्वीकार किया है कि किसी बात को एक मनोरंजक कहानी के रूप में कहने से श्रोता पर उसका शीघ्र और स्थायी प्रभाव पड़ता है। दूसरे देशों के साहित्य ने भी इस पद्धति को अपनाया है, यद्यपि भारतीय कथा-साहित्य की तुलना में वे अर्वाचीन हैं। पशु-पक्षी के भूत-प्रेतादि भी कहानियों के पात्र बनाये जाते हैं जिससे श्रोता की उत्सुकता और कहानी की मनोरंजकता की वृद्धि होती है।

विनोदपरक कहानियों का मुख्य उद्देश्य यद्यपि मनोरंजन है, परन्तु विनोद के भीतर भी शिक्षा गौण रूप से रहती ही है। शिक्षारहित विनोदपरक कथा भारतीय साहित्य में अत्यल्प मिलेगी। उपदेशपरक कथाओं में पंचतन्त्र और हितोपदेश मुख्य हैं। इनमें बड़ी बुद्धिमानी के साथ पशु-पक्षियों के मुख से उपदेश सुनाये गये हैं। मानव जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब मनुष्य को परस्पर विरोधी नीतियों का सामना करना पड़ता है। वैसे अवसर पर किस मार्ग को पकड़ना चाहिये, इसका विवेचन उनमें बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया गया है। साथ ही कथानक की बनावट और घटनाओं की सजावट प्रशंसनीय हैं। विनोदपरक कथाओं में बड्डुकथा (वृहत्कथा) और कथासरित सागर प्रमुख हैं। दोनों ग्रन्थ यथा नाम तथा गुण—वस्तुतः कथाओं के भाण्डार हैं। पीछे के लेखकों ने उनसे काफी सहायता ली है। उनमें विनोद के साथ-साथ शिक्षा का भी सामञ्जस्य है। इस ढङ्ग के कितने ग्रन्थ थे जो आज उपलब्ध भी नहीं हैं।

प्राचीन काल में काव्य और कथा दोनों तरह के साहित्यों का विकास साथ-साथ होता आया है, दोनों साथ-साथ चलते प्रतीत होते हैं। जब संस्कृत-काव्य की प्रगति मन्द हो गयी तब कथा का निर्माण भी रुका-सा लगता है। सामग्री का भी उत्तरोत्तर अभाव होता गया है। कथा साहित्य के कितने ग्रन्थ तो आज उपलब्ध भी नहीं हैं; और जो उपलब्ध भी हैं उनमें से थोड़े का ही पूरा परिचय प्राप्त है। अभी तक विद्वानों की खोज परिणामस्वरूप जो कुछ ग्रन्थ प्रकाश में आ सके हैं उनका संक्षिप्त परिचय इस लेख में देने की चेष्टा की गयी है।

ललित विस्तरः— कथा साहित्य का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ ललित विस्तर नामक बौद्ध ग्रन्थ है। इसका

समय अनुमान वि० पू. १३ निश्चित् किया गया है। छः हजार श्लोकों का यह सचमुच एक ललित ग्रन्थ है। विषय बौद्ध धर्म सम्बन्धी है। यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाला है। इसमें बुद्ध का जीवन-चरित जन्मकाल से बुद्धत्वप्राप्ति तक वर्णनात्मक शैली से दिया गया है। यह त्रिपिटकों का अन्तिम भाग माना जाता है इसमें गद्य, पद्य दोनों है; पद्य प्रायः गाथा छन्द में हैं। बुद्ध के सम्बन्ध की अनेक रोचक कथाओं का वर्णन इसमें है। अश्वघोष (२ य शतक) का बुद्ध चरित इसी के आधार पर लिखा गया है।

बृहत्कथा—'बड्डुकथा' नामक इस पैशाची भाषा के ग्रन्थ को गुणाढ्य ने सम्भवतः १५६ वि० में लिखा। वह सातवाहन राज्य के दरबारी कवि थे। इस बारे में किम्वदन्ती है कि गुणाढ्य ने पहले सात लाख श्लोक बनाये थे, पर राजा को सुनाने लगे तो पैशाची भाषा में लिखा होने के कारण ग्रन्थ और ग्रन्थकर्त्ता का तिरस्कार किया गया। इससे क्षुब्ध होकर गुणाढ्य ने जंगल में जाकर रचना को जलाना शुरु किया। अन्त में लोगों ने किसी तरह एक लाख श्लोकों को जलने से बचाया। सम्प्रति वह शेषांश भी अप्राप्य है। उसके आधार पर लिखे गये अन्य ग्रन्थों में उसका उल्लेख होने से उस पर कुछ प्रकाश पड़ता है। वे ग्रन्थ बृहत्कथा-मंजरी कथा सरितसागर, हर चरित चिन्तामणि आदि हैं। कथा सरितसागर में गुणाढ्य को कात्यायन का समकालीन माना गया है। इस मत से उनका समय वि० पू० २५२ हो जाता है।

पंचतन्त्र—कथा-साहित्य के इस सर्व प्रसिद्ध ग्रन्थ के विषय में कुछ भी निश्चित् ज्ञात नहीं है। यह वि० पू० द्वितीय शतक में दक्षिण भारत में लिखा गया माना जाता है, क्योंकि ग्रन्थ में दक्षिण भारत में पाये जाने वाले पदार्थों का अधिक उल्लेख है। पर यह मानने का कोई पुष्ट आधार नहीं है। दूसरे मत से हितोपदेश में उल्लिखित विष्णु शर्मा ही पंचतन्त्र के रचयिता हैं।

ग्रन्थ का परिचय चाहे जो हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि पंचतंत्र विश्व भर के कथा-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसकी रचना-प्रणाली, वर्णन-शैली आदि अत्युत्तम है। शायद ही ऐसी कोई भाषा होगी जिस पर पंचतंत्र की छाप न पड़ी हो। यूरोप तक इसकी धूम है। इसकी इतनी ख्याति का कारण यही है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णय कराने वाला इससे बढ़ कर कथा-साहित्य और कहीं कोई नहीं है। कथा गद्य में है पर नीति अर्थात् उपदेश के वाक्य श्लोक में दिये गये हैं। प्राचीन धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र कामशास्त्र के उद्धरण उसमें भरे पड़े हैं, जिससे ज्ञात होता है कि अनेक ग्रन्थों के अनुशीलन के पश्चात् कवि ने उसे लिखा होगा।

उसमें पांच कथाएँ हैं—मित्रभेद, मित्रप्राप्ति, काकोलुकीय, लब्ध प्रणाश और अपरीक्षित कारक। प्रत्येक भाग एक दूसरे से सम्बद्ध और नीति उपदेश से ओत-प्रोत है। भारत के बाहर इसका प्रचार सातवी सदी वि० में होना प्रारम्भ हुआ, जब ईरानी सम्राट् खुशरु ने इसका अनुवाद करवाया। वह अनुवाद अप्राप्य है, पर उस अनुवाद का अरबी अनुवाद मिलता है जिससे ईरानी अनुवाद का पता लगता है। पंचतंत्र ने पश्चिमी एशिया और पूर्वीय यूरोप को किस तरह प्रभावित किया है, इस पर अरबी साहित्य के एक विद्वान् लिखते हैं—'संस्कृत की एक पुस्तक, जिसकी विशेष प्रसिद्धि अरब फारस में हुई, कलेला-दमना है। [पंचतंत्र की एक कथा में पात्र कलरव और दमनक नामक दो बैल हैं, इसी पर ग्रन्थ का नाम कलेला-दमना पड़ गया।] हिजरी के द्वितीय शतक (वि० ८ वीं सदी) में फारस से अरब पहुँचा। वहां इसकी इतनी प्रसिद्धि हुई और बादशाहों, अमीरों ने इतना पसन्द किया कि इसके अनेक अनुवाद अरबी से फारसी, फारसी से अरबी, गद्य से पद्य, पुनः पद्य से गद्य में हुए। कवि, लेखक, कलाकार, अपनी रचना-चातुरी, कला-प्रदर्शन पर पुरस्कार पाते रहे। अरबी के एक कवि अव्वान को इसके अनुवाद पर खलीफा हारूंरशीद ने एक लख दरहमका पुरस्कार दिया था। अरब से सीरिया होते हुए यूरोप के देशों में इस ग्रन्थ का प्रवेश हुआ। आज एशिया, यूरोप, अफ्रिका की ऐसी कोई भाषा नहीं जिसमें इसका अनुवाद नहीं हुआ हो। (अरब-भारत सम्बन्ध, पृ० १३४-६)

हितोपदेशः— इस ग्रन्थ का परिचय भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, अनेक मत स्थिर किये गये हैं। कुछ विद्वान् इसके प्रधान पात्र विष्णु शर्मा को ही इसका रचयिता बताते

हैं, पञ्चतन्त्र से उनका सरोकार नहीं। फिर बंगाल का कोई नारायण नामक लेखक (१० वीं सदी) भी इसका रचयिता माना जाता है। जो कुछ हो इस ग्रन्थ का कर्त्ता शैव होगा, क्योंकि ग्रन्थ के प्रारम्भ में धूर्जटि (शिव) की वन्दना की गयी है।

इसके चार भेद हैं—मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह और सन्धि। इसमें तीसरा और चौथा भेद पंचतंत्र की काकोलुकीय कथा से लिये गये हैं। इस ग्रन्थ का विषय, वर्णन-शैली, कथा विस्तार, पात्रों का चुनाव, उपदेश, नीति सभी बातें पंचतंत्र जैसी हैं। राजकुमारों को समझाने के व्याज से राजनीति के चार नियम— साम, दाम, दण्ड, भेद, कूट-नीति, नित्यव्यवहार के आचार-विचार बड़ी सुन्दरता से समझाये गये हैं। कथा गद्य में और नीति-वाक्य पद्य में है। इसका भी अनुवाद अनेक भाषाओं में प्राप्त है।

कादम्बरी— कथा-साहित्य का यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सारे ग्रन्थ में एक ही कथानक है, जैसा आजकल उपन्यास में होता है। अलग-अलग कथाएँ नहीं होते हुए भी नीति और उपदेश का काफी सामञ्जस्य है। राज-नीति, समाज नीति, व्यवहार नीति और समाजोपयोगी विषयों का विवेचन अच्छे ढङ्ग से किया गया है जिससे कवि की योग्यता का परिचय मिलता है। भाषा यत्र-तत्र क्लिष्ट हो गयी है। कोई-कोई इसमें एक दोष पाते हैं कि वर्णन के अतिरेक से कथानक की सरलता बिगड़ गयी है। यह दोष किसी अंश में यथार्थ है सही, पर नीति और मनोरञ्जन का समन्वय अच्छी तरह निबाहा गया है। कथानक का नायक राजकुमार चन्द्रापीड है और नायिका कादम्बरी। ग्रन्थ से तत्कालिक देश-दशा पर भी प्रकाश पड़ता है। विदिशा नगरी का वर्णन, महाराज तारापीड़ का अभिषेक, राजमन्त्री शुकनाश का राजकुमार को उपदेश आदि हृदय ग्राही हैं।

इसके रचयिता वाणभट्ट सम्राट् हर्षवर्द्धन (बि० ६६३-७०५) के राज-कवि थे और समय ७०० वि० के लगभग हो सकता है। कहा जाता है कि वाणभट्ट ने ग्रन्थ का पूर्व भाग ही बनाया था, उत्तर भाग को उनके पुत्र भूषणभट्ट ने पूरा किया।

दशकुमार चरित— इसमें दस राजकुमारों की कथाएँ हैं। ग्रन्थ गद्य-पद्यमय है। पद्य प्रायः अनुष्टुप छन्द में है। सम्प्रति इसके पाँच परिच्छेद ही उपलब्ध हैं। प्रारम्भ के अध्याय में कितने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख है। इसके रचयिता दण्डी दक्षिण निवासी थे और समय सप्तमशतक सिद्ध होता है। इस ग्रन्थ के ही लालित्य पर ही "दण्डिनः पदलालित्यम्" प्रसिद्ध है।

उदयसुन्दरी कथा— इसके रचयिता सोड्ढल ने अपने विषय में (१०८३-११०७ वि०) स्वयं लिखा है कि वह गुजरात से दक्षिण नर्मदातट पर निवास करते थे और शैव-कायस्थ थे। कोंकण नरेश के राज पंडित, बाद में लाट देश में राज कवि रहे। ग्रन्थ में ८ उच्छ्वास हैं। पूर्ववर्ती कवियों का परिचय भी है। कथा का नायक प्रतिष्ठानगर का नरेश मलयवाहन और नायिका नागलोक के अधिपति शिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी है। इसमें कादम्बरी के ढङ्ग पर लिखने का प्रयास है, पर नीति और उपदेश का अपेक्षाकृत कम सामञ्जस्य होने से सफलता कम मिल सकी है।

वृहत्कथा मंजरी— यह ग्रन्थ गुणाढ्य की वृहत्कथा का संक्षेप है, जिसे क्षेमेन्द्र (वि ११००) नामक किसी कवि ने लिखा है। ग्रन्थ परिचय में उन्होंने खुद बताया है कि वृहत्कथा पैशाची भाषा में होने के कारण लोग पिशाचबाधा के भय से उसे नहीं पढ़ते थे, अतएव इसे संस्कृत में बनाने की आवश्यकता हुई। "इसमें कायस्थों और मुसलमानों की निन्दा है।"

कथा सरित्सागर— इसके रचयिता सोमदेव काश्मीर निवासी पंडित हैं। इस ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है कि क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा मंजरी के संक्षिप्ताकार को देख कर तथा मूल वृहत्कथा के लुप्त हो जाने की दशा में राज अनन्त देव की विदुषी रानी सूर्यमती ने सोमदेव भट्ट को एक विस्तृत ग्रन्थ लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। अतएव इसका समय मंजरी के बाद ही सम्भव है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में शिव की स्तुति की गयी है।

यह ग्रन्थ वस्तुतः कथाओं का सागर है। इसमें १८ लम्बक और १२४ तरंग हैं। अनुष्टुप छन्द का प्रयोग है।

बीस सहस्र से अधिक श्लोक हैं। इसका आधार भी वृहत्कथा है, किंतु उससे अधिक मनोरञ्जक है। इससे काश्मीर की तत्कालीन दशा का भी परिचय प्राप्त होता है। इससे यह भी पता लगता है कि वृहत्कथा के ही आधार पर प्रियदर्शिका, पंचतन्त्र, कादम्बरी मालती-माधव, मुद्राराक्षस, बेतालपंचविंशति आदि की रचना हुई है।

शुकसप्तति— यह ग्रन्थ किसी जैन कवि का रचा हुआ है और समय १२ वीं सदी है। भाषा संस्कृत प्राकृत मिश्रित है। सारा ग्रन्थ पद्य में है। इसमें एक तोते द्वारा कहानियाँ कहायी गयी है। सत्तर कहानियों का संग्रह होने से ग्रन्थ का ऐसा नाम पड़ा है। कथानक इस प्रकार है कि एक स्त्री जिसका पति परदेश में है, अन्य किसी पुरुष के साथ निकल भागने को प्रस्तुत है। इस विषय में वह सुग्गे से सलाह पूछती हैं। तोता उसे उन कहानियों को सुना कर वैसा कार्य करने से रोकता है। फलतः वह जाने से रुक जाती है। इस ग्रन्थ के आधार पर गुजरात के जैन कवि पूर्णचन्द्र की तंत्राख्यायिका नामक एक विनोंद पूर्ण पुस्तक है।

बेतालपंच विंशति— वृहत्कथा तथा कथा सरितसागर के आधार पर रचा गया यह भी एक गद्य-पद्यमय ग्रन्थ है। इसमें एक अद्भुत बात यह है कि इस कथा का प्रमुख पात्र एक बेताल है। इस पुस्तक के विषय में अधिक परिचय नहीं मिलता, किंतु इसका रचयिता शिवदास नामक एक गुजराती कवि माना जाता है। १३ वीं सदी के लगभग इसका समय सम्भव है। ग्रन्थ में मनोरंजन पूर्ण तथा विचित्र वर्णन है। नीति उपदेश जन्य विद्वत्ता का अभाव है। आजकल इस नाम से एक से अधिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

इसके कथानक में धारनरेश राजा विक्रम को प्रधान पात्र बनाया गया है जिन्हें एक सन्यासी ने एक वृक्ष से लटकते हुए एक मुर्दे को लाने का आदेश दिया था राजा उसे अपनी पीठ पर लाद कर आ रहे थे कि उस शव में स्थित बेताल ने उनसे कथा कहना शुरु किया। शर्त यह थी कि कथा समाप्त होने पर वह बेताल राजा से कथा सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछेगा। यदि राजा ठीक उत्तर देदेगें तो बेताल पुनः पेड़ पर जा लटकेगा। राजा ने इस तरह २५ कथाओं को सुन कर अन्त में पूछे गये प्रश्नों का ठीक उत्तर दे दिया और प्रत्येक बार बेताल पेड़ पर लटकता गया। २५ वीं बार वह उत्तर नहीं दे सके।

कथा अद्भुत एवं मनोरञ्जक है। इसका हिन्दी अनुवाद 'बेताल पच्चीसी' के नाम से प्रसिद्ध है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका— इसका नाम द्वात्रिंशत् पुत्तलिका भी है। नाम के अतिरिक्त इसके विषय में और कुछ परिचय उपलब्ध नहीं होता। यह बेताल पंचविंशति के पीछे का ग्रन्थ है। इसके नायक भी राजा विक्रम है। कहा जाता है कि उनके सिंहासन में बत्तीस पुतलियाँ थी जो मनुष्यों के समान बोला करती थीं उन के द्वारा ३२ कथाएँ कही गयी हैं, जो रोचक और मनोरञ्जक भी हैं।

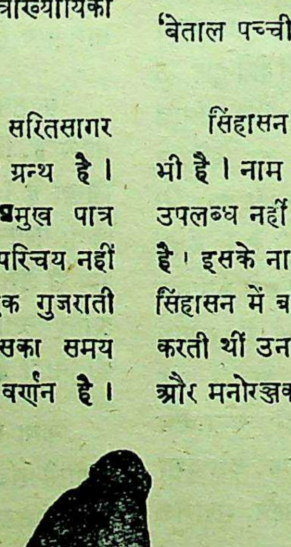

प्राचीन 'अवन्तिजा' और आज की मालवी।

श्री श्याम परमार एम० ए०, एल० टी०

भारतीय लोकगीतों का अध्ययन करने वाले बुद्धिजीवी को राहुलजी के निम्न लिखित विचारों से सहमत होना पड़ता है, जो उन्होंने अपभ्रंश भाषाओं के विषय में प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने जिन महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान दिलाया है, उनमें मुख्य हैं:-

१ 'इसका (अपभ्रंश) दूसरा नाम देशी भाषा भी है।'

२ 'सिद्ध-सामन्त युग की भाषा (७६०-१३००ई०) और आज की भाषा में काफी अन्तर है। तो भी हम बतलायेंगे कि मूलतः वह भाषा और आज की भाषा एक है।'

३ 'वह उससे भी कहीं अधिक हिन्दी भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाड़ी, मालवी, (भोजपुरी) और मैथिली।'

४ 'उस वक्त उत्तर भारत की सारी भाषाएँ एक दूसरे के बहुत नजदीक थीं। प्रान्तीय भाषाएँ उस वक्त काफी थीं।'

उक्त बातों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि वर्तमान प्रान्तीय भाषाएँ यद्यपि सिद्ध-सामन्त युग की, जैसा कि राहुलजी कहते हैं, भाषाओं से भिन्न अवश्य हैं, तथापि उनका और आज की भाषाओं में मूलतः एक अन्तर-निहित सम्बन्ध है। 'प्राकृत चंद्रिका' 'प्राकृतसर्वस्व' और 'कुवलय-माला' में दी गई प्रान्तीय भाषाओं की अनुसूची इस दृष्टि से अपभ्रंश भाषाओं की ही सूची है। क्योंकि अपभ्रंश कोई एक भाषा नहीं थी। विभिन्न प्रान्तों में जो भाषाएँ बोली जाती थीं वे देशीभाषाएँ ही मानी गई और देशी भाषाएँ अपभ्रंश से भिन्न नहीं हैं।

इन्हीं सब बातों के प्रकाश में यहाँ हम अवन्ती भाषा के विषय में विचार करेंगे। महाभारत के अनुसार हिन्दी प्रदेश की भाषाओं में कुरू, पांचाल, शूरसेन, मत्स्य, दक्षिण कोसल, चेदि आदि जनपदों की बोलियों के अतिरिक्त अवन्ती जनपद की अपनी भाषा 'अवन्ती' थी। 'प्राकृत चन्द्रिक[illegible] में इसे 'मालवी' कहा गया। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लि[illegible] है—"मालवी सम्पूर्ण इन्दौर राज्य, ग्वालियर रा[illegible]क्षिण भाग तथा मध्य प्रान्त के नीसर और बैत[illegible] में बोली जाती है। यही प्रदेश अवंती कहल[illegible] बाद को यह मालवा कहलाने लगा।"[1] रा[illegible]क कथनानुसार बोल चाल की भाषाओं के होते हुए भी सब की एक सम्मिलित भाषा थी। बोल-चाल की भाषा में साहित्य था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।[2], तथापि सिद्धों की रचनाओं का जब अनुशीलन किया जाता है तो उनमें आये सैंकड़ों प्रान्तीय शब्द इस बात को पुष्ट करते हैं कि सिद्धों ने अपनी मातृभाषा में ही रचनाएँ लिखीं। काल के इतने बड़े अन्तर से अवश्य ही आज की भाषा उनकी भाषा से भिन्न होगई होगी। लोकगीतों में सिद्धों की वाणी के विकृत सूत्र इस बात को अधिक अच्छी तरह से प्रमाणित करते हैं कि उनका सीधा सम्बन्ध जनता की मनोवृत्ति को अपनी ओर उन्मुख करने के हेतु उन्हीं के (जनता के) अभिव्यक्ति के साधनों को अपनाने के लिए था। चूँकि १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में आधुनिक प्रान्तीय भाषाएँ अपभ्रंश से अलग होने लगती हैं, अतः लिखित प्रमाणों की कमी के कारण यह कदाचित् एकदम

---

[१] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा; विचार धारा, पृष्ठ ६८।

[२] "बोल-चाल की भाषाओं में लिखित साहित्य था या नहीं, इसके बारे में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। सम्भव है, इन कविताओं को (सिद्धों की कविताएँ) जिस रूप में हम पेश कर रहे हैं, उनमें बहुत कुछ शताब्दियों के लेखकों पाठकों का हाथ हो।"— राहुलजी, 'हिन्दी काव्य-धारा' पृष्ठ ८।

स्वीकार नहीं किया जा सकता। पर जनता में प्रचलित, वर्षों से सुरक्षित साहित्य की सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता है, और इसीलिए एक बन्धी हुई धारणा के खिलाफ जाने का नम्र दुस्साहस करना पड़ता है।

मालवी को ही लिया जाये। आज जिस रूप में यह भाषा प्रचलित है, अवश्य ही वह ७ वीं शताब्दी के बाद की सदियों में इस रूप में न होगी। यद्यपि राजनीतिक, सामाजिक और विभिन्न परिस्थितियों के कारण इसे 'भाषा' से 'बोली' के स्थान पर प्रतिष्ठित किया एवं इसका केन्द्र भी अवन्ती से हटकर कहीं और घोषित किया गया, तथापि उसकी शक्ति और व्यापकता निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट प्रगट होती है।

सिद्ध कवियों की कुछ पंक्तियों में मालवी शब्दों के रूप देखिए:—

'एकेलि सवरी ए वण हिंडइ कर्ण कुण्डल वज्रधारी'[१]
(एकली, मालवी रूप)
'सवर भुजंग नैरामणि दारी, पेक्ख राति पोहाइली'[२]
'जोव्वणत्थ जा नच्चई दारी, सा लग्गई सावयह विचारी'[३]
(दारी का अर्थ है गणिका अथवा दारिका। ×
मालवी में यही शब्द किसी स्त्री को अपशब्द
बोलते समय प्रयुक्त किया जाता है।)
'वेटा-बेटी परिणाविज्जहिं, तेवि समाण धम्म-धरि
दिज्जहिं'[४]
[परिणाविज्जहिं (परनावीजै); विवाह के
लिए परनाना सर्व प्रचलित है। दीजे (दिज्जहिं,
-मालवी का क्रियापद है।)
'हिअड़ा फुट्टि तड़त्ति करि, काल क्खेवें काइं'[५]
(हियड़ा, तड़कना)।

इस प्रकार लड्डुव (लड्डू), लोण(लूण), सक्कर, पप्पड़ (पापड़) बापुड़ी (बापड़ी), महारो (म्हारी) पुत्थी (पोथी), गमारि (गमारने) डूँगर (डूगरा), आदि कितने ही मालवी भाषा के शब्द सिद्धों और जैन कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि, इनकी कविताएँ अपने समय की प्रान्तीय भाषाओं में लिखी गई थीं। फिर सदियों बाद उनकी प्रतिलिपि की जाने से मूल रूपों में कई प्रकार का अन्तर भी आ गया। वैसे यह बात स्वीकार की जाने योग्य है कि उस समय की प्रान्तीय भाषाएँ एक दूसरे के बहुत नजदीक थीं; जिससे साफ तौर से यह तात्पर्य हम निकाल सकते हैं कि कई भाषाओं के नैकट्य के कारण मालवी के शब्द दूसरी भाषा में गये या दूसरी भाषा के शब्द मालवी में आये हैं।

और पीछे जायें तो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी 'अवन्तिजा' का उल्लेख है[१], जिसे उन्होंने 'धूर्तों' की भाषा कहा है यद्यपि उनका तात्पर्य राजवर्ग (सामन्तवर्ग) से है। × पृथ्वीधर ने भी इसी अर्थ में इस शब्द को लिया है। उसके पात्र वीरक और चंदक अवन्ति भाषा का प्रयोग करते हैं जो क्रमशः सेनापति और दलपति हैं[२]। ऐसे वर्ग को धूर्त कह कर वस्तुतः एक ओर भरतमुनि ने साहस काम किया है तो दूसरी ओर इस बात का संकेत भी व्यक्त किया कि 'अवन्ति-भाषा' को उन दिनों साधारण जनता ही नहीं बोलती थी बल्कि राजवर्ग भी उसे बोलने में गौरव अनुभव करता था। इसमें किसी प्रकार की सम्भावना को स्थान नहीं है। स्पष्ट है कि अवन्ती-भाषा में ऐसे अनुकूल परिस्थितियों में साहित्य लिखा गया होगा।

[१-२]—हिन्दी काव्य-धारा, पृष्ठ—२०।
[३-४] ,, ,, ३५४
[५] ,, ,, ३६६

× मालवी में स्त्रियों में परस्पर प्रयुक्त होने वाला 'दारी' शब्द 'सखी' सहचरी के रूप में ही है। दारिका के विषय में देखिए—'राजा भट्टारको देवः तत्सुता भर्तृ दारिका' कोष।
—सम्पादक

[१] 'प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानामप्यवन्तिजा'

[२] अवन्ति भाषा पठकौ वीर चंदनकौ प्राच्य भाषा पाठको विदुषकः'

× धूर्तों से आशय 'डिप्लोमेंट' से है। मालवी भाषा राजनीति में प्रयुक्त होती थी, इससे उसकी शक्ति का पता चलता है।
—संपादक

अबन्ती-भाषा क्रमशः अपना महत्व खोती गई, किन्तु सदियों बाद जो भाषा आई (अपभ्रंश) वह अबन्ती भाषा के शब्दों से पोषित होकर ही सभ्य हो सकी। राजशेखर की प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है। कि 'भूत-भाषा' ने 'अवन्तिजा' को पीछे कर दिया। यह 'भूत-भाषा' अपभ्रंश का ही एक रूप हो सकती है I।

'कुवलय माला' अनुसूची का उल्लेख इस लेख में पहले किया गया है। उसमें दी गई निम्न गाथा 'मालवी' सम्बन्धी हमारे विचारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

'तणु साम मराह दे हे
कावणाए माण–जीविनो रोद्धो
भाउअ भाइणी तुम्हे
मणतोअ मालवीयान दृष्टवान्'

'अवन्तिजा' कब 'मालवी' बनी एवं अवन्ती जनपद कब से मालवा कहा जाने लगा, दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

'अबन्तिजा' आगे आने वाली अपभ्रंश द्वारा अपदस्थ की गई यह कहना इसलिए उचित नहीं प्रतीत होता कि इसके द्वारा हम परिवर्तन के नियम में एक प्रकार से विश्वास नहीं करते। "असल में अपभ्रंश लोक में प्रचलित भाषा का नाम है जो नाना काल और नाना स्थान में नाना रूप में बोली जाती थी और बोली जाती है। शुरू-शुरू में इसको आभीरों की भाषा जरूर माना जाता था, पर बाद में चल कर यह लोक भाषा का नामान्तर हो गया [1]।" और आगे चल कर पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी "लोक भाषा का साहित्य हमेशा वर्तमान था, इस बात में कभी दो मत नहीं रहे"[2] कहकर ,हमें यह सोचने के लिए बाध्य करते हैं कि 'अवन्ती भाषा' में जो साहित्य रहा है, वह यद्यपि काल-ग्रसित हो गया पर, जब कि 'अवन्तिजा' से प्रभावित अपभ्रंश को श्रेष्ठ भाषा का गौरव मिलता है तो इसमें लिखित साहित्य, जिसका कुछ अंश आज उपलब्ध है, में मिलने वाले आज के 'मालवी' शब्द सीधे तत्कालीन मालवी (अवन्तिजा) के ही शब्द हैं। अतः यदि क्रमिक-विकास का अध्ययन किया जाये तो प्रान्तीय भाषाओं की ऐसी कई गुत्थियाँ इस प्रकार सुलझाई जा सकती हैं।

सिद्धों के साहित्य में प्रयुक्त कई शब्दों का सिलसिला संत काव्य की श्रेणी से होता हुआ आज भी लोक-साहित्य में मिलता है। नीचे हम सन्त-काव्य और प्रचलित लोक-गीतों से कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर लेख समाप्त करते हैं।

(१)

अवधू सो जोगी गुरू मेरा, जो या पद को करै निवैरो
तरूवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिना फूल फल लागा।
साखा पत्र कछु नाहि वाकै, अष्ठ गगन मुख वागा।
—कबीरदासजी

बिना पेड़ एक दरख़्त ठाढ़ा, छाया नजर नहीं आवेरे
पान फूल तो दिसे नहीं, बास गगन चढ़ जावे रे...
(मालवी गीत की पंक्तियाँ)

(२)

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तो या नहीं तारा।
तब हरि हरि के जन होते, कहे कबीर बिचारा ॥
—कबीरदासजी

धरी–आसमान सुन बिच नहीं था
तभी आपण दुई कुण था ?
बिरमा नहीं था, बिसनू नहीं था
तऊ हरि-जन कुण था !
—(लोकगीत की पंक्तियाँ)

I 'भूत भाषा' से मतलब है– सरस भाषा (जनभाषा) 'सरस वचनं भूत वचनम्'– राजशेखर तथा भूतभाषा के कवियों को राज दरबार में प्रथम स्थान मिलता था, 'अथातो भूत भाषा कवयः'–राजशेखर —संपादक

[१-२] पं. ह. प्र. द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ–१७, १८, १९

कनिंघम का मालव-भूगोल

महेश्वरपुर

चीनी-यात्री जजहोती से ६०० ली या १५० मील उत्तर मो·ही शी-फा·लो·पु·लो या महेश्वरपुर की ओर चला, जहाँ का राजा एक ब्राह्मण ही था। 'उत्तर दिशा' चूँकि हम लोगों को कन्नोज के आसपास ले जाती है, अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि स्यात् पते में कुछ ग़लती है। इसलिये मैं यह निश्चय करता हूं कि ६०० ली (या १५० मील) दक्षिण दिशा की ओर पढ़ा जाय, जिस स्थान पर मान्डल का प्राचीन शहर अवस्थित है, जो कि महिष्मतीपुर* भी कहलाता था। ऊपरी नर्मदा के देश की यह वास्तविक राजधानी था जोकि बाद में जब्बलपुर से ६ मील दूर त्रिपुरी या तेवार से पूरक किया गया। महावंसो के अनुसार यह नाम प्राचीन है, और थेरो महादेव २४० बी. सी. में अशोक के समय महेश मान्डल भेजा गया था। ‡ कहा जाता है कि इस देश की उपज उज्जैन की उपज से मिलती थी, जो एक प्रमाण है कि महेश्वर जजहोती से उत्तर कहीं भी नहीं हो सकता था, क्योंकि ग्वालियर और गंगादुआव के आसपास की हल्के रंग की ज़मीन उज्जैन के आस-पास की काली मिट्टी से सर्वथा भिन्न है। इन कारणों से ऊपरी नर्मदा के तटवर्ती महीष्मतीपुरी को हुएनत्संग के महेश्वर पुरा के नाम से पहचानने के पक्ष में मैं हूँ। राज्य का घेरा ३००० ली या ५०० मील था। इन फैलाओं के आधार पर इसकी सीमा करीब-करीब पश्चिम में दमोह और लीओनी से लेकर पूर्व में नर्बदा की धारा तक निश्चित की जा सकती है।

उज्जैन

हुएनत्संग यू-शे येन-ना, अथवा उज्जयिनी की राजधानी का घेरा ३० ली या ५ मील बतलाता है, जो कि वर्तमान समय की सीमा से थोड़ी ही कम है। राज्य का घेरा ६००० ली या १००० मील था। पश्चिम की ओर मालव के राज्य से घिरा हुआ था; जिसकी राजधानी धार नगर, या धारा थी, जो उज्जैन से ५० मील के अन्दर थी। इसलिये उज्जैन का राज्य-पश्चिम में चम्बल नदी से आगे नहीं बढ़ पाया होगा, लेकिन उत्तर में इसकी सीमा मथुरा और जजहोती राज्य तक थी, पूर्व में महेश्वरपुरा, और दक्षिण में नर्बदा और ताप्ती नदी के मध्य का सतपुड़ा पहाड़। इन सीमाओं के अन्तर्गत याने पश्चिम में रणथम्बोर और बुरहानपुर से पूर्व में दमोह और सीवनी § तक उज्जैन के राज्य की सीमा का घेरा ६०० मील था।

दोनों पड़ौसी राज्य जजहोती और महेश्वरपुरी के समान उज्जैन राज्य एक ब्राह्मण राजा के शासनान्तर्गत था, पर जजहोती का राजा बौद्ध था, जबकि शेष दोनों राज्य के शासक ब्राह्मण थे। पश्चिम की ओर मालव का राजा एक कट्टर-बौद्ध था। लेकिन हुएनत्संग का मो-ला-पो (या मालवा) प्राचीन प्रदेश के अर्द्ध-पश्चिम भागों तक ही सीमित था, जब कि पूर्वी आधा भाग उज्जैन का ब्राह्मण-राज्य था, चूकि प्रान्त का राजकीय विभाजन धार्मिक विभाजन से समता रखता है, इसलिये आसानी से यह अर्थ लगाया जा सकता है कि विभाजन धार्मिक मतभेदों के ही फलस्वरूप हुआ होगा। और पश्चिमी या बौद्ध अर्ध-प्रान्त ने तब तक भी मालवा का प्राचीन नाम कायम रखा, इसलिये मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूं कि ब्राह्मण लोग ही पृथक् वादी थे

---

* स्लीमन, जर्नल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, १८३७ पृष्ठ ६२२।

‡ टर्नर का 'महावंसो', पृष्ठ ७१।

§ जुलियन का 'हुएनत्संग' iii. १६७ देखिये नक्शा नं. १।

और उज्जैन का राज्य मालवा के प्राचीन बौद्ध-राज्य की ब्राह्मणों की बनायी एक नवीन शाखा मात्रा थी। इसी भाँति, मैं विश्वास करता हूं कि महेश्वरपुरा कौशल या बरार के महान् बौद्ध-राज्य की एक ब्राह्मण-शाखा मात्र थी जिसका वर्णन पीछे आवेगा। उज्जैन में कई दर्जन मठ थे लेकिन हुएनत्संग की यात्रा के समय केवल तीन-चार मठ थे, जिनमें प्रायः ३०० साधु रहते थे। देवताओं के अनेकानेक मन्दिर थे और राजा स्वयं ब्राह्मणों के शास्त्रीय ग्रन्थों का पूर्ण पण्डित था।

मालवा

हुएनत्संग ने वर्णन किया है कि मो-ला-पो या मालवा की राजधानी मो-हो या माही नदी के दक्षिण-पूर्व तट पर अवस्थित थी जो भड़ोच* से २००० ली या ३३३ मील उत्तर-पश्चिम था, इस सम्बन्ध में पता और दूरी दोनों गलत हैं क्योंकि भड़ोच से मालवा उत्तर-पूर्व की दिशा में पड़ता है जहाँ से माही नदी का स्रोत केवल १५० मील दूर है। इसलिये मैं १००० ली या १६७ मील उत्तर पूर्व पढ़ूँगा जो प्रायः धार नगर या धार से मिलता-जुलता है जो कि मालवा की प्राचीन-राजधानियों में से एक है। धार का वर्तमान शहर पौन मील लम्बा और आधा मील चौड़ा है याने २½ मील इसका वृत्त है। चूँकि राजधानी शहर से बाहर है। इसलिये वहाँ का सम्पूर्ण घेरा ३½ मील से कम न होगा। प्रान्त की सीमा ६००० ली या १००० मील थी। पश्चिम की ओर मालवा के दो अधीनस्थ राज्य थे। खेदा-जिसकी सीमा ३००० ली या ५०० मील था और आनन्दपुरा-जिसका घेरा २००० ली या ३३३ मील था। इसके अतिरिक्त वदारी नाम का एक स्वतंत्र राज्य था जिसका घेरा ६००० ली या १००० मील था। इन सबों को एक जगह इकट्ठा कर पश्चिम में कच्छ और पूर्व में उज्जैन, उत्तर में गुर्जर और बैराट और बल्लभी एवं महाराष्ट्र दक्षिण का देश कहा जा सकता है जिनमें से सबसे अधिक घेरा १३५० मील का हो सकता है। इसलिये यह सम्भव दीखता है कि अधीनस्थ राज्यों को उस तीर्थ-यात्री ने शासित राज्य की सीमा के अन्दर ही गिनती की। तदनुसार मैं मालवा और इसके अधीनस्थ राज्यों में आधा दक्षिणी भाग जिसका अभी वर्णन किया है, को मिलाता हूँ और वदारी की उत्तरी भाग का आधा हिस्सा। इस तरह मालवा की सीमा निर्धारित की जा सकेगी—उत्तर में वदारी, पश्चिम में बल्लभी, पूर्व में उज्जैन और दक्षिण में महाराष्ट्र। इस भाग का घेरा, कच्छ के रण में बनास नदी के मुँह से चम्बल तक मन्दसौर के समीप दामान और मालिगाम के बीच सह्याद्रि पहाड़ है। बुरहानपुर के नीचे ताप्ती नदी तक नक्षा की माप के हिसाब से ८५० मील है और सड़क द्वारा प्रायः १००० मील की दूरी है। अबुरीहान + के अनुसार नर्बदा से धार तक की दूरी सात परसांग थी और धार से महारत-डास की सीमा तक १८ परसांग थी। इससे प्रमाणित होता है कि धार-राज्य दक्षिण में ताप्ती नदी तक विस्तृत था।

हुएनत्संग लिखता है कि भारत में दो राज्य थे, जो विशेषतः बौद्ध-धर्म की पढ़ाई के लिये प्रसिद्ध थे।— उत्तर पूर्व में मगध और दक्षिण-पश्चिम में मालवा। इस तथ्य के अनुसार वह लिखता है कि मालवा में कई सौ मठ थे और सम्मति या पन्थ के २० हजार भिक्षुक रहते थे। वह इसकी भी चर्चा करता है कि उसके आगमन के ६० वर्ष पूर्व शिलादित्य नाम के शक्तिशाली राजा ने ५० वर्ष तक मालवा पर राज्य किया था। वह एक कट्टर बौद्ध था।

⁂

---

* जुलियन का 'हुएनसंग' iii. १५५।

+ रेनौडे का 'फ्रैगमेन्टस अराबीज एट परसीयन्स' पृष्ठ १०६।

गीतों की जन्म-कथा

श्री मदनलाल वर्मा 'साहित्य रत्न'

गीत के पथ का पथिक अलि। रुक न पाये !
नयन के नीहार पथ पर दीप साधों के जलाये !
रघुवंश, शाकुन्तल कि जिसके मेघदूत मल्हार गाये-
हंस वाहिनि ! वीण साधो, मेघ-छवि मन्थर उड़ाये !

(१)

वीणा की वाणी में सरगम लहराता हूं !
किस शून्य-हृदय ने बरसाये किरणों के सजल चमकते स्वर,
नव शारदीय घन राका में या वासन्ती तरु फुनगों पर ।-
चहके पंछी के साथ-साथ पुलके सरोज के संग सत्वर-
दिशि गूंजी निखरा ज्योति नीलिमा में अम्बर !!—
मालव के शब की ठंडी प्यारी रातों से,
झिलमिल आँसू के शबनम, गुपचुप दिल की बातों में-
तन्त्री के तारों पर रस बरसाता हूँ !
वाणी की सरगम में मधुरव लहराता हूं !

(२)

यह विश्व नहीं जिसको अपनी उर की सुन्दरता बतलाऊँ,
अपने गीतों की जन्म-कथा का यह रहस्य भी समझाऊँ,-
धरती का कोमल-प्यार, प्रकृति-बाला के दृग धोने जाऊँ !
नीरव बंधन बन जगती का या करुण-मुक्ति के स्वर लाऊँ !
भोले बचपन की साधें, यौवन-पनघट पर पथ जोती-
खेतों में लहराते वे दिन, बालों पर बिखराते मोती;
क्यों मोल करूँ जग से, मैं जो बहलाता हूं !
वीणा की वाणी का सरगम लहराता हूं !

(३)

वीणा की वाणी पर सरगम लहराता हूं !
गुल मुहर हँसी, आँगन में, मीठी कोयलिया बोल उठी
मधुमास खिला नंदन में, क्यों वैभव के प्रति निर्मोही हूं ?—
जग ने धन के परमेश्वर के श्रम के हाथों—
सब सपने चकनाचूर किये, यह मानव हूँ, विद्रोही हूँ !
अधरों पर अधरों का न प्यार कुछ कह पाया !
वह आग नहीं मैं दृग जल बन कर लहराया !
अपने में चाँद सितारे रोज बनाता हूं !
वाणी के सरगम पर मधुरव लहराता हूं !

[शेष पृष्ठ ३१ पर]

श्री महेशकुमार व्यास 'राजा'

बृज-बाला

गोरी-गोरी, भोली-भोली, एक बृज-बाला सम्मुख आई,
मुखड़ा चन्दा-सा मुसकाया, आँखें कजरारी शरमाई।
चन्दे में एक छोटा चन्दा, जैसे बिंदिया चम-चम करती,
तारों से कुंडल कानों में, गालों पर बालों की लट थी।

तन पर चुनरी थी लाल-लाल, नीली-नीली सी चोली थी,
पुतली का हार गले में था, कोयल सी मीठी बोली थी।
दोनों बाजू में बाजू-बन्द, कर में चूड़ा-कँगना पहिने;
कटि में कर-दोना चाँदीका, गोटे वाला लँहगा पहिने।

वह मोर-गर्दिनी बृज-बाला, देखी धीरे-धीरे चलती,
पाँवों में बिछिये बजते थे, पायल रुन-झुन रुन-झुन करती।
हाथों में सुन्दर थाल लिये मन में मुसकाती जाती थी,
चेहरे की सुन्दर आभा से किरणें शरमाती जाती थीं।

था सावन का त्यौहार सुहाना-प्यारा, उस दिन 'राखी' थी।
भाभी-भय्या के हिस्से में, बहिनों की होती पाँती थीं।
मैंने देखा, बस एक पल में, पाँवों में लँहगा उलझगया,
गिर गई बिचारी बृज-बाला, थाली से कुंकुंम ढुलक गया।

चलकर आये लड्डू मुझ तक, मैं भी मन ही मन मुसकाया,
चट सहम गई वह खड़ी हुई लाली से चेहरा दमकाया।
क्यों लाज-शरम छोड़ी तुमने, क्यों देख किसी को मुसकाये,
क्यों आज खुशी के दिन तुमने माताके आंचल लजवाये

आया गुण्डा-शहरी, देखो, अपने भय्या से कह दूंगी,
तुम कितने और हँसोगे तुम, मैं भी मुसकाती देखूंगी।
सुनो ! पुजारी हूँ मैं तो, सुन्दरता मेरी देवी है,
मेरी कविता में ढलकर जो जगती को अमृत देती है।

कर में लड्डू तो हैं ही अब, बहिना जल्दी राखी बांधो,
और जनम-जनम की प्रीत बहन, कच्चे धागे से तुम बांधो।
सुनकर बातें मेरे मुख से खिलते फूलों सी हर्षाई,
कुछ दूर खड़ी थी वह मुझसे अब और निकट मेरे आई

बोली मुझसे भैया मेरे, कहना है सरल; करना है कठिन,
आफत में पड़ते देखीं हैं, मैंने ऐसी कितनी ही बहिन।
मारे-मारे फिरते देखा, मैंने कितनी ही बहिनों को,
और बेच चुके कितने भाई, ऐसी कितनी ही बहिनों को।

जिनके बच्चे भूखे मरते, बिटमाते देखे गली-गली,
जिनकी इज्जत लुटते देखी, हर शहर-शहर हर गली-गली।
कानों में अँगुली दे डाली, "मैं चीख उठा बस रहने दो!"
अपने भैया को ओ बहिनों! अब दान प्रीतका तुम देदो।

बोली मुझको क्या दोगे तुम ? कहदो फिर "राखी" बाँधूंगी.
देना होगा तुमको भय्या, जो भी मैं तुमसे माँगूंगी !
मैं बोला, ऐसी बहिनों पर, तन-मन-धन औ जीवन देदूं
मैं शीश चढ़ाकर भी अपना, सौहाग बहिन का मैं दे दूं।

बाँधी "राखी" बृज-बालाने, जैसी मुझको, सबको बाँधे;
सब बहिने रक्षा-बंधन में अपने भैया से यह माँगें।
हो धन्य-धन्य तुम बृज वाले, तुमने कविता को प्राण दिये;
सुनने वालों की सुनते ही खुलजाय नींद हिल जाँय हिये।
संध्या होते ही पलट गया मैं रूप-भाव का मतवाला।
हो धन्य गांव वह अमर रहे रहती जिसमें है "बृजबाला"॥

गीतों की जन्म कथा

पृष्ठ ३० का शेषांश

(४)

जीवन में निखरे कक्षा कि पत्थर पर फूलों सी खिलजाये
यदि नये सृजन का स्वर मुरली-ध्वनि बन जाये—
इस अतल-सृष्टि से नव-रहस्य नूतन रागों में चुनता हूँ
युग की अभिनूतन धन्वा पर सुरधनु केशर बन लहराये !
कुसुमों की धरती का दुकूल श्यामल-घन लहराया,
उस नयी चेतना की मिट्टी में आत्म बीज बोने आया –
मैं ज्योति-निलय का प्राण-हँस बन जाता हूं !
वीणा के सरगम में मधुरिम लहराता हूं !!

साहित्यकारों से

राष्ट्र के साहित्यकारों, स्वप्न की बातें भुला दो।
जागरण के गीत गाकर विश्व का कण-कण जगादो ॥

भूल मत जाओ कि अब भी दीनता का बोल-बाला ।
लडखडाती है मनुजता, न्याय का निकला दिवाला ॥
मुक्त मानव के लिये है आज भी दुश्वार जीना ।
लग रहा अब भी कलेजों पर दगा का दाग काला ॥

भूल मत जाओ कि अब भी रक्त का इन्सान प्यासा ।
कोरिया और चीन जिससे बन रहा अब भी तमाशा ॥
घुट रही है श्वास बाजी आज प्राणों की लगी है।
हो रही है क्षीण दिन-दिन जिन्दगी की तीव्र आशा ॥

इसलिये चेतो, बढ़ो, अन्याय धरती का मिटा दो।
जागरण के गीत गा कर विश्व का कण-कण जगादो ॥

भूल मत जाओ कि तुलसी, सूर की सन्तान हो तुम ।
भक्त मीरा और केशव के निराले गान हो तुम ॥
मानवों के पथ-प्रदर्शक, दानवों के नाश कारक ।
विश्व के कल्याण कारी राष्ट्र के अभिमान हो तुम ॥

तुम अगर चाहो मिटा सकते मनुज की दीनता को ।
दूर कर सकते तिमिर को और हिय की हीनता को ॥
तुम अगर चाहो धरा को रूप दे सकते कमल का ।
प्राण दे सकते नये तुम शुष्क जीवन की लता को ॥

तुम अगर चाहो जगत में प्यार का दरिया बहा दो ।
जागरण के गीत गा कर विश्व का कण-कण जगादो ॥

राष्ट्र के साहित्य कारों. स्वप्न की बातें भुला दो।
जागरण के गीत गा कर विश्व का कण--कण जगादो ॥

जानता हूं- शक्ति का वैभव तुम्हारे पास में है।
मानता हूं- आग के शोले तुम्हारे श्वास में है ॥
ज्ञात मुझको पत्थरों को जल बनाने में सबल हो।
मुक्ति का कलरव उरों में, चेतना विश्वास में हैं ॥

किन्तु अब इन वैभवों की भेंट जनता को चढ़ा दो।
भेद-भावों को मिटा कर प्राणियों को सम बना दो ॥
एकता की प्रेरणा से पाटदो तुम खाइयों को।
कल्पना की शक्ति को संसार के खातिर लगा दो ॥

और इस साम्राज्यवादी धारणा की जड मिटा कर।
विश्व के प्रत्येक थल पर प्यार का पौधा उगा दो ॥

जागरण के गीत गा कर विश्व का कण--कण जगादो।
राष्ट्र के साहित्य कारों स्वप्न की बातें भुला दो ॥

श्री रमेशचन्द्र "मुक्त"

शिव-ताण्डव

श्री श्रीनिधि द्विवेदी

आदि-कवि वाल्मीकि से लेकर संस्कृत के अन्तिम महाकवि पंडित जगन्नाथ पर्यन्त इतनी सानुप्रास सालंकार प्रवाहपूर्ण भाषा कोई नहीं लिख सके जैसी कि महापंडित दश मुख श्री रावणकृत अनुपम स्तोत्र शिवतांडव में मिलती है— उनकी यह एक कृति ही सबको चुनौती देती है— उनकी एक और रचना 'काव्यमाला' में प्राप्त हुई है। 'शिव-तांडव' का छन्द तांडव की गति पर ही चलता है एक ह्रस्व एक दीर्घ क्रम से। जो शब्द हिन्दी काव्य में प्रचलित हैं- या तत्सम अप्राप्य हैं उन्हें ज्यों का त्यों ले लिया गया है—संस्कृत मूल विस्तार-भय से नहीं दिया गया—केवल संख्याक्रम से विज्ञ पाठक समझ लेंगे—भूत भावन शिव के समक्ष स्वयं ताण्डव करते हुए भक्ति विभोर लंकापति ने ये छंद पढ़े थे—

(१)

जटा बनस्थली चली पवित्र गंगधार है।
धुले गले विराजता भुजंग तुंग हार है।
महेश वे उमड्डमन्निनाद मंजु घोर से।
करें प्रचंड तांडवी सुशांति सर्व ओर से।

(२)

जटा सुजाल घूम झूमती निलिम्प निर्झरी।
विराजमान शीश पै विलोल वीचिवल्लरी।
ललाट पट्ट ज्वाल माल का प्रवाह-सा बहे॥
किशोर चन्द्रभाल पै रति-प्रतिक्षण रहे।

(३)

धराधरेन्द्र नंदिनी विलोल लोल लोचना।
जिन्हें विलोक लोक बन्धु को प्रमोद है घना।
कृपा कटाक्ष भक्त की विरुद्ध दुर्धरा पदा।
हरें, भरें सुनग्न, मग्न भक्ति भाव सर्वदा।

(४)

जटा भुजंग पिंग की फडारुणा मणि प्रभा।
कलाप कुंकुमानना प्रदीप्त दिग्वधू विभा।
मदान्ध मेघ-सा गजासुरीय चर्म सोहता।
शरीर शंभु का रहे सदैव चित्त मोहता।

(५)

ललाट वन्हिवेग से अनंग शेष नाम है।
महेश तेजधाम को प्रणाम है प्रणाम है।
सुधा मयूख शीश पै सुरंग गंगधार है।
महाकपालि की कृपा सुसंपदा अपार है।

(६)

सहस्र लोचनादि की शिरः प्रसून धूल है।
पदांघ्रि या विधूसरा बनो प्रमोद मूल है।
निबद्ध जाट जूट है भुजंग राज माल से।
सदैव श्री मिले हमें चकोर बन्धु भाल से।

(७)

कराल भाल पट्ट की प्रचंड ज्वाल धार है।
प्रपंच पंच बाण का सदेह क्षार-क्षार है।
उमा कुचाग्र चित्रपत्र के सुचित्रकाल को।
भजूं सदा त्रिनेत्र को त्रिकाल निर्विकार को।

(८)

नवीन मेघ मण्डली घिरी भरी अमा निशा।
तमिस्र के अजस्र धाम श्याम कंठ की दिशा।
सुकृत्ति अंग गंग शीश ईश चन्द्रभाल से।
सदैव श्री मिले त्रिनेत्र से त्रिलोक पाल से।

(९)

प्रफुल्ल नील कंज की सुमंजु कांति श्यामला।
महोपराग रंग संग शोभता भला गला।
भजूं मनोभवारि को भवारि को पुरारि को।
गजारि अंधकारि को मखारि अंतकारि को।

(१०)

कला कलाप मंजरी अपूर्व सर्व मंगला।
रस-प्रवाह पान में द्विरेफ वृत्ति चंचला।
भजूं सदा भवारि को पुरारि अंधकारि को।
मखारि को स्मरारि को गजारि अंतकारि को।

(११)

सवेग संग झूम घूमती भुजंग माल है।
उश्वास फूत फूंक से कराल भाल ज्वाल है।
धिमिम-धिमिम सुमंगला मृदंग तुंग ताल है।
प्रचड तांडवेश की जयाश्रिता त्रिकाल है।

(१२)

शिला तथैव सेज में भुजंग मौक्त माल में।
सुरत्न और धूल में सुमित्र शत्रुजाल में।
तृणारविंद, लोचना, प्रजा तथा नृपाल में।
समान दृष्टि हो सदैव ध्यान काल काल में।

(१३)

बसूं निलिम्प निर्झरी निकुंज की कुटी कदा।
स्वशीश अंजली धरे विशुद्ध बुद्धि हो सदा।
विलोल लोचना उमा ललाम भाल लग्न-सा।
कदा सदा सुखी बनूं शिवेति मंत्र मग्न-सा।

(१४)

सुरेन्द्र नागरी शिरस्थ मल्लिका सुगुम्फिता।
पराग राग से मधूष्ण पाद पद्म चुंबिता।
शिवांग ज्योति की छटा सदा मनोविनोदिनी।
अपार श्री अपार सौख्य दे त्रिलोक मोहिनी।

(१५)

प्रचंड वाडवाग्नि की प्रथा शुभ प्रचारिणी।
सखी सुगीत जल्पना महाष्ट सिद्धि कामिनी।
विमुक्त लोचना उमा विवाह की कला कथा।
शिवेति मंत्र भूषणम् त्रिलोक जेय सर्वथा।

(१६)

सदैव ये पढे मनुष्य उत्तमोत्तमा स्तुति।
सुने स्मरे प्रसिद्ध सिद्धि शुद्ध सन्भ्रमा स्तुति।
उसे तुरन्त भेटती महेश भक्ति भावना।
परात्रिलोक मोहिनी सदा परेश चिन्तना।

पुल्कोवो वेधशाला

ले. श्री प्रत्यक्षदर्शी

पुल्कोवो वेधशाला को नक्षत्र-विज्ञान में संसार की राजधानी कहा जाता है ! इसकी स्थापना १८३९ में हुई थी, और फ० ब्रे दिखिन, अ० बेलोपोल्स्की प्रभृति सुप्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिकों के आविष्कारों के कारण यह सदा ही प्रसिद्ध रही है। पर सोवियत शासन के सालों में इसकी प्रसिद्धि विशेषतौर पर व्यापक हुई। कारण कि इसके वैज्ञानिकों के लिए नवीनतम और बेजोड़ यान्त्रिक साजसज्जा जुटा दी गई।

महान कौमी युद्ध के काल में पुल्कोवो लेनिनग्राद का अग्रिम रक्षा-केन्द्र था। फासिस्त लुटेरों ने सुप्रसिद्ध वेधशाला को खण्डहरों का ढेर बना दिया था। सोवियत सरकार ने इसके पुनर्निर्माण के लिए लाखों रूबल नियत किये। कुछ ही वर्षों के अल्प काल में विज्ञान का यह शानदार केन्द्र फिर से सजीव हो उठा। बिल्कुल नये सिरे से इसे बनाया गया, और आमूल रूप से इसका पुनर्निर्माण किया गया।

डामर की एक चौड़ी सड़क जैतून, सेब और नींबू के पेड़ों से घिरी होटल की एक इमारत की ओर जाती है। होटल के दाहिनी ओर वेधशाला की मुख्य इमारत है, और बाँई ओर वैज्ञानिक कार्य-कर्त्ताओं के रिहायशी मकान हैं।

पुल्कोवो के मध्य से, जहाँ वेधशाला की प्रमुख इमारत स्थित है, भूमण्डल की दिशान्त रेखाओं में से एक पुल्कोवो दिशान्त रेखा गुजरती है।

वेधशाला के निर्देशक अलैक्सान्देर मिखाइलोव सोवियत संघ की विज्ञान अकदिमी के सम्बद्ध सदस्य हैं। उनसे बातचीत करने पर पता चला कि एक शती से भी अधिक पुराने दिशान्तर वृत्त और ट्रान्जिट यन्त्र पुल्कोवो में आज भी सुरक्षित हैं। वेधशाला के जन्मदाता और प्रथम निर्देशक व० स्त्रूव ने जो व्यावहारिक ज्योतिर्विद्या के क्षेत्र में रूस के सुप्रसिद्ध अधिकारी विद्वान थे, इन्हें बनाया था। इन यन्त्रों से आज भी नक्षत्र मण्डलों की सहस्थिति का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक काम लेते हैं। एक बड़ी जैनिथ दूरबीन जो पृथ्वी की अक्षांशरुखी घटा-बढ़ी को जतलाती है, बहुत वर्षों से काम दे रही है। बातचीत के अन्त में मिखाइलोव ने कहा—"बस, पुराने यंत्रों में से कुल मिलाकर यही चीजें बची हैं।"

सितारों की जांच करने वाला एक अद्वितीय डिजाइन का अन्तर-फेरो मीटर यन्त्र एक विशेष पेविलियन पर रखा है। इस यन्त्र से अत्यन्त निकट स्थित या तथा-कथित द्वितारकों से बने अति सूक्ष्म कोणों तक की भी बेहद सही माप की जा सकती है। इसे अकदमीशियन व० लिन्नीकी ने बनाया था। सही माप करने की इसकी क्षमता इस प्रकार के सभी वर्तमान यंत्रों से कहीं अधिक है। पुल्कोवो के खगोलशास्त्री बड़े पैमाने पर खोज-कार्य करने के अलावा ज्योतिर्विद के अति आधुनिक यन्त्रों के उल्लेखनीय आविष्कारक भी हैं। वेधशाला की एक बुर्जी में अ० मिखाइलोव द्वारा निर्मित पोलेरीमीटर यन्त्र स्थापित है। इससे वैज्ञानिकों को ध्रुव की स्थिति में परिवर्तनों का अध्ययन करने में मदद मिलती है।

सौर-मण्डल का निरीक्षण करने वाली एक बड़ी आड़े-रुखी दूरबीन, जिसे स्तालिन पुरस्कार विजेताओं, निकोलाई पोनोमारियोव और सोवियत संघ की विज्ञान अकदिमी के एक सम्बद्ध सदस्य दमित्री माक्सुतोव ने बनाया था, युद्ध के पहिले वेध-शाला में स्थापित की गई थी। बम्ब के विस्फोट ने इसे नष्ट कर दिया। इस दूरबीन की एक दूसरी नकल, जो मूल दूरबीन की तस्वीरों की मदद से बनाई गई है, एक अद्भुत यंत्र है। व्लादिमीर कात्त के नेतृत्व में वैज्ञानिकों का एक दल सूरज की सतह का अध्ययन करने में इसका इस्तेमाल करता है।

एक अन्य बेजोड़ यंत्र अर्धचन्द्राकार काँच से युक्त एक बड़ी दूरबीन है। इसका डिज़ाइन द० माक्सुतोव ने बनाया था। इस की मदद से वैज्ञानिक उन तारों का पर्यवेक्षण करने में भी समर्थ होते हैं जिनका प्रकाश आँखों से दिखाई पड़ने वाले तारों के प्रकाश का दस लाखवाँ हिस्सा होता है।

प्रमुख वेधशाला में और भी अन्य कितने ही बेजोड़ यंत्र मौजूद हैं।

वेधशाला में कार्य का प्रारम्भ गोधूलि के समय से होता है। ज्योतिर्विद अपने यंत्रों पर जम जाते हैं। भौतिक विज्ञान और गणित की एक उम्मीदवार सोफिया रोमान्स्काया जैनिथ दूरबीन पर काम करती है। ४५ वर्ष पहले पुल्कोवो में उसका वैज्ञानिक जीवन का प्रारम्भ हुआ था।

बोरिस ओर्लोव पहले एक नाविक था जो जहाज-चालक के सपने देखता था। अब वह एक अनुभवी ज्योतिर्विद है। वह भौतिक विज्ञान और गणित का उम्मीदवार है तथा १८४५ से पुल्कोवो डिक्लिनेशन अनुक्रमणिका पर अपना एक थीसिस प्रस्तुत करने जा रहा है, जिस पर उसे डॉक्टर की डिग्री प्राप्त होगी।

पुल्कोवो में ऐसे अनेक युवक काम करते हैं जिनका जीवन एक ज्योतिर्विद के अनथक काम के लिए अर्पित है। जब आसमान साफ होता है तो सबसे कम-उम्र नक्षत्र-विद्याविद ग० व्यालशिन को, जो इसी वर्ष युराल विश्व-विद्यालय से स्नातक हुआ है, सौर-मण्डलीय दूरबीन पर काम करते हुए देखा जा सकता है। वैज्ञानिक कार्य-कर्त्ताओं में कितने ही लेनिनग्राद व दूसरे विश्वविद्यालयों के स्नातक हैं।

१८४५ से लेकर अब तक पुल्कोवो के वैज्ञानिकों ने असंख्य और सर्वांगपूर्ण खोज-कार्य सम्पन्न किए और उन्हें सितारों से सम्बन्धित अनुक्रमणिका में दर्ज करते रहे हैं। पुल्कोवो वेधशाला की सितारों से सम्बन्धित अनुक्रमणिका को विश्व के सभी ज्योतिर्विद व्यापक पैमाने पर आज दिन तक काम में ले रहे हैं। आज कल सोवियत ज्योतिर्विद नयी तथा और भी सही अनुक्रमणिका प्रस्तुत करने में जुटे हैं। इसमें, पहिली बार, सह-स्थिति का निर्धारण तारों के सम्पर्क के आधार पर नहीं, बल्कि तारक दलों की सीमाओं से परे नक्षत्र मण्डलों के आधार पर, जोकि लाखों करोड़ों आलोक वत्सरों की दूरी पर हैं, किया जाएगा।

पुल्कोवो वेधशाला सोवियत संघ में समय का सही पता लगाने का भी काम करती है। समय-स्थिर करने वाली सर्विस के जन्मदाताओं में से एक स्तालिन पुरस्कार विजेता प्रोफ़ेसर न० पावलोव ने ट्रांजिट यंत्र की मदद से, सितारों के परीवेक्षण के दौरान में, बिजली से उनकी छवि उतारने की पद्धति का आविष्कार किया है। प्रोफ़ेसर पावलोव की बिजली से छवि उतारने की पद्धति से असाधारण शुद्धता के साथ सही समय का पता लगाया जा सकता है। उनके इस आविष्कार का मूलतत्व यह है कि एक तारा दिशान्तर को पार करके जब पावलोव के यंत्र की परिधि में आता है तो उसकी स्थिति अपने आप एक विद्युत छवियंत्र में अंकित हो जाती है। और इस प्रकार अंकित यह छवि एक सेकण्ड के हजारवें अंश तक का एक दम सही हिसाब-किताब प्रकट कर देती है।

पुल्कोवो की ऊँचाइयों में भरपूर जीवन हिलोरें लेता है। पुल्कोवो के वैज्ञानिकों के पास व्यापारी जहाजों के नाविकों, नागरिक वायुयान सर्विस के हवाबाजों, भू-शास्त्रियों, और उन सबकी ओर से जिनकी अपने ज्योतिष सम्बन्धी आविष्कारों से वे सेवा करते हैं, हार्दिक कृतज्ञता से पूर्ण सन्देश निरन्तर आते रहते हैं। सोवियत जनता का यह आभार-प्रदर्शन सोवियत ज्योतिर्विदों के महान अमली महत्व का सूचक है।

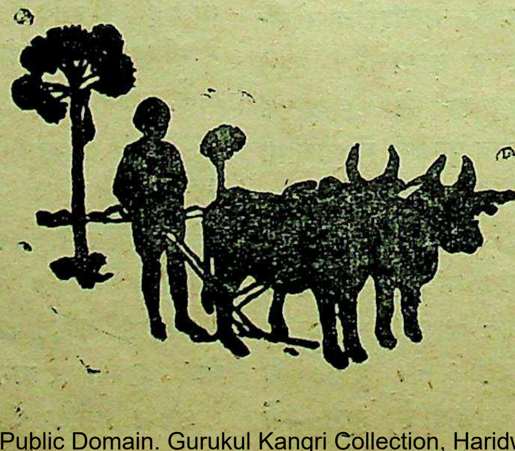

धरती का मानव

श्री श्याम गोयल

वह बढ़ी जा रही है, मानव को मानवता का पाठ सिखाने। क्योंकि इन्सान की जिन्दगी से प्रेम है उसे। भगवान से मिला जिन्दा रहने के अधिकार को दानव के क्रूर पंजों से छुड़ाने के लिए।

विनाश, हत्या, आग, लूट और सर्वनाश जिनसे मानव ऊब चुका है, जीवन की असह्य वेदनाओं से परे विनाश की विभीषिका को शान्त करने। जीवन स्रोत के बहते हुए नाले में पड़ी गन्दगी, और उससे आ रहीं गन्दी बदबू में पल रहे मानव के मस्तिष्क को सुन्दर मधुर पुष्प की-सी सुगन्ध देने। क्यों? क्योंकि उस गन्दी बदबू ने मानव को हत्यारा बना दिया। उस गन्दे नाले के गन्दे वातवरण में पले मानव को इन्सानियत परखने का अवसर नहीं मिला। उनके मस्तिष्क में वही गंदी बू जिसमें वे पले भरीहुई हैं। वे नहीं जानते मानव के जीवन का मूल्य।

⁂

एक साधारण-सा कुटुम्ब; किन्तु सम्पन्न। माँ थी, पिता था, भाई था और पति था, सुख चैन से जिन्दगी बसर करते थे।

किन्तु……

एक दिन मानव ने अग्नि वर्षा की। और…सब कुछ समाप्त हो गया। सुख और चैन की जिन्दगी में आग लग गई। दानवता ने, ताण्डव कर प्रत्यक्ष हरी भरी जिन्दगी को वीरान और बने बनाए घर को उजाड़ कर दिया।

वह विद्रोहिणी बनी। हिंसक पशु की तरह नहीं, शान्ति की जलती हुई मशाल लिए। पीड़ा में परमात्मा बसते हैं, जिन्दगी की सबसे गहरी पीड़ा ने उसे मानवता से ऊँचा उठा दिया।

और वह बढ़ी जा रही, जिन्दगी में नई आस लिए, कभी पूरे नहीं होने वाले सपने को साक्षात करने—और हो गया तो जागरण की प्रथम वेला में इन्सानियत की सबसे बड़ी विजय को देखने।

किन्तु……

धरती का मानव पहिले चार बार बढ़ चुका था। और जहाँ गया जिस ओर बढ़ा, महामारी, विनाश, अराजकता, भुखमरी पीछे छोड़ता गया। दारिद्र्य और दैन्य जनता का प्रतिनिधि बना। और इसके पुरस्कार में जनता को उनसे मिला मानव का विनाश जो अटूट है, अचूक है, अनिवार्य है, अवश्यम्भावी है।

वह बढ़ी जा रही थी। जिस ओर अग्नि की भयंकर लपटें दिखाई देती, वह बढ़ती जाती। गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँच पाती। चारों ओर अग्नि ही अग्नि दिखाई देती थी उसके आगे आग थी, पीछे आग थी दाँए आग थी और बाँए भी आग की लपटें उसका पथप्रदर्शन कर रही थीं। और वह हाथ में कुछ थामे हुए थी। वह चाहती थी आग की लपटों को शान्त करदूँ। खड़ी थी, किधर जाऊँ, चारों ओर आग, विनाश।

कि उसने देखा दूर गगन में दो पंछी उड़ रहे हैं, भटक रहे हैं, त्राण पाने की चेष्टा कर रहे हैं। दुःखी। विनाश की इतनी बड़ी विभीषिका, जहाँ इन्सान तो क्या आसमान में विचरने वाले पक्षी भी अचेष्ट, परवश और गुलाम। जिस ओर बढ़े अग्नि की उष्णता पथ में बाधक।

और हाथ में थामे हुए कटोरे पर दोनों विवश, परवश पंछी आकर बैठ गए। कू—कू की कूक में भरा संगीत उन्होंने छेड़ा, गाया। किन्तु वह मधुर राग उसे कर्ण-कटु लगा। दासत्व की चरम सीमा जहाँ पक्षी भी नहीं विचर सकते। उसे उस संगीत में दासत्व दिखाई दिया। गुलामी की प्रति-

च्छाया दिखाई दी। उस कूक में याचना थी, भिक्षा थी, गुहार थी, पंछी मानव से त्राण पाने आया था।

और तीन प्राणी, दो मजबूर जिनमें पुरुषत्व था, और एक प्रतिशोध की आग में जलती हुई नारी... । आगे बढ़ो।

वे जैसे-जैसे बढ़ते गए तूफान भी बढ़ता गया। आँधी, हवा और उस हवा के साथ उड़ती हुई अग्नि की ज्वालाएँ। ज़ोर का भयंकर अन्धड़ और आँधी के दूसरे झोंके में आसमान की ओर उड़ती हुई हवा के साथ दो पंछी भी उड़ गए।

और वह रह गई अकेली। जहाँ इन्सान साथ नहीं देते वहाँ पक्षी क्या देंगे?

उन्हें मानव पर विश्वास नहीं है। जब-जब उन्होंने मानव से प्रेम किया, उनका साथ दिया, उन्हें उनसे मिला छल, धोका और गुलामी। प्रेम की चरम सीमा है अधिकार दासत्व। मानव ने पंछी से प्रेम किया इतना कि उसे आधीन बना लिया और मानव जाति ने पक्षी में भय भर दिया। फिर वह बढ़ी। तूफान की प्रचण्डता धीमी हुई और उसे सुनाई दी भयंकर आवाज बहुत ज़ोर की ध्वनि जिसमें करुणा थी, आह थी, पीड़ा थी, कसक थी। मानव कराह रहा था और कह रहा था—"जाओ, चली जाओ, तुम क्यों आई हो यहाँ? यहाँ इन्सानियत की कोई कीमत नहीं। मानवता का कोई मूल्य नहीं है, चली जाओ, नहीं तो... नहीं तो... तुम भी मर जाओगी। हमारी ही जैसी तुम्हारी भी दशा-तुम्हारा मानव कर देगा। मनुष्य फिर तुम्हें भी 'भूत' कह कर पुकारेगा। जाओ जाओ चली जाओ।"

किन्तु वह खड़ी रही, भक्तों के भगवान सी खड़ी रही। दीनों के दीनानाथ सी खड़ी रही। फिर उसे भयंकर शब्द सुनाई दिया...और वह आगे बढ़ गई।

और उसे दिखाई दिया एक ढेर, एक बहुत बड़ा ढेर। इतना कि उस पर यदि पर्त बनादी जाए तो बहुत लम्बा चौड़ा टीला बन जाय। ...किन्तु किसका? निकट ही उसे एक पंक्ति दिखाई दी...एक बाज़ार, किसका? मानव के झूठे अहंकार के परिणाम का ढेर और रूप का बाजार। मानव की खोपड़ियों का ढेर धड़ों का बाज़ार। उस बाज़ार में मानव पंक्ति-बद्ध दुकान में बिकने के लिए पड़ा था, जहाँ उस जैसे सौदागर को सौदा सरलता से मिल सकता था।

वह चीत्कार उठी...... चीख उठी। मानव के यहाँ दानवत्व भी सीमा से परे—फिर भी वह मानव कहलाता है। भाग्य विधाता? मानव का यह रूप, रूप के बाजार में—ओह इसी के लिए वह पैदा हुआ है? हाँ इसी के लिए बिकने के लिए... नीलाम पर चढ़ पशु के मोल अपने आप को बेचने और खरीदने वाला? वह भी मानव, क्या इसकी जर्जरित हड्डियों से जूस निकलेगा। सूखी शिराओं में अटके हुए रक्त को निचोने, अब उनके पास है ही क्या? क्या खेलोगे...? सूखी श्वेत हड्डी का खिलौना? अस्थि का पञ्जर। उससे तो विधि खेल चुका।

वह बढ़ना चाहती थी उस ओर जिस ओर अधिकार का पुरस्कार था—रूप के बाज़ार में सौदा खरीदने। कि पार्श्व में सुनाई दिया।

"कौन हो तुम?"

वह शान्त निश्चल खड़ी रही। वे प्रहरी... मलिन और क्षीण ध्वनि से भी चौकने वाले जागरूक प्रहरी समीप आए उनमें से एक ने पूछा 'कौन है तू क्यों आई है?' किन्तु उत्तर मौन।

और वे तो केवल प्रहरी थे, विनाश के सारे उपकरणों से सुसज्जित सेना के सिपाही, मानव की कला से चित्रित चितेरे से चित्रित चित्र। मनोविज्ञान के वेत्ता नहीं, नहीं तो इसका उत्तर उसकी दो बड़ी बड़ी आंखे स्पष्ट दे रही थी।

फिर सुनाई दिया 'बोलती नहीं, कौन है तू? बतलाओ नहीं तो'......

"नहीं तो क्या? वही... पुरस्कार? मनुष्य से पिशाच नर मेध की भट्टी का ईंधन। किन्तु इसीके लिए तो वह पैदा हुआ है।"

फिर भी वह निश्चल, शान्त किन्तु श्रान्त और क्लान्त खड़ी रही। कि दूसरे सिपाही ने कह दिया 'पगली है घरवाला मर गया होगा।'

उसका नारीत्व चमक उठा। अन्तर के चूल्हे में दबी अंगार की राख उड़ गई, हवा के क्षीण किन्तु तीखे झोंके से वह प्रखर हो उठी। बाण मर्म को बेध गया। प्रतिशोध

की ज्वाला भभक उठी। हाथ में थामें कटोरे का पानी उसके मुंह पर उंडेल दिया। प्रतिशोध की आग को ठंडा किया।

दूसरे सिपाही ने कह दिया 'यह तो पगली ही है'

'नहीं पगली नहीं सेना की गुप्तचर' पहिले सिपाही ने प्रत्युत्तर दिया। किन्तु वह विधाता की ओर से भेजी हुई गुप्तचर थी।

और उसने देखा एक बहता हुआ नाला, नाले पर टीला और टीले पर मोर्चा...मोर्चे पर विनाश के साधन... न जाने क्या क्या...... और उसकी रक्षा के हेतु दो सिपाही।

वह आगे बढ़ी— झरने से कटोरे में पानी भर लिया।

उसे दिखाई दी भयंकर आग...आग जिसकी लपटें आसमान को चाट रहीं थीं। प्रकृति को भी जिसने झुलस दिया था।

और हाथ में थामें कटोरे को लिए भयंकर, लौहभस्मीनी स्वर्ण रंजित लाल लाल अग्नि की लपटों की ओर बढ़ी। दूर से दिखाई देता था, आग के अन्दर चली जा रही है। और थामें हुए कटोरे का पानी प्रज्वलित ज्वाला में उंडेल दिया। आकाश को रक्त वर्णित करने वाली लपटों को शान्त करने ... शून्य में उठ रही गगन चुम्बी रक्त, की गरम धार को ठण्डा करने, कटोरे भर पानी से।

विनाशकारी महायुद्ध की भयंकर भीषणता, कोरिया युद्ध में प्राणी संहार के लिए जलाई गई ज्वालाओं को कटोरे भर पानी से ठण्डा करने वह बढ़ी और बढ़ती गई।

यही उसका देवत्व था, यही उसकी मानवता, यही सब से गहरी पीड़ा और उसका परिणाम जिसने उसे देवता बना दिया।

मानव आग बरसाना चाहता था। और वह बुझाना। केवल कटोरे भर जल से।

कि विजन में एक वृक्ष दिखाई दिया। केवल वही हराभरा था उस हरे भरे वृक्ष की दो डालियां दो ओर झुकी हुई थीं। दोनो डालियों पर दो पंछी बैठे हुए थे।

और गा उठे वे पंछी। कू......कू...... का संगीत उसे सुनाई दिया। उस कूक में अब राग था, स्वर था। वे गगन के पंछी अब आजाद थे और उनका संगीत भी आजाद था।

थामें हुए कटोरे पर दो पंछी बैठ गए, कटोरे का पानी धरती पर गिरा दिया और भरा हुआ पानी तप्त भूमि को ठंडा करमे वह चला।

और, वे पंछी आज़ाद देशकी ओर उड़ गए। क्योंकि मानव पर अब भी विश्वास नहीं था।

'नवीन' और उनकी कविताएँ

श्री श्याम परमार एम० ए०, एल० टी०

प्रस्तुत समालोचना का आधार पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के तीन कविता संग्रह हैं— १ 'रश्मिरेखा' (१९५१), २ 'अपलक' (१९५१) और ३ 'क्वासि' (१९५२) जिनमें संग्रहित १६४ कविताओं का रचनाकाल सन् ३० से ४९ तक है। काल क्रमानुसार कविताओं का संग्रह एवं संख्यागत वर्गीकरण निम्नानुसार है:—

सन्	रश्मिरेखा	अपलक	क्वासि	योग
१९३०	१	--	३	४
,,३१	६	--	४	१०
,,३२	१	--	--	१
,,३६	१	२	५	८
,,३७	--	१	--	१
,,३८	-	४	--	३
,,३९	४	५	७	१६
,,४०	१	२	२	५
,,४१	-	१	-	१
,,४२	४	२	४	१०
,,४३	१८	१६	६	४०
,,४४	१६	१०	८	३४
,,४५	--	२	१	३
,,४६	--	२	२	४
,,४७	--	१	--	१
,,४८	--	१	५	६
,,४९	--	--	१	१
	५७	५२	५५	१६४

उपरोक्त गणनात्मक विधि से यह स्पष्ट है कि 'रश्मिरेखा' का रचनाकाल '३० से '४४ तक, 'अपलक' का '३६ से ४८ तक और 'क्वासि' का ३० से ४९ तक का है। इनमें सन ३२ से (केवल 'रश्मिरेखा' की एक कविता छोड़ कर) '३५ तक का समय ऐसा रहा है जिसमें कवि ने कविताएँ नहीं लिखी और '४३ और '४४ में इसके ठीक विपरीत कवि ने खुल कर भावों की सुरसरि प्रवाहित की है। इस तरह सरसरी तौर पर कवि के सृजन काल का ज्ञान हमें हो जाता है। उक्त तीनों संग्रह क्रमशः प्रकाशित हुए हैं, अतः उनकी कुल १६४ कविताएँ, नहीं १६३, क्योंकि एक कविता 'कुहू की बात' 'रश्मिरेखा' और 'अपलक' दोनों में है, की मिली जुली समालोचना ही श्रेयकर होगी।

'दीर्घ सूत्री' नवीन (जैसा कि वे 'रश्मिरेखा' के प्रारम्भ में 'पराचः कामाननुयन्ति बालाः' में स्वयं स्वीकार करते हैं) सदैव ही 'अनदेख की टोह' में रहे हैं, पर 'अनित्य द्रव्यता' के पीछे 'नित्य' की छाया उनकी रचनाओं में रही है–जिसे वे मानते हैं। 'क्वासि की टेर' का बीज इस दृष्टि से उनके साहित्यिक जीवन के आरम्भ से पड़ गया था। सन् ३० के आरम्भ की रचनाओं में इसकी झलक मिल जाती है—

> क्वासि ? क्वासि ? प्यासी आँखों से बरस रहीं
> फुहियां-सी।
> आजाओ मेरे उपवन में सजनि, धूप छहियां-सी।
> (हिंडोला)

तभी ग़ाजीपुर के कारागृह में उनके अन्तरवीणा के तार अध्यात्म का स्पर्श पाकर चिन्तन के स्वरों को निसृत करने में लीन थे। आत्मचिन्तन का सूत्र जो उनकी रचनाओं में फैला हुआ है, इसी जिज्ञासा से सम्बन्धित है।

> ग़ाफ़िल किस बीहड़ में भटका ?
> पगडंडी तू खोज रहा है अकुलाया, बैराया
> महाकाल के पद चिन्हों को विकट गले, अटका
> (दिग्भ्रम)

इन स्वरों में 'नवीन' का चापल्य 'क्वासि' के भार से दबता हुआ जान पड़ता है, पर फिर भी कबीर-सी मस्ती (जोगी) 'प्यार के प्रथम चुम्बन' की टीस और संगीत का गहरा लगाव, जो केवल ध्वनिसत्ता तक ही सीमित नहीं, [illegible] राग रागनियों में आबद्ध (तिताला, बिहाग, कलिंगड़ा,

आदि) गीतों तक फैला है, रचनाओं में व्यक्त हुए हैं। 'नवीन' सन् ३१ में सींकचों के पीछे थे, पर कुछ समय मुक्त रहने के पश्चात् ३२ में फैज़ाबाद के कारागृह में रहे। अतः कारागृही वातावरण में उनका उन्मुक्त कवि कभी-कभी गम्भीर हो जाता था। सम्भवतः इन्हीं परिस्थितियों के कारण उनमें आध्यात्म जिज्ञासा उभर चली हो, पर जिन राजनैतिक कारणों से उन्हें बन्धन में रहना पड़ा उनके प्रति 'नवीन' का कवि क्यों कर मौन रह सका यही आश्चर्य का विषय है?

तत्पश्चात् 'नवीन' द्वारा सृजित रचनाएँ सन् '३५ तक नहीं मिलतीं। यह लम्बा समय किस वैचारिक संघर्ष में गुजरा होगा, इसपर प्रकाश नहीं डाला जा सकता। हो सकता है इस बीच 'नवीन' ने कुछ लिखा भी हो, पर सम्बन्धित १६३ कविताओं में उसका अभाव है।

सन् '३६ से' ४२ के आरम्भ तक का समय 'नवीन' जी ने कानपूर में ही व्यतीत किया। कारागृह में चिन्तन का जो बीज पड़ा था वह अपने प्रिय के प्रति अधिक आलोड़ित होकर फूटता हुआ जान पड़ता है। सत्गुरूशरण जी के शब्दों में—"बालकृष्ण चिरन्तन तरुण कवि हैं। उनकी तरुणाई की तरलता में द्वैत का परिरम्भ मुस्कराता है। उनका चिरन्तन भाव रति है, परन्तु युवावस्था की अँगड़ाइयों में प्रणय की थकावट का विजृम्भण नहीं है वरन् अपूर्ण जीवन के अवसाद के निश्वास हैं। जवानी का रस सब कहीं है। प्रिय की स्मृति की मादकता प्रकृति के सुहावने नशे से मिलकर मन को नचा देती है और क्षुब्ध कर देती है। सूरदास की भाँति बालकृष्ण—'अब मैं नाचो बहुत गुपाल' कह कर उसकी शिकायत नहीं करते। उनके दर्शन में यह पार्थिव आकांक्षा अपवित्रता नहीं है वरन् परमत्व प्राप्ति के लिए आवश्यक सहारा है। यह वर्तमान की बलवती विचारधारा है।" 'कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे', 'सजन मेरे सो रहे हैं', साजन लेंगे जोग री', प्रिय लो डूब चुका सूरज', आदि कविताओं में पार्थिव आकांक्षा परमत्व की प्राप्ति के लिए व्यग्र प्रतीत होती है। 'रति' की पार्थिव योजना 'मांसल भावुकता' और अभिव्यञ्जना की 'तिलमिलाहट' लेकर 'शृंगार' की मार्मिकता के साथ व्यक्त हुई है, जिसमें पूर्व स्मृतियों का स्पन्दन झलक पड़ता है। इसीलिए यह कथन सर्वथा उचित न होगा कि नवीनजी के काव्य की समस्त पार्थिवता आध्यात्मिक जिज्ञासा के परितोष का ही प्रयत्न है। कुछ पंक्तियाँ इसी दृष्टि से देखिए:—

तुम बैठो मम सन्मुख अपना चीनांकुश पीताम्बर पहने;
और बने अंगुलियां मेरी तव मंजुल चरणों के गहने;
तुम आकर्ण सजाए वेणी, विहँस-विहँस दो मुझे उलहने;
यही साध है, मेरे प्रियतम, तुम रूठो, मैं तुम्हें मनाऊँ.
(मैं तुमको निज गीत सुनाऊँ)

* * *

इस वक्षस्थल पर शिर रख, तुम मौन, शांत, गम्भीर,-
देख रहीं थी हमें दृगों से प्राणार्पण-रस ढाल।

* * *

प्रिय, तुम क्यों हो इतनी अच्छी सुघड़, सौम्य, रस-खान?
क्यों कर दिया हमारा जीवन तुमने सफल, निहाल?
(स्मरण कंटक)

उर्दू की रवानी, देशी प्रयोग और कुछ अस्पष्ट एवं अस्पष्ट व्यञ्जनाएँ भी '४२ के प्रारम्भ तक कविताओं में आ गईं थी। एक ओर कवि में जड़ता भी झलक गई थी और उसे निर्धारित लकीर पर चलने का चाव हो गया था—

'मुझे बहुत ही मन भाती है संयत, निर्धारित पगडण्डी'

दूसरी ओर जीवन में मन्थन चल रहा था जो उन्हें आत्म-विसर्जन सुख सहने की कामना से अद्वैत के प्रति प्यार की ओर बढ़ा रहा था। यह विचारों का बोझ 'नवीन' जी पर पड़ तो रहा था, किन्तु फिर भी उनका कवि अपनी हस्ती (मादकता होते हुए भी) एक अजीब ढंग से अनुभव कर रहा था। उसके हिय में उलझन थी—वही उसकी हस्ती में मथित होकर काव्य में निसृत हो रही थी—

बदन मलिन, तन छीन हो चला
मैं नवीन प्राचीन हो चला।
फिर भी हिय में है एक उलझन,
कुछ लहराती सी कुछ उन्मन।
एक अजब सन्नाटा-सा है इस हस्ती के अपने पन में,-
समागई मादकता मन में।
(अपलक)

अभिव्यञ्जना की उत्कटता, प्रिय की छबि का सम्मोहन, संयत शब्द योजना, पर भावुकतावश प्रयोग की निडरता, रसज्ञता और संगीत मार्दव नवीन की विशेषता है।

सन् '४२ के उत्तरार्ध में 'नवीन' पुनः बंदी हुए और क्रमशः उन्नाव तथा बरेली जेल में' ४४ तक रहे। इस समय की कविताएँ उक्त तीनों संग्रह की रचनाओं में सबसे अधिक हैं। सही माने में नवीन का मूल्यांकन इसी काल की रचनाओं से किया जाना चाहिए। जिस अध्यात्म प्रवण रहस्यवादी जिज्ञासा पिछले काल को रचनाओं में विकसित हो रही थी वह अब अधिक मुखर होकर प्रगट हुई। पर इसके साथ ही शैली सम्बन्धी शिकायत हमें हैं। सन् '३० और' ४३–'४४ के काल के बीच कितना ही जल शिप्रा, चम्बल, बेतवा और नर्मदा में बह गया, पर 'नवीन' की शैली में नवीनता नहीं आई। भावों के विकास के साथ शैली का विकास अनिवार्य है। नये भाव नये शब्दों में जितने प्रभावी होते हैं उतने रूढ़ प्रयोगों में नहीं। इस तरह रुके हुए जल की भाँति नवीन की अभिव्यक्ति सशक्त होकर भी स्वस्थ प्रतीत नहीं होती। इस शिकायत के बावजूद भी कुछ कविताएँ इतनी स्वस्थ हैं कि 'नवीन' का कवि उनमें ताज़गी से भर जाता है (पर बड़े संग्रह में यह केवल अल्प मात्रा में है)।

कतिपय रचनाओं में निराशा का वातावरण अन्तर को दोलित करता है किंतु उत्कट आशावाद का पार्श्वागमन काव्य में उभर कर व्यक्त हो उठता है—

जीवन भी है एक पहेली, जो बीता उसको जाने दे,
हो कटिबद्ध, भविष्य शेष है जो कुछ, तू उसको आने दे!
उसको ऐसा काट कि जिससे शीतल हो तव दग्ध हृदय तल,
ढरक ढरक मत गिर, रे दृग जल

* * *

र नर, तू बन जा नारायण मत हो कातर मत हो विह्वल!

सन्' ४४ की कविताओं में 'क्वासि' की उठान के साथ प्रणय की अभिव्यक्ति भी तीव्रतम है। असफल प्रणय की निराशा एवं अपने शैथिल्य के प्रति संवेदना भी है-'प्राणधन मेरी क्या बिसात।' 'क्वासि' की भूमिका में 'नवीन' जी ने अपना काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण (जो प्रगतिवाद पर कठोर आक्षेप है) प्रस्तुत किया है। उन्होंने अध्यात्म विरोधी तत्वों का खण्डन करते हुए सत् साहित्य के विषय में कहा है—"संस्कृति है आत्म विजय, संस्कृति है राग वशीकरण, संस्कृति है भाव उदात्तीकरण। जो साहित्य मानव को इस ओर ले जाए वही सत् साहित्य है।" भूमिका में और भी बातें हैं जिन पर 'कल्पना' मासिक में काफी विवाद चला। उस पर प्रकाश डालना यहाँ समीचीन न होगा। अतएव उक्त कथन की गहराई निश्चय ही परिपक्व चिन्तन का फल है, किन्तु उसे सभी स्वीकार करें यह अनिवार्य नहीं। विषय दृष्टि से नवीन जी की कविताएँ अपने पूर्ववर्ती ज्ञान एवं भक्ति-मार्ग के कवियों की भावधारा से काफी प्रभावित हैं। छायावाद की शैलीगत विशेषताओं को समेटे हुए भी, वे छायावादी नहीं, अपितु उनसे भिन्न अपनापन लिए है। उनका अपना फक्कड़ पन निम्न पंक्तियों में देखिए:—

हम हैं अलमस्ताने जोगी, हम क्यों मांगे भीख!
ओ लजवन्ती, लेलो आये देने हम हिय दान
खड़े हैं हम कब से अनजान!

* * *

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन;
हमतो, रमते राम, हमारा क्या घर? क्या दर?
कैसा वेतन?

अब तक इतनी काटी,
अब क्या सीखें नव परिपाटी
कौन बनाए आज घरौंदा
हाथों चुन चुन माटी.....

'४३ और '४४ की कविताओं में अनेक तत्सम प्रयोगों की ओर बरबस ध्यान जाता है। अध्ययन का बोझा इस प्रवृत्ति में लक्षित होता है। 'अजगव' (शंभु धनुष), 'क्रतुमय' (यक्षमय), 'शवलित' (जल सिंचित) आदि पर कुछ प्रयोग तो ऐसे हैं, जिन्हें स्वयं कवि को स्पष्ट करना पड़ा है; जैसे—इच्छाद्रुम' (कल्पवृक्ष), 'तन्तुवायं' (जुलाह), 'चपलक' (अस्थिर), 'नौ-बन्ध-कील' (लंगर), 'क्षेपणियाँ' (पतवार) 'वात-वसन' (पाल) आदि। स्थानीय शब्दों का प्रयोग रस

की दृष्टि से कहीं-कहीं अखरने वाला सिद्ध हुआ है, (यद्यपि उसमें मस्ती है):—

खेल-खेल में तुम मन मौजी, यदि हमको दो झटका एक
तो बस, उस एक टल्ले से ही हो जाये जीवन कल्याण

* * *

पड़ा रिक्त हिय, हम मरे हैं न जीते,
सुना है भरो हो तुम्हीं पात्र रीते;

* * *

कैसे तुम्हें मैं पुकारू कहो, प्रेम;
जिससे इधर तुम ढुलो आज आज बे टेम ?

'नेम' (नियम), 'बाँच' कर (पढ़ कर-मालवी शब्द'), 'बतियाँ' (बातें), 'बेर-बेर' (बार-बार), 'बदो' (होड़ लगाओ), 'ऐन' बीच (ठीक बीच में, मालवी प्रयोग), 'चाखे' (चखे), 'पौन' (पवन) जैसे शब्द नवीम की रचनाओं को हृदय हारी तो बनाते ही हैं, इसमें संदेह नहीं। परन्तु खड़ी बोली में ये प्रयोग जब अधिक बिखर कर देशी प्रयोगों के प्रति जो हमारे पूर्वग्रह हैं उन्हें न दूर कर दें तब तक ये प्रायः अटपटे ही लगेंगे। अतः इनके प्रति नाक-भौं सिकोड़ने की प्रवृत्ति संकुचितता का लक्षण है। इससे तो हिन्दी कविता को नई दिशा मिल सकती है।

'नवीनजी के अध्यात्म के पीछे अपनाई हुई जिज्ञासा अध्ययन से विकसित हुई प्रतीत होती है वर्णन की क्षमता स्वाभाविक है। कहीं–कहीं रंगों का संयोजन भी दीख पड़ता है जो बिम्ब ग्रहण कराने की क्षमता रखता है।

कहना होगा कि 'नवीन' का उन्मेश और आवेग शुद्ध पार्थिव भूमि पर आधारित है; अतः प्रणय गीतों की मस्ती जब विद्रोह के साथ व्यक्त हुई तो उसमें अपरिमित बल और उभरा। किन्तु अध्यात्म प्रवणता का जो विकास हुआ उसके नीचे उनका विद्रोह कसमसा गया और प्रणय निवेदन की प्रवृत्ति में व्याप गया। 'अपलक' और 'क्वासि' की अध्यात्म प्रवण रचनाओं में उनका सहज कवि मुश्किल से मिलता है। फिर उससे ऊपर उठ कर 'नवीन' के प्रति उन्हीं के शब्दों में एक विश्वास न जाने क्यों अभी भी बाकी है—

तुम समझो हो कि अब हो चले हम नवीन, प्राचीन !
क्यों भूलो हो कि हम अमर हैं!। हम हैं लौह शरीर!!!
सखी री, हम हैं मस्त फ़कीर !

पृष्ठ ४४ का शेषांश

लाखों करोड़ों जीवां ने फायदो पहुंचई ने बुद्धजी बैसाख पूनम केज दिन मुक्त हुई गया। उनका लोग इस मुक्ति के महापरिनिब्बान के है।

ऐसा आदमी के जो अपना भला कर्मों से आदमी से भगवान बनी गयो नी जाननो अंधारा में रेनो है। २५०० बरस में गांधीजी के सिवाय ऐसो कोई आदमी नी हुयो।

वी नी होता तो आज लोग लोगने खई जता लुगायां के कोई नी पूछतो ने बकरा मुर्गा मेडा को पतोज नी चलतो। धरम का नाम पर इनके होम मेंज चड़ई देता।

इनको धरम घणोज सीधो सादो है। अपना मध्य-भारत चम्बल माता की धरती में इनका धरम को एक बहुत बड़ो राजा आखो हिन्दुस्तान को अशोक हुओ है। वो यां ऊका बाप का जमाना में मोटो दीवान कई सूबो रई चुक्यो है।

उज्जैन की शिप्रा में ऊंका घोड़ा पानी पीता था। दोई कालीसिंध ने पार्वती में भी।

इनने बुद्धजी का धरम के घर घर फैलायो थो, लुगायां हरीजन आदिवासी सब इना धरम के मानी सक्ता था। बान्याबामण ने छोटा मोटा को भेद बुद्धजी का धरम में नी है।

"अच्छा काम करो ने सबके जीवादो" यो उनको सार थो अपना मालवा में सांची गाम की पहाड़ी पर उनका दो चेला सारिपुत्र ने महा मुग्गलाना का फूल गया साल विलायत से पाछा लई ने अपना मोटा दीवान जवाहरलालजी के हाथ से रख्या गया है।

"अपन सब बुद्धजी के सरणे जावां
उनका संघ के सरणे जावां
उनका धरम के सरणे जावां"

बुद्ध को जनम

श्री नारायणप्रसाद 'भूषण'

दुनिया भर में जितना मनक है उनने बुद्धजी ने बापू को नाम जरूर सुन्यो होगो, ने ओर जो नी सुन्यो होय तो उनकी गिनती मनख जमारा में करनी मुश्कल है।

अपना मालवा में, अपनी शिप्रा-ओर चम्बल नदी की प्यारी धरती में ओर बिचला (मध्य) भारत में घना लोग ऐसा है. जो पढ्या लिख्या ने भण्यागुण्या नी है। भील, कोरकू, सौन्द्या, भंगी, चमार, बलई, भोई ऐसी नरी जात है, जो अंगूठा की निसानी आज बी लगावे है। बापड़ा ई लोग तो जने ढांडाज है।

पैसा वाला ने भण्या हुवा लोग इनकी कई पर्वाज नी करे, आज नी जाने कदसे ऐसो चल्यो अई रयो है। मनख मनखखे मनख नी समझे तो बापड़ा जनावर की कईं चली।

लुगायां को हाल तो ईसे भी बुरो है। आदमी, जनावर, लुगायां सब के सीदो रस्तो बताने वाला, इन पर दया धरम करने वाला एक घणा बड़ा आदमी बुद्धजी आज से २५०० बरस पेंलां वैशाख सुदी पूनम के दिन जन्म्या। उनका बाप को नाम शुद्धोदन थो। उनका बाप बरफ को पहाड़ है जिने हिमालय के है ऊका पास कपिलवस्तु में राज करता था।

उनके कोई बेटो नी थो दो लुगायां परण्या एक को नाम महामाया ने दूसरी को नाम प्रजावती थो, घणो दोरो एक छोरो हुओ। जीको नाम सिद्धार्थ रख्यो। राजा घणो प्रसन्न हुओ, पण बेटा को मन दुनिया का सुख में नी लगतो थो. यो तो दुख ने दुख क्यों होय ईको कारनज जनम भर ढूढं या कर्यो। कोई बूड़ो मांदो मुर्दो ने दुखी देखतो तो जाकोजांज ऊबोरई जातो ने विचार करतो कदीन कदी अपण भी ऐसा होवांगा।

एसा हाल देखी ने राजाने ऊ को जल्दी व्याव करीदियो। बऊ घणी खबसूरत मिली ईको नाम यशोधरा थो। थोड़ाक दिन मेहल में आराम से दोई जना रिया। एक छोरो भी राहुल इनके हुओ।

एक दिन रातम रात सिद्धार्थ कुंवर लुगई ने छोरा के सूता छोड़ी के सुख, अपणो ने आखा संसार को ढूंढने भागी गयो।

जंगल में घनो तप कर्यो, घणा उपास कर्या, पन शान्ती (साता) ने ज्ञान नी मिल्यो, बैसाख की पूनम के दिनज उनके ईको उजालो मिल्यो एक झाड़ के नीचे। इना झाड को नाम बोधिवृत्त हुई गयो यो झाड़ बुद्ध गया में थो। ईना झाड़ की डाली काटी काटी ने आगे राज कुंवरानी संघमित्रा ने अशोक राजा को बेटो महामहेन्द्र लंका लई गयो, सांची लई गयो ने उज्जैन भी लायो थो।

अब सिद्धार्थ कुंवर को नाम बुद्ध पड़यो वी अपना भिक्खुओं की जमात के साथ गामे गाम घूमतारिया ने लोगों के रस्तो बताता रिया। किसी जीवखे नी सतानो, अच्छा चलन से रेनो।

आदर्श ने बेव्हार के बीच का रस्ता (मध्यमाप्रतिपदा) से रेनो। दारु मास छोड़ देनो। माताजी भेरुजी के सामने बोकड़ा नी मारनो।

वी उनका चेला चांटी होनके केता के "भिक्खु तम सब जगा घूमो जां जाव वां घना जना के सुख का वास्ते घना जना के भला के वास्ते जाव"

"पूरी लंगोटी (ब्रह्मचर्य) से रईने ऐसो ज्ञान दो के जो शुरू में भलोहो बीच में भलो हो ने आखरी में भी भलो होवे और यो ज्ञान ऐसी बोली में दो जो सेज होवे और सब जना समजी सके"

इस तरे से उनने चीन, जापान, लंका अफगानिस्तान सरीखा घना मुलक को फायदो करयो ने दुखी जीव के बचाया। वे केता था के जित्ता संस्कार है वे सब उमर का धरम वाला है "वय धम्मा संखारा" ये तो बनता बिगड़ताज रे हे।

शेष पृष्ठ ४२ पर

एक मालवी चित्र।

पर यो नामज् एसो हे !!

—सुरेन्द्र व्यास

रात हुहरी थी। कृष्णो बड़ा-गणेश, महाकाल ने हरसिद्धी का दरसन करई ने जिजमान खे घरे लई आयो थो, कृष्णा का दासाब रोज की तरेज "खसरो" लिखी रिया था। दादो देव-बखस उका दोस्तहोन का सांथे पास का कमरा में केरम खेली रियो थो, ने बा शान्ति वेन पाटला में बेठी ने रामानजी की चोपई बांचीरी थी। अने वे नाथू काका कसरत करी ने ऊपर गच्ची पे हवा खाने पोंची गया था। उनकी एक एक सांस से योई शब्द गूंजी रियो थो केः—

"राम नाम जपनो, परायो माल अपनो !"

❀ ❀ ❀ ❀

कोई जादा देर नी हुई थी, योज नउ साड़ा नउ को बखत हुवो होयगो। एक धड़ाका की आवाज हुई; सबका हाथ जां का जांज रइग्या। दादो देवबखस जने केरम खेल में धुत्त थो, इकासे ऊके सुनई नी पड़्यो। नाथू काका ऊपर का ऊपरज रईग्या, मन में चोर को सच्चो भेम करी ने डरने लग्या। शान्ति वेन जो रामानजी बांची री थी उको गलो बी एकदम धीरो पड़ीग्यो, ने दासाब को चस्मों ठेट करम से खिसली ने सीदो नाक का अगला हिस्सा पे अई गिर्यो। थोड़ी देर में फिर बरतन गिरने की आवाज हुई।

नाथू काका जोर से चिल्लई पड़्या..."चोर... चोर......!" नाथू काका लाख सोचता कि नीचे चल्या चलां; पर किस तरे जाता, चोर तो बीच की मंजिल में थो।

दासाब बी चिल्लाया "चोर..." ; तो चोर का पांव भागने का नीचे सुनाया। अब तो सब डरी ने एक सांते चिल्लाया—"चोर...! चोर... !!" अब या आवाज देव बखस ने सुनी तो उका दोस होन के सांते लई ने दासाब का पास आयो।

नीचे मांखना की तरे 'लोग' भरई रिया था, ने कोई अपनी मूंछ की खाली जगा पे हाथ फेरी ने कोरा-मोरा बकी रिया था। पन कोई की हिम्मत नी हुई के चड़ाव का वारना खोलदां और ऊपर चड़ी ने चोर की खबर लां। सब समजी रिया था के आदमी एकज है।

अँई नाथू काका को सांस भरइग्यो, जीव घबराने लग्यो और पसीना में लत-पत हुई ने विचारा 'हनुमान चालिसा' को पाठ करने लग्या।

"भूत पिशाच निकट नहीं आवे।
महावीर जब नाम सुनावे ॥
जय जय जय हनुमान गुसांई—
कृपा करो गुरुदेव की नांई ॥"

शान्ति वेन ने नीचे की भीड़ से हिम्मत करीके कियो—"यां कई ऊबा हो ने कोरी बात हांको हो, जरा डण्डा वण्डा लई ने ऊपर तो चलो, अपन उके यां भरानो भुलईदां।"

शान्ति ने किमाड़ खोल्यो ने सब हल्लो-गुल्लो करता हुआ ऊपर पोंच्या। नाथू काका बी अपना लोग की बोली सुनी ने बीच की मंजिल में हिम्मत करी ने उतर्या। अई देख्यो वा बिल्ली थी के बिल्लो? राम जाने, हाँ पण बेठी जरूर थी! सारी आटा की गागरी गिरइदी थी ने खुद बी आटा में भूरी हुई ने बायर निकलबा को रस्तो देखी री थी।

आया हुआ सब जनां ही-ही करता जेसा आया था पाछला पांव वापिस हुई ग्या।

पर नाथू काका मनेमन अपना ऊपरज हंसने लग्या; सोचने लग्या—अपन या जिजमानी करेँ हाँ, अनाप-शनाप लड्डू-मङ्गल कराँ हाँ-इकोज कारण हे के आज अपन इत्ता डर्‌या, खरा पसीना की कमई खाता तो आज "चोर" का नाम से शिमा में न्हावाँ-कराँ, एसा पसीना में नी न्हाता।

परिचय-परामर्श

रेडियो संग्रह

भारत सरकार के सूचनाविभाग की ओर से रेडियो के विभिन्न केन्द्रों से दिये गए भाषणों को संग्रहीत कर इस त्रैमासिक में सुन्दरता से प्रकाशित किया गया है। इस सूझ और प्रकाशन के लिये सूचना विभाग धन्यवाद का पात्र है, हमने दो अंकों को देखा है। दोनों की विषय वस्तु उत्तम है, संकलन सुरुचिपूर्ण है, आठ आने में यह पुस्तिका अवश्य संग्रहणीय है। पब्लिकेशन डिविजन दिल्ली से प्राप्य। विदित हुआ है कि अब इस संग्रह का नाम परिवर्तित कर दिया गया है।

भारती

गवालियर के प्रसिद्ध कवि श्री. मिलिन्दजी के संपादन में यह नवीन पत्रिका आरंभ हुई है। पत्रिका का अंतरंग-बहिरंग सुन्दर है, श्री. द्विवेदी के संचालन में यह पत्रिका शीघ्र ही श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लेगी। गवालियर से निकलने वाली यह पहली साहित्यिक पत्रिका है, हम इसका स्वागत करते हैं और चिरंजीवी रहने की कामना। मुद्रण और प्रूफ की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

जाग्रति

पंजाब शासन के प्रचार विभाग की यह हिन्दी पत्रिका शिमला से हाल में प्रकाशित हुई है, सुन्दर कागज, और मुद्रण से सुसज्जित पत्रिका के एक अंक का मूल्य ४ आना है। इसमें पंजाब की प्रगति की चर्चा के अतिरिक्त साहित्य-संस्कृति पर भी रचना संग्रहीत है। हम पत्र की उन्नति चाहते हैं, (लोक-सम्पर्क विभाग शिमला)।

अंतर्विद्यालय पत्रिका

बढवानी के विद्यालय से यह सुन्दर वार्षिक पत्रिका प्रकाशित हुई है। संस्था की प्रवृत्ति का परिचय उसकी प्रगति का सूचक है, छात्रों, और अध्यापकों की सुन्दर रचनाओं से पत्रिका को सुसज्जित किया गया है। अवश्य ही स्वयं संपादक की एकाधिक रचना को स्थान दिया जाना विचारणीय है। इसमें उर्दू में जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, वह यदि नागरी-लिपि में दिया होता तो वह अधिक लोकोपयोगी होता, उर्दू लिपि में केवल उन्हीं को समाधान होगा जिन्होंने लिखा है, या जो गिने चुने इसे समझ सकते हैं, इसलिये इसकी उपयोगिता समझ में नहीं आती।

मध्य-भारत संदेश

२८ मई—मध्य भारत दिवस के उपलक्ष में उक्त पत्र का विशेषांक प्रकाशित हुआ, मध्य भारत की उन्नति-प्रगति के परिचायक साहित्य के साथ म. भा. की संस्कृति के सम्बन्ध में लेख, कविताएँ भी दीगई हैं, पत्र सुपाठ्य, सुरुचि पूर्ण बनगया है। संपादक की सफलता पर बधाई!

अम्बर के दीप

प्रकाशकः—साहित्य-परिषद्, भेलसा। मूल्य डेढ़ रु.
प्रणेताः—श्री शम्भूदयाल शर्मा 'विमल'

आज चाहे "अम्बर के दीप" का लेखक हमारे बीच न हो किन्तु जब तक अम्बर में तारों की दीप माला जगमगाती रहेगी श्री'विमल' की प्रतिभा भी प्रतिभासित होती रहेगी। "अम्बर के दीप" में श्रीविमल की बावन स्फुट कविताओं को संग्रहीत किया गया है, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने भूमिका में लिखा है कि "श्रीविमलजी के इन गीतों को मैं विशुद्ध 'छायावादी' मानती हूँ, उनके वैयक्तिक जीवन से सीधे सम्बन्ध रखने वाले इन गीतों में उनका अभ्यंतर ही अधिक मुखरित हो पाया है, कवि ने अपनी ही घात-प्रति घात और सुख-दुख की बात की है वे अपनी वेदना में व जग की वेदना में साम्य पाते हैं।" मन-

की विजय पर कवि को अटल विश्वास है और वह कहता है:—

हारती आशा मनुज की, हारती भाषा मनुज की,
किन्तु,
हारता होता कहीं यदि मन,
व्यक्ति मिट जाता धरा से
शून्य हो जाती, जगत की यह व्यवस्था।"

आशावादी कवि को मृत्यु का भय नहीं है वह विजय की कामना लेकर मृत्यु पथ-पर चलते हैं और अपने प्रशस्त पंथ पर चलने में संघर्ष करना आफतों से रातदिन जूझना कवि की एक पंक्ति में आकर बैठ गया है।

"मोड़ दूंगा नाव को चाहे जिधर कुछ डर नहीं है"।

स्व. पं. विमलजी के इस अमूल्य रत्न ने माँ-भारती के मन्दिर में और भी सौन्दर्य जोड़ दिया है।

भारतीय वीराङ्गना

लेखक महलाचन्द बयेद; प्रकाशक-ओसवाल प्रेस, कलकत्ता; मूल्य-ढाई रुपया।

'कल्याण' के नारी विशेषांक से प्रेरित होकर श्री बयेद ने भारतीय वीराङ्गनाओं के संक्षिप्त चरित्र प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित किये हैं। पुस्तक में २७ वीराङ्गनाओं के चरित्र वर्णित हैं। लेखक ने अपनी लेखनी से कुछ चरित्र ही लिखे हैं और शेष 'कल्याण' के नारी विशेषांक से उद्धृत किये हैं। पुस्तक विद्यार्थियों और विशेष रूप से भारतीय छात्राओं के लिये उपयोगी है। छपाई सुन्दर और पुस्तक सचित्र एवं सजिल्द है।

अन्तरिम क्षतिपूर्ति योजना

प्रकाशक-पब्लिकेश डिवीजन, भारत सरकार, दिल्ली; मूल्य-दो आना।

देश की पुनर्वास समस्या के साथ ही क्षतिपूर्ति योजना का सम्बन्ध है। प्रस्तुत पुस्तिका चार अध्यायों में विभक्त है। 'पहला कदम' 'योजना और आप' 'मोहिनी देवी का मामला' और 'भुगतान की दर' नामक अध्यायों में अन्तरिम योजना पर व्यौरेवार वर्णन किया गया है। भारत में विभाजन के पश्चात १० लाख परिवारों का आगमन हुआ है। इस सम्बन्ध में पाकिस्तान से भी चर्चाएं की गई, पर इधर विस्थापितों के लिये कुछ करना जरूरी था, इसलिये ५ नवम्बर १९५३ को उक्त योजना स्वीकार की गई। 'मेरे मित्रों के नाम' नामक भूमिका प्रकरण में श्री अजितप्रसाद जैन ने गम्भीर समस्याओं और उनके निराकरण पर प्रकाश डाला है। पुस्तिका अध्येताओं के लिये संग्रहणीय है।

बापू की कहानियाँ

संग्रहकर्ता-व्योहार राजेन्द्रसिंह, प्रकाशक-मानस मन्दिर, साहित्य प्रेस, जबलपुर। मूल्य-आठ आना।

बालकों के लिये प्रस्तुत पुस्तक में बापू के जीवन की ३८ घटनाएँ संग्रहीत हैं। नीती, प्रेम, अहिंसा, ईश्वर, स्वास्थ्य, स्वभाव, हरिजन, आदि अनेक विषयों पर इसमें पठनीय सामग्री है। बालोपयोगी साहित्य की दृष्टि से पुस्तक एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है छपाई साधारण है।

राजसिंह चरित्र

लेखक-डा० केशरीसिंह बारहठ, प्रकाशक-ओसवाल प्रेस, कलकत्ता, मूल्य-ढाई रुपया।

ठाकुर केशरीसिंहजी बारहठ ने मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के चरित्र से प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य को समलंकृत किया है। लेखक ने प्रबन्ध काव्य की परम्परागत पद्धति को न अपनाते हुए सर्गों के स्थान पर विभिन्न विषयों के शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन दिये हैं। राजसिंह का चरित्र लेखक की प्रतिभा से मुखरित हुआ है काव्य-सौन्दर्य में बाधा कहीं न आने पाई है। वास्तव में ब्रज भाषा और डिंगल का मिश्रित काव्य-वैभव प्रस्तुत प्रबन्ध में निखरा है। लेखक बधाई का पात्र है। प्रबन्धकाव्यों की परम्परा में 'राजसिंह चरित्र' के रूप में प्रस्तुत पुस्तक एक महत्वपूर्ण कृति है। छपाई सुन्दर है। स्थान-स्थान पर लेखक ने पाद टिप्पणियों द्वारा प्रसंग स्पष्ट कर दिये हैं।

अन्तर्द्वन्द (कहानियाँ)

लेखक—श्री ब्रजेश; प्रकाशक—मध्य मालव प्रकाशन मंदिर, सुलतानिया (म.भा.); मूल्य—दो रुपया।

अन्तर्द्वन्द में श्री ब्रजेश जी की १० कहानियाँ संग्रहीत हैं। यद्यपि आपने लगभग २०० कहानियाँ लिखी हैं और प्रस्तुत कहानियाँ उनके बचपन की लिखी हुई हैं, (जैसा कि प्रारम्भिक पृष्ठों में सूचित है,) तथापि प्रकाशक के शब्दों में 'एक ग्रामीण द्वारा लिखित, ग्रामीण द्वारा संपादित, और ग्रामीण द्वारा मुद्रित' यह संग्रह संग्राह्य हैं। दांपत्यजीवन के छोटे से कलह का वर्णन, धन के द्वारा शोषण की प्रवृत्ति का चित्र, अवसरवाद, विचार वैषम्य श्रमिक जीवन की सचाई, हास्य, व्यंग और मनोवैज्ञानिक गहराइयों का लेखक ने कुशलता-पूर्वक वर्णन किया है। कहानियाँ सरल, छोटी और मन को प्रभावित करने वाली हैं। श्री ब्रजेश की लेखनी से प्रसूत दस कहानियों के प्रस्तुत संग्रह का हिन्दी के कहानी साहित्य में स्वागत है।

विदेह (महा-काव्य)

काव्यकार—पोद्दार रामावतार अरुण, प्रकाशक—किरण-कुंज, समस्तीपुर [बिहार], मूल्य—आठ रुपये।

"देह के युग में विदेह की रचना कर मैंने काल के हाथ में एक कमल रख दिया है, जिसकी पंखड़ियों पर अतीत के कुछ ओस हैं और आज की किरण" काव्य-कार ने महाकाव्य के प्रारम्भ में यह बात लिखकर एक बड़े सत्य की ओर संकेत किया है। 'विदेह' हिन्दी के महाकाव्य की परम्परा में आकर जुड़ी हुई एक ऐसी कड़ी है जिसमें अतीत की आभा वर्तमान का स्पर्श पाकर, कवि के अन्तर में आलोड़ित होकर एक अनोखे पन से झलकी है। कवि की कल्पनाएँ सशक्त और मन को बाँधने की क्षमता रखती हैं। वर्णन में काव्यगत सौन्दर्य पाठक को विम्बग्रहण कराने के पूरे उपकरणों को सहेजे हुए हैं।

महाकाव्य की कथावस्तु विदेह के जीवन से सम्बन्धित है जिसमें कुछ अन्तर्कथाएँ हैं। दर्शन की मर्यादा और चिन्तन का सूत्र सम्पूर्ण कथा में व्याप्त है। काव्य-कार ने विदेह के जीवनगत ऐतिह्य पक्ष को उत्कट रूप से नहीं अपनाया है, क्योंकि वह स्वयं 'साहित्यिक न्याय की मर्यादा' को स्वीकार करता है। अतः 'विदेह' का व्यापक चरित्र कवि की लेखनी इस प्रकार उभरा है जैसे किसी चित्रकारी तूलिका चित्र अथवा शिल्पी की छेनी से कोई प्रतिमा।

'विदेह' आठ सर्गों में विभक्त है। सम्पूर्ण काव्य कुछ गीतात्मक अंशों को छोड़कर मुक्त छन्द में हैं। और यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि छन्दगत शैथिल्य कहीं नहीं है। शैली परिमार्जित और अभिव्यञ्जना स्पष्ट है। भाषागत प्रयोग सशक्त और संयत हैं। अरुणजी शब्दों के जादूगर हैं। इन्हें यदि रंग दे दिये जायें तो कदाचित वे उतने ही उत्तम चित्रों की सृष्टि कर सकते हैं जिस तरह विदेह में किये हैं। देखिए:—

हेमन्त यामिनी-श्रान्त चन्द्र हो रहा अस्त धीरे-धीरे
अति मन्द-मन्द स्वच्छन्द पवन को देख रहा है अन्धकार
उदयाचल पर ऊषा की वाणी बिखर रही आनन्दमयी
उड़ती कुहेलिका—घटा प्रात के पुण्य लिए
मर्मरित आम्र वन में खग कुल चहचहा रहा
भैरवी विचरती राज भवन के आस पास
वेदान्त सत्य संगीत लिए
उपनिषद् मंत्र शत शत गुंजित
तंद्रिल जन गण मन के स्वर पर
ऋषियों के बंधन ब्रह्मगान आश्रम समीप सर्वत्र व्यास !

संवाद-स्थलों पर तर्क की चुस्ती 'विदेह' का वैशिष्य है। निःसन्देह 'विदेह' हिन्दी काव्य की समृद्धि में एक सहायक ग्रन्थ है। कवि अरुण इसके यश के भागी हैं।

—श्याम परमार

080378

फ़्रांस के वह दिन

[अंग्रेज़ी के एक आधुनिक कवि बर्नार्ड स्पेन्सर की कविता 'ऑन दी रोड' का भावानुवाद]

जब अंगूर-गुल्म प्राचीरों के छिद्रों से
छन-छन कर आने वाली जामुनी धूप में
बैठे हम मदिरा पीते थे,
छत पर, आगे-पीछे केवल अंगूरों की
लम्बी बाँहें फैल गयीं थीं।
वह सफ़ेद सी सडक कहाँ किस दूर देश में
जाती थी, मालूम नहीं था,
उत्कण्ठा भी नहीं कभी भी
मन में तब अपने उठती थी.
लेकिन वह ही हम दोनों को
उस कंचन उपत्यका के उस पर्ण-वेश्म में
ले आयी थी।
वह उपत्यका जिसके तट पर
अगर समय की कभी क्षीण-सी भी सत्ता थी
तो ऐसी थी
जैसे कोई उन्मन धारा, जो कि रुकी हो लेकिन फिर भी
बहती-सी मन को लगती हो।

हम दोनों।
सारी ही दुनिया निचुडी थी
हम दोनों में।
समझ सदा रुक कर आती है,
भान सदा से स्तम्भित हो
सहसा ही उत्कण्ठित चिन्तित
आता है, जब देर बहुत ही हो जाती है।
भूल गया मैं सन्-या-संवत्,
या जो कुछ आतुरता-चालित
हम दोनों ने कह डाला था,
लेकिन वह अंगूर-विनिर्मित
शीतल छाया दगी हुई है सुस्मृति-उर पर।
टेढ़ी-मेढ़ी ग्राम्य कुरसियाँ
मेज-बेंचें सरिता के तट
जहाँ और मेवों सा कोमल
कानन था, मदिरा मद मज्जित,
अर्द्ध सुप्त मुस्काती आँखें —
सब कुछ था—दुनिया का सब कुछ—
नहीं, धूप, पत्ते औ' आकुल
हो कर मैं अब ढूंढ रहा हूं
शब्द जो कि 'अंगूर' और उसकी मादकता व्यक्त
कर सके।

श्री अनन्त कुमार 'पाषाण'

गुरुकुल-पत्रिका

Phone No. 48 Regd. No. J 93

टेलीफोन नम्बर ११ तार का पता "बिनोद"

दी भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
उज्जैन, (मध्यभारत)

[मालिक—दी बिनोद मिल्स कम्पनी लि०]

आधुनिक नवीन मशीनरीयुक्त फाउन्ड्री

जिसमें बढ़िया किस्म का कास्टिंग होता है, हर प्रकार के टैक्सटाइल मशीनरी पार्टस्, आइल एन्जिन्स, कृषि सम्बन्धी औजार, सी. आई. पाईप्स, व स्पेशल्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं।

इस फाउन्ड्री द्वारा निर्मित डाइंग व ब्लिचिंग जिगर्स और पेडिंग मशीन्स मध्यभारत की मिलों में पूर्ण संतोषप्रद रूप में काम दे रही हैं।

इस फैक्ट्री के बने हुए पुरजे सही टिकाऊ व सस्ते होते हैं। एक वक्त आर्डर देकर खातरी करें।

मैनेजर,
भूपेन्द्र आयरन एण्ड मेटल वर्क्स
बिनोद मिल्स कम्पाउन्ड, उज्जैन.

मुद्रक—लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, प्रकाशक, मोहन प्रिंटिंग प्रेस, माधवनगर उज्जैन।

Compiled
1999-2000